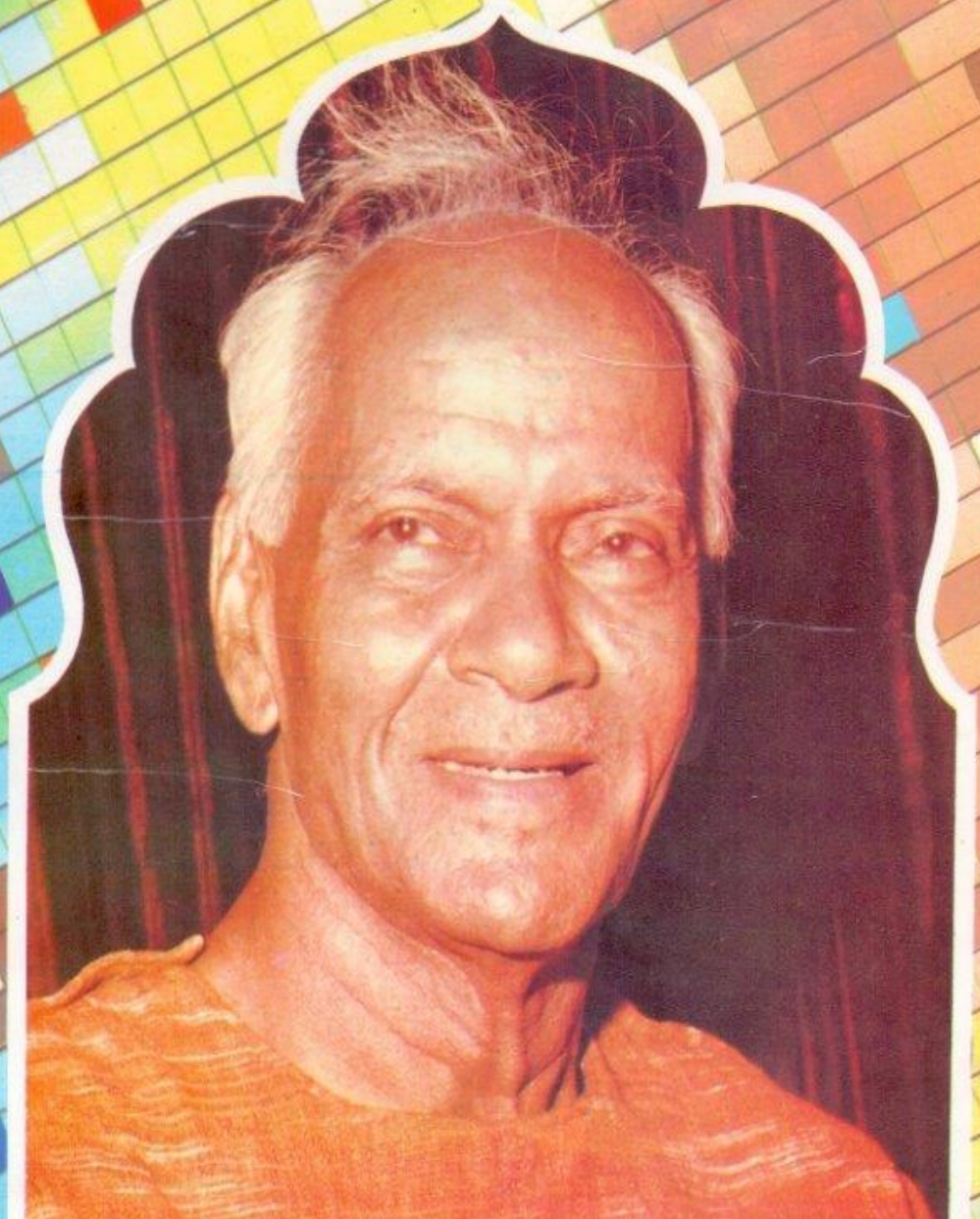
पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

प्रेरणाप्रद दृष्टान्त



www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

प्रेरणाप्रद दृष्टान्त

सम्पादक
ब्रह्मवर्चस

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

प्रकाशक
अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकाशक
अखण्ड ज्योति संस्थान
मथुरा-२८१ ००३

© सर्वाधिकार सुरक्षित

द्वितीय संस्करण १९९८

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org



मूल्य १२५)

मुद्रक
जनजागरण प्रेस, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समर्पणम्

ॐ वन्दे भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ।।

मातृवत् लालयित्री च पितृवत् मार्गदर्शिका ।
नमोऽस्तु गुरुसत्तायै श्रद्धा-प्रज्ञा युता च या ।।

भगवत्याः जगन्मातुः, श्रीरामस्य जगद्गुरोः ।
पादुकायुगले वन्दे, श्रद्धाप्रज्ञास्वरूपयोः ।।

नमोऽस्तु गुरवे तस्मै गायत्रीरूपिणे सदा ।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम् ।।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

असम्भवं सम्भवकर्तुमुद्यतं प्रचण्डझञ्झावृतिरोधसक्षमम् ।
युगस्य निर्माणकृते समुद्यतं परं महाकालममुं नमाम्यहम् ।।

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विराट गायत्री परिवार एवं उसके संस्थापक-संरक्षक एक संक्षिप्त परिचय

इतिहास में कभी-कभी ऐसा होता है कि अवतारी सत्ता एक साथ बहुआयामी रूपों में प्रकट होती है एवं करोड़ों ही नहीं, पूरी वसुधा के उद्धार-चेतनात्मक धरातल पर सबके मनों का नये सिरे से निर्माण करने आती है। परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य को एक ऐसी ही सत्ता के रूप में देखा जा सकता है, जो युगों-युगों में गुरु एवं अवतारी सत्ता दोनों ही रूपों में हम सबके बीच प्रकट हुई, अस्सी वर्ष का जीवन जीकर एक विराट ज्योति प्रज्वलित कर उस सूक्ष्म ऋषिचेतना के साथ एकाकार हो गयी जो आज युग-परिवर्तन को सन्निकट लाने को प्रतिबद्ध है। परमवंदनीया माताजी शक्ति का रूप थीं जो कभी महाकाली, कभी माँ जानकी, कभी माँ शारदा एवं कभी माँ भगवती के रूप में शिव की कल्याणकारी सत्ता का साथ देने आती रही हैं। उनने भी सूक्ष्म में विलीन हो स्वयं को अपने आराध्य के साथ एकाकार कर ज्योतिपुरुष का एक अंग स्वयं को बना लिया। आज दोनों सशरीर हमारे बीच नहीं हैं किन्तु, नूतन सृष्टि कैसे ढाली गयी, कैसे मानव गढ़ने का साँचा बनाया गया, इसे शान्तिकुंज, ब्रह्मवर्चस, गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युगतीर्थ आँवलखेड़ा जैसी स्थापनाओं तथा संकल्पित सृजन सेनानीगणों के वीरभद्रों की करोड़ों से अधिक की संख्या के रूप में देखा जा सकता है।

परमपूज्य गुरुदेव का वास्तविक मूल्यांकन तो कुछ वर्षों बाद इतिहासविद, मिथक लिखने वाले करेंगे किन्तु, यदि उनको आज भी साक्षात कोई देखना या उनसे साक्षात्कार करना चाहता हो तो उन्हें उनके द्वारा अपने हाथ से लिखे गये उस विराट परिमाण में साहित्य के रूप में युगसंजीवनी के रूप में देखा सकता है, जो वे अपने वजन से अधिक भार के बराबर लिख गये। इस साहित्य में संवेदना का स्पर्श इस बारीकी से हुआ है कि लगता है लेखनी को उसी की स्याही में डुबोकर लिखा गया हो। हर शब्द ऐसा जो हृदय को छूता, मन को व विचारों को बदलता चला जाता है। लाखों-करोड़ों के मनों के अंतस्तल को छूकर उसने उनका कायाकल्प कर दिया। रूसो के प्रजातंत्र की, कार्लमार्क्स के साम्यवाद की क्रान्ति भी इसके समक्ष बौनी पड़ जाती है। उनके मात्र इस युग वाले स्वरूप को लिखने तक में लगता है कि एक विश्वकोश तैयार हो सकता है, फिर उस बहुआयामी रूप को जिसमें वे संगठनकर्ता, साधक, करोड़ों के अभिभावक, गायत्री महाविद्या के उद्धारक, संस्कार परम्परा का पुनरुज्जीवन करने वाले, ममत्व लुटाने वाले एक पिता, नारी जाति के प्रति अनन्य करुणा बिखेरकर उनके ही उद्धार के लिए धरातल पर चलने वाला नारी जागरण अभियान चलाते देखे जाते हैं, अपनी वाणी के उद्बोधन से एक विराट गायत्री परिवार एकाकी अपने बलबूते खड़े करते दिखाई देते हैं तो समझ में नहीं आता, क्या-क्या लिखा जाये, कैसे छन्दबद्ध किया जाय, उस महापुरुष के जीवनचरित को।

आश्विन कृष्ण त्रयोदशी विक्रमी संवत् १९६७ (२० सितम्बर, १९११) को स्थूल शरीर से आँवलखेड़ा ग्राम, जनपद आगरा, जो जलेसर मार्ग पर आगरा से पन्द्रह मील की दूरी पर स्थित है, में जन्मे श्रीराम शर्मा जी का बाल्यकाल-कैशोर्य काल ग्रामीण परिसर में ही बीता। वे जन्मे तो थे एक जमींदार घराने में, जहाँ उनके पिताश्री पं. रूपकिशोर जी शर्मा आस-पास के, दूर-दराज के राजघरानों के राजपुरोहित, उद्भट विद्वान, भागवत कथाकार थे किन्तु, उनका अंत:करण मानव मात्र की पीड़ा से सतत विचलित रहता था। साधना के प्रति उनका झुकाव बचपन में ही दिखाई देने लगा। जब वे अपने सहपाठियों को, छोटे बच्चों को अमराइयों में बिठाकर स्कूली शिक्षा के साथ-साथ सुसंस्कारिता अपनाने वाली आत्मविद्या का शिक्षण दिया करते थे, छटपटाहट के कारण हिमालय की ओर भाग निकलने व पकड़े जाने पर उनने संबंधियों को बताया कि हिमालय ही उनका घर है एवं वहीं वे जा रहे थे। किसे मालूम था कि हिमालय की ऋषि चेतनाओं का समुच्चय बनकर आयी यह सत्ता वस्तुत: अगले दिनों अपना घर वहीं बनाएगी। जाति-पाँति का कोई भेद नहीं। जातिगत मूढ़ता भरी मान्यता से ग्रसित तत्कालीन भारत के ग्रामीण परिसर में एक अछूत वृद्ध महिला

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org
की जिसे कुष्ठ रोग हो गया था, उसी के टोले में जाकर सेवा कर उनने घरवालों का विरोध तो मोल ले लिया पर अपना व्रत नहीं छोड़ा। उस महिला ने स्वस्थ होने पर उन्हें ढेरों आशीर्वाद दिये। एक अछूत कहलाने वाली जाति का व्यक्ति जो उनके आलीशान घर में घोड़ों की मालिश करने आता था, एक बार कह उठा कि मेरे घर कथा कौन कराने आएगा, मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ? नवनीत जैसे हृदय वाले पूज्यवर उसके घर जा पहुँचे एवं कथा पूरे विधान से कर पूजा की, उसको स्वच्छता का पाठ सिखाया, जबकि सारा गाँव उनके विरोध में बोल रहा था।

किशोरावस्था में ही समाज-सुधार की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ उनने चलाना आरम्भ कर दी थीं। औपचारिक शिक्षा स्वल्प ही पायी थी किंतु, उन्हें इसके बाद आवश्यकता भी नहीं थी, क्योंकि जो जन्मजात प्रतिभासम्पन्न हो वह औपचारिक पाठ्यक्रम तक सीमित कैसे रह सकता है। हाट-बाजारों में जाकर स्वास्थ्य-शिक्षा प्रधान परिपत्र बाँटना, पशुधन को कैसे सुरक्षित रखें तथा स्वावलम्बी कैसे बनें, इसके छोटे-छोटे पैम्फलेट्स लिखने, हाथ की प्रेस से छपवाने के लिए उन्हें किसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी। वे चाहते थे, जनमानस आत्मावलम्बी बने, राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान उसका जागे, इसलिए गाँव में जन्मे इस लाल ने नारीशक्ति व बेरोजगार युवाओं के लिए गाँव में ही एक बुनताघर स्थापित किया व उसके द्वारा हाथ से कैसे कपड़ा बुना जाय, अपने पैरों पर कैसे खड़ा हुआ जाय यह सिखाया।

पंद्रह वर्ष की आयु में वसंत पंचमी की वेला में सन् १९२६ में उनके घर की पूजास्थली में, जो उनकी नियमित उपासना का तब से आगार थी, जबसे महामना पं. मदनमोहन मालवीय जी ने उन्हें काशी में गायत्री मंत्र की दीक्षा दी थी, उनकी गुरुसत्ता का आगमन हुआ अदृश्य छायाधारी सूक्ष्म रूप में। उनने प्रज्वलित दीपक की लौ में से स्वयं को प्रकट कर उन्हें उनके द्वारा विगत कई जन्मों में सम्पन्न क्रिया-कलापों का दिग्दर्शन कराया तथा उन्हें बताया कि वे दुर्गम हिमालय से आये हैं एवं उनसे अनेकानेक ऐसे क्रियाकलाप कराना चाहते हैं, जो अवतारी स्तर की ऋषिसत्ताएँ उनसे अपेक्षा रखती हैं। चार बार कुछ दिन से लेकर एक साल तक की अवधि तक हिमालय आकर रहने, कठोर तप करने का भी उनने संदेश दिया एवं उन्हें तीन संदेश दिए- १. गायत्री महाशक्ति के चौबीस-चौबीस लक्ष्य के चौबीस महापुरश्चरण, जिन्हें आहार के कठोर तप के साथ पूरा करना था। २. अखण्ड घृतदीप की स्थापना एवं जन-जन तक इसके प्रकाश को फैलाने के लिए समय आने पर ज्ञानयज्ञ अभियान चलाना, जो बाद में अखण्ड ज्योति पत्रिका के १९३८ में प्रथम प्रकाशन से लेकर विचार-क्रान्ति अभियान के विश्वव्यापी होने के रूप में प्रकटा तथा ३. चौबीस महापुरश्चरणों के दौरान युगधर्म का निर्वाह करते हुए राष्ट्र के निमित्त भी स्वयं को खपाना, हिमालय यात्रा भी करना तथा उनके संपर्क से आगे का मार्गदर्शन लेना।

यह कहा जा सकता है कि युगनिर्माण मिशन, गायत्री परिवार, प्रज्ञा अभियान, पूज्य गुरुदेव जो सभी एक-दूसरे के पर्याय हैं, की जीवनयात्रा का यह एक महत्त्वपूर्ण मोड़ था, जिसमें भावी रीति-नीति का निर्धारण कर दिया। पूज्य गुरुदेव अपनी पुस्तक 'हमारी वसीयत और विरासत' में लिखते हैं कि- ''प्रथम मिलन के दिन समर्पण सम्पन्न हुआ। दो बातें गुरुसत्ता द्वारा विशेष रूप से कही गईं- संसारी लोग क्या करते हैं और क्या कहते हैं, उसकी ओर से मुँह मोड़कर निर्धारित लक्ष्य की ओर एकाकी साहस के बलबूते चलते रहना एवं दूसरा यह कि अपने को अधिक पवित्र और प्रखर बनाने की तपश्चर्या में जुट जाना- जौ की रोटी व छाछ पर निर्वाह कर आत्मानुशासन सीखना। इसी से वह सामर्थ्य विकसित होगी जो विशुद्धतः परमार्थ प्रयोजनों में नियोजित होगी। वसंत पर्व का यह दिन गुरु अनुशासन का अवधारण ही हमारे लिए नया जन्म बन गया। सद्गुरु की प्राप्ति हमारे जीवन का अनन्य एवं परम सौभाग्य रहा।''

राष्ट्र के परावलम्बी होने की पीड़ा भी उन्हें उतनी ही सताती थी जितनी कि गुरुसत्ता के आदेशानुसार तपकर सिद्धियों के उपार्जन की ललक उनके मन में थी। उनके इस असमंजस को गुरुसत्ता ने ताड़कर परावाणी से उनका मार्गदर्शन किया कि युगधर्म की महत्ता व समय की पुकार देख-सुनकर तुम्हें अन्य आवश्यक कार्यों को छोड़कर अग्निकाण्ड में पानी लेकर दौड़ पड़ने की तरह आवश्यक कार्य भी करने पड़ सकते हैं। इसमें स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के नाते संघर्ष करने का भी संकेत था। १९२७ से १९३३ तक का समय उनका एक सक्रिय स्वयं सेवक-स्वतंत्रता सेनानी के रूप में बीता, जिसमें घरवालों के विरोध के बावजूद

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org
पैदल लम्बा रास्ता पार कर वे आगरा के उस शिविर में पहुँचे, जहाँ शिक्षण दिया जा रहा था, अनेकानेक मित्रों-सखाओं-मार्गदर्शकों के साथ भूमिगत हो कार्य करते रहे तथा समय आने पर जेल भी गये। छह-छह माह की उन्हें कई बार जेल हुई। जेल में भी वे जेल के निरक्षर साथियों को शिक्षण देकर व स्वयं अँग्रेजी सीखकर लौटे। आसनसोल जेल में वे श्री जवाहरलाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू, श्री रफी अहमद किदवई, महामना मदनमोहन मालवीय जी, देवदास गाँधी जैसी हस्तियों के साथ रहे व वहाँ से एक मूलमंत्र सीखा जो मालवीय जी ने दिया था कि जन-जन की साझेदारी बढ़ाने के लिए हर व्यक्ति के अंशदान से, मुट्ठी फण्ड से रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलाना। यही मंत्र आगे चलकर एक घण्टा समयदान, बीस पैसा नित्य या एक दिन की आय एक माह में तथा एक मुट्ठी अन्न रोज डालने के माध्यम से धर्मघट की स्थापना का स्वरूप लेकर लाखों-करोड़ों की भागीदारी वाला गायत्री परिवार बनाता चला गया, जिसका आधार था प्रत्येक व्यक्ति की यज्ञीय भावना का उसमें समावेश।

स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान कुछ उग्र दौर भी आये, जिनमें शहीद भगतसिंह को फाँसी दिये जाने पर फैले जनआक्रोश के समय श्री अरविन्द के किशोरकाल की क्रान्तिकारी स्थिति की तरह उनने भी वे कार्य किये, जिनसे आक्रान्ता शासकों के प्रति असहयोग जाहिर होता था। नमक आन्दोलन के दौरान वे आततायी शासकों के समक्ष झुके नहीं, वे मारते रहे परन्तु, समाधि स्थिति को प्राप्त राष्ट्रदेवता के पुजारी को बेहोश होना स्वीकृत था पर आन्दोलन से पीठ दिखाकर भागना नहीं। बाद में फिरंगी सिपाहियों के जाने पर लोग उठाकर घर लेकर आये। जरारा आन्दोलन के दौरान उनने झण्डा छोड़ा नहीं जबकि, फिरंगी उन्हें पीटते रहे, झण्डा छीनने का प्रयास करते रहे। उनने मुँह से झण्डा पकड़ लिया, गिर पड़े, बेहोश हो गये पर झण्डे का टुकड़ा चिकित्सकों द्वारा दाँतों में भींचे गये टुकड़े के रूप में जब निकाला गया तब सब उनकी सहनशक्ति देखकर आश्चर्यचकित रह गये। उन्हें तब से ही आजादी के मतवाले उन्मत्त श्रीराम 'मत्त' नाम मिला। अभी भी आगरा में उनके साथ रहे या उनसे कुछ सीख लिए अगणित व्यक्ति उन्हें मत्तजी नाम से ही जानते हैं। लगानबन्दी के आँकड़े एकत्र करने के लिए उनने पूरे आगरा जिले का दौरा किया व उनके द्वारा प्रस्तुत वे आँकड़े तत्कालीन संयुक्त प्रान्त के मुख्यमंत्री श्रीगोविन्द वल्लभ पंत द्वारा गाँधीजी के समक्ष पेश किये गये। बापू ने अपनी प्रशस्ति के साथ वे प्रामाणिक आँकड़े ब्रिटिश पार्लियामेण्ट भेजे, इसी आधार पर पूरे संयुक्त प्रान्त के लगान माफी के आदेश प्रसारित हुए। कभी जिनने अपनी इस लड़ाई के बदले कुछ न चाहा उन्हें सरकार ने अपना प्रतिनिधि भेजकर पचास वर्ष बाद ताम्रपत्र देकर शांतिकुंज में सम्मानित किया। उसी सम्मान व स्वाभिमान के साथ सारी सुविधाएँ व पेंशन उनने प्रधानमंत्री राहत फण्ड के नाम समर्पित कर दीं। वैरागी जीवन का सच्चे राष्ट्रसंत होने का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है?

१९३५ के बाद उनके जीवन का नया दौर शुरू हुआ, जब गुरुसत्ता की प्रेरणा से वे श्री अरविन्द से मिलने पाण्डिचेरी, गुरुदेव ऋषिवर रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिलने शांतिनिकेतन तथा बापू से मिलने साबरमती आश्रम, अहमदाबाद गये। सांस्कृतिक, आध्यात्मिक मोर्चे पर राष्ट्र को कैसे परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त किया जाय, यह निर्देश लेकर अपना अनुष्ठान यथावत् चलाते हुए उनने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया, जब आगरा में 'सैनिक' समाचार पत्र के कार्यवाहक संपादक के रूप में श्री कृष्णदत्त पालीवाल जी ने उन्हें अपना सहायक बनाया। बाबू गुलाबराय व पालीवाल जी से सीख लेते हुए सतत स्वाध्यायरत रहकर उनने अखण्ड ज्योति नामक पत्रिका का पहला अंक १९३८ की वसंत पंचमी पर प्रकाशित किया। प्रयास पहला था, जानकारियाँ कम थीं अतः पुनः सारी तैयारी के साथ विधिवत १९४० की जनवरी से उनने परिजनों के नाम पाती के साथ अपने हाथ से बने कागज पर पैर से चलने वाली मशीन से छापकर 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका का शुभारंभ किया जो पहले तो दो सौ पचास पत्रिका के रूप में निकली, किन्तु क्रमशः उनके अध्यवसाय घर-घर पहुँचाने, मित्रों तक पहुँचाने वाले उनके हृदयस्पर्शी पत्रों द्वारा बढ़ती-बढ़ती नवयुग के मत्स्यावतार की तरह आज दस लाख से भी अधिक संख्या में विभिन्न भाषाओं में छपती व एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों द्वारा पढ़ी जाती है।

पत्रिका के साथ-साथ 'मैं क्या हूँ' जैसी पुस्तकों का लेखन आरम्भ हुआ। स्थान बदला, आगरा से मथुरा आ गये, दो-तीन घर बदलकर घीयामण्डी में जहाँ आज अखण्ड ज्योति संस्थान है, आ बसे। पुस्तकों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

का प्रकाशन व कठोर तपश्चर्या, ममत्व विस्तार तथा पत्रों द्वारा जन-जन के अंतस्तल को छूने की प्रक्रिया चालू रही। साथ देने आ गयीं परमवंदनीया माताजी भगवती देवी शर्मा, जिन्हें भविष्य में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अपने आराध्य इष्ट गुरु के लिए निभानी थी। उनके मर्मस्पर्शी पत्रों ने, भाव भरे आतिथ्य, हर किसी को जो दु:खी था- पीड़ित था, दिये गये ममत्व भरे परामर्श ने गायत्री परिवार का आधार खड़ा किया, इसमें कोई सन्देह नहीं। यदि विचारक्रांति में साहित्य ने मनोभूमि बनायी तो भावात्मक क्रान्ति में ऋषियुगल के असीम स्नेह ने ब्राह्मणत्व भरे जीवन ने शेष बची भूमिका निभायी।

'अखण्ड ज्योति' पत्रिका लोगों के मनों को प्रभावित करती रही, इसमें प्रकाशित 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ से लोगों को गायत्री व यज्ञमय जीवन जीने का संदेश मिलता रहा, साथ ही एक आना से लेकर छह आना सीरीज की अनेकानेक लोकोपयोगी पुस्तकें छपती चली गयीं। इस बीच हिमालय के बुलावे भी आये, अनुष्ठान भी चलता रहा जो पूरे विधि-विधान के साथ १९५३ में गायत्री तपोभूमि की स्थापना, १०८ कुण्डी यज्ञ व उनके द्वारा दी गयी प्रथम दीक्षा के साथ समाप्त हुआ। गायत्री तपोभूमि की स्थापना के निमित्त धन की आवश्यकता पड़ी तो परमवंदनीया माताजी ने जिनने हर कदम पर अपने आराध्य का साथ निभाया, अपने सारे जेवर बेच दिये, पूज्यवर ने जमींदारी के बाण्ड बेच दिये एवं जमीन लेकर अस्थायी स्थापना कर दी गयी। धीरे-धीरे उदारचेताओं के माध्यम से गायत्री तपोभूमि एक साधना पीठ बन गयी। २४०० तीर्थों के जल व रज की स्थापना वहाँ की गयी, २४०० करोड़ गायत्री मंत्रलेखन वहाँ स्थापित हुआ, अखण्ड अग्नि हिमालय के एक अति पवित्र स्थान से लाकर स्थापित की गयी जो अभी तक वहाँ यज्ञशाला में जल रही है। १९४१ से १९७१ तक का समय परमपूज्य गुरुदेव का गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान में सक्रिय रहने का समय है। १९५६ में नरमेध यज्ञ, १९५७ में सहस्रकुण्डी यज्ञ करके लाखों गायत्री साधकों को एकत्र कर उनने गायत्री परिवार का बीजारोपण कर दिया। कार्तिक पूर्णिमा १९५८ में आयोजित इस कार्यक्रम में दस लाख व्यक्तियों ने भाग लिया, इन्हीं के माध्यम से देशभर में प्रगतिशील गायत्री परिवार की दस हजार से अधिक शाखाएँ स्थापित हो गयीं। संगठन का अधिकाधिक कार्यभार पूज्यवर परमवंदनीया माताजी पर सौंपते चले गये एवम् १९५९ में पत्रिका का संपादन उन्हें देकर पौने दो वर्ष के लिए हिमालय चले गये, जहाँ उन्हें गुरुसत्ता से मार्गदर्शन लेना था, तपोवन नंदनवन में ऋषियों से साक्षात्कार करना था तथा गंगोत्री में रहकर आर्षग्रन्थों का भाष्य करना था। तब तक वे गायत्री महाविद्या पर विश्वकोश स्तर की रचना गायत्री महाविज्ञान के तीन खण्ड लिख चुके थे, जिसके अब तक प्राय: पैंतीस संस्करण छप चुके हैं। हिमालय से लौटते ही उनने महत्वपूर्ण निधि के रूप में वेद, उपनिषद्, स्मृति, आरण्यक, ब्राह्मण, योगवाशिष्ठ, मंत्र महाविज्ञान, तंत्र महाविज्ञान जैसे ग्रन्थों को प्रकाशित कर देवसंस्कृति की मूलथाती को पुनरुज्जीवन दिया। परमवंदनीया माताजी ने उन्हीं वेदों को पूज्यवर की इच्छानुसार १९९१-९२ में विज्ञानसम्मत आधार देकर पुनर्मुद्रित कराया एवं वे आज घर-घर में स्थापित हैं।

युगनिर्माण योजना व 'युगनिर्माण सत्संकल्प' के रूप में मिशन का घोषणापत्र १९६३ में प्रकाशित हुआ। तपोभूमि एक विश्वविद्यालय का रूप लेती चली गयी तथा अखण्ड ज्योति संस्थान एक तप-पूत की निवासस्थली बन गया, जहाँ रहकर उनने अपनी शेष तप-साधना पूरी की थी, जहाँ से गायत्री परिवार का बीज डाला गया था। तपोभूमि में विभिन्न शिविरों का आयोजन किया जाता रहा, पूज्यवर स्वयं छोटे-बड़े जन-सम्मेलनों के द्वारा विचारक्रान्ति की पृष्ठभूमि बनाते रहे, पूरे देश में १९७०-७१ में पाँच १००८ कुण्डी यज्ञ आयोजित हुए। स्थायी रूप से विदाई लेते हुए एक विराट सम्मेलन (जून १९७१) में परिजनों को विशेष कार्य-भार सौंप परमवंदनीया माताजी को शांतिकुंज, हरिद्वार में अखण्ड दीप के समक्ष तप हेतु छोड़कर स्वयं हिमालय चले गये। एक वर्ष बाद वे गुरुसत्ता का संदेश लेकर लौटे एवं अपनी आगामी बीस वर्ष की क्रिया-पद्धति बतायी। ऋषिपरम्परा का बीजारोपण, प्राण-प्रत्यावर्तन, संजीवनी व कल्प-साधना सत्रों का मार्गदर्शन जैसे कार्य उनने शांतिकुंज में सम्पन्न किये।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थापना अपनी हिमालय की इस यात्रा से लौटने के बाद ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की थी, जहाँ विज्ञान और अध्यात्म के समन्वयात्मक प्रतिपादनों पर शोध कर एक नये धर्म वैज्ञानिक धर्म के मूलभूत आधार रखे जाने थे। इस सम्बन्ध में पूज्यवर ने विराट परिमाण में साहित्य लिखा, अदृश्य जगत के

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org
अनुसंधान से लेकर मानव की प्रसुप्त क्षमता के जागरण तक, साधना से सिद्धि एवं दर्शन-विज्ञान के तर्क, तथ्य, प्रमाण के आधार पर प्रस्तुतीकरण तक। इसके लिए एक विराट ग्रन्थागार बना व एक सुसज्जित प्रयोगशाला। वनौषधि उद्यान भी लगाया गया तथा जड़ी-बूटी, यज्ञ विज्ञान तथा मंत्र शक्ति पर प्रयोग हेतु साधकों पर परीक्षण प्रचुर परिमाण में किये गये। निष्कर्षों ने प्रमाणित किया कि ध्यानसाधना, मंत्र-चिकित्सा व यज्ञोपैथी एक विज्ञानसम्मत विधा है। गायत्री नगर क्रमशः एक तीर्थ, संजीवनी विद्या के प्रशिक्षण का, एकेडमी का रूप लेता चला गया एवं जहाँ ९-९ दिन के साधना प्रधान, एक-एक माह के कार्यकर्त्ता निर्माण हेतु युगशिल्पी सत्र सम्पन्न होने लगे।

कार्यक्षेत्र में विस्तार हुआ। स्थान-स्थान पर शक्तिपीठें विनिर्मित हुईं, जिनके निर्धारित क्रियाकलाप थे- सुसंस्कारिता व आस्तिकता संवर्धन एवं जन-जाग्रति के केन्द्र बनना। ऐसे केन्द्र जो १९८० में बनना आरंभ हुए थे, प्रज्ञासंस्थान, शक्तिपीठ, प्रज्ञामण्डल, स्वाध्याय-मण्डल के रूप में पूरे देश व विश्व में फैलते चले गये। ७६ देशों में गायत्री परिवार की शाखाएँ फैल गयीं, ४६०० से अधिक भारत में निज के भवन वाले संस्थान विनिर्मित हो गये, वातावरण गायत्रीमय होता चला गया।

परमपूज्य गुरुदेव ने सूक्ष्मीकरण में प्रवेश कर १९८५ में ही पाँच वर्ष के अंदर अपने सारे क्रिया-कलापों को समेटने की घोषणा कर दी। इस बीच कठोर तपसाधना कर मिलना-जुलना कम कर दिया तथा क्रमशः क्रिया-कलाप परमवंदनीया माताजी को सौंप दिये। राष्ट्रीय एकता सम्मेलनों, विराट दीप यज्ञों के रूप में नूतन विधा को जन-जन को सौंप कर राष्ट्र देवता की कुण्डलिनी जगाने हेतु उनने अपने स्थूलशरीर छोड़ने व सूक्ष्म में समाने की, विराट से विराटतम होने की घोषणा कर गायत्री जयन्ती २ जून, १९९० को महाप्रयाण किया। सारी शक्ति वे परमवंदनीया माताजी को दे गये व अपने व माताजी के बाद संघशक्ति की प्रतीक लाल मशाल को ही इष्ट-आराध्य मानने का आदेश देकर ब्रह्मबीज से विकसित ब्रह्मकमल की सुवास को देवसंस्कृति दिग्विजय अभियान के रूप में आरंभ करने का माताजी को निर्देश दे गये।

एक विराट श्रद्धांजलि समारोह व शपथ समारोह जो हरिद्वार में सम्पन्न हुए, में लाखों व्यक्तियों ने अपना समय समाज के नवनिर्माण, मनुष्य में देवत्व के उदय व धरती पर स्वर्ग लाने का गुरुसत्ता का नारा साकार करने के निमित्त देने की घोषणा की। परमवंदनीया माताजी द्वारा भारतीय-संस्कृति को विश्वव्यापी बनाने, गायत्री रूपी संजीवनी घर-घर पहुँचाने के लिए पूज्यवर द्वारा आरम्भ किये गये युगसंधि महापुरश्चरण की प्रथम व द्वितीय पूर्णाहुति तक विराट अश्वमेध महायज्ञों की घोषणा की गयी। वातावरण के परिशोधन, सूक्ष्मजगत के नवनिर्माण एवं सांस्कृतिक व वैचारिक क्रान्ति ने सारी विश्ववसुधा को गायत्री व यज्ञमय, वासंती उल्लास से भर दिया। स्वयं परमवंदनीया माताजी ने अपनी पूर्व घोषणानुसार चार वर्ष तक परिजनों का मार्गदर्शन कर सोलह यज्ञों का संचालन स्थूलशरीर से किया व फिर भाद्रपद पूर्णिमा १९ सितम्बर, १९९४ महालय श्राद्धारंभ वाली पुण्य वेला में अपने आराध्य के साथ एकाकार हो गयीं। उनके महाप्रयाण के बाद, दोनों ही सत्ताओं के सूक्ष्म में एकाकार होने के बाद मिशन की गतिविधियाँ कई गुना बढ़ती चली गयीं एवं जयपुर के प्रथम अश्वमेध यज्ञ (नवम्बर ९२) से छब्बीसवें अश्वमेध यज्ञ शिकागो (यू. एस ए. जुलाई ९५) तक प्रज्ञावतार का प्रत्यक्ष रूप सबको दीखने लगा है।

गुरुसत्ता के आदेशानुसार सतयुग के आगमन तक १०८ महायज्ञ देवसंस्कृति को विश्वव्यापी बनाने हेतु सम्पन्न होने हैं। युगसंधि महापुरश्चरण की अंतिम पूर्णाहुति उसी के बाद होगी। प्रथम पूर्णाहुति नवम्बर १९९५ में कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर युगपुरुष पूज्यवर की जन्मभूमि आँवलखेड़ा में मनायी गई। उनके द्वारा लिखे गये समग्र साहित्य के वाङ्मय का जो एक सौ आठ खण्डों में फैला है, विमोचन भी यहीं सम्पन्न हुआ। विनम्रता एवं ब्राह्मणत्व की कसौटी पर खरे उतरने वाले वरिष्ठ प्रज्ञापुत्र ही उनके उत्तराधिकारी कहे जाएँगे, यह गुरुसत्ता का उद्घोष था एवं इस क्षेत्र में बढ़-चढ़कर आदर्शवादी प्रतिस्पर्धा करने वाले अनेकानेक परिजन अब उनके स्वप्नों को साकार करने आगे आ रहे हैं। 'हम बदलेंगे-युग बदलेगा' का उद्घोष दिग-दिगन्त तक फैल रहा है एवं इक्कीसवीं सदी उज्ज्वल भविष्य, सतयुग की वापसी का स्वप्न साकार होता चला जा रहा है, यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है। ❑❑❑

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भूमिका

सामान्य जनता को शिक्षा देने का सर्वसुलभ साधन कथा, कहानी, दृष्टान्त आदि ही माने जाते हैं । तात्त्विक ढंग से विवेचन करने वाले ग्रन्थों और लेखों को पढ़ने और समझने वाले लोगों की संख्या सदा थोड़ी ही होती है । इसलिए प्राचीनकाल से ही जन-समुदाय में नीति, धर्म, चरित्र आदि सम्बन्धी सद्विचारों के प्रचार का माध्यम कथा-साहित्य को ही माना गया है । स्त्री और पुरुष, बाल और वृद्ध, युवा और प्रौढ़ सभी रुचिपूर्वक कहानी सुनते हैं और अपनी मनोवृत्ति के अनुसार उनसे प्रेरणा भी ग्रहण करते हैं । विशेष रूप से छोटी आयु के बच्चों के लिए तो वे बहुत ही उत्तम प्रभाव डालने वाली सिद्ध होती हैं । ऐसे बालकों के लिए बड़ी कहानियों का पढ़ना या उनकी सब घटनाओं को ध्यान में रखकर तारतम्य मिला लेना सहज नहीं होता । उनसे कुछ मनोरंजन तो हो जाता है, पर अन्त तक सब बातों को याद रखना और उनका विश्लेषण करके ठीक निष्कर्ष निकाल लेना, सबके लिए सम्भव नहीं होता ।

प्राचीनकाल से इसलिए अनुभवी विद्वान, मनीषियों ने सामान्य बुद्धि के व्यक्तियों को समझाने और प्रेरणा देने के लिए दृष्टान्तों और कथा-कहानियों का सहारा लिया है । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमारे देश में बहुत पहले 'पंचतंत्र' और हितोपदेश जैसे ग्रन्थ लिखे गये हैं, जिसके द्वारा मनुष्य न्यायोचित व्यवहार, सामूहिकता, सेवा, त्याग, बलिदान, करुणा, मैत्री, उदारता आदि की शिक्षा ग्रहण करके समाज के उपयोगी सदस्य बन सकते हैं । इस तरह से रचनाओं का सरल और स्वाभाविक होना बहुत आवश्यक है । टेढ़ी-मेढ़ी और लच्छेदार बातों में पाठक का ध्यान उन्हें सुलझाने में लग जाता है और मूल उद्देश्य अर्थात् व्यक्तित्व परिष्कार एवं चरित्र-निर्माण का लक्ष्य निगाह से ओझल हो जाता है ।

यों तो कथा-कहानियाँ मनोरंजन के लिए ही आमतौर से बनती हैं, पर उनमें से कम ही ऐसी होती हैं जो आदर्शवादी उत्कृष्टता और महानता भरती हों । आगे बढ़ने और ऊँचा उठने की प्रेरणा देती हों ।

कथा-कहानी के अनेक रूप हैं । हजारों पन्ने के विशालकाय उपन्यास और दस-बीस पंक्तियों के दृष्टान्त-सबकी गणना उसी विभाग में होती है । पुराणों की कथाएँ, उपाख्यान आदि की रचना भी इसी उद्देश्य से की गयी है । जो लोग वेद, उपनिषद्, दर्शन, स्मृतियों में वर्णित धार्मिक उपदेशों को नहीं समझ सकते, वे उनको कथाओं के माध्यम से रुचिपूर्वक सुन लेते हैं और कुछ लाभ भी उठा सकते हैं ।

मनोरंजन में अक्सर धूर्तता, अन्धविश्वास और अवांछनीयता तक का समर्थन रहता है । प्रचलित कहानियों में से नैतिक चेतना की प्रेरणा देने वाली कितनी हैं, यदि इसकी तलाश की जाए तो उनमें से खरी नहीं खोटी ही सिद्ध होंगी । उन्हें सुनने-सुनाने से मनोरंजन तो हो जाता है, पर परोक्ष रूप से मस्तिष्क को अनैतिक एवं अवांछनीय तृष्णा ही प्राप्त होती है ।

इस दृष्टिकोण को सामने रखकर परमपूज्य गुरुदेव ने ऐसे छोटे-छोटे दृष्टान्तों, लघु कथाओं का निर्माण किया है, जिनको लोग दस-पाँच मिनट में पढ़कर हृदयंगम कर सकें और उसमें से हर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org
कोई उपयोगी शिक्षा ग्रहण कर सकें । ऐसी रचनाएँ भावनात्मक एवं घटना प्रधान होने के कारण बहुत ही उपयोगी सिद्ध होती हैं क्योंकि, जब पढ़ने वाला देखता है कि इस स्वार्थी और शोषण प्रवृत्ति की प्रधानता वाले जमाने में भी कुछ लोग परोपकार, कर्तव्यपरायणता एवं सिद्धान्तनिष्ठा के लिए इस प्रकार तन, मन, धन निछावर करने को, सर्वस्व उत्सर्ग करने को उद्यत हो जाते हैं, तो उनके मन पर निश्चित रूप से गहरा प्रभाव पड़ता है और अगर उसी दिशा में बढ़ते रहा जाए, तो धीरे-धीरे स्थायी भी हो सकता है ।

परमपूज्य गुरुदेव की लेखनी से वाङ्मय के इस खण्ड में उपयोगी, नैतिक एवं सत्प्रेरणा देने वाले जो दृष्टान्त अथवा कथा-कहानियाँ दी गयी हैं, वे संक्षिप्त एवं सारगर्भित रूप में कही गयी हैं। उनके समझने या याद रखने में किसी को कोई कठिनाई नहीं होगी । इनमें से कुछ दृष्टान्तात्मक हैं और कुछ घटनात्मक हैं, पर सभी ऐसी हैं, जो हर किसी के लिए रुचिकर और प्रेरणादायी हैं । उन्हें लिखा ही ऐसे ढंग से गया है कि उनका तात्पर्य शीघ्र ही समझ में आ जाता है । फिर अधिकांश में कथा के अंत में उसके उपदेश या शिक्षा-प्रेरणा को एक या दो वाक्यों में प्रकट भी कर दिया गया है । इस प्रकार ये कथाएँ या दृष्टान्त आस्तिकता, धर्म, नीति, सदाचार, दया, उदारता आदि श्रेष्ठ मानवीय सद्गुणों की शिक्षा देने के उद्देश्य से लिखी गयी हैं । निश्चय ही ये पाठकों के लिए कल्याणकारी होंगी एवं आत्मशोधन एवं व्यक्तित्व परिष्कार में बहुत ही उपयोगी तथा सहायक सिद्ध होंगी ।

-ब्रह्मवर्चस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय-सूची

१. आस्तिकता और ईश्वर विश्वास **१.१**

अथातो ब्रह्म जिज्ञासा १.१
जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है १.२
स्वर्ग की स्थिति और उपलब्धि १.३
छुरे की धार पर नचिकेता चलेगा १.४
अमर होने का उपाय १.५
वह तू है १.६
व्यवहार से ही ज्ञान की सिद्धि १.७
शिवजी कहाँ से देते हैं ? १.७
अवश्यमेव भोक्तव्यं कर्मफल शुभाशुभम् १.८
ईश्वर के यहाँ देर है, अन्धेर नहीं १.९
कर्मफल से बचा नहीं जा सकता १.१०
कर्मयोग का मर्म १.११
पूर्व जन्म की स्मृति अवांछनीय १.११
भोगलिप्सा की दुःखदायी परिणति १.१२
जो अकेला खाता है, वह पाप खाता है १.१३
साधन-अनुसन्धान १.१३
निष्काम की कामना १.१५
अभिमान पिघलता है १.१५
सत्य की विजय १.१६
मन का दान १.१६
यह सच या वह सच १.१८
त्याग का रहस्य १.१८
व्यामोह का मायाजाल १.१९
श्रेष्ठतम का वरण १.१९
भेदबुद्धि से उपजी विकलता १.२०
सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण—वर्तमान १.२१
स्वर्ग से भी महान्—तप लोक १.२१
विश्वास की शक्ति अपार होती है १.२२
होतव्यता की प्रबलता १.२३
आखिर मृत्यु भय क्यों ? १.२५
सः आत्मज्ञानी—सः ब्रह्मवेत्ता १.२६
ब्रह्मदर्शन के लिये सेवा धर्म १.२६
सच्ची साधना १.२७
गुप्त साधना १.२७
श्रद्धा और विवेक की परम्परा १.२८
विदुर और कृष्ण १.२९
दोनों ओर प्रेम पलता है १.२९
भगवान भी भजन करते हैं १.२९
ऐसी तृप्ति कभी नहीं हुई १.२९
सच्ची भक्ति—भाव की १.२९
विश्वास का फल १.३०
श्रद्धा का अभाव १.३०
गुलाम की चाह १.३०
ओछापन क्यों ? १.३०
राजा के पास बैठने का लाभ १.३०
गाना बादशाह के लिये या प्रभु के लिये १.३१
ऐसी कोई जगह नहीं १.३१
देने वाला तो अब भी यहीं है १.३१
जब गाँधीजी उपासना भूले १.३१
ऋषि माण्डव्य को शूली १.३१
छुपा भगवान १.३२
ऐसे बची द्रोपदी की लाज १.३२

२. ईश्वर भक्ति और आध्यात्मिकता **२.१**

दर्शन की प्यास २.१
एक प्रेमी की व्यथा २.१
नन्द-नन्दन दौड़े जाते हैं, जिसके द्वार स्वयं २.२
ईश मिलन की उत्कण्ठा २.४
भरोसा भगवान् का २.४
अविचल निष्ठा २.४
ब्रह्म विद्या का ज्ञान २.४
असली पारस २.५
सच्ची लगन २.५
ईश्वरभक्त— गैरीवाल्डी २.५
अविचल धैर्य की महिमा २.६
साधुता की कसौटी २.६
परोपकारी विसोवा २.६
सूफी फकीर का प्रयागराज २.६
ईश्वर प्राप्ति का सरल उपाय २.८
शूद्र ऋषि बना २.९
अक्रोध के पथ पर २.१०
तान्त्रिक का व्यर्थ प्रयास २.११
समर्पण, जो सक्रिय बना दे २.१२
अपरिग्रह का नन्दनवन २.१४
दान का उद्देश्य २.१४
जल में रहकर भी उससे दूर २.१४
देवता पूज्य क्यों ? २.१५
खुदा क्या करता है ? २.१६

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अदृश्य सिद्ध पुरुष २.१७
विपत्ति धर्म २.१७
प्रतिगृह का दान २.१८
तप की शक्ति से दोषों का परिमार्जन २.१९
श्रेयात् सिद्धिः २.२०
आत्म-भाव की शक्ति २.२१
सन्तोष का आभूषण २.२१
कैसे आयेगा सतयुग ? २.२२
युधिष्ठिर की उपासना २.२४
ईश्वर पर विश्वास २.२४
दृढ़ विश्वास से भगवत दर्शन २.२५
भूल से स्वर्ग पहुँचे २.२५
ऐसा कपड़ा किस काम का २.२६
सच्ची शान्ति कैसे प्राप्त हो २.२६
स्वर्ग का अधिकार २.२६
सबका पालनहार भगवान २.२६
श्रद्धा की साधना २.२७
अल्लाह की मर्जी में अपनी मर्जी २.२७
बिना गये हज कबूल २.२७
लाभ-हानि से परे २.२७
एकान्त नहीं मिला २.२८
सोने का थाल २.२८
धर्म का मर्म २.२८
मेरा रक्षक भगवान २.२८
ईश्वर की इच्छा २.२९

३. आत्मबोध और आत्मविस्तार ३.१

न मनुष्यात् श्रेष्ठतरम् हि किंचित् ३.१
वेताल का आत्मबोध ३.१
सोना बनाने की विद्या ३.२
जब सम्मोहन टूटा ३.३
दस्यु का हृदय परिवर्तन ३.४
कामना और वासना का चक्रव्यूह ३.६
क्या समय बीत गया ? ३.७
तन ही नहीं, मन भी निर्मल हो ३.८
इष्ट की उपासना का मर्म ३.९
'ब्रह्म तेजो बलंबलम्' ३.१०
सच्ची तीर्थयात्रा ३.१०
सिद्धियों का आधार—संयम ३.११
सभी, काल के आधीन ३.११
नष्टो : कान्या गति ३.१२
शाश्वत सौन्दर्य की खोज ३.१२
निदान, रोग का या मोह का ३.१३
जीवन-मुक्ति की साधना ३.१४
ब्राह्मणत्व की पहचान ३.१५
मानव जीवन की भूल-भुलैया ३.१६
प्रपञ्च प्रेम नहीं—निःस्वार्थ प्रेम ३.१७
जिज्ञासा और धैर्य में आत्म-ज्ञान की पात्रता सन्निहित ३.१८
पूर्णता की प्राप्ति ३.१९
प्रतिभा का दुरुपयोग न हो ३.२०
इस अस्थिर संसार में सुख ढूँढ़े दुःख होय ३.२१
जीवन को खेल मानकर जीने में शान्ति ही शान्ति ३.२१
हम भी ज्योति धारण करें ३.२२
मेरा क्या जलता ३.२३
शान्ति का मार्ग ३.२३
आश्रम पहले ही बन गया ३.२३
आनन्द का मूल्य ३.२३
साँप की छाया ३.२४
मृत्यु से कौन बचा ? ३.२४

४. आत्मशोधन और जीवन साधना ४.१

भवति भिक्षां देहि ४.१
सिद्धि से श्रेष्ठ सन्निद्धि ४.१
संस्कारात् द्विजोच्यते ४.३
जरूरत तो अपने ही चेहरे को धोने की है ४.३
पहले स्वयं को मारो ४.४
मन का भी स्नान ४.४
आत्मज्ञान से मुक्ति ४.४
बलिदान से दुर्भिक्ष निवारण ४.५
सर्वोपरि यज्ञ—पीड़ा निवारण ४.६
भोगे बिना छुटकारा नहीं ४.६
अन्तर्दृष्टि के विकास से सौन्दर्य के दर्शन ४.७
भटकन मिटी, जब संवेदना का मर्म जाना ४.८
वैराग्य की प्रथम पाठशाला ४.९
साधना का अद्भुत चमत्कार ४.१०
आराधना का प्रतिफल भावना क्षेत्र के परिष्कार पर निर्भर ४.१२
धर्मो रक्षति रक्षतः ४.१३
नीतिमत्ता सर्वमान्य योग्यता ४.१४
पंचशील ४.१५
बाहु-बल और ब्रह्म-बल ४.१५
महर्षि पद की पात्रता ४.१६
त्राहिमाम्-त्राहिमाम् ४.१७
गुरु दक्षिणा जो चुकाई न जा सकी ४.१८

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चरित्र-निष्ठा ही सर्वोपरि ४.१८
बन्धनमुक्ति ४.१९
परिवर्तित जीवन ४.२१
वृत्तिशोधन से आत्मिक प्रगति ४.२१
साधना की तन्मयता ४.२३
भावना से सिद्धि ४.२३
स्वर्ग और नरक ४.२४
ध्रुव-संकल्प ४.२४
उपगुप्त का आत्मदान ४.२७
भाव के भूखे हैं भगवान ४.२८
सरलता से सौभाग्य वृद्धि ४.२९
विचारपूर्वक कार्य करने का शुभ परिणाम ४.३०
प्रायश्चित्त नहीं परिमार्जन ४.३२
बाल भगवान ४.३३
फटी साड़ी का मोल ४.३४
प्रतिमा का रहस्य ४.३४
कटुता बनाम आत्म-कल्याण ४.३४
सुखी व्यक्ति की कमीज ४.३४
दोष स्वीकार कर लिया ४.३४

५. सेवा, परोपकार और पुण्य-परमार्थ ५.१

पराई पीर जब अपनी बन जाय ५.१
सेवा और प्रेम के संस्करण ५.२
सेवा-साधना से ही धरती पर स्वर्ग का अवतरण संभव ५.३
सेवा, बिना किसी शर्त की ५.३
दूसरों की सेवा क्यों करें ? ५.५
सेवाभावी की कसौटी ५.५
निष्काम कर्म-योग की शक्ति ५.६
सेवा में बड़ी शक्ति है ५.७
विराट् की आराधना ही सच्ची पूजा ५.८
सुमन का शिव संकल्प ५.१०
स्वर्ग का अधिकार ५.१०
जीवन-मुक्ति का अधिकार ५.११
बैरी के प्रति विश्वास, अपना सर्वनाश ५.१२
सच्चा विद्वान् ५.१३
उपकार का ऋण ५.१४
शोक का कारण व निवारण ५.१५
सशर्त सहायता ५.१६
गतिशीलता की सजीव सरसता ५.१६
बन्धन-मुक्ति ५.१७
आचरणवान ही उपदेशक हो सकता है ५.१८
उपभोगार्थी—उपयोगार्थी ५.१८
पराजित मृत्यु—अपराजित आकाशज ५.१९
पद नहीं, मनुष्यता का सम्मान ५.१९
प्रायश्चित्तो परावसुः ५.२०
कर्त्तव्य से भागिये मत ५.२०
खुद भी मदद कीजिए ५.२१
परोपकार सदा सुखदाई ५.२१
खिलाकर खाना ब्रह्म रहस्य ५.२३
हृदय परिवर्तन ५.२३
यदि दूर हो जाए बेहोशी तो ५.२४
प्रेम का भगवान ५.२५
व्यथा, जो सृजन में नियोजित हुई ५.२५
समर्थन और सहयोग ५.२७
औलिया का पैगाम ५.२८
ऐसा स्वर्ग नहीं चाहिए ५.२८
मरने का दुःख नहीं, सेवा का सुख मना ५.२९
मिल-जुलकर उपयोग ५.२९
भक्ति का आदर ५.२९

६. पात्रता की कसौटी एवं योग्यता की परख ६.१

कवि भी राष्ट्र-प्रहरी ६.१
सिंहासन बत्तीसी ६.१
गुरुजनों का आशीर्वाद ६.२
नैष्ठिक गुरुभक्त—एकलव्य ६.३
भोग में योग कैसे हो ? ६.४
गुरुदेव की अमानत ६.४
पुरोहित की पात्रता ६.५
सत्यकाम जाबाल ६.६
प्रणाम लेने की योग्यता ६.६
अधिकारी सत्पात्र ६.६
लक्ष्मी धर्मशील का वर ६.६
चार बार मोक्ष ६.६
हृदय प्रकाशवान हो ६.७
उपदेश की योग्यता ६.७
जनसेवक का आदर्श ६.७
मनुष्य-मनुष्य में भेद कैसा ६.७

७. प्रेम, करुणा और उदारता ७.१

सहानुभूति—जो सिंह को भी मित्र बना दे ७.१
काश ! इन पशु-पक्षियों से ही हम कुछ सीख पाते ७.२
संतोषी एवं संस्कारवान कुत्ता ७.२
बिल्ली का उपकार ७.३
गधे ने मालिक की प्राणरक्षा की ७.३

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सच्चा पाण्डित्य ७.३
दान का महत्त्व ७.५
दान से लज्जा आती ७.५
कष्टदायक—सूखी सहानुभूति ७.५
दयालु राजा ७.५
भाव विस्तार ही मानव धर्म ७.६
संकल्प शक्ति की गंगोत्री ७.७

८. उत्सर्ग, त्याग और बलिदान ८.१

प्राण जाय पर वचन न जाई ८.१
'त्याग ही वरेण्य' ८.१
धर्मात्मा गिद्धराज जटायु ८.२
तप, करुणा और त्याग ८.३
सच्चा त्याग ८.३
लोकमंगल हेतु सर्वस्व अर्पण ८.४
शतमन्यु का बलिदान ८.५
त्याग और प्रेम का महत्व ८.६
'अमृत फल' घर में ही होता है ८.७
सत्संकल्प की सुखद परिणति ८.८
बलिदानी—माँग ८.९
मृत्यु कष्ट में भी स्वर्ग सुख की कल्पना ८.१०
शिक्षा-संस्कृति जनता की धरोहर ८.१०
अखण्ड प्रेम ८.१२
वह कालजयी ८.१२
साधु का धर्म ८.१३
न्योछावर कर गये प्राण जो ८.१४
साहस को रास्ते हजार ८.१५
चट्टान की दृढ़ता ८.१६
अपने लिए क्या माँगूँ ? ८.१६
जो मरकर भी अमर हैं ८.१६
अज्ञातनामा किशोर का अनूठा बलिदान ८.१७
सन्तान से भी मूल्यवान ८.१८
परोपकाराय सतां विभूतयः ८.१८
महानता की ओर जाने वाला मार्ग ८.१९
संस्कृति की रक्षा बातों से नहीं कार्यों से ८.१९
देशहित के लिए अपने अरमानों का खून करने वाली वीरवती ८.२०
बालक जो देश के लिए मर मिटा ८.२१
सिंहगढ़ विजय ८.२२
नमस्कार ८.२२

९. कर्त्तव्यपरायणता और सिद्धान्तनिष्ठा ९.१

कर्त्तव्य की वेदी पर ममता ९.१
कर्त्तव्य की चूक का ऋण ९.१
चेहरे पर खिली मुसकान ९.२
कर्त्तव्य-परायणता का बल ही पुरस्कार ९.४
गौरव तो कम न करें ९.४
संन्यासी कौन ? ९.५
परमात्मा को क्या उत्तर दूँगा ? ९.५
पुण्य की प्रतिष्ठा ९.६
विद्या का मर्म इस तरह समझें ९.७
जब स्वर्ग पृथ्वी पर भीख माँगने आया ९.७
गाय हमारी माता है ! ९.८
जबान बचाने की चिन्ता ९.९
विश्व-मैत्री ९.९
साहस और सामूहिकता का अनुपम चमत्कार ९.१०
ब्रह्म एक समष्टि चेतना और जीव व्यष्टि ९.११
राजा जनक विदेह क्यों कहलाए ? ९.१२
अन्धकूप के पाँच प्रेत ९.१२
राजा भोज का स्वप्न ९.१३
निर्दोष कौन है ? ९.१४
सत्ता एवं सम्पदा का सदुपयोग ९.१४
हमारा काम यहाँ से ९.१५
प्रभु ! कर्त्तव्य पालन की शक्ति दो ९.१५
मत्स्यावतार और मनु ९.१५
अर्जुन का अज्ञातवास ९.१६
शिक्षक का कर्त्तव्य ९.१६
सबसे बड़ा पुरस्कार ९.१६
बाँध टूटा पर निष्ठा न टूटी ९.१६
पन्नाधाय का त्याग ९.१६
गुरु गोविन्दसिंह के पुत्र ९.१७
संरक्षक मात्र ९.१७
व्रतनिष्ठा ९.१७
ईश्वरीय न्याय में विश्वास ९.१७
ठीक ही तो है ९.१७

१०. संयम, सन्तुलन एवं आत्मनियन्त्रण १०.१

वरदायी अभिशाप १०.१
मन का निरोध 'निग्रह' १०.२
शक्ति और महानता का द्वार—संयम १०.३
सन्तुलन डगमगाने न दें १०.३
परिस्थितियों का सामना करें १०.३
हिंसा पर साहस की विजय १०.३
अपना व्रत क्यों तोड़ूँ ? १०.४
शैतान का षड्यन्त्र १०.४
सुख-दुःख में एक समान १०.४
दायें-बायें हाथ १०.५

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने पैरों पर खड़े हों १०.५
सत्य की विजय होती है १०.५
अथ भारण्ड वार्ता १०.६
न्याय का पालन १०.७
फूल और काँटे १०.६
गृहस्थाश्रम बनाम संन्यासाश्रम १०.६
लगाम मन की १०.६
नृत्य-उत्सव में पतंजलि १०.१०
मुँहमाँगा इनाम १०.१०

११. शील, सदाचार और सच्चरित्रता ११.१

सदाचार की शक्ति ११.१
सदाचरण की शक्ति ११.२
शालीनता का ध्वजारोहण ११.२
सद्व्यवहार का अचूक अस्त्र ११.४
सौन्दर्य की पराजय ११.४
सज्जनता और शालीनता की विजय यात्रा ११.५
जीवन सम्पदा ११.६
प्रत्यक्ष देवता की पूजा ११.६
आसक्ति से निवृत्ति ११.६
छूत-अछूत का भेद ११.७
पूजा के फूल ११.८
कृतघ्नता शत्रु के साथ भी नहीं ११.८
बाहुबलि की दूरदर्शिता ११.९
संस्कृति-पुरुष से मिले—मर्यादा पुरुषोत्तम ११.१०
फौजी गोरे की अकड़ मिट्टी में मिला दी ११.११
जैसी नीयत वैसी बरक्कत ११.१२
नीच और ऊँच की पहचान ११.१३
चरित्र, सौन्दर्य से भी श्रेष्ठ ११.१३
चरित्र—साधना से भी अधिक पवित्र ११.१४
चरित्र-रक्षा के लिये बलिदान ११.१५
पाण्डित्य से बड़ा चरित्र ११.१५
धर्म मर्यादा का ज्ञान ११.१६
समाधिस्थ ११.१७
आज मेरी बारी है ११.१७

१२. धर्म-धारणा का मर्म १२.१

धर्म का प्रयोजन, अंतःकरण की शुद्धि १२.१
जीत वहीं है जहाँ धर्म है १२.३
कर्म फल की सचाई १२.३
'धर्माचरण' का अटल प्रतिफल १२.४
आत्मज्ञान से देवत्व की प्राप्ति १२.५
न्याय की कमाई का दान—श्रेष्ठ दान १२.६
"महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीय क्रियते तनुः" १२.६
कीमती रत्न १२.७
एक पैसे का दान १२.८
सर्वोत्कृष्ट सम्पत्ति १२.८
देशरक्षा के लिए कर्त्तव्यनिष्ठा की आवश्यकता १२.९
कर्तव्यपालन से बड़ी साधना नहीं १२.१०
गहनो कर्मणोगतिः १२.१०
अभी कमी है देवि ! १२.११
'अनासक्ताः सुखिनो भवन्ति' १२.१२
निर्दोष पर दया १२.१२
वैदूर्य कभी काँच नहीं हो सकता १२.१३
संस्कृति के लिए त्याग १२.१४
विद्यावान जयते कामः १२.१४
'साधु तो ऐसा चाहिये' १२.१५
देवता ऐसे ही होते हैं १२.१६
'बुला सकना संभव नहीं' १२.१७
वास्तविक सीख १२.१८
आत्मशुद्धि की आवश्यकता १२.१८
काक-वृत्ति बनाम हंस-वृत्ति १२.१९
बन्धन से मुक्ति १२.१९
पिशाच से देवता १२.२०
संतवेष को कलंकित न होने दें १२.२१
उठो ! यह समय सोने का नहीं १२.२१
पुरुषार्थ वाला स्वर्ग १२.२३
ऋण मुक्ति बिना शान्ति नहीं १२.२३
थूकने योग्य स्थान १२.२४
थोथा ब्रह्मज्ञान १२.२५
गरीब की हाय १२.२५
काटो मत, पर..... १२.२६
प्रतिशोध कथा १२.२७
पुरोहित—सर्वोच्च पद १२.२७
सच्चा-सहचर १२.२८
निष्कलंक भगवान की जय १२.२९
निमाई की मित्रता १२.३१
मृत्यु को याद रखो १२.३२
मजबूत रस्सी बाँधो १२.३३
आकुलता से भरी पुकार १२.३४
जब संवदेना का अंकुर पल्लवित हुआ..... १२.३५
एक विभूति, जो गंगा में समा गई १२.३६
जो पीर पराई जाने रे १२.३८
महानात्माओं की कृपादृष्टि १२.३९
दैवी प्रतिशोध १२.४०
मंगलामंगलम् १२.४०

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नरमेध यज्ञ १२.४१
बलिदान जो सार्थक हो गया १२.४२
गृहस्थ में ईश्वर प्राप्ति १२.४२
बहुत गई, थोड़ी रही १२.४३
माता या शत्रु १२.४४
सत्संगति कथय किं करोति पुंसाम् ? १२.४४
जीवन का सत्य और सार्थकता १२.४५
दीपक का ध्येय १२.४६
पूजा का मर्म १२.४६
समर्पण योग की सच्ची साधना १२.४७
धर्म के नाम पर मानवता का उपहास न होने दें १२.४८

१३. प्रेरणाप्रद कथा-वार्ताएँ १३.१

मनुष्य की अपूर्णता १३.१
अनासक्त कर्म ही सच्चा योग १३.१
आत्माभिमुख बनो १३.१
पंचाग्नि विद्या १३.१
देवता भी नहीं कर सकते १३.२
पण्डित और मूर्ख १३.२
बासा मन ताजा करो १३.२
संयम की शक्ति १३.२
सच्चा आग्रह १३.२
आत्मवत् सर्वभूतेषु १३.२
वैद्य की आवश्यकता १३.३
कृतज्ञता प्रकाश १३.३
सच्चा गीतार्थी १३.३
तलाश १३.३
नशा एक बला १३.३
परोपकारी को कहीं भी भय नहीं १३.३
अपरोपकारी का सार निष्फल ही चला जाता है १३.४
समदर्शी भगवान के जात नहीं १३.४
अब तू मेरी सच्ची बेटी है १३.४
कुछ तो कर यों ही मत मर १३.४
परमात्मा का पल्ला मत छोड़ो १३.५
आत्म-विजय १३.५
भगवान का क्या दोष १३.५
निर्भीकता १३.५
पात्रता की परीक्षा १३.५
पक्षियों की रक्षा १३.६
भगवान का प्यार १३.६
एक निश्चय—एक अमल १३.६
सधन्यवाद वापस १३.६
निष्ठा की भूख १३.६
आत्मीय लगाव १३.७
सत्य को मजबूती से पकड़ो १३.७
पश्चाताप १३.७
गधों का सत्कार १३.७
नासमझ को समझ दो, वरदान नहीं १३.८
पुरुषार्थ की विजय १३.८
सार्थक श्रद्धा १३.८
निर्विकल्प समाधि १३.८
तेजस्वी ब्राह्मण १३.९
अन्नपूर्णा रोटियाँ १३.९
ईमानदार गरीब १३.९
माँ की सेवाएँ वेद ज्ञान १३.९
अहंकार ले डूबा १३.१०
अपने लिये कम १३.१०
आत्मज्ञान आवश्यक १३.१०
दया यज्ञ १३.१०
कंजूसी किस काम की ? १३.१०
मेरा भाई-बन्धु और कोई नहीं १३.१०
सज्जन की खोज १३.११
इन्हें पता नहीं कि वह क्या कर रहे हैं ? १३.११
न्याय रक्षा १३.११
छोटी भूल का बड़ा दुष्परिणाम १३.११
कर्तव्यनिष्ठा का पुरस्कार १३.११
विश्वासघात १३.१२
विरोधी को प्रवेश नहीं १३.१२
ईर्ष्या सांपिनि को न शतावा १३.१२
मान्यता अपनी-अपनी १३.१२
स्वप्न पर मत रीझो १३.१२
अपना बल क्षीण न करो १३.१२
सुजाता की खीर १३.१३
प्रमादी की पहचान १३.१३
प्रगति के अवरोध १३.१३
भाव की भूख १३.१३
स्वर्ग और नरक भावनाओं में १३.१४
बुद्धिहीन वैज्ञानिक १३.१४
निराश न लौटाओ १३.१४
साधुओं के लिये संदेश १३.१४
आयु कुल चार वर्ष १३.१५
सुलस का हृदय-परिवर्तन १३.१५
गुरु निष्ठा १३.१५
'द' के तीन अर्थ १३.१६

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

योग्यता की परख १३.१६
भगवान सबको देखता है १३.१७
बहुमत का सत्य १३.१७
सत्य के लिए क्रूरता का सामना १३.१७
श्रम का अमृत १३.१८
अधिक भोले भी न बनो १३.१८
दार्शनिक की विजय १३.१८
पंच-रत्न १३.१८
दृढ़ संकल्प १३.१९
सत्संकल्प अधूरे नहीं रहते १३.१९
धन यहाँ न सही कहीं और सही १३.२०
स्वर्ग क्या ? नरक क्या ? १३.२०
मन नहीं लगता १३.२०
दीपक जलाओ, प्रकाश फैलाओ १३.२१
संकल्प की सुगन्ध १३.२१
आसक्ति ही बन्धन १३.२१
विवेक ही बड़ा है १३.२२
'जो सिर काटे आपना' १३.२२
मोक्ष के सन्मुख राज्य तुच्छ १३.२२
ईश्वर प्राप्ति का अधिकार १३.२३
आत्मज्ञान की प्राप्ति १३.२३
सिद्धि से पहले १३.२३
एक विचार को दूसरे पर टिकने न दो १३.२४
बुरी संगति से दुर्गति १३.२४
वासना का अभिशाप १३.२५
दक्षिणा १३.२५
चावलों में कंकड़ १३.२५
बिना विचारे जो करे १३.२६
समय के पंख १३.२६
मिथ्या-प्रेम १३.२६
साधक की कसौटी १३.२७
ओषधि रुपये एक की, स्वस्थ रहे संसार १३.२७
ग्राहकता १३.२७
सती का तेज १३.२८
अमानत की वापसी १३.२८
तुम एक दिन भी सहन न कर सके १३.२९
घात नहीं करते १३.२९
शुभ कार्य तत्काल करो १३.२९
सच्चा प्रजासेवक १३.३०
मंदबुद्धि वरदराज १३.३०
फूट विनाश का कारण १३.३१
अमरत्व से श्रेष्ठ सदाचार १३.३१
अतिथि देवो भव १३.३१
शक्ति का स्रोत पतिव्रत १३.३२
तैमूरलंग की कीमत १३.३२
धन्य है इस न्यायप्रियता को १३.३२
विवेक की विजय १३.३३
शान्ति, सुख और प्रसन्नता १३.३३
नरमेध १३.३४
लोभ का फल १३.३४
श्रद्धाभाव से सब कुछ प्राप्ति १३.३४
विनाश के कारण सांसारिक आकर्षण १३.३५
परोपकार के लिए आत्म बलिदान १३.३५
विद्या से विनय १३.३५
आज के पुण्य, कल की प्राप्ति १३.३६
पहले पात्रता तब दीक्षा १३.३६
सफलता का श्रेय १३.३६
एक सेब का मूल्य १३.३७
सच्चा प्रजा पालन १३.३७
जीवन का रहस्य १३.३७
अभ्यास से सब कुछ संभव १३.३८
अँधेरा और उजाला १३.३८
शिक्षा देने से पहले १३.३८
परोपकारी वकील १३.३८
धोखा नहीं दूँगा १३.३९
स्वर्ग और नरक का अस्तित्व १३.३९
ध्यान का महत्त्व १३.३९
वीणा का मर्म १३.३९
आत्म-भाव का चमत्कार १३.४०
सत्य की प्रतिष्ठा १३.४०
धन का गर्व तुच्छ है १३.४०
संघर्ष से बड़ी शक्ति नहीं १३.४०
किम् आश्चर्य १३.४०
अधूरी भक्ति १३.४१
श्रद्धा से विद्या मिलती है १३.४१
सत्य, भावना पर निर्भर १३.४१
आत्म कल्याण की साधना १३.४१
तप की सामर्थ्य १३.४१
भगवान के दर्शन १३.४२
वेश्या बनाम पतिव्रता १३.४२
हीरे बनाम पत्थर १३.४२
राजा की भूल १३.४२
विवेक सबसे बड़ा धर्म १३.४२
लक्ष्मी-निवास १३.४३

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

खाँड के खिलौने १३.४३
नकल अच्छी नहीं १३.४३
चित्र-विचित्र १३.४३
भगवान अच्छा ही करता है १३.४३
बोनीफेस झरना १३.४३
धर्म का सौदा १३.४४
कर्त्तव्य की कसौटी १३.४४

१४. सद्गुण और सत्प्रवृत्तियाँ १४.१
'आत्मवत् सर्वभूतेषु' १४.१
क्षमया वशीकृते लोके १४.१
भय आधी मृत्यु १४.२
निर्भयता और साहस की सिद्धि १४.३
निर्भयता अपराजेय है १४.५
ऋण का परिशोध १४.६
सत्य में ही सर्वस्व सन्निहित १४.७
भीम की मुनादी १४.७
समस्याओं का समाधान १४.८
गरीबी—ईमानदारी को डिगा नहीं सकती १४.९
वनपरी की प्रतिध्वनि १४.९
दयालुता का दंभ १४.१०
जन्मा उस दिन, एक देवमानव ! १४.१०
पैदल चलने का इलाज १४.१२
गरीबों का हक १४.१३
संग्रह से क्या लाभ १४.१३
उठाकर बिठा दिया १४.१४
आधा महाभारत १४.१४
कीमती हथौड़ा १४.१४
शरीर से दुर्गन्ध १४.१४
सूअर का उद्धार १४.१४
लोहे के टोप में पानी १४.१५
वीर प्रकृति का दर्शन १४.१५
बीती ताहि विसार दे १४.१५
मेरा क्या बिगड़ा १४.१५
अभाव का दुःख १४.१५
कम मुनाफे की बढ़िया दुकानदारी १४.१६
देखना असम्भव १४.१६

१५. अनीति से संघर्ष—अन्याय का प्रतिकार १५.१
अनीति से समझौता नहीं १५.१
अनीति के इलाज के लिए प्रतिकार भी चाहिए १५.१
जहाँ "आप" वहाँ विजय जहाँ "पाप" वहाँ हार १५.२
दण्ड और पुरस्कार साथ-साथ १५.३
एकता के तीन सूत्र १५.३
आपसे नहीं, अन्याय से विद्रोह १५.४
सन्त—राष्ट्र की आत्मा १५.५
देश की बलिवेदी पर अविस्मरणीय बलिदान १५.५
बदला तो फिर ऐसा बदला १५.६
ऐसी गुलामी से कुर्बानी १५.७
एक सन्त जिसने गोआ को स्वतन्त्र कराया १५.८
काला पहाड़ १५.८
संघ शक्ति कलियुगो १५.१०
वैरागी मुक्त पुरुष १५.११
दूरदर्शिता और बैर का नाश १५.१२
शत्रु भी मित्र बन गये १५.१२
अन्तिम जीत सत्य की ही १५.१४
सत्यनिष्ठ बालक १५.१५
संवेदना का रत्नाकर १५.१६
जब अंतःकरण से बह उठे अश्रुधार १५.१७
प्रलयंकर का पश्चात्ताप १५.१८
तथ्य का सत्य के प्रति समर्पण १५.२०
शठे शाठ्यं समाचरेत् १५.२२
अंगद का बैर १५.२३
रावण-विभीषण १५.२३
अहसान नहीं कर रहा हूँ १५.२३

१६. पुरुषार्थ, अध्यवसाय, लगन और श्रमशीलता १६.१
गिलहरी का आदर्शवादी पुरुषार्थ १६.१
पुरुषार्थ देव की अभ्यर्थना—आराधना १६.१
सबसे बड़ा पुरुषार्थी १६.२
पुरुषार्थी के संग लक्ष्मी १६.२
अभ्यास भी एक चमत्कार है १६.२
अपनी कमाई—सदा काम आई १६.३
समृद्धि कर्मठता की चेरी १६.३
कल के लिए मत छोड़ो १६.४
धर्मजानि कुसुमानि १६.५
बिना बुलाया मेहमान १६.५
मुफ्त का माल दुःख देता है १६.६
कितनी बड़ी सम्पदा ? १६.७
लोकरंजन के लिए नहीं, लोकमंगल के लिए १६.७
प्रतिकूलताओं ने प्रशस्त किया सफलता का पथ १६.८
जो भी मिले राह में उससे अपना ज्ञान बढ़ाता चल १६.९
सफलता का मूल भाव 'संवेदना' १६.१०
ऐसी सीख न दीजिये १६.१०
आत्मविश्वास और आत्मपुरुषार्थ १६.११
अभी तो अवसर बाकी है १६.११

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जितनी बार गिरो, उतनी बार उठो १६.११
एकाग्रता का बल १६.१२
अपराध से सृजन विकास तक १६.१२
साहस सर्वोपरि समर्थता १६.१३
पितृ-श्राद्ध १६.१३
उपचार या परिष्कार १६.१४
गृहस्थ का अधिकार १६.१४
नीति और अनीति की कमाई का अन्तर १६.१५
धन नहीं, धन का संग्रह पाप १६.१६
बीस उँगलियों की कमाई १६.१६
श्रमस्वेदों की गंगा १६.१८
पूर्वजों की दुहाई देने से क्या लाभ ? १६.१८
श्रम देवता के आराधक १६.१९
आरोग्य रक्षा का रहस्य १६.२०
कुरूप कुबेर का तप १६.२०
साधना और सफलता १६.२१
अमृत रोटी १६.२१
भोज से क्या लेना १६.२१
निष्ठा १६.२१
भोज में कैसे चलूँ १६.२१
मिथ्या भय १६.२२
इतना धन कहाँ से १६.२२
माँ की सीख १६.२२

१७. दाम्पत्य जीवन और परिवार निर्माण १७.१

देहि मे सुखदां कन्याम् १७.१
दाम्पत्य प्रेम की परिभाषा १७.१
'विधवा नास्ति अमंगलम्' १७.२
सच्ची तन्मयता इसे कहते हैं १७.३
अलगाव ऐसे हो सकता है ? १७.३
सही अर्थों में निभा सहचरत्व १७.४
नारी तू कितनी महान् १७.४
मुझे कुछ नहीं चाहिये १७.५
मेरा कर्तव्य १७.५
एक भाई की खोज १७.५
साधारण वेष में असाधारण माँ १७.६
"सम-वेदना" की अनुभूति १७.७
रमणी या जीवनसंगिनी १७.७
नारी की सम्मान रक्षा १७.८
सुसन्तति का निर्माण किया जाता है १७.९
जीवन-दान १७.१०
अभेद मन्त्री १७.१२
आवश्यकता को प्राथमिकता १७.१२
अभिभावक भी हो सकता है १७.१२

१८. दोष और पतन १८.१

पाप का बाप १८.१
दुष्टता का उपचार दुष्टता तो नहीं है १८.१
अभिनन्दनीय काया नहीं, कृत्य हैं १८.२
पाप का प्रलोभन १८.३
अनैतिकता—नैतिकता १८.४
बौझी पाथर भार १८.४
गुप्त धन की खोज में १८.५
फूलों का रंग १८.६
जीव-जन्तुओं की आशा—विधाता की निराशा १८.६
चुनार के कृष्ण, गोकुल के कृष्ण १८.६
असुरों की पराजय १८.७
अपनी साधना गँवाई १८.७
काला रंग १८.७
केवल लो मत, कुछ दो भी १८.७
साँड बनाम निकम्मा १८.७
ज्योतिषी के असन्तुलित वचनों का दुष्परिणाम १८.८
खोटे बनाम खरे सिक्के १८.८
साँप का दुःख १८.८
बिच्छू और कछुआ १८.८
कहूँ या न कहूँ १८.८
घिनौनी लानत १८.९
अन्न का मन पर प्रभाव १८.९
अफीम का नशा १८.९
दूसरा अड्डा १८.९
शराब, मांस और फिर १८.९

१९. अन्धविश्वास, अविवेक और अज्ञान १९.१

अब हमें रूढ़ियों का दास नहीं बनना है १९.१
दुष्प्रवृत्तियों का त्याग १९.२
साधुवेश की मर्यादा १९.२
ऐसे मक्कारों की यही दुर्गति होती है १९.३
पशु बलि की व्यर्थता १९.४
यह राष्ट्रघाती संकीर्णता १९.४
प्रतिगामिता पर सौजन्य की विजय १९.५
अक्ल के अँधे—शेखीखोर १९.६
बिकी वस्तु पर क्या अधिकार १९.७
अपनी तृप्ति को धर्म मत बनाओ १९.७
सबसे श्रेष्ठ—सबसे महान् स्मारक १९.८
पटेल की बलि १९.८
अपनी ओर भी देखो १९.९
नौकरी चली गयी १९.९
जहरीले फल १९.९
मूर्खता १९.९

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पितामह की समाधि १६.६
उपदेश नहीं १६.१०
मृत्यु की चेतावनी १६.१०
बिल्ली और एकाग्रता १६.१०
पथिक की यात्रा १६.१०

२०. लोभ और मोह २०.१
स्वर्ण का लोभ २०.१
लोभ का पिशाच २०.१
सोना पाने का अधिकारी २०.२
अनुत्तरित प्रश्न—सटीक समाधान २०.२
स्वार्थ से अपना सिर मत कुचलो २०.४
यात्रा शून्यनगर से भविष्यनगर की २०.५
अन्त में धर्म की ही विजय होती है २०.६
गुरुजनों के असम्मान का कुफल २०.७
हृदय परिवर्तन २०.८
मैं नित्य जिन्दा प्रेतों को दफनाता हूँ २०.६
सिद्धि सर्वोपरि या सेवा २०.६
सब चले जाएँ, पर धर्म साथ न छोड़ें २०.११
पापों का अन्त क्यों नहीं होता ? २०.१२
मोह में दुःख २०.१३
कलि का निवास २०.१३
भूतकाल को भुलाया जाए २०.१४
न सजा, न मुआवजा २०.१५
व्यंग्य जो वरदान बना २०.१५
वह सेठ जो नास्तिक से आस्तिक बना २०.१६
बंधनों में बाँधती है—आसक्ति २०.१८
सच्चे लाभ की साधना २०.१६
संगठन और लक्ष्मी २०.२०
शरीर न अमर हुआ, न होगा २०.२०
तलवार की रक्षा २०.२२

२१. अहंकार, अभिमान एवं क्रोध २१.१
अहंकारो सिद्धि बाधकः २१.१
सत्ता और शक्ति का दुरुपयोग २१.१
जड़ बुद्धि चंडिका की दुर्गति २१.२
जलता हुआ संसार २१.४
हृदय में बसते हैं भगवान २१.५
अन्यायी की पराजय २१.६
पहले स्वयं को जीतो ! २१.६
जन्मा, एक और बाल्मीकि २१.७
सत्य, ज्ञान के समन्वय में निहित २१.१०
विभूति का दुरुपयोग न हो २१.१०
सत्य को न समझ पाने की आत्मघाती विडम्बना २१.११
अभिमान का विश्लेषण २१.१२
अधूरी साधना—अपूर्ण फल २१.१२
बहादुरी और प्रतिभा जिसका सदुपयोग न हो सका २१.१३
अहंकार के अति सूक्ष्म मार्ग और प्रवेश द्वार २१.१४
ज्ञान की सार्थकता निरहंकारिता में २१.१४
मूल्यवान कालीन और गन्दे पाँव २१.१५
क्षुद्र क्षमता पर अहंकार व्यर्थ २१.१५
क्रोधात् जयेत अक्रोधेन २१.१५

२२. ईर्ष्या और वासना २२.१
ईर्ष्या साँपिन को न नसावा ? २२.१
जैसा बोओगे वैसा मिलेगा २२.१
कलाकार का प्रतिशोध २२.२
बैल और गधा २२.३
ईर्ष्या बनाम विष २२.३
जिन्दगी मौत एक-दूसरे की पूरक हैं २२.३
द्वेष का दुष्परिणाम २२.४
मूर्धन्यजनों का पाप २२.४
प्रमाद का दुष्परिणाम २२.५
वासना का ताण्डव नृत्य २२.५
दुर्बुद्धि एवं सद्बुद्धि २२.७
विकारी जीवन का विनाश अवश्यम्भावी २२.७
वासना स्वभाव नहीं—विकार मात्र २२.८

२३. प्रेरक लघु कथाएँ २३.१
शरीर और आत्मा २३.१
संकीर्णता हटाओ २३.१
विवेक बनाम कर्म २३.१
परिवर्तन में विवेक २३.१
कागज और कलम २३.१
अड़ंगा मत लगाओ २३.१
जीवन-शक्ति २३.२
पवमान की पराजय २३.२
स्वार्थपरता एक अपराध २३.२
विस्तार ही नहीं, गहराई भी २३.२
माँगो मत २३.२
पुरुषार्थ करो २३.२
भय छोड़ो २३.२
शिकायत करना छोड़ो २३.३
जीवन यात्रा २३.३
मरकर भी सुगन्ध फैलाऊँगा २३.३
काला कौआ २३.३

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आशा और धैर्य	२३.३	वाणी से पता चलता है	२३.६
यह ध्यान पहले ही रहे तो	२३.३	छोटों को भी देखो	२३.६
आकाश के तारे	२३.४	पुल को रोको	२३.६
सबकी भलाई में अपनी भलाई	२३.४	जीवन मृत्यु से अलग	२३.६
शक्ति की शोभा	२३.४	अपरिग्रह, परिग्रह दास न बनें	२३.६
बाह्य श्रृंगार किस काम का	२३.४	उससे भी बुरा	२३.१०
सौन्दर्य की रक्षा	२३.४	भाग्यवान बनाम अभागा	२३.१०
गहरे पानी पैठ	२३.४	रूप पर न्योछावर	२३.१०
नई शक्ति	२३.४	स्नेह तो सौम्यता ढूँढ़ता है	२३.१०
काम बन्द न होगा	२३.४	रस विकृत न हो	२३.१०
भय छोड़, हवा में उड़	२३.४	झूठा उपदेश बनाम सच्चा उपदेश	२३.१०
रक्षक भगवान	२३.४	पुण्य की कसौटी	२३.१०
मुसकराते रहो	२३.५	दोनों साथ-साथ रहो	२३.११
प्रतिशोध की भयंकरता	२३.५	शक्तिशाली वस्तु	२३.११
अनुकरण	२३.५	मौत का विस्मरण	२३.११
अपना व्रत क्यों तोड़ूँ	२३.५	मन का अभ्यास	२३.११
मीठी बानी बोलिये	२३.५	प्रकाश की ओर चलो	२३.१२
दोनों से बड़ा	२३.५	बीज जो वृक्ष बन गया	२३.१२
शक्ति का केन्द्रीकरण	२३.५	मन की शक्ति	२३.१२
धूप और छाँव	२३.५	मृत्यु का दुःख मत करो	२३.१२
बैठो मत, काम करो	२३.५	प्रलाप मत करो	२३.१२
मील का पत्थर	२३.६	मिथ्या अहंकार	२३.१२
चरैवेति-चरैवेति	२३.६	प्रगति और प्रवाह ही निर्मलता का आधार	२३.१३
एकता में सुरक्षा	२३.६	बूँदों का बलिदान	२३.१३
धर्म का सही अर्थ	२३.६	नया पाने के लिए पुराना छोड़ो	२३.१३
भीख की झोली	२३.६	आँख और आँसू	२३.१३
सत्य और असत्य	२३.६	समय नहीं मिलता	२३.१४
उत्सर्ग के लिए अर्जन आवश्यक	२३.६	संसार की शोभा	२३.१४
मिलकर काम करो	२३.६	लोटे में जहाज	२३.१४
क्षणिक अस्तित्व पर इतना अभिमान	२३.६	पहले मन साफ करो	२३.१४
धूर्तता से तो अयोग्यता अच्छी	२३.७	कुपात्र को कौन दे	२३.१४
झुकने की पात्रता	२३.७	अपनी-अपनी पात्रता	२३.१५
परिवर्तन ही सत्य	२३.७	अपने भीतर सुख की खोज	२३.१५
जीने की चाह	२३.७	जो मन भावई-सो कर पावई	२३.१५
तुम्हारा ही भाला, तुम्हारी ही ढाल	२३.७	सेवा, पर निःस्वार्थ	२३.१६
जो मिला है, वही बहुत है	२३.७	दो दीपक	२३.१६
छोटा सो बड़ा	२३.७	लक्ष्मी का सनातन नियम	२३.१६
उजड़ जाओ	२३.८	दो पैसे की सिद्धि	२३.१६
स्वप्न-भ्रम	२३.८	मृत्यु-दूत	२३.१६
एक दिन कड़वा ही सही	२३.८	डरो मत कारण समझो	२३.१७
प्रेम के टाँके	२३.८	संकल्प सर्वोपरि शक्ति	२३.१७
कपट देर तक नहीं चलता	२३.८	अहंकार बाधक	२३.१८

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लक्ष्मी का वास	२३.१८	सच्चाई की परख	२३.२७
कोई सुनता नहीं	२३.१८	भिक्षा देना, निर्धनता को बुलाना	२३.२७
पहले मन के बोझ हटाओ	२३.१८	अभिमान का नशा	२३.२८
एकाग्रचित्त हो, तो सफलता मिलेगी	२३.१९	आँख खोलकर चलो	२३.२८
आत्मविजय ही सच्ची विजय	२३.१९	मानसिक पवित्रता ही सिद्धि की आधारशिला	२३.२८
मेहनत का मीठा फल	२३.१९	प्रेम की पहचान	२३.२९
उन्नति पर गर्व करना भूल है	२३.१९	सान्निध्य तो देवता का	२३.२९
सहिष्णुता का जादू	२३.२०	दुनिया का दुर्भाग्य भी सौभाग्य बन जाता है	२३.२९
भविष्य का भी ध्यान रखा करो	२३.२०	ईश्वर का छोड़ा काम पूरा करो	२३.२९
इन्द्रियजित	२३.२०	आँखों के अंधे	२३.२९
लघुता से प्रभुता	२३.२०	सहृदयता अपराजेय	२३.३०
घिस-घिसकर परिमार्जित होने का परिणाम	२३.२०	विश्वास की शक्ति	२३.३०
तोता रटन्त	२३.२१	माँगो मत, स्वयं प्राप्त करो	२३.३०
सख्ती से अधिक स्नेह	२३.२१	त्यागा नहीं, पाया	२३.३०
दुःख का आशीर्वाद	२३.२१	बिना जाने निर्णय न लो	२३.३०
मिलकर खोज करें	२३.२१	फूलों की बात काँटों से	२३.३१
औरों को भी सिखाओ	२३.२१	उपेक्षा करो	२३.३१
शान्त बनाम एकान्त	२३.२२	स्वर नहीं तो क्या भाव तो हैं	२३.३१
मेरा मुख्य काम पीड़ितों की सेवा करना है	२३.२२	सच्चा सन्त	२३.३१
आगे का काम आगे करो	२३.२२	संयमी ही उपभोग के अधिकारी	२३.३१
कटुता बनाम आत्म-कल्याण	२३.२२	परमेश्वर सब कुछ देखता है	२३.३२
सन्त बनाम धूर्त	२३.२२	प्रयत्न करो	२३.३२
ज्ञान ही सच्चा तीर्थ-स्थान	२३.२२	जो तू, वही मैं	२३.३२
भगवान की सच्ची सेवा	२३.२३	भिक्षु बनने का समय	२३.३२
ईश्वर भक्त	२३.२३	कहीं भटके नहीं	२३.३२
निशाना	२३.२३	अनावश्यक उपालम्भ	२३.३२
और अधिक प्रेम दीजिए	२३.२३	जो दिल खोजो आपना	२३.३२
देने का सुख	२३.२३	सबसे बड़ा सेवक	२३.३३
सच्चा सौदा	२३.२४	गृहस्थ को मत कोसो	२३.३३
अपना उद्धार आप करो	२३.२४	अपने सुख के लिए सताओ मत	२३.३३
भक्ति गीत	२३.२४	धैर्य की आवश्यकता	२३.३३
सत्य की उपासना करो	२३.२४	भिखारी	२३.३३
कर्मफल मानो	२३.२४	बड़ा कौन	२३.३३
असली तपस्या	२३.२५	सब कुछ दे दिया	२३.३३
अभ्यास	२३.२५	दुर्बलो दैवघातः	२३.३३
शेखचिल्ली	२३.२५	श्रम और ज्ञान का समन्वय	२३.३३
पाप से मुक्ति	२३.२५	पहले ईंट उठाइए	२३.३४
तब वसुधा पुलकित हो उठी	२३.२६	हृदय में अन्तर	२३.३४
अपनी रक्षा आप करो	२३.२६	असम्भव का कर्त्ता कौन	२३.३४
धर्म ही स्थायी है	२३.२६	धरती पर स्वर्ग	२३.३४
स्थानान्तर	२३.२७	मीठी वाणी बोलिए	२३.३४
नशा बुरा जंजाल	२३.२७	हर स्थिति में सन्त	२३.३४

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मन में भी संयम बनो	२३.३४
पर-उपदेश	२३.३४
कष्ट अनिवार्य	२३.३४
अन्धकार का अन्त	२३.३४
दूसरों का भी दुःख समझो	२३.३५
शरीर नहीं, मेरे विचारों की रक्षा करो	२३.३५
खम्भा नहीं छोड़ता	२३.३५
दान का महत्त्व	२३.३५
जीने की शिक्षा	२३.३५
निःशस्त्रीकरण	२३.३६
श्रेष्ठ कौन ?	२३.३६
सर्वोत्कृष्ट	२३.३६
सत्य और आदर्श	२३.३६
आत्मा सबसे बड़ी	२३.३७
बड़ा कौन ?	२३.३७
असत्य का सम्मान	२३.३७
कला बनाम शिल्पी	२३.३७
विनम्रता से सफलता	२३.३७
किसी को कष्ट न हो	२३.३८
पाप और पश्चात्ताप	२३.३८
अहंकार ने कुछ न सीखने दिया	२३.३८
मूर्ख को सीख न दो	२३.३८
पोथियाँ मिल गईं	२३.३८
अच्छा हुआ	२३.३९
हृदय-शुद्धि	२३.३९
वरदान से क्या लाभ	२३.३९
गधे का ज्ञान	२३.३९

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आस्तिकता और ईश्वर विश्वास

अथातो ब्रह्म जिज्ञासा

"अथातो ब्रह्म जिज्ञासा" तात् ! जिसकी ब्रह्म-दर्शन की जिज्ञासा जितनी प्रबल होती है, वह उतनी ही शीघ्रता से नारायण का दर्शन करता है। ब्रह्म ही क्यों वत्स ! जिज्ञासा तो मनुष्य को किसी भी कला, किसी भी विद्या में पारंगत बना देती है। हमारा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है, तुम आश्रम में रहो और तप करो, एक दिन तुम्हें निश्चित ही भगवान का साक्षात्कार होगा। यह कहकर महर्षि ऐलूष ने राजकुमार नीरव्रत की पीठ पर हाथ फेरा और उन्हें सामान्य शिक्षार्थियों की तरह छात्रावास के एक सामान्य कक्ष में रहने का प्रबन्ध कर दिया।

नीरव्रत ने पहली बार अपना सामान अपने हाथों से उठाया। वे प्रथम बार एक ऐसे निवास में ठहरे, जिस तरह के निवास में उनके दास-दासियाँ भी नहीं रहते थे। नीरव्रत ने उस दिन ही उतना सादा भोजन ग्रहण किया था। आश्रम व्यवस्था के अपमान की बात न रही होती तो वह उस थाल को, जो उनके लिये परोसा गया था, दूर फेंक देते। सायंकाल होने में विलम्ब लगा होगा, पर जीवन की इन प्रारम्भिक विपरीत दिशाओं ने अविलम्ब ही मस्तिष्क में क्रान्ति, विचार-मन्थन प्रारम्भ कर दिया। इतना शुष्क जीवन नीरव्रत ने पहले कभी नहीं देखा था, इसलिये उससे अरुचि होना कुछ स्वाभाविक ही था।

शयन में जाने से पूर्व उन्होंने एक अन्य स्नातक को बुलाकर पूछा—"तात् ! आप कहाँ से आये हैं ? आपके पिता क्या करते हैं ? आश्रम में निवास करते आपको कितने दिन हो गये ? क्या आपने सिद्धि प्राप्त कर ली ? क्या आपने ईश्वर का साक्षात्कार कर लिया ?"

प्रश्न करने की इस शैली पर स्नातक को हँसी आ गई, उसने कहा—"मित्र ! शेष प्रश्नों का उत्तर बाद में मिलेगा, अभी आप इतना ही समझ लें, मैं उपकौशल का राजकुमार हूँ और यह मेरा समापन वर्ष है, जब आप यहाँ प्रवेश ले रहे हैं।" तरुण स्नातक ने अपने तेजस्वी ललाट का वक्षस्थल उन्नत कर ऊपर उठाया और ऋषि ऐलूष जहाँ रहते थे, उस ओर चला गया।

नीरव्रत किंकर्त्तव्यविमूढ़ ! वस्तुतः मुखाकृति राजकुमारों से कम नहीं पर यह सभी स्नातक इतनी सरल वेषभूषा में, इतने मौनधारी और इतने अनुशासनबद्ध, क्या इनकी अपनी इच्छायें कुछ हैं ही नहीं ? क्या इनकी सुखाकांक्षायें नष्ट हो गई हैं ? सच पूछा जाय तो नीरव्रत का माथा फट गया होता, इस तरह के प्रश्नों से, किन्तु अच्छा हुआ उन्हें निद्रा देवी ने विश्राम दिया।

प्रातःकाल सूर्योदय से दो घड़ी पूर्व ही जब भगवती ऊषा के आगमन की तैयारी हो रही थी, सब स्नातक जाग पड़े, प्रार्थना हुई, उसी हलचल में नीरव्रत की निद्रा टूट गई। नीरव्रत ने शय्या का परित्याग किया। शरीर हल्का था। शौच-स्नान से निवृत्त होकर वह गायत्री-वन्दन के लिये आसन पर बैठे। आज आश्रम जीवन का प्रथम दिन था। ध्यान तो नहीं लगा पर चिन्तन से एक बात सामने आई—जब देह नष्ट हो जाती है, तब भी क्या राजा-रंक, स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध का भेद रह जाता है, नहीं। फिर मेरे राजकुमारत्व को क्या अमर रहना है ? नहीं, नहीं। मन ने कहा—नहीं। जीवन के दृश्य भाग नश्वर हैं, क्षणिक हैं, असन्तोषप्रद हैं, जब तक मनुष्य पूर्णता नहीं प्राप्त कर लेता, तब तक उसे ऐसी कोई मान्यता नहीं बना लेनी चाहिये। इस चिन्तन से कल वाला बोझ हल्का हो गया। राजकुमार नीरव्रत ने मान लिया कि वह भी शरीर में अभिव्यक्त, अव्यक्त आत्मा है और उसे पाने के लिये अहंभाव छोड़ना ही पड़ता है।

किन्तु यह अहंभाव भी कितना बलवान् है कि मनुष्य को बार-बार अपने शिकंजे में कसता ही रहता है। उसमें यदि कोई बचाव कर पाता है, तो वह है निरन्तर विचार भावनाओं के प्रवाह और प्रबल निष्ठायें। नीरव्रत ने विचार करने की कला सीखी, भावनाओं को उभार देना सीखा तो भी अहंकार का अपराध अभी पीछा नहीं छोड़ रहा था। वह कभी-कभी सह-स्नातकों से ही झगड़ बैठते, कभी-कभी शिक्षकों से भी दुराग्रह कर बैठते। उस समय उन्हें लगता कि उनके पक्ष में न्याय है पर जब भी वह विचार की तुला उठाते और विराट् जीवन की तुलना में अपनी छोटी-सी इकाई को तौलते तो अहंकार तिरोहित हो जाता। मान-मर्यादा, मोह, दम्भ, दुराग्रह सब कुछ तिरोहित हो जाता। नीरव्रत अपने को शुद्ध, चेतन, अद्वैत आत्मा अनुभव करते। शिक्षण का यह क्रम ही उनके अन्तर को परिवर्तित, परिष्कृत और विकसित करता हुआ चला जा रहा था। मान्यताओं के प्रति दृष्टिकोण परिवर्तन के साथ-साथ उनका व्यक्तित्व भी विकसित होता जाता, तो भी अभी वे अविराम स्थिति में ही थे। अपरिपक्व अवस्था में ही थे।

आश्रम का नियम था कि सभी स्नातक भिक्षाटन के लिये जाया करते थे। तब भिक्षा केवल सत्कार्य के लिये संन्यासियों को भोजन के रूप में और आश्रमवासी ब्रह्मचारियों को धान्य के रूप में दी जाती थी, इसके अतिरिक्त और कोई भी व्यक्ति भिक्षा नहीं माँग सकता था। आश्रम राजाओं के दान से चलते थे, तो भी यह परम्परा थी, स्नातक अपने आपको समाज का एक बालक ही समझें, वे कभी अहंकार न करें, इसलिये भिक्षावृत्ति प्रत्येक स्नातक के लिये आवश्यक थी। नीरव्रत को इस तरह का आदेश प्रथम बार मिला था। एक बार उनका वर्षों का प्रसुप्त अहंभाव पुनः जाग पड़ा था। एक राजकुमार कभी भिक्षा नहीं माँग सकता। इस तरह का प्रतिवाद उनके अन्तःकरण ने किया था, किन्तु पुनश्च वही **"अथातो ब्रह्म जिज्ञासा"** नीरव्रत को अपने आपको दबाना ही पड़ा।

भिखारी नीरव्रत, भिक्षापात्र लिये एक ग्राम में प्रविष्ट हुये। किसी के दरवाजे जाते, उन्हें लज्जा अनुभव हो रही थी। ग्रामप्रमुख की कन्या 'विद्या' ने उसके संकोच को पहचाना। उसने एक मुट्ठी धान्य लिया और नीरव्रत के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समीप ले जाकर भिक्षापात्र में डालने की अपेक्षा भूमि पर गिरा दिया। स्नातक ने पूछा—"भद्रे ! यदि जान-बूझकर अन्न को फेंकना ही था, तो आप उसे लेकर यहाँ तक आई ही क्यों ?"

विद्या ने हँसकर उत्तर दिया—"तात् ! मैं ही क्यों संसार ही ऐसा करता है, हमने जीवन किसके लिये ग्रहण किया और उसका उपयोग कहाँ करते हैं ? हम किस उद्देश्य से आते हैं और वह उद्देश्य हमें पूरा करते कितना संकोच, कितना भारीपन लगता है, क्या यह धान्य बाहर गिराने की तरह का ही अपराध नहीं हुआ ?"

नीरव्रत की आँखें खुल गईं। किसी भी लक्ष्य की प्राप्ति के लिये दृढ़ता अपेक्षित है, ऐसा निश्चय कर लिया। उनकी लज्जा और उनका अहंभाव धुल गया और वे प्रसन्नतापूर्वक साग्रह भिक्षाटन के लिये आगे बढ़ गये।

भिक्षापात्र को आश्रम के कोष में पहुँचा आये नीरव्रत, वह अब उस बोझ से हल्के हो चुके थे, जिसने अब तक के जीवन को जटिल, भ्रमपूर्ण और असंतोष में रखा था। नीरव्रत जब सायंकालीन संध्या करने के लिये बैठे तो शून्य की शांति में इस तरह खो गये, जैसे उनका बाह्य जीवन से सम्बन्ध ही न रहा हो। उनकी इन्द्रियाँ, उनका मन, उनकी सम्पूर्ण चेतना देह के अहंभाव से उठकर अनन्त अन्तरिक्ष में फैल गई थीं, वे अब संकीर्ण परिधि से निकलकर अनन्तता की अनुभूति कर रहे थे। अपने आपको निर्मल, स्वच्छ, धुला हुआ, शान्त, सन्तुष्ट और बहुत हल्का-फुल्का अनुभव कर रहे थे।

जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है

"भरत ! ओ जड़भरत !"

धीरज जब अपने भाई को खोजने निकलती, तो वह कभी खेत में मिलता तो कभी नदी के किनारे। दोपहर होने पर सब लड़के अपने-अपने घर वापस आ जाते थे, पर जड़भरत को न खाने की चिन्ता थी, न पीने की।

इसलिये धीरज टोकरी में भाई के लिये खाना लेकर निकल पड़ती और जहाँ कहीं वह मिलता उसे खिलाकर घर लौट आती। कभी-कभी वह इधर-उधर छुप जाता और सब जगह ढूँढ़ लेने पर भी दिखलाई नहीं पड़ता तो धीरज जोर से उसे पुकारने लगती। बहिन की व्याकुलता समझकर भरत बाहर निकलकर आता और बहिन के पास खड़ा होकर जोर-जोर से हँसने लगता।

आज भी धीरज भोजन-सामग्री लेकर निकली थी, पर उसका भाई किसी जगह नहीं मिला। अन्त में एक खेत में रखे हुये घास के बहुत बड़े ढेर के पास पहुँची तो उसकी बगल में दो मनुष्यों को बात-चीत करते सुना। वे धीरज का ही नाम लेकर बात कर रहे थे। इसलिये उसे बड़ी उत्सुकता हुई। उसने जो ओट में से झाँककर देखा तो अपने भाई को नारदमुनि के साथ बातचीत करते पाया। यह देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि जड़भरत को सब लोग जन्म से बहरा और गूँगा समझते थे और धीरज ने उसे कभी बोलते नहीं सुना था। इस समय जड़भरत देववाणी में नारद से कह रहा था—

"मुनिवर नारद ! मेरा एक काम कर सको तो बड़ी कृपा हो।"

"अरे अवधूत ! तुम तो जड़भरत हो। तुमको किस बात की चिन्ता और क्या काम-काज ?"

"तुम्हारी बात सत्य है मुनिवर ! मुझे इस काया और माया का कोई मोह नहीं रहा है, तो भी एक बन्धन मुझे भी है और वह है प्रेम का। मेरी बहिन धीरज को तो तुम जानते ही हो। उसका मेरे ऊपर अत्यन्त स्नेह है और स्नेह क्यों न हो, हम दोनों एक ही माता-पिता की सन्तान, एक साथ पैदा हुये और पाले गये हैं।"

"तुम्हारी बहिन धीरज तो वास्तव में अपने नाम के अनुरूप ही है। विचारी को न जाने कितने कष्ट उठाने पड़ते हैं, पर वह सदा तुम्हारे खाने-पीने की व्यवस्था करती ही रहती है। तुमको तो इस विषय में कुछ प्रयत्न करना ही नहीं पड़ता, तब बतलाओ तुम्हारे मन में चिन्ता कहाँ से घुस गई ?"

"नारदजी, तुम तो जगत् का चक्कर लगाते रहते हो। मेरी बहिन अब विवाह योग्य हो गई है। माता नहीं है, पिता भी नहीं रहे, नौ भाई हैं, पर वे सौतेली माता के हैं। उनको इस बात की कोई चिन्ता क्यों होने लगी, मैं ही उसका माँ जाया भाई हूँ। पर मैं तो व्यवहार से सर्वथा अनजान हूँ। मैं तो संसार को छोड़कर कभी का जंगल में चला गया होता, पर एक इसी बहिन का मुझे ख्याल आ जाता है। बहिन का विवाह हो जाय और उसे ठीक घर मिल जाय, इतनी ही चिन्ता है।"

"यह मेरा काम रहा जड़भरत, तुम निश्चिन्त रहो। तुम्हारी बहिन के लायक वर ढूँढ़ दूँगा। उसका जीवन सुखमय होगा। चलो जय नारायण।"

"नारायण—नारायण !"

मुनिवर नारद ने अवधूत जड़भरत से विदा ली। धीरज ने उनको जाता देखा तो दौड़कर भाई के पास आई और उससे भेंटकर कहने लगी—"मेरे गूँगे भाई ! अभी नारदजी के साथ तो तू देववाणी में बात कर रहा था। हम तो तुझको जन्म से बहरा-गूँगा समझते हैं। बोल भाई, एक बार स्नेह से मेरे सामने बोल। अपनी मीठी वाणी सुना।"

यद्यपि जड़भरत ने पैदा होते ही मौन व्रत लिया था, पर अब बहिन की अत्यन्त करुणाजनक वाणी सुनकर और उसके आन्तरिक आग्रह को देखकर उसने कहा—"बहिन धीरज, तेरा कल्याण हो, तेरी सेवा सफल हुई है।"

नारदजी से भेंट होने के तीसरे ही दिन धीरज के लिये एक उत्तम कुल की तरफ से विवाह की माँग आ गई। उसकी सौतेली भौजाइयों ने उसे स्वीकार किया और शुभ मुहूर्त में विवाह होकर धीरज अपनी ससुराल चली गई। उसी रात को जड़भरत भी घर को छोड़कर खेत में जाकर रहने लगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वर्ग की स्थिति और उपलब्धि

राजा अरिष्टनेमि तीसरे वय में प्रविष्ट हुये। जीवनभर उन्होंने अपने कर्त्तव्यों का पालन भलीप्रकार किया था । बालकाल में विद्यार्जन—शरीर साधना आदि से लेकर—अधेड़ अवस्था के पारिवारिक एवं राजनैतिक उत्तरदायित्वों के निर्वाह में उन्होंने पूरे मनोयोग से कार्य किया था किन्तु न जाने क्यों उन्हें अन्तःकरण में कुछ हलचल-सी अनुभव होने लगी थी। कर्त्तव्य पालन के सन्तोष की शीतलता के अतिरिक्त कुछ आकुलता की अनुभूति भी उन्हें होने लगी। राजा कारण न समझ सके और उन्होंने अपने कुलगुरु के सम्मुख अपनी समस्या रखी।

विचारशीलता तथा क्रियाशीलता दोनों जीवन के दो महत्त्वपूर्ण पहलू हैं। सुविचार प्रेरित क्रिया कल्याणप्रद होती है, जबकि केवल क्रिया अर्थ का अनर्थ भी कर डालती है। इसी प्रकार क्रिया के पूरक के रूप में विचार उपयोगी हैं, स्तुत्य हैं अन्यथा केवल विचार भ्रामक हो जाता है। हवाई महलों तक ही उसकी सीमा सीमित रह जाती है। इसी कारण प्राचीन राज्य परम्परा में राजा की शक्ति तथा क्रियाशीलता को विचारों के प्रकाश में अधिक उपयोगी बनाने के लिये विचार को तथा आत्म-बल सम्पन्न व्यक्तित्वों को भी रखा जाता था। मन्त्रियों से लेकर 'राजगुरु' तक इसी स्तर के व्यक्ति रहा करते थे।

राजा की समस्या सुनकर राजगुरु मुसकराये और बोले "राजन् ! आपका कथन सत्य है। मनुष्य के जीवन में कई बार ऐसे अवसर आते हैं, जबकि वर्तमान कर्त्तव्यों को भली प्रकार पूरा करते हुये भी उसके मन में हलचल व कौतूहल-सा अनुभव होता है। ऐसा होना स्वाभाविक है। शरीर को बदलती हुई अवस्था के साथ जीवन के अगले चरण में प्रवेश के लिये सन्नद्ध होने के लिये आत्मा के संकेत की यह प्रतिक्रिया है।"

राजा को बात भली प्रकार स्पष्ट न हो सकी, उन्होंने पूछा, "यह संकेत क्या है ? आत्मा इन्हें स्पष्ट क्यों नहीं करती ? कुलगुरु पुनः स्निग्ध हास के साथ बोले "वत्स ! स्वयं के उदाहरण से ही समझने का प्रयास करें। आपके जीवन में कभी पहले भी ऐसा अनुभव हुआ था। थोड़ा भूतकाल की गहराई में उतरकर सोचें।" और राजा को ध्यान आया कि किशोर अवस्था पार करने पर कुछ ऐसा ही अनुभव हुआ था। तब राजगुरु ने उन्हें ब्रह्मचर्य आश्रम में अर्जित ज्ञान तथा सामर्थ्य का उपयोग लौकिक कर्त्तव्यों के पालन करने का निर्देश किया था। उसके बाद से अब तक उन्हें शान्ति व सन्तोष का अनुभव होता रहा।

राजा ने अपना निष्कर्ष सुनाया। पुरोहित ने साधुवाद दिया "धन्य हैं राजन् ! आपने ठीक-ठीक विश्लेषण किया। बस, उस समय जैसे शारीरिक तथा मानसिक शक्ति विकसित होकर लौकिक कर्त्तव्यों में प्रवृत्त होना चाहती थी उसी प्रकार अब आत्मिक शक्तियों के विकास का समय आया है। नरश्रेष्ठ ! आपको अब अन्तःकरण अगली उच्चस्तरीय भूमिका में प्रवेश के संकेत दे रहा है। आपको लोकोत्तर भूमिका में प्रवेश का, आत्म-विकास की तपोमय साधना का निमन्त्रण मिल रहा है। वत्स ! अपने सुसंस्कारों के कारण अन्तःकरण के संकेत आप अनुभव कर सके हैं। अब इनको समझकर आचरण में लाने में विलम्ब न करना श्रेयस्कर है।"

राजा अमृतोपम निर्देश पाकर तृप्त हो गये। उन्होंने अविलम्ब युवराज को राज्यभार सौंपने की व्यवस्था की। अपने जीवन के अनुभवों का सार समझकर एवं उपयुक्त सलाहकारों की व्यवस्था करके उन्होंने होनहार पुत्र को राज्य व्यवस्था सौंप दी। स्वयं विधिवत् वानप्रस्थ ग्रहण कर, गन्धमादन पर्वत पर तपस्या करने चले गये।

राजा अरिष्टनेमि तपस्या में लीन थे। मन अपनी उछल-कूद करके थक गया, प्रकृति परीक्षा लेकर सन्तुष्ट हो गयी। मन अनुगामी बन गया, प्रकृति सहयोगिनी राजा को आत्म-शान्ति की शीतलता का अनुभव होने लगा। तभी एक दिन एक देवदूत उनके सामने आ उपस्थित हुआ। बोला—"देवराज इन्द्र ने आपको ससम्मान भेंट करने के लिये बुलाया है।" देवराज इन्द्र ने बुलाया ? राजा को कारण समझ में न आया। अपनी साधना को छोड़कर जाने की इच्छा भी नहीं थी, किन्तु कोई प्रेम से बुलाये तो तिरस्कार भी उचित नहीं। राजा शान्त भाव से साथ हो लिये।

स्वर्ग के स्वामी देवराज इन्द्र ने राजा का आगे बढ़ कर स्वागत किया, प्रेम से अपने निकट बिठाया तथा चर्चा प्रारम्भ की। वे बोले—"राजा आपकी तपस्या तथा सत्कर्मों ने आपको उच्च स्वर्ग का अधिकारी बना दिया है। आप चाहें तो उसका दीर्घकाल तक उपभोग कर सकते हैं।"

"मैंने तो स्वर्ग के निमित्त कोई कर्म या तप किया नहीं है, फिर उस पर मेरा अधिकार कैसे सिद्ध हुआ है ?" राजा ने विनम्र शब्दों में शंका व्यक्त कर दी। देवराज ने प्रशंसात्मक दृष्टि से उनकी ओर देखा और समाधान, किया—"राजन् ! आपने इस निमित्त नहीं किया, यह सही है किन्तु जो किया है उससे आपको उच्च स्वर्ग प्राप्त हो सकता है।"

राजा विचार करने लगे, फिर बोले—"देवराज ! यह स्वर्ग आपके कथन के अनुसार मुझे अपनी संचित पूँजी के मूल्य पर खरीदना होगा। अस्तु, कृपया स्वर्ग के विषय में मुझे अधिक जानकारी दें—ताकि मैं निश्चित कर सकूँ कि वह स्वीकार करने योग्य है अथवा नहीं।" इन्द्र द्वारा उत्तर देने की स्वीकृति पाकर राजा ने प्रश्न किया "उच्च और निम्न स्वर्ग क्या है ? क्या दोनों प्रकार के स्वर्गवासियों के बीच प्रेम-सद्भावना का व्यवहार रहता है ? क्या स्वर्ग में अधिकांश-व्यक्ति मेरी ही तरह के हैं, जिन्हें स्वर्ग की प्राप्ति अनायास हुई है अथवा स्वर्ग सुख की लालसा से एकत्र हुये व्यक्ति ही वहाँ हैं ? क्या अपने अधिकार के स्वर्ग सुख को किसी अन्य व्यक्ति को—जिसे उसकी इच्छा तथा आवश्यकता है, दिया जा सकता है ? स्वर्ग निवास की सीमा क्या है ?"

देवराज कुछ संकोच में पड़ गये किन्तु उत्तर देना आवश्यक था। बोले—"राजन् स्वर्ग के विभिन्न स्तर सुकर्मों की पूँजी से प्राप्त होते हैं। अधिकांश स्वर्गवासी स्वर्ग सुख की लालसा से आने वाले ही हैं। उच्च वर्ग के प्रति ईर्ष्या, हेय के प्रति स्पर्धा का भाव स्वर्ग में भी है। अपने हिस्से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का भोग भोगने की ही स्वतन्त्रता है, उसे किसी को देने की सुविधा नहीं है। सत्कर्मों का प्रभाव समाप्त होने पर पुनः संसार चक्र में वापस लौटना अनिवार्य है।"

राजा अरिष्टनेमि का हृदय दहल गया। ऐसा स्वर्ग किस काम का ? जिन सांसारिक हीन-वृत्तियों से मुक्ति पाने के लिये वह प्रयत्नशील थे—उन्हीं में सड़ने वाला स्वर्ग का जीवन किस बुद्धिमान् को ग्राह्य होगा ? यह तो जेल से बुरा है, इन्द्र राजा के मनोभाव पढ़ रहे थे। उन्हें लग रहा था, पृथ्वी के इस राजा के सामने इन्द्रासन हेय सिद्ध हो रहा है, किन्तु कुछ कहने की स्थिति में अपने आपको वह नहीं पा रहे थे। तब तक राजा बोले—"देवराज ! मैं आपके स्नेह का आभारी हूँ..... आपका स्वर्ग, उन्हें प्राप्त हो, जो उसके लिये प्रयास करते हैं.....। मुझे तो उसी गंधमादन पर्वत पर भेजने की कृपा करें..... जहाँ शान्त वातावरण में साधना की शीतलता से आत्मा तृप्त होती है।"

इन्द्र ने उठकर राजा को हृदय से लगा लिया। बोले, "राजन् आपके आगमन से मेरा स्थान पवित्र हो गया। आपने मानव शरीर की वह गरिमा जान ली है, जिसके कारण देवता भी नरदेह धारण करने के लिये आतुर रहते हैं। आप वस्तुतः तत्वज्ञान के अधिकारी हैं तथा इस दिशा में आपका सहयोग करके हम भी कृतकृत्य होंगे।"

देवराज ने राजा अरिष्टनेमि को महर्षि वाल्मीकि के पास भेज दिया। उनके मार्ग-दर्शन एवं अनुभव से राजा को शीघ्र ही अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति हो गई। प्रलोभनों को चीरते हुये राजा अरिष्टनेमि संसार की विकृतियों से मुक्त रहकर मानव देह की सार्थकता का महत्त्व जान सके।

छुरे की धार पर नचिकेता चलेगा

आर्य श्रेष्ठ ! आचार्य मही ने यम से विनीत निवेदन किया—"नचिकेता कुमार ही तो है, उसके साथ इतनी कठोरता मुझ से देखी नहीं जाती। दस माह बीत गये, नचिकेता ने गौ-दधि और जौ की सूखी रोटियों के अतिरिक्त कुछ खाया नहीं, अन्य स्नातक और स्वयं मेरे बच्चे भी रसयुक्त, स्वादयुक्त भोजन करते हैं फिर नचिकेता के साथ ही यह कठोरता क्यों ?"

यमाचार्य ने हँसकर कहा—"देवी ! तुम नहीं जानतीं आत्मा को, ब्रह्म को प्राप्त करने का उपाय ही यही है। साधना को 'समर' कहते हैं। युद्ध में तो अपना प्राण भी संकट में पड़ सकता है कोई आवश्यक नहीं कि विजय ही उपलब्ध हो। अभी तो नचिकेता का अन्न संस्कार ही कराया गया है। ब्रह्म विराट् है, अत्यन्त पवित्र है, अग्नि रूप है। शरीर समर्थ न होगा तो नचिकेता उसे धारण कैसे करेगा ? छोटी-सी लकड़ी दस मन बोझ नहीं उठा सकती टूट जाती है, पर तपायी, दबायी और पिटी हुई उतनी बड़ी लोहे की छड़ पचास मन भार उठा लेती है। नचिकेता का यह अन्न-संस्कार उसके अन्नमय कोश के दूषित मलखरण, रोग और विजातीय द्रव्य निकालकर उसे आत्मा के साक्षात्कार योग्य शुद्ध और उपयुक्त बना देगा। छुरे की धार पर चलने के समान कठिन है पर नचिकेता साहसी और प्रबल आत्मजिज्ञासु है। ऐसा व्यक्ति ही यह साधना कर सकता है।"

गुरुमाता के विरोध की अपेक्षा भी नचिकेता का अन्न संस्कार यमाचार्य ने एक वर्ष चलाया और उसके बाद उन्होंने नचिकेता को प्राणायाम के अभ्यास प्रारम्भ कराये। प्राणाकर्षण, लोम-विलोम, सूर्य-वेधन, उज्जायी और नाड़ी-शोधन आदि प्राणायाम का अभ्यास कराते हुये कुछ दिन बीते। उसके प्रभाव से नचिकेता के मुख-मण्डल पर कान्ति तो बढ़ी, पर उसका आहार निरन्तर घटता ही चला गया। गुरुमाता यह देखकर पुनः दुःखी हुई और बोली "स्वामी ऐसा न करो—नचिकेता किसी और का पुत्र है, कठोरता अपने बच्चों के साथ बरती जा सकती है औरों के साथ नहीं।"

यमाचार्य फिर हँसे और बोले—"भद्रे ! शिष्य अपने पुत्र से बढ़कर होता है, नचिकेता के हृदय में तीव्र आत्म जिज्ञासाएँ हैं, वह वीर और साहसी बालक आत्म-कल्याण की, साधनाओं की हर कठिनाई झेलने में समर्थ है इसीलिये हम उसे पंचाग्नि विद्या सिखा रहे हैं। आर्यावर्त की पीढ़ियाँ कायर और कमजोर न हो जायें और यह आत्मविद्या लुप्त न हो जाये, इस दृष्टि से नचिकेता को यह साधना कराना श्रेयस्कर ही है। माना कि उसका आहार कम हो गया है, पर प्राण स्वयं ही आहार है। आत्मा-अग्नि रूप है, प्राण और प्रकाशवान् हैं, वह प्राणायाम से पुष्ट होती है, इसी से उसे हर पौष्टिक आहार मिलते हैं ! मनोमय कोश के नियन्त्रण के लिये "प्राणायाम" कोश का यह परिष्कार आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है।"

एक वर्ष प्राण-साधना में बीता। नचिकेता को अब यमाचार्य ने मन के हर संकल्प को पूरा करने का अभ्यास कराया। नचिकेता सोता तब उसके अचेतन मन की पूर्व जन्मों की स्मृति स्वप्न-पटल पर उमड़ती, उसमें कई ऐसे पापों की क्रियाएँ भी होतीं, जिन्हें प्रकट करने में आत्म-ग्लानि होती है, नचिकेता को वह सारी बातें बतानी पड़तीं, गुरुमाता ने उससे भी नचिकेता को बचाने का प्रयत्न किया पर यमाचार्य ने कहा—"आत्म-ग्लानि और कुछ नहीं पूर्व जन्मों के पापों के संस्कार मात्र हैं, जब तक मन नितान्त शुद्ध नहीं हो जाता तब तक आत्म-वेधन का मनोबल कहाँ से आयेगा ? मन की गाँठें खोलने का इससे अतिरिक्त कोई उपाय भी तो नहीं है कि साधक अपनी इस जन्म की सारी की सारी गुप्त से गुप्त बातों को प्रकट कर अपने कुसंस्कार धोये, स्वप्नों में परिलक्षित होने वालों में पूर्व जन्मों के पापों को भी उसी प्रकार बताये और उनकी शुद्धि का प्रायश्चित्त करे।"

मनोमय कोश की शुद्धि के लिये नचिकेता को कृच्छ चान्द्रायण से लेकर गोमय, गोमूत्र सेवन करने तक की सारी प्रायश्चित्त साधनाएँ करनी पड़ीं। उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही साधना की कठोरता को देखकर गुरुमाता का हृदय करुणा से सिसक उठता पर यमाचार्य जानते थे कि आत्मा की ग्रन्थियाँ तोड़कर उसे प्रकट करने का समर कितना कष्टसाध्य है अतएव वे नचिकेता को तपाने में तनिक भी विचलित न हुये।

तीन वर्ष बीत गये, नचिकेता ने जीवन का कोई भी सुख नहीं जाना। शरीर को उसने शुद्ध कर लिया पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शरीर क्षीण हो गया, प्राणों पर नियन्त्रण की विद्या उसने सीख ली, पर उससे मन क्षीण हो गया, मनोमय कोश को उसने जीत लिया पर उससे यश-क्षीण होता जान पड़ा। संकल्प-विकल्प मुक्त, नचिकेता अब इस स्थिति में था कि अपने मन को ब्रह्म रन्ध्र में प्रवेश कराकर सूक्ष्म जगत् के विज्ञानमय रहस्यों की खोज करे और आत्मा तक पहुँचकर उसे क्षुभित करे, जगाये और प्राप्त करे। मन को दबाकर क्रमशः आज्ञाचक्र, विशुद्धचक्र, मणिपूरचक्र, स्वाधिष्ठानचक्र, अनाहतचक्र का भेदन करते हुये उसने मूलाधारचक्र तक प्रवेश किया। वहाँ बैठी हुई विद्या रूपिणी महाकाली की हल्की झाँकी होती तो उस विराट् रूप को देखकर नचिकेता का मन काँप जाता, पर दूसरे ही क्षण एक पुकार अन्तःकरण से आती, मन और यह भौतिक सुख नचिकेता ! यदि मिल भी गये तो इन्द्रियाँ उनका रसास्वादन कितने दिन तक कर सकती हैं ? तू तो उस अक्षर, अनादि आत्मा का वरण कर। पूर्णमासी का दिन, वसन्त ऋतु—चार वर्ष से निरन्तर उग्र तप कर रहे नचिकेता का शरीर बिल्कुल क्षीण पड़ गया था। आज का दिन उसके जीवन में विशेष महत्त्व रखता है। मूलाधार स्थित कुण्डलिनी को जाग्रत करने की तिथि आज ही है। एक प्राण को दूसरे प्राण में समेटता हुआ नचिकेता मूलाधार तक जा पहुँचा, उसने अपने संकल्प की चोट की उस आद्य शक्ति पर, चिर निद्रा में विलीन कुण्डलिनी पर उसका कुछ असर न हुआ। इस पर नचिकेता ने तीव्र से तीव्र प्रहार किये। चोट खाई हुई काल-रूपिणी महासर्पिणी फुंकार मारकर उठी और उसने नचिकेता के मन को, स्थूल भाव को चबा डाला, जला डाला। नचिकेता आज मन न रहकर आत्मा हो गया, उसकी लौकिक-भौतिक वासनायें पूरी तरह जल गईं। वह ऋषि हो गया, यह संवाद सारे संसार में छा गया। नचिकेता के यश की विमल पताका सारे संसार में लहराने लगी।

अब वह ब्रह्म प्राप्ति के समीप था, ब्रह्म से वह किसी भी क्षण मिल सकता था तथापि अपने देश, अपने धर्म, अपनी महान् संस्कृति के उत्थान का संकल्प लेकर नचिकेता वहाँ से चल पड़ा और नव-निर्माण के महान् कार्य में जुट गया। उसने इस पंचाग्नि विद्या का सारे संसार में प्रसार कर अमर साधक का श्रेय प्राप्त किया।

अमर होने का उपाय

महर्षि याज्ञवल्क्य की दोनों पत्नियों में से एक का नाम मैत्रेयी और दूसरी का नाम कात्यायनी था। कात्यायनी तो बेचारी सीधी-सादी सांसारिक, मेरा पति, मेरे बच्चे, मेरी धन-सम्पत्ति के विचारों की थी। उन्हीं में अपने जीवन का सारा सुख समझती थी, किन्तु मैत्रेयी बुद्धिमान और याज्ञवल्क्य की संगति का वास्तविक लाभ प्राप्त किये हुये थी। उसने पति के सहवास में सुख प्राप्त किया था और अपने अनुभव से यह जान लिया था कि संसार में वास्तविक सुख नहीं है। उसे यह विश्वास हो चुका था कि नश्वर सम्पत्ति से नश्वर सुख ही प्राप्त होगा, इसलिये वह उनसे इस सांसारिक सम्पत्ति का हिसाब न लेकर उनके जीवन की साधना के सार में से कुछ लेना चाहती थी। इसीलिये वह पति की बात सुनकर सोचने लगी कि विषय बदलकर किस प्रकार पति से अपनी मनोवांछित वस्तु प्राप्त करूँ। उसने पति से पूछा—"देव ! क्या यह सम्पत्ति जो आप मुझे देने को कह रहे हैं, पूर्ण शान्ति एवं सुख प्रदान कर सकेगी ? क्या आपकी अनुपस्थिति में इस धन द्वारा हमको कोई कष्ट या विषाद न होगा ? क्या इन्द्रिय सम्बन्धी कोई भी कष्ट हम न पायेंगी ?"

महर्षि याज्ञवल्क्य ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया। "मैत्रेयी ! यह धन-सम्पत्ति तो केवल सांसारिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन जुटाने का माध्यम है। इसमें तो इतनी भी वास्तविकता नहीं है कि यह विश्वास कर लिया जाय कि अमुक आवश्यकता, इस धन या सम्पत्ति से पूर्ण हो ही जायेगी।"

सुख-दुःख तो अपने पूर्व शुभाशुभ संस्कारों का फल होते हैं। संसार में कर्म प्रधान है। भगवान कृष्ण ने भी गीता में कर्म का ही उपदेश दिया है। कई बार तो ऐसा देखा गया है कि करोड़ों की धन सम्पत्ति होते हुये भी लोग अन्न के अभाव में दाने-दाने को तरसकर, तड़प-तड़प कर, कर्मों का फल भोगते हुये इस संसार को छोड़कर चले गये। बड़े-बड़े राजे-महाराजे, महलों, मोटरों के मालिक, लक्ष्मीपति घर में सब कुछ साधन और खाने के व्यंजन होते हुये भी रोगों से ग्रसित होने के कारण एक तिनका भी न खा सके और यह धन उनके किसी काम न आ सका, इसी के लिये बिलख-बिलख कर मर गये।"

मैत्रेयी—"स्वामिन् ! जब यह धन-सम्पत्ति ऐसी निस्सार वस्तु है और इसके द्वारा प्राप्त सुख-साधन भी वैसे क्षणिक व नश्वर हैं तो ऐसी वस्तु आप हमें क्यों देना चाहते हैं ? क्या आप हमें वह सच्ची सम्पत्ति नहीं देना चाहते कि जिसको आपने अभी तक अपने पास बड़ी कृपणता से जोड़-जोड़ कर रखा है और अकेले हीं जाकर उसका उपभोग करना चाहते हैं ? हे प्राणनाथ ! अब तक आपने मुझे अर्धांगिनी के रूप में अपने प्रायः सभी कर्त्तव्य और अधिकारों में साथ रखा है। सभी कार्यों में सहयोग देने का अवसर दिया है फिर अन्तिम समय अपनी वास्तविक सम्पत्ति अपने पास ही छिपाकर हमें भूखे कुत्ते को हड्डी के टुकड़े की भाँति यह धन-सम्पत्ति देकर बचने का प्रयत्न क्यों कर रहे हैं ? मुझे भी अपने साथ लेकर कल्याण के मार्ग में लगाइये और अपने संचित अनुभव के द्वारा ज्ञान का उपदेश दीजिए।"

याज्ञवल्क्य—"देवि ! मैं तुम से अत्यन्त प्रसन्न हूँ। हम तुमको पाकर हमेशा धन्य हुये हैं। वास्तव में हमारा परम धन तो यह आत्मा ही है। उसकी प्रियता में ही यह सब धन-सन्तान प्रिय प्रतीत होते हैं। उनकी समता कहीं नहीं है। अतः यह आत्मा ही सुनने-समझने और मनन करने योग्य है। इस चराचर विश्व में जो कुछ भी तुम्हें दिखाई देता है। वह सब आत्मा ही है। इससे परे कोई वस्तु नहीं है। ये वेद, पुराण, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, मन्त्रादि जो कुछ भी विद्याएँ हैं, वे सब उस परमतत्व की ही निश्वास हैं।"

मैत्रेयी जिस सम्पत्ति की इच्छुक थी, उसे वह प्राप्त होने लगी थी, अतः वह वैसी गंभीरतापूर्वक उसे हृदयंगम करके कोष में कृपण के सोने की भाँति संचित कर रही थी। महर्षि उपदेश देते चले जा रहे थे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जहाँ अज्ञान होता है वहीं आत्मा और परमात्मा का भाव पृथक् रहता है, इन्द्रियों के भोगों का भ्रम रहता है, किन्तु जब आत्मभाव प्रकट हो जाता है तो इन्द्रिय सुख भोग एवं शोक, मोह तथा मृत्यु भाव समाप्त हो जाते हैं। उसे सर्वत्र एक आत्मा या परमात्मा ही अनुभव होने लगता है। प्राणिमात्र में वह परमात्मा के दर्शन करता है। इन भावों में रत रहने वाला मनुष्य अमरता की ओर कदम बढ़ाता है।

मैत्रेयी को आत्मज्ञान का उपदेश देकर, अपनी अलौकिक सम्पत्ति का हिस्सा उसे देकर याज्ञवल्क्य ने संन्यास ले लिया। मैत्रेयी भी उनके साथ ही रही और उसने भी अपने दृष्टिकोण को पति के साथ, व्यक्ति से समष्टि के लिये बदल दिया। अब उसके लिये सारा विश्व ही एक जीवन था और उसमें रहने वाले प्राणी उसके परिजन। अब सब में उसे अपना ही रूप दिखाई देता था।

वह तू है

"अध्ययन और मनन किये बिना, कोई 'मनुष्य' नहीं बन सकता। पशुता से मानवता की ओर जाने का मार्ग विद्या और ज्ञान द्वारा ही प्राप्त होता है। फिर मेरा पुत्र अशिक्षित रहकर हीन जीवन क्यों व्यतीत करे ?" ऋषि आरुणि के हृदय में यह विचार हल-चल मचा रहे थे, वे अपने खिलाड़ी लड़के, श्वेतकेतु को विद्या पढ़ने के लिये कई बार कह चुके थे पर उसके ऊपर कोई कहने लायक असर न हुआ था। पिता की आँख बची कि श्वेतकेतु पोथी पटककर गायब।

लड़का बड़ा हो चुका था। यह न पढ़ेगा तो एक ऋषि के लिये कितनी लज्जा की बात है ? आरुणि का मन दुःख से भरा हुआ था। उन्होंने आज श्वेतकेतु को फिर प्रेमपूर्वक निकट बुलाया और बड़े मार्मिक शब्दों में उसे कल्याण के मार्ग पर चलने को समझाया। उसके बार-बार उद्दण्डता करने और अध्ययन में मन न लगाने से ऋषि को जो वेदना हो रही थी, वह उनकी आँखों में होकर छलक पड़ी।

डाँट-डपट से जो कार्य अब तक न हो सका था वह एक आत्मा ने दूसरी आत्मा को आलिंगन करके क्षण मात्र में पूरा कर दिया। उद्दण्ड लड़के को पिघल जाना पड़ा। उसने पुस्तक उठाई और पिता की चरण-रज मस्तक पर रखकर गुरुकुल की ओर चला गया।

अध्ययन का चस्का और किसी आनन्द से कम नहीं होता, बशर्ते कि किसी योग्य शिक्षक द्वारा शिक्षा दी जाय। श्वेतकेतु एक, दो, पाँच, दस वर्ष नहीं वरन् पूरे चौबीस साल तक लगातार पढ़ता रहा। गुरु ने उसे आज्ञा दी—इतनी विद्या काफी है, जीवन के दूसरे क्षेत्रों में तुम्हें अभी बहुत काम करना है, जाओ घर लौट जाओ। श्वेतकेतु गुरु की आज्ञानुसार घर लौट आया।

धनबल, भुजबल, जनबल की ही भाँति विद्या भी एक बल है। बल प्राप्त करके आदमी अभिमानी बन जाता है और अभिमानी दूसरों को तृण समान गिनता हुआ तिरछा-तिरछा चलता है। श्वेतकेतु विद्या के घमण्ड में मदमस्त हाथी की तरह घर पहुँचा। पिता बैठे हुये थे। उसने उन्हें प्रणाम करना उचित न समझा और उद्धत आचरण से उनके समीप जा बैठा। घमण्ड उसकी नस-नस में फूटा पड़ रहा था।

महर्षि आरुणि बड़े अनुभवी तपस्वी थे। उन्होंने मनुष्य स्वभाव, उसकी त्रुटियाँ एवं उन त्रुटियों के जन्म स्थान के जानने में बहुत काल लगाया था। लड़के के इस आचरण पर उन्हें क्रोध नहीं आया क्योंकि वास्तविक स्थिति को उन्होंने जान लिया था। पुत्र के आगमन पर प्रसन्नता प्रकट करते हुये उससे कुशल समाचार पूछे। तदुपरान्त प्रश्न किया—"पुत्र ! मालूम होता है तू बहुत अधिक पढ़ गया है क्योंकि विद्या का फल विनय है। तू कदाचित् विद्या से भी अधिक जान गया है। अच्छा उस वस्तु को बता जिस एक के ही जान जाने से सब वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है।"

इस प्रश्न को सुनकर पण्डित श्वेतकेतु का अभिमान चूर हो गया। इतने दिन पढ़ने पर भी वह ऐसी किसी वस्तु को नहीं जान सका था, जिस एक की सीमा के अन्तर्गत ही सब कुछ आ जाता हो। वह पिता के चरणों पर गिर पड़ा—"भगवन् ! उस वस्तु को मैं नहीं जानता—आप ही बताइये।"

आरुणि ने कहा—"वत्स ! जैसे मिट्टी का गुण-धर्म मालूम हो जाने पर घड़े, सकोरे आदि के बनने की बात और धातु का स्वभाव विदित होने पर हथियार, आभूषण आदि बनाने का रहस्य मालूम हो जाता है, उसी प्रकार एक 'सत्' को जान लेने पर विश्व की सम्पूर्ण वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है।"

श्वेतकेतु अब और उलझन में पड़ गया उसने पूछा, 'पिताजी वह 'सत्' कहाँ है ? कैसा है ? मुझे तो दिखाई नहीं पड़ता।"

आरुणि ने उसके हाथ में नमक की डेली देते हुये कहा—"पुत्र ! इसे जल से भरे हुये लोटे में डाल दो और कल प्रातःकाल लोटे को लेकर मेरे पास आना।" श्वेतकेतु ने वैसा ही किया।

दूसरे दिन सबेरे वह जल का भरा हुआ लोटा लेकर पिताजी के पास पहुँचा। तब उन्होंने कहा—"कल जो नमक की डेली इसमें डाली थी वह तुझे दिखाई देती है ?" उसने बहुत ध्यान से देखा पर नहीं दिखाई दी। तब ऋषि ने कहा अच्छा हाथ डालकर उसे टटोल शायद मिल जाय। उसने हाथ डालकर खूब टटोला, पर वह नमक की डेली हाथ न आई। फिर आरुणि ने कहा—"अच्छा इसमें से इस तरफ से थोड़ा जल चख और इसका स्वाद बता ?" श्वेतकेतु ने चखकर बताया कि 'खारा' है। उन्होंने कहा, "अब इधर से, बीच में से, नीचे से, चारों ओर से चख।" उसने थोड़ा-थोड़ा सब ओर से चखा और कहा, 'पिताजी यह तो सब ओर खारा है। मैंने जो नमक की डेली इसमें डाली थी वह पानी में घुल गई और अब वह इसमें सर्वत्र व्याप्त हो गई। मैं उसे आँख या हाथ से नहीं देख सकता तथापि चखकर अनुभव करता हूँ कि वह है और पानी में सर्वत्र व्याप्त है।"

ऋषि ने कहा—"हे सौम्य ! वह 'सत्' इस नमक की भाँति है जो संसार में सर्वत्र घुला हुआ है। वह आँखों से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दिखाई नहीं देता तथापि अनुभव से जाना जा सकता है। वह सत् है और वही आत्मा है। हे श्वेतकेतु ! (तत्वमसि) वह आत्मा तू ही है।"

अब श्वेतकेतु की आँखें खुल गई थीं। उसने जाना कि विश्व के समस्त ज्ञानों का मूल भण्डार परमात्मा है और वह परमात्मा मेरी आत्मा ही है।

व्यवहार से ही ज्ञान की सिद्धि

धनपति के परिवार में अभी तक किसी ने इतनी शिक्षा प्राप्त नहीं की थी, जितनी कि उसका पुत्र धर्मकीर्ति प्राप्त कर लौट रहा था। महर्षि याज्ञवल्क्य के आश्रम में शिक्षा प्राप्त करके लौट रहे धर्मकीर्ति के स्वागत तथा अभिनन्दन की तैयारियाँ की जा रही थीं। बीस वर्ष तक आश्रम में रहकर धर्मकीर्ति ने व्याकरण, छन्द, शास्त्र, ज्योतिष, धर्मशास्त्र, वेद-वेदान्त और दर्शनशास्त्र का गहन अध्ययन किया था और उस गाँव का कोई युवक पहली ही बार इतना ज्ञानार्जन कर, इतनी योग्यता प्राप्त कर लौट रहा था, सो स्वाभाविक ही गाँव वाले भी धर्मकीर्ति के स्वागत को आतुर थे।

धर्मकीर्ति ने जब गाँव में प्रवेश किया तो सारा गाँव मंगलगान और जय-जयकार से गूँज उठा। इसके बाद कुछ दिन बीते। धनपति ने अपने पुत्र को पैतृक कारोबार सँभलवाना चाहा। इधर कई लोग विवाह प्रस्ताव भी लेकर आ रहे थे, पर धर्मकीर्ति तो इन सब बातों को मायाजाल समझकर, पारिवारिक तथा लौकिक उत्तरदायित्वों को धोखे की पट्टी ही समझ रहा था। पिता द्वारा पारिवारिक उत्तरदायित्वों का हस्तांतरण तथा विवाह सम्बन्ध को लेकर चल रही चर्चाओं के विषय में मालूम हुआ तो उसने कहा—"पिताजी मैं विवाह नहीं करूँगा।"

"क्यों"—धनपति ने पूछा।

"इसलिये कि यह शरीर नाशवान है। संसार और सम्बन्ध भी नाशवान है। मुझे ऐसे सम्बन्ध चाहिये जो जीर्ण और नष्ट न हों और ऐसा व्यवसाय, जिससे मैं मोक्ष प्राप्त कर सकूँ।" धर्मकीर्ति ने कहा।

असमय ही इस वैराग्य धारणा ने धनपति को विचलित कर दिया। उन्होंने बहुत समझाया, पर धर्मकीर्ति नाशवान सम्बन्धों को किसी भी प्रकार स्थापित करने के लिये तैयार नहीं हो रहा था। निदान धनपति, महर्षि याज्ञवल्क्य के पास पहुँचे और अपनी समस्या रखी। महर्षि ने समस्या के मूल कारण को जानते हुये धर्मकीर्ति को वापस अपने आश्रम में बुला लिया और वहीं रहने को कहा।

एक दिन की बात है। महर्षि ने धर्मकीर्ति को फूल चुनने के लिये भेजा। जिस उपवन में धर्मकीर्ति फूल चुन रहा था, संयोग से उसका मालिक उधर आ निकला और धर्मकीर्ति को फूल तोड़ते देखकर एकदम आग-बबूला हो गया। न कुछ पूछा और न ही कुछ कहा। सीधे उसने अपने हाथ की कुल्हाड़ी तानी और धर्मकीर्ति को मारने दौड़ा।

धर्मकीर्ति भागा और आश्रम में पहुँचा तो उपवन का मालिक भी उसके पीछे था। धर्मकीर्ति महर्षि के पास पहुँचा और उनके चरणों में गिरकर जल्दी-जल्दी उसने सारी घटना कह सुनाई। उपवन का स्वामी भी तब तक वहाँ पहुँच गया था और चुपचाप खड़ा था। महर्षि ने सारी बात सुनकर कहा—"वत्स ! यह देह तो नाशवान है। उपवन का स्वामी तुम्हारी इस देह को ही तो नष्ट कर रहा था। तुम्हारी सत्य आत्मा को तो कोई क्षति नहीं पहुँचा रहा था, फिर तुम इतने भयभीत क्यों हो ?"

धर्मकीर्ति कुछ न कह सका। जैसे उसका स्वप्न टूट गया हो और सत्य सामने खड़ा हो—वह महर्षि की ओर अपलक देख रहा था। तब याज्ञवल्क्य ने कहा—"आत्मा सत्य है, किन्तु देह भी सत्य है और देह के धर्म भी सत्य हैं। इसलिये जाओ और दोनों को साधो। जब तक सागर में प्रवेश नहीं करोगे तब तक तैरना कैसे सीखोगे ? सीखे गये ज्ञान को व्यवहार में उतारकर ही तो सिद्ध किया जाता है। जल में रहकर उससे अस्पृश्य रहने वाले कमल की ही तो प्रशंसा है अन्यथा जल से तो बहुत से पुष्प अलग रहते हैं। इसलिये, जाओ देह और आत्मा दोनों के ही कल्याण की साधना करो तभी पाँचों ऋणों से उऋण होंगे।"

शिवजी कहाँ से देते हैं

एक थे ब्राह्मण-देवता। शिव के अनन्य-भक्त, साथ ही निर्धनता की साक्षात् मूर्ति। घर में भी सिवाय उनकी स्त्री के और कोई नहीं था। जाड़ा, गर्मी, वर्षा कुछ भी हो पण्डितजी प्रातःकाल चार बजे उठते, नित्य क्रिया से निवृत्त होकर स्वयं पुष्प चुन लाते और फिर शंकर आराधना में निमग्न हो जाते। बेचारी स्त्री दूसरों का कूटना-पीसना करके, किसी प्रकार से उदर-पोषण का प्रबन्ध कर पाती थी।

श्रावण का महीना था। पण्डितजी एक सहस्र एक बेल पत्रों में राम-नाम लिखकर प्रतिदिन अत्यन्त भक्तिपूर्वक शिवजी पर चढ़ाते थे। शिव-संकीर्तन तथा नाना प्रकार से पूजा-पाठ करते, तब कहीं सायंकाल में जाकर जल ग्रहण करते थे। इसी प्रकार से उन्तीस दिन व्यतीत हो गये।

संयोगवश ठीक तीसवें दिन प्रातःकाल शंकरजी तथा पार्वतीजी उधर से निकले। पण्डितजी शिव-पूजन में तल्लीन थे। पार्वतीजी की दृष्टि उन पर पड़ी तो उन्होंने शंकरजी से कहा—"भगवन् ! यह ब्राह्मण वर्षों से आपका भजन करता है, परन्तु निर्धन ही बना है। देखिये न, श्रावण भर इसने कैसी श्रद्धा एवं भक्ति से आप का पूजन किया है !"

"ठीक कहती हो, देवि ! महीने भर इसने जो इस प्रकार मेरी सेवा की है, उसका पारिश्रमिक इसे आज सायंकाल में दिया जायेगा।" इतना कहकर वे दोनों अन्तर्द्धान हो गये।

संयोग तो देखिये, जिस समय भगवान शंकर तथा पार्वतीजी में यह वार्तालाप हो रहा था, ठीक उसी समय एक 'करोड़-पति' वैश्य लोभीमल उधर से कहीं जा रहा था। उसने शंकरजी का अन्तिम वाक्य सुना तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ और मन ही मन सोचने लगा—"अरे यह तो बड़ा अच्छा सौदा हाथ लगा। शंकरजी उस ब्राह्मण को क्या

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कोई साधारण वस्तु थोड़े ही देंगे, सहस्रों-लाखों का धन उसके हाथ लगेगा। क्यों न इस अवसर से लाभ उठाया जाय तथा यह धन किसी प्रकार से स्वयं ही क्यों न हजम किया जाय ?"

यह सोचकर वह उस ब्राह्मण से उसी दिन जाकर मिला। बोला—"महाराज ! आप अत्यन्त निर्धन हैं। अतः आपने श्रावण भर जो बेल-पत्र शंकरजी पर चढ़ाये हैं उसके बदले में, आप मुझसे सौ रुपये ले लें उसका जो फल मिलेगा, वह मेरा रहा।"

ब्राह्मण ने स्त्री से यह समाचार कहा तो वह बोली "प्राणनाथ ! आप देखते ही हैं कि कैसी कठिनता से हम लोगों के दिन व्यतीत होते हैं। यद्यपि 'पुण्य' बेचना अनुचित है, फिर भी विवशता सब कुछ करा लेती है। सौ रुपये मिल रहे हैं, यही सही। कुछ दिन तो आराम से कट ही जायेंगे।"

पण्डितजी राजी हो गये। उन्होंने सौ रुपये वैश्य से ले लिये और वैश्य खुशी-खुशी अपने घर चला गया।

श्रावण की पूर्णिमा। सन्ध्या का समय। लोभी मल शिवालय में विराजमान हैं। मारे प्रसन्नता के फूले नहीं समा रहे हैं। शंकरजी से असंख्य धन उन्हें जो मिलने वाला था !!! बैठे-बैठे रात्रि के दस बज गये। ग्यारह का समय भी व्यतीत हो गया। अब उन्हें कुछ-कुछ सन्देह होने लगा।

"अरे क्या शंकरजी भी झूठ बोलते हैं।" एक घण्टा और व्यतीत हुआ बारह बजे, फिर एक भी बजा, परन्तु कहीं कुछ भी नहीं। अन्त में क्रोध में आकर उसने दोनों हाथ शिव-मूर्ति पर पटक दिये। बोला—"अरे तू भी अब झूठ बोलने लगा !!" दोनों हाथ उसी मूर्ति से चिपककर रह गये !! ज्यों-ज्यों छुड़ाता त्यों-त्यों और भी मजबूती से चिपकते जाते अन्त में बेचारा हारकर बैठा रहा। हाथ छुड़ाने में उसने बड़ा परिश्रम किया था, इससे उसे तत्काल ही निद्रा आ गई। स्वप्न में देखा कि वही शंकरजी त्रिशूल लिये हुये सामने खड़े हैं। वह भयभीत होकर उनके चरणों पर गिर पड़ा। कहने लगा—"महाराज ! अब किसी प्रकार से मेरे हाथ इसमें से छुड़वाइये।"

"काम तो तूने बड़ा बुरा किया है, परन्तु सबेरे यदि तू पचास हजार रुपया उस मेरे भक्त ब्राह्मण को दे दे, तो तू इस बन्धन से छूट सकता है, अन्यथा इसी प्रकार से तू कुत्ते की मौत मर जायेगा।"

प्रातः काल वही ब्राह्मण-देवता, शंकरजी की पूजा के लिये वहाँ गये तो देखा कि बेचारे लोभीमल बुरी तरह से मूर्ति से चिपके बैठे हैं। पूछा तो लोभीमल ने अपनी सारी कथा उनसे कह सुनाई। बोले—"कृपा करके आप मेरे पुत्र से कहलवा दीजिये कि वह फौरन पचास हजार रुपया लाकर मुझे दे जाय। वह रुपया शंकरजी ने आपको दिलवाया है।"

इस प्रकार से पचास हजार रुपया जब उस शंकर-भक्त को मिल गया तब उस वैश्य के हाथ छूटे। ब्राह्मण ने वह धन कंगालों तथा अपाहिजों में बाँट दिया। उस दिन से उसकी भक्ति शिवजी के प्रति और भी बढ़ गई।

"भगवन् ! आपने अपने उस भक्त को कुछ दिया नहीं ?" पार्वतीजी ने एक दिन शंकरजी से पूछा।

"क्यों ? दिये तो पचास हजार रुपये।"

"वह तो उस वैश्य ने दिये। आपने क्या दिया ?"

"इसी प्रकार से तो मैं देता ही हूँ अन्यथा मेरे पास सिवा भंग, धतूरा तथा नन्दी बैल के और है ही क्या ?"

पार्वतीजी मुसकराईं और चुप हो गईं।

अवश्यमेव भोक्तव्यं कर्मफल शुभाशुभम्

आठों वसु एक बार सपत्नीक पृथ्वी-लोक पर भ्रमण के लिये उतरे। कई तीर्थ और देवताओं के दर्शन करते हुये वे वशिष्ठ के आश्रम में पहुँचे। वशिष्ठ का आश्रम उन दिनों तप, ज्ञान, साधना और ब्रह्मवर्चस् के लिये विश्व विख्यात था। वहाँ अलौकिक शान्ति छाई हुई थी।

वसु और उनकी पत्नियाँ देर तक आश्रम की प्रत्येक वस्तु को देखती रहीं। आश्रम की यज्ञशाला, साधना-भवन और स्नातकों के निवास आदि सभी स्वच्छ, सजे हुये एवं सुव्यवस्थित देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। बड़ी देर तक वसुगण, ऋषियों के तप, ज्ञान, दर्शन और उनकी जीवन व्यवस्था पर चर्चा करते और प्रसन्न होते रहे।

इस बीच वसु प्रभास एवं उनकी धर्म पत्नी आश्रम के उद्यान भाग की ओर निकल आये। वहाँ ऋषि की कामधेनु नन्दिनी हरित तृण चर रही थी। गाय की मांसल देह, भोली आकृति, धवल वर्ण प्रभास-पत्नी को, यों मन भा गये कि वे उसे पाने के लिये व्याकुल हो उठीं।

उन्होंने प्रभास को सम्बोधित करते हुये कहा—"स्वामी ! नन्दिनी की मृदुल दृष्टि ने मुझे विमोहित किया है। मुझे इस गाय में आसक्ति हो गई है, अतएव इसे अपने साथ ले चलिये।"

प्रभास हँसकर बोले—"देवी ! औरों की प्यारी वस्तु को देखकर लोभ और उसे अनाधिकार पाने की चेष्टा करना पाप है, उस पाप के फल से मनुष्य तो मनुष्य, हम देवता भी नहीं बच सकते क्योंकि ब्रह्माजी ने कर्मों के अनुसार ही सृष्टि की रचना की है। हम अच्छे कर्मों से ही देवता हुये हैं, बुराई पर चलने के लिये विवश मत करो, अन्यथा कर्म-भोग का दण्ड हमें भी भुगतना पड़ेगा।"

"हम देवता हैं इसलिये पहले ही अमर हैं। नन्दिनी का दूध तो अमरत्व के लिये है, इसलिये उससे अपना कोई प्रयोजन भी तो सिद्ध नहीं होता ?" प्रभास ने अपनी धर्म-पत्नी को सब प्रकार समझाया।

पर वे न मानीं। उन्होंने कहा—"ऐसा मैं अपने लिये तो कर नहीं रही। मृत्यु-लोक में मेरी एक सहेली है, उसके लिये कर रही हूँ। ऋषि भी आश्रम में हैं नहीं, इसलिये यथाशीघ्र गाय को यहाँ से ले चलिये।"

प्रभास ने फिर समझाया—"देवी ! चोरी और छल से प्राप्त वस्तु को परोपकार में भी लगाने से पुण्य फल नहीं होता। अनीति से प्राप्त वस्तु के द्वारा किये हुये दान और धर्म से शान्ति भी नहीं मिलती। इसलिये तुमको यह जिद छोड़ देनी चाहिये।"

वसु-पत्नी समझाने से भी न समझी। प्रभास को गाय चुरानी ही पड़ी। थोड़ी देर में अन्यत्र गये हुये वशिष्ठ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आश्रम लौटे। गाय को न पाकर उन्होंने सबसे पूछ-ताछ की। किसी ने उसका अता-पता नहीं बताया। ऋषि ने ज्ञान-चक्षुओं से देखा तो उन्हें वसुओं की करतूत मालूम पड़ गई। देवताओं के इन उद्धत-पतन पर शांत ऋषि को भी क्रोध आ गया। उन्होंने शाप दे दिया—"सभी वसु देव शरीर त्यागकर पृथ्वी पर जन्म लें।"

शाप व्यर्थ नहीं हो सकता था। देवगुरु के कहने पर उन्होंने ७ वसुओं को तो तत्काल मुक्ति का वरदान दे दिया, पर अन्तिम वसु प्रभास को चिरकाल तक मनुष्य शरीर में रहकर कष्टों को सहन करना ही पड़ा।

यह आठों वसु क्रमशः महाराज शान्तनु और गंगा के उदर से जन्मे। सात की तो तत्काल मृत्यु हुई पर आठवें प्रभास को पितामह के रूप में जीवित रहना पड़ा। महाभारत युद्ध में उनका शरीर छेदा गया। यह उसी पाप का फल था, जो उन्हें देव शरीर में करना पड़ा था। इसलिये कहते हैं कि गलती देवताओं को भी क्षम्य नहीं। मनुष्य को तो उसका अनिवार्य फल भोगना ही पड़ता है। दुष्कर्म के लिये पश्चात्ताप करना ही पड़ता है। यह न समझा जावे कि एकान्त में किया गया अपराध किसी ने देखा नहीं। नियन्ता की दृष्टि सर्वव्यापी है उससे कोई बच नहीं सकता।

ईश्वर के यहाँ देर है, अन्धेर नहीं

आन्ध्र प्रदेश में दो व्यापारी थे। उन्होंने साझे में व्यापार करना आरम्भ कर दिया। कैलाश था ब्राह्मण का पुत्र और रमेश था वैश्य का पुत्र, वैसे भी इन दोनों में बचपन से ही घनिष्टता थी। विद्यार्थी जीवन में भी रही और वयस्क हो जाने पर, कार्यों में भी बनाये रखने के लिये दोनों व्यापार की ओर अग्रसर हुये।

उन्होंने छोटे-छोटे कार्यों से बड़े कार्य करना प्रारम्भ किया। इनका व्यापार बड़े-बड़े शहरों में चलने लगा जिसमें हजारों का मुनाफा होने लगा। एक बार इतना लाभ हुआ कि ४०-४० हजार रुपये के चैक, कैश कराने को बम्बई जाना था। रमेश ने कैलाश से कहा कि चलो भाई अबकी बार बम्बई चलें वहीं से चैक कैश कराके अन्य आवश्यक वस्तुयें खरीद लायेंगे। कैलाश का पिता तैयार हो गया। उसने दोनों को शुभ मुहुर्त में विदा किया। ८० हजार की धनराशि देखकर रमेश के मुँह में पानी भर आया, उसके हृदय में कुत्सित विचार भर गये, वह मन में सोचने लगा कि अच्छा हो इस ब्राह्मण पुत्र को मारकर पूरी रकम का मालिक बन जाऊँ। इतने बड़े शहर में कोई यह बात कानों-कान नहीं जान सकेगा ? फिर मेरे समान कौन धनी हो सकता है ? यह विचार आते ही, वह उसे मारने के उपाय सोचने लगा।

बम्बई में पहुँचकर रमेश ने दुकान पर जाकर दो पान लगवाये। एक शुद्ध और एक विष मिश्रित। कार किराये की थी ही। रमेश ने स्वयं अच्छा पान खाया तथा कैलाश को विष का पान खिलाया। पान खाते ही उसकी जीभ ऐंठने लगी और बदन शिथिल पड़ने लगा। बेचारा बहुत घबड़ाया पर घबड़ाने से होता क्या है ? रमेश ने ५००) रुपये कार वाले को देकर उसकी लाश समुद्र में फिंकवा दी और ८० हजार रुपये का चैक कैश कराके घर वापस आया। अपने पिता को बातें बता दीं और कल्पित शोक प्रगट किया। ब्राह्मण के यहाँ शोक-समाचार पहुँचाया गया कि आपका पुत्र मेरे पुत्र के साथ समुद्र पर नहाने गया था परन्तु दुर्भाग्यवश वह लहर में बहता चला गया और न मालूम कौन जन्तु उसे खींच ले गया। इससे रमेश के हृदय पर सदमा बैठ गया तथा उसकी हालत खराब हो गई। आपके पास मैं उसका भाग ४००० रु. भी भेज रहा हूँ, जिसके कारण ये लोग बम्बई गये थे तथा साथ में संवेदना सहानुभूति प्रगट की। ब्राह्मण को यह समाचार पाकर अपार शोक हुआ परन्तु वैश्य की ईमानदारी पर बड़ा कृतज्ञ हुआ तथा उसे आशीर्वाद देने लगा।

ब्राह्मण के आशीर्वाद और प्रभु की कृपा से रमेश के घर पुत्र-रत्न का जन्म हुआ। बहुत खुशियाँ मनाई गईं। उसका नाम विजय रखा गया। बड़े लाड़-प्यार से लालन-पालन होने लगा। उसके ऊपर परिवार का प्रत्येक व्यक्ति प्राण न्यौछावर करता था। उसकी प्रत्येक माँग को पूरा किया जाता। खिलाने के लिये नौकर लगे थे। टहलाने को, नहाने-धोने के लिये अलग धाय थी। उसकी ऐसी देख-रेख रखी जाती, जरा से कष्ट पर दौड़-धूप मच जाती। सयाना होने पर वह स्कूल में भर्ती कर दिया गया। उसका विद्यार्थी जीवन भी अच्छी तरह व्यतीत होने लगा। खूब मन लगाकर पढ़ता था। उसे सिनेमा देखने का बड़ा शौक था। भगवत् कृपा से वह पढ़-लिखकर होशियार हो गया। एक बार शाम को जब लगभग १६ वर्ष का हो गया, अचानक सिर में दर्द होने लगा। सुनते ही माँ-बाप का कलेजा मुँह को आने लगा। डाक्टर पर डाक्टर दौड़ने लगे, परन्तु उसका मर्ज बढ़ता ही गया। दवा का कोई प्रभाव उसके सिर दर्द पर न हुआ। बड़े-बड़े डाक्टरों ने इनकार कर दिया। तब हवा बदलने हेतु स्विट्जरलैण्ड ले जाने की सलाह दी। इसकी हालत इतने दिन में ही अत्यन्त गिर गई थी। रमेश विजय को लेकर स्विटजरलैंड गया। परन्तु वहाँ की हवा का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसकी हालत और भी चिन्ताजनक हो गई। उसकी हालत देखकर सबको तरस आने लगा। अन्त में विजय ने कह दिया कि पिताजी आप मुझे अब अपने देश लौटा ले चलिये, मेरी ठीक होने की आशा नहीं है। यदि ठीक होना होगा तो वहीं ठीक हो जाऊँगा वरना ईश्वरेच्छा।

पिता को यह सुनकर बड़ा दुःख हुआ। परन्तु अपने लाड़ले पुत्र का आग्रह टाल भी नहीं सकता था। इससे वह उसको उसी हालत में अपने देश लौटा ले आया। घर पर भी दवा-दारू जारी रही। परन्तु अब उसकी हालत एक दम गिर चुकी थी।

एक दिन शाम को विजय लेटा हुआ था। पिता सिरहाने और पैर की ओर माँ बैठी थी। दीपक का प्रकाश हो रहा था। उसी समय विजय को हँसी आ गई। उसकी हँसी देखकर पिता ने चकित होकर पूछा बेटा ? इस समय तुम्हें हँसी क्यों आई ? विजय बोला, इसलिये कि आपने मुझे पहचाना नहीं। पिता बोला कैसी बातें करते हो बेटा ? तुम्हें तो मैं पहचानता हूँ। तू मेरा बेटा है। विजय ने कहा अच्छी तरह पहचानो और फिर हँस दिया। इस पर पिता को शक हुआ, उसने खूब अच्छी तरह से देखा फिर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अवाक् रह गया कि अरे, यह तो वही चेहरा है जो कैलाश को विष खिलाने पर उसकी लाश का था। वही कान के पास का निशान दिखाई दिया। वह मन में बहुत घबड़ाया। तभी विजय ने कहना शुरू किया, देखो, तुमने मेरे साथ विश्वासघात किया था। मैं वही कैलाश हूँ जिसके ४० हजार रुपये में से ४ हजार रु.मेरे पिता को दिये थे और शेष हजम कर गये। उन्हीं रुपयों को लेने के लिये तुम्हारे यहाँ जन्म लिया था। पालन-पोषण तथा बीमारी आदि में आपने जितना खर्च किया वह सब मेरा कर्ज अदा हो गया केवल ५०० शेष रह गये हैं। वह मेरे मरने पर दाह-संस्कार में लगा देना। अब आपको मुझसे बेटा कहना शोभा नहीं देता। बस अब मैं जाता हूँ।"

इतना कहकर विजय शान्त हो गया अर्थात् चिर नींद में सो गया। रमेश पर उस घटना का काफी प्रभाव पड़ा। उसने पुत्र शोक को धैर्यपूर्वक सहा और क्रिया-कर्म करके, इस संसार से पूर्ण रूप से मोह तोड़ लिया। विरक्तभाव में स्थित हो गया। उसने जगत् की निःसारता को जान लिया। वह अब प्रभु चिन्तन में अपना जीवन व्यतीत करने लगा, उसके हृदय में यह बात भली-भाँति घर कर गई कि "ईश्वर के यहाँ देर है लेकिन अंधेर नहीं है।" मनुष्य जैसा कर्म करता है वैसा ही फल पाता है। ठीक है तुलसीदास जी ने भी मानस में इसका स्पष्टीकरण सुन्दर ढंग से किया है।

"कर्म प्रधान विश्व करि राखा।
जो जस करई सो तस फल चाखा।।"

कर्मफल से बचा नहीं जा सकता

कर्म के लिये मनुष्य स्वतन्त्र है। वह चाहे शुभ करे या अशुभ, इसकी उसे पूरी छूट है। शुभ का फल सदा श्रेष्ठ होता है और अशुभ का निकृष्ट। इस शुभाशुभ के भेद के लिये, भगवान ने मनुष्य में विवेक-बुद्धि का समावेश किया, ताकि जो उदात्त हो, उसे अपनाये और अनुदात्त का परित्याग करे। इतने पर भी न जाने क्यों वह निम्न और निकृष्ट कर्मों में निरत रहकर दैव-दुर्विपाक, दुर्भाग्य एवं दण्ड का भागी बनता है। संवेदनाहीन बनकर वह नरपिशाच जैसा जीवन जीता, अनेकों को कष्ट देता व प्रतिफल भी पाता है।

एलागा बेल्स रोम का सम्राट् था। यों आयु की दृष्टि से वह अभी किशोर था, किन्तु अतिथि-सत्कार का उसका तरीका बड़ा ही वीभत्स और क्रूर था, इतना क्रूर कि कई बार तो नाम की घोषणा के साथ ही अतिथि की हृदय-गति रुक जाती और प्राणांत हो जाता। एक बार उसके मन्त्री बेल्फास ने मन्त्री होने के नाते सलाह देने के अपने अधिकार का प्रयोग करते हुये राजा को राय दी—"इन क्रूर कर्मों में संलग्न रहने की तुलना में यदि आप प्रजाहित के कार्य में तत्पर रहे होते तो आज सर्वत्र आपकी यशगाथा गायी जाती और लोगों के हृदय में आप निवास करते।" इतना कहना था कि दरबार में बेल्फास के नाम की घोषणा कर दी गई, बताया गया कि आज के शाही मेहमान राजमन्त्री होंगे। अपना नाम सुनते ही मन्त्री बेहोश होकर गिर पड़ा, पर इतने से ही उस निर्दय सम्राट् का मन पसीजने वाला न था। मेहमान के स्वागत करन की तैयारी का आदेश दिया गया। भोजन परोसने के बाद उसे मेहमान खाने में लाया गया। सामने तीक्ष्ण कीलों वाली एक लोहे की कुर्सी रखी थी। बैठने के साथ ही एक हृदयविदारक चीत्कार उभरी और फर्श रक्तरंजित हो गया। अब तक मन्त्री बेहोश हो चुका था। उसे यों ही छोड़ दिया गया। बाद में उसी हालत में उसकी मृत्यु हो गई।

यह बात नहीं कि हर अतिथि को स्वादिष्ट व्यंजन ही परोसे जाते। भोजन का स्तर व्यक्ति के स्तर पर निर्भर करता और प्रायः बदलता रहता। कभी खाने में लोहे की छोटी-छोटी कतरन, काँच के टुकड़े सम्मिलित होते, तो कभी थालियों को बिच्छू और साँप के टुकड़ों से सजाया जाता। जो कोई इन्हें खाने से इनकार करता, उसकी सजा दर्दनाक मौत होती, उन्हें जहरीले साँपों के घरों में बन्द कर दिया जाता, जंगली जानवरों के आगे छोड़ा जाता। कई बार उनके हाथ-पैर काट लिये जाते और व्यक्ति को जंजीरों से कसकर जलाशय में कमर तक पानी में खड़ा होने का आदेश मिलता। प्रहरी उसकी निगरानी करते। कई दिनों बाद जब भूख से निर्बल होकर पैर शिथिल हो जाते और शरीर का वजन सहन करने में अक्षम हो जाते, तो देह पानी में लुढ़क पड़ती और दण्डित, छटपटाते हुये सदा के लिये शांत हो जाता।

नृशंस नरेश को जब यह तरीके पुराने पड़ते दीखे, और विशेष मनोरंजक न रह गये तो उसने मृत्युदण्ड का एक दूसरा उपाय निकाला। इसमें एक चिता जलायी जाती। चिता की अग्नि जब अपनी प्रखरता पर होती, तो अपराधी को कुछ लोग उठाकर उसमें जिंदा फेंक देते। अभियुक्त जब बचने के लिये उससे बाहर आने का प्रयत्न करता, तो अग्नि को चारों ओर से घेरे संतरी अपने वल्लम घोंपकर उसे वहीं गिरा देते। इस प्रकार जल्द ही उसकी मृत्यु हो जाती। राजा को इस क्रीड़ा में असीम आनन्द मिलता।

यदा-कदा राजा स्वयं भी मेहमान बनता और दरबारियों के यहाँ भोजन में सम्मिलित होता। इसका अर्थ भी मौत था। देखा जाता कि सम्राट जिस अधिकारी के यहाँ भोजन करता, दूसरे दिन उसके परिवार के किसी सदस्य को, वह भी अपने यहाँ बुलाता, उसकी आरती उतारता, स्वागत-सत्कार करता, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार स्वयं उसका होता था। फिर उसकी आँखें निकाल कर उसे भटकने के लिये छोड़ दिया जाता और यह मुनादी पिटवा दी जाती कि कोई उसे भोजन न दे। अन्त में भूख-प्यास से उसके प्राण निकल जाते।

क्रिया की प्रतिक्रिया और ध्वनि की प्रतिध्वनि प्रसिद्ध है। गेंद को जिस वेग से दीवार पर मारा जाता है, उसी गति से वह वापस लौट आती है। जितने बल से किसी वस्तु पर प्रहार किया जाता है, वह भी हमें उसी शक्ति से उलटे आघात करती है। यह केवल भौतिक नियम नहीं है, वरन् कर्मफल के सूक्ष्म सिद्धान्त पर भी समान रूप से लागू होता है। कई बार तो वह इतना प्रबल होता है कि हाथोंहाथ उसका परिणाम इसी जीवन में प्रत्यक्ष हो जाता है। इतिहास साक्षी है, जिसने भी अति बरती, उसका अन्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी अन्ततः वैसी ही क्रूरता से हुआ। एलागा बेल्स के मामले में यही हुआ। जब उसने अपनी दादी को निमन्त्रित किया, तो उसके अंगरक्षकों ने उसकी बड़ी निर्ममतापूर्वक बोटी-बोटी काटकर वैसी ही दुर्गति की, जैसी कि उसके द्वारा अनेकों की हुई थी। उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर उसी के समक्ष गिद्धों को खिलाये जाते रहे, वह तब तक देखता रहा, जब तक कि बेहोश होकर उसका जीवन समाप्त न हो गया। उसके दुष्कर्मों का फल इसी जीवन में मिल गया।

कर्मयोग का मर्म

महर्षि अंगिरा ने शिष्य गोपमाल का तिलक किया और कहा—"तात् ! मैं जानता हूँ कि तुम्हारे अन्तःकरण में मुक्ति की आकांक्षा अत्यन्त प्रबल है, तो भी तुम जाओ और वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा के अनुसार गृहस्थ-धर्म का अनुशीलन करो।"

"आपकी आज्ञा शिरोधार्य है गुरुदेव ! पर यह संसार तो बन्धन है, वहाँ जाकर मुक्ति जैसे जीवन-लक्ष्य को भूल गया तो ?"

"भूलोगे नहीं तात् ! यदि तुमने कर्म के फल में आसक्ति नहीं रखी, तो गृहस्थ जैसे कठोर उत्तरदायित्व का पालन करते हुये भी तुम उसी लक्ष्य की ओर अपने आप को अग्रसर पाओगे, जिसके लिये तुम गृहस्थ का परित्याग करना चाहते हो।" गोपमाल ने और अधिक प्रतिवाद नहीं किया। वह अपने घर आ गया। श्रावस्ती के एक ग्रामीण की कन्या हेमामालिनी के साथ विवाह कर सुख से जीवन बिताने लगा।

गृहस्थी के कार्य बड़े बेढंगे होते हैं। एक बार धन के अभाव में, गोपमाल को अपनी गायें बेचनी पड़ीं, तब तो पता नहीं चल पाया पर जब वह गायें बिककर चली गयीं और उनका वध भी हो गया तब उसे पता चला कि गायें धोखे से कसाई के हाथ बेच दी गयीं। गोपमाल का अन्तःकरण क्षुब्ध हो उठा। इस अनजान में हुये पाप के प्रति उसका अन्तःकरण तीव्रता से छटपटाने लगा।

अब उसने निश्चय किया कि वह गृहस्थी के उत्तरदायित्वों का परित्याग कर देगा। उसने यह बात किसी से बताई नहीं, तथापि उसके जीवन में आकस्मिक परिवर्तन और तीव्र विरक्ति देखकर, हेमामालिनी ने उसके मन की बात जान ली। उसने निश्चय कर लिया यदि गोपमाल गृहस्थ का परित्याग करते हैं, तो मैं भी उनके साथ ही गृह परित्याग कर दूँगी।

रात्रि का निबिड़ अन्धकार, हाथ को हाथ नहीं सूझता था, गोपमाल चुपचाप उठा और जैसे ही आगे बढ़ने को हुआ देखा कि हेमामालिनी सम्मुख खड़ी है। "मुझे मत रोको देवी !" उसने आहत वाणी में कहा।

"रोकती नहीं आर्य, मैं तो स्वयं भी आपके साथ चलने को प्रस्तुत हूँ। आत्म-कल्याण क्या पुरुष की ही आवश्यकता है नारी की नहीं ?" हेमामालिनी ने पूछा। "हे भन्ते ! किन्तु अन्तेवासी जीवन की कठोरता तुम कैसे सहन कर सकोगी ?" गोपमाल ने प्रतिवाद किया।

आप कर सकते हैं, तो मैं भी कर सकती हूँ, याद है पाणिग्रहण के समय मैंने आपको हर कष्ट में साथ रहने का वचन दिया था, उसका भी तो पालन करना है। गोपमाल कुछ उत्तर दे इससे पूर्व ही एक आकृति सामने आई। गोपमाल ने उन्हें पहचाना। यह तो महर्षि खड़े हैं, उसने उन्हें प्रणाम किया। आशीर्वाद देते हुये अंगिरा ने कहा—"तात् तुम दोनों आत्म-कल्याण के इच्छुक हो, दोनों तितीक्षायें सहन करने के लिये तैयार हो पर, जो सामाजिक जीवन की विपरीत परिस्थितियों से ही नहीं लड़ सकता, वह भला एकान्त जीवन के संघर्ष से क्या मुकाबला करेगा ? तुम्हारे पलायन से भी संसार इस तरह के पाप और अपराध करेगा। फिर क्या यह उचित न होगा कि तुम संसार में ही रहकर लोगों को पाप से बचाने और उन्हें सन्मार्ग पर लगाने का प्रयत्न करो।

लेकिन गुरुवर अनजान में हुई भूलों का उत्तरदायी कौन होगा—देव ! यही समझने में तो निष्काम कर्मयोग का सारा मर्म छिपा है। मनुष्य कर्म करे पर सफलता या विफलता सुख या दुःख मान या अपमान सबमें अपने आपको स्थिर रखकर फल से प्रभावित न हो तो संसार की बुराइयों का उत्तरदायी भी भगवान को माना जा सकता है। मनुष्य को तो अपने आपको उसका प्रतिनिधि मानकर लोकसेवा का ध्यान रखना चाहिये।

गोपमाल को मानो सिद्धि मिल गई। उस दिन से उसने कर्म से विरक्ति का परित्याग कर दिया और लोककल्याण को ही अपना लक्ष्य मानकर जीवनयापन करने लगा।

पूर्व जन्म की स्मृति अवांछनीय

राजा भोज की रानी उन्हें मल-मल कर स्नान करा रही थी। स्नान से तृप्ति ही न होती। राजा और अधिक देर तक स्नान का आनन्द देने का आग्रह करते।

रानी को कुछ स्मरण हो आया और वे ठहाका मार कर हँसने लगीं। राजा को इस अकारण अट्टहास पर आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा—"किस कारण ऐसी हँसी आई ?" रानी चुप थीं। लेकिन रहस्य न बताने से कोई संकट खड़ा होने की आशंका से रानी ने चतुरता बरती उन्होंने कहा—"मेरी छोटी बहिन जो समीप की नगरी की रानी है, उनसे आप पूछ लें। मैं तो बता नहीं सकूँगी।"

राजा का आश्चर्य तथा असमंजस और भी बढ़ा, वे रहस्य जानने के लिये आतुर हो उठे। प्रभात होते ही घोड़ा कसा और उस नगरी की ओर चल पड़े। आगमन का समाचार सुनकर सभी को बड़ी प्रसन्नता हुई। रानी ने व्यक्तिगत आतिथ्य के लिये उन्हें राजमहल में बुलाया।

कुशल समाचार के प्रश्नोत्तर पूरे भी न हो पाये थे कि रानी ने एकान्त देखकर उस प्रसंग की चर्चा आरम्भ कर दी, जिसके लिये उनका यहाँ आगमन हुआ। बिना पूछताछ की प्रतीक्षा किये रानी ने अपनी ओर से ही बात आरम्भ कर दी। उन्होंने कहा—"आप अच्छे समय पर आये। आज बड़ी अद्भुत घटना घटने वाली है। अगले प्रभात, मैं पुत्र प्रसव करूँगी। नगर भर में प्रसन्नता सूचक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आयोजन चलेगा। रात्रि होते-होते मैं बीमार पड़ूँगी और दूसरे दिन प्राण त्याग दूँगी।"

राजा के विषय का निवारण करते हुये रानी ने कहा—"आप मेरी बहिन के हँसने का कारण पूछने आये हैं न। सो मैं अभी तो न बता सकूँगी। इसके लिये कुछ प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। मरने के दसवें दिन मेरा जन्म विदर्भ राजा की राजकुमारी के रूप में होगा, मेरा नवजात पुत्र, पाल-पोष लिया जायेगा। बीस वर्ष की आयु होने पर मेरा विवाह इसी नवजात पुत्र के साथ होगा, जिसका कल जन्म होना है। आप उस विवाह में अवश्य आना। जब मैं वधू बनकर आऊँगी, तब उसी स्थान पर उस रहस्य को प्रकट करूँगी, जिसे आप अभी जानने आये हैं।"

दूसरा दिन आया। घटनाक्रम ठीक उसी प्रकार घटा। पुत्र जन्मा। रानी बीमार पड़ी। उपचार हुआ और कुछ ही समय में मृत्यु हो गई। कथन अक्षरशः सही निकला। भारी मन से वे वापस लौट आये और स्नान के समय हँसने का रहस्य जानने के लिये मृत रानी के दिये वचन के अनुसार प्रतीक्षा करने लगे। धारा नगरी में ठीक समय पर जन्म लेने और नवजात पुत्र के जीवित रहने की जानकारी उन्हें मिलती रही।

बीस वर्ष बीते। पूर्व कथन के अनुरूप विवाह निश्चित हुआ। भोज उसमें उत्सुकतापूर्वक सम्मिलित हुये। नववधू ने सुसराल पहुँचते ही अनुरोध किया, उसे राजा भोज से कुछ एकान्त कथन का अवसर दिया जाय। बात न तो अनुचित थी न आशंका की दृष्टि से देखे जाने योग्य। सो स्वीकृति मिल गई।

नववधू ने भोज से कहा—"मेरी बहिन—आपकी पत्नी पूर्व जन्म में आपकी माता थी। बचपन में स्नान कराते समय आप उसे बहुत परेशान करते थे और कठिनाई से ही नहलाया जाता था। कहाँ यह पुरानी आदत और कहाँ नया परिवर्तन जिसके अनुसार घण्टों स्नान करने पर भी मन नहीं भरता। मेरी बहिन को पूर्व जन्म की वह बात याद आ गई और आपकी आदतों में भारी अन्तर देखकर हँसने लगी। बस इतनी भर बात थी, जिसे तब बताया न जा सका और आप असमय उसे जानने का हठ करने लगे। समय पर ही उसे बताया जा सकता था। असमय बताने में हानि की आशंका जो थी।"

नववधू ने उत्तर दिया। पूर्व जन्मों के रहस्य इसीलिये छिपाकर रखे जाते हैं कि पुरानी स्मृतियाँ नये व्यवहार में समस्याएँ उत्पन्न कर सकती हैं। बहिन ने बात उसी समय बता दी होती तो आपका दाम्पत्य-जीवन माता पुत्र के सम्बन्धों को याद करने पर गड़बड़ा जाता। मैं भी तो वर्तमान पति को यह नहीं बताऊँगी कि वे पिछले जन्म में मेरे पुत्र थे। पूर्व जन्मों का सम्बन्ध तथा सम्बन्धियों की जानकारी मिलने पर लाभ कुछ नहीं हानि बहुत है। सम्बन्ध गड़बड़ाते जो हैं।

भोगलिप्सा की दुःखदायी परिणति

महाभारत में राजा ययाति की कथा का वर्णन है। जीवन के सौ वर्ष कितनी शीघ्रता से पूरे हुये, इसका उन्हें अनुभव नहीं हुआ। वासना के आतप में जलकर शरीर एवं मन की समस्त शक्तियाँ क्षीण हो चुकी थीं। सौ बेटे थे तथा अनेकों पत्नियाँ, पर इस आयु में भी मन की वासना ज्यों की त्यों थी। घोर अतृप्ति-असन्तुष्टि की अनुभूति वे कर रहे थे। न तो राज-पाट में मन लगता था और न ही धर्म-कर्म में। मन की गुलामी ने उन्हें इतनी बुरी तरह जकड़ा हुआ था कि कभी यह सोचने का भी अवसर न मिला कि जीवन का प्रयोजन क्या है ? आत्मगरिमा के बोध से वंचित रहने से चन्दन वृक्ष जैसे अमूल्य तथा सुवास बिखेरने वाले जीवन को कोयला बनाकर— वासना की अग्नि में जलाकर नष्ट कर रहे थे।

होश तब आया जब मृत्यु ने दरवाजे पर दस्तक दी। महाकाल ने आदेश दिया "ययाति ! तुम्हारी आयु पूरी हुई। कर्मों की गठरी बाँधो और यमलोक चलने की तैयारी करो ?"

"पर इतनी जल्दी कैसे प्रभो ! अभी तो मेरी सभी इच्छाएँ अधूरी हैं। कुछ भी तो नहीं भोगा है।" ययाति गिड़गिड़ाये। भीतर की वासना याचना के रूप में मुखर हुई—"देव ! मुझे जीवनदान देने की कृपा करें।"

"ऐसा संभव नहीं है। हर व्यक्ति को निश्चित आयु भोगने के बाद यहाँ से विदा होना पड़ता है। यह तो सृष्टि का शाश्वत नियम है।" यम देवता बोले।

"आप समर्थ हैं—महाकाल हैं, कुछ उपाय करें।" ययाति के दीनता भरे स्वर पुनः गूँजे।

यम देवता ने परीक्षा लेने हेतु एक प्रस्ताव रखा "हे राजन् ! तुम्हारे सौ बेटे हैं। उनमें से कोई यदि अपनी आयु—अपना यौवन देने को सहमत हो जाता है तो तुम्हारी मन्शा पूरी हो सकती है तथा मैं वापस लौट सकता हूँ।"

कामग्रस्त ययाति विवेकशून्य हो चुके थे। सभी पुत्रों को सामने बुलाया, निर्ल्लज होकर यौवन की भीख माँगी। वृद्धावस्था में भी राजा की मनःस्थिति को देखकर पुत्रों को भारी आश्चर्य हुआ, आक्रोश भी आया।

अन्य सभी ने तो इनकार कर दिया पर सबसे छोटा अधिक विचारशील था, उतना ही पितृभक्त भी। उसे पिता की स्थिति पर ग्लानि हुई—दया भी आयी। अपनी आयु वह राजा को देने के लिये तैयार हो गया।

मृत्यु देवता को उस छोटे किशोर के अद्भुत त्याग पर भारी अचरज हुआ। असमय अपना सर्वस्व सौंपकर मृत्यु को गले लगाने का उन्होंने कारण पूछा।

किशोर ने कहा—"यह तो मेरे लिये सौभाग्य की बात है। सांसारिक भोगों की आसक्ति अत्यन्त बुरी होती है, इसका परिचय मुझे पिताश्री की स्थिति देखकर हो चुका है। जब सौ वर्षों तक विषयों के भोग से भी राजा को तृप्ति न हो सकी तो मैं क्यों व्यर्थ में अपना जीवन गँवाऊँ।" कालदेव ने उस बालक के वैराग्य से प्रसन्न होकर जीवन-मुक्ति का आशीर्वाद दिया।

उधर सौ वर्षों के बाद फिर मृत्यु देवता प्रस्तुत हुये। ययाति के सैकड़ों लड़के और पैदा हो चुके थे। ययाति पुनः जीवन दान के लिये पहले की भाँति गिड़गिड़ाये। पैदा हुये बच्चों में से एक ने पुनः अपने त्याग का प्रमाण देकर ययाति को अपनी आयु भोग हेतु दे दी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

पौराणिक कथा के अनुसार इस तरह दस बार ययाति को अपने पुत्रों से जीवन दान मिला तथा वे हजार वर्ष तक जीवित रहे, विलास में निरत रहे। अन्तिम बार मृत्यु देवता प्रस्तुत हुये तो ययाति ने पश्चाताप व्यक्त करते हुये कहा—"देव ! मेरा जीवन व्यर्थ चला गया। पापों की गठरी सिर पर लिये मैं यह अनुभव करते हुये जा रहा हूँ कि भोगों से वासनाओं की तृप्ति कभी नहीं हो सकती।" उन्हें अन्ततः नरक के आतप में विक्षुब्ध हो अपनी नियत अवधि पूरी करनी ही पड़ी।

जो अकेला खाता है, वह पाप खाता है

पिता के क्रोध से नचिकेता यमराज के घर का अतिथि हुआ। मृत्यु के पश्चात् उसके माता-पिता ने भी पुत्र वियोग में प्राण त्याग दिये। स्वमिभक्त नौकर पौन्द्र भी मर गया।

जब नचिकेता यम के यहाँ पहुँचा, तो वे उपस्थित न थे। यमदूतों ने उसे यमपुरी में भूखा-प्यासा छोड़ दिया। तीन दिन तक बेचारा बालक भूखा-प्यासा फिरता रहा। चौथे दिन यमराज ने बालक नचिकेता को बुलाया। "तुम तीन दिन से भूखे-प्यासे पड़े हुये हो बालक ?" "हाँ, महाराज !" "अच्छी बात है"—यमराज कुछ गम्भीर हो गये, बोले—"तुम तीन दिन हमारे यहाँ बिना खाये-पिये पड़े रहे, अतः मैं तुम्हें तीन वर दूँगा। माँगो क्या माँगते हो ?"

नचिकेता डर गया। बोला—"क्या जो मैं माँगूँगा, वही दे दीजियेगा ?"

"हाँ, नचिकेता ! डरते क्यों हो ? तुम जो चाहो माँगो।"

"तो मैं पहला वर यह माँगता हूँ मेरे माँ-बाप जीवित हो जायें। दूसरा वर यह चाहता हूँ कि मेरा नौकर भी जीवित हो जाय, तीसरी मेरी प्रार्थना यह है कि मेरे नगर निवासियों को अन्न की कमी न हो, जिससे वे भूखे लोगों की सेवा कर सकें।"

यमराज ने बहुत प्रसन्न होकर कहा—"अच्छा, ऐसा ही होगा, किन्तु बालक ! तुमने अभी तक जो कुछ माँगा है दूसरों के लिये ही माँगा है। अब कुछ अपने लिये भी माँग लो। मैं तुम्हें एक वर और देता हूँ।"

नचिकेता ने देर तक सोचकर कहा—"राजन् ! यदि आपको मुझ पर इतनी दया है, तो मुझे यह बतला दीजिये कि मौत से छुटकारा किस प्रकार मिले ?"

यमराज बालक का प्रश्न सुनकर चौंक पड़े। बोले—"यदि चाहो तो मैं तुम्हें अमर कर सकता हूँ, जिससे राजा होकर तुम खूब सुख भोग सकते हो।"

नचिकेता दुःखित होकर बोला—"हे यमराज ! मेरे अकेले अमर होने से क्या होगा, जबकि अन्य व्यक्ति मौत के शिकार होते रहेंगे। यदि आप मुझ पर दया दिखाना चाहते हैं, तो वही ज्ञान दीजिये जिससे मौत से छुटकारा मिल सकता है ?"

यमराज ने इस बार क्रुद्ध होकर कहा—"देखो ! नचिकेता ! यदि अधिक हठ करोगे, तो तुम्हें अभी फाँसी पर लटका दिया जायेगा। जिस ज्ञान को तुम सीखना चाहते हो वह एक गुप्त मन्त्र है, जो मनुष्य को नहीं बताया जा सकता।"

नचिकेता ने धैर्य से कहा—"यमदेव ! मैं फाँसी से नहीं डरता। मुझे वही मन्त्र बतलाइये।" नचिकेता डटा रहा।

अन्त में यम बोले—"नचिकेता मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। तुम अपने उद्देश्यों तथा कार्यों में दृढ़ हो, आत्मनिष्ठ हो। तुम अपने विचारों को डाँवाडोल नहीं करते हो। इसलिये अवश्य ही तुम उस गुप्त मन्त्र को जानने के योग्य हो।" यह कहते हुये यम बालक को एकान्त में ले गये और उसे उपदेश देते हुये बोले—"तुम्हारे शरीर में ही परमेश्वर है, जरा आँख खोलकर देखो। मुक्ति तुम्हें स्वयं अपने कर्मों से ही प्राप्त होगी।"

नचिकेता देर तक सोचता रहा। उसका चेहरा खुशी से दमक उठा।

साधन-अनुसंधान

"आपकी साधना, आपका ज्ञान, आपका ब्रह्मवर्चस विश्व के कल्याण के लिये है भगवन् ! पर यह कहाँ संभव है कि आप सुदूर प्रान्तों का निरन्तर परिव्राजन करें और लोगों की ज्ञान-पिपासा को तृप्त करें। गुरुकुल की स्थापना करनी ही होगी देव ! उसके बिना भावी पीढ़ी का आध्यात्मिक प्रशिक्षण किस प्रकार संभव होगा ? आप ही तो कहते हैं कि धर्म-तत्व का प्रशिक्षण और प्रसार किये बिना प्रजा का नैतिक, चारित्रिक, सैद्धान्तिक और आत्मिक विकास नहीं हो पाता।"

"सो तो यथार्थ है, तात् !" महर्षि कणाद् ने शिष्य धौम्यपाद के कथन का समाधान करते हुये कहा—"वत्स ! जिस राष्ट्र के नागरिकों को शिक्षा के साथ दीक्षा नहीं मिलती वहाँ लोगों को बौद्धिक, आत्मिक, आध्यात्मिक, धार्मिक, सामाजिक व्यवस्था सम्बन्धी क्षमताएँ कुण्ठित हो जाती हैं, इसलिये विद्यालय का निर्माण आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है, तात् ! पर गुरुकुल चलते हैं जिन पर ऐसे साधन कहाँ से उपलब्ध होंगे ?"

"आप उनकी चिन्ता न करें देव ! मुझे आदेश दें भगवन् ! साधनों का अनुसन्धान मैं करूँगा। मैं लोगों के द्वार-द्वार जाकर साधन एकत्रित करूँगा। आवश्यकता हुई तो इस पुनीत उद्देश्य के लिये भीख भी माँगूँगा। वन के पक्षी अपना आहार जुटा लेते हैं, वणिक नौकाओं में धान्य लाद कर समुद्र की विस्तृत सीमाएँ लाँघकर चले जाते हैं और द्रव्यार्जन कर लाते हैं। बादल बरसने की इच्छा करते हैं, तो उन्हें समुद्र से जल भी मिल जाता है। भगवती भागीरथी ने जब लोक-कल्याण के लिये अपनी धर्म-यात्रा प्रारम्भ की तब उन्हें भी ऐसी चिन्ता हुई थी, पर क्या हिमालय का अञ्चल इतना संकीर्ण था कि वह गंगा माता को वर्ष भर निरन्तर प्रवाहित होने के लिये जल न दे पाता ? भगवन् ! मुझे विश्वास है, सद्उद्देश्य के लिये साधनों का कभी अभाव नहीं होता।" धौम्यपाद ने पुनश्च विनीत निवेदन किया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"तुम्हारा संकल्प पूर्ण हो वत्स ! जाओ मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। तुम गुरुकुल की स्थापना के लिये साधनों का अनुसन्धान करो।" महर्षि कणाद ने मुसकराते हुये उत्तर दिया। ऐसा लगता था उनकी मुसकराहट में कुछ रहस्य भरा पड़ा है।

धौम्य चल पड़े। सम्पूर्ण राष्ट्र के नाम एक परिपत्र वितरित कर उन्होंने प्रजा से सहयोग की याचना की। तब महर्षि कणाद की तपश्चर्या का प्रभाव शरद पूर्णमासी के चन्द्रमा की भाँति दिव्य और निष्कलंक चमक रहा था। प्रजा ने अपना अहोभाग्य समझा। जिसके पास जो कुछ था, खुशी-खुशी दान देने लगे। देखते-देखते धन-धान्य, रत्न, स्वर्ण, रजत, वस्त्राभूषणों के ढेर लग गये। किसी ने भवन निर्माण का उत्तरदायित्व ले लिया, किसी ने छात्रों की भोजन व्यवस्था का। एक वर्ष के भीतर ही साधनों का अम्बार लग गया। धौम्यपाद सगर्व गुरुदेव के समीप पहुँचते हैं और उन्हें साधनों की तालिका भेंट करते हैं।

तालिका के अंकित अक्षरों को पढ़ते गये ऋषि कणाद, उतनी ही उनकी मुख-मुद्रा गम्भीर होती गई। उन्होंने कहा—"तुम्हारा उत्साह सार्थक हो धौम्य, गुरुकुल की स्थापना का कार्य प्रारम्भ कर दो विद्यार्थियों के प्रवेश का प्रबन्ध अविलम्ब किया जाये, पर इससे पूर्व यह एकत्रित धन-धान्य जहाँ से आया है, यथावत् उसे अविलम्ब वापस कर दिया जाय। जिन साधनों की आवश्यकता थी वह अभी तक नहीं मिले अभी उसका अनुसन्धान करना होगा। महर्षि का प्रतिवाद करने की हिम्मत धौम्य में थी कहाँ ? उसने उनकी आज्ञा का अक्षरशः पालन किया। जहाँ से धन आया था, लौटा दिया गया।

ऋषि कणाद ने उसी दिन मौन व्रत ले लिया। वाणी के प्रसुप्त होते ही स्वप्न-जाल की भाँति उनकी क्रियाशीलता जाग पड़ी। महर्षि प्रतिदिन सूर्योदय होते-होते जंगल में प्रवेश कर जाते और दिन भर लकड़ियाँ काटते रहते। एक मास में उतनी लकड़ियाँ एकत्रित कर लीं, जिनसे छात्रों के आवास का प्रबन्ध किया जा सके। अगले मास काँस और कुस की उतनी मात्रा काटी कणाद ने, जिससे पर्णकुटीरों में छाया का यथेष्ट प्रबन्ध हो जाता। अगले मास महर्षि ने सघन वृक्षारोपण का कार्य प्रारम्भ किया। कुछ ही दिनों में पौधे बढ़ते दिखाई देने लगे। इसी बीच उन्होंने पर्णकुटीर तैयार किये। निजी आश्रम, शिक्षकों के निवास, छात्रावास और पाठन के कक्ष निर्माण में ऋषि ने अपने स्वेद कणों की एक-एक बूँद उत्सर्ग कर दी, तब जाकर गुरुकुल की स्थापत्य आवश्यकता की पूर्ति हो पाई। इस बीच भी उन्होंने अपनी आहार की आवश्यकता खेतों से बीने हुये दानों से ही पूर्ण की। महर्षि के इस कठोर श्रम को देखकर देश की प्रजा रोमांचित हो उठी। लोगों ने अपने बालकों को भेजना प्रारम्भ कर दिया और इस प्रकार गुरुकुल की स्थापना हो गई। उसका प्रथम सत्र प्रारम्भ हो गया।

विद्यार्थियों की संख्या पर्याप्त हो गई। सामान्य कृषकों के बच्चों से लेकर महात्माओं और महाराजाओं तक के पुत्रों ने प्रवेश लिया। लोगों को विश्वास था, महर्षि कणाद की तपश्चर्या और ब्रह्मनिष्ठा पर, इसलिये जिसके भी लड़के विद्यालय में प्रविष्ट हुये उन्होंने अपना अहोभाग्य समझा। किन्तु महर्षि कणाद को अब तक कोई भी सहायक उपलब्ध नहीं हुआ था। धौम्यपाद उनके आश्रम की देख-रेख करते थे। पर छात्रों के विद्याध्ययन से लेकर उनकी सामान्य देख-रेख तक का सारा कार्य महर्षि को स्वयं ही देखना पड़ता था। प्रथम सत्र के समापन का समय समीप आ चुका था, अब तक भगवान कणाद ने एक दिन भी विश्राम नहीं किया था। आश्रम के अतिरिक्त वे समीपवर्ती गाँव में भी न जा पाये थे। उनकी परिश्रमशीलता, लगन और अध्यवसाय के साथ महान् तप और त्याग-वृत्ति की चर्चा सारे विश्व में छा गई थी। इतने पर भी उनके वृद्ध शरीर में किसी प्रकार की थकावट के लक्षण परिलक्षित नहीं हो रहे थे।

भगवती वर्षा का आगमन निकट देखकर महर्षि ने विचार किया कि जंगल का सम्पूर्ण काष्ठ गीला हो जाता है इसलिये समिधाओं के लिये सूखा ईंधन एकत्रित कर लेना चाहिये। कुल्हाड़ी और रस्सियाँ लिये छात्रों के साथ महर्षि कणाद वन की ओर चल पड़े। उनके वृषभ-स्कन्ध पर भी एक कुल्हाड़ी विराजमान थी और वे साल्हाद आगे बढ़ते हुये जा रहे थे। मौन शिष्ट-मण्डल पीछे-पीछे चल रहा था। बादलों ने छाया कर ली थी। सूर्यदेव ने अपना आक्रोश हल्का कर लिया था इसलिये मौसम और भी सुहावना हो रहा था।

महर्षि ने शिष्यों के साथ सायंकाल तक लकड़ियाँ काटीं। उनकी वृद्ध देह और गौरवर्ण से झर रहे स्वेद बिन्दु ऐसे दिख रहे थे जैसे हिम शिखर से भगवती गंगा का फैलाव मन्द गति से उतर रहा हो। उनकी मुखाकृति और भी उद्दीप्त हो उठी थी। एक-एक विद्यार्थी की वही स्थिति थी। अपने-अपने गट्ठर लिये सभी छात्रों ने जब आश्रम में प्रवेश किया तब ऐसा लग रहा था जैसे—श्रम, संयम, स्वावलम्बन और अध्यवसाय ने अनेकों भव्य रूप ले रखे हैं और धीरे-धीरे आश्रम की प्राचीरों में समाते चले जा रहे हैं।

ईंधन, समिधायें सुरक्षित स्थानों पर पहुँचाकर जब सब विद्यार्थी संध्या-वन्दन के लिये बैठे, तब भी महर्षि यह देख रहे थे कि उनके भोजन की व्यवस्था हो गई है या नहीं ? किसी पर्णकुटीर में छेद तो नहीं हो गये, कल के लिये समुचित खाद्यान्न जुटाया जा चुका है या नहीं ?

बालक अपने-अपने कक्ष में पहुँच चुके थे। दीप वृन्द जल उठे थे। शान्त वातावरण में स्वाध्याय करते छात्र ऐसे भले लग रहे थे जैसे नक्षत्रों से फूटती दिव्य किरणों ने मूर्त स्वरूप धारण कर लिया हो और तब महर्षि कणाद ने स्नान कर साधना-कक्ष में प्रवेश किया किन्तु आज उनका शरीर इतना थक चुका था कि साधना-प्रकोष्ठ के तीन सोपान भी उनसे पढ़े न जा सके। अन्तिम पैर बढ़ाते ही वह लड़खड़ा गये। उनका कृश-गात भगवती गायत्री की प्रतिमा के सम्मुख जा गिरा। ऋषि अचेत हो गये।

धौम्य ! भागते हुये आये। जल की छींटें देकर उन्होंने गुरुदेव को संभाला। अचेतना दूर हुई। ऋषि ने आँखें खोलीं। पूछा—"धौम्य ! विद्यालय के लिये किसी साधना का अभाव हो तो देखना, उसे पूरा करना। अब यह शरीर बहुत थक गया है।" यह कहते-कहते उनकी आखें भर आईं। धौम्य ने गुरुदेव को उठाया और उन्हें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शयनासन पर पौढ़ाया। उनकी चरण-रज मस्तिष्क पर चढ़ाते हुये धौम्य ने उत्तर दिया—"भगवन् ! आपने जिन साधनों की आवश्यकता अनुभव की, मैंने उन्हें देर से समझा।"

निष्काम की कामना

सभी भाँति समझाने, डराने, धमकाने से लेकर प्रलोभन देने तक के उपाय अपना लेने के बाद भी जब प्रह्लाद ने भगवद्भक्ति का आश्रय नहीं छोड़ा तो हिरण्यकशिपु क्रोधाविष्ट होकर बोला, "रे दुष्ट ! इस कुल में विष्णु का नाम लेने वाला कोई नहीं हुआ है और तुम ईश्वर-ईश्वर की रट लगाकर कुल मर्यादा भंग किये दे रहे हो। यह अक्षम्य अपराध है।"

"श्रेष्ठ कर्म करने से कुल मर्यादा नहीं टूटती तात्!" प्रह्लाद ने शान्त गम्भीर वाणी में अपने पिता को समझाना चाहा, उन्हें कभी भी कोई भी नमन करे, उससे कुल का गौरव ही बढ़ता है।"

उन्मत्त हिरण्यकशिपु की क्रोधाग्नि में प्रह्लाद के इन वचनों ने घी का काम किया और वह गरजता हुआ प्रह्लाद की ओर दौड़ा. मेरी सीख को न समझकर मुझे ही उपदेश देने वाले धृष्ट ! तू ऐसे नहीं मानेगा। तुझ जैसे कुल कलंकी का तो कुल में न होना ही अच्छा।

हिरण्यकशिपु प्रह्लाद को मारने के लिये झपटा। आवेश में सन्तुलन न रह सका और जो घूँसा प्रह्लाद पर वार करने के लिये उठा था वह उस खम्भे पर पड़ा जिसके सहारे प्रह्लाद खड़ा था। खम्भा टूट गया और उसी खम्भे से प्रकट हुये नृसिंह भगवान, आधा नर और आधा सिंह का रूप धारण किये। उन्होंने हिरण्यकशिपु को पकड़कर अपने तीक्ष्ण नखों से उसका पेट फाड़ डाला। दैत्यराज हिरण्यकशिपु के अनुचर अपने प्राण बचाकर भागे।

उस समय भगवान नृसिंह का रौद्र रूप देखकर उपस्थित देवगण तक काँप उठे। सबने अलग-अलग स्तुति की परन्तु किसी का कोई परिणाम नहीं हुआ। देवगण सोचने लगे कि यदि प्रभु का क्रोध शान्त नहीं हुआ तो अनर्थ हो जायेगा। उन्होंने भगवती लक्ष्मी को भेजा किन्तु लक्ष्मीजी भी वह विकराल रूप देखकर भयभीत हो लौट आईं। अन्त में ब्रह्माजी ने प्रह्लाद से कहा, "बेटा तुम्हीं समीप जाकर उनका क्रोध शान्त करो।"

प्रह्लाद सहज भाव से प्रभु के सम्मुख गये और दण्डवत् प्रणिपात करके उनके सामने लेट गये। भगवान नृसिंह ने अपने भक्त को सामने प्रणिपात देखकर कहा, "वत्स ! मैं तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो वही वरदान माँग लो।"

"प्रभु ! मेरी क्या इच्छा हो सकती है ?" प्रह्लाद ने कहा—"मुझे कुछ नहीं चाहिये।"

"नहीं प्रह्लाद कुछ भी माँग लो" भगवान ने कहा, "मैं तुम्हारी भक्ति से बहुत प्रसन्न हूँ।"

भगवन् ! मुझे कुछ नहीं चाहिये। जो सेवक कुछ पाने की आशा से अपने स्वामी की सेवा करता है, वह तो सेवक ही नहीं है। आप तो परम उदार हैं, मेरे स्वामी हैं और मैं आपका आश्रित-अनुचर। यदि आप कुछ देना ही चाहते हैं तो यह वरदान दें कि मेरे मन में कभी कोई कामना ही उत्पन्न न हो।

'एवमस्तु', भगवान ने कहा और पुनः आग्रह किया फिर भी प्रह्लाद कुछ तो अपने लिये माँग लो।

प्रह्लाद ने सोचा, प्रभु जब बार-बार मुझ से माँगने के लिये कहते हैं तो अवश्य ही मेरे मन में कोई कामना है। बहुत सोच-विचार करने, मनःमन्थन करने के बाद भी जब उन्हें लगा कि कुछ भी पाने की आकांक्षा नहीं है तो वह बोले, "नाथ ! मेरे पिता ने आपकी बहुत निन्दा की है और आस्तिकजनों को बहुत कष्ट दिया है। वे घोर पातकी रहे हैं। मैं यही चाहता हूँ कि वे इन पापों से छूटकर पवित्र हो जायें।"

भगवान नृसिंह ने प्रह्लाद को गद्गद् होकर कण्ठ से लगा लिया और उसकी सराहना करते हुये कहा, "धन्य हो बेटा तुम ! जिसके मन में यह कामना है कि अपने कष्ट देने वाले की भी दुर्गति न हो।"

अभिमान पिघलता है

महाभारत का युद्ध समाप्त हुआ। हस्तिनापुर में महाराज युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हुआ। पाण्डवों को लगा कि उनके सिर पर जो राजमुकुट है वह अपने ही परिजनों के खून से सना है। युधिष्ठिर ने अनुभव किया कि उनके राजसिंहासन में खून से सने काँटे निकल आये हैं और वे उनके हृदय को छेद रहे हैं। अन्तस् में बड़ी ग्लानि हो रही थी। महाभारत के रक्तपात और नर-संहार के दृश्य आँखों के आगे रह-रहकर घूम रहे थे। इस वेदना से व्यथित होकर निदान युधिष्ठिर ने राजसिंहासन अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को सौंपा और हिमालय जाने का निर्णय कर लिया।

परीक्षित महाराज बन गये। अभिमन्यु के पुत्र को राजपाट सौंपकर, सभी भाइयों ने मुक्ति की साँस ली।

अगले दिन पाँचों पाण्डव और द्रोपदी को हिमालय प्रस्थान करना था। रात देर तक राजतिलक समारोह चलता रहा और बाद में सब अपने शयन कक्ष में चले गये।

सब सो गये। पर भीमसेन की आँखों में नींद का नाम भी न था। उसे दीखने लगा, दुर्योधन का खुला हुआ सिर, बहता हुआ जाँघ में से रक्त, उसके दाहिनी ओर भीम की अपनी लात के निशान।

उसकी साँस फूलने लगी। रात उसी ऊहापोह में कटी और सुबह होते द्रोपदी सहित पाँचों पाण्डवों ने प्रस्थान किया।

रास्ते में एक-एक कर सब गिरने लगे। पहले सहदेव गिरा, फिर नकुल, फिर पांचाली और उसके बाद अर्जुन भी गिर पड़ा। अब हिमालय के तीन ही यात्री बच रहे थे। आगे युधिष्ठिर, पीछे भीमसेन और उसके पीछे एक कुत्ता बस ये तीनों चले जा रहे थे।

हिमालय की श्रृंखलाओं पर चढ़ते हुए भीम को चक्कर आया और वह बैठ गया।

"महाराज मुझ से अब आगे नहीं चला जाता। मैं गिर रहा हूँ।" युधिष्ठिर ने पीछे मुड़कर देखा भीम लड़खड़ा रहा है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org

www.vicharkrantibooks.org

"भैया कल रात से मेरे मन में बड़ी उथल-पुथल मची हुई है और यह उथल-पुथल अब और तेज हो गयी है लेकिन जो विचार आज मेरे मन में उठ रहे हैं, काश वे पहले उठे होते। मैं आपके वचनों को समझ सका होता कि मनुष्य के पास अन्तरात्मा जैसी भी कोई चीज है।"—भीम इतना कहकर बैठ गया।

"भाई भीमसेन व्यर्थ शोक मत करो"—युधिष्ठिर बोले—"आगे चलने का साहस करो।"

"मैं कुछ धीरज बाँधता हूँ, उसके पहले अनेकों स्मृतियाँ मुझे तोड़ देती हैं भैया। अगर मुझे मालूम होता तो मैं दुर्योधन की जाँघ पर गदा न चलाता, क्षमा के लिये कही हुई आपकी बातों का उपहास न करता, शत्रुओं की हत्या करके सुखी बनने की इच्छा न करता। लेकिन महाराज मैंने तो अपने बल के अभिमान में दूसरी किन्हीं बातों पर विचार ही नहीं किया और आज अब यह मेरा शरीर भी अपना नहीं रहा।" अत्यन्त दीनता से भीम ने कहा और वह लुढ़क पड़ा।

युधिष्ठिर कुछ क्षण रुके। मृत देह को स्पर्श कर बुदबुदाये—"आज विलम्ब से ही सही, परन्तु फिर भी तुम्हें अपनी भूल का भान हुआ, यही तुम्हारा सौभाग्य है। तुम सब भाई और पांचाली हमेशा के लिये सो गये और मैं अकेला जा रहा हूँ। तुम्हारा कल्याण हो।"

अपने स्वामिभक्त कुत्ते को साथ लेकर युधिष्ठिर आगे चल दिये।

सत्य की विजय

काबुल के सम्राट् नमरूद ने ऐलान कराया कि वही ईश्वर है, उसी की पूजा की जाय। भयभीत प्रजा ने उसकी मूर्तियाँ बनाईं और पूजा आरम्भ कर दी।

एक दिन राज-ज्योतिषियों ने नमरूद को बताया कि इस वर्ष एक ऐसा बालक जन्मेगा जो उसके ईश्वरत्व को चुनौती देने लगेगा।

सम्राट को यह बात अखरी और उसने उस वर्ष जन्मने वाले सब बालकों को मार डालने की आज्ञा राज कर्मचारियों को दे दी। बालक ढूँढ़-ढूँढ़ कर मारे जाने लगे।

नमरूद की मूर्तियाँ गढ़ने वाले कलाकार आजर की धर्म-पत्नी को भी प्रसव हुआ और सुन्दर पुत्र जन्मा। मातृ-हृदय बालक की रक्षा के लिये व्याकुल हो गया। वह उसे लेकर पहाड़ की एक गुफा में गई और वहीं उसका लालन-पालन करने लगी।

बालक बन्द गुफा में बढ़ने लगा। धीरे-धीरे वह पाँच वर्ष का हो गया। एक दिन उसने माता से पूछा—हम लोग जहाँ रहते हैं, क्या उससे बड़ा इस दुनिया में और कुछ है ?

माता ने बालक को संसार के विस्तार के बारे में बहुत कुछ बताया और कहा इस सबका निर्माता एक ईश्वर है। बालक ईश्वर के दर्शन करने के लिये व्यग्र रहने लगा।

एक दिन अवसर पाकर बालक गुफा से बाहर निकला सबसे पहले उसने उन्मुक्त आकाश को देखा। रात्रि का अंधकार छाया हुआ था। सबसे पहले एक चमकता हुआ तारा दिखाई दिया। बालक ने सोचा, हो न हो यही ईश्वर होगा।

थोड़ी देर में तारा अस्त हो गया और चाँद निकला। बालक सोचने लगा कम प्रकाश वाला तारा ईश्वर नहीं, अधिक चमकने वाला यह चाँद ईश्वर होना चाहिये। थोड़ी देर में रात समाप्त हुई, चन्द्रमा डूबा और सूरज निकल आया, और दिन गुजरते-गुजरते उसके भी डूबने की तैयारी होने लगी।

बालक इब्राहीम के मन में भारी उथल-पुथल मची। उसने सोचा जो बार-बार डूबता और उदय होता है ऐसा ईश्वर नहीं हो सकता। वह तो ऐसा होना चाहिये जो न जन्मे और न मरे। विचार ने विश्वास का रूप धारण किया। ईश्वर का स्वरूप उसकी समझ में आ गया। इब्राहीम ने ईश्वर-चिन्तन का व्रत लिया और साधुओं की तरह न जन्मने और न मरने वाले ईश्वर की उपासना करने के लिये प्रचार करने लगा।

नमरूद को पता चला कि उसकी सत्ता को चुनौती देने वाला कोई फकीर पैदा हो गया है, तो उसने इब्राहीम को पकड़ बुलाया और अनेक यन्त्रणायें देने लगा। जब इब्राहीम के विचार नहीं बदले, तो उसे जलती आग में पटककर मार डालने का आदेश हुआ।

अग्नि प्रकोप से बचाने में सहायता करने के लिये जब देवता इब्राहीम के पास पहुँचे, तो उन्होंने यह कहकर वह सहायता अस्वीकार कर दी कि सत्य की निष्ठा कष्ट सहने से ही परिपक्व होती है और आत्मा का तेज परीक्षा के बाद ही निखरता है। मुझे अपनी निष्ठा की परीक्षा कष्ट सहने के द्वारा देने दीजिये। मेरा आत्म-बल विचलित न हो, यदि ऐसी सहायता कर सकें तो आपका इतना अनुग्रह ही पर्याप्त है।

अन्त में सत्य ही जीता। नमरूद का गर्व गल गया। इब्राहीम अपनी सत्यनिष्ठा के कारण और अधिक चमके। नमरूद नहीं रहा, पर इब्राहीम की ईश्वर विवेचना आज भी बहु-संख्यक मनुष्यों के हृदय में स्थान प्राप्त किए हुये है।

बल नहीं जीतता और न आतंक ही अन्त तक ठहरता है। असत्य कितना ही साधन सम्पन्न क्यों न हो वह सत्य के आगे ठहर नहीं पाता। साधनहीन होते हुये भी सत्य, सुसम्पन्न असत्य से कहीं अधिक सामर्थ्यवान होता है। विजय असत्य की नहीं सत्य की ही होती है।

मन का दान

एक बार राजा जनक के हृदय में ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा हुई। उन्होंने सब जगह डंका पिटवा दिया कि जो मुझे ज्ञान का उपदेश देगा उसे इच्छानुसार धन दिया जायेगा और यदि वह ज्ञानी ज्ञान का उपदेश नहीं दे सकेगा तो उसे बन्दीगृह में बन्द कर दिया जायेगा। राजा जनक की घोषणा को सुनकर कई ऋषि-मुनि राजा जनक को ज्ञान का उपदेश देने आये। लेकिन जनक को समुचित ज्ञान का उपदेश न दे सकने के कारण उनको बन्दी बना लिया गया। एक बार अष्टावक्र के पिता भी धन प्राप्त करने के लोभ में जनक की सभा में पहुँचे। उनको भी ज्ञान चर्चा में हराकर बन्दीगृह में डाल दिया गया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऋषि कुमार अष्टावक्र को पिता के बन्दी बनाये जाने की बात मालूम हुई, तो वे राजा जनक की सभा में पहुँचे। राजदरबार में सुन्दर-सुन्दर शरीर वाले दरबारी लोग सुन्दर-सुन्दर आभूषणों से सुसज्जित थे। उसी समय अष्टावक्र महाराज पहुँचे। ऋषिकुमार अष्टावक्रजी के आठ स्थानों पर टेढ़ें थीं। अष्टावक्र के शरीर को टेढ़ा-मेढ़ा देखकर सभासदों को हँसी आ गई। सबकी हँसी से सभा में ठहाके की आवाज गूँज गई।

जहाँ ज्ञान की चर्चा के लिये सभा जुड़ी हो वहाँ शरीर की बनावट देखकर हँसना सभासदों की बुद्धिमत्ता नहीं कही जायेगी। ऋषिकुमार अष्टावक्र, सभासदों के अनुचित व्यवहार से विचलित नहीं हुये। ज्ञानियों के लिये मान-अपमान सब समान ही होता है। अष्टावक्र आये थे ज्ञान की चर्चा करने और विजय प्राप्त करने। अष्टावक्र ने सभासदों की हँसी का उत्तर और अधिक ठहाके की हँसी से दिया। अष्टावक्र को उतना जोर से हँसते देखकर राजा जनक ने ऋषिकुमार से पूछा—"महाराज आप क्यों हँस रहे हैं ?"

अष्टावक्र ने कहा—"राजन् यह प्रश्न तो मुझे ही करना चाहिये था।"

राजा जनक ने पूछा—"क्यों ?"

अष्टावक्र ने कहा—"आप लोग मेरे पहुँचते ही हँसे थे।" उत्तर में राजा जनक ने कहा कि हमें आपके टेढ़े-मेढ़े शरीर को देखकर हँसी आ गई थी। आप को दुःख नहीं मानना चाहिये।

ऋषिकुमार ने कहा, "दुःख की बात क्या है ? हाँ मुझे तो आप लोगों के आन्तरिक शरीर के ऊपर हँसी आ गई थी। आप लोगों के सुन्दर शरीर के भीतर कितनी दुर्बलता भरी पड़ी है ? उसे देखकर और भी जोर की हँसी आ गई थी।"

मिथिला नरेश जिनकी सभा में 'ज्ञान' की चर्चा होती है, ज्ञान प्राप्त करने के लिये जिस नरेश ने डंका पिटवाया, उनके सभासद तथा स्वयं वे भी शरीर के रूप, रंग और बनावट के प्रेमी हैं। उनके यहाँ ज्ञान यज्ञ की बात कहाँ ? नश्वर शरीर की महत्ता है। राजा जनक ऋषिकुमार की बात सुनकर चुप हो गये और सभासदों ने भी लज्जा से सिर झुका लिया।

राजा जनक ऋषिकुमार की यथाविधि सेवा-सुश्रुषा करके शयनकक्ष में शयन करने गये, किन्तु उन्हें नींद कहाँ ? राजा जनक को ऋषि कुमार द्वारा कहे हुये वाक्य "राजा जनक के यहाँ ज्ञान की नहीं, नश्वर शरीर के रूप, रंग, बनावट की महत्ता है।" बेचैन कर रहे थे। राजा जनक उठे और अष्टावक्र के पास पहुँचे—राजा जनक ने हाथ जोड़कर कहा, "ऋषिकुमार ! मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि आप मुझे 'ज्ञान' प्रदान कर सकते हैं जो लोभ और भय से मुक्त हैं। सच्ची बात को पूर्ण निर्भीकता के साथ जो कह सकता है वही उपदेश का अधिकारी है।"

मेरा चित्त उद्विग्न हो रहा है "ऋषि कुमार ने पुनः हँसकर कहा—"राजन् बिना गुरु-दक्षिणा दिये ही ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं ? जिस 'ज्ञान' की प्राप्ति जंगलों की खाक हजारों वर्षों तक छानने पर होती है, उसे हे राजन् ! आप धन के द्वारा खरीदना चाहते हैं ?"

राजा जनक ने विनम्र होकर कहा—"ऋषिकुमार मेरा खजाना आप ले लें और मुझे ज्ञान का उपदेश करें।" ऋषिकुमार ने पुनः हँसकर कहा—"राजन्, राज्यकोष आपका है ? कोष तो प्रजा का है, वह तो प्रजा के हित में ही खर्च किया जा सकता है।"

राजा यह बात सुनकर लज्जित हो गये और पुनः कहने लगे—"अच्छा महाराज राज्य ही आप ले लें।" अष्टावक्र ने पुनः उत्तर दिया—"राजन् ! राज्य अनित्य है।" राजा जनक ने पुनः आग्रह किया—"यह मेरा शरीर ले लीजिये।" ऋषि कुमार ने पुनः कहा, "वह मन के अधीन है।" राजा जनक ने कहा—"तो आप मन ही ले लीजिये।" अष्टावक्र स्वीकृति देते हुये बोले—"हाँ ! मन ले सकता हूँ। मन का मुझे 'संकल्प' कर दीजिये" राजा ने वैसा ही किया।

अष्टावक्र ने कहा—"राजन् ! एक सप्ताह बाद पुनः आऊँगा तब आपकी इच्छा पूर्ण होगी।" यह कहकर अष्टावक्र जी अपने पिता को लेकर घर पहुँचे और जाते समय राजा से कहते गये कि आप यह समझ लें कि आपने अपना मन मुझे संकल्प कर दिया है।

राजा जनक प्रतिज्ञाबद्ध हो गये और उनकी दशा विचित्र हो गयी। चलते-फिरते खाते-पीते उनको यही ध्यान रहता कि मन तो संकल्प हो गया है। इस चिन्ता में उनकी सब क्रियाएँ शान्त हो गयीं। समयानुसार ऋषि कुमार लौटे, आते ही उन्होंने राजा जनक से कुशल पूछी। राजा जनक ने कहा—"ब्रह्मचारिन् ! मेरी कुशलता आपके अधीन है। मन तो आपका हो चुका है। आपको मन देकर मैं जड़वत् हो गया हूँ किन्तु मुझे इसी में परम शान्ति मिल रही है और इस शान्ति से कुशल हूँ।" अष्टावक्र ने कहा—"राजन् ! इस जड़ता को तुम समझ लो कि यह चेतनता (आत्मज्ञान) अथवा स्मृति के समीप की जड़ता है और अब तुम्हें वहाँ पहुँचने में विलम्ब नहीं। तुम ज्ञान प्राप्त करने योग्य हो गये।" अष्टावक्र कहते गये।

राजन् ! सांसारिक विषय मन के अधीन हैं। आत्मा के अधीन नहीं। मन ही देही है, आत्मा विदेह है। मन जब तक शरीर की ओर लगा रहता है, तब तक मन की गति आत्मा की ओर नहीं हो पाती। प्राणी जब मन को ज्ञान के अधीन कर देता है, तब आत्मा की ओर उसकी गति बढ़ने लगती है और धीरे-धीरे प्राण कोशों के बन्धन से मुक्त होकर जीव सत्-चित्-आनन्द बन जाता है। जीव की यही परमोन्नति है। शरीर पर विशुद्ध ज्ञान की सत्ता स्थापित होने पर "आत्मा" की प्राप्ति होती है। मन को ज्ञान से शुद्ध करके—परम ज्ञान की श्रद्धा स्थापित करके सूक्ष्म से सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम की ओर बढ़ना ही जीव की 'परमोन्नति' है।

राजा जनक ! आपने मुझे अपना मन संकल्प कर दिया था, अतः मन के साथ इस 'ज्ञान' को वापस कर रहा हूँ। आप मेरी आज्ञा से ज्ञान के अधीन होकर इस राज्य का संचालन कीजिये। समस्त जीवों में अपनी आत्मा का अनुभव कीजिये—सबसे परे होकर रहिये। इतना कहकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अष्टावक्र उठकर चलने लगे। जनक ने विनय के साथ आग्रहपूर्वक कहा—"ऋषिकुमार ! मुझे ज्ञान प्राप्त हो गया—आप यहीं रहें।" अष्टावक्र ने हँसते हुये कहा—"राजन् क्या आप मुझे अपने सुख-वैभव में बाँधना चाहते हैं ?" राजा जनक नतमस्तक हो गये। ऋषिकुमार अपने आश्रम पर चले गये और अपने ज्ञान के द्वारा कई ज्ञानियों को बन्दीगृह से मुक्त कराया।

यह सच या वह सच

मिथिला पर किसी शत्रु नरेश ने आक्रमण कर दिया है। उसकी अपार सेना ने नगर को घेर लिया है। संग्राम छिड़ गया है। मिथिला की सेनाएँ शत्रु सेनाओं का डटकर मुकाबला कर रही हैं। परन्तु विजय शत्रु के पक्ष में ही जाती हुई प्रतीत हो रही है और मिथिला की सेनाएँ हार भी गयीं। महाराज जनक पराजित हुये..... विजयी शत्रु ने आज्ञा दी—"मैं तुम्हारे प्राण तो नहीं लेता किन्तु तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि तुम अपने सभी वस्त्राभूषण उतार दो और इस राज्य से निकल जाओ।"

राजा जनक ने अपने राजकीय वस्त्र और तमाम आभूषण उतार दिये। केवल एक छोटा-सा वस्त्र कटि प्रदेश पर रह गया। जनक पैदल ही राजमहल से निकल पड़े। सोचा किसी नागरिक से आश्रय माँगेंगे। परन्तु उनके सड़क पर आने से पूर्व ही यह राजाज्ञा सुनाई दी—"निर्वासित जनक को जो भी नागरिक आश्रय या आहार देगा उसे प्राणदण्ड दिया जायेगा।"

विवश जनक ने उसी स्थिति में मिथिला प्रदेश की सीमा से बाहर जाने का निश्चय किया। फलतः कई दिनों तक अन्न का एक दाना भी पेट में नहीं गया।

जनक अब राजा नहीं एक भिक्षुक है..... राज्य से बाहर एक अन्य क्षेत्र दिखाई देता है..... जनक वहाँ पहुँच जाते हैं..... किन्तु अन्न क्षेत्र के द्वार बन्द हो रहे हैं क्योंकि सारी खाद्य सामग्री बँट चुकी है। जनक बड़ी दीनता से याचना करते हैं और अन्नक्षेत्र का अधिपति थोड़ा-सा बचा हुआ चावल लाकर जनक की फैली हथेलियों पर रख देता है। इस दशा में वही वरदान प्रतीत होता है। उसे मुँह में रखने को हाथ आगे बढ़ाते ही हैं कि न जाने कहाँ से एक चील झपट पड़ती है और सारा चावल धूल में बिखर जाता है।

'हे भगवन्'—मारे व्यथा के जनक चीख उठते हैं और चीख के साथ ही उनकी निद्रा टूट जाती है। स्वप्न टूट जाता है, किन्तु शरीर अभी भी पसीना-पसीना हो रहा है। आस-पास सोयी रानियाँ और सेवक भी चीख सुनकर जाग उठे। जनक आँखें फाड़-फाड़कर अपने चारों ओर देखने लगे, सुसज्जित शयन कक्ष, स्वर्ण-रत्नों से लदा हुआ पलंग, दुग्ध फेन-सी श्वेत कोमल शय्या। रानियाँ पास खड़ी हैं और सेवक-सेविकायें भी हतप्रभ से उन्हें देख रही हैं।

स्वप्न का प्रभाव इतना गहन हुआ था, कि जो भी सामने आते, वे उसी से यह प्रश्न करते—"यह सच या वह सच ?" योगिराज अष्टावक्र से भी उन्होंने यही प्रश्न किया।

अष्टावक्र ने योग बल से इस प्रश्न के उद्गम को समझा और पूछा—"महाराज ! जब आप कटिप्रदेश में एक वस्त्र लपेटे अन्नक्षेत्र के द्वार पर भिक्षुक के वेश में दोनों हाथ फैलाये खड़े थे और अधिपति ने जब आपकी हथेली पर बचा हुआ चावल रखा था, उस समय यह राजभवन, आपका यह राजवेश, ये रानियाँ, मन्त्रियों और सेवक-सेविकाओं में कौन आपके पास था ?"

जनक ने कहा—उस समय तो इनमें से कोई भी मेरे पास नहीं था भगवन् ! उस समय तो विपत्ति का मारा मैं अकेला ही था।

'और राजन् ! जागने पर जब आप इस राजवेश में राजभवन के अन्तःपुर में स्वर्ण-रत्नों से निर्मित पलंग पर आसीन थे तब वह अन्नक्षेत्र, उसका वह कर्मचारी, वह आपका भिक्षुवेश, वह अवशिष्ट खाद्य क्या था, आपके पास ?"

"कुछ भी नहीं महात्मन् ! मेरे पास कुछ भी नहीं था। परन्तु दोनों अवस्थाओं में आप तो थे न ?"—अष्टावक्र ने फिर पूछा। हाँ कहने पर ये फिर बोले—"जो क्षणिक काल के अधीन है वह सच नहीं हो सकता। न यह सच है, न वह सच था, सब अवस्थाएँ हैं। परन्तु अवस्थाओं से भी परे जो आत्मतत्व साथी रूप से उन्हें देखता, वही सच है। अतः राजन् उसी सत्य को जानना, मानना तथा ग्रहण करना चाहिए।" और तभी से जनक अनासक्त भाव से अपने कर्त्तव्यों को पूरा करते हुये आत्मदेव की आराधना में लग गये।

त्याग का रहस्य

एक बार महर्षि नारद ज्ञान का प्रचार करते हुये किसी सघन वन में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक बहुत बड़ा घनी छाया वाला सेमर का वृक्ष देखा और उसकी छाया में विश्राम करने के लिये ठहर गये।

नारदजी को उसकी शीतल छाया में आराम करके बड़ा आनन्द हुआ। वे उसके वैभव की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। उन्होंने उससे पूछा कि वृक्षराज ! तुम्हारा इतना बड़ा वैभव किस प्रकार सुस्थिर रहता है ? पवन तुम्हें गिराती क्यों नहीं ?

सेमर के वृक्ष ने हँसते हुये ऋषि के प्रश्न का उत्तर दिया कि—"भगवन् ! बेचारे पवन की कोई सामर्थ्य नहीं कि वह मेरा बाल भी बाँका कर सके। वह मुझे किसी प्रकार गिरा नहीं सकता।" नारदजी को लगा कि सेमर का वृक्ष अभिमान के नशे में ऐसे वचन बोल रहा है। उन्हें यह उत्तर उचित प्रतीत न हुआ और झुँझलाते हुये सुरलोक को चले गये।

सुरपुर में जाकर नारदजी ने पवन से कहा—"अमुक वृक्ष अभिमानपूर्वक दर्प वचन बोलता हुआ आपकी निन्दा करता है, सो उसका अभिमान दूर करना चाहिये।" पवन को अपनी निन्दा करने वाले पर बहुत क्रोध आया और वह उस वृक्ष को उखाड़ फेंकने के लिये बड़े प्रबल प्रवाह के साथ आँधी-तूफान की तरह चल दिया।

सैमर का वृक्ष बड़ा तपस्वी, परोपकारी और ज्ञानी था, उसे भावी संकट की पूर्व सूचना मिल गई। वृक्ष ने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने बचने का उपाय तुरन्त ही कर लिया। उसने अपने सारे पत्ते झड़ा डाले और ठूँठ की तरह खड़ा हो गया। पवन आया उसने बहुत प्रयत्न किया पर ठूँठ का कुछ भी बिगाड़ न सका। अन्ततः उसे निराश होकर लौट जाना पड़ा।

कुछ दिन पश्चात् नारदजी उस वृक्ष का परिणाम देखने के लिये उसी वन में फिर पहुँचे, पर वहाँ उन्होंने देखा कि वृक्ष ज्यों का त्यों हरा-भरा खड़ा है। नारदजी को इस पर बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने सेमर से पूछा—"पवन ने सारी शक्ति के साथ तुम्हें उखाड़ने की चेष्टा की थी, पर तुम तो अभी तक ज्यों-के-त्यों खड़े हुये हो, इसका क्या रहस्य है ?"

वृक्ष ने नारदजी को प्रणाम किया और नम्रतापूर्वक निवेदन किया—"ऋषिराज ! मेरे पास इतना वैभव है पर मैं इसके मोह में बँधा हुआ नहीं हूँ। संसार की सेवा के लिये इतने पत्तों को धारण किये हुये हूँ, परन्तु जब जरूरत समझता हूँ, इस सारे वैभव को बिना किसी हिचकिचाहट के त्याग देता हूँ और ठूँठ बन जाता हूँ। मुझे वैभव का गर्व नहीं था, वरन् अपने ठूँठ होने का अभिमान था इसीलिये मैंने पवन की अपेक्षा अपनी सामर्थ्य को अधिक बताया था। आप देख रहे हैं कि उसी निर्लिप्त कर्मयोग के कारण मैं पवन की प्रचंड टक्कर सहता हुआ भी यथापूर्व खड़ा हुआ हूँ।"

नारदजी समझ गये कि संसार में वैभव रखना, धनवान होना कोई बुरी बात नहीं है। इससे तो बहुत-से शुभ कार्य हो सकते हैं। बुराई तो धन के अभिमान में डूब जाने और उससे मोह करने में है। यदि कोई व्यक्ति धनी होते हुये भी मन से पवित्र रहे तो वह एक प्रकार का साधु ही है। ऐसे जल में कमल की तरह निर्लिप्त रहने वाले कर्मयोगी साधु के लिये घर ही तपोभूमि है।

व्यामोह का मायाजाल

देवर्षि नारद को अपने वैराग्य और भजन का अहंकार हो गया था। अहंकार उठते ही मनुष्य आत्म-प्रदर्शन के लिये लालायित हो उठता है। महत्वाकांक्षाएँ बढ़ा लेता है और इनकी पूर्ति के लिये अनेक प्रपंच रचने लगता है। यही नारद के सम्बन्ध में भी घटित हुआ।

किसी राजकुमारी का स्वयंवर था। पिता की इकलौती बेटी थी। राजा ने घोषणा कर रखी थी, कि राजकुमारी के विवाह के समय आधा राज्य वर को दहेज में दिया जायेगा और शेष आधा राज्य विवाह के उपरान्त मिल जायेगा। नारद की भक्ति झीनी पड़ रही थी और अहंता प्रेरित महत्वाकांक्षा बढ़ रही थी। जब स्वयंवर का समाचार सुना, राजकुमारी का रूप देखा, विशाल राज्य-वैभव के लिये मन ललचाया तो नारद सोचने लगे ब्रह्मचारी रहकर भक्ति का प्रचार करने में इतना समय लगा दिया अब संसार का भी कुछ आनन्द देखना चाहिये। स्वयंवर जीतना चाहिये। मन पक्का हो गया। जरूरत ऐसे रूप की पड़ी जो राजकुमारी को पसन्द आ सके। ऐसा रूप कहाँ से आये ? वे स्वयं तो कुरूप थे। सोचा विष्णु भगवान के पास चलना चाहिये, उनसे मित्रता भी है। सदा उनका ही काम करते रहे हैं। अब की बार, अपने एक निजी काम के लिये कहेंगे तो मना कैसे करेंगे ?

नारद विष्णुलोक पहुँचे। अपनी मनोकामना बताई। भगवान सन्न रह गये। भक्ति और कामना दोनों का एक साथ निर्वाह कहाँ ? एक रहेगी तो दूसरी चली जायेगी। नारद का हित इसी में था कि वे भक्ति मार्ग न छोड़ें, प्रपंच में न पड़ें। सो भगवान मौन हो गये।

नारद ने मौन का अर्थ आधी स्वीकृति के रूप में लिया। चलते समय इतना और कह गये कि यह काम तो किसी भी प्रकार करना ही पड़ेगा। भक्त की मनोकामना पूरी न करें तो भगवान कैसे ? विष्णु उपेक्षापूर्वक मुस्कराते भर रहे। नारद अनुमान लगाते रहे कि काम बन गया। वे सीधे स्वयंवर में जा पहुँचे।

रूप में कोई परिवर्तन न हुआ। राजकुमारी नारद को प्रणाम करती हुई वरमाला हाथ में लिये आगे बढ़ती हुई एक सुन्दर राजकुमार के गले में माला डालकर उसकी पत्नी बन गई।

नारद की निराशा और खीज का ठिकाना न था। जहाँ वे पहले सदा प्रमुदित रहा करते थे। आज कामना ने उनका रौद्र रूप बना दिया। क्रोध में भरे हुये विष्णु लोक पहुँचे और भगवान पर अपशब्दों की झड़ी लगा दी। बहुत देर यही क्रम चलता रहा।

जब थककर शान्त हुये तो भगवान ने कहा। मैं तो अपने भक्त का अहंकार मिटाता हूँ। कामनाओं के जंजाल से छुड़ाता हूँ। भला तुम्हें मैं अनर्थ में कैसे डुबा सकता था ? संचित सद्भावना की पूँजी व्यामोह में कैसे लुट जाने देता ? उस असफलता को मेरी अनुकम्पा ही समझो।

जब कामना भरी महत्वाकांक्षा का नशा उतरा तो नारद ने अपने व्यामोह के साथ जुड़े हुये विनाश को समझा। अपनी भूल मानी और प्रायश्चित किया। इसके बाद वे कहीं भी भक्ति का प्रचार करने जाते तो हर साधना मार्ग के पथिक को एक ही बात कहते कि भजन भले ही कम करना पर लोभ, मोह भरे अहंकार के माया जाल से बचकर रहने का प्रयत्न करना।

श्रेष्ठतम का वरण

मगध राज की कन्या सुहासिनी वयस्क हुई, तो उसके लिये उपयुक्त वर की तलाश होने लगी। राज कन्या ने पिता से अनुरोध किया—उसे मर्जी का पति चुनने दिया जाय। वह किसी सर्व स्वतन्त्र से विवाह करना चाहती है। पराधीन तो कष्ट ही कष्ट भोगते हैं। उनके साथ रहने में आनन्द कहाँ ?

राजा ने इच्छित वर का चयन करने के लिये स्वयंवर की व्यवस्था कर दी। राजकुमार, व्यवसायी, विद्वान, कलाकार अलग-अलग कक्षों में ठहराये गये। सबको अपने-अपने समुदायों में बैठने की व्यवस्था की गई ताकि राजकुमारी जिस भी वर्ग को उपयुक्त समझे उसमें चयन कर ले।

सर्वप्रथम सुहासिनी राजकुमारों के समुदाय में गई। पूछा—"आप लोगों का राज्याधिकार तो प्रजाजनों और सामन्तों,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सभासदों की इच्छा पर निर्भर रहेगा। यदि वे रुष्ट हो गये तो फिर शासक बनने की स्वतन्त्रता कैसे दिखा सकेंगे ?"

राजकुमारों से उत्तर न बन पड़े। पहली बार उन्होंने अपनी पराधीनता अनुभव की और निराश लौट गये।

फिर वह विद्वानों के वर्ग में गई। उनसे पूछा—"गुण ग्राहकों के अभाव में आप अपनी विद्या का परिचय कैसे देंगे और उस विशिष्टता से किस प्रकार लाभान्वित होंगे ?"

उत्तर उनसे भी न बन पड़ा। विद्या की उपयोगिता गुण-ग्राहकों पर निर्भर है इसलिये वे भी पराधीन ही सिद्ध हुये। कन्या ने इस वर्ग को विदा कर दिया।

सम्पन्न व्यवसायियों की बारी आई। पूछा—"दुर्भिक्ष पड़ा तो ? अराजकता फैली तो ? उपलब्ध उत्पादन की खपत न हुई तो ? व्यवसाय कैसे चलेगा ?"

व्यवसायियों ने अपनी पराधीनता स्वीकार की और वापस लौट गये।

कलाकारों के सामने भी विद्वानों जैसी कठिनाई थी। पारखी न हो, तो उनकी कला को उन्मत्तों जैसा प्रलाप ही समझा जा सकता था। उनमें से कोई भी आत्मनिर्भर नहीं था। पराधीन को सुख कहाँ ? जो सुखी नहीं उसके साथ बँधने से क्या लाभ ? कन्या ने सभी अभ्यागतों को निराश कर दिया और साथ ही वह उपयुक्त वर न खोज पाने के कारण स्वयं भी निराश हो गई। खिन्न मन एकान्त सेवन करने लगी।

महामनीषी कौदन्य का उधर आगमन हुआ। मगध राज कन्या समेत उनके दर्शन के लिये उपस्थित हुये। साथ ही वर न मिलने का कारण और तज्जनित निराशा का भी परिचय कराया।

कौदन्य ने राजकन्या से पूछा—"दूसरों के सहारे सुखी रहने की इच्छा करने वाली आप भी क्या पराधीन नहीं हुईं ?"

बात काँटे की थी। अपनी पराधीनता का प्रथम बार पता चला। अब आगे सोचा तो आत्मा पर काया और कामना का बन्धन और भी अधिक सघन प्रतीत हुआ। सोचा—भव-बन्धनों से अपने को मुक्त करने की व्यवस्था करने के उपरान्त ही आनन्द उपलब्धि की बात सोचनी चाहिये।

साथी खोजने का विचार उन्होंने छोड़ दिया और भव-बन्धनों को काटने वाली तप साधना में निरत हो गईं। आत्मकल्याण और लोककल्याण के समन्वय परमार्थ को अपना जीवन सहचर बना लिया। विवाह की चर्चा सदा के लिये बन्द हो गई।

भेदबुद्धि से उपजी विकलता

थक चुकी आँखें निस्तेज हो गईं। पैर तपती रेत में झुलस रहे थे। शरीर पर पड़ते-उड़ रहे गरम रेत के कण अंगारों की बौछार का अहसास करा रहे थे। मरुभूमि की गर्मी, दावानल-सी धधकती धूप, अंगार वृष्टि करती, मार्तण्ड रश्मियाँ किसी को भी बेहाल करने के लिये काफी हैं। उनके पास का जल कब का समाप्त हो चुका। थोड़ा-बहुत जो बचा था, वह या तो कमण्डल की उष्णता ने सोख लिया अथवा सूर्य रश्मियों से एकाकार हो गया। अब····· ?

इस विकट प्रश्न का उत्तर, ऐसे भीषण क्षणों में ? जीवन नश्वर है इस तथ्य से ऋषि अपरिचित हों ऐसा नहीं था। व्यथा, वेदना, विकलता की हलचलें जीवन की परिधि तक ही होती हैं। मृत्यु तो इस सीमा से ऊपर उठ जाना है। मोह जीवन का नहीं—भय मृत्यु से नहीं किन्तु इन दोनों की मध्यवर्ती स्थिति कितनी असह्य होती है—यह बोधगम्य नहीं अनुभूतिगम्य है। ऋषि इस समय यही अनुभूति पा रहे थे।

होंठों पर जीभ फिराई, पर सूखे होठों पर सूखी जीभ फिराने का क्या औचित्य ? किन्तु शुष्कता तो चतुर्दिक थी। बाह्य परिवेश ही नहीं शरीर संस्थान की आर्द्रता की रही बची अन्तिम बूँद भी लगा निचुड़े बिना न रहेगी। ऐसे में·····।

याद हो आई उनकी, उनके वचनों की, जो प्रकृतिगत दीखते हुये भी प्रकृति से परे और प्रकृतिमय थे। समूचा घटनाचक्र मनःचक्षुओं के सम्मुख कुलाल-चक्र की तरह घूम गया। महाभारत युद्ध की समाप्ति के बाद योगेश्वर कृष्ण द्वारिका लौट रहे थे। वहीं मार्ग के एक वट वृक्ष की छाया में वह साधनारत थे। उन्होंने ऋषि को प्रणाम किया—ऋषि की क्रान्तिदर्शी आँखों ने नर देहधारी नारायण को पहचान लिया। विचार-विनिमय के बीच कौरव-पाण्डव विग्रह की चर्चा चल पड़ी। हुये महासंहार की विस्तृत शृंखला की प्रत्येक कड़ी से कृष्ण ने उन्हें अवगत कराया।

सुनकर उनका मन कातर हो उठा। उनकी आँखों से संवेदना झर उठी। सहृदयता, कारुणिक संवेदनशीलता के इस अद्भुत संगम को देख कृष्ण प्रभावित हुये बिना न रहे। उन्हें धीरज बँधाते हुये वे बोले—"उत्तंक तुम अपने लिये कुछ माँग लो।" वाणी में आये बदलाव एवं स्वरों के गाम्भीर्य ने ऋषि श्रेष्ठ उत्तंक को चकित कर दिया। एक पल को वे न सोच पाये कि यह कौन बोल रहा है ? यह तो स्व में अधिष्ठित हृषिकेश की वाणी थी।

निष्काम साधक गद्‌गद् कण्ठ से बोल उठा—"आपके दर्शन के बाद भी किसी वरदान की अपेक्षा रह जाती है प्रभु !" अत्यन्त आग्रह करने पर वह बोले, "मुझे किसी चीज के अभाव की अनुभूति न हो।" कथन को संशोधित करते हुये श्रीकृष्ण ने कहा—"भाव और अभाव की अनुभूति तो मानवी चेतना की प्रकृति है। हाँ आपको जब किसी चीज की आवश्यकता होगी उसकी पूर्ति हो जाया करेगी।" और आज इस समय·····।

तभी उनकी निर्जीव हो रही आँखों ने एक चाण्डाल को देखा। ऐसे समय चाण्डाल की उपस्थिति, आश्चर्य तो हुआ—पर उपेक्षा से आँखें बन्द कर लीं—फेरने लायक सामर्थ्य तो बची न थी। आखिर अस्पृश्य चाण्डाल से किसी सहायता की अपेक्षा तो की नहीं जा सकती। ऊँच-नीच की भेद-बुद्धि—कहीं अचेतन में गहरे जमे संस्कार साधना से समतल की गई मनोभूमि को अपने तुमुल-ताण्डव से ऊबड़-खाबड़ करने लगे। वह सामने खड़ा कह रहा था, "आप प्यास से विकल हैं महाराज ! मेरे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पास पर्याप्त जल है, कृपया ग्रहण करें।" "दूर हट।" अपनी रही-बची सामर्थ्य को समेट-बटोरकर मुश्किल से वे दो शब्द कह सके। वह सिर झुकाकर चला गया।

इतने में ऋषि को किसी सुकोमल स्पर्श की अनुभूति हुई। स्पर्श ने उनको नयी चेतनता दी। आँखें खोलकर देखा—स्वयमेव श्रीकृष्ण थे। वह कह रहे थे। "महर्षि उत्तंक! समता, निर्मलता, प्रेम तथा वसुधैव कुटुम्बकम् की अनुभूति के बिना न सिर्फ ध्यान और समाधि असंभव हो जाते हैं, बल्कि व्यवहारिक जगत् में भी दुःख के फव्वारे फूटते रहते हैं। आपकी विकलता का कारण यही है। आपके द्वारा लौटाये गये चाण्डाल के रूप में स्वयं इन्द्र थे, जो आपके लिये अमृत कलश लेकर आये थे।"

ऋषि का अन्तराल पश्चाताप से भर गया। पश्चाताप का कारण अमृत न पी पाना नहीं बल्कि उस कारण की अनुभूति थी, जिसकी वजह से निरन्तर साधना के बाद भी समाधि नहीं सिद्ध हो पायी। उमड़े पश्चाताप के ज्वार ने भेद-बुद्धि को धो दिया। इसी समय बादलों के समूह ने उन पर जल कणों की वृष्टि की। भेदभाव भी घुल गया, वे परम लोक को चल दिये।

सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण—वर्तमान

प्रसिद्ध साहित्यकार टालस्टाय ने 'तीन प्रश्न' नामक एक कहानी लिखी है। कहानी का सारांश इस प्रकार है। किसी समय एक राजा था। उसके मन में तीन प्रश्न उठे— (१) सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य क्या है ? (२) परामर्श लेने के लिये सबसे अधिक महत्त्व का व्यक्ति कौन है ? और (३) निश्चित कार्य को आरम्भ करने का सबसे महत्त्वपूर्ण कौन-सा समय है ? इसका उत्तर जानने के लिये राजा ने सभासदों की बैठक बुलायी, पर किसी का उत्तर सन्तोषजनक न रहा। राज्य मन्त्री का परामर्श मानकर वह सुदूर जंगल की एक कुटिया में रहने वाले साधु से जिज्ञासा-समाधान के लिये चल पड़ा। साधु की कुटिया के निकट पहुँचने पर उसने साथ में सुरक्षा के लिये आये गुप्तचरों एवं सैनिकों को जंगल में ही छोड़कर साधु से अकेले मिलने का निश्चय किया।

संन्यासी को खेत में कुदाल चलाते देख वह चुपचाप खड़ा होकर देखने लगा। कुछ देर बाद जब साधु ने दृष्टि उठायी तो राजा से आने का कारण पूछा। राजा ने तीनों प्रश्नों को उनके समक्ष रखा तथा उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा। साधु ने संकेत द्वारा राजा को निकट बुलाया और अपनी कुदाल दे दी। राजा ने कुदाल लेकर खेत जोतना आरम्भ किया। संध्या होने को आयी। इतने में एक व्यक्ति साधु की कुटिया की ओर दौड़ता हुआ आया और भूमि पर गिर पड़ा। उसके कपड़े रक्त से लथपथ थे। पेट से रक्त की धार निकल रही थी। दोनों ने मिलकर उसकी मलहम-पट्टी की। घायल व्यक्ति सो गया।

प्रातः काल राजा ने घायल व्यक्ति को क्षमायाचना करते पाया। यह देखकर राजा विस्मय में पड़ गया। आगन्तुक ने अपना परिचय दिया, "मैं किसी समय आपका घोर शत्रु था। आपने मेरे भाई को फाँसी दे दी थी। तभी से बदला लेने का अवसर ढूँढ़ रहा हूँ। मुझे मालूम था कि सामान्य वेशभूषा में आप साधु के पास आये हैं। मार डालने की इच्छा से मैं झाड़ी में छुप गया, किन्तु इसी बीच आपके गुप्तचरों ने मुझे देखकर पहचान लिया तथा घातक हथियार से हमला कर दिया। शत्रु होते हुये भी आपने मेरे प्राणों की रक्षा की। हमारा द्वेष-भाव समाप्त हो गया। मैं आपके चरणों का सेवक हूँ। आप मुझे चाहें तो दण्ड दें अथवा क्षमा करें।"

घायल व्यक्ति की बातें सुनकर राजा स्तब्ध रह गया। अप्रत्याशित ईश्वरीय सहयोग मानकर वह मन ही मन ईश्वर को धन्यवाद देने लगा। साधु ने मुसकराते हुये कहा, "राजन् ! क्या अब भी आपको प्रश्नों के उत्तर नहीं मिले ?" राजा को मौन देखकर उसने अपनी बात आगे बढ़ायी और कहा कि कार्यों द्वारा आपके प्रश्नों का उत्तर पहले ही दिया जा चुका है। सबसे महत्त्व का कार्य वह है जो सामने है, सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति वह है, जो हमारे पास है और सबसे महत्त्व का समय अभी है। यदि आप आकर मुझे सहानुभूति न दिखाते तथा तुरन्त चले जाते तो आज आपकी जीवन-रक्षा संभव न हो पाती। अतएव महत्त्वपूर्ण व्यक्ति मैं था, जिसे सहायता अपेक्षित थी। दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य आगन्तुक की रक्षा थी। महत्त्वपूर्ण समय भी वही था, जिसके सदुपयोग से शत्रु भी मित्र में बदल गया। राजा के तीनों प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर मिल गया।

कहानी के तीनों प्रश्नों के उत्तर में महत्त्वपूर्ण प्रेरणाएँ समाहित हैं। महत्त्वपूर्ण कार्य, महत्त्वपूर्ण व्यक्ति एवं महत्त्वपूर्ण समय की कल्पना अधिकांश व्यक्ति करते हैं तथा भविष्य की ओर दृष्टि गढ़ाये रहते हैं जबकि सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण वर्तमान है। जिसमें विद्यमान व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत कार्य एवं समय का सदुपयोग कर लिया जाय तो उज्ज्वल भविष्य की संभावनाएँ बन सकती हैं। प्रस्तुत कार्य को पूरे मनोयोग से करना वर्तमान समय एवं सम्बन्धित व्यक्तियों का सदुपयोग ही सर्वांगीण प्रगति का मूल मन्त्र है।

स्वर्ग से भी महान्—तप लोक

विद्रुध बड़े ही पुण्यात्मा सन्त थे। जीवन भर उन्होंने दीन-हीनों की सेवा तथा प्राणी मात्र की भलाई ही की थी। किसी को विलखता देख पाते तो तत्काल उसकी वेदना मिटाने को तत्पर हो जाते। किसी को अभावग्रस्त देखते, तो स्वयं उसके लिये आवश्यक उपकरण जुटा देते। परमार्थ तथा लोक-मंगल—ये ही उनके जीवन की परिभाषा थी।

कोई कितना भी पुण्यवान क्यों न हो—अन्त में यह असार संसार तथा नश्वर देह तो सभी को त्यागनी पड़ती है। विद्रुध का भी अन्त समय आया और प्राणपखेरू अपना पिंजरा छोड़कर उड़ गये।

जीवनभर पुण्य ही कमाया था उन्होंने। अतः उच्च श्रेणी के स्वर्ग में उन्हें पहुँचाया गया। स्वर्ग पहुँचने पर उनके रहने की पूरी व्यवस्था कर दी गई। स्वर्ग आखिर स्वर्ग ही था। वहाँ सभी वस्तुओं की प्रचुरता थी। सुख पूर्ण नन्दन वन, शीतल जल के सुगन्धित सरोवर जिनमें नवजात पद्म मुसकराते रहते, वायु भी चलती तो मलय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भार से दबी-दबी, चारों ओर उल्लास-ही-उल्लास हँसी-ही-हँसी, आमोद-प्रमोद तथा सुख-साधनों की भरमार।

कुछ दिन तो विद्युध को सभी से मिलने-जुलने में बड़ा आनन्द आया। स्वर्ग में सभी आत्माएँ ऊँचे स्तर की ही थीं किन्तु धीरे-धीरे उनका मन उस वातावरण से ऊबने लगा। सुख-साधनों में उन्हें तृप्ति न मिलती। निष्क्रियता, शरीर के साथ-साथ जैसे मन को भी जड़ बनाये डाल रही थी। सुरा पात्र लिये दिव्य सुन्दरियाँ उन्हें तनिक भी सन्तोष न दे पातीं। उलटे मन की संतप्ति और बढ़ जाती। वे दिन-रात चिन्तित तथा उदास रहने लगे।

एक दिन देवराज इन्द्र ने उन्हें एकान्त में पाया तो बोले, "आप बहुत दिनों से अवसाद से घिरे रहते हैं। क्या हमारी व्यवस्था में कहीं कोई त्रुटि है ? अथवा आपको किसी ऐसी वस्तु की अपेक्षा है, जो हम आपके लिये जुटा नहीं सके हैं ?"

विद्युध ने सहज गांभीर्यपूर्ण स्वर में उत्तर दिया, "हाँ राजन् ! मुझे ऐसी ही वस्तु की अपेक्षा है—जो तुम्हारे स्वर्ग में नहीं है।"

इन्द्र तब कुछ विस्मित हुये और पूछा, "आखिर वह ऐसी कौन-सी अलभ्य वस्तु है, जिसे कामधेनु तथा कल्पवृक्ष भी देने में असमर्थ हैं।"

तब विद्युध ने पुनः कहा, "वह आपके लोक से परे की वस्तु है। यहाँ के समस्त साधन व सुविधाओं से युक्त वातावरण मेरे मन को परितोष नहीं दे पा रहा है। मुझे तो चाहिये वे दीन-हीन प्राणी जिनकी मैं सेवा कर सकूँ—वे दुःखी देहधारी जिनकी पीड़ा को मैं दूर कर सकूँ। आप मुझे पुनः मृत्युलोक भेजने की व्यवस्था कर दें तो बड़ी कृपा होगी ?" देवराज इन्द्र ने उसी दिन सभा में घोषणा की कि 'विद्युध को इस स्वर्ग से भी महान् पुण्य लोक, जिसे 'तपलोक' भी कहते हैं, में भेजने की व्यवस्था की जाये।"

सभी ने साश्चर्य यह आदेश सुना। एक देवता से आखिर रहा ही न गया और उन्होंने पूछ ही लिया, "स्वर्ग से भी महान् आखिर यह कौन-सा 'तप लोक' है ?"

तब इन्द्र मुसकराते हुये बोले, "यह सर्वश्रेष्ठ लोक वही पुण्यमयी पृथ्वी है, जहाँ मानव रहते हैं। मानव, लोक मंगल में निरत रहने के कारण तथा परमार्थी जीवन जीने के कारण ही सर्वश्रेष्ठ हैं। उनके तप से ही समस्त लोकों की व्यवस्थाएँ विधिवत् चल रही हैं। जो वहाँ पुण्य कार्य करता है, वही देवता बनकर स्वर्ग की शोभा बढ़ाता है और समस्त ऐश्वर्यों का भोग करने का अधिकारी होता है, किन्तु सन्त विद्युध इतने महान् हैं कि स्वर्ग का आनन्ददायक वातावरण भी, इनकी परमार्थ भावना से पूर्ण आत्मा को परितोष नहीं दे सका है। इन्होंने पुनः उसी तपलोक में जाने की इच्छा प्रगट की है, धन्य हैं वे और उनकी सेवा तथा लोकमंगल की भावनाएँ।" समस्त देवताओं का मस्तक विद्युध के समक्ष श्रद्धावनत हो गया। विद्युध पृथ्वी पर लौट आये और पुनः अपनी आत्म सन्तुष्टिकारिणी भावनाओं की संपूर्ति में संलग्न हो गये।

विश्वास की शक्ति अपार होती है

बहुत समय पहले रायगढ़ नामक नगर में राजा दीनदयालसिंह राज्य करते थे। उनके भतीजे का नाम अंगदसिंह था, जो वास्तव में अंगद की ही तरह साहसी, वीर और निर्भयी था। एक बार किसी बड़े मुसलमान सूबेदार ने रायगढ़ पर चढ़ाई की। दीनदयालसिंह को कभी लड़ने-भिड़ने का काम नहीं पड़ा था और उनकी सेना भी भली प्रकार तैयार नहीं थी। इसलिये मुसलमानों के आक्रमण की खबर मिलने पर वे घबड़ा गये और समझ न सके कि अब रक्षा का क्या उपाय किया जाय ? उसी समय अंगदसिंह वहाँ पहुँच गये, महाराज की घबड़ाहट देखकर उन्होंने पूछा—"चाचाजी आज आप ऐसे व्याकुल क्यों दिखलाई पड़ रहे हैं ?" दीनदयाल सिंह ने मुसलमानों के आक्रमण की बात कही और बतलाया कि हमारे पास इतनी सेना नहीं है कि हम उनका मुकाबला कर सकें। नतीजा यह होगा कि वे हमको मारकर हमारे राज्य पर अधिकार कर लेंगे।

अंगदसिंह ने अपने चाचा को धीरज बँधाया और कहा कि युद्ध में विजय, सेना के कम या ज्यादा होने से ही नहीं होती। अनेक बार सौ-पचास वीरों ने हजारों की संख्या वाली सेना को भगा दिया है। मैं आपकी सेना को लेकर मुसलमान सूबेदार से युद्ध करने जाता हूँ और देखता हूँ कि वह कैसा वीर है ?

दोनों सेनाओं का मुकाबला होने पर बड़ी घमासान लड़ाई हुई। मुसलमानों की अधिक संख्या के कारण कई बार अंगदसिंह की सेना घिर गई, पर जैसे ही उसने तलवार लेकर शत्रुओं को घास-फूँस की तरह काटना शुरू किया था कि शत्रु के हौसले पस्त पड़ गये और रायगढ़ की सेना का उत्साह बढ़ गया। अन्त में अंगदसिंह सूबेदार के सामने पहुँच गया और दोनों में तलवार चलने लगी। अन्त में अंगदसिंह ने एक भरपूर हाथ ऐसा मारा कि सूबेदार का मस्तक जमीन पर लुढ़कता दिखलाई पड़ने लगा। अंगदसिंह ने उसका मुकुट उतार लिया और जीत का डंका बजाता हुआ रायगढ़ में वापस आया।

सूबेदार का मुकुट बड़ा सुन्दर था और उसमें बहुमूल्य रत्न जड़े हुये थे। अंगदसिंह ने लड़ाई में विजय प्राप्त करने के उपलक्ष में मुकुट में से एक हीरा निकाल, उसे भगवान जगन्नाथजी को चढ़ाने का संकल्प किया और शेष पूरा मुकुट राजा दीनदयाल सिंह को भेंट कर दिया।

राजा दीनदयाल सिंह को किसी चुगलखोर व्यक्ति द्वारा हीरे के निकाल लेने की बात मालूम पड़ गई और उन्होंने अंगदसिंह को बुलाकर हीरा माँगा। अंगदसिंह ने उनको वास्तविक बात बतला दी। ऐसे भयंकर युद्ध में मेरी रक्षा करने और इतनी बड़ी सेना पर विजय प्राप्त कराने के उपलक्ष में मैंने उस हीरे को भगवान जगन्नाथजी के मंदिर में चढ़ाने का संकल्प किया है। ऐसे पवित्र संकल्प को त्याग देना बड़े पाप की बात होगी। इससे आप उस रत्न को लौटाने का आग्रह न करें।

पर राजा दीनदयाल सिंह संसारी आदमी थे। धर्म-कर्म में उनको अधिक विश्वास न था और भगवान की पूजा वे केवल दुनिया को दिखाने के लिये कर लेते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

थे। इसलिये अपनी पसन्द के ऐसे बहुमूल्य रत्न को मंदिर में चढ़ा देने की बात उनको बहुत बुरी लगी और वे अंगदसिंह पर बार-बार हीरा के लिये दबाव डालने लगे। तब अंगदसिंह अप्रसन्न होकर तथा स्पष्ट इनकार करके वहाँ से उठकर चले आये।

राजा ने देखा कि इस पराक्रमी और असीम साहसी युवक से झगड़ा करके हीरा ले सकना संभव नहीं है, इसलिये किसी तरह से चालाकी से ही काम निकालना चाहिये। उन्होंने लालच देकर और धमकाकर अंगदसिंह के रसोइये को अपने साथ मिला लिया और एक दिन उनके भोजन में विष मिलवा दिया। अंगदसिंह ने अपने नियमानुसार पहले भोजन के सब पदार्थों का भगवान को भोग लगाया और फिर स्वयं भोजन करने को बैठा। उन्होंने पहला ग्रास उठाया कि रसोइये को अपनी करनी पर पश्चाताप होने लगा, विश्वासघात का ख्याल करके उसके हृदय में तीव्र अग्नि जलने लगी और उनका हाथ रोककर विष मिलाने की सब बात प्रकट कर दी। पर अंगदसिंह बोले कि अब तो मैं इस भोजन का प्रभु को भोग लगा चुका। इस प्रसाद स्वरूप भोजन का त्याग नहीं किया जा सकता। अब इसमें विष नहीं रहा, वरन् यह अमृत हो गया। यह कह कर वे भोजन लेकर अपने कमरे के भीतर चले गये और थाल में रखे सब पदार्थों को खा गये। उनके अटल विश्वास का ऐसा परिणाम निकला कि विष से उन पर कुछ भी कुप्रभाव न पड़ा और उनको अपनी शक्ति पहले से भी अधिक जान पड़ने लगी।

पर इस घटना के बाद राजा के दुष्ट व्यवहार और स्वार्थ बुद्धि को देखकर उनके हृदय को बड़ा खेद हुआ और उन्होंने निश्चय किया कि अब यहाँ का रहना ही छोड़ देंगे और सबसे पहले जगन्नाथजी जाकर हीरे को भगवान पर चढ़ा देंगे। यह निश्चय करके तीसरे ही दिन सूरज निकलने के पहले ही वे घर से निकल पड़े और जगन्नाथजी की ओर जाने लगे। इधर किसी ने यह समाचार राजा दीनदयालसिंह को पहुँचा दिया। अपने शिकार को इस प्रकार भागता देखकर उनको बड़ा क्रोध आया और उन्होंने एक सौ सिपाहियों को इसलिये भेजा कि अंगदसिंह को पकड़कर राजी से या मारकर हीरा छीन लावें। अंगदसिंह रायगढ़ से पाँच-सात मील दूर पहुँचकर एक तालाब में स्नान करके किनारे पर बैठकर भगवान की पूजा कर रहे थे। उसी बीच सरकारी सेना के सिपाही उनके पास पहुँच गये और कहा कि हीरा निकालकर हमको दे दीजिये, अन्यथा हम आपको मारकर उसे ले जायेंगे, राजा साहब का यही हुक्म है।

अब अंगदसिंह बड़ी कठिन परिस्थिति में पड़ गये। वे निःशस्त्र बैठे थे और चारों ओर से सशस्त्र सिपाहियों ने घेर रखा था. पर अब भी वे राजा से भयभीत होकर भगवान के प्रति की गई अपनी हार्दिक प्रतिज्ञा को भंग करना नहीं चाहते थे। अतएव उन्होंने अपने मन में ही भगवान से प्रार्थना की कि इस समय 'मैं विवश होकर इस हीरे को आपके मंदिर तक नहीं ले जा सकता. पर अब यहीं से इसे आपकी सेवा में समर्पित करता हूँ।' यह संकल्प करके उन्होंने हीरे को हाथ में लिया और उस गहरे तालाब में फेंक दिया। सिपाही यह देखकर अवाक् रह गये और अब हीरे को पाने का कोई उपाय न देखकर रायगढ़ वापस चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने राजा दीनदयालसिंह को सब किस्सा बतलाया। पर तब भी राजा की आँखें न खुलीं और वह बहुत-से आदमियों को लेकर उस तालाब पर जा पहुँचा। उसने तालाब में से हीरे को निकालने के बहुत-से उपाय किये पर वह उसके हाथ न आया।

कहते हैं कि अंगदसिंह ने जिस आन्तरिक निष्ठा से वह हीरा भगवान को समर्पित किया था, उसके प्रभाव से भगवान ने उसे इतनी दूर से भी स्वीकार कर लिया और वह दैवी शक्ति से उनके मंदिर में पहुँचकर अंगदसिंह की मनोभिलाषा के अनुसार भगवान के रत्नहार में पिरो दिया गया। जब अंगदसिंह कई दिन बाद मन्दिर में पहुँचे और रत्नहार में वह हीरा दिखाई दे गया, तो वे बारम्बार भगवान को प्रणाम करने लगे कि आपने इतने विघ्नों के पड़ने पर भी मेरी प्रतिज्ञा की रक्षा की।

होतव्यता की प्रबलता

एक समय महामुनि वेदव्यास जी स्वेच्छा से परीक्षित पुत्र राजा जन्मेजय की सभा में पधारे। राजा ने महर्षि का बड़ा सत्कार किया और उनसे धर्मोपदेश प्राप्त करने की उत्कंठा प्रकट की। व्यासजी ने राजा को शास्त्र सुनाये। उसी प्रवचन में प्रसंगवश ऐसा आया कि—"प्रारब्ध की अमिट भाग्य रेखाओं को कोई सामर्थ्यवान् भी मिटा नहीं सकता।"

इस प्रवचन को सुनकर राजा ने आश्चर्यान्वित होकर पूछा—"भगवन् ! क्या भाग्य को कोई भी टाल नहीं सकता ? यदि पहले से ही भविष्य का ज्ञान हो जाय तो वह अवश्य टल सकता है।" महर्षि ने कहा, राजन् यदि पहले से पता चल जाय तो भी होतव्यता नहीं टलती। मनुष्य विवश होकर भविष्य के चंगुल में फँस जाता है।" राजा को सन्तोष न हुआ। उसे महर्षि की बात पर विश्वास नहीं हो रहा था। व्यास जी उसके अन्दर की बात जान गये। उन्होंने कहा—राजन् ! तुम अनुभव करके भविष्य की प्रबलता को जानना चाहो तो तुम्हारे भयंकर भविष्य को बता सकता हूँ। इतना ही नहीं, उस होनी से बचने का उपाय भी बता सकता हूँ, पर उससे कुछ न बनेगा, तुम्हारा एक भी प्रयत्न सफल न होगा और भवतव्यता होकर रहेगी।

जन्मेजय ने अत्यन्त नम्रता और उत्सुकता से कहा—"भगवन् मेरा भयंकर भविष्य और उससे बचने के उपाय बता दीजिये। मैं अपने पुरुषार्थ और चातुर्य से उसे टाल दूँगा।"

महर्षि हँसने लगे और कहने लगे—"तू बुद्धिमान होते हुये भी बालकों की-सी बात करता है। प्रारब्ध को टालना तेरे बस की बात नहीं है, पर मैं तेरा भविष्य तुझे बताता हूँ, जिससे तू होतव्यता की प्रबलता जान सके। अब तू ध्यानपूर्वक सुन—तुझे अठारह प्रकार के कोढ़ निकलने वाले हैं। अगर तू उसे टालना चाहता है तो सुन, मैं तुझे उपाय भी बतला दूँ। पहली तो यह बात है कि तू अश्वमेध यज्ञ के घोड़े कदापि मत खरीदना। यह तुझ से न हो सकेगा और भावीवश यदि यज्ञाश्व मोल भी लेगा, तो ऐसा हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाने पर तू दक्षिण दिशा में अश्व पर सवार होकर मत जाना, परन्तु यह भी संभव नहीं है और तुझे जाना ही पड़ेगा। वहाँ तुझे एक सुन्दर स्त्री मिलेगी और तुझको हर तरह ललचायेगी परन्तु तू उसको भी टाल न सकेगा और साथ में उस स्त्री को लाकर पटरानी बना लेगा। इतने पर भी सन्तोष हो जाये तो ठीक है, परन्तु भविष्य तुझे और भी आगे खींचेगा, जिससे तू यज्ञ करने को तैयार हो जायेगा और वो भी अश्वमेध यज्ञ। तू अश्वमेध यज्ञ करके अपने भविष्य का आवाहन स्वयं करेगा।

यज्ञ में वृत ऋत्विक जो अठारह ब्राह्मण होंगे वे बजाय वृद्ध के जवान होंगे। इन ब्राह्मणों से अगर कोई अपराध हो जाये तो क्रोध मत करना, परन्तु तू अवश्य ही क्रोध करेगा। क्रोध होने पर उनको मृत्यु दण्ड मत देना, परन्तु भविष्य टलने वाला नहीं। तू इस कारण से उन अठारहों ब्राह्मणों का शिरच्छेदन करेगा और इस ब्रह्महत्या के कारण तत्काल तुझ को अठारह प्रकार का कोढ़ फूट निकलेगा। अब तुझे इसके निवारण का उपाय बताता हूँ, जो कि तेरा भविष्य तुझ से करायेगा। इस कोढ़ के निवारणार्थ जिसकी वाणी और हस्तदग्ध न हुये हों (दान आदि प्रतिग्रह लेने से हाथ और असत्य अयोग्यादि भाषण करने से वाणी दग्ध अर्थात् भ्रष्ट होती है। ऐसे व्यक्ति में पराक्रम तथा सत्व नहीं रहता) ऐसे ब्राह्मण से तू महाभारत के अष्टादश पर्व का श्रवण करना, परन्तु उसमें किसी बात की शंका मत करना तो तेरा सब कोढ़ मिट जायेगा, परन्तु तुझे उसमें शंका अवश्य होगी और इसके फलस्वरूप अठारह प्रकार के कोढ़ों में से एक कोढ़ तेरे शरीर में जैसे का तैसा रह जायेगा। यह मैंने तेरा सब भविष्य कह सुनाया है। तुझसे हो सके, उतने सब उपाय करके इस भविष्य को टालना।" इतना कहकर वेदव्यासजी वहीं अन्तर्धान हो गये।

मुनि के चले जाने पर राजा जन्मेजय ने नगर में डौंडी पिटवा दी कि कोई गृहस्थ यज्ञ के घोड़े को न खरीदे तथा कोई भी यज्ञाश्व इस नगर में न लावे। थोड़े दिन पीछे इस बात की चर्चा नगर भर में होने लगी कि भैया, अब तो सचमुच कलियुग आ गया। राजा अधर्मी हो गया, कर्म पर से मनुष्य की आस्था उठने लगी। राजा के यहाँ क्या टोटा आ पड़ा जो यज्ञाश्व न ले सके। स्वयं यज्ञ न करे तो न सही, परन्तु दूसरा कोई छोटा-मोटा यज्ञ करे तो उसको भी बन्द करा दिया। इस भाँति जगह-जगह लोग निन्दा करने लगे। राजा के प्रधानों तथा कर्मचारियों को भी बुरा-भला कहकर प्रजा उनको भी त्रास देने लगी। राजा को प्रधानों ने सूचना दी कि आपकी इस आज्ञा से बड़ी निन्दा हो रही है। राजा ने निन्दा का ख्याल कर अपनी पहली आज्ञा को बदल दिया और यज्ञाश्व लाने तथो बेचने का हुक्म दे दिया। अब यज्ञाश्व और नाना प्रकार के अश्व आने लगे। परन्तु यज्ञाश्व खरीदना आसान काम न था, जो यज्ञ कर सके और समस्त दिशाओं को जीत लेने वाला, राजा ही खरीद सकता था। यज्ञाश्व घोड़े आते और चले जाते, नगर में आया हुआ अश्व पीछे लौट जाय तो राजा की अपकीर्ति होती और राजा निःसत्व समझा जाता। इस कारण विवश होकर कीर्ति रक्षा के लिये राजा जन्मेजय को एक यज्ञाश्व खरीदना पड़ा, परन्तु उस पर सवारी न करने का निश्चय किया।

कुछ दिनों के पश्चात् राजा ने विचार किया कि सवारी करने में क्या दोष है ? किधर जाना, किधर न जाना, सो तो अपने हाथ में है। ऐसा सोचकर राजा ने यज्ञाश्व पर सवार होकर उत्तर दिशा को गमन किया, परन्तु होनी प्रबल है, घोड़ा दौड़ते-दौड़ते दक्षिण दिशा को जाने लगा। जाते-जाते रास्ते में एक स्थल पर एक अत्यन्त रूपवती नवयौवना सुन्दर स्त्री दृष्टिगोचर हुई। उस पर मोहित हो जाने के कारण राजा ने ही आगे बढ़कर पूछा "हे स्वर्ग की मनमोहनी ! तू अकस्मात् इस स्थान पर कहाँ से आई ?" उसने उत्तर दिया कि स्वर्ग लोक में से। पुनः राजा ने पूछा, "तेरी क्या इच्छा है ? क्या तू मेरे साथ चलेगी ? मैं पृथ्वीपति राजा हूँ।" सुन्दरी ने कहा कि मेरे साथ प्रतिज्ञा करने से मैं चल सकती हूँ। राजा के पुनः पूछने पर उसने कहा कि मुझे पटरानी बनाने की प्रतिज्ञा पर मैं चल सकती हूँ। राजा ने स्वीकार किया और मन में विचार किया कि पटरानी बनावेंगे, किन्तु यज्ञ नहीं करेंगे। तदनन्तर राजा ने उसे भवन में लाकर विवाह करके पटरानी के पद पर स्थापित किया।

राजा के यज्ञ न करने का निश्चय कर बैठने पर उसकी अपकीर्ति होने लगी और अब तो राजा भी समय के अनुकूल होने लगे। जब यज्ञ-याज्ञादिक कर्म बन्द हो गये तब वर्षा कहाँ से होवे ? प्रजा पीड़ित होने लगी और अश्व खरीदा हुआ है, दिग्विजय भी किया हुआ है, इतने पर भी राजा यज्ञ नहीं करता इसका क्या कारण है ? इस प्रकार अपकीर्ति सुनकर राजा ने अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया। मुनि के कथनानुसार वृद्ध ऋत्विजों की बहुत-सी खोज कराई गई, परन्तु एक भी वृद्ध ब्राह्मण नहीं मिला, प्रत्युत सब ब्राह्मण जवान और मसखरे मिले, यज्ञ होने लगा। ब्राह्मण स्वाहा-स्वाहा करते हुये हवनीय पदार्थ की आहुति देने लगे। कई दिनों तक गाजे-बाजे के साथ यज्ञ होता रहा।

अश्वमेध में घोड़े के सभी अंगों का न्यास होता है। इस कृत्य को यजमान की धर्मपत्नी करती है। राजा जन्मेजय की रानी अत्यन्त सुन्दरी थी। जब रानी ने क्रमशः सब अंगों का न्यास करते हुये घोड़े के गुप्तांग का न्यास किया तो ये यज्ञ कराने वाले तरुण ब्राह्मण हँस पड़े। उन्हें हँसते देखकर उपस्थित जन-समुदाय भी हँस पड़ा। राजा के क्रोध की सीमा न रही। उसने दाँत पीसते हुये सामने रखे हुये यज्ञ पात्र उन ब्राह्मणों को मारे। होनी की प्रबलता देखिये, उन हलके से पात्रों के आघातों से अठारहों ब्राह्मणों के सिर धड़ से कटकर भूमि पर गिर पड़े। चारों ओर हाहाकार छा गया। राजा को ब्रह्म हत्या का पाप लगा और वह अठारह प्रकार के कोढ़ों से कोढ़ी हो गया।

राजा कोढ़ से दुःखी था। सब ने उसे छूना तक बन्द कर दिया। उसकी बड़ी दुर्गति होने लगी। जन्मेजय को महर्षि वेदव्यास के वचन याद आये कि उन्होंने कोढ़ के निवारण के लिये महाभारत सुनने का उपाय बताया था। राजा की आज्ञानुसार मन्त्रियों ने ऐसा ब्राह्मण खोजा जिसकी वाणी असत्य और प्रतिग्रह से दग्ध न हुई हो। ऐसे महातेजस्वी मुनि वैशम्पायन से महाभारत सुनाने की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रार्थना की गई। मुनि ने कहा—"राजन् ! इस महाग्रन्थ में कुछ विचित्र बातें हैं, उनके रहस्य सबको विदित नहीं, तो भी उसमें असत्य की कोई बात नहीं है। तू मुझ से रहस्य तो पूछ लेना पर अविश्वास मत करना, अन्यथा उसके सुनने का पुण्य नष्ट हो जायेगा।" राजा ने उनकी बात मान ली और कथा सुनने लगा।

ज्यों-ज्यों राजा पर्वों को सुनता गया त्यों-त्यों उसका एक-एक प्रकार का कोढ़ नष्ट होता चला गया। इस भाँति ९७ कोढ़ मिट गये पर १८वें पर्व पर उसे शंका उत्पन्न हो गई। वैशम्पायन जी भीम का पराक्रम और उनके हाथी उठा-उठा कर फेंक देने की कथा सुना रहे थे। राजा को यह बात असंभव लगी। उसने चिल्ला कर कहा—"मुनिराज यह सर्वथा असत्य है, बिल्कुल असंभव है। मनुष्य हाथी को उठाकर फेंक दे यह हो नहीं सकता।" राजा का यह कहना था कि उसका अठाहरवाँ कोढ़ स्थायी हो गया। कथा पूरी हो गई।

वैशम्पायनजी ने अपने योगबल से जन्मेजय को प्राचीन काल के दृश्य दिखाये, तब राजा ने अपनी आँखों से भीम का पराक्रम देखा। उसे बड़ा पश्चाताप हुआ कि मैंने ऐसी भूल क्यों की ? शंका क्यों उठाई, यदि न उठाता, तो एक कोढ़ से कोढ़ी रहने के दुःख से बच जाता। राजा पश्चाताप और दुःख से दुःखी होकर रोने लगा। तब मुनि ने उसे समझाया कि इसमें तेरा क्या दोष है ? होतव्यता किसी न किसी प्रकार अपना प्रभाव प्रकट कर देती है। वह किसी से भी, किसी उपाय से भी, कदापि नहीं टलती, इस प्रकार उसको सान्त्वना देकर मुनि अपने स्थान को चले गये और राजा होतव्यता की प्रबलता को देखता ही रह गया।

आखिर मृत्युभय क्यों ?

राजा परीक्षित को भागवत सुनाते हुये जब शुकदेव को छह दिन बीत गये और सर्प के काटने से मृत्यु होने का एक दिन रह गया तब भी राजा का शोक और मृत्यु भय दूर न हुआ। कातर भाव से अपने मरने की घड़ी निकट आती देखकर राजा क्षुब्ध हो रहा था।

शुकदेवजी ने राजा को एक कथा सुनाई—राजन् ! बहुत समय पहले की बात है। एक राजा किसी जंगल में शिकार खेलने गया। संयोगवश वह रास्ता भूलकर बड़े घने जंगल में जा निकला, रात्रि हो गई। वर्षा पड़ने लगी। सिंह, व्याघ्र बोलने लगे। राजा बहुत डरा और किसी प्रकार रात्रि बिताने के लिये विश्राम का स्थान ढूँढ़ने लगा। कुछ दूर पर उसे दीपक दिखाई दिया। वहाँ पहुँचकर उसने एक गन्दे बीमार बहेलिये की झोंपड़ी देखी। वह चल-फिर नहीं सकता था इसलिये झोंपड़ी में ही एक ओर उसने मल-मूत्र त्यागने का स्थान बना रखा था। अपने खाने के लिये जानवरों का मांस उसने झोंपड़ी की छत पर लटका रखा था। बड़ी गन्दी, छोटी, अंधेरी, दुर्गन्धयुक्त वह कोठरी थी। उसे देखकर राजा पहले तो ठिठका पर पीछे उसने और कोई आश्रय न देखकर विवशतावश उस बहेलिये से अपनी कोठरी में रात भर ठहर जाने देने के लिये प्रार्थना की।

बहेलिये ने कहा—"आश्रय हेतु कुछ राहगीर कभी-कभी यहाँ आ भटकते हैं और मैं उन्हें ठहरा लेता हूँ लेकिन दूसरे दिन जाते समय वे बहुत झंझट करते हैं। इस झोंपड़ी की गन्ध उन्हें ऐसी भा जाती है कि फिर उसे छोड़ना ही नहीं चाहते। इसी में रहने की कोशिश करते हैं और अपना कब्जा जमाते हैं। ऐसे झंझट में मैं कई बार पड़ चुका हूँ। अब किसी को नहीं ठहरने देता। आपको भी इसमें नहीं ठहरने दूँगा।" राजा ने प्रतिज्ञा की, कसम खाई कि वह दूसरे दिन इस झोंपड़ी को अवश्य खाली कर देगा। उसका महल तो बहुत बड़ा है। यहाँ तो वह संयोगवश ही आया है। सिर्फ एक रात ही काटनी है।

बहेलिये ने अन्यमनस्क होकर राजा को झोंपड़ी के कोने में ठहर जाने दिया, पर दूसरे दिन प्रातःकाल ही बिना झंझट किये झोंपड़ी खाली कर देने की शर्त को दुहरा दिया। राजा एक कोने में पड़ा रहा। रात भर सोया। सोने में झोंपड़ी की दुर्गन्ध उसके मस्तिष्क में ऐसी बस गई कि सबेरे उठा तो उसे वही सब परमप्रिय लगने लगा। राज-काज की बात भूल गया और वहीं निवास करने की बात सोचने लगा।

प्रातःकाल जब राजा और ठहरने के लिये आग्रह करने लगा तो बहेलिये ने लाल-पीली आँखें निकालीं और झंझट शुरू हो गया। झंझट बढ़ा। उपद्रव और कलह का रूप धारण कर लिया। राजा मरने-मारने पर उतारू हो गया। उसे छोड़ने में भारी कष्ट और शोक अनुभव करने लगा।

शुकदेवजी ने पूछा—"परीक्षित ! बताओ, उस राजा के लिये क्या यह झंझट उचित था ?" परीक्षित ने कहा—"भगवन वह कौन राजा था, उसका नाम तो बताइये। वह तो बड़ा मूर्ख मालूम पड़ता है कि ऐसी गन्दी कोठरी में अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर, राज-काज छोड़कर, नियत अवधि से भी अधिक रहना चाहता था। उसकी मूर्खता पर तो मुझे भी क्रोध आता है।"

शुकदेव जी ने कहा—"परीक्षित ! वह और कोई नहीं तुम स्वयं हो। इस मल-मूत्र की कोठरी देह में, जितने समय तुम्हारी आत्मा को रहना आवश्यक था वह अवधि पूरी हो गई। अब उस लोक को जाना है, जहाँ से आप आये थे। इस पर भी आप झंझट फैला रहे हैं। मरना नहीं चाहते एवं मरने का शोक कर रहे हो। क्या यह उचित है ?"

राजा ने कथा के मर्म को स्वयं पर आरोपित किया एवं मृत्युभय को भुलाते हुये मानसिक रूप से निर्वाण की अपनी तैयारी कर ली। अन्तिम दिन का कथा श्रवण उन्होंने पूरे मन से किया।

वस्तुतः मरने के लिये हर मानव को हर घड़ी तैयार रहना चाहिये। यह शरीर तो कभी न कभी विनष्ट होना ही है, लेकिन आत्मा कभी नहीं मरती। उसी को ऊँचा उठाने के प्रयास जीवनपर्यन्त किये जाते रहें तो भावी जन्म सार्थक किया जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सः आत्मज्ञानी—सः ब्रह्मवेत्ता

पूर्णमासी का चन्द्रमा शीश पर आकर झिलमिलाया और राजहंसों की टोली मान-सरोवर के प्रवास पर निकल पड़ी। हंस-शिरोमणि श्वेताक्ष दल का नेतृत्व संभालकर आगे-आगे उड़ रहे थे और भल्लाक्ष सबसे पीछे संरक्षक के रूप में। नीरव निशा का यह मौन-प्रवास ऐसा लग रहा था मानो विधाता की कोमल भावनाएँ पर्यटन के लिये निकली हों और संसार के सुख-दुःख का सर्वेक्षण कर रही हों।

श्वेताक्ष ! भल्लाक्ष ने निस्तब्धता तोड़ते हुये कहा—महामहिम जनश्रुति पौत्रायण की कीर्ति पताका भी विश्व इतिहास के आकाश में आज के चन्द्रमा के समान ही दमक रही है। उन्होंने अपना सारा जीवन प्रजा की भलाई में लगा दिया है। उनके राज्य में कोई भी दुःखी नहीं है। तुम संभवतः नहीं जानते होंगे कि इस समय हम उन्हीं की राजधानी के ऊपर उड़ रहे हैं, यह जो गगनचुम्बी अट्टालिकायें दिख रही हैं, यह उन्हीं का प्रासाद है। सचमुच ये बड़े ब्रह्म ज्ञानी हैं।

श्वेताक्ष ने हँसकर कहा, सच कहते हैं तात् ! जनश्रुति पौत्रायण एक महान् आत्मा है। उनके गुणों की जितनी प्रशंसा की जाये उतनी कम है किन्तु वे ब्रह्मज्ञानी हैं इसमें अभी सन्देह है। वित्तेषणा, पुत्रेषणा का त्याग ही नहीं, जब तक योगी, यश की कामना का भी परित्याग नहीं करता तब तक वह ब्रह्मविद् नहीं हो सकता। ब्राह्मण तो सारे राष्ट्र में एक रैक्व मुनि ही हैं, जो धन-निर्धन, यश, अपयश, मान, अपमान में सदैव एकसमान निर्लिप्त जीवनयापन करते हैं।"

महाराज जनश्रुति पक्षियों की भाषा समझते थे। पहले तो उन्हें राजहंसों की वार्ता कौतूहलवर्धक लगी पर जब उन्होंने अपने ही राज्य में रैक्व नामक किसी अन्य साधु की श्रेष्ठता की चर्चा सुनी तो उनका स्वाभिमानी अन्तःकरण मर्माहत हो उठा। आज तक उन्होंने प्रशंसा सुनी थी, यशोगान सुने थे किसी और को उनसे बड़ा बताया गया हो; ऐसा वाक्य उन्हें पहली बार सुनने को मिला था सो उन्होंने महामुनि रैक्व का पता लगाने और सच्चे ब्रह्मज्ञानी की पहचान करने का निश्चय कर लिया।

प्रातःकाल होने पर, गज-रथ लेकर रैक्व मुनि से भेंट के लिये प्रस्थान किया। दिन भर यात्रा करने के उपरान्त वे एक गाँव के किनारे मिले। एक छोटी-सी बैलगाड़ी के सामने एक साधारण से बिस्तर पर बैठे रैक्व ग्रामवासियों को सुखी जीवन के स्वर्ण सूत्र समझा रहे थे। महाराज को सम्मुख आता हुआ देखकर उन्होंने वार्ता स्थगित कर उनका स्वागत किया, बैठाया और जहाँ से प्रवचन छोड़ा था आगे की बात कहनी प्रारम्भ कर दी। महाराज को संक्षिप्त स्वागत से संतोष न हुआ वे उस समय कुछ बोले नहीं।

सभा विसर्जित हुई, महाराज ने अपार धन महात्मा रैक्व को समर्पित करते हुये कहा कि भगवान आप इतने विद्वान् होकर भी गाड़ी में भ्रमण करते हैं यह धन लें, और अपनी दरिद्रता दूर करें।

रैक्व ने उसे अस्वीकार करते हुये कहा—"राजन् ! धन से लोगों की स्थूल सेवा हो सकती है। आत्म-कल्याण का मार्ग-दर्शन नहीं। मेरी यह गाड़ी ही सर्वोत्तम धन है कहकर उन्होंने राजा की भी परवाह न करते हुये अपनी गाड़ी जोती और वहाँ से आगे के लिये चल पड़े। महाराज ने उसका बुरा न माना और अनुभव किया कि जो व्यक्ति निर्लिप्त भाव से, यश-अपयश की चिन्ता किये बिना एक लक्ष्य की ओर बढ़ता है, वही आत्म-ज्ञानी तथा वही सच्चा ब्रह्मवेत्ता है।

ब्रह्मदर्शन के लिये सेवाधर्म

प्रकाण्ड विद्वत्ता और अनुपम शास्त्रीय ज्ञान के कारण अनमीषि को 'अक्षर महर्षि' कहा जाता था। वे आश्रम में ब्रह्मचारियों का शिक्षण करते और अपने ज्ञान का निरन्तर दान करते रहते। नागरिक, आश्रम के लिये अन्नादि की व्यवस्था जुटा देते।

एक दिन अनमीषि के आश्रम में एक सन्त पधारे तथा प्रार्थना की—"हमें कुछ अन्न-दान दें, जिससे निर्धनों और भूखों के लिये सदावर्त चलाया जा सके।" महर्षि ने कहा—"श्रीमान् ! मेरे पास ज्ञान-धन है, उसका ही दान करता हूँ। अन्न तो सीमित ही है, उसका दान मैं कैसे करूँ ?"

सन्त ने कहा—"ऋषिवर ! ज्ञान का दान तो श्रेष्ठ कर्म है ही, पर व्यक्ति के पास इसके अतिरिक्त, धन भी रहता है—अन्न, श्रम आदि। आप विद्यार्थियों के शिक्षण में ज्ञान, समय और श्रम लगाते हैं। परन्तु अन्न भी तो आपके द्वारा उपार्जित धन ही है। उसका भी एक अंश लोक-मंगल के लिये समर्पित होना ही चाहिये। मात्र अपने लिये खाने वाले को तो पापी कहा गया है।"

विद्वान ऋषि को शास्त्र-पुष्ट यह कथन सही लगा। विनयपूर्वक उन्होंने सन्त से क्षमा माँगी और कहा—"मैं आपके इस उपदेश को जीवन में उतारूँगा।"

जीवन-सहचरी से महर्षि ने मन्त्रणा की। उस धर्मपरायणा ने सहर्ष स्वीकृति दे दी। महर्षि दम्पत्ति नित्य किसी क्षुधा पीड़ित को भोजन कराकर अन्न-जल ग्रहण करते।

लम्बे समय बाद, एक दिन ऐसा हुआ कि कोई भी आश्रम के द्वार पर नहीं आया। प्रतीक्षा में दिन ढल गया। ऋषि-दम्पत्ति को लगा कि आज यह क्रम भंग हो जायेगा। अभी तक तो निरन्तर चल रहा था। अतः वे व्यग्र हो उठे।

किसी सत्पात्र की खोज में ऋषि दम्पत्ति आश्रम के बाहर निकल पड़े। कुछ दूर जाने पर एक वृक्ष के नीचे एक वृद्ध कुष्ठ रोगी पीड़ा से कराहता लेटा दीखा। उसके शरीर में घाव थे। पीड़ा की अनुभूति से ऋषि की करुणा उमड़ पड़ी। वे वृद्ध के पास पहुँचे और आश्रम चलकर भोजन ग्रहण करने तथा सेवा का अवसर देने को कहा।

पीड़ा भरे स्वर में वृद्ध ने कहा—"आर्य श्रेष्ठ ! मैं चाण्डाल हूँ। आश्रम में कैसे जाऊँ ? आप करुणामूर्ति हैं। प्रभु आपका मंगल करें। आप कुछ बची-खुची सामग्री यहीं भेज दें तो मैं खाकर तृप्त हो जाऊँ।"

ऋषि की कोमल भावना नेत्रों से अश्रुधार बनकर व्यक्त हो उठी। उन्होंने विनम्र एवं दृढ़ शब्दों में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कहा—"तात् ! हम ऐसी मिथ्या मर्यादाएँ नहीं मानते जो मानवी स्नेह-सौजन्य में बाधा पहुँचाती हों। हम सभी एक ही परमात्मा के अंश हैं। हममें और आपमें कोई भेद नहीं। आप कृपा कर आश्रम चलें व हमें सेवा का अवसर दें।"

महर्षि दम्पत्ति के आग्रह को टाल पाना वृद्ध के वश में नहीं था। वे दोनों उसे आश्रम ले गये। उसके हाथ-पैर धुलाये और प्राथमिक उपचार किया तथा भोजन कराकर अपना व्रत पूर्ण किया।

रात को गहरी निद्रा की स्थिति में महर्षि को लगा कि प्रभु उनसे कह रहे हैं—"अनमीषि ! यही है सच्चा सेवा-धर्म। इसी को अपनाने से आत्मा की प्राप्ति तथा ब्रह्म का साक्षात्कार होता है।" प्रातः जगने पर ऋषि ने देखा—उनकी धर्मपत्नी के मुखमण्डल पर भी ब्रह्म तेज के प्रतीक चिन्ह, गहरी तृप्ति, आन्तरिक आल्हाद एवं प्रसन्नता के भाव छाये हैं।

सच्ची साधना

पति का अकाल निधन, साध्वी रोहिणी पर वज्राघात था, जिसे सहन कर सकना असंभव था, किन्तु पुत्र देव शर्मा के प्रति कर्त्तव्य और ममता ने उसे जीने के लिये विवश कर दिया। अभ्यास नहीं था, तो भी उसने घोर परिश्रम किया और बेटे का न केवल पालन-पोषण ही किया वरन् उसे वेदांग के अध्ययन जैसी उच्च शिक्षा भी दिलाई। देवशर्मा माँ के प्रताप से अपने समय के श्रेष्ठ विद्वानों में गिना जाने लगा।

माँ वृद्ध हो गई थी। नीति कहती थी अब बेटे को प्रत्युपकार करना चाहिये, पर दुष्ट कृतघ्नता को क्या कहा जाये—जहाँ भी उसका जन्म हुआ, मर्यादाएँ, नीति और कर्त्तव्यभाव वहीं विशृंखलित हुये। संसार में यह जो कलह और अशांति है, कृतघ्नता ही उसका एकमात्र कारण है। बेटे के मन में यह समझ नहीं आई। अपनी मुक्ति, अपना स्वर्ग उसे अधिक आवश्यक लगा, सो माँ और छोटी बहिन को बिलखता छोड़कर देवशर्मा घर से भाग निकला और तीर्थाटन करते हुये नन्दिग्राम के एक मठ में जाकर तप करने लगा।

एक दिन देवशर्मा प्रातःकाल नदी के किनारे पहुँचे। स्नान कर अपना चीवर सूखने के लिये जमीन पर डाल दिया और स्वयं वहीं पर आसन डालकर ध्यानमग्न हो गये। प्रातःकालीन सन्ध्या समाप्त कर जैसे ही देवशर्मा उठे उन्होंने देखा, एक कौवा और एक बकुल चीवर को चोंच में दबाकर उड़े जा रहे हैं। देवशर्मा के क्रोध का ठिकाना न रहा। उन्होंने बड़ी-बड़ी तान्त्रिक सिद्धियाँ प्राप्त की थीं। शक्ति का मद बड़ा बुरा होता है, उन्होंने क्रोधपूर्ण दृष्टि से पक्षियों की ओर देखा। आँखों से अग्नि की ज्वाला फूटी और दोनों पक्षी जलकर वहीं खाक हो गये। देवशर्मा अपनी सिद्धि देखकर फूले नहीं समाये। उन्हें लगा समस्त भूमण्डल पर उन जैसा कोई दूसरा सिद्ध नहीं है।

अहंकार से भरे देवशर्मा मठ की ओर चल पड़े। मार्ग में नन्दिग्राम पड़ता था। सोचा आज की भिक्षा भी लेते चलें सो देवशर्मा ने एक सद्गृहस्थ के द्वार पर **"भवति भिक्षां देहि"** की पुकार लगाई और भिक्षा की प्रतीक्षा में वहीं खड़े हो गये।

भीतर से आवाज आ रही थी, इससे पता चलता था कि गृहस्वामिनी अन्दर ही है, पर कोई बाहर नहीं आ रहा, यह देखकर देवशर्मा को बड़ा गुस्सा आया। उन्होंने दुबारा, तिबारा और चौथी बार भी पुकारा पर हर बार भीतर से एक ही आवाज आई—"स्वामीजी ठहरिये ! मैं अभी साधना कर रही हूँ, साधना समाप्त कर लूँगी तब भिक्षा दूँगी, तब तक आप खड़े रहिये।" देवशर्मा का क्रोध सीमा पार कर गया। तड़पकर बोले—"दुष्टा ! साधना कर रही है या परिहास—जानती नहीं इस अवहेलना का क्या परिणाम हो सकता है ?"

संयत और गम्भीर स्वर भीतर से बाहर आया—"महात्मन् जानती हूँ आप शाप देना चाहेंगे किन्तु मैं कोई कौवा और बलाका नहीं, संत ! जो तुम्हारी कोप दृष्टि से जलकर नष्ट हो जाऊँगी। जिसने तुम्हें जीवन भर पाला उस माँ को त्यागकर अपनी मुक्ति चाहने वाले साधु ! आप मेरा कुछ भी तो बिगाड़ नहीं सकते ?"

देवशर्मा का सिद्धि का अहंकार चूर-चूर हो गया। कुछ देर बाद गृहस्वामिनी घर से बाहर आई और भिक्षा देने लगी। देवशर्मा ने साश्चर्य पूछा—"भद्रे ! आप मुझे यह बता दें कि आप कौन-सी साधना करती हैं, जिससे बिना देखे ही कौए के जलाने और माँ को असहाय छोड़ आने की घटना जान गईं।"

गृहस्वामिनी ने उत्तर दिया—"कर्त्तव्य की साधना" महात्मन् ! मैं अपने पति, अपने बच्चे, अपने परिवार, समाज और देश के प्रति कर्त्तव्यों का निष्ठापूर्वक पालन करती हूँ, उसी की सिद्धि है यह।" देवशर्मा का सिर लज्जा से नीचे झुक गया। भीख नहीं ली उन्होंने—चुपचाप जिस घर को छोड़कर आये थे, चल पड़े उसी ओर, छोड़ी हुई कर्त्तव्य की साधना पूरी करने।

गुप्त साधना

एक मनुष्य ने सुन रखा था कि आध्यात्मिक जगत में कुछ ऐसे गुप्त मन्त्र हैं, जो यदि किसी को सिद्ध हो जायें, तो उसे बहुत सिद्धियाँ मिल सकती हैं। मन्त्रों की अद्भुत शक्तियों के बारे में उसने बहुत कुछ सुन रखा था और बहुत कुछ देखा था, इसलिये उसे बड़ी प्रबल उत्कंठा थी कि किसी प्रकार कोई मन्त्र सिद्ध कर लें, तो आराम से जिन्दगी बीते और गुणवान तथा यशस्वी बन जावे।

गुप्त मन्त्र की दीक्षा लेने के विचार से गुरुओं की तलाश करता हुआ, यह दूर-दूर मारा फिरने लगा। एक दिन एक सुयोग्य गुरु का उसे पता चला और यह उनके पास जा पहुँचा। वह महानुभाव दीक्षा देने के लिये तैयार न होते थे, पर जब उस मनुष्य ने बहुत प्रार्थना की और चरणों पर गिरा तो उन महानुभाव ने उसे शिष्य बना लिया। कुछ दिन के उपरान्त उसे गुप्त मन्त्र बताने की तिथि नियत की गई। उस दिन उसे गायत्री मन्त्र की दीक्षा दे दी और आदेश कर दिया कि इस मन्त्र को गुप्त रखना, यह अलभ्य मन्त्र औरों को मालूम नहीं है, तू इसका निष्ठापूर्वक जप करले तो बहुत-सी सिद्धियाँ प्राप्त हो जायेंगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शिष्य उस मन्त्र का जप करने लगा। एक दिन वह नदी किनारे गया तो देखा कि कुछ लोग गायत्री मन्त्र को जोर-जोर से उच्चारण करते जा रहे थे। शिष्य को सन्देह हुआ कि इसे तो और लोग भी जानते हैं, इसमें गुप्त क्या है ? इसी सोच-विचार में वह आगे नगर में गया तो देखा कि कितनी ही दीवारों पर गायत्री मन्त्र लिखा हुआ है। वह और आगे चला तो एक पुस्तक विक्रेता की दुकान पर गायत्री संबंधी बहुत-सी पुस्तकें देखीं, जिनमें वह मन्त्र छपा हुआ था। अब उसका सन्देह दृढ़ होने लगा। वह सोचने लगा यह तो मामूली मन्त्र है और सब पर प्रकट है। गुरुजी ने मुझे यों ही बहका दिया है। भला इससे क्या लाभ हो सकता है ?

इन संदेहों के साथ वह गुरुजी के पास पहुँचा और क्रोधपूर्वक उनसे कहने लगा कि आपने व्यर्थ ही मुझे उलझा रखा है और एक मामूली मन्त्र को गुप्त एवं रहस्य पूर्ण बताया है।

गुरुजी बड़े उदार और क्षमाशील थे। उतावले शिष्य को क्रोधपूर्वक वैसी ही उतावली का उत्तर देने की अपेक्षा उसे समझाकर सन्तोष करा देना ही उचित समझा। उन्होंने उस समय उससे कुछ न कहा और चुप हो गये। दूसरे दिन उन्होंने उस शिष्य को बुलाकर एक हीरा दिया और कहा इसे क्रमशः कुँजड़े, पंसारी, सुनार, महाजन और जौहरी के पास ले जाओ और वे जो इसका मूल्य बतावें उसे आकर मुझे बताओ। शिष्य गुरुजी की आज्ञानुसार चल दिया। पहले यह कुँजड़े के पास पहुँचा और उसे दिखाते हुये कहा इस वस्तु का क्या मूल्य दे सकते हो ? कुँजड़े ने उसे देखा और कहा काँच की गोली है, पड़ी रहेगी, बच्चे खेलते रहेंगे, इसके बदले में पाव भर साग ले जाओ। इसके बाद वह उसे पंसारी के यहाँ ले गया। पंसारी ने देखा काँच चमकदार है, तौलने के लिये बाँट अच्छा रहेगा। उसने कहा भाई, इसके बदले में एक सेर नमक ले सकते हो। शिष्य फिर आगे बढ़ा और एक सुनार के पास पहुँचा। सुनार ने देखा कोई अच्छा पत्थर है। जेवरों में नग लगाने के लिये अच्छा रहेगा। उसने कहा कि इसकी कीमत ५०) रु. दे सकता हूँ। इसके बाद वह महाजन के पास पहुँचा। महाजन पहचान गया कि यह हीरा है, पर यह न समझ सका किस जाति का है, तब भी उसने अपनी बुद्धि के अनुसार उसका मूल्य एक हजार रुपया लगा दिया। अन्त में शिष्य जब जौहरी के पास पहुँचा तो उसने दस हजार रुपया दाम लगाया। इन सब के उत्तरों को लेकर वह गुरुजी के पास पहुँचा और जिसने जो कीमत लगाई थी, वह उन्हें कह सुनाई।

गुरु ने कहा—"यही तुम्हारे संदेहों का उत्तर है। एक वस्तु को देखा तो सबने, पर मूल्य अपनी बुद्धि के अनुसार आँका। मन्त्र साधारण मालूम पड़ता है और उसे सब कोई जानते हैं, पर उसका असली मूल्य जान लेना सबके लिये संभव नहीं है। जो उसके गुप्त तत्व को जान लेता है, वह अपनी श्रद्धा के अनुसार लाभ उठा लेता है।"

यथार्थ में मन्त्रानुष्ठान और आध्यात्मिक क्रियाओं को स्थूल दृष्टि से देखा जाये, तो वे वैसी ही मामूली और तुच्छ प्रतीत होती हैं जैसा कि कुँजड़े को यह काँच की गोली प्रतीत हुई थी, किन्तु श्रद्धा और निष्ठा के द्वारा जिसने अपना मन जौहरी बना लिया है, उसके लिये वह साधनाएँ बड़ा महत्त्व रखती हैं और इच्छानुसार फल भी देती हैं। सारा महत्त्व श्रद्धा और विश्वास में है। विश्वास के साथ की गई एक छोटी-सी क्रिया भी विचित्र फल दिखाती है, किन्तु अविश्वास और अश्रद्धा के साथ किया हुआ अश्वमेध भी निष्फल है। यही गुप्त साधनाओं का रहस्य है।

श्रद्धा और विवेक की परम्परा

वाराणसी नगरी के राजा एक दिन प्रजा के दुःख-सुख जानने के लिये राजपुरोहित के साथ राज्य में भ्रमण करने निकले। उन्होंने वेश बदल लिया ताकि कोई उन्हें पहचान न सके।

भ्रमण करते-करते वे किसी उपनगर में पहुँचे। पुरोहित नित्य-कर्म के लिये दूर गये थे। राजा पेड़ के नीचे सुस्ता रहे थे।

उधर से एक सद्गृहस्थ निकला तो सुन्दर आभा वाले इस तेजस्वी व्यक्ति को अतिथि समझकर घर से भोजन लेने चला गया। लौटकर आया तो अनेक व्यंजनों से सुसज्जित थाल उसके हाथ में था। उसे अतिथि के आगे रख दिया।

तब तक पुरोहित भी वापस आ चुके थे। राजा ने स्वयं भूखे होते हुये भी वह थाल पुरोहित को दे दिया। पुरोहित ने उसे खाया नहीं। वे कुछ देर सोचते रहे और थोड़ी दूर तपश्चर्या में निरत एक तपस्वी को वह भोजन अर्पित कर दिया। तपस्वी ने चारों ओर दृष्टिपात किया तो उसे एक भिक्षु दिखाई दिया। तपस्वी ने थाल का भोजन भिक्षु के भिक्षा पात्र में डाल दिया। भिक्षु ने उसे सन्तोषपूर्वक खा लिया।

जो सद्गृहस्थ थाल लेकर आया था, उसने यह सब देखा और आश्चर्यचकित हो अतिथि से पूछा, "बन्धु ! आपके लिये आगत भोजन को स्वयं न करके दूसरे को दे देने का क्या कारण है ?"

अतिथि ने उत्तर दिया—"मैं साधारण गृहस्थ हूँ। मेरी उपयोगिता मेरे निज के जीवन तक ही सीमित है किन्तु यह पुरोहित जिन्हें मैंने उपलब्ध भोजन दिया संसार के लिये अधिक उपयोगी है। इनका शरीर असंख्य मानवों को ज्ञान-दान करके उन्हें सन्मार्ग पर लगाता है, इनकी उपयोगिता अधिक है। इसलिये मैंने अपनी तुलना में उन्हें अधिक उपयोगी पाया और वह भोजन उन्हें दे दिया।"

गृहस्थ ने पुरोहित से पूछा—"भगवन्, भला आपने अपना भोजन दूसरे को क्यों दे दिया ?"

पुरोहित ने कहा—"तपस्या का महत्त्व ब्रह्मकर्म से भी अधिक है। तप के द्वारा जो ब्रह्मतेज उत्पन्न होता है, उससे ब्रह्मकर्म से भी अधिक लोकहित की संभावना रहती है। तपस्या का साहस कोई विरले ही करते हैं, सो उस पुण्य परम्परा का पोषण आवश्यक है। मैंने स्वार्थ का नहीं उपयोगिता का ध्यान रखा और आगत भोजन तपस्वी को दे दिया।"

गृहस्थ ने तपस्वी से पूछा—"आपने वह भोजन भिक्षु को किस कारण दे डाला, भगवन् !"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तपस्वी ने शान्त स्वर से कहा—"भद्र, मैं इन्द्रियों को जीतने की साधना कर रहा हूँ। इसके लिये हठपूर्वक उनका निरोध करना आवश्यक है। स्वादिष्ट व्यंजनों का आहार मेरी स्वादेन्द्रिय को विचलित करने वाला, बाधक सिद्ध होता सो मैंने यही उचित समझा कि अपने से अधिक सत्पात्र उस अपरिग्रही भिक्षु को दे दूँ।"

गृहस्थ ने भिक्षु से पूछा—"आपने किस कारण वह भोजन स्वयं ही कर लिया ?"

भिक्षु बोला—"हे सद्गृहस्थ ! मैं विवेक का जागरण करने के लिये द्वार-द्वार पर परिभ्रमण करता हूँ, ताकि व्यक्ति स्वार्थी न बने, उपयोगिता का ध्यान रखकर ही उपलब्ध साधनों का उपभोग किया जाय। यह प्रशिक्षण मेरे जीवन का व्रत है। इन तीनों में इस पुण्य-परम्परा को फलित होते मैंने देखा और प्रेमपूर्वक भोजन कर लिया।"

अतिथि ने सद्गृहस्थ को और भी अधिक स्पष्टता से समझाते हुये कहा—"विवेक ही इस संसार का मेरुदण्ड है। यदि मनुष्य स्वार्थ की ही सोचे और उपयोगिता एवं लोकहित की बात को भुला दे, तो फिर यहाँ नरक और अशान्ति के अतिरिक्त और कुछ शेष न रहेगा। यह धरती पुण्य के बल पर ही चलती है। सो हे सद्गृहस्थ ! हम सबको श्रद्धा और विवेक की पारमार्थिक पुण्य-परम्पराओं को भूखे रहकर भी सींचते रहना चाहिये।"

विदुर और कृष्ण

महाभारत काल में महात्मा विदुर बहुत ही सज्जन और साधु स्वभाव के व्यक्ति थे। यद्यपि ये दासी पुत्र थे फिर भी अपने चरित्र की विशेषताओं के कारण महाभारत के महत्त्वपूर्ण पात्रों में इनकी गणना की जाती है। भगवान श्रीकृष्ण जब कौरव-पाण्डवों में सन्धि कराने के प्रयत्न में हस्तिनापुर गये तो वे दुर्योधन के राजकीय सम्मान को त्यागकर विदुरजी के यहाँ ठहरे, जहाँ भक्तिभाव सम्पन्न विदुरानी ने उनका भाव-विभोर होकर सत्कार किया और विदुरजी ने अपने आपको धन्य माना।

ईश्वर को ऐश्वर्य सम्पदा और वैभव नहीं प्रेम तथा भक्ति भाव प्रभावित करता है।

दोनों ओर प्रेम पलता है

एक वार भगवान कृष्ण से भेंट करने उद्धव गये। उद्धव और माधव दोनों बचपन के दोस्त थे। द्वारपाल ने कहा—"इस समय भगवान पूजा में बैठे हैं, इसलिये अभी थोड़ी देर आपको ठहरना होगा।" समाचार पाते ही भगवान शीघ्र पूजा कार्य से निवृत्त होकर उद्धव से मिलने आये। कुशल प्रश्न के बाद भगवान ने पूछा—"उद्धव ! तुम किस लिये आये हो ?"

उद्धव ने कहा—"यह तो बाद में बताऊँगा, पहले मुझे यह बतलाएँ कि आप किसका ध्यान कर रहे थे ?" भगवान ने कहा—"उद्धव ! तुम यह नहीं समझ सकते।" लेकिन उद्धव कब मानने वाले थे। उन्होंने जिद की। तब भगवान ने कहा—"उद्धव ! तुझे क्या बताऊँ ? मैं तेरा ही ध्यान कर रहा था।"

सेवक, स्वामी का जितना ध्यान रखते हैं, स्वामी भी सेवक का ध्यान, सन्मान रखते हैं।

भगवान भी भजन करते हैं

यह अधिकार नारद को ही था कि वे भगवान कृष्ण के अन्तःपुर तक चले जाते थे। उन्हें टोकने का किसी को साहस न होता था।

एक बार ऐसे ही वे जब द्वारिका पहुँचे, तो भगवान कृष्ण कहीं दिखाई नहीं दिये, नारद सीधे रुक्मिणी के पास पहुँचे और पूछा—"आज यजमान के दर्शन नहीं हो रहे हैं, कहाँ हैं वे ?"

रुक्मिणी ने पूजागृह की ओर संकेत करते हुये कहा—"वहाँ बैठे जप कर रहे हैं।"

नारद को बड़ा आश्चर्य हुआ, वे पूजा-गृह में पहुँचे तो देखा भगवान कृष्ण सचमुच ध्यान लगाये बैठे हैं। नारद की आहट पाते ही उन्होंने आँखें खोल दीं और उनका हँसकर स्वागत किया।

नारद ने आश्चर्य से पूछा—"हे भगवन् आप किसका ध्यान करते हैं ?"

भगवान कृष्ण ने गम्भीर होकर उत्तर दिया—"नारद ! जो मेरा ध्यान करते हैं, मुझे भी उनका ध्यान करना पड़ता है।"

भगवान भी अपने भक्तों का ही भजन करते हैं।

ऐसी तृप्ति कभी नहीं हुई

श्रीकृष्ण भगवान ने कौरवों-पाण्डवों को मिलाने के लिये दुर्योधन की सभा में जाकर समझाया किन्तु मदान्ध दुर्योधन नहीं माना। उलटे वह अपने पराक्रम का वर्णन करता हुआ पाण्डवों की निन्दा करने लगा। अन्त में वह भगवान को कैद करने को तैयार हो गया। उस मूर्ख को पता नहीं था कि जिन श्रीकृष्ण ने जन्म के दिन ही कंस के कारागार को तोड़ डाला था, वे उसके बन्धन में कैसे आयेंगे ? भगवान ने अपना भयंकर रूप दिखाकर दुष्टों को डरा दिया। दुर्योधन के महल में भगवान के लिये भाँति-भाँति के पकवान बने थे किन्तु जब एक भिखारी भी अभिमानी मनुष्य का अन्न नहीं लेता तो अखिल ब्रह्माण्ड के नायक श्रीकृष्ण उस पापी का अन्न कैसे खाते ? उन्होंने, दुर्योधन का पकवान त्यागकर विदुर की भाजी खाई। जब वे साग खा रहे थे, तब उन्होंने कहा—"रुक्मिणी आदि के हाथों बनी रसोई नित्य खाता हूँ पर तृप्ति कभी नहीं हुई।"

भगवान प्रेम के वश में हैं, न कि शक्ति और वैभव के।

सच्ची भक्ति—भाव की

कांची के चोल नरेश और दरिद्र भक्त विष्णुदास ने एक साथ अनन्तशयन तीर्थ के विष्णु विग्रह पर एक साथ श्रद्धा सुमन चढ़ाये, तो विष्णु पूजा के सच्चे अधिकारी होने की स्पर्धा चल पड़ी, राजा और रंक के बीच।

राजा ने एक विराट् यज्ञ का आयोजन किया। विष्णुदास भी विष्णु की भक्ति में लीन हो गये। राजा का यज्ञ और रंक की भक्ति अबाध गति से चलती रही।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किन्तु एक सप्ताह से लगातार विष्णुदास का भोजन कोई चुरा ले जाता और वह भोग भी न लगा पाता।

आठवें दिन चोर पकड़ में आया—एक दीन-हीन अस्थि-कंकाल सा चांडाल। विष्णुदास का अन्तः द्रवित हो उठा। रूखी रोटियाँ लेकर भागते चांडाल के पीछे वह घी की कटोरी लेकर दौड़े—"रुको अतिथि यह घृत भी ले जाओ, भयभीत न हो, मैं तुम्हारा सेवक हूँ।" तभी चांडाल में से भगवान विष्णु प्रकट हो गये और भक्त को अपने साथ बैकुण्ठ ले गये।

सच्चे भक्तों का हृदय करुणा से आर्द्र ही रहता है। प्रभु उन्हें अपनाते हैं।

विश्वास का फल

एक बार महाराष्ट्र में अकाल की स्थिति। पानी के अभाव में मनुष्य और पशु बेचैन होने लगे। कितने ही किसानों ने गाँव छोड़ दिये और अपने पशुओं को लेकर पानी और घास के लिये इधर-उधर निकल पड़े। सभी लोग अत्यन्त दुःखी और चिन्तित हो रहे थे, किस प्रकार इस विपत्ति से छुटकारा मिले। सब ने मिलकर कोई कारगर युक्ति सोचने का निश्चय किया—काफी सोच-विचार के बाद निश्चय हुआ, यदि श्रद्धा, विश्वास और भक्तिपूर्वक सामूहिक रूप से उस परम पिता परमात्मा की प्रार्थना करें, तो अवश्य इस प्रयत्न में सफलता मिल सकती है। लोग एक स्थान पर प्रार्थना के लिये एकत्रित हुये।

प्रार्थना आरम्भ हुई। उसी समय एक बालक बरसाती जूता पहने और छाता लगाये हुये वहाँ पर आया। उसे छाता लगाये देख सभी लोग हँसने लगे।

किसी ने कहा, "पानी कहाँ बरस रहा है, जो तू व्यर्थ में ही छाता लगाकर आया ?"

बालक ने कहा, "जब आप सब लोग एकत्रित होकर वर्षा के लिये प्रार्थना करने आये हैं तो भला पानी क्यों न बरसेगा ? सच्चे हृदय से की गई सामूहिक प्रार्थना कदापि व्यर्थ नहीं जा सकती।" बालक की निश्चल भावना से सबकी निष्ठाएँ उमड़ पड़ीं और प्रार्थना सार्थक हुई।

(१) भावपूर्ण प्रार्थना निरर्थक नहीं होती।

(२) सच्ची भावना अन्यों की निष्ठा भी जगा देती है।

श्रद्धा का अभाव

एक राजा ने देखा, सालिग्राम की मूर्ति के ऊपर दो चूहे फुदक रहे हैं। उसे लगा चूहा बड़ा देवता है अतएव वह उस दिन से चूहों की उपासना करने लगा। एक दिन एक बिल्ली चूहे को खा गई तो उसने बिल्ली की पूजा आरम्भ कर दी। एक दिन एक कुत्ते ने बिल्ली को धर पटका और तब से राजा कुत्ते का उपास्य बन गया। एक दिन किसी बात पर नाराज होकर रानी ने कुत्ते की टाँग तोड़ दी फिर क्या था, राजा ने रानी की पूजा प्रारम्भ कर दी। एक दिन किसी भूल पर रानी को डाँटा तो उनको ऐसा मालूम होने लगा कि मैं ही बड़ा देवता हूँ अतः वह अपनी उपासना करने लगे। एक दिन बुखार में पड़े राजा के मुँह से अनायास ही निकल गया हे प्रभो !

ईश्वर ही सर्वोपरि और सर्वशक्तिमान आराध्य देव है।

गुलाम की चाह

एक राजा ने एक गुलाम खरीदा। उन्होंने गुलाम से पूछा—"तेरा नाम क्या है ?" उसने उत्तर दिया "हुजूर, जिस नाम से पुकारें वही मेरा नाम होगा।" फिर राजा ने पूछा—"तू क्या खायेगा और क्या पहनेगा ?" उसने कहा—"हुजूर, जो खिला दें और पहनने को दें।" राजा ने पूछा—"तू क्या काम करेगा ?" नौकर बोला—"जो आप करायें।" तब राजा ने पूछा—"आखिर तू चाहता क्या है ?" दास ने कहा "हुजूर ! गुलाम की क्या कोई चाह होती है ?" राजा ने गद्दी से उतरकर उसे सीने से लगाकर कहा—"मैं तुमको आज से अपना गुरु मानता हूँ, तुमने मुझे बतला दिया है कि परमात्मा का सेवक कैसा हो ?"

ईश्वर के प्रति समर्पित भक्त की अपनी कोई निजी इच्छा नहीं रहनी चाहिये।

ओछापन क्यों ?

श्री रामकृष्ण परमहंस के गले में नासूर हो गया था। इसी समय शशिधर चूड़ामणि उनके पास आये और बोले—"स्वामी जी ! यदि आप अपने मन को एकाग्र करके कहें कि 'रोग चला जा, रोग चला जा' तो आपका रोग अवश्य मिट जायेगा।"

परमहंस बोले—"जो हृदय मुझे सच्चिदानन्द माँ का स्मरण करने हेतु मिला है, उसे मैं सांसारिक कार्य में क्यों लगाऊँ ?" इस पर अनेक शिष्यों को संतोष नहीं हुआ। उन्होंने मिल-जुलकर आग्रह किया कि आप माँ ही से कहें कि वह आपको रोग-मुक्त कर दे।

इस पर रामकृष्ण परमहंस मुसकराकर बोले—"मैं ऐसी मूर्खता क्यों करूँ ? माँ ! तो दयामयी, सर्वज्ञ और सर्व-समर्थ हैं। उन्हें मेरे कल्याण के लिये जो उचित लगा, वही किया, फिर मैं उनकी व्यवस्था में छिछोरापन क्यों लाऊँ ? क्यों बताऊँ ?"

(१) भगवान के मंगलमय विधान पर पूर्ण विश्वास रखना चाहिये।

(२) व्यक्तिगत कष्ट दुःखों के लिये ईश्वर प्रेम का आश्रय नहीं लेना चाहिये।

राजा के पास बैठने का लाभ

एक ब्राह्मण ने किसी सेठ के यहाँ अपने पाँच सौ रुपये जमा किये, ताकि कन्या के विवाह के समय ब्याज समेत वे रुपये उसे मिल जावें, बहुत वर्ष बीत गये। आवश्यकता पड़ने पर वह ब्राह्मण अपने रुपये वापस लेने पहुँचा। पर सेठ की नीयत में बदी आ गई। उसने उस ब्राह्मण को पहचानने तक से इनकार कर दिया और कहा—"हमारे यहाँ आपका कोई पैसा नहीं है।"

ब्राह्मण राजा के पास पहुँचा। उसने पुकार की। राजा ने ब्राह्मण से कहा कि कल जब हमारी सवारी नगर में निकले, आप उस सेठ के मकान से पहले से ही खड़े रहना। शोभा-यात्रा निकली। सभी नागरिक अभिवादन करने खड़े थे। सेठ के मकान के पास राजा ने सवारी रोककर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नियत स्थान पर खड़े ब्राह्मण को अपने पास बिठा लिया और अगली मोड़ के बाद फिर उतार दिया।

सेठ ने यह देखा तो उसका हृदय काँपने लगा। राजा इस ब्राह्मण की इतनी इज्जत करते हैं, यह मेरी शिकायत राजा से कर देगा तो न जाने क्या दण्ड मिले ? सेठ ने सेवक भेजकर उसे बुलवाया, उसका बहुत सम्मान किया और कहा—"बहीखातों में आपका धन जमा था, हमें स्मरण नहीं रहा था, उसके लिये क्षमा करें।" सेठ ने ब्याज समेत सारा रुपया और उसकी कन्या के विवाह के लिये कुछ विशेष दान देकर विदा किया।

ब्राह्मण मन-ही-मन सोचने लगा—"राजा के पास थोड़ी देर बैठने का यह परिणाम होता है, तो राजाओं के राजा ईश्वर के पास बैठने, उसकी उपासना करने का तो न जाने कितना बड़ा प्रतिफल होगा ?"

ईश्वर उपासना से ईश्वर की विभूतियों और शक्तियों का लाभ उठाने का सीधा अवसर मिलता है।

गाना बादशाह के लिये या प्रभु के लिये

एक दिन तानसेन के एक गाने से प्रसन्न होकर बादशाह अकबर ने पूछा—"इतना सुन्दर गीत तुमने किससे सीखा ?" तानसेन ने जवाब दिया—"अपने गुरु हरिदास जी से।" अकबर ने कहा—"चलो उनके पास चलें।" इसके बाद अकबर तानसेन को लेकर अपनी सारी मंडली के साथ हरिदास जी के घर गया। हरिदास जी नित्य ईश्वर भक्ति में मस्त रहते थे। वे ईश्वर भजन के सिवाय और कोई गाना नहीं गाते थे। बादशाह ने हरिदास जी से कोई गाना सुनाने की प्रार्थना की। बादशाह की विनती से उन्होंने एक सुन्दर भजन गाया। बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और उनका यथोचित् सत्कार करके लौट आया। एक रोज कचहरी में अकबर ने तानसेन से उस दिन वाला भजन गाने को कहा। तानसेन ने गाया जरूर, पर बादशाह को उस दिन जैसा आनन्द नहीं मिला।

अकबर ने उनसे पूछा—"उस दिन जैसा आनन्द आज क्यों नहीं मिला ?" तानसेन ने जवाब दिया कि "मैं आपको प्रसन्न करने के लिये गाता हूँ किन्तु हमारे गुरुजी ने आपको प्रसन्न करने के लिये नहीं गाया था, बल्कि बादशाहों के बादशाह को प्रसन्न करने के लिये गाया था। अन्तर भावना का है अन्यथा शास्त्रीय ढंग तो वही है।"

लक्ष्य के अनुरूप भाव उदय होता है तथा उसी स्तर का प्रभाव क्रिया में पैदा होता है।

ऐसी कोई जगह नहीं

बगदाद के सन्त जुनैद अपने एक शिष्य को औरों से ज्यादा प्यार करते थे। शिष्यों ने शिकायत की कि एक के साथ पक्षपात क्यों होता है ?

सन्त चुप हो गये। कई दिन बाद उन्होंने सब शिष्यों को बुलाया और एक मच्छर हाथ में थमाते हुए कहा—"इसे ऐसी जगह मारकर आओ जहाँ कोई देखता न हो।"

शिष्य गये और ऐसे ही कहीं छिपकर अपना काम पूरा कर आये।

पर वह प्रिय शिष्य उस जीव को ज्यों का त्यों वापस ले आया और कहा—ऐसी कोई जगह नहीं जहाँ अल्लाह देखता न हो।

जुनैद ने कहा—"तुममें से, यह एक है जो ईमान और अल्लाह को पहचानता है। ऐसे ही लोग हैं, जिन पर खुदा की रहमत बरसेगी।"

ईश्वर के प्रति विश्वास रखने वालों से पाप कर्म हो ही नहीं पाते।

देने वाला तो अब भी यहीं है

प्रख्यात विभूति हातिम, परदेश जाने लगे तो अपनी पत्नी से पूछ बैठे "तुम्हारे लिए खाने-पीने का कितना सामान रख जाऊँ ?"

"जितनी मेरी आयु हो"—कहकर स्त्री हँस पड़ी।

"तुम्हारी आयु जानना मेरे बूते की बात नहीं।"

"तब तो मेरी रोटी का इन्तजाम भी आपके बूते से बाहर है। यह काम जिसका है, उसी को करने दीजिये।"

पत्नी की आस्था पर मुग्ध होकर हातिम परदेश चले गये। तब एक पड़ोसिन ने पूछा—"बेटी ! हातिम तेरे लिये क्या इन्तजाम कर गये हैं ?"

हातिम की स्त्री ने कहा—"भाँ मेरे पति क्या इन्तजाम करेंगे वे तो खाने वाले थे। खाना देने वाला तो अब भी यहीं है।"

ईश्वर विश्वासी को किसी का आश्रय आवश्यक नहीं रहता।

जब गाँधीजी उपासना भूले

दिन भर कठोर परिश्रम करने के कारण थके हुए महात्मा गाँधी सुस्ताने के लिए जैसे ही बिस्तर पर लेटे, उनकी आँख लग गयीं और वे सो गये। ऐसी गहरी नींद आयी कि सुबह तड़के आँख खुलीं।

उस दिन उन्हें बड़ा पछतावा हुआ। बापू शाम की प्रार्थना नहीं कर सके थे। इसके प्रायश्चित स्वरूप उन्होंने दिन भर उपवास करने की ठानी। लोगों ने जब पूछा तो वे बोले—"एक-एक क्षण मैं जिसके सहारे जी रहा हूँ, उसी परमात्मा की याद न रही तो इससे बड़ा पाप और क्या होगा।" उस दिन पूरे समय उन्होंने उपवास किया।

ईश्वर उपासना एक आवश्यक धर्म कर्त्तव्य है।

ऋषि माण्डव्य को शूली

महर्षि माण्डव्य के आश्रम में छिपे डाकू पकड़े गये, चोरी का माल भी उनके पास मिला, डाकुओं के साथ माण्डव्य भी पकड़े गये। न्यायालय में उपस्थित किये गये तो डाकुओं के साथ-साथ माण्डव्य को भी शूली का दण्ड मिला।

अन्य ऋषि मिलकर राजा के पास पहुँचे और माण्डव्य की निर्दोषिता बताई। राजा ने तुरन्त शूली रुकवा दी और उन्हें तख्ते पर से नीचे उतार लिया गया। तब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org

www.vicharkrantibooks.org

तक जितना कष्ट उन्हें हो चुका था, उसके लिए राजा ने क्षमा माँगी।

माण्डव्य ने कहा—पूर्व जन्म में मैंने अनेक पशु-पक्षियों को सताया था, उसके फलस्वरूप मुझे भारी यातनाओं के साथ मरना था। पर मेरी इस जन्म की तपस्या ने उन कष्टों को घटा दिया फिर भी कोई प्रारब्ध पूर्णतया शमन नहीं हो सका, उसका कुछ तो दण्ड मिलना चाहिये। मेरे अशुद्ध कर्मों का ही यह प्रतिफल था, आप निर्दोष हैं।

१. अनपेक्षित कष्टों और परिस्थितियों के कारण पूर्व जन्मों के पास दुष्कर्म ही होते हैं।

२. किसी निर्दोष को दण्ड मिल रहा है तो उसे बचाने का वैध प्रयास करना चाहिए (अन्य ऋषि और राजा)। ३. साधना द्वारा पाप कर्मों का बन्धन शिथिल भी हो सकता है।

छुपा भगवान

भगवान के दर्शनों की चिरआकांक्षा तृप्त हुई, पर अभी भक्त के मन में कोई एक कौतूहल झाँक रहा था जिसे वह व्यक्त नहीं कर पा रहा था। भगवान ताड़ गये। उन्होंने पूछा—"वत्स तुम जो भी चाहो निःसंकोच पूछ सकते हो।"

रुँधे गले को साफ करते हुए भक्त ने पूछा—"भगवन् आप सारी सृष्टि के स्वामी हैं, फिर भी दुनिया भर से छिपकर क्यों रहते हैं ?"

भगवान हँसे और बोले—"तात् ! छिपे रहने में ही मेरा कल्याण है—तुम नहीं जानते कि दुनिया का हर व्यक्ति मुझसे कुछ न कुछ चाहता है, यदि मैं प्रकट हो जाऊँ तो अपनी कामनाओं के लिये लोग मुझे जिन्दा नोंच डालेंगे, इसीलिये अपना काम छुपकर चला रहा हूँ।"

भगवान को अपनी कामना पूर्ति का साधन नहीं समझना चाहिए।

ऐसे बची द्रोपदी की लाज

उस दिन प्रातःकाल द्रोपदी यमुना स्नान के लिए गई। नहाते समय उसकी निगाह कुछ दूर स्नान करते एक साधु पर पड़ी। उनके शरीर पर एक लँगोटी मात्र थी। दूसरी लँगोटी बदलने के लिए किनारे पर रखी थी। पर हवा का झोंका आया और वह दूसरी लँगोटी उड़कर पानी में बह गई।

दुर्भाग्य से भीगी लँगोटी भी पुरानी होने के कारण उसी समय फट गई। लज्जा ढकने में भी अड़चन खड़ी हो गई। प्रकाश उगने लगा था। स्नान करने वालों की भीड़ बढ़ती जा रही थी। साधु का असमंजस बढ़ा। वह निर्लज्ज बनकर कैसे खड़ा रहे ? उसने कुछ दूर पर उगी एक बड़ी-सी झाड़ी के नीचे अपने को छिपा लिया। जब रात हो जाय तब अँधेरे में अपने स्थान पर जाने का उसका इरादा था।

द्रोपदी ने यह सारा दृश्य देखा। साधु की कठिनाई को समझा। उसने सहायता करने की बात सोची। उसके पास दूसरी धोती न थी। सो आधी फाड़कर अपना शरीर किसी प्रकार ढक लिया और शेष आधी को लेकर उस झाड़ी के समीप पहुँची, जहाँ निर्वस्त्र साधु छिपा हुआ था।

द्रोपदी बोली, 'पिताजी ! आपकी कठिनाई को मैंने समझा है। अपनी आधी साड़ी फाड़कर लाई हूँ। इससे अपना तन ढक लें और घर चले जाएँ। आधी से मेरा भी काम चल गया है।"

साधु की आँखों में आँसू आ गये। उसने कपड़े के टुकड़े को ले लिया। लज्जा ढकी और घर चला गया। मन ही मन यह आशीर्वाद भी देता गया कि भगवान सदा तुम्हारी लज्जा को ढके रहें।

बात बहुत पुरानी हो गई। द्रोपदी को पाण्डव जुए में हार गये। दुःशासन उसे भरी सभा में नंगी करने के लिए उतारू हो गया। द्रोपदी के अपशब्दों का बदला लेने के लिए वही सूझ सूझी थी।

द्रोपदी ने इस विकट संकट में भगवान को पुकारा भगवान शेष शय्या पर सोये थे। नारद ने उन्हें जगाया। कहा "भक्त की पुकार सुनिये। उसकी सहायता का प्रबन्ध कीजिए।"

उनींदी आँखों से भगवान ने कहा, "न मैं किसी की सहायता करता हूँ, न हैरानी में डालता हूँ। सभी अपने-अपने कर्मों का फल भोगते हैं। द्रोपदी का कोई पिछला पुण्य हो तो पता लगाओ। उसके पुण्य होंगे तो बदला मिल जायेगा।"

नारद ने हिसाब बही जाँची, विदित हुआ कि द्रोपदी ने किसी साधु को अपनी आधी साड़ी फाड़कर दान दी थी। वह टुकड़ा अब ब्याज समेत बढ़ते-बढ़ते गट्ठे जितना हो गया है।

भगवान ने कहा, "हम किसी के पुण्य का प्रतिफल समय पर क्यों नहीं देंगे ?" वे गरुड़ पर चढ़कर वस्त्रों का गट्ठा लिए कौरवों की सभा के समीप पहुँचे। दुःशासन वस्त्र खींचता गया। भगवान ऊपर से उसकी पूर्ति करते गये।

खींचने वाला थक गया। वस्त्र बढ़ता रहा। द्रोपदी की लाज बच गई, उसे आधी साड़ी के बदले हजारों गज कपड़ा मिल गया।

यदि मनुष्य का स्वयं का कुछ किया न हो तो, स्वयं विधाता भी उसकी सहायता नहीं कर सकता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ईश्वर भक्ति और आध्यात्मिकता

दर्शन की प्यास

पूर्णमासी का चन्द्रमा जब पूरे आकाश पर छा जाता है, तब लोग उसे देखकर आदिशा के महान् तप को स्मरण करते और कहते—"आज आदिशा के समकक्ष सारी पृथ्वी पर वैसे ही कोई दूसरा तपस्वी नहीं है, जैसे पूर्ण चन्द्र के सम्मुख कोई दूसरा चन्द्रमा नहीं।" आदिशा का मनोनिग्रह इतना कठोर था कि राज-नर्तकियाँ वस्त्र-विहीन होकर उनके समक्ष पहुँचती हैं, तो भी उन्हें किसी प्रकार का क्षोभ न होता। वे उन्हें दो वर्षीय बालिका की तरह देखते। राजभवन से पहुँचते सुगन्धित षट्रस व्यंजनों और अलोने-सत्तुओं में उन्हें कोई भेद न लगता था। ऐसा इन्द्रिय नियन्त्रण शायद ही कोई और तपस्वी कर पाया हो।

इतने पर भी आदिशा का चित्त शान्त न था। वर्षों तप करते हो गये थे, पर उन्हें भगवान पशुपत के दर्शन नहीं हो पाये थे। उनके पूजा-उपवास, यम-नियम, प्राणायाम-प्रत्याहार में कभी कोई त्रुटि नहीं आई थी। वर्षों बीत गये, क्रम कहीं भी टूटा नहीं था। उन्होंने तप में पूर्ण निष्ठा दर्शायी थी, तो भी वे आराध्य के दर्शनों से अब तक वंचित थे। वे स्वयं भी उसका कारण समझ नहीं पाये थे।

नर्मदा तट पर बने आदिशा के आश्रम में आज का दिन बड़े मंगल और आनन्द का है। प्रतिवर्ष के अनुसार इस वर्ष भगवान पशुपतनाथ की झाँकी सजाई गई है, उनका कीर्तन हो रहा है। दर्शनार्थी दूर-दूर से आ रहे हैं। संध्याकालीन आरती में भाग लेने के लिये दूर-दूर से लोग दौड़े चले आ रहे हैं। भीड़ बढ़ती ही चली जा रही है।

राजमहल की परिचारिका सुनयना आज सम्पूर्ण दिन व्यग्र रही। प्रातःकाल भगवान की आरती देखने की इच्छा उमड़ी थी, जैसे-जैसे दिन चढ़ता गया, आकांक्षा उतनी ही तीव्र होती गई पर राजमहल के कार्यों से निवृत्ति कहाँ ? आज अन्तःपुर भी तो उत्सव में सम्मिलित होने वाला था, सुनयना को तब फिर अवकाश कहाँ से मिलता ?

सायंकाल उसे अवकाश मिला। दिन भर की भूखी-प्यासी सुनयना ने अपने कुटीर की ओर न जाकर सीधे नर्मदा-तट की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में कौन मिला, क्या मिला उसे कुछ भी सुधि न थी, उसके अन्तर्मन में तो प्रभु की आरती थी और उसी के ध्यान में वह क्षिप्र गति से आगे बढ़ती चली जा रही थी।

आँगन पर मरकत-स्तम्भ के सहारे स्वयं सन्त आदिशा खड़े हुये आरती का दृश्य देख रहे थे, शेष जनसमुदाय उनके दोनों बाजुओं की ओर खड़ा था। सुनयना वहाँ पहुँच तो गई, पर सघन जन-समुदाय को चीरकर भीतर पहुँचना उसके लिये कठिन था। वह उसी मरकत-स्तम्भ पर चढ़ गई। खड़े होने के स्थान का अभाव दीखा, सो एक पाँव स्तम्भ पर दूसरा आदिशा के कन्धों पर टिकाकर, वह भगवान की आरती देखने लगी।

आरती समाप्त हुई तब लोगों का ध्यान उधर गया। सन्त आदिशा के कन्धों पर क्षुद्र सुनयना की लात—बड़ी अशोभनीय बात थी। लोगों ने डाँटा—"मूर्ख, तुझे दिखाई नहीं दिया, महात्मा के कन्धों पर पैर रख दिये।" इससे पूर्व कि सुनयना कुछ कहे और क्षमा माँगे, महात्मा आदिशा ने कहा—"उसे बुरा मत कहो। सुनयना मेरी गुरु हुई। आज तक मैं भले-बुरे, ऊँच-नीच के भेद-भाव में पड़ा रहा, इसीलिये तप का अभीष्ट लाभ न मिल पाया। आज पता चला कि साधक की उत्कृष्ट अभिलाषा ही दर्शन का आधार है। जब तक दर्शनों की ऐसी तीव्र प्यास न हो, ध्येय का मिलना कैसे सम्भव हो सकता है ?"

उस दिन आदिशा की रही-सही, सांसारिक दृष्टि का अन्त हुआ और उन्हें दिव्य प्रकाश के दर्शन हुये।

एक प्रेमी की व्यथा

एक जिज्ञासु कह रहा था—"गुरुदेव, मुझे पता नहीं तुम कहाँ गए ? क्या करते हो ? मेरे मन में तो आज विरह-व्यथा के बादल घुमड़ रहे हैं। प्रेमी होगे तो तुम्हें पता होगा, विरह की वेदना में कितनी छटपटाहट है ? प्राणाधार, तुम कहाँ हो ? तुम्हें पुकारकर मेरा मन अधीर हो चला। संसार से विरक्ति कर ली, अब मेरा कौन रहा ? तुम भी छोड़ दोगे ? तुम्हारे भक्त की, तुम्हारे प्रेमी की कैसी दशा है ? क्या तुम भी उसे देखने नहीं आओगे ? क्या यों ही मन भटकता रहेगा और तुम दर्शन नहीं दोगे ?"

"विरह की पीड़ा घनी और घनी होती जा रही है। मुझे अपनी परम ज्योति का साक्षात्कार कराकर सन्तोष दो गुरुवर, कब से आँखें तुम्हारी ओर निर्निमेष देख रही हैं। तुम कहोगे मैं पागल हो गया हूँ। देवेश, कैसे बताऊँ मेरी मनोदशा तुम्हें न पाकर कैसी हो गई है ?"

"धैर्य टूट रहा है, इधर-उधर दौड़ रहा हूँ, व्याकुल होकर भुजा पसारे तुम्हें पाने के लिए बेचैन भटक रहा हूँ। हृदय रोने लगता है। विरह-अग्नि से सारा शरीर झुलसा जा रहा है। कैसे निष्ठुर हो तुम ? अपने समीप नहीं रखना था, तो जीवन क्यों दिया था ? जीवन दिया तो भक्ति क्यों दी ? भक्ति दे दी, तो प्रेम विहीन ही रखते। पर अब, जब यह कसक जाग गई है, तो तुम्हें पाये बिना जीवित कहाँ रह सकता हूँ ? तुम कहो, तुम कहाँ हो ? आते क्यों नहीं ? दिखाई क्यों नहीं देते ? जीवन की नाव में विरह का जल भर चुका है। नाव तली में बैठने को है, लगता है अब भी बचाने नहीं आओगे, तो क्या संसार मेरे विश्वास को झूठा नहीं कहेगा ? मेरी तपश्चर्या को विक्षिप्त का प्रलाप नहीं कहेगा क्या ? क्या तुम यह सब सुनकर भी नहीं आओगे ?"

"साँसें गहरी हो गई हैं, गर्म हो गई हैं। शरीर मूर्छित पड़ा है। रात में नींद नहीं आई। मन तुम्हारे लिए दौड़ता रहा। नक्षत्रों के बीच एक क्षण टिककर तुम्हारे सौन्दर्य का रसपान करने के लिए बिलखता रहा। तुम्हारी ज्योति कभी पूर्व में दिखाई दी, कभी पश्चिम में। इतना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भटकाते हो, कभी दक्षिण में होते हो और जब तक आत्मा वहाँ पहुँचे तुम उत्तर की ओर क्यों चले जाते हो ? क्या यह छलना ही तुम्हारी नीति है ? क्या विरहाग्नि में मुझे जलाकर ही तुम्हें सुख मिलेगा ?"

"तुम्हें तो करुणा-सागर कहते हैं, पर तुम बड़े निष्ठुर हो। तुम दीन-बन्धु हो, पर मेरी दीनता पर दया कहाँ आई ? कहते हैं तुम इतने स्नेह-कातर हो कि प्रेम से भरी एक ही आवाज पर दौड़े चले आते हो, पर अपना मन सारे ब्रह्माण्ड में भटक गया, पर तुम कहीं भी तो नहीं दिखाई दिए। दयानिधि, तुम्हें मेरी पीड़ा का पता होता, तो यों ही प्रकृति की ओट में न छुपे रहते। तुम ऐश्वर्यवान हो, प्रभुता संपन्न हो, सारे संसार में तुम्हारा ही वैभव है, तुम भला क्यों मेरे पास आने लगे ? यों ही भटकाना था, तो प्रेम का प्रकाश अन्तःकरण में जगाया ही क्यों ?"

थके-थके शरीर में भी आत्मा को चैन नहीं मिलता। फिर एक प्रकाश आता है, बुद्धि में ओतप्रोत हो जाता है। मस्तिष्क में फिर कोई कहने लगता है, "आराध्य, तुम मुझसे दूर नहीं हो। मन में तुम्हीं तो बसे हो, आँखों में तुम्हारी ही तो छवि विद्यमान है। मेरी पहुँच के बाहर थोड़े ही हो। अभी हाथ बढ़ा दूँ, तो तुम्हें पकड़ लूँ। बहुत समीप हो तुम। कहीं ऐसा तो नहीं, फिर छल करने आये हो। अब पूरी तरह विश्वास कर लूँगा कि अब नहीं जाओगे, तभी हाथ बढ़ाऊँगा। तुम्हें मेरे प्रेम की प्यास है, तो फिर तुम मुझसे दूर क्यों हो जाते हो ? अच्छा अब मैं हाथ बढ़ाता हूँ तुम ओझल नहीं हो रहे हो, पर पास भी तो नहीं आते। चमक उठते हो तुम, जब मैं तुम्हें ढूँढ़ता हूँ पर जब तुम्हीं से आत्मसात हो जाने के लिए दो पग आगे बढ़ता हूँ तो मैं ही, मैं अकेला रह जाता हूँ तुम कहाँ चले जाते हो ? कैसी विलक्षण कहानी है, कुछ कहते नहीं बनता गूँगे के गुड़ की-सी मधुरिमा मेरे अंग-प्रत्यंग में भर देते हो। इतना विश्वास दिलाते हो, जितना संसार के करोड़ों जन मिलकर भी नहीं दिला सकते, पर इतने अविश्वासी हो कि एक ही क्षण में दूर भाग जाते हो। प्रभु, प्रेम की पीड़ा इतनी न बढ़े कि आग बन जाए और उसमें तुम्हारे भक्त का अस्तित्व ही समाप्त हो जाए।"

"समाप्त होना ही है, तो हो जाए। कब तक यह दर्द सहूँ ? तुम्हारे सान्निध्य की ललक है। चाह से मन भर गया है। तुम्हें पाने के लिए जो कुछ था, सब छोड़ दिया, अब जो है, वह तुम्हारा ही तो है। तुम्हारा तुममें ही समाप्त होता है, तो हो जाने दूँगा। अब यह नहीं भूलूँगा कि मुझे अपना अहंभाव भी तुम्हीं में समर्पित कर देना है। अपने अस्तित्व को अब मिलन के रास्ते में बाधा न बनने दूँगा। पैरों में चाहे कितने काँटे और कंकड़ चुभें, पर मुसकराता हुआ चलूँगा, जब तक तुम्हें अपने आप्र में भर न लूँ, तुममें स्वयं समा न जाऊँ, कितनी ही पीड़ा हो, कितनी ही छटपटाहट हो, हूक और ललक उठे, मेरे पाँव रुकेंगे नहीं। दीवानगी का अन्त तो अब तुममें समाकर ही होगा।" इतना कहकर उसने अपने पार्थिव शरीर को त्याग दिया।

नन्द-नन्दन दौड़े जाते हैं, जिसके द्वार स्वयं

"वत्स, तुम यह श्रम प्रतिदिन क्यों करते हो ?" महर्षि शाकल्य जब से वन में आये और उन्होंने इस जल स्रोत के समीप गुहा को अपना साधना-स्थल बनाया, यह वृद्ध वनवासी कोल उनके यहाँ सूखी समिधाएँ, कन्द और फल प्रतिदिन रख जाता है। वह आता है, भूमि में मस्तक रखकर ऋषि को प्रणाम करता है, अपना गट्ठर एक ओर रखता है। समिधाएँ एक ओर और फल तथा कुछ बड़े-बड़े पत्ते एक ओर रखकर गुहा के आस-पास की भूमि बुहारने लगता है और यह काम पूरा करके फिर भूमि पर मस्तक रखकर चला जाता है।

वृद्ध कोल को इससे कुछ मतलब नहीं कि ऋषि ने उसे देखा या नहीं। वह न एक शब्द बोलता है और न इसकी अपेक्षा करता है कि ऋषि उसे आशीर्वाद दें। अनेक बार ऋषि उसे गुहा में नहीं दिखते। वह सदा एक ही समय नहीं आता। ऋषि स्नान करते होते या वन में गए होते हैं। वह वैसे ही गुफा की ओर मुख करके ऋषि के आसन को प्रणाम करता है, आने पर और जाते समय भी। उसने अपने आप एक सीमा मान ली है।

वर्षा, आँधी और शीत—वनवासी जातियों के लिए ये कोई बाधाएँ नहीं हैं। प्रकृति की उन्मुक्त गोद में खेलना उन्होंने जन्म से सीखा है। प्रबल वर्षा में भी किसी दिन वह रुका नहीं। वह, तो तब भी नहीं रुका था, जब उसका देह ज्वर से तप रहा था। महीनों हो गए इस वृद्ध को लकड़ियाँ और कन्द लाते। महर्षि शाकल्य को यही पता नहीं लगा कि कोई उनकी सेवा कर रहा है। आज इधर ध्यान गया उनका, तो वृद्ध को देखते ही आसन से उठे और सीधे उसके सामने आ खड़े हुए।

"क्या चाहिए तुम्हें ?" सब कुछ देने में समर्थ तपोनिष्ठ ऋषि का क्या ठिकाना ? वे इस काले-कलूटे लँगोटधारी बूढ़े कोल को जो वरदान दे डालें, तो सृष्टि में उनका प्रतिवाद करने वाली शक्ति कहाँ से आएगी ?

"डरो मत, हिचको मत तुम्हें जो कुछ माँगना हो माँगो।" सुप्रसन्न तपस्वी के अभय स्वर निकले।

"इस वन में कन्द और फल बहुत हैं।" बूढ़े ने बड़ी नम्रता से कहा—"आपकी कृपा से मेरे दोनों पुत्र स्वस्थ और बलवान हैं। वे मेरा आदर करते हैं। मुझे तो कुछ भी नहीं चाहिए।"

"तुम यह मेरी सेवा प्रतिदिन क्यों करते हो ?" महर्षि भी इस अशिक्षित, असंस्कृत वन्य-मानव की निष्कामता से चकित रह गए थे।

"मेरा बाप मरने लगा था, तो उसने मुझसे कहा था" वृद्ध ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—"सेवा कर पाना बड़े सौभाग्य की बात है। कभी कोई ऋषि-मुनि इस वन में आ जाय, तो अपने बनते उनकी सेवा करना, इससे भगवान प्रसन्न होता है।"

"मैं और सेवा करं भी क्या सकता हूँ ?" वृद्ध कह रहा था—"लकड़ियाँ और ये कन्द तो वन के हैं। इनमें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मेरा क्या है ? लड़कों को मैंने कह दिया है कि एकल सुअर, बाघ आदि को वे यहाँ से दूर खदेड़ने में भूल न करें।"

"भगवान प्रसन्न हो जाएँ तो तुम उनसे क्या चाहोगे ?" महर्षि को लगा, यह वृद्ध समझता नहीं कि ईश्वरीय सृष्टि में जो कुछ भी मनुष्य प्राप्त कर सकता है, वह सब देने की क्षमता उनमें है।

"मुझे जो कुछ चाहिए, वह श्रम ने पहले से दे रखा है। काम करते रहने से शरीर चुस्त-दुरस्त, निरोग रहता है। थके-हारे पीड़ितों की मदद करने से, उनका आशीर्वाद मिलता है।" वृद्ध सरल भाव से कहे जा रहा था—"आप जैसे ज्ञानी महात्माओं की सेवा करते हैं, तो आशीर्वाद मिला ही धरा है। बस एक ही चाहत है।"

"क्या ?" इस एक शब्द में महर्षि के सारे अस्तित्व की प्रसन्नता टपक पड़ी।

"भगवान सब संसार को बनाता है। सबका पालन करता है। वह यह सब करते-करते थक जाता होगा।" वृद्ध कोल ने बड़ी सरलता से कहा—"वह प्रसन्न रहे तो उसे थकावट नहीं लगेगी। मैं चाहता हूँ वह सदा प्रसन्न रहे। मैं जब आनन्द में रहता हूँ, कितना भी ढेर-सा काम करूँ, थकता नहीं हूँ।"

ऋषि चकित हो उसकी निष्काम श्रमनिष्ठा पर सोचने लगे। उन्हें इस तरह सोचते देख उसने भूमि पर सिर रखा और लौट पड़ा, अपने झोंपड़े की ओर।

"तुम्हारी झोंपड़ी कहाँ है ?" दूसरे दिन जब वृद्ध लकड़ियाँ लेकर आया, उसे लगा कि महर्षि उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उसने जैसे ही भूमि पर माथा रखा, महर्षि आसन से उठ आए। उन्होंने क्या आशीर्वाद दिया वृद्ध समझ नहीं सका, किन्तु ऋषि तो उसका निवास पूछ रहे थे।

"यहाँ से एक कोस दूर नाले के किनारे हम कोलों के झोंपड़े हैं।" वृद्ध ने प्रार्थना की—"पर वहाँ आस-पास की भूमि बहुत अपवित्र है। आप वहाँ पधारें ऐसा स्थान वह नहीं है।" उत्तर मिला "वत्स ! भगवान श्री द्वारिकानाथ इन्द्रप्रस्थ आये हैं, धर्मराज युधिष्ठिर के समीप। वे अर्जुन को साथ लेकर इधर वन भ्रमण हेतु निकले हैं। वे कभी भी इधर आ सकते हैं। यद्यपि उनका शिविर यहाँ से पर्याप्त दूर है, किन्तु अर्जुन के रथ के लिए यह दूरी गणना करने योग्य नहीं है।"

"मैंने अपने बाप से सुना है महाराज पाण्डु हमारे स्वामी थे।" वृद्ध हर्षित हो गया था "उनके पुत्र इधर आवें तो उनकी पद वन्दना का भाग्य मिलेगा और भगवान तो आप जैसे महात्मा के यहाँ आवेंगे ही।"

"श्रीकृष्ण इस आश्रम पर आवें—इसकी मुझे संभावना नहीं है।" बूढ़ा कोल ऋषि की बात सुनकर उनका मुख देखता रह गया। ऋषि सर्वज्ञ हैं अतः ठीक ही कहते होंगे। लेकिन जब ऋषि का दर्शन करने अर्जुन, श्रीकृष्ण के आने की आशा नहीं है, उनके दर्शन होने की उसे भी क्या आशा ?"

"कल तुमने मुझसे कुछ माँगा नहीं।" महर्षि अद्भुत भरे स्वर में बोल रहे थे—"आज मैं तुमसे माँग रहा हूँ, अस्वीकार मत करना।"

"आज्ञा भगवन् !" वह तो लगभग भय से काँपने लगा। ऋषि इस प्रकार क्यों बोल रहे हैं ? ऐसी क्या बात है, जिसके लिए वे उसे सीधे आज्ञा नहीं दे सकते। "श्रीकृष्ण तुम्हारे झोंपड़े में आयें, तो उनसे अनुरोध करना कि वे इस ओर से निकलें।" महर्षि ने अत्यन्त विनीत स्वर में यह बात कही।

"भगवान मेरे झोंपड़े में आवेंगे ?" वृद्ध जैसे आकाश से नीचे गिरा हो, इस प्रकार चौंका। वह कुछ क्षण तक निष्कम्प खड़ा रहा, पर ऋषि की वाणी असत्य नहीं हो सकती। वह प्रणाम करके चल पड़ा। उसके कदमों की आहट दूर होती गयी, पर किसी अन्य की वाणी पास आती जा रही थी।

"अर्जुन ! आज एक साधक के दर्शन करने चलना है।" श्रीकृष्ण ने रथ चलते ही सहचारियों को निषेध कर दिया था कि वे अनुगमन न करें। शिविर में भी वे चलते-चलते कह आये हैं कि आज मध्यान्ह में उनकी प्रतीक्षा न की जाय।"

"ऐसा साधक इधर कौन है, जिनके दर्शन करने को स्वयं जनार्दन उत्सुक हैं ?" अर्जुन को आश्चर्य होना स्वाभाविक है। पाण्डव इतने प्रमादी नहीं हैं कि आस-पास के जंगलों में रहने वाले तपस्वियों की खोज-खबर न रखें। "महर्षि शाकल्य की गुहा पर चल रहे हैं आज आप ?"

अर्जुन का आश्चर्य अकारण नहीं है। महर्षि शाकल्य तपस्वी हैं, योगी हैं, किन्तु हैं महर्षि व्यास के प्रशिष्य और जब व्यासजी ही श्रीकृष्ण के दर्शन करने आते हैं, महर्षि शाकल्य को सन्देश भिजवा देते, वे अपना अहोभाग्य मानते।

"मानव के समीप आध्यात्मिक साधन के तीन उपकरण हैं—मस्तिष्क, हृदय और देह।" चलते रथ में माधव अपने सखा को समझा रहे थे—"मस्तिष्क के जो साधक हैं, प्रतिभा का प्रसाद जिन्हें मिला है, उन महर्षियों के दर्शन हम इन्द्रप्रस्थ में ही कर लेते हैं।"

"हृदय का धन जिनके पास है, भक्ति देवी के जो अनुग्रह भाजन हैं। नन्द-नन्दन को उनके द्वार तक दौड़ना पड़ता है।" अर्जुन ने हँसकर अपने सखा की ओर देखा। सो तो है ही।" श्रीकृष्ण भी हँसे—"लेकिन आज एक देह के, साधक के द्वार पर हम चल रहे हैं। उसके पास न बुद्धि है और न भावुकता की शास्त्रीय बातें, किन्तु देह को उसने लगा दिया है श्रम—श्रम अनवरत् श्रम यही एकमात्र साधना है उसकी। पीड़ितों की सेवा, असहायों की सहायता एकमेव ध्येय है उसका और तुम जानते हो कि देह सत्ता है। सत्ता का ठीक संयम होगा, तो चित्त और आनन्द उनसे भिन्न नहीं रहेंगे।"

"सच्चिदानन्द स्वयं दौड़ा जा रहा है। यह तो देख रहा हूँ किन्तु वे महाभाग ?" अर्जुन ने पूछा। रथ के वेग ने अब तक गन्तव्य तक पहुँचा दिया था। उन्हें और पार्थ को अद्भुत दृश्य देखने को मिला। बूढ़ा कोल एक घायल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की सेवा करने में जुटा था। श्रीकृष्ण सहायक बन गए उसके झोंपड़े में आकर।

"बाबा महर्षि शाकल्य को कहना, हम उनके आश्रम के सम्मुख से जायेंगे।" कार्य निवृत्त होने पर गीता के महान् उपदेष्टा ने कहा। स्वरों में जैसे उसमें नवीन चेतना का संचार हुआ। वह सन्देश देने दौड़ा, वह दैहिक साधक अपनी इस महान साधना के अतिरिक्त उसे और चाहिए भी था क्या ?

ईश मिलन की उत्कण्ठा

एक जिज्ञासु अपने गुरु के पास गया और उनसे कहा—"महाराज मैं ईश्वर को प्राप्त करना चाहता हूँ।" गुरुजी उस युवक जिज्ञासु की ओर देखकर जरा-सा मुसकरा भर दिये, मुँह से कुछ न बोले। उस दिन से युवक प्रतिदिन ही आता और धर्म प्राप्ति के लिये आग्रहपूर्वक निवेदन किया करता। परन्तु गुरुजी बड़े ही चतुर थे, वे प्रतिदिन ही युवक को टाल दिया करते थे। एक दिन धूप बड़ी तेज थी। गर्मी के मारे चित्त व्यग्र हो रहा था। उसी समय युवक फिर आया और गुरुजी से ईश्वर की प्राप्ति का उपाय पूछने लगा। गुरुजी ने युवक से कहा—"बच्चा, आओ चलें, नदी में स्नान कर आवें।" गुरुजी की आज्ञानुसार युवक नदी तट पर गया और पहुँचते ही जल में कूदकर गोता लगाया। युवक के पीछे ही गुरुजी भी कूद पड़े। युवक ने गोता लगाया ही था, कि गुरुजी ने उसे जोर से दबा लिया। उसे वे बड़ी देर तक पानी के नीचे दबाये रहे। जरा देर तक छटपटाने के बाद गुरुजी ने युवक को छोड़ दिया। युवक ने जब पानी से ऊपर सिर निकाला, तब गुरुजी ने उससे पूछा कि जब तक तू पानी में डूबा था, तुझे किस चीज की सबसे अधिक आवश्यकता मालूम पड़ रही थी ? युवक ने उत्तर दिया कि साँस लेने के लिये जरा-सी हवा की। यह सुनकर गुरुजी ने पूछा—"उस समय हवा के लिये तू जितना व्यग्र था, क्या तुझे उतनी ही व्यग्रता ईश्वर के लिये भी है ? यदि तुझे ईश्वर की प्राप्ति के लिये भी वैसी ही उत्कण्ठा है, तो उसे एक क्षण में पा जायेगा। परन्तु जब तुझे उस तरह की उत्कण्ठा, उस तरह की पिपासा न होगी, तो तू धर्म को, ईश्वर को प्राप्त करने में समर्थ न हो सकेगा। चाहे अपनी बुद्धि को कितना ही क्लेश क्यों न दे ? चाहे कितनी ही पुस्तकें क्यों न रट डाल, चाहे जीवनपर्यन्त कितना ही पूजा-पाठ क्यों न करता रह, ईश्वर की प्राप्ति के लिये जब तक उस तरह की पिपासा न उत्पन्न हो जाय, तब तक तू एक नास्तिक के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है, नास्तिक और तुझमें अन्तर केवल इतना ही है कि उसकी भावना दृढ़ है और तू सन्देह में पड़ा है।"

भरोसा भगवान का

लन्दन के एक मकान में १६ वर्ष का किशोर बालक बन्दूक साफ कर रहा था। बालक का नाम था रोनाल्ड टैकर। वह प्रारम्भ से ही गजब का साहस और आत्म-विश्वास का धनी था। वह प्रतिदिन थोड़ा समय भगवान के भजन के लिये अवश्य निकाला करता था।

बन्दूक साफ करते समय एकाएक गोली छूट गई और कनपटी में जा घुसी। माँ चिल्लाकर रो पड़ी। घर वाले बहुत दुःखी हुए। डाक्टर के पास ले जाया गया। डाक्टर ने कहा—"आपरेशन खतरनाक है, गोली निकल सकती है, पर मृत्यु किस क्षण हो जाये यह कहा नहीं जा सकता।"

बालक ने कहा—"डाक्टर कोई दवा लगा दो। खून बन्द हो जायेगा, बाकी सब भगवान देखेगा।" भगवान के विश्वास पर उसने मृत्यु को रोक लिया। मृत्यु खड़ी प्रतीक्षा करने लगी।

३३ वर्ष तक न तो उसने कोई काम बन्द किया, न निराश हुआ और न ही एक दिन बुखार आया। मृत्यु तो जैसे घबड़ा ही गई कि उसे किस तरह छेड़ा जाये ? ४६ वर्ष की आयु में उसका निधन हुआ, तब लोगों को ज्ञात हुआ कि भगवान के विश्वास में भी इतनी शक्ति हो सकती है।

अविचल निष्ठा

वृद्धावस्था तथा लकवे की बीमारी के कारण श्री राजनारायण बसु राजगृही में रहने लगे। अब उनका बाहर जाना बिल्कुल ही बन्द हो गया। उनके परम-प्रिय शिष्य बाबू अश्विनीकुमार को इस बात का पता चला कि गुरुदेव बीमार हैं, तो वे तुरन्त उनके दर्शनों के लिये चल पड़े। अश्विनीबाबू कमरे में प्रवेश करते हुए काफी गम्भीर हो गये। दुःख भरे स्वर में उन्होंने गुरुदेव को प्रणाम किया और आशीर्वाद पाकर समीप ही चारपाई पर बैठ गये।

थोड़ी ही देर में बातचीत का सिलसिला चल पड़ा। राजनारायण बसु ने अपने मार्मिक उपदेश शुरू किये। भगवद्गीता तथा उपनिषदों के श्लोक, वर्डसवर्थ, शेली वायरन तथा हाफिज आदि सन्त पुरुषों की सम्मतियाँ वे इस प्रकार देने लगे, मानो वे पूर्ण स्वस्थ हों, उन्हें किसी प्रकार का कष्ट न हो। यह देखकर अश्विनीकुमार ने पूछा—"भगवन्, आपने तो ईश्वर की बड़ी उपासना की, फिर भी वह आपको कष्ट दे रहा है—मैं देख रहा हूँ कि आप इस पर भी उसी ईश्वर के गुण गाये जा रहे हैं।" राजनारायण बसु बोले—"अश्विनी तू उन्हें दोष न दे। थोड़े दिन यह शारीरिक कष्ट मिले, तो उससे मेरा क्या बिगड़ जायेगा ? रोग-शय्या पर पड़ा और भी निश्चित भाव से भजन कर सकूँगा, पर क्या तुम यह भूल रहे हो कि मैंने उन्हीं की कृपा से जीवन में कितने ही सुन्दर दृश्य देखे और अनेक सुख उठाये।" गुरुदेव की यह अविचल निष्ठा देखकर अश्विनीबाबू आगे कुछ न बोल सके।

ब्रह्म विद्या का ज्ञान

"ईश्वर को प्राप्त करना कोई सहज बात नहीं है। वह अति दुस्तर और कठिनाई से ही जाना जा सकता है। इस संसार में बहुत सुखद पदार्थ हैं। धन, यौवन, दीर्घ-जीवन, राज-सिंहासन और तू कहे तो मैं तुझे अनन्त काल तक सुखोपभोग करने वाली सामर्थ्य प्रदान कर सकता हूँ, मगर तू ब्रह्म को जानने का हठ न कर।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऋषि-पुत्र नचिकेता ने सारी बातें ध्यान से सुनीं। यमाचार्य के कथन में उन्होंने कोई रोक-टोक नहीं की।

यमराज ने संभाषण समाप्त किया तो उसी सरलता के साथ नचिकेता ने जवाब दिया—"देव बहुत सुखोपभोग प्राप्त कर लेने पर भी क्या मेरा यह जीवन बना रहेगा ? फिर भोगों से तृप्ति भी तो नहीं होती। इसलिये अपना धन, अपना ऐश्वर्य, राजसिंहासन तथा नाच-गान आप अपने ही पास रखें। मुझ पर यदि प्रसन्न हों, तो वही उपदेश दें, जिससे मेरा आत्म-कल्याण हो।" नचिकेता की दृढ़ता पर यमराज प्रसन्न हुए और उसे ब्रह्म-विद्या का ज्ञान कराया।

असली पारस

एक ब्राह्मण बड़ा निर्धन था। उसने एक सन्त की इसलिए बड़ी सेवा की कि उनके आशीर्वाद से उसका धनाभाव दूर हो जायेगा। बहुत काल तक सेवा करने के बाद महात्मा प्रसन्न हुए पूछा—"वत्स ! बोल तूने मेरी इतनी सेवा क्यों की, मैं तेरी इच्छा पूरी करना चाहता हूँ।" निर्धन ने कहा—"भगवन् ! मैंने आपकी सेवा इसलिये की है कि आप मुझे कोई ऐसा आशीर्वाद दें, जिससे मेरा धनाभाव दूर हो जाये और मैं इस नगर का सबसे बड़ा सेठ हो जाऊँ।"

ब्राह्मण की बात सुनकर सन्त ने कहा—"तुम विन्ध्यपुरी के महात्मा प्रभुदास के पास जाओ। वे तुम्हें एक ऐसी पारसमणि देंगे, जिससे तुम मनचाहा सोना इकट्ठा कर सकोगे और नगर के सबसे बड़े सेठ बन जाओगे।" ब्राह्मण ने वैसा ही किया। उसने महात्मा प्रभुदास के पास जाकर सारी कथा कह सुनाई। महात्माजी ने बिना कुछ कहे प्रसन्न-मुद्रा में वह पारसमणि उस ब्राह्मण को दे दी। ब्राह्मण को इस पर बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह कैसे महात्मा हैं, जो इन्हें धन से भी मोह नहीं ? ब्राह्मण ने अन्त में अपनी आशंका व्यक्त कर दी। सन्त ने कहा—"वत्स ! मेरे पास इससे भी बड़ी सम्पत्ति है, जिसका नाम ईश्वर-प्रेम है। इसके आगे धन तो बिल्कुल तुच्छ है।" महात्मा की इस गहन निष्ठा से ब्राह्मण बड़ा प्रभावित हुआ और उसने भी धन का मोह त्यागकर अपना शेष जीवन परमात्मा के भजन में ही लगाया।

सच्ची लगन

एक व्यक्ति ने अज्ञान में बहुत पाप किये। कुछ दिन में उसकी भेंट एक ईश्वर-भक्त से हो गई। इन महात्मा के उपदेश से उस व्यक्ति की आँखें खुलीं और संसार के सच्चे स्वरूप का ज्ञान हुआ। इस प्रकार का आत्म-बोध हुआ तो सबसे पहले अपने पापों पर बड़ा दुःख हुआ। उसने महात्मा से प्रायश्चित का उपाय पूछा। उन्होंने बताया कि यदि वह गंगा स्नान कर ले, तो उसके पाप दूर हो सकते हैं। इस पर वह व्यक्ति बड़ा प्रसन्न हुआ और गंगा-स्नान के लिये चल पड़ा।

उन दिनों मोटर-गाड़ियों का प्रचलन न हुआ था। गंगाजी वहाँ से काफी दूर थीं। उस आदमी को गंगाजी का पता-ठिकाना भी न मालूम था, उसे केवल यही अनुमान था कि गंगाजी कोई बड़े जलाशय का नाम है। दिनभर चलते रहने के बाद तीसरे पहर उसे एक बड़ा तालाब मिला, उसने सोचा, बस यही गंगाजी हैं। बड़े प्रेम से कपड़े उतारे, स्नान किया और फिर कपड़े पहनकर घर लौटने की तैयारी करने लगा। तभी एक दूसरा व्यक्ति वहाँ आ पहुँचा, जिससे मालूम पड़ा कि गंगाजी तो अभी बहुत दूर हैं।

यात्री ने दूसरे दिन फिर पद-यात्रा प्रारम्भ की। कई दिन तक लगातार चलते रहने के बाद उसे एक नाला मिला। उसने उसे ही गंगाजी समझकर स्नान किया और फिर प्रसन्नतापूर्वक घर लौटने की तैयारी करने लगा। पर एक बालक ने बताया कि वह तो एक मामूली नाला है, गंगाजी तो बहुत दूर हैं।

वह आदमी फिर यात्रा पर चल पड़ा। कई सप्ताह चलते रहने के बाद उसे एक बड़ी नदी मिली। इस बार उसे पक्का विश्वास हो गया कि यही गंगाजी हैं। भक्त ने बड़ी श्रद्धा के साथ स्नान किया और फिर घर लौटने की तैयारी करने लगा। इसी समय एक स्त्री ने उस नदी का नाम लेकर जयकार लगाई। यह सुनकर उस आदमी को बड़ा विस्मय हुआ कि वह जिसे गंगा समझ रहा था, वह तो दूसरी नदी निकली।

भक्त थक गया था। पाँव सूज गये थे और उनमें छाले पड़ गये थे। खाने के लिये अन्न भी न बचा। शरीर दुर्बल पड़ गया, पर उसे अभी भी गंगा-स्नान की सच्ची अभिलाषा हो रही थी। वह फिर चल पड़ा। कुछ दूर चलने पर अन्त में उसे गंगाजी दिखाई दीं, पर वह उसके रेत में पहुँचते ही थककर गिर गया। बड़ा जोर मारा, पर पाँव जवाब दे गये। उसने घिसटना शुरू कर दिया। किसी तरह वह तट तक पहुँचा, पर तब तक उसके प्राण निकल चुके थे।

ईश्वरभक्त—गैरीवाल्डी

इटली के वीर गैरीवाल्डी ने अपनी जीवन-कथा में लिखा है—"युद्ध में मेरी विजय और साहस को देखकर मेरे मित्र बड़े विस्मय में हैं और वे यह समझते हैं कि मैं किसी दैवी शक्ति का प्रयोग करता हूँ। पर मैं यहाँ साफ बता देना चाहता हूँ कि मेरे साहस और शौर्य के मूल में, ईश्वर के प्रति अटूट विश्वास ही है। मेरा विश्वास है कि जब तक मेरी माता मेरे प्राण-रक्षार्थ ईश्वर के ध्यान में निमग्न रहेंगी, तब तक मुझ पर कोई भी विपत्ति नहीं पड़ सकती। मैं ईश्वर के भरोसे पूर्ण निश्चिन्त हूँ। अपने प्राणों की रक्षा के लिये मुझे जरा भी शंका नहीं है।"

इस युद्ध में भीषण रक्तपात हुआ। गैरीवाल्डी के पास से सनसनाती हुई गोलियाँ छूटती रहीं और गोले दगते रहे, पर उसके जीवन को आँच नहीं आई।

जिस परमात्मा को बड़े-बड़े ज्ञानी-ध्यानी भी योग साधनायें करके भी नहीं जान पाते, उसे भक्त अपनी निष्ठा और भावना के द्वारा शीघ्र ही आकर्षित कर लेते हैं। भगवान तो भक्ति का भूखा और निष्ठा का प्यासा है, जहाँ उसे यह दोनों बातें मिल जाती हैं, वहाँ पहुँचने में उसे देर नहीं लगती।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अविचल धैर्य की महिमा

एक बार एक तपस्वी जंगल में तप कर रहा था। नारदजी उधर से निकले तो उसने साष्टांग प्रणाम किया और पूछा—"मुनिवर कहाँ जा रहे हैं ?" नारदजी ने कहा—"विष्णुलोक को, भगवान के दर्शन करने जा रहे हैं।" तपस्वी ने कहा—"एक प्रश्न मेरा भी पूछते आइए कि—मुझे उनके दर्शन कब तक होंगे ?"

नारदजी विष्णुलोक पहुँचे, तो उन्होंने उस तपस्वी का भी प्रश्न पूछा—भगवान ने कहा—"८४ लाख योनियों में अभी १८ बार उसे और चक्कर लगाने पड़ेंगे, तब कहीं मेरे दर्शन होंगे।" वापस लौटने पर नारदजी ने यही उत्तर उस तपस्वी को सुना दिया।

तपस्वी अधीर नहीं हुआ। समय की उसे जल्दी न थी। इतना आश्वासन उसे पर्याप्त लगा कि भगवान के दर्शन देर-सबेर में, उसे होंगे अवश्य। इससे उसे बड़ी प्रसन्नता हुई और दूने उत्साह के साथ अपनी तपस्या में लग गया। उसकी इस अविचल निष्ठा और धैर्य को देखकर भगवान बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने तुरन्त ही उस तपस्वी को दर्शन दे दिये।

कुछ दिन बाद नारदजी उधर से फिर निकले तो भक्त ने कहा—"मुझे तो आपके जाने के दूसरे दिन ही दर्शन हो गये थे।" इस पर नारदजी बहुत क्षुब्ध हुए और विष्णु भगवान के पास जाकर शिकायत की कि आपने मुझसे कहा इनको लम्बी अवधि में दर्शन होंगे और आपने तुरन्त ही दर्शन देकर मुझे झूठा बनाया।

भगवान ने कहा—"नारद, जिसकी निष्ठा अविचल है जिसमें असीम धैर्य है, उसके तो मैं सदा ही समीप हूँ। देर तो उन्हें लगती है, जो अधीर हैं और पल-पल में उतावली करते हैं। उस भक्त के प्रश्न में उतावली का आभास देखकर मैंने लम्बी अवधि बताई थी, पर जब देखा कि वह तो बहुत ही धैर्यवान है, तो उतना विलम्ब लगाने की आवश्यकता न समझी और तुरन्त दर्शन दे दिये।"

साधुता की कसौटी

एकबार एक धनी व्यक्ति ने एक ऊँची बल्ली पर रत्नजड़ित कीमती कमण्डल टाँग दिया और घोषणा की कि जो कोई साधु इस बल्ली पर सीधा चढ़कर कमण्डल उतार लेगा उसे यह कीमती पात्र ही नहीं बहुत दक्षिणा भी दूँगा। बहुत-से त्यागी और विद्वान साधुओं ने भी प्रयत्न किया पर किसी को सफलता न मिली। अन्त में कश्यप नामक नट, विद्या में बहुत-सा जीवन बिताकर साधु बने एक बौद्ध भिक्षु ने उस बल्ली पर चढ़कर कमण्डल उतार लिया। उसकी बहुत प्रशंसा हुई और धन भी मिला।

जब यह समाचार भगवान बुद्ध के पास पहुँचा तो वे बहुत दुःखी हुए। उन्होंने सब शिष्यों को बुलाकर कहा—"भविष्य में तुम में से कोई भिक्षु इस प्रकार का चमत्कार न दिखाये और न उन लोगों से भिक्षा ग्रहण करे जो साधु का आचार नहीं, चमत्कार देखकर उसे बड़ा मानते हों।"

चमत्कार नहीं, चरित्र और ज्ञान ही साधुता की कसौटी है।

परोपकारी विसोवा

महाराष्ट्र के ओंढिया नागनाथ नामक ग्राम में विसोवा नामक एक सज्जन रहते थे। वे सोने-चाँदी का काम करते थे। धनी भी थे और भगवान के भक्त भी। उस क्षेत्र में दुर्भिक्ष पड़ता है। विसोवा के पास जो कुछ था, उसे वे अकाल-पीड़ितों को खिला देते हैं। फिर भी लोग भूख से प्राण त्यागते ही जाते हैं। विसोवा सोचते हैं मेरी साख है, क्यों न ऋण लेकर भूखों का पेट भरूँ ? जब दुर्भिक्ष समाप्त हो जायगा तब मैं ऋण चुका दूँगा। अपनी पत्नी से सलाह करते हैं, उसे भी यह बात पसन्द आ जाती है और सब तो निर्धन हो चुके थे, एक निर्दय पठान ही धनी था। उसी के यहाँ अन्न भी था। विसोवा उससे ऋण लेकर भूखों मरतों को अन्न बाँटने लगे। चुगलखोरों ने पठान से विसोवा के दिवालिया होने की बात कह दी। पठान ने अपना ऋण तुरन्त लौटाने का तकाजा किया। मुसलमानी राज्य में पठानों की तूती बोलती थी। कुछ न्याय भाव था नहीं, वे चाहे जिसका चाहे जो कर डाल सकते थे। उसने मुश्किल से सात दिन की मोहलत दी। विसोवा ऋण कहाँ से चुकाते, उनके पास कुछ भी न था।

जब ऋण चुकाने का कोई प्रबन्ध न हो सका तो पठान विसोवा को अत्यन्त क्रूरतापूर्वक यातनाएँ देने लगे और अपमानित करने लगे। फिर भी विसोवा क्षुब्ध न हुए बराबर यही कहते रहे कि मैंने आपका ऋण अवश्य लिया है और जिस दिन भी मेरे पास व्यवस्था हो जायेगी आपको अवश्य चुका दूँगा। आप चाहें तो मुझे और मेरे परिवार को ऋण के बदले में पशु की तरह खरीदकर अपने यहाँ जन्म भर के लिये गुलाम भी रख सकते हैं।

विसोवा का मुनीम अपने स्वामी की दुर्दशा को न देख सका। उसने अपनी सारी संचित पूँजी पठान को देकर अपने परोपकारी स्वामी का उद्धार कराया। इसके बाद वह मुनीम भी विसोवा के साथ पूर्ण श्रद्धा के साथ ईश्वर-भक्ति एवं परोपकार में लग गया।

ईश्वर-भक्ति जिसके हृदय में आती है उसके साथ ही करुणा, दया और परोपकार की भावना भी अवश्य उपजती है। जो भक्त तो बने, पर निष्ठुर और कंजूस हो उसकी भक्ति ढोंग मात्र है।

सूफी फकीर का प्रयागराज

"मैं नहीं मानता कि संकट, लोभ और चमत्कार आपके किसी भी साधक को डिगा नहीं सकते।" सूफी फकीर शमशुद्दीन आज बाबा रामचरणदास की कुटिया पर पधारे थे। प्रायः दोनों सन्त एक-दूसरे के यहाँ अवकाश पाने पर, आते-जाते थे। आज उनमें विश्वास के संबंध में चर्चा थी।

"सन्त समाज में नैष्ठिकों के लिए ही स्थान है।" बाबाजी ने उत्तर दिया। "वह निष्ठा ही क्या जो डिग जाय।"

"मैं कबूल करता हूँ।" सूफीजी कह रहे थे। "लेकिन घोर शारीरिक या मानसिक कष्ट, अपार सम्पत्ति तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्मान सिद्धियों के चमत्कार, ये जिसे लोभ में न डालें ऐसे बहुत कम होते हैं। फिर वे सबके सब सन्त समाज में कैसे हो सकते हैं ?"

'मैं विवाद नहीं करना चाहता लेकिन यह सूर्य की भाँति देदीप्यमान सत्य है कि संकटों के महासागर क्षुब्ध होकर भी किसी साधक को कंपित नहीं कर पाते। ऐश्वर्य, सम्मान, सिद्धि या कोई पारलौकिक प्रलोभन उसे आर्द्र नहीं करता। प्रलोभनों की लहरें उससे टकराकर चूर्ण-विचूर्ण हो जाती हैं और उनके महाविक्षुब्ध महोदधि में भी उसका विश्वास अक्षय बट की भाँति सुस्थिर मस्तक उठाए खड़ा रहता है।"

"आप बुरा तो न मानेंगे।" सूफीजी मुसकराए। 'मैं इम्तहान लेना चाहता हूँ। आप जिसे सबसे बड़ा विश्वासी समझते हों, उसी का इम्तहान लूँ।"

"शायद मेरा ही।" बाबाजी खुलकर हँस पड़े। 'मैं बुरा क्यों मानूँगा ? लेकिन परीक्षा लेनी चाहिए, सबसे दुर्बल की। सबल की परीक्षा करके, फिर दूसरे की परीक्षा ली नहीं जा सकेगी। दूसरे सावधान हो जायेंगे।"

"आप जैसा ठीक समझें।" सूफीजी को सफलता में कोई सन्देह नहीं था। "आप ही जानते हैं कि आपके यहाँ कौन सबसे कमजोर और कौन मजबूत है ?"

"यह लक्ष्मणदास है न ?" बाबाजी ने एक नवीन साधु की चर्चा की। "न पढ़ा-लिखा है और न अधिक साधन-भजन ही करता है। दिन भर गायों की सेवा, बर्तन मलना और दण्ड-बैठक से छुट्टी नहीं उसे। घर पर संपन्न था। यहाँ परिश्रम ही सिर पर पड़ा है। भोजन भी सेर सवासेर है उसका, और साधु उसे झिड़कते भी रहते हैं। सबसे छोटा जो है। पीछे दीक्षा जो ली है उसने।"

"आप एक शिष्य खो रहे हैं।" हँसे सूफीजी।

"लक्ष्मणदास।" बाबाजी ने पुकारा और एक पहलवान साधु सम्मुख आ खड़ा हुआ हाथ जोड़े। "तुम्हें एक महीने सूफी जी की कुटिया पर रहना है।" आज्ञा दे दी गई उसे।

"तुम महलों में रह सकोगे ? पाँच हजार सिपाही तुम्हारे हुक्म में रहेंगे। यहाँ तो पेट भर रोटी भी नहीं मिलती।" थोड़ी ही दूर चलने पर सूफीजी ने अपना प्रस्ताव रखा। लक्ष्मणदास से छिपा नहीं था कि नवाब सूफी साहब की किसी आज्ञा को टाल नहीं सकते।

"मुझे किसी तरह एक महीना पूरा करना है। गुरु की आज्ञा का पालन करना ही पड़ेगा। फिर तो मैं, मजे से गुरुजी की सुरभी का दूध पीऊँगा और दण्ड पेलूँगा।"

"अब यह ख्वाब देखना छोड़ दो।" सूफीजी हँस रहे थे। "मैं बाबाजी से तुमको हमेशा के लिए माँग लूँगा।" सचमुच यदि उन्होंने कहा तो बाबाजी अस्वीकार तो नहीं कर सकेंगे।

"मुझे क्या, दो टिक्कर तो यहाँ भी ठोंक ही लेता हूँ।" लक्ष्मणदास तनिक उदास हो गए थे।

"अच्छा नगर चलो मेरे साथ।" सूफीजी सीधे काजी के यहाँ जाकर ठहरे शाम को।

"देखो तुम्हें मेरा कहना तो मानना ही होगा।" सूफी जी की आँखों में बल पड़ गए थे। लक्ष्मणदास जंजीरों से बँधे, दूसरे सबेरे मैदान में पड़े थे और एक छोटे पहाड़ जैसा हाथी थोड़ी दूर खड़ा था। महावत प्रतीक्षा कर रहा था, काजी के संकेत की। इशारा हुआ हाथी बढ़ा और उसके पैरों के नीचे मानव शरीर का माँस लोथड़ा पिच से हो जाएगा। "मेरा चेला बनने में क्यों एतराज है तुम्हें। इस तरह क्यों मरने पर उतारू हो ?"

"मुझे अपने गुरु पर विश्वास है। आप अपना काम करें।" लक्ष्मणदास उस मानसिक स्थिति में पहुँच गए थे जहाँ भय और क्रोध का प्रवेश नहीं, आसन्न मृत्यु ने उन्हें सहसा अनपेक्ष बना दिया था। "अपने गुरु को, अपने धर्म को सहस्त्रों जीवनों से श्रेष्ठ समझता हूँ।"

रात्रि भर सुकुमार चपल सौन्दर्य में भी वह अनपढ़ साधु बचा रहा। तीव्र स्वर से राम-राम-राम का जप करता रहा वह रात्रि भर। इस रक्षा कवच के ऊपर सुन्दरियों के हाव-भाव-कटाक्ष के सारे अस्त्र-शस्त्र मोंथरे सिद्ध हो गए। मदन की सेना परास्त हो गई। ऐश्वर्य के सारे प्रलोभन निरर्थक सिद्ध हुए थे।

प्रथम ही यह भय उपस्थित किया गया था, अब संकेत हुआ। महावत ने हाथी को अंकुश दिया और वह काला वाहन झूमता हुआ आगे बढ़ा। श्री बजरंगबली की जय ! साधु ने सम्पूर्ण शक्ति लगाकर जयनाद किया। सहसा हाथी ने सूँड़ उठाकर सलामी दी और मुड़कर भाग खड़ा हुआ। महावत ने अंकुश मार-मार कर मस्तक छलनी कर दिया, किन्तु नहीं रुका, नहीं रुका, वह गजराज।

"तो तुम चमत्कार भी दिखा सकते हो।" सूफीजी हँसते हुए जंजीरें खोल रहे थे। पता नहीं हाथी को साधु के जयनाद ने भगाया था या सूफीजी का ही कोई चमत्कार था यह।

"श्री हनुमान जी की दया है।" साधु को अहंकार ने स्पर्श तक नहीं किया 'मैं क्या जानूँ ? चमत्कार। यह तो आप महापुरुषों की कृपा है। आप ही डरा रहे थे और आप ही ने भगा दिया हाथी को।"

"अच्छा अब चलो यहाँ से।" सूफीजी ने काजी से विदा लेने की भी आवश्यकता नहीं समझी। काजी जानता था उनके स्वभाव को। उसने आगे बढ़कर फकीर की कदमबोसी की। साधु को तो जैसे आत्मदान मिला। वह इस चहल-पहल व कोलाहल भरे नगर की घिचपिच में एक क्षण भी नहीं रहना चाहता था।

'मैं तुम्हें अभी अच्छा कर दूँगा।" मार्ग में ही तीव्र ज्वर आ गया लक्ष्मणदास को। "महज कलमा सुनने की देर है।"

'मैं अपना प्रारब्ध भोग लेना पसन्द करता हूँ।" मुझे गुरुदेव के द्वारा दिए गए मन्त्र पर विश्वास है, मेरे लिए वही पर्याप्त है। शरीर फटा जा रहा था। हड्डी-हड्डी जैसे हथौड़े से कूटी जा रही हो। भेजा खोपड़ी से निकलने को तैयार था। दृढ़ रहा वह फिर भी।

"तुम शक करते हो ?" सूफीजी ने उसकी ओर देखा और फिर कुछ भुनभुनाए मन ही मन। सामने एक सूखा पेड़ था, फूँक मारी पेड़ पर उन्होंने। छाल भी नहीं रही थी जिस ठूँठ में, उसमें कोपलें निकल आयीं। लाल-लाल कोपलों से ढकता जाता था वह। "यह और ऐसी अनेक सिद्धियाँ दे सकता हूँ मैं तुम्हें।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"आप सिद्ध हैं, मैं मानता हूँ।" आश्चर्य या कौतूहल का कोई चिह्न प्रकट नहीं किया उसने। "लेकिन मुझे बाजीगर बनना तनिक भी प्रिय नहीं और मैं अपनी पीड़ा के लिए मैं प्रभु को या किसी महापुरुष को कष्ट नहीं दूँगा।"

सूफीजी ने उल्लास से साधु को दोनों हाथों में भर लिया। ज्वर और पीड़ा पता नहीं क्या हुई ? वे उसे लिए हुए बाबा रामचरण दास के समीप श्रद्धावनत आए। "यदि ऐसे अविचल अनुरागियों का साथ हो, ऐसे विश्वासी मिलें, तुच्छ हैं एकान्त। इन श्रद्धालुओं के संग रहना किस साधना से कम है।" आज अपनी एकान्तप्रियता का गर्व दूर हो चुका था।

"रहना तो अकेले ही चाहिए सन्त को।" बाबाजी ने प्रतिवाद किया, "किन्तु यदि मन एकान्त में न रहे, इधर-उधर की व्यर्थ बातें सोचता रहे, तो उसे एकान्त कैसे कहा जा सकता है ? सच्चा एकान्त तो मन का ही है। शरीर का तो गौण है।"

"मन इधर-उधर की न सोचे, तो फिर समाधि ही न लगी रहे।" सूफीजी गम्भीर हो चुके थे। "मैं यह जानता हूँ कि संग का प्रभाव जितना असर डालता है साधन उतने शीघ्र प्रभाव नहीं पैदा कर पाते।"

"खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है।" बाबाजी हँसे। "तो आप अपनी जंगल की कुटिया छोड़ने की सोचने लगे हैं ?" व्यंग्य तो नहीं कहना चाहिए, विनोद ही मात्र था यह।

"मैं अर्ज करने वाला था खुद ही।" सूफीजी की गम्भीरता पर कोई असर नहीं पड़ा। "आप को अगर तकलीफ न हो, मैं यहाँ पास ही में उस पीपल के नीचे झोपड़ी बनवा लूँ अपने लिए। मेरी बजह से सन्तों को कोई तकलीफ नहीं होगी।"

"यह भी एक रही।" बाबाजी को खुलकर हँसने का अभ्यास था। "भला साधु का क्या समाज ? हमारा समाज तो सत्कर्म ही है और आप जैसे साधन, सद्भाव हमें प्राप्त हों तो भला हम कहीं छोड़ सकते हैं।"

"मैं तो कुछ पाने आ रहा हूँ।" फकीर के नेत्र सजल हो गए। "सचमुच आपके पास ये पुण्यकर्म ही शकल लिए रहते हैं। इनके पास रहकर इनके कदमों की धूलि से मैं भी पाक हो जाऊँ इसलिए ....."

"लेकिन आप तो इस साल हज जाने की बात कर रहे थे।" सूफीजी का केवल विचार ही नहीं था, बल्कि वे एक महीने पहिले से तैयारी भी कर रहे थे, मक्का जाने की। उन्होंने काजी से कह दिया था और जहाज में उनके लिए जगह रखने का इन्तजाम हो गया था। उन्हें तीन दिन बाद रवाना हो जाना चाहिए यहाँ से, क्योंकि तभी और लोग भी जाएँगे।

"वह खयाल छोड़ दिया मैंने।" फकीर मुसकरा दिये। "मैंने सोचा कि जब मक्का शरीफ में चन्द रोज ही रह सकता हूँ, वहाँ से लौटना ही है, तो वहाँ जाऊँ ही क्यों ? क्यों न आपके प्रयागराज में हमेशा के लिए बस जाऊँ।"

"तो आप प्रयाग कब जा रहे हैं ?" बाबाजी ने पूछा। उन्हें आश्चर्य था कि इस फकीर को यह सूझी क्या है और जब वह सदा के लिए प्रयाग जा रहा है तो फिर पीपल के नीचे कुटिया बनाने की बात करता ही क्यों है ?

"अरे सो कुछ नहीं।" फकीर हँसते जा रहे थे। "जहाँ अडिग विश्वास का अक्षयवट रहता है, जहाँ निष्ठा सशक्त लिए श्रेष्ठ जन उपस्थित रहते हैं, वहीं रहूँगा। मेरा प्रयाग तो यही है।" उन्होंने भूमि पर सिर रख दिया।

बाबाजी की झोपड़ियाँ तो काल के थपेड़ों से उड़ गईं, किन्तु वह पीपल और उसके नीचे सूफीजी की पक्की कुटी का खण्डहर अभी भी है फैजाबाद की ओर अयोध्या से हटकर सरयू किनारे।

ईश्वर प्राप्ति का सरल उपाय

सरयू तट पर विराजमान स्वामी ओमानन्दजी के समीप किसी गाँव का रामलाल नामक एक व्यक्ति आया। उसने स्वामीजी से करबद्ध प्रार्थना करते हुए कहा कि मुझे भी कुछ उपदेश दीजिये कि ईश्वर के दर्शन पा सकूँ स्वामीजी ने रामलाल से कहा—"ओ रामलाल ! कृष्ण भगवान का ध्यान इस प्रकार करो कि भगवान कृष्ण पालथी मारे बाँसुरी हाथ में लिये हुए तुम्हारे हृदय कमल में बैठे हुए हैं, यह ध्यान करते हुये **"ॐ नमो भगवते वासुदेवाय"** मन्त्र का मन में जाप करो।" रामलाल ने कहा—"गुरुजी मैं मस्तक शून्य हूँ, यह ध्यान मैं नहीं कर सकता और यह मन्त्र इतना बड़ा है, जप भी मेरे लिये कठिन है।" स्वामीजी ने कहा, अच्छा घबड़ाओ नहीं। मैं तुमको एक और सरल मार्ग बता रहा हूँ, सुनो "पद्मासन पर बैठकर भगवान कृष्ण की पीतल की मूर्ति लेकर अपने सामने रखकर उसी के प्रत्येक अंग को देखना और किसी ओर न देखना, फिर नेत्रों को बन्द करके उसी का अनुभव करना।" रामलाल ने स्वामीजी के पैरों को पकड़कर कहा कि—"महाराज मैं इस आसन पर इतनी देर बैठकर ध्यान नहीं कर सकता, क्योंकि बैठने में बड़ा कष्ट होगा। यदि मैं अपने कष्ट का ध्यान करूँगा तो मूर्ति का ध्यान नहीं हो सकेगा। गुरु महाराज कोई इससे सरल उपाय बतलाने की कृपा कीजिये।" स्वामीजी ने कहा कि अपने पिता के चित्र को सामने रखकर एकाग्रचित्त से देखिये। स्वामीजी आगे का और वाक्य पूर्ण भी न करने पाये थे कि वह बोल उठा कि स्वामीजी पिता का ध्यान मुझसे नहीं हो सकता, क्योंकि वे मुझे बहुत पीटते थे। मैं उनसे बहुत डरता था। यदि कहीं स्वप्न में भी देख लेता हूँ तो रात्रि काटना कठिन हो जाता है, मेरे पैर काँपने लगते हैं प्रभु ! कोई सरल उपाय बताइये, जिसको मैं कर सकूँ। स्वामीजी कुछ विचारकर थोड़ी देर पश्चात् बोले कि रामलाल ! अच्छा, यह बतलाओ कि तुमको कौन-सी वस्तु सबसे प्रिय लगती है वह बोला कि भैंस, क्योंकि उससे दूध-मक्खन तथा घी बहुत खाया है और यह मेरी आँखों के सामने नाचती रहती है। स्वामी ने कहा कि तुम उस कोठरी में जाओ और दरवाजा बन्द करके बैठ जाओ और उसी भैंस का ध्यान करो और किसी अन्य बात को न सोचना। वह बड़ा प्रसन्न हुआ और स्वामीजी की आज्ञानुसार कार्य आरम्भ कर दिया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तीन दिन बीत गये खाना-पीना छोड़कर उसी ध्यान में लीन हो गया। एक दिन स्वामीजी ने उसे ध्यान मग्न देखकर पुकारा, "ओ रामलाल बाहर आओ कैसी दशा है ?" रामलाल ने कहा कि मैं कैसे बाहर आऊँ मेरे तो बड़े-बड़े सींग हैं ? मैं वृहत्काय वाली भैंस हो गया हूँ।" तब स्वामी जी समझ गये कि अब वह एकाग्रचित्त वाला तथा समाधि योग्य हो गया। स्वामीजी ने पुनः पुकारकर कहा कि तुम भैंस नहीं हो तुम अपना ध्यान बदल दो। भैंस का नाम, रूप भूल जाओ और भैंस के सत् स्वरूप सत्, चित् आनन्द का ध्यान करो यही तुम्हारा वास्तविक स्वरूप है। रामलाल ने अपना मार्ग बदलकर स्वामीजी के उपदेशानुसार चलते हुए अपने जीवन लक्ष्य मुक्ति को प्राप्त किया।

जो वस्तु प्रिय हो उसी का ध्यान करते हुए आगे बढ़ना चाहिये न कि मन को बलात् खींचकर किसी ध्यान में लगाना इससे मन टिकता नहीं है।

शूद्र ऋषि बना

दिन ढला और उसके साथ ही कवष की सम्पूर्ण आशाएँ भी ढल गईं। प्रातःकाल जब वह द्यूत-क्रीड़ा के लिए बैठा था, तब उसकी उमंगों का कोई ठिकाना न था। दिनभर जन्म और मृत्यु की तरह हार और जीत के ज्वार-भाटे आते रहे और कवष उनमें कागज की नाव की तरह डूबता-उतराता रहा। अन्ततः पासे ऐसे पलटे कि नाव झकझोरे पर झकझोरे खाती गई। सूर्यदेव के अस्त होने की तरह वह भी पराजय के अनन्त सागर में डूब गई। कवष उस दिन अपना सर्वस्व जुए में हार गया।

हारे हुए जुआरी की दैन्य दशा की उपमा दी जाती है, फिर जो सचमुच अपना सब कुछ जुए में ही हार गया हो उसकी दीनता का तो कहना ही क्या ? कवष के लिए आज का दिन और दिनों की तरह न था। पहले भी कई बार हारा था, पर तब तक उसके पास साधनों का अभाव नहीं हुआ था। आज तो उसने अपनी सम्पत्ति के नाम का एक तिनका तक न छोड़ा था। जुआरी की क्या दुर्दशा होती है, यह उस दिन कोई कवष से पूछता तो संभवतः इस विषय पर सबसे अच्छा और प्रभावोत्पादक व्याख्यान प्रस्तुत कर सकता था। पर उस घड़ी तो उसके लिए यह संसार उस श्मशान की तरह लग रहा था, जिसमें पच्चीसों शव एक साथ दाह किए गए हों और अब वहाँ श्रृंगाल-भेड़ियों के अतिरिक्त और कुछ शेष न रहा हो। ऐसी व्यथित मनःस्थिति में जब वह घर की ओर चला तो मार्ग में ही उसे अपना पुत्र पड़ा मिल गया। ज्वर से पीड़ित किशोर बालक को औषधि मिलना तो दूर, आज लगातार पाँचवें दिन उसे आध पाव दूध के भी दर्शन न हुए थे। इस आशा से वह वन की ओर चला था कि वहाँ आँवला और गूलरें मिल जाएँगी, उनसे अपना पेट भर लेगा। साथ ही भूखी बहिन और पीड़ित माँ के लिए भी कुछ फल लेता जाएगा। किन्तु टूटी, थकी जर्जर काया ने साथ ही नहीं दिया। गाँव से बाहर आते ही बालक मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा।

कवष को पुत्र की इस करुणाजनित स्थिति का उतना दुःख नहीं हुआ, जितना अपने अधःपतित जीवन पर पश्चाताप। संतप्त हृदय से बच्चे को गोद में उठाकर कवष घर पहुँचा तो वह घर जो आज से कुछ वर्ष पूर्व सावन के खेतों की तरह लहलहाता दृष्टिगोचर होता था, ज्येष्ठ की तपती दोपहर-सा दिखाई दिया, जिसमें हरियाली नाममात्र को नहीं रह जाती। ज्वाला ही ज्वाला, तपन ही तपन। पत्नी और पुत्री के जीर्ण शरीर को देखकर कवष का हृदय हाहाकार से भर गया।

उसने एक मिट्टी के फूटे बर्तन में थोड़ा जल लिया। चुल्लू भरी, आँख मूँदी, ऐसा लगा उसने कुछ कहा और वह जल धरती पर छिड़क दिया। धरती माता के पाँव स्पर्श कर कवष ने अपनी भूखी पत्नी और पुत्री को जल पिलाया और उन्हें लिटाकर एक ओर चुपचाप निकल गया।

कवष बदल गया। दूसरे दिन सारे गाँव में चर्चा फैल गई—"कवष का हृदय परिवर्तन हो गया है।" इसके बाद उसे किसी ने जुआ खेलते, मांस खाते नहीं देखा।

ईलुष का पुत्र कवष शूद्र योनि में जन्मा था। उसमें वह सभी दुर्गुण थे, जिनके कारण उस युग में ब्राह्मण कुल में उत्पन्न व्यक्ति को भी शूद्र ठहराकर उसे बहिष्कृत कर दिया जाता था। यह भी था कि जो इस प्रकार अन्त्यज श्रेणी अपने आपको उठाकर श्रेष्ठ आचरण करने लगते थे, वे शूद्र भी उच्च वर्ण में ले लिए जाते थे।

कवष ने निश्चय कर लिया अब वह सारे बुरे कर्म धो डालेगा और अपनी अन्तरात्मा को निर्मल बनाकर एक सद्गृहस्थ का जीवन जीयेगा। उसके इस संकल्प में इतनी शक्ति थी कि वेदव्यास को उसके इस निर्णय को ऋग्वेद की ऋचा के रूप में स्थान देना पड़ा। अच्छाई का अनुकरण करने वाले हजारों लोग होते हैं। कवष के इस आदर्श ने सैकड़ों लोगों के हृदय बदल डाले। उसके इस आदर्श का सर्वत्र सम्मान किया गया।

अप्रतिम सामाजिक सम्मान और ऋग्वेद के ऋषि मण्डल में अपना स्थान बनाकर कवष को वैसे ही अहंकार हो गया जिस प्रकार वर्षा ऋतु में छोटे-छोटे नाले, नदी का रूप धारण कर इतराते हुए बह निकलते हैं। ऋषियों ने एक परम्परा बनाई थी कि जो अपनी निष्ठा को अधिकतम बलवान सिद्ध कर सकता है और अन्तिम सिद्धि प्राप्ति तक साधना करने का साहस व्यक्त कर सकता है, सन्त और ऋषि बनने का अधिकारी भी वही बन सकता है। उत्तराधिकार में पाया हुआ धन और बिना परिश्रम के हुआ सम्मान, व्यक्ति के अहंकार को बढ़ाकर उसके पतन का ही कारण बनता है। इसलिए दूरदर्शी ऋषि भला ऐसी झूठी सिद्धि और सम्मान को क्यों महत्त्व देते ? कवष ने, नेकी का मार्ग अपनाया था। उसके लिए उन्हें सराहा जाना उचित ही नहीं अनिवार्य भी था। सामाजिक जीवन में अच्छाइयों की बेल सम्मान और सराहना के जल से ही बढ़ती और फलती-फूलती है। पर इतना नहीं कि वह आत्मकल्याण और लोकहित संपादन के लिए, अपनी अब तक की योग्यता को पर्याप्त मानकर पांडित्य का झूठा प्रदर्शन करने लगे।

कवष के साथ कुछ ऐसा ही हुआ। उन दिनों कुरुक्षेत्र में भगवती सरस्वती के पावन तट पर विशाल यज्ञ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का आयोजन हुआ। कवष बिना किसी प्रकार का निमन्त्रण पाये उसमें सम्मिलित हुआ। बात इतने तक सीमित होती तो भी ठीक थी, उसने वहाँ जाकर अपने झूठे पांडित्य का उद्धत प्रदर्शन कर डाला। ऋषिगण इस व्यवहार से बहुत क्षुब्ध हुए। उन्होंने कवष को बाहर निकलवा दिया और रेतीली मरुभूमि में छोड़ देने का दण्ड दिया।

इतना करने के बाद भी ऋषियों ने उसका संरक्षण नहीं छोड़ा। वे जानते थे कि उसमें साधना के बीज अंकुरित हो उठे हैं। यदि उसे तप करने का अवसर मिले तो वह बीज बढ़कर वृक्ष का रूप ले सकते हैं। यह दण्ड-जान-बूझकर इसी उद्देश्य से दिया गया था। तप कराने के पीछे ऋषियों का उद्देश्य आत्मप्रतिभा का विकास कराना ही होता था।

वह अन्त्यज जीवन के कष्ट पहले ही भुगत चुका था। उस पर उसे जुए ने और पीड़ित एवं प्रताड़ित किया था। किसी तरह साहस करके उससे मुक्ति ली और सभ्य एवं सुसंस्कृत जीवनयापन करना प्रारम्भ किया। इस तरह उसने वर्षों से खोते हुए पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय सम्मान को अर्जित किया था। पर अब पुनः उसकी स्थिति राजगद्दी पर बैठाकर राज्य से निकाल दिए गए राजा के जैसी थी, जो न तो अपने आप पर गर्व कर सकता था, न भविष्य के प्रति आशावान। उसकी आँखों के आगे फिर, उस दिन का-सा अन्धकार छा गया। जिस दिन वह अपना सर्वस्व जुए के दाँव पर हारकर एक-एक कौड़ी का भिखारी बन गया था।

अन्तर्दाह से पीड़ित कवष के आगे अब इसके अतिरिक्त कोई चारा नहीं रह गया था कि वह अपनी व्यथा—परमपिता परमात्मा के समक्ष खोलकर रख दे। आज कई दिनों से उसे तृषा व्याकुल कर रही थी। पूर्ण निष्कलुष हृदय से कवष ने भगवान वरुण देव से प्रार्थना की। इन्द्र और मरुद्गणों से सहायता की याचना की। भौतिक दृष्टि से न वहाँ कोई साधन था और न सहायक उपलब्ध थे। ऐसे समय ईश्वरीय शक्तियों के अतिरिक्त उसकी आवाज को सुनता भी कौन ?

आज उसकी आत्मा पूर्ण निष्कलुष थी। मन का मैल धुल चुका था। अभिमान निकलकर जा चुका था। अपनी भावनाएँ और ईश्वरीय सत्ता के अतिरिक्त उस मरुस्थल में कवष को कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। भावनाएँ उमड़ती ही गईं, आत्मशक्ति का प्रकाश विस्तार लेता ही गया और वरुण देव, मरुद्गण एवं भगवान इन्द्र को तब आना ही पड़ा। वे अपने प्रिय उपासक की सहायतार्थ मेघ लेकर दौड़े। देखते-ही-देखते मरुस्थल में सघन बादल छा गये। वर्षा होने लगी। कवष की तृषा के साथ उसका ब्रह्मदर्शन का भाव भी तृप्त हो गया।

ऋषि जो अब तक यह दृश्य दूर से देख रहे थे पास आये। कवष अपने देह भाव को त्यागकर आत्म जगत् में प्रवेश कर गया। वह अब तक भावावेश में ही था। ऋषियों ने उसे "उठो महर्षि कवष" कहकर हृदय से लगा लिया और एक बार फिर एक शूद्र के ऋषि बन जाने की बात सारे देश में गूँज गई।

अक्रोध के पथ पर

अवन्तिका क्षेत्र में शान्तिगिरि नाम का एक मंदिर था, जिसमें शान्तिगिरि नाम के एक महात्मा निवास करते थे। मन्दिर का नाम उन्हीं के नाम से पड़ गया था। उनकी आयु पैंसठ वर्ष की होगी, गोरा रंग, सफेद बाल और चेहरे पर प्रसन्नता की झलक दिखाई पड़ती थी। वह हर एक आगन्तुक से बड़ी नम्रता, मधुरता और शान्ति से बात किया करते थे। वे ऐसी शान्त प्रकृति के थे मानो अपने नाम को सार्थक कर रहे हों। उनको कभी किसी पर क्रोधित होते नहीं देखा गया था। उनके सत्संग से लाभ उठाने के लिए प्रायः आस-पास के क्षेत्र के लोग उनके पास आया-जाया करते थे।

एक बार की बात है कि शान्तिगिरि अपने आसन पर विराजमान थे और आगन्तुकों से बातचीत हो रही थी। उस ग्राम के नम्बरदार के सम्बन्ध में बात आई तो एक व्यक्ति ने कहा कि बड़ा तुनकमिजाज व्यक्ति है। हर एक से लड़ता-झगड़ता रहता है। एक दिन अपने नौजवान लड़के से ही लड़ बैठा। कुछ दिन हुए अपनी धर्मपत्नी को मारा-पीटा। वह बेचारी अपने मायके चली गई। जितने व्यक्ति वहाँ बैठे थे, उन सब ने अपने संबंध में बताया कि उनसे भी नम्बरदार की कहा-सुनी हो गई है। महात्मा इन बातों को सुनकर मुसकरा रहे थे।

एक व्यक्ति ने पूछा, "महाराज ! आपके पास भी तो वह आता-जाता है। क्या आप से भी कभी वह बिगड़ा है ?"

"भाई ! मुझ से कभी उनकी ऐसी बात नहीं हुई।" महात्मा ने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया।

"महाराज ! ताली तो दोनों हाथों से बजा करती है। वह कभी क्रोधित हुए हों और आपने उसका उत्तर न दिया हो, तो बात वहीं समाप्त हो गई होगी। आपने तो क्रोध पर विजय प्राप्त कर ली है, तभी आप शान्त हैं।" वहीं बैठे हुए एक व्यक्ति ने कहा।

"महात्मन ! कृपया यह बताइये कि आपको यह अक्रोध की उच्च स्थिति किस प्रकार से प्राप्त हुई है ताकि हम भी वैसा बनने का प्रयत्न करें।" दूसरे व्यक्ति ने जिज्ञासा प्रकट करते हुए कहा।

महात्मा तो लोककल्याण के लिए होते ही हैं। उन्होंने कहा "मैं तुम लोगों को अपनी आपबीती सुनाता हूँ। उससे पता चल जायेगा कि मेरी पहिले की और अबकी स्थिति में किस प्रकार से अन्तर हुआ है ?

बात आज से पचास वर्ष पहले की है। मैं अपने पिताजी के साथ मन्दिर में रहा करता था। वे संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे। धर्मशास्त्रों के अच्छे ज्ञाता थे। वह बड़े शान्त प्रकृति के थे। उनके प्रसन्न मुखड़े पर कभी उत्तेजना के चिह्न दिखाई नहीं पड़ते थे। मेरी आयु उस समय पन्द्रह वर्ष की थी। शरीर निर्बल था और बात-बात पर क्रोध आ जाया करता था। मन्दिर में आने वाले लोगों के साथ प्रायः मैं लड़ पड़ता था। मित्रों से कई बार झगड़ा हो चुका था। यह समझ लो कि नम्बरदार की और मेरी प्रकृति एकसमान थी।" महात्माजी ने बाल्यकाल की वार्ता कहना शुरू किया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"एक बार मैं अपने मित्रों के साथ एक बारात में गया। वहाँ खाना बनने में कुछ देरी हो गई। मुझे सख्त भूख लग रही थी। अपनी प्रकृति के अनुसार मैं आवेश में आकर उन पर बरसने लगा कि इतनी देर हो गई अभी तक तुम्हारा भोजन ही तैयार नहीं हुआ है। उनको भी सहन नहीं हुआ और कहा कि भीख माँगना तुम्हारा काम है। ग्राम में से माँगकर खा लो। मुझे तैश आ गया और मैं उनसे उलटी-सीधी बातें कहने लगा। इस पर उन्होंने मुझे पीटा और मैं अपने गाँव को चला आया। घर आकर पिताजी से सब बातें कह सुनाईं। उन्होंने कहा कि हम उनसे कहेंगे। मेरे लिए भोजन मँगवाया और अपने साथ खिलाया। खाना खाकर सोने की आज्ञा हुई। मैं सोकर दो घण्टे बाद उठा। अब सारा क्रोध शान्त हो चुका था। उन्होंने मुझसे कहा—"शान्तिगिरि ! तुम अपने गरेबान में झाँककर देखो कि अपराध किसका है ? तुम हर एक से लड़ते-झगड़ते रहते हो। कोई भी व्यक्ति तुमसे प्रसन्न नहीं है। बात-बात में तुम उत्तेजित हो जाते हो। अपनी प्रकृति के अनुसार अवश्य तुम्हारी वहाँ भी किसी छोटी-सी बात पर अन-बन हो गई होगी।" मैंने विवेकपूर्वक विचार किया तो मुझे अपनी ही त्रुटि दिखाई दी। मैंने नम्रतापूर्वक पिताजी से प्रार्थना की कि कृपा करके इसका कोई उपाय बताइए ताकि मैं भी आपकी तरह शान्त हो जाऊँ" महात्मा जी ने अपनी घटना सुनाई और आगे कहने लगे—

पिताजी ने कहा—"बेटा ! तुम चैतन्य स्वरूप हो, शान्ति तुम्हारा जन्म सिद्ध अधिकार है। मनुष्य जब अपने स्वरूप को भूल जाता है तो बाह्य व आन्तरिक कारणों के वशीभूत होकर अपने सन्तुलन को खो बैठता है।" मैंने पूछा—"पिताजी ! मुझे वह कारण बताइए ताकि मैं उनको छोड़ने का प्रयत्न करूँ।" उन्होंने कहा कि क्रोध आने का एक कारण शरीर की निर्बलता है। दुर्बल शरीर वाला मनुष्य शीघ्र उत्तेजित हो जाता है और छोटी-छोटी बातों पर वह गुस्सा हो जाता है। इसलिए तुम व्यायाम किया करो। प्रातःसायं घूमने जाया करो। जब शरीर में कुछ शक्ति आयेगी तो प्रवृत्ति शान्त होती जायेगी। मैंने कहा—कोई और उपाय बताइए ताकि उसके अनुसार आचरण करके क्रोध पर विजय प्राप्त कर सकूँ। उन्होंने मुझे समझाना आरम्भ किया कि देखो बेटा ! वैद्य लोग रोग के निवारण के लिए उसके कारण की खोज करते हैं। इसे दूर करने से रोग निवारण में सहायता मिलती है। तुम विवेकपूर्वक उन बातों पर विचार करो जिससे क्रोध की उत्पत्ति होती है और उनसे दूर रहो तो निश्चय है कि तुम क्रोध को जीत सकोगे।"

मैंने नम्रतापूर्वक उनसे कहा कि मैं तो अभी बालक हूँ। कृपया आप ही इसके कारणों पर प्रकाश डालें। गीता के दूसरे अध्याय का ६२वां श्लोक सुनाया।

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।

सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।

जिसका अर्थ यह है कि 'विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुष का इन विषयों में संग बढ़ता जाता है। फिर इस संग से यह वासना उत्पन्न होती है कि हमको काम (अर्थात् वह विषय) चाहिए और (इस काम की तृप्ति होने में विघ्न होने से) उस काम से ही क्रोध की उत्पत्ति होती है।

इसलिए तुम अपनी इच्छाओं को नियन्त्रण में रखो। इनकी पूर्ति न होने पर क्रोध आता है। यदि तुम न पूरी होने वाली कामनाओं से बच सकते हो तो तुम शान्त रहोगे। इसके विपरीत यदि तुम इनके वश में रहे तो क्रोध से बच न सकोगे क्योंकि हर एक कामना मनुष्य की कभी पूरी नहीं हो पाती। अहंकार भी क्रोध उत्पत्ति के कारणों में से एक है। धन, विद्या, शरीर, पद आदि के मद में अन्धा मनुष्य किसी की छोटी-सी बात को भी सहन नहीं कर सकता। कुछ लोग अपनी वास्तविक स्थिति से अधिक अपने को समझने लगते हैं। इसलिए जब-जब उनके अहं को धक्का लगता है तो तिलमिलाने लगते हैं। जब तुमसे कोई तीखी बात कर दे तो उसको मधुरता का अमृत पिलाओ। वह भी शान्त हो जायेगा। सहनशीलता एक ऐसा गुण है जो मनुष्य की सूक्ष्म शक्तियों को सुरक्षित रखता है। क्रोध से शक्ति का व्यय होता है।"

पिताजी की शिक्षा के अनुसार मैंने इन तथ्यों पर विचार, चिन्तन व अभ्यास करना आरम्भ कर दिया। धीरे-धीरे मेरे लक्ष्य की पूर्ति होती गई। तुम लोग भी यदि उपरोक्त विचारों को अपने मन में स्थान दोगे तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम क्रोध जीत लोगे।

शान्तिगिरि मन्दिर में बैठे हुए आगन्तुकों ने महात्मा जी की भूरि-भूरि प्रशंसा की, उनको धन्यवाद दिया तथा अक्रोध के अभ्यास का आश्वासन देकर चले गये।

तान्त्रिक का व्यर्थ प्रयास

किसी घने जंगल में एक बड़ा भारी तान्त्रिक चिरकाल से महाकाल की साधना कर रहा था। उसने बहुत-सी अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त कर ली थीं और पूर्ण सिद्ध बनने के लिए घोर तप में प्रवृत्त था।

एक दिन वह अपनी गुफा में पड़ा हुआ सुस्ता रहा था, वह वहाँ पड़ी हुई चीजों से मनोरंजन करने लगा। इतने में एक चूहा उधर से फुदकता हुआ आ निकला। तान्त्रिक को उसके मनोभाव जानने में क्षण भर की भी देर न लगी, वह बिल्ली से डरकर यहाँ भाग आया था और कहीं छिपने की बात सोच रहा था। योगीराज की मौज आई कि लाओ इस बेचारे का डर दूर कर दें, उन्होंने एक फूँक मारी, तो चूहा अपना शरीर बदलकर बिल्ली बन गया। अब तो म्याऊँ-म्याऊँ करता वहीं रहने लगा।

बहुत दिन के बाद तान्त्रिक को एक बार फिर फुरसत मिली। वह यों ही बैठा हुआ था कि देखा—बिल्ली थर-थर काँप रही है। बेचारी को कुत्तों ने धर दबाया था। तान्त्रिक से न रहा गया, उसने चुटकी बजाकर बिल्ली को कुत्ता बना दिया, ताकि फिर डरने का अवसर न आवे। कुत्ता कुछ देर तक दुम हिलाता हुआ कृतज्ञता प्रकट करता रहा।

लेकिन फिर भी उसे चैन नहीं था। गुफा से बाहर निकलता कि जंगली चीते उसका पीछा करते। डर के मारे वह फिर गुफा का कोना कुरेदने लगा। तान्त्रिक कुछ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

झुँझलाया तो सही, पर एक अवसर और दिया, पीठ पर हाथ फेरकर उसे चीता बना दिया और कह दिया—"जा अब बेफिक्र घूम-फिर।"

लेकिन डर भी बड़ी बेढब चीज है। उसके लिए आसमान से विपत्ति आ खड़ी होती है। बहेलियों का झुण्ड चीते पकड़ने के लिये उस जंगल में आ टपका। बेचारे चीते का कलेजा धक-धक करने लगा। पिछली टाँगों में मुँह छिपाकर उसी गुफा के एक कोने में जान बचाने के लिए वह पड़ा रहा, डर तो उसका पीछा छोड़ता ही न था।

इस बार तान्त्रिक तप पर से अँगड़ाई लेता हुआ उठा, तो उसका पैर चीते की दुम पर पड़ा। उसने चौंक कर देखा कि क्या है—"अहा, यह तो चीतेराम बैठे हुए हैं, महाशय जी को डर से छुटकारा नहीं, मन का भय इनके लिए साक्षात् भय बुला लाता है।" तान्त्रिक ने खोपड़ी खुजाई, तो उसमें से एक विचार टपक पड़ा—'जिसका हृदय जैसा है, वह वैसी ही परिस्थितियों में रहेगा। दूसरों के कन्धों पर खड़ा होकर कोई बड़ा हो जाय, तो इससे कुछ लाभ न होगा। अपने आप उपार्जित की हुई शक्ति ही वास्तविक और स्थायी शक्ति है। केवल दूसरों की सहायता से किसी का भला नहीं हो सकता।"

योगी ने कमण्डल उठाया और एक चुल्लू जल उस चीते के ऊपर फेंक दिया। वह चूहा बनकर बिल की तलाश में फिर फुदकने लगा। तान्त्रिक जम्हाई लेता हुआ, इधर-उधर टहल रहा था और इस बात का अनुभव कर रहा था कि उन्नति का एक ही मार्ग हो सकता है "अपने पैरों पर आप खड़े होना।"

समर्पण, जो सक्रिय बना दे

कदाचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।
न स्मरत्युपकाराणां शतम् ....।।

श्लोक अभी पूरा भी नहीं हुआ था कि पीछे कुछ अस्फुट ध्वनि सुनाई पड़ी। पाठकर्त्ता ने मुड़कर देखा तो सामने एक तेजोदीप्त मुखमण्डल वाला कषाय वस्त्रधारी पुरुष हाथ में कमण्डल लिए खड़ा था। अधरों पर खेलती मन्द-मुसकान और नेत्रों से बरसती स्निग्धता अनायास बहुत कुछ कह रही थी, पर कुछ भी नहीं समझ पाने का असमंजस पाठक के चेहरे पर प्रश्नवाचक बनकर स्पष्ट उभर रहा था।

अन्ततः मौन भंग हुआ। आगन्तुक के होंठ हिले और कतिपय शब्द निःसृत हुए—

"बड़ा मधुर स्वर है, किन्तु बुलन्दी की कमी है। इस अभाव में स्वर माधुरी वह छटा बिखेरने में समर्थ नहीं हो पा रही है, जो दोनों के समन्वय से संपन्न होती है।"

"आवाज में तनिक और बल डालो न।" अभ्यागत ने आग्रह भरे अनुरोध में कहा—और वहीं आसन जमा कर बैठ गया।

उद्गाता ने अपने हाथ जोड़ लिए और विनयभरी आवाज में अपनी अशक्तता व्यक्त की।

इस बार "क्यों" का उतार-चढ़ाव अनुरोधकर्त्ता के चेहरे पर साफ परिलक्षित हो रहा था। पढ़ने वाले ने इसे भाँपकर कहना आरम्भ किया—

"महाराज ! क्षमा करें। आज पाँचवाँ दिन है नवाह्न परायण का। मैंने निश्चय किया कि इन दिनों अपनी कुटिया से सरयू तट और तीर से कुटीर के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं जाऊँगा। भिक्षाटन तो करूँगा ही नहीं। इस बीच राम कृपा से कुछ मिल गया तो ठीक अन्यथा कहीं कुछ माँगने नहीं जाऊँगा।"

"ओह ! तो इस कृश-कमजोर शरीर व स्वर का यह कारण है—यह अब समझ में आया।" आगत पुरुष ने एक विहंगम दृष्टि डाली। क्षणार्द्ध में परायणकर्त्ता के समस्त शरीर का अवलोकन कर डाला और अगला प्रश्न किया—

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"तुल ..... तुलसीदास"—स्वर में कुछ घबराहट, कुछ हकलाहट थी।

नाम सुनकर तपस्वी जैसे लगने वाले पुरुष की खिलखिलाहट वातावरण में गूँज उठी, मानो नाम में कोई बड़ी भारी विचित्रता नजर आ गई हो। हँसी थमी तो संबोधन सुनाई पड़ा—

"युवक ! नाम भी तुम्हारे निश्चय को ही चरितार्थ कर रहा है। तुम जिस बात पर तुल जाते हो, उसका पूर्ण होना ही नियति बन जाती है, इसका प्रत्यक्ष आभास मिल रहा है, पर एक उलझन अब भी अनसुलझी है।"

"वह क्या ?" प्रश्न हुआ।

"नवाह्न परायण की बात तो समझ में आती है, किन्तु उस मध्य कुछ भी भोजन न ग्रहण करने का प्रयोजन अब तक समझ में नहीं आया ?"

"यह मैंने कब कहा कि निराहार रखूँगा। भोजन लूँगा, पर कहीं माँगने न जाऊँगा।"

"तो फिर अपने आप कहाँ से आयेगा ?"

"आयेगा महाराज ! यदि राम की अनुकम्पा हुई तो स्वयं लेकर आयेंगे। इसी समर्पण योग का अभ्यास तो इन दिनों चल रहा है।"

"अच्छा-अच्छा"—साधु की वाणी उभरी—"गीता में जिस **'योगक्षेमं वहाम्यहम्'** का वचन भगवान ने दिया है, यदि मैं गलत न हूँ तो उसकी परीक्षा करना चाहते हो ? कहो यही बात है न?"

"हाँ-हाँ, बिल्कुल ठीक समझा आपने।" युवक की आँखें चमकीं और उत्साह में वह चहक उठा।

"तुलसी !"—अब साधु की धीर-गम्भीर वाणी मुखरित हुई—"समर्पण योग का अभ्यास तो ठीक है, पर उसके जिस स्वरूप को अपनाने जा रहे हो, यह अत्यन्त क्षुद्र है। भोजन जैसे तुच्छ स्वार्थ के लिए भगवान को बुलाना—यह कोई स्वस्थ सोच तो नहीं, इससे तो संसार में निष्क्रियता और अंध नियतिवाद का भ्रान्त मतवाद ही पनपेगा, जबकि समय की माँग इन्हें निर्मूल करना है। क्या तुम यह नहीं चाहते कि ऐसा कर स्वयं अपने लिए, लोकसेवी संन्यासियों के लिए, समाज व संसार के लिए बहुत बड़ा पाप करने जा रहे हो ?"

युवक को जैसे काठ मार गया। कुछ आवाज न निकली, पर सहमति में सिर हिल गया।

"तो सुनो !"—उपदेशक तनिक दृढ़ व कठोर होते हुए बोले—"समर्पण की तुम्हारी परिभाषा अत्यन्त संकीर्ण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं। तुम्हें इससे कुछ ऊपर उठना होगा। समर्पण स्वार्थों का, इच्छाओं का, वासनाओं, तृष्णाओं, अहंताओं का होता है और तुम इन्हीं में उलझे रहकर इसे समर्पण योग का नाम दे रहे थे। इसमें तो शेष कुछ भी रह ही नहीं जाता, जिसे अपना कहा जा सके। सर्वस्व इष्ट-आराध्य का हो जाता है और जहाँ अपना कुछ हो ही नहीं वहाँ माँगने का हक भी कहाँ बनता है ! जो माँगता है, वह समर्पक नहीं, याचक है। समर्पण में अर्पण किया जाता है, लिया नहीं जाता। जहाँ इस तरह का विनिमय है, वह व्यापार ही हो सकता है, समर्पण नहीं। 'मालिक तेरी रजा रहे और तू ही तू रहे, बाकी न मैं रहूँ, न मेरी आरजू रहे।' कितना ऊँचा आदर्श है भक्त के इस समर्पण में। यही सही समर्पण है।"

"पर इसके सिद्धान्त को भूल-मत जाना।" युवक तनिक सजग व सचेष्ट हुआ और प्रश्नबोधक दृष्टि निक्षेप की। संन्यासी कहते जा रहे थे—"समर्पण किसी को निष्क्रिय व निश्चेष्ट नहीं बनाता, न तो इसकी शिक्षा देता है। फिर भी जहाँ ऐसा कुछ दिखाई पड़े, उसे ढोंग स्तर का ढकोसला ही समझना चाहिए। समर्पण सक्रियता का नाम है। सक्रिय रहकर ही इस योग को भलीभाँति संपन्न किया व निष्क्रिय बनाने वाली नियतिवादी मान्यता से पीछा छुड़ाया जा सकता है। इसका सबसे बड़ा लाभ प्रतिकूल परिस्थितियों में तब दिखाई पड़ता है, जब सामान्यजनों के धीरज टूटते और छूटते प्रतीत होते हैं, किन्तु समर्पण योगी इसे इष्ट की परीक्षा समझकर सहजतापूर्वक सहता चलता है। साथ ही अपने प्रयास पुरुषार्थ में भी जुटा रहकर प्रतिकूलता को अनुकूलता में बदलने का प्राणपण से प्रयत्न करता रहता है। ऐसी स्थिति में अपने अन्तेवासी इष्ट का अपूर्व संबल और अंतस का अद्भुत उत्साह वह सदा अनुभव करता है। अतः जिस दिशा में दूसरों के हाथ-पाँव फूलने लगते हैं, वैसी अवस्था को भी हँसते-हँसते पार कर लेता है। अतएव समर्पण के इस त्याज्य स्वरूप को छोड़कर तुम इसके उच्च आदर्श को अपनाओ। इसी में तुम्हारा, हमारा और विश्व का कल्याण है।"

इतना कहकर सन्त उठ पड़े और चलने को उद्यत हुए, किन्तु तुलसी ने उनका रास्ता रोक लिया, कहा—"नहीं, थोड़ी देर और रुक जाइये। अब तक मैं अन्धकार में था। आपने उसे दूर किया, परन्तु इतना ही हमारे लिए पर्याप्त नहीं होगा। पत्नी ने इस मार्ग में लाकर प्रथम गुरु की भूमिका निभाई, इसके लिए मैं उसका आभारी हूँ, पर आज ज्ञात हुआ कि योग्य गुरु के अभाव में व्यक्ति भटकता ही रहता है। आपने मुझ पर बड़ा उपकार किया है। अब एक उपकार और करते जाइये। जिस सिद्धान्त और संकल्प की शिक्षा दी है, उसमें दीक्षित भी कर जाइये, ताकि जीवन भर उसका निर्वाह कर सकूँ।"

शिष्य के आग्रह को गुरु नरहर्यानन्द ठुकरा न सके एक छोटे कर्मकाण्ड के माध्यम से उन्होंने तुलसी को दीक्षा दी और चलते बने।

उसी दिन तुलसीदास ने वाल्मीकि रामायण के परायण को अधूरा छोड़ समाज को कुछ देने और करने की ललक से काशी प्रयाण किया। वहाँ उनकी बेचैनी दिन-दिन बढ़ने लगी। गुरु दीक्षा के दौरान जो चिनगारी लगाई गई थी, अब वह ज्वालमाल बनकर धधक रही थी, किन्तु उनकी समझ में यह नहीं आ रहा था कि सर्वथा असहाय और अकिंचन भला समाज को क्या दे सकेगा ? एक बूँद पानी सलिलागार में किस भाँति वृद्धि कर सकेगा ? कितना क्या परिवर्तन ला सकेगा ?

पर ऊहापोह की यह स्थिति अधिकाधिक दिनों तक टिक न सकी। जल्द ही उन्हें इससे मुक्ति मिल गई। सचमुच समर्पण योगी का योग क्षेम आराध्य वहन करते हैं। यही सिद्ध करने के लिए एक दिन हनुमानजी उनके सम्मुख प्रकट हुए और इष्ट का सुझाव निवेदन किया—

"आप अच्छे कवि हैं, फिर किस उधेड़बुन में पड़े हैं ? क्यों नहीं लोकभाषा में वाल्मीकि रामायण का प्रणयन कर डालते ? इससे जहाँ लोगों को, समाज को प्रकाश मिलेगा, वहीं आपका सुयश दिग्-दिगन्त में फैलेगा, क्योंकि यह इतना अद्भुत ग्रन्थ है और इसमें इतने उच्च कोटि का आदर्श है कि इसकी प्रासंगिकता हर काल में, हर समाज में और हर संस्कृति में सदा अक्षुण्ण बनी रहेगी। अस्तु इसके सार्वकालिक, सार्वभौमिक एवं सर्वजनीन होने से जितने बड़े पैमाने पर जितनी महत् सेवा इससे बन पड़ेगी, कदाचित् उस स्तर की सेवा किसी अन्य कार्य से न बन पड़े, अतः अब विलम्ब न करें, शीघ्रता-शीघ्र कार्य में जुट जायें—यह हमारे-आपके राम की उत्कट इच्छा और समय की अनिवार्यता है।" इतना कहकर हनुमान जी अन्तर्ध्यान हो गये। उस दिन मंगलवार रामनवमी थी।

उत्तम तिथि और अभूतपूर्व दिवस को अविस्मरणीय बनाने के लिए तुलसीदास ने उसी दिन से रामायण की रचना जनप्रिय अवधी बोली में आरम्भ कर दी और पूरी तन्मयता एवं मनोयोग से करते हुए दो वर्ष; सात महीने, छब्बीस दिन की अल्पावधि में पूरी कर दी।

कहते हैं कृति पूरी हो चुकने के बाद एक बार हनुमान जी प्रकट हुए और सम्पूर्ण रामायण तुलसीदास जी से सुनी। अन्त में उनको इस अमर कृति और महान् कीर्ति का आशीर्वाद देकर अदृश्य हो गये, फिर भगवान राम के दिव्य दर्शन हुए। उन्होंने रामायणकर्त्ता को आशीष देते हुए कहा कि जो भक्त हमारी सेवा समय की माँग को ध्यान में रखते हुए करते हैं, उन्हीं लोगों के लिए हमारा **'योगक्षेमं वहाम्यहं'** का वचन अनुफलित है, अन्यों के लिए नहीं। जो समर्पण योग की दुहाई देकर निकम्मेपन का प्रपंच रचते और निष्कर्म योग का बहाना बनाते हैं, वे सदा रौरव (अर्थात् भीषण नरक) में जलते और गलते रहते हैं। इस लोक और परलोक में उनका कहीं कल्याण नहीं। तुमसे हम बहुत प्रसन्न हैं, वर माँगो।

तुलसी के नेत्र तो पावस के घटाटोप बनकर उमड़ पड़े। जिसे आराध्य की वर्षों से प्रतीक्षा हो, भला उसकी और क्या इच्छा हो सकती है ? वे उनके चरणों में गिर पड़े और न जाने घण्टों बाद कब तक बेसुध पड़े रहे, कुछ पता नहीं। जब घन्टों बाद आँख खुली तो आराध्य उनकी पूजा चौकी में प्रतिष्ठित 'राम-पंचायतन' की प्रतिमा में समा चुके थे और उनका हृदय भावातिरेक से गद्गद् हो रहा था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपरिग्रह का नन्दनवन

सन्त ने सम्राट का आतिथ्य स्वीकार किया। राजा ने उन्हें सत्कारपूर्वक कई दिन ठहराया, सत्संग का लाभ लिया। साथ ही राजमहल के अनेक बहुमूल्य पदार्थ दिखाये। रत्न भण्डार में लाये और रखे हुए मणि-मुक्तकों का परिचय कराने लगे। सन्त मौन रहकर यह सब सुनते रहे।

एक बार सन्त ने राजा को अपनी कुटिया पर आमन्त्रित किया। समयानुसार वे पहुँचे भी। आतिथ्य के उपरान्त सन्त ने आश्रम की छोटी-छोटी वस्तुओं का दिखाना आरम्भ कर दिया। सस्ती और सामान्य वस्तुएँ देखने में राजा को रुचि नहीं थी, तो भी वे शिष्टाचारवश उन्हें उपेक्षापूर्वक जैसे-तैसे देखते रहे।

देर तक जिसकी उपयोगिता बताई गई, वह थी आटा पीसने की हाथ की चक्की।

राजा की अरुचि अब अधिक मुखर होने लगी वे बोले—"वह तो घर-घर में रहती है। एक-दो रुपये मूल्य की होती है। इसमें क्या विशेषता ?"

सन्त गम्भीर हो गये। बोले आपके रत्न भी पत्थर के हैं। किसी काम नहीं आते, उल्टे रखवाली कराते हैं। जबकि चक्की जीवन भर उपकार करती है और अनेकों का पेट भरती है। रत्न राशि से इसका महत्व कहीं अधिक है।

राजा का विवेक जगा और वे उपयोगिता, अनुपयोगिता का अन्तर समझने लगे।

दान का उद्देश्य

मिथला का राजा चित्रदत्त बड़ा धर्मात्मा था। उसकी इच्छा रहती थी कि प्रजा में सदैव धर्म भावनाएँ जाग्रत रहें, सब लोग धर्म-कर्म में प्रवृत्त रहें। लेकिन प्रजा की दशा उस समय राजा की इच्छा के विपरीत थी। लोग चोरी, जुआ, छल, कपट, अनीति, अन्याय का आचरण करने में अधिक रुचि लेने लगे। चारों ओर पाखण्ड और असत्य का प्रचार बढ़ने लगा।

अपनी प्रजा के ऐंसे आचरण को देखकर राजा को बड़ा दुःख हुआ। उसने सोचा कोई ऐसा उपाय करना चाहिये कि लोक में फैली हुई पाप-प्रवृत्ति मिट जाय और लोग धर्माचरण करते हुए सुख-शान्ति का जीवन व्यतीत करें। राजा ने अपने प्रमुख अधिकारियों को बुलाया और उनकी सलाह से एक गुप्त मन्त्रणा तैयार कर ली।

दूसरे दिन राजा ने हुक्म दिया कि प्रजा के घरों में आग लगवा दी जाय। आज्ञा पाते ही सिपाही दौड़े और अनेक स्थानों पर आग लगा दी गई। अग्नि की लपटें आकाश को छूने लगीं। शहर, नगर और गाँवों में प्रलय का दृश्य उपस्थित होने लगा। चारों ओर हाहाकार मच गया प्रजा के बहुत-से लोग एकत्रित होकर राजा के पास पुकार करने गये कि—"महाराज यह क्या हो रहा है ? हमें इस प्रकार क्यों सताया जा रहा है ?"

जो लोग पुकार करने गये थे, राजा ने उन सबको पकड़वाकर जेल में बन्द करवा दिया और घोषित कर दिया कि कुछ दिन बाद इन्हें कोल्हू में पिलवा दिया जायेगा। इस भयंकर दण्ड को सुनकर प्रजा में त्राहि-त्राहि मच गई। सब लोग ईश्वर को आर्त स्वर से पुकारने लगे। दुःख में ऐसा गुण है कि उसके प्रभाव से अनायास ही मनुष्य ईश्वर को याद करता है और धर्म को संभालता है। सब जगह ईश्वर की पुकार होने लगी। अधर्म, अनीति के कार्य बन्द हो गये। दुःख पड़ने पर लोग शैतानी करना भूल जाते हैं।

राजा को यह सब पता लगा। उसे मन ही मन बहुत संतोष हुआ। दूसरे दिन उसने यह घोषणा की कि ईश्वर ने मुझे स्वप्न में आदेश दिया है कि ६ महीने तक आग लगवाना और कोल्हू में पेलना स्थगित रखूँ। इसलिये अब पकड़े हुए कैदियों को ६ महीने बाद मरवाया जायेगा और तभी अग्निकाण्ड कराये जाएँगे।

प्रजा ने एक सन्तोष की साँस ली। ६ महीने का समय मिला था। इस समय को लोगों ने धर्म कर्मों द्वारा ईश्वर को प्रसन्न करने की तैयारियाँ कीं, क्योंकि राजा के कोप से ६ महीने के लिए ईश्वर ने ही बचाया है और उसी की कृपा से आगे भी संकट टल सकता है। घर-घर में भजन-कीर्तन, पुण्य-दान, यज्ञ-तप होने लगे। अधर्मी प्रजा विपत्ति एक ही ठोकर से धर्म की ओर मुड़ पड़ी।

६ महीने पूरे हुए। सब लोग नई घोषणा की प्रतीक्षा में थे। नियत समय पर राजा ने सन्देश दिया कि ईश्वर ने अब ६ महीने का समय और देने को कहा है। अब ६ मास पश्चात् सारे देश को उजड़वाऊँगा और तभी कत्ले-आम होगा। प्रजा ने सन्तोष की साँस ली। आशा की सुनहरी किरणें दिखाई देने लगीं, संभव है ईश्वर की कृपा से यह संकट सदा के लिए टल जाय। इस आशा से अधिक ईश्वर भजन और अधिक धर्माचरण होने लगा।

पूरे एक वर्ष तक भयग्रस्त जनता ने धर्माचरण की ओर विशेष ध्यान दिया। जिससे वैसे उत्तम कर्मों की स्वभावतः आदत पड़ गई, बुरे कर्म करना छूट गया। राजा ने प्रजा को धर्मरत देखा तो उसे बहुत प्रसन्नता हुई। वर्ष के अन्त में उसने प्रजा को बुलाकर कहा—"तुम लोगों को असत् मार्ग से हटाकर संमार्ग पर लगाने को यह त्रास दिया गया था। अवश्य ही इसमें बहुत कष्ट उठाना पड़ा, परन्तु आगे उस कष्ट की अपेक्षा से अनेक गुना लाभ भी तुम्हें प्राप्त होगा। पिछले वर्ष अग्निकाण्ड में जिसका जितना नुकसान हुआ था, वह सब राज्य के खजाने से भरपाई कर ले जावें और जेल में पड़े हुए लोग अपना हर्जाना लेते हुए घर जावें।

प्रजा कुछ समय कष्ट में रही पर अन्त में उसे अपार लाभ हुआ। अधर्म के विष से पीछा छुड़ाकर धर्म का कल्पवृक्ष पाया। आज हमारे ऊपर विपत्तियाँ आई हुई हैं, हो सकता है कि सम्राटों का सम्राट् अपनी प्राणप्रिय प्रजा को धर्मात्मा और सुखी बनाने के लिये ही यह प्रपंच रच रहा हो।

जल में रहकर भी उससे दूर

नदी के इस तट पर प्रकृति के सुरम्य वातावरण में आचार्य वशिष्ठ का आश्रम। आचार्यश्री अपनी पत्नी अरुन्धती के साथ गृहस्थ जीवन की मर्यादाओं का पालन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करते हुये तपस्या में लीन थे, सूर्यवंशी राजाओं के पुरोहित के रूप में विख्यात थे।

थोड़ी ही दूर नदी के उस किनारे पर तेजस्वी ऋषि विश्वामित्र का पवित्र आश्रम था। ऋषि यद्यपि ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर रहे थे पर आवश्यकता पड़ने पर नूतन सृष्टि का सृजन भी कर सकते थे।

वशिष्ठ एकाकी जीवन की कठिनाइयों से भलीभाँति परिचित थे। वह अच्छी तरह जानते थे कि अकेले व्यक्ति को स्वयं अपने लिए भोजन जुटाने में काफी समय लग जाता है और ऐसे समय में जबकि उसका एक-एक क्षण लोकोपकार में बीत रहा हो, तब तो वह सचमुच कठिनाई अनुभव करता होगा।

वशिष्ठ ने विश्वामित्र के लिए भोजन की व्यवस्था अपने आश्रम में ही कर रखी थी। भोजन अपने संस्कार मानव के मन पर छोड़ता है, इस बात को विश्वामित्र भली-भाँति जानते थे। ऋषि पत्नी अरुन्धती के बनाये भोजन में किसी भी प्रकार के कुसंस्कार का प्रश्न भी नहीं उठता। विचारों की सात्विकता और मन की पवित्रता तो अरुन्धती के जीवन की मुख्य विशेषताएँ थीं। वह नित्य समय पर भोजन निर्मित कर भगवान का भोग लगाकर विश्वामित्र के आश्रम में पहुँचाया करती थीं।

वर्षा ऋतु की वह पहाड़ी नदी, ५-६ घण्टे निरन्तर जोर का पानी गिरा कि घमण्ड में इतराकर बहने लगी। पानी इतना बढ़ गया कि उसे पार करना कठिन था। अरुन्धती को चिन्ता हुई, मुनि भोजन की प्रतीक्षा में होंगे। उन्होंने अपनी कठिनाई वशिष्ठ को बताई उन्होंने कहा "देवी ! तुम नदी से निवेदन करो कि यदि तुम निराहारी ऋषि की सेवा में भोजन लेकर जा रही हो तो वह तुम्हें मार्ग प्रदान करें।"

अरुन्धती ने वैसा ही किया। उन्होंने नदी से विनम्र स्वर में राह माँगी और उसने अपने को दो भागों में विभाजित कर राह दे दी। सूखा मार्ग बन गया। ऋषि पत्नी को जाने में बड़ी सुविधा हुई।

विश्वामित्र को भोजन देकर वह चलने लगीं तो नदी के पूर्ववत् प्रचण्ड रूप को देखकर पार करने का साहस न हुआ। उन्होंने विश्वामित्र से कहा "मुनिवर ! ऐसा प्रतीत होता है कि आज तो कुछ घण्टे यहीं पर रुकना होगा।"

"नहीं ! नहीं !! रुकने की कोई आवश्यकता नहीं। तुम जाओ। नदी के किनारे पर खड़ी होकर उससे कहो मैं आजन्म ब्रह्मचारी वशिष्ठ की सेवा में जा रही हूँ वह मार्ग प्रदान करें।"

विश्वामित्र की आज्ञा पाकर अरुन्धती चल दीं पहले की तरह नदी तट पर। उनके आग्रह पर नदी को पुनः मार्ग बनाना पड़ा और वह पार होकर अपने पति के पास पहुँच गईं, पर उन्हें आश्चर्य अवश्य हुआ। दोनों ओर से नदी पार की गई पर निकलने का तरीका एक ही। वह सोचने लगीं कि मैं स्वयं विश्वामित्र को अपने हाथों से भोजन करा रही हूँ, फिर वह निराहारी कैसे ? और मेरे पति ब्रह्मचारी कैसे ? वह भी आजन्म, जबकि मैं उनके ही सौ पुत्रों की माता बन चुकी हूँ।

अरुन्धती को यह रहस्य लगा। वह जिज्ञासु की तरह उन दोनों प्रश्नों के उत्तर पति से पूछ बैठीं। वशिष्ठ बोले, 'जिस प्रकार कमल पानी में रहते हुए भी पानी से दूर रहता है उसी प्रकार जो मनीषी केवल जीवन रक्षा के लिए भोजन ग्रहण करता है और कर्म की साधना में रत रहता है वह सदा निराहारी ही है और जो अपने ज्ञान वंश की वृद्धि के लिये ही निष्काम भाव से अपनी पत्नी से संबंध स्थापित करता है, वह आजन्म ब्रह्मचारी है। यह दोनों कमलवत् निर्लिप्त स्थिति में हैं।" अब अरुन्धती की जिज्ञासा पूर्णतया शान्त हो गई।

देवता पूज्य क्यों ?

कहा जाता है जब से संसार की रचना हुई और देव और दानव दो भाई उत्पन्न हुए तब से उन दोनों में लड़ाई रहा करती थी। देवता अपने दिव्य गुणों के कारण पूजे जाते थे, जिसे देखकर असुरों को जलन होती थी। इसलिए वह हमेशा यही सोचा करते थे कि देवता बढ़ रहे हैं, माननीय व पूज्य बनते जा रहे हैं, अपनी बुद्धि, विचार शक्ति से काम न लेकर कुढ़कर ईर्ष्याग्नि में जलते रहते थे। एक तो जन्म से ही तमोगुण प्रधान और ईर्षा का सहयोग। 'एक तो गिलोय और फिर नीम पर चढ़ी, उसके कड़वेपन का क्या कहना ?'

देवताओं के प्रति दानवों की इस बढ़ती हुई ईर्ष्या को देखकर भगवान बड़े दुःखी रहते थे। दोनों भाइयों के आपस के लड़ाई-झगड़े, ईर्ष्या-डाह से बड़े परेशान रहते थे। किसी दिन दोनों को एक साथ बैठाकर समझाने की बात सोचते, किन्तु जब यह समझ में आती कि दानवों पर समझाने का कोई प्रभाव पड़ने वाला नहीं है, तो एक दिन चमत्कारी ढंग से उन्हें यह शिक्षा देने का विचार किया जिससे उनके मन में यह विचार उत्पन्न हो जाय कि देवताओं के पूजनीय बनने का कारण क्या है ? संभव है—कारण समझने से, उनके मन में यह बात आ जाने से अब तक विवेक जाग्रत हो जाय और यह गृह-कलह सदा के लिए खत्म हो जाय और दोनों शान्ति से परस्पर प्रेम से रहने लगें।

एक दिन भगवान ने दोनों भाइयों को सपरिवार निमन्त्रण दिया। सबको दावत के लिए बुलाया। ठीक समय पर सब लोग एकत्रित हो गये। दावत की सब तैयारी हो जाने पर सबको भोजन करने के लिए बैठने को कहा गया। भगवान ने पहले से ही बैठने का प्रबन्ध देव और दानवों का अलग-अलग स्थानों पर इस प्रकार किया था दो-दो पंक्तियों में आमने-सामने बैठें।

सब लोग पंक्तियों में बैठ गए। नाना प्रकार के मिष्ठान्न, व्यंजन परोसे जाने लगे। जब तक परोस होती रही तब तक स्वभाववश बेकार न बैठ सकने के कारण अनेकानेक विषयों पर अलग-अलग चर्चा चलती रहीं।

जब देव और दानव भोजन करने की तैयारी करने लगे तो भगवान के योगबल से सबके हाथ भोजन करने के समय कुहनी से मुड़ने बन्द हो गए। केवल एक डंडे की भाँति नीचे से ऊपर हो सकते थे, आगे-पीछे नहीं हो सकते थे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जब भोजन करना आरम्भ हुआ तो हाथों की स्थिति देखकर सभी हैरान थे। बहुत प्रयत्न करने पर भी वे ऊपर मुँह के पास न जा सकते थे। देवताओं ने तो जब देखा कि इस प्रकार स्वयं भोजन नहीं कर सकते तो अपनी बुद्धि से काम लिया और अपने सामने के व्यक्ति को खिलाना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार आमने-सामने के व्यक्तियों के एक-दूसरे को खिलाने से वे सब भोजन करने लगे और तृप्त हो गये।

समयानुसार दावत समाप्त हुई जिस समय दावत से उठे तो देवता तो भोजन पाकर सन्तुष्ट थे किन्तु दानव वैसे के वैसे भूख और प्यासे थे। इसलिए भगवान से बहुत ही असन्तुष्ट थे।

भगवान ने दावत के बाद थोड़ी देर बैठने को कहा। सब लोग यथास्थान बैठकर, भगवान ने किसलिये बैठाया है, इस बात की प्रतीक्षा करने लगे।

जब सब लोग शान्ति से बैठ गए तो, भगवान ने कहना प्रारम्भ किया—"अभी-अभी आप लोग दावत में से उठकर आ रहे हैं। आप में से कुछ का चेहरा तो सन्तुष्ट व प्रफुल्लित दिखलाई देता है किन्तु कुछ लोग असन्तुष्ट, दुःखी-परेशान से परिलक्षित होते हैं। इसका कारण आप लोग न जानते होंगे। कदाचित असन्तुष्ट लोगों में से कुछ लोग आज के चमत्कार से मुझ से रुष्ट भी हो गए हों। वे सोचते हैं कि हमें बुलाकर हमारी हँसी कराई, अपमान किया किन्तु वास्तव में यह बात नहीं है।"

आप लोगों के मन में यह ईर्ष्या बहुत दिन से घर किए हुए है कि केवल देवता क्यों पूजे जाते हैं ? इस बात को साफ करने के लिए आपके मन में यह बात बुद्धि और विवेक के द्वारा लाने के लिए ही ऐसा किया है। देवता तुम्हारे ही भाई हैं, उनसे ईर्ष्या करने, लड़ने-झगड़ने से आपकी ही हानि है। ईर्ष्या करने की बजाय आपने कभी इसका कारण सोचा होता, कि ऐसा क्यों होता है तो आज यह स्थिति न आती कि आप लोग एक-दूसरे की जान के दुश्मन हो गए हैं, सदा ही एक-दूसरे के खून के प्यासे रहते हैं, भाई-भाई में इतना विष उत्पन्न हो गया है और फलतः एक-दूसरे से कितने दूर हो गए हैं ?

क्या कभी भी आपने इसको जानने की कोशिश की है ? आइये ! हम आपको आज इसका कारण समझायें।

देखिये ! भोजन करते समय आप दोनों के हाथों में विकृति उत्पन्न हो गई थी किन्तु आप लोग केवल खुद ही खाने, अपना पेट भरने के प्रयास में लगे रहे इसलिए निष्फल रहे। यदि थोड़ा भी बुद्धि से काम लिया होता तो अपने ही भाइयों की भाँति भोजन करके, सन्तुष्ट होकर उठते। स्वयं भी सन्तुष्ट होते और परस्पर एक-दूसरे का भला करने के विचार उत्पन्न होने से आपस में प्रेम और संगठन बढ़ता।

आपके साथी देवताओं ने जब देखा कि उनके हाथ नहीं मुड़ रहे हैं, वे जिस कार्य से आये हैं वह पूर्ण होता नहीं दिखता तो उन्होंने विचार किया, बुद्धि से काम लिया और निश्चय किया कि यदि स्वयं नहीं खा सकते तो दूसरे को तो खिला सकते हैं। उन्होंने अपने सामने बैठे हुए साथी को खिलाना प्रारम्भ कर दिया। फल यह हुआ कि यह प्रक्रिया सबके अपनाने से, दूसरे के लिए त्याग की भावना को क्रियान्वित करने से, खिलाने वाले को भी दूसरे के द्वारा भोजन मिल गया।

अब आप लोग समझ गए होंगे कि परमार्थ और त्याग के कारण ही व्यक्ति पूज्य होते हैं, पूजे जाते हैं और स्वार्थी अपने लिए ही सब कुछ ले लेने और उसका उपभोग करने की प्रक्रिया के कारण हेय समझे जाते हैं। लोग उन्हें घृणा और अपमान की दृष्टि से देखते हैं, उनका नाम सुनते-सुनते ही लोगों के मस्तिष्क में नीचता के भाव आ जाते हैं।

इसलिए आप लोगों को अपने भाई देवताओं से ईर्ष्या नहीं बल्कि स्पर्धा करनी चाहिए। इनके जैसे ही नहीं, इनसे ऊँचा बनने का प्रयत्न करना चाहिए। देते रहने, परोपकार में लगे रहने से ही ये देवता कहलाते हैं और पूजे जाते हैं।

खुदा क्या करता है ?

एक सुलतान के पास एक काजी पहुँचा। उसका धर्माडम्बर देखकर सुलतान ने सोचा कि उसकी परीक्षा लेनी चाहिये। सुलतान ने काजी से पूछा—"खुदा कहाँ रहता है ? और क्या करता है ?" और साथ ही कहा इन प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर देने पर तुम्हें ऊँचा पद दिया जायेगा, अन्यथा दण्ड।

काजी ने आठ दिन की मोहलत माँगी। सोचते-सोचते जब आठ दिन हो गये और उत्तर नहीं सूझे, तो मोहलत बढ़वाने के लिये उसने बीमारी का बहाना बनाया।

बीमारी की खबर सुनकर उसका नौकर दौड़ा आया, लेकिन काजी ने उसे डाँट दिया—"परेशान न करो मुझे ! मैं मरा जा रहा हूँ।"

नौकर ने विनती की—"मेहरबानी करके मुझे बताइये कि माजरा क्या है ? आपके लिए मैं जान भी दे दूँगा।"

तब काजी ने उसे अपनी बीमारी का भेद बता दिया।

नौकर की हैसियत तो मामूली थी, पर वह वेदान्त का बड़ा पण्डित था। बोला—"आप मुझे सुलतान के पास भेज दें। मैं सब सँभाल लूँगा और न सँभाल सका, तो भी दण्ड मुझे ही मिलेगा; आप बच जायेंगे।"

इस बीच सुलतान के सिपाही भी आ पहुँचे। लाचार होकर काजी ने नौकर को भेज दिया।

वह बेधड़क सुलतान के पास पहुँचा और बोला—"फरमाइये जहाँपनाह, क्या पूछना चाहते हैं ?"

सुलतान ने कहा—"क्या तुम उन सवालों का जवाब दे सकते हो, जो तुम्हारे मालिक से पूछे गये हैं।"

नौकर ने कहा—"जरूर दे सकता हूँ, लेकिन आप एक सच्चे मुसलमान की तरह मुझे बाइज्जत ऊँची जगह बख्शें और खुद नीची जगह पर बैठें; क्योंकि मजहब के मुताबिक जो पूछता है, वह शागिर्द होता है और जो बताता है वह उस्ताद।"

सुलतान ने उसे बेशकीमती पोशाक पहनवाकर अपना तख्त पेश किया और खुद नीचे सीढ़ियों पर बैठ गया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"हाँ, अब पूछिये !" नौकर ने कहा।

सुलतान ने पहला सवाल किया—"खुदा कहाँ रहता है ?" नौकर ने एक लोटा दूध मँगवाया और पूछा—"बताइये, इसमें मक्खन कहाँ है ?"

सुलतान कोई जवाव न दे सका।

नौकर ने पूछा—"इसमें मक्खन है या नहीं ?"

सुलतान ने हामी भरी।

नौकर ने कहा—"यह न जानते हुए भी कि दूध में मक्खन कहाँ है, आप मानते हैं कि वह उसमें है जरूर। इसी तरह खुदा भी जर्रे-जर्रे में मौजूद है। मक्खन पाने के लिए दूध को मथना पड़ता है, खुदा को पाने के लिए इनसान को अपना हृदय मथना चाहिये।"

इस उत्तर से सुलतान का पूरा समाधान हो गया। सुलतान को अभूतपूर्व आनन्द हुआ और उसने दूसरा सवाल किया—"खुदा क्या करता है ?"

अब नौकर ने काजी को बुलवाया और उसके आ जाने पर उसे सुलतान की जगह और सुलतान को उसकी जगह बैठने का हुक्म दिया।

काजी सहमत हुआ तख्त के पास सीढ़ियों पर बैठ गया, तो नौकर ने कहा—"ध्यान से सुनो ! खुदा भी यही करता है। वह रंक को राजा, राजा को काजी और काजी को रंक बना सकता है। वह लगातार परिवर्तन करता रहता है। किसी को ऊपर उठाता है, किसी को नीचे गिराता है; किसी को बनाता है, किसी को मिटाता है। यह काल चक्र है और वह इस चक्र का नियन्त्रण करता है; यह दुनिया का स्वभाव है और वह इस स्वभाव को कायम रखता है।"

यह सुनकर सुलतान की आँखें खुल गयीं।

अदृश्य सिद्ध पुरुष

एक महात्मा थे। योगाभ्यास और तपश्चर्या के प्रति उनकी गहरी निष्ठा थी। संयम पालते और मन को एकाग्र, अन्तर्मुखी रखते। जैसे गुण, कर्म और स्वभाव की दृष्टि से एक सन्त को जैसा होना था, वैसे ही थे।

चौबीस वर्ष की अवधि पूरी हुई। महामन्त्र के अनुष्ठान पूरे हुए। साधना सिद्धि के निकट पहुँच गई। रात्रि को गणेशजी ने दर्शन दिये। कहा, "तुम्हारी साधना सफल हो गई। देवाधिदेव शिवजी बहुत प्रसन्न हैं। उन्होंने मुझे भेजा है और पूछा है जो अभीष्ट हो वरदान माँगें।"

तपस्वी ने कहा, "मैंने वरदान के लिए साधना थोड़े ही की है। मैं तो अन्तःकरण पर चढ़े, कषाय-कल्मष धो रहा था और इस योग्य बनने जा रहा था कि स्वच्छ आत्मा में परमात्मा के दर्शन कर सकूँ ? सो वह स्थिति जब आ जायेगी समझूँगा वरदान मिल गया।"

गणेश जी समझाने लगे कि साधक के पास सिद्धियाँ होनी चाहिए ताकि उसे आत्म-विश्वास हो और लोग उसकी विभूतियों का दर्शन करें। इससे लोगों का श्रद्धा, विश्वास बढ़ता है। साथ ही कई उपकार भी बन पड़ते हैं। सो आप सिद्धियों के वरदान माँग लें। देवाधिदेव इससे अप्रसन्न नहीं होंगे।

तपस्वी ने अत्यन्त नम्रतापूर्वक कहा—"इससे मेरा अहंकार बढ़ेगा। अनेकों प्रशंसा करेंगे। कई प्रत्युपकार भी देना चाहेंगे। देवाधिदेव के स्थान पर मेरी पूजा-प्रशंसा होने लगेगी। इससे लक्ष्य तक पहुँचने में भटकाव पैदा होगा।"

गणेशजी निरुत्तर हो गये। सन्त का कथन आदर्शों से भरा-पूरा था। इतने ऊँचे साधक से पहले उनकी भेंट नहीं हुई थी। सो वे सीधे कैलाश आसुतोष भगवान के पास पहुँचे और वार्तालाप का सारांश कह सुनाया। जो आप्त काम है, उसे क्या दिया जाय ?

अबकी बार शंकर भगवान स्वयं चल पड़े और बोले—"इसमें दाता की अवज्ञा होती है। साधना से सिद्धि का सिद्धान्त कटता है। तुम अपने लिए न सही, लोकहित के लिए ही सही। कुछ तो माँग ही लो। हमें देते हुए प्रसन्नता होगी।"

साधक बहुत देर विचार करता रहा। इष्ट देव की अवज्ञा न हो और मेरा अहंकार न बढ़े। कोई मध्यवर्ती मार्ग ढूँढ़ने में वह माथा-पच्ची करने लगा।

समय तो लगा पर मार्ग मिल गया। साधक ने माँगा—"मेरी छाया जहाँ भी पड़े कल्याण ही, कल्याण होता चले।

देवाधिदेव मुसकराये और तथास्तु कहकर चले गये।

सन्त की छाया जहाँ भी पड़ती, सूखे पेड़ हरे हो जाते। तालाब पानी से भर जाते। रोगियों की काया चंगी हो जाती। कष्टग्रस्तों के संकट छूट जाते। उदासों के चेहरे पर मुसकान फूटने लगती।

यह सब होता रहता, पर सन्त की दृष्टि आगे ही रहती। वे मुड़कर पीछे की ओर न देखते और उनकी बजह से किसी का कुछ भला हुआ है या नहीं, यह भी न देखते।

जिनका कल्याण होता वे जिस-जिस से पूछताछ करते कि वह देवता कौन है ? वह सिद्ध पुरुष कहाँ है, जिसके अनुग्रह से हमारा इतना कल्याण हुआ, उसके लिए कृतज्ञता तो व्यक्त कर दें। कोई दूसरा पूछे तो उसे उस देवात्मा का अता-पता तो बता दें।

पता किसका बताया जाता ? सन्त आगे बढ़ते चले जाते। छाया भी रुकती न थी। लोग पूछते तो बताते सन्ध्या तक छाया के सहारे चलेंगे।

सिद्धि व छाया हमेशा उनके साथ बनी रहीं। लोकेषणा से विरक्ति होना ही महामानव की विशेषता है। वे अपने साथ अनेकों को पार लगा देते हैं पर उद्घोष नहीं करते फिरते, न बाजीगरी ही दिखाते हैं।

विपत्ति धर्म

कुरुदेश में उस वर्ष बड़ी भयंकर उपल-वृष्टि हुई थी। ओलों ने सारी फसल को नष्ट कर दिया था। सारी खेती चौपट हो गई, किसानों के घर में अन्न का दाना न रहा। लोगों का धैर्य टूट गया। भयंकर दुर्भिक्ष के मारे असंख्य पशु मर चुके थे। मनुष्य अपने प्राण बचाने के लिए दूर देशों की भागने लगे।

धर्माचार्य चक्र के पुत्र उषस्ति के सामने भी यही समस्या उपस्थित थी। जब उन्हें अन्न प्राप्त होने का कोई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपाय न मिल सका तो अन्य सहस्रों नर-नारियों की भाँति वह भी देश छोड़कर धर्मपत्नी आटिकी के साथ चल दिये। इधर-उधर भटकते-भटकते अन्त्यजों के एक ग्राम में जा पहुँचे। उस समय भूख के मारे उनके प्राण निकले जा रहे थे, क्षुधा की ज्वाला से समस्त शरीर जला जा रहा था।

ऐसे समय में उन्होंने ग्राम में भीतर प्रवेश किया तो देखा कि एक अन्त्यज उबले हुये उड़द चबा रहा है। उन्हें देखकर उषस्ति के मुँह में पानी भर आया और वे अन्त्यज से उड़द माँगने लगे।

अन्त्यज ने कहा—"जिन्हें मैं खा रहा हूँ उन जूठे उड़दों के अतिरिक्त और कुछ नहीं। तब मैं आपको कहाँ से दूँ ?" उषस्ति ने उत्तर दिया—"मुझे इनमें से ही थोड़े-से दे दो।" उसने ऋषि की इच्छानुसार जूठे उड़दों में से कुछ दे दिये उन्हें खाकर ऋषि ने अपनी क्षुधा बुझाई।

जब वे भोजन कर चुके और शरीर सुस्थिर हुआ तो अन्त्यज ने जल भरा पात्र भी उनके सामने उपस्थित किया और नम्रतापूर्वक प्रार्थना की, "भगवन् ! लीजिये यह जल भी ग्रहण कीजिये।" किन्तु ऋषि ने उसकी इस प्रार्थना को स्वीकार न किया और जल पीने से इनकार कर दिया।

अन्त्यज को इस पर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने पूछा—"जब आप मेरे जूठे उड़द खा चुके हैं तो जल पीने में क्यों आपत्ति करते हैं ?"

ऋषि ने कहा—"वह विपत्ति धर्म था। विपत्ति धर्म विपत्ति के समय के लिए होता है, सदा के लिये मर्यादित धर्म का पालन करना होता है। जब आपत्ति थी तब जूठा अन्न खाया गया, किन्तु अब जल तो अपनी इच्छानुसार अन्यत्र भी प्राप्त कर सकता हूँ इसलिये विपत्ति धर्म पालन करने की आवश्यकता नहीं।"

आज प्रश्न उपस्थित होता है कि जब हिन्दू जाति पर चारों ओर से संकट की घटायें आ रही हैं और जाति तथा धर्म का नाम मिटने वाला है, क्या किसी विपत्ति धर्म का आविर्भाव नहीं किया जा सकता ? जब सारे राष्ट्र का ही सर्वनाश उपस्थित हो रहा है, तब भी क्या कुछ मजहबी परिपाटियों को ढीला न करने की जिद पर हमें अड़ा रहना चाहिये ?

इतिहास महर्षि उषस्ति के शब्दों में कहता है 'नहीं।'

प्रतिगृह का दान

महर्षि शांखल्यायन तथा महर्षि आत्रेय मुनि अपनी पत्नियों के साथ एक बार पर्यटन करते हुए राजा वृषादर्भि के राज्य में गये। साधना, तपश्चर्या द्वारा सिद्धि प्राप्त कर लेने के बाद इन ऋषियों ने परिव्रज्या ही अपना नित्यकर्म बना लिया था। वे न एक स्थान पर तीन दिन से अधिक रहते और न ही संध्या के बाद बचने लायक धान्य ही अपने पास संग्रहीत रखते थे।

राजा वृषादर्भि के राज्य में उस वर्ष भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। जिस देश में अन्न का अभाव हो वहाँ भिक्षा नहीं माँगनी चाहिए, महर्षियों ने यह भी अपना नियम बना रखा था। इसलिए वे क्षुधार्त होकर ही घूमते रहते। उन्होंने विचार किया कि कहीं कन्दमूल मिल जाएँ, तो उन्हें ही आहार रूप में ग्रहण कर क्षुधा शान्त की जाय परन्तु वर्षा के अभाव में कन्दमूल भी कहाँ मिलते ? जो थे भी वह लोगों ने खा-पीकर समाप्त कर दिये।

अपने राज्य में महर्षियों के आगमन की बात सुनकर राजा वृषादर्भि उनके पास पहुँचा। साथ में महर्षियों को भेंट में देने के लिए राजा ने पर्याप्त मात्रा में अन्न, स्वर्ण मुद्रायें तथा मूल्यवान रत्न भी ले लिये थे। वृषादर्भि ने महर्षियों से जब यह भेंट स्वीकार करने का आग्रह किया तो, आत्रेय मुनि ने कहा—"राजन् ! हमारा नियम है कि हम अगली प्रातः तक के लिए धान्य नहीं रखते और पर्यटन करते हैं। इस रत्नराशि और सम्पति का क्या करेंगे ?"

"भगवन् ! आप इन्हें स्वीकार कर लें, मैं इन्हें आपके लिए सुरक्षित स्थान पर रखवा दूँगा और भविष्य में आपको भिक्षाटन की भी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। आप जहाँ भी रहेंगे, मेरे अनुचर, आपके द्वारा स्वीकृत इस राशि से आपके लिए निर्वाह साधन पहुँचाते रहेंगे"—वृषादर्भि ने विनीत भाव से कहा।

"आपका दान और विनय देवानुशासित है राजन् ! परन्तु हमारी भी विवशता है। हम अपने व्रतों से बँधे हुए हैं।"—अत्रि ने समझाया।

वृषादर्भि ने कहा—"मैं इसे अपना दुर्भाग्य समझूँगा भगवन् कि आपने मुझे सेवा के अवसर से वंचित किया।

"संताप मत करो आर्य श्रेष्ठ"—शांखल्यायन ऋषि ने कहा—"यों मान सकते हो कि हमने इसे स्वीकार कर लिया है और फिर, तुम्हें वापस लौटा दिया है।"

"लेकिन दी हुई वस्तु का प्रतिग्रहण तो नहीं होता इसलिए इसे आप ही रख सकते हैं।"

"प्रतिग्रहण नहीं होता, यह तो ठीक है, परन्तु दान के बाद दक्षिणा भी तो दी जाती है।"

"उसके लिए भी प्रस्तुत हूँ, महात्मन् !"—वृषादर्भि ने कहा।

"उस दक्षिणा में हम आपसे एक वचन माँगते हैं।"

"यह छोड़कर कि मैं इसे वापस स्वीकार कर लूँ आप कुछ भी आज्ञा दे सकते हैं।"

'अस्तु !' शांखल्यायन ने कहा—"अपने कुछ योग्य कर्मचारियों को बुलाओ और उन्हें यह धन-धान्य, रत्न-राशि सौंपकर इस बात की व्यवस्था करो कि इस राज्य के दुर्भिक्ष-पीड़ितों के लिए अन्न-वस्त्र की व्यवस्था हो सके।"

वृषादर्भि को कल्पना भी नहीं थी कि महर्षि उसे इस प्रकार वाग्जाल में उलझा लेंगे। वह बोले, "परन्तु यह तो राजा का दायित्व है। मैं अपनी ओर से दुर्भिक्ष निवारण की व्यवस्था करूँगा।"

"तुम ठीक कहते हो राजन् ! तुम भी अपनी ओर से प्रयास करो, परन्तु सेवा पर तो किसी का अधिकार नहीं है। हम तापस हैं—सेवा ही हमारा धर्म है और सेवा की कोई सीमा नहीं है। जब जैसी सामर्थ्य हो तब वैसी ही सेवा करना हमारा भी दायित्व है। तुम अपना दायित्व पूरा करो और साथ ही हमें भी अपना दायित्व पूरा करने में सहयोग दो।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अन्ततः वृषादर्भि को ही झुकना पड़ा और कहते हैं, धर्मसत्ता और राजसत्ता के इस संयोग सम्मिलन से प्रसन्न होकर इन्द्रदेव ने वरुण को तुरन्त दुर्भिक्ष निवारण के लिए कहा।

तप की शक्ति से दोषों का परिमार्जन

सन्तान पाने की चिरआकांक्षा पूर्ण हुई तो अत्रि की प्रसन्नता का पारावार न रहा। महर्षि पुत्र और पुत्री में कोई भेद नहीं करते थे। उनके लिए दोनों एक ही शाश्वत तत्व की अभिव्यक्ति थे। इसलिए पुत्री होने पर भी उन्हें उतनी ही प्रसन्नता थी, जितनी किसी को पुत्र पाकर होती है। नामकरण संस्कार से लेकर विद्यारम्भ तक सारे संस्कार विधिवत् महर्षि ने सम्पन्न कराए। उन्होंने उसका नाम रखा—'अपाला।'

किन्तु अपाला ज्यों-ज्यों बढ़ती गई, महर्षि की प्रसन्नता त्यों-त्यों घटती गई। अपाला की त्वचा में पहली बार श्वेत धब्बे देखकर वे चौंके भर थे। विश्वास यह था कि ओषधि उपचार से यह ठीक हो जाएगा, पर आयुर्वेद के पन्ने पलट-पलट कर महर्षि थक गए। जो भी सम्भव प्रयोग थे, उन्होंने एक-एक कर सब कर डाले, किन्तु त्वचा का दोष दूर न हुआ।

समाज की कैसी विडंबना है कि पुरुष के अनेक दोष क्षमा हो जाते हैं पर कन्या का रूप-रंग साधारण होना भी अस्वीकार्य होता है। फिर अपाला तो एक ऐसे रोग को शरीर में पाल रही थी, जिसे अपने समाज में न केवल रोग वरन् पाप भी माना जाता है। परिस्थितियों से निराश महर्षि अत्रि ने अब अपना सारा ध्यान अपाला को ज्ञानवान बनाने में केन्द्रित किया। वेद, उपनिषद्, ब्राह्मण, आरण्यक आदि सम्पूर्ण आर्ष ग्रन्थों के अध्यापन के साथ उन्होंने अपाला को व्याकरण मीमांसा और दर्शन ग्रन्थों का भी अनुशीलन कराया। अपाला ने संगीत विद्या भी सीखी और इस तरह वह अपने अपूर्व तेज और यश के साथ तत्कालीन शीर्षस्थ विद्वानों की श्रेणी में जा पहुँची।

अब वह यौवन के द्वार पर खड़ी थी। स्वाभाविक था कि महर्षि उसके हाथ पीले करने की बात सोचते पर ऐसा आदर्शनिष्ठ युवक उन्हें मिलता कहाँ ? जो जीवन के भौतिक और लौकिक आकर्षणों से ऊपर उठकर विवाह को दो आत्माओं का पुनीत संबंध मानकर अपाला को स्वीकार करता। धर्म और आत्मतत्व की बातें करना सरल है पर अनेक कठिनाइयों और संघर्षों में अपनी हानि सहकर भी उसे व्यवहार में लाने वाले तो कोई विरले साहसी सपूत होते हैं।

महर्षि ने दृष्टि दौड़ाई तो उन्हें ऐसा लगा कि पृथ्वी अभी आदर्श-विहीन नहीं हुई। कृशाश्व जो कभी उनके स्नातक रह चुके थे, उन्होंने अपाला को सहर्ष स्वीकार कर लिया। वैदिक रीति से कृशाश्व और अपाला एक दाम्पत्य सूत्र में आवद्ध हो गए।

दाम्पत्य संबंधों का प्रारम्भिक आकर्षण कुछ कम हुआ तो कृशाश्व के मन में पत्नी के प्रति विरक्ति आने लगी। वासना का जाल ऐसा कुटिल है कि वह जहाँ भी उद्दीप्त होता है, प्रेम की पावनता को उपेक्षा और तिरस्कार में परिवर्तित कर देता है। जो कृशाश्व अब तक प्रेम के कारण त्वचा दोष वाली अपाला में गुण ही गुण देखते थे। अब उन्हें अपाला जैसी विदुषी नारी भी मांस पिण्ड मात्र लग रही थी। उनकी अन्यमनस्कता—विचारशील अपाला से छुपी न रह सकी। वह इस अपमान से छटपटा उठी और अन्ततः एक दिन पूछ ही बैठी—"आर्य श्रेष्ठ ! मैं इतने दिनों से आपके स्नेहपूर्ण संबोधन, मधुर व्यवहार से वंचित हो रही हूँ, कोई अपराध तो नहीं हो गया ?"

कृशाश्व क्या उत्तर देते ? उन्होंने स्वीकार किया कि वह मन की वासना के आगे पराभूत है। प्रेम के स्थान पर सौन्दर्य की अभिलाषा ने उनके आदर्श को तोड़ डाला है।

जो निराशा एक दिन अपने स्वर्णिम शरीर में श्वेत छींटे देखकर हुई थी। उससे अधिक पीड़ा हुई पति की उपेक्षा से। आज प्रथम बार उसके मन में स्वाभिमान जाग्रत हुआ और उसे इस बात का बोध हुआ कि संसार में पराश्रय सदैव दुःख देता है। आत्मस्थिति, अपनी शक्ति, अपने पैरों पर खड़ा होने का भरोसा ही सच्ची शक्ति है। उसी से मनुष्य सांसारिक अपमान से अपनी सुरक्षा कर सकता है।

उसने पतिगृह का परित्याग कर दिया। रही वह अपने पिता महर्षि अत्रि के आश्रम में ही; किन्तु उसने अपना कष्ट वहाँ किसी से भी प्रकट नहीं किया। शनैः-शनैः उसने गम्भीरता धारण कर ली। यह स्थैर्य ही धीरे-धीरे तपश्चर्या में बदल गया। उसने देखा किसी भी वस्तु का सच्चा रहस्य उसके मूल में ही पाया जा सकता है। आत्मा ही वह केन्द्र-बिन्दु है, जिस पर एकाग्र होने से अपनी परिस्थितियों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त हो सकता है। यह विचार आते ही वह आत्म-शोध की साधना में तल्लीन हो गई।

मनुष्य के मन में बड़ी शक्ति है। जिधर लगा दे उधर ही अज्ञात भूत के समस्त ज्ञान के कोष एकत्रित कर देता है। आत्मा की शोध करते हुए उसने अनुभव किया—मनुष्य जीवन के विकार, कष्ट और यंत्रणाएँ ईश्वर प्रदत्त नहीं उसकी निजी भूलें और पाप होते हैं। परमात्मा तो उनके प्रच्छालन में सहायता करता है। आत्मा को शुद्ध और सुघड़ बनाने की शक्ति प्रदान करता है।

उसने इन्द्र की उपासना इसी रूप में की। जप-तप, हवन-व्रत, उपवास आदि तप-तितिक्षाओं के द्वारा उन्होंने अपना अन्तःकरण नितान्त शुद्ध कर लिया। शास्त्र अनुशीलन और वेदों की शोध में अपने जीवन का एक-एक क्षण घुला दिया। शेष संसार से संबंध टूट गया। आत्मसाक्षात्कार की इस साधना में उसने रात-दिन एक कर दिए। भगवान को और क्या चाहिए, उन्हें तो निष्ठा की परख होती है, अन्यथा अपने भक्त की सहायता के लिए वे अहर्निशि तत्पर रहते हैं।

आश्विन की शरद् पूर्णिमा का दिन। जब सारा संसार निद्रा की गोद में पड़ा आनन्द ले रहा था। अपाला आश्रम के एक नीरव नीड़ में बैठी ज्ञान-चक्षुओं से विश्व के अनन्त विस्तार को हृदयंगम कर रही थी। पूर्णिमा का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चन्द्रमा अपनी सम्पूर्ण उज्ज्वलता पृथ्वी पर बिखेरकर आत्म सुख अनुभव कर रहा था। अपाला अपनी आत्मचेतना को भगवान इन्द्र के विश्वात्म शरीर में हवन करती जा रही थी। देखते-देखते लघुता महानता में, अणु विभु में एकाकार हो चले। आत्मा ने अपने को परमात्मा के साथ एकाकार कर लिया।

"पूर्णकाम हो।" इस अन्तर्गूंज के साथ समाधि भंग हुई। सामने देखा देवराज इन्द्र स्नेहपूर्ण मुसकान बिखेर रहे थे।

"देवेश !" भावावेश में अपाला इतना ही कह सकी। पुत्री अपने पिता को पाकर जिस तरह विह्वल हो उठती है वैसे ही विह्वल अपाला की आँखों से झर-झर आँसू बह चले। भाव नेत्र निर्निमेष अपने आराध्य को देख रहे थे। चिर प्यास-परम तृप्ति का आनन्द ले रही थी।

"मैं तुम्हारा त्वक्दोष दूर करता हूँ भद्रे।" भगवान इन्द्र ने वात्सल्य भरे हृदय से कहा। वाणी सुनकर भाव विह्वलता से आकंठ डूबी अपाला उत्तर नहीं दे पा रही थी।

धीरे-धीरे भाव संवरण करते हुए उसने कहा देव ! यह शरीर आज नहीं तो कल छूटेगा ही। वह रुग्ण रहे या रोग मुक्त उससे क्या बनता-बिगड़ता है, आप तो मुझे शक्ति दें, ऐसी सामर्थ्य दें, विद्या और प्रकाश दें जिससे मैं इस प्रसुप्त भौतिक आकर्षणों से भ्रमित संसार को कुछ ज्ञान दे सकूँ। संसार का कुछ कल्याण कर सकूँ।

"एवमस्तु।" कहकर इन्द्र अदृश्य हो गए पर वे अपनी क्रान्ति शक्ति प्रज्ञा का एक विशिष्ट अंश अपाला पर छोड़ गए। अपाला ऋषित्व को पा गई। यह संवाद हवाओं की तेजी में घुलकर सारे आश्रम और राष्ट्रवासियों के अन्तःकरण को स्पर्श कर आया।

कृशाश्व ने सब कुछ सुना तो दूसरे दिन ही अपाला को लेने महर्षि अत्रि के आश्रम में पहुँचा। बड़ी अनुनय-विनय की, पर अपाला ने साथ जाने से इनकार कर दिया। शेष जीवन पिता के साथ रहकर उन्होंने धर्म और समाज की सेवा में बिताया। कृशाश्व ने स्वयं भी अपाला से वेद मन्त्रों के दिव्य रहस्य व समाधि तत्व का अनुभव प्राप्त किया।

श्रेयात् सिद्धिः

"जननी भिक्षां देहि"—नगरसेठ प्रसेनजित के द्वार पर अभिराम कपिल ने गुहार लगाई। जीवन का बहुत ही मार्मिक क्षण था, जब कि नगरसेठ की अद्वितीय सुन्दरी परिचारिका गौरवर्णा मधूलिका भिक्षा लेकर द्वार पर उपस्थित हुई। आचार्य इन्द्रदत्त के स्नातकों में कपिल भी मनोज के समान अनिंद्य सुन्दर थे। सुदीर्घ वक्ष, प्रलम्ब बाहु, उन्नत ललाट, गौरवर्ण। भिक्षा देर तक अंचल में ही पड़ी रही। मधूलिका और कपिल देर तक एक-दूसरे को निर्निमेष देखते रहे। सौन्दर्य के इस आकर्षण में कपिल मुग्ध हो गये। कितने क्षण इस तरह बीत गये कुछ पता ही नहीं चला।

इसके बाद कपिल को जब भी अवसर मिलता वही द्वार, वही भिक्षा सब कुछ वही और तब प्रारम्भ हुई पतन की करुण कथा। कपिल ने रमणी के सौन्दर्य में न केवल विद्या खोई, वरन् अपना ओजस, आरोग्य और वर्चस्व सब कुछ खो दिया, फिर भी वासना की आग शान्त न हुई। ऐसा होता तो वासना और तृष्णा ने सैकड़ों बार इतिहास के मस्तक को कलंकित नहीं किया होता। इस शाश्वत सत्य से कपिल कहाँ बचने वाले थे ? अभी तो अधोगति का आरम्भ था, अन्त नहीं।

बसन्त पर्व समीप था। सुकुमारियाँ ऋतुराज का स्वागत करने के लिए नाना परिधान; अंगराग, कुंचुकि केसर, वेणि, आभूषण सजाने में व्यस्त हो गईं। मधूलिका सुन्दरी तो थी, किन्तु धन उसके पास कहाँ ? निदान युवक प्रेमी कपिल को ही उसने अपनी आकांक्षाओं का आखेट बनाया। उसने कपिल से ही एक शत सुवर्ण मुद्राओं की याचना की, वह जानती थी कपिल भिक्षु है, स्नातक है, दूरवर्ती कौशाम्बी का रहने वाला है, यहाँ उसके पास सुवर्ण मुद्राएँ कहाँ, सो उसी ने युक्ति भी बताई, आप श्रावस्ती नरेश के पास चले जाएँ। वे अप्रतिम दानी हैं एक सौ मुद्राएँ उनके लिए कोई बड़ी बात नहीं।

कामार्त्त कपिल द्वार पर पहुँचे। वे विवेक खो चुके थे। रात्रि में ही राजप्रासाद में प्रवेश करना चाहा फलतः न केवल प्रहरी की प्रताड़ना मिली अपितु दस्यु की आशंका से उन्हें रात बन्दी-गृह में बितानी पड़ी। विद्यमान वर्चस्व खोने के बाद उन्हें आत्मसम्मान से भी विच्युत होना पड़ा। वासना जो न कराये सो थोड़ा।

प्रातःकाल वे बन्दी वेष में नृपति के सम्मुख प्रस्तुत हुए। कपिल ने शील खोया था, पर उन्हें उबारने वाला सत्य अभी तक उनके पास था। उन्होंने महाराज को सब कुछ स्पष्ट बता दिया। परिचारिका मधूलिका के सम्मोहन से यहाँ तक की सारी गाथा कपिल ने कह सुनाई।

सम्राट, कपिल की निश्छलता पर बहुत प्रसन्न हुए उन्होंने पूछा—"युवक ! बोलो अब तुम क्या चाहते हो ? जो माँगोगे मिलेगा।" एक शत स्वर्ण मुद्रा। कपिल ने मन ही मन कहा—फिर विचार आया जब कुबेर का भण्डार ही खुला है तो एक शत क्यों, एक सहस्र, नहीं-नहीं एक लक्ष—**'जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई'**—क्यों न ऐसा कुछ माँगा जाये जिससे मधूलिका के साथ आजीवन सुखोपभोग का जीवन जिया जाये।

"आपका सम्पूर्ण राज्य चाहिए राजन्"—याचक के मुँह से यह निकलते ही समस्त सभासद, परिचारक, अंगरक्षक अवाक् और स्तब्ध रह गये किन्तु श्रावस्ती नरेश किंचित मात्र विचलित नहीं हुए।

"तथास्तु कपिल !" वे बोले—"मैं निःसन्तान हूँ। राज्यभोग ने मेरी आत्मिक शक्तियों को जर्जर कर दिया है, चाहता ही था कोई सुयोग्य पात्र मिले तो इस जंजाल से मुक्त होकर आत्म-कल्याण का मार्ग खोजूँ, तुमने आज मेरा भार उतार दिया आज से श्रावस्ती तुम्हारी हुई।"

नृप के इस औदार्य पर कपिल आश्चर्यचकित रह गये। आत्म-कल्याण, आत्म-शान्ति क्या इतनी महान् है, जिस पर राज्य यों न्योछावर किया जा सकता है। तब तो मैंने महाअनर्थ किया। कपिल संभले और बोले, "नहीं-नहीं क्षमा करें राजन ! मैं अपने उसी श्रेय की ओर प्रस्थान करूँगा,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिसका निर्देश मेरे गुरुदेव ने किया था।" क्षणभर में कपिल राजप्रासाद से बाहर हो गये, लोगों ने देखा वे जा रहे हैं दूर—बहुत दूर—बहुत दूर—बहुत दूर।

आत्म-भाव की शक्ति

इल्वला और वातापी की तान्त्रिक शक्ति के आगे सारी मणिमती नगरी भय खाती थर्राती थी। असुरद्वय बड़े उत्पाती और मायावी थे। मणिमती नरेश तक उन दोनों भाइयों का कुछ बिगाड़ नहीं सके थे; सामान्य मनुष्य की तो बात ही क्या थी ?

वातापी छोटा था और उसने विवाह भी नहीं किया था, किन्तु इल्वला गृहस्थ था, विवाह हुए दसियों वर्ष बीत गये उसे कोई सन्तान नहीं हुई थी। स्नेह और आत्मीयता जहाँ हर व्यक्ति की आन्तरिक चाह होती है, वहाँ जब तक अधिकारपूर्ण स्नेह और प्रेम का दान न दिया जाये तब तक अन्तःकरण शान्ति नहीं पाता। तात्पर्य यह है कि ममता और आत्मीयता का विनिमय ही सच्चा सुख है। जिसने भी यह व्यापार किया, जिन्दगी का सच्चा सुख केवल मात्र उसी ने पाया।

इसी अभाव के कारण दुःखी इल्वला एक दिन तपस्वी ब्राह्मणों के पास गया और बोला—"आप लोगों की कृपा हो जाये और मुझे एक सन्तान का वरदान मिल जाय, तो आप जो भी कहेंगे सो करने के लिए तत्पर हो जाऊँगा। दीन-भाव से कभी कोई शरण आये तो कितना ही बुरा क्यों न हो, विद्वान उसे आत्मीयता प्रदान करते हैं, अच्छा व्यवहार करते हैं और यह मानकर चलते हैं कि आत्मा बुरी नहीं, सांसारिक परिस्थितियाँ और आकर्षण बुरे हैं, सो यदि किसी आत्मा को सही रास्ते लगा दिया जाये, तो यह उसे सबसे अच्छा पाठ और दण्ड होता है। दुत्कारना तो एक प्रकार से आत्मा का अपमान है और वह भी तब जब कोई भावनापूर्वक शरणागत हुआ हो।"

ब्राह्मणों ने इसे फटकार दिया और कहा—"दुष्ट तूने सैकड़ों का रक्त पिया है, उसी का दण्ड दिया है भगवान् ने तुझे जा तेरा भला नहीं होगा।" इल्वला पहले ही अपराधी था इस प्रताड़ना ने तो उसे और भी क्रूर बना दिया। उसने तपस्वियों के विनाश का षड्यन्त्र रचा। वातापी शरीर को अणु-अणु पदार्थ में विभक्त कर बिखर जाने और इच्छा मात्र से फिर अणु-अणु संलयन से अपने यथार्थ रूप में आ जाने की विद्या जानता था, सो इल्वला ने वातापी की ही मदद ली। उसने समस्त ब्राह्मणों को भोज दिया। कपट रूप से भेड़ बनाकर वातापी का मांस टुकड़े-टुकड़े पकवाया गया और अन्य भोज्य पदार्थों के साथ उसे भी परोस दिया गया। स्वादेन्द्रिय में आसक्त ब्राह्मणगण षड्यन्त्र को जान नहीं पाये वे वातापी का मांस बड़े प्रेमपूर्वक खा गये। ब्राह्मण भोजन कर जैसे ही उठे इल्वला ने वातापी को जोर से आवाज दी और आवाज पाते ही वातापी के शरीर-कोश ब्राह्मणों के शरीरों को फाड़-फाड़कर निकल आये। वातापी ज्यों का त्यों असली रूप में आ गया पर समस्त ब्राह्मण वहीं ढेर हो गये।

समस्त राज्य में हा-हाकार मच गया। इसी समय अपनी धर्म-पत्नी लोपामुद्रा के आभूषणों के लिये महर्षि अगस्त्य घूमते हुए इल्वला के पास जा पहुँचे। इल्वला ने अगस्त्य ऋषि के सम्मुख अपनी माँग प्रस्तुत की। महर्षि ने कहा—"तात् ! तुम्हें पुत्र मिल तो सकता है किन्तु यदि वह तुम्हें दुःख दे तो ऐसे पुत्र से क्या लाभ ? क्यों नहीं तुम आत्म-कल्याण की इच्छा करते। यों पाप बढ़ाने से क्या लाभ ? हाँ यदि तुम आत्म-संशोधन करना स्वीकार कर लो तो हम तुम्हारी मदद अवश्य कर सकते हैं।" महर्षि की आत्मीयता ने असुर का हृदय बदल दिया। उसने उस दिन से अत्याचार करना बन्द कर दिया और आत्म-कल्याण में जुट गया। उसे ऐसी शान्ति मिली कि फिर उसने पुत्र की भी कामना का परित्याग कर दिया।

सन्तोष का आभूषण

"मेरी महत्त्वाकांक्षा के लिए क्षमा करें देव ! मैं सुहागिन हूँ, किन्तु शरीर में एक भी आभूषण न होने से भद्र महिलाएँ मुझे असम्मान की दृष्टि से देखती हैं। लोक-सेवा आपके जीवन का लक्ष्य है स्वामी ! आपकी सहधर्मिणी होने के फलस्वरूप मेरा कर्तव्य है कि मैं आपके आदर्शों का अनुगमन करूँ, किन्तु सामाजिकता को भी तो सर्वथा ठुकराया नहीं जा सकता। यही एक छोटी-सी बात है। एक दो मंगल आभूषणों की व्यवस्था हो जाती, तो इस असम्मान से तो बच जाती।" लोपामुद्रा ने बड़े संयत और विनीत शब्दों में अपने मन की बात पति से कह दी।

महर्षि अगस्त्य कुछ गम्भीर होकर बोले—"भद्रे ! अपने मन की बात बड़ों से स्पष्ट कर देना उनका नैतिक अधिकार है। पति-पत्नी अन्तरंग के सखा होते हैं, अपनी आकांक्षाएँ एक-दूसरे से व्यक्त न करें तो फिर गृहस्थी का आनन्द ही क्या रहे ? इसमें भूल या क्षमा जैसी कोई बात नहीं है। गृहस्थ होने के साथ मुझे उन आवश्यकताओं का भी ध्यान रखना आवश्यक था, जिससे परिजनों को सुख और सन्तोष मिलता है। यह मेरी भूल है, जो आत्म-कल्याण के लोकोत्तर साधनों पर तो चर्चा करते रहे पर सांसारिक होकर भी सांसारिकता को सर्वथा त्याज्य समझते रहे। आगे कभी ऐसी भूल न होगी।"

किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में भार्या लोपामुद्रा के लिए आभूषणों की व्यवस्था कैसे हो ? इसकी उन्हें स्वाभाविक चिन्ता उठ खड़ी हुई। महर्षि ने जप-तप किया था। साधना, योगाभ्यास किया था, अष्टांग नियमों का पालन किया था, सो वे आत्मिक सम्पत्ति से तो परिपूर्ण थे, पर लोकोपकार और आत्म-तत्त्व की शोध में निरन्तर व्यस्त रहने के कारण वे लौकिक सम्पत्ति न जुटा पाये थे। इसलिए लोपामुद्रा की आकांक्षा को पूरा करना वस्तुतः चिन्ता का ही विषय था।

महर्षि ने हजारों शिष्यों को पढ़ाया-लिखाया और योगाभ्यास कराया था। नीति, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, तर्क मीमांसा, तत्त्व-दर्शन आदि अनेक विद्याओं से सैकड़ों शिष्यों को दीक्षित-प्रशिक्षित किया था पर अपरिग्रह की भावना से आज तक उन्होंने किसी से भी कुछ स्वीकार नहीं किया था। यद्यपि पारिश्रमिक ले लेना उनका नैतिक अधिकार था, तथापि ब्राह्मणत्व के तेज और वर्चस्व को बनाये रखने के लिए उन्होंने धन को अपने से दूर ही रखा था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीवन-निर्वाह भी वह अपने दो हाथों की कमाई से ही करते थे। ऐसा न करते तो ऋषि जीवन की शान कहाँ रहती ?

पर आज का प्रश्न उतनी ही उलझनों के साथ आ खड़ा हुआ, जितनी उलझनें सांसारिकता से ग्रस्त मनुष्य अपनी भूलों के द्वारा पैदा कर लिया करता है। ऋषि ने आज तक पढ़ा था—"कामनाओं की बाढ़ से चिन्ताओं का बोझ बढ़ता है।" आज उसकी स्पष्ट अनुभूति हुई। अब वे इस बात पर विचार करने लगे, आभूषणों की व्यवस्था कैसे हो कि अपने आदर्शों का परित्याग भी न हो और लोपामुद्रा की भावना का अनादर भी।

महर्षि अपने कुछ प्रमुख शिष्यों को लेकर राजा श्रुतर्वा के पास चल पड़े। श्रुतर्वा उनका शिष्य रह चुका था। गुरु के प्रति उसके हृदय में अपार आदर और निष्ठा थी। यह सोचकर ही महर्षि अगस्त्य उसके पास चले थे। तो भी उनका अन्तिम निश्चय यही था कि वे आभूषण या आभूषणों के लिए वही धन स्वीकार करेंगे जो शिष्यों द्वारा न्यायपूर्वक अर्जित किया गया हो। अनीति से उपार्जित धन ग्रहण करना ऋषि के लिए संभव न था।

गुरुदेव को अपने द्वार आया देखकर वीर्यवान् श्रुतर्वा के हर्ष का पारावार न रहा। उसने उनकी सब प्रकार आवभगत की। वर्षों से बिछुड़े गुरु-शिष्य, माँ-बेटे की तरह मिले। कई दिन स्वागत-सत्कार में ही निकल गये। तब श्रुतर्वा को ध्यान आया कि गुरुदेव का आगमन किसी उद्देश्य से तो नहीं हुआ। उसने शिष्यों से सब मन्तव्य जाना। उसके लिए यह सौभाग्य की बात थी, गुरु-माता की छोटी-सी इच्छा उसके द्वारा पूरी होने जा रही थी।

प्रातःकाल उसने अनेक सुन्दर आभूषणों और स्वर्णमुद्राओं से भरी मंजूषा गुरु-चरणों में समर्पित कर दी। उसे स्वीकार करने की प्रार्थना करते हुए श्रुतर्वा ने कहा—"भगवन् ! आज्ञा दें तो श्रृंगार के लिए स्वयं साम्राज्ञी को आश्रम भेजने का प्रबन्ध कर दें।" श्रुतर्वा की गुरु-भक्ति से महर्षि अगस्त्य का हृदय भर आया, किन्तु आभूषण स्वीकार करने से पूर्व उन्होंने प्रश्न किया—"वत्स ! पहले यह बताओ इन आभूषणों में कहीं अधर्म और अन्याय की कमाई तो नहीं लगी।"

श्रुतर्वा ने किंचित चिंतित स्वर में बताया—"देव ! यह आभूषण राज्य-कोष से बने हैं। कोष के लिए धन प्रजा देती है, कितने लोगों ने परिश्रम की कमाई दी है, कितनों ने अधर्म की, यह तो मुझे भी अविज्ञात है। लगता है इसमें शोषण और उत्पीड़न से प्राप्त धन भी है, भगवन् भूल हुई जो आपका शिष्य होकर भी यह ध्यान न रख सका और परिग्रह में पड़ा रहा।"

निश्चय ही, कर देने वालों में से कितनों ने ही बिना परिश्रम के अनीतिपूर्वक धन कमाया होगा, इस आशंका के मन में आते ही महर्षि ने वह मंजूषा लौटा दी और उदास मन वापस चल पड़े।

अब वे राजा धनस्व के पास पहुँचे। धनस्व प्रजापालक और धर्मात्मा होने के साथ ही बड़ा निष्ठावान् शिष्य था किन्तु गुरु का सत्कार उसने बहुत सादगी से किया। उसका निवास भी श्रुतर्वा जैसा नहीं था। पूछने पर ज्ञात हुआ कि धनस्व राज्य संचालन और अपने निर्वाह के लिए इतना कर लेता है, जिससे राज्य की आवश्यकताएँ तो पूरी हो जाती हैं, पर बचता कुछ नहीं। महर्षि अगत्स्य ने शिष्य धनस्व की पीठ थपथपाकर आशीर्वाद दिया—"वत्स ! जिस देश में तुम्हारे जैसे नीति-निपुण और त्याग वृत्ति वाले शासक होंगे, वहाँ प्रजा कभी दुःखी न रहेगी।" धनस्व को अपने गुरु की आवश्यकता पूरी न कर सकने का दुःख अवश्य था पर उसे अपनी कर्त्तव्यपरायणता के लिए सन्तोष भी था। उसी सन्तोष के साथ उसने गुरुदेव को सादर विदा दी।

इसके बाद महर्षि अपने कई शिष्यों के पास गये पर निराशा ही हाथ लगी। जहाँ शिष्य कर्त्तव्य-परायण और परिश्रमी मिले वहाँ उपयोग से अधिक धन नहीं मिला जहाँ धन मिला वहाँ साधन दूषित थे, अतएव उनकी आशा सब जगह अधूरी ही रही।

अन्ततः वे अपने दैत्य शिष्य इल्वण के पास गये। गुरु को पाकर शिष्य की वर्षों से सोई श्रद्धा उमड़ पड़ी। महर्षि अगत्स्य का उसने भारी स्वागत किया। उसके पास धन-सम्पत्ति और स्वर्ण-आभूषणों का किंचित मात्र भी अभाव नहीं था। शिष्यों से उसने चुपचाप गुरु का आशय भी जान लिया और इससे पूर्व कि वे कुछ कहें उसने अपने प्रमुख भृत्यों के साथ प्रचुर आभूषण भरकर आश्रम भिजवा दिये। महर्षि को जब तक मालूम पड़े, आभूषण आश्रम में लोपामुद्रा के पास पहुँच गये।

आभूषण एक ओर रखवाकर विदुषी लोपामुद्रा ने भृत्यों को जल पिलाया और उनसे महर्षि की कुशल-मंगल पूछी। नौकरों ने वह सब समाचार सुनाये, जिस तरह अगस्त्य श्रुतर्वा से लेकर इल्वण के दरबार तक गये थे। लोपामुद्रा पति की इस अकारण भाग-दौड़ के लिए बहुत दुःखी हुई। उन्हें अपनी महत्त्वाकांक्षा रोक न सकने का बड़ा दुःख हुआ।

उन्होंने पूछा—"इल्वण के पास इतना धन कहाँ से आता है, जो उसने ढेर सारे आभूषण यहाँ पर भेज दिये।" भृत्य हँसे और बोले—"भगवती ! वे शासक हैं, उनके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं। इतना धन तो वे एक क्षण में किसी से भी अधिकारपूर्वक ले सकते हैं।"

लोपामुद्रा की आँखें खुल गईं। उसके लिये अनीति की कमाई स्वीकार करना असंभव हो गया। अस्तु उसने वे आभूषण वापस कर दिये। तब तक महर्षि अगत्स्य भी वहाँ पहुँच गये। उन्हें अपनी असमर्थता नहीं प्रकट करनी पड़ी, लोपामुद्रा ने भरे हृदय से उनका स्वागत करते हुए क्षमा माँगी। महर्षि ने लोपामुद्रा को हृदय से लगाते हुए कहा—"प्रिये ! आज तुमने सच्चा आभूषण पा लिया। सन्तोष ही वह आभूषण है, जिससे बढ़कर दूसरा आभूषण धरती पर नहीं है।"

कैसे आयेगा सतयुग ?

धर्मराज युधिष्ठिर एक दिन चिन्तित बैठे थे। उसी समय कहीं से देवर्षि नारद आ गये और चिन्ता का कारण पूछने लगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

युधिष्ठिर ने कहा—"देव अब कलियुग आ पहुँचा, उसने मेरे राज्य में अपने आगमन प्रवेश और परिणाम की कष्टकर कथाएँ भी सुनाईं, सो लगता है अब धर्मराज्य धरती पर से उठने ही वाला है।"

कलियुग के आगमन की बात तो नारदजी को भी मालूम थी, पर उन्हें इस बात पर आश्चर्य हुआ कि अंधकार और प्रकाश दोनों एक स्थान पर मिल कैसे गये ? कलियुग और धर्मराज में प्रत्यक्ष भेंट हो सकना भला कैसे संभव हो सकता है ? सो उसी प्रश्न को उठाते हुए नारदजी ने पूछा—"धर्म और अधर्म का प्रत्यक्ष मिलन कैसे सम्भव हो सका ? घटना किस प्रकार घटी, सो हे पाण्डुपुत्र, विस्तार से वह सब विवरण सुनाइये।"

देवर्षि को उच्च आसन पर बिठाकर युधिष्ठिर ने वह प्रसंग बताना आरम्भ किया—

"भगवन्, एक दिन एक व्यापारी आया, उसके पास अद्भुत घोड़ा था। अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव उधर से आये तो घोड़े को देखकर मुग्ध हो गये और मनचाहा मोल देकर उसे बेच देने का आग्रह करने लगे।"

व्यापारी ने कहा—"धन की आपके यहाँ भी कमी नहीं और मैं भी कोई कंगाल नहीं हूँ। घोड़ा बेचना तो है, पर इसे धनी के हाथों नहीं बुद्धिमान के हाथों बेचना है, यदि आप लोग बुद्धिमान हो तो एक शर्त स्वीकार करें। मेरे चार प्रश्नों का उत्तर देना पड़ेगा। यदि उत्तर सही हुए तो घोड़ा मुफ्त दे दूँगा। यदि उत्तर न दिये जा सके या गलत हुए तो मेरी खींची धर्म-रेखा के भीतर आप लोगों को तब तक कैद रहना पड़ेगा, जब तक कि कोई आकर सही उत्तर न दे दे।"

युधिष्ठिर ने कहा—"देवर्षि मेरे चारों भाइयों ने शर्त मान ली। उन्हें अपनी बुद्धिमत्ता पर और मेरे ज्ञान पर बहुत भरोसा था, सो मुफ्त में बहुमूल्य घोड़ा पाने का लोभ वे संवरण न कर सके और शर्त में बँधकर प्रश्न पूछने लगे।"

व्यापारी ने पहला प्रश्न भीम से पूछते हुए कहा—"मैं रास्ते में जा रहा था, तो देखा कि एक भयंकर कूप है, उसके बीच में रस्सी से बँधा एक पैसा लटक रहा था। उस पैसे से बँधा सौ मन लोहा टँगा था, फिर भी वह रस्सी टूटती न थी, पैसा गिरता न था। इसका क्या रहस्य है ?"

चारों भाइयों में से कोई उत्तर न दे सका तो शर्त के अनुसार भीम को धर्म रेखा के भीतर कैद होने के लिए जाना पड़ा।

इसके बाद व्यापारी ने दूसरा प्रश्न पूछा—"उसी रास्ते पर चलते हुए मैंने एक जगह पाँच कुण्ड देखे, जिनका पानी अपने आप ऊपर निकलकर बहता था। चार कोनों के कुण्ड जब खाली हो जाते थे तो बीच का कुण्ड उन्हें भर देता था। पर जब बीच का खाली होता तो चारों मिलकर भी उसे भर नहीं पाते थे और वह सूखा हुआ खाली ही पड़ा रहता था। राजकुमार बताओ इसका रहस्य क्या था ?"

इस प्रश्न का उत्तर अर्जुन को देना था। वह तो क्या शेष भाई भी मिलकर कुछ समाधान न कर सके। तब शर्त के अनुसार अर्जुन को भी धर्म रेखा में कैद होना पड़ा।

देवर्षि, बात यहीं समाप्त नहीं हुई। व्यापारी ने और भी दो प्रश्न पूछे—(१) उसी रास्ते एक जगह प्रौढ़ गाय अपनी छोटी बछिया का दूध पीती पाई गई। (२) उसी यात्रा में एक विचित्र पशु देखा जो मुँह से बुरे-बुरे शब्द का उच्चारण करता था और मल द्वार से घास खाता था। इन दोनों दृश्यों का रहस्य बताओ ?

नकुल व सहदेव ने इस पहेली को सुलझाने का बहुत प्रयत्न किया पर उन्हें भी कुछ नहीं सूझा। सो प्रश्न बिना उत्तर के ही रह गये और नकुल तथा सहदेव को भी धर्म रेखा के भीतर कैद होना पड़ा।

सेवकों ने समाचार मुझे दिया। अद्भुत घोड़ा, विचित्र प्रश्न, मुफ्त में खरीद की शर्त, धर्म रेखा में कैद यह सभी बातें मुझे बहुत अटपटी लगीं, सो हे देवर्षि मैं स्वयं उठकर द्वार पर पहुँचा और सारा घटना-क्रम देखकर चकित रह गया। फिर भी भाइयों को छुड़ाना आवश्यक ही था। सो मैंने साहस करके व्यापारी की पूछी गई पहेलियों के उत्तर देने आरम्भ कर दिये।

(१) धूर्त लोग, एक पैसा दान करके सौ मन यश लूटने का प्रयत्न करते हैं। सौ मन पाप को एक पैसे भर पुण्य के सहारे लटकाये रहना चाहते हैं। सो वह पतली रस्सी कुछ समय अधर में टँगी भले ही रहे, एक दिन वह सारी विडंबना कुएँ के गर्त में गिरेगी और सारा खेल खत्म हो जायेगा।

(२) बीच का कुआँ पिता है और चारों कोनों के कुएँ पुत्र। अकेला पिता, कर्तव्य, धर्म को स्मरण रखकर चारों पुत्रों का पालन-पोषण करता है पर स्वार्थी पुत्र अपने वृद्ध पिता की सेवा चारों मिलकर भी नहीं कर पाते और वृद्ध अभिभावक दुःखी, दयनीय स्थिति में शुष्क और नीरस जीवन बिताते हैं।

(३) पिता-माता गौ हैं और सन्तान उनकी बछिया। कितने ही पिता अपने लड़के बेचकर विवाह रचाते हैं और दहेज धन कमाते हैं। इसी प्रकार कई ऐसे भी होते हैं जो लड़की को वृद्धों के हाथ बेचकर सम्पत्तिवान बनते हैं। यही गाय द्वारा बछिया का दूध पिया जाना है।

(४) वह विचित्र जन्तु था साहित्यकार, कलाकार जो अपनी कृतियों द्वारा लोगों में दुर्बुद्धि उत्पन्न करता है और ऐसी कमाई खाता है जो मल द्वार से खाने के समान घृणित है।

चारों ही प्रश्न पहेलियों का रहस्योद्घाटन सही हो गया सो शर्त के अनुसार व्यापारी को धर्म रेखा के बन्धन से भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव मुक्त करने पड़े और वह अद्भुत घोड़ा भी मुफ्त देना पड़ा।

यह सब तो हो गया पर मैंने आश्चर्यपूर्वक उस व्यापारी से पूछा—"यदि प्रश्नों में पूछे गये सारे घटना-क्रम सही हैं, तब तो यह कलियुग रूपी पाप साम्राज्य का ही परिचय है। मेरे धर्म राज्य में भला ऐसे कैसे हो सकता है ? ऐसी अनीति कहीं कैसे प्रचलित हो सकेगी ?"

व्यापारी गिड़गिड़ाने लगा और बोला—"धर्मराज, मैं ही कलियुग हूँ। अब मेरा पाप राज्य आ पहुँचा, सो ऐसी घटनाएँ अनहोनी न रहेंगी। आये दिन पग-पग पर ऐसे ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनाचार दृष्टिगोचर होंगे। मैं आपको वस्तुस्थिति बताने आया था पर धर्म और अधर्म की न तो प्रत्यक्ष भेंट हो सकती थी और न खुले वार्तालाप की संभावना थी। सो मैंने व्यापारी का रूप बनाया और घोड़े के बहाने राजकुमारों के सामने वस्तुस्थिति को पहेली जैसे रहस्यमय प्रश्नों के साथ पूछा। मैं जानता था कि अन्ततः उत्तर आप ही दे सकेंगे और भेंट का सुवअसर मिल जायगा और सूचना देने का प्रयोजन सध जायेगा।"

युधिष्ठिर ने कहा—"भगवन् मैं इसी से चिन्तित था कि निकट भविष्य में जब लोग ऐसी दुष्ट गतिविधियाँ अपना लेंगे तो उनके दुःखों का पारावार न रहेगा।"

नारदजी ने धर्मराज की चिन्ता दूर करते हुए कहा—"मनुष्य की आत्मा में विवेक का प्रकाश पूर्णतया कभी भी नष्ट नहीं हो सकता। इसलिए पाप का पूर्ण साम्राज्य कभी भी छा न सकेगा। विवेकवान आत्माएँ अपने समय की विकृतियों से लड़ती हा रहेंगी और बुरे समय में भी भलाई की ज्योति चमकती रहेगी।"

पाप का पूर्ण साम्राज्य कभी भी स्थापित न हो सकेगा। इस आश्वासन से युधिष्ठिर का समाधान हो गया। क्या वह समय नहीं आ गया है, जब कलि का साम्राज्य जाने वाला है व सत्युग की लालिमा अरुणोदय का आभास देने लगी है ?

युधिष्ठिर की उपासना

एक-दूसरे के मुख से निकलती हुई यह बात अनेक कानों में समा गई। भले ही कहने वालों के स्वर धीमे हों पर सभी के मनों में आश्चर्य तीव्र हो उठा। "क्या करते हैं सम्राट, कहाँ जाते हैं ?" यद्यपि युद्ध प्रारम्भ होने के पूर्व ही उन्होंने इस तथ्य की स्पष्ट घोषणा कर दी थी कि शाम का समय उनकी व्यक्तिगत उपासना के लिए है। इस समय उन्हें कोई व्यवधान न पहुँचाए।

"लेकिन वेष बदलकर जाना ?" अर्जुन के स्वर के पीछे चिन्ता की झलक थी। प्रश्न उनकी सुरक्षा का है। भीम कुछ अधिक उद्विग्न थे। इससे सहायक सेनाएँ विचलित हो सकती हैं। नकुल, सहदेव प्रायः एक साथ बोले। महायुद्ध का वेगपूर्ण प्रवाह पिछले दस दिनों से धावमान था। ऐसे में इन सबका चिन्तित होना स्वाभाविक था। इन भाइयों की भाँति अन्य प्रियजनों की भी यही मनोदशा थी। सत्य को जानने का उपाय—उद्वेगपूर्ण मानसिकता, चिन्ताकुल चित्त नहीं। एक ही समाधान है शान्त में शोधपूर्ण कोशिश। पार्थसारथी के शब्दों ने सभी के मनों में घुमड़ रहे प्रश्न का उत्तर साकार कर दिया।

दिन छिपते ही युधिष्ठिर जैसे ही अपने कक्ष से बाहर निकले। अन्य पाण्डव भी उनके पीछे हो लिए। मद्धिम पड़ते जा रहे प्रकाश में इन्होंने देखा महाराज अपने हाथ में कुछ लिए उधर की ओर बढ़ रहे हैं, जिधर दिन में संग्राम हुआ। यह देखकर सभी की उत्सुकता और बढ़ गई। वे अपने को छिपाए उनका सावधानी से पीछा कर रहे थे।

युद्धस्थल आ गया तो सब एक ओर छिपकर खड़े हो गए। तारों के मन्द प्रकाश में इन सबकी आँखें पूर्ण सतर्कता से देख रही थीं आखिर अब ये करते क्या हैं ? इनकी ओर से अनजान युधिष्ठिर उन मृतकों में घूम-घूम कर देखने लगे कोई घायल तो नहीं है, कोई प्यासा तो नहीं है, कोई भूख से तड़प तो नहीं रहा, किसी को घायलावस्था में अपने स्नेही-स्वजनों की चिन्ता तो नहीं सता रही। वे घायलों को ढूँढ़ते उनसे पूछते और उन्हें अन्न-जल खिलाते-पिलाते बड़ी देर तक वहाँ घूमते रहे। कौरव पक्ष का रहा हो या पाण्डव पक्ष का, बिना किसी भेदभाव के वह सबकी सेवा करते रहे। किसी को घर की चिन्ता होती तो वे उसे दूर करने का आश्वासन देते। इस तरह उन्हें रात्रि के तीन पहर वहाँ बीत गए ?

ये सभी उनके लौटने की प्रतीक्षा में खड़े थे। समय हो गया। युधिष्ठिर लौटने लगे तो ये सभी प्रकट होकर सामने आ गए। अर्जुन ने पूछा "आपको यों अपने आपको छिपाकर यहाँ आने की क्या जरूरत पड़ी ?"

युधिष्ठिर सामने खड़े अपने बन्धुओं को सम्बोधित कर बोले—"तात् ! इनमें से अनेकों कौरव दल के हैं, वे हमसे द्वेष रखते हैं। यदि मैं प्रकट होकर उनके पास जाता तो वे अपने हृदय की बातें मुझसे न कह पाते और इस तरह मैं सेवा के सौभाग्य से वंचित रह जाता।"

भीम तनिक नाराज होकर कहने लगे—"शत्रु की सेवा करना क्या अधर्म नहीं है ?"

"बन्धु ! शत्रु मनुष्य नहीं पाप और अधर्म हुआ करता है।" युधिष्ठिर का स्वर अपेक्षाकृत कोमल था। "अधर्म के विरुद्ध तो हम लड़ ही रहे हैं पर मनुष्य तो आखिर आत्मा है, आत्मा का आत्मा से क्या द्वेष ?" भीम युधिष्ठिर की इस महान् आदर्शवादिता के लिए नतमस्तक न हो पाए थे, तब तक नकुल बोल पड़े—"लेकिन महाराज ! आपने तो सर्वत्र यह घोषित कर रखा है कि यह समय आपकी ईश्वरोपासना का है, इस तरह झूठ बोलने का पाप तो आपको लगेगा ही।"

"नहीं नकुल।" युधिष्ठिर बोले—"भगवान की उपासना, जप-तप और ध्यान से ही नहीं होती, कर्म भी उसका उत्कृष्ट माध्यम है। यह विराट् जगत् उन्हीं का प्रकट रूप है। जो दीन-दुःखी जन हैं उनकी सेवा करना, जो पिछड़े और दलित हैं, उन्हें आत्मकल्याण का मार्ग दिखाना भी भगवान का ही भजन है। इस दृष्टि से मैंने जो किया वह ईश्वर की उपासना ही है।" अब और कुछ पूछने को शेष नहीं रह गया था।

सहदेव ने आगे बढ़कर उन्हें प्रणति निवेदन करते हुए कहा—"लोग सत्य ही कहते हैं जहाँ सच्ची धर्मनिष्ठा होती है, विजय भी वहीं होती है। हमारी जीत का कारण इसीलिए सैन्यशक्ति नहीं, आपकी धर्मपरायणता की शक्ति है।"

ईश्वर पर विश्वास

उत्तरी अमरीका में नियाग्रा नामक एक प्रपात है। इसमें पानी की एक बहुत चौड़ी धार १६० फीट ऊँचाई से गिरती है। यदि प्रपात के पास कोई खड़ा हो तो जल का कल-कल शब्द बहुत ही भयानक प्रतीत होता है। यदि कोई प्रपात के पानी में गिर पड़े तो जीवित रहने की कोई आशा नहीं है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अभी कुछ वर्ष पहले की बात है एक अमरीकन पहलवान ने यह घोषणा की कि वह एक तार पर चलकर नियाग्रा प्रपात पार करेगा। नियाग्रा प्रपात के एक किनारे से दूसरे किनारे तक एक हवाई जहाज की सहायता से ठीक प्रपात के ऊपर से तार फैलाया गया।

पहलवान ने जो दिन निश्चित किया था उस दिन उसके इस कौशल को देखने को बहुत भीड़ इकट्ठी हुई। ईश्वर का नाम लेकर उसने तार पर चलना प्रारम्भ किया। भीड़ की आँखें उस पहलवान की ओर लगी थीं। वह धीरे-धीरे चलकर उस पार कुशलता से पहुँच गया। ज्योंही उस पार पहुँचा भीड़ उसकी प्रशंसा में चिल्ला उठी। बहुतों ने उसको इनाम दिया।

उस समय उसने लाउडस्पीकर पर ईश्वर का धन्यवाद दिया और भीड़ से पूछा, "क्या आपने मुझे तार पर चलकर प्रपात पार करते देखा ?" भीड़ ने उत्तर दिया "हाँ।"

उसने दूसरा प्रश्न पूछा, "क्या मैं इस पार से फिर उस पार तक इसी प्रकार पार कर सकता हूँ ?" भीड़ ने उत्तर दिया "हाँ।"

उसने तीसरा प्रश्न किया, "क्या आप लोगों में से कोई मेरे कन्धे पर बैठ सकता है, जब मैं इस प्रपात को पार करूँ ?" इस प्रश्न पर भीड़ में सन्नाटा छा गया। कोई भी उसके कन्धे पर पार करते समय बैठने को तैयार नहीं हुआ। फिर उसने अपने १६ वर्षीय इकलौते बेटे को कन्धे पर बैठने को कहा। पुत्र पिता के कहने पर कन्धे पर बैठ गया। पिता ने धीरे-धीरे तार पर चलना प्रारम्भ किया। भीड़ की आँखें उनकी ओर लगी हुई थीं। कोई कहता था, "अभी दोनों गिरते हैं—अब मरे" इत्यादि। परन्तु ईश्वर की कृपा से पहलवान अपने पुत्र सहित सरलता से पार हो गया।

भीड़ ने इस बार पहले से अधिक उसकी प्रशंसा की और बहुत-से इनाम दिये। उसने लाउडस्पीकर से ईश्वर की महिमा पर छोटा-सा भाषण दिया। उसने कहा, "आप लोगों को मेरी सफलता या योग्यता पर विश्वास न था। इस कारण आप लोगों में से कोई मेरे कन्धे पर बैठने को तैयार नहीं था। मेरे पुत्र को मुझ पर विश्वास था और इस कारण वह मेरे कन्धे पर बैठने को तैयार हो गया और मैं उसे लेकर इस पार आ गया हूँ। हम सबका पिता ईश्वर है। जिस प्रकार से मेरे बेटे को मुझ पर विश्वास था ठीक उसी प्रकार से यदि आपका विश्वास उस परम पिता परमात्मा पर हो, तो आप सांसारिक कठिनाइयों को ठीक उसी प्रकार पार सकते हैं जैसे मेरे बेटे ने मेरे कन्धों पर नियाग्रा प्रपात पार किया है। ईश्वर पर दृढ़ विश्वास रखिये और परिश्रम करिये। मुझे ईश्वर पर पूर्ण विश्वास था कि वह मेरी इस कठिनाई के समय सहायता करेगा और उसने सहायता की।"

दृढ़ विश्वास से भगवत दर्शन

किसी गाँव में एक चोर रहता था। वह रात को चोरी करने के लिये निकला। एक महाजन के यहाँ हरि कथा हो रही थी, उसमें पण्डितजी भगवान के आभूषणों का वर्णन कर रहे थे कि उन्होंने अपने शरीर पर वेशकीमती आभूषण धारण किये हैं, सोने का रत्न जड़ित मुकुट है, गले में कीमती कंठे शोभायमान हैं, ये शब्द चोर के कान में पड़े उसने वह माल चुराने का निश्चय किया। उसने सोचा इसका पता पण्डितजी को है। वह वहीं छिपकर बैठ गया। कथा समाप्ति के बाद पण्डितजी सामान बटोरकर घर रवाना हुये, चोर ने रास्ते में घेर लिया और कहा कि या तो जो तुम्हारे पास माल है दे दो, नहीं तो उस आदमी का पता बताओ कि जिसके शरीर पर करोड़ों का माल है, जिसकी चर्चा तुमने अभी की थी। पण्डितजी घबरा गये उन्होंने पीछा छुड़ाने के लिये कहा कि वह आदमी जमुना किनारे जंगल में गायें चराता है व बंसी बजाता है। बस चोर पण्डितजी को छोड़ जमुना किनारे, खोज में चल दिया व इधर-उधर ढूँढ़ने लगा। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते पाँच-छह दिन बीत गये परन्तु कहीं पता नहीं लगा। भूख से पीड़ित व हताश होकर बैठ गया। थोड़ी देर बाद भगवान कृष्ण आभूषण युक्त (जैसा पण्डितजी ने कहा था) गोपों के झुण्ड में नजर आये उनको देखते ही चोर प्रसन्न हो गया और हाथ में डण्डा लेकर भगवान पर लपका। भगवान उसका मतलब समझ गये, उन्होंने पूछा "तू कौन है ? यहाँ किसलिये आया है ?" उसने कहा—"मैं चोर हूँ, जो तुमने आभूषण पहने हैं, उनको मैं चुराने आया हूँ।" भगवान ने वहीं पास में खजाना बतला दिया कि तुझसे जितना माल उठे, उतना ले जा। बस चोर प्रसन्न होकर उससे जितना धन उठा गठरी में बाँधकर घर ले आया। वह पण्डित को इनाम देने के लिये आया और कहने लगा कि पण्डितजी साहूकार तो अच्छा मालदार बतलाया। पण्डितजी आश्चर्य में डूब गये और कहने लगे कि भाई वह साहूकार नहीं है वह भगवान कृष्ण थे। उनके दर्शन हमें भी कराओ बस पण्डितजी चोर के पीछे हो लिये, वह वहाँ जाकर छिप गये। थोड़ी देर बाद चोर को भगवान दीख गये परन्तु पण्डितजी को नहीं दीखे, तब चोर भगवान से प्रार्थना करने लगा कि प्रभो आप पण्डितजी को क्यों नहीं दर्शन देते ? भगवान कहने लगे कि जिस प्रकार तेरा दृढ़ विश्वास है वैसा पण्डितजी का नहीं है इसलिये उनको दर्शन नहीं होते।

जिस प्रकार चोर ने पण्डितजी के कहने पर दृढ़ विश्वास कर लिया उसी प्रकार हर एक मनुष्य को चाहिये कि सन्त, महात्मा, विद्वान पुरुषों के विवेकयुक्त वचनों का नियम से पालन करें। उसको अवश्य इच्छित सफलता मिल सकती है। जो काम दृढ़ विश्वास व भावना से किया जाता है वह अवश्य ही फलीभूत होता है।

भूल से स्वर्ग पहुँचे

स्वर्ग में एक बार लोगों की भीड़ इकट्ठी हुई। उनसे धर्मराज ने कहा कि सब लोग एक प्रपत्र पर अपने जीवन में किये सभी अच्छे-बुरे कार्यों का विवरण लिखें, धर्म की कसौटी पर जिसके कार्य श्रेष्ठ समझे जायेंगे उन्हें ही वहाँ रखा जायेगा।

जब परीक्षा पत्रों की जाँच की गयी तो प्रायः सभी में कोई न कोई दोष निकला। किसी ने लिखा था मैंने जीवन भर तप किया है। कोई कह रहा था मैंने वेद-शास्त्रों का अध्ययन कर लोगों को सद्मार्ग पर चलने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का उपदेश दिया है। किसी का कहना था मैंने आजीवन व्रत-उपवास किये हैं। परन्तु उन सबमें एक व्यक्ति ऐसा भी था जिसने परीक्षा पत्र की सभी प्रविष्टियाँ अधूरी छोड़ दीं और लिखा—"मैं भूल से स्वर्ग में चला आया हूँ। मैं जाना तो नरक में चाहता था ताकि वहाँ के दीन-दुःखियों की सेवा कर सकूँ।" यम ने केवल एक इसी व्यक्ति को स्वर्ग के योग्य माना।

(१) स्वर्ग प्रवेश की योग्यता का आधार सेवा है। (अन्तिम)।

(२) अपने कर्तृत्व के आधार पर स्वर्ग का अधिकारी सिद्ध करने वालों को नहीं, स्वर्ग उन्हें मिलता है जो अपनी भूलों और दोषों को स्वीकार करते हैं।

ऐसा कपड़ा किस काम का

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के अनन्य भक्त मथुरा बाबू ने एकबार उन्हें बड़ा कीमती वस्त्र लाकर दिया। उसे पहनकर परमहंस देवी ध्यान में बैठ गये। ध्यान पूरा होने के बाद जब वे भगवती को दण्डवत प्रणाम करने लगे तो प्रणाम करते समय उनके मन में क्षण भर को यह विचार उठा कि कहीं मूल्यवान कपड़े में धूल न लग जाये।

बाद में आत्मनिरीक्षण के समय उन्हें इस विचार का स्मरण आया तो उन्होंने निश्चय किया कि ध्यान में बाधक इस मूल्यवान वस्त्र को पहनना नहीं चाहिए और उन्होंने वह वस्त्र वापस कर दिया।

(१) कीमती वस्त्र लोकवैभव सहज साधना में बाधक।

(२) कोई भेंट देता है इसलिये कुछ भी स्वीकार करना उचित नहीं।

(३) भूल का सुधार तुरन्त किया जाय।

सच्ची शान्ति कैसे प्राप्त हो ?

मिथिला नगरी के महानन्द परिव्राजक ने जीवन के तीन पन कठिन तपश्चर्या में बिताये। जप, तप, आसन, प्राणायाम, स्वाध्याय, यज्ञ, कीर्तन, मार्जन, तर्पण करते-करते असंख्य सिद्धियाँ करतलगत कर लीं। असाधारण क्षमता वाले मुनि महानन्द की ख्याति चन्द्रमा के प्रकाश की तरह विकसित होने लगी। सैकड़ों व्यक्ति उनकी सिद्धियों का लाभ पाने लगे। सैकड़ों व्यक्ति प्रतिदिन आश्रम पहुँचते और श्रीचरणों में सिर रखकर महासुख अनुभव करते, किन्तु मुनि का अन्तःकरण स्थिर न था। सिद्धियों ने उनकी तृष्णा तो बढ़ा दी पर वह शान्ति, वह स्थिरता न मिली जिसके लिए मुनि ने घर, परिवार और स्नेहियों, संबन्धियों का साथ छोड़ा था।

एक दिन महानन्द इसी दुःख से भरे अपनी कुटिया से निकले। एक गाँव की ओर चल पड़े। वे गाँव में पहुँचे ही थे कि किसी के कराहने का स्वर सुनाई दिया। कोई बीमार था, देखने वाला कोई न था, बड़ी पीड़ा बढ़ गई थी, उस व्यक्ति की दर्द भरी कराह मुनि के हृदय में उतर गई, उन्होंने बीमार की रात-भर सेवा की। दवा दी, पाँव दाबे, बिस्तर बदले, टट्टी और पेशाब धोया। चौथे पहर जब उसे नींद आई मुनि आश्रम लौटे।

आज न उन्होंने संध्या की, न प्राणायाम और निदिध्यासन भी नहीं किया किन्तु तो भी उनके अन्तःकरण में अपूर्व शान्ति, स्थिर उत्फुल्लता, अबाध सुख निर्झर की भाँति झर रहे थे। महानन्द को बोध हुआ कि तप-साधना द्वारा अर्जित क्षमता का सही उपयोग न हो पाने से मन अशान्त था और अपनी साधना का अगला चरण इसी को मानकर अविरल शान्ति पायी।

(१) तप साधना का लाभ यश आदि नहीं आन्तरिक सन्तोष है।

(२) तप साधन है साध्य नहीं उसे कर्म से सार्थक बनाया जाता है।

स्वर्ग का अधिकार

मरने के बाद एक व्यक्ति की आत्मा को मृत्युदूत धर्मराज के सामने ले पहुँचे। दूतों ने बताया कि यह एक बड़ा महात्मा है। भरी युवावस्था में अपने माता-पिता और स्त्री-बच्चों को छोड़कर यह जंगल में चला गया और जीवन भर तप करता रहा।

धर्मराज ने कहा—"कर्त्तव्यों को त्यागकर कोई व्यक्ति धर्मात्मा नहीं बन सकता। परिवार के लोगों के साथ विश्वासघात करके इसने अधर्म ही कमाया, ऐसा भजन किस काम का जो कर्त्तव्यों को भुलाकर किया जाय। इसे पुनः धरती पर भेजो और कर्त्तव्य पालन के साथ भजन करने का आदेश करो, तभी इसे स्वर्ग में स्थान मिलेगा।"

यमदूतों ने एक-दूसरे व्यक्ति की आत्मा उपस्थित की और कहा—"यह व्यक्ति बड़ा कर्त्तव्य-परायण है। काम को ही सब कुछ समझता है। इसकी स्त्री बीमार पड़ी और मर गई, पर यह उसकी कुछ भी परवाह न करके अपने कर्त्तव्य में ही लगा रहा।"

धर्मराज ने कहा—"ऐसे हृदयहीन का स्वर्ग में क्या काम ? भावनापूर्वक किया गया कर्त्तव्य ही प्रशंसनीय हो सकता है। जिसे अपने नैतिक कर्त्तव्यों का ज्ञान नहीं, उसकी शारीरिक दौड़-धूप क्या महत्व रखेगी ? इसे पृथ्वी पर भेजो और कहो कि भावनापूर्वक जीवन जिए और दूसरों से प्रेम करना सीखे तभी उसे स्वर्ग में स्थान मिलेगा।"

एक तीसरे व्यक्ति की आत्मा लाई गई। यमदूतों ने कहा—"यह एक साधारण गृहस्थ है। सदा आस्तिक रहा, पवित्र जीवन जिया, प्रेमपूर्वक परिवार को सुविकसित किया और दूसरों के उत्थान के लिये निरन्तर प्रयत्न करता रहा।" धर्मराज ने कहा—"स्वर्ग ऐसे ही लोगों के लिये बनाया गया है, इसे आदरपूर्वक ले जाओ और आनन्दपूर्वक वहाँ रहने की व्यवस्था कर दो।"

पवित्र जीवन जीने वाला, प्रेमी-स्वभाव का परमार्थ परायण कर्तव्यनिष्ठ साधक ही स्वर्गीय आनन्द का अधिकारी है।

सबका पालनहार भगवान

एक राजा को यह अभिमान था कि मैं ही राजा हूँ और सब जगत् का पालक हूँ, मनु आदि शास्त्रकारों ने व्यर्थ विष्णु को जगत् पालक कहकर शास्त्रों में घुसेड़ दिया है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

एक बार एक संन्यासी शहर के बाहर एक पेड़ के नीचे जा बैठा। लोग उसकी शान्तिप्रद मीठी-मीठी बातें सुनने के लिए वहाँ जाने लगे। एक दिन राजा भी वहाँ गया और कहने लगा कि मैं ही सब लोगों का पालक हूँ। यह सुनकर सन्त ने पूछा—"तेरे राज्य में कितने कौए, कुत्ते और मकोड़े हैं ?"

राजा चुप हो गया।

सन्त ने कहा—"जब तू यही नहीं जानता तो उनको भोजन कैसे भेजता होगा ?" राजा ने लज्जित होकर कहा—"तो क्या भगवान कीड़े-मकोड़े को भी भोजन देते हैं ? यदि ऐसा है तो मैं एक कीड़े को डिबिया में बन्द करके रखता हूँ, कल देखूँगा भगवान इसे कैसे भोजन देते हैं ?" दूसरे दिन राजा ने सन्त के पास आकर डिबिया खोली तो वह कीड़ा चावल का एक टुकड़ा बड़े प्रेम से खा रहा था। यह चावल डिबिया बन्द करते समय राजा के मस्तक से गिर पड़ा था। तब उस अभिमानी ने माना कि भगवान ही सबका पालक है।

परिजनों के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह करते हुए यह अहंकार नहीं करना चाहिए कि हम उनका पालन करते हैं। वस्तुतः सबका पालक और रक्षक तो भगवान ही है।

श्रद्धा की साधना

माँ ने कहा—"बच्चे अब तुम समझदार हो गये हो। स्नान कर लिया करो और प्रतिदिन तुलसी के इस वृक्ष में जल भी चढ़ाया करो। तुलसी की उपासना की हमारी परम्परा पुरखों से चली आ रही है।"

बच्चे ने तर्क किया—"माँ तुम कितनी भोली हो ? इतना भी नहीं जानतीं कि यह तो पेड़ है ? पेड़ों की भी कहीं पूजा की जाती है। इसमें समय व्यर्थ खोने से क्या लाभ है ?"

"लाभ है मुन्ने ! श्रद्धा कभी निरर्थक नहीं जाती। हमारे जीवन में जो विकास और बौद्धिकता है, उसका आधार श्रद्धा ही है। श्रद्धा छोटी उपासना से विकसित होती है और अन्त में जीवन को महान् बना देती है, इसलिये यह भाव भी निर्मूल नहीं।"

तब से विनोबा भावे जी ने प्रतिदिन तुलसी को जल देना शुरू कर दिया। माँ की शिक्षा कितनी सत्य निकली इसका प्रमाण अब सबके सामने है।

(१) महानता के लिये श्रद्धा अनिवार्य है।

(२) श्रद्धा विकास के लिए भी प्रयास करना चाहिए।

अल्लाह की मर्जी में अपनी मर्जी

कारूँ को अल्लाह ने बहुत बड़ा खजाना दिया और कहा कि इस दौलत को वह नेकी में खर्च करे।

कारूँ इस दौलत को पाकर फूला न समाया, उसने बिरादरी वालों से कहा—"देखो मेरा हुनर, मैं हूँ जो कमाता हूँ और उड़ाता हूँ।"

लोग क्या कह सकते थे, कारूँ उस दौलत को बेहिसाब उड़ाता रहा और राग-रंग करता रहा।

बहुत दिन बीत गये। खजाना खर्च होता रहा। अल्लाह ने उसे देखा और बहुत दुःख माना।

ऐसा हुआ कि जमीन हिली और कारूँ का मकान मय बची दौलत के धँस गया। बेचारा चिल्लाया तो बहुत पर उसे किसी से मदद न मिल सकी और खुदा के कहर से नजात न पा सका।

कारूँ की तरह हुनरमन्द बनने की उधेड़बुन में लगे हुए लोगों ने अपना इरादा बदल दिया और सोचा कि हमें अल्लाह की मर्जी के ऊपर अपनी मर्जी नहीं रखनी चाहिए।

मनुष्य को दी गयी परमात्मा की विभूतियाँ सदुद्देश्यों के लिए हैं। उनके दुरुपयोग का दुष्परिणाम विनाशकारी ही सिद्ध होता है।

बिना गये हज कबूल

हज यात्रा पूरी करके एक दिन अब्दुला बिन मुबारक काबा में सोये हुए थे।

सपने में उन्होंने दो फरिश्तों को आपस में बातें करते देखा। एक ने दूसरे से पूछा—"इस साल हज के लिये कितने आदमी आये और उनमें से कितनों की दुआ कबूल हुई ?"

जवाब में दूसरे फरिश्ते ने कहा—"यों हज करने को ४० लाख आये थे। पर इनमें से दुआ किसी की कबूल नहीं हुई है, इस साल दुआ सिर्फ एक की कबूल हुई है और वह भी ऐसा है जो यहाँ नहीं आया।"

पहले फरिश्ते को बहुत अचम्भा हुआ। उसने पूछा—"भला वह कौन खुशनसीब है जो यहाँ आया भी नहीं, पर उसकी हज कबूल हो गई ?"

दूसरे फरिश्ते ने पहले को बताया—"वह है दमिश्क का मोची, अली बिन मूफिक।"

उस पाक हस्ती को देखने के लिए अब्दुला बिन मुबारक अगले ही दिन दमिश्क के लिये चल पड़े और वहाँ उन्होंने मोची मूफिक का घर ढूँढ़ निकाला।

पूछा—"क्या तुम हज को गये थे ?"

यूफिक की आँखों में आँसू भर आये और सिर हिलाते हुए कहा—"मेरा मुकद्दर ऐसा कहाँ जो हज को जा पाता। जिन्दगी भर की मेहनत से ७०० दिरम उस यात्रा के लिए जमा किये थे। पर एक दिन मैंने देखा पड़ोस के गरीब लोग पेट की ज्वाला बुझाने के लिए वह चीजें खा रहे थे, जिन्हें खाया नहीं जा सकता। उनकी बेबसी ने मेरा दिल हिला दिया और हज के लिए जो रकम जमा की थी सो उन मुफलिसों को बाँट दी।"

दीन-दुःखियों की सहायता ही सच्ची तीर्थयात्रा है।

लाभ-हानि से परे

पुजारी नियत समय पूजा करने आता और आरती करते-करते वह भाव-विह्वल हो जाता। घर आते ही वह अपनी पत्नी-बच्चों के प्रति कर्कश व्यवहार करने लगता।

एक दिन उसका नन्हा बच्चा भी साथ लगा चला आया। पुजारी स्तुति कर रहा था हे प्रभु तुम सबसे प्यार करने वाले, सब पर करुणा लुटाने वाले हो।

अभी वह इतना ही कह पाया था कि बच्चा बोल उठा—"पिता जिस भगवान के पास इतने दिन रहने पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी आप करुणा और प्यार करना न सीख सके, उस भगवान के पास रहने न रहने से क्या लाभ ?" पुजारी को अपनी भूल मालूम पड़ गई, वह उस दिन से आत्मनिरीक्षण व आत्मसुधार में लग गया।

भगवान के गुणों का कीर्तन ही नहीं उन्हें जीवन में उतारने का प्रयास भी करना चाहिए।

एकान्त नहीं मिला

आचार्य उपकौशल को अपनी पुत्री के लिये योग्य वर की खोज थी। उनके गुरुकुल में कई विद्वान ब्रह्मचारी थे, किन्तु वे कन्यादान के लिए ऐसे सत्पात्र की खोज में थे, जो विकट से विकट परिस्थितियों में भी आत्मा को प्रताड़ित न करे। परीक्षा के लिये उन्होंने सब ब्रह्मचारियों को गुप्त रूप से आभूषण लाने को कहा, जिसे माता-पिता क्या, कोई न जाने।

सब छात्र चोरी से कुछ न कुछ आभूषण लेकर लौटे आचार्य ने वे आभूषण संभालकर रख लिये। अन्त में वाराणसी के राजकुमार ब्रह्मदत्त खाली हाथ लौटे। आचार्य ने उनसे पूछा—"क्या तुम्हें एकान्त नहीं मिला ?" ब्रह्मदत्त ने उत्तर दिया—"निर्जनता तो उपलब्ध हुई पर मेरी आत्मा और परमात्मा तो देखते ही थे, चोरी को।" बस आचार्य को वह सत्पात्र मिल गया, जिसकी उन्हें खोज थी।

(१) ईश्वर को सर्वत्र विद्यमान देखने वाला कभी अनुचित कार्य नहीं कर सकता।

(२) अनुचित कार्य, चाहे जिसने भी आदेश दिया हो, नहीं करना चाहिए (गुरु की आज्ञा होने पर भी न करना)।

सोने का थाल

काशी विश्वनाथ मन्दिर में एक बार शिवरात्रि के दिन आकाश से एक सोने का थाल उतरा। उसमें लिखा था कि शंकर भगवान में जिसका सच्चा प्रेम होगा, उसी को यह थाल मिलेगा। काशीराज ने ढिंढोरा पिटवाकर बहुतेरे लोगों को इकट्ठा किया और सच्चे प्रेमी का आह्वान किया—

सर्वप्रथम एक शास्त्रीजी सामने आये। उन्होंने कहा—"मैं नित्य रुद्राभिषेक करता हूँ और दर्शन करने के बाद ही भोजन करता हूँ। अतएव थाल मेरे हाथ में दीजिये।" थाल शास्त्रीजी के हाथ में आते ही पीतल का हो गया। इससे शास्त्रीजी लजा गये। इसके बाद काशीराज स्वयं आये और कहने लगे—"मैंने विश्वनाथ जी पर सोने का कलश सच्चे प्रेम से चढ़ाया था और शिवरात्रि को दर्शन करने के लिये सच्चे भाव से आया हूँ।" राजा के हाथ रखने पर थाल लोहे का हो गया। इससे वे भी शरमा गये। तदन्तर एक बड़े सेठजी आये और कहा—"विश्वनाथ जी की जलधारी मैंने ही बनवायी है। फर्श पर रुपये मैंने ही जड़वाये हैं और हजारों कोस की दूरी से प्रेमवश मैं यहाँ आया हूँ। इसलिए थाल का वास्तविक अधिकारी मैं हूँ।" उसे देने पर भी थाल का वही हाल हुआ। हजारों थाल के इच्छुक निराश हो गये।

उसी समय एक किसान, जो बहुत समय से श्री विश्वनाथ जी के दर्शन का इच्छुक था, किन्तु पैसा पास न होने से प्रायः खेतों में काम पर लगा रहता, इसलिए नहीं आ सकता था। लेकिन आज वह बड़े परिश्रम से कुछ पैसे बचाकर और खाने के लिए सत्तू बाँधकर आ रहा था। रास्ते में एक जगह भूख-प्यास से तरसता एक मनुष्य पड़ा था, उसकी ओर किसी का ध्यान ही नहीं जा रहा था क्योंकि बहुत-से लोगों को सोने का थाल लेना था, तब भला उस दरिद्रनारायण को कौन पूछता ? इस किसान ने उस गरीब को लोटे से पानी पिलाया, सत्तू खाने को दिया और पास की धर्मशाला में पहुँचा आया। इसके बाद वह किसान काशी विश्वनाथ के मन्दिर में गया। महादेवजी की पूजा करके जब वह बाहर निकल रहा था, तब किसी ने हँसकर कहा—"महादेवजी का सच्चा भक्त आया है। इसलिए थाल इसी को दे दो।"

उसके ऐसा कहते ही थाल पुजारी के हाथ से सरका और उस किसान के हाथ में सुवर्ण रंग में चमकने लगा। शास्त्री, राजा, सेठ, पुजारियों को आश्चर्य हुआ।

दरिद्रनारायण की सेवा ही सच्ची ईश्वर उपासना है।

धर्म का मर्म

एक साधु अपने शिष्यों के साथ एक मेले में जा रहे थे। एक स्थान पर बैठे कुछ बाबा माला फेर रहे थे। परन्तु वे बार-बार सामने बिछी चादर पर देख लेते कि लोगों ने कितने पैसे दान में दिये हैं, उन्हें देखकर साधु हँस पड़े, आगे एक तपस्वी शीर्षासन लगाये खड़े थे, उन्हें देखकर साधु फिर हँसे और आगे एक पण्डितजी भागवत कह रहे थे उनके आगे चेलों की जमात बैठी थी। उन्हें देखकर साधु फिर खिल-खिलाकर हँसे। उससे आगे एक कैम्प में एक डॉक्टर एक रोगी की परिचर्या में लगे थे। यह देखकर साधु की आँखों में आँसू आ गये।

आश्रम लौटने पर एक शिष्य ने पहले तीन स्थानों पर हँसने और चौथे पर रोने का कारण पूछा, तो उन्होंने उत्तर दिया—"बेटा आज माला, आसन, प्राणायाम और कथा-भागवत् को ही धर्म समझकर अधिकांश लोग ढोंग कर रहे हैं। यह देखकर हँसी आ गई, जबकि भगवान का काम करने वाला एक ही डॉक्टर दीखा, यह देखकर दुःख हुआ कि लोग धर्म के वास्तविक अर्थ को न जाने कब समझेंगे ? सच्चा धर्म संसार की सेवा और उसे सुधारना हैं, जप-तप नहीं।"

धर्म प्रदर्शन की नहीं साधना की कला है।

मेरा रक्षक भगवान

गाँधीजी उन दिनों अफ्रीका में थे। उनके साथ जर्मनी के निवासी कैनल बैक रहते थे। दोनों में अच्छी मित्रता थी। वहाँ के पठानों को गाँधीजी की नीति पसन्द न आई तो वह नाराज हो गये।

कैनल बैक को ऐसा अनुभव हुआ कि यह पठान कभी भी गाँधीजी पर आक्रमण कर सकते हैं अतः उन्होंने गाँधीजी की सुरक्षा हेतु एक रिवाल्वर की व्यवस्था कर ली। गाँधीजी के साथ कैनल बैक को कहीं जाना होता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वह अपने कोट की जेब में रिवाल्वर छिपाकर ले जाते, गाँधीजी को इसका पता लगा तो उन्होंने उनके साथ रिवाल्वर रखने का कारण पूछा।

कैनल बैक बोले, "मुझे ज्ञात हुआ है कि कुछ पठान आपसे रुष्ट हो गये हैं। पता नहीं कब आप पर आक्रमण कर दें।"

बापू बोले, "मेरी रक्षा का दायित्व ईश्वर के हाथ में था और अब आप उसे अपने हाथ में ले रहे हैं। यह भी खूब रही। आपने मेरे प्रति मैत्री और आत्मीयता का भाव रखने के कारण ईश्वर के अधिकार को छीनने का साहस किया।"

कैनल बैक अब क्या कहते ? उन्होंने रिवाल्वर निकालकर बाहर फेंक दिया।

अध्यात्मवादी को न कहीं भय होता है, न सुरक्षा की चिन्ता।

ईश्वर की इच्छा

विक्रमादित्य के इस प्रश्न पर सभासदों की विभिन्न रायें थीं कि सज्जनता बड़ी है या ईश्वर शक्ति। कई दिन तक विचार-विमर्श होने पर भी निर्णय न निकल सका।

कुछ दिन बीते। राजा एक दिन परिभ्रमण के लिए निकले। दुर्भाग्य से मार्ग में किसी आखेटक जाति के उन पर आक्रमण के फलस्वरूप उनका शेष सहयोगियों से संबंध टूट गया। वे निविड़ वन में भटक गये। जंगल में प्यास के मारे राजा का दम घुटने लगा। कहीं पानी दिखाई नहीं दे रहा था। किसी तरह एक साधु की पर्णकुटीर तक पहुँचे। साधु समाधि मग्न थे। वहाँ पहुँचते-पहुँचते महाराज मूर्छित होकर गिर पड़े। गिरते-गिरते उन्होंने पानी के लिये पुकार लगाई।

कुछ देर बाद जब मूर्च्छा दूर हुई तो महाराज विक्रमादित्य ने देखा, वही सन्त उनका मुँह धो रहे, पंखा झल रहे और पानी पिला रहे हैं। राजा ने विस्मय से पूछा—"आपने मेरे लिये समाधि क्यों भंग की, उपासना क्यों बन्द कर दी ?" सन्त मधुर-वाणी में बोले—"वत्स ! भगवान की इच्छा है कि उनके संसार में कोई दीन-दुःखी न रहे। उनकी इच्छापूर्ति का महत्व अधिक है।" इस उत्तर से उनका का पूर्ण समाधान हो गया।

सेवा और सज्जनता भी शक्ति-साधना का अंग है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मबोध और आत्मविस्तार

न मनुष्यात् श्रेष्ठतरम् हि किंचित्

देवर्षि नारद की स्थिति कुछ दिनों से अत्यन्त विचित्र हो गयी थी। मन की व्याकुलता बढ़ती ही जा रही थी। विराट् सृष्टि और उससे जुड़े जड़-चेतन घटकों पर जितना विचार करते उतना ही मन का असन्तोष बढ़ता जा रहा था। यह प्रश्न बारम्बार मन-मस्तिष्क को झकझोर रहा था कि इस वृहद् सृष्टि में सबसे बड़ा व सबसे महान् कौन है ? प्रश्न अत्यन्त गम्भीर था। उत्तर के लिए वे कुछ समय के लिए एकान्त स्थान में कोलाहल से दूर तत्व साधना के लिए चल पड़े।

लोक-लोकान्तरों में उनका आवागमन रुक गया। समय-समय पर अन्य लोकों के समाचार, जो उनके माध्यम से मिलते रहते थे, वे मिलने बन्द हो गये। यह सूचना भगवान विष्णु को मिली। अपने एक दूत को उन्होंने नारद को ढूँढ़ने तथा साथ लेकर आने के लिए भेजा। दूत ने अपनी अन्तर्दृष्टि से देखा कि महर्षि नारद विष्णुलोक से सुदूर एक निर्जन एकान्त क्षेत्र में तप-साधना कर रहे हैं। वहाँ पहुँचकर विनयपूर्वक दूत ने महर्षि को भगवान विष्णु का सन्देश सुनाया कि आपको देवाधिदेव ने शीघ्र ही बुलाया है।

विष्णुलोक में पहुँचते ही उनकी हालत देखकर अन्तर्यामी लक्ष्मीपति को यह समझते देर न लगी कि नारद किसी समस्या से अति चिन्तित हैं। पूछने पर महर्षि ने बताया—"देव ! कुछ दिनों से मेरे मन में बारम्बार यह प्रश्न उठ रहा है कि इस जगत् में सबसे महान् कौन है ? मेरी चिन्ता का यही कारण है। आप सर्वज्ञ हैं। समाधान करके मेरी व्याकुलता दूर करें।"

भगवान विष्णु बोले—"नारद ! प्रत्यक्ष रूप से तो यह पृथ्वी ही सबसे बड़ी दिखाई देती है, पर वह भी समुद्र से घिरी हुई है। अतएव वह भी बड़ी नहीं है। रही बात समुद्र की, सो उसे अपनी तप शक्ति से एक बार अगस्त्य मुनि पी गये। अतः वह भी बड़ा कैसे हो सकता है ? इससे तो अगस्त्य मुनि ही सबसे बड़े हुए। पर देखा जाता है कि अनन्त आकाश में एक सीमित सूचिका सदृश भाग में वे मात्र एक जुगनू की तरह चमक रहे हैं। विराट् आकाश के समक्ष तो उनका कुछ भी विस्तार नहीं है। इससे वे भी बड़े नहीं हो सकते। उनसे तो असंख्यों गुना अधिक बड़ा आकाश है। पर एक बार तो वामनावतार ने समस्त आकाश को केवल एक ही पग में नाप लिया था। अतः आकाश की महानता भी संदिग्ध सिद्ध होती है। उसकी तुलना में तो वामनावतार की सामर्थ्य अधिक जान पड़ती है, परन्तु उनका अंगुष्ठ मात्र स्वरूप हर मनुष्य के अन्तःकरण में आत्मा के रूप में विद्यमान है। जिसमें स्वयं ईश्वरीय सत्ता बीज रूप में मौजूद है, उससे बढ़कर महान् और कौन हो सकता है ? उस बीज को विकसित करके आत्मा परमात्मा की स्थिति में पहुँच सकती है। उन विशेषताओं से सुसम्पन्न बन सकती है, जो परम सत्ता में है। अस्तु हे नारद ! मनुष्य इस सृष्टि में सबसे महान् है।

देवर्षि नारद को यथार्थता का बोध हुआ, व्यग्रता समाप्त हुई। जो ज्ञान उपलब्ध हुआ उसे भू-लोकवासियों को हृदयंगम कराने के लिए वे तुरन्त चल पड़े।

वेताल का आत्मबोध

जैसा नाम वैसा ही गुण। उनका समूचा जीवन श्मशानों में ही बीता। कभी तान्त्रिक साधनाओं में तो कभी रणभूमि में। अवन्तिका की सेना उनके बिना सूनी थी। सम्राट विक्रमादित्य उनके बिना स्वयं को विवश महसूस करने लगे। प्रश्न कूटनीतिक चक्रव्यूह का हो या सेना की व्यूह रचना का उनकी बुद्धि चुटकी बजाते ढेरों समाधान प्रस्तुत कर देती। उनकी कोप-चण्डी शत्रु-शिविरों को ऐसे सूना कर देती थी, जैसे तेज तूफान में कटी हुई फसलें उड़ जाती हैं। वह सम्राट विक्रम के चतुर्दिक फहराने वाले यश ध्वज के दण्ड थे।

किन्तु आज विवशता को विवश करने वाला स्वयं को विवश अनुभव कर रहा था। जिसकी कूटनीति के आगे बड़े-बड़े सम्राट सिर झुकाते थे, अपनी कूटनीति से आज वह आप ही पराभूत हो उठा था। कई दिन से उसके मस्तिष्क में निरन्तर एक ही विचार उठ रहा था, "यह षड्यंत्र, ये कुचक्र किसके लिए किए, जीवन भर जिन पापों का भार उठाए घूमा, उससे क्या शरीर अमर हो गया ?" आज पता चला कि दूसरों को पराजित और स्वयं को विजयी मानने वाला सर्वथा भूल में था। मनुष्य से बढ़कर काल-पुरुष है, कोई कितना ही ऐंठे, अकड़ दिखाए पर काल-पुरुष को जीतना सदैव ही दुःसाध्य रहा। मृत्यु से कोई बच न पाया। जो अपने ही गोरखधन्धे में लगा रहा वह अन्ततः पछताया और हाथ मलता हुआ ही गया।

आज उसके विवेक चक्षु खुल गए थे। प्रज्ञा असत्य के घने आवरण को भेदकर सत्य का दिग्दर्शन, मूल्यांकन कर रही थी। सांसारिक मोह टूट गया, दम्भ भर गया। जीवनभर का दोष-दूषण उनकी आँखों के आगे नाच रहा था और उसके लिए वह पश्चाताप की आग में जल रहा था। बार-बार मन-मस्तिष्क में हथौड़े की चोटों की भाँति एक ही आघात लगता, तब क्यों न वर्तमान जीवन-क्रम को बदल डाला जाय ?

राजसी परिधान उतार फेंके उसने। साधारण वेशभूषा में, हाथ में लाठी और उत्तरीय वस्त्र कन्धे पर डाले। प्रातः पीयूष बेला में वह घर से बाहर निकल पड़ा। क्षिप्रा के पावन तट पर खड़े होकर वे अवन्तिका (उज्जयिनी) और भगवान महाकाल को प्रणाम कर पीछे मुड़कर बढ़ चले।

पर अभी बीस कदम ही बढ़े होंगे कि महाकवि कालिदास और बासन्तिका उधर से आते दिखाई दिए। उन्हें साधारण वेश-विन्यास में देखकर महाकवि को आश्चर्य हुआ पर इस महान् इन्द्रजालिक के लिए, उनके मन में असंभव की कुछ कल्पना न थी। तो भी पूछा अवश्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उन्होंने—"कहाँ चले वेताल भट्ट ? आज किस सम्राट का ज्योतिष बिगड़ा, किस पर शनि की दृष्टि गहरी हुई ? क्या मालवा पुनः रणभेरी बजाने जा रहे हैं ? पर छद्म नीति में तो बासन्तिका आपके साथ रहती आयी थी, आज आप अकेले कैसे ?" बासन्तिका भी उन्हें अकेले जाते देखकर भौंचक्की थी।

महाकवि की ओर उस स्वाभिमानी वेताल ने ऐसे देखा, जैसे वास्तविक विजय के लिए वह आज ही निकला हो। उसने कहा—"आत्मप्रदेश का शासक मन बहुत कुटिल हो गया है कविवर ! अब तो अन्तिम और निर्णायक युद्ध अपने आप से ही होगा। देखता हूँ, विजय जीदन की कुटिलताओं को मिलती है या आत्मशोध की आकांक्षा को ?"

कालिदास ने पूछा—"किन्तु आर्य प्रवर ! आपके बिना इस अवन्तिका का क्या होगा ?" "यह सब मोह है—कविश्रेष्ठ ! मनुष्य अहंकारवश ऐसा सोचता है और भावी-पीढ़ी की प्रगति में बाधक बनता है।"

कालिदास और कुछ न बोल सके। वेताल आगे बढ़ गए और उधर सारे देश में खबर फैल गई, महातांत्रिक, राज्य के महामात्य वेताल भट्ट वानप्रस्थ लेकर समाज सेवा हेतु समर्पित हो गए।

सोना बनाने की विद्या

मगध देश का एक राजा था। उसका नाम था चित्रांगद। वह अपनी प्रजा के सुख-दुःखों का पता लगाने के लिए राज्य भर में भ्रमण करने निकला। पुराने-जमाने में यात्रा के आज जैसे साधन न थे। रेल और मोटरें थी नहीं, पक्की सड़कें भी कम थीं। दूर देश जाने के लिए घने जंगलों को पार करना पड़ता था। राजा अपनी यात्रा करते हुए एक बड़े जंगल से होते हुए निकले।

दिनभर की यात्रा से सब लोग थक गये थे। वे कहीं विश्राम करने की फिक्र में ही थे कि सामने एक सुन्दर सरोवर दिखाई दी। चारों ओर हरियाली थी, सुन्दर पुष्प खिले हुए थे, पक्षियों के कलरव से वह स्थान बड़ा शोभायमान हो रहा था। इस रमणीक स्थान को देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुए और रात को वहीं डेरा डाल देने का हुक्म दे दिया। सब लोग अपनी थकावट मिटाने लगे।

पास में कुटी दिखाई दी। राजा ने नौकरों को पता लगाने भेजा—"देखो तो इस कुटी में कौन रहता है ?"

नौकर वहाँ पहुँचे। देखा कि एक महात्मा भगवान का भजन कर रहे हैं। नौकरों ने जो देखा था राजा को बता दिया। राजा ने सोचा इस एकान्त वन में भजन करने वाला साधु निश्चय ही धनाभाव के कारण कष्ट उठाता रहता होगा। हम आज इसके आश्रम में आये हैं, राजा का धर्म है कि अपने राज्य में महात्मा को कष्ट न होने दे। इसलिए इसे कुछ धन देना चाहिए।

राजा ने एक दूत के द्वारा महात्मा के लिए कुछ रुपये भेजे। नौकर, साधु के पास पहुँचे और हाथ जोड़कर कहा—"महाराज ! आज आपके आश्रम में इस मगध देश के राजा चित्रांगद आये हुए हैं। उन्होंने यह धन आपके लिये भेजा है।"

थैली को देखकर साधु मुसकराया और उसने धीमे स्वर में कहा—"यह धन किसी भूखे-नंगे को दे देना मुझे इसकी जरूरत नहीं है।" बार-बार आग्रह करने पर जब साधु ने यही उत्तर दिया तो दूत निराश लौट आया और साधु का उत्तर राजा को कह सुनाया।

राजा ने सोचा—"साधु को कदाचित अधिक धन की आवश्यकता होगी। इन थोड़े रुपयों को देखकर वह असंतुष्ट हुआ होगा इसीलिए उन्हें लौटा दिया है।" राजा ने दुबारा पाँच सौ रुपये भेजे, किन्तु साधु ने फिर वही उत्तर दिया। तीसरी बार एक हजार, चौथी बार दो हजार, पाँचवीं बार दस हजार रुपये राजा ने भेजे पर साधु टस से मस नहीं हुआ। उसने यही कहा—"मुझे रुपयों की कोई जरूरत नहीं है।"

अब तो राजा का कौतूहल बहुत बढ़ा और वे स्वयं साधु के पास चल दिये। राजा ने महात्मा को प्रणाम किया और पास में पड़ी हुई चटाई पर बैठ गये। चित्रांगद ने साधु से कहा—"भगवन् क्यों मेरा धन आप स्वीकार नहीं करते ? जीवन निर्वाह को उपयोगी वस्तुएँ धन द्वारा प्राप्त होती हैं। इससे आपके निर्वाह की आवश्यकताएँ पूरी होंगी धन को ग्रहण करके मुझे कृतार्थ कीजिए।"

साधु ने सहज स्वाभाविक हँसी हँसते हुए कहा—"राजन् ! धन लौटाने से मेरा तात्पर्य यह नहीं था कि आपका धन कम है या उसमें कुछ दोष हैं। बात केवल इतनी-सी है मुझे तुम्हारे धन की आवश्यकता नहीं थी। मेरी जरूरत के लिए मेरे पास धन है।" राजा ने आश्चर्य से पूछा—"आपकी कुटी में तो मुझे कुछ भी दिखाई नहीं देता, फिर वह धन कहाँ है ?"

महात्मा राजा का कल्याण करना चाहते थे। साधुओं का स्वभाव ही दूसरों का कल्याण करने का होता है। अपनी अन्तर्दृष्टि से राजा की वर्तमान मनोदशा परख ली और उसको मार्ग तक ले पहुँचने की युक्ति भी सोच ली। उन्होंने राजा के कान के पास मुँह ले जाकर चुपके से कहा—"मैं रसायनी विद्या जानता हूँ—ताँबे से सोना बना लेता हूँ।" राजा चुपचाप वापस चले आये।

चित्रांगद को रात भर नींद नहीं आई। वह सोचता रहा, किसी प्रकार मैं रसायनी विद्या सीख जाऊँ तो कैसा अच्छा हो ? धन की मुझे किसी प्रकार की कमी न रहे। खजाने सोने से भरे रहें। वैभव हजारों गुना बढ़ जाय और पृथ्वी भर का स्वामी हो जाऊँ। तरह-तरह के सुनहले दृश्य उसके मस्तिष्क में घूमने लगे। किसी भी प्रकार हो इस विद्या को सीखूँ। राजा का मन व्याकुल हो रहा था। कब सबेरा हो कब साधु के पास पहुँचूँ ? एक-एक क्षण वर्ष की बराबर बीत रहा था। बड़ी मुश्किल से उसने रात काटी। बड़े तड़के नित्यकर्म से निवृत्त होकर राजा कुटी की ओर लपका।

महात्माजी भजन में मग्न बैठे हुए थे। राजा उनके चरणों में लोट गया। साधु ने उसे उठाकर बिठाया और कुशल समाचार पूछा। राजा ने कहा—"भगवन् किसी प्रकार मुझे भी वह रसायनी विद्या सिखाइये, जिससे सोना बना सकूँ। इससे मेरा जीवन सफल हो जायगा।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधु अपनी युक्ति की सफलता पर मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए और कहा—"राजन् ! मैं तुम्हें सिखा दूँगा। परन्तु इसके लिए कुछ समय चाहिए। तुम मेरे पास नित्य आया करो, एक वर्ष के पश्चात् तुम्हें वह विद्या सिखा दूँगा।" राजा ने यह स्वीकार कर लिया और अपने रहने की ऐसी व्यवस्था कर ली कि नित्य साधु के पास आकर उनसे सत्संग कर सके।

उच्च आत्माएँ मुख से कहकर या शरीर से कार्य करके ही नहीं वरन् आध्यात्मिक बल से भी सम्बन्ध रखने वालों में विचित्र परिवर्तन कर देती हैं। राजा, साधु के निकटवर्ती वातावरण में बैठता और उनकी विचार गंगा में स्नान करके पवित्र हो आता।

यही क्रम नित्य चलने लगा। माया-ममता के द्वन्द्व उससे छूटने लगे और आत्मा के पवित्र स्वरूप का दर्शन करने लगा। सोना बनाना सीखने के लिए जो व्याकुलता थी, आध्यात्मिक शान्ति में परिणत होने लगी। राजा का मन भगवान के चरणों में रस लेने लगा। जैसे-जैसे दिन बीतते जाते थे, उसका परिवर्तन तेजी से बढ़ता जाता था।

पूरा एक वर्ष बीत गया। राजा अब स्वयं एक महात्मा, संसार का सच्चा अर्थ समझने वाला आदर्श त्यागी हो गया था। साधु ने राजा को उस दिन अपने निकट बिठाया और सिर पर हाथ फेरते हुए पूछा—"वत्स ! रसायनी विद्या सीखोगे ?"

राजा ने गुरु के चरणों में शीश झुका दिया और कहा प्रभो, अब तो मैं स्वयं रसायन बन गया। अब और क्या सीखने को बाकी रह गया। किसी नश्वर विद्या को सीखने की अब मुझे आवश्यकता नहीं है।

राजा सचमुच सच्ची रसायनी विद्या सीख गया था। सोने या लोहे के पहाड़ जमा करके उसे अब कुछ नहीं करना था।

जब सम्मोहन टूटा

इधर कई दिनों से उदासी, सन्ताप और व्यथा का बोझ बढ़ता ही जा रहा था। सिन्दूर-मिश्रित कर्पूर की आभा लिए उनके गोरे मुख पर पीड़ा के चिन्ह स्पष्ट थे। हूणों का नेता मिहिरकुल आँधी, तूफान, चक्रवात की तरह नगरों को उजाड़ता, फसलों को जलाता, क्षत-विक्षत मानव देहों को रौंदता बढ़ा चला आ रहा है। प्रत्येक मानव आज उद्विग्न है—फिर वे तो मालव सम्राट ठहरे। क्षण-क्षण, प्रतिक्षण आ रहे समाचार कानों में पिघला शीशा उँड़ेल देते। पूरा अस्तित्व चरमराकर रह जाता, किन्तु·····।

पता नहीं कौन अनजानी श्रृंखलाएँ उन्हें आबद्ध किए थीं ? न मालूम किस लौह दुर्ग में उनका शौर्य कैद था ? "धीरजं रखिए महाराज।" राजज्योतिषी भास्कर मुनि के शब्दों ने उन्हें चौंका दिया। "इस समय आप पर शनि की दृष्टि वक्री है, राहू द्वारा सीधे चंद्र स्थान को देखे जाने के कारण मनःसन्ताप स्वाभाविक है। ग्रहों के फेर ने किसे कष्ट नहीं दिया ? फिर आप पर तो इस समय ये मारक है। ऐसे में कहीं सुरक्षित स्थान में रहना ही उचित है। ग्रह शान्ति के उपायों का मैंने प्रबन्ध कर दिया है।"

राजज्योतिषी के शब्दों से, साथ चल रहे महामंत्री भानुमित्र कसमसाकर रह गये। महाराज की ज्योतिष पर अंधश्रद्धा उन्हें कभी नहीं रुचती थी, जबकि यशोवर्मा को ज्योतिष से अगाध लगाव था। कई ज्योतिषी उनके यहाँ आश्रय पाते और अपनी विद्या का चमत्कार भावी घटनाओं का पूर्वाभास कर दिखाते। इन चमत्कारों से फलित ज्योतिष में उनकी श्रद्धा बढ़ी। उन्हीं ज्योतिषियों में एक का कहना था कि सम्राट को कोई काम करने के पहले उसकी सफलता या असफलता को ज्योतिष के माध्यम से जान लेना चाहिए। अन्य ने भी इसका समर्थन किया। प्रस्ताव स्वीकृत हो जाने पर भविष्य में कोई भी काम करने से पहले ग्रहों का रुख तथा रेखाओं की स्थिति का अध्ययन किया जाने लगा।

की गईं भविष्यवाणियाँ सच होतीं या न होतीं, पर इस गुणा-भाग, जोड़-घटाव में इतना समय लगने लगा कि आवश्यक कार्यों में भी विलम्ब हो जाता। यहाँ तो शत्रु द्वारा आक्रमण होने पर मुकाबला न करने की सलाह दी जा रही थी। अपने सम्राट की उस अंध आस्था को देखकर अधीनस्थ अधिकारी और प्रजाजन बड़े खिन्न थे। समय पर काम न करने, भाग्य और दैव आश्रित रहने से कार्यों में आवश्यक दायित्व बोध-अनुभव करने की प्रवृत्ति में ह्रास होना स्वाभाविक था। पुरुषार्थ परायण महामंत्री इससे पूर्व भी जब-जब सम्राट को सावधान करते तब-तब उन्हें झिड़क दिया जाता था।

आज वह सूर्य की प्रथम रश्मि के साथ महाराज को लेकर घूमने निकले थे। भ्रमण के दौरान मार्ग में ही मिल गए राजज्योतिषी, भास्कर मुनि द्वारा आज की गई चर्चा को याद कर तथा सोचकर ही महामंत्री ने कड़वा-सा मुख बनाकर ऊपर की ओर देखा। पूर्व के आकाश में ऊषा की अरुण आभा दिखाई पड़ रही थी। जागरण के तप्त चुम्बन स्वरूप सूर्य भी धीरे-धीरे आ विराजे थे। प्रभाती की हिलोरें पृथ्वी के एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त तक धावा मार रही थीं।

समूची प्रकृति उल्लास में थी। चतुर्दिक फैले इस उल्लास से घिरे-अकेले महाराज विषादग्रस्त थे। उनके विषाद का कारण····· ? तीखी नजर से महामंत्री ने राजज्योतिषी की ओर देखा। फिर अपनी नजरें उस ओर से फेरकर महाराज को सचेत करते हुए बोले—"मिहिरकुल की सैनाएँ मथुरा से आगे बढ़ चुकी हैं।"

"ओह !" यशोवर्मा जैसे मूर्च्छा से जगे। तब तक राजज्योतिषी ने फिर अपनी बातों का नशा देना शुरू किया "मंत्री महोदय ऐसे कठिन समय में युद्ध की ओर प्रेरित कर रहे हैं, जब, राहू और शनि मारक हैं····· कितना भीषण होता है समय ? ज्योतिष विद्या से अनजान, क्या समझेंगे आप ?"

"कब तक भाग्य, ग्रह दोष, समय का फेर, वक्र दृष्टि में उलझे रहेंगे महाराज।" भानुमित्र ने जैसे भास्कर मुनि के कथन को अनसुना कर दिया। उनकी आवाज में जन-जन के मन की पीड़ा थी। हृदयवेदना से आकुल था। मन में जूझने, संघर्ष करने के लिए तूफान उमड़ रहा था। वे बोल उठे—"मथुरा के मन्दिर भस्मसात् हो गए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शत-सहस्र लक्षजनों की श्रद्धा के प्रतीक के रूप में अधिष्ठित देवमूर्तियाँ आज धूल में मिल गयी हैं। मार्ग के ग्राम तक खण्डहर हो गए। सतियों को सतीत्व की रक्षा के लिए कुओं, सरोवरों और चिता की शरण लेनी पड़ी। अबोध शिशु, पिशाचों के भालों पर उछाले गए। नृशंस आततायियों का अपार समुदाय उमड़ता चला आ रहा है अवन्ती की ओर। समस्त भारत भूमि की एकमात्र आशा मालव प्रान्त है और इस प्रान्त का प्रत्येक जन आपकी ओर देख रहा है।"

महामंत्री की बातें सम्राट यशोवर्मा की नसों में दौड़ रहे रक्त की संचार गति तेज कर रहीं थीं। रह-रह कर उनके अन्दर का जुझारू योद्धा खड़ा हो जाता, किन्तु शनि की वक्र दृष्टि व राहू के कोप का भय फिर उसे शिथिल कर देता। भास्कर मुनि पुनः महामंत्री की ओर देखकर इस तरह हँसे, जैसे उनकी बातें बहुत बचकानी हों, "ग्रह गति को न समझने के कारण लोग इसी तरह की बातें करते हैं। शनि का प्रभाव भगवान राम तक पर पड़े बिना नहीं रहा। चौदह वर्षों के वनवास' का यही कारण था। युधिष्ठिर और नल को अपना राज्य गँवाकर वन-वन भटकना पड़ा। बुध की महादशा में राहू की अन्तर्दशा का परिणाम है जो आप इस तरह की बातें कर रहे हैं।"

वे और कुछ कहते तभी तीनों की नजरें एक साथ उस किसान की ओर गईं जो सुन्दर बैलों की जोड़ी को हाँकते हुए कन्धे पर हल रखकर गीत गाता हुआ जा रहा था। अपने स्वभावानुसार ज्योतिषीजी की गणना चल पड़ी, कुछ जोड़ते-घटाते हुए बोले, "कहाँ जा रहे हो मित्र ? जिस ओर तुम्हारा खेत पड़ता है उस ओर तो आज दिशाशूल है। जाने पर हानि होने का डर है।"

"दिशाशूल क्या है ?" सचमुच में अनजान किसान पूछने लगा।

प्रश्न को सुनकर सम्राट और ज्योतिषी दोनों चकित रह गए। जैसे-तैसे उसे दिशाशूल का अर्थ समझाया गया। किसान बोला—"मैं तो हमेशा अपने काम पर जाता हूँ। आपके हिसाब से यदि प्रति सप्ताह दिशाशूल अलग-अलग होता है तो मुझे कभी का बरबाद हो जाना चाहिए था।"

"जरूर तुम्हारी किस्मत अच्छी है।" भास्कर मुनि बोल पड़े "जरा हाथ दिखाना तो।"

किसान ने अपने दोनों हाथ ज्योतिषी के आगे फैला दिये, पर हाथ इस तरह सामने किए गए कि हथेलियाँ जमीन पर रहें। अनगढ़ता पर झल्लाते हुए वह किसान पर बरस पड़े "मूर्ख ! इतना भी नहीं जानता। रेखाएँ हथेली की देखी जाती हैं।" किसान हँस पड़ा—"महाराज हथेली की रेखाएँ वे लोग दिखाते हैं जो किसी के सामने हाथ फैलाते हैं। मैं मालव हूँ। भगवान महाकाल का सेवक, हथेली की रेखाओं की क्या मजाल जो मेरे काम में आड़े आएँ। जब मैं हल चलाता हूँ तो ये सभी रेखाएँ चुपके से दुबक जाती हैं। फिर इन कामचोर रेखाओं को दिखाने से क्या लाभ ?"

स्तब्ध महाराज को सुनाते हुए मंत्री बोल उठे "देखा महाराज, आपने भगवान् महाकाल के अनुचर जड़ ग्रह पिण्डों की कृपा करुणा, गति-स्थिति की अपेक्षा नहीं किया करते। देवभूमि आज पुकार रही है, कालचक्र के अधीश्वर आज आपका आव्हान कर रहे हैं। शूर, सहायकों की अपेक्षा नहीं किया करता। सिंह कभी नहीं गिनता, गीदड़ों की संख्या कितनी है ? आपको भी निश्चिन्त होकर समय की पुकार सुननी चाहिए।"

"ठीक कहते हो भानुमित्र।" सम्राट का सम्मोहन टूट चुका था। इधर भानुमित्र भास्कर मुनि को समझा रहे थे राम को वन में शनि की वक्र दृष्टि नहीं ऋषियों के प्रति जगी भाव संवेदना ले गई थी। उनके कार्य के पीछे ग्रहों की स्थिति नहीं **निश्चिचरहीन करौं महि** की कठोर प्रतिज्ञा थी। नल और युधिष्ठिर के वन गमन के पीछे द्यूत का व्यसन था। भास्कर मुनि मौन थे। सत्य ने उन्हें निरुत्तर कर दिया। सम्राट की आँखें खुल चुकी थीं।

"जय महाकाल" के निनाद के साथ महाराज रण क्षेत्र की ओर चल पड़े। क्षण बीते, पहर बीता, पुरुषार्थ के स्वर गूँज उठे। सहस्रोंसहस्र कण्ठों से उठी इस गूँज से भाग्यवाद की बेड़ियाँ तड़-तड़ा गईं। भाग्य कण-कण हो धूलि में बिखर गया। "जय महाकाल।" यशोवर्मा का अश्व उड़ा जा रहा था। उड़े जा रहे थे उनके पीछे सहस्रों अश्व और उनकी संख्या बढ़ती जाती थी, बढ़ती ही जाती थी।

यह महायज्ञ था जिसमें मिहरकुल की आहुति दी जानी थी। अन्याय, अत्याचार, अनीतियों को भस्म होना था और भस्म होना था, उस भाग्य को जिसने अमृत पुत्र को ईश्वर के राजकुमार को भ्रम में डाल दिया था। पुरुषार्थ जागते ही, वह होकर ही रहा। युग के अविस्मरणीय क्षण इसी अदम्य उत्साह को तलाश कर रहे हैं।

दस्यु का हृदय परिवर्तन

आने वाले ने हिचकिचाते हुए एक लिफाफा उन्हें थमा दिया। बोलकर पढ़ते ही वह शब्दानुभूति में डूबने लगीं। प्रत्येक शब्द का स्पर्श मन के भावतन्तुओं को स्पन्दित कर रहा था। आगन्तुक अभी तक अपने दोनों हाथों में एक अत्यन्त कोमल, भारी, बहुमूल्य कम्बल लिये हाथ आगे फैलाये खड़ा था।

"मैं इसे स्वीकार करूँगी।" एक क्षण रुककर मैडम ने स्वतः कहा। उनका प्राइवेट सेक्रेटरी पास ही खड़ा था। उन्होंने पत्र उसकी तरफ बढ़ा दिया। "तुम अपने स्वामी से कहना, मैंने उनका उपहार स्वीकार कर लिया है केवल एक शर्त पर, वे कल प्रातः मुझसे मिलेंगे। उन्हें कल मिलना चाहिये।" मुक्ति-फौज की सर्वोच्च सेनानी के स्वर में दृढ़ता थी। दूत ने मस्तक झुकाया। सेक्रेटरी ने उसके हाथ पर से कम्बल उठा लिया।

एक भारी कम्बल इसके मूल्य का अनुमान ? पर मूल्य किसी वस्तु का कहाँ होता है ? मूल्यांकन की कसौटी तो परिस्थिति और परिवेश की माँग में वस्तु की स्थिति है। दाने के एक-एक कण के लिये लोग तरस रहे थे। सर्वग्रासी अकाल ने अपनी नुकीली दाढ़ों से बालक, वृद्ध, स्त्री-पुरुष, सबल-निर्बल सभी को 'कच-कच' करके चबाना प्रारम्भ कर दिया था। टाट के एक टुकड़े के बिना रात्रि के शीत में अनेकानेक मानव शरीर हिम शीतल हो जाते थे। सूर्य रश्मियाँ उनके अकड़े-सिकुड़े चर्म में चेतना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लौटाने में असमर्थ हो जाती थीं। वहाँ एक रोटी या चद्दर के मूल्य ही था—जीवन। ऐसे में कम्बल के मूल्य का अनुमान..... ?.

आगन्तुक अभी तक खड़ा था। काली फौजी वर्दी में ढका उसका शरीर बढ़ी हुई दाढ़ी-मूँछें, रक्तिम नेत्र उसके व्यक्तित्व को पहचानने के लिये काफी थे। उसके कन्धे से बगल तक कारतूस की पेटी झूल रही थी। बायें कन्धे पर चमड़े की पेटी के सहारे दुनाली रायफल लटक रही थी और कमर में दोनों ओर दो तलवारें बाँध रखी थीं।

गौरवर्ण भी इतना भयंकर हो सकता है, किसी को सहज कल्पना नहीं हो सकती। सीधा खड़ा हो गया वह। पैरों के भारी बूटों ने 'खट' शब्द किया और उसने फौजी सलामी दी। दाहिनी ओर घूमकर चल पड़ा पीछे। दूर पेड़ की टहनी से उसका काला घोड़ा बँधा था। उछलकर चढ़ा और सघन वन में अदृश्य हो गया।

'वह स्वयं डिक तो नहीं है ?' सेक्रेटरी उसे एकटक देखता रहा था तब तक, जब तक उसका घोड़ा अदृश्य नहीं हो गया।

'डिक नहीं हो सकता।' मैडम ने उत्तर दिया..... "तुम्हें समझना चाहिये कि डिक मेरी आँखों को धोखा नहीं दे सकता और वह इतना कायर भी नहीं है कि मेरे सामने आने में भी इतने हथियारों का भार ढोने की जरूरत अनुभव करे।"

"आपने उसका उपहार लेकर अच्छा नहीं किया।" सेक्रेटरी पहले ही विरोध करता यदि दूत के सम्मुख बोलने का प्रश्न न होता या मैडम एकाएक स्वीकृति न दे चुकी होती। वह इस बहाने अब अपने आदमी भेज सकेगा। आपने स्वयं आमन्त्रित भी कर लिया है। हम लोगों की गतिविधियों का पता लगाकर आक्रमण कर सकता है।

'मुक्ति फौज का सैनिक भी डरपोक है।' मैडम ने झिड़का—"तुम्हें बार-बार बताया गया है किसी से डरो मत। सभी से प्रेम करना है। छोटे-बड़े, पापी-पुण्यात्मा, सबल-दुर्बल सभी के आत्म-विकास में सहायक होना है और सेवा का अवसर ढूँढ़ना है।" वाणी में ओज था, गाम्भीर्य था और था स्नेह।

सेक्रेटरी मौन हो गये। उन्हें अपने सेनापति में पूर्ण विश्वास था। मैडम की आध्यात्मिक शक्ति से अच्छी तरह परिचित था। समझ लिया था उन्होंने कि कल प्रातः कुछ अवश्य घटित होगा।

"मुझे अभी डिंकन जाना है। मेरा घोड़ा तैयार कर दो।' इस सत्तर वर्ष की अवस्था में उनमें युवावस्था का स्वास्थ्य, स्फूर्ति और शक्ति विराजमान थी। घोड़े पर तीस मील जाकर लौटने का प्रोग्राम बनाने में उन्हें एक सेकण्ड भी नहीं सोचना पड़ता।" कल प्रातः हम डिक के साथ सुबह की प्रार्थना करेंगे।

"डिक के साथ प्रार्थना ?" सेक्रेटरी चौंके। तब तक वह जाने के लिये मुड़ चुकी थीं। सेकण्ड..... दो सेकण्ड..... मिनट..... दो मिनट सेक्रेटरी का मन समय के व्यूह को भेदता स्थिति को सोचने लगा।

दक्षिण अमेरिका इन दिनों अकालग्रस्त था। दो वर्ष से वर्षा नहीं हुई। ऊपर से घोर हिमपात हुआ। वृक्ष पत्रहीन खड़े थे। पृथ्वी से जैसे किसी ने सब घास छील डाली हो। न कहीं एक तिनका दिखाई पड़ता था और न एक पत्ता। अब भी प्रायः रोज रात्रि में हल्का पाला पड़ रहा था। विश्व से वह उजाड़ प्रान्त अलग-थलग पड़ गया था।

मुक्ति फौज का सदर दफ्तर अभी कुछ ही दिनों पहले यहाँ स्थापित हुआ था। आते ही उसने अपना काम शुरू कर दिया। चिकित्सा, ओषधि वितरण, भोजन, दान एवं वस्त्र वितरण। दूर-दूर गाँवों में उनकी शाखाएँ फैलती जा रही थीं। पर्वतों पर उजाड़ वनों में सब जगह उनके कैम्प पड़े थे।

सर्वोच्च सेनाध्यक्ष इवेजलीन बूथ का ही निर्णय था, इस क्षेत्र में मुख्य कार्यालय ले जाने का। यही सबसे अधिक दुर्दशाग्रस्त इलाका था। अत्यन्त बीहड़ वन, हिमाच्छादित घाटियाँ, पगडण्डियों के लुप्त-प्रायः पथ, बहुत दुष्कर था यहाँ तक आना। उस पर से डाकू डिक का भयंकर उत्पात। कोई सहमत नहीं था इधर आने के प्रस्ताव से, पर मैडम इवेजलीन का समूचा व्यक्तित्व ही मानो दृढ़ता का दूसरा रूप था। निश्चय करके हटना उन्होंने सीखा नहीं और फौज में मतगणना का प्रश्न नहीं।

पूर्व के झरोखे से झाँकती ऊषा की लालिमा नये दिवस को निहार रही थी। वृक्ष तेज हवा के झोंके से काँप रहे थे। पाला पड़ी धरती उज्ज्वल से गैरिक रंग में रँगती जा रही थी। जैसे मानव के आकुल-क्रन्दन को देखकर उसे भी वैराग्य हो गया हो। एक लम्बा, पतला, गोरा पुरुष घोड़े से कूदकर शिविर से बाहर निकलते ही मैडम के सामने खड़ा हो गया। भव्य ललाट, प्रशस्त मुख-मण्डल उसके व्यक्तित्व की झलक दे रहे थे। उसकी पोशाक उसे उच्च सैनिक अधिकारी सिद्ध कर रही थी। अभी तीस-बत्तीस से अधिक न होगा।

दया और सम्मान इन्हें आज तक मैंने नहीं जाना। उसकी आवाज में तीखेपन के बावजूद कोमलता थी। 'मैंने आपका नाम सुना था, पता नहीं क्यों आपके लिये मेरे हृदय में आदर के भाव हैं। कल मैं बड़ा प्रसन्न हुआ जब मेरे दूत ने बतलाया कि आपने मेरा उपहार स्वीकार कर लिया। मैं अभिवादन करता हूँ। आज्ञा पाते ही ठीक समय उपस्थित हुआ हूँ। जीवन में पहली बार मैंने किसी की आज्ञा मानी है।"

'डिक !' इस नाम का उच्चारण ही किसी में सनसनी पैदा करने के लिये काफी था। सब चित्र-विचित्र भावों से उसे देख रहे थे। "मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही थी।" शान्त स्वर में कहते हुए मैडम ने हाथ बढ़ाया। डिक ने सोचा नहीं था कि इतना शक्तिशाली हाथ होगा एक महिला का। 'आओ हम प्रभु की प्रार्थना करें।' समय हो गया है। बैण्ड बजने लगा।

प्रार्थना प्रारम्भ हो गयी। सारे मन एकाकार हो परमात्मचेतना का आह्वान कर रहे थे। मैडम की आँखें आकाश की ओर लगी थीं और उनसे अश्रुपात हो रहा था। किसी ने नहीं देखा कि कब उद्धत डाकू पीछे से आगे बढ़ा और घुटने टेककर मैडम के पास बैठ गया। सभी उस दिव्य वातावरण में ईश्वरीय सत्ता में डूब चुके थे। प्रार्थना की समाप्ति पर सबने देखा कि मैडम अपने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दोनों हाथों से रोते हुए डिक को उठाने का प्रयत्न कर रही है।

"यह पत्थर को पिघला देने वाली शक्ति कहाँ से पायी आपने ?" डिक शीघ्र आश्वस्त हो गया।

"यह प्रेम की शक्ति है। सामूहिक मन की पुकार से उपजी सामर्थ्य है।' मैडम ने स्निग्ध स्वर में उसे सम्बोधित किया—मेरे भाई ! मैं सम्पूर्ण प्राणियों से प्रेम करती हूँ।"

"सम्पूर्ण प्राणियों से प्रेम।" कुछ रुक-रुक कर वह कह रहा था। उसका स्वर धीमा पड़ गया था। "डाकू डिक से भी प्रेम ?" जैसे वह किसी गहनतम समस्या को सुलझा रहा हो।

"तुम ईशा को स्वीकारते हो न।" मैडम ने उत्तर की अपेक्षा नहीं की—"प्रभु ईसा ने तुम्हें घृणा करने की आज्ञा कहाँ दी है ? कोई मूलतः बुरा नहीं है, सभी प्रभु के अंश हैं। बुराइयाँ तो गलत राह पर बढ़े कदम हैं, जिन्हें अच्छाइयों की ओर वापस मोड़ा जा सकता है। इस तरह वापस मुड़ने और मोड़ने की शक्ति का स्रोत है प्रार्थना, जिसकी अभिव्यक्ति है—प्रेम।"

कुछ देर के लिये शान्ति हो गयी। सभी चुपचाप सुन रहे थे। 'कोई मूलतः बुरा नहीं है' डिक का समूचा अस्तित्व इन शब्दों से झंकृत हो रहा था। प्रार्थना स्वयं के अस्तित्व में परमात्मा की दिव्य शक्ति का अवतरण है। इस अवतरण को वह स्वयं में अनुभव कर रहा था। मैडम और उनके सहकर्मियों के प्रेम भरे व्यवहार से उसे अपने में परिवर्तन की अनुभूति हो रही थी। इस अनुभूति ने उसके व्यक्तित्व की संरचना बदल डाली। कभी का दुर्दांत दस्यु मुक्ति फौज का सेवापरायण सिपाही हो गया। अंधकार की ओर मुड़े कदम वापस मुड़कर प्रकाश की ओर बढ़ने लगे।

कामना और वासना का चक्रव्यूह

कौरवों ने जब पाण्डवों को एक सुई के बराबर भूमि देने में भी आना-कानी की और भगवान कृष्ण के समझाने पर वह नहीं माने तो इसका परिणाम महाभारत के रूप में आया, जिसमें भारतवर्ष के प्रत्येक राजा ने भाग लिया था। असंख्य व्यक्ति परलोक सिधारे, करोड़ों रुपए की हानि हुई। दुर्योधन और उसके साथियों की हार हुई और पाण्डवों की विजय।

नेत्रहीन महाराज धृतराष्ट्र अपने लड़कों के मारे जाने के कारण बहुत दुःखी रहने लगे। स्थूल नेत्र तो पहिले ही भगवान ने उनसे छीन रखे थे, जिसके कारण वह इसके भौतिक संसार को देखने में असमर्थ थे, परन्तु अब उनके मन में भी अंधकार छा गया, मानो उनके लड़के उनके मन के प्रकाश दीप थे। उनकी आँखों से ओझल होने से उनके मन का दीप भी बुझ गया। महाराज युधिष्ठिर उनका बहुत सम्मान करते थे और इस बात का ध्यान रखते थे कि उनसे कोई ऐसी बात न हो जाये जिससे उनके मन को धक्का लगे परन्तु फिर भी वह निरन्तर दुःखी रहा करते थे।

महात्मा विदुर संन्यास आश्रम में प्रवेश कर चुके थे। वह देश-देशान्तर का पर्यटन करके वहाँ आये। पुत्रों की मृत्यु के शोक से दुःखी धृतराष्ट्र की दयनीय दशा देखकर, उनका दुःख दूर करने के लिए वह उन्हें समझाने लगे कि यह शरीर क्षणभंगुर है। यह हमेशा रहने वाला नहीं है। एक दिन तो मिट्टी में मिलना ही है। शरीर से न कोई अमर हुआ है और न होगा, इसलिये इसके लिए रोना-धोना बुद्धिमानी की बातें नहीं हैं। आत्मा की अमरता को निरन्तर ध्यान में रखना चाहिए। वह नहीं मरती। केवल अपना चोला बदलकर दूसरा शरीर धारण कर लेती है। इसलिए उनके लिए शोक करना उचित नहीं है। इसी बीच में उन्होंने एक कथा सुनाई—

एक बार मैं एक वन से जा रहा था जो बहुत ही भयानक था। ऊँचे व घने पेड़ों से वहाँ अंधकार-सा दिन में भी रहता था। बड़े-बड़े झाड़-झंखाड़ों की कमी न थी। घाटियों में जाने से वहाँ आगे का मार्ग मिलना कठिन था। हाथियों की चिंघाड़ और शेरों की दहाड़ सुनाई देती ही रहती थी। दूसरे जंगली जानवर वहाँ प्रायः देखे ही जाते थे। ऐसे भयानक वन में अकेले जाने से कदम-कदम पर प्राणों का भय रहता है।

वहाँ मैंने एक ब्राह्मण को देखा जो अपना मार्ग भूलकर उस वन में भटक रहा था। उसे आगे जाने का कोई मार्ग नहीं सूझ रहा था। जंगली जानवरों की आवाजों से वह भयभीत हो रहा था। अपने प्राणों की रक्षा के लिए वह कभी इधर जाता था, कभी उधर। भयानक आवाजें साकार रूप लेकर उसकी आँखों के सामने घूमने लगीं, उसे डरावने चित्र दिखाई देने लगे। एक राक्षसी को तो सामने देखकर उसके प्राण सूख जाते थे। वह जिधर भी भागने का प्रयत्न करता वह उधर ही अपना मुख खोले दिखाई पड़ती थी कि वह अभी उसे हड़प कर जायेगी। वह उससे घबरा जाता और चीख मारकर दूसरी ओर भागता। इससे वह बहुत परेशान था। काँटों पर चलने से उसके पैर जख्मी हो गये थे। उसके शरीर के स्थानों से रक्त निकल रहा था। झाड़-झंखाड़ों के कारण मार्ग ऐसा पेचीदा था कि वहाँ से निकलना बहुत कठिन था।

इधर-उधर की भाग-दौड़ में वह थककर चूर हो चुका था। वह डायन बार-बार सामने आकर उसे बहुत तंग कर रही थी। ब्राह्मण किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहा था। एक बार जो डर के मारे भागा तो एक गड्ढे में गिरा। दैव कृपा से एक पेड़ की जड़ बाहर को निकली हुई थी। उसे उसने पकड़ लिया और लटक गया। कहते हैं दुःख और कठिनाइयाँ अकेले नहीं आती हैं, वह अपने बाल-बच्चे भी साथ लाती हैं। पहिले तो उस डायन से ही उसका हृदय काँप रहा था। अब उसके और बहिन-भाई सामने दिखाई देने लगे। उसकी दृष्टि नीचे गड्ढे में गई, तो एक बड़ा सर्प दिखाई दिया। यदि वह नीचे गिर पड़ता है, तो वह उसे दूसरी दुनिया में पहुँचा देगा। उसके भय से उसने चाहा कि बाहर निकल जाऊँ। उचककर देखा तो छह मुख और बारह टाँगों वाला एक हाथी दिखाई पड़ा। पेड़ पर शहद की मक्खियों ने छत्ता बना रखा था। उन्होंने उसे काटना शुरू किया। नीचे सर्प और ऊपर हाथी का भय, मक्खियों के काटने का दर्द, यही क्या थोड़ा था, जिस जड़ को वह पकड़े हुए था उसको सफेद व काले रंग के दो चूहे काटते दिखाई दिये। अब तो मृत्यु का क्षण उसकी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आँखों के सामने आने लगा और उससे छुटकारे का कोई उपाय दिखाई न दिया। भय से उसका शरीर काँप रहा था। इतने में मक्खियाँ उड़ीं, छत्ता हिलने लगा और शहद की बूँदें ब्राह्मण के मुख में टपकने लगीं। ब्राह्मण सब कुछ भूलकर शहद खाने में दत्तचित्त हो गया।

महात्मा विदुर धृतराष्ट्र से कह रहे हैं कि महाराज ! उसकी बुद्धिहीनता देखिए, मृत्यु उसके सिर पर नाच रही है नीचे और ऊपर कहीं भी जाने के लिए मार्ग नहीं है। चूहे डाली की जड़ को काट रहे हैं, जिससे नीचे गिरने का भय है। भय के अतिरिक्त मक्खियाँ अलग शरीर को पीड़ा पहुँचा रही हैं। इतना होने पर भी वह उन कठिन परिस्थितियों से निवृत्त होने का कोई मार्ग ढूँढ़ने का प्रयत्न नहीं करता, बल्कि शहद की बूँदें मिलने पर उन सबको भूल गया है। वह यह चाहता है, अन्य कष्ट उसे भले ही होते रहें परन्तु यह शहद की बूँदें टपकती रहें।

महाराज धृतराष्ट्र ने जिज्ञासा प्रकट की कि क्या ऐसी भी विवेकहीनता संभव है ? इस वन, ब्राह्मण, हाथी, सर्प, डायन और चूहों आदि के बारे में पूरी तरह समझाइये।

विदुरजी ने कहा कि यह दृष्टान्त तो समझाने के लिए है। वह ब्राह्मण कोई विशेष व्यक्ति नहीं है। किसी भी मनुष्य को आप समझ सकते हैं। संसार को वन से उपमा दी गई है। ब्राह्मण के साथ जहाँ यह घटना हुई, उसको मनुष्य का जीवन समझिये। वह झाड़-झंखाड़, जंगली जानवरों की भयभीत करने वाली आवाजों को आप जीवन में आने वाले कष्टों, कठिनाइयों को जानें। वह डायन जिसे देखकर वह डरकर इधर-उधर भागता था, वह वृद्धावस्था है जो सभी को दिखाई देती है। जिस घाटी में वह ब्राह्मण गिरा था, वह मनुष्य शरीर है। जिन जड़ों और झाड़ियों से वह लटक रहा था, वह उसकी कामनाएँ, वासनाएँ, तृष्णाएँ हैं। छह मुख और बारह टाँगों वाला हाथी समय है। एक वर्ष में छह ऋतु और बारह महीने होते हैं। काले और सफेद चूहे रात और दिन हैं, जो हमारी आयु को काट रहे हैं। शहद की मक्खियाँ वह परिस्थितियाँ हैं, जिनसे हमारा मन अशान्त रहता है। शहद की बूँदें वह भौतिक सुख हैं, जो हमें कष्टों और परेशानियों के साथ-साथ कभी-कभी प्राप्त होते रहते हैं। इनको प्राप्त करने की कामना से हम शेष सभी कष्टों को भूल जाते हैं। उनके लिए हमें उचित तथा अनुचित उपायों को अपनाने में संकोच नहीं होता। हमने क्षणिक और अस्थाई सुख को मुख्य समझ रखा है और वास्तविक सुख को गौण कर दिया है। इसी गलत दृष्टिकोण को अपनाकर हम अपनी कामनाओं को बढ़ाते रहते हैं। यह हम भली प्रकार जानते ही हैं कि झूठी इच्छाओं को बढ़ाने से दुःख ही हाथ लगता है। हमें वृद्धावस्था के दुःख सामने दिखाई देते हैं। सर्प के रूप में मृत्यु अपना मुख खोले तैयार खड़ी है। फिर भी यह अस्थाई सुखों की ओर दौड़ता है।

"विदुरजी ! आप ठीक कहते हैं।" धृतराष्ट्र ने सिर हिलाकर कहा।

"आप अपने पुत्रों के संबंध में ही देख लीजिए। उन्होंने राज्य की कामना से पाण्डवों को धोखा दिया और सारा राज्य छीन लिया। इसका दुष्परिणाम आपके सामने है। आपकी कामना राजपाट में और लड़कों में थी। उनमें से कुछ भी नहीं रहा इसलिए इनमें स्थिरता नहीं है। अस्थिर वस्तुओं में मोह करना कोई बुद्धिमानी की बात नहीं है। आप अपने मन से विचारों को निकाल डालें। तभी आपको शान्ति प्राप्त होगी।" विदुरजी ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

महाराज धृतराष्ट्र को विदुरजी की बातों से बहुत कुछ शान्ति का अनुभव हुआ। वह कुछ दिनों के बाद उनके साथ गंगा तट पर गये और वहीं रहने लगे। वहीं कुछ समय बाद शान्तिपूर्वक प्राण छोड़े।

क्या समय बीत गया

वर्ष की अन्तिम रात्रि को एक वृद्ध अपने अंधेरे घर में अकेला बैठा है, रात्रि भी बड़ी भयावनी और अंधेरी है, घटा छा रही है, बिजली चमककर कड़क रही है, वायु भी बड़े वेग से चल रही है, हृदय दहलता और मन घबड़ाता है। चन्द्रदेव भी भयभीत होकर छिप गये हैं। वृद्ध अत्यन्त शोकातुर हो रहा है परन्तु उसका शोक न अंधेरे घर पर है और न अकेलेपन पर, न अंधेरी रात्रि, तथा न बिजली की कड़क और पवन की सनसनाहट, पर वह अपनी गति—आयु के समय को स्मरण करता है, विगत काल जितना ही अधिक स्मरण आता है, उतना ही उसका शोक बढ़ता आता है। आँखों से अश्रुपात हो रहा है, अपनी आयु का व्यतीत समय उसके नेत्रों के समक्ष घूम रहा है।

उसे अपनी बाल्यावस्था का ध्यान आता है, जब उसे किसी वस्तु का शोक तथा चिन्ता मन में न थी, रुपये-पैसे के बदले मिठाई तथा चाट अच्छी लगती थी। माता, पिता, भाई और बहिन सब घर उसको प्यार करता था। विद्याध्यन के लिये छुट्टी का समय शीघ्र आने की प्रसन्नता में, पुस्तकें बगल में दबाकर पाठशाला को चला जाता था। पाठशाला का ध्यान आते ही उसको अपने सहपाठियों का ध्यान आता था, तब वह और भी अधिक शोकातुर हो जाता था तथा विवश हो पुकारने लगता था हाय, समय ! हाय, समय !! मोह, विगत काल ! शोक ! मैंने तुझे अति विलम्ब से स्मरण किया।

वह अपनी युवा अवस्था का समय स्मरण करता था, अपना भरा हुआ लावण्यमय मुखड़ा, सुडौल शरीर, रसीले नेत्र, उमंगों से पूर्ण मन तथा मानवी इच्छाओं और उत्साहों का ध्यान करता था, मदान्ध नेत्रों के समय में माता-पिता जो शिक्षा देते थे, भलाई तथा ईश्वर-भक्ति का उपदेश करते थे तब कह देता था उँह अभी इन सब बातों के लिये बहुत समय पड़ा है, बुढ़ापे में देखा जायेगा। वृद्धावस्था का कभी ध्यान भी न आता था और न उसका कभी विचार ही होता था।

"अभी समय बहुत है" यह कहते हुए वह अपने स्थान से उठा और टटोल-टटोल कर खिड़की तक आया, खिड़की खोली देखा कि रात्रि वैसी ही भयानक है। अंधेरी घटा छा रही है, बिजली की कड़क से हृदय काँपता है, प्रचण्ड पवन चल रही है, वृक्षों के पत्ते उड़ रहे हैं, शाखाएँ टूट-टूट कर गिर रही हैं। तब वह चिल्लाकर बोला कि हाय ! हाय !!

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मेरा जीवन भी ऐसा ही भयानक है, जैसी यह रात्रि ! यह कहकर वह वृद्ध फिर उसी स्थान पर आ बैठा।

उसको अपने माता-पिता, भाई-बहिन तथा इष्ट-मित्रों का ध्यान आ गया, जोकि सब निर्दयी कराल काल के ग्रास बन चुके थे। माता मानो प्रेम से उसे हृदय से लगाये नेत्रों में आँसू भरे खड़ी है और कह रही है कि बेटा ! "समय निकल गया" पिता का प्रकाशित मुख उसके सन्मुख है, उससे यह शब्द निकल रहे हैं "बेटा हम तुम्हारी ही भलाई के लिये कहते थे।" भाई-बहिन दाँतों में अंगुली दबाये चुपचाप खड़े हैं, उनके नेत्रों से अश्रुपात हो रहा है। इष्ट-मित्र सब खड़े कह रहे हैं—"अब हम क्या कर सकते हैं ?" ऐसी दशा में उसको अपनी उन बातों का स्मरण हुआ जो उसने अवहेलना तथा असावधानी और धृष्टता से अपने माता-पिता, भाई-बहिन तथा इष्ट-मित्रों के साथ बरती थीं। इन सबकी उस पर प्रेम-दृष्टि रखना उसके हृदय को और भी विदीर्ण करता था, उसका चित्त घबड़ाता और व्याकुल होता था वह कह उठता था कि "हाय ! समय निकल गया इसका प्रतिकार कैसे हो ?"

वह व्याकुलता से फिर खिड़की की ओर दौड़ा, टकराता, टटोलता खिड़की तक पहुँचा, उसे खोलकर देखा कि पवन का वेग कुछ कम हुआ है, बिजली की कड़क भी कुछ थमी है, परन्तु रात्रि पूर्ववत् अँधेरी है, वृद्ध की घबड़ाहट कुछ कम हुई, वह फिर अपने स्थान पर आ बैठा, इतने में उसको अपनी प्रौढ़ावस्था का स्मरण हो आया, जिसमें उसका न वह यौवन रहा था, न वह सुन्दरता तथा लावण्यता, न वह मन, न मन की उमंगें। उसने अपने उस भलाई के समय को याद किया जिसमें वह बुराई की अपेक्षा भलाई की ओर अधिक झुका हुआ था। व्रत, उपवास रखना, संध्योपासना तथा तीर्थ-यात्रा करना, दान देना, भूखों को भोजन कराना, मन्दिर और कूपादि बनवाना इत्यादि इन सब बातों से वह अपने मन को ढाढ़स देता था, सन्त-महात्माओं की जिनकी उसने सेवा की थी, सद्गुरु जिनसे दीक्षा ली थी, अपनी सहायता के लिए पुकारता था परन्तु मन उसका अत्यन्त व्याकुल था; वह कहता कि उसके व्यक्तिगत कार्यों की उसी तक समाप्ति है। भूखे फिर भी उसी प्रकार भूखे हैं, मन्दिर टूटकर खण्डहर पड़े हैं, कूप भी टूट-फूट कर जल रहित हो गये हैं। गुरु, साधु, महात्मा कोई भी उसकी पुकार नहीं सुनता और न सहायता ही करता है, उसका चित्त फिर व्याकुल होता है और सोचता है कि उसने व्यर्थ असत्य और नाशवान पदार्थों पर मन लगाया तथा विश्वास किया यह पिछली बुद्धि पहले ही क्यों न सूझी। अब कुछ वश नहीं फिर यह कहकर चिल्ला उठा कि "हाय ! समय मैंने तुझको क्यों खो दिया।"

अब इन अन्तिम क्षणों में वह क्या करे ? इतना गँवा चुकने के बाद उसके पास क्या शेष रहा ? गत वैभव की अन्तर्वेदना दाँत निकालकर चारों ओर से काटने को दौड़ रही थी, वृद्ध फूट-फूट कर रोने लगा।

अपनी भूल पर सच्चे हृदय से रो पड़ना और भविष्य के लिए सँभल जाना सच्चा प्रायश्चित है। इस प्रायश्चित से उसका भार कम हो गया। अंधकार हटते ही प्रकाश चमकने लगा। अब बिजली की कड़कड़ाहट और रात्रि की भयंकरता कम हो चली थी।

वृद्ध ने देखा कि खिड़की में होकर एक क्षीण प्रकाश दौड़ा आ रहा है। ध्यानपूर्वक देखा तो एक स्वर्गीय प्रतिमा आगे खड़ी है और सन्देश दे रही है—"वत्स ! शोक मत करो। जो बीत गया वह नहीं आ सकता। अभी आगे के जो क्षण शेष हैं वह भी कम नहीं हैं। इन्हें सँभालो। बदलने के लिए युगों की नहीं क्षणों की आवश्यकता होती है। उठो अपने जीवन की दशा बदल डालो। तुम्हारा कल्याण होगा।"

वृद्ध का रोम-रोम प्रफुल्लित हो उठा। उसने उस प्रतिमा के सामने शीश झुकाते हुये पूछा—'देवि ! संसार में सत्य क्या है ? कहाँ है ? और मैं उसे किस प्रकार प्राप्त कर सकता हूँ, उत्तर में उसे सन्देश मिला कि 'संसार सत्यनारायण की ही प्रतिमूर्त्ति है। इसको ईश्वर भाव से देखो और सच्चे हृदय से इसकी पूजा करो। धर्म का स्थान कुएँ और मन्दिरों में नहीं है उसे अपनी आत्मा में खोजो।'

वह कृत-कृत्य हो गया। मरने में अधिक दिन नहीं थे, अन्तिम क्षणों को उसने आत्मदर्शन और लोकसेवा में लगाकर जीवन को सफल बना लिया।

हम में से हर एक के सामने सवाल आता है कि उपयुक्त समय बीत गया। ईश्वर की ओर से सन्देश मिलता है कि नहीं अभी बहुत है। जो बचा है वह भी कम नहीं है। इसे भी सँभालकर रखो तो काफी है।

तन ही नहीं, मन भी निर्मल हो

महाभारत की लड़ाई के बाद पाण्डवों ने एक के बाद एक यज्ञ किये, किन्तु स्वजन-हत्या के दोष से चेतना को रंचमात्र भी सांत्वना नहीं मिली। उल्टे राजभोग के प्रति ग्लानि की भावना और जोर पकड़ती गयी। अन्त में, विदुर जी के आदेश को शिरोधार्य कर माँ कुन्ती के सहित द्रोपदी एवं पाँचों पाण्डव तीर्थाटन को निकल पड़े।

योजना के अनुसार पहला पड़ाव व्यास मुनि का आश्रम था। व्यासजी ने प्रेम से सबका स्वागत किया और मनःशान्ति के लिये कुछ दिन उन्हें अपने पास ही टिकाया। आगे की यात्रा के लिए जब पाण्डव व्यास मुनि से विदा लेने लगे तो महर्षि ने अपना तुम्बा उठाकर युधिष्ठिर के हाथों में थमा दिया और कहा—"वत्स, तीर्थों में जब तुम स्नान करो तो अपने साथ इस तुम्बे को भी एक-दो डुबकियाँ लगवा दिया करना, तुम्हारे साथ मेरा यह तुम्बा भी निर्विकार हो जायेगा।"

व्यासजी ने प्रेम से सेवा का अवसर दिया है, पाण्डवों को इस प्रसंग से बड़ी प्रसन्नता हुई। अनमोल धरोहर के रूप में उन्होंने उस तुम्बे को सहेजकर रखा और पुण्यसरिताओं में स्नान करते समय उसे भी स्नान कराया।

जब पाण्डवगण वापस लौटे तो अन्तिम पड़ाव व्यासाश्रम ही था। सबने व्यासजी के चरण स्पर्श किये। मुनिराज ने गद्गद भाव से सारे परिवार को देखा और यात्रा का विवरण पूछा। कुछ विश्राम के बाद धर्मराज युधिष्ठिर ने अपने थैले से वह तुम्बा निकाला और व्यास जी के सामने रखकर कहा—"भगवन्, यह आपका तुम्बा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं। हमने इसे हर पवित्र नदी में स्नान कराया है। इसमें कहीं हमारी चूक नहीं हुई है।" व्यासदेव ने कनखियों से पाण्डवों को निहारा फिर भीम से कहा—"बेटे, जरा इस तुम्बे को फोड़कर तो लाओ। हम सब प्रसाद के रूप में उसे खाकर तीर्थों का पुण्य-लाभ प्राप्त करेंगे।" भीम ने उसके टुकड़े करके व्यासजी की आज्ञा से द्रौपदी को दे दिये। द्रौपदी ने एक-एक टुकड़ा सारे पाण्डवों को बाँटा और बाकी व्यास जी के सामने रख दिया। व्यास मुनि ने एक टुकड़ा उठाकर चखा और घृणा से उसे एक तरफ थूक दिया—"अरे रे ! यह तो वैसा ही कड़वा है जैसा पहले था। क्या तुम लोगों को भी यह कड़वा लगा ?" अर्जुन ने कहा—"महाराज, तुम्बा तो कड़वा ही होता है, वह मीठा कैसे लगेगा ?" महर्षि व्यास ने आँखें उठाकर कहा—"लेकिन वत्स, यह तो तीर्थस्नान कर आया है, इसे तो मीठा हो जाना चाहिए। कड़वाहट अर्थात् विकार को मिटाने के लिये ही तो लोग तीर्थ-यात्रा करते हैं।" कुन्ती चुप न रह सकी, बोली—"प्रभो, क्या स्वभाव भी कभी बदल सकता है ? प्रकृति के नियम तो कभी भंग नहीं होते।"

व्यासदेव कुन्ती के शब्द सुनकर पुलकित हो गये—"नहीं देवि, प्रकृति के नियम तो सनातन हैं, वे कैसे बदल सकते हैं ? किन्तु स्वभाव के ऊपर जो विकृतियाँ छा जाती हैं और उसे मलिन कर देती हैं, वे तो हटायी जा सकती हैं; किन्तु उसके लिये तन के स्नान के बजाय मन के स्नान की ही मुख्य जरूरत है। मेरा तुम्बा तो जैसा गया था, वैसा ही आया। तुम लोग भी जैसे गये वैसे ही आ गये हो, मन की ग्लानि में कोई फर्क आया है क्या ? युधिष्ठिर, तुमने देख लिया है न, कि मन का भार न तो अपने से बाहर भागने से उतरता है और न दूसरों पर उसे छोड़ देने से। सोने को निर्मल होने के लिये स्वयं ही आग में तपना होता है। इसलिये व्याकुलता छोड़ो। तुम्हारे भीतर जो सात्विक पश्चात्ताप जाग्रत है, उसकी अग्नि तुम्हारी चेतना को निर्मल करती जा रही है। थोड़े समय में स्वर्ण अपनी पुनीत आभा में निखर उठेगा। पश्चात्ताप अपने-आप में महान तपस्या है।

तीर्थयात्रा के पीछे तन को नहीं मन को निर्मल करने का विधान होने के कारण ही उसे पूज्य माना गया है। यदि यह पुण्य विधान न रहे तो यह निष्प्राण, निष्प्रयोजन ही रहती है।

इष्ट की उपासना का मर्म

दिन ढल रहा था। रात तथा दिन, फिर से बिछुड़ जाने को कुछ क्षणों के लिये एक-दूसरे में विलीन हो गये थे। रम्य वनस्थली में एक पर्णकुटी में से कुछ धुआँ-सा उठ रहा था।।

कुटीर में निवास करने वाले दो ऋषि शनक तथा अभिप्रतारी अपना भोजन तैयार कर रहे थे। वनवासियों का भोजन ही क्या ? कुछ फल तोड़ लाये—कुछ दूध से काम चल गया—हाँ, कन्द-मूलों को अवश्य आँच में पकाना होता था। भोजन लगभग तैयार हो चुका था और उसे कदली-पत्रों पर परोसा जा रहा था।

तभी बाहर किसी आगन्तुक के आने का शब्द हुआ। दोनों ने जानने का प्रयत्न किया। बाहर एक युवा ब्रह्मचारी खड़ा था।

ऋषि ने प्रश्न किया—"कहो वत्स ! क्या चाहिए ?" युवक विनम्र वाणी में बोला—"आज प्रातः से अभी तक मुझे कुछ भी प्राप्त नहीं हो सका है। मैं क्षुधा से व्याकुल हो रहा हूँ। यदि कुछ भोजन मिल जाय, तो बड़ी दया होगी।"

कुटीर निवासी कहने को वनवासी थे, हृदय उनका सामान्य गृहस्थों से भी कहीं अधिक संकीर्ण था। मात्र सिद्धान्तवादी थे, वे व्यावहारिक वेदांती नहीं थे। सो रूखे स्वर में कहा—"भई तुम किसी गृहस्थ का घर देखो। हम तो वनवासी हैं। अपने उपयोग भर का ही भोजन जुटाते हैं नित्य।"

ब्रह्मचारी को बड़ी ही निराशा हुई। यद्यपि वह अभी ज्ञानार्जन कर ही रहा था, तथापि कर्तव्य-अकर्तव्य का व्यावहारिक बोध था उसे। निराश इस बात से नहीं था वह कि उसे भोजन प्राप्त नहीं हो सका था। उसकी मानसिक पीड़ा का कारण यह था कि यदि कोई सांसारिक मनुष्य इस प्रकार का उत्तर देता तो फिर भी उचित था। वह उसके भौतिकवादी—मोह से भरे दृष्टिकोण का परिचायक होता, किन्तु ये वनवासी जो अपने आपको ब्रह्मज्ञान का अधिकारी अनुभव करते हैं—उनके द्वारा इस प्रकार का उत्तर पाकर वह क्षुब्ध हो उठा।

तब चुपचाप चले जाने की अपेक्षा उस युवक ने यही उचित समझा कि इन अज्ञान में डूबे ज्ञानियों को इनकी भूल का बोध करा ही देना चाहिए।

उसने पुनः उनको पुकारा। बाहर से भीतर का सब कुछ स्पष्ट दीख रहा था। झुँझलाते हुए शनक तथा अभिप्रतारी दोनों बाहर आये। तब युवक बोला—"क्या मैं यह जान सकता हूँ कि आप किस देवता की उपासना करते हैं ?"

उपनिषद् काल में जिस समय की यह घटना है, विभिन्न ऋषि-मुनि, भिन्न देवता विशेष की साधना करते थे।

उन ऋषियों को तनिक क्रोध आ गया। व्यर्थ ही भोजन को विलम्ब हो रहा था। पेट की जठराग्नि भी उधर को ही मन की रास मोड़ रही थी।

झुँझलाहट में कहा—"तुम बड़े असभ्य मालूम होते हो। समय-कुसमय कुछ नहीं देखते। अस्तु ! हमारा इष्टदेव वायु है, जिसे प्राण भी कहते हैं।"

अब वह ब्रह्मचारी बोला—"तब तो आप अवश्य ही यह जानते होंगे कि यह प्राण समस्त सृष्टि में व्यापक है। जड़-चेतन सभी में।"

ऋषि बोले—"क्यों नहीं ! यह तो हम भली-भाँति जानते हैं।"

अब युवक ने प्रश्न किया—"क्या मैं यह जान सकता हूँ कि यह भोजन आपने किसके निमित्त तैयार किया है ?"

ऋषि अब बड़े गर्व से बोले—"हमारा प्रत्येक कार्य अपने उपास्य को समर्पित होता है।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ब्रह्मचारी ने मन्दस्मित के साथ पुनः कहा—"यदि प्राण तत्व इस समस्त संसार में व्याप्त है, तो वह मुझमें भी है। आप यह मानते हैं ?"

ऋषि को अब ऐसा बोध हो रहा था कि अनजाने ही वे इस युवा के समक्ष हारते चले जा रहे हैं। तली में जैसे छेद हो जाने पर नाव पल-पल अतल गहराई में डूबती ही जाती है, युवक की सारगर्भित वाणी में उनका अहं तथा अज्ञान वैसे ही धँसता चला जा रहा था। आवेश का स्थान अब विनम्रता लेती जा रही थी।

शनक धीमे स्वर में बोले—"तुम सत्य कहते हो ब्रह्मचारी ! निश्चय ही तुम्हारे अन्दर वही प्राण, वही वायु संव्याप्त है, जो इस संसार का आधार है।"

ब्रह्मचारी संयत स्वर में अब भी कह रहा था, "तो हे महामुनि ज्ञानियो ! आपने मुझे भोजन देने से मना करके अपने उस इष्टदेव का ही अपमान किया है, जो कण-कण में परिव्याप्त है। चाहे विशाल पुञ्ज लगा हो, चाहे एक दाना हो, परिमाण में अन्तर हो सकता है, किन्तु उससे तत्व की एकता में कोई अन्तर नहीं आता। आशा है मेरी बात का आप कुछ अन्यथा अर्थ न लगायेंगे।"

ब्रह्मचारी का उत्तर हृदय में उतरता चला गया था। सत्य में यही शक्ति होती है। दोनों ऋषि अत्यन्त ही लज्जित हुए खड़े थे किन्तु साधारण मनोभूमि के व्यक्तियों में तथा ज्ञानियों में यही तो अन्तर होता है। वे अपनी त्रुटियों को भी अपनी हठधर्मी के समक्ष स्वीकार नहीं करते और ये अपनी भूल का बोध होते ही, उसे सच्चे हृदय से स्वीकार कर लेते हैं तथा तत्क्षण उसके सुधार में संलग्न हो जाते हैं।

अभिप्रतारी ने अत्यन्त ही विनम्र वाणी में कहा—"हम से बड़ी भूल हो गई ब्रह्मचारी ! लगता है तुम किसी बहुत ही योग्य गुरु के पास शिक्षा ग्रहण कर रहे हो। धन्य हैं वे। तुम उम्र में हमसे कहीं छोटे होते हुए भी तत्वज्ञानी हो। अब कृपा करके हमारी कुटी में आओ और भोजन ग्रहण करके हमें हमारी भूल का प्रायश्चित करने का अवसर दो।"

और दोनों, सादर उस ब्रह्मचारी युवक को ले गये। उसे पग पाद प्रक्षालन हेतु शीतल जल दिया तथा अपने साथ बैठाकर सम्मानपूर्वक भोजन कराया।

उस दिन से वे अपनी कुटी में ऐसी व्यवस्था रखते कि कोई भी अतिथि अथवा राहगीर कभी भी आये, वे उसे बिना भोजन किये न जाने देते। इष्ट की उपासना का मर्म, सच्चा स्वरूप, अब उनकी समझ में आ गया था।

'ब्रह्म तेजो बलंबलम्'

विश्वामित्र तब तक एक क्षत्रिय राजा थे। उनका प्रचंड प्रताप दूर-दूर तक प्रख्यात था। शत्रुओं की हिम्मत उनके सम्मुख पड़ने की न होती थी। दुष्ट उनके दर्प से थर-थर काँपा करते थे। बल में उनके समान दूसरा उस समय न था।

एक दिन राजा विश्वामित्र शिकार खेलते-खेलते वशिष्ठ मुनि के आश्रम में जा पहुँचे। मुनि ने राजा का समुचित आतिथ्य-सत्कार किया और अपने आश्रम की सारी व्यवस्था उन्हें दिखाई। राजा ने नन्दिनी नामक उस गाय को भी देखा, जिसकी प्रशंसा दूर-दूर देशों में हो रही थी। यह गाय प्रचुर मात्रा में और अमृत के समान गुण वाली दूध तो देती ही थी, साथ ही उसमें और भी दिव्य गुण थे, जिस स्थान पर वह रहती, वहाँ देवता निवास करते और किसी बात का घाटा न रहता। सुन्दरता में तो अद्वितीय ही थी।

राजा विश्वामित्र का मन इस गाय को लेने के लिए ललचाने लगा। उन्होंने अपनी इच्छा मुनि के सामने प्रकट की, पर उन्होंने मना कर दिया। राजा ने बहुत समझाया और बहुत-से धन का लालच दिया पर वशिष्ठ उस गाय को देने के लिए किसी प्रकार तैयार न हुए। इस पर विश्वामित्र को बड़ा क्रोध आया। मेरी एक छोटी-सी बात भी यह ब्राह्मण नहीं मानता। यह मेरी शक्ति को नहीं जानता और मेरा तिरस्कार करता है। इन्हीं विचारों से अहंकार और क्रोध उबल आया। रोष में उनके नेत्र लाल हो गये। उन्होंने सिपाहियों को बुलाकर आज्ञा दी—कि "जबरदस्ती इस गाय को खोलकर ले चलो।" नौकर आज्ञा पालन करने लगे।

वशिष्ठ साधारण व्यक्ति न थे। उन्होंने कुटी से बाहर निकलकर निर्भयता की दृष्टि से सबकी ओर देखा। 'अकारण मेरी गाय लेने का साहस किसमें है, वह आवे; जरा आगे तो आवे।" यद्यपि उनके पास अस्त्र-शस्त्र न थे, अहिंसक थे तो भी उनका आत्मतेज प्रस्फुटित हो रहा था। सत्य पर आरूढ़ और ईश्वर का दृढ़ विश्वासी पुरुष इतना आत्मतेज रखता है कि उसके सामने बड़े-बड़ों को झुकना पड़ता है। घर के मालिक, एक बच्चे के खाँस देने मात्र से बलवान चोर के पाँव उखड़ जाते हैं। विश्वामित्र और उनके सिपाहियों की हिम्मत पस्त हो गई। उन्हें लगा कि उनका सारा बल पराक्रम विदा हो गया है।

विश्वामित्र विचार करने लगे। भौतिक वस्तुओं का बल मिथ्या है। तन, धन की शक्ति बहुत ही तुच्छ, अस्थिर और नश्वर है। सच्चा बल तो आत्मबल है। आत्मबल से आध्यात्मिक और पारलौकिक उन्नति तो होती ही है, साथ ही लौकिक शक्ति भी प्राप्त होती है। मैं इतना पराक्रमी राजा, जिसके दर्प को बड़े-बड़े शूर-सामन्त सहन नहीं कर सकते। इस ब्राह्मण के सम्मुख हत-प्रभ होकर बैठा हूँ और मुझसे कुछ भी बन नहीं पड़ रहा है। निश्चय ही तनबल, धनबल की अपेक्षा आत्मबल अनेकों गुनी शक्ति रखता है।

उन्होंने निश्चय कर लिया कि भविष्य में वे सब ओर से मुँह मोड़कर आत्मसाधना करेंगे और ब्रह्मतेज को प्राप्त करेंगे। ब्रह्म तेज पर वे इतने मुग्ध हुए कि अनायास ही उनके मुँह से निकल पड़ा कि—**'धिक् बलं, क्षत्रिय बलं, ब्रह्म तेजो बलंबलम्।'** क्षत्रिय बल तुच्छ है, बल तो ब्रह्म तेज ही है।

विश्वामित्र ने घोर तपस्या की और समयानुसार ब्रह्म तेज को प्राप्त कर लिया।

सच्ची तीर्थयात्रा

एक बार देवताओं में आपसी विवाद उठ खड़ा हुआ कि हममें से कौन बड़ा है और किसकी पूजा सबसे पहले होनी चाहिए ? सब अपने-अपने को बड़ा बताते थे और अपनी ही पूजा पर जोर देते थे। झगड़ा जब बहुत बढ़ा,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तो सब लोग मिलकर ब्रह्माजी के पास गये और कहा आप हमारा न्याय कर दीजिए कि हममें से कौन बड़ा है ?

ब्रह्माजी ने सबकी बात ध्यानपूर्वक सुनी और कहा—"कहने मात्र से किसी की बात नहीं मानी जा सकती, मैं आप लोगों की परीक्षा करूँगा कि सचमुच आप में से कौन बड़ा है ?" देवता परीक्षा देने को तैयार हो गये।

ब्रह्माजी ने कहा—"आप लोग पृथ्वी के समस्त तीर्थों की यात्रा कर आइये, फिर मैं देखूँगा कि किसने अधिक पुण्य कमाया है, जिसका पुण्य अधिक होगा, उसे बड़ा पद प्रदान किया जायगा।" आज्ञा पाते ही सब देवता अपने-अपने वाहनों पर चढ़कर तीर्थ-यात्रा के लिए चल दिए।

गणेशजी ने सोचा, भौतिक पुण्य बेचारे जड़ हैं, वे किसी को क्या पुण्य फल दे सकते हैं ? पुण्य का स्रोत तो आत्मा के अन्दर है। यदि आत्मा में परमात्मा को स्थापित किया जा सके, तो सारे तीर्थ घर बैठे ही प्राप्त हो सकते हैं। तीर्थों का फल भी तो भावना के अनुकूल ही होता है। अश्रद्धालुओं को तो तीर्थों से रंचमात्र भी लाभ नहीं मिल सकता। अधिक विचार करने पर गणेशजी को इन्हीं विचारों में सत्यता प्रतीत हुई, उन्होंने अन्तःकरण में परमात्मा की मूर्ति स्थापित की और सच्चे हृदय से उन्हें तीर्थ मान कर मन ही मन में परिक्रमा कर ली। वे अपने स्थान पर बैठे रहे, उठकर एक कदम भी तीर्थों की ओर न चले।

देवतागण तीर्थयात्रा समाप्त करके लौट-लौट कर आने लगे। गणेशजी सबसे पहले बैठे हुए थे। ब्रह्माजी ने तीर्थयात्रा का विवरण पूछना आरम्भ किया, सब लोग अपनी यात्रा का वर्णन करने लगे। अन्त में गणेशजी ने कहा—"मैंने देखा कि सबसे बड़ा तीर्थ आत्मा की पवित्रता है, मैं आत्मशोधन में लगा रहा हूँ और एक कदम भी हटकर कहीं नहीं गया हूँ।"

ब्रह्माजी ने कहा—"गणेशजी ने ही सच्ची तीर्थ यात्रा की है, तुम लोग तो मिट्टी, पत्थरों और नदी, नालों पर सिर पटकते फिरे हो। मैं गणेशजी को सबसे बड़ा घोषित करता हूँ। शुभ कार्यों में उन्हीं की पूजा सबसे प्रथम हुआ करेगी।"

सिद्धियों का आधार—संयम

जब महाभारत का अन्तिम श्लोक महर्षि वेदव्यास के मुखारविंद से निःसृत हुआ, गणेशजी के सुडौल सुपाठ्य अक्षरों में भूर्जपत्र पर अंकित हो चुका, तब गणेशजी से महर्षि ने कहा—"विघ्नेश्वर ! धन्य है आपकी लेखनी, महाभारत का सृजन तो वस्तुतः उसी ने किया है। पर एक वस्तु आपकी लेखनी से भी अधिक विस्मयकारी है, वह है आपका मौन। सुदीर्घ काल तक आपका हमारा साथ रहा। इस अवधि में मैंने तो पंद्रह-बीस लाख शब्द बोल डाले, परन्तु आपके मुख से मैंने एक भी शब्द नहीं सुना !"

इस पर गणेशजी ने मौन की व्याख्या करते हुए कहा—"बादरायण, किसी दीपक में अधिक तेल होता है, किसी में कम, परन्तु तेल का अक्षय भंडार किसी दीपक में नहीं होता। उसी प्रकार देव, मानव, दानव आदि जितने भी तनुधारी हैं, सबकी प्राण-शक्ति सीमित है किसी की कम है, किसी की कुछ अधिक, परन्तु असीम किसी की नहीं। इस प्राण-शक्ति का पूर्णतम लाभ वही पा सकता है, जो संयम से उसका उपयोग करता है। संयम ही समस्त सिद्धियों का आधार है और संयम का प्रथम सोपान है, वचोगुप्ति अर्थात् वाक्-संयम। जो वाणी संयम नहीं रखता, उसकी जिह्वा बोलती रहती है। बहुत बोलने वाली जिह्वा अनावश्यक बोलती रहती है और अनावश्यक शब्द प्रायः विग्रह और वैमनस्य पैदा करता है, जो हमारी प्राण-शक्ति को सोख डालते हैं। वचोगुप्ति से यह समस्त अनर्थ-परम्परा दग्धबीज हो जाती है। इसलिए मैं मौन का उपासक हूँ।

सभी काल के आधीन

अधिकारी न होते हुए भी राज्याधिकारी भुज ने साम्राज्य सत्ता को हथिया लिया। इसके लिए भुज को युवराज भोज से ही निबटना था। महाराज सिन्धु को जब अकाल मृत्युपाश में आबद्ध होना पड़ा तो उन्होंने अपने परम विश्वसनीय सहयोगी भुज को पाँच वर्षीय युवराज का संरक्षक नियुक्त करते हुए कहा था कि भोज के समर्थ होने तक वही राज्य व्यवस्था संभाले तथा युवराज को राजनीति की दीक्षा दे।

दीर्घावधि तक तो भुज अपने कर्तव्य मार्ग पर आरूढ़ रहे पर धीरे-धीरे सत्ता-लोलुपता और अधिकार लोभ के छिद्रों ने उनकी सारी निष्ठा, कर्तव्य भक्ति बहा दी। लोभ-लोलुपता की आसुरी प्रवृत्ति ने छल-छद्म का सहारा लिया और युवराज भोज को मिथ्या आरोपों में निष्कासन दण्ड भोगना पड़ा। राज्य सीमा से निर्वासित अज्ञात प्रदेश में रहने की राजकीय आज्ञा हुई और भोज चल पड़े, अवश, निरुपाय होकर।

इतने पर भी भुज के मन का काँटा नहीं निकला। युवराज होने के कारण भोज, जनश्रद्धा का सहज भाजन है उसका लाभ उठाकर कहीं वह जनसंगठन न करने लगे। संगठित जनशक्ति के आधार पर भोज मुझे कभी भी पदच्युत कर सकते हैं। इस आशंका को पूर्णतया निर्मूल करने के लिए राजा भुज ने गौड़ेश्वर वत्सराज को आदेश दिया कि वह भोज का शिरच्छेद कर उसका कटा हुआ सिर लाये ताकि अपने प्रतिद्वन्द्वी को मृत देखकर निष्कंटक राज्य सुख भोगा जा सके।

उसी मार्ग से, जिस मार्ग पर भोज ने प्रयाण किया था, वत्सराज ने अपना रथ दौड़ा दिया। लम्बी यात्रा पूरी करने के बाद भुवनेश्वरी वन के मध्य में भोज को पकड़ा जा सका। उस समय वत्सराज का मन राजा भुज के आदेश पालन तथा कर्तव्य निर्णय के झूले में झूल रहा था। इसी असमंजस की स्थिति में वत्सराज ने भोज को राज्यादेश सुनाया—कि भुज राजसिंहासन का पूरा अधिकार निरंकुश और निश्चिन्त होकर भोगना चाहते हैं, उन्होंने आपके वध की आज्ञा दी है।

"तो विलम्ब क्यों करते हो गौड़ेश्वर", भोज ने कहा "जिस कार्य के लिए तुम्हें नियुक्त किया है उसे पूरा करो।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वन की नीरवता में कृष्ण पक्ष की अँधियारी रात काली चादर ओढ़े मृत्यु के समान लगती थी। वत्सराज के हाथों में चमकती तलवार उस समय भी ऐसी लगती थी जैसे मृत्यु भी निरपराध का वध करने में सहम रही हो। फिर न जाने क्या हुआ कि वत्सराज के हाथों से तलवार छूट गयी और वह कुमार से लिपटकर कहने लगा मैं भी मनुष्य हूँ कुमार ! ममता, वात्सल्य से पूरित हृदय वाला मनुष्य, और उन्होंने कुमार को अंक में भर लिया।

दिये गये दायित्व को पूरा करने में सफल हुए ? सम्मुख प्रस्तुत होते ही वत्सराज से राजा भुज ने पूछा। वत्सराज ने स्वीकार भाव से सिर हिलाया और रक्तलिखित एक वटपत्र भुज के हाथों में थमा दिया। वत्सराज ने पत्र पर लिखी पंक्तियाँ पढ़ीं, लिखीं भोज की ही थीं, लिखा था, समर्थ होते हुए भी भगवान श्रीराम ने वनवास का क्लेश सहा, समस्त यादव कुल का नाश हुआ नल को राज्य से च्युत होना पड़ा और कई चक्रवर्ती दिग्विजयी सम्राट हुए पर काल ने किसी को नहीं छोड़ा। सब काल के अधीन हुए।

श्लोक पढ़कर भुज का न जाने कौन-सा मर्मस्थल दग्ध हो गया और अपनी गलती का भान होते ही वह जोरों से विलाप करने लगा, "मैंने क्या कर डाला ? इतना बड़ा पाप, महाराज सिन्धु को मैं क्या उत्तर दूँगा ? विधवा सावित्री के सामने मैं क्या मुँह लेकर जाऊँगा ?"

अंतरात्मा की प्रताड़ना और पश्चात्ताप की अग्नि ने भुज को विदग्ध कर डाला।

इसके बाद जैसे-जैसे वस्तुस्थिति से आवरण हटाया गया कुमार भोज को सुरक्षित पाकर भुज की व्यथा कुछ कम हुई, सब काल के अधीन है तो लोभ किसलिए, अनीति क्यों, दुराचरण किस हेतु ? भुज ने विधिवत् भोज को राज्यासन सौंपा और स्वयं तप के लिए प्रस्थान कर दिया।

नष्टो कान्या गति

विक्रमी सम्वत् के प्रवर्त्तक महाराजा विक्रमादित्य की राजसभा लगी हुई थी। उन्होंने अपने राज्यभर में वाममार्गी साधनाओं और आचारों पर प्रतिबन्ध लगा दिया था।

उस दिन सभा में किसी आसुरी-प्रवृत्ति के तान्त्रिक उपासक ने सभा में प्रवेश किया। लोगों की धारणा इस प्रकार बनी हुई थी कि नैतिक और सात्विक उपायों को छोड़कर शक्ति संवर्धन के लिए अन्य प्रयास करने वाले लोग राक्षस होते हैं। आगन्तुक की वेश-भूषा भी कुछ इसी प्रकार की थी। उसने आते ही राजा का अभिवादन किया और अपना अभिप्राय व्यक्त करते हुए कहा—"राजन् मुझे एक विशेष साधना के लिए नर-बलि की आवश्यकता है और मैं इसके लिए आपकी अनुमति प्राप्त करने आया हूँ।"

सभासदों सहित सम्राट् भी आश्चर्य में पड़ गये। अब तक किसी भी व्यक्ति ने इस प्रकार का आग्रह नहीं किया था। वामाचारी लोगों का जिस प्रकार दमन किया था उसी से लोगों में उन साधनाओं के प्रति—मद्य, मांस, मीन, मैथुन आदि उपचारों के प्रति भय से ही सही इतनी विरति उत्पन्न हो गई थी कि कोई उनका नाम तक नहीं लेता था और यह साधक तो उन प्रतिबन्धों के सृष्टा-अधिष्ठाता के सामने खड़ा होकर ही कितने निःशंक भाव से अनुनय कर रहा था। सम्राट् ने तुरन्त उत्तर दिया—"किसी भी दशा में मैं नर-बलि की अनुमति नहीं दे सकता ?"

"मैं निवेदन ही नहीं जिज्ञासा लेकर भी आया हूँ। महाराज ! आपने मेरा निवेदन तो अस्वीकार कर दिया, जिसकी पहले ही संभावना थी, पर यह आशा तो है, कि आप जिज्ञासा अवश्य शान्त करेंगे" आगन्तुक ने कहा। 'कहो'—विक्रम की अनुमति थी।

और अभ्यर्थी बोला—"मैंने शास्त्रों में पढ़ा और विद्वानों से सुना है कि दुष्कर्म और पाप व्यक्ति का पतन करते हैं तथा वह 'नष्ट' हो जाता है, पर उस नष्ट होने वाले की क्या गति होती है, यह मेरा प्रश्न है। नष्टो कान्या गति ? कृपा कर इसका समाधान कीजिए।"

विक्रमादित्य ने कालिदास की ओर देखा तथा कालिदास ने कहना शुरू किया—"जब मैं गुरुकुल में पढ़ता था तब एक ब्राह्मण प्रातःकाल ही भिक्षा माँगने के लिए आया। मेरे एक सहपाठी ने उसे दुत्कारते हुए कहा कि तुम्हें लज्जा नहीं आती। तुम इतने हृष्ट-पुष्ट ब्राह्मण होते हुए भी प्रातः पूजन के समय भीख माँग रहे हो।"

'मैं जुआ खेलता हूँ मित्र और रात जुआ खेलने में अपना सब कुछ हार बैठा, इसीलिए इस समय भीख के लिए निकलना पड़ा।" ब्राह्मण बोला।

"छिः छिः ! ब्राह्मण और जुआ। तब तो लज्जा की बात है।"

"जी जुआ खेलते-खेलते मैं मदिरा पान भी करने लगा।"

"हे भगवान ! तुम्हारा इतना पतन।"

"मदिरा पान से वासना वृत्ति जागी और मैं 'वेश्यावृत्ति' भी करने लगा।"

"तो-तो फिर तुम्हारा ब्राह्मणत्व बिलकुल ही जाता रहा।"

"जी हाँ ! जुआ, मदिरापान और वेश्यावृत्ति से धन की भी आवश्यकता पड़ी। इतना धन मेरे पास था नहीं अतः मुझे चोरी भी करनी पड़ी।"

इतना कहकर वह ब्राह्मण चला गया। कुछ देर बाद आश्रम में गुरुदेव लौटे। उस समय सभी ऋषिकुमारों में उस विचित्र भिखारी की ही चर्चा थी। गुरुदेव ने न जाने कब उसका उदाहरण देते हुए कहा—"जो एकबार हीन प्रवृत्ति के मार्ग पर चला, उसे उस प्रवृत्ति के सन्ताप से मुक्त होने के लिए अनेकों बार कुमार्ग पर चलना पड़ता है" और कालिदास ने कहा—"यही है नष्ट हुए पुरुष की गति।"

शाश्वत सौन्दर्य की खोज

मगधराज बिम्बिसार के लिये आज का दिन बड़े हर्ष और गौरव का दिन है। भगवान बुद्ध लोकयश को निस्सार बताते हैं, वे चाहते हैं ऊँच-नीच, छोटे-बड़े का भेद संसार में न रहे, जीव, मात्र परस्पर समता, ममता और शुचिता का जीवन-यापन करते हुए सुखपूर्वक रहें, वे छोटे बनकर रहना पसन्द करते हैं इसीलिए राजकीय अतिथि भवन में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ठहरने की अपेक्षा उन्होंने बेलवन को अपना विश्राम-स्थल चुना है तथापि अतिथि, वे सम्राट बिम्बिसार के ही हैं।

एक सामान्य परिचारिका से लेकर मगध नरेश तक की, आज की सज-धज राज्याभिषेक पर्व को फीका कर रही थी। समस्त स्वागत साज तैयार है किन्तु मगध साम्राज्ञी क्षेमा अब तक अन्यमनस्क हैं। अन्तःपुर के स्वाध्याय कक्ष में वे आचार्य धर्मपाल का जीवन-दर्शन पढ़ रही हैं। सागल नरेश भगवान बुद्ध के परम निष्ठावान शिष्य थे उन्हीं की राज-कन्या क्षेमा के अन्तःकरण में तथागत के प्रति उपेक्षा का यह भाव खटकने वाला तो था ही। स्वयं नरेश उपस्थित हुये और पूछा—'प्रियतमे समस्त राज-प्रासाद तथागत की अगवानी के लिये तैयार है किन्तु आपने अभी तक अपने परिधान भी बदले नहीं। राज-कुल अतिथि की यह अवमानना अच्छी नहीं, उठो और स्वागत हेतु शीघ्र तैयार हो जाओ।"

करवट के साथ पुस्तक का प्रस्तुत पृष्ठ बदलते हुए साम्राज्ञी बोलीं—"महाराज ! जिस व्यक्ति के लिए संसार निस्सार हो, सौंदर्य निस्सार हो उस व्यक्ति के सम्मुख जाकर संसारी जीव क्या करे ? वहाँ जाऊँगी तो उनका प्रवचन यही तो होगा, यह संसार भ्रम है, सांसारिक सुख मिथ्या है और मिथ्या है सौन्दर्य जिनके आधार पर ही हम अपने जीवन को सजाते, सँवारते और सुख की कल्पना करते हैं ?"

'आखिर गृही हो या विरक्त', बिम्बसार बोले जाना तो एक न एक दिन सबको ही पड़ेगा, इसलिए पारलौकिक लक्ष्य की तैयारी जाने से पूर्व किया जाना ठीक है। यदि इस तरह का ज्ञान और मार्गदर्शन किसी योग्य पथ प्रदर्शक से मिलता है तो इसमें बुरा क्या ? इसे तो अपना सौभाग्य मानना चाहिए प्रिये ! साम्राज्ञी ने कोई उत्साह प्रदर्शित नहीं किया। इसी बीच तथागत वहाँ आ पहुँचे। समस्त राज-परिवार उनके स्वागत में दौड़ पड़ा। स्वयं महाराज भी उपस्थित हुए किन्तु क्षेमा नहीं आई। भगवान बुद्ध ने, क्षेमा जब कन्या ही थी तभी सागल में उसे देखा था उन्होंने क्षेमा की कुशल-क्षेम पूछी और साथ ही समझ भी गये कि उसका सौन्दर्य अहंकार ही उसे यहाँ आने में बाधक बना है।

इधर वे अन्य सब लोगों से बातचीत कर रहे थे उधर उनके योग प्रभाव से क्षेमा को योग निद्रा आ गई। उसने देखा एक अत्यन्त सौन्दर्यवती अप्सरा भगवान बुद्ध को चँवर डुला रही है। कुछ ही निमिष के स्वप्न में उन्होंने अप्सरा की बाल्यावस्था, यौवन और जरा तीनों अवस्थाएँ देखीं। उसका शिथिल जर्जर गात, पके बाल, धँसी आखें देखते ही क्षेमा का अन्तर्मन व्याकुल हो उठा, कहाँ गया उसका यौवन, कहाँ गया वह सौन्दर्य जो अंग-अंग से काम-भाव टपका रहा था। नींद टूट गई और उसके साथ ही उनकी मोह निद्रा भी। मनुष्य जीवन कितना निस्सार है ? मनुष्य अपने आपको कितना सजाता-सँवारता है पर अंत में विनाश के अतिरिक्त हाथ कुछ नहीं आता, आज सारी भौतिकता बालू के ढेर की भाँति ढह गई। क्षेमा दूसरे क्षण तथागत के चरणों में पड़ी क्षमा माँग रही थी और पूछ रही थी 'आत्मोद्धार का मार्ग' ?

तथागत मुसकराये और बोले—"बेटी क्षेमा ! आत्मोद्धार और आत्म-कल्याण का मार्ग मिलेगा अवश्य, तुम अपने वाह्य सौन्दर्य को भूलकर भीतरी सौन्दर्य की तलाश करो। तुम्हारी जिज्ञासा जितनी प्रबल होती जायेगी लक्ष्य उतनी ही तेजी से अपने आप पास आता चला जायेगा।"

निदान, रोग का या मोह का

महाराज प्रद्युम्न का रोग बढ़ता ही गया। कोई भी ओषधि लाभदायक न हुई। वैद्य निराश हो-होकर अपने घर लौट गये। सारे राज-प्रासाद में उदासी छा गई।

अब क्या हो ? मन्त्रि-परिषद् की बैठक में विचार-विमर्श किया गया। प्रधान सचिव ने महारानी को सुझाव देते हुए बताया—"प्राचार्य पुरन्ध्र वेद-वेदांग के ही पंडित नहीं हैं, आयुर्वेद का भी उन्हें ज्ञान है, क्यों न उन्हें ही बुलाकर महाराज को दिखाया जाय ?"

यह सम्मति सबने पसन्द की। आचार्य पुरन्ध्र आये और उन्होंने रोगग्रस्त प्रद्युम्न का पूर्ण परीक्षण भी किया, पर उनके शरीर में जीवन के कोई लक्षण शेष रहे नहीं थे, सो उन्होंने भी वही बात कही जो शेष वैद्यों ने कही थी। लेकिन राज-परिवार हठ करने लगा, भगवन् ! आप तो सिद्ध महापुरुष हैं, आप सब कुछ कर सकते हैं। कैसे भी महाराज को बचाइये।

पुरन्ध्र ने किंचित हँसकर कहा—'सिद्धि का लौकिक लाभ से कोई संबंध नहीं है, यदि हो भी तो उससे आत्म-कल्याण में बाधा ही पड़ती है। आप सब यह मोह छोड़िये, महाराज आज बच गये तो इनका जरा जर्जर शरीर कितने दिन चलेगा ? मृत्यु भी तो परमात्मा का उपचार ही है। इधर यह सड़ा-गला शरीर छूटा, उधर बढ़िया नया शरीर तैयार, ऐसी मृत्यु पर प्रसन्न होना चाहिए या दुःखी ? आचार्य ने सब तरह समझाया पर आसक्ति भी क्या बला है कि उस समय व्यक्ति तात्कालिक लाभ के लोभ में सनातन स्वार्थ को भी कुचलने को तैयार हो जाता है अन्यथा विधान यही है कि कर्मानुसार जैसा कुछ फल मिलता है, वह यदि दुःख है, रोग है, जरा और मृत्यु है तो उसे भी सुख की ही भाँति सहन किया जाय।

जब लोग न माने तो उन्होंने कहा—"हाँ, एक उपाय अभी है। प्रधानमन्त्री ! आप प्रयत्न करें तो महाराज के प्राण अभी भी बच सकते हैं।"

"आज्ञा दें महात्मन् ! हम महाराज के लिये प्रत्येक सेवा के लिये तैयार हैं"—सचिव ने उत्सुकतापूर्वक निवेदन किया।

महर्षि पुरन्ध्र ने सधे और सीमित शब्दों में कहा—"महाराज को अभी मर जाने दो। थोड़ी देर में ही राजोद्यान में आम का एक वृक्ष है। ये उसमें काष्ठ-कीट के रूप में जन्म ले लेंगे। आप उसे जाकर पकड़ लाना। उसको मार देने से महाराज फिर से जीवित हो उठेंगे।"

सब लोग बहुत प्रसन्न हुए और आचार्य पुरन्ध्र की सिद्धि के गुण गाने लगे। इसी बीच सम्राट का प्राणान्त हो गया।

शव को ढककर महामन्त्री राजोद्यान पहुँचे। थोड़ी ही देर में आचार्य ने जैसा बताया था वैसा ही एक काष्ठ-कीड़ा मिल गया। उसे पकड़ने के लिये मन्त्री वृक्ष पर चढ़े, पर वह जिस डाल पर था उस तक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पहुँचते-पहुँचते वह दूसरी डाल पर पहुँच गया। महामन्त्री उस पर भी चढ़े पर वह कीड़ा अस्थिर ही नहीं, चालाक भी था। अपने प्राण बचाने के लिये वह दूसरे वृक्ष पर छलाँग लगा गया। महामन्त्री ने बहुतेरा पीछा किया पर शाम तक भी वह हाथ नहीं आया। महामन्त्री निराश और खाली हाथ लौट आये।

आचार्य हँसे और बोले—"जाओ, अब इनका अन्तिम संस्कार करो, यह मोह तो नाशवान् है। कीड़े को अपने शरीर से इतना मोह है कि वह राजा बनना पसन्द नहीं करता। वैसे ही हम सब भी एक अच्छे और नये जीवन के लिये भी डरते रहते हैं, यह मोह नहीं तो क्या है ?"

आचार्य के यह वचन सुनकर सबका मोह टूटा और सब लोग दाह-संस्कार के प्रबन्ध में जुट गये।

जीवन-मुक्ति की साधना

बहुत समय तक राज्य-सुखों का उपभोग करते रहने के बाद रघुवंश-शिरोमणि राजा इक्ष्वाकु का मन संसार से हटने लगा। उन्हें लगा कि सुख, पदार्थों में नहीं वरन् वह मन की एक शक्ति है, जब मन और इन्द्रियाँ अशक्त हो जाती हैं तो वही वस्तुयें जो पहले सुखद लगती थीं, बोझ बन जाती हैं, उनमें कुछ रस शेष नहीं रहता। मृत्यु की चिन्ता ने उन्हें और भी आहत किया। इसलिये एक दिन वे गुरु वशिष्ठ के पास जाकर बोले—"भगवन् ! अब तक अनात्म कर्मों से घिरा मैं इक्ष्वाकु आत्म-कल्याण की इच्छा से समित्पाणि उपस्थित हुआ हूँ, मुझे उपदेश दीजिये, क्या करना चाहिये ?"

इक्ष्वाकु की श्रद्धा से प्रसन्न गुरु वशिष्ठ ने समझाया—"तप से ही आत्मोत्कर्ष और मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है।"

इक्ष्वाकु ने तप प्रारम्भ किया। उन्होंने भगवान मनु की उपासना की। मनु इक्ष्वाकु की श्रद्धा से द्रवीभूत होकर उनके पास आये और पूछा—"राजन् ! कहो मैं तुम्हारी क्या सहायता कर सकता हूँ ?" इक्ष्वाकु ने भगवान मनु को सादर प्रणाम करते हुए निवेदन किया—"प्रभु ! आत्म-कल्याण की इच्छा से मैंने गुरु वशिष्ठ से दीक्षा ली, उन्होंने मुझे तप करने की प्रेरणा दी। मैंने उपासना तो प्रारम्भ कर दी तप का स्वरूप अभी तक मेरी समझ में नहीं आया।"

मनु बोले—**"स्वाध्याय-सत्संग।"** और यह कहकर वे अन्तर्धान हो गये। इक्ष्वाकु घर लौटे और शास्त्रों, उपनिषदों से लेकर महापुरुषों के उपाख्यानों का संकलन किया और उनके स्वाध्याय में जुट गये। स्वाध्याय से उनको विश्व-प्रपंच और विश्व के अनेक सूक्ष्म रहस्यों का पता चला। कई बार ऐसे विलक्षण प्रश्न उठते जिनका समाधान स्वाध्याय से नहीं हो पाता था, फलस्वरूप इक्ष्वाकु ने धर्म सभायें आयोजित करनी प्रारम्भ कीं। उन सभाओं में विद्वान्-पुरुषों को आमन्त्रित किया जाता। राजा स्वयं श्रद्धा-भाव से उनकी सेवा करते और उनके सत्संग का लाभ प्राप्त करते, उससे उनके मन की पवित्रता बढ़ी अवश्य पर भीतर ही भीतर वे क्षुब्ध भी कम न थे, क्योंकि उससे उनको मुक्ति का मार्ग न मिला। इस तरह एक वर्ष पूरा हो गया।

नवरात्र उन्होंने फिर वन में बिताये। भगवती का अनुष्ठान इक्ष्वाकु पीछे करते सर्वप्रथम भगवान मनु का आह्वान अवश्य करते। अन्तिम दिन भगवान मनु पुनः प्रकट हुए और बोले—'विचारणा।' बस इतना कहकर वे पुनः अदृश्य हो गये। इक्ष्वाकु फिर घर लौटे और विचार करना प्रारम्भ कर दिया। अभी तक उन्होंने स्वाध्याय और सत्संग से सीखा और ज्ञान तो बहुत प्राप्त किया था पर वह ऐसा ही था, जैसे कोई रोटी के संबंध में ज्ञान तो बहुत रखे पर उसे खाये बिना ही शक्ति प्राप्त करने की बात सोचे। इक्ष्वाकु उस ज्ञान को विचार और व्यावहारिक जीवन में स्थान नहीं दे पाये थे, इसलिये उससे अब तक उन्हें कोई लाभ न मिला था। पर जब उस प्राप्त ज्ञान का विचार और आचरण में अभ्यास करना प्रारम्भ किया तो उनकी मानसिक प्रसन्नता भी बढ़ी और शक्तियों का विकास भी। आचरण की कसौटी पर इक्ष्वाकु का जीवन धीरे-धीरे निखरने लगा। इस तरह एक वर्ष और बीत गया पर मुक्ति का आनन्द इक्ष्वाकु तब भी न ले सके।

इक्ष्वाकु ने पुनः भगवान मनु की शरण ली। भगवान मनु प्रकट तो हुए पर एक क्षण रुके बिना केवल 'असमभाव' कहकर पुनः विलीन हो गये। इक्ष्वाकु घर लौटे, घर की व्यवस्था से राज्य-काज तक, पहले भी निबटाते थे, उसमें कुछ भूलें होती थीं, कई आकर्षण आते थे। उन सभी विषयों में 'मैं कर्त्ता हूँ' ऐसा भाव होने के कारण उसके अच्छे-बुरे परिणाम से भी वे जुड़ जाते थे। इसलिये दुःख, चिन्ता और उद्विग्नताएँ घेरे रहती थीं पर अब उन्होंने देखा, अपना किया कुछ नहीं, मन में विचार और प्रेरणाएँ भी कोई और ही भरता है। इक्ष्वाकु अब भी सब काम करते थे पर असंग भाव के समावेश से पूर्ण अनासक्त भाव से करते थे। किसी कर्म में उन्होंने कामनाओं को नहीं जोड़ा। न्याय, विवेक, सत्य की प्रतिष्ठा के लिए वह सभी काम करते थे, इससे पहले वाला, विषयों में आसक्त रहने वाला मन अनेक चिन्ताओं और उद्विग्नताओं आदि से मुक्त हो चला। कठोर से कठोर दंड देते हुए भी वे उतने ही निस्पृह रहते जितना बड़े से बड़ा धार्मिक आयोजन करते समय।

इतना करते हुए भी मन की वासनाएँ शान्त नहीं की जा सकीं। अपनी इच्छाएँ प्रायः जुड़ जाने से इक्ष्वाकु दीनता और आत्म-दौर्बल्य अनुभव करते। जब तक अशक्ति हो मनुष्य परमानन्द की प्राप्ति भी कैसे कर सकता है ? सो वह पुनः योग-पीठ पहुँचे और भगवान को कातर स्वरों से जा पुकारा।

साधना मार्ग पर उत्तरोत्तर अग्रसर होते हुए इक्ष्वाकु के मन की बात जानने वाले मनु ने शिष्य के शीश पर हाथ फेरा और कहा—'विलापिनी' अर्थात् 'वासनाओं का परित्याग कर।' इक्ष्वाकु ने अब अपनी इन्द्रियों पर कठोर प्रतिबन्ध लगाकर उन्हें वशवर्ती बनाना प्रारम्भ कर दिया। अस्वाद व्रत से जिह्वा पर विजय प्राप्त की, उससे कामेन्द्रिय पर सहज ही नियन्त्रण हो गया। यह दो ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इन्द्रियाँ सशक्त थीं, उनके नियन्त्रण में आते ही इक्ष्वाकु का मन ईश्वरीयभूत होने लगा। वे घण्टों तन्मयतापूर्वक ब्राह्मी स्थिति में बैठे 'विचार-समाधि' में विचरण करने लगे। उस अवस्था में कई बार गतिरोध उत्पन्न होता। इक्ष्वाकु आनन्द के स्वरूप को समझने लगे तो एक दिन भगवान मनु स्वयं प्रकट हुए। इक्ष्वाकु ने उन्हें प्रणाम कर पूछा—"भगवन् ! शिष्य के द्वार आपका आना मंगलकारक है, सेवा का निर्देश दें ?"

मनु बोले—"तात् ! मोक्ष की इच्छा वाले प्रत्येक साधक को लक्ष्य तक पहुँचाना मेरा धर्म है, तूने भगवान की शरण ली है तो तेरी कुशल-क्षेम भी उन्हें ही वहन करनी थी, मैं उन्हीं की प्रेरणा से तुझे यह बताने आया हूँ कि तू केवल प्रेम का अभ्यास कर उससे तेरी आनन्द रूपी स्थिति परिपक्व होगी।" यह कहकर मनु अपने लोक को चले गये।

इक्ष्वाकु ने सृष्टि के सम्पूर्ण प्राणियों को एक ही चेतना के विभिन्न रूप मानकर उनसे प्रेम भावनाओं का विकास प्रारम्भ किया। सारे संसार को वे अपना स्वरूप देखने और सबसे प्रेम करने लगे, उससे उन्हें शुष्क और नीरस, अनुपयोगी और तुच्छ वस्तुओं में भी आनन्द की झलक मिलने लगी। पाँचवीं भूमिका इक्ष्वाकु ने प्रेम भावनाओं के विकास द्वारा पार की। अब वे जीवन्मुक्त अवस्था में सर्वत्र विचरण करने लगे।

घूमते हुये इक्ष्वाकु की आत्मा मनु लोक में जा पहुँची। लोग उनके जाग्रत शरीर को पृथ्वी में देखते थे पर इक्ष्वाकु की आत्मा स्वप्नावस्था के समान कहीं और थी। भगवान मनु ने उनका स्वागत करते हुए, छठी भूमिका, 'स्वयं-संवेदन रूपा' स्थिति पर पदार्पण का आदेश दिया। तब इक्ष्वाकु ने अनुभव किया, यह जो संसार है, वह सब ब्रह्म तत्त्व से ही प्रकट हुआ। ब्रह्म ही अपने भीतर से अनेक प्रकार की सृष्टि पैदा करता है। उन्होंने अपने 'अहं भाव' को सच्चिदानन्द स्थिति में विकसित कर छठवीं भूमिका भी पार कर ली। अब उनकी चिर-जाग्रत अवस्था थी। स्वप्न और जाग्रत अवस्था में कोई अन्तर न था। वे आत्मा में आत्मा की अनेक सृष्टियों को बनाने, बिगाड़ने का आनन्द लेने लगे।

अब तक शरीर में रहते हुए उन्होंने सब अनुभव किया था पर ब्रह्म तो अशरीर, अजन्मा, अव्यक्त, अनाम, अरूप है, उसे उसी रूप में ही पाया जा सकता है। इसलिये एक दिन इक्ष्वाकु ने अपने जर्जर तन का परित्याग किया और 'परिप्रौढ़ा' अवस्था को प्राप्त कर ब्रह्म-लोक को चले गये।

ब्राह्मणत्व की पहचान

बहुत पहले भारतवर्ष में एक मनीषी हुए थे। जब उनका अन्तिम समय समीप आया तो राजा उनसे उनकी अन्तिम इच्छा पूछने आए। उन्होंने अन्तिम शब्द मात्र यही कहे कि "आप मेरे बच्चे को इतनी शिक्षा भर दिला दीजिएगा कि वह किसी धनपति अथवा शासनतंत्र की कृपा का भिखारी न रहे।" राजा ने यही किया। उस बच्चे को ज्ञानार्जन के लिए काशी भेज दिया। जिन पुरोहित के संरक्षण में वह बच्चा पल रहा था, उन्होंने उसके युवा होने तथा समुचित ज्ञान अर्जित करने पर कहा कि अब तुम कुछ भेंट लेकर राजा के पास जाओ व उन्हें नमन कर अपने अर्जित ज्ञान का प्रमाण दो। मात्र बौद्धिक ज्ञान प्राप्त किए हुए उस ऋषि पुत्र ने जैसा बताया गया था, वही किया। राजा का बुलावा आने पर खुशामदी रुख अपनाते हुए राजा को भेंट दी एवं चरणों में सिर नवाया। राजा उसकी चापलूसी चेष्टा देखकर निराश हुए। उन्होंने उस युवक से पुनः शिक्षा प्राप्त करने हेतु काशी जाने को कहा। पुनः कुछ वर्षों तक उस युवक ने वेदान्त, दर्शन तत्त्वज्ञान में महारत हो राजदरबार में अपनी उपस्थिति दी एवं इस बार पहली बार से भी अधिक भाँति-भाँति के उपहार भेंट किए। भाव-भंगिमा में विनम्रता इतनी कि कोई भी खुशामद पसंद करने वाला राजा प्रसन्न हो ऊँचा पद दे देता। राजा को मनीषी के वचन याद थे। उन्होंने निराश होकर सोचा कि इसका ब्राह्मणत्त्व अभी भी नहीं जागा है। आत्मसम्मान इसमें विकसित हुआ नहीं, फिर पुरोहित पद देने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

इस बार भी राजा ने उपेक्षा दिखाते हुए कहा कि और ज्ञान अर्जित करो, अभी कमी है। युवक की समझ में कुछ नहीं आया। उसे लगा या तो यह राजा विद्वत्ता का सम्मान करना नहीं जानता या फिर यह मेरी परीक्षा ले रहा है। ऐसा सोचते हुए वह पुनः बंगाल देश चल पड़ा ताकि योग, शास्त्र, व्याकरण आदि का और भी उच्चस्तरीय अध्ययन कर वह राजा को प्रसन्न कर सके। एक वर्ष के परिश्रम के बाद वह लौटा तो अगणित उपहार साथ थे, जो प्रसन्न होकर वहाँ के धनपतियों ने दिए थे। सब राजा के समक्ष रखकर उसने साष्टांग प्रणाम किया। जब तक राजा ने उठने को नहीं कहा, वह विद्वान उठा नहीं, किन्तु उठने पर उसने नरेश की वही रूखी तटस्थ मुद्रा देखी। न स्वागत, न सत्कार, न कोई पद या उपाधि। निराश हो वह नदी किनारे चिन्तन करता हुआ भ्रमण करने निकला। जीवन उसे व्यर्थ लगने लगा था। देर रात तक बैठा सोचता रहा, क्या करूँ ? एक साधु वहाँ से गुजरे। उनकी दिव्य दृष्टि ने हीरे की परख कर ली व छिपे हुए दोष की भी। पहले उससे उसकी गाथा सुनी, फिर उससे बोले—"जिस शास्त्र ज्ञान को तुमने अर्जित किया, उस पर मनन क्यों नहीं किया ? क्या तुम्हें पातंजलि का योग सूत्र एवं गीता का **'समत्वं योग उच्यते'** वाला तत्वदर्शन यह नहीं सिखाता कि आत्मिक सम्पदा से सम्पन्न विभूतिवान को किसी प्रकार की राजकृपा रूपी भिक्षा नहीं चाहिए। तुम्हारा आत्मसम्मान, अन्दर का ब्राह्मणत्व तो इस ज्ञान से और भी प्रखर होना था किन्तु तुम तो उसे भी गिरा बैठे।"

युवक द्वारा भावी मार्गदर्शन माँगे जाने पर साधु ने कहा—"अब इस तत्वदर्शन को जीवन में उतारो। योग-चित्तवृत्ति निरोध का नाम है। इसके उच्चतर सोपानों को प्राप्त करो। पूरी लगन से तप करो, इतना प्रचण्ड तप कि स्वयं इन्द्र भी सारा वैभव तुम्हारे चरणों पर रख दें, तुम्हें आत्मसत्ता के समक्ष वह भी तुच्छ लगे।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

युवक ने जो भी कुछ सीखा-पढ़ा था, उस पर अमल करते हुए स्वयं को साधना-पुरुषार्थ में नियोजित कर दिया। उसे सांसारिक वैभव से कोई मतलब नहीं रह गया। निराहार रहता व सतत् साधनारत रहता। धीरे-धीरे कीर्ति फैली। लोग आते, चरणों में धन-सम्पदा, फल-पुष्प रखते, पर योगीराज ने कभी उन पर दृष्टि नहीं डाली। समाचार राजा के कानों तक पहुँचा। पता चला, वही युवक है जो पहले उनके आदेश पर ज्ञानार्जन हेतु गया था। राजा ने एक परीक्षा और लेनी चाही। अपने प्रधानमंत्री को योगीराज की सेवा में भेजा, कहा—"उन्हें यहाँ लेकर आओ।" मंत्रीजी ने भी जाकर देखा कि यह तो वही युवक है। उन्होंने भी लगभग आदेशात्मक भाषा में कहा—"राजाज्ञा है कि आप हमारे साथ चलें।" योगीराज ने शान्त-संतुलित स्वर में कहा—"हम तो एक परंब्रह्म का अनुशासन मानते हैं। किसी राजा की आज्ञा का यहाँ कोई महत्त्व नहीं। अपने राजा से कह दो कि यदि वे स्वयं आकर मिलना चाहें तो हम कुछ क्षण उन्हें यहाँ आश्रम में दे देंगे। राजा अपनी शासन-व्यवस्था संबंधी कोई परामर्श चाहें तो हमें देने में कोई संकोच नहीं। वह हमारा कर्त्तव्य है।" हतप्रभ मंत्री ने जाकर जब राजा को सारी बात बताई, तो वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने समझ लिया कि जो उस युवक से वह चाहते थे, वह उसने अर्जित कर लिया।

राजा ने जाकर पूरे सम्मान के साथ याचना की कि "अब आप चलिए एवं राजपुरोहित बन शासन का सूत्र संचालन करिए।" योगीराज ने उन्हें धन्यवाद देते हुए कहा कि अब मेरा स्थान जहाँ है, वहीं ठीक है। आप वहीं रहें व राज्य को हमारी अमानत मानकर चलाते रहें। जब भी आप चाहें, मार्गदर्शन लेने आ सकते हैं। राजा ने उनके चरणों में मस्तक नवाया और कहा—"आप धन्य हैं। आपने धर्मतंत्र की न केवल लाज रखी बल्कि उसे पुनः अपने उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित कर दिया है। आप यहीं आश्रम में साधना करते रहें। हम पर अपनी कृपा दृष्टि बनाए रखें। कभी मार्ग से विचलित होता देखें तो मार्गदर्शन देते रहें।"

मानव जीवन की भूल-भुलैया

एक बड़ा सुन्दर शहर था, उसका राजा बड़ा उदार और धर्मात्मा था। प्रजा को प्राणों के समान प्यार करता और उसकी भलाई के लिये बड़ी-बड़ी सुन्दर राज्य व्यवस्थाएँ करता। उसने एक कानून प्रचलित किया कि अमुक अपराध करने पर देश निकाले की सजा मिलेगी। कानून तोड़ने वाले अनेक दुष्टात्मा राज्य से निकाल बाहर किये गये, राज्य में सर्वत्र सुख-शान्ति का साम्राज्य था।

एक बार किसी प्रकार वही जुर्म राजा से बन पड़ा। बुराई तो कर गया पर पीछे उसे बहुत दुःख हुआ। राजा था सच्चा, अपने पाप को वह छिपा भी सकता था पर उसने ऐसा किया नहीं।

दूसरे दिन बहुत दुःखी होता हुआ वह राजदरबार में उपस्थित हुआ और सबके सामने अपना अपराध कह सुनाया। साथ ही यह भी कहा कि मैं अपराधी हूँ इसलिए मुझे दण्ड मिलना चाहिये। दरबार के सभासद् ऐसे धर्मात्मा राजा को अलग होने देना नहीं चाहते थे फिर भी राजा अपनी बात पर दृढ़ रहा उसने कड़े शब्दों में कहा राज्य के कानून को मैं ही नहीं मानूँगा तो प्रजा उसे किस प्रकार पालन करेगी ? मुझे देश निकाला होना ही चाहिये।

निदान यह तय करना पड़ा कि राजा को निर्वासित किया जाय। अब प्रश्न उपस्थित हुआ कि नया राजा कौन हो ? उस देश में प्रजा में से ही किसी व्यक्ति को राजा बनाने की प्रथा थी। जब तक नया राजा न चुन लिया जाय तब तक उसी पुराने राजा को कार्य भार संभाले रहने के लिये विवश किया गया। उसे यह बात माननी पड़ी।

उस जमाने में आज की तरह वोट पड़कर चुनाव नहीं होते थे। तब वे लोग इस बात को जानते ही न हों सो बात न थी। वे अच्छी तरह जानते थे कि यह प्रथा उपहासास्पद है। लालच, धौंस और झूठे प्रचार के बल पर कोई नालायक भी चुना जा सकता है ? इसलिये उपयुक्त व्यक्ति की कसौटी उनके सद्गुण थे। जो अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित करता था, वही अधिकारी समझा जाता था।

उस देश का राजा जैसा धर्मात्मा था वैसा ही प्रधान मन्त्री बुद्धिमान था। उसने नया राजा चुनने की तिथि नियुक्त की और घोषणा की कि अमुक तिथि को दिन के दस बजे जो सबसे पहले राजमहल में जाकर महाराज से भेंट करेगा वही राजा बना दिया जाएगा। राजमहल एक पथरीली पहाड़ी पर शहर से जरा एकाध मील हटकर जरूर था पर उसके सब दरवाजे खोल दिये गये थे। भीतर जाने की कोई रोक-टोक न थी। राजा के बैठने की जगह भी खुले में थी और वह मुनादी करके सबको बता दी गई थी।

राजा के चुनाव से एक-दो दिन पहले प्रधानमन्त्री ने शहर खाली करवाया और उसे बड़ी अच्छी तरह सजाया। सभी सुखोपभोग की सामग्री जगह-जगह उपस्थित कर दी। उन्हें लेने की सबको छुट्टी थी। किसी से कोई कीमत नहीं ली जाती। कहीं मेवे-मिठाइयों के भण्डार खुले हुए थे, तो कहीं खेल, तमाशे हो रहे थे। कहीं आराम के लिये मुलायम पलंग बिछे हुए थे तो कहीं सुन्दर वस्त्र, आभूषण मुफ्त मिल रहे थे। कोमलांगी तरुणियाँ सेवा-सुश्रुषा के लिये मौजूद थीं; जगह-जगह नौकर, दूध और शर्बत के गिलास लिये हुए खड़े थे। इत्रों के छिड़काव और चन्दन के पंखे बहार दे रहे थे। शहर का हर एक गली-कूँचा ऐसा सज रहा था मानो कोई राजमहल हो।

चुनाव के दिन सबेरे से ही राजमहल खोल दिया गया और उस सजे हुए शहर में प्रवेश करने की आज्ञा दे दी गई। नगर से बाहर खड़े हुए प्रजाजन भीतर घुसे तो वे हक्का-बक्का रह गये। मुफ्त का चन्दन सब कोई घिसने लगा। किसी ने मिठाई के भण्डार पर आसन बिछाया, तो कोई सिनेमा की कुर्सियों पर जम बैठा, कोई बढ़िया-बढ़िया कपड़े पहनने लगा, तो किसी ने गहने पसन्द करने शुरू किये। कई तो सुन्दरियों के गले में हाथ डालकर नाचने लगे। सब लोग अपनी-अपनी रुचि के अनुसार सुख-सामग्री का उपभोग करने लगे।

एक दिन पहले ही सब प्रजाजनों को बता दिया गया कि राजा से मिलने का ठीक समय १० बजे है।

www.awgp.org

www.vicharkrantibooks.org

इसके बाद पहुँचने वाला राजा से मिलने का अधिकारी न हो सकेगा। शहर में सजावट चन्द रोज है, वह कुछ समय बाद हटा दी जायगी, एक भी आदमी ऐसा नहीं बचा था, जिसे यह बातें दुहरा-दुहराकर सुना न दी गई हों, सबने कान खोलकर सुन लिया था।

शहर की सस्ती सुख-सामग्री ने सबका मन ललचा लिया, उसे छोड़ने को किसी का जी नहीं चाहता था। राज मिलने की बात को लोग उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगे। कोई सोचता था दूसरों को चलने दो मैं उससे आगे दौड़ जाऊँगा, कोई ऊँघ रहे थे अभी तो काफी वक्त पड़ा है, किसी का खयाल था सामने की चीजों को ले लो, राज न मिला तो यह भी हाथ से जायेगी, कोई तो राज मिलने की बात का मजाक उड़ाने लगे कि यह गप्प तो इसलिये उड़ाई गई है कि हम लोग सामने वाले सुखों को न भोग सकें। एक दो ने हिम्मत बाँधी और राजमहल की ओर चले भी पर थोड़ा ही आगे बढ़ने पर महल का पथरीला रास्ता और शहर के मनोहर दृश्य उनके मार्ग में बाधक बन गये। बेचारे उलटे पाँव जहाँ के तहाँ लौट आये। सारा नगर उस मौज बहार में मस्त हो रहा था।

दस बज गये पर हजारों-लाखों प्रजाजनों में से एक भी वहाँ न पहुँचा। बेचारा राजा दरबार लगाये हुए अकेला बैठा हुआ था। प्रधानमन्त्री मन ही मन खुश हो रहा था कि उसकी चाल कैसी सफल हुई ? जब कोई न आया तो लाचार होकर उसी राजा को पुनः राज भार सँभालना पड़ा।

यह कहानी काल्पनिक है परन्तु मनुष्य जीवन में यह बिलकुल सच उतरती है। ईश्वर को प्राप्त करने पर हम राज्य-मुक्ति-अक्षय आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। उसके पाने की अवधि भी नियत है। मनुष्य जन्म समाप्त होने पर यह अवसर हाथ से चला जाता है। संसार के मौज तमाशे थोड़े समय के हैं यह कुछ काल बाद छिन जाते हैं। सब किसी ने यह घोषणा सुन रखी है कि संसार के भोग नश्वर हैं, ईश्वर की प्राप्ति में सच्चा सुख है, प्रभु की प्राप्ति का अवसर मनुष्य जन्म में रहने तक ही है परन्तु हममें से कितने हैं जो इस घोषणा को याद रखकर नश्वर माया के लालच में नहीं डूबे रहते ?

अवसर चला जा रहा है। हम माया के भुलावे में फँसकर तुच्छ वस्तुओं को समेट रहे हैं और अक्षय सुख की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते। हमारे इस व्यवहार को देखकर शैतान मन ही मन खुश हो रहा है कि मेरी चाल कैसी सफल हो रही है ? मनुष्य जीवन का यही हाल है।

प्रपञ्च प्रेम नहीं—निःस्वार्थ प्रेम

नारद को स्वास्थ्य बहुत प्रिय था, सो वह सदैव टहलते रहते थे। क्रियाशील जीवन जीने का उनका स्वभाव ही बन गया था। एक बार वे पितामह ब्रह्मा के राज्य में विचरण कर रहे थे। पीयूष पावन पर्वत की तलहटी में भ्रमण कर रहे नारद ने एक विचित्र वृक्ष के दर्शन किये। इस वृक्ष में तना था, डालियाँ थीं, पर वह सब ठूँठ-से लगते थे। हरियाली तो दूर, वृक्ष में एक भी पत्ती नहीं थी। हाँ, फल अवश्य थे, पर वे काले थे। उस वृक्ष के नीचे सैकड़ों जीव-जन्तु और पक्षी मरे पड़े थे। विचारशील नारद ने पहले ही अनुमान कर लिया कि यह फल विषैले होंगे। इन जीवों ने इनको खाने का प्रयास किया होगा और इस प्रयत्न में ही वे अपनी जान गँवा बैठे होंगे।

नारद ने सोचा, जीव तो मरणधर्मा है ही, उसके लिये दुःख करने से क्या लाभ ? किन्तु उस वृक्ष के पत्र विहीन होने और फलों के विषैले होने का उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। जब उनकी विचार-शक्ति ने काम नहीं दिया, तो अपनी जिज्ञासा शांत करने के लिये वे पीछे लौट पड़े और वहाँ से चलकर सीधे पुराण पुरुष ब्रह्माजी के पास जाकर पूछने लगे—"भगवन् ! आपकी सृष्टि में विष-फल ! ऐसा तो अनन्त सृष्टियों में कहीं भी नहीं देखा। यह वृक्ष कहाँ से आया भगवन्, जिसमें एक भी पत्ता नहीं ? मृत्यु-मुख में पहुँचाने वाले यह फल क्या कभी शीतल और सुमधुर नहीं हो सकते हैं ?"

दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए विधाता बोले—"तात ! बहुत दिन हुए यहाँ एक युवक आया। वह जिससे मिलता, भक्ति और वैराग्य की बातें करता। लोगों ने कहा, पागल हो गया है यह। तुम जानते ही हो, मनुष्य की स्थूल बुद्धि तो केवल स्थूल और स्वार्थपूर्ण बातें ही सोच सकती हैं। पारमार्थिक तत्वों की अनुभूति तो साधनशील और धार्मिक व्यक्तियों की होती है। घर वालों ने भी उसे निकाल दिया। युवक का एक हाथ खराब हो चुका था, तो भी प्रत्येक आध्यात्मिक-धार्मिक पुरुष में श्रम और स्वाभिमान के जो लक्षण होने चाहिये, वह उसमें पर्याप्त मात्रा में थे। उसने अपनी आजीविका आप कमाने का निश्चय कर लिया।

उसने विचारपूर्वक देखा, कुछ आवश्यक नहीं कि दूसरे लोग कृषि या राज्याश्रय से आजीविका प्राप्त करते हैं, तो वह भी वैसा ही करे। अपंग था वह, इसलिये अपने लिये उसे प्राकृतिक जीवन ही उपयुक्त लगा। उसने देखा, जिस तरह सृष्टि के अन्य जीवों की आहार संबंधी आवश्यकताएँ सीमित हैं, उसी प्रकार मनुष्य भी थोड़े में अपना काम चला सकता है। शेष समय परमार्थ साधन में लगाया जा सकता है, सो उसने अपने लिये कुछ फलों वाले पौधे लगाने और उनसे अपना आहार प्राप्त करने का निश्चय कर लिया।

बिना किसी आयुध के धरती खोदना कठिन था नारद ! तो भी स्वावलम्बी व्यक्ति साधनों की परवाह नहीं करते। उस युवक ने अपना काम प्रारम्भ किया। वह बड़ी कठिनाई से कभी एक ढेला खोद पाता, कभी दो। पर उसमें आशा और उत्साह की कमी दिखाई न देती थी। ईश्वरीय सत्ता पर उसे बड़ा भरोसा था, वह कई दिन तक ऐसे ही खुदाई करता रहा। उसकी बहिन आई और हँसती हुई निकल गई। उसकी दृष्टि में भाई जैसा मूर्ख इस सृष्टि में दूसरा नहीं था। कुछ देर में पत्नी आई—उसके हाथ में शीतल जल से भरा हुआ घड़ा था। युवक ने बड़ी आशा से हाथ उठाया और इस आशय से मुँह से लगाया कि वह थोड़ा-सा पानी पिला देगी किन्तु हाय री आसक्ति ! पत्नी से जल पिलाना तो दूर, दो मीठे शब्द भी नहीं बोले गये। उपहास के स्वर में उसने कहा—"भागीरथजी ! और थोड़ा खोदिये, गंगाजी शीघ्र निकलने वाली हैं।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मुँह से लगा हाथ निराश नीचे लौट आया, युवक धीरे-धीरे फिर मिट्टी खोदने लगा। तभी उधर से पिता आया सिर पर फलों का टोकरा था। भूखे युवक ने इंगित कर एक नन्हा-सा टुकड़ा खाने को माँगा। फल तो नहीं, भर्त्सना अवश्य मिल गई, मूर्ख, दिन भर निठल्ला बैठा रहता है। खाना आकाश से टपकता है क्या ? उठ, कुछ काम कर। अपना भोजन आप कमा। युवक की आँखें भर आईं, बेचारा कुछ बोल नहीं सकता था। भूखा-प्यासा धरती खोदने में लगा रहा। पर मन सोच रहा था, संसार में प्रेम और दया के स्रोत न सूखें तो मनुष्य कितना खुशहाल हो सकता है ? साधनों के अभाव से नहीं, संसार के दुःख का प्रमुख कारण भावनाओं के अभाव की सत्यता आज स्पष्ट हुई।

ज्येष्ठ की दशमी, प्रातःकाल जैसे ही उसने मिट्टी का एक ढेला हटाया कि उसकी आँखें चौंधिया गईं। कोई बहुमूल्य मणि का टुकड़ा उसके हाथ आ गया ? उस मणि को लेकर खड़ा हुआ, तो लोग भ्रम में पड़ गये कि आज समय से पहले ही सूर्योदय कैसे हो गया ? जहाँ तक प्रकाश पहुँचा, लोग भागते चले आये और युवक के भाग्य की प्रशंसा करने लगे। बहिन आई और भाई को नहलाने लगी। पत्नी आई और उसके शरीर पर चन्दन का लेप कर उसे बहुमूल्य वस्त्र पहना गई। पिता मधुर मिष्ठान्न व पकवान से सजा थाल लेकर आया और बोला—"वत्स ! बहुत भूखे दिखाई देते हो, लो पहले भोजन कर लो।" युवक को इस मिथ्या मोह और जग-प्रपञ्च पर हँसी आ गई। उसने वह सारे वस्त्राभूषण उतार फेंके, भोजन भी नहीं लिया। उस स्थान पर सुमधुर फलों का पौधा लगाकर वह अपनी मणि लिये हुए एक ओर न जाने कहाँ चला गया ? उस दिन से आकृति तो क्या, उसकी छाया के भी दर्शन नहीं हुए। हाँ, उसका रोपा हुआ वृक्ष कुछ दिन में बड़ा होकर मीठे फल अवश्य देने लगा।

धीरे-धीरे युवक का यश सारे विश्व में गूँजने लगा। जो भी पर्वत से मणि निकलने की बात सुनता, उधर ही दौड़ा चला आता। देखते-देखते सैकड़ों ही लोग इस पर्वत की खुदाई करने लगे। उन सबके मन में एक ही कामना थी, हमें भी मणि मिले। सच है, संसार में मोहग्रस्त और स्वार्थी व्यक्ति ही अंधानुकरण करते और उसके दुष्परिणाम भुगतते हैं। मणि तो मिली नहीं, एक दिन खोदते-खोदते एक भारी-भरकम पत्थर का टुकड़ा निकल आया। उसे हटाने के लिये सब लोग एकजुट होकर प्रयत्न करने लगे। सामूहिकता की शक्ति का क्या कहना ? सो हे नारद ! पत्थर हट गया, पर उसके पीछे एक भयंकर नाग छिपा बैठा था। वह फुँकार मारकर दौड़ा, लोग भागे, पर उसने उनमें से अधिकांश को वहीं डस लिया। भागते समय यही लोग उस वृक्ष से टकराये, फलस्वरूप विषधर का विष उसे भी व्याप गया। उस दिन से इस वृक्ष के सब पत्ते झड़ गये और फल भी विषैले लगने लगे। नारद ! इसके बाद से आज तक किसी ने भी इस वृक्ष के नीचे बैठकर शीतल छाया प्राप्त करने का सुअवसर नहीं पाया।

नारद ने बड़े विस्मय के साथ पूछा—"भगवन् क्या यह वृक्ष फिर हरा नहीं हो सकता ?" विधाता गम्भीर हो गये और धीरे-धीरे बोले—"असंभव क्या है, सृष्टि में नारद ! पर आज तो सारी धरती के लोगों को ही स्वार्थ और प्रपंच के नाग ने डस लिया है। जितने लोग इस शान्ति रूपी वृक्ष से टकराते हैं, उतने ही फल और अधिक विषैले हो जाते हैं। उस युवक की तरह कोई और निःस्वार्थ, प्रेमी सन्त आये और उस वृक्ष का स्पर्श करे, तो यह फिर से शीतल, सुखद और सुमधुर फलों वाला वृक्ष क्यों नहीं बन सकता ?"

जिज्ञासा और धैर्य में आत्म-ज्ञान की पात्रता सन्निहित

प्रजापति ने एक बार यह घोषणा की कि "आत्मा अजन्मा, अमर तथा अविनाशी है। वह ही सत्य एवं नित्य है। वही एकमात्र लक्ष्य है प्राणी का ! उसका सम्पूर्ण ज्ञान पा लेना ही सच्ची वास्तविकता है। उसे जान लेने पर मनुष्य के लिये तीनों लोकों की सम्पदायें सहज ही संभाव्य हो जाती हैं।"

घोषणा सुनकर देवता तथा असुर दोनों ही इस आत्म- ज्ञान को पाने के लिये लालायित हो उठे। तब सभी ने मिल कर यह तय किया कि दोनों वर्ग अपना-अपना एक-एक प्रतिनिधि भेजें, जो प्रजापति से आत्म-ज्ञान सीखकर आये और वह अपने-अपने वर्ग में सबको सिखाए।

देवताओं ने इन्द्र को तथा असुरों ने विरोचन को इस शुभ कार्य के लिये चुना। दोनों साथ-साथ ही चल पड़े।

प्रजापति ने देखा, इन्द्र तथा विरोचन दोनों ही समिधायें हाथ में लिये चले आ रहे हैं। उन्होंने हँसकर प्रश्न किया—"कहिए मित्र ! आज इधर कैसे आना हुआ ?"

इन्द्र विनत वपु होकर बोले—"आज आप हमें मित्र कहकर सम्बोधित न करें। आज तो हम आपके शिष्य बनकर आत्मज्ञान पाने की अभिलाषा से आये हैं।"

प्रजापति ने दोनों को अपने यहाँ ठहराया और बत्तीस वर्ष ब्रह्मचारी की तरह रहने को कहा। दोनों यम-नियमों का पालन करते हुए वहीं रहने लगे।

अवधि पूर्ण होने पर एक दिन प्रजापति ने दोनों को बुलाया और कहा—"आँख की पुतली में अपना प्रतिबिम्ब देखो। जल में अथवा दर्पण में देखो। यह जो आत्मा है, सर्वत्र व्याप्त है तुम्हारे इस शरीर में भी।"

दोनों ने अपने-अपने शरीर को खूब सजाया और चल पड़े, विरोचन अपने दल में पहुँचे। सभी ने स्वागत किया। सब उत्सुक हो उठे, विरोचन आत्मा का ज्ञान लेकर आये हैं। हमें भी बतायेंगे। विरोचन ने उसी दिन से सबको कहना प्रारम्भ कर दिया—"यह शरीर ही आत्मा है। इसे खूब सुन्दर बनाओ। सुन्दर वस्त्र, आभूषण पहनो। सुख, चैन का जीवन व्यतीत करो। इसी की प्रशंसा करो और इसी की आराधना।"

और उसी दिन से असुर शरीर सुख में ही डूब गये। आज भी असुरों को सच्चा ज्ञान नहीं है, कि आत्मा क्या है ? और कैसे उसके स्वरूप को जाना जा सकता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है ? वे शरीर सुख को ही चरम आनन्द माने हुए हैं। भौतिकता में डूबे हुए हैं, स्वार्थ सिद्धि में ही संलग्न हैं।

किन्तु इन्द्र की आत्मा को इस उत्तर से सन्तोष न हुआ। वे उस समय तो चले गये किन्तु कुछ काल में ही वापस आये और पुनः प्रजापति के समक्ष आ उपस्थित हुए। बोले "मेरी जिज्ञासा शान्त नहीं हुई देव ! यदि शरीर ही आत्मा है, तो फिर वह अनश्वर तथा अविनाशी कैसे हो सकता है ? शरीर तो मरणधर्मा है।"

प्रजापति बोले "तुम्हारी यह जिज्ञासा ही तुम्हें तुम्हारे लक्ष्य तक पहुँचा देगी। तुम बत्तीस वर्ष और यहाँ निवास करो।"

इन्द्र पुनः बत्तीस वर्ष वहीं रहे। अवधि के अन्त में प्रजापति ने बताया—"स्वप्न चेतना में जो कुछ प्रभु की तरह भ्रमण करता है, वही आत्मा है।"

सुनकर इन्द्र चले तो गये, पर पूर्ण सन्तुष्टि अब भी नहीं हुई थी। आधे रास्ते से ही लौट आये और अपनी शंका व्यक्त की, "भला स्वप्न में की गई अनुभूति आत्मा कैसे हो सकती है ? स्वप्न में तो दुःख भी होता है, पीड़ा भी होती है, अन्य भी कई इन्द्रियजन्य अनुभूतियाँ होती हैं जबकि आत्मा तो सुख-दुःख से परे-इन्द्रियातीत है ?"

प्रजापति इस बार भी अति प्रसन्न हुए और बोले—"तुम्हारी शंकाएँ बिल्कुल ठीक हैं। तुम सत्य कहते हो। बत्तीस वर्ष और निवास करो यहाँ। तब आगे का ज्ञान भी दूँगा।"

इन्द्र पुनः बत्तीस वर्ष प्रजापति के पास ब्रह्मचर्यपूर्वक रहे और अन्त में प्रजापति ने बताया—"अत्यन्त प्रगाढ़ निद्रा में जो स्वात्मा अखण्ड आनन्द की अनुभूति करता है, वही आत्मा है।"

इन्द्र पुनः सुरलोक को चले गये। पर मन अभी भी अशान्त था। जिज्ञासा तृप्ति नहीं पा सकी थी। चेतना उद्वेलित थी !

सब कुछ मिलकर उन्हें फिर घसीट लाया और प्रजापति के सम्मुख ला खड़ा किया। इन्द्र ने पुनः प्रजापति के समक्ष अपनी शंका व्यक्त की। "मुझे अभी भी सन्तोष नहीं हुआ है भगवन् ! स्वप्नविहीन गहरी निद्रा में जीव को निज का कोई अनुभव नहीं होता। अपने बारे में उसे कोई चेतना नहीं रहती तो फिर यह चेतनाविहीन प्राणी जिसे सदा प्रकाशमय स्वात्म कहा जाता है, आत्मा कैसे हो सकती है ?"

इस बार इन्द्र की निरन्तर की जिज्ञासा से प्रजापति बहुत प्रभावित हुए उन्होंने उन्हें केवल पाँच वर्ष रहने को कहा। पाँच वर्ष भी पूर्ण हुए और निश्चित समय पर प्रजापति इन्द्र को लेकर ज्ञान देने बैठे। बोले—"इन्द्र ! तुम्हारी ये अत्यन्त उत्कण्ठा तथा प्रबल जिज्ञासा ही तुम्हारे पात्रत्व की कसौटी है। जिस प्रकार बिना सच्ची श्रद्धा के पूर्ण विश्वास नहीं होता, उसी प्रकार बिना सच्ची जिज्ञासा के पूर्ण ज्ञान भी नहीं होता। तुमने अपनी पात्रता सिद्ध कर दी है। यह शरीर तो आत्मा का क्षणिक निवास स्थान है। जब तक आत्मा शरीर में आबद्ध रहती है, तब तक इसका संबंध वांछनीय, अवांछनीय, सुख-दुःख तथा अच्छाई-बुराई से जुड़ा प्रतीत होता है। जिस प्रकार अनन्त प्रकाश में कुछ क्षणों के लिये बिजली, बादल तथा वायु अपना प्रभाव दिखाते और चले जाते हैं। इसी प्रकार विभिन्न शरीर भी कुछ काल को आत्मा को धारण करते और नष्ट हो जाते हैं। मुक्त होने पर आत्मा ज्यों-की-त्यों बनी रहती है और असीम लोकों में उन्मुक्त भ्रमण करती रहती है। अन्त में वह उस परम तत्व में अनन्त आत्मा में ही विलीन हो जाता है। जैसे विभिन्न नदियाँ समुद्र में विलय होकर अपना नाम-रूप खो देती हैं समुद्र ही हो जाती हैं, यही गति तथा स्वरूप इस आत्मा का है। इस सृष्टि का अन्तिम सत्य, यह आत्मा ही है। जीव तथा ब्रह्म में केवल लघु और विराट् का ही भेद है, तत्व की दृष्टि से कोई भेद नहीं।"

अब इन्द्र को सन्तोष तथा तृप्ति हुई। वे सुरलोक आये और समस्त देवताओं को अपना संचित ज्ञान, जो कि उन्होंने एक सौ एक वर्ष के कठिन परिश्रम से अर्जित कर पाया था, प्रदान किया।

सच्चे मन से परमार्थ में रत देवताओं ने अपनी स्वच्छ मनोभूमियों में उसे ऐसे ही ग्रहण किया जैसे सीप ने स्वाति बूँद को और आज भी सच्चे ज्ञान के बल पर ही देवता, देवता बने हुए हैं। असुरों तथा सुरों के भेद की यह एक सुन्दर कसौटी है।

पूर्णता की प्राप्ति

मधु ऋतु की शीतलता थी किन्तु सिद्धार्थ का अन्तस्तल तवे की भाँति संतप्त हो रहा था। निरंजरा का जल प्रवाह जितना अवपल था, योगी की मनःस्थिति उतनी ही चंचल। शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा कृष्ण पक्ष में प्रवेश कर गया किन्तु तथागत के शरीर में अन्न का एक कण भी नहीं गया था, शरीर सूखकर काँटा हो गया था। वासनाएँ शान्त थीं तथापि अन्तःकरण जिस परिपूर्णता को प्राप्त करना चाहता था वह प्रयत्न करने पर भी प्राप्त न हुई।

उरुवेला के नगरश्रेष्ठि की पुत्र-वधू सुजाता ने बहुत पहले निश्चय किया था जिस दिन वह प्रथम बार मातृत्व का सुख प्राप्त करेगी उस दिन वह वट-सावित्री का पूजन सम्पन्न कर परम संस्कारित भोजन से साधुजनों को भोज देगी। सुजाता ने पहली बार अनुभव किया, उसकी पावन कोख में कोई आत्मा आई है, वह माँ बनेगी। कितनी प्रसन्नता हुई थी उस दिन उसे, उमड़ती भावनाओं के साथ आज वह स्वयं ही लत्थि मधु बन गई। गोठ में एक सहस्र गायों को सुजाता ने अपने हाथ से हरित तृण परोसा। एक-एक गाय के पास जाकर उसने मातृ सुलभ स्नेह से उसको चूमा, चाटा व गले लगाया। गायों ने सुजाता का स्नेह पाकर अपने रोयें फाड़ दिये। उनमें मातृत्व का स्नेह दुग्ध बनकर स्तनों में उतर आया। सुजाता ने आज्ञा दी, एक सहस्र गायों का दूध काढ़ लिया गया और वह सारा दूध पाँच सौ स्वस्थ, सीधी गायों को पिला दिया गया। फिर उन पाँच सौ गायों का दूध निकालकर ढाई सौ गायों को पिलाया गया। ढाई सौ गायों से निकाला गया दूध सौ गायों ने पिया। दूध की मधुरता के साथ ही उसमें मातृत्व के संस्कारों की अभिवृद्धि होती गई। उसमें सुसंस्कार भी घुलते और प्रखर होते चले गये। सौ गायों का दूध पचास ने पिया, पचास का दूध पच्चीस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ने पच्चीस गायों का दूध पाँच ने पिया। पाँच गायों का दूध कामधेनु को पिलाते हुए सुजाता ने भारतीय बच्चों में श्रेष्ठ संस्कारों की कामना की। फिर उसने स्वयं ही कामधेनु का दुग्ध शुद्ध स्वर्ण पात्र में निकाला, सुजाता की भावनाएँ भी उस दुग्ध को परम पवित्र बना रही थीं, मातृत्व की पवित्रता से बढ़कर शुचिता संसार में है कहाँ ? आज तो दो माताओं के संस्कार एकाकार हुये थे।

वह दूध लेकर सुजाता घर आई। उसे स्वर्ण कड़ाही पर चढ़ाया गया। सम्मुख घृत, दीप रखकर आम के ईंधन से सुजाता ने खीर पकाई। दूध का एक कण भी नीचे नहीं गिरने दिया। अग्नि देव की स्तुति करते हुये सुजाता ने खीर उतारी और उसका प्रथम नैवेद्य भगवान जातवेद को ही समर्पित कर गंगाजल से अर्घ्य देकर उसने पीत वस्त्र धारण किये। स्वर्ण थाल में वह खीर और पूजन की सामग्री लेकर सुजाता निरंजरा के तट की ओर चल पड़ी।

योगी सिद्धार्थ अब भी समाधि अवस्था में जाने के प्रयास में संलग्न थे, पर उन्हें सफलता नहीं मिल पाई थी। सुजाता उधर से ही निकली उसने देखा कि योगी की देह सूख गई है। आकृति पहचानी-सी लगी उसे याद आया यशोधरा का पाणिग्रहण। सिद्धार्थ के साथ यशोधरा ब्याही गई तब सुजाता उसी के पास थी। सिद्धार्थ को सामने देखकर सुजाता के हृदय में यशोधरा की स्मृति और उसके प्रति अनन्य करुणा के भाव एक साथ उमड़ पड़े। थाल वहीं रखकर उसने सिद्धार्थ को विनत प्रणाम किया और कहा, "तात् ! शरीर वीणा के समान है, वीणा के तार इतने ढीले न करो कि वह स्वर ही न दे और इतना कसो भी मत कि तार ही टूट जाएँ। शरीर परमात्मा का मंदिर है इसे पवित्र रखना चाहिये अन्त नहीं करना चाहिये।" यह कहकर सुजाता ने वह खीर तथागत के आगे बढ़ा दी। योगी ने मातृत्व भरी सुजाता की आँखों की ओर दृष्टि डाली निश्छल करुणा देखकर उनका हृदय द्रवित हो उठा। उन्होंने निरंजरा के तट पर जाकर खीर खाई, जल पिया, क्लान्ति मिट गई, वे पुनः समाधि के लिये बैठे, अस्थिरता न जाने कहाँ चली गई ? समाधि लगी तो फिर उनन्चासवें दिन तब टूटी जब सिद्धार्थ बुद्ध हो गये, बुद्ध भगवान हो गये।

प्रतिभा का दुरुपयोग न हो

मुस्लिम सल्तनत के समय सुल्तान महमूद का दरबार कवियों और कलाकारों के लिए अच्छा शरण-स्थल बना हुआ था। उन दिनों प्रायः प्रत्येक राजा-महाराजा अपने दरबार में कवि रखा करते थे, जो उनके शौर्य, पराक्रम और उदारता की मनगढ़न्त कहानियाँ गढ़कर गीत बनाकर गाया करते। राजा-महाराजा अपने प्रशस्ति गीत सुनकर बड़े प्रसन्न होते और कवियों को पुरस्कार भी देते। एक प्रकार से यह व्यवसाय ही बन गया था।

सुल्तान महमूद के प्रसिद्ध राजदरबार में भी एक शायर थे जिनका नाम था, सनाई। सनाई उच्चकोटि के शेर और गजलें लिखते परन्तु वे होतीं सब सुल्तान की प्रशंसा में। प्रायः वे सुल्तान की प्रशंसा में नये-नये शेर रचते, गजलें लिखते और राजदरबार में गाकर सुनाते। इसके बदले में उन्हें पुरस्कार भी खूब मिलता और सम्मान भी। प्रतिष्ठा और पुरस्कार ने उन्हें गर्वोन्नत भी कर दिया था।

एक बार की घटना है। उन्होंने सुल्तान की प्रशंसा में कुछ शेर लिखे। उन्हें सुनाने के लिए वे राजदरबार की ओर चले। मार्ग में एक मदिरालय था, उसमें कोई शराबी मद्य पी रहा था। प्रायः ही लोग वहाँ शराब पीते, उनका ध्यान कदाचित ही उस ओर जाता। उस दिन उनके पैर अनायास ही ठिठक गये। कारण था अन्दर से कुछ आवाज आ रही थी। कोई पियक्कड़ साथी से कह रहा था—"सुल्तान महमूद के अंधेपन की गमजोई में ला एक पैगाम दे।"

"बेवकूफ"—साकी कह रहा था, "कोई सुन लेगा तो तेरा सर सीधा कलम हो जायेगा। क्यों अपनी मौत को दावत दे रहा है ?"

"मौत को दावत नहीं सच बात कह रहा हूँ। इसमें बेजा क्या है ? सुल्तान अंधा नहीं तो क्या है ?"

"अंधेपन की क्या निशानी देखी तूने सुल्तान में।"

"बहुत कुछ देखा है", पीने वाले ने कहा—"सुल्तान के पास सुख से रहने के लिए किसी बात की कमी नहीं। उसके पास धन है, दौलत है फिर उसे कुछ दिखाई नहीं देता। जो चीजें उसके पास हैं उन्हें ही और बटोरने के लिए वह पड़ोसी राज्यों पर हमले करता है। वहाँ लूटमार मचाता है। हजारों बेगुनाहों को मौत के घाट उतारता है। यह अन्धापन नहीं तो क्या है ?"

सनाई वहीं खड़े रहे, कुछ विचारने लगे। अन्दर से फिर वही आवाज आयी, "ला एक और जाम दे। सनाई की बेवकूफी पर।"

अब तो साकी को चिढ़-सी आ गयी। सनाई के कान भी खड़े हो गये, ध्यान से सुनने के लिए। साकी कह रहा था—"तुमने यह क्या बकवास लगा रखी है ? सनाई जैसे उम्दा शायर के लिए तुम्हें यह बोलते शर्म नहीं आती। मानता हूँ दोस्त, सनाई बहुत उम्दा शायर है, पीने वाला कह रहा था—"परन्तु उस-सा बेवकूफ भी दुनिया में खोजे नहीं मिलेगा। वह कागज को रंगता भर है जबकि मालिक ने उसे बहुत बड़ा हुनर दिया। वह नहीं जानता कि खुदा ने उसे क्यों पैदा किया और वह उसकी दी हुई काबलियत को अंधे सुल्तान की तारीफ करने में ही खर्च कर रहा है।"

शराबी की इन बातों को सुनकर, जिसे साकी निरी बकवास ही समझ रहा था, सनाई की आँखें खुल गयीं। उनके हृदय में जैसे तीर से चुभने लगे हों और वे उल्टे पाँव लौट आये, वापस अपने घर। सुल्तान की प्रशंसा में उन्होंने जो नये शेर तैयार किये थे, उनको रास्ते में ही फाड़कर फेंक दिया। बहुत देर तक ही नहीं दो-चार दिनों तक जब सनाई दरबार में नहीं आये तो सुल्तान ने खबर भेजी। सन्देशवाहकों ने वापस आकर जो कुछ कहा, उसने सभी को सकते में ला दिया कि सनाई घर पर नहीं हैं। बाद में पता चला कि सनाई अमुक स्थान पर फकीर के वेश में रुहानी (आध्यात्मिक) गीत गाते देखे गये हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस अस्थिर संसार में सुख ढूँढ़े दुःख होय

कल तक जिस पिंगला के यौवन और सौन्दर्य की चर्चा घर-घर हुआ करती, धनाढ्य युवक उसकी कृपा की एक किरण पर लाख-लाख स्वर्ण मुद्राएँ न्योछावर कर दिया करते थे, आज उस नगर-वधू के भव्य-भवन में एक भी तो अतिथि नहीं आया।

रात का प्रथम पहर बीत गया। अब सड़कों पर कहीं-कहीं ही कोई दृष्टिगोचर होता था। सारा नगर निद्रा देवी की गोद में जा चुका था, पर पिंगला की आँखें पथरा गई थीं, नींद भी उसे त्यागकर चली गई, लगती थी।

एक क्षीण-सी आशा लिये वह पुनः द्वार पर आकर खड़ी हो गई। राज-पथ पर उसने दूर तक दृष्टि दौड़ाई। कुछ लोग उधर ही चले आ रहे थे। कोई सम्पन्न व्यक्ति लगते थे। निराशा आशा में बदलने लगी। निश्चय ही लोग मेरे पास आ रहे हैं। रंग-मंच सजेगा, पाँव थिरकेंगे और उसके बाद धन, विलासिता के सब सुख एक-एक कर शृंखलाबद्ध एक क्षण में पिंगला की आँखों के आगे नाच गये। कल्पना का सुख भी क्या अजीब है, मनुष्य को कहाँ-कहाँ की सैर करा लाता है ? पिंगला की देह में हल्की-सी सिहरन उठी, पर जैसे ही दूसरी दृष्टि पुनः राजपथ की ओर घूमी कि अब तक की आशा फिर निराशा में बदल गई, वह जो इधर आ रहे थे, जिन्हें पिंगला अपना अतिथि समझ रही थी वह किसी गली की ओर मुड़ चुके थे, अब उधर से कुछ कुत्तों के भूँकने की आवाज ही आ रही थी, मानो वे धिक्कार रहे हों पिंगला की आसक्ति को, पर उसे इस 'दर्शन' से क्या संबंध ? वह तो अब भी किसी प्रेमी की प्रतीक्षा में काष्ठवत् खड़ी क्षणिक सुख की कल्पना में डूबी हुई थी।

दासी शांता पास आई और बोली—"मालकिन ! बुरा न मानें तो एक बात कहूँ।" कह शान्ता कुछ तू ही कह, उदास शब्दों में आज्ञा तो दे दी, पर उसकी दृष्टि अब भी राजपथ पर ही अटकी हुई थी।

फिर वह चौंकी, बोली—"यह क्या शान्ता, तू तो कुछ कह रही थी, अब यह दर्पण क्यों दिखा रही है।"

"मुझे जो कुछ कहना है वह इस दर्पण में लिखा है, देवि ! किंचित् उसमें अपनी मुखाकृति डालकर तो देखें।" शान्ता ने बहुत कोमल शब्द कहे और वहाँ से चुपचाप पीछे हट गई।

पिंगला ने दर्पण में देखा—"आज न तो वह रूप था, न सौन्दर्य, यौवन था न आकर्षण जो कभी युवा प्रेमियों को गली-गली से खींच लाता था, उसे पहली बार लगा कि जैसे यह शरीर, यह सौन्दर्य और तरुणाई सब चार दिन के नाशवान् मेहमान हैं, उसी प्रकार संसार के सुख-भोग, वासनाओं का आनन्द भी कितने दिन भोगा जा सकता है ? आज पहली बार उसे सुख और संसार से विरक्ति हुई। उसके हृदय में पहली बार आत्म-ग्लानि उठी और मन पश्चाताप से भर गया। जिस जीवन को मुक्ति जैसे महान् लक्ष्य में नियोजित किया जा सकता था, उसे थोड़े-से सुख के लिये खोखला कर देने की बात वह जितनी ही सोचती उतना ही हृदय दुःख से भर जाता।

एक दृष्टि फिर उठी। उसने देखा भिक्षुओं की टोली आ रही है। महापुरुष बुद्ध उसके आगे हैं, शिष्यगण **"बुद्धं शरणं गच्छामि" "धम्मं शरणं गच्छामि"** कहते हुये आ रहे हैं। पिंगला का गुबार आँखों से बह निकला। यही तो वह सत्य है, जिसे मनुष्य जान नहीं पाया। **"धम्मं शरणं गच्छामि"** का मन्त्रोचारण करती हुई वह नीचे उतरी और तथागत के चरणों में लेट गई। उसके मुँह से इतना ही निकला प्रभु ! नारकीय जीवन की इन यन्त्रणाओं से उबारो और प्रकाश दो। अब मैं भूलकर भी उस सुख की कल्पना न करूँ जिसमें सुख के नाम पर दुःख ही दुःख भरा है।

जीवन को खेल मानकर जीने में शान्ति ही शान्ति

बात वर्षा ऋतु की है जब देवात्मा हिमालय की गोद में स्थित नन्दनवन पुष्पों से सुसज्जित होकर बसंत ऋतु का स्वागत कर रहा था, मैं उन्हीं के बीच जाकर बैठ गया। लगा जैसे मैं भी एक फूल हूँ। यदि ये पौधे मुझे भी अपना साथी बना लें तो मुझे भी अपने खोये बचपन को पाने का पुण्य अवसर मिल जाय।

भावना आगे बढ़ी। जब अन्तराल हुलराता है तो तर्कवादी, कुतर्की विचार भी ठंडे पड़ जाते हैं। मनुष्य के भावों में प्रबल रचना शक्ति है, वे अपनी दुनिया आप बसा लेते हैं। काल्पनिक ही नहीं शक्तिशाली भी, सजीव भी। ईश्वर और देवताओं सबकी रचना उसने अपनी भावना के बल पर की है और उनमें अपनी श्रद्धा को पिरोकर उन्हें इतना महान् बनाया है जितना कि वह स्वयं है। अपने भाव, फूल बनने को मचले तो वैसा ही बनने में देर न थी। लगा कि इन पंक्ति बनाकर बैठे हुए पुष्प बालकों ने मुझे भी सहचर मानकर अपने खेल में भाग लेने के लिए सम्मिलित कर लिया है।

जिसके पास मैं बैठा था वह बड़े से पीले फूल वाला पौधा बड़ा हँसोड़ तथा वाचाल था। अपनी भाषा में उसने कहा—"दोस्त, तुम मनुष्यों में व्यर्थ जा जन्मे। उनकी भी कोई जिन्दगी है, हर समय चिन्ता, हर समय उधेड़बुन, हर समय तनाव, हर समय कुढ़न। अबकी बार तुम पौधे बनना, हमारे साथ रहना। देखते नहीं हम सब कितने प्रसन्न हैं, कितने खिलते हैं, जीवन को खेल मानकर जीने में कितनी शान्ति है, यह हम लोग जानते हैं। देखते नहीं हमारे भीतर का आन्तरिक उल्लास सुगन्ध के रूप में बाहर निकल रहा है। हमारी हँसी फूलों के रूप में बिखरी पड़ रही है। सभी हमें प्यार करते हैं, सभी को हम प्रसन्नता प्रदान करते हैं। आनन्द से जीते हैं और जो पास आता है उसी को आनन्दित कर देते हैं। जीवन जीने की यही कला है। मनुष्य बुद्धिमानी का गर्व करता है पर किस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

काम की वह बुद्धिमानी, जिससे जीवन की साधारण कला, हँस-खेलकर जीने की प्रक्रिया भी हाथ न आये।

फूल ने कहा—"मित्र, तुम्हें ताना मारने के लिए नहीं, अपनी बड़ाई करने के लिए भी नहीं, यह मैंने एक तथ्य ही कहा है ! अच्छा बताओ जब हम धनी, विद्वान्, गुणी, सम्पन्न, वीर और बलवान न होते हुए भी अपने जीवन को हँसते हुए तथा सुगन्ध फैलाते हुए जी सकते हैं तो मनुष्य वैसा क्यों नहीं कर सकता ? हमारी अपेक्षा असंख्य गुने साधन उपलब्ध होने पर भी यदि वह चिन्तित और असंतुष्ट रहता है तो क्या इसका कारण उसकी बुद्धिहीनता मानी जायगी ?"

"प्रिय, तुम बुद्धिमान हो जो उन बुद्धिहीनों को छोड़कर कुछ समय हमारे साथ हँसने-खेलने चले आये। चाहो तो हम अकिंचनों से भी जीवन विद्या का एक महत्त्वपूर्ण तथ्य सीख सकते हो।"

मेरा मस्तक श्रद्धा से नत हो गया, "पुष्प—मित्र, तुम धन्य हो। स्वल्प साधन होते हुए भी तुम्हें जीवन कैसे जीना चाहिये ? यह जानते हो। एक हम हैं, जो उपलब्ध सौभाग्य को कुढ़न में ही व्यतीत करते रहते हैं। मित्र, सच्चे उपदेशक हो, वाणी से नहीं जीवन से सिखाते हो, बाल सहचर, यहाँ सीखने आया हूँ तो तुमसे बहुत सीख सकूँगा। सच्चे साथी की तरह सिखाने में संकोच न करना।"

हँसोड़ पीला पौधा खिलखिला कर हँस पड़ा। सिर हिला-हिलाकर वह स्वीकृति दे रहा था और कहने लगा—"सीखने की इच्छा रखने वाले के लिए पग-पग पर शिक्षक मौजूद हैं। पर आज सीखना कौन चाहता है ? सभी तो अपनी अपूर्णता के अहंकार के मद में ऐंठे-ऐंठे फिरते हैं। सीखने के लिए हृदय का द्वार खोल दिया जाय तो बहती हुई वायु की तरह शिक्षा, सच्ची शिक्षा स्वयंमेव हमारे हृदय में प्रवेश करने लगे।"

हम भी ज्योति धारण करें

सब तरफ हा-हाकार, चीत्कार—चारों ओर अंधकार ही अंधकार। साधन बहुत, शक्ति बहुत, किन्तु अंधकार में उनका उपयोग कैसे हो ? जिन्हें कुछ चाहिए, कुछ का कुछ उठा ले रहे हैं। कुछ लिया इसका सन्तोष क्षणिक पर उससे कार्य सिद्ध नहीं होता..... इसकी खीझ और बौखलाहट बेहिसाब, जिनके पास कुछ देने को है उन्हें पता नहीं किसे देना है ? कुछ दिया इसका गौरव नगण्य और वह निरर्थक गया—बल्कि पाने वालों का अहित हो गया इसकी लानत बेहिसाब। हर कार्य और उसके लिए हर वस्तु पर इससे क्या, सभी बेठिकान, अनर्थ तो होगा ही। कारण अंधकार.....।

इस अंधकार को दूर करो, इसे निकाल बाहर करो, चारों ओर यही चीख, पुकार.....। यह कमबख्त कहाँ से आ गया, हमें चारों ओर से घेरे है, सब काम बिगाड़ रहा है इससे दूर भागो यही उद्‌बोधन..... । पर सब बेकार।

एक नन्हा-सा दीपक मुस्काया..... "कहाँ है अंधकार ?" चारों ओर से आवाजें उठीं, "यहाँ, यहाँ . . . दीपक पहुँचा—पूछा कहाँ..... ? उत्तर मिला 'चारों ओर'। दीपक ने कहा पर अभी तो कहा जा रहा था 'यहाँ'..... यहाँ तो वह नहीं है। लोगों ने चारों ओर देखा सारी स्थिति साफ-साफ दीख रही थी। हाँ अंधकार में खायी ठोकरों और चोटों की कसक जरूर थी, पर वह भी साफ, स्पष्ट दीख रही थीं।

दीपक पर बिगड़ उठे—तुम हमें झूठा सिद्ध करने आये हो। हमारी चोटें देखो, हमारी हालत देखो—यह क्या बिना अंधकार के संभव है ? दीपक शान्त भाव से बोला—"तुम्हें झूठा सिद्ध करने का नहीं—अपना सत्य समझाने का विचार है, पर जो समझे उसी को तो समझाऊँ। तुमने अपनी चोटें देखलीं उनमें मलहम लगाओ, मैं अन्य स्थान देखूँ..... और वह आगे बढ़ गया। मलहम हाथ में लिए लोग अपने अंग टटोलते रहे..... कहाँ उसे लगायें ?

दीपक हर आवाज पर गया, पर कहीं अंधकार नहीं मिला। सब जगह वही क्रम दोहराया गया। दीपक ने सबकी सुनी, दीपक की किसी ने न सुनी। कोलाहल में कौन सुने ? दीपक ने सोचा.....। अचानक वह भी चिल्लाया यहाँ से अंधकार भाग गया, देखो यहाँ। लोगों ने देखा..... अरे सचमुच। दौड़ पड़े उसी ओर वह तो साफ दिखाई पड़ रहा था। भाग-दौड़ में चोटें लगीं पर उनकी चिन्ता नहीं। दीपक के चारों ओर भीड़ लग गई। सब प्रसन्नचित्त अपना-अपना कार्य करने लगे।

एक ने पूछा—"अंधकार किसने भगाया ?" उत्तर मिला—"इस ज्योति ने।" एक बोला..... "तो ज्योति हमें दे दो अपने घर ले जायेंगे.....।" दूसरा बोला नहीं मुझे दो..... और मुझे, मुझे का शोर मच गया।

दीपक ने कहा ज्योति सभी के पास जा सकती है—पर उसकी अपनी शर्त है, कीमत है। लोग हर्ष से पुकार उठे—हम कीमत देंगे—शर्त पूरी करेंगे—ज्योति लेंगे।

"तो सुनो" ज्योति वर्तिका पर ठहरती है..... पर उसे स्नेहसिक्त होना चाहिए..... और हाँ उसे धारण करने के लिये ऐसा पात्र जो सीधा रह सके और स्नेह को स्वयं ही न पी जाये। यह सब साधन हों तो करो तैयारी। फिर मुझे स्पर्श करो और ले जाओ ज्योति। साधन तो बहुत हैं—पर उस क्रम में जमने को तैयार नहीं। कोई पात्र लिए है, कोई स्नेह, कोई वर्तिका..... । उसे एक साथ करके पूरी ज्योति नहीं..... अपने साधन के अनुपात में अंश ही प्राप्त करना चाहते हैं।

कुछ ने संयोग जुटाया दीपक ने छूआ, प्रकाशित हुए और चल पड़े। शेष शिकायत करते हैं, यह हमें नहीं छूता..... हमें ज्योति नहीं देता। स्वयं उस पर कूदने को तैयार हैं..... पर दीपक उनसे ऊँचा है.....।

हर व्यक्ति के लिए ऐसा अवसर आता है। युग ज्योति उसका आह्वान करती है। पर वह उसको लाभ उठाने की कोशिश कम, शिकायत का प्रयास अधिक करता है। हम कहीं भी किसी भी युग में हों, ज्योति धारण कर सकते हैं.....। अंधकार से संत्रस्त क्यों हों—आओ ज्योति धारण करें—फिर अंधकार खोजने पर भी नहीं मिलेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मेरा क्या जलता

परम योगी शुकदेव मुनि, राजा जनक के राज्यसत्ता और सभी सुख भोगते हुए भी विदेह और ब्रह्मज्ञानी होने के रहस्य का पता लगाने के लिए उनके अतिथि बने। निकट से देखकर उन्हें ऐसा लगा कि राजा निरे इन्द्रिय लोलुप और विलासी हैं।

एक दिन प्रातःकाल वे महाराज के साथ नदी में स्नान कर रहे थे। राजा के मूल्यवान और मुनि के वल्कल वस्त्र तट पर ही पड़े थे। दोनों नदी के जल में गले-गले तक पानी में खड़े गायत्री मन्त्र का जप करने लगे। तभी जहाँ उनके वस्त्रादि थे, उस क्षेत्र में आग लग गयी उनके कपड़े जलने लगे। शुकदेव मुनि ने दौड़कर अपने वल्कल वस्त्र उठा लिये। पर यह क्या ? राजा जनक इस अग्नि काण्ड से निर्लिप्त उपासना में लगे हैं। वे पूजा समाप्त कर बाहर निकले तो मुनि ने उन्हें अग्निकाण्ड की बात बतायी। वे निर्लिप्त भाव से बोले—'सारी मिथिला जल जाती तो भी मेरा क्या जलता ?' शुकदेव मुनि को अपनी शंका का समाधान मिल गया उसकी इस निर्लिप्तता में।

(१) आत्मज्ञान के बाद सांसारिक वस्तुओं का माया-मोह भी नहीं रहता।

(२) गृहस्थ में भी आत्मसाधना द्वारा मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है (जनक)।

शान्ति का मार्ग

जिज्ञासु ने सन्त से पूछा—"गुरुदेव शान्ति का मार्ग बता दीजिये और सुखी बनने की विधि बता दीजिए।"

कई दिन तक तो गुरुदेव टालते रहे पर जब जिज्ञासु का आग्रह बहुत बढ़ गया तो उन्होंने कहा—"जाओ संसार में किसी सर्व सुख-शान्ति सम्पन्न का अंगरखा माँग लाओ और उसे पहन लो तुम्हारी आकांक्षा पूरी हो जायेगी।"

जिज्ञासु घर-घर और गाँव-गाँव घूमा, सर्वसुखी कोई न मिला। बहुत दिन बाद एक दरवेश मिला, जो अत्यन्त प्रसन्न था, उसने उससे पूछा—"क्या आप सर्वसुखी हैं", दरवेश ने स्वीकृतिसूचक सिर हिला दिया। तब जिज्ञासु ने उससे अंगरखा देने की प्रार्थना की, दरवेश ने कहा—अंगरखा पास होता तो मैं फिर सुखी कैसे रह सकता था ? जिज्ञासु को मार्ग मिल गया, उसने अनासक्त आत्म-चिन्तन के साथ अपने को जोड़ लिया।

संसार में सुखी तो वही है, जिसने पदार्थों से मन हटाकर प्रभु पर उसे केन्द्रित कर लिया है।

आश्रम पहले ही बन गया

एक राजा उस महात्मा का शिष्य बनना चाहता था जिसका आश्रम सबसे बड़ा हो। राजा भूमि तो मुफ्त देते थे पर आश्रम बनाने की जिम्मेदारी महात्माओं पर ही छोड़ते थे।

राज गुरु बनने की आशंका से प्रेरित कितने ही महात्मा आये और दूसरों की तुलना में बड़ा आश्रम बनाने की प्रतिस्पर्धा में लग गये।

कुछ समय बाद राजा उन आश्रमों की प्रगति देखने निकले। विस्तार में एक-दूसरे से बढ़-चढ़कर तैयारी कर रहे थे। राजा ने कौतूहलपूर्वक उन सबका क्रिया-कलाप देखा।

एक महात्मा ऐसे भी मिले जिनकी गणना आश्रम बनाने वालों में तो थी पर एक पेड़ के नीचे निश्चिन्त चादर पसारकर सो रहे थे।

राजा ने आश्चर्य से पूछा उनका आश्रम निर्माण कार्य अभी तक क्यों आरम्भ नहीं हुआ ?

सन्त ने कहा—"मेरा आश्रम बहुत पहले ही बनकर तैयार हो गया। यह सारा संसार अपना ही, आश्रम है, दीवारें खींचकर उसकी विशालता को घटाऊँ क्यों ? राजा का मस्तक श्रद्धा से नत हो गया।

जिसको 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अनुभूति होती है वही सच्चा उपदेशक, गुरु और सन्त कहला सकता है।

आनन्द का मूल्य

स्वामी रामतीर्थ अमेरिका गये। वहाँ उनके प्रवचनों से काफी लोग प्रभावित हुये। एक दिन शाम को प्रवचन के बाद एक महिला स्वामीजी के निवास पर भेंट के लिए आई और कहने लगी—"स्वामीजी ! पिछले दिनों से मेरा चित्त अशान्त रहता है। जब से इकलौते पुत्र की मृत्यु हुई है, रात्रि को गहरी नींद भी नहीं आती। जीवन में बड़ी नीरसता आ गई है। क्या आप मुझे कोई ऐसा उपाय बता सकते हैं, जिससे जीवन में पुनः सुख-शान्ति और आनन्द की स्थापना हो सके।

"क्यों नहीं ? पर आनन्द की प्राप्ति के लिए उसका मूल्य चुकाना होगा।" स्वामीजी ने उस महिला से कहा।

"मूल्य ! बस आपके बताने की देर है और तुरन्त भुगतान कर दिया जायेगा। यदि एक बार मुझे सर्वस्व निछावर करना पड़े फिर भी चिन्ता नहीं।"

स्वामीजी एक अनाथ हब्शी बालक को तलाश कर उसके घर पहुँचे और बोले—"माताजी ! आनन्द का मूल्य किन्हीं मुद्राओं से नहीं चुकाया जा सकता। यह रहा तुम्हारा पुत्र ! तुम इसका पालन-पोषण अपना पुत्र मानकर ही करना।"

काले रंग के बालक को अपना पुत्र बनाने की बात सुनकर वह चौंकी—"मेरे परिवार में यह हब्शी बालक कैसे प्रवेश प्राप्त कर सकता है ?"

"यदि इस बालक के पालन-पोषण में तुम्हें इतनी कठिनाई का अनुभव होता है तो आनन्द प्राप्ति का मार्ग और कठिन है।" स्वामीजी का महिला के लिए उत्तर था।

सच्चे आनन्द की प्राप्ति आत्मभाव के विकास द्वारा ही की जा सकती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साँप की छाया

भगवान बुद्ध समाधि में थे। कभी धूप सिर को तपाती तो कभी मेह ठिठरन पैदा करता। यह देखकर सर्पराज मुचलिन्द ने बुद्ध के शरीर में तीन फेरे डालकर उनके सिर पर छाया कर दी। एक गाँव वाला आया उसने यह दृश्य देखा तो डरकर भागा।

समाधि खुली तो सर्पराज वहाँ से हटकर अपने बिल की ओर चल पड़े, यह देखकर ग्रामीण ने पूछा—"भगवान साँप तो जहरीला और गुस्से वाला जीव है, आपको काटा नहीं इसने ?"

बुद्ध हँसकर बोले—"मुझे क्यों काटेगा जबकि मैं उससे कोई बैर नहीं रखता। उसे अपने मित्र की ही भाँति देखता हूँ।"

प्राणियों को आत्मभाव और मित्र भाव से देखने वालों का जीव-जन्तु भी अहित नहीं करते।

मृत्यु से कौन बचा ?

गौतमी नामक स्त्री का इकलौता पुत्र मर गया। वह शोक-संतप्त भगवान बुद्ध के पास आई और उसे जिन्दा करने को कहने लगी। भगवान बुद्ध ने उससे सरसों के कुछ दाने, उस घर से लाने को कहा जहाँ कोई भी न मरा हो वह गाँव में गई परन्तु ऐसा घर कोई न मिला।

उस दिन से गौतमी ने मृत्यु के दुःख का परित्याग कर दिया और अमर आत्मा के कल्याण की साधना में जुट गई।

मृत्यु से आज तक कोई नहीं बचा। वह निश्चित है इस शरीर के न रहने पर दुःखी न होना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मशोधन और जीवन साधना

भवति भिक्षां देहि

"भवति भिक्षां देहि"—का स्वर महर्षि के कानों में पड़ा और वे विनीत भाव से अपने आसन से उठ गये। द्वार पर आकर देखा, तपोरूप दुर्वासा बाहर खड़े थे। महर्षि उन्हें अपनी कुटी पर पाकर हार्दिक प्रसन्न हुये और सादर पाकशाला में ले जाकर जो कुछ भी उपलब्ध था, प्रसाद ग्रहण कराया, महर्षि दुर्वासा प्रसन्न हुये और अपने आरण्यक की ओर चले गये।

बात उन दिनों की है जब महर्षि मुद्गल कृच्छ् तप कर रहे थे। तपश्चर्या की अग्नि जहाँ मन को आग्नेय बनाती है। शुद्ध और प्रखर करती है, वहीं उसकी गति को भी अत्यधिक चंचल बनाती है। साधक के लिये यह समय कसौटी का होता है। यदि मन की चंचलता को नियन्त्रित कर लिया जाता है, तो उसकी आग्नेय प्रखरता विराट् आकाश को भी चीरकर अगम्य बिन्दु तक जा पहुँचती है तथा साधक के लिये सिद्धि और सामर्थ्यों के द्वार खोल देती है किन्तु अस्थिर और अधीर साधक सामान्य अवरोध में ही विक्षिप्त हो उठते हैं, तब वे न केवल सिद्धि और सामर्थ्य अपितु अपने लक्ष्य तक से भटक जाते हैं। महर्षि मुद्गल के लिये यह वैसा ही चुनौती भरा समय था।

अन्नमय कोश की शुद्धि का क्रम अस्वाद व्रत से प्रारम्भ कर, अब वे सप्ताह में केवल एक दिन और केवल एक ही समय—संस्कारित अन्न लेने की स्थिति तक आ गये थे। आज उनके लिये अन्न ग्रहण का दिन था। उस दिन अपनी प्रातःकालीन साधना सम्पन्न करने से लेकर अपरान्ह तक का समय अन्न कटे खेतों में गिरे हुये दाने बीनने में लगाया था। कठोर तप ने पहले ही उनकी देह कृश कर दी थी उस पर दिन भर का यह तप, निःसन्देह थकान उत्पन्न करने वाले थे, किन्तु आत्मा की प्राप्ति के लिये आगे बढ़ते हुये तपस्वी की आशा और उत्साह में कहीं कोई अभाव नहीं आया था पर सप्ताहान्त में आये भोजन ग्रहण के समय एकाएक महर्षि दुर्वासा का आगमन निःसन्देह कष्टपूर्ण था किन्तु महर्षि का मन सागर की तरह धीर, गम्भीर, शशि की तरह निर्मल और पारिजात के समान पवित्र था उनके मुख में विषाद् का कहीं संकेत भी नहीं था। संतोष की गरिमा मस्तक पर देदीप्यमान थी। मन का यथार्थ निग्रह यही तो कहलाता है।

किन्तु महर्षि दुर्वासा तो जानबूझ कर ही परीक्षा लेने पर तुले थे। एक बार, दो बार, अनेक बार उन्होंने यही किया। अन्न ग्रहण न किये हुये महर्षि को कई माह बीत गये, एकमात्र जल ही उनका निर्वाह रह गया। उसी से उनके शरीर में इतनी शक्ति शेष थी कि आज उन्होंने अपने अन्न ग्रहण के दिन फिर किसी तरह दो मुट्ठी दाने संग्रह कर लिये। उन्हें ले जाकर पाकशाला में रखा। थोड़ी देर में कुछ शक्ति आ जायेगी, इस आशा से उन्होंने आहार पकाया किन्तु तभी वही चिर-परिचित **"भवति भिक्षां देहि"** की स्वर लहरी कानों में पड़ी। महर्षि ने अतिथि का पूर्ववत् सत्कार कर अपने जीवन को धन्य माना।

आज पुनः उनके अन्नाहार का दिन है, पर महर्षि में उठने तक की शक्ति नहीं रही। कई बार प्रयास करने पर भी शरीर ने साथ नहीं दिया। महर्षि ने प्रयास किया कि किसी तरह बाहर तक जाकर कुछ दूर्वादल ही तोड़ लायें ताकि शरीर थोड़ी शक्ति पा ले, किन्तु द्वार तक पहुँचना भी उनके लिये कठिन हो गया। समय हो चुका था। भगवान भास्कर अस्ताचलगामी हो रहे थे, तभी एक बार फिर वही **"भवति भिक्षां देहि"** का स्वर गूँजा। महर्षि अब तक देहलीज तक आ गये थे। आज अतिथि खाली लौटेंगे इस कल्पना से उनकी आँखें भर आयीं वे महर्षि दुर्वासा के चरणों में गिर गये। उनकी मूक वाणी से विवशता के स्वर अपने आप निकल रहे थे।

दुर्वासा बोले, "महर्षि अब तुम सामान्य मनुष्य नहीं रहे तुम्हारे अन्दर का ऋषि जाग गया है।" यह कहकर उन्होंने महर्षि को गले लगा लिया। मुद्गल की निराशा उसी दिन उनकी समाधि में बदली थी

सिद्धि से श्रेष्ठ सन्निद्धि

"हे तात ! मरकत मणि, सुवर्णनिस्क, मुक्तामाल यह सब बहुमूल्य आभूषण यदा-कदा धारण किये जाते हैं। अधिकांश समय तो उनकी सुरक्षा-व्यवस्था में ही जाता है। इसलिये इन्हें प्रत्येक व्यक्ति अपने पास नहीं रख सकता, किन्हीं सम्राट्-साम्राज्ञियों, श्री-सामन्तों के पास ही वे सुरक्षित रह पाते हैं। सिद्धि भी ऐसी ही एक बहुमूल्य सम्पदा है, जिसे सुरक्षित रख सकना सबके लिये संभव नहीं। सांसारिक सुखोपभोग के आकर्षण में अधिकांश योगी उसका विनिमय कर डालते हैं। उनकी अन्तःगति तो राज्य से निष्कासित चक्रवर्ती सम्राट और मणिहीन फणि की सी दयनीय हो जाती है। इसलिये विधान यह है कि जो उपयुक्त पात्र हो, जिसे तितिक्षा की कसौटी पर भली प्रकार कस लिया गया है, उसे ही सिद्धि का अधिकार प्रदान किया जाये।"

यह कहकर महामुनि क्रौष्टक चुप हो गये। उनकी मुख-मुद्रा देखने से ऐसा प्रतीत होता था, जैसे अब उनकी चेतना विचारों के अगाध सागर में विलीन हो गई हो। वे कुछ गम्भीर चिन्तन में निमग्न हो गये हैं—ऐसा समझकर कुछ आगे की बात न करके शिष्य सौभरि भी चुप हो गये और वहाँ से उठकर आचार्य देव के लिये संध्यादि के प्रबन्ध में जुट गये।

देर तक विचार करने के बाद भी क्रौष्टक अन्तिम निर्णय न कर सके कि. सौभरि को सिद्धि प्रदान करने वाली उच्चस्तरीय साधनाओं का अधिकार प्रदान किया जाय अथवा नहीं। उनकी करुणा, उनका सहज स्नेह उमड़ता और कहता, सौभरि ने तुम्हारी बड़ी सेवाएँ की हैं, उसे यह अधिकार मिलना ही चाहिये। किन्तु शास्त्र-अनुभव आड़े आ खड़े होते और पूछते—"क्रौष्टक ! सिद्धि पाने के बाद भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्या तुझे विचलित करने वाली परिस्थितियों का सामना नहीं करना पड़ा ? क्या तुझे इन्द्रिय लालसाओं के दमन में अत्यधिक कठोरता बरतनी नहीं पड़ी ? क्या यह सम्भव है कि सिद्धि पाने के बाद सौभरि को ऐसे सामाजिक जीवन के अनिवार्य सन्दर्भों का सामना नहीं करना पड़ेगा ? मान लो, यदि सौभरि तब अपने को न संभाल पाया, तो होगा न सिद्धि का दुरुपयोग ? क्या ठीक नहीं, कि पहले उसे अग्नि-दीक्षा में कसकर देख लिया जाये ? पीछे पञ्चाग्नि साधना में प्रवेश दिया जाये ?"

क्रौष्टक का अन्तिम निर्णय यही रहा। दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही शिष्य सौभरि को उन्होंने अपने समीप बुलाया और बड़े स्नेह के साथ कहा—"वत्स ! आश्रम जीवन की कठोरता के कारण तुम थक गये होगे। आओ, मैं तुम्हारे पैरों में एक अभिमन्त्रित ओषधि का लेप करता हूँ। उससे तुम जहाँ भी जाने की इच्छा करोगे, वायु-वेग से वहीं जा पहुँचोगे और जब तक चाहोगे वहाँ पर विचरण करते रह सकोगे। इससे तुम्हारा श्रम, तुम्हारी उद्विग्नता दूर हो जायेगी।"

गुरुदेव के वचन और इस अप्रत्याशित परिस्थिति पर सौभरि को आश्चर्य अवश्य हुआ किन्तु देश-भ्रमण की लालसा वेगवती हो उठी, सो उसने गुरुदेव की योजना का कोई विरोध नहीं किया।

क्रौष्टक ने सौभरि के पाँवों में अभिमन्त्रित ओषधि का लेप कर दिया। "अब मुझे महेन्द्र पर्वत (हिमालय) चलना चाहिये"—ऐसी इच्छा करते ही सौभरि क्षण-भर में उत्तर दिशा की ओर उड़ चले। उस रमणीय हिम और पुष्पलताओं से आच्छादित सुरम्य शिखरावली तक पहुँचने में उन्हें कुछ क्षण लगे। यहाँ की श्री, वन-सौरभ स्वर्ग से भी बढ़कर अतुलित सौन्दर्य वाले देखकर सौभरि का मन बड़ा प्रसन्न हुआ। वे भूमि पर उतरकर बहुत देर तक वहाँ विचरण करते रहे।

सुख की अभीप्सा है ही कुछ ऐसी कि व्यक्ति के विवेक को, चातुर्य और जागरूकता को थोड़ी ही देर में नष्ट कर डालती है। ध्यान रहा नहीं। सौभरि के पैर शीतल तुषार में चलते रहे और धीरे-धीरे पैर में लगा सारा अनुलेप धुल गया। जब उनके मन में वापस लौटने की इच्छा हुई, तब पता चला कि वहाँ से वापस लौटा ले चलने वाली शक्ति तो नष्ट हो चुकी। सौभरि बड़े दुःखी हुये और पश्चाताप करने लगे। आज पहली बार उन्हें किसी सिद्धि के प्रति घृणा और मानवीय पुरुषार्थ के प्रति विराट् आस्था का बोध हुआ उन्होंने अनुभव किया—यह सामर्थ्य आत्म-पराक्रम में ही है, जो व्यक्ति को चरम सीमा तक पहुँचाकर वहाँ से उद्धार भी कर सकती है।

सौभरि अभी इस तरह के विचारों में खोये ही थे कि उन्हें उस पर्वतीय उपत्यिका में शनैः-शनैः समीप आती हुई-सी पायलों की मधुर झंकार सुनाई दी। सौभरि सोचने लगे—यहाँ और कौन हो सकता है ? तभी तिलोत्तमा के समान अप्रतिम सौन्दर्य वाली मौलेया अप्सरा वरुथिनी वहाँ आ उपस्थित हुई। सौभरि को उसने दूर से ही देख लिया था। वह सौभरि की सुगठित देहयष्टि और उनके दीप्तिमान सौन्दर्य के प्रति आसक्त हो उठी थी। सौभरि को आकर्षित कर प्रणय-जाल में बाँध लेने की इच्छा से वह जितना श्रृंगार कर सकती थी, किया था। स्वर्ण-थाल में लाये वस्त्राभूषण, सुगन्धित अनुलेप और मधुर भोज्य प्रस्तुत करते हुये वरुथ ने एक लुभावनी दृष्टि सौभरि पर डाली और बोली—"महाभाग ! मैंने पूर्व जन्म में कोई श्रेष्ठ पुण्य किया है, तभी आप जैसे प्रतापी, सिंह पुरुष को पाने का सौभाग्य मिला है।"

'ओह भद्रे !' बहुत देर बाद सौभरि का कण्ठ फूटा—मैं तुम्हारी क्या सेवा कर सकता हूँ ? तुम्हें किसी ने बन्दी बनाया हो तो शीघ्र बताओ, मैं अभी उसे मारकर तुम्हें मुक्त कर सकता हूँ। तुम पर किसी ने ओछी दृष्टि डाली हो तो बताओ—आर्ये ! तुम निश्चय जानो मैं उसका मान मर्दन करने में किंचित भी डरूँगा नहीं।"

यह सब होता तो वरुथिनी कहती भी। वह तो उस योग-माया की तरह आई थी, जो संसार को क्षणिक सुख के आकर्षण में बाँधकर पारलौकिक सुख, संयम, शक्ति और जीवन से विच्युत किया करती है। एक क्षीण किन्तु मर्माहत कामुक दृष्टि से निक्षेप करते हुये बरुथिनी ने कहा—"देव पुरुष ! आपको पाकर मुझे अब एक ही वस्तु प्राप्त करने की इच्छा रह गई है। आप जानते होंगे—स्त्री, पत्नी बनने के बाद एकमात्र मातृत्व की इच्छा रखती है। सो मैं भी उसी लालसा से आपकी सेवा में प्रस्तुत हुई हूँ। महान् पुरुष किसी की इच्छा ठुकराते नहीं।" यह कहती हुई वरुथिनी सौभरि के बिल्कुल समीप तक जा पहुँची।

यह तो कहो आध्यात्मिक संस्कार बड़े बलवान् थे कि वरुथिनी का आकर्षण-जाल सौभरि को बाँध नहीं पाया। उन्होंने कहा—"भद्रे ! मैंने जिस क्षण तुम्हें देखा उसी समय मुझे अपनी कनिष्ठ सहोदरा का ध्यान आया था। तुम मेरी बहिन के समान हो। मैं तुम्हारे साथ समागम कैसे कर सकता हूँ ?"

कुचली हुई नागिन की तरह बरुथिनी की वासना भीतर-ही-भीतर फुंकार उठी। पर उसे दबाते हुये बरुथिनी ने एक तीर और छोड़ा—"आर्य श्रेष्ठ ! किसी की इच्छा पूर्ण करने से बड़ा पुण्य और याचक को खाली हाथ लौटाने से बड़ा पाप नहीं। सोच लो, तुम्हें पुण्य और पाप में से किसे वरण करना है ?"

सौभरि ने कहा—"भद्रे ! अनैतिक आचरण से पुण्य प्राप्त होता हो, तो मुझे ऐसा पुण्य नहीं चाहिये। समाज की व्यवस्था का मूल आधार नैतिकता है। उसे नष्ट करके मैं स्वर्ग की भी इच्छा नहीं कर सकता।"

यह कहकर सौभरि ने जैसे ही आगे पग बढ़ाया कि उनके इष्ट 'आव्हानीय अग्निदेव' अपनी सौम्य मुद्रा में खड़े दिखाई दिये। उनके मध्य गुरु क्रौष्टक की मनोहारी छवि परिलक्षित हो रही थी। वे कह रहे थे—"तात् ! तुम सिद्धि के सच्चे अधिकारी हो।"

गुरु के चरणों में प्रणिपात करते हुये सौभरि ने कहा—"देव ! अब मुझे सिद्धि की कामना नहीं रही। आप तो ऐसा आशीर्वाद दीजिये कि अपने शील की रक्षा करते हुये संसार में जीऊँ और जीवन का अन्त हो, तब तक निष्कलुष ही बना रहूँ।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"संस्कारात् द्विजोच्यते"

महर्षि शाल्विन की प्रथम पत्नी श्लेषा ब्राह्मण कन्या थीं, तो द्वितीय पत्नी इतरा शूद्र कन्या। एक ही भवन में, एक ही मूल शाखा से सम्बद्ध अवर्ण-सवर्ण का यह समन्वय भी अभूतपूर्व था। महर्षि के गृहस्थ में पूर्ण सुख-शान्ति विराजती थी। दोनों पत्नियाँ दो सगी बहिनों के समान परस्पर प्रेमपूर्वक रहती थीं, इसे ऋषि का प्रताप ही कहा जाता था।

संयोग से श्लेषा और इतरा दोनों के गर्भ से एक एक पुत्र का जन्म हुआ। दोनों बालक अपूर्व तेजस्वी और सुन्दर थे, कोई भेद नहीं कर सकता था कि इनमें कौन ब्राह्मणी का पुत्र है और कौन है शूद्रा-पुत्र। इस पहचान की तब किसी को आवश्यकता भी न थी। आत्मा को शिरोमणि मानने वाला ऋषिकुल चर्म भेद, जाति भेद करना जानता ही न था, यह तो मध्य युग की बात है जब शूद्रों को अस्पृश्य भी कहा जाने लगा।

पर यह क्या हुआ ? एक दिन दोनों ही किशोर ऋषि कुमार जब पहली बार महर्षि के यज्ञ-स्थल पर प्रविष्ट हुये तो महर्षि शाल्विन ने श्लेषा के पुत्र को तो यज्ञ वेदी पर यजमान की तरह बिठा लिया, किन्तु मानो शूद्रा-पुत्र के वहाँ उपस्थित हो जाने से देवार्चना मलीन होने की आशंका पैदा हो गई थी या और कोई भय। महर्षि ने इतरा के पुत्र को वहाँ बैठने की अनुमति ही नहीं दी वरन् उसे डपटकर वहाँ से भगा भी दिया। बालक के लिये यह अपमान असह्य था। घर लौटकर माँ के अंचल में मुख छुपाकर वह जितना रो सकता था रोया, माँ के पास भी तो धैर्य बँधाने के लिये कुछ नहीं था। वह भी सहानुभूति में केवल रोती रही।

श्लेषा ने महर्षि के इस व्यवहार को अनुचित ही नहीं निन्दनीय भी ठहराया, पर महर्षि ने उनसे न जाने कान में क्या कहा कि श्लेषा ने फिर कोई प्रतिवाद नहीं किया।

अब तक हृदय की सम्पूर्ण वेदना आँसुओं के रूप में घुलकर धुल चुकी थी। मन पर्वतीय उपत्यिका से उतरी हुई उस सरिता की भाँति निर्मल हो गया था, जो समतल क्षेत्र में आकर अपना विस्तार ही नहीं कर लेती वरन् प्रवाह भी शान्त और मन्द कर लेती है। बालक ने प्रश्न किया—"माँ अब तू ही बता। मैं अपने कल्याण के लिये किसे गुरु वरण करूँ ?" भारी हृदय से इतरा ने उत्तर दिया—"तात् ! जब महर्षि ने ही तुझे दीक्षा के योग्य नहीं समझा, तब और किसके पास तुझे भेजूँ, तू तो अपनी आत्मा को ही गुरु मान और जिस धरती ने तुझे जन्म दिया है, उसकी गोद को ही यज्ञ-स्थल मानकर अपनी उपासना प्रारम्भ कर। मेरा आशीर्वाद तेरे साथ है। भगवान सब मंगल करेंगे।" बालक वहाँ से चल पड़ा। भगवती प्रकृति का अध्ययन और आत्मदेव की उपासना करते-करते, उसकी गति योगियों की सी हो चली। माँ के दिये अक्षर ज्ञान को साधना की कसौटी पर कस-कस कर और भगवती प्रकृति के व्यवहार को देख-देख कर उसने ज्ञान का अद्वितीय भाण्डागार अर्जित कर लिया। इतरा के पुत्र का यश संसार में चन्द्रमा की कला के समान विकसित होने लगा।

महर्षि शाल्विन स्वयं चिन्तित हो उठे, उस दिन इतरा से अधिक शोक में श्लेषा डूबी हुई थी और सोच रही थी कि कहीं महर्षि का प्रयोग, तितिक्षा की कसौटी, असफल तो सिद्ध न हो जायेगी। किन्तु सायंकाल इतरा के पुत्र का प्राकट्य ऐसा हुआ, जैसे घिरे बादलों को चीरकर सूर्य प्रकट होता है। बालक जो अब युवावस्था पार कर चुका था। अपूर्व तेज से प्रकाशित हो रहा था। उसके हाथ में पाण्डुलिपि थी। दोनों मातायें तो पुत्र के स्वागत और कुशल-मंगल पूछने में तल्लीन हो गईं पर महर्षि ने उस पाण्डुलिपि को उठाकर देखा तो स्नेह और ममत्व से उनकी आँखें छलक उठीं। यह पाण्डुलिपि और कुछ नहीं वेदों की विशुद्धतम व्याख्या थी, जिसे आज ऐतरेय ब्राह्मण के नाम से जाना जाता है। ऐतरेय ब्राह्मण पढ़े बिना वेद का ज्ञान मिलना दुर्लभ होता है। अपने पुत्र की इस उपलब्धि पर महर्षि फूले नहीं समाये। अपनी श्रेष्ठ साधना द्वारा ऐतरेय ने अपनी माँ का ही मुख उज्ज्वल नहीं कर दिया वरन् इस बात का प्रमाण भी दे दिया कि शूद्र हो तो क्या संस्कारों से ही मनुष्य ब्राह्मण हुआ करते हैं।

जरूरत तो अपने ही चेहरे को धोने की है

रोज सुबह उठकर दर्पण में अपना चेहरा देखने की आदत है। सुन्दर नयन नक्श, सलोना चेहरा और गुलाबी कपोल मुझे लगता है शायद ही संसार में मुझ-सा कोई सुन्दर हो।

पर आज तो गजब ही हो गया—

दर्पण ने कह दिया कि तुम्हारी नाक भोंड़ी है, चेहरा कुरूप है, शकल काली हो गयी है।

दर्पण निर्जीव सी वस्तु—भी मेरा यह उपहास करता है, मुझे बड़ा गुस्सा आया और मैंने उसे जोर से फर्श पर फेंक दिया।

क्या जीवन था उसमें, गिरते ही चूर-चूर हो गया पर मेरे मन में सन्देह का साँप फन उठाने लगा था। कहीं सचमुच ही तो दर्पण ने जो बताया वह सत्य तो नहीं है। बेचारा वह क्यों झूठ बोलने लगा।

पत्नी से दूसरा दर्पण माँगा—उसने लाकर दिया और फिर देखा अपना चेहरा अब की बार तो मैं क्षण भर भी सह नहीं सका और मैंने उसे दरवाजे से ही बाहर फेंक दिया।

पत्नी बड़े विस्मय से मेरी ओर देख रही थी। अब लग रहा था उसकी आँखें भी दर्पण बन गयी हैं। पूछने लगी वह—'यह क्या हुआ तुम्हें' ?

मैंने कहा—"हुआ तुम्हारा सिर" और मैं पैर पटकता हुआ घर से बाहर चल दिया। शायद पत्नी के नयन दर्पण भी मुझे कुरूप न कह दें।

"अरे जरा मुँह तो धोते जाओ"—पीछे से पत्नी ने पुकारा।

पर मुझे लगा कि वह मेरा उपहास उड़ा रही है और मुझे शंका होने लगी कि कहीं उसे सुनने के लिये ठहर गया तो हाथ न उठा बैठूँ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सड़क से गुजरता हूँ तो लोग मेरी ओर देखते हैं। और मेरे मन में आता है उन देखने वालों का सिर तोड़ कर रख दूँ। दर्पण तो दर्पण, आदमी भी मेरा मजाक उड़ा रहे हैं, जैसे मैं कालिख पोतकर आया हूँ।

अतः भीड़ से गुजरने का मन नहीं है। एकान्त की तलाश में शहर से बाहर जाता हूँ। शान्त झील के किनारे-काँच की तरह स्वच्छ और निर्मल पानी में देखा तो झील पर भी बड़ा खौफ आया और मैं उसमें थूककर उसके प्रति रोष जताकर एक वटवृक्ष के तले आ बैठा। वहाँ भी चैन नहीं तो चहलकदमी करने लगा।

सारा दिन इसी प्रकार बीत गया। मुझे घूर-घूर कर देखने वाली नजरों से बचते-बचते। शाम को जब आकाश में तारे टिमटिमाने लगे तो मैं घर लौटा। पत्नी ने नहाने के लिये पानी रख छोड़ा था और नल भी चल रहे थे। तौलिया और कपड़े लेकर मैं अन्दर गया और बहुत देर तक नहाता रहा और नहाने के बाद बाहर आया तो पत्नी ने बड़े सन्तुलित स्वर में पूछा—"मुझे बड़ी हैरानी हुई। कल बत्ती चली जाने के बाद जब तुमने लैम्प साफ किया तो शायद भूल से कालिख लगे हाथों से मुँह पोंछ लिया था और सारा गुस्सा दर्पण पर उतार रहे थे।"

तथ्य व्यक्त हुआ मुझे सन्तोष तो हो गया पर हैरानी मुझे अब होने लगी है। जो आज बीता उस पर नहीं जो हर दम बीतता रहता है उस पर क्योंकि सारी दुनिया से मुझे यही शिकायत रही है।

परन्तु आज की इस घटना ने मुझे बता दिया है कि दुनिया तो एक दर्पण है, जिसमें अपने ही हाथों से पुता कालिख प्रतिबिम्बित होता है।

जरूरत तो अपने ही चेहरे को धोने की है।

पहले स्वयं को मारो

खलीफा उमर का सारा जीवन धार्मिक सेवा में ही बीता था। अन्त में तो उन्हें धर्म के लिये तलवार भी उठानी पड़ी। एक दिन उनका अपने प्रतिद्वन्द्वी से सामना हो गया। दोनों में गुत्थमगुत्था हो गई। उमर ने उसे पछाड़ दिया और छाती पर चढ़ बैठे। जैसे ही उसका सिर काट डालने के लिये उन्होंने अपनी तलवार निकाली कि प्रतिद्वन्द्वी ने उन्हे गाली दे दी। गाली सुनते ही खलीफा उमर उठकर खड़े हो गये और अपनी तलवार म्यान में बन्द कर ली।

जो सैनिक उनके साथ थे, उन्हें इस पर बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने कुछ रुष्ट स्वर में कहा—"श्रीमान्जी आपने यह क्या किया ? आपको तो इसे मार ही देना चाहिये था।" खलीफा उमर गम्भीर हो गये और बोले—"भाई मैंने युद्ध न्याय के लिये बिना क्रोध के किया था, किन्तु जब इसने मुझे गाली दी, तो मुझे क्रोध आ गया। इस स्थिति में इसे मारने से पहले अपने क्रोध को मारना आवश्यक हो गया। अब मेरा क्रोध शान्त हो गया है इसलिये दुबारा युद्ध करूँगा।"

खलीफा उमर के यह निष्काम शब्द सुनकर प्रतिद्वन्द्वी आप प्रादुर्भूत होकर उनके पैरों पर गिर गया और सदैव के लिये उनका भक्त बन गया।

बाहरी शत्रु से भी भयंकर है, आंतरिक शत्रु। इसलिये पहले इसको जीतना चाहिये।

मन का भी स्नान

महात्मा रामानुजाचार्य अपनी शारीरिक दुर्बलता के कारण नदी स्नान करने जाते हुये लोगों का सहारा लेकर जाया करते थे। जाते समय वे ब्राह्मण के कन्धे का सहारा लेते और आते समय शूद्र के कन्धे पर हाथ रखकर आते।

लोगों ने आश्चर्यपूर्वक पूछा—"भगवन् ! शूद्र के स्पर्श से तो आप अपवित्र हो जाते हैं, फिर स्नान का महत्त्व क्या रहा ?"

आचार्यजी मुस्कराये उन्होंने कहा—"स्नान से मेरी देह मात्र शुद्ध होती है। मन का मैल तो अहंकार है। जब तक मनुष्य में अहंकार शेष है, तब तक उसे मन का मलीन ही कहा जाता है। मैं शूद्र का स्पर्श करके अपने मन की मलीनता स्वच्छ करता हूँ। मैं किसी से बड़ा नहीं, सब मुझसे ही बड़े हैं, शूद्र भी मुझ से श्रेष्ठ हैं, इसी भावना को स्थिर करने के लिये शूद्र का सहारा लिया करता हूँ।"

उत्तर युक्ति-युक्त था, पूछने वालों का ठीक समाधान हो गया।

शरीर ही नहीं मन को भी पवित्र रखने की व्यवस्था करनी चाहिये।

आत्मज्ञान से मुक्ति

ब्रह्मसंध्या सम्पन्न कर आचार्य ज्योतिपाद उठे ही थे कि आत्मदेव ने उनके चरण पकड़ लिये। ब्राह्मण अत्यन्त दीन शब्दों में बोला—"आचार्य प्रवर—एक सन्तान की इच्छा से आपके पास आया हूँ। आप सर्वसमर्थ हैं, मुझे एक सन्तान प्राप्त हो जाय तो आपका जीवनभर ऋणी रहूँगा।"

ज्योतिपाद ने एक क्षण के लिये दृष्टि ऊपर उठाई, मानो उनकी आत्मा कोई सत्य पाना चाहती हो—दूसरे ही क्षण वे बोले—"आत्मदेव ! सन्तान से सुख की कामना करना व्यर्थ है, मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार सुख-दुःख पाता है, सन्तान तो अपने आप में ही एक कर्त्तव्य भार है, उसके हो जाने से दाम्पत्य-प्रेम कम हो जाने से लेकर संसार से निर्द्वन्द्व विचरण का सारा आनन्द ही समाप्त हो जाता है। तुम व्यर्थ ही इस झंझट में मत पड़ो।"

कहते हैं आसक्त के लिये संसार में कोई उपदेश नहीं, आत्मदेव को कोई बात समझ में नहीं आई वह मात्र सन्तान की ही कामना करता रहा। तब आचार्य ज्योतिपाद ने दूसरे ढंग से समझाया—तात् ! तुम्हारे भाग्य में सन्तान है नहीं। जिसने पूर्व जन्म में गुरु-वरण नहीं किया, जिसने अपनी सम्पत्ति लोक-सेवा और दीन-दुःखियों की सहायतार्थ दान नहीं की वह इस जीवन में सन्तानहीन होता है। तात् ! पूर्व जन्म की कृपणता का पाप ही आज तुम्हारे लिये सौभाग्य विमुख बना। नीति कहती है जाओ और अपनी शक्ति, सम्पत्ति और सामर्थ्य लोक-सेवा में नियोजित करो, अब तुम्हारी अवस्था बहुत अधिक हो गई है। सन्तान का कोई औचित्य भी नहीं रहा, यह आयु

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुनर्जन्म की तैयारी की है, सो अब तुम अपना समय आत्मकल्याण में लगाओ।

आत्मदेव की समझ में फिर भी न आया। उसने कहा—"महात्मन् ! आज या तो आपसे पुत्र लेकर लौटूँगा अन्यथा यहीं आपके ही सम्मुख आत्मदाह कर दूँगा।" उसके इस प्रकार कहने पर आचार्य ज्योतिपाद ने हँसकर कहा—"ब्राह्मण ! तुम्हें जो नहीं सोचना चाहिये वहाँ तक सोच गये तात् ! तुम्हारे लिये किसी और का पुण्य छीनना पड़ेगा, श्रेष्ठ आत्मा का दान कोई करेगा क्यों, ऐसे में तो केवल अपवित्र आत्माएँ ही हाथ लगती हैं, चलो विधाता की इच्छा ऐसी ही है तो लो यह फल अपनी भार्या को खिलाना, पुत्र तो तुम्हारे भाग्य में है नहीं फिर भी तुम्हारी इच्छा भगवान पूर्ण करेंगे। अपनी धर्म पत्नी से कहना वह एक वर्ष तक नितान्त पवित्र रहकर नित्य कुछ दान करे।"

आत्मदेव, महर्षि के रहस्यमय वचन सुनकर भी कुछ समझ न सका, खुशी-खुशी घर आया, फल उसने अपनी पत्नी धुन्धुली को दे दिया। सारी बातें समझा दीं। धुन्धुली ने सोचा—पवित्रता मुझसे बन नहीं पड़ेगी, अपनी सम्पत्ति औरों को क्यों दान करूँ। उसने वह फल अपनी गाय को खिला दिया और समय पर अपनी बहिन का पुत्र गोद लेकर घोषणा कर दी मुझे पुत्र हुआ है। ब्राह्मण समाचार पाकर फूला न समाया। पुत्र का नाम धुन्धुकारी रखा गया। यथा नाम तथा गुण। धुन्धकारी बाल्यावस्था से ही दुराचारी निकला, उसने पिता की सारी सम्पत्ति, मांस, मद्यपान, जुआ और वेश्यावृत्ति में नष्ट कर दी। माता-पिता कुढ़कर मर गये। धुन्धुकारी भी अकाल ही काल-कवलित हो गया।

फल जिस गाय को दिया गया था उससे एक सुन्दर आत्मज्ञानी पुत्र पैदा हुआ—गोकर्ण। गोकर्ण पशुयोनि से जन्मे होने पर भी अध्यात्म विद्या के प्रभाव से महान् ज्ञानी और धर्मात्मा हुआ। एक रात वे सो रहे थे—तब धुन्धकारी जो प्रेतयोनि में पड़ा हुआ था—बोला—भैया आप ही मेरा उद्धार करें। गोकर्ण ने कहा—"तात् ! मैंने तुम्हारी गयाश्राद्ध कर दी फिर भी तुम मुक्त न हुये।" धुन्धकारी बोला—"बन्धुवर ! मनुष्य को स्वर्ग या मुक्ति अपने ही कर्म से मिलती है, जब तक मुझे अपने दुष्कर्मों का दण्ड नहीं मिल जाता मुक्ति संभव नहीं। आप तो मुझे अध्यात्म ज्ञान दीजिये जिससे मैं अपना अगला जीवन सुधार सकूँ।" गोकर्ण ने तब उसे भागवत् कथा के माध्यम से आत्म-तत्व का ज्ञान कराया अन्त में यह ज्ञान ही धुन्धकारी के आत्मकल्याण का मार्गदर्शक बना।

बलिदान से दुर्भिक्ष निवारण

उन दिनों विकट दुर्भिक्ष पड़ा था। प्रजा भूख से तड़पकर प्राण त्याग रही थी। देवताओं से विपत्ति निवारण करने वाली वर्षा करने के लिये पूजा-परिचर्या के साथ अनुनय-विनय की गई। पर वे टस से मस नहीं हुये।

उन दिनों ढर्रा कुछ ऐसा ही चल पड़ा था। लोग स्वार्थों में निरत थे। परमार्थ में किसी को रुचि नहीं थी। बलिदान की बात सुनकर कँपकँपी आती थी। इस दयनीय दुर्बलता से ग्रसित लोगों के भू-भार को धरती पर से हलका करने के लिये दुर्भिक्ष उतरा था। लोग बेतरह मर रहे थे। बिलखती-तड़फती मरणोन्मुख प्रजा के करुण-क्रन्दन से आकाश प्रतिध्वनित हो रहा था।

बलिदान से देवताओं को प्रसन्न करके दुर्भिक्ष-निवारण का उपाय लोगों को मालूम तो था, पर इसके लिये साहस कौन करे ?

एक ब्राह्मण-परिवार में रोज ही बलिदान का साहस करने की चर्चा होती। उस परिवार में तीन पुत्र थे। क्या हम लोग देव-समाधान के लिये आगे बढ़ सकते हैं ? अशक्ति वृद्धि की हतवीर्य काया से देवताओं की रुचि नहीं। उन्हें तरुण-रक्त चाहिये।

उस रात चर्चा बहुत समय तक चली। ब्राह्मण दम्पत्ति अपने "पुत्रों की बलि देने की चर्चा करने लगे। माता ने कहा—छोटा मुझे बहुत प्यारा है, उसे मैं किसी भी कीमत पर नहीं दूँगी।" पिता ने कहा—"बड़ा कमाऊ है, उसे हाथ से नहीं जाने दिया जा सकता।" कम महत्त्व का बीच वाला शुनिशेप ही था।

न जाने क्यों उस घुसपुस में शुनिशेप को नींद नहीं आई। वह उनींदा ऐसा ही पड़ा रहा और सब कुछ ध्यान-पूर्वक सुनता रहा। मन ही मन उसने सोचा—"जब माता-पिता की आवश्यकता को छोटे और बड़े भाई पूरी कर सकते हैं तो मैं पीड़ित-प्रजा के काम आने से क्यों झिझकूँ ? दूसरों जैसी कायरता से मेरा मन मोह-ग्रस्त नहीं है तो बलिदान का प्रयोजन पूरा करके देव-अनुग्रह क्यों न प्राप्त करूँ ? उसने मन ही मन निश्चय कर लिया।

प्रभात होते ही उसने अपनी आकांक्षा बलिदान के लिये व्यक्त की। बिना उत्तर आदेश की प्रतीक्षा किये वह उस यज्ञ-भूमि में जा पहुँचा—जहाँ बलि के अभाव में यज्ञ की अग्नि ठण्डी पड़ चुकी थी। स्वेच्छा बलिदान के लिये उपयुक्त पात्र मिलने पर सर्वत्र प्रसन्नता का वातावरण छा गया और यज्ञायोजन की शिथिल पड़ी प्रक्रिया पुनः गतिशील हो गई। शुनिशेप देव-प्रयोजन में समर्पित होने के लिये अपने जीवन को सार्थक मान रहा था। प्रजा उसकी साहसिकता का भार भरे अश्रु-कणों के साथ अभिनन्दन कर रही थी।

बलि का समय निकट आ गया। ब्राह्मण-शरीरधारी वरुण, यज्ञ-भूमि में उपस्थित हुये। उन्होंने कहा—"परमार्थ-परायणता से विमुख प्रजा को अगणित संकटों का सामना करना ही पड़ता है। यह देश अपनी भीरुता का दण्ड-भोग रहा है। शुनिशेप ने उस कलंक को धो दिया। बलि का अर्थ—मरण नहीं, समर्पण है। बलिदानी शुनिशेप आगे बढ़ा तो स्वभावतः अनेकों उसके अनुयायी बनेंगे और संसार में परमार्थ की प्रवृत्तियों का अभिवर्धन करेंगे। देवता उसी की प्रतीक्षा में थे। उनका क्रोध अब शान्त हो गया। आज से ही प्रबल वर्षा होगी और दुर्भिक्ष मिट जायेगा।"

वैसा ही हुआ भी। शुनिशेप प्रजा की परमार्थ-परायण और सुसंगठित बनाने में जुट गया। देवताओं ने भरपूर वर्षा की और दुर्भिक्ष का संकट टल गया। बलिदानी का देश, दुःखी रह भी कैसे सकता था ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सर्वोपरि यज्ञ—पीड़ा निवारण

ऐसा भयंकर अकाल पहले कभी नहीं पड़ा था। समस्त अभ्यारण्यक ताप और भूख की ज्वाला में जल रहा था। राजकोष में जमा अन्न भण्डार भी समाप्त हो चला था। अन्न एवं पानी के एक साथ अभाव पड़ने से क्षुधार्थ लोग दम तोड़ रहे थे। राहत के सारे राजकीय उपाय-उपचार असफल सिद्ध हो रहे थे। सम्राट विडाल ने सभी मनीषियों, तत्वदर्शियों तथा ज्योतिर्विदों की गोष्ठी बुलायी। विचार-विमर्श का क्रम चला। सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि भगवान इन्द्र को प्रसन्न करने के लिये विशाल यज्ञ का आयोजन किया जाय। तैयारियाँ आरम्भ हुईं।

सन्त शार्गधर भी उसी प्रदेश में रहते थे। उनके दो पुत्र, पत्नी भी क्षुधा-पिपासा के कारण प्राण त्याग चुके थे। असमय सगे-सम्बन्धियों, पुत्रों के बिछुड़ने का उन्हें जितना दुःख हुआ, उससे अधिक इस बात का था कि यदि कोई उपाय न निकला तो प्रदेश की अधिकांश जनता अकाल के कारण दम तोड़ देगी। इस आशंका से सन्त का हृदय द्रवित हो उठा।

भूख की ज्वाला में जल रहे लोगों के लिये अन्न का प्रबन्ध करना पहली और प्रमुख आवश्यकता थी। पड़ौसी राज्य से सहयोग पाने अन्न जुटाने के लिये वे चल पड़े। कौमीलिया नामक स्थान पर जाकर एक धनाढ्य के यहाँ नौकरी कर ली। ब्राह्मण, सन्त की विद्वता तथा आचरण की पवित्रता से विशेष प्रभावित हुआ। वास्तविकता मालूम होते ही उसने सन्त को एक सहस्र मुद्राएँ दीं। उन्हें लेकर वे स्वदेश लौटे किन्तु अभी सीमा पर ही पहुँच पाये थे कि देखा सैकड़ों व्यक्ति भीख माँग रहे हैं, भूख से पीड़ित हैं। सन्त की करुणा उमड़ी, एक सहस्र मुद्रायें उन्होंने भूखे लोगों को बाँट दीं और फिर काम की खोज में लौट पड़े।

इस बार एक किसान के यहाँ नौकरी मिली। किसान उनकी परिश्रमशीलता से बहुत प्रभावित हुआ। प्रसन्न होकर उसने बहुत-सा अन्न तथा कुछ मुद्राएँ दीं। जैसे ही कमाई लेकर राज्य सीमा में प्रवेश किया, अनेकों नारियाँ अपने मरणासन्न अबोध बच्चों को लिये बिलख रही थीं। अपने बच्चों के मरण का दुःख वे भुगत चुके थे। स्मृति पटल पर वह याद अभी ताजी थी। बिना विलम्ब किये उन्होंने उस मुद्रा से वस्त्र खरीदे तथा उन्हें अन्न सहित स्त्रियों में बाँट दिया। पुनः वे वापस लौटे और एक चाण्डाल के यहाँ काम करना आरम्भ किया।

पूरे सप्ताह काम करने के बाद चाण्डाल ने उन्हें पाँच रोटियाँ दीं। शार्गधर को इस बीच भूखे रहकर ही काम करना पड़ा। रोटियाँ लेकर अपने घर वापस चले। जैसे ही एक गाँव में पहुँचे, एक कारुणिक दृश्य दिखायी पड़ा। एक किसान के छह पुत्रों को कहीं से एक रोटी मिली थी। सभी भूखे थे। रोटी, एक-दूसरे से ही छीनने के लिये झगड़ रहे थे। सन्त का हृदय हाहाकार कर उठा। एक रोटी के लिये ऐसी छीना-झपटी। दुर्दैव का यह कैसा प्रकोप ? उन्होंने बच्चों को शान्त किया और अपनी पाँचों रोटियाँ बच्चों में बाँट दीं। बच्चे शान्त हो गये। रोटियाँ खाने लगे। उनकी नम आँखें मूक रूप से सन्त के प्रति कृतज्ञता व्यक्त कर रही थीं।

यह दृश्य सभी दैव शक्तियाँ देख रही थीं। जैसे ही उन्होंने लड़कों के हाथ में रोटियाँ थमायीं, उसी क्षण आकाश में तेज ध्वनि हुई, बिजली कड़की, देखते ही देखते घनघोर घटायें आकाश में घिर आयीं और मूसलाधार बारिश होने लगी। उसी दिन से अकाल का प्रकोप समाप्त हो गया। प्यासी धरती ने जी भरकर अपनी प्यास बुझायी। परितृप्त होते ही उसके पेट से अंकुर फूटने लगे।

उधर सम्राट विडाल के यहाँ यज्ञ की सभी तैयारियाँ पूर्ण हो चुकी थीं। मंगल कलश स्थापित किये जा चुके थे। इन्द्र देवता का आव्हान आचार्यगण कर रहे थे। एकाएक वृष्टि आरम्भ हुई देखकर विद्वानगण आश्चर्य-चकित रह गये उन्होंने इन्द्रदेव की स्तुति की। वे प्रकट हुये। आचार्यगण ने सविनय पूछा—"देवेश ! इस अप्रत्याशित कृपा का कारण क्या है ? न ऋचायें बोली गयीं, न आहुतियाँ पड़ीं, न यज्ञ पूरा हुआ। पर इसके उपरान्त भी आपकी करुणा मेघ बनकर कैसे बरसने लगी ?"

देवेन्द्र मुसकराये, बोले—"तात् ! यज्ञ तो पूरा हो गया। अब आप किस यज्ञ की तैयारी कर रहे हैं ? विद्वानों की सभा में खलबली मच गयी। सबके मुँह से एक ही प्रश्न निकला—किसने सम्पन्न किया यह यज्ञ ?"

इन्द्र ने सन्त की परदुःख कातरता का कारण बताते हुये कहा—"मनीषियो ! परमार्थ सबसे बड़ा यज्ञ है। जहाँ यह यज्ञ सम्पन्न होता रहेगा, वहाँ अकाल की छाया टिक नहीं सकती, सुख-शान्ति एवं समृद्धि की वृद्धि ऐसे ही यज्ञ पर अवलम्बित है।"

भोगे बिना छुटकारा नहीं

वह दोनों सगे भाई थे। गुरु और माता-पिता के द्वारा शिक्षा पाई थी, पूजनीय आचार्यों से प्रोत्साहन पाया था, मित्रों द्वारा सलाह पाई थी। उन्होंने वर्षों के अध्ययन, चिन्तन और अन्वेषण के पश्चात् जाना था कि दुनिया में सबसे बड़ा काम जो मनुष्य के करने का है वह यह है कि अपनी आत्मा का उद्धार करे। मूर्ख इसे नहीं जानते। वे पत्ते-पत्ते को सींचते फिरते हैं, फिर भी पेड़ मुरझाता ही चला जाता है। संसार की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक सभी प्रकार की समस्याएँ इसी एक बात पर निर्भर हैं कि आदमी ईमानदार बनें, सदाचारी हों, आत्म-कल्याण करें।

वे दोनों भाई शंख और लिखित इस तत्व को भली प्रकार जान लेने के बाद तपस्या करने लगे। पास-पास ही दोनों के कुटीर थे। मधुर फलों के वृक्षों से वह स्थान और भी सुन्दर एवं सुविधाजनक बन गये थे। दोनों भाई अपनी-अपनी तपोभूमि में तप करते और यथा अवसर आपस में मिलते-जुलते भी।

एक दिन लिखित भूखे थे। वे भाई के आश्रम में गये और वहाँ से कुछ फल तोड़ लाये। उन्हें खा रहे थे कि शंख भी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने पूछा—"यह फल तुम कहाँ से लाये ?" लिखित ने उन्हें हँसकर उत्तर दिया—"तुम्हारे आश्रम से।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शंख यह सुनकर बड़े दुःखी हुये। फल स्वयं कोई बहुत मूल्यवान वस्तु न थी। दोनों भाई आपस में फल लेते देते भी रहते थे किन्तु चोरी से बिना पूछे नहीं। उन्होंने कहा—"भाई ! यह तुमने बुरा किया। किसी की वस्तु बिना पूछे लेने से तुम्हें चोरी का पाप लग गया।" लिखित को अब पता चला कि वास्तव में उन्होंने पाप किया और पाप के फल को बिना भोगे छुटकारा नहीं हो सकता।

दोनों भाई इस समस्या में उलझ गये कि अब क्या करना चाहिये, पाप का फल तुरन्त ही मिल जाय तो ठीक अन्यथा प्रारब्ध में जाकर वह बढ़ता ही रहता है और आगे चलकर ब्याज समेत चुकाना पड़ता है। निश्चय हुआ कि इस पाप का फल शीघ्र ही भोग लिया जाय। चूँकि दण्ड देने का अधिकार राजा को होता है इसलिये लिखित अपने कार्य का दण्ड पाने के लिये राजा सुद्युम्न के पास पहुँचे।

इस तेजमूर्ति तपस्वी को देखकर राजा सिंहासन से उठ खड़े हुये और बड़े आदर के साथ उन्हें उच्च सिंहासन पर बिठाया। तदुपरान्त राजा ने हाथ जोड़कर तपस्वी से पूछा—"महाराज कहिये मेरे योग्य क्या आज्ञा है ?" लिखित ने कहा—"राजन् मैंने अपने भाई के पेड़ से चोरी करके फल खाये हैं सो मुझे दण्ड दीजिये इसलिये आपके पास आया हूँ।"

राजा बड़े असमंजस में पड़ गया। इस छोटे-से अपराध पर इतने बड़े तपस्वी को वह क्या दण्ड दे और वह भी ऐसे समय जबकि वह स्वयं अपना अपराध स्वीकार करते हुये दण्ड पाने के लिये आया है। राजा कुछ भी उत्तर न दे सका।

तपस्वी ने उसके मन की बात जान ली और उन्होंने न्यायाधिपति से स्वयं ही पूछा कि बताइये शास्त्र के अनुसार चोरों को क्या दण्ड दिया जाता है ? न्यायाधीश अपनी ओर से बिना कुछ कहे शास्त्र का चोर प्रकरण निकाल लाये। उसमें विधान था कि चोर के हाथ काट लिये जायें।

"यही दण्ड मुझे मिलना चाहिये।" तपस्वी ने कहा—"न्याय दण्ड किसी के साथ पक्षपात नहीं करता। व्यक्तियों का ख्याल किये बिना निष्पक्ष भाव से जो व्यवहार किया जाता है वही सच्चा न्याय है। राजन् ! तुमने मुझसे आते समय यह पूछा था मेरे योग्य क्या आज्ञा है ? मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि शीघ्र ही मेरे दोनों हाथ कटवा डालो।" राजा विवश था, उसे तपस्वी की आज्ञा-पालन करनी पड़ी।

अपने अपराध का दण्ड पाकर तपस्वी लिखित प्रसन्नतापूर्वक आश्रम को लौट आये। अपने भाई की कर्त्तव्यपरायणता और कष्ट सहनशीलता को देखकर शंख का गला भर आया और वे उनके गले से लिपट गये। शंख ने कहा—"अपराधी हाथों को लेकर जीने की अपेक्षा बिना हाथों के जीना अधिक श्रेष्ठ है। लिखित ! पाप का फल पाकर अब तुम विशुद्ध हो गये।"

शंख की आज्ञानुसार लिखित ने पास की नदी में जाकर स्नान किया। स्नान करते ही उनके दोनों हाथ फिर वैसे ही उग आये। वे दौड़े हुये भाई के पास गये और उन नये हाथों को आश्चर्यपूर्वक दिखाया।

शंख ने कहा—"भैया, इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। हम लोगों की तपस्या के कारण ही यह क्षतिपूर्ति हुई है।" तब लिखित ने और अधिक अचंभित होकर पूछा—"यदि हम लोगों की इतनी तपस्या है तो क्या उसके बल से उस छोटे-से पाप को दूर नहीं किया जा सकता था ?"

शंख ने कहा—"न ! पाप का परिणाम भोगना ही पड़ता है। उसे बिना भोगे छुटकारा नहीं मिल सकता।"

अन्तर्दृष्टि के विकास से सौन्दर्य के दर्शन

एक दिन मैं नाव पर गंगा की सैर कर रहा था। शरद् की सुहानी शाम थी और सूरज अभी-अभी ही अस्ताचल पर उतरा था। आकाश में निस्तब्धतापूर्ण शान्ति और सौन्दर्य लबालब भरा हुआ था। पानी की फैली हुई चादर पर एक भी बुलबुला नहीं था। सूर्यास्त के बदलते हुए सब रंग उसमें बड़े साफ चमक रहे थे। मीलों तक रेतीले मैदान लम्बे सोये थे। लगता था कोई समुद्री दैत्य लेटा हुआ है और उसकी पूँछ चमकते रंगों से झिलमिला रही है। मेरी नाव तट के ऊँचे घाट से लगी हुई धीमे-धीमे गंगा पर तैर रही थी।

अचानक एक बड़ी मछली पानी की सतह पर उछली और वापस डुबकी लगा गयी। एक क्षण में ही उसका उछलना और ओझलना हो गया। उस एक क्षण के अन्दर ही संध्या के आकाश की रंगीन प्रकाश किरणें पड़ीं और दृश्य ऐसा लगा जैसे क्षण भर में ही प्रकृति के रंग मंच पर सतरंगी दृश्य आया और पुनः विलीन हो गया हो। उस दृश्यावलि के पीछे जीवन के आनन्द से भरा हुआ मौन संसार खड़ा था। वह मछली न जाने किस रहस्यमय संसार से नृत्य करती हुई आयी थी और अवसान प्रायः दिवस के स्वर में अपना संगीत मिलाकर लौट गयी थी। मुझे प्रतीत हुआ कि किसी अज्ञात प्रदेश से मुझे प्रेम भरा सौन्दर्य से परिपूर्ण स्वागत मिला। हृदय को स्पर्श करता हुआ वह दृश्य मुझे सौन्दर्य के आनन्द से अभिभूत कर उठा।

किन्तु उसी समय मैंने नाविक के मुँह से सुना—"ओ हो ! कितनी बड़ी मछली ? वह तो बहुत दिनों तक खाने का काम देती।" मछली को देखते ही नाविक ने भोजन बनाकर खाने की कल्पना कर ली थी। उसने केवल अपनी भूखी नजरों से ही मछली को देखा था। इसलिये उसे मछली के वास्तविक सौन्दर्य का आभास ही नहीं हुआ—हो भी नहीं सकता था। केवल भोगेच्छा की दृष्टि से देखने पर तो पश्चाताप के अतिरिक्त और कुछ होना असंभव ही है।

मनुष्य की यह भोग दृष्टि ही उसे सौन्दर्य के वास्तविक आनन्द से वंचित कर देती है। इसे मैं पशु दृष्टि भी मानता हूँ। जो हमारी आँखों पर पर्दा डालकर उनकी दर्शन शक्ति को बहुत सीमित बना देती है, विवेक को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संकीर्ण बना देती है और पाप भावना को जाग्रत करती है। यही दृष्टि है जो हमारे व्यक्तित्व में विषमता और अहंकार को उभारकर हमारे तथा सौन्दर्य के बीच दीवार खड़ी कर देती है।

भटकन मिटी, जब संवेदना का मर्म जाना

पल-क्षण, रात्रि-दिवस, मास-अयन वर्ष के रूप में समय की आँख-मिचौनी चलती रही। कभी साधनों का अभाव, कभी आजीविका का, कभी ज्ञान का अभाव, कभी विवेक का, कभी शक्ति का अभाव, कभी सामर्थ्य का। सब मिलकर इतने जीवन में कण्व को न कहीं शान्ति मिली न ही सन्तोष। उन्हें मनुष्य जीवन में सर्वत्र अपूर्णता ही अपूर्णता दिखाई दी। शरीर भी न अपनी इच्छा से मिलता है, न स्वेच्छा से, अन्त होता है, न जाने किन बन्धनों में बँधा पड़ा हूँ, ऐसी अशान्ति बार-बार उठती रही। अतएव उन्होंने निश्चय किया वे पूर्णता की प्राप्ति करके रहेंगे।

प्रातः बेला में जब शीतल समीर के सुगन्धित झोंकों में सारा नगर निद्रामग्न हो रहा था, कण्व उठे और एक ओर जंगल की तरफ चल पड़े। चलते ही गये, शाम होने को आयी। उन्होंने विशाल शैल शृंखला देखी जिसकी एक बाहु दक्षिण के हृदय में प्रवेश कर रही थी, दूसरी उत्तर के अन्तस्तचल में। सूर्यदेव अपनी पीतवर्णी आभा के साथ इस अंचल में ही अस्त होते जा रहे थे। उनके लिये यह अलौकिक दृश्य था, आखिर अभी वे बालक ही तो थे। सोचा अपनी गोद में भगवान सूर्य को शयन कराने वाले यह पर्वतराज ही पूर्ण हैं। वे वहीं टिक गये और पूर्णता के लिये पर्वत की उपासना करने लगे।

इसी पर्वत पर एक और महात्मा रहा करते थे। पारस्परिक वार्तालाप से पता चला कि इस बालक ने पर्वत की ऊँचाई में ही पूर्णता देखी सो उन्हें हँसी आ गई। उन्होंने हल्के से मुसकराते हुये कहा—"रे कण्व ! तूने समुद्र देखा होता तो पर्वत की ऊँचाई को कभी भी पूर्ण नहीं मानता।"

गाय जिस तरह हरित तृण की खोज में वन-वन भटकती है, उसी तरह वह भी पूर्णता की खोज में भटकने लगे। उन्हें अपनी भूल पर विस्मय हुआ और ज्ञान की लघुता पर दुःख भी किन्तु एक निश्चय "मुझे पूर्णता प्राप्त करनी चाहिये" का बल उनके साथ था, चल पड़े वह और कई दिनों की यात्रा के बाद वे समुद्र तट पर जा पहुँचे।

विशाल जल राशि, अनन्त जीवों को अन्तस्तल में आश्रय दिये, अनन्त दूरी तक फैले समुद्र को देखकर उनका मस्तक श्रद्धावनत हो गया। उन्होंने कहा—"धन्य हो प्रभु ! तुम्हारी गहराई ही पूर्णता है। सूर्य, पर्वत में डूबता दिखाई दिया, वह तो भ्रम मात्र था। अब मुझे पता चला पूर्व एवं पश्चिम दोनों तुम्हारे ही बाहु हैं, एक से सूर्य भगवान निकलते और दूसरे में समा जाते हैं। क्षमा करना प्रभु ! हम मनुष्यों की दृष्टि और ज्ञान बहुत सीमित है, इसलिये यह भूल हुई। आगे ऐसी भूल नहीं होगी।"

बालसुलभ वाणी सुनकर सिन्धुराज अपनी हँसी नहीं रोक सके। उन्होंने कण्व को अपने एक ज्वार की शीतलता का स्पर्श कराते हुये कहा—"वत्स ! ऊँचाई और गहराई में पूर्णता नहीं होती। तुम मन्दराचल पर तप कर रहे—तपस्वी वेण के पास जाओ। तुम देखोगे उनका तप हिमगिरि के समान उतुंग और साधना में मुझ सागर से भी बढ़कर गहरा है। निश्चय ही उनके पास जाकर तुम पूर्णता की प्राप्ति कर सकोगे।

किसी तरह बीहड़ों-जंगलों को पार करते वे महात्मा वेण के पास पहुँचे और उनके चरणों में अपनी श्रद्धा समर्पित करते हुये भोले बालक ने अभ्यर्थना की—"भगवन् ! पूर्णता के लिये भटक रहा हूँ, कहीं शान्ति नहीं मिलती, मुझे अपनी शरण में ले लें और मेरा उद्धार करें।"

बालक की अचल श्रद्धा व भक्ति देखकर तपस्वी का हृदय भर आया। उन्होंने आशीर्वाद दिया "वत्स ! तुम्हारा यश पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्रमा की भाँति चमके।"

"किन्तु मैं तो पूर्णता के लिये आया हूँ—महात्मन् ! यश से आत्मा मुक्त थोड़े ही होती है।" कण्व ने कोमल किन्तु दृढ़ स्वर में प्रार्थना की।

तपस्वी ने एक क्षण बालक की ओर देखा और वे सहसा गम्भीर होते गये, उन्होंने कहा—"तात् ! पूर्णता के लिये गहराई और ऊँचाई ही पर्याप्त नहीं, तप से भी कुछ काम नहीं चलता, उसके लिये गति चाहिये। मुझे भी मुक्ति की कामना है, इसलिये मैंने सामाजिक बंधन तोड़ डाले हैं, अब मैं केवल अपने लिये स्थिर हूँ। तुम जो कुछ चाहते हो वह मेरे पास कहाँ है ? अच्छा हो तुम शुद्धायतन के पास चले जाओ जो काम, क्रोध, लोभ, मोह और यश के प्रलोभनों के बीच भी अपने लक्ष्य के लिये पर्वत के समान अटल और अडिग हैं। उन्होंने गति को तपश्चर्या माना है। वे रात-दिन, बन्धु-बान्धवों, पड़ौस और समाज के लिये राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सुख-शान्ति के लिये घुला करते हैं। वे मुझ से श्रेष्ठ हैं, उनके पास जाने से तुम्हें अभीष्ट की प्राप्ति हो सकेगी।"

वह उनके पास भी हारे-थके पहुँचे। लगातार की भाग-दौड़ में उनका मुख ग्लान हो गया था, होंठ सूख रहे थे। तपस्वी शुद्धायतन ने जल और भोजन से उनका सत्कार करते हुये अपने पास आने का कारण पूछा। कारण मालूम होने पर वह सौम्य स्वर में बोले—"कण्व ! इस संसार में ऊँचाई-गहराई, तप और कर्मठता के साथ ज्ञान का होना भी आवश्यक है। तुमको मैं ऐसे ज्ञानी सद्गृहस्थ विरुध का परिचय देता हूँ। वहाँ चले जाने से तुम पूर्णता की प्राप्ति कर सकोगे।

कण्व का शरीर भले इस भटकन से थक गया हो, पर मन में अभीप्सा की ज्वाला धधक रही थी। बिना एक पल रुके वे चल पड़े और कुछ ही दिनों में विरुध के पास पहुँचकर उन्होंने विनीत भाव से अपने आने का उद्देश्य कह सुनाया। विरुध ने उत्तर दिया—"वत्स ! मानता हूँ मुझे ज्ञान के कुछ कण मिले हैं। किन्तु मुझ में उसके कारण जो अहंकार आ गया है, उसने मेरे व्यक्तित्व को सीमित कर दिया है। अहंकार मनुष्य के संसार को छोटा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर देता है। उसके रहते पूर्णता की कल्पना कहाँ की जा सकती है। जीवन का वास्तविक तत्व संवेदना है। भावुकता, संवेदनशीलता भावना के क्रम में जिसने अपने अन्तःकरण को विकसित कर ईश्वरीय प्रेम को पा लिया है वही पूर्ण है। समर्पण और प्रेम के मर्म को जानने वाले भक्त देवदास के पास तुम चले जाओ। आशा है, तुम्हें अपने लक्ष्य की पूर्ति का साधन वहाँ मिल जायेगा।"

अब तक वे बहुत थक चुके थे। इतने दिनों तक यदि वे किसी एकान्त में बैठकर तप करते तो शायद पूर्णता का प्रकाश पा लेते। पर यहाँ तो अभी तक भटकने के अतिरिक्त कुछ हाथ न लगा। पर यह तो हमारी सोच है। कण्व तो ब्रह्म जिज्ञासा की अनन्त प्यास लेकर भटक रहे थे। उसका बुझना तो लक्ष्य प्राप्ति के साथ ही संभव था।

उनके कदम आगे बढ़ते गये और भक्त देवदास की शरण में जा पहुँचे। उन्होंने कहा—"भगवन् ! मुझे भक्ति के दर्शन कराइये। मैंने सुना है, भक्ति से पूर्णता की प्राप्ति होती है।"

भक्त देवदास मुसकराये और कहने लगे—"तात् ! मैंने अपने कर्ताभाव को भगवान के चरणों में समर्पित करने की कोशिश की, तो भी जब कभी मुझे मोक्ष की कल्पना उठती है। इन क्षणों में मुझे अनुभव होता है कि मेरा कर्तापन पूर्णतया नष्ट नहीं हुआ। जब तक मैं अपनी सीमा मर्यादा में बँधा हूँ और सृष्टि के अणु-अणु में व्याप्त आत्मा के साथ एक रत नहीं हो जाता तब तक पूर्णता कहाँ ? तुम वशिष्ठ के पास जाओ, वहाँ संभव है तुम्हें कोई उचित मार्ग मिल सके।"

कण्व वशिष्ठ के आश्रम में पहुँचे। आश्रम परिसर से वेद मन्त्रों की मधुर गूँज उठ रही थी। प्रवेश करने पर पाया महर्षि कुछ छात्रों से घिरे बैठे हैं। वह भी जाकर एक कोने में चुपचाप बैठ गये। ऋषि व्यक्तित्व के मर्म को समझाते हुये कह रहे थे—"जीवन का तत्व संवेदना है। ईश्वरीय प्रेम के रूप में यह परिणत हो सका—इसकी एक ही कसौटी है—सेवा। सेवा का अर्थ किसी की शारीरिक सहायता भर नहीं, वैचारिक सहायता भी है। उसके आत्मोत्कर्ष के प्रयास भी इसी में समाहित हैं। जिसने स्वयं को इसके लिये पूर्णतया समर्पित कर दिया वह पूर्ण हो गया।"

पाठ समाप्त ही होने को था इतने में एक अन्तेवासी किसी व्यक्ति को सहारा देकर लाये। उसके कपड़े पूरी तरह भीगे हुये थे। वह अर्द्ध बेहोशी जैसी स्थिति में था। महर्षि स्वयं उसकी सुश्रूषा में जुट गये। विद्यार्थी उनकी सहायता कर रहे थे। होश में आने पर उस व्यक्ति ने बताया कि जीवन से उकताकर उसने सरयू नदी में कूदकर आत्महत्या की कोशिश की, परन्तु बचा लिये जाने के कारण वह अपने प्रयास में सफल नहीं हो पाया। महर्षि बड़े प्रेम से उसकी समस्याओं को पूछते और निराकरण सुझाते थे। इसे महर्षि का तप प्राण कहें या हृदय की प्रेम सामर्थ्य आगन्तुक में जीवन की उमंग जीवित हो उठी। सद्विचारों की जीवन्तता लिये वह अपने घर की ओर लौट पड़ा। इस कार्य में शाम हो गयी थी। परिचर्या से निवृत्त होने पर ब्रह्मर्षि वशिष्ठ ने कण्व के कन्धे पर अपना स्नेह भरा हाथ रखते हुये कहा, "किस कारण आये वत्स ?" कण्व अपनी आँखों में भाव-बिन्दु सँजोये बोले "भगवन् ! पूर्णता के लिये भटक रहा था। आपके चरणों में आकर पूर्णता का मर्म पा लिया।"

वैराग्य की प्रथम पाठशाला

देवदत्त सन्त थे पर सांसारिक सन्त। यों नहीं कि उन्होंने गृहस्थ का परित्याग नहीं किया हो वरन् इसलिये कि वे ईश्वर का भजन, साधना, स्वाध्याय, सदाचार, सद्-व्यवहार का आचरण करते हुये भी कभी-कभी क्रोध का व्यवहार कर जाते थे। धैर्य स्थिर रख सकना उनके लिये कठिन हो जाता था और घर में जब कभी ऐसी स्थिति आती, धर्मपत्नी को डाँटने लगते—"देख यदि तूने अमुक कार्य नहीं किया तो सन्त पुनीत के आश्रम में चला जाऊँगा और संन्यासी हो जाऊँगा।" सहिष्णुता का उनमें नितान्त अभाव था।

धर्मपत्नी को उनसे तो नहीं, उनकी धमकी से बड़ा भय लगता था। नन्हें-नन्हें बच्चों के पालन-पोषण का प्रबन्ध कौन करेगा, यदि ये संन्यासी हो गये, यह कल्पना करते ही वह डर जाती और वे जैसा कहते करने लगती। किन्तु ब्राह्मणी, देवदत्त के इस आचरण से मन ही मन बहुत दुःखी रहती थी। इन्हीं देवदत्त की गाँव के लोग कितनी श्रद्धा करते हैं, कितना स्नेह और आदर देते हैं, वह गाँव वालों से कैसे मीठे-मीठे बोलते हैं, इस पर ध्यान जाता तो उसे शंका होने लगती कि क्या दूसरों के लिये मीठा होना और घर के निरीह सदस्यों को दबाना और भक्ति का रौब जमाना ही सन्त का लक्षण है। यदि ऐसा ही है तो ईश्वर की उपासना व्यर्थ वस्तु है, ऐसा वह सोचती पर बोलती कुछ नहीं, क्योंकि उस बेचारी को ईश्वर की नहीं, पति की आवश्यकता थी।

सन्त पुनीत का आश्रम समीप ही था। महर्षि कभी-कभी गाँवों में चले जाते और लोगों के दुःख-कष्ट पूछते, ओषधि वितरण करते, ज्ञान-दान देकर शाम तक आश्रम लौट आते। एक दिन वे इसी प्रकार उस ब्राह्मणी के घर भी जा पहुँचे। ब्राह्मणी को दुःखी देखकर उन्होंने पूछा—"विद्यावती ! तू दिन-प्रति-दिन दुबली होती जाती है, तुझे कोई कष्ट है क्या ?"

दुःखी आत्माएँ करुणा की प्यासी होती हैं। महर्षि के स्नेह वचन सुनकर विद्यावती की आँखें भर आईं, उसने भरे कण्ठ से कहा—"भगवन् ! और तो कोई दुःख नहीं है, वे पूजा-भक्ति करते हैं, वह मुझे भी अच्छा लगता है। ईश्वर की उपासना से मनुष्य के अन्तःकरण में प्रकाश आता है, वह मैं जानती हूँ पर मुझे यह समझ में नहीं आता कि उसके लिये क्या घर छोड़ना आवश्यक ही है। ऐसा न होता तो ये (अपने पति का संकेत सम्बोधन) यों कहकर धमकाते नहीं—"मैं घर छोड़कर सन्त पुनीत के आश्रम में चला जाऊँगा और संन्यासी हो जाऊँगा ?" क्या ईश्वर को प्राप्त करने के लिये संन्यासी होना ही आवश्यक है।

'नहीं, नहीं बेटी !' सन्त ने आश्वासन का हाथ उठाया और बोले—"मनुष्य अपने घर पर रहकर यदि मानवीय गुणों का आचरण निष्ठापूर्वक कर सके तो उतनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही ईश्वर-भक्ति पर्याप्त है, इतने से ही वह ईश्वरीय विभूतियों को प्राप्त कर सकता है। जो यहाँ अपना अहंकार नहीं छोड़ सका, वह मेरे आश्रम में आकर क्या वैराग्य करेगा ?"

उन्होंने समझाया—"अच्छा बेटी ! तू चिन्ता मत कर मैं ऐसा कर दूँगा कि देवदत्त फिर कभी ऐसे वचन न बोले। पर हाँ तू थोड़ा साहस करना। इस बार जब कभी देवदत्त यह कहे कि मैं सन्त के आश्रम चला जाऊँगा तो तू भी कह देना—हाँ, हाँ चले जाइये। आगे हम सँभाल लेंगे।"

बात-बात में थोड़ा बिलम्ब हो गया और उस दिन भी भोजन बनकर तैयार होने में थोड़ा अधिक समय लग गया। देवदत्त घर लौटे और भोजन तैयार न मिला तो बहुत कुपित हुये। वही चिर-परिचित अस्त्र उठाया उन्होंने, बोले—"आज पहले यह बता दो कल से भोजन समय पर मिलेगा या नहीं, अन्यथा मैं अभी चला जाऊँगा और संन्यासी हो जाऊँगा।"

विद्यावती के मुख पर आज भय नहीं, मुसकान थी। हल्की हँसी हँसती हुई बोलीं—"अजी ! अभी ऐसी शाम नहीं हो गई, कल की कौन जाने, आज ही चले जाइये और संन्यासी हो जाइये। मुझे उसका जरा भी भय नहीं।"

जलती आग में घृत डालो तो आग और तीव्र हो उठती है। क्रोध का स्वभाव ही वैसा ही है, थोड़ा-सा हस्तक्षेप भी क्रोधी को असह्य हो जाता है, फिर यहाँ तो घृत उलीचा गया। देवदत्त ने पीछे मुड़कर भी नहीं देखा तुरन्त आश्रम की ओर चल पड़े। रात उन्होंने आश्रम में जाकर ही बिताई।

सबेरा हुआ। महर्षि पुनीत का सत्संग लगा। आज उसमें एक नये अतिथि भी थे। महर्षि ने मुसकराते हुये, देवदत्त की कुशल-मंगल पूछी। देवदत्त ने कहा—"भगवन् ! संन्यास दीक्षा लेना चाहता हूँ, उसका प्रबन्ध आज ही, अभी-अभी करा देने का अनुग्रह करें।"

उसी तरह मुसकराते हुये सन्त पुनीत ने कहा—"हाँ, हाँ वत्स ! तू वस्त्र उतारकर यहाँ रख दे और गोदावरी स्नान कर, शीघ्र वापस आ जा। अभी-अभी दीक्षा का प्रबन्ध किये देता हूँ।" देवदत्त उठे और अपने वस्त्र उतार कर एक ओर चल पड़े।

इधर सन्त ने उनके सब कपड़े फाड़कर फेंक दिये। खाने के लिये कुछ कड़ुवे और कसैले फल मँगा लिये। देवदत्त स्नान करके आये तो अपने कपड़े माँगे। सन्त ने चिथड़ों की ओर संकेत किया—देवदत्त फटे कपड़े देखकर क्रुद्ध हो उठा पर कुछ बोल न सका। महर्षि ने कहा—"क्या देखते हो, संन्यासियों को अपरिग्रही बनना पड़ता है। कम से कम वस्तुओं में काम चलाना पड़ता है। अच्छा ले भोजन कर ले।" यह कहकर वही कड़ुवे फल आगे कर दिये।

देवदत्त से एक फल कठिनाई से खाते बना। दूसरा तो मुख में रखते ही थूक दिया और बिगड़कर बोले—"मैं ऐसे कड़ुवे फल खाऊँगा ? यह तो जानवर भी नहीं खाते ?"

"शान्त हो वत्स ! ईश्वर को पाना एक बड़ी भारी कसौटी है। वैरागी को सन्तोषी, धैर्यवान् और सहिष्णु होना पड़ता है, यदि तू पहले यही नहीं सीख सका तो क्या बनेगा, ईश्वर-निष्ठ ! दया, करुणा, उदारता, संयम, सेवा ही नहीं, मिष्ठ भाषण धैर्य और सहिष्णुता भी ईश्वर-निष्ठा के आवश्यक गुण हैं। इनका तुझे अनिवार्य रूप से अभ्यास करना पड़ेगा।"

अपनी अब तक की क्षुब्धता से उबलते हुये देवदत्त ने कहा—"तो फिर इनका अभ्यास तो मैं अपने घर में ही कर सकता था। आपके पास तो मैं इस कामना से आया था कि आप हमें कुछ विशेष विभूतियाँ और साधनाएँ सिखायेंगे।"

महर्षि ने हँसकर कहा—"तात् ! यह बाद की बातें हैं, अभी तो तू घर लौट जा और वहीं रहकर सद्गुणों का अभ्यास कर।"

देवदत्त की समझ में बात आ गई। वे घर लौट आये और धर्मपत्नी से क्षमा माँगते हुये कहा—"मुझे पता नहीं था, वैराग्य की पहली पाठशाला गृहस्थ है अन्यथा अब तक तुम्हें जो कष्ट दिया, वह न दिया होता।"

साधना का अद्भुत चमत्कार

मैसूर राज्य के एक गाँव में एक विद्वान ब्राह्मण रहता था परन्तु एक कहावत—"भाग्यविहीन नर कौड़ी न पावे" के अनुसार माधव बिल्कुल दरिद्रता में परिवार के साथ दिन बिता रहा था। एक-दो नहीं, चार-चार पुत्रियों का बाप होने पर भी चिन्तारहित देख उसकी पत्नी ने कहा—"नाथ कुछ विचार करो, सबसे बड़ी लड़की शादी के योग्य हो गई है और इतनी घोर दरिद्रता का कब तक सामना करते रहोगे ? हम दो पति-पत्नी होते तो चल जाता पर चार-चार पुत्रियों का कैसे निर्वाह कर सकेंगे ? कुछ मेहनत करो या अपनी विद्वता का उपयोग करो।"

ब्राह्मण अपनी पत्नी के वचन सुनता रहा फिर बोला तुम्हारा कहना सत्य है, पर आज तक मैंने किसी से कुछ माँगा नहीं है और न माँगूँगा जितना मिला उसी में मैंने सन्तोष माना। ब्राह्मणों का बल और भूषण तो गायत्री ही है, विचार है कि एक गायत्री-पुरश्चरण करूँ, माँ अवश्य मेरी लाज रखेगी।

शुभ दिन शुभ मुहूर्त देख उसने माँ का अनुष्ठान शुरू किया। एक पूरा हुआ दूसरा लिया, दूसरा पूरा हुआ तीसरा ऐसे चार-पाँच और करते-करते ग्यारह पुरश्चरण किये इक्कीस लाख गायत्री-जप किये महीने बीत गये पर न तो माँ का साक्षात्कार हुआ और न दरिद्रता दूर हुई।

इतने समय में तीन पुत्रियाँ विवाह योग्य हो गईं। बड़ी लड़की की तो उम्र काफी बढ़ गई थी। अतः जाति के लोग काना-फूँसी करने लगे। कई लोग तो मुँह पर भी व्यंगम्य वचन कहने लगे। अन्त में जीवन से निराश होकर एक रात को घर का त्याग करके किसी योग्य गुरु से दीक्षा ले ली।

कहने का मतलब माधव ने संन्यास ग्रहण कर लिया। मैसूर से दूर पर्वतमाला में जाकर तप करने लगे, घर से दुःखी होकर वे अन्त में चोट खाकर निकले। अतः

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

गायत्री माता की ओर उनका संबंध बिल्कुल एक छोटे बालक की तरह हो गया था।

बात-बात में रो देना, जैसा मन में आवे वैसा माँ से बुरे-भले शब्द कह देना उनका कार्य हो गया फिर कभी-कभी तो वे इतने उत्तेजित होकर कहने लगे—"माँ तूने मुझे बदनाम किया, मेरी इच्छा व कार्य पूर्ण न किया, मैंने तेरी भक्ति की, तुझे ही सर्वस्व माना और तेरे पर ही विश्वास रखा तो उसका फल यह मिला कि मुझे अपना घर का व संसार का त्याग करना पड़ा। स्त्री-पुत्रियाँ दूसरे के भरोसे ठोकरें खाती छोड़नी पड़ीं, माँ ! क्या यही तेरा न्याय ?" इतना कहते-कहते तो आँसुओं का प्रवाह बह निकलता फिर कुछ होश में आकर व अपना आश्रम याद करके संसार को भूलने की कोशिश करने लगे पर सब व्यर्थ, उन्हें कहीं चैन नहीं पड़ता था।

एक दिन वे प्रातःकाल बहुत जल्दी ही शौच आदि के लिये गये। प्रभात का सुनहला दिन था, मन्द-मन्द पवन चारों ओर मन को प्रफुल्लित करके चल रही थी, ऐसे मनोहर वातावरण में वे बहुत दूर निकल गये।

अचानक उनके पाँव में ठोकर लगी और वे रुक गये, ठोकर इतनी जोर से लगी थी कि ईंट उस स्थान से बाहर निकल आई और उसके नीचे उसको कुछ बर्तन की धार नजर आई विशेष खोदने पर उन्होंने क्या देखा कि एक ताँबे का पात्र सोने के सिक्कों से भरा पड़ा है। वे यह दृश्य देखते ही सचेत हो गये, उनको अपना संन्यास आश्रम याद हो आया आँखों से अश्रुधारा बह निकली, दुःखी मन से बोले—"माँ ! माँ !! तेरी आराधना में, तेरी तपस्या में, मेरी कौन-सी कमी बाकी रह जाती है, जो मुझको इस तरह हैरान करती हो ? मेरा एक आश्रम तो बिगाड़, अब यह दूसरा आश्रम भी बिगाड़ना चाहती हो ? माँ ! यह कैसी भयंकर परीक्षा है ? अब तो मैंने गृहस्थाश्रम से संन्यास ले लिया है, इस आश्रम में मुझे लक्ष्मी की क्या आवश्यकता ? जब आवश्यकता थी, तब दूर भागी, अब आवश्यकता नहीं है तब लक्ष्मी प्राप्त हुई। अब मुझे क्या प्रयोजन उससे ?" क्रोधावेश में भली-बुरी कहते रहे और इतना ही नहीं उसी ताम्रपात्र पर जिसमें सोना था उसी पर शौच-क्रिया करके वहाँ से चल दिये ?

नहा-धोकर फिर गायत्री-जप करने बैठे। वहीं सहसा प्रकाश पुंज चमक उठा, उनकी आँखें तेज को सहन न कर सकीं और आकाशवाणी हुई—पुत्र ! मैं तेरे पर प्रसन्न हूँ, माँग-माँग जो माँग वही दूँगी। आँख खोलकर उन्होंने देखा तो सामने ही हंसारूढ़ गायत्री-माता के दर्शन हुये। उनका तेज इतना बढ़कर था कि उन्होंने आँखें मूँद लीं और कहने लगे—"अब क्यों तकलीफ की माँ ? सब कुछ तो गँवा चुका हूँ। दर्शन की और कृपा की आवश्यकता तो पूर्वाश्रम में थी, जबकि तेरी आराधना की थी ? अब तो कुछ नहीं चाहिये। चली जाओ यह कृपा समय पर नहीं है। अब तो कुछ तृष्णा नहीं रही, कुछ आशा नहीं रही, कोई इच्छा नहीं रही अतः चली जाओ।" माँ ने आशीर्वाद दिया—

"आयुष्यमान ! कर्मफल सबको भुगतना ही पड़ता है, इससे तुझे भी भुगतना पड़ा, अब शोक न करो।"

"माँ ! पुण्य से तो पाप निर्मल हो जाते हैं और उसमें भी तुम्हारी आराधना, एक दो नहीं, ग्यारह अनुष्ठान किये, कर्मफल ऐसे कितने थे जो इतना करने पर भी बाकी रहे ?"

माँ ने उत्तर दिया—"बहुत पाप थे, देखने की इच्छा हो तो बाहर आओ।" बड़ी उत्सुकता से वे अपने आश्रम से बाहर निकले। माँ की बायीं दिशा की तरफ मुँह करके खड़े रहने से सामने ग्यारह जलती हुई चितायें दिखाई दीं। माँ ने कहा—"यह सब तेरी ब्रह्म हत्यायें हैं। एक-एक पुरश्चरण के पुण्य से एक-एक हत्या का पाप नाश हो गया, अब तू निष्पाप हो गया है। गृहस्थाश्रम के समय तेरे भाग्य में लक्ष्मी नहीं थी, आश्रम बदला और तुझे मेरी कृपा से धनभंडार मिला।" उत्तर में उसने कहा—"पर माँ अब वह धन मेरे किस काम का ?" माँ ने कहा—"तुमने धन का त्याग किया, इससे ही मेरा साक्षात्कार हुआ बेटा ! सबको अपने अच्छे-बुरे कर्मों का फल आगे-पीछे भी भुगतना ही पड़ता है।" उसने कहा—"माँ ! मेरी स्त्री का क्या हाल हुआ होगा ? मेरी पुत्रियों की क्या गति हुई होगी ?"

माँ ने उत्तर दिया—"बेटा तू चिन्ता न कर, तेरी तीन पुत्रियों की शादी हो चुकी है। सबसे छोटी पुत्री भी अपनी माता के साथ सुख से जीवन व्यतीत कर रही है। मैंने अपना कर्त्तव्य किया है।"

गद्गद् कंठ से माधव यह सब सुनते रहे। आँखों से प्रेमाश्रु की अविरल धारा बह चली और माता के पाँव में साष्टांग प्रणाम किया। माँ मेरे अपराधों को क्षमा करो। मैंने क्रोध में आकर तुम्हें बहुत कुछ कह दिया।

माँ ने कहा—"बेटा ! यह सब तूने नहीं कहा, पर संयोगवशात् तेरे से बोला गया है। पुत्र चाहे जैसा हो, लाड़ करे या घृणा करे, सच बोले या असत्य बोले, माँ की गोदी कभी बच्चों का त्याग नहीं कर सकती। अब मेरी शान्ति की खातिर तू कुछ वरदान माँग।" "मेरी मुक्ति हो, माँ ! बस यही कामना है।" माँ ने उत्तर दिया, "तथास्तु ! और भी कुछ माँग।" उत्तर में उसने कहा, "माँ ! यदि प्रसन्न हो तो लोगों का कुछ भला हो, ऐसा कुछ वरदान दो।" माँ ने कहा कि मेरी भी इच्छा यही है जो लोगों का भला हो और तेरा नाम अमर रहे, जनता दुःखी और दरिद्र न रहे अतः तेरे यहाँ सुवर्ण मुद्राओं की वर्षा करूँगी। परन्तु राजा वह धन अपने खजाने में न ले ले, उसका तुझे कुछ करना होगा। माधव ने उत्तर दिया—"माँ ! मैं तो अब यह स्थान छोड़कर कहीं भी जाने वाला नहीं हूँ।"

माँ ने कहा—"पुत्र ! तुम्हें कहीं भी जाने की आवश्यकता नहीं है, मेरी प्रेरणा से राजा स्वयं यहीं आवेंगे।" इतना कहकर माँ अदृश्य हो गई।

एक दिन राजा शिकार खेलने को जंगल में सेना सहित गये। अधिक रात हो जाने से उसी जंगल में पड़ाव डालकर रहे। सुबह इधर-उधर घूमने से उनको वही दृश्य नजर आया। द्रव्य पर शौच-क्रिया देखकर राजा कौतुहल में आकर कहने लगे कि इस प्रकार लक्ष्मी की अवहेलना करने वाला मनुष्य या तो पूरा पागल होगा या नहीं तो सम्पूर्ण त्यागी पुरुष होगा। मुझे देखना पड़ेगा। सेनापति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और नौकरों को बुलाकर राजा ने हुक्म दिया कि यह पुरुष पास ही में कहीं होगा, तुरन्त ढूँढ़कर मुझे सूचना करो। नौकरों ने थोड़ी ही देर में उनका आश्रम ढूँढ़ निकाला और राजा उनके पास पधारे। साष्टांग प्रणाम करके खड़े रहे। राजा को देखकर उन्होंने आशीर्वाद दिया। राजा ने उपरोक्त घटना का हाल पूछा। उन्होंने जो घटना हुई थी सब सत्य कह दी और साथ में यह भी कहा कि राजा तुझे अब लक्ष्मी की आवश्यकता नहीं रही। वह द्रव्य जो आपने देखा है, वह सब राज्यकोष में ले जाइये, मेरी इच्छा है कि हमारे देश में कोई दुःखी व दरिद्र न रहे इसलिये सुवर्ण मुद्राओं की वर्षा गायत्री माता की कृपा से होगी परन्तु वह धन आप प्रजा के हित में खर्च करें न कि अपने लिये लें। राजा इस बात पर राजी हो गये। राजा वहाँ से अपने राज्य में गये, साथ में वह धन लेते गये। वह धन केवल एक ही ताम्र पात्र में न था बल्कि ऐसे एक के बाद एक बर्तन निकले जो राज्यकोष में ले जाये गये।

दूसरे दिन फिर माँ ने दर्शन दिये। माधव ने राजा से जो बातचीत हुई थी, वह सविस्तार कह सुनाई। माँ बहुत प्रसन्न हुई और कहने लगी—"बेटा अष्टमी को सूर्योदय के पहले तेरे प्रदेश में सुवर्ण मुद्राओं की वर्षा होगी।" इतना कहकर माँ अन्तर्द्धान हो गई। माँ के कहे अनुसार बराबर अष्टमी को सुवर्ण मुद्राओं की वर्षा हुई। प्रजा हर तरह से उस धन को प्राप्त करके सुखी व सम्पन्न हुई। उस सिक्के में गायत्री माता का पदचिह्न था। आज भी वह सिक्का सारे राज्य के राज्यकोष में पाया जाता है। राजा ने भी अपना कर्त्तव्य निभाया। उसने कभी भी वह धन अपने काम में न लेते हुये प्रजा के हित में ही उपयोग किया। धन्य है उस माधव को, जिसने अपना सब कुछ खोकर लोगों का भला किया। फिर वे मंदसौर राज्य में माधव के बदले विद्यारण्य स्वामी के नाम से प्रख्यात हुये।

आराधना का प्रतिफल भावना क्षेत्र के परिष्कार पर निर्भर

एक महादरिद्र ब्राह्मण थे, उन्होंने अपनी एकमात्र कन्या का विवाह एक सम्पत्तिशाली व्यक्ति के पुत्र के साथ कर दिया था।

उनकी गृहस्थी में सिवाय उनकी ब्राह्मणी के और कोई न था। वे दरिद्र ब्राह्मण थे फिर भी बड़े उदार थे। साल भर की भिक्षा में जो कुछ अन्न उनके पास बच जाता, उस द्रव्य को वे सत्कर्म में खर्च करते थे। आश्विन माह के नवदुर्गा में कुछ दे सकें या नहीं पर तन्मय हो, आँखों के प्रेमाश्रु दे सचन्दन विल्वपत्रों से 'माँ' गायत्री की पूजा कर अपने को कृतार्थ करते थे। आखिरी दिन नवमी तिथि को पूर्णाहुति के उपलक्ष्य में एक सामूहिक छोटा गायत्री यज्ञ भी करते ?

एक बार पूजा के पूर्व ही से ब्राह्मणी रोग ग्रस्त हो गई, उठने-बैठने की ताकत उनमें न रही, भोगादि तैयार करने एवं पूजा की सामग्री संग्रह करने में ब्राह्मण निरुपाय रहे, उनका हृदय व्याकुल हो उठा। शायद हमारी वार्षिक पूजा असिद्ध न हो जाय। वे मन ही मन कहने लगे, "माँ गायत्री मुझे दुःखिया समझकर इस बार मेरे घर में क्या आविर्भूत नहीं होगी ?" फिर वे सोचने लगे कि इस बार अपनी लड़की को ही दो-चार दिन के लिये लाकर सभी कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न किया जाय। इसी उद्देश्य से वृद्ध ब्राह्मण महोदय, समधी महोदय के भवन की ओर चल दिये और यथासमय पहुँचकर उन्होंने अपनी लड़की को पूजा के उपलक्ष्य में उसी दिन ही भेजने के लिये समधी से आग्रह किया, परन्तु धन मद गर्वित 'भूस्वामी' अपने निकट संबंधी की भूल उसकी भावनाओं की ओर दृष्टिपात न करते हुये तिरस्कार करते हुये कहा कि—"तुम्हारा इतना बड़ा दुस्साहस कि आज राजकुल वधू राजमहल की अतुल-आनन्दमयी पूजा देखकर अपने महल में कितनी आमोद-प्रमोद होगी। यह सब न देखकर दीन-हीनों की तरह (तुम्हारी तरह दरिद्र के घर में) सामान्य पूजा देखने के लिये, हाथ जलाकर भोग पाक करने के लिये दासी की तरह आज तुम्हारे घर जायेगी ? नहीं यह कदापि नहीं हो सकता, दूसरी बार ऐसी बात मुँह से भी निकालने का दुस्साहस न करना।"

समधी महोदय के मुँह से ऐसी कटु बात सुनकर गरीब ब्राह्मण के कोमल दिल पर सख्त चोट पहुँची, वे वहाँ से उठ खड़े हुये एवं धीरे-धीरे महल से बाहर आकर जी भरकर रोते हुये धीरे-धीरे अपने घर का रास्ता लिया।

जाते-जाते सोचने लगे, तो क्या 'माँ' के चरण-कमलों पर इस बार पुष्पांजलि भी न दे सकूँगा, गंगाजल की एक बूँद से भी माँ का चरण न धो सकूँगा, माँ करुणामयी क्या इस सेवक की आशा पूर्ण न होगी ? माँ ! दीनदयामयी, तुम्हारे सिवा और इस दास के, कोई नहीं माँ' माँ-माँ-माँ . . . .'

भक्त गरीब ब्राह्मण की पुकार से माँ क्या रह सकती है कदापि नहीं। पुष्करनी के निकट एक सुसज्जित षोडशी कन्या ठीक ब्राह्मण की लड़की के रूप में खड़ी है एवं उसी लड़की के स्वर में कह रही है—पिताजी आप कहाँ थे—

ब्राह्मण उलटकर देखते हैं जिसके लिये उनको इतनी भर्त्सना सुननी पड़ी वह सुलक्षणी कन्या तो उन्हें ही बुला रही है एवं ताक रही है।

ब्राह्मण ने उस कन्या को सभी बातें जो समधीजी से हुई थीं, स्पष्ट सुना दीं।

लड़की बोली—'पिताजी आप इसके विषय में चिन्ता न कीजियेगा। मैं चुपचाप ही आपके घर पहुँचकर भोग एवं पूजा की सब सामग्री ठीक कर लूँगी। आप घर जाइये।" ब्राह्मण घर आकर क्या देखते हैं कि लड़की पहले ही पहुँचकर पाकशाला में सभी वस्तुयें प्रस्तुत कर चुकी है।

ब्राह्मण कहते हैं तू हमसे पहले ही यहाँ कैसे पहुँच गई, लड़की बोली—'पिताजी मैं एक पगडंडी के रास्ते से आई हूँ।" माँ की माया वृद्ध ब्राह्मण समझ न सके। जाने भी कैसे, जिसे बड़े-बड़े ऋषि-योगी भी समझ नहीं पाते, नारद जैसे ब्रह्मर्षि को भी जिसने बन्दर की तरह नचाकर छोड़ा।

आज जगत्माता भक्त कल्पलतिका माँ अन्नपूर्णा, भक्त की लड़की बन पाकशाला में पूजा निमित्त भोग

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तैयार कर रही है और यह भोग जगत्जननी माँ को लगाये गये।

पूजा के पश्चात् लड़की अपने पिता से कहने लगी, "पिताजी अब प्रसाद के लिये गाँव के घर-घर में लोगों को आमन्त्रित कर आइये।"

ब्राह्मण बोले, "यह थोड़ी-सी प्रसादी है। अगर सबों को आमन्त्रित करूँ तो वे बिना प्रसाद के ही लौटेंगे, यह मुझसे न देखा जायेगा।" लड़की बोली—"पिताजी इसकी चिन्ता आप न करें, मैं सभी को अपने हाथ से बाँटूँगी।"

ब्राह्मण और कुछ न कहकर ग्राम के घर-घर में जाकर आमन्त्रण दे आये, सभी लोगों ने अपनी इच्छा अनुसार प्रसाद पाया एवं मुक्त कंठ से प्रशंसा की कि हम लोगों ने ऐसा प्रसाद कभी भी नहीं खाया है।

इसी तरह तीन दिन बीत गये, पूर्णाहुति समाप्त हो गई। तब चतुर्थ दिन में कन्या रूपी माँ दीन-दयामयी ने ब्राह्मण से कहा—"पिताजी अब आपका सभी कार्य प्रायः सम्पन्न हो गया। अब मैं जा सकती हूँ।" यह कहकर माँ अन्तर्द्धान हो गई।

ब्राह्मण के चारों ओर आँखों के आगे अँधेरा छा गया। पैरों तले की धरती खिसक गई, वे अचेतन होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। कुछ देर बाद जब उन्हें होश आया तो सिसक-सिसक कर कहने लगे—

"माँ तुम्हारी लीला समझने की सामर्थ्य किसी में नहीं है। माँ जगदम्बा तू मेरी लड़की के रूप में आई एवं भक्त की इच्छा पूर्ण कर चली गई। माँ एक बार आकर मेरे सम्मुख और खड़ी हो जाओ, एक बार मैं जी भरकर देख लूँ।"

गायत्री माता को प्रसन्न करने के लिये पवित्र भावना की आवश्यकता है, वह भोगों की भूखी नहीं, भाव चाहती हैं। भोग तो उसके माध्यम होते हैं। उन्हीं के द्वारा भावना व्यक्त की जाती है, जिन्हें माता का आशीर्वाद प्राप्त करना हो उन्हें अपने भावना क्षेत्र का परिमार्जन करना चाहिए।

धर्मो रक्षति रक्षतः

आचार्य धर्मघोष अपने शिष्यों सहित परिव्रज्या करते हुये आगे बढ़ रहे थे। परिव्राजक जीवन जहाँ लोक-सेवा का माध्यम है, वहाँ आत्मोन्नति का साधन भी। इसीलिये एक अनिवार्य धर्म कर्त्तव्य की भाँति प्राचीनकाल में उसे जीवन के तृतीयांश के साथ जोड़ दिया गया था। संन्यासी के लिये तो वह अनिवार्य कर्त्तव्य भी था। आचार्य धर्मघोष उसी धर्माचरण का पालन कर रहे थे। वे गाँव-गाँव धर्म एवम् संस्कृति का प्रसार करते हुये आगे बढ़ रहे थे।

तभी आ गया आषाढ़ का पहला दिन। आकाश मेघों से घिर गया, पुरवाई बहने लगी, विद्युत चमकने लगी, मोर कूँक कर वर्षा-आगमन की सूचना देने लगे। निर्धारित नीति के अनुसार आचार्य को परिव्रज्या त्यागकर चतुर्मास करना चाहिये था। बरसात के चार महीने संन्यासी को यात्रा करना वर्जित है, तो उन्हें भी उसका पालन करना ही चाहिये था।

क्षुद्रमति ! गाँव का नायक—जहाँ वे ठहरे हुये थे—आचार्य प्रवर बोले—तात् ! वर्षा आ गई। हम बढ़कर आगे के गाँव भी नहीं जा सकते। चार महीने यहीं विश्राम करना होगा ? आपको कुछ कष्ट तो नहीं होगा—हमारी व्यवस्था में।

कष्ट ! ..... क्षुद्रमति बोला—फिर कुछ क्षण चुप रहा वह—उसका सारा जीवन ही संघर्ष से परिपूर्ण था किन्तु कष्ट शब्द उसके कानों में पहली बार पड़ रहा था। उसने कहा—"आर्यश्रेष्ठ, आप जैसे सर्वथा त्यागी और तपस्वी के आतिथ्य में कष्ट क्या हो सकता है, किन्तु एक बात है—कहने में संकोच भी होता है और उसे छुपाया भी नहीं जा सकता। आप नहीं जानते इस गाँव के सभी लोग दस्यु कर्म करते हैं। दूसरों को लूटकर अपना जीवन चलाना ही हमारा धर्म है, मुझे सन्देह है कि आपके चार माह यहाँ रहने से कहीं बन्धु-बान्धवों की मति न पलट जाये। हम ठहरे दुष्टकर्मा व्यक्ति, आप साधु-सन्त। हमारा प्रभाव तो आप पर क्या पड़ेगा, आपकी संगति से कहीं हमारे साथियों की बुद्धि न पलट जाये ?"—फिर एक क्षण चुप रहकर क्षुद्रमति बोला—"किन्तु हाँ एक उपाय है यदि आप वचन दें कि चार मास यहाँ रहते हुये आप और चाहे जो कुछ करें, ग्रामवासियों को उपदेश न दें—यदि ऐसा कर सकते हों, तो आप इस गाँव में सहर्ष चतुर्मास कर सकते हैं हमें आपका आतिथ्य स्वीकार है।"

धर्मघोष ने विचार किया। नीच साधनों से अर्जित कमाई पर जीवित रहना पड़ेगा, यह ख्याल आते ही वह कुछ चिन्तित हुये पर धर्म के साधन शरीर को जिन्दा रखने और धार्मिक मर्यादा का पालन करने के लिये इस शर्त को आपद्धर्म के रूप में स्वीकार कर लेने के अतिरिक्त कोई चारा भी तो नहीं था। उन्होंने तरुण सरदार क्षुद्रमति की शर्त स्वीकार कर ली। धर्म-याजकों से कह दिया गया, चतुर्मास की अवधि भर वे किसी को भी उपदेश नहीं देंगे।

चार मास बीत गये, धर्मघोष ने किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया। चतुर्मास समाप्त होते ही साधु-संगत वहाँ से चल पड़ी। ग्रामवासी और स्वयं क्षुद्रमति उन्हें कुछ दूर तक पहुँचाने आये। आचार्य धर्मघोष आँखों में अश्रु भरे चल रहे थे। एक ओर वे विचार कर रहे थे, मनुष्य जीवन की अज्ञानता पर—मनुष्य थोड़े समय के लिये धरती पर आता है जानते हुये कि यह शरीर कुछ ही दिन का मेहमान है दुष्कर्म करता है—दूसरी ओर उनकी कर्त्तव्य भावना कचोटती थी—कहती थी, "तुमने चार मास तुच्छ ही सही पर इनके परिश्रम और जीवन संकट में डालकर कमाये द्रव्य से अपनी जीवन रक्षा की है, सो बदले में उनका कुछ उपकार तो करना ही चाहिये।"

गाँव की सीमा ऐसे ही विचार करते पार हो गई—धर्मघोष रुके—क्षुद्रमति ने उनके पुण्य चरणों में प्रणिपात कर क्षमा-याचना करते हुये—"भगवन् हमसे जो भूलें हुई हों क्षमा करना, कभी इधर आना हो तो फिर सेवा का अवसर देना।"

आचार्य धर्मघोष की आँखें छलक उठीं। उन्होंने स्नेह पूर्वक क्षुद्रमति को हृदय से लगाते हुये और उसके सिर पर हाथ फेरते हुये कहा—"तात् ! तुम्हारी सेवा से जितने हम प्रसन्न हैं, इतने ही इस बात के लिये दुःखी कि आप लोगों के अन्न पर चार मास बिताये उसका कुछ भी ऋण चुकाये बिना जा रहे हैं। हमारे पास धर्म-शिक्षा के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अतिरिक्त और है भी क्या ? अब तो चतुर्मास बीत चुका है, अब हम आपके गाँव की सीमा से बाहर भी हैं। आप कहें तो एक उपदेश चलते समय देते जायें—थोड़े समय में अधिक कहा भी क्या जा सकता है ?"

क्षुद्रमति ने एक बार साथियों की ओर दृष्टि डाली दूसरे क्षण कहा—"महामहिम आप एक उपदेश दें—हम उसका जीवन भर पालन करेंगे।"

ठीक है अबुस ! आचार्य धर्मघोष बोले—"आज से तुम लोग व्रत लो सूर्यास्त के बाद कभी कुछ खाना मत रात्रि के समय भोजन को हिंसा कहा गया है, उससे कई बार विषैले कीटाणु पेट में चले जाते और हानि पहुँचाते हैं, इसलिये विज्ञजनों ने रात्रि में भोजन ग्रहण करना वर्जित किया है।"

क्षुद्रमति और उसके साथियों ने आचार्य प्रवर का उपदेश स्वीकार कर लिया। साधुगण आगे बढ़ गये और क्षुद्रमति साथियों सहित बस्ती वापस लौट आया। कुछ दिन ऐसे ही बीते, ग्रामवासियों ने सूर्यास्त से पूर्व ही भोजन करने का नियम बना लिया। फिर एक दिन दस्यु-कर्म की योजना बनाई गई। क्षुद्रमति अपने साथियों को लेकर प्रातःकाल से ही निकल गया। निकटवर्ती राज्य के एक गाँव में डकैती डाली उन्होंने। बहुत-सा धन लेकर वे लोग रातों-रात लौट पड़े। कुछ दूर बाहर आकर थके-हारे दस्युदल ने भोजन और विश्राम की व्यवस्था की। दो दस्यु सामग्री जुटाने के लिये भेजे गये। उन दोनों के मन में पाप आ गया, उन्होंने मदिरा खरीदी उसमें विष मिला दिया और सारी सामग्री लेकर आ पहुँचे। दूसरे दस्यु जब सुरापान करने लगे। क्षुद्रमती ने प्याला भरा, हाथ में लिया भोजन पर दृष्टि डाली तभी उसे याद आ गया। वह वचन जो उसने आचार्य धर्मघोष को दिया था। पापमति दस्युगणों ने धर्म-अधर्म का कुछ भी विचार किये बिना भोजन और सुरापान प्रारम्भ कर दिया। विष के प्रभाव से एक-एक कर दस्युगण मृत्यु के मुख में जाने लगे। क्षुद्रमति के सामने सारी स्थिति स्पष्ट हो गई। एक ओर उसे आचार्य के उपदेश से जीवन-रक्षा की याद आ रही थी, दूसरी ओर उसे स्वजनों की इस पाप बुद्धि और दुर्गति पर पश्चाताप हो रहा था।

क्षुद्रमति का अन्तःकरण हाहाकार कर उठा—लोभ—पाप अन्ततः पतन ही करता है। धर्म की एक चिनगारी रक्षा ही करती है फिर क्यों न धर्म का आश्रय लिया जाये, ऐसा पवित्र और महान् जीवन क्यों व्यर्थ गँवाया जाए ?

क्षुद्रमति की बुद्धि पलट गई। उसने दस्युकर्म छोड़ दिया। गाँव में रहकर कृषि करने लगा, परिश्रम से कमा कर खाने लगा, उसके जीवन में आई धर्म की एक किरण सुख-शान्ति के प्रकाश पुंज की भाँति जीवन में छा गई। उसके साथ सारे ग्रामवासियों का भी जीवन धन्य हो गया।

नीतिमत्ता सर्वमान्य योग्यता

वाराणसी नरेश ब्रह्मदत्त की अपने राजपुरोहित देवमित्र पर अटूट श्रद्धा और अनन्य निष्ठा थी। उनके व्यक्तित्व में विद्वता, योग्यता और प्रतिभा के स्वर्ण के साथ शील, सदाचार और नैतिकता की सुगन्ध भी व्याप्त थी। अतः राजा की यह निष्ठा और श्रद्धा सहज स्वाभाविक थी। राजा की ही बात नहीं, वाराणसी राज्य के ही नहीं अन्यान्य राज्यों के विद्वानों में उनका अच्छा सम्मान और वहाँ की जनता में उनके प्रति अपार भक्तिभाव था। वे जहाँ भी जाते जन-जन उनके आगे श्रद्धानवत हो जाया करता था।

वाराणसी नरेश का तो उनसे निकट का सम्पर्क था। वे तो उनके उच्च उदात्त चरित्र और प्रखर व्यक्तित्व से इतना अधिक प्रभावित रहते थे कि प्रति क्षण उनके पद वन्दन की कामना किया करते थे। भला ऐसे ब्राह्मण के प्रति कौन श्रद्धावान न होता ?

राजपुरोहित देवमित्र के मन में एक दिन यह प्रश्न उठा कि उनके प्रति राजा और प्रजा की जो श्रद्धा और सम्मान है उसका कारण क्या है ? वे पाण्डित्य, शास्त्र ज्ञान, रूप और व्यक्तित्व की प्रखरता को लेकर मेरा सम्मान करते हैं या मेरे शील, सदाचरण और नैतिकता के कारण ? वे इस प्रश्न का उत्तर चाहते थे। उन्होंने इसका उत्तर पाने के लिये कुछ दूसरा ही आचरण किया, अगले दिनों।

एक दिन राजसभा के विसर्जन पर राजपुरोहित देव-मित्र अपने घर लौट रहे थे, उन्होंने राजकोष में से एक काषार्पण (सिक्का) उठा लिया। कोषाध्यक्ष ने राजपुरोहित का यह अनुचित आचरण देखा, पर उसे अनदेखा कर दिया। संभवतः वह यह सोचकर रह गया हो कि पुरोहित जी ने किसी प्रयोजन विशेष से काषार्पण उठाये हैं सो कल उस प्रयोजन को स्पष्ट कर देंगे।

दूसरे दिन भी पुरोहित ने राजसभा से लौटते हुये पहले दिन की तरह ही काषार्पण उठा लिये। उस दिन भी कोषाध्यक्ष ने उनके इस आचरण का वैसा ही अर्थ लगाया और उनके इस आचरण को अनदेखा कर दिया। पर तीसरे दिन भी जब पुरोहित ने राजसभा की समाप्ति पर घर जाते समय मुट्ठीभर काषार्पण उठा लिये और वे अपनी राह चलने को उद्यत हुये तो कोषाध्यक्ष ने लपक कर उनका हाथ थाम लिया और सैनिकों की ओर उन्मुख होकर बोला—"यह धूर्त है, चोरी करता है, इसे न्याय पीठ में उपस्थित करो।"

पतित आचरण के कारण राजपुरोहित के साथ राज्य कर्मचारियों ने वैसा ही व्यवहार किया जो एक चोर के साथ किया जाता है। उनके हाथ बाँधकर नंगे पाँव राजमार्ग पर पैदल ही ले जाया गया न्यायालय में। उन्हें राजा के सम्मुख न्याय के लिये उपस्थित किया गया। राजा ने उनसे उसी प्रकार प्रश्न पूछे, कोषाध्यक्ष से पूछताछ की और राजपुरोहित के दुष्कर्म पर आश्वस्त होकर निर्णय सुनाया—"यह व्यक्ति चोर है इसने राजकोष से एक बार नहीं तीन-तीन बार धन चुराया है। इसके दक्षिण हस्त की एक अंगुली काट ली जाय ताकि वह आगे से सचेत रहे और ऐसे कुकर्म से विरत ही रहे।"

राजा के इस निर्णय से राजपुरोहित को अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया। उन्होंने राजा से कहा, अपने धीर गम्भीर स्वर में—"राजन् ! मैं चोर नहीं हूँ। मैंने चोरी किस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रयोजन से की थी, उसे मैं अब आपके सामने प्रकट करता हूँ। मैं यह जानना चाहता था कि आप मुझे जो श्रद्धा, जो सम्मान दिया करते थे उसकी सच्ची अधिकारिणी मेरी योग्यता और विद्वता थी या मेरा शील, सदाचरण और नैतिकता। आज यह स्पष्ट हो गया है कि विद्वता, ब्राह्मणत्व और रूप का अपना महत्त्व तो है, पर यदि वह शील, सदाचरण और नैतिकता से च्युत हो जाये तो उसकी ये क्षमताएँ उसकी रक्षा नहीं कर सकतीं। शील, सदाचरण और नैतिकता ही मेरे सम्मान का मूल कारण थी। उनसे च्युत होते ही मैं दण्ड का अधिकारी बन गया।"

पंचशील

पंचनद की प्रजा में, कलह, अव्यवस्था, अनुशासन-हीनता देखकर नरेश बहुत दुखी हुये उन्होंने आचार्य देवधर को कुरु जाने और वहाँ की प्रजा के जीवन का अध्ययन करके आने को कहा ताकि वह व्यवस्थाएँ अपने यहाँ भी लागू की जा सकें और प्रजा को सुखी बनाया जा सके।

आचार्य देवधर कुरु देश के राज पुरोहित नन्द पंडित के पास गये और उनसे धर्मोपदेश करने की याचना की। नन्द पण्डित ने कहा—"तात् ! राज्य का राजस्व विभाग मैं सँभालता हूँ। एक बार एक कृषक को जमीन नाप रहा था। नापते समय बीच में एक गड्ढा आ गया। उसमें एक नन्हा-सा जीव बैठा था। मेरे सामने समस्या आ खड़ी हुई, यदि माप-दण्ड गड्ढे पर रखता तो जीव-हिंसा होती, यदि दण्ड को गड्ढे से आगे बढ़ाकर रखता तो एक किसान को जमीन कम मिलती। असमंजस में पड़ा था तभी वह जीव गड्ढे के एक बिल में घुस गया मैंने मापक दण्ड टेक दिया तभी जीव के चिंचियाने की आवाज आई। कह नहीं सकता कि उसने अकारण आवाज की या मुझ से हिंसा हुई, तब से मन खट्टा रहता है। आप मेरे सारथी के पास चले जाइये वह दया, धर्म का पालन करता है और उपदेश का अधिकारी है।"

आचार्य, सारथी के पास गये और वही प्रार्थना की—सारथी ने बताया आर्य ! मैंने एक बार वर्षा से बचाव के लिये अपने घोड़ों को चाबुक दिखा दी, घोड़े डरकर तेज दौड़ने लगे पर मुझे लगता है कि उस दिन मेरा दया बर्तने का शील नष्ट हो गया। आप सेठ सारिपुत्र के पास चले जाइये वह आपका काम कर देंगे।

आचार्य, सारिपुत्र के पास गये। सारिपुत्र ने बताया—"आर्य श्रेष्ठ ! मैं वणिक-व्यापार करता हूँ, एक बार मैंने एक कृषक से धान मोल लिये। धान महाराज के सुरक्षित अन्न भण्डार के लिये खरीदे गये थे। खरीदते समय एक ऐसी ढेरी आ गई जो तौली जा चुकी थी पर मुझे यह स्मरण नहीं रहा कि यह राजा के हिस्से की है या कृषक के। घर जाने की जल्दी थी सो उसे राजा के हिस्से में मिलवा दिया। लगता है, इससे मेरी वणिक नीति अपराधी हो गई। आप बताइये अब मैं किस प्रकार धर्मोपदेश करूँ ? आप द्वारपाल पुण्ण के पास चले जाइये वे आपको धर्म का मर्म समझायेंगे।"

देवधर अब पुण्ण के पास गये, द्वारपाल ने बताया—"श्रीमानजी ! मैं दुर्ग का रक्षक हूँ। एक दिन जब कोट द्वार बन्द करने का समय हुआ, तब मैंने एक पुरुष को सुन्दर युवती के साथ कुछ विलम्ब से आते देखा। पास आने पर मैंने उसे डाँटा कि तुम इतने समय तक रस-विहार करते हो समय पर अन्दर क्यों नहीं आते ? लेकिन जब मुझे मालूम पड़ा कि युवती आगन्तुक की बहिन थी और वह अपनी ससुराल से आ रही थी, तो मुझे बड़ा पश्चाताप हुआ। दृष्टि दोष के कारण मैं अपने क्षात्र धर्म से च्युत हो गया हूँ। आप उत्पलवर्णा वेश्या के पास जाइये वह आपको उपदेश देगी।"

आचार्य, उत्पलवर्णा के पास गये और अपना मन्तव्य कहा—उत्पल बोली—"आचार्य श्रेष्ठ ! एक बार राजकुमार चन्द्रसेन मेरे पास आये। मैंने उन्हें वचन दिया कि मैं अपना शरीर केवल तुम्हें ही समर्पित करूँगी। वे बोले मैं बाहर जा रहा हूँ तीन वर्ष मेरी प्रतीक्षा करना। यदि न आऊँ तो किसी भी पुरुष को वरण करने को स्वतन्त्र होओगी। तीन वर्ष पश्चात् भी वे न आये तो मैंने न्यायाधीश से आज्ञा प्राप्त कर पेट-पालन के लिये दूसरे पुरुष का आश्रय लेने का निश्चय किया। मैं उस व्यक्ति से अभी बातें कर ही रही थी कि चन्द्रसेन आ गये। मैं तब से अपने आप को अपराधिनी-सी पाती हूँ, बताइये कैसे उपदेश करूँ ?"

आचार्य देवधर को धर्म का मर्म मालूम हो गया। पंचशील–उन्होंने विचार किया–जिस देश की प्रजा पंचशील का तत्परतापूर्वक पालन करती है वह सुखी रहती है। यह निश्चय कर वे पंचनद लौट आए और पंचशील धर्म का उपदेश करने लगे जिससे वहाँ की प्रजा फिर सुखी हो गई। पंचशील अर्थात् अहिंसा, दया, न्याय, सुदृष्टि और सच्चरित्रता।

बाहु-बल और ब्रह्म-बल

द्वापर के आरम्भ में ब्रह्मवर्त देश में दंभोद्भव नामक एक प्रतापी राजा हुआ। वह बड़ा ही बलवान और तेजस्वी था। शारीरिक बल में वह ऐसा अद्वितीय था कि दूर-दूर तक उसके समान योद्धा दिखाई न पड़ता, जिसे लड़ने के लिये ललकारता वही भयभीत हो जाता और गिड़गिड़ाकर क्षमा माँग लेता।

जब तक ऊँट पहाड़ के नीचे होकर नहीं निकलता तब तक उसे पता नहीं चलता कि मुझसे भी कोई बड़ी चीज इस दुनिया में मौजूद है। बाहुबल के अभिमान में उन्मत्त होकर दंभोद्भव चारों दिशाओं में बिगड़े हुए हाथी की तरह दौड़ने लगा। जहाँ जाता वहीं यह घोषणा करता कि यदि पृथ्वी पर कोई योद्धा शेष है तो मुझसे लड़ने के लिये आगे आये।

एक नगर में वह ऐसी ही विज्ञप्ति कर रहा था, कि एक वृद्ध विद्वान् अपने श्वेत केशों को बखेरे हुये राजा के सन्मुख पहुँचा। उसने नम्रतापूर्वक कहा—"राजन् ! आपको पराक्रम प्राप्त हुआ है, इसके लिये ईश्वर को धन्यवाद दीजिये, पर ऐसे अभिमान भरे वचन मत बोलिये कि मेरे समान इस पृथ्वी पर कोई नहीं है। आप नहीं जानते तो भी यह वसुन्धरा वीरविहीन नहीं है, इस पर एक से एक प्रतापी और शक्तिशाली मनुष्य पड़े हुये हैं।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वृद्ध की बातें सुनकर राजा को बड़ा क्रोध आया। उसने तड़ककर कहा—"यदि कोई मेरे समान योद्धा है तो बताओ वह कहाँ है, यदि न बताओगे तो तुम्हें ही मुझ से लड़ना पड़ेगा और अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा।"

राजा के दर्प पर हँसते हुये उस वृद्ध विद्वान ने कहा—"मरने की तो मुझे कुछ चिन्ता नहीं है, पर तुम्हारी इच्छा पूर्ण करने के लिये मैं एक व्यक्ति को बताये देता हूँ, वह तुम से युद्ध कर लेगा। गंधमादन पर्वत पर चले जाओ वहाँ नर-नारायण ऋषि तपस्या कर रहे हैं, वे तुम्हारी युद्ध की मनोकामना पूर्ण कर देंगे।"

राजा गन्धमादन पर्वत की ओर चल दिया। बहुत ढूँढ़ने पर वहाँ एक अस्थि-पिंजर मनुष्य तप करता हुआ पाया। राजा ने पूछा—"आप ही नर-नारायण हैं क्या ? यदि हैं तो मैं आपसे लड़ने आया हूँ।" ऋषि ने दम्भोद्भव को स्नेहपूर्वक पास बिठाया और सिर पर हाथ फिराते हुये कहा—"बेटा ! तू निस्सन्देह अजेय है। शरीर में कितना बल है, यह तो एक मामूली-सी बीमारी में नष्ट हो सकता है। इसलिये बाहु-बल के लिये गर्व करना व्यर्थ है। तू हमारा उपदेश मान और अपने नगर को लौट जा। शारीरिक बल को आजमाने की मूर्खता करने से क्या लाभ ?"

ऋषि ने बहुत उपदेश दिया पर राजा की समझ में एक भी बात न आई। वह घमंड में चूर होकर बार-बार लड़ने के लिये ही ललकारने लगा। जब किसी तरह न माना तो नर-नारायण ने कहा—"अच्छा राजा ! अब तू लड़ने को तैयार हो जा।" राजा उठकर खड़ा हो गया। ऋषि ने पास में पड़े हुये एक तिनके को उठाया और उसमें प्राण शक्ति फूँककर उसे योद्धा बना दिया। राजा उस मन्त्र प्रेरित तिनके से लड़ने लगा, परन्तु कुछ ही देर में उसका दम फूल गया और परास्त होकर जमीन पर गिर पड़ा। पागल बनाने वाला अभिमान क्षण भर में कर्पूर की तरह उड़ गया।

वही वृद्ध विद्वान इस अवसर पर पुनः आ उपस्थित हुआ, उसने कहा, "बेटा दम्भोद्भव ! तुमने देखा कि बाहु-बल और ब्रह्म-बल में कौन अधिक बलवान् है ? शरीर, धन आदि के भौतिक बल बहुत ही अपूर्ण अस्थिर और नाशवान हैं, किन्तु ब्रह्मबल की तो थोड़ी-सी किरणें पाकर भी एक तिनका अद्भुत शक्तिशाली बन सकता है।" इसलिये हे राजन् ! यदि तुम सच्चा बल प्राप्त करना चाहते हो तो बाहुबल का अभिमान छोड़कर ब्रह्मबल संचय करो।

राजा को अपनी मूर्खता समझ में आ गई। वह अभिमान छोड़कर नारायण की शिष्यता में ब्रह्म बल प्राप्त करने के लिये तप करने लगा।

महर्षि पद की पात्रता

यज्ञ की धूमशिखाओं से आकाश आच्छादित हो रहा था। महाराजा रथवीति दार्भ्य की राजधानी में वेदमन्त्रों की पुनीत ध्वनि गूँजने लगी थी। वे अपनी राजमहिषी और मनोरमा कन्या के साथ यज्ञवेदी के समीप ही आसीन थे।

कितनी सुशील और लावण्यमयी है यह कन्या ! अत्रिपुत्र ऋषि अर्चनाना ने यज्ञ कुण्ड में वेदमन्त्रों से आहुति देते हुये मन में विचार किया। धवलोज्ज्वल श्वेत दाढ़ी के साथ तपःतेज से दीप्त मुखमण्डल पर चमकती हुई आभा और प्रगाढ़ हुई। तभी उन्होंने अपने पुत्र श्यावाश्व की ओर निहारा। श्यावाश्व ने पच्चीस वर्ष तक आश्रम में ब्रह्मचर्यपूर्वक रहकर अन्तेवासी की दीक्षा प्राप्त की थी। यह दीक्षा उन्हीं छात्रों को मिलती थी, जो वेद-वेदांगों में विशेष दक्षता प्राप्त कर लेते थे। ऋषि कुमार में यौवन का निखार था नेत्रों में सात्विकता और हृदय में श्रद्धा भक्ति थी।

आकांक्षा हुई कि महाराज से राजकन्या का हाथ अपने पुत्र के लिये माँग लें। यज्ञपूर्णाहुति के बाद समय पाकर अर्चनाना ने रथवीति और राजमहिषी से कहा—"मैं आपकी कन्या को अपनी पुत्रवधू बनाने के लिये याचक रूप में प्रस्तुत हूँ महाराज !"

'यह तो आपकी बहुत बड़ी कृपा है, मेरी कन्या के लिये इससे बढ़कर सौभाग्य और क्या होगा कि वह महर्षि अत्रि के आश्रम में वास करेगी ?'—महाराज रथवीति ने अर्चनाना के प्रति श्रद्धा व्यक्त की।

महर्षि अर्चनाना को अपनी आकांक्षापूर्ति का आश्वासन प्राप्त हुआ जान सन्तोष का भाव पूरी तरह अनुभव भी नहीं कर पाये थे कि राजमहिषी ने कहा—"लेकिन हमारा कुल राजर्षियों का कुल है महात्मन् ! हमारी कुल-मर्यादा है कि हम अपनी कन्या मन्त्रदर्शी ऋषि को ही सौंप सकते हैं। क्या ऋषि कुमार मन्त्रद्रष्टा हैं ?"

आशा और सन्तोष की दीप्त हो रही भावं शिखा जैसे किसी ने झपटकर बुझा दी हो, वैसा लगा अर्चनाना को। वे श्यावश्व को लेकर आश्रम आ गये। खिन्न भी थे और उदास भी। जीवन में पहली बार योग्यता के अभाव में निराश होना पड़ा था। राजधानी में क्या घटा था, यह उन्होंने अपने पुत्र को भी नहीं बताया था परन्तु श्यावश्व से पिता की मनःस्थिति छुपी न रह सकी। ऋषिकुमार ने पिता की व्यथा को उगलवा ही लिया और निश्चयात्मक स्वर में कहा—'पिताजी ! मैं अपनी कुल योग्यता सिद्ध करने के लिये ऋषि पद प्राप्त करूँगा, राजकन्या उतनी महत्त्व की वस्तु नहीं है, जितने महत्त्व का विषय, ऋषि पद है। बताइये इसके लिये क्या करूँ ?"

"मन्त्रदर्शन की साधना वत्स"। अर्चनाना ने कहा।

"उसका क्या स्वरूप है ! तात् ?"

"ब्रह्मचर्यपूर्वक भिक्षाटन, प्रव्रज्या, शिक्षण और चिन्तन मनन"—अर्चनाना ने समझाया और श्यावाश्व अपने पिता की चरण धूलि लेकर निकल पड़े। स्नातक ब्रह्मचारी तो वह थे ही, आश्रम का निर्वाह भी भिक्षाटन से ही होता था, ऋषिकुमार का चिन्तन-मनन भी निरन्तर ही चलता रहता था। मन्त्रदर्शन की साधना में नया अंग केवल प्रव्रज्या और लोकशिक्षण का।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दीर्घकाल तक श्यावाश्व ने नगर, ग्राम, वन और प्रान्तर का भ्रमण किया। लोकजीवन को निकट से देखा, समाज देवता की आराधना की, जनमानस को दिशा प्रेरणा और शिक्षण देते हुये। महाराज विदेदश्व, राजमहिषी शशीयसी, पुरुमीड़ आदि नरेशों ने ऋषिकुमार का यथेष्ट स्वागत-सत्कार किया। उन्हें कितनी ही गायें और अपार धन राशि दक्षिणा में दी। परन्तु ऋषिकुमार भिक्षा में प्राप्त राशि का निर्वाह भाग रखकर, शेष सब आश्रम पहुँचा दिया और निरन्तर श्रमण, अनवरत् पर्यटन, अविराम परिव्रज्या करते रहे।

पुत्र बिछोह से व्याकुल अर्चनाना एक बार श्यावाश्व को देखने आये। श्यावाश्व से उन्होंने आश्रम चलने और वहाँ कुछ दिन निवास करने के लिये कहा तो श्यावाश्व ने कहा—"तात मैंने अभी मन्त्रदर्शन नहीं किया है और आश्रम में आ जाऊँगा तो मेरे व्रत में व्यतिक्रम आ जायेगा।"

यह कहकर श्यावाश्व उस स्थल से भी चल पड़े। अन्ततः साधना परिपक्व होने पर रुद्र पुत्र मरुद्धाषों ने श्यावाश्व को दर्शन दिये और उनकी कृपा से श्यावाश्व ने मन्त्रदर्शी ऋषि का पद प्राप्त किया। मरुद्धाषों ने श्यावाश्व को रुक्ममाला दी।

श्यावाश्व ने आश्रम की ओर प्रस्थान किया। गले में रुक्ममाला और मुखमण्डल पर प्रदीप्त ब्रह्मतेज देखकर अर्चनाना ने पुत्र को सीने से लगा लिया तुम्हारे पुण्य से हमारा कुल उज्ज्वल हो गया वत्स ! अब तक हमारे कुल में कोई भी ब्रह्मचारी ऋषिपद को प्राप्त नहीं कर सका था।

त्राहिमाम्-त्राहिमाम्

प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त का समय था। प्राची दिशा में भगवान् भास्कर का अरुणिम प्रकाश अपनी रक्तिम आभा बिखेर रहा था और सर्वथा निर्जन एकान्त में शान्त बह रही सरिता के तट पर आकर रुक गये थे—वैवस्वत मनु। उनका नित्य का नियम था कि वे इसी समय सरिता तट पर आकर स्नान, ध्यान करते और संध्या-पूजन तथा सूर्यार्घ्यदान के बाद वापस लौट जाते।

ऋषि ने अपने वल्कल नदी तट पर रखे और शौचादि से निवृत्त होने के लिये नदी से कुछ दूर एकान्त वन में चले गये।

उस समय पक्षियों का कलरव भी गूँजने लगा था। जैसे भगवान आदित्य के साथ जागकर वे भी उनका साहचर्य निभा रहे थे। आश्रम में रहने वाले विद्यार्थी भी अपनी शय्या छोड़कर दिनचर्या का आरम्भ करने की ओर प्रवृत्त हो रहे थे। तब तक वैवस्वत मनु स्नान, ध्यान से निवृत्त होकर संध्योपासना के लिये बैठ चुके थे।

आवश्यक उपचार पूरे कर उन्होंने गायत्री जप आरम्भ किया। प्रातःकाल के उदित रवि की भाँति अपनी अन्तरात्मा में विश्वात्मा की जलती ज्योति का ध्यान किया और उस ज्योति में मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के समस्त कषाय-कल्मषों को जलते हुये देखा। गायत्री जप पूरा होते ही वे उठ खड़े हुये—सूर्य भगवान को अर्घ्य देने के लिये। कटि प्रदेश तक स्पर्श कर सके इतने गहरे पानी में प्रवेश किया और दोनों हाथों की अंजलि में पानी भरकर पूर्व दिशा में उसे छोड़ा—मन्त्र पाठ करते हुये।

एक बार..... दो बार..... तीन बार इसी क्रिया को दोहराया, पर अन्तिम बार उन्होंने अपनी हथेली पर कोई जीव रेंगता हुआ अनुभव किया।

मनु ने शान्त चित्त से अर्घ्य दिया।

अर्घ्य देने के बाद उन्होंने अंजलि में देखा। एक मीन शिशु हथेली पर रेंग रहा था। उनके मन में अचकचाहट होने लगी। वे उसे फेंकें, इतने में ही मीन शिशु ने कहा—'त्राहिमाम्-त्राहिमाम्।'

'क्या बात है'—मनु ने पूछा।

'आप मेरी रक्षा कीजिये। इस प्रकार आप मुझे पुनः जल में छोड़ देंगे तो मीन मत्स्य मुझे अपना आहार बना लेंगे। कृपा कर मुझ पर दया कीजिये।'

आर्त विनय सुनकर ऋषि के हृदय में करुणा जाग उठी और वे तट पर रखे जल से भरे कटोरे में रखकर उसे आश्रम ले आये। न जाने क्यों शरणार्थी बनकर रक्षा की भीख माँगने वाले उस मीन शिशु के प्रति ऋषि के हृदय में उसके प्रति प्यार उमड़ने लगा और वे नित्य उसका जल बदलने लगे।

कालान्तर में वह मीन शिशु बड़ा हुआ तो ऋषि ने मीन शिशु को कटोरे में से हटाकर कुण्ड में स्थानान्तरित कर दिया। वह और बड़ा हुआ, कुण्ड में उपलब्ध जल और उसमें मिलने वाले कीट तथा जीवाणु उसके लिये अपर्याप्त पड़ने लगे, तो मनु ने मीन को स्थानान्तरित कर सरोवर में छोड़ दिया।

सरोवर में भी वे उसकी सुविधा-असुविधाओं का ध्यान रखते और न जाने क्यों सरोवर भी उसके लिये छोटा पड़ा, तो महर्षि ने उसे फिर सागर में छोड़ दिया। जब वे सागर में छोड़कर आये तो मीन ने महर्षि के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की तथा ऋषि भी विस्मय-विमुग्ध होकर अपने आश्रम लौटे।

कल्पान्त में जब प्रलय हुयी तो सारी सृष्टि जल मग्न हो गई। प्राणी भी अथाह जलराशि में डूबकर अपना प्राण विसर्जन करने लगे। मनु के आश्रम के चतुर्दिक भी सागर लहरा रहा था। चूँकि आश्रम ऊँचाई पर था इसलिये पानी धीरे-धीरे चढ़ रहा था और ऋषि प्रफुल्लचित्त से मरण की प्रतीक्षा कर रहे थे। लेकिन तभी वह मीनवत्स, जिसे ऋषि ने सागर में छोड़ा था और जो अब मत्स्य का रूप धारण कर चुका था, ऋषि के समीप आया और बोला—"महात्मन् ! आपने मेरी इतनी रक्षा की है। इस संकट के समय मैं भी आपकी रक्षा के लिये आ गया हूँ। आइये और मेरी पीठ पर सवार होकर भविष्य में प्रभु का संकल्प पूरा करने के लिये अपना जीवन बचाइये।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गुरुदक्षिणा जो चुकाई न जा सकी

"मान लो, तुममें योग-साधनाओं के लिये अभीष्ट मनोबल हो भी, तुम तन्त्र की कठिनाइयों को झेल लो और अनेक सिद्धियों के स्वामी बन जाओ तो भी उसमें तुम्हारा कोई हित नहीं है। आत्म-कल्याण का प्रयोजन तो किसी और ही तरह से पूरा होता है, उसके लिये व्यक्ति को अपने अन्तःकरण को शुद्ध बनाना पड़ता है। सद्गुण और सन्मार्गगामी साधनाएँ करनी पड़ती हैं, तुम्हारे लिये भी वही उचित है।" महर्षि वर्ष ने नवागत शिष्य व्याडि और इन्द्रदत्त को बहुतेरा समझाया पर वे तन्त्र और पदार्थ विद्या सीखने का ही हठ करते रहे। महर्षि ने सोचा यह विद्या लुप्त न हो, लोग आध्यात्मिक शक्तियों को भौतिक शक्ति से बढ़कर स्वीकार करते रहें और आवश्यक हो तो विश्व-कल्याण में तन्त्र का उपयोग भी होता रहे, इस दृष्टि से उन्होंने शिष्यों की बात मान ली। उन्हें अनेक ऐसे आसन, प्राणायाम, हठयोग की क्रियाएँ आदि बताईं, जिससे उनमें सैकड़ों सिद्धियों का प्रादुर्भाव होता चला गया। परकाया प्रवेश से लेकर सूक्ष्म लोकों में अभिगमन तक, दूर दर्शन, श्रवण से लेकर औरों के मन की बात जान लेने तक की सारी विद्याएँ उन्होंने दोनों शिष्यों को सिखाकर उनको निष्णात् योगी बना दिया।

साधनाएँ समाप्त कर घर चलने का समय हुआ तो व्याडि बोला—"गुरुदेव ! कहिये आपको गुरुदक्षिणा क्या दें ?" इन्द्रदत्त ने भी वही आग्रह किया तो वर्ष बोले—"तात् ! भौतिक सम्पत्तियाँ क्षण-भंगुर सुख देती हैं, हमें वह चाहिये नहीं, कोई भी अध्यात्मवादी जो चाहता है, मेरी भी वही इच्छा है कि तुम यहाँ से जाओ। धर्म और ज्ञान का प्रकाश फैलाओ ताकि अपने देश, जाति और संस्कृति के जीवन में उच्च आदर्शों, उदात्त भावनाओं, सुख और समृद्धि की कमी न रहे और हमें कुछ नहीं चाहिये।"

शिष्य सन्तुष्ट न हुये उन्हें अपनी उपलब्धि का अहंकार नचा रहा था—वे दोनों हठ करते रहे कोई भौतिक वस्तु माँगने की। न मानने पर महर्षि ने कहा—दे सकते हैं तो एक हजार स्वर्ण मुद्राएँ लाकर दे दें, ताकि टूटे आश्रम के जीर्णोद्धार का प्रबन्ध किया जा सके। यह बात शिष्यों ने स्वीकार कर ली। होना चाहिये था यह कि दोनों परिश्रम करते, उद्योग करते और मेहनत से गुरुदक्षिणा चुकाते पर अहंकार तो अहंकार ही है। निश्चय यह हुआ कि तन्त्र विद्या का प्रयोग कर गुरुदक्षिणा अविलम्ब चुका दी जाय। संयोग से जिस दिन उनकी यह मन्त्रणा चल रही थी, मगध के सम्राट नन्द की मृत्यु हो गई। दोनों शिष्यों ने वररुचि को अपना मित्र बनाया और तय किया कि इन्द्रदत्त, नन्द के शरीर में परकाया प्रवेश करें, उसके शव की रक्षा व्याडि करे और इन्द्रदत्त की आत्मा नन्द के शरीर में पहुँच जाये, तब वररुचि जाकर उनसे स्वर्ण मुद्राएँ माँग लायें जिससे गुरुदक्षिणा भी चुका दी जाये और अपने लिये भी धन प्राप्त किया जा सके।

सारी व्यवस्थाएँ जुटा ली गईं। इन्द्रदत्त ने अपने शरीर से प्राण निकालकर नन्द के शरीर में प्रवेश कर लिया। मृत नन्द जी उठे तो सारे मगध के लोग आश्चर्य-चकित रह गये। इस रहस्य को और कोई तो नहीं जान पाया, पर स्वभाव में भिन्नता के कारण नन्द का मन्त्री शकटारि सारी स्थिति समझ गया। उसने तत्काल पता लगाकर इन्द्रदत्त के शव का तो दाह करा दिया और व्याडि को बन्दी बनाकर कारागृह में डाल दिया। कोई उपाय न देखकर नन्द के शरीर में व्याप्त इन्द्रदत्त उसी शरीर में रह गये और भोग-वासनाओं में डूब गये। इधर चन्द्रगुप्त के हाथों वह मारा गया और व्याडि कारागृह की यातनाओं से। जो योग-विद्या आत्म-कल्याण के उद्देश्य से सिखाई गई थी, अहंकार के कारण वह अपने साधकों को ही ले डूबी। गुरुदक्षिणा तो दूर रही वर्ष ने यह समाचार सुना तो उन्होंने इतना ही कहा—अपात्र को विद्या देने का यही फल होता है—आगे उन्होंने योग-विद्या हर किसी को न सिखाकर आत्म-कल्याण की दक्षिणमार्गी साधनाएँ ही सिखाईं।

चरित्र-निष्ठा ही सर्वोपरि

आचार्य अश्वत्थ को महाराज देवरथ ने यज्ञ का ब्रह्मा नियुक्त किया है, उन्हें आज ही आश्रम से प्रस्थान करना है। समस्त विद्यार्थीगण प्रातःकाल से ही चुप हैं। महर्षि के चले जाने पर वे सब स्नेह शून्यता-सी अनुभव किया करते। आश्रम के प्रत्येक बालक पर उनका पितृतुल्य प्यार था। इसलिये छात्र उन्हें अपनी माँ के समान मानते और जब कभी उनका वियोग होता तो दुःखी हो जाते। मनुष्य की आन्तरिक निर्मलता और स्नेह में कितनी शक्ति है जो औरों को भी सगा-संबंधी बना लेती है।

आचार्य अश्वत्थ चले गये। जब तक वे बाहर रहेंगे तब तक घर की सारी व्यवस्था वार्क्षी करेगा वे ऐसी व्यवस्था कर गये हैं—यह बात विद्यार्थियों को अच्छी न लगी। वार्क्षी राजकुमार है इसलिये आचार्य अश्वत्थ उसे अधिक महत्त्व देते हैं। यह बात सोचकर सभी छात्रों को क्षोभ उत्पन्न हुआ पर महर्षि उस बालक में कुछ और ही बात देखते थे, जो अन्य किसी भी बालक में देखने को न मिलती थी।

छात्रों ने अपना क्षोभ गुरुमाता के सम्मुख व्यक्त किया तो उन्होंने समझाया भी—तात ! वार्क्षी राजकुमार ही सही, वह वैभव विलासितापूर्ण वातावरण में पला है यह भी ठीक है, तो भी उसकी चरित्रनिष्ठा सर्वोपरि है तात् ! कर्त्तव्य के आगे सौन्दर्य आकर्षण भी उसे बाँध नहीं पाते, इस विशेषता के कारण ही वह महर्षि का प्रिय-पात्र बन सका है।

आचार्य महिषी के इस कथन पर भी उन्हें सन्तोष नहीं हुआ, उन्होंने निश्चय कर लिया इस बार जब महर्षि वापस आयेंगे तब वे अपनी बात उनके समक्ष अवश्य प्रकट करके उचित निराकरण की माँग करेंगे।

जब यह प्रसंग चल रहा था वार्क्षी लकड़ियाँ लेने गया हुआ था। वार्क्षी का सुगठित शरीर और राज्यकुलों वाली आभा का आकर्षण पहले ही क्या कम था पर आज जबकि वह साधारण वेश में ही लकड़ियाँ लेकर लौटा तो परिश्रम से तप्त मुखाकृति कुछ और अधिक ही गौरवर्ण और आकर्षक हो उठी थी। उसे देखते ही आचार्य अश्वत्थ कन्या वेदवती का अन्तःकरण आन्दोलित हो उठा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वे पहले ही वार्क्षी से प्यार करती थीं पर आज तो उसे सर्वथा एकाकी पाकर उसकी काम-वासना उद्दीप्त हो उठी। वह निःसंकोच वार्क्षी के समीप आ गई और पूछने लगी—"वार्क्षी ! —अच्छा यह तो बताओ वसन्त ऋतु आती है तो कलियाँ उमंग से क्यों भर जाती हैं, क्यों वे अपना परिमल पराग सारे वातावरण में बिखरने लगती हैं ?"

वार्क्षी ने एक बार वेदवती की आँखों में अपनी आँखें डालीं। आँखों में वारुणि-पान की सी अरुणाई झाँक रही थी। वार्क्षी ने हँसकर कहा—"भद्रे ! संभव है कली यह सब भ्रमर को आकर्षित करने के लिये करती हो किन्तु मुझे तो ऐसा लगता है कली स्वयं नहीं हँसती उसमें साक्षात् ब्रह्म का सौन्दर्य उल्लसित होता है"।

पर तुम मेरे अन्तःकरण की बात क्यों नहीं समझते वार्क्षी ! यह कहते-कहते वेदवती वार्क्षी के बिल्कुल समीप आ गई। वार्क्षी की भुजाएँ वे अपने हाथों में लेना ही चाहती थीं किन्तु वार्क्षी पीछे हट गये और वहाँ से चुपचाप अपने पर्णकुटीर की ओर चल पड़े। यौवन की उमंग, चरित्र के शान्ति-प्रवाह पर विजय न पा सकी।

सामने खड़ी आचार्य महिषी सब देख रहीं थीं। वार्क्षी की इस दृढ़ता पर वे मुग्ध हुये बिना न रह सकीं। महर्षि वापस आये तो उन्होंने सारी बातें बताईं—महर्षि ने कहा—भद्रे ! जो सांसारिक आकर्षण में भी अपने आपको बचाकर अपने कर्त्तव्य की रक्षा करता है, वही महानता का अधिकारी होता है। उन्होंने वार्क्षी को दुर्लभयोग-साधनाएँ सिखाईं, विद्याध्ययन के उपरान्त वेदवती का पाणिग्रहण भी वार्क्षी के साथ ही करा दिया।

बन्धनमुक्ति

अकेला साधु, शरीर पर केवल कौपीन और हाथ में एक तूँबी का जलपात्र। गौर वर्ण, उन्नत भाल, अवस्था तरुणाई को पार करके बुढ़ापे की देहली पर खड़ी। जटा बढ़ाई नहीं गई, बनाई नहीं गई, किन्तु बन गई थी। कुछ श्वेत-कृष्ण-कपिश वर्ण के मिले-जुले केश उलझ गये थे परस्पर।

धूल से भरे पाँव कहीं दूर से चलते आने की थकान। मुख की घनी दाढ़ी पर भी कुछ धूल-कण उलझ कर रह गये थे। ललाट पर बड़ी-बड़ी पसीने की बूँदों की झलमलाहट साफ थी, मध्यान्ह होने को आया, शायद उसे विश्राम की तलाश थी।

लेकिन सामने के दृश्य ने उसे चौंका दिया। यह क्या ? ये लोग इस प्रकार क्यों भागे जा रहे हैं ? इतनी आकुलता क्यों है ? साधु को दूसरों की उलझन में न पड़ना चाहिये, किन्तु दूसरों की विपत्ति यदि उसके हृदय की संवेदनाओं में तूफान न मचा दे—तो वह साधु कैसा ? विपत्ति हो तो—विपत्ति के बिना क्या पूरा गाँव इस प्रकार अस्त-व्यस्त भागता है ?

उसने गाँव के पास बरगद के पेड़ के नीचे चबूतरे पर थोड़ी देर विश्राम किया। कोई नहीं आया—उसके पास। गाँव बड़ा है सम्पन्न दीखता है। ग्राम के अधिपति की ऊँची कोठी भी है वहाँ, किन्तु यहाँ तो कोई हलचल है। घोड़े-छकड़े लादे जा रहे थे। पशु इकट्ठे किये जा रहे थे। वे सभी घरों का पूरा सामान गाड़ियों पर लादने की फिराक में जुटे थे। बड़ी शीघ्रता में थे सबके सब।

"क्या बात है भाई ! आप सब बहुत घबराये से लगते हैं ?" साधु ने स्वयं एक व्यक्ति के पास जाकर पूछा।

"महाराज, क्षमा करें।" श्रद्धापूर्वक उसने चरण स्पर्श किया—"हम ऐसी विपत्ति में हैं कि कोई सेवा करने में इस समय समर्थ नहीं।"

'विपत्ति क्या है ? यदि बताने में कोई हानि न हो"....

'पिण्डारे आ रहे हैं।" उस व्यक्ति ने बताया "प्रसिद्ध क्रूर पिण्डारा भीमपाल अपना पूरा दल लिये बढ़ा आ रहा है। कई सौ घुड़सवार हैं उसके साथ। वह असुर है प्रभु ! आप भी यहाँ से कहीं दूर चले जायें तो अच्छा है। वे साधु की भी हत्या करके प्रसन्न होने वाले पिशाच हैं। वे लूटकर ही सन्तुष्ट नहीं होते, घरों को जलाकर और गिराकर तथा जो मिले उसी को क्रूरतम तरीकों से पीट-पीट कर मारने में विनोद मानते हैं।"

"महाकाल के चरणाश्रित मनुष्यों की उदारता और दया पर निर्भर नहीं रहा करते" साधु ने एक बार आकाश की ओर नेत्र उठाए। भय उन मृत्युंजय के स्मरण से भीतर रहा करता है, किन्तु इस समय मुझे तुम्हारे यहाँ के गढ़पति से मिलना है। तुम इतना कर सकोगे ?

'आप गढ़पति से मिलेंगे ?' ग्रामीण चौंका। पिण्डारों के लिये कोई वेश बना लेना कठिन नहीं है। क्या पता ....। पर दूसरे ही क्षण उसे अपनी शंका निर्मूल प्रतीत हुई। 'आप मेरे साथ पधारें।' उसने अनुरोध किया। उसने सुन रखा था कि पिण्डारा भीमपाल नृशंस है—पर कपटी नहीं। वह छल का आश्रय प्रायः नहीं लिया करता। गढ़पति से साधु को मिला देने भर से कोई बड़ी हानि संभव नहीं। फिर एकाकी शस्त्रहीन साधु कर भी क्या सकता है ? कुछ ही क्षणों के बाद दोनों आमने-सामने थे।

'आपको ठीक-ठीक पता है कि पिण्डारे आ रहे हैं ? साधु ने गढ़पति को इधर-उधर की बातें करने का अवकाश नहीं दिया।

'तीन दिन पहले हमारा एक तरुण उनके आक्रमण में घिर गया था।' गढ़पति ने भी मूल बात चलाई—'वह किसी प्रकार भाग आया। उस ग्राम को उन लोगों ने ध्वस्त कर दिया। वहाँ अब खंडहर और कहीं-कहीं उठता धुआँ होगा। कितने लोग मरे, पता नहीं ?

"आप अपने आश्रित की रक्षा नहीं करेंगे ?" साधु ने उलाहना नहीं दिया। उनका स्वर सामान्य था।

'वही करने की कोशिश कर रहा हूँ।' खेद भरे स्वर में गढ़पति कह रहे थे—'क्षत्रिय हूँ। मृत्यु से डरता नहीं। किन्तु अपने सैनिकों के साथ मरकर भी रक्षा की कोई आशा नहीं। ये मुट्ठी भर वीर उन शतशः दुर्दान्त दस्युओं के पग रोक नहीं सकते। अतः हम ग्राम खाली कर रहे हैं। घरों का मोह छोड़ना पड़ेगा। शेष सब चल सम्पत्ति हम ले जायेंगे और खेत अभी तो खाली पड़े हैं।'

'निकल जा सकेंगे आप ?' साधु का प्रश्न जितना सीधा था, उत्तर उतना कठिन था।

'कम आशा है। उनके अश्व वन्यपथ के अभ्यस्त हैं। कोई वन का मार्ग उन्हें अज्ञात नहीं।' बड़ी निराशा थी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गढ़पति के स्वर में—'वे ग्राम को खाली पाकर क्रुद्ध होंगे। इस प्रदेश में जनपद दूर-दूर हैं। वे थके, भूखे आयेंगे। उनके घोड़ों को खली-दाना आवश्यक होगा। लम्बी यात्रा के बिना आगे भी आशा नहीं। निश्चय वे हमें ढूँढ़ेंगे, पर दूसरा कोई उपांय नहीं। वे प्रातः यहाँ पहुँचेंगे। तब तक हम जितनी दूर जा सकें।'

'इतनी दूर जाने की जरूरत नहीं।' साधु ने आश्वासन दिया, 'मैं तुम्हें रोकता नहीं हूँ। रुक जाओ तो यहाँ भी भगवान सबकी रक्षा कर लेंगे। भरोसा न हो तो कहीं इतने पास रुको सबके साथ कि जब पिण्डारे लौट जायें, तुम लोग आकैर अपने घर सँभाल सको।"

'आप उनके स्वभाव से अपरिचित हैं।' गढ़पति के स्वर में वही वेदना बनी रही। 'घर संभालने योग्य रहने दें, ऐसा सौम्य उनमें से एक न मिलेगा।"

'मैं अपने विश्वनाथ के स्वभाव से परिचित हूँ। अपने आश्रित की उपेक्षा करना उन्हें आता नहीं।' साधु के स्वर में अविचल आस्था की गूँज थी—'तुम्हारे घर तुम्हें कल तीसरे पहर सुरक्षित मिलेंगे अच्छा अब जाओ।'

साधु ने किसी प्रकार भी भोजन करना स्वीकार नहीं किया। वे वहाँ से सीधे उसी वट के नीचे आये और अपने भजन-पूजन में लग गये। इधर उनकी एकाग्रता-तन्मयता प्रगाढ़ होने लगी—उधर गाँव का परिदृश्य बदलने लगा।

'हम पूरे गाँव का चक्कर करके आये हैं।' प्रचण्डकाय भीमपाल के सामने उसके अपने सैनिकों के स्वर भी काँपते थे—'सूना पड़ा है गाँव। खुले पड़े हैं घरों के द्वार। टूटी चारपाई तक उनमें नहीं है।'

'बको मत !' भीमपाल अब भी अपने काले घोड़े पर ही सवार था। उसका कर्कश स्वर गूँजा—'अश्वों को दाना चाहिये। हमारे सभी सैनिक अब भोजन तथा विश्राम चाहते हैं। सूने घर ! हम चमगादड़ नहीं हैं कि सूने घरों में उलटे लटकेंगे। उन घरों को जलाकर हाथ सेंक लेने का काम पीछे, पहले भगोड़ों को ढूँढ़ निकालो 'एक आदमी है। एक कौपीनधारी नंगा साधु उस बरगद के नीचे।' एक सैनिक ने सूचना दी—'वह आँखें बन्द किये बैठा है।' 'बाँध लाओ उसे।' आज्ञा पूरी होते ही तीन चार अश्व दौड़ पड़े।

'गाँव के लोग कहाँ गये ?' रस्सियों से बँधे सामने उपस्थित साधु से भीमपाल ने पूछा सही, किन्तु उसे आश्चर्य हो रहा था कि साधु बाँधे जाने पर भी प्रसन्न है और कोई प्रतिवाद नहीं करता।

'मुक्त पुरुष बन्दियों का विवरण नहीं रखते बन्दी के प्रश्नों का उत्तर देने को वे विवश भी नहीं।' साधु ने नम्र किन्तु दृढ़ स्वर में उत्तर दिया। 'बन्दी कौन ?' भीमपाल कुछ आश्चर्य में पड़ गया।

'जो भागने को विवश हुये। जो घोड़ों पर बैठे भागे आये, जो विश्व में वासनाओं में बँधे भागते-नाचते डोलते हैं।

'जो रस्सी से बँधा सामने खड़ा है।' अब पिण्डारे ने अट्टहास किया। 'ये रस्सियाँ मिट्टी को बाँधती हैं।' साधु हँसे 'विश्वनाथ के सेवक को बाँधने की शक्ति इनमें नहीं है। तू बाँधेगा प्रलयंकर के सेवक को ? स्वयं तेरा बंधन कट नहीं सकता इस साधु के हाथों का आश्रय पाये बिना।' 'मैं बँधा हूँ ?' पिण्डारा चिल्लाया—'मैं तेरे प्रलाप में उलझ नहीं सकता। गाँव के भगोड़ों का पता तुझे देना पड़ेगा।

'अपना बंधन तुझे दीखे, यह मेरे आराध्य की कृपा के बिना संभव कहाँ ?' साधु ने ध्यान ही नहीं दिया कि दो सैनिक अपने सरदार के संकेत के अनुसार कोड़े उठाये घोड़ों से उतरकर उसके दोनों ओर आ खड़े हुये हैं। उन्होंने तो एक बार आकाश की ओर दृष्टि उठाई आशुतोष !'

बस तभी एक विलक्षण चमत्कार हुआ। भीमपाल अपने घोड़े से कूदा और सीधे साधु के चरणों पर उसने मस्तक रख दिया—"ये भयंकर सर्प ! ये फण-फैलाये जलते नेत्रों से घूरते काले विषधर ! आप इनसे मेरी रक्षा करें। मुझे क्षमा करें।"

किसी की समझ में कुछ नहीं आया। किसी को कुछ नहीं दीख रहा था। पिण्डारे सैनिकों ने केवल इतना समझा कि साधु कोई साधारण मनुष्य नहीं है। उसने अवश्य कुछ किया है—कोई चमत्कार।

'ये मुझे जकड़े हैं। ये मेरी हड्डी-हड्डी तोड़े दे रहे हैं। मैं इनके विष से जला जा रहा हूँ।' भीमपाल व्याकुल होकर इधर-उधर हाथ-पैर पटकने लगा था—"आप कृपा करें ! आप रक्षा करें !' आप क्षमा करें !" बार-बार साधु के पैरों पर वह सिर पटक रहा था।

'ये नाग आज तुम्हें नहीं बाँध रहे हैं।' साधु स्वस्थ, प्रसन्न खड़े थे—'ये तो सदा से बाँधे हैं तुम्हें। ये काले-नीले, पीले चित्रवर्णी नाग—तुम्हारा काम, क्रोध, लोभ तुम्हारी सांसारिक विषयों की प्रबल तृष्णा, तुम तो इनसे सदा जकड़े हो। सदा इनके विष से दग्ध हो रहे हो। आज तुमने प्रभु की कृपा से अपना बंधन देखा।"

पिण्डारा स्तब्ध था। **'बद्धोहि को यो विषयानुरागी'** के संस्कृति सत्य को वह अनुभव कर रहा था। सचमुच मैंने आज देखा। उसने अपने हाथों से साधु के बंधन की रस्सी खोली। फिर चरणों में गिरा—'अपने बंधन को देखने की आँख दी प्रभु ! इससे छूटने की पद्धति—अब मैं इन चरणों को छोड़ने वाला नहीं।

'साधु-मुसकराये—जिसने अपने बंधनों को देख लिया, समझो उसने छूटने का सरंजाम जुटा लिया। इनसे आसक्ति हटी, चित्त उपराम हुआ, समझना बंधन कटे। थोड़ी देर उसके सिर पर अपना स्नेह भरा हाथ फिराने के बाद साधु चले गये किन्तु इन पलों में बहुत कुछ घटित हो गया।

गाँव के लोग शाम को लौट आये थे। उन्हें भीमपाल के यहाँ आने के चिन्ह रूप में कहीं-कहीं घोड़ों की लीद मात्र मिली। वे साधु मिले नहीं। अँग्रेजी सरकार की नींद हराम करने वाले भीमपाल के दल का भी फिर नाम नहीं सुनाई पड़ा। अवश्य एक प्रचण्डकाय साधु उक्त घटना के कुछ ही दिनों बाद चित्रकूट में देखा जाने लगा। जिसकी आकृति भीमपाल से मिलती-जुलती थी। यह साधु अब बंधनों से मुक्त था—मुक्ति का उपदेष्टा था। मोक्ष का रहस्य उसके जीवन से झर रहा था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिवर्तित जीवन

मुस्लिम समाज में एक नाम फजील बिन अयाज का आता है। वे रोजा नमाज में कमी नहीं करते थे। साथियों को भी वैसी ही शिक्षा देते थे, किन्तु पेशा डाका डालने का करते थे। इतने पर भी देख लेते थे कि उस व्यक्ति के पास पैसा खर्च से ज्यादा है या नहीं, जिस पर कम होता उसे छोड़ देते। माल बँटबारे में कभी उन्होंने साथियों के साथ बेईमानी या झगड़ा नहीं किया।

एक दिन एक सरदार अपने काफिले समेत जा रहा था। डाकुओं का अन्देशा देखकर उसने भक्त जैसा लिबास पहने हुये फजील को विश्वास योग्य समझा और अपनी रकम उनके हाथों सौंप दी। कहा—"आप रखवाली करके मेरा पैसा बचा देंगे।" फजील ने उसका पैसा जमीन में गाड़ दिया। जब खतरा दूर हो गया तो सरदार पहुँचा और अपना पैसा माँगा। फजील ने कहा जा, जहाँ गड़ा था वहीं से उखाड़ ले। साथियों ने इस पर आनाकानी की तो उन्होंने कहा—'इसने मेरे ऊपर भरोसा किया है। विश्वासघात कैसे करूँ ?'

एक दिन कुरान की एक आयत फजील ने ध्यानपूर्वक पढ़ी जिसका अर्थ होता था—"क्या ईमान वालों के लिये ऐसा वक्त नहीं आया कि उनका दिल अल्लाह से हटे।"

उस आयत को उन्होंने बार-बार पढ़ा और उस दिन से सच्चे अर्थों में सन्त बन गये। डाका डालना बन्द कर दिया। इसके बाद वे मक्का चले गये और एक सच्चे फकीर की तरह रहने लगे।

एक दिन खलीफा हारूँ-अल-रशीद उनसे मिलने आये और प्रार्थना करने लगे "कुछ नसीहत दीजिये।" फजील ने कुछ महत्त्व की बातें उनसे कहीं। "एक दिन अल्लाह से मैंने प्रार्थना की कि मुझे सरदार बना दे। उसने मुझे इन्द्रियों का सरदार बना दिया।" हारूँ रशीद ने कहा कुछ और फरमाइये। फजील ने कहा—"एक दिन मैंने अल्लाह से कहा—मुझे नजात (मुक्ति) चाहिये।" अल्लाह ने सीधा रास्ता बता दिया।

फजील ने कहा—"अल्लाह ने कहा—कि बूढ़ों के साथ मेहरबानी और जवानों तथा बच्चों के साथ नेकी कर।" मैंने वही किया और नजात पा गया।

हारूँ के आगे पूछने पर फजील ने कहा—"अल्लाह ने कहा—मुझसे से डर और मेरे दरबार में जवाब देने के लिये तैयार रह। मैंने उस दिन से वही रास्ता अपनाया।"

फजील ने कहा—"अल्लाह ने कहा, तेरी जानकारी में कोई गरीब बुढ़िया भूखी सो गयी तो खुदा के दरबार में इन्साफ माँगेगी। उस दिन से मैंने ऐसे गरीबों की तलाश करना शुरू कर दिया और खुद खाना तब खाया जब उसे खिला दिया।"

इसके बाद खलीफा इन सूफी फकीर को कुछ धन देने उठे। फजील ने कहा—"मुझे दोजख (नरक) में डालने का इरादा करता है क्या ?" इसके बाद खलीफा उठकर चल दिये। चलते वक्त उन्होंने फिर खलीफा से कहा—"जो खुदा से डरता है उसकी जुबान गूँगी रहती है। वह बेकार बातें नहीं कहता और दुनिया वालों से बेकार मुहब्बत नहीं बढ़ाता।"

फजील की दो लड़कियाँ थीं। वे विवाह के योग्य हो गयीं। वे विवाह कर न सके। मरते वक्त उन्होंने कहा—'इन लड़कियों को पहाड़ की चोटी पर ले जाना और अल्लाह से कहना कि जब तक जिन्दा थे, आपने फजील की रखवाली की अब इन लड़कियों की भी आप ही रखवाली करें।' कहते हैं कि एक बादशाह उधर से निकला। उसने फजील की दोनों लड़कियों की शादी अपने शहजादों से कर दी। फजील ने जिस प्रकार अपने जीवन को बदला उसकी मुस्लिम हदीसों में बड़ी विशद् विवेचना की गयी है। सच्चे अर्थों में वे मुस्लिम समुदाय के वाल्मीकि थे।

वृत्तिशोधन से आत्मिक प्रगति

"आग्नीध्र ! तुम आ गये। मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था। राज्य का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व तुम्हें सौंपकर अब मैं मुक्त हो जाना चाहता हूँ। मेरी एक ही इच्छा शेष रही है 'आत्म-दर्शन' और 'ईश्वर प्राप्ति'। कुलगुरु से आज्ञा मिल चुकी है। तपश्चर्या के लिये उन्होंने हिमावर्त जाने की आज्ञा प्रदान कर दी। आज ही मुहूर्त है, तीसरे पहर मैं यहाँ से प्रस्थान कर दूँगा। इस बीच तुम्हें राज्य-संबंधी आवश्यक बातें समझा देना आवश्यक धर्म समझता हूँ, इसी हेतु तुम्हें यहाँ बुलाया है।" प्रियव्रत ने संक्षेप में सारी बात पुत्र आग्नीध्र को समझा दी।

आग्नीध्र को यह बात कुछ दिन पूर्व ज्ञात हो गई थी। उन्हें यह भी पता था कि मेरा राज्याभिषेक होने वाला है, किन्तु जब उन्होंने पिता के भावी-जीवन की कल्पना की तो उन्हें निश्चय हो गया था कि आत्म-निर्वाण और ईश्वरत्व की प्राप्ति से बढ़कर और कोई पुरुषार्थ नहीं है। मनुष्य जीवन में आने का सच्चा उद्देश्य भी वही है, ऐसा न होता तो ऋषियों-महर्षियों ने ऐश्वर्य का जीवन ठुकराया न होता। पिताश्री स्वयं शास्त्रों के ज्ञाता हैं, उनकी बौद्धिक क्षमता किसी भी आचार्य से कम नहीं है। यदि उन्होंने तपश्चर्या का मार्ग चुना तो इसका यही अर्थ है कि आत्मोत्थान के लिये राज्य-वैभव भी ठुकराया जा सकता है। आत्म-लाभ के आगे राज्य सुख भी तुच्छ है ?

उन्होंने विनीत भाव से कहा—"तात् ! आप जानते हैं कि सुख-सम्पन्नता, राज्य-वैभव आत्म-कल्याण में बाधक हैं, इसीलिये तो यह सब छोड़कर जीवन-मुक्ति के लिये तप करने जा रहे हैं। आप ही बताएँ अपना बंधन मेरे पैरों में डालना क्या मुझे पाश-बद्ध करना नहीं, यदि हाँ तो मुझे यह ऐश्वर्य नहीं चाहिये। मैं भी आपके ही साथ चलूँगा और वन में रहकर तपश्चर्याएँ करके आत्मशक्तियाँ जाग्रत करूँगा ताकि वे मेरे लिये ईश्वर दर्शन में सहायक बनें।"

राज्याभिषेक देखने के लिये आज राजधानी के सम्भ्रान्त नागरिक नहीं राज्य भर से दूर-दूर की प्रजा आई थी। राज-भवन नर-नारियों से खचाखच भरा हुआ था। उस मंगल पर्व पर एकाएक वैराग्य-भाव उदय हो जाने से सारे सभा-भवन में सन्नाटा छा गया। सबके मन में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उत्सुकता थी, देखें राजकुमार आग्नीध्र राज्य-सिंहासन सँभालते हैं या पिता के साथ ही वन-गमन करते हैं।

महाराज प्रियव्रत ने राज-मुकुट उतारकर उसे सम्मान-पूर्वक शीर्ष-सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया, फिर प्रजा की ओर भाव-वत्सल दृष्टि डाली। नर-नारियों के मुख-मण्डलों पर एकमात्र जिज्ञासा दिखाई दी। तब उन्होंने आग्नीध्र के सम्मुख होकर कहा—"तुम्हारी अनासक्ति सराहनीय है आग्नीध्र ! किन्तु क्या तुम यह जानते हो कि मैंने वर्णाश्रम धर्म का पालन किया है। आज तक मुझसे जितना बन सका प्रजा और परिजनों की सेवा की। उन्हें भगवान के प्रतिनिधि मानकर पूजता रहा। मैंने राज्य सुखों का उपभोग भी किया है, आवश्यकता पड़ी है तो अपराधियों को दण्ड देने की कठोरता भी दिखाई है। अब धार्मिक मर्यादा के अनुसार मैं चतुर्थ वय में प्रवेश कर रहा हूँ। मुझे उचित है कि मैं अब शेष जीवन तप करूँ और अपना लोकोत्तर जीवन सुनिश्चित बनाऊँ।"

"तुम्हारे लिये यही उचित होगा कि तुम अभी प्रजा की सेवा करते हुये अपनी महत्वाकांक्षाएँ भी तृप्त करो। योग और तपश्चर्या के लिये इन्द्रियासक्ति पर विजय पाना आवश्यक है। तात् ! तुम्हें पता नहीं दमन की हुई इन्द्रियाँ और भी बलवती हो उठती हैं, जो अपरिपक्व साधक को कभी भी साधन-भ्रष्ट कर सकती हैं। प्रजापति ने गृहस्थाश्रम की प्रतिष्ठा इसीलिये की कि मनुष्य इन्द्रिय सुखों का उपभोग करता हुआ, उनकी निस्सारता की स्पष्ट अनुभूति करे, यदि ऐसा समझ में आ जाये तो चित्त-वृत्तियों का नियन्त्रण सरल हो जाता है। चित्त-वृत्तियों का निरोध अपने वश में न हो जावे, तब तक योग करने की अनुमति नहीं दी जाती।"

आग्नीध्र ! चुप हो गये। पितृदेव का प्रतिवाद करना अच्छा न लगा। राज्याभिषेक के लिये आचार्यों ने मन्त्रोच्चारण प्रारम्भ किया। एक क्षण के लिये उभरी हुई निराशा, उत्साह और चहल-पहल में बदल गई। राज्याभिषेक हो गया। प्रजा ने प्रीति-भोज का आनन्द लिया। तृतीय पहर सबने महाराज प्रियव्रत को भावभीनी विदाई दी। राज्यभवन एक बार महाराज आग्नीध्र की जयकार से गूँज गया।

पर एक ही रात बीती होगी कि राज्य-सिंहासन सूना हो गया। आग्नीध्र के अन्तःकरण में आत्म-दर्शन की कामना ने इतनी तीव्रता से प्रवेश किया था कि उसके प्रभाव को संभाल पाना उनके लिये कठिन हो गया था। अधैर्य और क्षणिक आवेश ही तो कर्त्तव्य-पलायन कराते हैं। आग्नीध्र ने उसी प्रकार बिना विचारे राज-वैभव का परित्याग कर दिया और मन्दराचल पर तप करने लगे। चतुर मन्त्रियों ने राज्य हित में इस बात का कानों-कान समाचार न फैलने दिया। सारी व्यवस्था ज्यों-की-त्यों चलती रही। चिन्ता की बात इतनी ही थी कि आग्नीध्र के अतिरिक्त राज्य सँभालने वाला और कोई दूसरा नहीं था। सब कुलगुरु के आदेश की प्रतीक्षा करने लगे।

मन में अविचल वैराग्य हो और ईश्वर के प्रति प्रगाढ़ प्रेम तो साधना की सफलता में देर नहीं लगती। आग्नीध्र थोड़े दिनों में ही समाधि-सुख की अनुभूति करने लगे। जब वे जप के लिये बैठते तो सांसारिकता की ओर उनका चित्त तक न डोलता। आत्मा मुक्त आकाश में विचरण करने और देव-शक्तियों के दर्शन का आनन्द लेने में निमग्न होने लगी।

कुछ ही पखवारे बीते थे। आग्नीध्र एक दिन ऐसी ही अवस्था में ध्यानावस्थित ईश्वर-चिन्तन कर रहे थे। बसन्त के दिन वैसे ही रमणीक होते हैं, उस पर मन्दराचल की सौन्दर्यमयी छटा तो वातावरण को और भी चारु बना रही थी। सघन तरुवरों पर फैली स्वर्णलताओं की हरीतिम प्रभा, कोयल की कूक, मयूरों का नृत्य, सरोवर में कारण्डव, जल कुक्कुट और कलहंसों का कूँजन, कमल-पुष्प का हास और सुवास बिखेरता सौरभ वैसे ही साधकों के चित्त में माधुर्य जगा रहे थे। फिर आज तो एक और मधुर झंकार प्रातःकाल से ही आश्रम में गूँज रही थी, पायलों की झंकार। नृत्य और कोयल-कण्ठ को लुभाने वाला मधुरिम गीत। सब मिलाकर ऐसा लग रहा था कामदेव रति को लेकर आश्रम में उतर आये हों।

आग्नीध्र का ध्यान टूट गया। स्वर संगीत अब मन को अधीर कर रहे थे। आँखें खुल गईं, हृदय उसे देखने के लिये लालायित हो उठा था, जो अलौकिक सौन्दर्य के संस्कार सारे वातावरण में बिखेरे दे रहा था। हृदय और मन को आल्हादित करने वाली विलासपूर्ण गति भेद भरी चितवन, क्रीड़ा-चापल्य और अंगराग से सारे वातावरण को कामाभिसिक्त बनाने वाली कामिनी—आँख उठाकर आग्नीध्र ने देखा—सामने पूर्वचित्ति ऐसे खड़ी है जैसे किसी चित्रकार ने सौन्दर्य की साक्षात् प्रतिमा गढ़ दी हो।

आँखें देखते-देखते थक गईं तो पाँव गतिमान हो उठे। आग्नीध्र ने आसन त्याग दिया और पागल की भाँति सुन्दरी पूर्वचित्ति की ओर भागे। रूप और वासना में कितनी शक्ति भर दी है भगवान ने कि उन्हें पाकर मनुष्य अपने आपको भी भूल जाता है, अपने परम हितैषी परमात्मा को भी बिसरा देता है। यही तो प्रधान बाधा है, ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में। शास्त्रकार तभी तो कहते हैं, "योगी बनने से पहले चित्त-निरोधी होना आवश्यक है।"

पर जब चित्त चंचल हो गया तो फिर उसे रोक सकना स्वयं भगवान के वश में नहीं, आग्नीध्र ने पूर्वचित्ति के सौन्दर्य के सम्मुख आत्म-समर्पण कर दिया।

आग्नीध्र ! बालकों की तरह प्रलाप करता जा रहा था—"पूर्वचित्ति ! तुमने मुझे स्वीकार न किया तो मैं यहीं प्राणान्त कर दूँगा, अब तुम्हारे बिना मैं एक क्षण भी नहीं रह सकता।"

और तभी सामने से मुसकराते हुये महात्मा प्रियव्रत आते दिखाई दिये। तात् ! उन्होंने आशीर्वाद का हाथ उठाते हुये कहा—"मैंने यही तो कहा था कि वर्णाश्रम धर्म का पालन करो, गृहस्थ में रहकर महत्त्वाकांक्षाओं को पूरा किया जाता है, वह सच्ची तपस्या है, उसके बाद योग-भ्रष्ट होने की आशंका नहीं रहती और तब उन्होंने पूर्वचित्ति का हाथ—आग्नीध्र के हाथ में देते हुये कहा—"वत्स ! हमारा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है, तुम दोनों आज से सम्राट और साम्राज्ञी की तरह रहो, कुल, धर्म, वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हुये, प्रजा की सेवा करो। भगवान तुम्हें अवसर भी देंगे, जब तुम 'ब्रह्म प्राप्ति' करोगे।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आग्नीध्र ने पलायनवादी दृष्टिकोण का परित्याग किया और सुखपूर्वक राज्य संचालन करने लगे। समयानुसार उन्होंने राज्य भोग त्यागकर संन्यास लिया और 'ब्रह्म-निर्वाण' का पद प्राप्त किया।

साधना की तन्मयता

महान् चित्रकार 'आगस्टी केन्वायर' जितने अधिक वृद्ध होते गये, उतना ही उनका कला-प्रेम बढ़ता गया। युवावस्था में वे एक अच्छे चित्रकार थे। उनकी रोजी-रोटी उसी से चलती थी, पर दुर्भाग्य से यह न देखा गया। उनके हाथ-पैरों में गठिया की शिकायत आरम्भ हुई और इतनी बढ़ी कि पैरों ने दो कदम चलने से भी इनकार कर दिया। पहियेदार कुर्सी के सहारे ही वे घर के एक कोने से दूसरे कोने तक खाने, सोने जैसी दैनिक आवश्यकताएँ पूरी कर सकते थे। हाथों का यह हाल हो गया कि ब्रुश पकड़ना उँगलियों के लिये कठिन हो गया। तब वे उँगलियों के साथ रस्सी से ब्रुश बाँध लेते और चित्रकारी में तन्मय रहते।

यों दर्द उन्हें चौबीस घण्टे बना रहता था। कई बार तो वह इतना बढ़ जाता कि पहियेदार कुर्सी से उतरने और चढ़ने का अवसर आने पर उन्हें कराहना पड़ता। ब्रुश को रंग की प्लेट तक ले जाने, डुबाने और उठाने में कई बार उँगलियों में बेतरह कसक होती और वे उसे जहाँ की तहाँ रखने के लिये मजबूर हो जाते। थोड़ा चैन मिलने पर ही हाथ उठता पर चित्रकला की उनकी तन्मयता में इससे भी कुछ अन्तर न आया।

अपंग कलासाधक की लगन और कला देखने के लिये दूर-दूर से नौसिखिये चित्रकार उनके पास आया करते थे और उस सन्दर्भ में गूढ़ प्रश्न पूछते थे। एक प्रश्न यह तो होता ही था, सत्तर वर्ष से अधिक आयु हो जाने के कारण जराजीर्णता और रुग्णता के रहते हुये भी वे किस प्रकार अपने प्रयास में इतने दत्तचित्त रह पाते हैं ? उत्तर में वे नये कलाकारों को अपनी मनःस्थिति का सार बताते हुये यही कहते—"यदि कोई कलाकार अपनी कृति और प्रगति को देखकर सन्तोष कर बैठे या अहंकार करने लगे तो समझना चाहिये उसके विकास का अन्त हो गया। प्रगति का एक ही मार्ग है। अकल्पनीय प्रगति तक पहुँचने की उत्कट आकांक्षा और उसके लिये मजदूर जैसी कठोर श्रम साधना। जिसने थोड़ी सफलता पर अहंकार व्यक्त किया, समझ लो वह मारा गया। प्रगति तो अनन्त है इसलिये उसकी साधना भी असीम ही होनी चाहिये।"

७८ वर्ष की आयु में जबकि आगस्टी केन्वायर बहुत अधिक वृद्ध हो गये थे और बीमारी ने उन्हें नर-कंकाल मात्र बना दिया था तो भी उन्होंने अपनी कला-साधना छोड़ी नहीं। फेफड़ों की खराबी बेतरह तंग करती थी और लगता था कि वे अब महाप्रयाण करने ही वाले हैं, तो भी उन्होंने अपनी साधना छोड़ी नहीं। अन्तिम दिनों वे महिला मित्र नामक अत्यन्त कला पूर्ण चित्र बनाने में निमग्न थे और अपने बेटे की मेज पर रखने के लिये एक गुलदस्ता चित्रित कर रहे थे।

डाक्टरों ने पूर्ण विश्राम के लिये कहा तो उन्होंने एक ही उत्तर दिया। कुछ न करने की, कुछ न सोचने की बात मेरी प्रकृति स्वीकार ही न कर पायेगी। अन्तिम दिन उन्हें श्वास का ऐसा विकट दौरा पड़ा, जो उन्हें साथ लिये बिना गया ही नहीं। वे फर्श पर बेहोश होकर गिर पड़े। वे होश में आये तो गृहसेविका लूसी ने पूछा—"अब आपकी तबियत कैसी है।" तो उन्होंने तबियत का मतलब अपनी कला-साधना से समझा और बुझती हुई आँखों को नये सिरे से चमकाते हुये कहा—"लूसी मैं समझता हूँ कि चित्रकला के बारे में अब कुछ-कुछ समझ सकने योग्य हो चला हूँ।" इसके साथ ही उन्होंने सदा के लिये आँखें बन्द कर लीं।

भावना से सिद्धि

महाराज अम्बरीष के संबंध में यह बात प्रजा में प्रख्यात थी कि वे बड़े धर्मपरायण व्यक्ति हैं। प्रतिदिन राजमहल के प्रांगण में ही बनवाये गये भगवान विष्णु के मन्दिर में प्रातःकाल उषा बेला में पहुँचने, भगवान के विग्रह की पूजा-अर्चना करने, संध्या, उपासना, जप, ध्यान के साथ उनकी दिनचर्या आरम्भ होती। इसके बाद वे अपने राज्य के दीन दुःखियों और अभावग्रस्तों को प्रतिदिन एक स्वर्णमुद्रा बाँटते थे, जिनकी भीड़ रोज प्रातः से ही लग जाया करती थी।

पूजा और दान के बाद आरम्भ होता था स्वाध्याय। इसके उपरान्त अम्बरीष अपनी समस्याओं को उनके पास लेकर सुलझाने के लिये आये नागरिकों से भेंट करते, उनके कष्ट सुनते और कठिनाइयों को हल करने के लिये हर संभव सहयोग करते थे। इन सभी कार्यों से निवृत्त होने तक सूर्यदेव अपना रथ लिये ऊपर आकाश के एकदम बीच में पहुँच जाते थे। महाराज अम्बरीष को यही समय मिलता था भोजन के लिये। कष्टसाध्य जीवन जीते हुये ईश्वर भक्ति और प्रजावत्सलता के पुण्य कार्यों में लगे रहने के कारण अम्बरीष को एक प्रकार का सुख मिलता था और वे इस सुखानुभूति में अपनी कष्टसाध्य दिनचर्या की असुविधाओं को भूलकर उसके अभ्यस्त हो गये थे।

महाराज अम्बरीष की ख्याति से प्रभावित होकर अवन्ती राज्य के नरेश उदयभानु ने अपनी कन्या उदयानी के विवाह का प्रस्ताव किया। अम्बरीष ने स्पष्ट कह दिया कि वह कठोर दिनचर्या का अभ्यस्त है और उसके साथ विवाह कर उदयानी को कष्ट तथा असुविधाएँ ही मिलेंगी।

परन्तु उदयभानु ने कहा कि—"उदयानी स्वयं भक्ति, सेवा तथा तप-तितिक्षा में विशेष रुचि रखती है। यह प्रस्ताव भी उसी का है।"

अम्बरीष ने प्रसन्न होकर विवाह के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। विवाह के पश्चात् प्रथम रात्रि को उषाकाल में, अम्बरीष के उठने से पहले ही उदयानी जाग गयी और उसने विष्णु मन्दिर में जाकर पूजा-अर्चना कर ली। अम्बरीष जब जागकर मन्दिर में गये तो यह देखकर बड़े खिन्न हुये कि उनसे पहले ही उदयानी पूजा-पाठ से निवृत्त हो चुकी है और वह भी उन्हीं के मन्दिर में। प्रथम पूजा का श्रेय मुझे ही मिलना चाहिये यह सोचकर अम्बरीष

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ने उदयानी को निर्देश दे दिया कि वह बाद में ही पूजा के लिये जाया करे। उदयानी ने सहर्ष इस निर्देश को अंगीकार कर लिया।

कुछ समय बाद अम्बरीष अनुभव करने लगे कि उदयानी उनकी अपेक्षा साधना मार्ग में अधिक प्रगति कर चुकी है। उसके मुखमण्डल पर अभूतपूर्व दीप्ति, दिव्य शांति और दैवी आभा दिखाई देने लगी। पूछने पर ज्ञात हुआ कि उदयानी भाव समाधि की स्थिति में जा पहुँची है।

मैं इतने समय से पूजा, भक्ति और सेवा-साधना में लगा हुआ हूँ। मुझे तो यह सिद्धि मिली नहीं। उदयानी किस प्रकार इतनी जल्दी इस अवस्था में पहुँच गयी ? यह विचार अम्बरीष को और भी खिन्न व उदास करने लगा। धर्म-कर्म में उनकी रुचि भी कम होने लगी। इन्हीं दिनों अम्बरीष के गुरु, उस समय के प्रख्यात सिद्ध योगी राज प्रासाद में आये। दिव्य अन्तर्दृष्टि से योगी ने महाराज अम्बरीष के मनोद्वेग को ताड़ लिया और पूछा—"राजन् ! आजकल आप निराश और खिन्न से क्यों दिखाई देते हैं ?"

अम्बरीष ने अपनी मनोव्यथा खोल दी तो योगी ने समाधान किया—"राजन् ! सिद्धि पूजा, दीघ अवधि का नहीं, भावना का परिणाम है। तुम जो पूजा-साधना करते हो उसमें अहं की भावना होती है, जबकि राजमहिषी समर्पण के भाव से अर्चना करती है। जिसने अपने को ईश्वर के प्रति पूर्णतया समर्पित कर दिया उसके पास 'अहं' कहाँ बचा ? और जहाँ अहं मिट जाता है, वहाँ ईश्वर के अतिरिक्त और कोई नहीं रह जाता।"

इन वचनों ने अम्बरीष की साधना का सही और नया मार्ग प्रकाशित किया।

स्वर्ग और नरक

एक बार नरक लोक के अधिपति से स्वर्ग लोक के अधिपति की भेंट हुई। दोनों में बहुत देर तक विभिन्न विषयों पर वार्तालाप होता रहा। अन्त में नरक के अधिपति ने अपने कष्ट का रोना रोते हुये कहा—"भगवन् ! क्या कहूँ, मेरे नरक में तो रोज भीड़ की भीड़ आती है। बड़े-बड़े पातकी आते हैं, उन्हें ऐसे-ऐसे निर्दयतापूर्ण कठोर दण्ड देने पड़ते हैं कि मेरा भी कलेजा काँपने लगता है। वे पापी लोग भूलोक की तरह यहाँ नरक में आकर भी उपद्रव करते हैं और उनकी व्यवस्था करने में मुझे बड़ी माथा-पच्ची करनी पड़ती है। इसी रगड़े-झगड़े में क्षण भर की फुरसत नहीं मिलती। हर घड़ी जी जला करता है।"

स्वर्ग के अधिपति ने सहानुभूति प्रदर्शित की और अपना अनुभव बताया कि भाई, हमारे यहाँ तो ऐसा बखेड़ा नहीं है। एक तो वैसे ही थोड़े मनुष्य आते हैं, जो आते हैं, वे ऐसे सभ्य और सद्गुणी होते हैं कि सब व्यवस्था अपने आप चलती रहती है। हमें कुछ खटपट नहीं करनी पड़ती। आनन्द से दिन व्यतीत करते हैं।

वार्तालाप के पश्चात् दोनों अपने-अपने स्थानों को चले गये। नरक के अधिपति के मन में यह बात तीर की तरह चुभी कि मैं इतना परिश्रम करता हूँ और स्वर्ग पति आराम से दिन बिताता है। इसके लिये कोई उपाय ढूँढना चाहिये कि मैं भी इसी प्रकार सुखपूर्वक दिन व्यतीत करूँ। इस ढूँढ़-खोज में बहुत दिन व्यतीत हो गये। एक दिन नारदजी उधर आ निकले, उन्होंने नरकाधिपति को चिन्ताग्रस्त देखकर इसका कारण पूछा तो उन्होंने अपने मन की सारी बात कह दी कि महाराज ! नरक की भीड़ कम हो तो मुझे चैन मिले।

नारदजी को उनके दुःख पर दया आई और कहा—"इतनी-सी बात के लिये दुःखी होने की क्या आवश्यकता है ? मैं एक बहुत ही सरल उपाय बताता हूँ, जिससे बात की बात में आपका कष्ट मिट जायेगा। नरक के सब निवासियों से कहिये कि वे ऊँचे स्वर से हरि-कीर्तन करें। बस, वे सब जरा-सी देर में स्वर्ग चले जायेंगे और आपका नरक खाली हो जायेगा।" यमराज ने नारद को यह उपाय बताने के लिये बहुत धन्यवाद दिया और उसी दिन सारे नरकवासियों को वह मन्त्र बता दिया। अब तो उच्च स्वर से हरि-कीर्तन होने लगा और स्वर्ग से विमान आ-आकर उन्हें बैकुण्ठ लोक को ले जाने लगे। संध्या होते-होते सारा नरक खाली हो गया। केवल एक व्यक्ति रह गया जो उस कीर्तन में शामिल नहीं हुआ था। यमराज की मनोवांछा पूरी हुई और वे उस एक बन्दी को अपने पास रखकर आनन्द करने लगे।

जब नरक के सारी बन्दी स्वर्ग में पहुँचे तो वहाँ भारी भीड़ लग गई, नारकीय व्यक्ति अपने दुर्गुणों के कारण नन्दन वन को भी नरक बनाने लगे। लड़ाई-झगड़ा, क्लेश और कलह, उत्पात, अनाचार के दृश्य दिखाई देने लगे। सुरपुर में कोलाहल मच गया। इस उपद्रवी भीड़ को सँभालने के लिये देवता लोग बड़ा प्रयत्न कर रहे थे, फिर भी उन्हें सफलता प्राप्त न होती थी। एक को समझाते थे, तो दूसरा उत्पात मचाता था। जिस प्रकार पहले यमराज दुःखी थे, उसी प्रकार अब धर्मराज की बेचैनी बढ़ गई। स्वर्ग-नरक के रूप में परिणत हो गया, क्योंकि सुरपुर स्थान को नहीं, वरन् सुसंस्कृत व्यक्तियों की निवास भूमि को स्वर्ग कहा जाता है।

आखिर वह अव्यवस्था कब तक चलती ? उसका उपाय करना ही पड़ा। जैसे जापान के सम्राट ने पिछले दिनों सिंगापुर का नाम अपने अधिकार बल से 'सोनन' रख दिया था, वैसे ही हिज एक्सीलेन्सी इन्द्र महाराज ने एक आर्डीनेन्स निकालकर घोषित कर दिया कि आज से यह स्वर्ग नरक कहलायेगा और नरक का नाम स्वर्ग होगा। वर्तमान स्वर्ग के मूल निवासियों को यहाँ से स्थानान्तरित किया जाता है। इस प्रकार नारकीय व्यक्ति नरक में ही रहे और स्वर्गीय आत्माएँ स्वर्ग में पहुँचाई गईं।

दुःख-सुख तथा नियम सब को सहन करने पड़ते हैं पर जो उच्च आचरण वाला है, उसके लिये नरक भी स्वर्ग है और जो पतित स्वभाव के हैं, वे स्वर्ग को भी नरक बना लेते हैं।

ध्रुव-संकल्प

सिर झुकाये अपनी भावना में मग्न वह चला जा रहा था। यदा-कदा उसकी आँखें सामने के अगणित-अद्भुत दृश्यों पर प्रकाश बिखेर देतीं। कितने ही प्रांत शस्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

श्यामल, कितने ही खेत, कितने ही वैभवशाली प्रसिद्ध नगर कितनी ही वरसि विक्षुब्ध नदियाँ, न जाने कितने विशाल सरोवर छूट गये। बालक के चित्त को ये सब अपनी सुहावनी सृष्टि की ओर न आकर्षित कर पाये। प्रभात की हिरण्य किरणों की चपल बाल-लीला, दोपहर की उग्रमूर्ति की कराल तपन, अस्तगामी सूर्य का अन्तिम अभिवादन सब चुक गया, पर उसकी वृत्ति ज्यों की त्यों सुमेरु की तरह अटल, समुद्र-सी गम्भीर, अमावस की महानिशा-सी गहन और धरित्री सी धीर बनी रही। लगन में कोई बाधा उसे पराजित न कर सकी। लक्ष्य में कोई प्रलोभन उसे च्युत नहीं कर पाया।

ध्येय की ओर अग्रसर उसकी दुर्वार गति सभी को पीछे छोड़ती जा रही थी। स्नेह की मूर्ति माता, साथ खेलने वाले मुनियों के बालक, प्रकृति की अनोखी मुसकान पर इतराती हुई हरी-भरी, कितने ही प्रकार के सुरभित-कुसुमों से लहलहाती लताओं और कोमल पल्लवों वाली अरण्यभूमि—जहाँ उसका जन्म हुआ था, प्रभात की किरणों से नहाई हुई, सर्वस्व समर्पित करने के लिये पुष्पाञ्जलि लेकर परमात्मा को रोज अर्घ्य देने वाली वह विभूति पीछे पड़ी रह गई। उस ओर से उसके हृदय में तीव्र वैराग्य उमड़ा था। वह उससे भी बढ़कर एक-दूसरे सत्य की खोज हेतु व्याकुल हो उठा था। ऐसा सत्य जो क्षण-क्षण बदलने वाली ससीम प्रकृति से परे निस्सीम और शाश्वत था। आज अपनी लघु सीमा में जकड़कर संसार के सामने एक बहुत बड़े रहस्य पर पर्दा नहीं पड़े रहने देना चाहता था। उसकी चाहत है चिरकाल के लिये दुःख, अपमान, निरादर, असन्तोष की राक्षसी वृत्ति और निर्मम क्रूरता के दौर, निर्दयता से बचने का उपाय मानव को मालूम हो जाय।

जंगल की टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों पर बढ़ रहे उसके कदम अनायास थम गये। पाँवों के रुकने का कारण यह वाणी थी, जो उसके कानों में पड़ी—"बेटा तू कौन है ? कहाँ जा रहा है ?" उसने अपनी नजर उठाई माथे पर बिखरी अलकें, स्वेद बिन्दुओं के कारण इधर-उधर चिपक गई थीं। दिखाई पड़ा बगल के एक विशाल वृक्ष के पीछे से कुछ ऋषि निकलते चले आ रहे हैं। ऋषियों की आँखों में दया और आश्चर्य के भावों का मिश्रण घनीभूत था। बालक ने गणना की—एक-दो-तीन-चार-पाँच-छः-सात यानि सप्तऋषि। ऋषि आश्रमों के बीच पला-बढ़ा वह इनसे सर्वथा अपरिचित नहीं था। प्रत्यक्ष में न सही परोक्ष परिचय तो था ही। ऋषिगण भी उसकी मनोहर शांत मूर्ति की ओर आकर्षित हुये। उसमें ऐसा ही अपनत्व था। ऋषियों का सत्वगुण उसके महासत्व की ओर आप ही आप खिंच गया। तभी तो उनका मौन ध्यान ईश्वर से हटकर इस बालक की ओर आ मिला। संसार को भूले हुये इन ऋषियों ने संसार की एक अनमोल रचना देखी।

एकटक उसे निहार रहे इन ऋषियों को उसने भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। बारी-बारी से सभी ने उसके सिर पर अपना हाथ फिराया। आशीर्वचनों से भरे अनेकों शब्द-घट उस पर उड़ल पड़े। "भगवन् ! मैं महाराज उत्तानपाद का पुत्र हूँ। मेरा नाम ध्रुव है।" वह अपना परिचय बता रहा था। "मेरी माता को, विमाता के आने पर पिता ने निर्वासित कर दिया। वहीं अरण्य में मेरी उत्पत्ति हुई। ऋषियों की कृपा से उन्हीं के सान्निध्य में मेरा पालन हुआ। एक दिन मैं पिता के यहाँ साथी ऋषिकुमारों के साथ पहुँच गया। उन्होंने मुझे अपनी गोद में बिठा लिया। यह देखकर विमाता ने मेरी बाँह पकड़ी और घसीटकर गोद से नीचे उतार दिया।"

"साधारण-सी इस घटना ने मेरे भीतर कुछ असाधारण घटा दिया। अनेकों सवाल मेरे मन पर विद्युत रेखाओं की तरह चमक उठे। क्यों मनुष्यों को इतना लांछित होना पड़ता है ? भेदभाव की कुटिल धार से कटा इन्सान ईर्ष्या के तुषानल में कब तक सुलगता रहेगा ? न जाने ऐसे कितने ही और सवाल जिनका जवाब मुझे समझ में नहीं आया। मैंने अपनी माता से पूछे तो उन्होंने बताया जब तक मनुष्य में देवत्व का उदय नहीं होता धरती इसी तरह बनी रहेगी और धरती का स्वर्ग बनना तब तक संभव नहीं जब तक भगवत् चेतना का अवतरण नहीं होता। व्यक्ति विशेष पर नहीं समूची मानव जाति पर। कैसे होगा यह अवतरण ? माँ से मेरा अगला सवाल था। बेटा ! इसके लिये पुकार चाहिये सच्ची अभीप्सा। समूची सत्ता को आकुल होकर उन परमदेव को पुकारना पड़ेगा। पुकारने वाले में ऐसी आकुलता हो कि समूची सृष्टि आकुल हो उठे।"

'मैं पुकारूँगा, आह्वान करूँगा—उस परम चेतना का। मैंने अपनी माँ को वचन दिया। माँ ने एक बार मेरी ओर संदिग्ध दृष्टि से देखते हुये कहा—वत्स ! बात अकेले की नहीं समूची वसुधा की है। इसके लिये ऐसा व्यक्ति चाहिये जिसके मन में व्यक्तिगत स्वर्ग-मोक्ष, सिद्धि, चमत्कार की कोई कामना न हो। जो धरती का प्रतिनिधित्व कर सके। युगों से धरती अपने इस लाल को तलाश रही है। सच माँ—तेरे चरणों की सौगन्ध, मैं बनूँगा धरती माता का लाल और मैं चल पड़ा हूँ—माँ का आशीर्वाद मेरे साथ है। चलते समय उसने कहा था—बेटा अपने निश्चय पर अटल रहना, इस कदर दृढ़ कि तेरा नाम दृढ़ और अटल होने का पर्याय बने।"

इतना कहकर वह चुप हो गया। आँखें नीचे कर लीं। सातों ऋषि एक-दूसरे की ओर देखकर मुसकराये और कहा—"पुत्र ! तुमसे संसार को परम लाभ होगा। तुम पहले व्यक्ति हो जिसने समस्त पार्थिव चेतना में परम ज्योति के अवतरण का संकल्प लिया है। इस अविनश्वर आदर्श की स्थापना करो। प्रभु तुम्हें अपना यन्त्र बनाकर धरती पर स्वर्ग राज्य लाना चाहते हैं। हमें दृढ़ विश्वास है, तुम भी दृढ़ रहो—तुम्हारा निश्चय सफल हो।"

आशीर्वाद देकर ऋषिगण एक ओर चले गये। वह अपने अन्तराल में दुर्बलता पर विजय पाने वाली एक अज्ञात शक्ति अनुभव कर रहा था। चलते-चलते परम रमणीय प्राकृतिक दृश्य के एक अपूर्व वन में पहुँच गये। चारों ओर से स्वर्गीय स्वप्न की मनमोहिनी माया में चिरकाल के लिये जीवों को लुभा रखने की शक्ति उस वन के पल्लव पर क्रीड़ा कर रही थी। उसको यह स्थान बड़ा हृदयग्राही लगा। इधर-उधर छोटी-छोटी पहाड़ियाँ, वनदेवी की शोभा का गौरव किरीट धारण किये थीं। छोटे-छोटे झरने हृदय के आनंदोच्छ्वास हो रहे थे। चिड़ियों की चहक आनन्द की स्वागत रागिनी थी। इस सजीवता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

को ध्रुव आँखें खोले बड़ी तृप्ति के साथ निहारते रहे। दिन भर की थकावट क्षणभर की शक्ति से जाती रही। निराशा की अलस अँगड़ाइयाँ सकुचाकर कहीं दूर जा दुबकीं। बाह्य सजीवता ने अन्तर्मन को जीवन्त कर दिया। वह एक छोटी-सी चिकनी शिला पर बैठकर स्वयं के भविष्य को कल्पना के सहारे देखने लगे।

दिन भर हारे-थके सूर्य अस्ताचल की ओर धीरे-धीरे प्रस्थान कर रहे थे। कनक किरणों के साथ प्राणियों की जाग्रति भी संसार की गोद से विलुप्त होती जा रही थी। थके-माँदे लोगों के शरीर निद्रा में प्रवेश करते जा रहे थे।

दिवस का अवसान हो गया। किरणों का राज्य उठ गया। सारी सृष्टि शिथिलता के जादू से मोहित हो गई। पर ध्रुव उसी वन में चुपचाप भविष्य की चिन्ता में डूबे विचार करने में लगे थे। उनके भविष्य में सृष्टि का भविष्य था। आखिर वह उससे एक जो थे। इतनी दूर तो वे चले आये, पर अब क्या करें ? चारों ओर से न जाने कितनी दूर मार्गों का प्रसार बढ़ता ही चला गया है ? क्या वे चिरकाल तक मार्ग पाकर अपने उद्देश्य की सिद्धि तक पहुँच सकेंगे ? अन्तरात्मा इससे इनकार कर रही थी। पर और कोई उपाय भी नहीं। कहाँ जायें ? किस तरह पुकारें ?

सोचते-सोचते हृदय की विकलता सीमा को पार कर गई। क्षण भर के लिये एक दुर्बलता सामने आ खड़ी हुई। साहस का बाँध चटकने लगा। आँखों पर निराशा की घटा घहरा उठी। शिथिलता की बूँदों से उनका सर्वांग नहा उठा। हाथ उठाने की ताकत भी जाती रही। थोड़ी देर मूर्छित पड़े रहे वह। दस साल का बालक अपना प्रण, अपना अपमान, अपना संकल्प स्नेह की मूर्ति अपनी माँ को भी भूल गया। मूर्छा के अंधकार ने पहर भर तक देह दशा की सुध न रहने दी।

एक जन्तु जंगल में चारों ओर चक्कर लगा रहे थे। यहाँ उनका निष्कंटक राज्य जो ठहरा। अपने शिकार की तलाश में फेरी लगाते हुये मूर्छित बालक के पास भी आये तो, पर सूँघकर लौट गये। इन हिंसकों की हिंसावृत्ति को बालक के अन्दर अपना विरोधी भाव न मिला।

कुछ पल बाद ध्रुव ने आँखें खोलीं। देखा चारों ओर सन्नाटा था। पेड़ों के पत्ते भी नहीं हिलते थे। जमीन और आसमान दोनों अंधेरे की काली चादर में अपने को लपेटे थे। तभी उन्हें याद आयी माँ की आज्ञा, उसे दिया गया अपना आश्वासन। याद आये ऋषियों के आशीर्वचन। हृदय एक बार फिर जोश की तरंगों की गर्जना से भर उठा। फिर निश्चय हुआ कि जीवन में मृत्यु का सामना एक बार ही तो करना है, तब क्यों न मैं अपने महान् संकल्प को सामने रखकर मौत के लिये तैयार रहूँ। विकल जीवन से मौत कहीं अधिक गौरवप्रद है।

इसी सोच-विचार में रात्रि पार हो गई। जागरण से तप्त चुम्बन स्वरूप सूर्य भी धीरे-धीरे आ विराजे। प्रभाती की स्वर हिलोर फिर धरती के एक छोर से दूसरे छोर तक धावा मारने लगी। ध्रुव का मन इस दृश्य से विरक्त था। मानो उनकी प्रबल अभीप्सा शरीर छोड़कर अपने लक्ष्य में जा मिलना चाहती हो।

अभीप्सा की तीव्रता ने गुरु को आकर्षित किया। गुरु रूपी दर्पण ही तो परमात्मा को प्रतिबिंबित करता है। गुरु और परमात्मा अभेद हैं सर्वथा अद्वय। शास्त्रों के इस कथन के अनुरूप जैसे-जैसे उनकी विकलता बढ़ती जा रही थी, त्यों-त्यों गुरु निकटस्थ होते जा रहे थे। यथासमय वे सामने आकर खड़े हो गये। पूछा पुत्र तू कौन है ? इस बीहड़ आरण्य में तू क्यों आया ?

रात भर की चिन्ता ने उन्हें अवसन्न कर दिया था। पलकें झपकते हुये सामने खड़ी तेजोमूर्ति को प्रणाम करते हुये बोले—"मेरा नाम ध्रुव है। धरती पर परमात्मचेतना का अवतरण, यही है मेरा उद्देश्य।" अधिक कुछ बता सकने जैसी स्थिति उस समय नहीं थी। दस साल के बालक का इतना महान् संकल्प। सुन रहे देवर्षि नारद आश्चर्य से भर गये। मन ही मन इसकी प्रशंसा कर वाणी से परीक्षा लेने के स्वरों में बोले—"बेटा ! तुम अभी बालक हो। तुम्हारा स्थान अभी माँ की गोद है—पिता का सुवास है, हिंस्र जन्तुओं से भरा अरण्य नहीं। किसी कारण यदि घर से रूठ भागे हो, तो मेरे साथ लौट चलो। मैं तुम्हारे माता-पिता को समझा दूँगा। तुमको किसी ने बहका दिया है। तुम जिस संकल्प की बात कर रहे हो वैसा संकल्प त्रैलोक्य में किसी ने नहीं लिया, शायद कोई पूरा कर भी नहीं सकता।"

"तो आप मुझे डराने आये हैं। ध्रुव की आँखें एक तीव्र ज्योति से चमक उठीं। मैं बालक हूँ ठीक है। इसका मतलब यह तो नहीं कि बालक होना कोई अपराध है और मात्र इसके कारण उसे धरती के कष्ट निवारण का कोई अधिकार नहीं। आप यहाँ से पधारें, मुझे किसी भी कीमत पर वापस नहीं लौटना। मेरे जीवन का मूल्य संकल्प है और संकल्प का मूल्य जीवन।"

प्रबल संकल्प निष्ठा और तीव्रतर अभीप्सा को देख नारद की करुणा पिघल उठी। उन्होंने अपने शिष्य को पहचाना। उसके महान भविष्य को याद करके उनके हृदय में आनन्द की लहरें उठने लगीं। ध्रुव की ओर स्नेह भरी दृष्टि फेरते हुये कहा—"पुत्र ! बालक होना अपराध नहीं सौभाग्य है।" ध्रुव ने अपनी कोमल बाँहों से देवर्षि के पैर पकड़ लिये। साथ ही बड़ी देर से रुके वेदना के आँसू झरने की तरह बह-बह कर नारद के पैरों की धूल धोने लगे। उठो ध्रुव ! देवर्षि उसे स्नेहपूर्वक उठाते हुये बोले धरती पर स्वर्ग के अवतरण का महान् कार्य बालकों द्वारा ही संभव है। उनका निश्छल और निर्मल अन्तःकरण जितना शीघ्र परम ज्योति से ज्योतित हो सकता है, उतनी शीघ्रता प्रौढ़ पुरुषों के लिये संभव कहाँ ?

आकार पाकर पक चुके बर्तनों को नवयुग के अनुरूप स्वयं को ढालने के लिये पहले स्वयं धूलकण बनना पड़ेगा। तभी इन कणों को बटोरकर नया रूप दिया जा सकना संभव है। जो स्वयं की प्रौढ़ता का गर्व करते, परिपक्वता के अहं में फूले नहीं समाते उनका यही हाल है। बच्चे तो सनी सनाई कच्ची मिट्टी के लोंदे हैं, जिन्हें अपनाकर परमात्मचेतना अनेकों दीपक गढ़ लेगी। उसकी चेतना से ज्योतित ये दीपक सम्पूर्ण सृष्टि को प्रकाश से भर देंगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org

www.vicharkrantibooks.org

नारद के लम्बे कथन को बालक ध्रुव मनोयोगपूर्वक सुनता रहा। आज उसे पहली बार बालक होने के महत्त्व का पता चला। साधना की प्रक्रिया समझाते हुये वह बोले—"सावधान ध्रुव ! माया के अनेकों प्रलोभन तुम्हारे सामने आवेंगे। स्वीकार न कर बैठना उन्हें। तुम्हारे महान् संकल्प के आगे ब्रह्मा का पद भी तुच्छ है। मैं सब समय साथ रहूँगा। हृदय से आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारा संकल्प पूर्ण हो।"

ध्रुव के भूमिष्ठ हो प्रणाम करते ही नारद का ज्योति शरीर आकाश में ऊपर उठने लगा। ध्रुव उस क्षीण होती जा रही प्रकाश रेखा को हाथ जोड़े एकटक देख रहे थे। रेखा ने बिन्दु का रूप लिया अन्त में बिन्दु विराट में विलोप हो गया।

अब दिन-पर-दिन उनकी साधना उच्च से उच्चतर सोपानों को पार करने लगी। क्रमशः वह उस अवस्था में जा पहुँचे जिसमें ईश्वर का नाम उनके रोम-रोम में व्याप्त हो गया।

साधना के प्रभाव से मुखमण्डल पर स्वर्गीय ज्योति आ विराजी। वह पहला शरीर ही बदल गया। सिद्धि के लक्षण धीरे-धीरे प्रकट होने लगे। जब-जब निराशा अपना प्रभाव दिखाती, गुरु की शक्ति, उसे भगाकर मन को तत्काल ईश्वराभिमुख कर देती। यहाँ तक कि शरीर का भान भी जाने लगा। भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी आदि शरीर पर प्रभाव डालने वाले विषय छूटते गये। कहीं सप्ताह-दो सप्ताह में यमुना का जल और पेड़ों से पककर गिर गये पत्तों को खाकर तृप्त हो लेते।

क्रमशः तपस्या के पीछे भूख और प्यास भी हट गई। उनकी पुकार में तीव्रता और तल्लीनता बढ़ती गई। तैल धारावत् ध्यान अबाध और अविराम था। सिद्धियाँ और शक्तियाँ आकर एक कोने में पड़ी रहीं। उनकी ओर देखने की फुरसत किसे थी ? यही हाल प्राण मन की अधिष्ठात्री शक्तियों द्वारा उपस्थित की गई विघ्न-बाधाओं का था। लोक-लोकान्तर के वैभव व्यर्थ होते गये। आरोहण का ऊर्ध्वमुखी वेग निरन्तर वृद्धि पाता जा रहा था।

एक दिन परम लोक के अधीश्वर वरबस हिल उठे। इधर ध्रुव का हृदय अज्ञात प्रसन्नता से भरा था। प्राणों को समर्पण करने की भावना ज्यों-ज्यों बढ़ रही थी, त्यों-त्यों एक अद्भुत आनन्द हृदय को व्याकुल करता जा रहा था।

एकाएक परावाणी गूँजी—"ध्रुव ! तुम्हारा तप पूर्ण हुआ। तुम्हें क्या चाहिये ?" उसने आँखें खोलीं देखा, बाहर भगवत् चेतना, शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी भगवान विष्णु के रूप में खड़ी है। हाथ जोड़कर स्तुति करते हुये बोले—"प्रभु ! इस जन का संकल्प आपको अविदित नहीं है। मैं नहीं समूची पार्थिव चेतना—अखिल सृष्टि आप सर्व समर्थ से एकाकार होने के लिये आतुर है। समूची मानव ज्योति को केन्द्र बनाकर आप धरती पर अवतरित हों। भारत की पुण्य भूमि अनेकों ध्रुव सृजित करती रहे।"

"एवमस्तु।" एक अपूर्व मधुर स्वर गूँजा। जो निश्चित ही इस सृष्टि की शब्द सामर्थ्य से परे थे। अभी भी चेतना की किन्हीं गहराइयों में वाक्देवी संगीत की स्वर लहरियों में प्रकट हो रहीं थी। जब-जब ध्रुव जैसी किसी बाल मन की निर्मलता से पुकार की निश्छल तरंग उभरेगी मैं वहाँ अपने को प्रकट करूँगा।

उपगुप्त का आत्मदान

"लोक की मुझे कोई चिन्ता नहीं तात् ! अपना बाल्यकाल मैंने ज्ञानार्जन में बिताया, शील-सौजन्य खोया नहीं फलतः जो इन्द्रियाँ स्वेच्छाचारिणी होकर व्यक्ति को पतन की ओर खींच ले जाती हैं, वह मेरी सहयोगिनी बनीं, मैं उनका स्वामी बना। मेरी आध्यात्मिक उपलब्धियाँ, मेरा समर्थ जीवन और इस अवस्था तक सरस, सफल, स्निग्ध जीवन इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। फिर मुझे अपने लोक की चिन्ता क्यों होने लगी।" आचार्य शाणवास ने यह कहते-कहते पुनः एक दीर्घ निःश्वास छोड़ी और अन्तरिक्ष की गहराइयों में अपनी दृष्टि जमाकर पुनः कुछ सोचने लगे। गृहस्थ मैंने योग साधना की भाँति बिताया। बात उस समय की है जब उपगुप्त स्नातक थे। उनकी सम्पन्नता से अधिक उनके सौन्दर्य की घर-घर चर्चा हुआ करती, राजकुमारियाँ तक उपगुप्त को वरण करने का स्वप्न देखा करती थीं।

उपगुप्त ने आचार्य का शीश उठाया उन्हें ओषधिपान कराते हुये कहा—"भगवन् तब फिर क्या आप परलोक की बात सोच रहे हैं ? आपका जीवन-क्रम इतना भव्य रहा है कि परलोक के लिये चिन्ता का कोई प्रश्न ही नहीं उठता ?"

"हाँ वत्स !" आचार्य शाणवास ने उत्तर दिया—"मैंने जीवन में किसी का जी नहीं दुखाया, प्रतारणा का भाव भी कभी मेरे समीप नहीं आया। अपने तप-साधन द्वारा अर्जित ज्ञान और शक्ति का एक-एक कण मैंने दीन-दुःखी आत्माओं के उत्थान में लगा दिया। परमात्मा न केवल वाणी में वरन् मेरे रोम-रोम में व्याप्त है, तब फिर मैं परलोक के प्रति अनाश्वस्त होऊँ, यह कैसे हो सकता है ?"

"योग्य समझें तो अपनी व्यथा को यहीं कहते हुये जायें देव ! हम अकिंचन आपकी कोई भी इच्छा पूर्ण कर सकें तो यह हमारे लिये सौभाग्य की तो बात होगी ही हमारा जीवन भी धन्य हो जायेगा ?"

इतना कहकर उपगुप्त उनके समीप ही आसन पर बैठकर आदेश की प्रतीक्षा करने लगे। सैकड़ों नेत्र निर्निमेष आचार्यश्री के प्रभामय मुखमण्डल की ओर देख रहे थे। आचार्यश्री शाणवास अभी भी उसी चिन्तन मुद्रा में थे। शिष्यों की जिज्ञासाओं को अधीर होते हुये देख शाणवास किंचित मुस्कराये, मानो ढलता हुआ सूर्य अब भी अपनी प्रखरता सिद्ध करना चाहता हो।

दृष्टि से एक क्षण करुणा के साथ आशा का समन्वय परिलक्षित प्रतीत हुआ। शाणावास ने अर्धमीलित दृष्टि को पूरा खोल दिया—शिष्य समुदाय कुछ और आगे बढ़ आया। अब महर्षि कहने लगे—"अबुस ! मेरे जीवन की साधना अब अपने प्रभाव में आ रही है। जनमानस को मैं जिस दिशा में ढालना चाहता था, धर्मतन्त्र को जो तेजस्वी और प्रभावशाली स्वरूप देना चाहता था, वह परिस्थितियाँ अब उभरकर आईं। जब मुझे अपने शरीर का त्याग करना पड़ रहा है। मृत्यु से प्यार करने वाले तुम्हारे वृद्ध आचार्य के मन में कुछ भी दुःख और क्षोभ नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किन्तु मानवता का भविष्य मुझे पीड़ित कर रहा है। एक ही आशंका है कि धर्मतन्त्र कहीं अपने प्रौढ़ काल में नष्ट या पथभ्रष्ट तो नहीं हो जायेगा।"

शिष्यगण चुप हो गये। किसी से कुछ कहते नहीं बन पड़ रहा था। अब आचार्यश्री अपना उत्तर चाहते थे और शिष्यगण अपना बचाव। तभी उपगुप्त खड़े हुये और बोले—"गुरुदेव ! आपकी अन्तर्वेदना व्यर्थ नहीं जायेगी मैं विश्वास दिलाता हूँ कि सांसारिक सुख और आकर्षणों से अप्रभावित रहकर आजीवन अविवाहित रहकर लोकमंगल के कार्य में ही रत रहूँगा। धार्मिक पुनर्प्रतिष्ठा ही आज से मेरा जीवन लक्ष्य होगी ?"

शाणवास की आँखें चमक उठीं। आश्वस्त आचार्य ने धीरे-धीरे—सदैव के लिये आँखें मूँद लीं। उनके मुखमण्डल पर चिन्ता, उद्विग्नता नहीं, सन्तोष प्रतिभासित हो रहा था कि मेरे पीछे आर्य परम्परा का निर्वाह यथावत् चलता रहेगा।

भाव के भूखे हैं भगवान

'प्रिये ! आज चौथा दिन है, किन्तु मैं कविता की एक पंक्ति के अन्तिम चरण को पूरा कर नहीं पा रहा हूँ। मेरे चिन्तन को हो क्या गया है ? मेरी कल्पना अवरुद्ध क्यों हो गई है ? विचारणा में वह प्रवाह क्यों नहीं आ पा रहा है, जो कुछ दिन पूर्व था ? बड़ी अजीब बात है ! अन्तिम पद को मैं बिल्कुल सोच ही नहीं पा रहा हूँ। इसीलिये "गीत गोविन्द" की समाप्ति में विलम्ब हो रहा है और यही सोच-सोच कर मैं परेशान हो रहा हूँ।"

"इसमें परेशान होने की क्या बात है आर्य !" पत्नी पद्मावती का सम्बोधन था—"आप अपने कृष्ण कन्हैया से क्यों नहीं कहते, वह तो पूरा करा ही देंगे। उनके लिये तो यह बायें हाथ का खेल है। आप ही ने तो कल एक पंक्ति सुनायी थी। वह पंक्ति..... हाँ, याद आ गई 'सुकरं ते किमित्परि', अर्थात् 'उसके लिये' तो सब कुछ संभव है, दुष्कर नाम की चीज तो उसके कोश में है ही नहीं। तनिक मुसकराते हुये पद्मावती ने कहा।

"तुम भी खूब ठिठोली कर लेती हो !"

"ठिठोली नहीं देव ! मैं तो सिर्फ यह बताना चाहती थी कि आज आप ऐसे चिन्तन में निमग्न हो गये हैं कि सुध-बुध ही खो बैठे।"

"सुध खो बैठा" —आश्चर्य प्रकट करते हुये जयदेव बोले, "तुम कहना क्या चाहती हो देवि !"

"तनिक पूर्व दिशा की ओर आँखें उठाकर तो देखिये। अभी पता चल जायेगा।"

"ओह ! सचमुच आज मुझे होश न रहा। भुवन-भास्कर इतने ऊपर चढ़ आये और पता तक न चला। अच्छा किया बता दिया, अन्यथा आज मेरे गोविन्द को देर तक भूखा रहना पड़ता।"

"पद्मे !" "हाँ, देव !"

"तनिक मेरी धोती-अंगोछा दे देना। मैं जल्दी से गंगा स्नान कर आऊँ, फिर गोविन्द के वन्दन-अभिवन्दन व भोग लगाकर भोजन विश्राम के पश्चात् उस श्लोक पर पुनः चिन्तन करूँगा।"

"हो सके तो तुम भी सोचना, ताकि मुझे कुछ सहायता मिल सके।" श्लोक का प्रथम चरण है—

'स्मरगरल खण्डनं मम शिरसि मण्डनम्'

इतना कहकर जयदेव तेजी से गंगा नदी की ओर चल पड़े, किन्तु अभी कुछ ही क्षण बीते होंगे कि वह पुनः लौट आये।

"पद्मे ! पद्मे !!" —तेज आवाज लगायी।

"आयी देव !" प्रत्युत्तर में मढ़ैया के अन्दर से स्वर उभरा।

"यह क्या !" विस्मय में भरकर भार्या ने कहा—"आप बिना स्नान किये लौट आये !"

"हाँ देवि !" रास्ते में ही श्लोक का अन्तिम चरण स्मरण हो आया, इसलिये कहीं भूल न जाऊँ यह सोचकर लौट आया थोड़ा 'गीत-गोविन्द' तो देना। उसे पूरा कर लूँ, फिर स्नान और पूजन-भजन के उपरान्त अपने आराध्य का भोग ग्रहण करूँ।

पद्मावती 'गीत-गोविन्द' उठा लायी, जिसे जयदेव ने इस प्रकार पूरा किया—

'देहि मे पदपल्लवमुदारम्'

फिर स्नान, भजन, पूजनादि से निवृत्त होकर भगवान का भोग ग्रहण किया और चारपाई पर विश्राम करने लगे। पद्मावती पत्तल में बचा भोजन ग्रहण करने लगी, तभी उसने आश्चर्य से देखा कि जयदेव गंगा-स्नान से लौट रहे हैं, उन्हें पत्नी के इस विचित्र आचरण पर बड़ा आश्चर्य है। आते ही वे बोले—"यह क्या पद्मे ! आज भगवान का भोग लगाये और हमें खिलाये बिना अन्न कैसे ग्रहण कर रही हो ?"

पत्नी को भी अचम्भा हुआ। सोचने लगी आखिर यह सब हो क्या रहा है ? कहीं मैं स्वप्न तो नहीं देख रही हूँ..... । इन्हीं चिन्तनों में खोयी वह पतिदेव की उपस्थिति से सर्वथा अनभिज्ञ हो गयीं। पति के प्रश्न का जवाब देने के बजाय उसकी संज्ञा-शून्य जैसी स्थिति बन गयी।

तभी "पद्मे ! पद्मे !!" कहकर जयदेव ने उसे झकझोरा। अब उसकी तन्द्रा टूटी।

उसने अचकचा कर कहा—"आर्य ! यह मैं क्या सुन रही हूँ ! आज आपको हो क्या गया है ! आश्चर्य में विनोद का पुट भरती हुई पद्मावती, बोली "कहीं ऐसा तो नहीं, भोजन स्वल्प लेने के कारण भूख आज जल्दी ही उद्दीप्त हो उठी हो और अपने इसी कारण ऐसा करने का उपक्रम किया हो। वैसे अभिनय सशक्त रहा, इसमें दो मत नहीं हैं।"

"यह क्या कह रही हो तुम ?" विस्फारित नेत्रों से पद्मे को देखते हुये जयदेव बोले।

"हाँ ठीक ही तो कह रही हूँ।" पद्मा के 'सस्मित वदन' में आँखें कुछ विनोदपूर्ण मुद्रा में अठखेलियाँ कर रही थीं।

जयदेव तनिक गम्भीर होते हुये बोले—"मैं तो अभी-अभी गंगा-स्नान कर आ ही रहा हूँ और तुम बोल रही हो कि मैंने भजन, पूजन और भोजन भी कर लिया। लगता है तुम आज गोविन्द के भाव में कुछ अधिक ही बह गई हो।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अब पद्मावती की आँखें खुलीं। उसने हास-परिहास की मानसिकता त्याग विस्मय में पड़कर कहा—"तो क्या देव ! सब कुछ सच कह रहे हैं !"

"हाँ !" उत्तर मिला।

'किन्तु गंगा-स्नान के लिये निकलने के कुछ ही क्षण, बाद लौटकर आपने तो कहा था कि आपको 'गीत-गोविन्द' की अन्तिम पंक्ति याद आ गई, इसलिये रास्ते से ही लौट आये एवं मैंने आपको गीत-गोविन्द लाकर दिया और आपने उसे पूरा कर डाला। फिर स्नानादि कर भोग ग्रहण किया और कक्ष में जाकर विश्राम करने हेतु चारपाई पर लेट गये।"

जयदेव यह सब सुनकर सकते में आ गये। कुछ क्षण खड़े-खड़े यत्किंचित सोचते रहे, फिर कुटिया के उस भाग में गये, जहाँ वे प्रायः विश्राम करते थे। चारपाई को टटोल-टटोल कर भली-भाँति देखा, वह खाली पड़ी हुई थी।

अब रहस्य उनकी समझ में आ गया कि आज अवश्य ही माधव की कृपा हुई है और उनके चरण-कमल मढ़ैया की धूल को पवित्र कर गये हैं, वे मुसकराते हुये पत्नी के पास आये और बोले, "अच्छा पद्मे ! थोड़ा गीत—गोविन्द तो लाना। देखूँ, अन्तिम चरण की पूर्ति कैसे हुई है ?"

पद्मावती ग्रन्थ ले आयी। जयदेव ने जब श्लोक का अन्तिम पद पढ़ा, तो उनकी प्रसन्नता का चूड़ान्त न रहा। प्रेमाश्रु झर-झर उनकी आँखों से झरने लगे। वे नाचते हुये प्रेम में उन्मत्त भार्या के पास पहुँचे और सब कुछ कह सुनाया। इतना सुनना था कि पद्मा के नेत्रों से भी अविरल प्रवाह बह निकला। दोनों भाव-विव्हल हो उठे। जयदेव माधव का बचा भोजन पत्तल से उठा-उठा कर प्रसाद मान खाने लगे। पत्नी ने लाख मना किया कि यह उसका उच्छिष्ट है, इसे न खायें, पर उसकी एक न सुनी और भाव के अतिरेक में पत्नी का जूठन और श्रीकृष्ण का प्रसाद वे ग्रहण करते चले गये। इस बीच दोनों की आँखें अजस्र रूप से बहती चली जा रही थीं।

जब प्रसाद समाप्त हुआ, तो दोनों ने प्रेमाश्रु से राधा-माधव की प्रतिमा को स्नान करा दिया। भाव जब कुछ कम हुआ तो दम्पत्ति द्वय पंच-प्रतिष्ठित मुद्रा में विग्रह के सामने न जाने कितनी देर तक सिर टिकाये पड़े रहे ?

जब शब्दों को अभिव्यंजना नहीं मिलती, तो वह प्रेमाश्रु बनकर बह निकलते और उसकी अभिव्यक्ति करते हैं। आज कवि जयदेव और उनकी पतिव्रता के साथ ऐसा ही कुछ घटित हुआ था।

शाम को जब उनकी मूर्च्छा टूटी, तो नीरवता को चीरते हुये दो वर्ण उभरे—

"तात् !" स्वर पद्मावती का था।

"हाँ भार्ये !" प्रत्युत्तर मिला।

"मेरे मन में एक जिज्ञासा उठ रही है। क्या आप उसका समाधान करेंगे ?"

"अवश्य" संक्षिप्त-सा उत्तर था।

पद्मावती ने शंका प्रकट की—

"इन दिनों लोग कहते सुने जाते हैं, कि उन्होंने कितनी ही मनौतियाँ मनायीं, रोये गिड़गिड़ाये, मनुहार किया, किन्तु भगवान के दर्शन-स्पर्शन की बात तो दूर, उनकी विपदा तक कम न हुई। आखिर यह विरोधाभास क्यों ?"

जयदेव तनिक हँसे, कहा, 'प्रिये ! भगवान सेवा कराने नहीं, करने आते हैं। जहाँ सेवा के हाथ और परोपकार के पैर ही उठने बन्द हो गये हों, जिनके हृदय की करुणा मरुस्थल की मृत्तिका की भाँति सूख गई हो, भला उन घरों में उनके चरण क्यों पड़ने लगे ? वह तो सच्चे भाव के भूखे हैं, आहार-मनुहार के नहीं। जहाँ यह सब तत्व इकट्ठे होंगे, वहाँ उनका अनुग्रह कदापि असंभव हो ही नहीं सकता।" पद्मावती का समाधान हो चुका था।

सरलता से सौभाग्य वृद्धि

प्राचीनकाल में 'नभग' नाम के एक ऋषि ग्राम के समीप जंगल में रहकर तपस्या करते थे। वे पहले एक राज्य के शासक थे, पर वृद्धावस्था में राज्य का भार दो बड़े पुत्रों को देकर भगवान का भजन करने को जनसमुदाय से दूर इस स्थान पर रहने लगे थे।

नभग का सबसे छोटा पुत्र 'नाभाग' उस समय गुरुकुल में विद्याध्ययन कर रहा था। जब वह पच्चीस वर्ष की आयु में शिक्षा समाप्त कर चुका तो पिता के दर्शनार्थ उनके आश्रम में पहुँचा। मुनिराज 'नभग' उसे देखकर बड़े प्रसन्न हुये और बोले—

"बेटा नाभाग तू गुरुकुल से आ गया ?"

"हाँ पिताजी, गुरुजी ने कहा कि शारदा माता की तेरे ऊपर पूर्ण कृपा हुई, अब तू सुखपूर्वक घर जा। इसलिये मैं उनका आशीर्वाद लेकर आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।"

"तू मार्ग में घर तो गया होगा ?"

"जी हाँ, वहीं पर मुझे यह समाचार मिला कि अब आप गंगाजी के किनारे रहकर एकान्त में तपस्या कर रहे हैं। इसलिये मैं घर से सीधा यहाँ चला आया।"

"तेरे भाइयों ने समस्त सम्पत्ति को बाँट लिया है, इसकी तुझे खबर पड़ी।"

"जी हाँ, भाइयों ने ही मुझे इस विषय में सब बात बतलाई।"

"तेरे हिस्से में भी कुछ आया कि नहीं ?"

"पिताजी, भाइयों की उदारता की मैं हृदय से सराहना करता हूँ। उनका उपकार मैं कभी नहीं भूल सकता। मैं सबसे छोटा हूँ इसलिये उन्होंने सम्पत्ति में से बहुत अधिक हिस्सा अलग कर दिया है।"

"क्या कहता है ? मुझे तो यहाँ खबर मिली थी कि तेरे लोभी भाइयों ने भीतर ही भीतर सब सम्पत्ति आपस में बाँट ली है और तेरे लिये एक नाम-मात्र का छोटा-सा हिस्सा अलग कर दिया है।"

"पिताजी ! यह बात ठीक नहीं। भाइयों ने मुझे खुशी से पर्याप्त भाग दे दिया है। मुझे तो ऐसा ही जान पड़ता है कि मेरा भाग सबसे बड़ा और कीमती है।"

राजा नभग की आँखों में प्रेमाश्रु छलक आये। उन्होंने बड़े स्नेह से पुत्र के सिर पर हाथ फेरते हुये कहा—"बेटा, तेरी बुद्धिमानी देखकर मुझे अपार सुख हुआ है। तेरा मन सरल और पवित्र है, इसलिये तुझे भाइयों का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कपट जान नहीं पड़ता, पर सत्य बात तो यही है कि तेरे अनीति पर चलने वाले लोभी भाइयों ने तेरे साथ ठगीपन की है पर तू इस बात की कुछ भी फिकर न कर। जब तुझे आवश्यकता होगी तो उससे कई गुना धन उसी समय ला दूँगा।"

पिता के चरणों में मस्तक नवाते हुये कुमार नाभाग ने कहा—"पिताजी ! आपकी सेवा करने से बढ़कर और कोई धन हो सकता है, इसकी मुझे तो खबर नहीं। आप मुझे अपनी सेवा में रहने दें इतना ही मैं माँगता हूँ। गुरु की कृपा से हृदय में विराजमान शारदा मैया मुझ से यही कहती हैं कि माता-पिता की सेवा करने का सौभाग्य जिसको मिलता है वही सबसे बड़ा धनवान है।"

"नाभाग !"

"जी, पिताजी !"

"बहुत समय से तू मेरी सेवा कर रहा है, जिससे मैं बड़ा प्रसन्न हुआ हूँ। पर अब मैं वृद्ध होता जाता हूँ और संसार के साथ सब संबंध मैंने त्याग दिये है। मुझे तो अब सदैव इसी स्थान में रहकर भगवान का भजन करते हुये जीवन व्यतीत करना है। इसीलिये तुझको अब मेरी आज्ञा है कि तू गृहस्थ आश्रम में प्रवेश कर।"

"पिता जी....."

'पिता की आज्ञा पुत्र को माननी चाहिये। इसी में उसका कल्याण है।"

"पर आपकी सेवा से मैं पृथक् किस तरह हो सकता हूँ ?"

"यह लाभ भी मिलता रहेगा।"

"तो आपके मन को जिस बात से सुख हो वह मुझे बतलाइये।"

"तू सुखी हो और तेरे हाथ से भगवान को प्रसन्न करने वाले अनेक परोपकार के कार्य होते रहें, ऐसी मेरी भावना है। इसके लिये तुझे संसारी बनना होगा और संसारी बनने के लिये धन का होना आवश्यक है।"

"मुझे इस संबंध में क्या करना है, पिताजी ?"

"मैं जो कहता हूँ वह ध्यान से सुन ! यहाँ से थोड़ी दूर पर वन के मध्य में मुनि-ऋषि बहुत बड़ा यज्ञ कर रहे हैं। उस स्थान में यज्ञ कराने वाले बहुत-से व्यक्ति इकट्ठे हैं, पर वे यज्ञ-विधि में कई जगह भूल कर जाते हैं और किसी-किसी समय उनसे बड़ी गड़बड़ी हो जाती है। ऐसा मेरे जानने में आया है। तू पंडित है, तेरा ज्ञान ताजा है, इसलिये अगर तू वहाँ जाकर, उनको ठीक-ठीक यज्ञ विधि समझाकर सबका ध्यान अपनी तरफ आकर्षित करेगा तो यज्ञ पूरा होने पर शेष बचा हुआ धन पंडित लोग तुझे अर्पण कर देंगे और उस धन के द्वारा तू अनेक धर्म-कार्य कर सकेगा।"

"कुमार नाभाग की सहायता से यज्ञ-कार्य विधिपूर्वक सम्पन्न हो गया। यज्ञ कराने वाले और वहाँ पर इकट्ठे हुये तमाम पंडित उसकी विद्या और ज्ञान को देखकर बड़े प्रसन्न हुये। उन्होंने शेष बचा समस्त धन अपनी सहायता करने वाले नाभाग को अर्पण कर दिया।"

पर जब उस धन को इकट्ठा करने के लिये नाभाग ने कार्यकर्त्ताओं को आज्ञा दी, उसी समय रुद्र के अनेक गण वहाँ आ पहुँचे और कहने लगे कि "यज्ञ-कार्य से शेष बचे धन पर भगवान रुद्र के सिवाय और किसी का अधिकार नहीं हो सकता।"

नाभाग ने कहा—"अपने पिताजी की आज्ञा से मैंने यहाँ आकर यज्ञ-कार्य में सहायता की है और उसके बदले में यज्ञकर्त्ताओं ने मुझे यह धन दिया है। इसलिये मैं इसे ले जाने की तैयारी कर रहा हूँ। पर अब तुम दूसरी ही बात कहते हो, तो बतलाओ अब मैं कौन-सी बात मानूँ ?"

"हमारी बात अगर गलत हो तो तुम अपने पिता से ही जाकर पूछ लो। वे सत्यवादी हैं, इसलिये जो कुछ निर्णय करेंगे वह ठीक ही होगा।" एक गण ने उत्तर दिया।

कुमार नाभाग को यह बात ठीक जान पड़ी। वह गणों को वहीं ठहरने के लिये कहकर शीघ्रतापूर्वक अपने पिता के पास पहुँचा और उनको सब हाल कह सुनाया। सब कुछ सुनकर मुनिराज नभग ने कहा वास्तव में गणों की बात ठीक है। तुझको यज्ञ में भेजते समय मुझे इस बात का स्मरण नहीं रहा था।

कुमार नाभाग ने यज्ञभूमि में वापस आकर हाथ जोड़कर भगवान रुद्र के गणों से कहा कि आपकी बात सत्य है, शेष बचे धन पर भगवान रुद्र का अधिकार है।

यह सुनकर भगवान रुद्र जो वेष बदलकर आये थे, प्रकट हो गये। उन्होंने नभग की सत्यता, सरलता और विनय की बड़ी प्रशंसा की और सब धन उसी को दे दिया।

भगवान की आज्ञा को शिरोधार्य करके कुमार नभग ने उस धन को ग्रहण किया और अपने पिता की सम्मति के अनुसार उस बड़ी धनराशि का उपयोग गरीबों की सहायता करने में, श्रेष्ठ दान देने में, भगवान प्रसन्न हों, ऐसे यज्ञ करने में और भगवान के भक्तों की सहायता करने में किया। देखते-देखते उसकी कीर्ति चारों ओर फैल गई और वह एक बड़े राजा की तरह समझा जाने लगा।

बहुत समय तक संसार के सुखों का उपभोग करके महाज्ञानी नभग भगवान के चरण कमलों में लीन हो गया। इसी राजा नभग के घर में महाभक्त राजा 'अम्बर' ने जन्म लिया, जिसका नाम आज तक प्रसिद्ध है।

विचारपूर्वक कार्य करने का शुभ परिणाम

गंगा के पवित्र तट पर एक गुरुकुल स्थापित था, जिसमें एक ऋषि कुटुम्ब निवास करता था। ऋषिराज महाज्ञानी, महापवित्र, महातपस्वी थे और इनके चरणों में बैठकर विद्याभ्यास करने के लिये दूर-दूर के विद्यार्थी आया करते थे। इन ऋषिराज को एक बालक बहुत बड़ी आयु में प्राप्त हुआ। इसलिये उसका लाड़-दुलार कुछ अधिक किया जाता था। बालक-सुन्दर था और उसे सब प्यार करते थे। उसमें बालकपन से ही बाप के ज्ञान, तप और विद्या के चिन्ह दिखलाई पड़ते थे।

पर बालक बड़ा विचित्र था और उसकी विचित्र बातों को देखकर ऋषिराज को कभी-कभी बड़ी चिन्ता हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाती थी। इस बालक को आरम्भ ही से प्रत्येक विषय में सर्वग्राही विचार करने की आदत थी। वह नदी में नहाने जाता, पर नहाते समय विचार करने लगता कि नदी में पानी कहाँ से आया ? क्यों आया ? आने का कारण क्या है ? वह नहाने की बात तो भूल जाता और इस प्रकार के अनेक तर्क-वितर्कों में डूब जाता। वह किसी के सामने अपने विचारों को प्रकट करके इन बातों को समझ लेना पसन्द नहीं करता—वरन् स्वयं ही इन पर लगातार मनन करता रहता।

इसके साथी अन्त में कहते—"चलें भाई घर लौटने का समय हो गया, जल्दी से नहा लें।" तब इसका ध्यान भंग होता और वह झटपट स्नान कर लेता। वह सूर्य को देखता, चन्द्रमा को देखता, हवा को चलते अनुभव करता, पेड़ के पत्तों को हिलते देखता और इन सबका कारण सोचता रहता।

ऋषि बहुत बार उससे पूछते—"अरे बेटा, तू ऐसे किन गम्भीर विचारों में डूबा रहता है ? तुझे जिन प्रश्नों का उत्तर जानना हो मुझे बतला मैं तुझे समझा दूँगा।" इसी प्रकार जब वह भोजन करते-करते विचारों में तन्मय हो जाता तो उसकी माता कहती "बेटा, अभी तो तू बहुत छोटा है ! अभी से ऐसे विचार क्यों करता है ? भली प्रकार भोजन कर ले।"

पर बालक किसी से कुछ नहीं कहता। वह बहुत कम बोलता था, बहुत कम दूसरों से मिलता-जुलता था। अधिकतर वह विचार ही किया करता था। यह देखकर अनेक लोग कहते थे कि वह पूर्वजन्म का कोई महाजीव है, जिसे किसी साधारण त्रुटि के कारण जन्म लेना पड़ा है।

एक बार अकथनीय घटना हो गई। ऋषिराज ने पानी माँगा। ऋषि पत्नी वस्त्र बदल रही थी, इसलिये पानी लाने में विशेष विलम्ब हो गया। ऋषि को क्रोध आ गया और वे तपस्वी धर्म के पवित्र नियमों को भूल गये। क्रोध में उचित-अनुचित का ध्यान भी न रहा। उनको ऐसा लगा कि उनकी पत्नी उनकी आज्ञा का पालन नहीं करती। क्रोधावेश में वे ऐसे जोर से चिल्लाये कि सारा आश्रम थर्रा उठा। आँखें और मुख लाल हो गये। वे पुत्र के पास आये और उसके हाथ में एक कुल्हाड़ी देकर बोले—"बेटा, अगर तू मेरा बालक हो तो इसी समय अपनी माँ का सिर इससे काट डालना।" यह कहकर वे एकदम जंगल में चले गये।

क्रोध के वशीभूत होकर पिताजी ने माता की हत्या करने की आज्ञा दे दी। वह उस आज्ञा का पालन न करे तो दोषी ठहराया जाय ! पर सामने निरपराधी, निर्दोष, प्रेम और वात्सल्य की मूर्ति माँ थी। "क्या माँ को मारा जा सकता है ?" यह प्रश्न उसके मन में उत्पन्न हुआ। माँ ने जन्म दिया, दुःख सहन करके पालन किया, वात्सल्य और प्रेम की धारा बहाई, ऐसी माँ को कैसे मारा जाय ? मारूँ तो निर्दोष माता का हत्याकारी कहलाऊँ और जो न मारूँ तो पितृ आज्ञा की अवहेलना करने वाला ठहराया जाऊँ।

बालक विचारों में डूब गया। पिता की दी हुई कुल्हाड़ी हाथ में ही रह गई। आश्रम के द्वार पर बैठा-बैठा वह विचार तरंगों में बह गया।

बालक को इस समस्या पर विचार करते-करते बहुत समय व्यतीत हो गया, पर वह अभी तक कोई निर्णय न कर सका। उधर जंगल में बहुत दूर चले जाने पर ऋषिराज का क्रोध क्रमशः शान्त हुआ और वे समस्त घटना पर पुनः विचार करने लगे। अब उनको अनुभव हुआ कि उन्होंने एक बहुत बड़ी भूल कर डाली है। उनकी पत्नी ने कोई ऐसा अपराध नहीं किया था, जिसके बदले में उसको सिर काट डालने का दण्ड दिया जाता। अब उनके मन में बार-बार यही ख्याल आने लगा कि यह तो बड़ा भारी अन्याय हो गया, अब इसका क्या प्रतिकार किया जाय ? रह-रहकर उनको पत्नी के प्रेम, उदारता, सेवा की याद आने लगी। वे बड़े व्याकुल हो गये।

फिर उनको पुत्र को ध्यान आया कि मैंने उसे माता का सिर काटे डालने की आज्ञा दी थी। पर वह तो बड़ा विचार करने वाला बालक है। कदाचित् वह अभी तक इस समस्या पर पूरी तरह से विचार ही न कर चुका हो और उसने अपनी माता को न मारा हो....."

आशा की एक किरण दिखलाई दी और उसके प्रकाश में ऋषिराज पागल की तरह आश्रम की तरफ भागे। उन्होने वहाँ पहुँचकर देखा कि आश्रम की काया पलट हो गई है और वहाँ एक उदासीनता का वातावरण छाया है। उनका पुत्र उसी प्रकार कुल्हाड़ी हाथ में लेकर बैठा था और पत्नी पौधों में पानी दे रही थी।

यह देखकर उनके कलेजे में कुछ ठंडक पड़ी। वे दौड़कर पुत्र के पास पहुँचे और उसे गोदी में लेकर बोले—"बेटा ! बेटा !!"

अब पुत्र अपनी विचारधारा से जाग्रत हुआ। वह पिता के चरणों में पड़कर कहने लगा—"पिताजी ! मुझे क्षमा करो, मुझसे आपकी आज्ञा का पालन नहीं हो सका। माँ को नहीं मारा जा सकता। माँ ने मुझे जन्म दिया, पालन किया, बड़ा किया और मुझे मनुष्य बनाया। अब मैं हैवान कैसे बन सकता हूँ ? नहीं ! नहीं !! मेरी आत्मा यही कहती है कि माँ को नहीं मारा जा सकता।"

आनन्द में मग्न होकर ऋषि ने उसे छाती से लगाते हुये कहा—"सच्ची बात है, बेटा, माँ को नहीं मारा जा सकता। तूने छोटी आयु में ही उस सत्य को समझ लिया है, जिसे मैं वर्षों तक तपश्चर्या करने पर भी न समझ सका था। मैं क्रोध के आवेश में तुझे एक पाप-कर्म की आज्ञा दे गया था। अब मुझे अपनी भूल मालूम हो गई। अच्छा हुआ कि तू अपनी चिरकाल तक विचार करने की आदत के कारण अभी तक सोचता ही रहा। अगर तू तुरन्त मेरी आज्ञा का पालन कर डालता, तो मैं आज पत्नी का हत्यारा कहलाता और मुझे स्त्री हत्या का पाप लगता।"

वे फिर कहने लगे—"और सुन बेटा जगत में मेरा नाम भुला दिया जायेगा, तेरी माता का नाम भी नहीं रहेगा, इस प्रसंग में तेरी चिरकाल तक विचार करने की आदत के फलस्वरूप तेरा "चिरकाल" नाम सदैव अमर रहेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रायश्चित्त नहीं परिमार्जन

चित्तौड़ कौन जायेगा ? महर्षि हरीत के आश्रम में प्रत्येक अंतेवासी के सम्मुख आज यह प्रश्न है। महर्षि ने कल सायंकालीन संध्या समाप्त करने के बाद ही सूचित कर दिया था कि चित्तौड़ का राजपुरुष सबेरे प्रतीक्षा करेगा। मध्याह्नोत्तर प्रस्थान का समय है और अब तक निश्चय नहीं हो सका कि यह गौरव किसे प्राप्त होगा ?

महर्षि हरीत के आश्रम का कोई भी छात्र किसी शासक के मार्ग निर्देश करने की योग्यता रखता है किन्तु, कुछ ऐसे ब्रह्मचारी हैं, जो गुरुदेव के श्रीचरणों से पृथक् होना नहीं चाहते। कुछ ने नैष्ठिक रूप से आश्रमवास स्वीकार किया है, जिनका अध्ययन समाप्त नहीं हुआ उनके लिये तो कोई प्रश्न नहीं है। सबसे मुख्य बात यह है कि इस समय चित्तौड़पुरी का नागरिक समुदाय अनेक कारणों से तर्कशील होकर सनातन, सदाचार पथ से अस्त-व्यस्त हो रहा है। चित्तौड़ नरेश बाप्पा रावल चाहते हैं कि राजगुरु के पद पर जिस विभूति की प्रतिष्ठा हो उनका शील एवं तप लोगों में सात्विकता एवं श्रद्धा का संचार करे।

बात ठीक भी है, धर्म का पालन केवल भय से ही कब तक होगा ? उसका स्थान तो अन्तर में होना चाहिये। नम्रता के ये मूर्तिमान स्वरूप छात्र—इनके मन में ही नहीं आता कि उनके संयम-तप ने उनके संकल्प में वह शक्ति दे दी है कि राजगुरु के पद पर रहना तो दूर वे यहाँ से केवल सोच लें तो सम्पूर्ण अव्यवस्था दूर हो जाये। अधर्म तथा उसके परिकर अधिष्ठाता देवताओं में इतना साहस ही नहीं है कि वे इन तपोमूर्तियों के संकल्प क्षेत्रों की ओर दृष्टिपात भी करें।

"आचार्य चरण जिसे आज्ञा दें·····" बात तो इतनी निश्चित है कि उसमें सोचने-समझने को कुछ रह ही नहीं जाता। गुरुदेव जिसे आज्ञा देंगे, उसे जाना ही पड़ेगा। उसकी योग्यता एवं शक्ति का प्रश्न ही कहाँ रह जाता है तब ? गुरुदेव की आज्ञा, उनके आशीर्वाद से कौन नहीं परिचित है, उन सर्वसमर्थ की शक्ति से ? इसी शक्ति के कुछ कणों को पाकर ही तो बाप्पा रावल सामान्य भील बालक से चित्तौड़ नरेश बन सके। इसी शक्ति की प्रचण्ड ऊर्जा के समक्ष दुर्धर्ष और बर्बर अरबों के प्रचण्ड आक्रमण विफल हुये। लेकिन वह किसे आज्ञा देंगे ? असमंजस, संकोच, हिचक और इसलिये भी यह सब कि प्रथम बार गुरुदेव ने किसी को आज्ञा न देकर छात्रों पर यह बात छोड़ दी है कि वे स्वयं निश्चय करें।

महर्षि पीपल वृक्ष के नीचे बनी वेदी पर बैठ चुके हैं और आप सबकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। सुमंत ही गुरुदेव का सबसे प्रिय शिष्य है। वह है भी आश्रम में सबसे अल्पवयस्क, सबसे चपल, सबकी सेवा में पटु और सबका स्नेह पात्र। सबको ढूँढ़-ढूँढ़कर वह सन्देश सुना आया।

दिन का प्रथम पहर बीत चुका था। दिशाएँ वेद मन्त्रों के सस्वर पाठ से पवित्र हुईं और हवन का सुरभित धुआँ तो अब भी गगन में कुण्डलियाँ बनाता उठ रहा है। पीपल की अरुण, मृदुल कोपलों की छाया में वेदिका पर जैसे मूर्तिमान अग्निदेव विराजमान हैं और अब उनके चारों ओर ये बल्कलधारी धूमिल, रुक्ष केशों वाले युवकों के रूप में मानो नम्रता, शील, सत्य, त्याग आदि सद्गुण ही एकत्र हो गये हैं।

"ब्राह्मण का तप एवं त्याग इसीलिये है कि उससे विश्व को अभय तथा शान्ति का वरदान प्राप्त हो।" महर्षि ने एक बार देख भर लिया अंतेवासियों की ओर, और फिर उनका घन गम्भीर स्वर दिशाओं के साथ श्रवणों को पवित्र करने लगा। "तर्क मन की चंचलता की ही एक मोहक वृत्ति है और श्रद्धा है जगन्नियंता का मंगल वरदान। तर्क का मायाजाल मानव का मन अपने प्रमाद एवं दोष को समर्थन देने के लिये फैलाता है। इसका परिणाम है असंयम, जिसका फल अशांति एवं क्लेश है। ब्राह्मण अपने त्याग, तप एवं आचरण से माया-मुग्ध मानव के मन का तर्क जाल छिन्न करके उसमें श्रद्धा-आस्था का अमर प्रकाश प्रदीप्त करता है।"

आचार्य हरीत के साथ जैसे आश्रम के सब चर-अचर मूक हो गये। वायु तक निस्तब्ध हो उठी निःशब्द शान्ति और उसमें एक अद्भुत संकोचपूर्ण अव्यक्त भाव। अन्तेवासियों ने मस्तक झुका लिये थे।

'चित्तौड़ नरेश बहुत खिन्न हैं।" पुत्र के समान प्रिय प्रजा का अस्त-व्यस्त भाव किसे खिन्न नहीं करेगा ? उन्हें एक ब्राह्मण चाहिये। तुम में से कौन उन अभीप्सु को आशीर्वाद देगा ? आचार्य ने दृष्टि चारों ओर घुमाई।

"हममें जो कुछ भी है, वह श्रीचरणों का प्रसाद ही है। हमारे पास अपनी तो त्रुटियाँ, प्रमाद एवं क्षुद्रता ही हैं।" बन्धु वर्ग के संकोच का भार बड़े ही उठाते हैं। नैष्ठिक व्रती सत्यसंघ जी ने सबको प्रसन्न कर दिया। बड़ी नम्रता से अंजलि बाँधे खड़े हो गये—"श्री चरण ही आशीर्वाद दे सकते हैं महाराज को। उस आशीर्वाद का वहन करने की जिसे आज्ञा होगी उसकी योग्यता का प्रश्न ही कहाँ रह जाता है ?"

"राजपुरुष को यहीं बुला लो।" महर्षि ने एक क्षण कुछ सोचकर सुमंत की ओर संकेत किया। सुमंत तो संदेश सुनाने के लिये तैयार ही बैठा था।

आचार्य अभय चित्तौड़ के राजगुरु का आसन भूषित करेंगे। राजपुरुष ने आकर प्रणाम किया महर्षि हारीत के चरणों में और जैसे ही वह हाथ जोड़कर खड़ा हुआ, महर्षि ने अपना निर्णय सुना दिया।

"अभय"। राजपुरुष नाम सुनकर ही चौंका और जब उसने निर्दिष्ट आचार्य अभय को देखा, उसका मुख सूख गया।

"अभय !" सभी ब्रह्मचारी चौंके। उन्हें अपने गुरुदेव के इस निश्चय का अनुमान भी नहीं हो सकता था। यह अभय ब्राह्मण है, यह बात तो उसके द्वारा सबसे ज्ञात है, किन्तु यह गुरुदेव का न तो छात्र है, न ब्रह्मचारी ही। इसने तो कुछ दिन हुये जब नियमित संध्या प्रारम्भ की है। क्या हुआ जो वह प्रतिभासम्पन्न है, इसमें त्याग और तप भी है, यह तो सोचा भी नहीं जा सकता।

ब्रह्मचारियों को स्मरण है कि जब यह आश्रम में आया था तब इसका शरीर मलिन हो रहा था। इसके वस्त्र फटे थे। बाल सूखे, उलझे और अस्त-व्यस्त थे। गुरुदेव ने सबको मना कर दिया था, परिचय पूछने के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिये किन्तु इसका प्रमाद, इसका औधत्य इसका कठोर शरीर सब ऐसा लगता है, जैसे यह कोई डकैत हो।

लेकिन धीरे-धीरे वह विनम्र होता गया बड़ा मधुर, कंठ पाया है इसने प्रतिभाशाली भी है यह। भजन तो बड़े ही मोहक स्वर से गाता है। गुरुदेव ने इसे यही आदेश दिया है। बड़ी मनोरम व्याख्या करता है, गूढ़ पदों की। "शरीर में शक्ति है, बुद्धि में योग्यता है, स्वभाव में नम्रता है।" ब्रह्मचारियों ने अपना समाधान कर लिया। जब स्वयं महर्षि ने आदेश दिया, तो इसमें भ्रम को स्थान हो कैसे हो सकता है ?

श्रद्धा के स्वरूप ब्रह्मचारीगण आश्वस्त हो जाएँ, महर्षि की शक्ति एवं सम्मान से प्रभावित राजपुरुष मस्तक झुकाकर किसी प्रकार तैयार हो जायें। लेकिन उसे तो मालूम है कि वह क्या है ? वह कैसे अपने को भूल जाय ? वह उठा और आर्तभाव से महर्षि के चरणों पर गिर पड़ा। बड़ा करुण-रुदन था उसका। सभी स्तब्ध थे।

"मेरे बच्चे।" महर्षि उसके सिर पर हाथ रखते हुये बोले उनकी वाणी में अपार वात्सल्य था—"तुम इतने कातर क्यों हो रहे हो ? तुम चित्तौड़ के लोगों के शील, स्वभाव, विचार शैली से परिचित हो। मनुष्य को अपने किये हुये का परिमार्जन करने को सदा प्रस्तुत रहना चाहिये। जब एक अपना सुधार कर लेता है, उसका उज्ज्वल आदर्श दूसरों के हृदय को प्रकाशित कर देता है। संग का प्रभाव सब पर पड़ता है, चाहे वह कोई भी क्यों न हो ?" "आचार्य ! मैं तो दस्यु हूँ, मैंने भयवश ही यहाँ आश्रय लिया था। किन्तु श्रीचरणों के सान्निध्य ने अब इस हीन हृदय में इतनी शक्ति दे दी है कि आपके आदेश से प्रायश्चित का वह स्वागत कर सके।" उसने अपने को स्थिर कर लिया।

"सो कुछ नहीं।" महर्षि की वाणी में आश्वासन और आशीर्वाद दोनों थे—"तुम्हें प्रायश्चित के साथ परिमार्जन करना है और सच्चा प्रायश्चित तो है, पश्चाताप। उसे जहाँ भी तुम जाग्रत कर दोगे, वहीं हृदय परिशुद्ध हो जायेगा।"

"आचार्य अभय की यात्रा व्यवस्था तुमने कर ली होगी।" राजपुरुष ने केवल मस्तक झुकाकर स्वीकृति सूचित की। अभय ने पुनः मस्तक रखा महर्षि-चरणों में। उन्हें आशीर्वाद के साथ जो ब्रह्मचारियों का सौहार्द्र भरा संदेश एवं अनुगमन मिला था, वह प्रसन्न कर सका या नहीं, यह कहना कठिन है। कहा इतना ही जा सकता है कि उन्होंने अपने को स्थिर रखा और किसी प्रकार विदा हुये आश्रम से।

नगर के प्रवेश द्वार पर ही चित्तौड़ नरेश बाप्पा रावल महारानी के साथ अभ्यर्थना के लिये खड़े थे। महाराज प्रणाम के लिये झुके, इसके पूर्व ही वह दो कदम पीछे हटते हुये बोले "राजन् ! आपने मुझे पहचाना नहीं। आपके सम्मुख कुख्यात लम्पट दस्यु अभय खड़ा है। मैं अपने योग्य दण्ड के लिये प्रस्तुत होकर आया हूँ।"

बाप्पा रावल के अधरों पर हलकी-सी स्मित रेखा झलकी। उनके स्वर में महर्षि हरीत के प्रति गहरी श्रद्धा और निष्ठा थी—"दस्यु श्रेष्ठ अभय को भूल जाना संभव नहीं है और जिसके नेत्र इतना पहिचानने में भी प्रमाद करें, वह क्या शासक होने योग्य है लेकिन भगवन् ! जब कुत्सित लौह, पारस का स्पर्श करके स्वर्ण बन जाता है उसकी पूर्वाकृति तो कोई अर्थ नहीं रखती। उसे आभूषण बनाने को उत्सुक न हो, ऐसा हीन बुद्धि कौन होगा ? मैं तो परम भाग्यशाली हूँ। महापुरुष तो अपने संग से स्वर्ण नहीं पारस बना दिया करते हैं औरों को और मुझे अपने आचार्य के आसन पर ऐसे ही पारस के पूजन का अवसर मिला है।"

"मेरे पूर्व अपराध ऐसे नहीं जिन्हें क्षमा किया जा सके।" अभय को महाराज की श्रद्धा पर आश्चर्य हो रहा था। ये जानबूझकर पहिचानकर भी क्यों मुझे आचार्य मानते जा रहे हैं ?

"जब कोई तपोधन अपने वरदहस्त से किसी के मस्तक का स्पर्श कर देते हैं, यमराज में भी साहस नहीं रह जाता उसके पूर्वापराधों पर विचार करने का।" महाराज का निश्चय भ्रांतिहीन था। "अब विकृतियों का परिमार्जन आप स्वयं करेंगे मैं तो केवल आज्ञानुवर्ती हूँ।"

महर्षि हरीत के विदा होते समय के आदेश अभय के अन्तःकरण में स्पष्ट हो गये। प्रायश्चित नहीं परिमार्जन। अन्ततः उसी के अनुगामियों के प्रभाव से तो चित्तौड़पुरी में यह अश्रद्धा एवं अव्यवस्था फैली है। उसे परिमार्जन करना है, उसका आश्रम की ओर मुख करके महर्षि को प्रणाम करके, यह विकृतियों के परिमार्जन के लिये कृत संकल्प हो गये।

बाल भगवान

महाप्रलय के समय प्रचण्ड अग्नि की ज्वाला में सब कुछ नष्ट हो गया। केवल जल ही जल सब ओर दिखाई पड़ता था, तब भी मारकण्डेय मुनि जीवित रह गये। वे भटकते हुये फिर रहे थे, तो उन्हें बालक के रूप में भगवान दिखाई दिये। प्रलय की भयंकरता से घबराये मुनि को व्याकुल देखकर उस बाल रूपमयी परब्रह्म ने कहा—"मुनिवर आप बहुत थके मालूम पड़ते हैं, इस विपत्ति से बचने के लिये मेरी शरण में आओ, मेरे शरीर में प्रवेश कर जाओ।"

बालक भगवान का ही रूप है। मनुष्य बालक के समान मन को निर्मल और विकार मुक्त बना ले तो भगवान ही बन सकता है।

कई दिन के श्रम के कारण गहरी नींद आ गई और जब वह सोकर उठा तो उस दिन जैसी शान्ति व हलका-फुलका, उसने पहले कभी अनुभव नहीं किया था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

फटी साड़ी का मोल

महात्मन तिरुवल्लुवर जुलाहे थे। बड़े होकर वे कपड़े बुनते और जो कुछ मिलता उससे ही अपनी जीविका चलाते। एक दिन संध्या समय कोई युवक उनके पास आया और बुनी हुई साड़ी का दाम पूछने लगा। इस साड़ी को बुनने में दिन भर लग गया था। सन्त ने दाम बताया—'दो रुपये।'

चर्र से दो टुकड़े कर दिये बीच में से उस युवक ने और फिर पूछा अब इन टुकड़ों के अलग-अलग क्या दाम हैं ? सन्त ने कहा—एक-एक रुपया। फिर उसने उन टुकड़ों के भी टुकड़े कर दिये और बोला—अब, तो सन्त ने उसी गम्भीरता से कहा आठ आने। इस प्रकार वह युवक टुकड़े पर टुकड़े करता गया और सन्त धैर्यपूर्वक उसके दाम बताते रहे।

युवक शायद उनके अक्रोध तप को भंग करने ही आया था, परन्तु सन्त थे कि हार ही न रहे थे। युवक ने अब अन्तिम बार किया। उसने तार-तार हुई साड़ी को गेंद की तरह लपेटा और कहा—"अब इसमें रह ही क्या गया है जिसके दाम दिये जाएँ। यह लो तुम्हारी साड़ी के दो रुपये।"

तिरुवल्लुवर ने कहा—"बेटा ! जब तुमने साड़ी खरीदी ही नहीं तो फिर तुमसे उसका मोल कैसे लूँ ?" अब भी इतना धीर-गम्भीर उत्तर सुनकर उद्दण्ड युवक पश्चाताप से विदग्ध होकर नत-मस्तक हो उठा।

व्यक्ति दण्ड द्वारा उतना नहीं सीखता, जितना प्रेम और क्षमा द्वारा।

प्रतिमा का रहस्य

सुधारवाद के अहंकार से भरे हुये अलवर नरेश समय-समय पर हिन्दू धर्म की मान्यताओं तथा विश्वासों का मखौल उड़ाया करते थे। यह घटना उस समय की है जब स्वामी विवेकानन्द अलवर नरेश के अतिथि थे। बातों ही बातों में नरेश ने मूर्ति पूजा के विरोध में कुछ कहा और उसे अन्धविश्वास बताया।

स्वामीजी ने कोई उत्तर नहीं दिया। सामने ही लगे नरेश के पिताश्री का चित्र देखते हुये वे बोले, "महाराजश्री के इस चित्र पर आप थूक दें।"

हतप्रभ रह गये नरेश और स्वामीजी के आज्ञा पालन के स्थान पर उनके मुँह से 'नहीं' निकला तब स्वामीजी बोले—"यह तो महाराजश्री की निर्जीव रेखाकृति भर है। इस पर थूकने में कोई हर्ज नहीं है। फिर भी आप थूकने का साहस नहीं करते, क्योंकि आपकी दृष्टि में यह महाराजा के व्यक्तित्व की प्रतिनिधि है। इसी प्रकार मूर्ति पूजा में आस्था रखने वाला व्यक्ति प्रतिमा को अपने प्रभु का प्रतिनिधि मानता है। फिर आपको क्यों आपत्ति होनी चाहिये ?"

मूर्ति का रहस्य समझकर नतमस्तक हो गये अलवर नरेश।

(१) अपनी मान्यताओं को ही सर्वश्रेष्ठ मानकर किसी की निन्दा आलोचना नहीं करनी चाहिये।

(२) प्रभु तक जब तक सीधी पहुँच न हो तब तक मूर्ति के माध्यम से ही आगे बढ़ा जा सकता है।

"कटुता" बनाम "आत्म-कल्याण"

नदी तट पर एक पण्डितजी रहते थे। उनका स्वभाव बड़ा सौम्य और मिलनसार था। मेहनत और ईमानदारी से उनका जीवन सुख से चल रहा था। एक दिन पण्डितजी को आत्मा की खोज की इच्छा पैदा हुई। धीरे-धीरे ऐसा रंग चढ़ा कि वह दुनिया के कार्यों से विमुख होकर आत्मा की खोज में लग गये। घर में कोई काम होता तो घर वालों को झिड़क देते। बात-बात पर उन्हें गुस्सा आने लगा। रात-दिन उन्हें आत्मा की खोज की धुन सवार रहती। इससे उनके पारिवारिक संबंधों में कटुता आ गई। धीरे-धीरे उन्हें अनुभव होने लगा कि उनका जीवन नरकमय होता जा रहा है। एक दिन रात में पंडितजी ध्यान में लीन थे कि उनकी आत्मा के अन्धकार में प्रकाश फैला और सुना—"पण्डित, तुम गलत राह पर जा रहे हो। जीवन में कटुता से बढ़कर कोई बुराई नहीं है। आत्मा तो तुम्हारे अन्दर ही है। उसे खोजने तुम बाहर क्यों भटक रहे हो ? जीवन में शांति, सौम्यता और मधुर संबंध ही आत्मा के लक्षण हैं।"

आत्मकल्याण के लिये सर्वप्रथम अपने गुण, कर्म और स्वभाव का परिष्कार करना चाहिये।

सुखी व्यक्ति की कमीज

एक राजा ! दुःखी और उदार ! चिंतित इतना कि रात को गहरी नींद तक नहीं आती। राज्य के मन्त्री तथा निजी चिकित्सक उसे प्रसन्न रखने के लिये तरह-तरह के प्रयत्न करने लगे। प्रयत्न क्यों न करते ? राजा जो ठहरा राज्य का ! किसी ने कहा—"यदि राज्य के सबसे सुखी और प्रसन्न व्यक्ति को ढूँढ़कर उसकी कमीज राजा को पहना दी जाय तो उसकी खोई हुई प्रसन्नता लौट सकती है।" अनेक मन्त्री तथा नौकर-चाकर सुखी-व्यक्ति की खोज में निकल पड़े। सब सोचते जो यह कार्य सबसे पहले कर दिखायेगा उसकी कार्यक्षमता का प्रभाव राजा पर पड़ेगा और कहीं राजा खुश हो गया तो मुँहमाँगा पुरस्कार मिलेगा।

एक दिन सड़क के किनारे अपने राम में मस्त एक सज्जन मिल गये। यद्यपि उन्होंने राजा के सम्मुख जाने की बहुत आना-कानी की, पर विवश थे जाना पड़ा। राजा के सम्मुख उपस्थित हुये। जब वह राज्य के सबसे प्रसन्न व्यक्ति से मिले, तो उनकी भी खुशी का ठिकाना न रहा वह तो चिल्ला पड़े—"अच्छा तुम ही हो सबसे सुखी व्यक्ति ! फिर तो कितने ही लोग तुमसे ईर्ष्या करते होंगे। लाओ ! लाओ ! तुम्हारी कमीज कहाँ है, मैं भी उसे पहनकर अपनी उदासीनता तथा चिन्ताओं से मुक्त हो जाऊँ।"

"राजन् ! आप कमीज की बात कहते हैं मेरे पास तो उत्तरीय तक नहीं। रमता योगी और बहता पानी जैसा मेरा जीवन है।" राजा समझ गया कि सुख वस्तुओं में नहीं संतोष में है।

मनुष्य के दुःखों का कारण इच्छायें और वासना हैं। इनके छूटते ही आनन्द की उपलब्धि हो जाती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दोष स्वीकार कर लिया

गाँधीजी का बचपन था। बुरी संगत में पड़कर किसी से कर्ज ले लिया। जब कर्जदार तंग करने लगा तो घर से थोड़ा सोना चुरा लिया और कर्ज चुका दिया। कर्ज का भार तो हलका हो गया, किन्तु उनके मन को चोरी का पश्चाताप झुलसाने लगा। सोचा पिताजी को बता दें, किन्तु सीधे जाकर कहने की हिम्मत नहीं पड़ती थी।

उन्होंने एक पत्र लिखा पिताजी के नाम और उसमें अपना दोष स्वीकार कर लिया। पिताजी ने सच्चे हृदय से इस अपराध को क्षमा कर दिया। गाँधी ने अब निश्चय कर लिया कि वे कभी ऐसी गलती न करेंगे।

भगवान के सम्मुख भी सच्चे हृदय से अपने दोष स्वीकार कर लेने तथा खेद व्यक्त करने से उनका परिमार्जन हो जाता है।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सेवा, परोपकार और पुण्य-परमार्थ

पराई पीर जब अपनी बन जाय

अपराधी को दण्डित तो किया, पर मन विक्षुब्ध हो उठा। मन-मन्थन से उठने वाली हर तरंग उनसे सवाल पूछने लगी—चोरी के अपराध में तूने दूसरे को तो पीड़ित किया लेकिन स्वयं क्या तू चौर्यवृत्ति से मुक्त है ? वे स्वयं को कोई जवाब नहीं दे पा रहे थे। मन पश्चाताप से भर गया। उन्होंने विचार किया कि राजकोष के लोभ के कारण ही उन्हें किसी को पीड़ा पहुँचानी पड़ी। दूसरों को पीड़ा पहुँचाने वाले ऐसे राज्यकर्म का क्या प्रयोजन और वह एक दिन चुपचाप तपश्चर्या के लिए घर से निकल गए। उनके आगे बढ़ते हर कदम के साथ वैभव, राजकीय ऐश्वर्य पीछे छूटता जा रहा था। वे कैलाश पर्वत पर रहने वाली हेमजटा नामक जाति के प्रमुख थे। दयालुता न्यायप्रियता, उदारता के उनके स्वाभाविक गुणों के बावजूद राज्य में कुछ न कुछ दुष्ट और दुराचारी तो थे ही, जिनके साथ उन्हें कठोरता बरतनी पड़ती थी, उन्हें दण्डित करना पड़ता था। स्वभाव विरुद्ध होने के कारण इस कठोरता से उन्हें बड़ा क्लेश होता। अपराधी पर पड़ने वाला हर कशाघात जैसे उनके स्वयं की पीठ पर पड़ता।

इस क्लेश से मुक्त होने के लिए वे राज्य छोड़कर वन आ पहुँचे। शान्त तपोवन में आश्रम बनाया और तप करने लगे। तपश्चर्या के प्रभाव से चितवृत्तियाँ निर्मल होने लगीं। भगवान की भक्ति में उन्हें आनन्द आने लगा।

आश्रम में अनेक पक्षी भी निवास करते थे। उनमें से कुछ शान्त और मधुर प्रकृति के पक्षी थे, कुछ का स्वभाव दुष्ट और हिंसक भी था। एक दिन जब वह प्रातःकाल अग्निहोत्र समाप्त करके उठे—देखा सामने वाले आम्र वृक्ष पर एक बाज एक तोते के बच्चे को पंजों में पकड़े बैठा उसे मारकर खा जाने के यत्न में था। बच्चा चीं-चीं करता हुआ तपोवन की शान्ति को अपनी करुण गूँज से भर रहा था, पर दुष्ट बाज में जैसे दया का नामोनिशान न था।

उनके न्यायप्रिय हृदय में एक बार शक्ति का आक्रोश जागा। धनुष बाण तो था नहीं, पास ही एक पत्थर पड़ा था। उसे ही निशाना साधकर जो मारा कि बाज घायल होकर भूमि पर गिरा, तोते का बच्चा मुक्ति पाकर अपनी माँ की गोद में जा लिपटा। दृश्य बदल गया। मृत्यु आयी थी शुकशावक को लेने, पर हाथ में बाज लगा।

अपने हाथ बाज की मृत्यु को देखकर उनका हृदय फिर काँप उठा। तपोवन में प्राणि हिंसा, कैसे और क्यों हुई ? सवाल यह नहीं था, हिंसा का अपराध तो हुआ ही। अन्तःकरण पीड़ा से विकल हो उठा। जिस कारण राज्य और वैभव का परित्याग किया, वही फिर करना पड़ा। यह सोचकर उनका चित्त बेचैन हो उठा। आँखों से आँसू झरने लगे। वह सोचने लगे हे विधाता ! कैसी है तेरी सृष्टि कि न चाहते हुए भी मनुष्य को क्या-क्या करना पड़ता है ?

उनकी विचारमग्नता की कड़ियाँ उधर से घूमते आ रहे महामुनि मांडव्य की पदध्वनि के कारण अनायास बिखरने लगीं। उन्हें दुःखित देखकर मनोभावज्ञ मुनि सब बात समझ गए, राजा ने मुनि को प्रणाम किया और सविस्तार अपना दुःख प्रकट करके, उनसे छुटकारा पाने का उपाय पूछा।

महामुनि मांडव्य बोले—"राजन ! न्याय न किया जाये, कठोरता न बरती जाये, तो दुराचारी लोगों के हाथों सज्जन, धर्मनिष्ठ लोगों की दुर्गति होने लगती है। इसलिए व्यवस्था संभालना भी निखिल सृष्टि के महाप्रबन्धक भगवान के काम में हाथ बँटाना है। मनुष्य स्वार्थ और अहं के लिए कुछ न चाहकर ईश्वर की इच्छा मानकर संसार की सेवा करे, तो यह कठोरता भी पाप नहीं होती। इस स्थिति में भी आनन्द और शान्ति का अभाव नहीं होगा।"

मुनि के शब्द उनके अन्तःकरण की गहराइयों में उतरते चले गए। वे पुनः अपनी राजधानी लौट आये और प्रजा की सेवा और उसके विकास में इस तरह तल्लीन हो गए कि अपना हित भी उन्होंने भुला दिया। उनका योग-क्षेम भगवान स्वयं वहन करने लगे।

सेवा का सुख, प्रजा का प्यार पाकर आत्मदर्शी सम्राट सुरधु की सब मानसिक विकलताएँ दूर हो गईं। उन्हें सर्वत्र आनन्द की निर्झरिणी प्रवाहित अनुभव होने लगी।

उन्हीं दिनों पारसीक देश के नरेश परिध ने आर्यावर्त की यात्रा की। आत्मज्ञान और समाधि सुख की आकांक्षा से परिध ने सारे भारतवर्ष के सन्त, तपस्वियों और ज्ञानियों की शरण ली। अनेक प्रकार की साधनाएँ उन्होंने सम्पन्न कीं। यम-नियम ध्यान, धारण, प्रत्याहार के द्वारा उन्होंने इन्द्रियों पर नियन्त्रण करना भी सीख लिया। कई तरह की सिद्धियों का अर्जन भी किया। किन्तु न जाने क्यों उन्हें अपने अन्तःकरण में कुछ सूना-सूना-सा लगता था। शान्ति के स्थान पर गहरा द्वन्द्व था। खोखलेपन से उपजी आकुलता उन्हें हमेशा घेरे रहती थी।

इसी अवस्था में परिभ्रमण करते हुए परिध की भेंट महर्षि मांडव्य से हो गई। मांडव्य ने नरेश को सम्राट सुरधु के पास जाने और योग विद्या सीखकर आत्मशान्ति पाने का परामर्श दिया। महान जिज्ञासु शीघ्र ही कैलाश की ओर चल पड़ा।

राजधानी पहुँचने पर प्रधान आमात्य ने बताया, "महाराज प्रतिदिन अपनी प्रजा के कष्ट-दुःख देखने स्वयं वेष बदलकर जाया करते हैं। एक सप्ताह हुए वे लौटे नहीं, राज्य-संचालन महारानी करती हैं। आप चाहें तो उनसे भेंट कर लें।"

परिध ने सुना और चुपचाप एक ओर चल पड़े। संध्या होने पर वे एक गाँव में रुके। जिस घर पर उन्होंने विश्राम करना निश्चित किया। दैवयोग से उस घर में एक वृद्ध माता के अतिरिक्त कोई न था। वृद्धा का पुत्र युद्ध में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गया था, वह आज एक सप्ताह से बीमार थी। कोई अपरिचित व्यक्ति उसकी सेवा-सुश्रूषा कर रहा था। परिध ने देखा अद्वितीय ओजस् का धनी वह व्यक्ति कोई साधारण मनुष्य नहीं था। वृद्धा की सेवा, घर की सफाई जैसे साधारण कामों में भी उसकी तल्लीनता देखते ही बनती थी, जिसके कर्कश स्वभाव के कारण कोई पड़ोसी मकान के पास फटकने को तैयार न था। उसके मल-मूत्र की दुर्गन्ध, छूत की बीमारी के रोगाणुओं का भय किसी को भी दूर भगाने के लिए काफी था। उसकी इतनी आत्मभाव से सेवा ? परिध के मन में उस अपरिचित सज्जन का परिचय प्राप्त करने का कौतूहल जाग उठा।

नियमानुसार जैसे ही वृद्धा को ओषधि पिलाकर परिचारक आश्वस्त हुए कि किसी जाने-पहचाने स्वर ने उन्हें प्रणाम करते हुए विनय की—"महाराज ! आज सात दिन हो गए आपके न होने से समूची हेमजटा दुःख से छटपटा रही है।"

वह महाराज सुरधु थे। अपने अंगरक्षक सैनिक की ओर इस तरह देखा जैसे उन्हें पता ही न चला हो कि राजधानी में उनकी अनुपस्थिति को पूरे सात दिन हो चुके हैं। उनके मुखमण्डल पर सेवा की अपूर्व शान्ति और आत्मदर्शन की गम्भीरता स्पष्ट झलक रही थी। उन्होंने सैनिक को सम्बोधित करते हुए कहा—"भद्र ! मेरा प्रत्येक प्रजाजन मेरे धर्म से जुड़ा है, यह भी तो मेरा ही कर्तव्य था कि मैं इस वृद्धा की देखभाल करता। तुम चलो राजमहिषी को मेरा सन्देश कहो—वे मेरे न पहुँचने तक वहाँ की व्यवस्था संभाले रहें।"

सैनिक लौटा और दूसरे क्षण सम्राट परिध महाराज सुरधु के समीप थे। आज उन्होंने समाधि का मर्म जान लिया था। सेवा और प्रेम से लबालब भरा व्यक्तित्व ही आत्मदृष्टा होने का गौरव पाता है। ऐसा आत्मदर्शन, जिसमें हर प्राणी की पीड़ा, अपनी पीड़ा, हर जीव का दुःख-दर्द, अपना दुःख-दर्द, अनन्त आत्मा की अनुभूति और उसमें खो जाने के सुख से बढ़कर और कोई साधना क्या हो सकती है ? परिध को यह जान लेने के बाद कुछ जानना शेष नहीं रह गया।

शिष्य भाव से उन्होंने सम्राट सुरधु को प्रणाम किया और वह अपने देश की ओर लौट पड़े। जो शान्ति उन्हें किसी योग साधना और सांसारिक वैभव से न मिल सकी, वह निष्काम कर्मयोग के प्रयोग से सहज मिलने लगी।

सेवा और प्रेम के संस्करण

सौ वर्ष पूर्व की बात है। जापान के धर्मप्रेमी नागरिकों में बौद्ध भिक्षुओं का अच्छा मान सम्मान था। धनी लोगों से लेकर निर्धन और गरीब वर्ग उन्हें मानता था। लोकसेवा और धर्म-प्रचार के लिए अपना सर्वस्व त्याग कर देने वाले अकिंचन महामानवों को जनता नहीं मानेगी तो फिर मान-सम्मान के योग्य और होगा ही कौन ?

ऐसे ही एक प्रतिष्ठित और सेवाभावी बौद्ध भिक्षु ने महात्मा बुद्ध के दुर्लभ उपदेश मूल पाली भाषा में प्राप्त किये। अपने देश के नागरिकों में उनका प्रचार करने के लिए उन्होंने जापानी में उनका अनुवाद किया। अब समस्या आई प्रकाशित करवाने की। धन की आवश्यकता थी। किसी से माँगना नियम के विरुद्ध था। अयाचित ही जो कुछ मिल जाये, उतने मात्र से निर्वाह कर लेने का व्रत ले रखा था। अब क्या किया जाये ?

स्वयं व्रतनिष्ठ रहकर अन्य लोगों को तो धन संग्रह के लिए प्रेरित किया जा सकता था। भिक्षु ने अपने गृहस्थ शिष्यों को इस पुण्य कार्य के लिए धन संग्रह करने हेतु नियोजित किया। उसमें से कुछ शिष्यों को संकोच हुआ, भिक्षा माँगने पर लोग असम्मान की दृष्टि से देखेंगे। उनका अपमान होगा, मान-मर्यादा टूटेगी। भिक्षु ने कहा—"मान-सम्मान, सेवाव्रती को अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं।"

भिक्षु पर श्रद्धा रखने के कारण लोगों ने बात मान ली। कुछ अश्रद्धालु सज्जनों ने अस्वीकार कर दिया। निदान तय किया गया कि शिष्यगण माँग न सकें, तो कोई बात नहीं स्वयं ही अपनी जीविका में से एक नियमित राशि बचाकर भगवान बुद्ध के उपदेशों को प्रकाशित करवाने का प्रयत्न करें।

बात गृहस्थ शिष्यों के गले उतर गयी। लगभग पाँच वर्षों में इतना धन एकत्र हो गया कि पुस्तक प्रकाशित कराई जा सके। शिष्यगण, प्रतिमास बचत किया गया धन भिक्षु के पास जमा करवा देते थे। उसी समय जापान के एक इलाके में दुर्भिक्ष पड़ा। भिक्षु का मन कुछ करने के लिए तड़प उठा। उधर लोग भूख से मर रहे थे—इधर शिष्यों का अनुदान इकट्ठा होता जा रहा था। भिक्षु ने उन पीड़ित आँखों में सेवा की प्यास देखी और जो भी धन संग्रह हुआ था, अकाल पीड़ितों की सेवा में लगा दिया। भूखों को भोजन देने का प्रबन्ध किया। वस्त्रहीनों को वस्त्र बाँटे गये। जितनी भी राशि एकत्र हुई थी, सबकी सब इसी कार्य में लग गयी।

दूसरे वर्ष जब पुनः वर्षा हुई। क्षेत्र से अकाल के काले बादल छटे, तो भिक्षु फिर धन संग्रह में लग गये। अब की बार कुछ शिष्य टूट गये थे परन्तु इससे महात्मा बुद्ध के वह सच्चे अनुयायी निराश नहीं हुए। दस वर्षों के निरन्तर प्रयास के बाद प्रकाशनोपयुक्त धनराशि एकत्र हुई। और पुस्तक छापने की तैयारियाँ की जाने लगीं।

लेकिन इस बार दूसरे क्षेत्र में अतिवृष्टि हुई। नदियों में बाढ़ आ गयी और सारे इलाके की फसल को बड़ी क्षति पहुँची। इस बार भी महाभिक्षु ने सारा धन बाढ़-पीड़ितों की सेवा में लगा दिया।

इस बार अधिकांश शिष्यों ने साथ छोड़ दिया। उन्होंने महाभिक्षु को पागल कहा—"हम पैसा तो पुस्तक प्रकाशन के लिए देते हैं और यह साधु सारा धन औरों में बाँट देता है।" कुछेक गिने-चुने ही अनुदानी बचे रहे। धन संग्रह में पिछली बार से भी अधिक समय लगा। संयोग से इस बार किसी प्रकार का प्राकृतिक प्रकोप नहीं हुआ फलस्वरूप पुस्तक प्रकाशित हो गयी।

इस अनुवाद को कई लोगों ने पढ़ा और महाभिक्षु के प्रयत्न की सराहना की। मुखपृष्ट पर संस्करण के सामने लिखा था—तीसरा संस्करण। लोगों ने पूछा—"यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तो पहली बार छपी है, इसके पूर्व के दो संस्करण कब और कहाँ प्रकाशित हुए ?"

"पहले दो संस्करण उन्हीं लोगों को दिखायी देंगे जिनके पास सेवा और प्रेम की आँखें हैं"—महाभिक्षु का उत्तर था।

सेवा-साधना से ही धरती पर स्वर्ग का अवतरण संभव

कटक में हैजे का प्रकोप फैल रहा था। उड़िया-बाजार मोहल्ले में उसका जोर सबसे अधिक था। इस मोहल्ले में गरीब श्रेणी के मुसलमानों की अधिकता थी। सामान्यतः गरीब लोग गन्दगी के प्रति लापरवाह रहते हैं, इसलिए उस बस्ती में कूड़ा-करकट के ढेर एवं अस्वच्छता बहुत अधिक थी। इस कारण से वहाँ के अधिकांश व्यक्ति हैजे के प्रकोप के शिकार हो गये थे, उनकी देखभाल, सेवा-सुश्रूषा करने वाला कोई न था। अनेकों व्यक्ति काल-कवलित होते जा रहे थे। उन लोगों की यह दयनीय दशा देखकर कुछ सेवा-भावी मानवता प्रिय बालकों को बहुत व्यथा हुई। उनकी करुणा उमड़ पड़ी और अपना एक 'सेवा दल' बनाकर उस गन्दे मोहल्ले में रहने वाले पीड़ितों की सेवा के लिए निकल पड़े। इस दल के अगुआ सुभाष बाबू थे, जिनकी अवस्था उस समय ग्यारह-बारह वर्ष के लगभग थी।

ये बालक पीड़ितों की देखभाल एवं परिचर्या करते, उनको ओषधि और पथ्य देते, समय-समय पर उनके समाचार पूछते रहते। इसके फलस्वरूप वहाँ सैकड़ों लोगों को ढाँढ़स बँधने लगा और पचासों की प्राण रक्षा हो गयी, पर यह सेवा एवं परोपकार का कार्य उसी मोहल्ले में निवास करने वाले एक व्यक्ति को अच्छा नहीं लगा। वह व्यक्ति था चोरी-बदमाशी आदि अवांछनीय कृत्य करने वाला हैदरखाँ नाम का एक पुराना गुण्डा। वह कई बार अपने दुष्कृत्यों के कारण जेल का दण्ड भुगत चुका था।

अपनी गलतियों के परिणामस्वरूप दुःख-दण्ड पाने वाले अधिकांश मनुष्य दूसरों पर दोषारोपण करते देखे जाते हैं। हैदर के मन में भी इसी प्रकार की वृत्ति बन गई थी। उसने देखा कि 'सेवा दल' के लड़के 'बाबूपाड़ा' मोहल्ले के रहने वाले हैं, जहाँ अधिकांश वकील रहते हैं। इन्हीं वकीलों के कारण उसे जेल जाना पड़ता है—ऐसी मान्यता हैदर ने अपने मन में बना रखी थी। 'बाबू पाड़ा' मुहल्ले के रहने वालों के प्रति उसने शत्रुता की भावना बना ली थी! वह उन बालकों को भी शत्रु भाव से देखता था जो हैजा-पीड़ितों की सेवा-सुश्रूषा करने उसके मुहल्ले में जाते थे। उसने मुहल्ले के लोगों को भड़काना शुरू किया कि ये सब बड़े आदमियों (धनिकों) के लड़के हैं, इनको अपने मुहल्ले में ज्यादा आने देना अच्छा नहीं है। वहाँ के गरीब लोग हैदर के उद्दण्ड स्वभाव से अवगत थे, इसलिए उसकी उचित-अनुचित सभी बातों को सामान्यतः मान लेते थे। वे लड़कों से सेवा कराने से इनकार करते, दवा आदि लेने के लिए मना करते, पर स्वयं सेवक दल के बालक उनकी बात का बुरा न मानकर अत्यन्त विनम्र व्यवहार करते हुए और अधिक सेवा करने लगते। उस अवसर पर दल के अग्रणी सुभाष ने यह भी कहा—'देख-लेना, यह हैदर ही एक दिन हमारा सबसे बड़ा सहयोगी बनेगा।'

संयोगवश तीन-चार दिन बाद ही हैदर के पुत्र को हैजा हो गया। वह डॉक्टर की तलाश में नगर के एक सिरे से दूसरे सिरे तक चक्कर लगा आया पर छोटे-बड़े सभी चिकित्सक, किसी न किसी रोगी की चिकित्सा में व्यस्त थे। निराश होकर बहुत देर बाद जब वह अपने घर वापस लौटा तो उसने दूर से देखा कि उन बालकों का दल उसी के घर में है। कुछ लड़के उसके घर की सफाई में तन्मय थे, कुछ बच्चे की सेवा में तैनात थे और दल का नेता उसके पुत्र को प्रेमपूर्वक दवा पिला रहा था।

हैदर इस दृश्य को देखकर स्तब्ध खड़ा रह गया। उसकी शक्ति, गुण्डापन और उन बालकों के प्रति शत्रुता भाव न जाने कहाँ तिरोहित हो गए ? उसकी आँखों से अश्रुधारा बह निकली, गला रुँध गया। बड़ी कठिनाई से उसने अपने आपको संभालकर कहा—'मैं हैदर गुण्डा हूँ बालको ! क्या तुम नहीं जानते कि मैं तुम्हारा शत्रु हूँ।' सुभाष ने उसकी ओर देखकर कहा, "यह रोगी हमारा भाई है और भाई का पिता हमारा शत्रु नहीं हो सकता।"

हैदर ने अपने जीवन में कभी ऐसी मधुर और सहानुभूति पूर्ण वाणी नहीं सुनी थी। उसके हृदय की रही-सही कलुषता भी धुल गयी। अनायास ही इन सेवाव्रती बालकों के लिए उसके दोनों हाथ जुड़ गये और अवरुद्ध कंठ से कहा—'खुदा के लिए मुझे माफ करना बालको !"

सुभाष और उनके साथी बालक आत्म-सन्तोष एवं हार्दिक उल्लास से हुलस रहे थे। उस रोगी बच्चे का भी आधा रोग तो अपने पिता के अंतः परिवर्तन को देखकर उसी समय दूर हो गया। इसके बाद तो हैदर स्वयं उन सेवाभावी बालकों के सेवा कार्य में सहयोग करने लगा।

जाति-पाँति, ऊँच-नीच के भेदभाव को भुलाकर यदि सभी लोग पिछड़े रुग्ण व्यक्तियों की सच्ची सेवा में लग सकें तो इस धरती पर स्वर्ग जैसा वातावरण उत्पन्न कर सकना सम्भव है।

सेवा, बिना किसी शर्त की

"यह प्रयाग जाना चाहता है" उस स्त्री ने श्री एकनाथ महाराज के चरणों में मस्तक रखा। "यह कुबड़ा, जो मेरी सहायता के बिना खाट से उठ भी नहीं पाता और मेरे दो छोटे बच्चे हैं। मैं उन्हें किस पर छोड़ जाऊँ ? कौन पालन करेगा उनका ?" वह रो रही थी। हिचकियाँ बँध गई थीं उसकी।

उस स्त्री का पति एक लाठी के सहारे दूर खड़ा था कमर झुकाए। उसके नेत्रों में जल था और थी अपार श्रद्धा। वह अपनी स्त्री की भाँति धृष्ट नहीं था, जो भक्त मण्डली को चीरती महाराज तक चली गयी थी। उसने सबके पीछे बड़े कष्ट से बैठकर पृथ्वी पर सिर रखा था और फिर किसी प्रकार लाठी पर बल देकर खड़ा हो गया था।

उसे कूबड़ है। सीधा खड़े होने में असमर्थ है। पैर के घुटनों और कमर में गठिया का भयंकर दर्द है। प्रातः जब पत्नी उसकी कमर और पैर कुछ देर तक दबाती है,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तब कहीं घण्टे, डेढ़ घण्टे दिन चढ़े किसी प्रकार उठ पाता है। स्त्री जितनी ही वाणी की तेज है, उतनी ही सेवा परायण भी। हृदय स्वच्छ है उसका। जो मुँह में आवे, बड़बड़ाती रहती है, किन्तु यदि किसी दिन दर्द बढ़ जाए, वह चीखने लगे तो दिन-रात एक कर देती है। गाँव के सारे वैद्यों, वृद्धों के घर दौड़ आती है। कभी तेल मलती है, कभी सेंकती है और जब कुछ वश नहीं चलता तो उसके पैरों पर सिर रखकर फूट-फूट कर रोती है। वह समझती है और उस समय भी खरी-खोटी सुनाने से बाज नहीं आती। 'तूने ही तो दही खाली, तूने मना करने पर चोरी से मूली खायी होगी। जरूर कुछ खाया होगा। बड़ा चटोरा है तू। तू मुझे मार डालेगा।' वह रोती भी जाती है। पति की शपथों पर उसे विश्वास नहीं। थोड़ी-सी उसकी जमीन है। किसी न किसी मजदूर को लेकर स्त्री खेतों में लगी रहती है। मूली, गोभी, कुम्हड़े, लौकी कोई न कोई शाक-भाजी उसके खेत में बारहों महीने मिल जाती है। पति के बदन की मालिश करके चौका-बरतन, रसोई बच्चों की देखभाल और पति को स्नानादि कराके भी वह खेतों के लिए समय निकाल लेती है। मजदूरों को डाँट-फटकार आती है। वही एक ऐसी सब्जी वाली है जो शाम को नगर में सब्जी बेचने जाती है और चिराग जले लौटती है। बिक्री के पैसे उसने कभी अपने पास नहीं रखे। आते ही पति को गिना देती है। माँग लेती है उससे व्यय की आवश्यकता पड़ने पर। हिसाब माँगना उसे नहीं आता, वैसे पति के पास पैसे न होने से वह अस्वीकार करे, माँगने पर तो झगड़ भी लेती है। उसे चटोरा कहकर डाँट भी देती है। गाँव में प्रसिद्ध झगड़ालू है। किसी ने उसके खेत में पैर रखा, किसी की गाय या बकरी बाड़ के समीप पहुँची, आसमान सिर पर उठा लेगी।

'एक बार प्रयागजी में गंगा-यमुना में गोता लगा लूँ।' कुबड़े को बहुत दिनों से धुन है। वह जब इसकी चर्चा करता है, पत्नी रोते-रोते आँखें लाल कर लेती है। खूब खरी-खोटी सुनाती है। उसे 'जीवन सफल हो जाय। फिर मर भी जाऊँ तो क्या हानि ?' उसने धीरे-धीरे पचास रुपए एकत्र कर लिए हैं। अब वह रुक नहीं सकता। गाँव का लल्लू नाई जा रहा है। झम्मन कहार जा रहा है। अलगू पाँडे जा रहे हैं। वह उनके साथ अवश्य जाएगा। उसने पत्नी को यहाँ तक कह दिया कि वह अपनी कमाई के रुपये, न ले जाने देना चाहे तो ये पचास रुपये भी ले ले। वह माँगता-खाता चला जायेगा, लेकिन इस साल तो वह जाकर रहेगा।

"मर जायेगा यह रोगी कुबड़ा उसकी सेवा के बिना। वह अपने छोटे बच्चों, खेती-बाड़ी को छोड़कर कैसे जाय ? कौन देखेगा, यह सब ? बच्चे बिलबिलायेंगे। खेत नष्ट हो जायेगा।" जब कई दिन लगातार रोने और झगड़ने का भी पति पर प्रभाव न हुआ तो किसी प्रकार समझा-बुझाकर वह उसे एकनाथ महाराज के पास लायी। महाराज समर्थ योगी हैं। उन्होंने गंगोत्री से रामेश्वर पर चढ़ाने के लिए लाये जाने वाले जल को प्यासे गधे को पिला दिया। वहीं पर भगवान रामेश्वर प्रकट हो गये। हो सकता है वह दया करें तो इसे किसी प्रकार रोक दें। कुछ समझा दें या उसकी बुद्धि बदल दें।

"एकनाथ महाराज को भी पता नहीं क्या सूझी उस दिन ? वे महात्मा हैं, साधु हैं। उन्हें चाहिए तो था कि समझा-बुझाकर पति को तीर्थ भेजने पर इसको राजी कर देते। उन्होंने तो उसे अपने पास रख लिया। भला यह भी कोई आज्ञा है। एक मास तक यहाँ आना मत। उन्होंने सोचा होगा, अच्छा मजदूर मिला। एक महीने तो बिना मजदूरी दिए रोटी पर काम करा लो। वह नहीं मानेगी इस आज्ञा को। पता नहीं उसके रोगी पति को वहाँ क्या-क्या करना पड़ता होगा ? कितना कष्ट होगा उसे ? वह देख आये तो क्या हानि ? नित्य वह जाने का संकल्प करती है, जा नहीं पाती। 'कहीं पति का कोई अकल्याण न हो।'

रात-दिन सोचा करती है वह पति के विषय में। 'पता नहीं क्या करता होगा ? कौन सबेरे उसकी टाँग और कमर मलता होगा ? कौन देता होगा उसे नहाने को गर्म जल ? पता नहीं उसे भरपेट भोजन भी मिलता होगा या नहीं बड़ा चटोरा है वह। बिना भाजी के रोटी नहीं उतरती उसके गले के नीचे। औरत से भी ज्यादा लजीला है। मुझसे ही कुछ नहीं माँगता था तो वहाँ किससे माँगेगा ? सोने को खाट भी तो नहीं मिलती होगी उसे।' रात में जब बच्चे सो जाते हैं, वह खाट पर पड़े-पड़े रोया करती थी।

पता नहीं उसे क्या सूझा था कि एकनाथ महाराज के पास ले गयी थी उसे। वह प्रयाग ही तो जाना चाहता है। कोई बुरा काम तो नहीं करना चाहता। उसी के बहाने गोता लगाने को मिल जायेगा गंगाजी में। ठीक ही तो कहता है वह, जीवन का क्या ठिकाना ? उसकी एक लालसा को भी पूरी नहीं कर सकती वह। व्यर्थ है उसका पत्नी होना। अपने दुःख का पार नहीं पाती वह आजकल।

वह पता लगाती रहती है कि गाँव से कौन, कब पैठण जा रहा है ? जाने से पहले वह खूब समझा देती है कि दया करके उसके पति का समाचार वह अवश्य लावे। जाने वाले के घर एक टोकरा बैंगन या सेम पहुँचा आती है। उमड़ पड़ती है उसकी उदारता। महाराज के लिए छाँट-छाँट कर फूल गोभी भेजती है और प्रार्थना करके बार-बार सचेत करती है जाने वाले को, कि महाराज उसके रोगी पति पर दया रखें, ध्यान रखें उसका, बड़ा शर्मीला है उसका पति।

वह कहता ही नहीं। कष्ट तो उसे होगा ही। प्रत्येक लौटने वाले से सन्देश-समाचार सुनने जाती है। उसे कभी इस बात पर विश्वास नहीं होता कि उसका पति बहुत प्रसन्न है। महाराज की उस पर बड़ी कृपा है। मोटा हो गया है वह पहिले से। उसे लगता है यात्री उसका उपहास करते हैं या उसका पति उसे बहलाने के लिए अथवा संकोचवश झूठ समाचार भेजता है।

एक महीना जैसे एक युग की तरह बीता। एक महीना पूरा होने पर गोभी-मटर का बड़ा-सा टोकरा लिए श्री एकनाथ महाराज के चरणों में लायी थी। टोकरा सामने रख महाराज के सामने पृथ्वी पर सिर रखा उसने। अब तू प्रयाग चला जाने दे इसे। आशीष के स्वरों में महाराज ने पास खड़े उसके पति की ओर देखकर हँसते हुए कहा—मैं भी तो जाऊँगी प्रभु ! कहने को तो कह दिया किन्तु पति की ओर दृष्टि पड़ते ही हक्की-बक्की हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गयी। उसका कुबड़ा पति सीधे खड़ा है। कूबड़ का पता नहीं और बड़ा स्वस्थ-प्रसन्न लगता है वह। वह मूर्ति की भाँति गुम-सुम देखती रही। नेत्रों के प्रवाह ही कहते थे कि वह आनन्द के आवेग में मरी नहीं, जीवित है अभी।

उसके पति ने एकनाथ महाराज के चरणों पर मस्तक रखा और तब उसने अपने को सँभालकर फिर सिर टेका पृथ्वी पर, पति के साथ ही।

"अच्छा तो है, अब तुम दोनों तीर्थ कर आओ !" महाराज ने हँसते हुए आदेश दिया।

"मेरा प्रयाग तो गुरु चरणों में है। पुरुष ने दोनों पैर पकड़े सन्त के। जो सब समय और सब कहीं श्रद्धालु शिष्य को सुलभ हैं। मैं अब इन्हें ले जाकर एक बार अपने घर को पवित्र किये बिना नहीं मानूँगा।" बड़ा श्रद्धा भरा था यह निमन्त्रण।

"महाराज अपने घर पधारेंगे।" वह जैसे आनन्द से पागल हो जायेगी। बिना यह देखे कि वहाँ एक भीड़ में खड़ी है, वह पति के कान के पास मुँह ले जाकर फुसफुसाने लगी 'तुम्हारे पचास रुपये मैंने सँभालकर रखे हैं और एक महीने में पचास और एकत्र कर लिए हैं। संकोच मत करो महाराज से आग्रह करने में।

"तुमने जिस परिश्रम और आदर के साथ पूरे महीने भर मेरी सेवा की है, उसका पुरस्कार देना मेरी शक्ति के बाहर है। मैं तुम्हारा अनुरोध टाल नहीं सकता। तुम्हारी पत्नी बतावेगी कि मैं कब उसके द्वार पर पहुँचूँ ?"

जी चाहता था कि कह दे वह, "महाराज चले ही चलें अभी साथ ! लेकिन वह मूर्ख नहीं। महाराज का क्या, अभी उठकर चल देंगे। क्या करेगी वह ? गेहूँ पीसना होगा, घी मँगाना होगा और आस-पास के गाँव में निमन्त्रण देना होगा। वह बड़ी धूमधाम से महाराज का स्वागत करेगी। 'एकादशी प्रभु वहीं करें और द्वादशी की जूठन से कृतार्थ करें हमें !" चतुरतापूर्वक दो दिन का समय माँगा उसने।

कुबड़ा नाई पास खड़ा था वहीं। ईर्ष्या से जला जा रहा था। "यह कुबड़ा महीने भर सेवा करके कूबड़ और गठिया से छुटकारा पा गया और महाराज उसके घर जाना स्वीकार कर चुके, किन्तु वह नित्य महाराज के पैर दबाकर अपने कूबड़ से छुट्टी नहीं पा सका।" अब कौन उसे बतावे कि गुरु की सेवा, आदर एवं श्रद्धा से करने से सब कुछ दे देती है, सारे क्लेशों का नाश कर देती है। वह तो उन्हें गुरु भी नहीं स्वीकार करता, पैर दबाता है तो इसलिए कि अन्न पाता है उसके बदले।

दूसरों की सेवा क्यों करें ?

एक दिन शरीर की कर्मेन्द्रियों ने सोचा कि हम लोग परिश्रम करते-करते मरे जाते हैं और यह पेट हमारी कमाई को यों ही मुफ्त में हजम करता रहता है। हाथ, पाँव, आँख, कान आदि ने इस बात पर बड़ा असन्तोष प्रकट किया कि हम दिनभर पिसते हैं, फिर क्या कारण है कि दूसरे हमारे परिश्रम का फल भोगें और हम यों ही रह जावें। यदि हम कमावेंगे तो हम ही खावेंगे अन्यथा काम न करेंगे और हड़ताल करके बैठे रहेंगे।

पेट ने सब अंगों को बुलाया और समझाया कि पुत्रो ! मैं तुम्हारी कमाई को खुद नहीं रख लेता हूँ, जो कुछ तुम मुझे देते हो उसे बड़े परिश्रम के साथ तुम्हारी शक्ति बढ़ाने के लिये द्रव्य बनाता हूँ और उसे तुम्हारी भलाई में खर्च करता रहता हूँ। यह क्रिया तुम्हें आँखों से नहीं दीखती, फिर भी विश्वास रखो तुम्हारा परिश्रम अप्रत्यक्ष रूप से तुम्हें वापस मिल जाता है। इसलिये हड़ताल मत करो, वरन् अधिक उत्साहपूर्वक काम करो जिससे मैं तुम्हें अधिक लाभ पहुँचा सकूँ और हृष्ट-पुष्ट तथा बलवान बना सकूँ।

यह बात किसी इन्द्रिय की समझ में न आई। उन्होंने कहा तुम पूँजीपति हो, ऐसी ही मीठी-मीठी बातें बनाकर हमारा शोषण करते रहते हो। हम तो अब अपना परिश्रम स्वयं ही लेंगे, वरना हड़ताल करेंगे। बेचारा पेट बहुत समझाता-बुझाता रहा, पर उसकी किसी ने एक न सुनी और सबने अपना काम छोड़ दिया।

जब सब अंगों ने काम करना ही बन्द कर दिया, तो भोजन पेट में कैसे पहुँचता ? निदान पेट भूखा रहने लगा। क्षुधा ज्वाला से शरीर के रस-रक्त सूखने लगे और अंगों की शक्ति नष्ट होने लगी। नेत्रों के आगे अँधेरा छाने लगा, कानों में सुनन-सुनन की आवाज होने लगी, पैरों की भड़कन बढ़ गई, हाथों का उठना भी कठिन हो गया। थकान और बेचैनी के मारे सारे अवयव घबराने लगे।

तब मस्तिष्क ने इन्द्रियों से कहा—"मूर्खो ! तुम्हारा परिश्रम कोई नहीं खा जाता। वह लौटकर तुम्हें ही वापस मिलता है। यह मत सोचो कि दूसरों की सेवा करके हम घाटे में रहते हैं। ऐसा ख्याल नासमझी के कारण ही होता है, असल में जो कुछ तुम दूसरों को देते हो वह ब्याज समेत तुम्हारे पास वापस लौट आता है। अपना कर्तव्य करो—फल तो ईश्वर तुम्हें दे ही देगा।"

हड़ताल करने के बाद इन्द्रियों की समझ में आ गया कि दूसरों के साथ भलाई अकारथ नहीं जाती। वह लौटकर फिर हमारे पास आ जाती है। परोपकार करना मूर्खता नहीं, बुद्धिमानी है क्योंकि इसका फल जितना दूसरों को मिलता है, उसका कई गुना स्वयं हमें ही मिल जाता है।

सेवाभावी की कसौटी

स्वामीजी का प्रवचन समाप्त हुआ। अपने प्रवचन में उन्होंने सेवा-धर्म की महत्ता पर विस्तार से प्रकाश डाला और अन्त में यह निवेदन भी किया कि जो इस राह पर चलने के इच्छुक हों वह मेरे कार्य में सहयोगी हो सकते हैं। सभा विसर्जन के समय दो व्यक्तियों ने आगे बढ़कर अपने नाम लिखाये। स्वामीजी ने उसी समय दूसरे दिन आने का आदेश दिया।

सभा का विसर्जन हो गया। लोग इधर-उधर बिखर गये। दूसरे दिन, सड़क के किनारे खड़ी थी एक महिला पास में रखा था घास का भारी ढेर। प्रतीक्षा थी किसी राहगीर की, आये और उठवा दे उसका बोझा। एक आदमी आया, मजदूरनी ने अनुनय-विनय की, पर उसने उपेक्षा की दृष्टि से देखा और बोला—"अभी मुझे समय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं है। मैं बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य को सम्पन्न करने जा रहा हूँ।" इतना कह आगे बढ़ गया। थोड़ी ही दूर पर एक बैलगाड़ी दलदल में फँसी खड़ी थी। गाड़ीवान बैलों पर डण्डे बरसा रहा था पर बैल एक कदम भी आगे न बढ़ पा रहे थे। यदि पीछे से कोई गाड़ी के पहियों को धक्का देकर आगे बढ़ा दे तो बैल उसे खींचकर दलदल से बाहर निकाल सकते थे। गाड़ीवान ने कहा—"भैया ! आज तो मैं मुसीबत में फँस गया हूँ थोड़ी सहायता करो मेरी।"

राहगीर बोला—"मैं इससे भी बड़ी सेवा करने स्वामी जी के पास जा रहा हूँ फिर बिना इस कीचड़ में घुसे धक्का देना भी सम्भव नहीं अतः कौन खराब करे अपने कपड़े।" इतना कहकर वह आगे बढ़ गया।

और आगे चलने पर मिली उसे एक नेत्रहीन वृद्धा। जो अपनी लकड़ी सड़क पर खटखट कर दयनीय स्वर से कह रही थी, कोई है क्या ? मुझे सड़क की बायीं ओर वाली उस झोंपड़ी तक पहुँचा दे। भगवान तुम्हारा भला करे। बड़ा अहसान होगा मुझ पर।" वह व्यक्ति कुड़कुड़ाया—"क्षमा करो माँ ! क्यों मेरा सगुन बिगाड़ती हो ? तुम शायद नहीं जानती मैं बड़ा आदमी बनने जा रहा हूँ। मुझे जल्दी पहुँचना है।"

इस तरह सबको दुत्कार कर वह स्वामीजी के पास पहुँचा। स्वामीजी उपासना के लिए बैठने ही वाले थे। उसके आ जाने पर वह रुक गये। उन्होंने पूछा—"क्या तुम वही व्यक्ति हो जिसने कल की सभा में मेरे निवेदन पर समाज सेवा का व्रत लिया था और महान् बनने की इच्छा व्यक्त की थी।"

'जी हाँ।'

'बड़ी अच्छी बात है आप समय पर आ गये। जरा देर बैठिये, मुझे एक अन्य व्यक्ति की भी प्रतीक्षा है, तुम्हारे साथ एक और नाम लिखाया गया।'

'जिस व्यक्ति को समय का मूल्य नहीं मालूम वह अपने जीवन में क्या कर सकता है ? उस व्यक्ति ने हँसते हुए कहा।'

स्वामीजी उसके व्यंग्य को समझ गये थे, फिर भी वह थोड़ी देर और प्रतीक्षा करना चाहते थे। इतने में ही दूसरा व्यक्ति भी आ गया। उसके कपड़े कीचड़ में सने हुए थे। साँस पूरी तरह बैठ नहीं रही थी। आते ही प्रणाम कर स्वामीजी से बोला—"कृपया क्षमा कीजिये। मुझे आने में देर हो गई। मैं घर से तो समय पर निकला था पर रास्ते में एक बोझा उठवाने में, एक गाड़ीवान की गाड़ी को कीचड़ से बाहर निकालने में तथा एक नेत्रहीन वृद्धा को उसकी झोंपड़ी तक पहुँचाने में कुछ समय लग गया और पूर्व निर्धारित समय पर आपकी सेवा में उपस्थित न हो सका।"

स्वामीजी ने मुसकराते हुए प्रथम आगन्तुक से कहा—'यह दोनों की राह एक ही थी, पर तुम्हें सेवा के जो अवसर मिले उनकी अवहेलना कर यहाँ चले आये। तुम अपना निर्णय स्वयं ही कर लो क्या सेवा कार्यों में मुझे सहयोग प्रदान कर सकोगे ?'

जिस व्यक्ति ने सेवा के अवसरों को खो दिया हो वह भला क्या उत्तर देता ?

निष्काम कर्म-योग की शक्ति

सम्राट चक्ववेण अपनी न्यायकारिता और प्रजावत्सलता के लिये विश्व-विख्यात रहे हों सो बात नहीं, उनकी ख्याति का प्रमुख कारण यह था कि वे सम्राट् होकर भी अपनी आजीविका अपने परिश्रम से कमाते थे।

चक्ववेण के राज्य का विस्तार दूर-दूर तक था। करोड़ों स्वर्ण मुद्राएँ कर में आती थीं, किन्तु यह सब राज्य-व्यय में प्रयुक्त होती थीं। अपने आहार, वस्त्र और आवश्यकताओं का प्रबन्ध वे आप करते थे। कृषि योग्य भूमि उनके अधिकार में थी। अपनी आजीविका के लिये सम्राट्-साम्राज्ञी स्वयं कृषि करते थे। उनका सामान्य जीवन विशुद्ध कृषक का था। ६ घण्टे उसमें लगाते थे, इससे बचा हुआ समय राज्य-कार्यों पर।

अपने परिश्रम से मनुष्य आजीविका भर कमा सकता है, परिग्रह तो तब होता है, जब मनुष्य परिश्रम करे कम और आवश्यकताओं का कोई अन्त न हो। लोभ और लालच, वासनायें और तृष्णायें सम्राट् से कोसों दूर थीं, इसलिये अर्थ संचय की उन्हें कभी आवश्यकता ही नहीं पड़ी।

अन्न अपने हाथ से उत्पन्न किया हुआ खाने से उनकी शक्ति और स्वाभिमान का कोई अन्त नहीं था। अपने खेतों से उत्पन्न की हुई कपास से रानी वस्त्र बुनतीं, वही दोनों के पहिनने के काम आते। परिश्रम का जीवन और कृत्रिमता से विरक्ति के कारण ही दोनों में विलक्षण तेजस्विता थीं।

"यथा राजा तथा प्रजा"—मार्गदर्शक उसे ही तो कहते हैं, जिसके चरण-चिन्हों का सारी प्रजा अनुसरण करती हो, जो तेजस्विता सम्राट् के जीवन में थी, वही सभासदों, पदाधिकारियों और सम्पूर्ण प्रजा के जीवन में भी थी। किसी को कोई प्रभाव न था। कहीं दैन्यता न थी, रोग और शोक इस परिश्रमी और स्वावलम्बी राज्य में कभी प्रवेश नहीं पा सके।

घटनाएँ न हों तो इतिहास का निर्माण कैसे हो ? इतिहास न हो तो पीढ़ियाँ प्रेरणाएँ कहाँ से ग्रहण करें ? एक दिन सम्राट के जीवन में भी अग्नि-परीक्षा का दिन आ ही गया।

प्रजा की स्थिति जानने के लिये नृपति प्रतिवर्ष राजकीय समारोह किया करते थे। अब तक उसमें पुरुष ही सम्मिलित हुआ करते थे। राजनयिज्ञों के माध्यम से राज्य की विदुषी महिलाओं ने अपना सन्देश भेजकर पूछा—"क्या स्त्रियों को परिस्थितियाँ अवगत कराने और सार्वजनिक समस्याओं में भाग लेने का अधिकार नहीं है ? यदि है तो राज्य की आधी प्रजा को उनके अधिकार से वंचित रखना कहाँ का न्याय है ?"

बात उचित थी, मानी गई। सत्य बात स्वीकार करने में सम्राट् ने अभी तक कभी भूल न की, इसीलिये एक भी नागरिक उनका विरोध नहीं कर सकता था। निश्चय हुआ कि सम्मेलन में महिलायें भी भाग लेंगी। उनके स्वतन्त्र शिविर होंगे, जिनका संचालन स्वयं साम्राज्ञी करेंगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस समाचार से स्त्रियों को बड़ी प्रसन्नता हुई। सम्मेलन में भाग लेने के लिये वह भी तैयारी में जुट गईं।

अन्तःपुर में स्त्रियों का निजी सम्मेलन हुआ, उसमें परस्पर हितों की चर्चा भी हुई, किन्तु स्वभाववश स्त्रियाँ अपनी मानसिक दुर्बलता भी व्यक्त किये बिना न रह सकीं। साम्राज्ञी को अत्यन्त सादे वस्त्र और आभूषण विहीन देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। उन्होंने महारानी को उसके लिये कुछ ऐसा व्यंग भाव भी दर्शाया, जिसे सहन कर सकना उनके लिये संभव न हुआ। स्त्रियों ने कहा—"हम सब आभूषण पहनें और राज-माता की वेषभूषा एक ग्रामीण की तरह हो, यह राज्य के लिए अपशकुन जैसा है।" स्त्रियों का शिविर इसी चर्चा के साथ समाप्त हुआ।

अपशकुन अब तक न था, अब हो गया। दुर्बलता का छोटा-सा छिद्र भी मनुष्य के पतन के लिए काफी है। यह दुर्बलता महारानी के मन में प्रवेश कर गई। उस दिन अवकाश पाकर उन्होंने सम्राट् चक्ववेण से महिलाओं द्वारा समर्पित सारी बात कह सुनाई। राजा ने बहुतेरा समझाया पर महारानी के मन में आभूषणों की लिप्सा ने ऐसा तीव्र प्रभाव डाला था कि वे अपने हठ से एक इन्च भी मुड़ने के लिये तैयार न हुईं।

ऐसी दुर्बलताएँ मनुष्य जीवन में स्वाभाविक हैं पर सामान्य मनुष्य उन्हें बहुत बढ़ा-चढ़ाकर देखने लगते हैं, इसलिये एक ही दुर्बलता से अनेक बुराइयों के द्वार खुलते चले जाते हैं, नृप चक्ववेण इस बात को समझते थे। इसलिये उन्होंने कोई बात शीघ्रता में नहीं की। ऐसे समय मनुष्य की अपनी स्वार्थवृत्ति या कामुकता आदर्शवादियों को भी पथभ्रष्ट कर देती है, इसीलिये चक्ववेण ने आज तक कोई पाप कार्य सकाम दृष्टि से नहीं किया था। निष्काम कर्मयोग का पालन करने में, इसी से ईश्वर-प्राप्ति सुदृढ़ होती है, क्योंकि निष्काम कर्म करने से सेवा, संयम और सदाचार की जड़ें गहरी होती चली जाती हैं। भूपति चक्ववेण अपनी आजीविका की दृष्टि से जहाँ प्रजा से निष्काम थे, वहाँ अपनी पत्नी के लिये भी उनकी निष्कामता में कोई अन्तर नहीं आया था।

उन्होंने समझाया—"प्रजा से और कर लेकर अपने स्वार्थ में नहीं लगाया जा सकता और अपनी कमाई इतनी नहीं है, जो आभूषण बनवाये जा सकें, इसलिये यदि अपनी वचत पर पुनर्विचार कर सकें तो अच्छा है।" इन बातों का भी रानी पर कोई प्रभाव न हुआ।

चक्ववेण ने सचिव को बुलाया और कहा—"लंकाधिपति रावण मेरे मित्र हैं, तुम उनके पास जाओ और महारानी के लिये आभूषण बन सके, उतना स्वर्ण उनके पास से ले आओ।" सचिव आज्ञा शिरोधार्य कर लंका के लिये चल पड़ा। रावण से उसने यह समाचार कह सुनाये। आज तक चक्ववेण ने रावण के समक्ष कभी सिर नहीं झुकाया था। अहंकारी रावण के लिये यह स्वर्ण अवसर था। उसने सचिव से कहा—"निःसन्देह हम तुम्हारे राजा के लिये अपने राज्य-कोष के द्वार खोल देंगे, किन्तु अभी नहीं, तुम जाओ और सम्राट् से कहना, वे स्वयं आयें और मुझसे याचना करें, जितनी स्वर्ण-राशि की आवश्यकता होगी, हम सहर्ष प्रदान करेंगे।"

सचिव को महारानी की आकस्मिक लोभ-वृत्ति पर उतना दुःख नहीं हुआ था, जितना दुःख उसे अपने सम्राट् के प्रति इन दम्भपूर्ण वाक्यों को सुनकर हुआ, पर उसे मालूम था, महाराज को स्वयं किसी फल की इच्छा नहीं है, वे महारानी को भी अपनी प्रजा मानकर उनके हित का संरक्षण करना चाहेंगे, इसलिये कहीं ऐसा न हो—याचना के लिये वे स्वयं चल पड़ें। स्वाभिमानी राज्य का नागरिक होकर मैं यह कैसे सहन कर सकता हूँ ?

सचिव समुद्र तट पर आये, उन्होंने समुद्र की मिट्टी से एक कृत्रिम किन्तु कलाकारितापूर्ण लंका बनाई। फिर लौटकर लंका गये और रावण को वहाँ लाकर दिखाया लो यह रही तुम्हारी लंका—अभी चाहूँ तो इसे समुद्र में डुबा दूँ, देख लो यह लंका तुम्हारी ही है न।

रावण ने ध्यान से देखा था तो घरौंदा, पर बिल्कुल लंका जैसा। सचिव की कला की प्रशंसा करते हुए रावण एक बार फिर हँसा और बोला—"सचिव ! इस लंका के डुबो देने से हमारा क्या बिगड़ेगा ?"

"सर्वत्र नष्ट हो जायेगा।" सचिव ने स्वाभिमानपूर्वक कहा—"क्या तुम इतना भी नहीं समझ पाये कि चक्ववेण का प्रत्येक नागरिक परिश्रम और अधिकार की कमाई खाता है, इसलिये उन सबकी बौद्धिक प्रतिभाएँ बहुत तीक्ष्ण हैं, यह लंकाकृति उसी का प्रमाण है। तुम नहीं समझते पर मैंने एक दृष्टि में जहाँ तुम्हारे वैभव का मूल्यांकन कर लिया है, वहाँ तुम्हारी प्रत्येक दुर्बलता का भी। तुम्हें यही दिखाने लाया था, यदि तुमने चक्ववेण को नीचा दिखाना चाहा, तो हम राज्य के नागरिक तुम्हें एक दिन में नष्ट कर देंगे।"

सचिव की बात सुनकर रावण सारी स्थिति समझ गया। जिस राज्य की प्रजा इतनी वीर हो वहाँ के सम्राट से मित्रता के बँधन बँधे ही रहने चाहिये, यह सोचकर रावण ने स्वर्ण-राशि सहर्ष प्रदान कर दी।

किन्तु सचिव जब तक राजधानी पहुँचे, महारानी अपनी भूल स्वीकार कर चुकी थीं। उन्होंने यह स्वर्ण पुनः रावण के पास भिजवा दिया और इस तरह अपनी प्रजा को लोभ-लालच के त्रुटिपूर्ण प्रोत्साहन से बचा लिया।

सेवा में बड़ी शक्ति है

जीवनकुमार कुलश्रेष्ठ—जिनका पूरा पता बताना तो उचित न होगा, अपने पिता की बात न टाल सका और उसे उनकी पसन्द की हुई एक सामान्य लड़की से विवाह करना ही पड़ा। जीवनकुमार आधुनिक विचारधारा का एम. ए. पास युवक और पाँच सौ रुपये माहवार का सरकारी नौकर था। उसकी इच्छा किसी सुन्दरी और बिल्कुल आधुनिक अपटूडेट लड़की से शादी करने की थी। पिता ने उसका विवाह जिस लड़की से किया, वह गुणवती और पढ़ी-लिखी जरूर थी लेकिन सुन्दर बहुत नहीं थी और बिल्कुल भारतीय ढंग की थी, जिसे रूप की प्यास हो, अभिनेत्रियों जैसी भंगिमाओं भरी आधुनिका की जरूरत हो, वह भला सेवा-भाव से भूषित लाजवन्ती को कैसे पसन्द करता ? वह तो अपनी सुशील पत्नी को सिर पर बोझ ही समझता था और मन-मन कुढ़ता रहता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पत्नी अपनी सेवा से पति को प्रसन्न कर लेने की चेष्टा करती और पति ? वह उसकी विनम्र सेवा से चिढ़ता। उसे फूहड़, गँवार और कुरूपा आदि न जाने क्या-क्या कहता ? पिता के प्रति अपनी नाराजगी को निरपराध पत्नी पर उतारता। धीरे-धीरे जीवनकुमार का व्यवहार इतना खराब हो गया कि पिता को दखल देना पड़ा। जीवनकुमार पिता के सामने बोलता तो कुछ नहीं किन्तु अपना सुधार नहीं करता। पिता जब लड़के को डाटने-फटकारने को कुछ कहता तो बहू हाथ जोड़कर प्रार्थना करती कि आप उनसे कुछ न कहें। जरूर मुझ में कोई कमी है जिससे उनको प्रसन्न नहीं कर पा रही हूँ।

इधर मनचले मित्रों का यह हाल कि जब देखो तब व्यंग्य करने लगते—"कहो दोस्त, आपकी 'वैजन्तीमाला' का क्या हाल है ? शादी करूँगा तो किसी बी. ए. पास लड़की से नहीं तो कुँवारा ही रहूँगा। घर में किसी फूहड़ गँवारिन को नहीं घुसने दूँगा। कहाँ गई अब वह तुम्हारी प्रगतिशीलता ?" जीवनकुमार के नासमझ मित्र यह सब कहते तो उसे चिढ़ाने और मनोरंजन करने के लिए किन्तु वह नहीं समझ पाते कि इसका उसके दाम्पत्य जीवन पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? जीवनकुमार का दुर्व्यवहार पत्नी की ओर इतना बढ़ गया कि वह बेचारी बिल्कुल परित्यक्ता जैसी हो गई।

जीवनकुमार ने पत्नी पाई, किन्तु पत्नी की प्यास न गई। वह वर्तमान पत्नी को पत्नी न मानता, उसे तो पिता का थोपा हुआ बोझ समझता। अनियन्त्रित रूप-पिपासा ने अपना रास्ता निकाला और उसका मन कार्यालय की ही एक टाइपिस्ट लड़की की ओर झुक गया। वह पूरी आधुनिक शैली की बी. ए. पास तरुणी थी। जीवनकुमार को उसके वेष-विन्यास, हाव-भाव और बातचीत में अपनी इच्छा की तस्वीर दिखाई दी। आधुनिका ने जीवनकुमार की कमजोरी भाँप ली और उसे अधिकाधिक अपने बन्धन में बाँधने का प्रयत्न करने लगी। जो खुद बँधने के लिये लालायित हो, उसका बाँधना क्या ? जीवनकुमार का रुझान आसक्ति में बदल गया और वेतन की धनराशि उस रँगीली पर खर्च होने लगी।

पिता को जब इसका पता लगा तो बहू की दशा से टूटा हुआ उनका हृदय पूरी तरह टूट गया और वे दो या तीन माह तक बीमार रहकर अपनी राह चले गये।

पिता की सम्पत्ति तो मिल ही गई थी। डर भी निकल चुका था। निदान उसने प्रेयसी को पूरी तरह रिझाने और घर में लाने का प्रयत्न शुरू कर दिया। सिनेमा और सैर-सपाटे, होटल, रेस्ट्राँ और यारों में पानी की तरह पैसा खर्च होने और आचरण बिगड़ने लगा। जहाँ एक ओर प्रेमिका सजाई और सँवारी जाती, वहाँ विवाहिता को मायके में जाकर रहने के लिए मजबूर किया जाता था। जीवनकुमार का अन्धा दौर चलता रहा। किन्तु प्रेयसी अभी पत्नी बनने को तैयार नहीं हो रही थी। बाधा स्पष्ट थी—एक पत्नी के होते दूसरा विवाह कैसे हो सकता था ? जीवनकुमार प्रस्ताव करता और उसकी आधुनिक प्रेयसी यही मजबूरी दिखा देती। भोले युवक को पत्नी कटार की तरह खटकने लगी। उसने उसे जबरदस्ती निकालकर राहत पाने और नई पत्नी के लिए घर में स्थान रिक्त कर लेने का निश्चय कर ही लिया। वह तो दुर्भाग्यवश सुरा और सुन्दरी के नशे में अन्धा हो चुका था।

जीवनकुमार के पास सबसे सरल रास्ता यही था कि अपने दुर्व्यवहार को त्रास की सीमा तक पहुँचाए, जिससे कि वह गरीबनी आप-से-आप दुःखी होकर चली जायेगी। किन्तु जो भारतीय महिलाएँ पति को सम्पूर्ण समर्पण हो चुकी होती हैं, वे कहीं इन बाधाओं से घबराती हैं ? उन्हें पूरा विश्वास रहता है कि यदि उनकी आत्मा में सच्ची भक्ति है तो आज के यह काँटे एक दिन फूल बनकर रहेंगे, वह अपने धैर्य तथा प्रेम की परीक्षा में सफल रहेगी। जीवनकुमार ने बहुत कुछ त्रास और ताड़ना का मार्ग अपनाया किन्तु पत्नी मायके जाकर रहने को तैयार न हुई।

जीवनकुमार पत्नी की जिद का जिक्र अपनी प्रेयसी से करता तो वह मुँह बिगाड़कर यह उत्तर देती कि इसमें वह क्या कर सकती है ? जब उसकी पत्नी अपने स्वार्थ के समक्ष पति के सुख की परवाह नहीं करती तो यों ही मरे, रोये। एक पत्नी के रहते वह शादी नहीं कर सकती। जीवनकुमार को एक संकेत मिला और उसने पत्नी से यह कहना शुरू कर दिया—"तुम अपने स्वार्थ के लिए यह चाहती हो कि मैं यों ही घुट-घुट कर मर जाऊँ, पतिव्रता बनने का तो दम भरती हो पर त्याग रत्तीभर भी नहीं कर सकती।" पत्नी को बड़ी चोट लगी और उसने यह कहकर मायके जाना स्वीकार कर लिया कि यदि मेरे देवता का सुख इसी में है तो मैं चली जाऊँगी।

पत्नी चली गई और जीवनकुमार यहाँ तक खुलकर खेले कि बीमार हो गये और यहाँ तक कि यक्ष्मा के शिकार बन गये। डाक्टरों ने टी. वी. घोषित कर दी और दफ्तर से छुट्टी दे दी गई। वह घर पर अकेला पड़ा रहने लगा। बुआ बेचारी जो कुछ कर पाती, करती। प्रेयसी कुछ हाल पूछने के लिए आती रही, फिर बिल्कुल आना छोड़ दिया। जीवनकुमार जब कुछ चलने-फिरने काबिल हुआ तो उसके यहाँ जाने लगा। चार-छह दिन तो उसकी प्रेमिका कुछ बोली नहीं, पर बाद में उसने एक दिन बता दिया कि मि. कुलश्रेष्ठ, टू बी वेरी फ्रैंक (आपसे साफ-साफ कह दूँ) कि डाक्टरों ने आप पर टी. वी. घोषित कर दी और आप फिलहाल अच्छे भी नहीं हुए हैं। कृपया ज्यादा मेरे पास न आया करें क्योंकि यह छूत का रोग है और मैं बहुत डरती हूँ।

जीवनकुमार आसमान से भूमि पर गिर पड़ा। उसे अपने प्रेमिका का सच्चा स्वरूप दिखाई देने लगा। उसने कुछ कहा नहीं, केवल चुपचाप उठकर चला आया। घर आकर अचेत हो गया। बुआ घबरा गई, बहुत कोशिश करने पर होश में आने के बाद उसकी तबियत का हाल पूछा तो कहा—"कुछ नहीं बुआ, जो किया उसका फल पा लिया, अब मैं बचूँगा नहीं। आप ऐसा करें कि कागज मँगा लें। मैं आपके नाम वसीयत लिख दूँ। हो सके तो अपनी परित्यक्ता बहू की भी मदद कर देना। मैं तो किस मुँह से उसे कुछ कहूँगा ?"

बुआ ने जल्दी से खबर भेजकर बहू को सूचित किया। जीवनकुमार की पत्नी, पिता व भाई के मना करने पर भी यह कहकर चली आई कि अब उन्हें मेरी सेवाओं की सख्त जरूरत है। वह आ गई और सच्चे मन से पति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की सेवा में जुट गई। दिन और रात, भूख और प्यास, दवादारू और व्रत-उपवास, पूजा और अनुष्ठान को उस व्रतवती ने एकरूप कर दिया। सेवा और प्रार्थना फलवती हुई। कुछ ही दिनों में जीवनकुमार न केवल अच्छा हो गया बल्कि पूर्णरूपेण नीरोग होकर स्वस्थ हो गया। उसका जीवन एक नई चेतना, नये प्रकाश और नये उल्लास से भरकर फूल की तरह खिल उठा। अब वह बहू को बहू ही नहीं, आराध्या के भाव से मानने और आदर करने लगा और अपने इस भाव में जब कभी वह विभोर होकर यह कहता कि 'देवी ! मेरे पापों को भुलाकर मुझे क्षमा जरूर कर देना।' तब पत्नी नाराज होकर कहती कि बस आपकी इन्हीं बातों पर एक दिन लड़ाई होने वाली है और हँस कर कमरे में भाग जाती। दोनों पति-पत्नी अब बहुत प्रसन्न तथा सन्तुष्ट थे। बुआ के सुख का तो पारवार ही नहीं था, किन्तु पता नहीं दफ्तर की टाइपिस्ट को इस सब परिवर्तन का पता लगा या नहीं।

विराट् की आराधना ही सच्ची पूजा

मई १९५८ की सुबह। विनोबा पण्ढरपुर (महाराष्ट्र) के विठोबा मन्दिर के चबूतरे पर अपने सहयोगियों के साथ बैठे कुछ विचार-विमर्श कर रहे थे। तभी गेरुआ वस्त्र पहने अधेड़ आयु की एक महिला उपस्थित हुई। विनोबा को प्रणाम किया और एक कोने में चुपचाप खड़ी होकर उनकी बातों को सुनने लगी। इशारे से विनोबा ने उसे बैठ जाने को कहा। थोड़ी देर में वार्ता समाप्त हुई।

"कैसे आना हुआ ?"—विनोबा ने आगन्तुक को सम्बोधित किया।

"बहुत दिनों से मिलने की इच्छा थी, सो चली आयी, पर मैंने जैसा समझा था, आप वैसे नहीं निकले।"

"कैसा ?"

"सोचा था आप हमारे जैसे गेरुआ वस्त्र धारण करने वाले कोई योगी होंगे। 'सन्त विनोबा' नाम से तो ऐसा ही प्रतीत होता है न, पर अब साक्षात्कार से स्थिति साफ हो गयी।"

"एक बात पूछूँ ?"—महिला का सविनय प्रश्न था।

"पूछो !"

"आपका चिन्तन और आचरण बड़ा सात्विक है। वेशभूषा भी सन्तों जैसी ही है। आवश्यकताएँ भी न्यून हैं। यदि आप कहीं एकान्त साधना करते होते, निश्चय ही ईश्वर साक्षात्कार इसी जन्म में हो जाता, फिर आपने समाज सेवा क्यों अपनायी ?"

"जब आज कर्म की आवश्यकता है, तो क्या आप यह नहीं समझती कि लोग धर्म के नाम पर मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारों में पूजा-उपासना की दुहाई देकर समय क्षेप कर रहे हैं ?" विनोबा का उत्तर था।

"तो क्या आपका तात्पर्य ईश्वर उपासना छोड़ देने से है ? आस्तिकता त्याग, नास्तिकता स्वीकारने से है ?"

"नहीं, मेरा यह आशय कदापि नहीं है। मेरा तात्पर्य मात्र इतना है कि यदि भगवान कण-कण में सर्वत्र हैं तो उसकी आराधना मन्दिर तक में ही सीमित क्यों हो ? मन्दिर या गुरुद्वारे में ही क्यों हो ? वह तो मनुष्य की सृष्टि है और उसमें तो केवल उसी की कला की झलक मिलती है, बुद्धि-कौशल का पता चलता है। यदि ईश्वर की झाँकी हमें करनी है तो इस विशाल विश्व पर दृष्टिपात क्यों नहीं करें, जिसका सृजेता मात्र ईश्वर ही है—वह ईश्वर जिसने मनुष्य का भी निर्माण किया, तो हमें उसके साकार सजीव रूप की आराधना क्यों नहीं करनी चाहिये ?"

"आपका मतलब जनता-जनार्दन की सेवा से है।"

"हाँ !"—विनोबा ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया और गम्भीर वाणी में कहना आरम्भ किया—"मनुष्य भगवद् सृष्टि का श्रेष्ठ और वरिष्ठ प्राणी है। हर पिता को अपने श्रेष्ठ पुत्र से अधिक स्नेह और लगाव होता है। जब वह पतित एवं धर्मच्युत होने लगता है, तो उसे दुःख भी कम नहीं होता। ऐसे में कोई यदि उसके पुत्रों की सहायता करता है, उन्हें सही मार्ग दिखाता है, तो उसे खुशी भी कम नहीं होती और वह बदले में उसे पारितोषक भी देता है। क्या आपने वह कहानी नहीं सुनी, जिसमें एक सेठ का रुपये का थैला खो जाने पर, उसे एक व्यक्ति द्वारा लौटा देने पर उसकी नेकनीयती एवं ईमानदारी पर खुश होकर उसे बड़ा इनाम दिया था। ईश्वर को भी ऐसी ही प्रसन्नता होती है, जब कोई उसकी सन्तान और विश्व उद्यान की उन्नति-प्रगति के लिये तत्पर होता और आगे बढ़ता है। प्रतिदान में अनुदान वरदान से उसे भी निहाल कर देता है।"

"तो क्या आप यह कहना चाहते हैं कि ईश्वर को अपनी आराधना कराने की तुलना में अपनी रचना की आराधना अधिक प्रिय है ?"

"बिल्कुल ठीक समझीं। हर रचनाकार अपनी पूजा कराने की तुलना में इसे कहीं अधिक पसन्द करता है कि उसकी रचना पूजित हो।"

"तनिक और स्पष्ट कीजिये।"—आगन्तुक महिला ने जिज्ञासा प्रकट की।

"मूर्तिकार प्रतिमा तो बना देता है।"—विनोबा कहने लगे—"पर प्रशंसा तो विग्रह की सुन्दरता की ही होती है। मूर्तिकार की सुन्दरता का कहाँ कोई बखान करता है ? उसकी सुन्दर कलाकृति में उसकी निपुणता की झाँकी लोग अवश्य कर लेते हैं, फिर भी पूजी तो मूर्ति ही जाती है। स्वयं विग्रह निर्माता की भी यही इच्छा होती है कि रचना की ही पूजा हो, लोग उसको ही सिजदा करे, क्योंकि वह भलीभाँति जानता है कि उसकी पहचान और उसके प्रति लोगों की श्रद्धा उसकी रचना के कारण ही है और उसी के द्वारा वह चिरस्थायी एवं चिरस्मरणीय बना रह सकता है। ईश्वर भी यही पसन्द करता है कि उसका विश्व उद्यान लहलहाता रहे और उसके उसी स्वरूप की साज-संभाल व पूजा लोग करें। प्रतिमा में समाये रूप की नहीं।"

बात संन्यासिनी की समझ में आ गयी। उसने इसे भलीभाँति आत्मसात कर लिया कि निर्माण की रक्षा में ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निर्माता की इच्छा निहित होती है। इसी कार्य के द्वारा उसे प्रसन्न किया जा सकता है।

उसने विदाई ली। विनोबा को प्रणाम किया और चल पड़ी। रास्ते में तरह-तरह के विचार उठने लगे। मंथन प्रारम्भ हुआ। वह सोचने लगी, "हाय ! दस वर्ष मैंने यों ही गँवा दिये। घर, परिवार और देश त्यागकर साधु-मण्डली में इसलिये सम्मिलित हो गयी थी कि सत्संग एवं भजन-कीर्तन से ईश्वर को प्राप्त कर लूँगी, पर आज बोध हुआ कि अब तक मैं भ्रान्ति में थी। इससे तो दोहरा घाटा हुआ—'न माया मिली न राम' उल्टे पलायनवादी, हरामखोर, कामचोर जैसे विशेषणों का कलंक सिर पर लदा। इससे तो अच्छा होता कि निराकार ईश्वर का साकार स्वरूप-दरिद्रनारायण, समाज देवता की आराधना करती, तो प्रत्यक्ष श्रद्धा, सम्मान, शान्ति-सन्तोष तो मिलते ही। यह क्या ईश्वर के प्रत्यक्ष अनुदान नहीं हैं ? अब भी अवसर है, मुझे इस भ्रम से उबरना और समाज सेवा में जुट पड़ना चाहिये। क्या ही अच्छा होता, हमारी ही तरह भारत के तथाकथित संन्यासियों को भी समय रहते कर्तव्य बोध हो जाता ? काश ! वे यह समझ पाते कि घण्टों भजन-कीर्तन में समय बिताने और विग्रह के समक्ष आठ-आठ आँसू बहाने में भगवान की सच्ची भक्ति नहीं है, वरन् सच्चा भक्त तो वह है, जो समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्वों का सही-सही पालन करे। स्वयं महाकाल की भी तो यही घोषणा है कि सच्चा भक्त वह है, जिसमें तड़पन हो, करुणा हो और सक्रियता हो। तड़पन समाज के प्रति, करुणा दूसरों के प्रति और सक्रियता इनके लिये स्वयं की तत्परता के प्रति। यह भक्त की बदली हुई परिभाषा है। इससे ऐसा लगता है कि अब भगवान ने भी अपनी मनःस्थिति बदल ली है और बदली हुई परिस्थिति में अब ऐसे ही लोगों पर अपनी सवारी गाँठने का निश्चय किया है। अतः हम सबको उनका वाहन बनने के लिये अब और समय न गँवाकर तत्पर हो जाना चाहिये।

विचारों का तारतम्य चला एवं एक नया कर्तव्य बोध जगा, तो उसने अपना गेरुआ बाना त्याग दिया और समाज-सेवा में कूद पड़ी एवं आजीवन बम्बई की गन्दी बस्तियों तथा आस-पास के गाँवों में अछूतोद्धार का काम करती रहीं। यह और कोई नहीं अपने देश को त्यागकर भारत में साधनात्मक जीवन बिताने के लिये आने वाली जर्मन महिला ल्यूसियेन थी, जिसका नाम बदलकर बाद में विनोबा ने हेमा बहिन रख दिया था। आज ऐसी ही बहिनों की आवश्यकता समाज को है।

सुमन का शिव संकल्प

"सुशोभन सृष्टि को मैं सुन्दर शोभायमान बनाऊँगा-देवत्व की मैं अभ्यर्थना करूँगा-संसार को मैं ऐसी सुवास दूँगा जिससे जन-जन का मन पुलकित एवं प्रफुल्लित हो उठे।"—एक नन्हा-सा पुष्प बीज धरती की क्रोड में अपने इस शिव-संकल्प के साथ कभी इधर कभी, उधर करवट बदल रहा था ! धरती उसके बौनेपन पर हँस पड़ी बोली—"बाबले ! तू मेरा भार सहन कर जाये यही बहुत है। कल्पना लोक मृग-मरीचिका में तू कब से फँस गया ?"

पुष्प बीज मुसकराने लगा। अभी तक उसे एक जल की बूँद ही मिल पाई थी, पर उसी ने पुष्प बीज के मुसकराते अधरों से ऊपर उठने का उपक्रम किया। बीज की आत्मा उसी के साथ फूट पड़ी। मृत्तिका कणों से धीरे-धीरे तह ऊपर उठ आई और जीवन के द्वितीय चरण की तैयारी करने लगी।

उगी हुई टहनी को देखकर वायु देवता ने अट्टहास किया—ये रे अबोध पौधे तूने मेरा विकराल रूप नहीं देखा, मैं अपनी उनन्चास शक्तियों सहित चलता हूँ तो पर्वत ढह जाते, समुद्रों में तूफान आ जाता है, तेरी तो औकात ही क्या ? विशाल वट-विटप तक ढेर हो जाते हैं।

फूल का वह नन्हा पौधा अति विनम्र बना। कभी वह दायें झुका, कभी बायें। लहराना उसके जीवन की मस्ती बन गई। तूफान आये, बड़े-बड़े वृक्ष धराशायी हो गये, पर बड़ी जीवट थी उस विनम्रता में जिसके सहारे पौधा बना ही नहीं रहा, निरन्तर और निरन्तर विकसित होता गया।

उपवन में उगा झंखाड़ पौधे का यह बढ़ना देख नहीं सका। ऐसे झंखाड़ से सारा उद्यान भरा पड़ा था। चारों ओर से उन्होंने पुष्प-वृक्ष पर आघात करना प्रारम्भ कर दिया। किसी ने जड़ों को आगे बढ़ने से रोका किसी ने तने को। कई ने पत्तों को उजाड़ने की साजिश की। पौधा घायल हो जाता था, पर हिम्मत नहीं हार रहा था। उसकी धुन पर माली मुग्ध हो उठा। एक दिन उसने विघ्न डालने वाली उन तमाम झाड़ियों को काट गिराया। अब पौधे को अपने संकल्प पूर्ति की दिशा में क्षिप्रगति से बढ़ने का नूतन संबल मिला। सो उसकी गति भी वेगवती होने लगी।

ऊपर उठते पौधे को देखकर सूर्यदेव अहंकारवश कुपित हो उठे। मेरी ऊँचाई छूने का साहस करने वाले और पौधे मेरी प्रचण्ड ताप के कारण भारी वृक्ष तक सूख जाते हैं फिर तुझ पर तो कोई छाया करने वाला भी नहीं। आखिर तू अपनी रक्षा करेगा कब तक ?

पौधा कुछ बोला नहीं, वह था कर्मठ कर्मयोगी। तितीक्षा को उसने अपने जीवन में धारण किया, तपश्चर्या ने उसके प्राणों में नई चेतना, नया प्राण भरना शुरू कर दिया। उस दिन उसमें प्रथम कलिका विकसित हुई। पहली बार संसार ने देखा, जो बीज की तरह अपने आपको गलाना जानता है। जो बाधाओं से टक्कर लेना जानता है प्रतिघातों में भी जो उत्तेजित और विचलित नहीं होता, तितीक्षा से जो कतराता नहीं, उसी का जीवन सौरभ बन प्रस्फुटित होता है—देवत्व की अभ्यर्थना करता है और संसार को ऐसी सुगन्ध से भर देता है, जिससे जन-जन का मन पुलकित और प्रफुल्लित हो उठता है।

स्वर्ग का अधिकार

विधाता ने एकबार जय और विजय को धरती पर भेजा और कहा—पता लगाकर आओ—इस समय धरती में स्वर्ग का सच्चा अधिकारी कौन है ?

जय और विजय अपना विमान लेकर पृथ्वी में उतरे और लोगों की पहचान करते हुए उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ध्रुव की ओर चल पड़े। उन्होंने देखा सारी पृथ्वी के लोग धर्म-कर्म में लीन हैं कोई जप कर रहा है कोई पाठ, कोई आरती कर रहा है, तो कोई अर्चन सभी धर्म-कर्म में लगे साधकों से जय-विजय प्रश्न करते—भाई यह सब क्या और किसलिये कर रहे हो—उत्तर मिलता—भाई आप नहीं जानते यह संसार नश्वर है। एक दिन यहाँ आये सभी लोग मर जाते हैं फिर अपने-अपने कर्मों के अनुसार अनेक योनियों में भटकते-फिरते हैं, हम भगवान की स्तुति-अर्चना कर रहे हैं, ताकि मृत्यु के बाद हम लोग स्वर्ग प्राप्त करें।

आगे बढ़ते हुए जय-विजय विषुवत रेखा के एक घने जंगलों से घिरे गाँव में पहुँचे। अँधेरा हो गया था रात ने अपनी काली चादर से संसार को ढक लिया था तभी उन्होंने देखा—सामने एक वृद्ध दीपक जलाये बैठा है, भगवान ने उसकी आँखें हर ली हैं, पर तो भी वह दीपक के प्रकाश में उधर से जो गुजरता है, उसे प्रकाश दिखाता है और आगे का रास्ता बताता है। कीचड़ में सने हुए लोगों के हाथ पैर धुलाकर उन्हें कुछ क्षण विश्राम के लिए बैठाकर आगे का मार्ग बता देता है। भूखे, प्यासे, अन्धे वृद्ध को इस प्रकार सारी रात पथिकों को प्रकाश दिखाते देखकर जय-विजय को बड़ा विस्मय हुआ, प्रातःकाल होने पर उन्होंने सोचा सम्भव है, अब वृद्ध भजन-अर्चन करें, पर उन्होंने देखा कि सूर्य का प्रकाश जैसे निकला वृद्ध ने अपनी चारपाई सँभाल ली और विश्राम का उपक्रम करने लगा।

जय-विजय समीप आकर बोले—"आर्य ! यह समय उपासना का है क्या तुम पूजा-पाठ नहीं करते ? क्या तुम्हें स्वर्ग नहीं जाना ?" वृद्ध ने हाथ से कोई वस्तु टटोलते हुए पूछा—"तात् ! यह उपासना क्या होती है ? स्वर्ग किसे कहते हैं ? मुझे तो कुछ मालूम नहीं। रात रास्तागीरों को राह दिखाने में बीत जाती है, दिन विश्राम करने में। तीसरी वस्तु का मुझे ज्ञान ही नहीं है।"

जय और विजय ने वृद्ध से व्यर्थ वार्तालाप में समय नष्ट करना ठीक न समझा—वे वहाँ से चल पड़े और विचरण करते हुए विधि लोक वापस लौट आये। प्रजापति ने प्रश्न किया—"तात् ! कहाँ हैं तुम्हारे दस्तावेज लाओ देखूँ तो पृथ्वी में कितने लोग स्वर्ग के सच्चे अधिकारी हैं।"

जाँच पुस्तिका पढ़ते-पढ़ते सृष्टि कर्त्ता की आँखें वृद्ध के जीवन वृत पर जा टिकीं। बहुत देर तक विचार करते देख जय-विजय बोले—"तात् ! छोड़िये इसे, इस बुड्ढे को यह भी नहीं पता कि संसार में स्वर्ग-मुक्ति भी होती है उसके लिये कुछ जप-तप भी किया जाता है ?"

विधाता गम्भीर हो गये बोले—"अबुस ! यह तुम्हारा मूल्यांकन है। मेरी दृष्टि में तो एकमात्र यही व्यक्ति स्वर्ग का अधिकारी है। ईश्वर का नाम लेने की अपेक्षा उसकी व्यवस्था में हाथ बँटाने का पुण्य अधिक है। वृद्ध वही करता है सो औरों को स्वर्ग मिले या न मिले यह तो उनके कर्मों के निर्णय से पता चलेगा, पर वृद्ध के कर्म तो साक्षात् ईश्वर उपासना है, उसे स्वर्ग से कौन वंचित कर सकता है ?"

जीवन-मुक्ति का अधिकार

शिखिध्वज मालव के महान् यशस्वी सम्राट् थे। सम्राट होने के साथ शिखिध्वज उदार और सदाचारी भी थे। वे सदैव शास्त्रों की मर्यादाओं का पालन करते थे। उनका विवाह सौराष्ट्र प्रदेश की राजकन्या चुड़ाला के साथ हुआ। चुड़ाला भी अत्यन्त विदुषी और रूपवती थी। एक-दूसरे को पाकर दोनों की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा।

बहुत काल तक दोनों सांसारिक और इन्द्रिय-जन्य सुखों का उपभोग करते रहे पर उसमें स्थायी तृप्ति कभी न मिली। घृत डालने से जिस प्रकार अग्नि प्रज्ज्वलित होती है, भोगों से उसी तरह भोगों की इच्छा शान्त नहीं प्रज्ज्वलित होती है, यह भगवान का विचित्र विधान है। सम्भवतः ऐसा इसलिये किया गया कि मनुष्य इन पार्थिव सुखों को सब कुछ मानने की भूल न करे।

बहुत दिन तक भोगों का आनन्द लूटने में उनकी तमाम शक्तियाँ क्षीण हो चलीं। चित्त वासना में डूबा रहने से घृणा और संसार से विरक्ति हो चली, तब राजा और रानी दोनों ने परस्पर विचार किया कि ऐसे आनन्द की खोज की जाये, जिसका कभी अन्त न हो। जिसमें इन्द्रियों की शिथिलता, घृणा और मनोमालिन्द आदि कुछ न हो।

राज्य के विद्वान् मनीषियों ने बतलाया—"महाराज ! आत्म-ज्ञान ही वह मार्ग है, जो मनुष्य को स्थायी सुख-शान्ति और आनन्द प्रदान कर सकता है। जब मनुष्य किसी वस्तु की खोज करने लगता है तो उसे उसी क्षेत्र में ऐसी-ऐसी बातों का पता चलता है, जिनके बारे में उसे कभी कल्पना भी न हुई हो।" महाराज शिखिध्वज और देवी चुड़ाला दोनों ने आत्म-तत्त्व का विशद् ज्ञान प्राप्त किया। उसे प्राप्त करने के अनेक योग-साधन और मार्ग-दर्शन प्राप्त किये। फिर दोनों ही उस प्रयत्न में जुट गये।

चुड़ाला की बुद्धि सूक्ष्मग्राही भी थी और अपेक्षाकृत पवित्र भी। कोमलता, करुणा, क्षमा और उदारता जैसे गुण नारी में स्वभाव से ही अधिक होते हैं, इसलिये उन्हें आत्म-ज्ञान के मार्ग में काम, क्रोध, स्वाध्याय से अरुचि जैसी बाधाओं ने ज्यादा पीछा नहीं किया। स्वल्पकाल की साधना और तपश्चर्या से ही उन्हें आत्मानुभूति हुई। उनका मुख मण्डल सौन्दर्य और आत्मानन्द से खिल उठा। अब उन्हें संसार के अणु-अणु में आनन्द प्राप्त करती हुई, अपनी ही आत्मा दिखाई देने लगी। सब दुःख-द्वन्द्व छूट गये। प्रसन्नता ही प्रसन्नता, उल्लास ही उल्लास, शान्ति और आनन्द उनके जीवन में भर गया। गृहस्थ जीवन में रहते हुए भी उन्हें जीवन-मुक्ति प्राप्त हो गई।

शिखिध्वज का मन, योग साधना में तब तक ही लगता जब तक इन्द्रियाँ शिथिल होतीं पर न उनसे स्वाद, संयम सधा और न चित्त-वृत्तियों को रोकने के लिये उन्होंने ज्ञानार्जन की वृत्ति अपनाई। इसलिये वे पीछे रह गये। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ कि चुड़ाला के जीवन में आनन्द का स्रोत कहाँ से फूट रहा है ? सामान्य काम-काज में हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश से भी वे अप्रभावित और सदैव प्रसन्न कैसे रहती हैं ? पूछने पर रानी ने बताया—"महाराज ! हम उस स्थिति में हैं, जिसकी खोज के लिये हम दोनों साथ-साथ चले थे।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चुड़ाला अपने पति को मार्ग सुझाती, किन्तु महाराज शिखिध्वज उसे अपना अपमान समझते। उन्हें किसी विमति पण्डित ने यह बता दिया कि स्त्रियों को आत्म-ज्ञान की साधना का अधिकार ही नहीं है, क्योंकि आत्म-ज्ञान घर में नहीं मिलता। उसके लिये जंगल में एकान्तवास करना पड़ता है, पर स्त्रियाँ एकान्तवास कर ही नहीं सकतीं इसलिये नारी को आत्म-ज्ञान का अधिकार प्रदान नहीं किया गया।

शिखिध्वज उस स्थिति में नहीं थे कि किसी भी बात का समाधान अपनी बुद्धि और विवेक से कर लेते। रानी ने बहुत समझाया कि महाराज ऐसे प्रश्नों पर मनुष्य को किसी की राय को सीधे नहीं मान लेना चाहिये, अपनी बुद्धि से भी सोचना चाहिये। आप स्वयं विचार करें क्या यहाँ रहकर आपको एकान्त में रहने से अधिक सुविधायें नहीं हैं ? अपनी इच्छा से आप कितना ही समय योग साधनाओं के लिये नियत कर लें, पूजा, उपासना, स्वाध्याय और मार्ग-दर्शन के इतने अच्छे साधन यहाँ हैं, उतने अच्छे साधन वन में कहाँ मिल सकते हैं ?

बहुत समझाया किंतु राजा ने एक न सुनी। उन्हें लगा स्त्री की बात मानना पौरुष का अपमान है। इस अहंकार ने ही एक दिन उन्हें घर छुड़ा दिया। महाराज राज्य छोड़कर वन चले गये और आत्म-ज्ञान की साधना में लग गये।

वृत्तियाँ तो आखिर वृत्तियाँ ही हैं। यहाँ रानी को देखकर उनकी काम-वासना भड़कती थी, वहाँ पक्षियों और दूसरे जीव-जन्तुओं को काम-किल्लोल करते देखकर उनका हृदय क्षुब्ध हो उठता, अतएव पर्वतीय उपत्यिका में आने वाली किसी भी नारी को वे कामुकता की दृष्टि से देखते। काम-संवेग तृप्त नहीं होते, जो क्रोध, क्रोध से मोह पैदा होते ही हैं। राजा इसी इन्द्रजाल में पड़ा रहा। न स्वर्ग, न मुक्ति। जो थोड़े आराम और प्रसन्नता के साधन थे, सो भी हाथ से छिन गये। अपने अविवेक और उतावलेपन पर स्वयं शिखिध्वज को बहुत दुःख हुआ।

इधर राजा के एकाएक चले जाने से राज्य में विद्रोह और अराजकता की स्थिति उत्पन्न न हो जाये, इसलिये देवी चुड़ाला ने राज्य-संचालन अपने हाथ में ले लिया और यह घोषणा कर दी कि महाराज पर्यटन पर गये हैं, जब तक लौटते नहीं तब तक शासन-भार हमें ही सँभालना है। बिना किसी पक्षपात या भेद-भावना से सभी राज्य सम्बन्धी काम-काजों का निपटारा कुशलतापूर्वक करती रहीं।

अब उन्होंने यह भी जानना चाहा कि राजा की स्थिति क्या है, एक दिन अपने सूक्ष्म शरीर को योग क्रियाओं द्वारा बाहर निकालकर उन्होंने राजा की अब तक की स्थिति का सब पता लगा लिया। अभी तक उन्हें वासनाओं से मुक्ति नहीं मिली, यह देखकर चुड़ाला को बड़ी चिन्ता हुई पर वे हतोत्साहित न हुईं। राज्य-भार सँभालते हुये भी उन्होंने राजा की सहायता का निश्चय किया। इससे उनकी व्यस्तता तो बढ़ गई, किन्तु मानसिक आल्हाद और आत्मिक-प्रसन्नता में कोई अन्तर न आया।

चुड़ाला ने ऋषि-कुमार का छद्म-वेष बनाया और महाराज के सामने आ उपस्थित हुईं। महाराज इस वेष में रानी को पहचान नहीं पाये, उन्होंने उन्हें ही मार्ग-दर्शक गुरु मान लिया। रानी उन्हें दिनभर योगाभ्यास कराती और निश्चित समय पर राजधानी पहुँचकर राज्य का कार्यभार भी सँभालती। राजा इसलिये प्रसन्न थे कि अब उनकी साधना अच्छी तरह चल रही थी, उन्हें आत्म-ज्ञानी गुरु मिल जाने पर बड़ा सन्तोष था लेकिन एक बात उन्हें बराबर परेशान किये थी कि उनके गुरु रात्रि में अदृश्य क्यों रहते हैं ?

एक दिन उन्होंने यह प्रश्न ऋषिकुमार से ही पूछा तो उन्होंने दुःखी होकर बताया कि "उन्हें एक ऋषि ने शाप दे दिया है कि तुम रात्रि में स्त्री हो जाया करोगे।" यह सुनकर राजा हँसे और कहने लगे—"महात्मन् ! इसमें दुःख की क्या बात है, स्त्री हो या पुरुष सब आत्मा है। अपना-अपना कर्त्तव्य पूरा करने पर भी आत्मा का स्वरूप तो नितान्त पवित्र और दिव्य है, पाप तो आसक्ति और वासनाएँ हैं। आप उनसे सर्वथा रहित हैं तो फिर दुःख करने की क्या बात ?"

राजा को इस तरह आत्म-ज्ञान प्राप्त हुआ देखकर चुड़ाला अति प्रसन्न हुईं। अब उन्होंने अपने आपको प्रकट कर दिया। महाराज को बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने रानी का आभार माना और स्त्री-पुरुषों में भेद मानने के अपने पूर्व हठ पर बड़ा पश्चाताप किया। शिखिध्वज पुनः गृहस्थ और राज्य के उत्तरदायित्वों का पालन करने लगे।

इतनी कथा कहने के बाद महर्षि वशिष्ठ ने राम को समझाया—"युवराज राम ! इस उपाख्यान का तात्पर्य यही है कि आत्म-ज्ञान प्राप्ति का अधिकार स्त्री और पुरुष दोनों को है और उसके लिये घर छोड़ने की आवश्यकता नहीं बल्कि आसक्ति विमुख होना चाहिए।"

बैरी के प्रति विश्वास, अपना सर्वनाश

सम्राट् ब्रह्मदत्त के पुत्र को दक्षिणांग पक्षाघात हो गया। दाहिने हाथ, दाहिने पैर, दाहिनी आँख, दाहिने कान-शरीर के समस्त दक्षिण पार्श्व ने अपनी क्षमतायें खो दीं। इस आकस्मिक संकट के कारण सम्राट् के शोक का पारावार न रहा।

समस्त पांचाल प्रदेश के वैद्यों ने जाँच की। राजधानी काम्पिल्य, एक से एक गुणी और चतुर वैद्यों से भर गई पर न तो कोई इस संकट के कारण की ही खोज कर सका और न उसका निराकरण ही। वे यह अनुभव कर रहे थे कि यह कष्ट पूर्व जन्मों के दुष्कृतों का प्रतिफल है। अतएव उसका उपचार भी कोई ऐसा पण्डित ही कर सकता है, जो जीवन की सूक्ष्म अन्तरंग विद्या का ज्ञाता हो। वैद्य लोग तो हार मान-मानकर अपने घर वापिस लौट गये।

राज प्रासाद के कीर्ति शिखर पर पूजनी पक्षी का एक घोंसला भी था। उसमें बैठी चिड़िया इस सारे दृश्य को बड़े ध्यान से देख रही थी। उसका एक कारण यह भी था कि उसके दो बच्चों में से एक बच्चे को भी ठीक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

राजकुमार के समान ही पक्षाघात हो गया था। पूजनी उस रहस्य को जानती थी कि उसके बच्चे के रूप में और राजकुमार के रूप में यह जो दो आत्माएँ प्रकारान्तर से एक ही भवन में, एक ही समय, एक ही प्रकार से रोग ग्रस्त हुई हैं। यह मनोमय जगत की एक सुनिश्चित विज्ञान प्रक्रिया के अन्तर्गत है। मन की भी तरंगें होती हैं, हर विचार, हर कर्म की प्रतिक्रिया जब तक निश्चित दूरी पार कर लौटती है; तब तक जीवात्मा भले ही अपना चोला बदल चुकी हो, पर वह उसके प्राण-तत्व में प्रतिध्वनित होकर कर्मफल के रूप में प्रकट होती है। अनेक आधि-व्याधियाँ जिनका कारण मनुष्य नहीं खोज पाता वह सब पूर्वकृत कर्मों का ही परिणाम होती हैं और उनका उपचार भी कोई सर्वज्ञ या प्रायश्चित प्रक्रिया ही कर सकती है, यह बात पूजनी खूब अच्छी तरह समझती थी, पर पक्षी योनि में होने और मनुष्य जैसी वाणी उपलब्ध न होने के कारण वह कुछ कह-बता नहीं सकती थी।

पूजनी का बच्चा और राजकुमार दोनों ही पूर्वजन्म में मित्र थे, एकबार वन में भ्रमण करते समय उन्होंने एक मृग के बच्चे के शरीर के दक्षिणी भाग में प्रहार कर मार डाला था। उसी पाप का फल उन्हें अब भुगतना पड़ रहा था; यद्यपि देखने में वे निर्दोष जैसे लगते थे। मनुष्य जाति के साथ चिरकाल से यही होता चला आ रहा है। भगवान अपनी इस व्यवस्था के लिये विवश हैं, भले ही उसे कोई कितना ही कठोर क्यों न कहे ?

पूजनी चिड़िया उड़ी और समुद्र के किनारे-किनारे दूर तक घूमी, वहाँ से वह दो अमृत के समान मीठे फल लाई, एक उसने अपने बच्चे को खिलाया, एक राजकुमार को। बच्चा भी स्वस्थ हो गया और राजकुमार भी। पूजनी की इस अनुकम्पा ने उसके बच्चों को सारे परिवार का स्नेहभाजन बना दिया। राजकुमार इन बच्चों के साथ खेला करता किन्तु अपने पूर्व जन्मों के संस्कारों के कारण एक दिन उसने उस चिड़िया के बच्चे को मार डाला, पूजनी को यह देखकर बड़ा दुःख हुआ। शोकाकुल पूजनी विलाप करती हुई अपने दूसरे बच्चे को लेकर वहाँ से चलने लगी तो सम्राट् ब्रह्मदत्त बहुत दुःखी हुये। अपने उपकारी के प्रति कृतज्ञता के भाव व्यक्त करते हुये उन्होंने पक्षी से घर न छोड़ने का आग्रह किया।

पूजनी बोली—"तात् ! आपकी इस सौजन्यता का आभार मानती हूँ किन्तु नीति यह कहती है कि जिससे एक बार शत्रुता हो जाये ऐसे कुसंस्कारी व्यक्ति का कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए। अभी तो मेरा एक ही पुत्र नहीं रहा, पीछे आपका दुष्ट बालक मेरा सर्वनाश ही कर सकता है। अतः समय रहते मुझे आपका गृह-त्याग कर ही देना चाहिए।"

यह कहकर पूजनी उड़ गई और फिर वह कभी वहाँ लौटकर नहीं आई।

सच्चा विद्वान

उस दिन जनपद के युवा नरेश घूमने निकले थे। इधर महीनों से खिन्नता का सघन आवरण उन्हें घेरे था। उनका गोरा मुख पीला पड़ गया। बड़ी-बड़ी आँखों की पलकों पर श्यामता झलकने लगी। सुगठित शरीर दुर्बल होने लगा था।

"श्रीमान्। आप इस तरह व्यथित क्यों हैं ?" मन्त्री की कोशिशें अब तक तो असफल ही रही हैं। जब राजमाता और रानी ही कुछ पता नहीं लगा सकीं, तब मन्त्री को क्या मिलना था सवाल करके।

"कोई विशेष बात नहीं !" हमेशा की तरह नरेश का उत्तर था। शब्दों के झरोखों से टालने का मनोभाव झलक रहा था। उनकी मनोव्यथा जानी नहीं जाती। आज मन्त्री उन्हें लेकर इस घाटी में आये थे। कदाचित यहाँ का सहज शान्त वातावरण थोड़ी देर के लिए नरेश को सुखी करे।

"महाराज ! हम वहाँ बैठेंगे।" अचानक शिला पर शान्त बैठे राजा के समीप आकर मन्त्री ने आग्रह किया।

"क्यों ?" जानश्रुति की सूनी आँखों में कोई उत्सुकता नहीं आई। एक मनोरम जगह को छोड़कर एक विषम स्थल पर बैठने का आग्रह क्यों किया जा रहा है—यह वे शायद नहीं समझ सके।

"आप वह दक्षिणावर्त लता देखते हैं।" मन्त्री का संकेत वृक्ष की ओर था "वह विशिष्ट भूमि है। कुछ काल बैठने पर उस जगह का प्रभाव मालूम पड़ जाएगा।" इस वृक्ष पर खूब मोटी सघन पत्तों से भरी एक लता चढ़ी थी। लता-वृक्ष के काष्ठ से एक हो गई थी। पहिले दूर तक सीधी चढ़ गई थी पेड़ पर और तब दाहिने से बाँयें मोड़ लिए थे उसने दो-तीन।

नरेश में उत्सुकता जागी। उन्होंने पास में कुछ दूर जाकर वृक्षों, क्षुपों तथा तृणों तक पर लिपटी छोटी-छोटी लताओं को देखा। इनके लिपटने के ढंग की विलक्षणता ने चकित किया। वृक्ष के नीचे उन्होंने अपना उत्तरीय बिछाया और सिद्धासन पर बैठ गए। उत्फुल्ल कमल के समान हथेलियाँ गोद में पड़ी थीं। मेरुदण्ड सहज सीधा और बैठने के दो क्षण पश्चात् वक्रानाड़ी जब सरला बनी शरीर खिंच कर स्वतः सीधा हो गया। ठोड़ी किंचित झुक गयी कण्ठकूप के पास और नेत्र शाम्भवी मुद्रा में स्थिर हो गए।

"तुम ठीक कहते हो, विशिष्ट जगह है। मन सहज अन्तर्मुख होता है।" काफी समय लग गया था नरेश को। चन्द्रमा पहाड़ी से ऊपर उठ चुका था, घाटी उसकी ज्योत्सना में नहा रही थी। नेत्र खोलते हुए वह बोले—"महत्व की बात यह है कि मुझे अनुभूति हो रही है कि मुझे किसी अच्छे विद्वान की आवश्यकता है।"

उपनिषदों के उस युग में ऋषियों की कमी नहीं थी किन्तु मन्त्री सोच रहे थे, सिद्ध पुरुष की शोध राजा करते तो अच्छा रहता। साधु नहीं, साधक नहीं, तपस्वी नहीं मंत्रज्ञ ज्योतिष के निष्णात् नहीं, विद्वान चाहिए उन्हें। मन्त्री ने चलते-चलते मार्ग में पूछा—"किस शास्त्र के विद्वान का आतिथ्य राजसदन करेगा, यह आज्ञा, अपेक्षित है।"

'विद्या धन है, इसे आप जानते हैं।" नरेश सहसा खड़े होकर मुड़े—"मुझे धनी नहीं चाहिए। धन में मेरी रुचि नहीं, भले वह विद्या धन हो विद्या धर्म भी है न ?"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"हे श्रीमान् !" मन्त्री ने स्वीकारोक्ति दी।

"यह विद्या धर्म जिसके पास हो वह विद्वान ?" राजा फिर मुड़कर चलने लगे। मन्त्री को लगा कि अब तो उसकी प्रतिभा और कुशलता कसौटी पर चढ़ने वाली है।

वेद, स्मृति, दर्शन, नीति विविध विधाओं में निष्णात् कम नहीं थे ऋषिकुलों में। प्रतिभा जीवन्त होकर वास करती थी वहाँ, किन्तु दूत निराश होकर लौट रहे थे। दिग्विजयी विद्वानों ने भी मस्तक झुकाकर एक ही उत्तर दिया था "विद्या धन है हमारे समीप। शास्त्रार्थ करने में हम पीछे नहीं हटेंगे। शास्त्रों का हमने अध्ययन किया है। किसी को उनका सम्यक् अध्ययन करा सकते हैं, किन्तु विद्या धर्म ? यह हम नहीं जानते।"

कुछ आए भी। उनसे हुई चर्चा ने नरेश को और खिन्न कर दिया। मुझे विद्वान चाहिए। प्रमाण पण्डित की मुझे जरूरत नहीं। जानश्रुति उस दिन खीज उठे थे मन्त्री पर। "उसने पढ़ा बहुत है, यह सत्य है किन्तु आचरण करना तो जाना ही नहीं। प्रत्येक बात में प्रमाण, प्रमाण और प्रमाण। मनुष्य बुद्धि क्या विक्रय कर चुका है कि सिर्फ प्रमाण पर निर्भर करे।"

उन्होंने स्वीकार किया था कि..... मन्त्री के स्वर में प्रार्थना का भाव था।

"कि विद्या धर्म है उनका।" राजा क्षुब्ध थे "और तुमने मान लिया। सत्य से सौ कोस दूर रहना जिसका स्वभाव हो, असत्य जिसे असत्य जान ही न पड़े और प्रत्येक गलती की सुरक्षा के लिए जिसे बौद्धिक ब्रह्म ज्ञान सूझे, तुम उसे पहचानने में भी अक्षम रहे।"

मौन के अलावा क्या जवाब होता। निराश नरेश एक दिन प्रातः कृत्य से निवृत्त होकर एकाकी जा रहे थे। तभी उनके कानों में वार्तालाप के स्वर पड़े। कोई किसी से कह रहा था "हे मल्लाक्ष। जानश्रुति पौत्रायण राजा का यश द्युलोक के समान फैल रहा है। उससे टक्कर न ले बैठना, कहीं वह तुझे अपने तेज से भस्म न कर डाले।" "अरे तुमने इस साधारण से राजा को ऐसा कैसे कहा जैसे मानो वह गाड़ी वाला रैक्व हो ?" दूसरे का स्वर था। राजा की उत्सुकता बढ़ गई।

"मन्त्री और आचार्य के साथ खोज करते हुए वे उस स्थान पर पहुँच गये, जहाँ गाड़ी वाला रैक्व रहा करता था।" आस-पास के लोगों ने उस पूरे क्षेत्र का नामकरण ही रैक्वपर्ण कर दिया था। जिस समय राजा अपने सहकारियों के साथ पहुँचे, ऋषि रैक्व अचेत बालक को होश में लाने में लगे थे। पास की नदी से पत्तों के दोनों में पानी लाकर उन्होंने बच्चे के मुँह में डाला। बच्चा कुछ सचेत हुआ। उसकी गड्ढे जैसी आँखों में आँसू झरने लगे। अपनी गाड़ी से थोड़ा शहद निकालकर उसे चटाया। क्या कुछ नहीं था उनकी गाड़ी में। जीवनोपयोगी वस्तुएँ, औषधीय गुणों वाली वनस्पतियाँ और न जाने कितनी चीजें ? बैलों के स्थान पर स्वयं जुतकर गाड़ी खींचते हुए सारे राज्य में घूम-घूमकर प्रत्येक के पास पहुँचकर स्वस्थ शरीर और स्वच्छ मन का विज्ञान समझाते रहते। जनआस्था उन पर इस कदर थी कि उनकी उपस्थिति लोगों में यह विश्वास जगा देती कि अब कोई कष्टों से परित्राण हुए बिना नहीं रहेगा।

जिज्ञासु राजा के द्वारा सवाल पूछे जाने पर उन्होंने अपनी तीखी और वेधक दृष्टि से उसकी ओर देखा। उनके हाथ अभी भी बालक की सेवा करने में लगे थे। "रे स्वार्थी ! दुःख की धधकती ज्वाला में जल-भुन रहे संसार की करुण दशा आर्त मानवता की पुकारें तुझे नहीं सुनाई देतीं। अखिल सृष्टि में संव्याप्त परमचेतना की ओर से आँखें बन्द कर योगाभ्यास, तत्वज्ञान, मोक्ष की तलाश वैसी ही है जैसे कोई क्षीर सागर में रहकर भी अपने मुख में मुश्कें कस लें। दुग्ध के अभाव में व्याकुल हो रोये। दुर्भाग्य के सिवा और क्या है यह ?"

"तनिक गहराई से सोच जानने योग्य को जानना, जाने हुए का आचरण करने में तन्मय हो जाना और आचरण करते हुए स्वयं वहीं हो जाना, यही है विद्या धर्म। जिसे धारण करने, आत्मसात करने पर स्पष्ट हो जायेगा यह निखिल सृष्टि ही परमात्मा है। **"सर्वं खल्विदं ब्रह्म"** का प्रति पल भान करते हुए उसकी सेवा ही परम समाधि है। इस समाधि में अपने को पूर्णतया विसर्जित करने की अनुभूति ही तत्वज्ञान है। यही मोक्ष है यही है कैवल्य यही परमयोग है। सर्व विद्याओं की सार इस विद्या धर्म को धारण कर।"

बालक अब तक पूर्णतया सचेत हो चुका था। उसे गाड़ी में सुलाकर वे गाड़ी में स्वयं जुतकर इसे एक ओर घसीटते हुए चल पड़े—विद्या धर्म की उसी सुवास को फैलाने हेतु जिससे सबका मन सुवासित होने लगा था।

उपकार का ऋण

जब किसी का कोई उपकार किया जाय तो यह आशा नहीं की जानी चाहिए कि उपकृत व्यक्ति उसका प्रतिदान चुकायेगा। इस आस्था के धनी थे—भावनगर रियासत के दीवान श्री प्रभाशंकर पट्टनी। अब से कई वर्ष पूर्व की घटना है तब पट्टनीजी की कर्त्तव्यनिष्ठा और कार्यकुशलता तो सर्वत्र चर्चा का विषय थी ही, उनकी उदारता और सेवा-सहृदयता भी लोगों के मन पर उनका अमिट प्रभाव छोड़े हुए थी। जिसे भी सहायता की आवश्यकता होती और वह उसके उपयुक्त होता तो निस्संकोच पहुँच सकता था, पट्टनीजी के पास। पट्टनी जी उसकी समस्याओं को बड़े ध्यान से सुनते और यथेष्ठ सहायता भी देते। उनकी सहायता से लाभान्वित होने वालों में अधिक संख्या छात्र वर्ग की थी। कई निर्धन छात्रों को अपनी सहायता से उन्होंने अच्छी शिक्षा दिलायी थी और ऐसे छात्र जीवन भर उनका ऋण नहीं भूलते। यदा-कदा उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने भी चले आते।

वे शहर से बाहर एक बंगले में रहते थे। एक दिन कोई व्यक्ति मुख्य द्वार पर आया और अन्दर जाने लगा तो चौकीदार ने रोककर पूछा—"ठहरो भाई क्या काम है ?" मुझे दीवान जी से मिलना है"—उसने कहा।

हो सकता है वे इस समय व्यस्त हों, आप जरा ठहरिये मैं पहले अनुमति ले आता हूँ। आगन्तुक को वहीं ठहराकर चौकीदार अन्दर गया। कुछ समय बाद दीवान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साहब के सेक्रेटरी महोदय बाहर आये और बोले—देखिये ! दीवान साहब इस समय काफी व्यस्त हैं। आप अपना काम बता दीजिये। यदि उसे हम लोग ही निबटा सके, तो व्यर्थ उनके कार्य में क्यों बाधा दी जाये। "जी मुझे उन्हीं से काम है।" यवुक ने कहा—"आप उन्हें मेरा नाम भी बता दीजिये। बस इतने में ही वे मुझे मिलने की अनुमति दे देंगे।"

सचिव ने समझा—कोई याचक होगा अतः पट्टनी जी की हिदायत के अनुसार सचिव उनके पास पहुँचा और बोला—"अमुक नाम का व्यक्ति स्वयं को आपका घनिष्ट परिचित बताता है और आप से किसी निजी कार्य के लिए मिलना चाहता है।"

"मुझे याद तो नहीं आ रहा है कि वह कौन है ?" पट्टनी जी ने माथे पर थोड़ा बल डालते हुए कहा और फिर स्वतः ही बोल उठे—"ठीक है आने दीजिये।"

आगन्तुक व्यक्ति अन्दर आ गया, पट्टनीजी ने युवक को अभिवादनपूर्वक अपने परामर्श कक्ष में बिठाया। बात की शुरुआत युवक की ओर से हुई—"साहब आपके अनन्त उपकार तले में दबा हुआ हूँ, उससे उऋण तो नहीं हो सकता परन्तु फिर भी आशा कर रहा हूँ कि आप मेरा निवेदन ठुकरायेंगे नहीं।"

"और क्या सेवा कर सकता हूँ ?"

युवक ने चार हजार रुपये का चेक निकाला और उनके पाँव में रख दिया। पट्टनीजी ने पूछा—"यह क्या ?"

युवक ने कहा—"मैं आपको स्मरण दिलाता हूँ महाशय जी। मैं अति दीनावस्था में था उस स्थिति में आप मेरी निरन्तर सहायता करते रहे। फलतः मैंने बी.ए., एल. एल-बी. पास की और मैं अब इस शहर में न्यायाधीश वनकर आ गया हूँ। मैंने हिसाब लगाकर देखा, सो कुल चार हजार की सहायता आपकी ओर से मुझे मिली अव उसे लौटाकर मैं मुक्त होने आया हूँ।"

ऐसे भी कहीं ऋण मुक्त हुआ जाता है। पट्टनीजी ने कहा—"देखिये मैं प्रतिदान तो नहीं लेता परन्तु आप ऋण मुक्त होना ही चाहते हैं, तो एक काम कीजिये इस चेक को आप अपने साथ वापस ले जाइये।"

परन्तु—न्यायाधीश बोला।

परन्तु कुछ नहीं—पट्टनीजी ने कहा। अपनी ओर से कुछ रकम और मिलाकर गरीब विद्यार्थियों की सहायता के लिए कुछ कीजिये, तभी आप ऋण मुक्त हो सकेंगे।

श्रद्धावनत होकर न्यायाधीश ने विदा ली और पट्टनीजी का आदेश माना। वस्तुतः उपकारों के ऋण से मुक्त होने का एकमेव यही मार्ग है कि उस परम्परा को आगे भी चला दिया जाय।

शोक का कारण व निवारण

शूरसेन राज्य की सीमाएँ विस्तृत क्षेत्र में फैली हुई थीं। उस राज्य के अधिपति थे सम्राट चित्रकेतु, संत और साधु प्रकृति के साथ-साथ प्रतापी, पराक्रमी भी थे। उन्हें किसी बात का अभाव नहीं था, चिन्ता थी तो इस बात की कि उनके बाद इस साम्राज्य का क्या होगा ? क्योंकि उनके कोई सन्तान नहीं थी। एक दिन महर्षि अंगिरा, चित्रकेतु के पास राजभवन में आये। राजा की चिन्ता और व्यथा को देखकर अंगिरा ने चित्रकेतु को पुत्रेष्टि यज्ञ करने का परामर्श दिया।

पुत्रेष्टि यज्ञ सम्पन्न हुआ और यज्ञशेष हविष्यान्न राजमहिषी कृतद्युति को दे दिया। जाते-जाते महर्षि कहते गये—"राजन् ! आपके एक पुत्र तो होगा किन्तु वह आपके हर्ष तथा शोक दोनों का कारण बनेगा।"

राजमहिषी कृतद्युति गर्भवती हुई। उन्होंने एक पुत्र को जन्म दिया। उत्तराधिकारी की चिन्ता मिटी और इस उपलक्ष्य में पूरे राज्य भर में उत्सव-हर्षोल्लास मनाया गया। वर्षों तक राज्य करते रहने और अब प्रौढ़ता की ओर अग्रसर होते जा रहे चित्रकेतु के यहाँ सन्तान का जन्म हुआ था, सो उनके हर्ष का पारावार न रहा और उल्लास उमड़ पड़ा। पुत्र के स्नेहवश वे प्रायः कृतद्युति के आवास में ही अधिकांश समय व्यतीत करते थे। पुत्रवती बड़ी रानी पर उनका एकांत अनुराग हो गया था। फलतः दूसरी रानियाँ कुढ़ने लगीं।

पति की उपेक्षा में उत्पन्न हुए, क्षोभ ने द्वेष का रूप धारण कर लिया। उन्होंने सोचा कि राजा कृतद्युति पर विशेष स्नेह इसलिए रखते हैं कि उसने सन्तान को जन्म दिया है। यह नवजात शिशु ही उनकी उपेक्षा का कारण है। अन्त में सबने मिलकर उस अबोध शिशु को विष दे दिया और वह बालक मृत्यु का ग्रास बन गया।

महारानी कृतद्युति और सम्राट चित्रकेतु के लिए तो वह अनभ्र वज्रपात था। वे बालक के शव के पास ही कटे वृक्ष की भाँति गिर पड़े। पूरे राजसदन में क्रन्दन होने लगा। रुदन-क्रन्दन से भरे उस राजभवन में शोक छाया रहा। चित्रकेतु ने अपने पुत्र का अन्तिम संस्कार भी नहीं कराया था। उसी समय महर्षि अंगिरा और महर्षि नारद आये। अंगिरा ने समझाया कि, इस मृतदेह से अब क्या आसक्ति रखना, इसकी अन्त्येष्टि करवा दो। राजन् ! जो भाग्य में नहीं होता है, उसे बचाया नहीं जा सकता।

चित्रकेतु ने कहा—"नहीं महात्मन् ! ऐसा मत कहिये मैं अपने प्रिय पुत्र को प्राण देकर भी पुनः प्राप्त करना चाहता हूँ। आप इसे पुनर्जीवित कर दीजिये।"

बहुत समझाने पर भी चित्रकेतु नहीं माने तो महर्षि अंगिरा ने अपने तपोबल से उस शिशु की आत्मा को आमंन्त्रित किया और बालक जी उठा। देवर्षि नारद ने कहा—"लो राजन् तुम्हारा पुत्र जी उठा।"

अपने पुत्र को जीवित देखकर राजा चित्रकेतु तथा महारानी कृतद्युति 'हा पुत्र' कहकर उसे अपनी छाती से लगाने दौड़े।

"कौन पुत्र ?" उस बालक ने कहा। "देवर्षि ये लोग कौन हैं ?" बालक ने नारद से कहा।

"यह तुम्हारे माता-पिता हैं।" नारद बोले।

तब बालक ने कहा—"नहीं, मैं तो जीवात्मा हूँ। शरीर ही पुत्र हो सकता है। सारे सम्बन्ध शरीर के ही हैं, जहाँ शरीर से सम्बन्ध छूटा, वहीं सब सम्बन्ध छूट जाते हैं।" यह कहकर शरीर फिर निष्प्राण हो गया। चित्रकेतु का जैसे सारा मोहावरण नष्ट हो गया। वे पुत्र के शव का अन्तिम संस्कार सम्पन्न करके लौटे तो देवर्षि नारद ने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कहा—"अनात्म वस्तु में सम्बन्ध करना ही शोक का कारण है। अतः किसी के लिये आसक्ति न करते हुए अपने कर्त्तव्य कर्मों को भलीभाँति पूरा करते चलना ही संसार में सुखी रहने का सर्वोत्तम साधन है।"

सशर्त सहायता

सृष्टि की रचना हुए बहुत दिन बीत गये। मनुष्यों को प्रखर बुद्धि और अगणित साधन-सुविधाएँ प्राप्त हुईं; जिसके कारण वे प्रगति के पथ पर तेजी से बढ़ने लगे और सुख-शान्तिपूर्वक जीवनयापन करने लगे।

यह स्थिति देर तक न रही। वे अहंकार और स्वार्थ के वशीभूत होकर आपस में लड़ने-झगड़ने लगे और उनकी प्रतिभा उन्हीं के लिए विपत्ति बन गई।

इस नई विपत्ति से छुटकारा पाने के लिये वे बहुत सोचते और बहुत करते रहे, पर कोई सफलता न मिली। अन्त में उन्होंने सृष्टिकर्ता विधाता के साथ अपनी समस्या का हल पूछने के लिए जाने का निश्चय किया।

मनुष्य ब्रह्माजी के पास पहुँचे और अपनी सारी दुःख गाथा कह सुनाई।

विधाता ने ध्यानपूर्वक सब कुछ सुना और आश्वासन दिया कि तुम्हारी चिन्ता दूर होगी। हम अपने प्रतिनिधि धरती पर भेजेंगे, वे देवदूत तुम्हारा सब प्रकार कल्याण करेंगे।

प्रतिज्ञानुसार उन्होंने देवदूतों को धरती पर भेजा। वे अवतार धारण कर जहाँ-तहाँ विचरण करते रहे और सुधार के विविध प्रयत्न करते रहे। पर हाय री विडम्बना ! उन बेचारों को मनुष्य के कोप का ही भाजन बनना पड़ा। उपहास, निन्दा, व्यंग्य, विरोध और भर्त्सना के तीर उन पर छोड़े गये और किसी-किसी को तो जान से ही मार डाला गया।

खिन्न मन से देवदूत वापस लौट गये और उन्होंने विधाता से अपनी असफलता की गाथा कह सुनाई। वे स्तब्ध होकर सब कुछ सुनते रहे और सोचते रहे, कैसा है यह विचित्र मानव प्राणी ?

बहुत दिन बीत गए। मृत्युलोक की समस्या उलझती ही गई। पारस्परिक दुर्व्यवहार से सारी धरती नरक बन गई। मनुष्यों को कोई उपाय न सूझा तो वे पुनः ब्रह्माजी के पास पहुँचे।

मनुष्य ने अभिवादन करने के उपरान्त प्रजापति से कहा—"भगवन् ! आपने जो देवदूत भेजे थे वे हमारा कुछ भला न कर सके, अब कोई दूसरा उपाय कीजिए।"

सृष्टिकर्ता ने कहा—"तुम्हारा स्वार्थ और अहंकार जब तक न घटेगा, तब तक हमारे पार्षद भी कुछ न कर सकेंगे। तुम्हारी शान्ति संदिग्ध ही बनी रहेगी।"

मनुष्य गिड़गिड़ाये और बोले—"भगवन् ! आपकी सहायता हमें अपेक्षित है। इसके बिना हम शान्ति प्राप्त न कर सकेंगे।"

ब्रह्माजी ने पुनः देवदूत भेजना स्वीकार कर लिया, पर यह शर्त लगा दी कि तुममें से जो स्वार्थ और अहंकार को घटा सकेगा उन्हीं की वे सहायता करेंगे।

मजबूरी से मनुष्य को यही स्वीकार करना पड़ा।

देवदूत आते तो अभी भी हैं पर शान्ति उन्हीं को दे पाते हैं, जो स्वार्थ और अहंकार छोड़कर उनकी बात सुनने को तैयार होते हैं।

इस प्रकार मनुष्य की आकांक्षा पूरी तो हुई, पर आंशिक रूप में। जो अपना सुधार कर सके, वे शान्ति पाते रहे और जिन्होंने केवल देवदूतों का सहारा तका, उन्हें कुछ न मिल सका।

अपूर्ण मनुष्य की शान्ति इस प्रकार आज भी एक ऐच्छिक विषय बनी हुई है। विधाता की सशर्त सहायता ही उसे प्राप्त हो रही है।

गतिशीलता की सजीव सरसता

उस दिन लहर बड़ी निराश और दुःखित बैठी थी। समुद्र उसे आगे बढ़ने और बिखरने के लिए कह रहा था किन्तु वह डर रही थी। अपने आश्रयदाता के अंचल में छिपकर बैठे रहना ही उसे प्रिय था। वह इतने में ही सन्तुष्ट रहना चाहती थी।

समुद्र ने उसे समझाया—"भद्रे, आगे बढ़ो। मिलन का आनन्द जड़ता में नहीं, गति के साथ जुड़ा है। विद्रोह के बिना प्रणय की सरसता की अनुभूति कैसे होगी ? शीत के अभाव में आतप का स्वाद कैसे चखा जा सकेगा ?"

लहर चाहती नहीं कि उसे आगे बढ़ने के झंझट में पड़ना पड़े। भविष्य न जाने कैसा होगा ? इस अनिश्चितता की कल्पना उसे भयभीत कर रही थी। उसने सतृष्ण नेत्रों से अपने प्रियतम को देखा और चाहा कि उसे जहाँ का तहाँ रहने दिया जाय।

समुद्र गम्भीर हो गया, उसने कहा—"देखती नहीं मेरे अन्दर कितना दर्द है जो मुझे क्षण भर भी चैन से नहीं बैठने देता। उस दर्द में हिस्सा बटाये बिना तुम कैसे मेरी प्रियतमा बन सकोगी ? अन्तर को छूना चाहोगी तो दर्द भी तुम्हारे हिस्से में आवेगा। ज्वार-भाटों के रूप में उछलती मेरी पीड़ा में से क्या तुम लहराती हलचल जितना हिस्सा भी नहीं बँटा सकोगी ? प्रेम के साथ क्या मेरा दर्द भी अंगीकार न करोगी ?"

लहर सुबक रही थी। अतीत की सरसता और आगत की अनिश्चितता के बीच वह असमंजस में खड़ी थी—उस स्तब्धता को तोड़ती हुई आगे वाली लहरें हँस पड़ीं और बोलीं—"सहेली हमें देखो न, उद्गम से बिछुड़कर ही तो हम भी अनन्त की ओर जा रही हैं, अपने प्रियतम की महानता के अन्तर्गत ही तो क्रीड़ा-कल्लोल कर रही हैं—हम उससे बिछुड़ी कहाँ हैं ? सीमित से असीम बनकर हमने प्रणय की सरसता को खोया कहाँ बढ़ाया ही तो है। फिर तुम क्यों डरती हो ?"

चर्चा बड़ी मधुर थी। सो उसे सुनकर सूर्य की किरणें भी ठिठक गईं। प्रौढ़ाओं के समर्थन में सिर हिलाते हुए उन्होंने भी कहा—"हमें अपने प्रियतम की विशालता में विचरण करते हुए, तब की अपेक्षा अब अधिक उल्लास है जब हम निकटता की निष्क्रियता को जकड़े बैठी थीं।"

प्रसंग पूरा नहीं हो पाया था कि महकती गन्ध भी वहीं आ पहुँची और बोली—"पुष्प की गरिमा के सुविस्तृत क्षेत्र को बढ़ाती हुई हम बिछुड़न का नहीं पुलकन का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनुभव करती हैं फिर छोटी सहेली ! तुम्हीं क्यों रुककर बैठने के लिए मचल रही हो। "

समुद्र इस बोध चर्चा को मनोयोगपूर्वक शान्तचित्त से सुन रहा था। इतने में इन्द्र ने द्वार खटखटाया और कहा—"चलने में विलम्ब न करो। प्यारी दुनिया तुम्हारी प्रतीक्षा में कब से बैठी है ?"

सागर सकपकाकर उठा, खड़ा हुआ। मेघ का वाहन तैयार था। भाप बनकर वरुण ने उस पर आसन जमाया और इन्द्र के इशारे पर सुदूर यात्रा पर चल पड़ा।

नवोढ़ा ने सतृष्ण नेत्रों से देखा और पूछा—"मेरे आश्रयदाता, क्या तुम्हें भी वियोग सहना पड़ता है ? क्या बिछुड़न तुम्हारा भी पीछा नहीं छोड़ती ?"

सागर की आँखें छलक पड़ीं। उसने कहा—"भद्रे, यह बिछुड़न नहीं, नवीनीकरण है। जीवन इसी का नाम है। मैं मेघ बनकर आकाश में गमन करता हूँ और सरिताओं की जल राशि बनकर फ़िर वापस लौट आता हूँ। इस गतिशीलता से किसी जीवित को छुटकारा नहीं। गमन का परित्याग करने पर तो मरण ही हाथ रह जायगा। सड़ना मुझे कब सुहाता है—कल्याणी !"

लहर की आँखें खुल गईं, उसने चलना आरम्भ कर दिया।

बन्धन-मुक्ति

वर्षा ऋतु समाप्त होकर ही चुकी थी, इसलिये गाँव-गोठ को जाने वाले मार्ग स्पष्ट नहीं हो पाये थे, रास्तों में पड़ने वाले चौगान घास से ढके थे, तो वन्य प्रदेश में अनेक नये वक्ष उग आने से मार्ग के चिह्न नष्ट हो गये थे। "नौ दिन चले अढ़ाई कोस" आचार्य उपकौशल आधी यात्रा भी पूरी न कर सके थे कि साँझ हो गई। पीछे का गाँव पीछे रह गया आगे का कुछ ठिकाना नहीं था, निदान रात वन-प्रदेश में ही एक पीपल वृक्ष के नीचे काटनी पड़ी। आचार्य उपकौशल लकड़ियाँ एकत्र कर आग जलाने के उपक्रम में जुट गये।

कंदमूल भूनकर उपकौशलाचार्य ने भूख मिटाई, थकावट दूर करने के लिए आग के समीप ही दोनों घुटने छाती से लगाकर लेट गये। दिनभर के हारे-थके उपकौशल—"नींद आ गई पर अभी रात्रि का प्रथम पहर ही बीता था कि एक रौद्र आवाज ने उन्हें जगाकर बैठा दिया। उपकौशल को ऐसा लगा कोई हिंसक जन्तु आ गया है। आग में थोड़ी-सी लकड़ियाँ और डालीं, थोड़ा प्रकाश तेज हुआ। आचार्य प्रवर ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई, कहीं कुछ दिखाई दे, किन्तु सर्वत्र घनघोर नीरवता, कहीं-कहीं कोटरों में छिपे पक्षियों की चीं-चीं सुनाई दे जाती थी तो यदा-कदा दूर के किसी गाँव से कुत्तों के भोंकने का स्वर। ऐसा लगता था जिस तरह प्रलय काल में सारा विश्व आकाशभूत हो जाता है, उसी प्रकार आज सारी सृष्टि अन्धकारभूत हो गई।

आवाज किसकी थी ? कहाँ से आई ? उपकौशल इसी उधेड़-बुन में थे कि उन्हें ऐसा लगा मानो उनके पीछे कोई खड़ा कराह रहा है, उसकी पीड़ा के स्वर में भी कर्कशता थी। आचार्य प्रवर ने प्रश्न किया—"आप कौन हैं ? प्रगट क्यों नहीं होते ?"

आर्य श्रेष्ठ ! आप तो गूढ़ विद्याओं के ज्ञाता हैं, आप सब कुछ जानते हैं, प्रेत-योनि में पड़ा मैं घूमस आपके समक्ष कैसे प्रकट हो सकता हूँ, आपके ब्रह्म तेज के समक्ष तो बेताल राज भैरव भी नहीं आ सकते, मैं कैसे आ सकता हूँ ? क्षमा करें मैंने आपको नींद से जगा दिया, देव ! क्या करूँ ? इस अधम योनि में रहते बहुत समय बीत गया, इस मार्ग से कई लोग आये, मैंने अनेक लोगों से मुक्ति का उपाय पूछना चाहा, पर यहाँ जो भी आया, मेरी आवाज से ही भयभीत हो गया। मैं जानता हूँ आपके लिये संसार में आत्मा के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। मैंने सुना है आत्म-साक्षात्कार योगी के लिये, मनुष्य किंवा तिर्यक योनियों में कुछ भी भेदभाव नहीं दीखता, सुना है वे शेर हो या सर्प, चिड़िया हो या मछली सबसे आत्मवत प्रेम करते हैं यदि यह सत्य है, तो कल्याण की इच्छा से शरणागत हुये मुझ घूमस को भी प्रेत-योनि से छूटने का मार्ग बताइये ?

गुरु-गम्भीर वाणी में आचार्य उपकौशल बोले—"अबुस ! जीव स्वकर्मवश नाना योनियों में पड़ता और दुःख भोगता है, छुटकारा कोई और नहीं दिला सकता मनुष्य का पश्चाताप, पापों से निवृत्ति और सत्कर्मों में सद्गति ही उसे बन्धन मुक्त कर सकती है। मैं तुम्हें आत्म-कल्याण का रहस्य समझा सकता हूँ। क्या तुम बताओगे तुम्हारे इस प्रेत योनि में आने का कारण क्या है ?"

आर्यश्रेष्ठ ! घूमस ने बताना प्रारम्भ किया—"मेरे पिता संग्रह वृत्ति के व्यक्ति थे, जिन्होंने अपना सारा ध्यान उचित-अनुचित तरीके से धन कमाने में लगाया, लोक-सेवा के किसी काम में तो परिवार के किसी व्यक्ति के दुःख कष्ट में भी वे पैसा कंजूसी से खर्च करते, मैं उनका इकलौता पुत्र था। मुझमें उनकी प्रबल आसक्ति थी, सारा धन, मुझे छोड़कर वे काल-कवलित हुये। युवावस्था में बिना परिश्रम अपार धन पाकर मेरी इन्द्रिय-दुर्बलताएँ जाग पड़ीं। अपनी पत्नी से कामवासना तृप्त न हुई तो वेश्यावृत्ति में पड़ गया। शराब और मांसाहार जैसी बुराइयाँ मेरे पीछे पड़ गईं। इन्द्रिय भोग ही मेरे जीवन का साध्य बन गया। वासनाओं के कारण शरीर जितना क्षीण होता गया, मन की वासना उतना ही तीव्र होती गई। मृत्यु के क्षण भी मुझे निद्रा न आई वह तृष्णाएँ, वासनाएँ अब तक पीड़ित किये हैं, शरीर न होने से न तो मैं इच्छाएँ तृप्त कर सकता हूँ और न ही मन चैन लेने देता है। इसी दुर्गति में पड़ा घोर कष्ट के दिन बिता रहा हूँ।"

तुम ठीक कहते हो घूमस ! उपकौशलाचार्य ने बताया, मानव-मन की दुर्बलता ही पतन का कारण होती है किन्तु तात् ! यह मन ही मुक्तिदाता भी है। मनुष्य समझ नहीं पाता प्रारम्भ में उसे जिह्वा इन्द्रिय आकर्षित करती है तब वह प्राकृतिक आहार लेना छोड़कर केवल स्वाद के लिये अन्न खाने लगता है। मनुष्य प्रकृति द्वारा दिये गये आहार से ही अपने शरीर रथ को गतिशील बनाये रखने में समर्थ हो सकता है, पर जिह्वा का अभ्यास उसे अप्राकृतिक भोजन के लिए ललचाता है। तात् ! पक्षी फल-फूल खाकर जिन्दा रहते हैं, नीरोग जीवन जीते हैं,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वन्य पशु घास खाकर मस्त रहते हैं। मन का अभ्यास है जो रस लेने लगे तो मिट्टी में भी मधुरता आ जाये, जब उसे अप्राकृतिक आहार मिलने लगता है, तो उसके शरीर की उष्णता आग या प्राण निर्बल पड़ने लगता है। वासनाएँ उस जीवन तत्व को और भी नष्ट करती हैं। वासनाओं से तृप्ति तो होती नहीं, इन्द्रियों के समीपवर्ती परमाणु गतिशील हो उठते हैं, फलस्वरूप भोगे हुए विषय बार-बार याद करते हैं। मनुष्य उन्हें बार-बार भोगने से मन की गति दूषित कर लेता है। दूषित मनोगति आत्मा को सांसारिक सुखों में ही चक्कर काटने को विवश करती है। तुम्हारे साथ यही हुआ। तुमने अपनी आत्मा की आग को वासनाओं की तुषार से ठण्डा कर दिया। यह विज्ञानमय शरीर इसलिये मिला था कि विराट् विश्व की वास्तविकता की अनुभूति करते और अपने सीमित अहंभाव को विराट् में प्रतिरोपित कर ऐश्वर्य का आनन्द लेते, पर मन की दुर्गति ने जीवन लक्ष्य से भ्रष्ट कर दिया। तात् ! पतन के गर्त में पड़ी आत्मा के सुधार का एक ही उपाय है कि अपने जीवन की गति विपरीत दिशा में मोड़े अर्थात् आहार संयम करे, अपने प्राणों को प्राणवान शक्तियों के सम्पर्क में आकर ध्यान द्वारा, प्रणायाम द्वारा प्रखर बनाये। अमूल्य मनुष्य शरीर परमात्मा किसलिये देता है ? उस उद्देश्य को समझकर अपनी क्षमताओं को आनन्द प्राप्ति की साधनाओं में नियोजित करे, तभी आत्मा का पुनरुद्धार हो सकता है। तात् ! किसी की कृपा हो सकती है तो इतनी ही कि वह मार्ग-दर्शन कर दे। अन्ततः प्रायश्चित्त और आत्म-कल्याण का तप तो स्वयं ही करना पड़ता है।

आचार्य प्रवर की ज्ञान युक्त बातें सुनते-सुनते घूमस को नींद आ गई। प्रातःकाल हो चली थी, भगवती उषा का आगमन हो चुका था। आचार्य प्रवर अपनी अगली यात्रा की तैयारी में चल पड़े, घूमस भी अगली जीवन-यात्रा में निकल पड़ा। प्रेत योनि में नींद आना पुनर्जन्म की तैयारी होती है। घूमस ने अब एक ब्राह्मण के घर जन्म लिया, उपकौशल के उपदेश उसके हृदय में बस चुके थे। उसने बाल्यावस्था से अपना मन आत्म-कल्याण की साधनाओं में लगाया। पाँचों कोशों का अनावरण करते हुए उसने आत्म-साक्षात्कार किया और लौकिक बन्धनों से मुक्ति पाई।

आचरणवान ही उपदेशक हो सकता है

एक बार महाराज भरत ने अपने महल के चौक में हरी-हरी दूब लगवाई। बहुत-से फल-फूलों के पौधे भी लगवा दिये। वहाँ की थोड़ी-सी भूमि भी दूब से खाली नहीं थी। फिर नगर के लोग, राज्य कर्मचारियों तथा सरदारों आदि को बुलाया। जब लोग वहाँ आये तो महाराज दूब के दूसरी तरफ सिंहासन पर बैठे थे। अधिकांश लोग तो दूब पर चलकर उनके समीप पहुँच गये, परन्तु कुछ लोग दूब से अलग ही खड़े रह गये। महाराज ने उनको कई बार बुलाया, पर वे नहीं आये। अन्त में महाराज स्वयं ही उनके पास आये और कहने लगे—"क्योंजी तुम लोग हमारे बुलाने से क्यों नहीं आये ? क्या यह राजाज्ञा का उल्लंघन करना नहीं है ? और इसके लिये आप लोग दण्ड के पात्र नहीं बन गये ?"

एक व्यक्ति—"महाराज, हम हरी दूब और फल-फूल के पौधों पर कैसे चलते ?"

महाराज—"क्यों, जब इतने लोग उन पर होकर हमारे पास पहुँच गये, तो आपको उसमें क्या कठिनाई थी ?"

"महाराज, इस दूब और पौधों में भी तो जीव है। इनको रौंदने से हिंसा होती है। हम आपका दिया हुआ दण्ड सहर्ष सहन करेंगे, पर हिंसा करके अधर्म नहीं कर सकते।"

महाराज—"मैंने यह कार्य आप लोगों की परीक्षा के लिये ही किया था। जो लोग धर्म का इतना ख्याल रखने वाले हैं और उनके पालन में दृढ़ हैं, वे ही लोगों को धर्म का उपदेश दे सकते हैं और धर्मशास्त्रों की ओर लोगों का ध्यान दिला सकते हैं। मैं आप लोगों का एक नया समुदाय स्थापित करता हूँ, जो ब्राह्मण वर्ग कहा जायगा। ज्ञान को प्राप्त करना और प्रचार करना ही आपका मुख्य कार्य होगा। राज्य तथा प्रजा से जो दान प्राप्त हो, उससे आप अपना निर्वाह करना।"

उपभोगार्थी—उपयोगार्थी

सुवर्णजात प्रतिदिन सहस्र मुद्राओं का दान करते थे, कोई भी याचक उनके पास से निराश, खाली हाथ नहीं लौटता था, तो भी यह एक रहस्य ही था कि सुवर्णजात के निजी सेवक, अनुरथ ने कभी कुछ माँगा तो सुवर्णजात एक ही नपा-तुला उत्तर देते—"तुम्हें जब भी कुछ देने के लिये हाथ बढ़ाता हूँ, सूर्य देवता हाथ पकड़ लेते हैं। क्या करूँ विवश हूँ ?"

अनुरथ जड़ बुद्धि नहीं था, वह निरन्तर अवसर की प्रतीक्षा में रहने लगा। एक बार सूर्य ग्रहण पड़ा, अनुरथ उस समय स्वामी के समीप ही था। ग्रहण प्रारम्भ होते ही उसने कहा—"स्वामी इस समय तो सूर्य को राहु ने पकड़ लिया है, अब तो वे रोक नहीं सकते अब तो कुछ दीजिये।" सुवर्णजात पकड़ में आ गये, इनकार नहीं कर सके। उन्होंने अपने सेवक को बहुत-सा धन और सुवर्ण मुद्राओं का दान दिया।

अनुरथ के मन की दमित इच्छाएँ जो धन के अभाव में प्रसुप्त पड़ी थीं, एकाएक भड़क उठीं। अब तक जहाँ उसका संयमित जीवन बीत रहा था, अब भोग-विलास का भूत उस पर चढ़ बैठा। मकान बनाने से लेकर विवाह करने तक की जो भी महत्वाकांक्षाएँ थीं तत्काल पूर्ण हो सकती थीं, अनुरथ ने पूरी कर लीं और देखते-देखते न केवल सारा धन स्वाहा कर लिया, अपितु अनेक रोग और दुर्बलताएँ भी उसने पैदा कर लीं।

जब तक धन रहा—काम की कौन पूछता, निदान धन्धा भी उसने छोड़ दिया था, अब जब पास कुछ न बचा तो फिर सुवर्णजात के पास गया और काम पर रखने की याचना करने लगा। सुवर्णजात ने उत्तर दिया—"तात् ! रिक्त स्थान की पूर्ति कर ली गई, अब उस सेवक को हटाना नीति विरुद्ध है अतएव उसे हटाकर तुम्हें काम पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रखना तो असम्भव है, अलबत्ता तुम्हें एक उपाय बता सकता हूँ। तुम "श्री" बीज लगाकर यदि भगवती लक्ष्मी की उपासना करो तो उनसे तुम्हें अवश्य ही धन प्राप्त हो सकता है।" अनुरथ उस दिन से देवी की उपासना करने लग गया।

भगवती लक्ष्मी प्रसन्न हुई और वर माँगने को कहने लगीं। लक्ष्मीजी बोलीं—"वत्स ! घर जा कुछ काम कर उद्यम उद्योग जुटा तो मैं स्वतः तेरे पास आ जाऊँगी।" किन्तु भोग वृत्ति में आसक्त अनुरथ के पास इतना समय कहाँ था ? वह लक्ष्मी से ही हठ करता रहा। लक्ष्मी जी बोलीं—"अच्छा तो तुम पहले भोगीलाल और उद्योगीलाल के पास जाकर देख आओ, दोनों में से किसकी लक्ष्मी तुम्हें पसन्द है, मैं तुम्हें दे दूँगी।"

अनुरथ ने क्रम-क्रम से जाकर दोनों स्थान देखे। भोगीलाल के पास धन सम्पत्ति तो बहुत थी, उसका वह मनमाना उपभोग भी करता था, पर अपनी भोग दृष्टि के कारण उसने अपना स्वास्थ्य चौपट कर लिया था। घर पर लड़कों में दिनभर कलह मची रहती। "कर" को लेकर आये दिन राजकीय कर्मचारी उसे सताते रहते, बेचारा तीन रोटी खाता और मुश्किल से तीन घण्टे सो पाता। सारा जीवन आतंक, भय, चिन्ता, निराशा और व्याधियों से ग्रस्त। उधर उद्योगीलाल के पास जाकर देखा तो उनका कारोबार तो खूब फैल रहा था। घर वाले खूब अच्छा खाते भी थे, पहनते भी अच्छा थे, परिश्रम भी उतना ही करते थे, फलतः स्वस्थ भी थे प्रसन्न भी। हाँ उसे कल के लिये मुश्किल से ही बचता था।

वापस लौटकर अनुरथ ने देवी से कहा—"भगवती ! अब मुझे धन नहीं चाहिये। सारा मर्म समझ लिया। धन का यथार्थ लाभ भोग में नहीं, उसका सदुपयोग करने में है। धन का सदुपयोग वही कर सकता है जो नीति और परिश्रमपूर्वक अपनी कमाई आप करता है इसलियें अब मुझे वरदान का धन नहीं चाहिये, आवश्यकतानुसार आप ही पैदा कर लूँगा।

पराजित मृत्यु—अपराजित आकाशज

यमराज के सम्मुख हाथ जोड़े खड़ी मृत्यु ने विनय की—भगवान ऐसा तो हुआ है कि कोई व्यक्ति आजीवन संयमशील रहा हो, कभी परिश्रम से जी न चुराया हो, अभक्ष्य न खाया हो और शुद्ध-सात्विक वातावरण में रहा हो फलस्वरूप उसने दीर्घजीवन पा लिया हो, पर अन्ततः उसे भी मेरे ही चंगुल में आना पड़ा। जिस घर में मेरा पैर न पड़ा हो, ऐसा कोई घर नहीं किन्तु उस आकाशज ने तो मुझे हैरान कर लिया वह मरता ही नहीं, मैंने कोटि उपाय कर लिये।

यमराज हँसे और बोले—"देवी ! हमारा वश तो स्थूल शरीरों तक है, कामनाग्रस्त जीव अपनी किसी इन्द्रिय की लिप्सा से प्रेरित होकर जीव-तन धारण करता है। उसकी यह कामना शरीर पाकर और भी उग्र होती है। इन्द्रिय सुख से तृप्ति नहीं होती, जितना भोगो, भोग की इच्छा उतनी ही बढ़ती है, और भोग-भोगने के लिये जीवन-शक्ति नष्ट करनी पड़ती है। जीवन-शक्ति जहाँ नष्ट होती है, वहीं अपना अस्त्र चलता है देवी ! आकाशज में कोई इच्छा नहीं, वह कामनारहित है, इसीलिये उसे स्थूल शरीर धारण करने की आवश्यकता नहीं पड़ी, वह अपने सूक्ष्म शरीर से ही दृष्टा बना घूमता है। उसे मार सकना तब तक सम्भव नहीं जब तक उसकी वासना का पता न चले ? पहले तुम उसकी इच्छा का जाकर पता लगाओ।"

मृत्यु देवलोक से धरती पर आई और गुप्त रूप से आकाशज के साथ रहने लगी। मनुष्य जब कामना-रहित होता है, तो उसकी बुद्धि साफ रहती है। वह सभी दिशाओं को देख सकता है, सुन सकता है, सोच सकता है। मृत्यु चाहती थी छिपकर रहना किन्तु तत्वदर्शी आकाशज से वह छिप नहीं सकी। आकाशज ने अच्छी तरह जान लिया कि मृत्यु साथ लगी है। कोई भी दाँव लगा सकती है किन्तु उसे किसी प्रकार की इच्छा नहीं थी जो मृत्यु से भय खाता इसलिये वह पूर्ण निर्द्वन्द्व रहा और मृत्यु देवी की प्रेरणा से खेल समझकर खेलता रहा।

मृत्यु ने उसे प्रेरित किया, अब वे काशीराज के राजोद्यान में उपस्थित थे। आकाशज ने देखा वहाँ भाँति-भाँति के रंग-बिरंगे पुष्प खिल रहे हैं, पक्षी गुञ्जन कर रहे हैं, तितलियाँ एक फूल से दूसरे फूल की ओर दौड़ी चली जा रही हैं। कलियों की सुवास से सम्पूर्ण वातावरण मादक हो उठा है। राजकुमारी उस मधुरिम सौन्दर्य का पान करती हुई सरोवर तक आती है और प्रातः स्नान के लिये निर्वसन हो जाती है। मृत्यु ने आकाशज को प्रेरित किया—देख राजकुमारी के अंग-प्रत्यंग से काम टपक रहा है ऐसी सजीव सौन्दर्य-श्री क्या तूने कहीं अन्यत्र देखी है, वैराग्य भाव त्यागकर इस सुन्दरी को वरण कर ?

आकाशज ने मृत्यु की ओर देखा और हँसकर बोला—"भन्ते ! स्त्री के वेष में यही राजकुमारी जब पिण्ड रूप से फँसी थी, तब मैंने इसके दोनों रूप देखे थे—एक स्थूल शरीर, दूसरा सूक्ष्म। यह जो सौन्दर्य है वह हाड़-मांस के शरीर का है, इसे भोगकर कौन सन्तुष्ट हुआ है ? मैं अपने सूक्ष्म शरीर को जानता हूँ, वही सत्य है, वही नित्य और वही अमर सुख देने वाला है। मैं इस राजकुमारी की भी कामना नहीं करता। यदि करूँ तो फिर मुझे भी ऐसा ही शरीर धारण करना पड़ेगा, जब तक मैं इस सुन्दरी का आलिंगन करने योग्य होऊँगा, यह वृद्ध हो जायेगी फिर इसमें कोई आकर्षण न रहेगा इसलिए मैं किसी इच्छा से बँधना नहीं चाहता।"

मृत्यु यह सुनकर अवाक् रह गई। यमराज के पास लौट आई और बोली—"आपने सच ही कहा था देव ! जो निष्काम होते हैं, उन्हें तो मैं भी नहीं जीत सकती।"

पद नहीं, मनुष्यता का सम्मान

राजा बालीक ने अपने प्रधान सचिव विश्वदर्शन को पदच्युत कर राज्य से निकाल दिया। विश्वदर्शन एक गाँव में रहते थे। पदच्युत होने के बाद वहीं आकर बड़े परिश्रम का जीवन बिताने लगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक दिन बालीक को यह देखने की इच्छा हुई कि विश्वदर्शन की कैसी स्थिति है ? वह वेष बदलकर उसी गाँव की ओर चल पड़ा। गाँव पहुँचकर उसने देखा कि विश्वदर्शन के मकान के सामने पच्चीसों व्यक्ति बैठे बात-चीत कर रहे हैं और प्रसन्न हैं। विश्वदर्शन स्वयं बड़े प्रसन्नचित्त दिखाई दे रहे थे।

छद्म वेषधारी बालीक ने विश्वदर्शन से पूछा—"महानुभाव ! आपको तो राजा ने पदच्युत कर दिया है। फिर भी आप इतने प्रसन्न हैं, इसका रहस्य क्या है ?"

"मनुष्यता"—विश्वदर्शन ने मुसकराते हुये और राजा को पहचानते हुये कहा—"महाराज ! पहले तो मुझसे लोग डरते भी थे, पर अब वह डर भी नहीं है, इसलिये लोगों से खुलकर बात करने और सेवा, सहानुभूति व्यक्त करने में बड़ा आनन्द आता है।"

महाराज बालीक ने अनुभव किया, सचमुच पद से लोग डर सकते हैं, सम्मान तो मनुष्यता के अच्छे गुणों का ही होता है। लौटते समय नरेश विश्वदर्शन को पुनः साथ लेते आये और उन्हें उनका पद फिर लौटा दिया।

प्रायश्चित्तो परावसुः

"मेरे अन्तःकरण में पाप की भावना नहीं थी गुरुदेव ! लक्षा दूसरों की दृष्टि में वेश्या होगी, पर मेरी दृष्टि में वह विश्वव्यापी अन्तश्चेतना का ही एक अंग—एक आत्मा है। लक्षा की जीवनचर्या क्या है ? शारीरिक सौन्दर्य पर आत्मा के प्रकाश को बुझा देने वाले कीट-पतंगों की मनुहारें देखने की जिज्ञासा मुझे खींचकर वहाँ ले गईं। लक्षा का सौन्दर्य वर्णनातीत है आर्य-श्रेष्ठ ! किन्तु उसमें मेरा किंचित् मात्र आकर्षण नहीं था। प्रमादवश सुरापात्र को मैंने जलपात्र समझकर सुरापान कर लिया, इतना भर मेरा दोष है, सो उसके लिये शास्त्र निर्धारित प्रायश्चित्त करने के लिए मैं तैयार हूँ।"

परावसु के इस सम्वाद को सुन सारा गुरुकुल स्तब्ध रह गया। अब आचार्य देवधर उठे और बोले—"शास्त्रीय मर्यादा के अनुसार वेश्यागमन और सुरापान के पाप का प्रायश्चित्त यह है कि पिघला हुआ स्वर्ण पिलाया जाये और तदनन्तर स्नातक परावसु वाराणसी की पदयात्रा करें और भगवती गंगा के जल का मज्जन और पान करें, तभी इस पाप से मुक्ति हो सकती है।"

अनेक पण्डितों तथा आचार्यों ने अपनी-अपनी सम्मतियाँ व्यक्त कीं, उन सब का आशय ऐसे प्रायश्चित्त का प्रतिपादन था, जो या तो परावसु के प्राण ले लेता या उसे जीवन भर के लिए अपंग बना देता। परावसु धर्मनिष्ठ स्नातक थे, वे धार्मिक मान्यताओं की रक्षा के लिए वैसा करने के लिये तैयार भी थे, किन्तु अन्धी परम्पराओं का प्रतिपादन उनका स्वभाव नहीं था। परावसु ने ओज भरी वाणी में कहा—"भूल से पाँव पानी की अपेक्षा आग में गिर जाने का कर्मफल अपनें आप मिल जाता है. मेरे प्रमाद का फल मुझे उदरशूल और मूर्च्छा के रूप में पहले ही मिल चुका। सामान्य भूल के लिये प्राण लेने की परम्परा धर्म के पतन का कारण हो सकती है, अतएव विद्वज्जनों को इन प्रतिपादनों पर फिर से विचार करना चाहिए और आचार-संहिता को विवेक सम्मत तथा उदार बनाना चाहिये। हाँ मेरी पवित्रता की परीक्षा ली जाये, तो बेशक मैं उसके लिये तैयार हूँ।"

परावसु का तर्क अकाट्य था। उसका प्रतिवाद किसी ने नहीं किया। महामात्य भर्तृयज्ञ भी वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने खड़े होकर कहा—"यदि परावसु वस्तुतः हृदय से पवित्र हैं, तो इन्हें आज सम्पूर्ण सभा के मध्य अपनी पवित्रता सिद्ध करनी होगी। लक्षा को यहीं बुलाया जाये। उसे अभिसार के समस्त परिधान और आभूषणों से अलंकृत किया जाये। उस समय परावसु लक्षा का स्तन पान करें। यदि इनकी आत्म-पवित्रता लक्षा में मातृ भावना आरोपित कर दे और उसके मन में वासना के स्थान पर वात्सल्य उमड़ पड़े, तो यह माना जायेगा, परावसु शुद्ध हैं अन्यथा इन्हें शास्त्रीय मर्यादा के अनुसार ही दण्ड का भागी बनना पड़ेगा।"

"किन्तु इस बात की यथार्थता कैसे सिद्ध होगी"—आचार्य देवधर ने प्रश्न किया। भर्तृयज्ञ ने समाधान किया, "उस समय लक्षा के स्तनों में दूध आ जायेगा और उस दूध से अशुद्ध हुआ परावसु का मुख तत्काल शुद्ध हो जायेगा।"

ऐसा ही किया गया। इक्कीस वर्ष की अनिंद्य सुन्दरी लक्षा और २४ वर्ष के प्रलम्ब बाहु परावसु की विलक्षण परीक्षा थी। लक्षा ने राजसी वेषभूषा में सभा मंडप में प्रवेश किया। सारा वातावरण अर्ध रात्रि की नीरवता के समान स्तब्ध हो गया। परावसु ने चिर कल्याणी भगवती सरस्वती का आह्वान किया, सम्पूर्ण जगत ही उन्हें कला की देवी—जगज्जननी के रूप में दिखाई देने लगा। एक नन्हें से बच्चे की भावना लिये वे आगे बढ़े और भावविभोर होकर उन्होंने लक्षा के अंक में बैठकर उसका दक्षिण स्तन मुँह में डाल लिया। लक्षा ने परावसु के कोमल बालों पर उँगली फेरी और उसके उरोज से पयधार फूट पड़ी। परावसु का मुख पय से पूरित हो गया। साधुवाद ! से सारी सभा गूँज उठी। परावसु की पवित्रता को स्वीकार कर लिया गया।

स्नातक परावसु जैसे चरित्रनिष्ठा की तुलना आज कौन कर सकता है ?

कर्त्तव्य से भागिये मत

रोम नगर के पोम्पाई नगर के निकट एक बड़ा ज्वालामुखी फटा। यह दुर्घटना इतने जोर की हुई कि वह विशाल नगर खंडहर बन गया और ज्वालामुखी की धूलि में दबकर सदैव के लिए भूगर्भ में विलीन हो गया।

पौने दो हजार वर्ष के लम्बे अरसे के बाद यह बात केवल इतिहास के पन्नों पर धुँधली तरह से अंकित रह गई थी। किसे मालूम था कि यह नगर अभी बिल्कुल ही नष्ट नहीं हुआ। भूतत्ववेत्ताओं ने उन टीलों को खोदा तो उसमें से प्राचीन गौरव की साक्षी देता हुआ भग्नावेश एक सुन्दर नगर निकल आया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उस समय भूकम्प से बचे निवासियों ने अपनी विपत्ति के कुछ संस्मरण लिखे थे, जो अब तक सुरक्षित हैं। उनमें लिखा है कि जब भूकम्प के धड़ाके हुए तो लोग भागने लगे। जिसे जहाँ बन पड़ा भागा। कुछ बच गये, कुछ मर गये। 'भागने वालों में से कुछ ने राजद्वार के प्रहरी से कहा चलो—तुम भी भाग चलो।' उसने उत्तर दिया—'मेरा कर्तव्य मुझे अपनी डयूटी पर से हटने की आज्ञा नहीं देता।' वह अपना चपरास पहने हुए जहाँ की तहाँ खड़ा रहा और उस महान नगर के साथ समाधिमग्न हो गया।

जब राजद्वार तक खुदाई पहुँची, तो देखा कि एक प्रहरी का अस्थि-पिंजर ज्यों का त्यों खड़ा है। चपरास का बिल्ला और तलवार की गलित प्रतिमा उसी पिंजर से सटी हुई है। वह चाहता तो दूसरे लोगों की तरह भाग सकता था, पर कर्तव्य ने उसे ऐसा करने से रोक दिया।

रोम में उस कंकाल का शाही स्वागत किया गया और देश ने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। शताब्दियाँ बीत गईं, पर वह रोम का कर्मनिष्ठ प्रहरी सीधा खड़ा हुआ है। दर्शकों को वह कंकाल उपदेश देता है कि—"भागिये मत, अपने कर्तव्य स्थल पर खड़े रहिए, क्योंकि मनुष्य का गौरव इसी में सन्निहित है।'

खुद भी मदद कीजिए

अमेरिका में एक वार एक बड़ा युद्ध हो रहा था, सेना कहीं बाहर जा रही थी। रास्ते में एक बड़ा शहतीर इस प्रकार पड़ा हुआ मिला कि उससे निकलने में बड़ी रुकावट होती थी, इसलिये इस बात की जरूरत हुई कि इस शहतीर को रास्ते में से हटाकर एक तरफ डाल दिया जाय।

सेना के अधिनायक ने सिपाहियों को हुक्म दिया, कि इसे उठाओ और एक तरफ फेंक दो। सिपाही आज्ञा का पालन करने लगे, परन्तु शहतीर बहुत भारी था इसलिये वह उठ नहीं रहा था। अधिनायक दूर खड़ा-खड़ा चिल्ला रहा था—"नालायको, इसे उठाओ ! हरामखोरी मत करो, मुर्दे की तरह हाथ मत चलाओ।"

इस प्रकार के कटु शब्दों के प्रयोग से सिपाहियों में कोई नवीन उत्साह नहीं आ रहा था और शहतीर की समस्या हल नहीं हो रही थी। इतने में एक मामूली से आदमी ने अधिनायक के पास आकर विनम्र शब्दों में कहा—"यदि आप स्वयं भी इन सिपाहियों के साथ जुट जावें तो यह काम आसानी से हो सकता है।" अधिनायक ने झुँझलाकर कहा—"तू देखता नहीं, मैं कमाण्डर हूँ। मेरा काम हुक्म देना है, कुली का काम करना नहीं।" व्यक्ति ने अपनी गलती पर क्षमा माँगी और खुद सिपाहियों के साथ जुट गया और उन्हें उत्साह दिलाकर तथा उठाने की युक्तियाँ काम में लाकर, उस शहतीर को उठाकर अलग पटकवा दिया। जो कार्य बहुत समय से नहीं हो रहा था, वह जरा देर में हो गया।

उस मामूली पोशाक वाले आदमी ने फिर जाकर अधिनायक के सम्मुख अभिवादन किया और कहा—"यदि कभी फिर ऐसी कठिनाई आया करे, तो आप मुझे बुलाया भेजा करें, मैं स्वयं मदद करके कठिन कार्मों को आसान कर दिया करूँगा।" कमाण्डर ने उपेक्षा से भौंहें चढ़ाते हुए कहा—"तेरा क्या नाम है और कहाँ रहता है ?" उस आदमी ने नम्रता से कहा—"महोदय ! मुझे जार्ज वाशिंगटन कहते हैं और इस देश के राष्ट्रपति के पते पर सूचना देने से वह मुझे मिल सकती है।"

अमेरिका के प्रेसीडेण्ट जार्ज वाशिंगटन को अपने सामने खड़ा देखकर कमाण्डर के होश गुम हो गये, पैरों तले से जमीन खिसकने लगी। उसने गिड़गिड़ाकर अपने अपराध के लिये क्षमा माँगी और भविष्य में खुद भी सिपाहियों के कामों में मदद देने की प्रतिज्ञा की।

हम अपने कामों को दूसरों पर टालते हैं और जब वे पूरा नहीं कर पाते तो झुँझलाते हैं। क्या इसके बदले यही अच्छा होगा यदि अपने साथियों के काम में थोड़ी सहायता की जाय और उन्हें सरलता का मार्ग बताया जाय। इस प्रकार कठिन कार्य आसानी से हल हो सकते हैं।

परोपकार सदा सुखदाई

दोब्रीवे का पिता एक बड़ा समुद्री व्यवसायी था। जब उसका पुत्र बड़ा हो गया, तो उसे बुलाकर उसने अपने कारोबार की सब बातें समझाईं और कहा कि अब तुम जहाज पर जाकर विभिन्न देशों में व्यापार करो।

दोब्रीवे खुशी से जहाज को लेकर चला। रास्ते में उसे एक तुर्की जहाज दिखलाई दिया। जब वह उसकी बगल में होकर निकला तो जहाज में से रोने और चिल्लाने की आवाजें सुनाई पड़ीं। दोब्रीवे ने तुर्की जहाज के कप्तान से इसका कारण पूछा। जब उसे मालूम हुआ कि जहाज में कई सौ व्यक्तियों को पकड़कर गुलामों के रूप में बेचने को ले जाया जा रहा है, तो उसके मन में बड़ी करुणा उत्पन्न हुई। उसने तुर्की जहाज वाले से प्रस्ताव किया कि वह उसके जहाज से अपने जहाज का बदला कर ले। दोब्रीवे के जहाज में व्यापार का कीमती सामान भरा था, इसलिये तुर्की जहाज वाला सहज में राजी हो गया।

अब दोब्रीवे गुलामों के जहाज को लेकर चला और उसमें कई लोगों से उनके घर का पता पूछ-पूछ कर सबको अपने-अपने देश में पहुँचा दिया। केवल एक सुन्दर लड़की और उसके साथ की बुढ़िया शेष रह गई। उसने कहा कि मैं रूस के शासक की पुत्री हूँ और यह मेरी दासी है। अब हमारा घर तक पहुँचना सम्भव नहीं इसलिये मैं और यह किसी भी जगह रह जायेंगे और परिश्रम करके अपना निर्वाह कर लेंगे।

लड़की की सुन्दरता तथा सरलता देखकर दोब्रीवे ने उससे विवाह का प्रस्ताव किया, लड़की भी इतने समय तक दोब्रीवे की सदाशयता तथा परोपकारिता को देखकर उस पर अनुरक्त हो गई थी और विवाह के लिये राजी हो गई। जब वे जहाज को लेकर अपने घर पहुँचे तो दोब्रीवे के पिता ने व्यापार के समाचार पूछे। दोब्रीवे ने सब बात उसे बतला दीं और कहा कि आपके धन से कई सौ व्यक्तियों की प्राण रक्षा हो गई और वे अपने घरों में पहुँच कर आपको आशीर्वाद दे रहे हैं। पर दोब्रीवे के पिता को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस प्रकार धन उड़ाना पसन्द नहीं आया और उसने उसे बहुत डाँटा-फटकारा।

फिर कुछ दिन बाद, जब उसके पिता की नाराजगी कम हो गई, तो उसने दूसरा जहाज व्यापारी माल से भर कर दोब्रीवे को दिया और उसे समझा दिया कि वह उसे नफा लेकर बेचे, पर इस बार भी वैसी ही घटना हुई। जिस समुद्र के किनारे के नगर में उसने जहाज ठहराया, वहाँ कई सौ आदमियों को सिपाहियों द्वारा पकड़े जाते देखा। उनके बाल-बच्चे विवश होकर सिर पीट-पीट कर रो रहे थे। पूछने पर मालूम हुआ कि उन पर सरकार ने कोई टैक्स लगाया था और उसको अदा न कर सकने के कारण सिपाही उनको गिरफ्तार करके ले जा रहे थे। दोब्रीवे को उन पर बड़ी दया आई। यद्यपि वह जानता था कि इस बार इस प्रकार माल लुटा देने से उसके पिता के क्रोध का ठिकाना नहीं रहेगा, पर छोटे-छोटे बालक-बालिकाओं का रोना सुनकर उसका जी बेचैन हो उठा और उसने अपने पिता की नाराजी का खतरा उठाकर भी जहाज का माल बेचकर उन लोगों का टैक्स चुका दिया और उन सबको बन्धनमुक्त करा दिया।

अब विदेश में कोई काम नहीं रह गया था, इसलिये खाली जहाज लेकर वह घर वापस आया। सब हाल सुन कर उसका बाप इतना नाराज हुआ कि उसने दोब्रीवे और उसकी पत्नी को घर से निकाल दिया, पर जब आस-पास के लोगों और मित्रों ने समझाया, तो कुछ समय बाद उसने उनको फिर घर में बुला लिया।

पर इस तरह बैठे रहना किसी को कब अच्छा लग सकता था ? इस बार उसके बाप ने दोब्रीवे से स्पष्ट कह दिया कि अब मेरे पास कुटुम्ब का भरण-पोषण करने के लिये कुछ नहीं रह गया है। घर की सब जमा-पूँजी तुम दो बार लुटा आये। अब जो थोड़ा-सा बचा है, उससे और जमीन, जायदाद के ऊपर दूसरों से कर्ज लेकर मैं तुमको तीसरी बार भेज रहा हूँ। अब भी अगर तुम कुछ कमाने का कार्य न करोगे, तो हम सबको भूखा मरना पड़ेगा।

इस बार दोब्रीवे जहाज पर सवार होकर किसी बहुत दूर के देश में जा पहुँचा। जब वह वहाँ के बन्दरगाह पर उतरा तो अकस्मात् एक बड़ा राजपुरुष उसके पास आया। उसने कहा कि आपने हाथ में जो अँगूठी पहिन रखी है, वह मेरी लड़की की अँगूठी से मिलती हुई है और ऐसी ही अँगूठी उसकी सहेली जार की पुत्री के पास भी थी, जो कई वर्ष से खो गई है, इसलिये आप कृपा कर बतलावें कि यह आपको कैसे प्राप्त हुई ? सम्भव है आपको बतलाने से हम उसे ढूँढ़कर ला सकें।

दोब्रीवे ने अपनी सारी दास्तान राजपुरुष को सुना दी। जब यह वृतान्त जार को मालूम हुआ, तो वह दोब्रीवे पर बड़ा प्रसन्न हुआ और कहा—"अब तुम अपनी स्त्री और माता-पिता को लेकर यहीं चले आओ, मैं तुमको आधा राज्य दे दूँगा, जिससे तुम सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकोगे।"

इस बार दोब्रीवे का घर लौटना पहली बार से सर्वथा भिन्न था। उसके साथ जार ने बहुमूल्य सौगात और भेंट भेजी थी, जिसे पाकर उसके पिता-माता बहुत प्रसन्न हुये। जार-पुत्री की प्रसन्नता का तो कुछ पूछना ही न था। इतने समय बाद वह फिर अपने घर जा रही थी और उसके पिता ने उसके विवाह सम्बन्ध को स्वीकार कर लिया था।

पर इस बार जब वे सब जहाज पर रूस को जा रहे थे, तो एक और दुर्घटना हुई। जार का मन्त्री जो दोब्रीवे के साथ आया था, उसको आधा राज्य मिलने की बात से बड़ा अप्रसन्न हुआ और चाहता था कि किसी प्रकार दोब्रीवे को खत्म कर दिया जाय। इसलिये जब जहाज समुद्र में जा रहा था, तो उसने धोखा देकर दोब्रीवे को पानी में ढकेल दिया। पानी में गिरकर वह हाथ-पैर चलाने लगा। सौभाग्यवश पानी की एक लहर ने उसे किनारे पर फेंक दिया। पर जिस जगह पर पहुँचा वह एक वीरान चट्टान थी। दो-तीन दिन वह उसी पर भूखा-प्यासा बैठा भगवान की प्रार्थना करता रहा। चौथे दिन एक मछुआ अपनी नाव लिये हुये वहाँ आ निकला। दोब्रीवे ने उसको अपनी कथा कह सुनाई। मछुआ ने उसे नाव में बैठाकर बन्दरगाह तक पहुँचाने का वायदा किया, पर साथ में यह शर्त रखी कि जो कुछ उसे प्राप्त हो उसका आधा भाग उसे दिया जाय।

नौका समय पर बन्दरगाह में पहुँच गई और दोब्रीवे राजमहल में पहुँचा। वहाँ उसको मरा हुआ समझकर बड़ा शोक मनाया जा रहा था। अब उसको जीवित देखकर जार को बड़ा आनन्द हुआ। दोब्रीवे ने अपने धकेले जाने और बचने की घटना कह सुनाई और साथ ही यह भी प्रार्थना की कि मन्त्री को इसके लिये दण्ड न दिया जाय। उसकी ऐसी अप्रतिम उदारता देखकर जार ने आधे के बजाय अपना पूरा राज्य ही उसके सुपुर्द कर दिया और स्वयं शेष जीवन ईश्वर प्रार्थना में बिताया।

शुभ दिन देखकर दोब्रीवे को गद्दी पर बैठाया गया। उसी समय वह बूढ़ा मछुआ वहाँ उपस्थित हुआ और उसने कहा—"आपने मुझसे वायदा किया था कि जो मिलेगा उसका आधा भाग मुझे देंगे।"

दोब्रीवे एक महान् आत्मा था। इतने बड़े राज्य में से एक मछुआ को आधा भाग देने को तैयार हो जाना साधारण आदमी का काम नहीं था। पर उसने मछुए का हार्दिक स्वागत किया और बोला—"ठीक है, महाशय, मैं अभी देश का नक्शा मँगाकर आपकी पसन्द का आधा भाग आपको दे दूँगा। तब तक चलो खजाने के दो हिस्से कर लिये जायें।"

अकस्मात् बुड्ढा मछुआ एक सन्त के रूप में बदल गया और कहने लगा—"दोब्रीवे, जो दयालु हैं उसके ऊपर भगवान दया करता है।" यह कहकर वे न मालूम कहाँ चले गये ?

सन्त के वचनों का ध्यान रखकर दोब्रीवे ने अपने शासनकाल में किसी के साथ कठोरता का बर्ताव नहीं किया। उसके उदाहरण को देखकर जनता भी सत्य और न्याय पर चलती हुई सुख-शान्ति पाती रही।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

खिलाकर खाना ब्रह्म रहस्य

कक्षसेन पुत्र अभिप्रतारी और शौनिक कापेय प्रीतिभोज का रसास्वादन ले ही रहे थे कि एक ब्रह्मचारी द्वार पर आ पहुँचा, बड़े अधिकारपूर्वक उसने द्वार खटखटाया और कहा—"अन्न तो मुझे भी चाहिए।"

अभिप्रतारी ने कहलवा दिया—"अपने पकवानों का उपयोग हम स्वयं करेंगे, उसमें से कुछ भी किसी को नहीं बाँटेंगे।" भिक्षुक द्वार पर ही बैठा रहा। आचमन करके वे लोग जब बाहर आये तो ब्रह्मचारी ने उनसे पूछा—"एक देवता है जो चार ऋषियों को खा जाता है। अन्न उसी की तृप्ति के लिये पकाया गया था। फिर तुम दोनों ने अकेले ही क्यों खा लिया ? उसे क्यों नहीं दिया ?"

शौनिक, कापेय और कक्षसेन सन्न रह गए। उन्होंने विस्मित होकर पूछा—"भला चार ऋषियों को खाने वाला देव कौन है ? और कैसे, कौन उसके लिए अन्न पकाता है। हमने पेट भरने के लिए ही पकवान बनाए थे। आप जो भी कुछ कह रहे हैं, इसकी जानकारी हमें नहीं है। हे ब्रह्मचारी ! कृपया हमारी धृष्टता को क्षमा करते हुए हमारा समाधान करें।"

ब्रह्मचारी ने कहा—"सबमें समाया हुआ सूत्रात्मा प्राण ही वह देव है। जल, पवन, अग्नि और यह पदार्थ उसी के ऋषि अन्न हैं। जो कुछ इस संसार में दृश्यमान है, वह समष्टिगत सूत्रात्मा के लिए बनाया गया है।" ब्रह्मचारी ने अपनी बात को और भी स्पष्ट करते हुए कहा—"शरीर में वाणी, चक्षु, श्रोत्र और मन ये चार ऋषि हैं। यह चारों ओर व्यापक ब्रह्मसत्ता की समष्टि आत्मा के लिए ही बनाए गये हैं।"

अभिप्रतारी युगल साश्चर्य यह सब सुन रहे थे। उन्हें कौतूहल का समाधान करने की दृष्टि से ब्रह्मचारी ने पूछा—"क्या आप लोगों ने रैक्व ऋषि की रहस्य विद्या के सम्बन्ध में कभी कुछ पढ़ा या सुना नहीं। वे कहते रहे हैं कि समस्त प्राणधारी—एक ही महाप्राण के अविछिन्न घटक हैं। एक ही सूत्र में पिरोये हुए हैं। यह जो कुछ उपार्जन होता है, महाप्राण के लिये वही सर्वसम्पदाओं का उत्पादक है और वही उपभोक्ता से पहला अधिकार उसी का है। पीछे घटक उत्पादक का।"

"मैं भी उसी महाप्राण का एक घटक हूँ, जिसके आप लोग हैं। मेरी भूख की अनुभूति तुम्हें भी होनी चाहिए थी ? महाप्राण की संवेदनाओं का ध्यान रखे बिना तुम क्यों खाते रहे ? क्या यह उचित था। महाप्राण की तृप्ति के लिए—यह अन्न पकाया गया था—प्राण ने माँगा—फिर प्राणों को क्यों नहीं दिया गया ?"

छान्दोग्योपनिषद् के रचयिता ने इस कथानक के मर्म को और भी अधिक स्पष्ट करते हुए कहा है—"वही महान महिमा वाला महाप्राण समस्त अन्नों का उपभोक्ता है। वही सबको खाता है। उसे कोई नहीं खाता।"

उपार्जन और उपभोग का मूल अधिकारी समष्टिगत सूत्रात्मा है। उस विश्व मानव का भाग उसे प्रदान करते हुए ही अपनी तृप्ति करनी चाहिए। इस प्रकार जो खाना जानता है, वही सच्चे अर्थों में मानव है। **"अन्नादो भवति य एवं वेद"** जो खिलाकर खाता है, वही खाने का रहस्य जानता है।"

कपि गोत्रज, शौनिक और कक्षसेन पुत्र अभिप्रतारी की आँखें खुल गयीं। उसने ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मचारी को नमन किया, ज्ञान चक्षु खोल देने के लिये अपनी कृतज्ञता प्रकट की और सेवकों से ब्रह्मचारी को तृप्त करने को कहा। वे बोल उठे—"आपने हमारी विस्मृति हटा दी। भविष्य में हम खिलाकर ही खाया करेंगे।"

हृदय परिवर्तन

पुन्नाग, अपराध का पर्याय बन चुका था। अश्रुतवन की शिलाएँ, वृक्ष, निर्झर और वनचर सब उसकी क्रूरता के साक्षी थे। उस पथ पर भटका हुआ कोई भी यात्री सुरक्षित अपने घर पहुँचा हो, ऐसा आज तक किसी ने सुना नहीं था। बहुतेरे प्रयत्न करके भी राजदण्ड उसकी छाया तक के दर्शन नहीं कर पाया। प्राणियों को पीड़ित देखना ही मानो पुन्नाग का इष्ट था। निरीहों का क्रन्दन, करुणा भरी पुकारें, हृदय तो क्या उसके मन तक में प्रवेश नहीं पा सकी थीं। ऐसा लगता था विधाता ने उसकी रचना ही अपराध के लिये की हो।

किन्तु पुन्नाग जब अपने पुत्री को देखता, न जाने क्यों उसका अपराध सिमटकर उसके मन में प्रवेश करने लगता। अपने पिता को समीप पाकर विपाशा की बाँछें खिल जातीं, हृदय उल्लास से भर जाता। विपाशा प्रश्न करती—"तात् ! आप मेरे लिये इतनी सम्पत्ति, वस्त्र, आभूषण कहाँ से लाते हैं ?" तो यह प्रश्न पुन्नाग के हृदय को झकझोर जाता। वह बात को ऐसे टाल जाता मानो पुत्री का अधिकार भौतिक सम्पत्ति ही हो, भावनाएँ नहीं और मातृविहीन विपाशा सदैव अपने पिता के स्नेह के लिये ही तड़पती रहती। धीरे-धीरे उसे पिता के कृत्यों का भी पता चल गया।

उस दिन विपाशा अकेली थी। मृग-शिशु, मयंक उसे दिखाई नहीं दिया। खोजती हुई वह उपवन में पहुँची। मर्यक ने छलाँग लगाते समय अपनी अगली टाँग तोड़ ली थी। वह चल नहीं पा रहा था। दूसरा पैर उठाता तो शरीर का भार टूटी अस्थि पर पड़ता। मयंक दर्द से छटपटा उठता। विपाशा ने पहली बार पीड़ा देखी थी, उसे मालूम हो गया कि उसके जन्मदाता अब तक सहस्रों आत्माओं को कैसे पीड़ा के गहन गह्वर में झोंक चुके हैं। मृग-शिशु की पीड़ा में उसने अपना जन्म-जन्मान्तरों का प्रतिबिम्ब देखा। पैर की हड्डी टूटने से क्या होता है, यह जानने के लिये नन्हीं विपाशा ने प्रस्तर खण्ड लिया और अपने पैर में प्रहार किया। हड्डी के टूटते ही विपाशा पीड़ा से छटपटाने लगी।

दर्शन के निष्णात् की तरह विपाशा का ध्यान पुनः मृग शिशु पर गया। अब मयंक की पीड़ा का उसे आत्मीय बोध हो रहा था। आँखें तो अविरल बरसती जा रही थीं, पर ऐसी विश्रान्ति उसे सम्भवतः अपने पिता के स्नेह से भी न मिलती। मयंक ने यह सब देखा तो उसे मानवेत्तर प्राणी की करुणा छलक उठी। बहुत देर तक विपाशा उसके पैर में अपना उत्तरीय बाँधती रही और मयंक उसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चाटता ही रहा—चाटता ही रहा। इसी स्थिति में कब शाम हो गई, कब दोनों बालक निद्रा की गोद में चले गये, कुछ पता नहीं चला।

आज पुन्नाग अपनी पुत्री से मिलने आया है, पर सदैव की तरह उसके द्वार बन्द नहीं—खुले थे। पहले उसकी पद्चाप सुनते ही विपाशा दौड़कर आती थी, पर आज पुन्नाग का मन दौड़ रहा था, पर विपाशा नहीं थी। पुन्नाग ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई, विपाशा कहीं भी तो नहीं थीं। वह उपवन की ओर भागा जहाँ उसने प्रकृति के दो जीवों को धरती माँ की गोद में एक साथ दुःख भरी विश्रान्ति में देखा। पुन्नाग ने पुकारा विपाशे ! "तात्" कहकर जैसे ही विपाशा स्नेहवश उठी कि वहीं धराशायी हो गई। व्यथा से उसका सारा शरीर काँप उठा।

पुन्नाग का हृदय विदीर्ण हो उठा। उसने चीत्कार की विपाशे ! तुम्हें यह क्या हुआ ? विपाशा ने क्षीण स्वर में उत्तर दिया—"तात् ! मैं देखना चाहती थी कि जीवों को किस तरह की पीड़ा होती है, सुना है आप भी तो ऐसे ही लोगों को कष्ट दिया करते हैं" इतना कहते-कहते विपाशा मूर्च्छित हो गई। मानवीय सम्वेदना कितनी मार्मिक होती है, यह पुन्नाग को आज पता चला।

पुन्नाग का मर्म मचल उठा, उसने उस दिन से हिंसा न करने की सौगन्ध खाई। यही नहीं उसने शेष जीवन पीड़ित मानवेत्तर जीवों का उपचार में लगा दिया।

यदि दूर हो जाए बेहोशी तो

जेठ की तपती दुपहरी, उस पर क्षेत्र में छाया दुर्भिक्ष। गाँव के बाहर रास्ते में एक वृद्ध और एक किशोर मूर्च्छित पड़े थे। उनके कुम्हलाए चेहरे, धूल भरे पाँव देखकर यह पता लगता था कि वे जरूर काफी दूर से आ रहे होंगे ? अशक्ततावश थककर गिर पड़े, मूर्च्छित हो गए। पर क्यों आई अशक्तता ? क्यों गिरे ? किसे परवाह थी ? लोग आते मुँह घुमाकर निकल जाते जैसे-जीवित इनसान न होकर मशीनी पुतले हों। वे भले अपने को जीवित कहते रहे, पर उनके भीतर की मनुष्यता तो मूर्च्छित थी, अन्यथा भला इस तरह कैसे निकल जाते ?

एक-एक करके न जाने कितने निकले ? एक यह भी था, पर उनमें से नहीं वह रुका गौर से देखा, छाती की धड़कन, नाड़ी की गति यह बता रही थी कि वे जीवित हैं। एक-एक करके दोनों को पास खड़े छायादार वृक्ष के नीचे लाया, अपने लोटे से चेहरों पर जल छिड़का और अंगोछे से हवा करने लगा। एक मिनट, दो मिनट, पाँच मिनट बाद उन दोनों ने आँखें खोलीं। थोड़ी देर बाद उनके मुँह से वाणी निकली "अ-आप देवदूत हैं-मैं मर गया हूँ।" "नहीं, न आप मरे हैं और न मैं देवदूत हूँ। सिर्फ इनसान, इससे अधिक कुछ नहीं।"

अब तक वे होश में आ चुके थे। पूछने पर बताया—"हम दोनों बाप-बेटे सात-आठ मील दूर गाँव के रहने वाले हैं। काम की तलाश में निकले थे, घर में अन्न का दाना नहीं, हम दोनों के पेट में भी तीन दिन से एक दाना नहीं गया और इसकी माँ कहते-कहते बूढ़े की आँखें भर आयीं, शून्य की ओर ताकने लगा।" "क्या हुआ उसको ?" युवक ने पूछा। क्या-बीमारी थी ? बीमारी थी "भूख।" भोजन का अभाव, काम का दबाव और चिन्ता इन्हीं यमदूतों ने उसे खा लिया।

पेट की क्षुधा, इसके निवारण के बगैर न तो कोई उपदेश अच्छा लगता है, न कोई ज्ञान सुहाता है। भगवान बुद्ध ने भी पहले रोटी, फिर उपदेश की सिफारिश की थी। युवक जैसे-तैसे दोनों को अपने घर ले आया। पत्नी से बोला—"देखो भक्त आए हैं।" खाट पर शिथिल पड़े बूढ़े ने कहा—"भक्त कहाँ हैं भाई-हम तो भूखे हैं सिर्फ भूखे ? अरे हर कोई भक्त होता है। कोई इसे जानकर तदनुरूप आचरण करता है ? कोई न जानने और मानने के कारण हैरान-परेशान फिरता है।"

इस बीच पत्नी सारी स्थिति भाँप चुकी थी। भोजन तैयार था। अतिथियों के साथ पति को भी परोसा। क्षुधा पूर्ति ने वृद्धा और किशोर की सारी पीड़ा हर ली थी। युवक ने अपने घर से उन्हें कुछ अनाज दिया। दिन भर विश्राम के बाद वे दोनों शाम को चले गए।

चले तो गए पर कुछ छोड़ गए, एक पीड़ा, तड़प, कसक। वह सोचता रहा ऐसे न जाने कितने होंगे ? न जाने कितनों की पत्नियाँ भूख के मारे मरती होंगी ? कितनों को बेहोशी आती होगी ? कौन करेगा इनकी मदद ? वे जो स्वयं बेहोश हैं। धन के नशे में, ताकत के गर्व में, अहंकार के ठस्से में ? नहीं-नहीं एक बेहोश दूसरे बेहोश की कैसे मदद कर सकता है ? पर हम तो क्या हम भी बेहोश हैं। नहीं तो विचार के साथ उसने सिर झटक दिया। आँखें फाड़कर अपने चारों ओर देखा।

पत्नी पास खड़ी उसका यह विचित्र व्यवहार देखे जा रही थी। उसने पूछा—"क्योंजी ! बात क्या है ?" प्रश्न के उत्तर में युवक ने प्रश्न किया—क्या तुम बेहोश हो ? नहीं ! फिर क्या मैं बेहोश हूँ ? नहीं ? पर आपको हो क्या गया है ?—कुछ नहीं बेहोशी टूट रही है ?

"बेहोशी ?" "हाँ ? बेहोशी ही ! अब तक बेहोश न होता, तो मनुष्य की पीड़ा क्यों न अनुभव होती ? इतने भूखों के रहते मैं कैसे चैन से खाता रहा ? अरे खाते-खाते उल्टी क्यों नहीं हो गई ? इतने पीड़ितों के रहते दर्द से छाती क्यों नहीं फटी ? सिर्फ इसलिए कि बेहोश थे ?" "ठीक कहते हो" पत्नी ने धीरे से कहा। तो अब ? कल से भण्डारा चलाने का विचार है। भूखों को बटोरकर लाऊँगा, उन्हें खिलाने के बाद खाऊँगा।

विचार नहीं संकल्प कहो, पत्नी का स्वर उत्साहपूर्ण था।

संकल्प की पूर्णता के लिए कुछ और करना पड़ेगा "बोलो क्या सहमत हो ?"

"पवित्र संकल्प की पूर्ति के लिए कुछ करने के लिए सहमत होने की बात करते हो ? अरे सब कुछ करने के लिए सहमत हूँ।"

सचमुच पति का स्वर उल्लासपूर्ण था तो हम जिम्मेदारी नहीं बढ़ाएँगे, बच्चे पैदा करने के मोह में नहीं पड़ेंगे। और, और क्या ? आज की अपेक्षा कहीं अधिक किफायतदार बनेंगे, प्रभु भक्ति के सिवा और कुछ न चाहेंगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तभी तो पूरा हो सकेगा अपना संकल्प ! संकल्प की शुरुआत का यह दिन था माघ शुक्ल द्वितीय संवत् १८७१। उस दिन से पति खेतों में काम करता। पत्नी चक्की पीसती, आगन्तुकों को बनाकर खिलाती। पति-पत्नी शाम होने पर बैठते, कथा संकीर्तन के माध्यम से बताते, मानव पीड़ा के निवारण में अपना सब कुछ होम देना भक्ति है। कथनी-करनी की एकता ने अनेकों के जीवन बदले।

वर्षों यह क्रम अनवरत् चलता रहा। एक दिन वृद्ध साधु आया। पत्नी-पति की परमार्थ परायणता से इतना खुश हुआ कि आशीर्वाद में अपना झोली-झण्डा देकर चलता बना। अब तक युवक भी वृद्ध हो गया था और उसकी पत्नी भी। उन्होंने झोली की स्थापना अपने आश्रम में की। मानो यह इस बात की प्रतीक हो कि जब इन पति-पत्नी ने अपना सर्वस्व जनसेवा में लगा दिया, तब झोली इतना उगलती है कि कमी का नामोनिशान नहीं। वोओ और काटो के शाश्वत सिद्धान्त की प्रतीक बनी झोली। इसे चमत्कारी माना जाने लगा व झोली दे जाने वाले को भगवान। जो भी हो, उस स्थान की व झोली की पूजा होने लगी। वस्तुतः सिद्धान्त चमत्कारी है और इस पूजा का तात्पर्य है, तदनुरूप आचरण।

गुजरात के वीरपुर गाँव के ये भक्त दम्पति थे—जलाराम वापा और वीर बाई। जिनका कर्त्तव्य हम सभी को आज भी झकझोरता है "बेहोशी छोड़ो होश में आओ" होश में आ चुके हो, तो सक्रिय बनो, सेवा करो। यदि इसमें जुट सको तो सारी कसौटियों पर अपने को खरा सावित कर सको, तो अकिंचन होने पर भी अनेकों कष्टों को दूर कर सकने में समर्थ हो सकेंगे। एक छटांक पीतल जब गलकर टोंटी में ढलती, नल से जुड़ती तो हजारों की प्यास बुझाती है। स्वयं भी ऐसा ही बने। इस बनने का नाम भक्ति है।

प्रेम का भगवान

एक राजा जंगल में शिकार खेलने गया, वहाँ उसे एक साधु मिले। कुछ समय तक साधु का संग करने पर राजा को बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने साधु को कुछ देना चाहा। साधु ने कहा—"मैं अपनी स्थिति में पूर्ण रूप से सन्तुष्ट हूँ। खाने के लिये वृक्ष मुझे यथेष्ट फल दे देते हैं, ये रमणीय पवित्र सलिला नदियाँ मुझे आवश्यकतानुसार जल प्रदान करती हैं और सोने के लिए पहाड़ों की गुफाएँ बनी ही हैं। तुम राजा हो या सम्राट् मुझे तुम से कुछ भी लेना नहीं है।" सम्राट ने कहा—"भगवन् ! मुझे पवित्र करने और मेरा जीवन सफल करने के लिए ही कुछ लीजिए और कृपापूर्वक एक वार मेरी राजधानी में पदार्पण कीजिए।"

बहुत कहने-सुनने पर साधु ने सम्राट् के साथ उसके नगर में जाना स्वीकार कर लिया। साधु, बादशाह के महल में पहुँचे, वहाँ चारों ओर हीरे, पन्ने, मोती, माणिक आदि जवाहरात और सोने-चाँदी के पदार्थ पड़े थे और भी बहुत-सी बहुमूल्य अद्भुत वस्तुएँ थीं, सभी ओर ऐश्वर्य और वैभव के चिह्न दिखाई देते थे। वहाँ पहुँचने पर सम्राट ने साधु से कहा—"महाराज ! आप तनिक विश्राम कीजिए, इतने में मैं प्रार्थना कर लेता हूँ।" यह कहकर राजा एक कोने में जाकर प्रार्थना करने लगा—"प्रभो मुझे और भी अधिक ऐश्वर्य और भी अधिक सन्तान तथा और भी अधिक राज्य प्रदान कीजिए।" इतना सुनते ही साधु उठकर जाने लगे। राजा ने पीछे से दौड़कर पूछा—"महाराज ! कहाँ जा रहे हैं, मेरी सेवा स्वीकार किये बिना कैसे लौट रहे हैं ?" साधु ने राजा की ओर मुख फिराकर कहा—"भिखारी ! मैं तुझ भिखारी से भीख नहीं माँगता, तू मुझे क्या दे सकता है, तू तो स्वयं ही भीख माँगता है।"

वास्तव में राजा की प्रार्थना प्रेम की भाषा में नहीं थी। यदि भगवान से ऐसी प्रार्थना की जा सकती हो, तो फिर प्रेम और दुकानदारी में भेद ही क्या रह गया ? अतएव प्रेम का सर्वप्रथम यही लक्षण है कि उसमें क्रय-विक्रय नहीं है। प्रेम तो सदा दिया ही करता है, वह कभी लेता नहीं, प्रेम दाता है, ग्रहीता नहीं। भगवान का भक्त कहता है कि—"भगवान चाहें तो मैं अपना सर्वस्व उनके अर्पण कर सकता हूँ; परन्तु उनसे मैं कुछ भी लेना नहीं चाहता। इस जगत् की कोई भी वस्तु मुझे नहीं चाहिए। मुझसे प्रेम किये बिना रहा नहीं जाता, इसीलिए प्रेम करता हूँ, इस प्रेम के परिवर्तन में उनसे किसी प्रकार की कृपा भिक्षा नहीं चाहता। ईश्वर सर्व-शक्तिमान है या नहीं, यह जानने की मुझे कोई आवश्यकता नहीं; क्योंकि मैं न तो उससे कोई शक्ति चाहता हूँ और न उसकी किसी शक्ति का विकास ही देखना चाहता हूँ, वह मेरे प्रेम के भगवान् हैं। बस, इतना ज्ञान लेना मेरे लिए बहुत है। इसके अतिरिक्त मैं और कुछ भी जानना नहीं चाहता।"

व्यथा, जो सृजन में नियोजित हुई

टहलते-टहलते वह थक-सा गया। कदम कमरे के फर्श पर ऐसे पड़ रहे थे, जैसे किसी अज्ञात यन्त्र द्वारा चलाये जा रहे हों। उसका मन अपनी ही किन्हीं यादों की गहराई में गोते लगा रहा था। दृष्टि खिड़की को बेधकर, सामने की हरियाली को पारकर, तालाब के पानी को चीरकर शून्य में सामने को दौड़ रही थी। बाहर की निर्जनता कमरे में प्रवेश कर बार-बार उसे निर्वासन का अहसास करा देती। अचानक उसके चेहरे पर क्षीण-सी मुसकान उभरी और गायब हो गयी। मुसकान की इस प्रभा में उसका बालसुलभ किन्तु गम्भीर चेहरा, भीगी सीप-सी निश्छल आँखें प्रदीप्त हो उठीं। इतना ही नहीं अतीत और वर्तमान के सम्बन्ध में जीवित हो उठा। भविष्य किसी कोने से झाँकता दिखायी दिया।

जब सब लौट जाते हैं तब भी यहाँ बहुत कुछ पीछे छूट जाता है। कैसा सम्बन्ध है पूरे व्यापार में ? उस दिन वह मास्को स्थित अपनी प्रयोगशाला में सटे पुस्तकालय में पहुँचा ही था कि कई मित्रों ने घेर लिया। सभी प्रसन्न थे, अपने मित्र की सफलता से कुछ गर्वोन्नत भी। प्रत्येक बधाई दे रहा था। एक ने उत्साह के अतिरेक में उसे बधाई हो कहते हुए छाती से चिपका लिया। ये प्रसन्नता की स्वर लहरियाँ उसके द्वारा बनाये गये हाइड्रोजन बम के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सफल परीक्षण के उपलक्ष्य में थीं। वर्षों की मेहनत के बाद अपने ताप-नाभिकीय संश्लेषण के चमत्कारी आविष्कार को यह रूप दे पाया था। उसे तो सबसे अधिक खुश होना चाहिये था, पर सर्वाधिक खिन्न था। मानो हाइड्रोजन बम के रूप में उसने बिखरी-खोयी व्यथा बटोरी हो। समूची प्रकृति वृक्ष-वनस्पति, जीव-जन्तु उसे तिरस्कृत करते, फटकराते हुए लगते। जैसे ये सभी धिक्कारते हुए कह रहे हों कि महकते-मुसकराते जीवन को झुलसाने, तहस-नहस करने का सरंजाम जुटाने वाले वैज्ञानिक ! क्या तुम अपनी अक्लमन्दी का प्रयोग जीवन के लिये नहीं कर सकते थे ? सृजन के कार्य करने में क्या तुम्हारा कुछ अहित हो जाता ?

रह-रहकर वृद्ध शिक्षक पिता के प्रेम स्वर कानों में गूँज जाते—"बेटा ! मनुष्य की सबसे बड़ी उपलब्धि मनुष्यता है। यही प्राप्तव्य है, यही कर्तव्य। इसे मत गँवा बैठना" और हाइड्रोजन बम के गौरवशाली आविष्कारक क्या इसे तू सुरक्षित रख सका ? स्वयं से पूछे गये इस प्रश्न के उत्तर में उभरी लक्ष-लक्ष भाग्यहीन नारियों के नेत्रों से बहने वाली वेदना। असंख्य मानवों, पशुओं के एकाकार हो रहे क्षत-विक्षत शव। झुलसती प्रकृति-आखिर यही तो है; उसके आविष्कार की परिणति। वह सिहर उठा कल्पना के नेत्र से अपने आविष्कार के परिणाम को देखकर। मित्रों ने झकझोरकर पूछा—"क्या हो गया आन्द्रेय ! तबियत तो ठीक है।" 'हाँ' कहने के साथ उसने उनकी ओर इस तरह देखा-जैसे ये सभी उसी की भाँति विनाशदूत हों। सम्मान, पुरस्कारों की राशियाँ ऐसी लगने लगीं जैसे उसके शरीर पर एक पर एक नश्तर चुभोये जा रहे हों। इनके तेज दर्द से वह कराह उठा।

"चलो तुम्हें घर छोड़ आते हैं, तुम्हें विश्राम की आवश्यकता है"—वेलीखोव ने सुझाव दिया। दोनों एक-दूसरे का हाथ पकड़कर गाड़ी में बैठे। वेलीखोव उसे घर छोड़कर वापस चला गया था। रात्रि सोच-विचार में बीत गयी। अगले दिन वह स्वस्थ चित्त अनुभव कर रहे थे। इस अनुभूति का कारण था, वह संकल्प जो पिछली रात किया गया। विज्ञान अकादमी पहुँचकर जब मित्र मण्डली को सुनाया तो सभी भौंचक्के रह गये। एक-दो ने हाथ पकड़कर कहा—"तुम्हारा दिमाग तो ठीक है। कैसी बहकी-बहकी बातें कर रहे हो ?"

"नहीं, मेरा यह निश्चय है कि आज से न केवल मैं स्वयं विध्वंसक हथियार नहीं बनाऊँगा, बल्कि राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इस महानाश के सरंजाम का विरोध करूँगा।" स्वरों में दृढ़ता थी।

"इस निश्चय का कारण बता सकते हो ?" एक ने आश्चर्य प्रकट करते हुए पूछा। उसे इनकी बातें समझ में नहीं आ रही थीं।

"कारण एक ही है विज्ञान और वैज्ञानिक के माथे पर लगे कलंक को धोना। संसार को यह बताना कि ये दोनों मनुष्यता के शत्रु ही नहीं, मित्र भी हो सकते हैं।" पर्याप्त गम्भीरता से कही गयी बात ने उपस्थित जनों को सकते में ला दिया।

"किन्तु कौन तुम्हारा साथ देगा ? साम्यवाद की कठोर प्रशासनिक व्यवस्था से तुम अपरिचित तो नहीं। फिर राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सरकारें तुम्हारी बातें क्यों मानने लगीं ? पुरस्कारों की विशाल राशि, बड़े-बड़े सम्मानों का लोभ छोड़कर वैज्ञानिक क्यों तुम्हारे कहने में आने लगे ? सोचो और भली प्रकार विचार करो।" सभी को अपनी इस आदर्शवादी मित्र से सहानुभूति थी।

"अकेले होने का अर्थ बुजदिल होना तो नहीं, साम्यवाद विनाशवाद तो नहीं, कुछ भी हो जिनका हृदय मानव जाति की पीड़ाओं को अनुभव करता है, वे ही हमारी नैतिकता की सकारात्मक प्रगति और सभ्यता का विकास निश्चित करते हैं।" उनके इन शब्दों ने पुस्तकालय में सन्नाटा ला दिया था। सब एक-दूसरे का चेहरा देखने लगे।

तब से आज तक कितना कुछ नहीं गुजर गया। सोचते हुए उन्होंने एक उसाँस ली। खिड़की के पास कुर्सी खिसकाकर बैठ गये। हवा एकदम शान्त थी, तालाब के पानी में कहीं-कहीं कम्पन भर थी। बाकी सब स्थिर था। कितनी ही समझाने की कोशिशें की गयीं। पद-पुरस्कार-सम्मान के लोभ दिये गये किन्तु सम्वेदना के तेज बहाव में यह सब कहाँ टिकता है ? रक्षा के नाम पर सब कुछ स्वाहा कर देने वाली धधकती ज्वालाओं को इकट्ठा करना कितना हास्यास्पद है ? अशान्ति के अस्त्रों से शान्ति की कल्पना कितनी निरर्थक है ? निरन्तर बढ़ते जा रहे उनकी मानवतावादी कदमों को रोकने के लिये रूस की सरकार ने मास्को से गोर्की निर्वासित कर दिया।

आज तो दिन, महीने, वर्ष भी अपनी यात्रा पूरी कर चुके हैं। चिन्तन की कड़ियों को तोड़ती, मोटर के रुकने की आवाज आयी। होगा कोई, इस निर्वासन के समय में उनके पास भला कौन आने लगा ? वह फिर व्यक्ति और समाज की डोर सुलझाने लगे। व्यक्ति उन्मादी-पागल हो जाय तो समाज उसे सुधारता है, नियन्त्रित करता है, परन्तु समाज यदि उन्मत्त, दिशा भ्रष्ट हो उठे तो, तब ? क्या समझदार इनसानों को आगे नहीं आना चाहिये। महामारी आने पर मरने के डर से क्या चिकित्सक को मौन हो बैठना चाहिये ? तब समाज के इस पागलपन को विश्व मनीषा क्यों मौन हो देख रही है ? विचारों को पलटने के लिये यत्न क्यों नहीं किये जाते ? इसी समय दरवाजे, एक पर एक खुलने लगे। लगा जैसे सारे मकान में भूचाल आ गया। कुछ ही क्षणों में हँसते-मुसकराते मित्रों की भीड़ उन्हें घेरकर खड़ी हो गयी। सभी उन्हें बधाइयाँ दे रहे थे। लगने लगा जैसे वह स्वप्न देख रहे हों। आँखें मलीं, पर दृश्य यथावत था। हँसते हुए मित्रों ने पूछा—"क्या कर रहे थे, आन्द्रेय ?"

"व्यक्ति और समाज के बीच का समीकरण हल कर रहा था, पर तुम भाई लोग बधाई किस बात की दे रहे हो ? कहीं इस बार भी तो नहीं ....." आश्चर्यपूर्ण मुखरित हुई।

"अरे नहीं-नहीं, इस बार की बधाई हाइड्रोजन बम के आविष्कारक को नहीं, अपनी मनुष्यता की उपलब्धि को जन-जन तक बाँटने वाले सच्चे इनसान के लिये है, जिसका निर्वासन आज रद्द हो चुका है, पर तुम्हारा वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समीकरण कौन-सा है ?" प्रश्नकर्त्ता कुछ अधिक ही प्रसन्न था।

"मेरे दिमाग में साम्यवाद का एक नया स्वरूप स्पष्ट हुआ।"

"क्या मार्क्स से कुछ भिन्न ?"

"उद्देश्य की दृष्टि से तो नहीं पर प्रक्रिया और सैद्धान्तिक दृष्टि से अवश्य।"

"क्या ?"

"यही कि साम्यता थोपी न जाय, दिलों से निकले। जैसा परिवार में होता है। प्रत्येक सदस्य अपनी मौलिकता विकसित करने के लिये स्वतन्त्र है। इतना ही नहीं, बल्कि सबके सब अपनी अर्जित निधि को परिवार के लिये लुटाने हेतु आतुर रहते हैं। सभी दम साधे सुन रहे थे। थोपी गयी साम्यता में व्यक्ति मशीन होकर रह जाता है—जज्बात और भावनाओं से शून्य। आखिर समाज भी तो परिवार ही है। जो तथ्य एक दायरे में घट सकता है, दूसरे में क्यों नहीं ?"

"भावनाओं के साथ एकता और समता पनपे, तब तो साम्यवाद का डिवाइनाइजेशन हो जाएगा।" मित्र मण्डली में से एक ने मुस्कारते हुए कहा।

"कुछ भी कहो। मेरा मतलब तो इतना ही है कि व्यक्ति मौलिक विचार से वंचित न हो और समाज को उसका हिस्सा मिले बिना न रहे। अगला जमाना कुछ ऐसा ही होने वाला है—शान्ति, प्रेम, सौहार्द्र के युग का आगमन होने को है।" गम्भीर मुद्रा में कही गयी इस बात पर चुटकी लेते हुए एक ने कहा—"तुम तो स्वप्नदर्शी हो गये भाई !" "नहीं, नहीं ! अकेलेपन ने इसकी दिव्य दृष्टि विकसित कर दी है।" दूसरे ने प्रतिवाद किया। सुनकर बाकी बोल उठे—"ठीक कहते हो।" अच्छा सामान समेटो, हमें चलना भी है। सामान कहाँ, यही है, इसी को समेटो। एक अन्य मित्र के इस कथन पर कमरे में खिलखिलाहट गूँज उठी।

निर्वासन की समाप्ति होते ही वह अपने ध्येय में पुनः जुट गये। सभी से कहते, नवयुग का नया प्रभात आने को है। हमें न केवल अपना जीवन उसके योग्य बनाना चाहिये, वल्कि औरों की सहायता करनी चाहिये। मरने से पूर्व उन्होंने कहा—"मेरा जीवन और कुछ नहीं, नवयुग के नये प्रभात के अवसर पर एक वैज्ञानिक द्वारा दी गयी श्रद्धांजलि है।" यह वैज्ञानिक थे—आन्द्रेय दिमिभ्येविच सखारोव, जिनके निधन पर कम्युनिस्ट पार्टी सरकार ने कहा—"विख्यात वैज्ञानिक, सार्वजनिक कार्यकर्त्ता, सच्चे ईमानदार इनसान ने शरीर छोड़ा। उन्होंने जो कुछ भी किया, अपनी आत्मा की माँग पर, गहरे मानवीय विश्वास के साथ किया।"

समर्थन और सहयोग

महाभारत के युद्ध की तैयारियाँ हो रही थीं। कौरव और पाण्डव अपने-अपने पक्ष को मजबूत बनाने के लिए कई राजा-महाराजाओं के पास गये और उनका समर्थन व सहयोग प्राप्त भी किया। समर्थन की दृष्टि से कौरवों का पक्ष अधिक मजबूत था क्योंकि दुर्योधन ने वाक्पटुता, चातुरी, छल, बल और साम-दाम, दण्ड-भेद आदि नीतियाँ अपनाकर अपनी ओर अधिकांश राज्यों को कर लिया। उसे समर्थन तो भारी मिल गया, पर कदाचित् ही आन्तरिक सहयोग मिला हो क्योंकि सभी जानते थे कि कौरवों का पक्ष अन्यायपूर्ण है और पाण्डव अत्याचार पीड़ित।

महाबली शल्य को भी दुर्योधन ने वाक्चातुरी से अपनी ओर किया। यद्यपि वह चाहता नहीं था कि कौरवों का सहयोग करे, पर वचनबद्ध हो जाने के कारण शल्य को दुर्योधन की बात रखनी पड़ी। फिर भी शल्य ने युद्ध करने के स्थान पर कर्ण का सारथि बनना और उसकी रक्षा करना पसन्द किया। वह सोचता था पूरी तरह अन्याय को सहयोग देने की अपेक्षा विवशता हो, तो किसी भी रूप में समर्थन भर आंशिक रूप से दोषपूर्ण है।

युद्ध जब आरम्भ हुआ तो कर्ण और अर्जुन आमने-सामने के प्रतिद्वन्द्वी बने। युद्ध आरम्भ होने से पूर्व शल्य कर्ण के सारथि बने, कृष्ण के पास गये और क्षमा माँगते हुए बोले—"भगवन् मैं किसी मूल्य पर कौरवों के पक्ष में जाना नहीं चाहता था। कुछ वचनों से बँध गया हूँ इसलिए बड़े पश्चातापपूर्ण हृदय से यह काम कर रहा हूँ। आपकी दृष्टि में यदि अभी भी कोई उपाय हो, जिससे कि मैं अपने वचनों की रक्षा भी कर सकूँ और हृदय को भी तप्त न होने दूँ, तो बताइये।"

कृष्ण क्षणभर को चिन्तन मुद्रा में लीन हुए और फिर बोले—"तुम कर्ण का रथ तो हाँक ही रहे हो। वह निश्चय ही बड़ा शूरवीर और शक्ति सम्पन्न है। अर्जुन का उसके सामने टिकना कठिन है। इसलिए, तुम युद्ध में कर्ण को निरुत्साहित करते रहना। निरुत्साहित व्यक्ति की आधी सामर्थ्य समाप्त हो जाती है। इससे तुम कौरवों के पक्ष में रहते हुए भी हमारे सहयोगी बन सकते हो।"

युद्ध में शल्य ने ऐसा ही किया। अर्जुन को सामने देखकर कर्ण ने जब हुंकार भरी और कहा—"मैं अर्जुन को आज ही समाप्त कर दम लूँगा।" शल्य हँस दिया।

कर्ण को बड़ा आश्चर्य हुआ, उसने हँसने का कारण पूछा तो शल्य ने कहा—"तुम शूरवीर होकर भी बच्चों जैसी बातें करते हो।"

"तो क्या अर्जुन को मारना असम्भव है।"—कर्ण ने पूछा।

"असम्भव नहीं तो टेढ़ी खीर अवश्य है। अर्जुन ने इन्द्र से युद्ध करना सीखा और भगवान शंकर से धनुर्विद्या सीखी है। तुम उसे क्या हराओगे ?"

कर्ण का आधा उत्साह ठण्डा हो गया। इधर अर्जुन ने अपने सामने कर्ण को देखकर कहा—"भगवन् मैं कर्ण के सामने किस प्रकार टिक सकूँगा ?"

"पागल हुए हो"—कृष्ण ने फटकारते हुए अर्जुन को प्रोत्साहित किया—"तुम जानते हो कि कर्ण को शंकर का शाप है कि वह अन्य वीरों के लिए भले ही अजेय हो, पर अर्जुन के सामने उसकी धनुर्विद्या कोई काम नहीं करेगी।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भगवान कृष्ण से यह बात सुनकर अर्जुन बड़ा उत्साहित हुआ और उसके हौंसले बढ़ गये। उसने कर्ण के आक्रमण का करारा उत्तर दिया। उधर शल्य द्वारा कर्ण को हतोत्साहित किये जाने पर प्रत्याक्रमण भी ढीला पड़ गया। पहली बार मिली असमर्थता ने कर्ण की शक्ति ही चौथाई कर दी और एक घड़ी ऐसी आयी कि कर्ण को अर्जुन के हाथों परास्त होना पड़ा।

प्रोत्साहन और हतोत्साह में बड़ी शक्ति है। इससे भी बड़ा तथ्य तो यह है कि वाक्चातुरी और छल-बल से व्यक्ति को भले ही अपने वश में कर लिया जाय, पर हृदय अवश ही रहता है, जो और ज्यादा अनर्थ उत्पन्न करता है।

औलिया का पैगाम

अमीर सैफुद्दीन महमूद तुर्की के एकमात्र पुत्र खुसरो को सत्य के अन्वेषण की कुछ ऐसी धुन लगी कि वह अपनी सम्पत्ति, जायदाद, ऐश्वर्य और विलास, सुविधाएँ सब कुछ छोड़कर फकीर बन गया। सत्य की तुलना में यह सब कुछ जैसे व्यर्थ थे और अमीर तुर्की को वह घटना याद आयी जब किसी सन्त ने कहा—"काश ! खुसरो खुदा के मार्ग पर आये और दुनिया वालों के लिए भी एक रोशनी बन जाये।"

अमीर खुसरो पूर्ण युवावस्था में घर-बार छोड़कर किसी ऐसे सत्पुरुष की खोज में घूमने लगे, जो उन्हें अपने लक्ष्य तक पहुँचा दे। इसी खोज में उनकी भेंट हुई प्रसिद्ध सूफी सन्त हजरत निजामुद्दीन औलिया से। खुसरो ने औलिया को देखा और लगा कि अब खोज पूरी हो गयी है तथा औलिया ने खुसरो को देखकर यह सन्तोष किया कि अब योग्य और सत्पात्र शिष्य आ गया है। फिर भी अध्यात्म के मार्ग पर परख तो करनी ही थी। हजरत औलिया ने कहा—"सुना है खुसरो तुम अच्छे विद्वान हो। अरबी, फारसी और संस्कृत के अलावा और भी कई भारतीय भाषाएँ तुम्हें बहुत अच्छी आती हैं। तुम्हें तो राज दरबार में जाना चाहिए। वहाँ तुम्हें कई कद्रदां मिल जायेंगे।"

खुसरो ने श्रद्धानत होकर कहा—"परन्तु मैं तजो हजरत के दरबार में अपने दिल झोली फैलाये आया हूँ। उम्मीद है कि आपके चरणों में बिखरी ज्ञान की दौलत बटोर सकूँगा। मुझे न तो किसी शाही दरबार की जरूरत है और न ही किसी कद्रदां की।"

हजरत औलिया इस उत्तर से बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने खुसरो को शिष्य के रूप में स्वीकार किया। खुसरो भी मन से गुरु के प्रति समर्पित हो उनके बताये साधनों का अभ्यास करने लगे। आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रगति की सम्भावना व्यक्ति की आन्तरिक निष्ठा और लगन पर आधारित है। खुसरो की अन्तःचेतना सत्य के लिए चातक की तरह प्यासी तो थी ही, सो हजरत औलिया के सान्निध्य में रहकर उन्होंने आध्यात्मिक ज्ञान का प्रकाश भी पाया और ईश्वर भक्ति का रस भी।

औलिया अपने इस शिष्य की निष्ठा और समर्पण भावना से बड़े प्रसन्न हुए। अक्सर वे खुसरो की प्रशंसा किया करते। एक अवसर पर तो उन्होंने यहाँ तक कह दिया था कि अगर दो आदमियों को एक ही कब्र में दफन किया जाता तो मैं यह पसन्द करता कि खुसरो को मेरे साथ दफन किया जाय।

निष्ठा और समर्पण भावना के प्रसाद स्वरूप खुसरो प्राप्तव्य को पा लिया। हजरत औलिया ने अपने शिष्य की स्थिति को समझकर एक दिन उनसे कहा—"खुसरो मैं तुम्हें कुछ दे सका हूँ या नहीं यह तो तुम जानते हो परन्तु तुम्हारे पास एक चीज है जिसे मैं माँगना चाहता हूँ, बोलो दोगे ?"

"हजरत क्यों इस नाचीज को शर्मिन्दा कर रहे हो। मेरे पास है ही क्या जो मेरा है। सब कुछ तो आप ही का है। आज्ञा कीजिये"—खुसरो ने विनीत भाव से कहा।

"मैं तुम्हें ही माँगता हूँ"—औलिया बोले—"लेकिन अपने लिए नहीं देश के लिए। तुम जानते हो कि हिन्दुस्तान के बादशाह इन दिनों हिन्दू जनता को अपनी ताकत से दबा कर उनके मन में नफरत की आग पैदा कर रहे हैं, जो गैरवाजिब है। तुम जाकर उस आग को बुझाओ और वह हवा तैयार करो, जिसमें हिन्दू और मुसलमान एक बाप के बेटों की तरह एक साथ साँस ले सकें, उनके रिश्तों में अलाउद्दीन तथा उस जैसे ही दूसरे बादशाह तो क्या सारी दुनिया की ताकतें भी बैर पैदा न कर सकें। इस काम का बीड़ा तुम्हीं उठा सकते हो।"

हजरत औलिया का यह सन्देश लेकर अमीर खुसरो देश के कोने-कोने में गये और उन्होंने यहाँ के पर्वों, त्योहारों, मेलों, प्राकृतिक दृश्यों तथा संस्कृति और मान्यताओं के ऐसे गीत गाये जिन्हें सुनकर हिन्दू-मुस्लिम जनता के विभक्त हृदय से जलाशयों की भाँति जुड़ गये।

ऐसा स्वर्ग नहीं चाहिए

कुरुक्षेत्र की धर्मभूमि में तपस्यारत ऋषि मुद्गल धर्माचरण, आराधना और बीजोच्छ वृत्ति द्वारा जीवन निर्वाह उनके आदर्श थे। मास के पहले पक्ष में वे खेतों से बीज बीनकर चावल एकत्र करते, दूसरे पक्ष में उसे यज्ञ और अतिथि सत्कार में व्यय कर देते। ऋषि श्रेष्ठ दुर्वासा छह हजार शिष्यों सहित मुद्गल की परीक्षा हेतु उनके आश्रम पर गये और निस्पृह मुद्गल ने उन्हें हर बार आतिथ्य द्वारा पूर्णतः सन्तुष्ट कर दिया।

दुर्वासा ऋषि मुद्गल पर कृपालु हुए। उन्होंने कुरुक्षेत्र के इस तपस्वी को स्वर्ग प्राप्ति का वरदान दिया। देवदूत ऋषि मुद्गल को स्वर्ग ले जाने के लिये आये तो तपस्वी ने पूछा—"दूत, पहले स्वर्ग निवासियों के गुण, वहाँ के सुख और दुःखों का वर्णन करो, तभी मैं वहाँ चलने के विषय में विचार करूँगा।" देवदूत ने नम्र स्वर में कहा—"तपस्वी श्रेष्ठ, आप जैसे धर्मात्मा, जितेन्द्रिय और दानी ही स्वर्ग के अधिकारी हैं। वहाँ शोक का नाम नहीं, मात्र सुख ही सुख है। दोष यह है कि वह भोग भूमि है अतएव वहाँ कर्म का कोई स्थान नहीं। वहाँ मृत्यु लोक में किये शुभ कर्मों का फल ही भोगा जाता है, नया कर्म नहीं किया जा सकता।"

मुद्गल ने गम्भीर स्वर में कहा—"हे दूत, खेद है तुम्हें एकाकी स्वर्ग लौटना पड़ेगा। मैं तुम्हारे साथ नहीं चल सकूँगा। जिस लोक में कर्म नहीं, वहाँ केवल भोग हेतु जाना मुझे पसन्द नहीं। तुम्हारे स्वर्ग की अपेक्षा मुझे अपना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह लोकमृत्यु प्रिय है, जहाँ कर्म और साधन द्वारा मैं निर्वाण प्राप्त कर सकता हूँ।"

मृत्युलोक में ही लोकमंगल के लिए चिरसाधना करते हुए कर्मयोग द्वारा भी निर्वाण को प्राप्त किया जा सकता है। ऐसे साधक जीते जी भी स्वर्ग का आनन्द लेते हैं।

मरने का दुःख नहीं, सेवा का सुख मना

विचित्र संयोग था यह भी ! श्रावस्ती की प्रगार माता विशाखा ने तथागत को आतिथ्य देने आमन्त्रित किया। उसी दिन उसके एक पौत्र का देहान्त हो गया। खिन्न वदना, मलिन वस्त्रा विशाखा से, तथागत ने शोक का कारण पूछा तो उसने पौत्र की मृत्यु की दुःखद सूचना दी। गौतम बुद्ध ने उसे धीरज बँधाते हुए कहा—"यदि तेरा नाती तुझे मिल जाये तो ?"

"मेरी प्रसन्नता का पारावार न रहेगा।"

"और श्रावस्ती की जनसंख्या जितने मिल जाएँ तो ?"

"प्रसन्नता और अधिक हो जाएगी।"

"बता श्रावस्ती में प्रतिदिन कितने व्यक्ति मरते हैं ?"

भगवन् ! ठीक तो ज्ञात नहीं पर पाँच-छह तो मरते ही होंगे।

"समझ ले सारी श्रावस्तीवासी तेरे पुत्र-पौत्र हों और उनमें से एक भी नित्य मरे तो तू सुखी रह सकेगी ? तेरा दुःख कितना वढ़ जाएगा ? सेवा का ही सुख चाहिए तो संसार पड़ा है। सवकी सेवा कर। यह आसक्ति क्यों ?"

विशाखा समझ गयी, मोह व्यर्थ है और प्रसन्नमन संसार की सेवा में जुट गयी।

(१) प्राप्ति का सुख बिछोह से नष्ट हो जाता है पर सेवा का सुख सदैव रहता है।

(२) हमारी मोह बुद्धि ही हमें विकसित होने से रोकती है।

मिल-जुलकर उपयोग

कुछ शिष्य परमार्थ को अधिक महत्व दे रहे थे। कुछ का कहना था कि स्वार्थपूर्ति के बिना जीवन निरर्थक है। दोनों वर्ग प्रतिपक्षी से सन्तुष्ट न हो पा रहे थे, तब मामला एक सन्त के पास ले जाया गया।

सन्त ने उन सबको बैठा लिया और बिलकुल ही नया प्रसंग छेड़कर उनसे बातें करने लगे। इसी बीच एक सज्जन आये अपने साथ फल व मिठाई भी प्रसाद में लाये थे। सन्त ने प्रसाद ले लिया और बिना किसी से कुछ पूछे सारा प्रसाद स्वयं भक्षण कर लिया। कुछ देर में एक अन्य जिज्ञासु पधारे वह भी भेंट में मिष्ठान, मेवे लाये थे। महात्मा ने उन्हें हाथ में लिया और फेंक दिया। इसके बाद आगन्तुक से कुशल-मंगल पूछते और मीठी-मीठी बातें करते रहे, पर आगन्तुक सारी वार्ता से उखड़ा-उखड़ा रहा और थोड़ी ही देर में उठकर घर चला गया।

तभी एक और भी सज्जन पधारे वे भी अपने साथ फल-फूल लाये थे, महात्मा ने उस प्रसाद को उपस्थित सब लोगों को बाँटा, अपना हिस्सा भी लिया और फिर उनसे खूब अच्छी-अच्छी बातें करते रहे।

तीनों के जाने के बाद सन्त ने अलग तीनों के यहाँ एक-एक व्यक्ति यह पता लगाने भेजा—आज सन्त का उनके प्रति आचरण उचित था या अनुचित ? कुछ देर बाद पता लगाकर तीनों व्यक्ति लौट आये। पहले ने बताया, "महाराज ! वह आदमी तो आप पर बहुत रुष्ट है, कह रहे थे सन्त महास्वार्थी है। अपना ही पेट भरता है और दूसरा भी नाराज है।" दूसरा व्यक्ति बोला—"कह रहे थे कि मैं इतने प्रेम से प्रसाद ले गया, मुझसे तो मीठी-मीठी बातें कीं पर प्रसाद बाहर फेंक दिया। दम्भी कहीं का।"

तीसरे ने कहा—"महाराज ! तीसरा व्यक्ति आपसे बहुत प्रसन्न है कह रहा था—सचमुच महाराज सन्त हैं जो पाया सबको बाँट दिया—जो आया सबसे प्रेमपूर्वक भेंट की।"

अब महात्मा बोले—"तात् ! संसार में रहने का भी यही तरीका सर्वोत्तम है। परमात्मा की दी हुई वस्तुओं का उपयोग मिल-जुलकर करो और सबके साथ विनम्र व्यवहार करो।"

(१) स्वार्थ वृत्ति की तरह त्याग के अहंकार से भी बचें (पहले दो उदाहरण)।

(२) उचित वितरण एवं व्यवहार का अभ्यास करें (तीसरा उदाहरण)।

भक्ति का आदर

पंढरपुर में दामोदर पन्त नाम के एक सच्चे भक्त रहते थे। वे एक जमींदार की नौकरी करते थे। एक बार देश में भयंकर अकाल पड़ा। इससे किसान कर नहीं दे सके। राजा कर वसूल करने के लिए दबाव डालने लगा। दामोदर पन्त से यह नहीं सहा गया। दामोदर पन्त किसानों का दुःख नहीं देख सके।

उन्होंने अपना घर बेच दिया, घर बेचकर जो रुपया मिला, उसे महसूल खाते में जमा कराने के लिए सिपाही के साथ खजाने भेजा। वे विचार करने लगे कि यदि पूरा महसूल भरने भर का धन मेरे पास होता तो मैं गरीब किसानों का सब महसूल स्वयं भर देता।

भगवान सिपाही का रूप धारण करके आये और सब किसानों का महसूल राजा के खाते में जमा करा दिया। इससे राजा बहुत प्रसन्न हुआ और सिपाही से पूछा—"तुम्हें कितनी तनख्वाह मिलती है ?" सिपाही रूपधारी भगवान बोले—"एक लाख।" राजा ने सोचा एक लाख टुकड़े मिलते होंगे। ऐसे बुद्धिमान मनुष्य के लिए यह कुछ ज्यादा नहीं हैं। इस वर्ष कर वसूल करने में इसने जो कौशल दिखाया है, उसके लिए दो लक्ष टुकड़ा भी दिया जाय तो थोड़ा है।"

राजा ने कहा—"आज से तुम्हें दो लाख मिलेंगे।" भगवान बोले—"मेरे लिए तो एक लाख ही पर्याप्त हैं।" राजा यह समझकर हँसा कि यह मूर्ख मेरी बात समझ नहीं रहा। भगवान चले गये। कुछ देर बाद दामोदर पन्त का भेजा हुआ सिपाही थोड़े से रुपये लेकर आया। राजा ने पूछताछ कर खोज की तो पता चला कि पहले वाला सिपाही तो साक्षात् ईश्वर थे।

भगवान अपने सच्चे भक्त की पुकार अवश्य सुनते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पात्रता की कसौटी एवं योग्यता की परख

कवि भी राष्ट्र-प्रहरी

सम्राट भोज, राज-कवि का चुनाव करेंगे—यह घोषणा सम्पूर्ण राज्य में फैल गई। एक से एक धुरन्धर कवि धारानगरी पहुँचने लगे। महाराज ने उन सबके स्वागत, निवास आदि का अच्छे से अच्छा प्रबन्ध किया। आकर सभी कविगण अपने-अपने लिये नियत तम्बुओं में ठहरने लगे। नगर, कवियों की कोलाहल से इस तरह भर गया मानो साँझ के समय पखेरू अपने-अपने कोटरों में तरह-तरह की ध्वनि में चहचहा रहे हों।

दूसरे दिन पहला कवि दरबार लगा। सरस्वती के एक से एक बाँके पुत्र सम्पूर्ण साज-सज्जा के साथ रंग-मंच पर ऐसे जा विराजे मानो वे कविता पाठ के लिये नहीं विवाह रचने आये हों ? कवियों की वह सज-धज, बाँकी और परस्पर रसीली वार्ताएँ देखते और सुनते ही बनती थीं ?

महामन्त्री बैताल ने सभा के प्रयोजन की घोषणा की —कलामंच, प्रजा के मन को व्यवस्थित और अनुशासित रखने वाला, उन्हें प्रेरणाएँ और प्रकाश देने वाला सबसे श्रेष्ठ साधन हैं। महाराज चाहते हैं कि उस मंच को चलाने, नियन्त्रित और संगठित करने वाला कोई उस विद्या का ज्ञाता ही हो। इसी उद्देश्य से यह कवि सम्मेलन आयोजित किया गया है। 'राजकवि' की पदवी किसे दी जाये इसका निर्णय महाराजश्री स्वयं करेंगे।

और तब प्रारम्भ हुआ काव्य-सम्मेलन। एक-एक कवि मंच पर आते और अपनी कविता का पाठ कर उपस्थिति प्रजाजनों पर अपनी विद्वता की छाप डालने की कोशिशें करते, पर धारानगरी के नागरिक पागल नहीं थे, जो हर कवि की विचारधारा से प्रभावित हो जाते ?

नायिका भेद, विप्रलम्भ, विरह गीत, अभिसार कथाओं के ऐसे-ऐसे रंगीन गीत कवियों ने एक से एक बढ़-चढ़ कर सुनाये कि कवि दरबार में श्रृंगार रस मूर्तिमान हो उठा। एक कवि आये और अपनी कविता में सारी शक्ति नारी के नख-शिख वर्णन में लगाकर चले गये। दूसरे ने आकर उसके काम अंगों और काम-भावनाओं का ऐसा सुरम्य किन्तु स्पष्ट वर्णन किया मानो वे एक-एक कील को जोड़कर आभूषण बनाने वाले स्वर्णकार रहे हैं। किसी कवि ने नारी परिधानों को उपमाओं और अलंकारों से सजा डाला, तो किसी ने उसे साक्षात् रति के रूप में ही गढ़ डाला। श्रृंगारवादी कवियों की ही बाढ़ देखकर महाराज भोज को लगा मानो कला मर गई और यह सब उसका मुर्दा ढो रहे हों ? तथापि वे कुछ बोले नहीं।

तभी आया एक युवक कलाकार रंगमंच पर। सभी कवि एक साथ चिहुँक उठे—कल का छोकरा क्या जाने काव्य किसे कहते हैं ? किन्तु उसके उदात्त स्वर और आदर्शवादी काव्य प्रेरणाओं ने एक बार फिर से महाराज को आश्वस्त कर दिया कि कला के सच्चे उपासक अभी नितान्त समाप्त नहीं हुये, भले ही चारणों की कितनी ही वंश वृद्धि क्यों न हो गई हो ?

इतने पर भी राजकवि का चुनाव न हो पाया। कविगण अपने-अपने आवासों में चले गये। उनके लिये उत्तम स्वाद युक्त भोजन, मदिरा और न जाने क्या-क्या राज भोग उपस्थित थे, वे सब उन पर टूट पड़े और सुरा-सुन्दरी के ताप से झुलस-झुलस कर थोड़ी ही देर में ढेर हो गये। एक युवक कवि दीवट जलाये बैठा है। उसकी लेखनी चल रही है, उसे पता ही नहीं चला कब अर्द्धरात्री आ पहुँची ? प्रहरी ने टोका—आर्य ! रात्रि काफी बीत चुकी है अब आपको विश्राम करना चाहिए। युवक ने प्रहरी की ओर देखा और कहा—"तात् ! तुम क्यों नहीं सो रहे हो ?" इसलिए कि प्रहरी ने उत्तर दिया—कहीं ऐसा न हो कि शत्रु अचानक हमला कर दें और राष्ट्र पराधीन हो जाये ? "बस यही उत्तरदायित्व मेरा भी है तात् !"

प्रहरी कोई उत्तर दे इससे पूर्व ही महाराज ने आगे बढ़कर कहा—"तात् ! मुझे जिसकी खोज थी वह तुम मिल गये। आज से तुम मेरे राजकवि हो—राजकवि भास्कर।"

सिंहासन बत्तीसी

कुछ किशोर गड़रिये जंगल में भेड़ें चरा रहे थे। वहाँ घास तो बहुत थी, पर कहीं-कहीं पुराने टीले खण्डहर भी थे। कौतूहल में लड़के उन टीलों पर चढ़ जाते और खेलते, मस्ती करते।

इन टीलों में से एक बड़ा विचित्र था। उस पर जो कोई भी बैठ जाता, वह विद्वानों जैसी बातें कहने लगता। साथी आश्चर्य करते कि अशिक्षित होते हुए भी ऐसी वार्ता किस प्रकार सम्भव होती है ? सभी लड़के बारी-बारी से बैठते, जो बैठता वही विद्वान की भूमिका निभाने लगता।

टीले में कोई विशेषता होनी चाहिए। यह प्रसंग राजा भोज तक पहुँचा। उन्हें स्वयं आश्चर्य हुआ। दरबारियों को साथ लेकर वे वहाँ पहुँचे। उन लोगों ने भी बैठकर देखा तो जो सुना था वह बहुत सही निकला। जो भी दरबारी वहाँ बैठता, वही असाधारण विद्वता से सम्पन्न हो जाता।

टीले की खुदाई कराई गई। उसमें एक भव्य स्वर्ण सिंहासन निकला। पायों की आकृति अप्सराओं जैसी थी। सभी ने विचार किया इस बहुमूल्य सिंहासन की मरम्मत कराई जाय और उसे राजा भोज के बैठने का सिंहासन बनाया जाय। ऐसा किया भी गया। अभिषेक की तिथि निश्चित की गई। उस दिन सम्भ्रान्त नागरिकों को बुलाया गया और उत्सव कराया गया।

जैसे ही राजा ने एक पैर सिंहासन पर रखा, वैसे ही पायों में लगी अप्सरा की आकृति वाली एक पुतली मनुष्य की तरह बोलने लगी। उसने कहा—"यह सिंहासन राजा विक्रमादित्य का है। उनके जैसे गुण हों तो ही इस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर बैठना। उतनी पात्रता न होने पर बैठने का प्रयास करने में अनर्थ होगा।"

राजा ने पूछा विक्रमादित्य में क्या-क्या गुण थे ? पुतली ने घटनाक्रम सहित एक विशेषता का वर्णन किया। राजा ने अपने को उस योग्य नहीं पाया और अभिषेक स्थगित कर दिया गया।

दूसरे दिन भोज ने वही साहस फिर किया। आज दूसरी पुतली बोलने लगी और विक्रमादित्य का दूसरा गुण बताया और वह विशेषता होने पर ही मंच पर बैठने की बात कही। इसी प्रकार बत्तीस दिन तक वही क्रम चलता रहा। नित्य एक पुतली बोलती, विक्रमादित्य की एक विशेषता बताती। भोज आत्मनिरीक्षण करते तो उस प्रकार के गुण अपने में न पाते।

बत्तीस दिन में बत्तीस पुतलियों ने बत्तीस गुणों के बत्तीस घटनाक्रम सुनाये। जब देखा कि भोज अपने को सब उदाहरणों में पिछड़ा हुआ पा रहे हैं, तो सिंहासन बत्तीसी की कथा के अनुसार पुतलियाँ सिंहासन को लेकर आकाश को उड़ गईं।

अभिप्राय यह है कि पात्रता होने पर ही महत्त्वपूर्ण पद ग्रहण करने का साहस करना चाहिए, अन्यथा उससे अनर्थ होने की आशंका है। हर किसी को बहुमूल्य उपलब्धियाँ इसी कारण नहीं मिलतीं। उपार्जित योग्यता ही इसकी कसौटी है।

गुरुजनों का आशीर्वाद

युद्ध के लिए सारी तैयारियाँ हो चुकी थीं। कुरुक्षेत्र में दोनों ओर कौरव और पाण्डवों की सेनायें सुसज्जित खड़ी थीं। सभी रणभेरी की प्रतीक्षा कर रहे थे कि धर्मराज युधिष्ठिर को लोगों ने अपने अस्त्र-शस्त्र और कवच आदि रथ में ही छोड़कर पैदल ही कौरवों की सेना की ओर जाते देखा। सभी को आश्चर्य हुआ कि धर्मराज यह क्या कर रहे हैं ? सभी युद्ध की तैयारी में व्यस्त हैं किन्तु स्वयं धर्मराज इसके विपरीत कार्य कर रहे हैं। अर्जुन ने धर्मराज से इसका कारण पूछना चाहा, किन्तु फिर कुछ सोचकर स्वयं भी उनके पीछे चल दिये। उनके पीछे भीमादि शेष पाण्डव अपने शुभेच्छु कृष्ण के साथ चल दिए।

यह विलक्षण कार्य देखकर भीम से न रहा गया और उन्होंने युधिष्ठिर से पूछा—"महाराज ! यह आप क्या कर रहे हैं ?" उन्होंने तो कोई उत्तर नहीं दिया, किन्तु श्री कृष्ण जी ने शान्त रहकर देखते रहने का संकेत करते हुए कहा—"धर्मराज युधिष्ठिर हमेशा धर्मानुकूल कार्य करते हैं। इस समय वे धर्माचरण में ही लीन हैं।"

इधर कौरवों की सेना में युधिष्ठिर को अपनी ओर पैदल आता देखकर कोलाहल मच गया। अनेक मुँह, अनेक बातें। सभी अपने-अपने मन की बातें करने लगे। कोई युद्ध के नियमों के अनुसार डरपोक सिद्ध करके यह कहना चाहता था कि वे क्षमा माँगकर युद्ध न करने की प्रार्थना करने के लिए आये हैं, तो कोई राजनीति की चाल बतलाकर व्यर्थ के विवाद से बच जाता। कोई-कोई यह भी सन्देह करते कि भीष्म, द्रोणादि के, ये पाण्डव स्नेह-भाजन हैं अतः उनमें से किसी को फोड़ने का प्रयास है। अनाचारी कौरवों के सम्पर्क में रहने वालों को, जो कुछ सोच सकना उपयुक्त था, सभी अपने-अपने बुद्धि बल का प्रयोग कर रहे थे।

युधिष्ठिर सीधे कौरवों की सेना के मध्य स्थित पितामह भीष्म के पास पहुँचे। आदर के साथ उनके चरणों में मस्तक रखकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर प्रार्थना की—"पितामह ! ऐसा अवसर आ गया है कि हम लोगों को आपके साथ युद्ध करना पड़ रहा है। आप हम लोगों को अपने आशीर्वाद के साथ आज्ञा प्रदान करें।"

भीष्म पितामह ने उत्तर दिया—"युधिष्ठिर ! तुम वास्तव में धर्मराज हो। यह शब्द तुम्हारे ही योग्य हैं। तुम यदि भारतीय संस्कृति की परम्पराओं का ध्यान न रखते तो आगे इन्हें कौन व्यवहार में लाता, तुम धन्य हो। मैं तुम से हार्दिक प्रसन्न हूँ। तुम यदि इस प्रकार नम्रता से अनुमति लेने न आते, तो मुझे अवश्य क्षोभ होता और तुम्हारी पराजय की कामना करता हुआ उसके लिए प्रयत्न करता। किन्तु अब तुमको विजय का आशीर्वाद देता हूँ। दुर्योधन का अन्न ग्रहण करते रहने से मुझे उसकी ओर से लड़ना पड़ रहा है, अधर्म का साथ देना पड़ रहा है। तुम इसको छोड़कर जो भी अभीष्ट सहायता हो, हमसे माँग सकते हो।"

युधिष्ठिर—"पूज्य ! आप से युद्ध करके हम लोग आपके ऊपर किस प्रकार विजय प्राप्त कर सकते हैं ?" भीष्म ने फिर कभी आकर इस रहस्य को ज्ञात करने की आज्ञा दी। वहाँ से युधिष्ठिर गुरु द्रोणाचार्य के पास पहुँचे। उन्हें भी दण्डवत प्रणाम करके उनसे भी युद्ध की आज्ञा माँगी। उन्होंने भी पितामह की भाँति दुर्योधन की ओर से लड़ने, अपनी विवशता दिखलाते हुए, विजयश्री प्राप्त करने का आशीर्वाद दिया। इस प्रकार आशीर्वाद मिलने पर धर्मराज ने पूछा—"भगवन् ! आपके होते हुए विजयश्री हमारे हाथ कैसे आ सकेगी ? हम आप पर कैसे विजय पा सकेंगे ?" द्रोण ने उत्तर दिया—"यह सत्य है कि हमारे हाथ अस्त्र-शस्त्र रहते हमें कोई मार नहीं सकता। किन्तु मेरा स्वभाव है कि किसी विश्वस्त व्यक्ति के द्वारा युद्ध में कोई अप्रिय समाचार सुनने पर मैं अस्त्र-शस्त्र छोड़कर ध्यानस्थ हो जाता हूँ। उस समय मुझे मारा जा सकता है।"

गुरु द्रोणाचार्य के पास होकर युधिष्ठिर कुलगुरु कृपाचार्य के पास पहुँचे। सम्मान एवं नम्रता के साथ साष्टांग नमस्कार करके युद्ध की अनुमति माँगी। इन्होंने भी पितामह एवं गुरुद्रोण की भाँति कह-सुनकर आशीर्वाद दिया। युधिष्ठिर ने उन पर विजय का उपाय पूछने की चिन्ता कर ही रहे थे कि उन्होंने स्वयं ही युधिष्ठिर के भाव समझकर कहा, "धर्मराज ! मैं किसी के द्वारा मारा तो जा नहीं सकता। परन्तु तुम्हें वचन देता हूँ कि तुम्हारी विजय के लिए नित्य प्रातः ईश्वर से प्रार्थना करता रहूँगा और युद्ध में तुम्हारी विजय में बाधक नहीं बनूँगा।"

कृपाचार्य को उनकी कृपा के लिए कृतज्ञता का भाव प्रकट करते हुए प्रणाम करके युधिष्ठिर मामा शल्य के पास गये। मामा को भी सबकी भाँति प्रणाम करके उन्होंने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

युद्ध की स्वीकृति चाही। मामा ने भी भीष्म की बातें दुहरा दीं और युद्ध में सफलता के लिए आशीर्वाद दिया। उन्होंने और कुछ सहायता न करने की स्थिति में एक बहुत बड़ा कार्य करने का वचन दिया, वह यह था कि अपने कठोर शब्दों से कर्ण को हतोत्साह करते रहेंगे।

किसी भी व्यक्ति को अपनी उन्नति के मार्ग से अथवा लक्ष्य से गिराना हो, उसे कमजोर करना हो तो उससे उसकी छोटी-सी कमजोरियों को भी बहुत बड़ा बताकर निरुत्साह कर दीजिये। उसका साहस ढीला होने से मन अशक्त हो जायगा और उसे अपने आप अपने मार्ग में बढ़ने में शंका होने लगेगी। ऐसी स्थिति में आगे चलकर या तो वह स्वयं ही कार्य छोड़ बैठेगा अथवा मार्ग में तनिक भी कठिनाई आने, विफलता प्राप्त होने पर अपना सब कुछ खो बैठेगा। इसलिए महारथी कर्ण को हतोत्साह करते रहना भी एक महत्वपूर्ण कार्य था।

सभी गुरुजनों को प्रणाम करके, उनकी युद्ध के लिए अनुमति तथा विजय का आशीर्वाद लेकर युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण और भाइयों सहित अपनी सेना में आकर अपने-अपने रथ पर आ बैठे।

युधिष्ठिर ने इस प्रकार विनम्रता से सम्मान करके भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि के हृदय में घर करके अपने लिए ऐसी सहानुभूति प्राप्त कर ली थी कि उन्होंने यश-अपयश, जय-पराजय यहाँ तक कि प्राणों तक का स्नेह छोड़कर उन्हें ऐसे रहस्य बतला दिए, जिनके बिना पाण्डवों की विजय संदिग्ध थी।

नैष्ठिक गुरुभक्त—एकलव्य

द्रोणाचार्य एक दिन अपने शिष्य कौरवों और पाण्डवों सहित जंगल घूमने गये। वे जंगल में घूम रहे थे। घूमते-घूमते पाण्डवों का एक कुत्ता उनका साथ छोड़कर उधर भटक गया जहाँ एकलव्य नामक भील धनुर्विद्या का अभ्यास कर रहा था। हृष्ट-पुष्ट काले भील को देखकर कुत्ता भौंकने लगा, उसके भौंकने से एकलव्य के कार्य में बाधा उत्पन्न हुई। ऐसा अवसर देख उसने धनुष-बाण उठा, कुत्ता का मुँह इस प्रकार भर दिया, जिससे वह भौंक न सके। कुत्ता घबराकर और भागकर अपने स्वामी के पास पहुँचा। कुत्ते की विचित्र स्थिति देख सब लोग तो हँसने लगे किन्तु अर्जुन उसे हँसी में न टाल सके। पास जाकर उन्होंने तल्लीनता से देखा और जब यह पाया कि बाणों से केवल कुत्ते का मुँह भर दिया गया था, उसे कहीं लेशमात्र भी आघात नहीं हुआ। वे उस कुशल धनुर्धर की केवल प्रशंसा ही नहीं करने लगे, अपितु उसे देखने के लिए लालायित हो उठे। उन्होंने गुरुजी को दिखाया कि उस धनुर्धर ने किस सावधानी और शीघ्रता से काम किया था। द्रोणाचार्यजी ने इस अद्भुत धनुर्धर की खोज करने की इच्छा प्रकट की और सब लोग उस ओर चल दिये जिधर से कुत्ता आया था।

कुत्ता उन सबको एकलव्य की कुटिया के पास ले गया, जहाँ वह गुरु द्रोणाचार्य की अपने हाथ से बनाई हुई मूर्ति स्थापित करके धनुर्विद्या का अभ्यास करता था। गुरु द्रोण को अपनी कुटिया पर आया देख एकलव्य दौड़ा और उनके चरणों में गिर पड़ा। आचार्य ने उसे उठाकर हृदय से लगा लिया। उसने उन सबको बड़े आदर के साथ कुटिया में ले जाकर उनकी सेवा की। वे महान् आश्चर्य में पड़ गए जब उन्होंने देखा कि उन्हीं की मिट्टी की मूर्ति रखी हुई है।

अपनी जिज्ञासा को दूर करने के लिए उन्होंने एकलव्य से उसका परिचय जानना चाहा। उसने सुनाना प्रारम्भ किया—

'मैं एक भील बालक हूँ। मुझे धनुर्विद्या सीखने की आन्तरिक अभिरुचि उत्पन्न हुई। मैंने सुन रखा था कि इस युग में आपसे बढ़कर कुशल शिक्षक और कोई व्यक्ति नहीं है। अतः मैं एक दिन आपकी खोज में निकल पड़ा। एक दिन आप इन सब लोगों को शिक्षा दे रहे थे, मैं भी अवसर पाकर आपकी शरण में पहुँचा। आपकी भाव-भंगिमा से तो मुझे ऐसा लगता था कि आप मेरे व्यवहार से सन्तुष्ट थे किन्तु सम्भवतः यह समझकर कि एक जंगली, काला भील बालक राजकुमारों के साथ शिक्षा कैसे पा सकता है ? मुझे शिक्षा देना आपने अपमानजनक समझकर, यह उत्तर दिया था कि मुझे इस विद्या का अधिकार नहीं है। केवल द्विज बालक ही गुरु गृह में लिए जाते हैं। प्रजा पालन और युद्ध का कार्य करने वालों को ही इसकी आवश्यकता है। अतः अस्त्र-शस्त्र संचालन की यह विशिष्ट विद्या हमारे लिए अनुपयुक्त एवं अनावश्यक है। रही जीविका, जीवन निर्वाह की बात सो इतनी शिक्षा तो मैं अपने बड़े-बूढ़े लोगों से प्राप्त कर सकता हूँ।

एकलव्य कह रहा था और सब लोगों की आँखें और कान उसके चेहरे और मुँह की ओर एकाग्रता से लगे थे।

'मुझे निराशा तो बहुत हुई, किन्तु फिर भी मैं हतोत्साह नहीं हुआ। चूँकि इस विद्या के सीखने की मेरी लगन पक्की थी और हस्तिनापुर की इस घटना ने उसमें और वृद्धि कर दी थी। इस स्थान तक लौटते-लौटते मुझे ऐसा लगा मानो आप ही मेरे हृदय में बोल रहे हैं कि बेटा ! तू हताश न हो। मेरी मिट्टी की मूर्ति बनाकर रख और अभ्यास प्रारम्भ कर। मैं तुझे अस्त्र-शस्त्र चलाना सिखाऊँगा। मैंने ऐसा ही किया। यह मिट्टी की प्रतिमा बनाकर और स्थापित करके कार्य आरम्भ कर दिया। अभ्यास करने में मुझे ऐसा लगता था मानो आप ही आकर मेरी त्रुटियों एवं भूलों का सुधार करके उन्हें ठीक ढंग पर लाते थे। इसी प्रकार यह आपका सेवक आपकी शरण में है। कहिए मुझे क्या आज्ञा है ?"

'एकलव्य' की लगन व निष्ठा को देखकर, जीवन की कहानी सुनकर जहाँ उसकी प्रशंसा करना चाहते थे वहाँ उसकी धनुर्विद्या में श्रेष्ठता देखकर अर्जुन सरीखे व्यक्ति से भी अपने स्वार्थ पर आघात लगने की शंका सहन न हुई। उन्होंने बीच में ही द्रोणाचार्य से कहा—"गुरुदेव ! आपने मुझे वचन दिया था कि आपके शिष्यों में मेरे समान धनुर्धर कोई नहीं होगा। किन्तु इसके आगे तो मेरी विद्या कुछ भी नहीं है।" गुरु द्रोण ने इशारे से ही अर्जुन की शंका का निवारण कर दिया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपनी जीवन गाथा सुना चुकने पर गुरुजी के प्रति, उनकी कृपा का भारी आभार प्रदर्शित करते हुए उसने अनेक बार किसी प्रकार सेवा करने की आज्ञा माँगी। पहिले तो उन्होंने अनेक प्रशंसा की और उसे सन्तोष दिलाया, किन्तु फिर अर्जुन की कीर्ति में बट्टा न लगे इसलिए उन्होंने गुरुदक्षिणा का प्रश्न उसके सामने रखा। जब उसने नम्रता से निवेदन किया कि वह किस प्रकार इस ऋण से उऋण हो सकता है ? "अपने दाहिने हाथ का अँगूठा हमें दे दो।" आचार्य ने बिना किसी हिचकिचाहट के आज्ञा दे दी।

एकलव्य ने उसी क्षण तलवार से अँगूठा काटकर आदरपूर्वक उनके चरणों में रख दिया और अपने धीर, वीर और निष्ठावान होने का प्रमाण सबके सामने उपस्थित कर दिया। सब लोग चित्र लिखे से उस श्रृद्धालु, नैष्ठिक शिष्य की ओर देख रहे थे।

ऐसा अपूर्व धनुर्धर होकर भी एकलव्य जो स्थान प्राप्त न कर सकता था, वह उसने अपना अँगूठा देकर प्राप्त कर लिया। उसके त्याग के कारण आज उसका नाम इतिहास में अमर है।

भोग में योग कैसे हो ?

प्राचीनकाल में हमारे देश में एक बहुत बड़े ज्ञानी राजा ऋषभदेवजी हुये थे। पौराणिक वर्णन के अनुसार वे रामचन्द्र जी से भी बहुत पहले उत्पन्न हुये थे। उन्होंने बहुत दिनों तक धर्म और न्याय के साथ शासन किया और समाज में नई-नई उपयोगी बातों का प्रचार किया। पर उनका ध्यान सदैव आत्म-कल्याण में रहता था। इसलिये वे सांसारिक माया-मोह से दूर रहते थे और राज्य कार्य करते हुये भी वैभव और भोगों में लिप्त नहीं होते थे। जब उनकी आयु अधिक होने लगी, तो उन्होंने अपने बड़े पुत्र भरत को राज्य का शासक बना दिया और स्वयं तप करने वन में चले गये।

महाराज भरत भी बड़े प्रतापी और सुयोग्य थे। वे शासन करते हुये भी सदैव कठोर तपस्या किया करते थे, जिससे उनका शरीर दुर्बल हो गया। जिस समय वे उपवास करके समाधि पर बैठते थे, उस समय मुनि-ऋषियों की तरह ही जान पड़ते थे, उनके पास प्रजा के सब लोग जा सकते थे। वे स्वयं भी इधर-उधर घूमकर प्रजा की दशा देखा करते थे। इससे उनके राज्य में सर्व साधारण को बड़ा सुख था और कहीं कोई दुःखी या पीड़ित व्यक्ति दिखाई नहीं पड़ता था। एक बार एक किसान उनके पास आया और पूछने लगा—"महाराज लोग कहते हैं कि आप बड़े तपस्वी हैं परन्तु आप चक्रवर्ती राजा हैं, करोड़ों लोगों के निर्वाह और रक्षा की व्यवस्था आपको करनी पड़ती है। ऐसी दशा में आप तपस्या किस प्रकार कर पाते हैं ?"

भरत—"क्यों, इसमें तुमको कौन-सी कठिन बात जान पड़ती है ?"

किसान—"महाराज ! जो लोग तपस्या करते हैं, वे तो घरबार को छोड़कर जंगल में चले जाते हैं और समस्त सांसारिक कार्यों से मन को हटाकर भजन में ही ध्यान लगाते हैं, तब उनसे तपस्या हो पाती है।"

भरत—"अरे भाई, तपस्या का उद्देश्य तो मन को वश में करना ही है। मैं शरीर से राज्य प्रबन्ध करता हूँ और मन को भगवान के चरणों में लगाये रहता हूँ।"

किसान—"महाराज ! शरीर से काम करते समय मन भी तो उसी में संलग्न हो जायेगा। वह अलग रहकर ध्यान किस प्रकार कर सकता है ? यह बात मेरी समझ में भली प्रकार नहीं बैठती।"

भरत ने देखा कि वह व्यक्ति बातों से इस तत्व को नहीं समझ सकता। इसलिये उन्होंने तेल से भरा हुआ एक कटोरा उस किसान को दिया और अपने कुछ सिपाही उसके साथ रखकर कहा कि इस कटोरे को हाथ में लिये तुम हमारी सेना को देखने जाओ। मेरे सिपाही तुमको सब चीजें दिखलायेंगे, पर एक बात का ध्यान रखना कि इस कटोरे में से एक बूँद भी तेल गिर न जाय। अगर तेल गिर गया तो तुमको प्राणदण्ड दिया जायेगा।

सिपाही किसान को सेना दिखाने ले चले। वहाँ पर हजारों हाथी, अनगिनत घोड़े, तरह-तरह के अद्भुत अस्त्र-शस्त्र भरे हुये थे। किसान सबको देखता तो रहा, पर उसका ध्यान विशेष रूप से कटोरे पर था, क्योंकि उसमें से तेल गिर जाने पर प्राण-दण्ड का भय था। जब वह सब जगह घूमकर फिर महाराज भरत के पास आया तो उन्होंने पूछा—"क्यों भाई ! तुम सेना देख आये। अच्छा बतलाओ कि तुमने कितने रंग के घोड़े देखे और अस्त्र-शस्त्रों में सबसे अधिक शक्तिशाली तुमको कौन-सा जान पड़ा ?"

किसान—"महाराज ! मैंने घोड़े तो देखे और अस्त्र-शस्त्र भी बहुत दिखलाई दिये, परन्तु मैं उनका हाल नहीं बतला सकता। मेरा ध्यान विशेष रूप से इस कटोरे की तरफ लगा हुआ, इसलिये सेना को देखने पर भी उधर पूरा मनोयोग न दे सका।"

भरत—"अब तुम समझ सकते हो कि राज्य कार्य को करते हुये मेरा ध्यान विशेष रूप से आत्मा में कैसे लीन रहता है ?"

किसान, महाराज भरत को धन्यवाद देता हुआ चला गया।

संसार में जीवनयापन करने की उत्तम प्रणाली यही है कि संसार के सभी कार्य करते हुए उनसे अनजान और अलिप्त रहे। इसी को भोग में योग कहते हैं।

गुरुदेव की अमानत

समर्थ स्वामी रामदास के शिष्य छत्रपति शिवाजी का अपने गुरु की मस्ती और आनन्द को देखकर उनका भी जी हुआ कि राज्य, शासन देशभक्ति और अन्यान्य परेशान करने वाले दायित्वों से छुटकारा पा लिया जाये, सो एक दिन जब स्वामी समर्थ का आगमन हुआ तो शिवाजी ने उनसे कहा—"गुरुदेव ! मैं राज्य के इन झंझटों से उकता गया हूँ। एक समस्या का समाधान करता हूँ तो दूसरी आ खड़ी होती है। नित नयी उलझनें। इसलिए सोच रहा हूँ कि मैं भी अब संन्यास ग्रहण कर लूँ।"

'संन्यास ! ले लो'—गुरुदेव ने बड़े सहज भाव से कहा—'इससे अच्छी और क्या बात हो सकती है ?'

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शिवाजी पुलकित हो उठे। वे तो सोच रहे थे कि इसके लिए गुरुदेव आसानी से अनुमति नहीं देंगे और उन्हें बहुत मनाना पड़ेगा, लेकिन बात आसानी से बन गयी। उन्होंने कहा—तो फिर आप अपनी दृष्टि का कोई ऐसा व्यक्ति बताइये जिसे राज-काज सौंपकर मैं आत्मकल्याण की साधना करूँ और आपके सान्निध्य में रह सकूँ।

गुरुदेव ने कहा—"मुझे राज्य दे दे और चला जा निश्चिन्त होकर वन में। मैं चलाऊँगा राज का काम-काज।"

और शिवाजी ने हाथ में जल लेकर राज्यदान का संकल्प कर लिया। उसी वेश में वे जाने को उद्यत हुए। वहाँ से निकलने और भविष्य के प्रबन्ध के लिए उन्होंने कुछ मुद्राएँ साथ लेनी चाहीं परन्तु स्वामीजी ने यह कहकर मुद्राएँ ले जाने से मना कर दिया कि—अब तो तुम राज्य का दान कर चुके हो। राजकोष पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं।

"हाँ यह ठीक है"—और शिवा रुक गये। फिर वे महल में जाने लगे तो स्वामीजी ने फिर रोका—"सुनो ! महल में भी तुम नहीं जा सकते। अब जैसे हो उसी स्थिति में यहाँ से चला जाना चाहिए।"

शिवाजी उसी स्थिति में बाहर चल दिये। स्वामीजी ने जाते-जाते कहा—"देखो ! इस राज्य की सीमा में भी मत रुकना। स्मरण रहे तुम राज्य दान कर चुके हो।"

"जो आज्ञा गुरुदेव"—शिवाजी ने कहा।

जब शिवाजी चलने लगे तो स्वामीजी ने रोककर पुनः पूछा—"सुनो ! तुम जा तो रहे हो परन्तु भविष्य में निर्वाह की क्या व्यवस्था करोगे ?"

"जो भी हो जाये"—शिवाजी बोले।

"फिर भी। कुछ तो सोचा होगा।"

"सोचा क्या ? कहीं मेहनत-मजदूरी तो मिलेगी, किसी की नौकरी कर ही अपना गुजारा चला लूँगा।" विरक्त हुए शिवाजी बोले।

"अच्छा तो नौकरी ही करनी है। मैं समझता हूँ कि तुम्हारे लिए मैं बढ़िया नौकरी की व्यवस्था कर सकता हूँ।"

"बड़ी कृपा होगी"—शिवाजी का उत्तर था।

"तुम यह राज्य तो मुझे दे ही चुके। अब मैं जिसे चाहूँ उसे इसकी देख-रेख और व्यवस्था के लिए नियुक्त कर सकता हूँ। अब मुझे किसी योग्य व्यक्ति की तलाश भी करनी पड़ेगी, सो सोचता हूँ कि तुम ही इसके लिए सबसे ज्यादा योग्य हो सकते हो। इस भाव से राज्य का संचालन, दायित्व सँभालना कि तुम केवल सेवक मात्र हो। यह राज्य मेरी अमानत है वस्तुतः तुम इसके स्वामी नहीं हो।" इसके बाद शिवाजी को कभी कोई झंझट नहीं हुई। स्वामी भाव से नहीं सेवा भाव से राज्य से खर्च का उपयोग करते रहकर वे जीवनभर इस दायित्व को सहजता से निभाते रहे।

पुरोहित की पात्रता

इक्ष्वाकु वंश की परम्परा के अनुसार ही सम्राट रथ प्रोष्ट असमाति भी धर्मपरायण, गुण एवं विद्वता का सम्मान करने वाले थे। गोपायन उन दिनों महान् विद्वान् पण्डित और मन्त्रदृष्टा थे। उनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर महाराज असमाति ने उनके छोटे भाई सुबन्धु को अपना राजपुरोहित बनाया, किन्तु शीघ्र ही यह बात मालूम पड़ गई कि सुबन्धु भाई होने पर भी गोपायन के समान विद्वान नहीं है।

प्रजा के सुख-समुन्नति की कोई योजना बनानी होती तो, सुरक्षा और समृद्धि की कोई बात आती तो, न्याय के मामले में भी पुरोहित की जो क्षमताएँ होनी चाहिये थीं, सुबन्धु में नहीं थीं, फलतः उनका सम्राट से सदैव मनोमालिन्य बना रहता। असमाति सोचते सम्भव है स्वाध्याय, तप और अनुभव सुबन्धु में यथार्थ योग्यता ला दें, किन्तु वैसा कुछ देखने में नहीं आया तब उन्होंने सुबन्धु को क्रुद्ध होकर अपने पद से हटा दिया और उसके स्थान पर किरात तथा आकुली नामक दो असुर तान्त्रिकों को अपना पुरोहित नियुक्त कर दिया।

किरात और आकुली बड़े समझदार और मायावी थे, वे जानते थे कि गोपायन अपने भाई का यह अपमान सहन नहीं करेंगे और एक न एक दिन निश्चित ही उसमें जिस योग्यता और सिद्धि का अभाव है, उसे पूर्ण कर देंगे। यदि ऐसा हुआ तो सुबन्धु पुनः पुरोहित बनाया जा सकता है। वे इस अनायास प्राप्त सौभाग्य को हाथ से जाने नहीं देना चाहते थे, सो एक दिन दोनों ने तान्त्रिक अभिचार किया। योगासीन होकर उन्होंने मारण तन्त्र का प्रयोग किया। विद्युत की सी तेज लपलपाती हुई शक्ति धारा निकली और सुबन्धु पर जा टूटी। देखते ही देखते सुबन्धु के प्राण शरीर छोड़ गये।

तपस्वी गोपायन को भाई की मृत्यु का समाचार मिला, तो उन्होंने अपने प्रजा-चक्षुओं द्वारा यह समझ लिया कि यह सारा कृत्य सिवाय किरात और आकुली के किसी और का हो नहीं सकता। भाई के अपमान से वे पहले ही दुःखी थे। षड्यन्त्रपूर्वक वध से उनका अन्तःकरण और भी मर्माहत हो उठा।

गोपायन स्वयं कृत्यघात कर सकते थे पर आसुरी शक्तियों पर उनका विश्वास नहीं था। सम्राट असमाति भी उनकी शक्ति, उनकी सिद्धियों का भय मानते थे। पर स्वयं गोपायन इस पक्ष में नहीं थे कि शक्ति पाकर अहंकार प्रदर्शन किया जाये और लोगों को उसका भय दिलाया जाये, संसार का कर्माध्यक्ष भगवान है। अच्छे-बुरे कर्म का फल जब वह स्वतः देता है, तब मनुष्य उसमें बाधक क्यों बने ? गोपायन दक्षिण मार्गी सिद्ध और सन्त थे सो प्रतिशोध की तो कल्पना भी उनके मस्तिष्क में नहीं आई। तो भी पुरोहित वंश की गरिमा को तो अक्षुण्ण रखना ही था, इसलिये उन्होंने निश्चय किया अपने मृत भाई के प्राणों को वापस लाने का और वे इसी प्रयोग में संलग्न हो गये।

अपने सूक्ष्म शरीर और मन्त्र बल से उन्होंने अभिचारमृत देह के टूटे अंगों को ठीक किया और फिर वरुण देवता की उपासना करने लगे—"हे वरुण देव ! तुम एक ही दृष्टि में समस्त सृष्टि को देखने वाले हो, मुझे वहाँ तक पहुँचाओ जहाँ मेरे भाई का मन है। यदि उसका मन आकाश के छोर में है, भूत या भविष्य में है तो भी वहाँ तक मेरे मन को पहुँचाओ।" वरुण देव प्रसन्न हुये। महर्षि गोपायन के मन का उन्होंने सुबन्धु के मन से मिलाप करा दिया। गोपायन भगवान इन्द्र की कृपा और प्रेरणा से मृत भाई के प्राणों को वापस ले आये और मृतक देह में उन्हें स्थिर कर दिया। सुबन्धु जी उठे। गोपायन की सर्वत्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जय-जयकार होने लगी। सुबन्धु ने अब अपना ध्यान तप और ज्ञान-साधना में लगाया, इससे उन्हें गोपायन जैसी ही सामर्थ्य प्राप्त हुई। पौरोहित्य की शक्तियों का विकास हो जाने पर राजा असमाति नतमस्तक हुये और उन्होंने पुनः सुबन्धु को लाकर अपना राज-पुरोहित नियुक्त किया।

सत्यकाम जाबाल

अज्ञात कुल, शील युवक सत्यकाम महर्षि गौतम के पास ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करने पहुँचा। महर्षि ने उससे कुल, गौत्र व नाम पूछा। सत्यकाम ने अपनी माँ से अपने जन्म के सम्बन्ध में जो जानकारी पायी थी, उसे सही-सही बता दिया—"भगवन् मेरी माँ यौवनावस्था में निराश्रित थी। आजीविका के लिये उसे कई गृहस्थों के घर सेवा कार्य करना पड़ा। किससे मेरी उत्पत्ति हुई मेरी माँ को भी ज्ञात नहीं, तो मैं कैसे बता सकता हूँ ? सत्यकाम मेरा नाम है और जाबाली मेरी माँ का नाम।"

महर्षि गौतम सत्यकाम के इन सत्य वचनों और ब्रह्म जिज्ञासा से प्रभावित हुए कि उसे ब्रह्म विद्या का अधिकारी मान दीक्षा दी। सत्यकाम ब्रह्म ज्ञानी हुए।

जिज्ञासु की पहली पात्रता है—सत्यनिष्ठा।

प्रणाम लेने की योग्यता

ब्राह्मण पुत्र ब्रह्मचर्याश्रम की अवधि पूरी करके घर लौटा। आँगन में आकर माता के चरण स्पर्श किये और पूछा, "पिताजी कहाँ हैं ?" उन्होंने अन्दर की ओर संकेत से ही बता दिया।

ब्रह्मचारी अन्दर गया। पीछे का दरवाजा खुला था। पर पिताजी का कहीं पता न लगा। परिवार वाले चिन्तित हुये। गाँव वालों ने भी खोजबीन की। पूरा वर्ष बीतने पर पिताजी घर लौट आये। पुत्र ने पूछा—"आप कहाँ चले गये थे ?"

पिता ने कहा—"जब तुम ब्रह्मचर्य आश्रम से लौटकर अपनी माँ के चरण स्पर्श कर रहे थे, उस समय मैं तुम्हें देख रहा था। मैंने तपस्या से जगमगाते हुए तुम्हारे दीप्त ललाट को देखा। तेजस्वी मुखमण्डल अपनी आभा बिखेर रहा था। उसी क्षण मेरी आत्मा ने जब अपने को टटोला तो पाया कि मैं तुम्हारा प्रणाम लेने योग्य नहीं।

इतने वर्षों से सांसारिक संघर्ष में रत रहने के कारण मेरा चरित्र मलिन हो गया था अतः विलम्ब करना मैंने उचित नहीं समझा और पीछे के द्वार से तपस्या हेतु मैं वनगामी हो गया। एक तपस्वी से प्रणाम कराने का पात्रत्व जब मुझमें आ गया तो मैं घर लौट आया। वर्ष भर में मेरी तपस्या पूरी हुई अब तुम सहर्ष मेरे चरण छूकर आशीर्वाद प्राप्त कर सकते हो।"

प्रणाम लेने का अधिकार उसे है जो कि प्रणाम करने वाले से अधिक योग्य हो।

अधिकारी सत्पात्र

राजा उदावर्त बहुमूल्य रत्न-राशि लेकर महर्षि कणाद के आश्रम में पहुँचे और वह भेंट करते हुए ब्रह्मविद्या उपदेश करने की प्रार्थना की।

महर्षि ने धन को अनावश्यक कहकर लौटा दिया और एक वर्ष ब्रह्मचर्य पालन करने के उपरान्त पुनः आने पर उपदेश की संभावना व्यक्त की।

राजा निराश लौट रहे थे। उन्हें बुरा भी लगा और क्षोभ भी हुआ।

मन्त्री द्युतिकीर्ति ने उनकी खिन्नता दूर करते हुए कहा—"राजन् ! ऋषि ने एक वर्ष ब्रह्मचर्य रहने की शर्त लगाकर जिज्ञासा को परखा है। यदि आप उनकी कसौटी पर खरे उतरे तो आपको ब्रह्मविद्या का लाभ अवश्य प्राप्त होगा, अनधिकारी में ज्ञान को पचाने की सामर्थ्य नहीं होती। मनोरंजन के लिये कुछ कहने में समय की बर्बादी समझकर ऋषि ने आपको लौटाया है। उसमें बुरा न मानें।"

ऋषि का अभिप्राय उदावर्त की समझ में आ गया, वे एक वर्ष ब्रह्मचर्य से रहे और आध्यात्मिक ज्ञान के अधिकारी बनकर जब पुनः आश्रम में समित्पाणि होकर पहुँचे तो कणाद ने उन्हें छाती से लगा लिया और ब्रह्म विद्या सिखा दी।

(१) आध्यात्मिक सम्पदा धन के बदले प्राप्त नहीं की जा सकती। उसके लिये चित्त की निर्मलता, धैर्य, श्रद्धा एवं जिज्ञासा चाहिये।

(२) पातृत्व की शर्त पूरी हुए बिना ऋषि ज्ञान नहीं देते।

लक्ष्मी धर्मशील का वर

राजा रघु ने एक बार सर्वमेध यज्ञ किया और उसके पास जो कुछ भी था, सब ब्रह्म कर्म के लिये दान कर दिया, सम्पत्ति के नाम पर मिट्टी का जल पात्र और कुश का आसन ही शेष था।

ऋषि कॉत्स तक राजा की दानशीलता का समाचार पहुँचा, तो वे गुरु दक्षिणा चुकाने के लिए अभीप्सित धन की योजना करने रघु के पास पहुँचे।

वहाँ दृश्य दूसरा ही था। राजा सब कुछ दे चुके थे। आसन और मृत्तिका पात्र के अतिरिक्त उसके पास और कुछ शेष न था। कॉत्स ने ऐसी दशा में कुछ कहना उचित न समझा और निराश वापस लौट चले।

रघु को उनका मनोरथ विदित हुआ तो ऋषि को वापस बुला लिया और कहा—"आप यहाँ निवास करें, जल्दी ही आपके अभीप्सित धन का प्रबन्ध हो जायगा", कॉत्स ठहर गये और रघु लक्ष्मी की प्रार्थना करने लगे।

लक्ष्मी ने राजा की परमार्थ कामना को समझा और राज-कोष को विपुल स्वर्ण राशि से भर दिया। राजा ने कॉत्स को अभीप्सित दान देकर सन्तुष्ट किया।

धर्म के प्रति आस्थावान व्यक्ति परमार्थ प्रयोजन के लिए जो प्रयत्न करते हैं, वे अपूर्ण नहीं रहते। दैवी शक्तियाँ उनकी सहायक बनती हैं।

चार बार मोक्ष

वीतराग शुकदेव जी के मुँह से राजा परीक्षित ने भागवत पुराण की कथा सुनकर मुक्ति प्राप्त की थी। यह बात एक धनवान व्यक्ति ने सुनी तो उसके मन में भागवत् पर बड़ी श्रद्धा हुई और वह भी मुक्ति के लिए किसी ब्राह्मण से कथा सुनने के लिए आतुर हो उठा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

खोज की तो भागवत् के एक बहुत बड़े विख्यात पण्डित जी मिले। कथा-आयोजन का प्रस्ताव किया तो पण्डित जी बोले—"यह कलियुग है। इसमें धर्मकृत्यों का पुण्य चार गुना कम हो जाता है, इसलिए चार बार कथा सुननी पड़ेगी।" चार बार कथा-आयोजन की सलाह देने का कारण था पर्याप्त दान-दक्षिणा। पण्डितजी की फीस देकर धनी व्यक्ति ने चार—भागवत् सप्ताह सुने परन्तु लाभ कुछ नहीं हुआ। धनी एक उच्चकोटि के सन्त से मिला। भागवत सुनने का लाभ परीक्षित कैसे ले सके और मुझे क्यों न मिला ? इसका उन्होंने कारण बताया कि परीक्षित मृत्यु को निश्चित जानकर संसार से पूर्ण तथा विरक्त होकर कथा सुन रहे थे और मुनि शुकदेव सर्वथा निर्लोभ रहकर कथा सुना रहे थे।

(१) मोक्ष की पात्रता बाहरी क्रिया-कलापों से नहीं आन्तरिक भावनाओं से सिद्ध होती है।

(२) स्थूल क्रिया-काण्ड अधिक मात्रा में करने से मोक्ष का लोभ दिखाकर अपना उल्लू सीधा करने वालों से सतर्क रहना चाहिये।

हृदय प्रकाशवान हो

समर्थ गुरु रामदास दो-तीन घर माँग लिया करते थे, उनमें जो कुछ मिल जाता था, उससे दिन भर का भोजन बना लेते थे। एक दिन प्रातःकाल वे ऐसे ही एक दरवाजे पर जा खड़े हुए। भिक्षा के लिए आवाज लगाई। उस घर की स्त्री उस दिन किसी कारणवश क्रोध में भरी हुई थी। समर्थ की आवाज ने आग में आहुति का काम किया। स्त्री उबल पड़ी और जिस पोतने से चौका धो रही थी वही समर्थ के मुख पर दे मारा।

समर्थ न रुष्ट हुये, न उन्हें कष्ट हुआ। मुसकराये और पोतना लेकर ही चल पड़े। नदी पर पहुँचे वहाँ स्नान किया। उस पोतने को भी अच्छी तरह धोया और सुखाया। शाम को आरती के लिये बत्तियाँ उसी कपड़े की बनाईं और भगवान से प्रार्थना की—"हे प्रभु ! जिस तरह यह बत्तियाँ प्रकाश दे रही हैं, उसी तरह माता का हृदय भी प्रकाशवान् हो।"

सच्चे सन्त की कसौटी यह है कि वे अपने प्रति दुर्व्यवहार से जरा भी रुष्ट नहीं होते।

उपदेश की योग्यता

साधु स्वामिनाथन की कुटिया गाँव के पास ही थी। प्रायः प्रतिदिन सायंकाल ग्रामीण लोग उनके पास जाते और धर्म-चर्चा का लाभ प्राप्त करते।

जब सन्ध्या भजन का समय आता, गाँव के दो नटखट लड़के आ धमकते और कहते—"महात्मन् ! आपसे ज्ञान प्राप्त करने आये हैं।" फिर शुरू करते गप्पें। बीच-बीच में साधु को चिढ़ाने, गुस्सा दिलाने वाली बातें भी करते जाते। उनका तो मनोरंजन होता पर स्वामिनाथन का भजन-पूजन का समय निकल जाता। यह क्रम महीनों चलता रहा, पर साधु एक दिन भी गुस्सा नहीं हुये। बालकों के साथ बात करते हुये आप भी हँसते रहते।

बहुत दिन बाद भी जब वे नटखट लड़के उन्हें क्रुद्ध न कर सके, तो उन्हें अपने आप पर क्षोभ हुआ। उन्होंने क्षमा माँगते हुए पूछा—"महात्मन् हमने जान-बूझकर आपको चिढ़ाने का प्रयत्न किया फिर भी आप न कभी खीझे, न क्रुद्ध हुए।"

स्वामिनाथन ने हँसते हुए कहा—"वत्स ! यदि मैं ही क्रुद्ध हो जाता, तो आप सबको सिखा क्या पाता ?"

स्वयं आवेश में आकर असन्तुलित हो जाने वाले दूसरों का सुधार नहीं कर सकते।

जनसेवक का आदर्श

कौशल नरेश, वेतन के अतिरिक्त अपने पाँच सौ कर्मचारियों को कीमती वस्त्र भी बाँटा करते। एक दिन भिक्षु आनन्द का उपदेश हुआ, उन्होंने बताया मनुष्य को वस्तुओं का सीमित-उपयोग करना चाहिये। अधिकार है, तो भी विलासितापूर्ण वस्तुओं का संग्रह न करें। यह सुनकर सभी राजकर्मचारियों ने अपने राज्य प्रदत्त वस्त्र भिक्षुओं को दान कर दिये और फिर कभी अतिरिक्त वस्त्र न लेने का निश्चय किया। कौशल नरेश आनन्द से मिले और पूछा—"महात्मन् आप शास्त्र के ज्ञाता हैं, फिर आपने अपने भिक्षुओं के लिये ५-५ चीवरों का संग्रह क्यों कर लिया ?" आनन्द बोले—"तात् ! कोई भी भिक्षु अधिक वस्त्र नहीं रखता। उन्हें एक' चीवर पहनने के लिये, एक उत्तरीय वस्त्र, एक अन्तर वासक और बिछौने के लिये एक बचता है वह इनमें से कोई फटे उसकी स्थानपूर्ति कर सकता है।"

(१) सीमित उपयोग ही जनसेवक का आदर्श है।

(२) लोकसेवी को अपनी कथनी और करनी में सामंजस्य रखना चाहिए।

मनुष्य-मनुष्य में भेद कैसा

अमरदास सिख सम्प्रदाय के तृतीय गुरु थे, उन्होंने अपने अनुयायियों को सामूहिक लंगर में भोजन कराने की प्रथा का सूत्रपात किया। उन दिनों हिन्दुओं में ऊँच-नीच, बड़े-छोटे का भाव अत्यधिक विकृत रूप धारण कर चुका था। गुरु अमरदास की धारणा थी कि इस प्रथा से मनुष्य-मनुष्य के बीच ऊँच-नीच की खाई पटेगी, इसलिये ही उन्होंने अपने अनुयायियों को इस प्रथा से बाँध दिया था।

उनकी विद्वता और गौरव से प्रभावित होकर एक दिन अकबर उनसे मिलने गया। अधिकारियों ने उन्हें सूचना दी—शहंशाह अकबर आपके दर्शन करना चाहते हैं और कुछ ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। अमरदासजी ने सन्देशा भेजा कि यहाँ सब नागरिक समान हैं, एक ही ईश्वर के पुत्र भाई-भाई हैं। भाइयों-भाइयों में मतभेद नहीं होता, अकबर यहाँ आ सकते हैं, पर एक शहंशाह की तरह नहीं सामान्य नागरिक की तरह। यदि वे यहाँ आकर सब आश्रमवासियों के साथ बैठकर भोजन करने को तैयार हों तो प्रसन्नतापूर्वक आ सकते हैं।

शहंशाह ने वैसा ही किया, तब कहीं गुरु के दर्शन पा सके और उनके सत्संग का लाभ मिला।

शिष्यत्व की पहली शर्त है श्रद्धा, अनुशासन और नम्रता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रेम, करुणा और उदारता

सहानुभूति—जो सिंह को भी मित्र बना दे

एक गुलाम तथा जंगली सिंह की मित्रता की कहानी बहुत लोकप्रिय है। गुलाम, मालिक के त्रास से जंगल में भाग गया। वहाँ एक सिंह के पंजे का काँटा निकालने के कारण उसकी और सिंह की मित्रता हो गयी। गुलाम के पकड़े जाने पर मृत्यु-दण्ड दिया गया और भूखे सिंह के सामने उसे छोड़ा गया, पर वह सिंह उसका मित्र निकला, उसने खाया नहीं और वह गुलाम बच गया।

उक्त कथा कई प्रकार से कही जाती है। उसकी प्रामाणिकता में शंका भी की जाती है। क्या ऐसा सचमुच हुआ होगा ? क्या आज भी ऐसा हो सकता है ? किन्तु यह सच है कि जानवर अपने उपकारी के प्रति बहुत कृतज्ञ होते हैं। अन्तःकरण की सच्चाई के साथ-प्रेम व करुणा के आधार पर की गयी सेवा-सहायता कोई भी नहीं भूल सकता। प्रेम व करुणाजन्य सेवा में वह शक्ति है, जो कठोर से कठोर, क्रूर से क्रूर को भी प्रभावित करती है। गुलाम द्वारा सिंह की सद्भावना प्राप्त करने की कथा के पीछे भी यही तथ्य है। उक्त कथा की प्रामाणिकता में भले ही शंका की जावे—किन्तु इस सिद्धान्त पर शंका नहीं की जा सकती है। यह आज भी सत्य है। प्रस्तुत संस्मरण से यह स्पष्ट है कि खूँख्वार सिंहनी भी अपने उपकारी के प्रति कितनी कृतज्ञ होती है ?

डॉ. धनंजय प्रसाद पशु चिकित्सक के पद पर एक सरकस कम्पनी में १२ वर्ष तक कार्य करते रहे। उसी कार्यकाल में सरकस में एक नई शेरनी पकड़कर लायी गयी। वह शेरनी जब भी डाक्टर को देखती, भयंकर रूप से गरज उठती थी। डाक्टर ने उसका रहस्य जानना चाहा, तो ज्ञात हुआ कि उस सिंहनी को पकड़ने वाले की सूरत उनसे मिलती-जुलती थी। उसी धोखे में डाक्टर को देखकर क्रुद्ध हो उठती थी।

शेर, बाघ आदि को लगभग एक माह के अन्तर से सिर में भयंकर पीड़ा हुआ करती है। उस समय उनकी चिकित्सा के सिलसिले में डाक्टर को बहुधा अकेले भी उनके पास जाना पड़ता है। उक्त नयी शेरनी, जिसका कि नाम 'रजिया' रखा गया था, के पास डाक्टर धनंजय बहुत सँभलकर जाते थे। फिर भी एक बार थोड़ी-सी चूक पर वह आक्रमण कर बैठी। अपनी संतुलित बुद्धि तथा प्रत्युत्पन्नमति के बल पर ही वह बच सके। फिर भी सिंहनी ने उन्हें काफी घायल कर दिया था। डाक्टर साहब में भी न जाने क्यों उस विरोध मानने वाले हिंस्र पशु का हृदय जीतने की आकांक्षा जाग गयी। उन्होंने अपनी जान की बाजी लगाकर भी उसका प्रेम प्राप्त करने का फैसला किया। रजिया के प्रति वह विशेष प्रेम के साथ व्यवहार करते हुये उसकी देख-रेख करने लगे और एक समय आया जब वह उसमें सफल भी हो गये।

रजिया गर्भवती थी। प्रसवकाल निकट आया तथा वह पीड़ा से छटपटा उठी। डाक्टर के हृदय में उसके प्रति सहानुभूति पैदा हो चुकी थी। लोगों ने उसके द्वारा घायल किये जाने की बात कहकर रोकना चाहा किन्तु वह न माने—और उसके पिंजड़े में प्रविष्ट हो गये—एकाकी निहत्थे, केवल प्रेम व सद्भावना के बल पर। रजिया ने उसकी ओर देखा—उन्होंने उसे पुचकारा। आँखों में स्नेह हृदय में सिंहनी की असह्य पीड़ा को देखकर उठने वाली करुणा की तरंगें स्वयं व्यक्त हो रही थीं। उनकी मुख मुद्रा से सिंहनी को लगा जैसे वह आग्रह कर रहे हों "मुझे अपनी सहायता करने दो……।" और वह जंगल की रानी इस मूक-स्नेह आमन्त्रण को अस्वीकार न कर सकी। उसे यह भी भान हो चुका था कि सहायता को आतुर व्यक्ति चिकित्सक है।

रजिया आगे बढ़ी, अपने अगले पैरों से उसने डाक्टर को लपेट लिया मानो आत्मसमर्पण का आलिंगन हो। अपना सिर डाक्टर से टिकाकर सारा बोझ उन्हीं के सहारे डाल दिया। डाक्टर सींखचों के सहारे उस भारी वजन को किसी प्रकार सँभाल सके किन्तु उन्होंने अपनी कठिनाई व्यक्त न होने दी। कठिनाई में पड़े हुये को सहारा देने में स्वयं को भी कठिनाई होना स्वाभाविक है। किन्तु यदि अपने कार्य की श्रेष्ठता प्रमाणित करने के फेर में कठिनाई व्यक्त करने में लग जाये तो सद्भावना में स्वतः कमी आ जाती है। सिंहनी डाक्टर के पास सद्भावना पाने आई थी—उस बेचारी को क्या पता कि उसके शरीर का बोझ एक मनुष्य के लिये भारी है। उसने तो आत्म-समर्पण कर दिया था दिव्य प्रेम भावना के आगे। डाक्टर ने उसे भली प्रकार समझा। पैर सुन्न हो जाने पर भी सिंहनी को सहलाने तथा स्नेह प्रदर्शन के अलावा अन्य कोई क्रिया न होने दी। सद्भावना युक्त मीठी वाणी से उसको आश्वस्त करते रहे। ऐसे समय पर सद्भावना स्वयं में एक महान ओषधि सिद्ध होती है। प्राणी उसे पाकर अपनी पीड़ा भूल जाते हैं। वाणी तथा हाव-भाव तो केवल माध्यम होते हैं। सद्भावना स्वयं हृदय से हृदय तक प्रवाहित होती है। सिंहनी के लिये भी वह ओषधि अमोघ सिद्ध हो रही थी।

दर्द और बढ़ा सिंहनी कराह उठी। अब डाक्टर को आवश्यकता अनुभव हुई मुद्रा बदलने की। अपने कष्ट से बचने के लिये नहीं सिंहनी के कष्ट निवारण के लिये। उस भयंकर कष्ट में भी रजिया ने उनकी बात मानी और एक करवट लेट गयी। उसे विश्वास हो गया था कि यह व्यक्ति उसके हित का ही कार्य करेगा। डाक्टर ने विशेष प्रकार से उसकी मालिश प्रारम्भ कर दी। परिणाम जल्दी ही मिला। रजिया को प्रसव हुआ—मरा हुआ बच्चा। इतने असाधारण कष्ट का कारण अब समझ में आया। वह भयंकर कष्ट समाप्त हुआ तथा फिर सामान्य ढंग से दो जीवित सिंह शावक और बाहर आये। डाक्टर का कार्य पूरा हुआ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उक्त घटना के बाद तो डाक्टर और रजिया के पारस्परिक प्रेम की कोई सीमा नहीं थी। डाक्टर उसे खुले सर्कस में ले जाते, किसी दर्शक बच्चे को उस पर सवारी भी करा देते थे। रजिया डाक्टर के किसी भी संकेत की अवहेलना नहीं करती थी। किन्तु रजिया अपने उपकारी के प्रति कितना सतर्क थी ? उसके लिये क्या-क्या कर सकती थी ? यह स्पष्ट हुआ एक अगली घटना से। रजिया ने 'सजातीय' सिंह से युद्ध करके भी 'मनुष्य डाक्टर की रक्षा की।

उसी सर्कस में सन् १९४२ में एक नया रिंग मास्टर गोबेल्स अपने जानवरों सहित प्रविष्ट हुआ। यह रिंग मास्टर फ्रांस का था। वह १८ विभिन्न प्रकार के खूँख्वार जानवरों को एक ही घेरे में रखकर दर्शकों के सामने अपने करतब दिखाता था। उसका एक शेर 'बैंकाक' बहुत उग्र स्वभाव का था। गोबेल्स से रोज मार खाकर भी वह कभी-कभी अवज्ञा कर बैठता था। एक दिन तो उसने प्रदर्शन के समय एक भालू को फाड़ ही डाला। बैंकाक को काबू करने के प्रयास में उसकी नाक का ऊपरी हिस्सा काफी फट गया। उसमें टाँका लगाना आवश्यक हो गया अन्यथा घाव सड़ जाता। खतरा होते हुये भी कर्तव्य देखते हुये डाक्टरों ने तुरन्त आपरेशन की व्यवस्था की।

सारी व्यवस्था के साथ सुरक्षा का भी प्रबन्ध किया गया। बैंकाक के खतरनाक स्वभाव को देखते हुये सुरक्षा की पूरी तैयारी की गयी। फिर भी डाक्टर ने अन्तःप्रेरणा से वशीभूत अपनी मित्र शेरनी 'रजिया' को भी अपने साथ ले लिया और उनका यह निर्णय ही उनके काम आया अन्यथा सारे सुरक्षा साधन रखे रह जाते और बैंकाक के जबड़े डाक्टर को फाड़ ही देते।

बैंकाक पर्याप्त कठिनाई के बाद बेहोश हुआ। जल्दी-जल्दी आपरेशन तथा टाँका लगाने का कार्य डाक्टर ने किया। ऐसे आपरेशनों के बाद नखी जानवरों के पंजों में रबड़ तथा रूई लपेटना आवश्यक होता है अन्यथा वे नाखूनों से सारी मलहम-पट्टी अलग कर देते हैं। आपरेशन हो गया और पंजों पर रूई आदि लपेटना भर रह गया था। संयोगवश उसी समय बिजली फेल हो गयी। डाक्टर ने सहायकों को टार्च जलाने को कहा किन्तु दुर्भाग्यवश जल्दी में कोई भी टार्च नहीं ला सके थे। समस्या थी कि बेहोशी दूर होने के पूर्व बैंकाक के पंजों में रूई न लपेटी गयी तो सारा श्रम निरर्थक हो जायेगा। दूसरी ओर यदि रूई लपेटते-लपेटते वह होश में आ गया तो अन्धकार में सुरक्षा की कोई कार्यवाही सम्भव नहीं और हुआ भी ऐसा ही। अन्धेरे में ही जल्दी-जल्दी कार्य करते डाक्टर के हाथ अन्तिम गाँठ लगा सके कि बैंकाक खड़ा हो गया। सहायक टार्च लेकर नहीं लौट सके थे। बैंकाक ने बैठे हुये डाक्टर का सिर अपने मुँह में ले लिया। किसी को कुछ दीख न रहा था और डाक्टर मौत के मुँह में था। डाक्टर को सिंह के मुख की भयानक दुर्गंध का आभास हुआ और दाँत चुभे कि बिजली की तेजी से 'रजिया' ने बैंकाक पर हमला कर दिया। जंगली जानवरों को मनुष्य की अपेक्षा अंधेरे में भी बहुत दीखता है। रजिया अपने उपकारी डाक्टर पर संकट देख अपनी जान की बाजी लगाकर सिंह से भिड़ गयी। डाक्टर सहमकर पिंजड़े में एक ओर सरक गये, सारे लोग किंकर्तव्यविमूढ़ तथा दो खूँख्वार जानवरों के लड़ने की आवाज—तभी बिजली आ गयी। लोगों ने आश्चर्य से देखा कि रजिया अपने पंजों से बैंकाक को जमीन पर दबाये गुर्रा रही है

प्रकाश में सारी स्थिति सँभाल ली गयी। रजिया डाक्टर की आवाज पर प्यार की निगाह से देखती डाक्टर के समीप पहुँच गयी और बैंकाक बाँध लिया गया। सिंहनी 'रजिया' ने डाक्टर के उपकार का बदला ब्याज सहित चुका दिया था। प्रकृति प्रदत्त हिंसक स्वभाव, सजातीयता की भावना, सबके ऊपर, दैवी प्रेम, स्नेह-सौजन्य के भाव सिद्ध हुये। ऐसी अमोघ शक्तियों का स्वामी मनुष्य उनके उपयोग के तरीके भूलकर विपत्ति तथा कष्टप्रद जीवन बिताए तो दोष किसे दिया जाये ?

काश ! इन पशु-पक्षियों से ही हम कुछ सीख पाते

हम भले ही यह सोचते हों कि पशु-पक्षी हिंसक, मूक और अबोध होते हैं पर कितनी ही घटनाएँ प्रकाश में आई हैं, जो यह सिद्ध करती हैं कि पशु, पशु होते हुये भी अपने अन्तर में कर्त्तव्य, प्रेम, स्वामिभक्ति और परोपकार जैसे गुणों को छिपाये रहते हैं।

अजरबेजान में अलीपू नाम का गड़रिया भेड़ों के साथ-साथ एक गरुड़ भी पाले हुआ था। वह गरुड़ से अत्यधिक प्रेम करता और गरुड़ भी अपने स्वामी का साथ न छोड़ता था। एक दिन अलीपू दिन भर खेत में काम करने के बाद थककर चूर-चूर हो गया। कुछ क्षण कमर सीधी करने की इच्छा से वह पास के एक छायादार वृक्ष के नीचे लेट गया। थोड़ी-देर में उसकी आँख लग गई और वह गहरी नींद में सो गया। गरुड़ उसकी रखवाली पर था। उसकी तेज दृष्टि बिल से निकलने वाले एक सर्प पर पड़ी जो मौका पाकर गड़रिये की ओर बढ़ा चला आ रहा था। सर्प बड़ा जहरीला था। गरुड़ समझ गया कि यह मेरे स्वामी को जिन्दा न छोड़ेगा। वह निशाना बाँधकर उड़ा और सर्प पर आक्रमण कर दिया। सर्प समझ नहीं सका कि यह आकस्मिक आक्रमण किधर से हुआ है ? वह जान बचाकर इधर-उधर भागा पर गरुड़ ने अपनी तीखी चोंच में उसे दबा लिया। सर्प भी बदले की भावना से तिलमिला रहा था। वह भी गरुड़ के चारों ओर लिपटकर उस पर अपना विषैला फन पटकने लगा। परिणाम यह हुआ कि गरुड़ की तो मृत्यु हो गई। आवाज सुनकर गड़रिया भी उठ गया। उसने देखा कि प्यारा गरुड़ अपने स्वामी की रक्षा में प्राण दे चुका है। सर्प भी अधमरा हो चुका था। गड़रिये ने उसका काम तमाम कर दिया। मनुष्य एक बार को अपने स्वामी के साथ भले ही विश्वासघात कर जाये, पर गरुड़ जैसा पक्षी भी स्वामी की रक्षा के लिये सर्वस्व त्यागने को भी तैयार रहता है।

संतोषी एवं संस्कारवान कुत्ता

नैनीताल जिले का सिखा गाँव। स्वामी प्रकाशानन्द जी तब गृहस्थ आश्रम में थे। वह अपने एक यजमान ब्राह्मण के यहाँ ठहरे हुये थे। उन्होंने वहाँ स्वयं भोजन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बनाया। भोजन करने के पश्चात् पास में बैठे एक कुत्ते को रोटी डाल दी पर खाने की कौन कहे उसने सूँघी तक नहीं। तब तक ब्राह्मण यजमान आ गया उसने कहा—"गुरु जी ! ऐसा लगता है कि यह पूर्व जन्म में कोई श्रेष्ठ साधक रहा है, पर कुछ पाप कर्मों के कारण कुत्ते की योनि में आना पड़ा है। यह बहुत सन्तोषी और संस्कारवान कुत्ता है। संस्कारवान हाथों से बना भोजन ही करता है। घर में भले ही खाने-पीने की कोई चीज खुली पड़ी रहे पर क्या मजाल कि उसमें मुँह डाल दे। मांसाहार से सदैव दूर रहता है। इसे यह नहीं मालूम कि आप हमारे गुरु हैं अन्यथा यह भोजन अवश्य करता।"

"अच्छा ऐसी बात है तो आप इस कुत्ते से कह दीजिये।"

यजमान ने कुत्ते से कहा—"यह सदाचारी और धर्मात्मा ब्राह्मण हैं। हमारे गुरु हैं। हम तक इनके यहाँ भोजन कर लेते हैं फिर तुझे इनके हाथ की बनी रोटी खा लेनी चाहिये।"

इतना कहना था कि कुत्ते ने बढ़कर वह रोटी खा ली। पशु योनि में भी कितने जीव खाने का पूरा-पूरा संयम रखते हैं। बिना भूख जिह्वा के स्वाद के लिये भले ही कोई मनुष्य दिन भर खाता रहे, पर पशु ऐसी भूल कभी नहीं करते, इसीलिये तो वह कभी बीमार नहीं पड़ते हैं।

बिल्ली का उपकार

राँची के अनिरुद्ध सिंह 'बेचैन' के चाचाजी जमीन पर दरी बिछाये आँगन में सो रहे थे। ग्रीष्म ऋतु थी। चन्द्रमा की धवल किरणें चारों ओर बिखरी हुई थीं। एक साँप उनके शरीर पर चढ़ गया। वे जाग तो गये पर शरीर को हिलाने-डुलाने या खड़े होने में डर रहे थे। उसी समय एक बिल्ली आई। साँप को देखकर उसने झपटने का प्रयास किया। बिल्ली आगे बढ़ी होगी कि साँप एक दम कोई सात फुट दूर जा गिरा। चाचाजी को पता भी न चल सका कि यह सब कुछ कैसे हो गया ? उन्होंने उठकर देखा कि आज बिल्ली ने उनके प्राण बचा लिये हैं। यह बिल्ली पालतू न थी, पर कभी-कभी उनके घर में आ जाया करती थी।

गधे ने मालिक की प्राणरक्षा की

अलवर (राजस्थान) का जयसमन्द तालाब। ईदू नामक धोबी घाट पर कपड़े धो रहा था। उसका जुम्मी नामक गधा पास में ही घास चरता और शाम को कपड़ों की पोटली लादकर घर ले आता। कपड़े निचोड़ते समय ईदू को ऐसा लगा कि उसके पैर के पास कछुआ है। उसने बाहर निकलने का प्रयास किया, पर जल्दबाजी में पैर फिसल जाने से वह पानी में ही गिर गया। आगे काफी गहरा था। वह डूबने लगा। दुर्भाग्यवश वह तैरना नहीं जानता था। वह जोर से चिल्लाया 'जुम्मी जुम्मी !' गधे ने समझा कि शायद सब कपड़े धुलकर तैयार हो गये होंगे अतः घर चलने की बारी है। वह घाट के पास आया पर उसे अपना स्वामी दिखाई न दिया। उसने लम्बी दृष्टि फेंकी मालिक पानी में छटपटा रहा था।

ऐसी स्थिति में जुम्मी सहायता के लिये किसे बुलाये ? क्या करे ? वह स्वयं ही छलाँग मारकर पानी में कूद पड़ा और अपने मालिक के निकट पहुँच गया। ईदू ने उसकी पूँछ पकड़ ली और अपनी जान बचाई।

अब ईदू और जुम्मी दोनों ही किनारे पर खड़े थे। जुम्मी को प्रसन्नता और आत्मसंतोष था कि उसने अपने मालिक की प्राणरक्षा की। ईदू मन ही मन उसकी कृतज्ञता प्रकट कर रहा था और सोच रहा था कि यदि जुम्मी मेरी सहायता को तालाब में न कूदता तो मेरा जीवन समाप्त ही था।

पशु भले ही दूसरी भाषा को न समझते हों पर मनोभाव अपना रहस्य प्रकट कर ही देते हैं। यदि मनुष्य भी इसी प्रकार लोकोपकार के कार्य करने लगे, तो वह भी निर्भय और सुखी तो रह ही सकता है साथ ही थोड़े-से प्रयत्न में उसे बड़े से बड़े श्रेय भी हाथ लग सकते हैं।

सच्चा पाण्डित्य

वितस्ता के किनारे फैले आश्रम के प्रांगण में आज कुछ अतिरिक्त जनसमूह दीख रहा था। पर थे सभी नियन्त्रित, अनुशासित और पंक्तिबद्ध। सभी ऋषि तुल्य आचार्य बन्धुदत्त की दीक्षान्त वक्तृता सुनने के लिये आतुर थे। उन्होंने सभी को सम्बोधित कर बोलना शुरू किया, "इन दिनों व्यक्ति और समाज अनेक प्रकार की कठिनाइयों, समस्याओं, चिन्ताओं और आशंकाओं से ग्रस्त हो विपन्न हैं। सामान्यजन रुग्णता, अशिक्षा, दरिद्रता आदि के कुचक्र में पिस रहा है, पर विशिष्ट कहे जाने वालों को क्या उलझनें और विपत्तियाँ कम हैरान कर रही हैं ? यह सब क्यों ? साधन-सुविधाओं के बीच यह अभावग्रस्तता कहाँ से टपक पड़ी ? उसका एक ही कारण है बुद्धिवाद के मेघों से हो रही अनेकानेक कुचक्रों की मूसलाधार बारिस। अज्ञान का धुँधलका और कुचक्रों की झड़ी के कारण उपजा कष्टदायक भटकाव हर किसी को पथ भूले बन्जारे की तरह संत्रस्त किये हैं।"

कुछ रुककर उन्होंने फिर कहना शुरू किया। "आज के दिन मानव गढ़ने की यह प्रयोगशाला अपने निरन्तर के परिश्रम से गढ़े हुये कुछ नर-रत्नों को, समाज को उसकी सामयिक समस्याओं के निदान हेतु समर्पित कर रही है। हो रही सारी विडंबनाओं का एक ही कारण बुद्धि विभ्रम अथवा आस्था संकट और इसका एक ही समाधान है सद्विचार। सत्चिन्तन और सत्कर्म में निष्णात् ये नर-रत्न अपने विवेक और कौशल से लोकमानस को परिष्कृत करने में जुटेंगे।" इतना कहकर उन्होंने अपनी वाणी को विराम दिया। उपस्थिति विद्यार्थियों के समूह ने एक-एक करके आचार्य को प्रणाम करना शुरू किया। सबसे अन्त में एक दुबला-पतला किन्तु तेजस्वी युवक आया।

प्रणाम करने के अनन्तर उन्होंने उसे इशारे से रोका, और बोले "वत्स कुमारजीव। तुम्हारी उच्चस्तरीय प्रतिभा के अनुरूप तुम पर विशेष जिम्मेदारी है।"

"क्या ?" युवक ने विनम्रतापूर्वक पूछा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"यद्यपि तुम बचपन से कठिनाइयों, अभावों, असुविधाओं में रहे हो। तुमने अनेकों दुःख भोगे, तकलीफें झेली हैं। सम्भव है तुम्हारे मन में आये कि प्रतिभा और अर्जित ज्ञान से सुविधा बटोरी और सम्पन्नता कमाई जाये। उस समय समूची मानव जाति को देखना। उसकी पीड़ा कराहट को देखना, अनुभव करना। तुम्हारे अपने दुःख पहाड़ के सामने राई जैसे नगण्य लगेंगे। ध्यान रखना, सुविधा, सम्पन्नता की परिस्थितियाँ मनुष्य को सुकुमार तथा विलासी बनाती हैं। प्रमाद और आलस्य उसके मानसिक मित्र बन जाते हैं। वह और किसी योग्य नहीं रहता। तुम्हारी योग्यता बनी रहे विकसित हो फले फूले। इसलिये उसे सर्वहित में लगाना।"

युवक ने सिर उठाया और बोला—"आज आपके सामने प्रतिज्ञा करता हूँ कि मेरी सामर्थ्य का प्रत्येक कण, जीवन का प्रत्येक क्षण मानव जाति के लिये होगा। आप मेरे कथन पर विश्वास करें।"

"मुझे विश्वास है।"

"आपकी गुरुदक्षिणा।"

"यदि मानव जाति को आस्था संकट से छुड़ाने में जुट सके तो समझना, दक्षिणा दे दी। अपने को किसी क्षेत्र विशेष में मत बाँधना। समूचा विश्व तुम्हारा घर है।"

"आपका आशीर्वाद चाहिये।"

"आशीर्वाद है—विचार क्रान्ति के अग्रदूत बनो।"

दोनों ने एक-दूसरे की ओर देखा। दोनों की आँखें डबडबा आईं। शिष्य ने आचार्य के चरणों में प्रणाम कर धीरे-धीरे द्वार की ओर कदम बढ़ाये। उसका गन्तव्य था कर्म-क्षेत्र। विचार क्रान्ति को समर्पित होने वाले कुमार जीव चौथी शताब्दी में कश्मीर के कूची इलाके में पैदा हुये। पिता कुमारायण उसी रियासत में दीवान थे। उनकी आत्मा अधिक समय तक यह स्वीकार न कर सकी कि इस प्रकार धन कमाने में दुर्लभ मानव जीवन समाप्त कर दिया जाये अतएव जनसाधारण में ज्ञान का प्रकाश फैलाने के लिये अन्तःप्रेरणा से दीवानी का पद छोड़ दिया, पर कुमारजीव के जन्म के कुछ ही दिनों बाद वह चल बसे। माता 'देवी' मेहनत मजदूरी करके अपनी ओर बालक की जीवन नौका खे रही थी। बड़े होने पर बालक भी सहायक बना। बालक शिक्षित कैसे हो ? उसमें जीवन बोध कैसे जगे ? इन सवालों को लेकर माँ परेशान थी।

एक दिन उसे लेकर मीलों की कष्टसाध्य यात्रा करते आचार्य बन्धुदत्त के आश्रम में जा पहुँची। वितस्ता नदी के किनारे बना यह आश्रम कश्मीर ही क्यों, समूचे भारत में अपनी गुणवत्ता की धाक जमाए था। आचार्य इसे 'मानव जीवन की प्रयोगशाला' कहते और सचमुच वह स्वयं के तथा सहयोगियों के सम्मिलित प्रयत्नों से अन्दर समाई विभूतियों को उभारते, व्यक्तित्व को सर्वांगीण बनाते। क्षमताओं के सही उपयोग का मर्म सुझाते। जीवन विद्या के इस आचार्य ने बालक की अनूठी प्रतिभा को पहचाना और गढ़ने में जुट गये। परिणामस्वरूप कुमार जीव आचार्य की अनोखी कलाकृति के रूप में सामने आया। अध्ययन की समाप्ति तक माँ भी पंच भौतिक शरीर का त्याग कर चुकी थी।

सद्ज्ञान के प्रसार के दौरान उनकी मित्रता काशगर राज्य के एक प्रतिष्ठित विद्वान बुद्धियश से हुई। दोनों विद्वानों ने एक-दूसरे को प्रभावित किया। उनकी वर्तमान तथा भावी गतिविधियों एवं कार्यक्रमों को जानने के बाद बुद्धियश ने कुमारजीव से काशगर में रुक जाने को कहा।

कुमार जीव ने पूछा "क्यों ?"

"यहाँ रहो सुन्दरकन्या से तुम्हारा विवाह करा देंगे। यहाँ का राजा विद्वानों का बड़ा आदर करता है मेरा उस पर प्रभाव है। धन-मान सुख सभी कुछ एक साथ मिलेंगे।"

"गुरु आदेश से विवश हूँ मित्र ! इस जीवन पर अब उन्हीं का अधिकार है और यह उन्हीं के काम में लगेगा।" "भावुकता में मत पड़ो। सभी का अपना-अपना प्रारब्ध है। बचपन से तुमने कष्ट ही कष्ट उठाये हैं। अब सुख का समय आया है तो गुरु का आदेश। विद्वान होकर क्यों मूर्ख बनते हो ?"

ज्ञान यज्ञ के इस महान ऋत्विज को मित्र का यह प्रस्ताव ठीक न लगा। आक्रोश को दबाकर क्षीण मुसकान के साथ कहा—"समझ का फेर है मित्र, जिसे तुम विद्वान होना कहते हो, उसे मैं निष्ठुरता कहता हूँ। ऐसा पाण्डित्य तो ठगों, चाताकों में भी होता है। ये भी तमाम तरह की युक्तियाँ भिड़ाकर दूसरे का सब कुछ हड़प लेते हैं। मेरे लिये विद्या का अर्थ है, इनसान की जिन्दगी इनसान के लिये है, इस बात का शिक्षण, इसी जीवन जीने की कुशलता का बोध कराने की जिम्मेदारी गुरुदेव ने मेरे कन्धों पर डाली है। मैं इससे रंच मात्र नहीं हट सकता।"

कुमार जीव का उत्तर सुन बुद्धियश हतप्रभ रह गया। विद्या विस्तार का यह विलक्षण मर्म उसे सूझा ही न था। इस उत्तर ने उसकी आँखें खोल दीं। वह कुमार जीव की महानता के समक्ष नतमस्तक हो गया। धीरे से बोला। "मैं आचार्य बन्धुदत्त के नाम पर कलंक बन रहा था, तुमने मुझे उबार लिया। मैं स्वयं भी भरसक तुम्हारा सहयोग करूँगा।"

अपने विद्या विस्तार के क्रम में कुमार जीव, भारत की सीमाएँ लाँघकर चीन जा पहुँचा तथा चीनी भाषा सीखी। वहाँ उसने प्रवचनों, वार्ताओं प्रशिक्षण के द्वारा जन-सामान्य को जीवन जीना सिखाने का क्रम चलाया। वहाँ उसने भारत के विचारपूर्ण साहित्य का चीनी भाषा में अनुवाद किया। तकरीबन सौ ग्रन्थों के अनुवाद के साथ ताओ धर्म के आलोक में भगवान बुद्ध की शिक्षाओं के प्रसार हेतु मौलिक ग्रन्थ रचे।

इसी बीच बुद्धियश भी अपने मित्र के पास आ पहुँचे। अब तो एक से दो हो गये। दोनों मित्रों ने मिलकर अनेकों सहयोगी तैयार किये। अब तक उनके कार्य का आदर किया जाने लगा था। राज्य की ओर से अनेकों सुविधाएँ भी दी गईं, पर उन्होंने उनका तिल भर भी उपयोग नहीं किया और भगवान तथागत के आदर्शों के अनुरूप सरल सादा जीवन जीते रहे। जीवन के अन्तिम क्षणों तक वह क्रियाशील रहे। उनका एक ही संदेश था जीवन विद्या में निष्णात् ही विद्या प्रसार कर सकते हैं। उनके इस संदेश को सुन अनेकों सचल प्रकाश दीप बने। अनेकों बुझे हुये दीपों को जलाने के लिये यही परम्परा आज फिर जाग्रत-जीवन्त हो, यही युग की माँग है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दान का महत्त्व

दो भाई परलोक सुधारने के उद्देश्य से तीर्थयात्रा पर निकले। रुपये-पैसों की उनके पास कोई कमी नहीं थी। पुण्य कमाने के लिये उन्होंने खुले हाथों से धन बाँटना शुरू कर दिया। बुरे, पवित्र, अपवित्र धन की आवश्यकता है या नहीं, यह बिना देखे ही उन्होंने धन बाँटा और तीर्थ पर चल दिये।

रास्ते में देखा एक व्यक्ति ठण्ड से ठिठुर रहा है। अब तो उनके पास आवश्यकता पूर्ति हो सके इतना मात्र ही धन था, सो कुछ सहायता कर नहीं सके। तभी उन्होंने देखा एक निर्धन गृहस्थ भी उस रास्ते से गुजरा और शीत से ठिठुरते उस व्यक्ति के बदन पर उसने अपना कोट उतारकर रख दिया।

छोटा भाई बोला—"भैया ! मुझे लगता है कि इस व्यक्ति के दान पुण्य की तुलना में हमारी सार सम्पत्ति का दान व्यर्थ है।" बड़ा भाई कुछ न कह सका।

दान सुपात्र को दिया हुआ ही सार्थक होता है।

दान से लज्जा आती है

एक नगर में एक सेठ रहता था, गरीबों और असहायों के लिये उसके यहाँ सदावर्त लगा रहता। वह माँगने वालों को नीची दृष्टि से देता रहता था। एक दिन एक व्यक्ति ने उनसे नीची दृष्टि रखने का कारण पूछा तो उसने उत्तर दिया—"देने वाला तो दूसरा है भाई ! वह दिन-रात देता है। मैं उसी की दी हुई सम्पत्ति दान करता हूँ, परन्तु लोग मुझे ही दानी कहते हैं। इससे मुझे लज्जा आती है।"

निरहंकार भाव से किया गया दान ही सच्चा दान है क्योंकि हमारे पास ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे हम अपना कह सकें।

कष्टदायक—सूखी सहानुभूति

एक भला खरगोश था। वह सबकी भलाई करता था और सबके काम आता था। सभी से उसकी मित्रता थी। एक बार वह बीमार पड़ा। बीमारी ऐसी थी जिसमें वह चल-फिर नहीं सकता था। अस्तु, उसने पास-पड़ोस से किसी प्रकार इतनी घास इकट्ठी कर ली थी कि बीमारी के दिन उसके सहारे किसी प्रकार गुजर सकें।

जानवरों को खरगोश की बीमारी का समाचार मिला तो वे उससे सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिये दौड़ पड़े। सभी मीठी-मीठी बातें करते और उसके जल्दी अच्छे होने की कामना करते। साथ-साथ उस खाली समय में खरगोश की जमा की गयी घास में भी मुँह मारते जाते। दिन भर ताँता लगा रहता और जमा की गई घास घटती जाती। दो चार दिन में ही सारी घास समाप्त हो गई। खरगोश की बीमारी तो घटी, पर चारे के अभाव में वह भूख से तड़प-तड़प कर मर गया।

यह कहानी उन पर लागू होती है, जो किसी के कष्ट, रोग या मौत का समाचार सुनकर सहज ही इष्ट-मित्रों सहित दौड़ पड़ते हैं। यह नहीं सोचते कि उस मण्डली के लिये भोजन, निवास, स्वागत-सत्कार का कितना भार उन पर पड़ता है, जिनके यहाँ सहानुभूति प्रदर्शन के लिये वे लोग गये हैं। उस सूखी सहानुभूति से उन लोगों का कुछ लाभ तो होता नहीं। न तो वे उनके किसी काम में हाथ बँटा सकते हैं, उल्टे स्वागत-सत्कार का नया बोझ डालते हैं। इसमें उनका समय भी जाता है। इस नये भार से वह मन ही मन कुढ़ता है। यह सूखी सहानुभूति उनके किसी भी काम तो नहीं आती। उलटी नई परेशानी ही खड़ी होती है।

दयालु राजा

सड़क के एक किनारे पर खड़ा बालक करुण दृष्टि से आने-जाने वाले व्यक्तियों को देख रहा था। वह चाहता था कि अपनी परेशानी किसी से कहे, पर उसकी जवान नहीं खुलती थी।

सामने से प्रभावशाली व्यक्तित्व वाला पर सामान्य वेषभूषा में एक आदमी निकला। उसने बड़े झिझक के साथ पग बढ़ाते हुये निवेदन किया—"आप मेरी कुछ सहायता करेंगे ?"

व्यक्ति के पैर वहीं थम गये। उसने याचक पर सिर से पैर तक एक दृष्टि डाली, उसे लगा कि यह कोई अभ्यस्त भिखारी नहीं है। उसने पूछा—"बेटे ! यह आयु तो पढ़ने-लिखने की है और तुम इसे बरबाद कर रहे हो। क्या तुम्हें भीख माँगते हुये शर्म नहीं आती ?"

लड़के का घाव जैसे किसी ने कुरेद दिया हो। आँखें गीली हो गईं। उसने सिसकते हुये कहा—"महोदय ! मैं भिखारी नहीं हूँ, मेरी माता घर पर बीमार पड़ी है और छोटा भाई भूखा है। कल से मेरे मुँह में भी एक दाना अन्न का नहीं गया है। मैं विवश होकर आज सहायता के लिये याचना कर रहा हूँ।"

"तुम्हारे पिता क्या करते हैं बेटा ?" व्यक्ति ने कन्धे पर हाथ रखकर सान्त्वना के स्वर में पूछा।

अब बालक की आँखों में आँसू झर पड़े—"पिताजी के प्रेम से वंचित हुये हमें एक वर्ष हो गया, यदि वे आज जीवित होते तो भला मैं किसी के आगे हाथ फैलाता।"

"तुम मुझे अपने घर का पता बताओ और लो यह कुछ सिक्के, इनसे अपनी माँ की चिकित्सा की व्यवस्था करना और छोटे भाई के लिये भी बाजार से कुछ खाने की सामग्री लेते जाना।"

बालक बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अपने घर का पता दिया और आभार मानकर चलता बना। वह व्यक्ति भी बताये गये पते पर घर तलाशता हुआ जा पहुँचा। उसने घर के अन्दर जाकर देखा—मानो निर्धनता नग्न रूप में विद्यमान है।

"बहिन ! अब तुम अपनी चिन्ता छोड़ दो। तुम शीघ्र ही स्वस्थ हो जाओगी, पर इतना तो बताओ कि तुम्हारी स्थिति बिगड़ी कैसे ?" —आगन्तुक ने पूछा।

"मेरी बीमारी और परिवार की इस दयनीय स्थिति के लिये गरीबी ही उत्तरदायी है। आप जानते ही हैं कि बीमारी तो अच्छे-अच्छे परिवारों का दिवाला निकाल देती है।" महिला ने उठने का प्रयास करते हुये कहा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"तुम मुझे एक कागज दो। मैं तुम्हारी बीमारी की दवा लिख देता हूँ। तुम शीघ्र ही स्वस्थ हो जाओगी और पैसे भी मिलेंगे।"

उसे कहीं कागज दिखाई न दिया। बच्चे की किताब का ही एक पन्ना फाड़कर उसे दे दिया।

आगन्तुक व्यक्ति ने उस पर कुछ लिखा और धैर्य बँधाकर चलता बना।

थोड़ी देर बाद उसका बड़ा पुत्र एक डाक्टर को साथ लेकर लौटा और दरवाजे से ही माँ का हाल-चाल पूछते हुये बोला—"माँ ! मुझे रुपये मिल गये हैं। साथ में डाक्टर साहब को भी ले आया हूँ, अब तू जल्दी ही ठीक हो जायेगी।"

"बेटा ! तुम बहुत दिन जियो। अभी एक डाक्टर साहब आये थे और यह पर्चा लिखकर दे गये हैं। अब मुझे भी ऐसा लगने लगा है कि मैं जल्दी स्वस्थ हो जाऊँगी।" माँ ने डाक्टर की ओर पर्चा बढ़ा दिया।

डाक्टर ने पर्चा पढ़ा उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ—"माँ ! मुझ से पहले जो डॉक्टर आये थे, वह इस देश के सबसे बड़े डॉक्टर थे। उन्होंने जैसी दवा इस पर्चे पर लिखी है वैसी तो मैं दे भी न पाऊँगा। राजा जोसेफ द्वितीय स्वयं तुम्हें देखने आये थे और उन्होंने कागज पर लिखा है कि तुम्हारे लिये अच्छे इलाज और बड़ी धन राशि की व्यवस्था की जाये। अब तुम्हारी सारी परेशानियाँ दूर हो जायेंगी।"

महिला के मुँह से यों निकला—"जिस देश का राजा इतना दयालु है फिर वहाँ की जनता को किसी प्रकार कष्ट क्यों हो ?"

भाव विस्तार ही मानव धर्म

"एक तरुण आप से भेंट करने का इच्छुक है" सहकारी के ये शब्द उनके भावों के महल में घुसने के लिये प्रवेश द्वार की तलाश करने लगे। वह पियानो के संगीतयान में बैठे स्वर-लहरियों के आकाश में विचरण कर रहे थे। नित्य-नियम के अनुसार आज भी सूर्य-रश्मियों के धरा-अवलोकन के एक घण्टे पूर्व से यह यात्रा शुरू हो गई थी। अपने घर में हों या बाहर स्वदेश में हों या विदेश में, बचपन से प्रौढ़ावस्था में प्रवेश तक उनका यह नियम भंग नहीं हुआ। व्यवस्थित जीवन में अनुशासन का वज्रलेप ही तो व्यक्तित्व को कीर्ति मण्डित करता है। उनके साथ यही घटित हुआ था। सामान्य जीवन से लेकर विश्वविख्यात संगीतकार बनने की यात्रा यही शुल्क चुका कर पूरी की।

सहायक जो उनका शिष्य भी था, उनके प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा में था। तन्मयता के इन उत्कर्षमय क्षणों में उसे हिम्मत नहीं हो रही थी कि वह बार-बार व्यवधान पैदा करे। संगीत के स्वरों में चढ़ाव, उतार, मन्दता और ..... । कुशल यान चालक की तरह भावाकाश से सक्रियता की सचेतन भूमि में उतरे। पियानो एक ओर रखा। दो-तीन बार पलकें झपकाईं, हल्की-सी अँगड़ाई लेकर अपनी अधपकी दाढ़ी में हाथ फेरा और एक गिलास पानी माँगा। खाली पानी का गिलास रखने तक वह पूर्णतया प्रकृतिस्थ हो गये। सामने खड़े व्यक्ति ने अपना निवेदन पुनः दुहराया। सुनने के क्षण उनके माथे पर क्षीण रेखाएँ उभरीं जैसे वह स्मृतियों और घटनाओं को बटोरने की कोशिश में हों। कुछ सोचते हुये उन्होंने कहा—"उसे यहीं भेज दो।" शब्दों के साथ सहयोगी के पाँव दरवाजे की ओर मुड़ चले।

लगभग पन्द्रह दिन पूर्व वह पोलैण्ड से अमेरिका आये थे। सदा की भाँति इस बार भी उनकी विदेश यात्रा का उद्देश्य संगीत आयोजनों में भाग लेना था। विश्व के अनेक देशों में उनके स्वर तरंगित हो चुके थे। आयोजनों में उमड़ती भीड़ के कारण हर किसी की लालसा यही रहती थी कि आयोजक का ओहदा उसी को सँभालने का सौभाग्य मिले। इस बार उन्होंने यह सम्मान साधारण लुहार के लड़के को दिया था। आयोजन की सार-सँभाल टिकटों की बिक्री आदि का दायित्व उसे देने के पीछे भाव यही था कि इस गरीब बालक की कुछ आर्थिक सहायता हो जायेगी, किन्तु प्रतिद्वन्द्वियों की कुटिल चालें मौसम की गड़बड़ी जैसे अनेक कारणों ने इस सोच पर संघबद्ध हमला कर दिया। टिकटें कम बिकीं, श्रोता कम आये ऐसे में बेचारा आयोजनकर्ता तरुण करे तो क्या करे ?

कमरे की किवाड़ खुलने की आहट के साथ साधारण-सी पैण्ट कमीज पहने अठारह-बीस साल के नवयुवक ने प्रवेश किया। साधारण कपड़ों में लिपटा शरीर उसकी मनोदशा बखान कर रहा था। माथे पर लहरा आये उलझे रुखे बाल, सूखे होंठ, सूज गई आँखों से स्पष्ट हो रहा था उसे कई दिनों से नींद नहीं आई। हवाइयाँ उड़ रहे उसके चेहरे पर एक नजर डालते ही उन्होंने सारा मजमून पढ़ लिया।

"आओ बैठो।" स्वरों में केवल कंठ माधुर्य ही नहीं पितृ सुलभ सहज स्नेह भी था।

जी। हिचकिचाहट भरे इस एक शब्द के उच्चारण के साथ वह सिमटा-सिकुड़ा खड़ा रहा।

बैठो ! अबकी उन्होंने स्वयं हाथ पकड़कर अपने बिस्तर पर बिठा लिया।

जैसे-तैसे वह बैठ तो गया, पर उसे समझ नहीं आ रहा था कि किन शब्दों के साथ उनको ये थोड़ी-सी पूँजी थमाए। अन्य आयोजनों में उन्हें आठ-दस हजार डालर मिल जाना सामान्य बात थी। लेकिन इस बार..... पर वह भी क्या करे ? क्या नहीं किया ? कहाँ नहीं गया ? टिकटों की बिक्री के लिये कितना श्रम नहीं किया..... पर..... ।

सामने बैठे ख्यातिनामा संगीतकार की अनुभवी आँखें उसके इस भावोद्वेलन को पढ़ रही थीं। वस्तुतः स्थूल शरीर तो एक लिफाफा भर है। इसके भीतर एक भाव शरीर है, जिसमें भाव लहरियाँ प्रतिक्षण उद्वेलित होती रहती हैं। ये ही भाव स्थूल रूप लेते हैं। तरुण के भाव-मन्थन से उमंग रही लहरों को गिनते हुये उन्होंने दो कप कॉफी मँगाई। एक कप उसके हाथ में आग्रहपूर्वक थमाकर अपने होंठों से लगा ली।

कुछ पल इन्हीं चुस्कियों में गुजर गये। कॉफी पीने के बाद लड़के की बेचैनी में कुछ कमी के लक्षण दिखाई दिये। इसे कॉफी का असर कहें या स्नेह का संजीवनी स्पर्श ! कुछ सोचते हुये उसने जेब टटोली। हाथ में नोटों की गड्डी उलटते-पलटते हुये उन्हें थमाई। शान्त भाव से उन्होंने नोट पकड़े गिने और एक ओर रख दिये। ये तीनों कार्य बड़े निस्पृह भाव से निःशब्द माहौल में हुए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नोट रखकर उन्होंने उसके कंधे पर हाथ रखते हुये पूछा—हॉल का किराया बिजली का बिल चुक गया। "नहीं" इस एक शब्द के पात्र में उसकी समूची वेदना इकट्ठी हो गई। थोड़ा रुककर युवक बोला—"टिकटों की बिक्री से सिर्फ आठ सौ सैंतीस डालर मिले थे, सो आपके सामने हैं। आप इन्हें ले लें। हॉल आदि का किराया मैं धीरे-धीरे चुकाता रहूँगा।" हताशा की एक दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुये उसने कहा।

"कैसे चुकाओगे ?" लड़के की आर्थिक स्थिति से वह अनभिज्ञ नहीं थे। साधारण लुहार की आय ही कितनी ! जैसे-तैसे तो उसने इस आयोजन की हिम्मत जुटाई। सोचा था कुछ बचेगा तो नया धन्धा करूँगा पर।

"निराश मत हो।" उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुये वह बोले, "निराशा जीवन की शत्रु है। भावों का कुचला जाना व्यक्तित्व को कुचल देता है। तुम नहीं जानते भाव और क्रिया किस प्रकार एक-दूसरे से जुड़े हैं ?" भावों का पारखी बोल रहा था। पर करूँ क्या ? न चाहते हुये भी माथे पर चिन्ता की लकीरें गहरा गईं।

उन्होंने कोने में रखे नोटों के बण्डल में कुछ बड़े नोट और मिलाये और ये सभी नोट उसकी जेब में रखते हुये कहा—"इनमें से हॉल का किराया, बिजली का बिल चुकाने के बाद भी इतना कुछ बच रहेगा कि तुम कोई नया धन्धा शुरू कर सको।"

उनके द्वारा दी गयी राशि को हाथ में पाते ही तरुण अचकचा गया। उसकी आँखें आश्चर्य से फैल गईं। यह अकल्पनीय उदारता..... वह भी इस सहज ढंग से। उसे सूझ नहीं रहा था क्या कहे ? कहाँ तो सोचा था आयोजन में हुये व्यय को चुकाने के लिये न जाने कितने दिन खटना पड़ेगा ? तकादे..... अपमान..... तिरस्कार के एक पर एक दृश्य उसके मन में मचल रहे थे और कहाँ अब ? इस उदारता के बाद..... परिवर्तित जीवन की कल्पना में वह स्वयं को खोने लगा।

"आपका यह..... अहसान..... मैं जीवन..... में कभी..... भूलूँगा..... नहीं।" भावावेग के कारण शब्द गले में अटक रहे थे। उन्होंने उसे टोकते हुये कहा—"यह अहसान नहीं, जीवन्त मनुष्य का फर्ज है।" "जीवन्त मनुष्य का ?" कुछ न समझते हुये उसने उनकी ओर देखा।

"हाँ" वह कह रहे थे "मुर्दे का सहज धर्म है निष्क्रियता, निष्ठुरता। मुर्दा यदि सक्रिय भी हो तो सड़न और बीमारी फैलायेगा। पर जीवन्त व्यक्ति तो वही है, जो मानव मात्र की वेदना के प्रति संवेदनशील हो। यदि तुम इसे चुकाना चाहते हो, तो स्वयं संवेदनशील बनना ? जीवन चेतना का औरों में प्रसार करना। संवेदनाओं का वितरण कर सके, जिसे तुम उदारता कहते हो उस परम्परा को निभा सके, तो समझना न केवल तुमने मेरा अहसान चुका दिया बल्कि मुझे अहसानमन्द बना दिया।" मार्मिक ढंग से कहे गये संगीतकार के ये वाक्य उसकी किन्हीं अदृश्य गहराइयों में उतर गये।

इस घटना के बाद कालप्रवाह ने अनेकों दृश्य बदले। परिस्थितियों के ज्वार-भाटों ने उसकी और उस जैसी न जाने कितनी जिन्दगियों में उलट-फेर की। लड़का-युवक बना उसने खानों के उद्योग में करोड़ों रुपये कमाये। प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति पर यूरोप की शोचनीय दशा में सुधार लाने के लिये अमेरिका ने जो दस करोड़ डालर का ऋण स्वीकृत किया, उसके वितरण का जिम्मा उसे ही मिला। ऋण वितरण करते समय उसने १८७४ की इस पुरानी याद को सँजोते हुये कहा—"मैं यह अमेरिका का दिया धन नहीं, पोलैण्ड के संगीतकार पेडेरेवस्की की दी गई संवेदनाएँ बाँट रहा हूँ।" संवेदनाओं के इस वितरक को अमेरिका निवासियों ने राष्ट्रपति के सर्वोच्च आसन पर बैठाया। विश्व ने इसे 'हर्बर्ट हूबर' के नाम से जाना। उनके राष्ट्रपति के कार्यकाल में १९३० की भयानक मन्दी आई। इस मन्दी से ग्रसित यूरोपीय राष्ट्रों ने ऋण चुकाने में असमर्थता व्यक्त की तो हूबर ने उदारतापूर्ण व्यवहार करते हुये कहा मेरा कार्य मनुष्य धर्म का निर्वाह है, जीवन का प्रसार है। हूबर की भाँति यदि मानव आज की विषाद पीड़ित मानवता पर स्वयं की संवेदनाओं का अमृत छिड़क सके, मनुष्य धर्म का निर्वाह कर जीवन का प्रसार कर सके, तो आने वाला कल उसे भी लोकनायक बनाये बिना न रहेगा।

संकल्प शक्ति की गंगोत्री

द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त हो चुका था। समस्त विश्व पर आधिपत्य जमाने का स्वप्न देखने वाले हिटलर और उसके जर्मनी को भयंकर पराजय का मुँह देखना पड़ा था। कुछ वर्ष पहले जो देश विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली राष्ट्र था, अब उसकी स्थिति रीढ़विहीन मनुष्य जैसी हो गई थी। दो-दो महायुद्धों को पैदा करने की सबसे बड़ी कीमत चुकानी पड़ी थी जर्मन नागरिकों को। उनके पास खाने को पर्याप्त अन्न तक नहीं था। वे पस्त हो चले थे।

ऐसे समय इण्डियाना, अमेरिका के एक युवा सैनिक को जर्मनी जाने का आदेश मिला। वह युवक उन्नीस वर्ष की आयु में कृषि कॉलेज में पढ़ते हुये सेना में भर्ती कर लिया गया था। उसका नाम था—ब्रीचवे। उसे पराजित जर्मनी के उस आधे भाग में सैनिक सेवाएँ देनी थीं, जो अमेरिका, इंग्लैण्ड और फ्रांस की सेनाओं के हाथ में आया था।

उसे यह ज्ञात होते ही उसने अपनी भूतपूर्व अध्यापिका मिस चोलसन को पत्र लिखकर आग्रह किया कि वे कुछ फलों-सब्जियों के बीज तुरन्त भेज दें। वह उक्त अध्यापिका का प्रिय छात्र था। उसके द्वारा अपने पितामह के लिबर्टी किले के निकटवर्ती फार्म पर उगाये गये टमाटर के खेत पर ए. एण्ड टी. टी. कम्पनी ने उसे दो सौ डालर का पुरस्कार दिया था।

बीज समय पर मिल गये। अध्यापिका ने अपनी ओर से उसमें मोटे अन्न के कुछ बीज भी डाल दिये थे। ब्रीचवे जानता था कि अब उसे यहाँ युद्ध तो करना नहीं है, शान्ति और व्यवस्था बनाये रखनी है, इसलिये सरकार उसे अन्य अमेरिकन सैनिकों के साथ जर्मनी भेज रही है, पर वह अपने इस कार्य के साथ ही अपनी ओर से एक ऐसा आन्दोलन भी चलाना चाहता था, जो जर्मन नागरिकों के मानस में पराजयजन्य निराशा और अनुत्साह को कुछ सीमा तक समाप्त कर सके। इसी कार्य के लिये उसने यह बीज मँगाये।

उसके इस काम में आरम्भ में ही अड़चन आ उपस्थित हुई। बन्दरगाह पर ही जब उसके किट की तलाशी ली गयी और बीजों की थैलियाँ मिलीं, तो उसके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सार्जेण्ट ने उन्हें साथ ले जाने से स्पष्ट मना कर दिया और फेंक देने की सलाह दी। यहाँ ब्रीचवे ने चतुराई से काम लिया। उन बीजों के पैकटों को खोलकर उसने थोड़े-थोड़े बीज अपनी कमीजों और पैण्टों की जेबों में भर लिये। इस प्रकार बिखरे हुये रहने के कारण उनमें निरीक्षण के समय किसी प्रकार आपत्तिजनक स्थिति उत्पन्न नहीं हुई।

अपनी कम्पनी के साथ ब्रीचवे की ड्यूटी जर्मनी के ह्ज्जन नामक गाँव में लगी, जो फ्रैंकफर्ट से ३५ मील दूर स्थित था। अब उसने उन बीजों को पुनः एकीकृत कर लिया। उसका विचार वहाँ उनका उपयोग करने का था। ह्ज्जन देहाती क्षेत्र होने के कारण उसके खेत गाँव के पास ही थे। इस गाँव के निवासी भी अन्य जर्मन गाँवों और नगर निवासियों की तरह ही भूखे थे। ग्राम के दौरे से ब्रीचवे को ज्ञात हुआ कि यहाँ के ग्रामीणों को मात्र अन्न संकट का अभाव ही नहीं झेलना पड़ रहा था, वे बुरी तरह हतोत्साहित भी थे। उसने देखा कि उन्हें जो कुछ सिखाया गया था, अब तक सब उसका उल्टा ही हुआ था। उन्हें यह आश्वासन दिया गया था कि यदि वे नाजी प्रशासन के हाथ मजबूत करेंगे, तो समस्त संसार पर उनका वर्चस्व होगा, सारी दुनिया के वे मालिक होंगे पर आज वे सब कुछ आशा के विपरीत देख रहे थे। उनका मन अशान्त और मस्तिष्क दिग्भ्रान्त जैसा हो रहा था, हृदय में अमरीकियों के प्रति तरह-तरह की आशंकाएँ क्षण-क्षण में पानी के बबूले की तरह बनती-बिगड़ती रहती थीं।

इतना ही नहीं, ब्रीचवे को यह जानकर भी बड़ा दुःख हुआ कि बड़ों के साथ-साथ वहाँ के बालक भी एक तरह से पराजित हो गये हैं। उसे ऐसा लगा जैसे वे टूट गये हों। उनकी खुशियाँ लौटाने के लिये उसने अपनी कम्पनी के जार्ज रेजमेचर से परामर्श किया। अधिकारी को सैनिक की बात तथ्यपूर्ण लगी और उसने योजना के क्रियान्वयन की मंजूरी दे दी।

इन लोगों ने गाँव के मुखिया से मिलकर अपना काम शुरू कर दिया। ग्राम के बाहर पाँच एकड़ का एक उपजाऊ टुकड़ा था। उस पर शाक-वाटिका लगाने की योजना बनी। ग्राम प्रधान ने उस टुकड़े को बैलों की जोड़ी भेजकर जुतवा दिया।

इस वाटिका के लिये गाँव के पैंतालीस परिवारों से लड़के लिये गये। यह ध्यान रखा गया कि प्रत्येक परिवार को एक क्यारी मिल जाये। दो-दो मिलाकर उन्हें एक क्यारी दी गयी। ये दो बच्चे भाई-भाई या भाई-बहिन रखे गये, ताकि उस एक क्यारी में जो उत्पादन हो उसका लाभ परिवार को मिले। वे अपने घर से औजार लाते और अपनी-अपनी क्यारियों की भूमि तैयार करते।

खेत पर ही उन्होंने औजार रखने का घर बनाया। समय पर इन बच्चों को बीज दिये, अपनी निगरानी में बुवाई करायी। वास्तव में इसके पीछे ब्रीचवे का मुख्य उद्देश्य बच्चों में सहकारिता व सृजन की वृत्तियों का विकास करना था। अब तक उन्होंने संघर्ष की ही बात देखी और सीखी थी। अब सहयोग देखकर उनका मन काफी हर्षित था।

अपने साथ लाये बीजों के पैंतालीस भाग करके ब्रीचवे ने लड़कों को वितरित कर दिये। लड़कों ने उन्हें अपनी-अपनी क्यारियों में बो दिया। ब्रीचवे कृषि विशेषज्ञ था ही। उसने अपनी रीति से उन बच्चों को प्रशिक्षित किया। जल्दी-जल्दी और अधिकतम उपज की बढ़िया सब्जियाँ कैसे उगायी जायें ? इस बात का शिक्षण उसने जर्मनी की नई पीढ़ी के अस्सी सदस्यों को दिया।

ब्रीचवे का कहना था कि इस छोटी कृषि के सहारे नई पीढ़ी जीवन की बड़ी और महत्त्वपूर्ण उपलब्धि हस्तगत कर सकेगी। उनमें आत्मविश्वास जागेगा और सृजन एवं सहयोग का महत्त्व वे समझ सकेंगी। बाद में हुआ भी ऐसा ही। इस कृषि आन्दोलन की मदद से ब्रीचवे ने जर्मनी के टूटे मनोबल को फिर से सुदृढ़ बनाया और मुर्झाये अन्तःकरण में उमंग का ऐसा अद्भुत संचार किया कि मृतप्राय शुष्क पेड़ पुनः हरीतिमा से लदने और लहलहाने जैसी स्थिति में आना प्रतीत होने लगा।

इण्डियाना के इस सैनिक ने जर्मनों की जीवन पद्धति को तीन महत्त्वपूर्ण बातें प्रायोगिक तरीके से बतायीं। एक तो व्यक्तिगत जिम्मेदारी, दूसरी टीम स्पिरिट और तीसरी प्रजातान्त्रिक ढंग की व्यवस्था। व्यक्तिगत जिम्मेदारी के अन्तर्गत उसने हर एक को श्रमनिष्ठा और श्रमशीलता की बात बतायी। कहा कि मेहनत को यदि प्रत्येक जर्मन अपना व्यक्तिगत दायित्व समझते हुये लगनपूर्वक करे, तो जर्मनी न सिर्फ कृषि क्षेत्र में, वरन् प्रत्येक क्षेत्र में द्रुतगति से विकास करके शीघ्र उन्नत बन सकेगा। पारस्परिक सहयोग-सहकार की बात बताते हुये उसने टीम-भावना की महत्ता समझायी और प्रजातान्त्रिक व्यवस्था को उसने राष्ट्र के समग्र और सर्वांगीण विकास का महत्त्वपूर्ण आधार बताया।

इन तीनों बातों को उसने अपने शिक्षण में विशेष प्रमुखता दी और कृषि के माध्यम से इन्हें प्रत्येक के जीवन में स्थापित करने का प्रयास किया। इसमें इसे सफलता भी मिली। इस प्राथमिक सफलता से ह्ज्जन ग्रामवासियों में एक नया आत्मविश्वास उत्पन्न हुआ। यह आत्मविश्वास उनके लिये वरदान सिद्ध हुआ। जो सफलता पहले उन्हें संदिग्ध और कठिन जान पड़ती थी, वही अब उनके लिये सरल-सम्भव बन गई। ऐसा केवल कृषि क्षेत्र में ही नहीं हुआ, अपितु कृषि क्षेत्र से प्राप्त आत्म-विश्वास ने उन्हें जीवन के विभिन्न विभागों में प्रगति का महत्त्वपूर्ण आधार प्रदान किया।

यह प्रगति यात्रा आरम्भ हुई तो फिर रुकने का नाम नहीं लिया। ब्रीचवे का कृषि-शिक्षण इसका माध्यम बना। धीरे-धीरे कर यह कृषि-क्रान्ति सम्पूर्ण देश में फैल गयी और इसी के साथ जर्मनीवासियों के जीवन को एक नई दिशा मिली।

ब्रीचवे द्वारा कृषि-प्रशिक्षण का कार्य करते हुये जिस सफल अभियान का संचालन किया जा सका, वह प्रत्येक देश के युवकों के लिये आदर्श उपस्थित करता है और इस बात की प्रेरणा देता है कि उनमें यदि ममता का, करुणा, सेवा और सहायता का कुछ भी अंश शेष है, तो वे मानवता की सेवा के लिये काफी कुछ कर सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उत्सर्ग, त्याग और बलिदान

प्राण जाय पर वचन न जाई

महाभारत के विश्वयुद्ध में प्रायः समस्त भूखण्ड के नरेशों, अधिपतियों ने भाग लिया था। कोई दोनों पक्षों के समर्थक बनकर अपनी वाहिनियों सहित सक्रिय भाग ले रहे थे, तो कुछ तटस्थ प्रेक्षक के रूप में भी वहाँ उपस्थित थे। ऐसे ही तटस्थ दर्शकों में था भब्रूवाहन—सबसे कम वय का नरेश ! महाभारत के युद्ध में दर्शक बनकर जाने की आकांक्षा माँ के सम्मुख व्यक्त की तो माँ ने कहा—"बेटा तुम जैसे क्षत्रिय और शूरवीर के लिए इस युद्ध में तटस्थ रहना लगभग असम्भव ही होगा। दोनों पक्ष जिस भीषणता के साथ लड़ेंगे उसे देखकर निस्तेज और निर्बल व्यक्ति का भी आविष्ट होना स्वाभाविक होगा, इसलिए पहले मुझे यह बताओ कि ऐसा अवसर आया तो तुम किस ओर से मैदान में उतरोगे।"

जिस पक्ष को मातुश्री का समर्थन प्राप्त हो—मातृ-परायण भब्रूवाहन का कहना था। भब्रूवाहन अपने समय का अजेय योद्धा था और जिस ओर से वह लड़ता, उसके शत्रु पक्ष में विनाशकारी कहर गिरना सुनिश्चित ही था। इसलिये माँ ने कहा—"बेटा ! वीरों की मर्यादा है निर्बल की सहायता करना। कौरव और पाण्डव दोनों ही हमें समान रूप से प्रिय हैं। इसलिए जहाँ तक हो सके तुम तटस्थ ही रहना, फिर भी कदाचित न रह सको तो उसी पक्ष को अपना समर्थन देना जो निर्बल हो रहा हो।"

भब्रूवाहन मातृ-आज्ञा को शिरोधार्य कर रणांगण में पहुँचा। दोनों ही पक्षों ने इस अजेय योद्धा को देखा तो अपनी-अपनी ओर मिलाने की लालसा लेकर पहुँचे परन्तु भब्रूवाहन ने अपने संकल्प का सन्दर्भ देकर संप्रति तटस्थ रहने की बात स्पष्ट कर दी।

युद्ध आरम्भ हुआ—दुर्जेय वाहिनियों और अचूक शस्त्रास्त्रों से युद्ध के होते हुए भी कौरव सेनायें कमजोर पड़ने लगीं। लगने लगा कि भब्रूवाहन अब युद्ध में उतरेगा ही।

भगवान कृष्ण ने इस अनर्थ को रोकने के लिए ब्राह्मण का वेष बनाया और जा पहुँचे भब्रूवाहन के पास। युवराज ने ब्राह्मण वेषधारी कृष्ण को प्रणाम किया तो श्रीकृष्ण बोले—"शुभाशीष ! वत्स ! तुम्हारी जय हो।"

भब्रूवाहन ने पूछा—"कहिए महात्मन् कैसे आना हुआ ?" 'वत्स मैं पूछने आया हूँ कि तुम इस विश्वयुद्ध में अब तक तटस्थ कैसे बने हो ? तुम्हारी कीर्ति के सम्बन्ध में हमने बहुत कुछ सुना है।'

'प्रभु ! मैं अपनी माँ के सम्मुख प्रतिज्ञाबद्ध हूँ कि दुर्बल की ही सहायता करूँगा। कुछ समझ में नहीं आ रहा। आप ही स्पष्ट कीजिये। कौन दुर्बल है ? पाण्डव तो अभी जमकर लड़ रहे हैं और कौरवों में भी खूब दम है।

मैं कुछ नहीं कहना चाहता वत्स ! हमें इन राजनैतिक मसलों से क्या सम्बन्ध ? हम तो भिक्षाजीवी ब्राह्मण ठहरे। बन पड़े तो अपनी स्थिति के अनुरूप कुछ दीजिये।'

ब्राह्मण कृष्ण ने याचना की।

'माँगिये विप्र श्रेष्ठ ! आप जो भी चाहो, हम देने को तैयार हैं। ब्राह्मणों की इच्छा पूरी करना तो हमारा कर्त्तव्य है।'

'ठीक है वत्स ! लेकिन मैं जो माँगना चाहता हूँ शायद तुम न दे सको।'

'माँगकर तो देखो पूज्यपाद। यदि न दे सकूँ तो आप मेरा सिर उतार लेना।'

'तो ठीक है ! सिर ही दे डालिये'—भगवान कृष्ण ने अपना मंतव्य कहा। भब्रूवाहन आश्चर्यान्वित तो हुआ परन्तु उसने अपना वचन नहीं तोड़ा और तत्काल ही खडग से अपना सिर काटकर याचक के भिक्षापात्र में रख दिया। अन्तिम साँस लेने में कुछ समय लगा और इसी बीच भगवान कृष्ण ने वास्तविकता बता दी। अपनी वचन मर्यादा का निष्ठापूर्वक पालन करते हुए भब्रूवाहन ने प्रयाण कर दिया।

त्याग ही वरेण्य

"गुरुदेव !"

"मेरा कर्त्तव्य मुझे पुकार रहा है राजन !"

'विजय नगर ने क्या अपराध किया है ? आचार्य के एकान्त एवम् त्याग में कब बाधा दी है, इस सेवक ने ? हम सब किसके चरणों में प्रणिपात करके प्रेरणा करेंगे ?"

"एकमात्र जगदीश्वर ही प्रणम्य एवं शरण्य है राजन् !" आचार्य माधव जब कोई निश्चय कर लेते हैं हिमालय के समान स्थिर होता है उनका निश्चय। उन्होंने प्रव्रज्या के महाव्रत को स्वीकारने का निश्चय कर लिया है। विजयनगर राज्य के नागरिक हिन्दू और यवन-सब अनाथ की भाँति रो रहे थे। महाराज हरिहर हाथ जोड़े खड़े थे; लेकिन जो त्रिलोकी के वैभव को त्याग देने का संकल्प कर चुका हो, उसे क्या मोह ?

"ब्राह्मण यदि ब्राह्मण हो तो उसे कहीं कोई विघ्न नहीं होता। आचार्य ही हैं जो इस क्रन्दन करती भीड़ के मध्य भी मुसकरा सकते हैं। विजयनगर का वैभव जिसके आशीर्वाद से एकत्र हुआ और जिसके संकेत पर चलता है, वह राजगुरु, महामन्त्री, राज्य का सर्वेसर्वा, लेकिन वह कच्ची दीवारों से घिरी तृणों से आच्छादित कुटीर में गोबर से लिपी वेदी पर कुशासन बिछाकर ग्रन्थों के अम्बार में निमग्न रहने वाला तपस्वी-भला ऐसे त्यागमय तपोमूर्ति ब्राह्मण के लिए कहीं कोई विघ्न हो कैसे सकता है ?"

"हम सबका ही कोई अपराध ?" नरेश का स्वर व्यथा से विगलित था।

"ब्राह्मण कृपा करना जानता है, अपराध देखना नहीं" आचार्य ने मस्तक पर अभय कर रखा—"त्याग ब्राह्मण का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सहज स्वरूप है। मेरे जैसा ब्राह्मण त्याग न करे, तो समाज आदर्श किससे प्राप्त करेगा ?"

"गुरुदेव ने संग्रह तो कभी किया नहीं।"

"तुम जिसे संग्रह कहते हो वह तो भोग है और अपनी संस्कृति में भोग तो सदा निषिद्ध है।" आचार्य कह रहे थे "राजन् ! धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष समाज रूपी बगीचे को सींचने वाली चार नदियाँ हैं। इन चारों धाराओं को प्रवाहमान रखने की जिम्मेदारी समाज के ही चार वर्गों पर है। धर्म अर्थात् विद्या और तप को ब्राह्मण प्रवाहित रखता है। यह समाज की जीवनी-शक्ति है।"

आचार्य के शब्दों में स्वयं के जीवन का अनुभव प्रवाहित हो रहा था। उपस्थितजन मूक किन्तु एकाग्र थे। वह बता रहे थे—"अर्थ अर्थात् सम्पदा—इसे व्यापारी वर्ग प्रवाहित करता है। काम का तात्पर्य है उल्लास इसे जन-जीवन में प्रवाहित करने का दायित्व शासन और राजकर्मचारियों पर है। ये तीनों धाराएँ रुकें नहीं ठीक-ठीक संचालित रहें, इसी के लिए चौथी शक्ति धारा मोक्ष है जिसका अर्थ है त्याग। त्याग अहंता से, तृष्णा से, वासना से। यह त्यागवृत्ति प्रवाहित करने का महान् दायित्व परिव्राजक पर है।"

"गुरुदेव !" कई कातर स्वर एक साथ फूटे।

"कातर मत बनो !" आचार्य कहते गए "मैंने अब तक गृहस्थ ब्राह्मणों के लिए शास्त्र का संकलन किया है किन्तु परमदान है ज्ञान का दान—त्याग की वृत्ति को जीवित रखने वाले मोक्ष की प्रतिष्ठा।"

"श्रीचरणों ने अब तक ज्ञानदान ही किया है।" नरेश ने चरण पकड़े—"वह ज्ञान यज्ञ अखण्ड चलता रहे इस प्रकार की प्रत्येक सेवा ....."

विजयनगर सम्राट के इन शब्दों पर आचार्य उसी प्रकार हँस पड़े जैसे शिशु की बचकानी बात पर प्रौढ़ पिता हँसता है। वह हँसते हुए कहने लगे—"त्याग वृत्ति के प्रतिपादन को सेवा सम्पत्ति या सहायता की आवश्यकता नहीं और इसका समाज में जीवित रहना ही नहीं सर्वोच्च होना भी आवश्यक है अन्यथा शेष तीनों धाराएँ सूख जायेंगी-समाज निर्जीव-निष्प्राण होने लगेगा। अपनी संस्कृति का प्रधान सूत्र है **त्यागेनैकेव अमृतत्व मानशुः** इसे जीना अब मेरा कर्त्तव्य बन चुका है।"

"आशीर्वाद !" बड़ी कातर याचना थी किसी में साहस नहीं था अधिक अनुरोध करने का।

"कर्त्तव्य पालन स्वयं आशीर्वाद है।" आचार्य ने निरपेक्ष भाव से कहा। प्रव्रज्या का निश्चय करके अब जैसे वे संसार से सर्वथा ऊपर उठ चुके थे। "सफलता होगी या असफलता यह मत सोचो। शुभ के लिए प्रयत्न सफल हो या असफल, वह कर्ता को तो पवित्र करता ही है।"

इतिहास जानता है कि आचार्य माधव प्रव्रज्या लेकर स्वामी विद्यारण्य हुए और उन्होंने संसार को उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थावली दी, जितनी पूर्वाश्रम में दे आए थे। विजयनगर को उनकी त्याग की प्रेरणा और कर्त्तव्य पालन करते रहने का आशीर्वाद सदा मिलता रहा।

धर्मात्मा गिद्धराज जटायु

जटायु अपने जीवन-कर्त्तव्य से निवृत्त होकर आयु का अन्तिम चरण शान्तिपूर्वक भगवत्-भजन में बिताता हुआ मोक्ष का प्रयत्न कर रहा था। वह गिद्ध की योनि में सत्कर्म द्वारा यह सिद्ध कर रहा था कि मोक्ष का प्रयत्न अधम योनि में भी निषिद्ध नहीं है। यदि कोई सच्चे मन से निम्न योनि में भी धर्म-कर्त्तव्यों का पालन करता है तो वह उस योनि को भी धन्य बनाकर स्वयं भी धन्य बन जाता है और यदि मनुष्य जैसी श्रेष्ठ योनि पाकर भी अधम कार्य करता है, तो न केवल उस योनि को ही कलंकित करता है अपितु स्वयं भी अधम बन जाता है। अधमोन्नत योनि जीव के कर्मानुसार ही मानी जानी चाहिए, जन्म के अनुसार नहीं। सत्कर्मों के कारण ही गिद्ध होते हुए भी जटायु ने देव-पद पाया।

रावण की अनीति सीमा पार कर गई थी। यहाँ तक कि वह पिता का वचन पालन करने के लिय वन में आकर रहने वाले राम की पतिव्रता भार्या—सीता का भी छलपूर्वक हरण कर लाया। वह आकाश-मार्ग से अपने वायु-गामी विमान में देवी सीता को बलात् लिए जा रहा था। सीता कातर कुररी की तरह विलाप कर रही थीं। वे सहायता के लिये अरण्यवासियों को पुकार रही थीं और बार-बार राम और लक्ष्मण का नाम लेकर रक्षा के लिए रो रही थीं।

राम और लक्ष्मण मारीच के भुलावे में आकर जंगल में बहुत दूर निकल गये थे। सीता की कातर पुकार की सीमा से बहुत दूर। अरण्य निर्जन था। वहाँ के अधिकांश वासी रावण के अत्याचार और आतंक से त्रस्त होकर अन्यत्र चले गये थे। एक जटायु ही वहाँ किसी स्थान पर अपनी अभीष्ट तपश्चर्या में निमग्न हुए रहते थे। वे इस समय लोक से निवृत्त होकर परलोक अर्जन में लगे हुए थे। उनका शारीरिक पौरुष इस समय विश्राम ले रहा था।

ध्यानावस्थित जटायु के कानों में सीता का क्रन्दन पड़ा और शान्त अन्तस् में पहुँचकर ध्वनित हो उठा। उन्हें ऐसा लगा जैसे किसी गतानुगत जीवन की कोई घटना कर्ण ध्वनि वर्तमान विकास में घिरकर ध्वनित हो उठी है। वह अपनी समाधि-साधना को अपेक्षा से निरपेक्ष ही रहे। किन्तु ध्वनि स्पष्टतर होती हुई तल्लीनता को अनस्थिर बना रही थी। आखिर जागकर ऊपर आना ही पड़ा। पहचानते देर न लगी कि यह क्रन्दन किसी अत्याचार त्रस्त अबला का है, जो सहायता के लिए आह्वान कर रहा है। परोपकारी जटायु ने हस्तगत होता हुआ मोक्ष का छोर छोड़ दिया और उठ पड़े।

परोपकार की भावना ने उनके शिथिल पंखों में नवजीवन का संचार कर दिया और उन्होंने ध्वनि को लक्ष्य करके वेगपूर्ण उड़ान भरी। अच्छा ! तो यह लंका का राजा रावण है और राम की भार्या को बलात् हरण किए लिये जा रहा है। जटायु ने दूर से ही देखकर पहचान लिया और कहा—"ठहर, अत्याचारी ठहर। अनीति का जन्मजात शत्रु—जटायु आ गया।" साथ ही वातार्णव में डैनों के डाँड इस वेग से मारे कि मुहूर्तमात्र में पुष्पक विमान के आगे आकर प्रतिरोध में टक्कर मारी। रावण के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साथ ही पुष्पक भी काँपकर गतिभंग हो गया। रावण ने चौंककर देखा—क्या यान किसी पर्वत-शिखर से टकरा गया और खड्ग खींचता हुआ बोला—"अच्छा, जटायु तू है।" एक ओर धर्मधारी जटायु और दूसरी ओर खड्गधारी रावण। निःशस्त्र जटायु ने रावण के छक्के छुड़ा दिये—कई बार परास्त कर दिया। किन्तु निर्लज्ज पापी जूझता ही रहा और अनीतिपूर्ण घात-प्रतिघात करता रहा। पंख कट जाने से जटायु पृथ्वी पर आ गये। रावण ने अट्टहास किया और कहा—"क्षुद्र पक्षी, पा गया न अपने दुःस्साहस का दण्ड।" जटायु ने उत्तर दिया—"पापी ! परोपकार में प्राण देकर मुझे तो सद्गति मिलेगी ही, पर तेरा सर्वनाश अब निकट ही है, जिसको पाकर तू कल्पों तक नरक भोगेगा।" जटायु राम द्वारा संस्कार पाकर सद्गति का अधिकारी हुआ और रावण का चिन्ह तक मिट गया।

तप, करुणा और त्याग

शैलसुता भगवती पार्वती ने भगवान शंकर को प्राप्त करने के लिए निर्जन वन में घोर एकान्त में तप किया। स्वजनों ने बहुत समझाया कि सर्प, वृश्चिक और भूत-प्रेतों को साथ रखने वाले, शरीर पर भस्म मलने वाले अवधूत भगवान भूत भावन के साथ रहकर क्या सुख मिलेगा ? विशाल साम्राज्य के उत्तराधिकारी युवराज तुम्हारा वरण करने के लिए तैयार हैं। हठ छोड़ो और सुखद गृहस्थ जीवन का वरण करो।

परन्तु पार्वती अपने संकल्प पर अडिग ही रहीं और निरन्तर तप-तितीक्षा का अनुष्ठान करती रहीं। घोर तप से उन्होंने अपनी सुकुमार काया को तृणवत् जीर्ण बना लिया। तप साधन में अनेक व्यवधान हुए परन्तु वे अविचल निष्ठा से शिव की आराधना में लगी रहीं।

अन्ततः उनकी अचल निष्ठा और कठोर तप से प्रसन्न होकर भगवान शंकर ने उन्हें दर्शन दिए और पार्वती ने उन्हें पति रूप में पाने की कामना की। आशुतोष शंकर ने प्रसन्न होकर उन्हें यही वर दिया। जानते थे कि पार्वती और कोई नहीं पूर्व जन्म की उनकी अर्द्धांगिनी ही हैं, जिसने अपने पति का अपमान होते देखकर पिता के यज्ञ में आत्मदाह कर लिया था और यज्ञ विध्वंस कर दिया था। सो उन्हें पत्नी रूप में स्वीकार करने के लिए भगवान शंकर को कोई आपत्तिजनक बात प्रतीत नहीं हुई।

पत्नी रूप में स्वीकार करने के बाद भगवान शंकर अन्तर्धान हो गए। अपनी तपस्या सफल हुई देखकर पार्वती प्रसन्न मन पर्णकुटी के बाहर एक शिला पर बैठी थीं। तभी उन्हें एक बालक का रुदन स्वर सुनाई दिया। बालक आर्त स्वर में पुकार रहा था, 'हाय ! हाय !! मुझे बचाओ। मुझे ग्राह ने पकड़ लिया है।'

बालक का आर्तनाद सुनकर पार्वती दौड़ी गईं। सरोवर तट पर जाकर उन्होंने देखा एक सुन्दर बालक की टाँग मुँह में दबाए ग्राह उसे जल में खींच रहा है। बालक ने पार्वती को देखा तो वह फिर चीखा, 'मुझे बचाओ देवी ! यह ग्राह मुझे अभी ही चबा जायगा। मैं अपने माता-पिता का एकमात्र पुत्र हूँ।'

बालक का आर्त स्वर सुनकर पार्वती का हृदय द्रवित हो उठा। उन्होंने ग्राह से निवेदन किया 'महाराज ! बालक बड़ा दीन है। इसे छोड़ दीजिए।'

ग्राह ने कहा—"देवी ! मेरा नियम है कि दिवस की अपरान्ह बेला में जो मेरे पास आएगा या मुझे दिखाई देगा उसे ही मैं अपना आहार बनाऊँगा। विधाता ने इस बालक को मेरे पास इसी समय भेजा है इसलिए यह मेरा आहार है।"

उत्तर देते समय ग्राह के बन्धन कुछ ढीले हो गए और बालक उससे छूटकर पार्वती के पास आ खड़ा हुआ तथा उनके आँचल से लिपट गया। भय के कारण वह थर-थर काँप रहा था।

'मैं आपसे इस बालक का प्राणदान माँगती हूँ ग्राहराज ! आप इसके बदल में जो चाहें मुझसे प्राप्त कर लें।'

ग्राह ने कहा—"मैंने सुना है कि आपने ही हिमालय की चोटी पर तप कर भगवान शंकर को प्रसन्न किया है।"

"आपने ठीक सुना है ग्राह देव ! आप चाहें तो मैं उस तप का सम्पूर्ण बल आपको दे सकती हूँ।" पार्वती ने प्रस्ताव किया।

"तो ठीक है देवी, आपने जो उत्तम तप किया है वही मुझे अर्पण कर दीजिए। मैं इसे छोड़ दूँगा।"

पार्वती ने संकल्प लिया और जल छोड़ा।

इतना करते ही ग्राह का शरीर तप के तेज से चमक उठा। वह एक मानवाकृति में बदल गया और बोला—"देवी ! आपने यह क्या किया कितना कष्ट सहकर आपने तप किया और किस महान् उद्देश्य से किया था। ऐसे महान तप का त्याग कर कहीं आप अदूरदर्शिता तो नहीं कर रही हैं ?"

"नहीं देव !" पार्वती ने कहा—"प्राण देकर भी इस दीन बालक को बचाना मेरा कर्त्तव्य था। तप तो मैं फिर भी कर लूँगी, परन्तु यह बालक फिर कहाँ से आता ? मैंने सब कुछ सोचकर ही बालक को बचाया है।"

यह कहकर पार्वती बालक को लेकर वहाँ से चली गईं। वे पुनः तप का विचारकर पर्णकुटी में संकल्प करने जा ही रही थीं कि भगवान शंकर प्रकट हुए और बोले, "नहीं देवि ! तुम्हें फिर से तप करने की आवश्यकता नहीं। तुमने जिस करुणा और त्याग का परिचय दिया, उसका पुण्य फल किये गए तप से हजार गुना अधिक है। जाओ, अब तुम पितृगृह जाओ।"

सच्चा त्याग

वह गरीब था। गरीब माता-पिता के घर में जन्म लिया और गरीबों में ही पाला-पोषा गया था। रूखे-सूखे अन्न से पेट भर लेने और फटे-टूटे कपड़ों में तन ढक लेने के अतिरिक्त यह नहीं जान पाया था कि ऐश-आराम तथा शान-शौकत किसे कहते हैं ?

पड़ोस में धनवान रहते थे। पास में बड़ी-बड़ी कोठियाँ थीं। नाचरंग और विलासता के फब्बारे उनमें छूटते रहते थे। लक्ष्मी के द्वारा जो मौज-मजे मिलते हैं वह सभी इन कोठियों में भरे रहते थे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वह गरीब ब्राह्मण मुर्दा नहीं था। विद्या और बुद्धि में अद्वितीय गिना जाता था। धन वह कमा सकता न हो ऐसी बात नहीं थी, वह चाहता तो बुद्धिबल से चाँदी के किले खड़े कर सकता था। पर चाहता तब न ? उसकी आँखों का परदा हट गया था। मनुष्य जीवन चाँदी बटोरने और तमाशा देखने के लिये नहीं है, उसका उद्देश्य कुछ ऊँचा है। उस परमलक्ष्य को प्राप्त करने के लिए दुनियादारी को नमस्कार करना पड़ता है—ब्राह्मण ने भी वही किया। वह अपनी पत्नी सहित गरीबी की तपस्या करने लगा।

एक दिन परीक्षा का अवसर आया। प्रभु ने उनको परखना चाहा। उस दिन वे दोनों पति पत्नी कहीं दूर देश को जा रहे थे। धन के अभाव में लम्बी परदेश यात्रा कितनी कठिन होती है इसे भुक्त भोगी ही जानते हैं। धनहीन यात्री पर आने वाली विपत्तियाँ पग-पग पर उन्हें सता रही थीं।

चलते-चलते कहीं निर्जन वन में एक अशर्फियों की थैली रास्ते में पड़ी हुई दिखाई दी। ऐसे स्थान पर पड़े हुए धन को भी भला कोई छोड़ सकता है ? पर नहीं ! वह सच्चा ब्राह्मण था। लोभ की एक लहर उसके मन में दौड़ी तो सही, पर दूसरे ही क्षण वह सँभल गया। पराया धन बिना मालिक की आज्ञा के लेना पाप है। इन पाप पूर्ण ठीकरियों को वह नहीं ले सका।

ब्राह्मणी कुछ पीछे हट गई थी। उसने सोचा कहीं ब्राह्मणी को लोभ न आ जाय और लेने के लिये ललचा न जाय। इसलिए उस थैली पर धूल डालकर छिपा देना चाहिये। उसने पाँव के सहारे धूल खिसकाकर थैली पर डाली और उसे छिपा दिया।

ब्राह्मणी ज्यादा पीछे नहीं थी। जब तक पति सोच-विचार और दाब-दूब में उलझा रहा, तब तक पत्नी भी आ पहुँची। उसने पाँव द्वारा धूलि को खिसकाकर किसी पोटली पर डालने की क्रिया को देखा। बुद्धिमान स्त्रियाँ जिस प्रकार बात की बात में पति के मनोभावों को जान जाती हैं उसी प्रकार उसे इस घटना के रहस्य को जानने में देर न लगी। वह ताड़ गई—अवश्य ही इस पोटली में कुछ धन रहा होगा और मुझसे छिपाने के लिए यह किया जा रहा है।

पत्नी खिलखिलाकर हँस पड़ी। पति के कन्धे पर हाथ रखते हुए उसने कहा—'प्रभो ! सोने और धूल में अन्तर क्या है ? आप धूल को धूल से क्यों ढक रहे हैं ?

ब्राह्मण लज्जित हो गया। उसे अपने त्याग पर पूरा विश्वास न था। अयोग्यता के कारण जो अभाव रहता है उसी को कई पाखण्ड त्याग घोषित करते हैं। यह अभाव प्रलोप की परीक्षा में पिघल सकता है। विवेकपूर्वक किया हुआ सच्चा त्याग शुद्ध स्फटिक के समान है। विपत्ति में परीक्षा के समय वह मुरझाया नहीं दूना बिखरता है। ब्राह्मण को अपनी आशंका व्यर्थ सिद्ध हुई। ब्राह्मणी का त्याग अभाव का दंभ नहीं। वरन् उसी की भाँति सच्चा त्याग था।

यह दम्पत्ति आगे चलकर बड़े प्रसिद्ध भक्त हुए प्रभु का दर्शन उन्होंने पाया और मोक्षगामी हुए इस भक्त का नाम था 'राँका-बाँका'।

लोकमंगल हेतु सर्वस्व अर्पण

उस आरण्यक के अन्यान्य ऋषि अपनी व्यक्तिगत साधना में लगे रहते थे। स्वर्ग-मुक्ति उनका लक्ष्य था। पर विश्वामित्र के मन में तो जन-कल्याण ही भरा हुआ था। वे अपने को भूल चुके थे। त्याग मात्र सांसारिक सुखों का ही नहीं किया था वरन् आत्मिक उत्कर्ष की बात भी उन्हें जँची नहीं। उन्हें परमार्थ ही सर्वश्रेष्ठ परमार्थ प्रयोजन जँचा। किसी रास्ता चलते की सामयिके सहायता कर देने में भी उन्हें सन्तोष नहीं था। आकांक्षा व्यापक थी और प्रबल भी। वे वातावरण को बदलना चाहते थे। पुराने अनुचित प्रचलनों को समाप्त करके वे नया युग लाना चाहते थे।

उनकी यह योजना बनी तो, पर साधनों के अभाव में चल न सकी। बड़े कार्यों के लिए बड़े साधन भी चाहिए और सहयोग भी। पर उन दिनों विश्वामित्र के पास दोनों का ही अभाव था। यों तप-बल की विपुलता और योजना की समग्रता में कमी नहीं थी, पर सांसारिक प्रयोजनों के लिए साधन और सहयोग भी तो चाहिए।

विश्वामित्र की योजना और उसकी उपयोगिता के सम्बन्ध में चर्चा फैली। फैलते-फैलते वह राजा हरिश्चन्द्र के कानों तक पहुँची। वे भी ऐसे ही महान् कार्य में अपना जीवन लगाने को उत्सुक थे। सोचा एकाकी ऋषि भी कुछ कर नहीं पा रहे हैं। फिर मैं कैसे कर पाऊँगा ? साधन और संयोजन का सुयोग बैठने पर ही वह योजना पूरी हो सकनी सम्भव है, जो ऋषि ने बना रखी है। मेरे पास साधन भर हैं, जिनका उनके पास अभाव है। हम लोग मिल-जुलकर काम क्यों न करें ?

दो धाराएँ एक साथ मिलीं और गंगा यमुना का सम्मिलन एक नया सुयोग बनकर विकसित हुआ। दोनों ने एक-दूसरे के साथ गठबन्धन किया और दो पहियों की गाड़ी अपने रास्ते पर चल पड़ी। अँधे-पंगे द्वारा मिलकर नदी पार कर लेने की उक्ति चरितार्थ होने लगी।

हरिश्चन्द्र ने अपना राज्य ऋषि विश्वामित्र को सौंप दिया। ऋषि की विशाल युग निर्माण योजना गति पकड़ने लगी और सफलता के निकट तक जा पहुँची। किन्तु अन्तिम दिनों में साधनों की और अधिक आवश्यकता पड़ गई। जगह-जगह माँगने जाने में विलम्ब लगता था। एक व्यक्ति से साधन मिल पाते तो अधिक सुगमता रहती। विचार हरिश्चन्द्र तक पहुँचे। वे राज्यकोष तो पहले ही ऋषि को सौंप चुके थे। अब उनके पास अपना शरीर ही शेष था। सोचा उसे ही एकमुश्त बेचकर ऋषि की आवश्यकता पूरी क्यों न की जाय ? अवसर न चूकने की बात राजा के मन में आई और शरीर बेचने की योजना ऋषि को बताई। इतना त्याग करने की साहसिकता देखकर ऋषि की छाती गर्व से फूल उठी। उनके जीवन-दान की बात जब प्रकट हुई तो उनकी स्त्री तथा बच्चे ने भी उसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साहसिकता का परिचय दिया वे भी बिकने को तैयार हो गए।

हरिश्चन्द्र एक श्मशान व्यवस्थापक के हाथों बिक गए। स्त्री तथा बच्चे को एक ब्राह्मण ने खरीद लिया। मिली राशि के आधार पर ऋषि का रुका हुआ प्रयोजन फिर से चल पड़ा।

उदारता अपनाना कठिन है, पर उससे भी अधिक कठिन है—लोभ और मोह पर विजय प्राप्त करना वैसा अवसर भी हरश्चिन्द्र के सामने आया और उसमें वे खरे सिद्ध हुए।

हरिश्चन्द्र के इकलौते पुत्र रोहिताश को सर्प ने डस लिया। रोहित की मृत्यु हो गयी। रानी लाश लेकर मरघट पहुँची। गंगा का यह वही घाट था जिस पर हरिश्चन्द्र पहरा देने के लिए नियुक्त थे। राजा को पुत्र मृत्यु का दुःख तो बहुत हुआ, पर वे कर्त्तव्य से बँधे थे। बिना कर लिए अन्त्येष्टि उस स्थान पर नहीं होने दे सकते थे। पत्नी और पुत्र के प्रति उनका लंगाव तो बहुत था, पर कर्त्तव्य की अवहेलना कैसे की जाय ? लाश जलाने की व्यवस्था न बन पड़ी। उनकी पत्नी शैव्या का रुदन एवं हरिश्चन्द्र की कर्त्तव्यनिष्ठा देखकर विश्वामित्र वहाँ प्रकट हुए और अपना प्रयोजन पूरा हुआ बताकर राज्य भी लौटा दिया, पुत्र के प्राण भी।

परमार्थ प्रयोजनों के लिए उदारता और कर्त्तव्यनिष्ठा की दुहरी परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर हरिश्चन्द्र महामानवों की श्रेणी में गिने गए। उनकी कथा-गाथा अभी भी गायी जाती है। उनके जीवन-प्रसंग को सुनकर गाँधी जैसे महामानव उत्पन्न हुए और होते रहेंगे।

शतमन्यु का बलिदान

विद्वज्जनों तथा तपस्वी मुनियों से भरी सभा में मंच पर खड़े हुए, भव्य व्यक्तित्व ऋषि की घन गर्जना-सी वाणी वायुमण्डल में गूँज उठी। "मैं मानता हूँ कि आपके पास इस समय साधनों का अभाव है और आप इन्द्रदेव को प्रसन्न करने के लिए बड़े यज्ञ नहीं कर सकते, लेकिन हर कठिनाई से निकलने की राह एक ऐसा यज्ञ भी है, जो सीमित साधनों द्वारा भी पूरा किया जा सकता है और वह है नरमेध यज्ञ। है कोई आप लोगों में से ऐसा वीर साहसी, जो अपने प्राणों की आहुति देकर देश को इस मरणांतक विभीषिका से बचा सके।"

अति प्राचीनकाल की बात है। उत्तराखण्ड में पड़ रहे भीषण अकाल के समय—उसके निराकरण के हेतु यह सभा बुलाई गई और उसके सभी अंचलों के प्रतिनिधिगण पधारे हुए थे। अकाल की स्थिति को कैसे हटाया जाय ? इसी विषय पर वाद-विवाद चल रहा था। अनेकों सुझावों के बीच अन्त में सब इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि वृष्टि के अधिदेव इन्द्र की प्रसन्नता के लिए यज्ञ का आयोजन करना चाहिए। लेकिन निरन्तर १२ वर्षों से पड़ रहे अकाल के कारण जनता आर्थिक दृष्टि से इतनी दीन-हीन हो चुकी थी कि कोई बड़ा यज्ञ करना एकदम असम्भव था और निरन्तर की कठिनाइयों के कारण ही शायद मनोबल भी गिर गया था लोगों का।

शायद तभी, ऋषि प्रवर के इस आह्वान के बाद भी सभा में सब ऐसे शान्त थे जैसे किसी मृतक के पास बैठी भीड़ नीरव रहती है। उन महात्मा को इस नीरवता से बड़ा क्षोभ हुआ और दुःखित स्वर में वे अपनी निराशा घोलते हुए बोले "ठीक है—आज भूख और प्यास से तड़पते लाखों लोगों के लिए—एक मनुष्य के प्राणों की आवश्यकता—स्वेच्छा से पूर्ण नहीं हो सकती, तो जाइये आप सब भी उन्हीं की तरह क्षुधा तथा तृषा की अग्नि में जल-जल कर अपने प्राण गँवा दीजिए।"

तभी सभा भवन के एक कोने से एक कोमल किन्तु तीक्ष्ण आवाज आई। "ऐसा न कहें तात्, धरती माता के पुत्रों की रक्तवाहिनी नलिकाओं में रक्त ही बह रहा है। पानी नहीं हो गया वह। मैं बलिदान के लिए सहर्ष प्रस्तुत हूँ। मेरा यह परम सौभाग्य ही होगा कि मेरा यह नश्वर शरीर किसी लोकोपकारी प्रयोजन में काम आ जाय।"

इस आकस्मिक घोषणा में उपस्थित जनसमुदाय की चुप्पी जैसे स्तब्धता के सागर में जा डूबी किन्तु सभी के मुख पर आश्चर्यमिश्रित आनन्द की रेखाएँ उभरने लगी थीं और रक्त का प्रवाह कुछ तीव्र हो गया था।

ऋषिवर ने समक्ष खड़े बालक से पूछा—"वत्स ! कौन हो तुम ? अभी तुम्हारी आयु बहुत कम है किन्तु साहस तुम्हारा अजेय, दुर्गम, पर्वत से भी अधिक दृढ़ लगता है।"

बालक ने विनीत स्वर में बोला—"पूज्यवर ! मैं अपने माता-पिता की इकलौती सन्तान हूँ। मुझे शतमन्यु कहते हैं। मेरे माता-पिता बहुत ही उदार तथा सद्विचार वाले हैं। वे मुझे इस पुण्य कार्य से रोकेंगे नहीं। आप सहर्ष यज्ञ कार्य आरम्भ कीजिए और मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं उनसे स्वीकृति ले लूँ तथा उन्हें भी यहाँ बुला लाऊँ।"

बालक चला गया। इधर उपस्थित मण्डली में नाना प्रकार के तर्क-वितर्क, प्रशंसा तथा आत्म-ग्लानि के बादल मँडराने लगे। उस किशोर का वह अद्भुत साहस देखकर सब यह सोच रहे थे कि "हमने ही क्यों नहीं पहले अपने आपको प्रस्तुत कर दिया ?"

बालक ने अपने माता-पिता के सम्मुख अपना मन्तव्य प्रकट किया। भले ही मनुष्य ज्ञानी-ध्यानी हो पुत्र प्रेम आखिर पुत्र प्रेम ही होता है। उसकी बात सुनकर दोनों ही कुछ देर के लिए विचलित हो गए और कहा कि यह क्या कर डाला तूने लाल ! हमारी एकमात्र सन्तान और वह भी सदा के लिए हमारी दृष्टि से ओझल हो जाय ? नहीं ऐसा मत करो पुत्र !

किन्तु उस बालक का अपराजेय व्यक्तित्व न जाने किस धातु का बना था। उसने उन दोनों को प्रबोध दिया "पूज्य तात ! आपने ही तो मुझे बताया है कि इस नश्वर शरीर का लोक-कल्याण के लिए प्रयुक्त हो जाना बड़े सौभाग्य की बात होती है। यह आत्मा तो नित्य एवं अनश्वर है। उसका तो क्षय कभी नहीं होता। फिर वियोग का दुःख कैसा ? और माँ ! तुम ही तो मुझे से कहा करती थीं कि जननी से अधिक महत्व जन्म-भूमि का है। आज अपनी जन्म-भूमि के अधिकांश लोग बड़े संकट में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं—मुझ जैसे लाखों बच्चे भूख और प्यास से तड़प-तड़प कर प्राण गँवा रहे हैं। यदि मैं अकेला मरकर सैकड़ों माताओं-पिताओं की गोद सूनी होने से बचा सकता हूँ—तो तुम्हें तो प्रसन्न ही होना चाहिए माँ !"

पुत्र के इस कथन से माता-पिता का क्षणिक मोह का पर्दा हट गया। वे यज्ञस्थल की ओर चल पड़े। वहाँ सब तैयारी की जा चुकी थी। इन्हीं की प्रतीक्षा हो रही थी ! इनके पहुँचते ही वातावरण में एक हलचल-सी व्याप्त हो गई। कार्य आरम्भ हुआ। जब बलि देने का अवसर आया तो शतमन्यु सिंह शावक की तरह भाला ऊँचा किये बलिवेदी पर जा खड़ा हुआ। यज्ञाचार्य ने सबसे अभिवादन करने की आज्ञा दी। अन्तिम अभिवादन !

लाखों नर-नारियों की आँखों से अश्रुपात हो रहा था। सब शीश झुकाये खड़े थे। आवेश में कई युवक आगे आए कि हम भी अपनी बलि देंगे। लेकिन विधान के अनुसार एक ही बलि देनी थी। अतः सबको मना कर दिया गया। यह शतमन्यु के साहस तथा वीर भावना की ही प्रतिक्रिया थी। उसने सबको प्रणाम करने के पश्चात् कहा—"यह मेरा परम सौभाग्य है कि मानवता की यह तुच्छ-सी सेवा करने का यह अवसर मुझे प्राप्त हुआ ! आप सबका आशीर्वाद मैं इसी रूप में चाहूँगा कि ईश्वर मुझे बार-बार मानव शरीर दे और मैं उतनी ही बार अपनी प्यारी मातृभूमि तथा देशवासियों के काम आता रहूँ।"

इतना कहकर वह बलि के लिए प्रस्तुत हुआ, पर ज्यों ही पुरोहित ने अपने हाथ में खडग लिया कि आकाश मण्डल का वातावरण ही बदल गया।

कहते हैं कि देवलोक से सभी देवताओं के विमान आकर वहाँ मँडराने लगे। देवांगनाओं ने पारिजात पुष्पों की वर्षा की और स्वयं इन्द्रदेव वहाँ सदेह उपस्थित हुए और बोले कि "प्रिय शतमन्यु ! मैं तुम्हारी त्याग वृत्ति तथा उत्सर्ग भावना से इतना अधिक प्रसन्न हूँ कि अब तुम्हारी बलि चढ़ाने की आवश्यकता नहीं रही। यहाँ के लोग आलस्य, असंयम, स्वार्थ तथा अनैतिकता में इतने डूब गये थे कि उन्हें सचेत करने को दण्ड के सिवा और कोई मार्ग न रह गया था, लेकिन जहाँ तुम जैसे परमार्थी बालक उत्पन्न हो जायें, वहाँ अकाल तो क्या, कोई भी दैवी आपदा टिक नहीं सकती। धन्य हो तुम और तुम्हारे माता-पिता जिन्होंने तुम्हारा निर्माण करके तुम्हें लोकहित के लिए सौंप दिया। मैं अभी मेघों को आदेश देता हूँ वे वृष्टि प्रारम्भ करें और यहाँ का संकट समाप्त हो।"

इतना कहकर वे अपने लोक को चले गये। चारों ओर से शतमन्यु को इतने साधुवाद, शुभकामनाएँ तथा आशीर्वाद मिले कि उसके नेत्रों से कृतज्ञता भरे अश्रु झलकने लगे। उसके माता-पिता के सुख का तो ठिकाना ही न था।

यह सत्य ही है कि त्याग की बगिया में ही प्रशंसा के पुण्य खिलते हैं। उत्सर्ग की आँच में ही व्यक्तित्व का कंचन कुन्दन बनकर निखरता है और कठिनाइयों की खराद पर बार-बार चढ़ाए जाने पर ही आत्मा का हीरा और अधिक दमकता है।

त्याग और प्रेम का महत्व

एक राजा अपने मन्त्री पर पूर्ण विश्वास रखता था, परन्तु वह मन्त्री ऐसा विश्वासघाती था कि राजा के प्रति अपने धर्म को छोड़कर दूसरे लोगों से मिल जाता और राजा की आँखों में धूल झोंककर अन्य लोगों से धन ले आता और मौज करता। अपने धर्म-कर्म का उसे ध्यान न रहा और स्वार्थ-लिप्सा में फँस गया।

राजा को कुछ सन्देह हुआ तो उसने मन्त्री से पूछा कि तुम्हें राज्य दरबार से जितने रुपये मिलते हैं, उससे अधिक खर्च किस प्रकार करते हो ? तो वह कह देता मेरे रिश्तेदारों के यहाँ कुछ भेंट पूजा प्राप्त हो जाती है। उस समय राजा चुप हो गया पर वास्तविकता का पता लगाने का प्रयत्न करता रहा। जब उसने यह विश्वास कर लिया कि मन्त्री अपने स्वामी के साथ विश्वासघात करके अनीति पूर्वक धन प्राप्त करता है, तो उसे बड़ा दुःख हुआ।

मन्त्री का सुधार करने की इच्छा से राजा ने कुछ दण्ड दिया, परन्तु वह मूर्ख भला कब मानने वाला था। उसने दण्ड से सुधरने की बजाय बदला लेने का निश्चय किया और तरह-तरह से राजा को बदनाम करने लगा। मन्त्री सोचता था कि मेरे दूषित कर्मों का भंडाफोड़ होगा तो मुझे दण्ड मिलेगा, इसलिये क्यों नहीं राजा से पहले ही बदला ले लूँ और इसे सब लोगों की निगाह में गिराकर अशक्त कर दूँ।

परिस्थिति बड़ी विषम हो गई। राजा की इच्छा मन्त्री को सुधारने की थी, वह नहीं चाहता था कि यह दुःख भोगे, दर-दर मारा फिरे। वह चाहता था कि यह अब भी सुधर जाय और अपने गौरव को पूर्ववत् बनाये रहे। किन्तु मन्त्री तो विषधर सर्प की तरह उलटी ही चाल चल रहा था। दोनों के मन, दिन-दिन अधिक फटते जाते थे। अशान्ति और कलह का वेग प्रचण्ड होता जा रहा था। एक बना हुआ राज्य शासन नष्ट होने के लिए चौराहे पर आ खड़ा था। राजा और मन्त्री की पूर्व घनिष्टता इतनी अधिक थी कि एक के अलग हो जाने पर राज्य की सुन्दर वाटिका बिल्कुल ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाती।

राजगुरु को पता चला कि मेरा शिष्य अमुक राजा का राज्य गृह-कलह के कारण नष्ट होना चाहता है। उन्होंने योग-दृष्टि से सारी घटना का सूक्ष्म निरीक्षण किया और प्रण किया कि इस भयंकर बरबादी को रोकूँगा। गुरु समझते थे कि झगड़ा दोनों की भूल से होता है, यदि एक पक्ष को भी सुधार दिया जाय, तो कलह उसी दिन समाप्त हो सकती है। एक हाथ से ताली कहीं भी बजती नहीं देखी गई।

गुरुजी राजा के पास पहुँचे। वे जानते थे कि अपराध मन्त्री का है और राजा निर्दोष है, फिर भी उन्हें शास्त्रज्ञान से यह अनुभव था कि बुद्धिमान को ही झुकाया जा सकता है। उन्होंने राजा को समझाया कि दण्ड देने की नीति बाहर के नौकर-चाकरों पर चलनी चाहिए। मन्त्री से कलह होने में हर प्रकार आपकी ही हानि है। यदि इस राज्यव्यवस्था को सुरक्षित रखना है, तो आपको ही अधिक त्याग करना पड़ेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

राजा बड़ा सुशील और साधुवृत्ति का था। उसने गुरु की आज्ञा मानकर अधिकाधिक त्याग का आदर्श स्वीकार कर लिया। उसने राज्य का सारा भार मन्त्री को सौंप दिया, अपना सारा विरोध छोड़ दिया, उसके दुष्ट आचरणों पर दृष्टि रखना छोड़ दिया, यहाँ तक कि मन में से घृणा और विरोध के भाव भी निकाल दिये। राजा ने सोच लिया कि हर प्राणी अपने कर्म का स्वतन्त्र रूप से जिम्मेदार है, मन्त्री कुकर्म करता है तो मैं क्यों अपना जी जलाऊँ ? राजा पहले ही बड़ा नम्र था, इन त्याग भावनाओं के स्वीकार करते ही वह और भी अधिक नम्र बन गया। पहले उसे मोह था, अब प्रेम को सीख लिया। प्रेम की अमृतमयी गंगा उसके मन, कर्म और वचन में से कल-कल करती हुई झरने लगी।

निःस्वार्थ प्रेम में बड़ी ही गजब की आकर्षण शक्ति है। मन्त्री इस दिव्य तेज के आगे ठहर न सका और पिघलकर पानी-पानी हो गया। दूसरे नौकर-चाकर जो अपनी घात लगाया करते थे, अपना दुःस्वभाव भूल गये। मन्त्री की दुष्टवृत्तियाँ मरी नहीं थीं, पर एक ओर से लड़ाई भी नहीं हो सकती। सारा मामला शान्त हो गया। नष्ट होने वाला राज्य बच गया और उजड़ने वाली फुलवारी ज्यों की त्यों रह गई।

गुरुजी प्रसन्नतापूर्वक विदा हो रहे थे। विदाई के समय बहुत भीड़ उनके साथ थी। लोगों ने पूछा—"महाराज ऐसे ही कलह जब हमारे घरों में हों तो हमें क्या करना चाहिए ?" गुरुजी ने सबको उपदेश दिया कि—"पुत्रो ! त्याग और प्रेम का महत्व समझो। इन दो तत्वों के अन्दर बड़ी से बड़ी कठिनाइयों को जरा-सी देर में हल करने की अद्‌भुत शक्ति भरी हुई है।"

'अमृत फल' घर में ही होता है

किसी मनुष्य को पता चला कि दुनिया में एक अमृत फल है, जिसे मिल जाता है वह तन्दुरुस्त और खुश हो जाता है, ज्यादा उम्र पाता है, अतः उसे अमृत फल पाने का शौक हुआ। आदमी सीधा-साधा परन्तु धुन का पक्का था, लोगों से पूछता, क्यों भाई ऐसा फल कहाँ होता होगा, अगर मिले तो मैं भी उसे खाऊँ और बहुत दिन जीऊँ। कोई कुछ कहता और कोई कुछ कहता, जितनी मुँह उतनी बात, किसी ने साफ नहीं बताया।

लगन बुरी होती है, उसे अमृतफल की लगन लग गई और घर से उसी की तलाश में निकल पड़ा, कोई राजा के बाग में देखने को कहता तो वह राजा-महाराजाओं के बगीचों को ढूँढ़ता फिरता। कभी जंगल पहाड़ खोजता। कोई सुनकर पागल कहता, कोई हँस पड़ता, कोई सोचने लगता कि भगवान की सृष्टि में सब कुछ मुमकिन है। लोगों के ऐसे उत्तरों से वह परेशान हो जाता परन्तु हिम्मत न हारी।

खोजने वाला ही पाता है। खोजते-खोजते आखिर उसे एक बुजुर्ग बुड्ढा आदमी मिला। "गर्ज वाला बाबला" उससे पूछ बैठा—बाबा आपको मालूम है कि अमृतफल किसके यहाँ है ? बूढ़े की कमर झुकी थी बाल बर्फ की तरह सफेद थे, बदन में झुर्रियाँ पड़ गई थीं। उसने हँसकर कहा कि अमृतफल तो मेरे ही खानदान में है, मुझे तो नहीं मिला परन्तु मेरा बड़ा भाई इसका मालिक है। यह सुनकर वह बहुत खुश हुआ और पता पूछकर बड़े भाई के घर पहुँचा। यह भी बूढ़ा था और आँखें धँसी व झुर्रियाँ पड़ी थीं परन्तु छोटे भाई से कुछ अच्छा था। बाल अधपके थे। सवाल करने पर वह भी मुस्कराया और कहा कि हाँ अमृतफल मेरे ही खानदान में है, जरूर लेकिन मैं बदनसीब हूँ मेरे हाथ नहीं लगा वह सिर्फ मेरे बड़े भाई को मिला है।

उसे चैन कहाँ ? खोजता-खोजता उसके बड़े भाई के पास पहुँचा। वह दोनों से तगड़ा लेकिन आँखों पर ऐनक लगा रक्खी थी, उससे सवाल करने पर बूढ़े ने ऐनक से देखकर वही उत्तर दिया कि मेरा बड़ा भाई अमृतफल का मालिक है। उसकी हैरत बढ़ती ही जाती थी कि सभी अपने बड़े भाई के पास बताते हैं परन्तु उम्र में सभी एक से एक कम मालूम होते जाते हैं। खैर, वह फौरन चल पड़ा और कुछ देर बाद पते पर जा पहुँचा। वहाँ एक मनुष्य मिला जो बिल्कुल नौजवान था। सिर के बाल भँवरे की तरह काले थे। रोशन आँखें, सिर से पाँव तक सुडौल, कहीं झुर्री का नाम नहीं, यह दरवाजे के अन्दर तख्त पर बैठा हुक्का पी रहा था, इसे मेहमान समझकर उठा। यथोचित स्वागत सत्कार किया और बातें होने लगीं।

मुसाफिर ने पूछा क्या आपके पास अमृत फल है ? बड़े भाई ने हँसते हुए जवाब दिया कि है तो जरूर। मुसाफिर ने कहा—"मैं इसी के पाने की इच्छा से हजारों मील से ठोकर खाता तलाश करता यहाँ पहुँचा हूँ।" बड़े भाई ने उत्तर दिया कि यह किसी-किसी बड़े अच्छे भाग्य वाले को ही मिलता है, सबको नहीं मिलता, परन्तु आप उसे देख सकते हैं दिखाने में तो कोई हर्ज नहीं। मुसाफिर ने कहा कि अच्छा, कम से कम देख तो लूँ। बड़े भाई ने कहा इतनी जल्दी क्या है इतने लम्बे सफर से आप आ रहे हैं, जरा आराम करें थकावट दूर होते ही आप बखुशी देखें।

मुसाफिर उसके घर मेहमान हो गया, बड़े भाई ने आवाज दी कि मुन्नू की माँ जरा इधर तो आना, एक खूबसूरत जवान स्त्री इस आवाज के साथ ही हाजिर हुई और हाथ बाँधकर हुक्म के इन्तजार में अदब के साथ खड़ी हो गई। बड़े भाई ने कहा—"मुन्नू की माँ आज खुश-किस्मती से तुम्हारे घर मेहमान आया है, स्नान के लिए गरम पानी दे दो और अच्छे से अच्छा खाना बनाओ।" स्त्री ने जबान तक नहीं खोली और घर में चली गई मिनटों में ही सब काम खत्म कर लिया, नहाने के कपड़े बगैरह का स्त्री ने खुद ही इन्तजाम कर दिया। बड़े भाई के साथ मुसाफिर चौके में खाना खाने बैठा तो निहायत साफ-सुथरा खाना, सुन्दर स्वादिष्ट भोजन ठीक से थाल में सजाकर सामने रख दिया। मेहमान बहुत खुश हुआ और बार-बार मेहमान नवाजी का शुक्रिया अदा करता रहा, बड़ा भाई मुस्कराता ही रहा। मुन्नी की माँ ने हाथ धुलाए और दोनों बैठक में चले गए। इसके बाद मुसाफिर ने अलग पलंग पर आराम किया। इसी प्रकार कई हफ्ते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org

www.vicharkrantibooks.org

खत्म हो गए। मुसाफिर रोज सोचता कि अभी तक बड़े भाई ने अमृत फल नहीं दिखाया। वह जाने की भी सोचता परन्तु इन लोगों की खातिरदारी की खुशी को देखकर जाने के वास्ते कहने की हिम्मत ही न पड़ती।

एक दिन मुसाफिर ने कहा—"आपने मुझ पर बड़ी मेहरबानी की, इस तरह कोई अपने घर इतने दिन नहीं रहने देता परन्तु आप लोग खातिरदारी से नहीं उकताते। अब मुझे जाना बहुत आवश्यक है और आपने अमृतफल भी अभी तक नहीं दिखाया, जिसकी ख्वाहिश मुझे यहाँ तक खींच लाई है।"

बड़े भाई ने कहा—"यह आप क्या कह रहे हैं ? आप रोज तो अमृतफल देखते हैं और फिर भी इनकार करते हैं, मैंने तो आपको खूब दिखाया, दिखाने में कोई कसर नहीं रखी आपने न पहचाना तो मैं क्या करूँ ?"

मुसाफिर को यह सुनकर बड़ी हैरत हुई और कहा कि भाई न मैंने देखा और न आपने दिखाया, आखिर आप इस तरह क्यों कहते हैं ?

बड़ा भाई जोर से कहकहा लगाकर हँसा और मुन्नू की माँ को आवाज दी, जरा इधर तो आना, मुसाफिर को अमृतफल दिखाना है।

आवाज के साथ ही स्त्री आ गई। बड़े भाई ने कहा इन्हें अमृतफल दिखाओगी या मैं ही दिखाऊँ, स्त्री शरमा गई और आँचल से मुँह ढाँप लिया।

बड़े भाई ने कहा—"मुसाफिर यह मुन्नू की माँ ही अमृतफल है, जो मेरे हाथ लगी है। यह कई लड़कों की माँ है, ६५ वर्ष की है, मेरी उम्र ८३ वर्ष है परन्तु हम दोनों अब तक जवान हैं, जब से ब्याह कर आई है इसने एक बात भी ऐसी नहीं की जिससे मेरे दिल को ठेस लगे। तमाम जिन्दगी मुझ से कभी अनबन नहीं हुई "यह मेरा अमृतफल है।" यह फल जब से मेरे हाथ लगा मैं निहाल हो गया, इसने मेरा चाल-चलन सुधारा, लड़कों को राह पर लगाया, घर को बैकुण्ठ बना दिया। किसी तरह की तकलीफ नहीं हुई। इसकी बरकत से घर में किसी बात की कमी नहीं, मेरे घर को स्वर्ग का नमूना बना दिया। मैं दरख्त हूँ, यह बेल है, जो मुझसे लिपटी रहती है और यह औलाद खिले हुए फूल हैं। क्यों अब आपने देख लिया ? घर में नौकर-चाकर सब हैं परन्तु मेरी खिदमत यह अकेली ही करती है। किसी नौकर को मेरी खिदमत का हिस्सेदार नहीं बनाती और मैं भी हमेशा इसकी मुहब्बत और खिदमत का दम भरता हूँ। तुमने अब भी अमृतफल देखा या नहीं, यही सच्चा अमृतफल है।

मुसाफिर की आँखें खुल गईं और इत्मीनान जाहिर किया कि—

औरत अगर हो अच्छी तो घर का स्वर्ग-धाम है।
औरत बुरी तो नर्क का फिर घर मुकाम है।।
औरत अगर है अच्छी तो मर्द बादशाह।
हासिल है उसको दौलतोजर और मालोजाह।।
औरत अगर है नेक तो सब कुनब नेक है।
औरत से बढ़ कीमती कोई नहीं है शेष।।

मुसाफिर ने कहा यह सब तो मैंने खूब समझ लिया लेकिन यह क्या बजह है कि आप सबसे बड़े भाई और यह उम्र, आप छोटे भाई जितने ही छोटे हैं उतनी ही ज्यादा उम्र के मालूम पड़ते हैं। भाई ने कहा—"अच्छा चलिए यह राज भी जाहिर हो जायेगा।" बड़ा भाई मुसाफिर को लेकर छोटे भाई के घर आया और अपने भाई से कहा यह बहुत दूर से आए हैं। मेरे घर कई हफ्ते रहे हैं कुछ दिन तुम भी इन्हें ठहरालो और खातिर कर दो। वह अपने घर में गया, स्त्री से कहा कि बड़े भाई के मेहमान भाई के साथ आए हैं और अच्छे-अच्छे खाने दो, दावत करनी है। औरत ने नाराजगी जाहिर की और नाक-भौं चढ़ाकर किसी तरह बनाकर पटक कर चलती हुई। दोनों खाना खाकर उससे छोटे भाई के घर गए और वही बात पेश की, उसकी स्त्री तेजमिजाज थी, बोली—"बड़ा भाई वाला बना है मुसाफिर को घर लाया है, घर में लकड़ी तक नहीं, तुझे चूल्हे में झोंक दूँ या तेरे बड़े भाई को या मुसाफिर को।"

खैर, बहुत कहने-सुनने के बाद खिचड़ी पकाई और दोनों ने जम करके खाई, फिर सबसे छोटे भाई के भी घर गए और वही दरख्वास्त की, औरत हाँडी में चावल पका रही थी सुनते ही आग-बबूला हो गई और गुस्से में वही हाँडी अपने शौहर के सिर पर उठाकर पटक दी। हाँडी टूट गई और उसका मुँह (कड़ा) उसके गले में अटक गया, वह इसी तरह हाँडी की हँसुली पहने चावल से लथपथ चिल्लाता हुआ बाहर आया और रो-रोकर अपनी दर्दनाक कहानी सुनाने लगा। दोनों को उस पर तरस आया और उसकी मलहम-पट्टी की और बड़ा भाई १०-५ रुपये देकर मुसाफिर को साथ वापस लाया और कहा—देखिए मुझे तो अमृतफल मिला है परन्तु मेरे भाइयों को विषफल मिला है। इसी सबब से वे बूढ़े होते जा रहे हैं। मैं उनकी बराबर मदद करता हूँ, लेकिन यह लोग अपनी बीबियों से तंग आ गये हैं और अपनी या अपनी बीबी की मौत की इन्तजारी करते हैं—इतना कहकर मुसाफिर को विदा कर दिया। मुसाफिर खुशी-खुशी अपने घर चला आया। वह अमृतफल देखना चाहता था, उसने अमृतफल देख लिया।

सत्संकल्प की सुखद परिणति

उषा-काल का मनोरम समय था। अरुण देव भगवान भास्कर के रथ का संचालन करते हुए प्राची दिशा से झाँक रहे थे। उनके तेजोमुख की लालिमा से गगन दीप्त था। धरती की गोद में सुरम्य उद्यान में लगे पादपों की कलियाँ जहाँ मन्द-मन्द मुसकरा रही थीं, वहीं पुष्प खिलखिला रहे थे।

उद्यान के एक कोने में मंदार के पुष्प अपने सौन्दर्य के नशे में डूबे, मकरंद के वैभव-विलास के अहं में इतरा रहे थे। वहीं दूसरे कोने में चाँदनी की छोटी पौध भी थी। उस पर लगे नन्हें-नन्हें पुष्प छुई-मुई की तरह मंदार के अहं भाव से घबराए-सकुचाए से थे। मंदार पुष्पों में से एक ने चाँदनी के पुष्प की ओर—उपेक्षा भरी दृष्टि से देखते हुए हँसी उड़ाने वाले भाव से कहा—"अरे ! तुम्हारा भी कोई जीवन है। रुग्ण जैसी दिखाई देने वाली दुर्बल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

काया। रंगविहीन पंखुड़ियाँ। लगता है ! विधाता ने तुम्हारे साथ अन्याय किया है अथवा तुम्हारे किन्हीं पूर्व कर्मों का दण्ड दिया है। जरा मेरी ओर देखो। हृष्ट-पुष्ट कलेवर के साथ रंग-बिरंगी रूप राशि और मकरंद की विपुल सम्पदा भी मुझे मिली है।"

उसकी हेय दृष्टि से सकुचाई-सी चाँदनी चुपचाप सुनती रही, पर मन ही मन उन सबने संकल्प लिया—अपने को संघबद्ध कर चतुर माली को सौंप देने का। गोधूलि बेला में मालाकार आया। चाँदनी के पुष्पों का मूक आमन्त्रण आकर्षित कर उसे उनके पास ले गया। माली ने उन्हें अपनाया और सुन्दर ढंग से एक माला के रूप में पिरो दिया।

सायंकाल उद्यान के सामने बने देव मन्दिर में देव प्रतिमा के गले में माला अर्पित की गई। चाँदनी के पुष्प प्रसन्न थे। उन्हें अपने सत्संकल्प का सुखद परिणाम पाकर सन्तोष था।

चाँदनी पुष्पों के सुखद गौरवपूर्ण स्थान को देखकर मंदार पुष्पों का अहं गल गया। उन्होंने चाँदनी से इस गौरवमयी स्थिति का रहस्य पूछा। चाँदनी ने विनम्रता भरे स्वर में उत्तर दिया—"बन्धुवर ! सहयोग सहकार-स्नेह का सद्भाव तथा अनुशासन ही इसका रहस्य है। हम सबने अपने को मालाकार के अनुशासन में सौंप दिया। हम में किसी प्रकार का अहं न होकर सहयोग और सहकार की प्रवृत्ति थी। न तो विग्रह था, न ही द्वेष। हम सभी एक महान् लक्ष्य को समर्पित थे। इसी के कारण प्रेम के पवित्र सूत्र में आबद्ध होना सहज ही स्वीकार किया। मालाकार जैसे योग्य गुरु ने इन पवित्रताओं के कारण ही हम सभी को यह स्वरूप प्रदान किया, जिसके कारण हम सभी अब प्रभु की मूर्ति के गले में शोभा पा रहे हैं।"

मंदार पुष्पों ने एक जिज्ञासा और की "क्या इसके लिए तुम्हें कुछ त्याग भी करना पड़ा ?" चाँदनी ने कहा—"कुछ अधिक नहीं ! मात्र स्वार्थ की संकीर्ण प्रवृत्ति जिसे मेरे गुरु मालाकार ने सुई से छेद-छेद कर अन्तर मन से निकाल दिया और उसकी जगह दिया प्रेम का सूत्र। बस यही है गौरव प्राप्ति का रहस्य।" अब तो मंदार पुष्पों का अहं पूरी तरह से गल गया। स्वार्थ संकीर्णता को त्याग वह भी पूरी तरह शिष्य भाव से मालाकार के हाथों अर्पित होने की प्रतीक्षा में खड़े थे।

बलिदानी—माँग

माँग वर्मा देश का एक साधारण-सा ग्रामीण व्यक्ति था। उसके त्याग के कारण ही उसका नाम जनता के मस्तिष्क में श्रद्धा और सम्मान का स्थान ले चुका है।

इसकी कथा इस प्रकार है। बर्मा देश के श्वेवू गाँव के पास एक बाँध बनाया गया था। बाँध आस-पास के सभी गाँवों के किसानों ने मिलजुल कर सामूहिक परिश्रम से इस आशा से बनाया था कि वर्षा काल के पश्चात् जब खेती को पानी की आवश्यकता होती है, तब इसी से लिया करेंगे, उन्हें केवल बरसात पर निर्भर नहीं रहना पड़ा करेगा।

सभी ने इस कार्य में पूरे उत्साह के साथ परिश्रम किया। चूँकि इसमें सभी ने पूर्ण उत्साह व परिश्रम से कार्य किया तो थोड़े ही दिनों में बहुत ही सुन्दर और मजबूत बाँध बनकर तैयार हो गया। सभी ने उसे देख कर सन्तोष की साँस ली।

सभी व्यक्ति तथा वस्तुओं के साथ भलाई-बुराई लगी ही रहती है। उनमें कुछ अच्छाइयाँ होती हैं तो कुछ बुराइयाँ भी। बाँध से भी लाभ हैं तो कुछ हानियों की भी आशंका रहती है। एक रात घनघोर वर्षा हुई। वर्षा रुक ही नहीं रही थी। नदी, नाले, पोखर, तालाब सब लबालब भर गये थे। जब नदी में बाढ़ आ गई तो लोगों को चिन्ता होने लगी। नदी से अधिक चिन्ता बाँध के विषय में। भगवान न करे यदि नदी की बाढ़ का जल बाँध में किसी प्रकार प्रवेश कर गया तो पहिले से पूर्णतया भरे हुए बाँध का क्या होगा ? बाँध के पास सभी गाँव हाय ! इनका क्या भाग्य होगा ? भगवान ! तुम्हीं रक्षक हो। सभी इसी प्रकार अपने इष्टों को मना रहे थे।

लोगों के मन की शंका बाहर आई। बाँध के चौकीदार ने आकाश में गोली छोड़कर बाँध के खतरे की सूचना दी। आस-पास के ग्रामों के लोग घबड़ाकर बाँध पर पहुँचे और उसकी साज-संभाल में लग गये। कुछ लोग बाँध पर मिट्टी पत्थर डालकर कमजोरी और नीचाई को ठीक करने लगे और कुछ लोग घूम-घूम कर छेद देखने लगे। माँग दूसरी टोली में था।

घूमकर निरीक्षण करते हुए उसने देखा कि बाँध में एक पतला-सा छेद है, जिसमें से थोड़ा-थोड़ा पानी निकल रहा है। थोड़ी ही देर इसकी देखभाल या सँभाल न की गई, तो पानी के जोर से वह बढ़ता ही जायगा और इतना बड़ा हो जायगा कि बाँध को तोड़ देगा। उस समय इसका बन्द करना कठिन होगा। पहिले तो माँग ने उसे मिट्टी पत्थरों से बन्द करने का प्रयत्न किया किन्तु पानी के बहाव के कारण वे वहाँ ठहरते न थे। उसने अपने कुछ साथियों को आकर उस छेद को बन्द करने में सहायता करने को पुकारा किन्तु लोग बहुत दूर थे उसकी पुकार न सुन सके। एक आदमी क्या करे, बहाव रोके या मिट्टी पत्थर लाकर डाले। दोनों काम एक साथ न हो सकते थे। कुछ चारा न देख माँग स्वयं अपना शरीर लगाकर छेद को बन्द करके खड़ा हो गया।

ऊपर से घोर वर्षा हो रही थी, नीचे भी सर्वत्र पानी ही पानी था। शीतल वायु चल रही थी। ठण्ड के कारण शरीर ठिठुर रहा था, किन्तु माँग जल में छेद बन्द किए, शरीर अड़ाये खड़ा था। आखिर कहाँ तक सहन करे। शरीर अकड़ने लगा, जोड़ों में दर्द होने लगा। एक ओर शरीर की पीड़ा दूसरी ओर पानी का जोर। बेचारा मूर्च्छित हो गया फिर भी वह छेद बन्द किये, अड़ा हुआ था।

बहुत देर हो गई थी। सब लोग अपने-अपने कार्य के परिश्रम से थककर चूर हो गये। बाँध की बहुत कुछ संभाल हो जाने से कुछ भय कम हो गया तो लोगों को माँग का ध्यान आया। माँग कहाँ है ? वह तो निरीक्षण वाली टोली में था, अभी तक उसने आकर कोई सूचना नहीं दी ? कुछ व्यक्ति उस ओर निरीक्षण को निकल पड़े जिस ओर माँग को भेजा गया था। एक जगह उन्होंने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पानी निकलने के स्थान पर कुछ लम्बा-लम्बा पड़ा दिखाई दिया। पास जाकर देखा तो माँग अचेतन अवस्था में पड़ा था।

उन्होंने पुकारा—माँग ! माँग !! किन्तु वह तो बेहोश था, उत्तर कौन दे ? शीघ्र ही लोगों ने उसको वहाँ से हटाकर ऊपर सूखी जगह पर रखा। पर ज्योंही उसे हटाया छेद से पानी फिर उसी वेग से जाने लगा। कई व्यक्तियों के प्रयत्न करने पर भी वह छेद बड़ी मुश्किल से बन्द हुआ। माँग की बेहोशी का कारण समझते उन लोगों को देर नहीं लगी। उसे शीघ्र ही उठा कर ले जाया गया। चिकित्सा का बहुत कुछ प्रयत्न किया गया किन्तु उसे शीत ने बुरी तरह प्रभावित कर दिया था। वह डबल न्यूमोनिया में ग्रसित हो गया था। गाँव के लोग उसकी रक्षा न कर सके। बीमारी की अवस्था में चेत आने पर वह कभी बड़बड़ा उठता था। "स्वार्थ या परमार्थ ? अपनी जान बचाने से सबके लिए यदि इसका उत्सर्ग हो जाय तो उत्तम है। यह जीवन इसी में धन्य है। सबकी भलाई में ही अपनी भलाई है और सब के दुःख में अपना दुःख समझना ही मनुष्यता है, यह सभी महापुरुषों का कहना है इसलिए मैं इस अनिष्ट को न होने दूँगा, चाहे जान भले ही चली जाय।"

अब जब कभी घनघोर वर्षा का आक्रमण होता या लोग बाँध के कारण मिलने वाले आराम की चर्चा करते तो माँग का नाम उसमें अवश्य आता है। लोग उसके बलिदान की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए पास में बैठे बच्चे को ऐसे ही बनने की प्रेरणा देते हैं।

मृत्यु कष्ट में भी स्वर्ग सुख की कल्पना

मध्यकाल में सामन्तों की क्रूरता का जनता प्रतिरोध नहीं कर सकती थी, पर कम से कम पीठ पीछे निन्दा तो करती ही थी। इन समाचारों से खिन्नता होने का उपचार उन्होंने ऐसे दरबारियों से किया जो उनकी प्रशंसा ही किया करें। इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए एक विशेष वर्ग ही बन गया, वे चारण कहे जाते थे और अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में कविताएँ बनाया करते थे। उन्हें दरबार में सुनाया जाता था और पुरस्कार मिलता था।

उन्हीं दिनों एक सच्चे कवि गंग भी थे। वे कविता तो करते थे किन्तु मिथ्या प्रशंसा से उन्हें चिढ़ थी।

एक बार बादशाह अकबर ने कवियों का सम्मेलन बुलाया और समस्या पूर्ति रखी 'अकबर' की । इस पर अन्य कावेयों ने अकबर की प्रशंसा के पुल बाँधने वाली कविताएँ बनाईं और पुरस्कार पाया। कवि गंग निमन्त्रण की अवज्ञा न करके उस सम्मेलन में गये तो, पर मिथ्या प्रशंसा करने को तैयार न हुए।

बादशाह ने गंग से कहा—"आपको भी समस्या पूर्ति करनी पड़ेगी।" उन्होंने कहा—"मुझसे मिथ्या प्रशंसा की आशा न करें। जो यथार्थता है वही कहूँगा। भले ही आप रुष्ट हो जायें।"

कवि गंग ने कविता बनाई और सुनाई उसमें अकबर तथा उसके पूर्वजों द्वारा किये गये अत्याचारों का वर्णन था। ऐसी हिम्मत और किसी की नहीं पड़ी थी। भरे दरबार में अपनी निन्दा इस प्रकार सुनकर अकबर आग-बबूला हो गया।

उन्हें हाथी के पैर के नीचे कुचलवा देने का प्राण दण्ड दिया गया।

कवि गंग को ऐसी ही संभावना का भान भी था। इस मृत्यु दण्ड को कार्यान्वित होते हुए देखने के लिए अनेक लोग एकत्रित हुए। बादशाह स्वयं भी यह देखने आये कि कवि बड़ा निर्भीक बनता था। देखें मृत्यु के समय वह निर्भीकता रहती है या नहीं।

कवि गंग ने मृत्यु से पूर्व एक कविता बनाई और सभी उपस्थितजनों को सुनाई। प्रशिक्षित हाथी अपना काम करने के लिए तैयार खड़ा था।

इस कविता में एक बड़ी सुन्दर कल्पना थी, कहा गया था कि स्वर्ग लोक में देवताओं ने एक कवि सम्मेलन बुलाया। सब उपस्थित हुए और अपनी बनाई कविता सुनाते गये, पर कवि गंग उनके दरबार में बिना बुलाये न गये। उन्हें अपने स्वाभिमान का बोध था।

तब देवताओं ने सोचा स्वाभिमानी गंग को बुलाने और अपनी पीठपर बिठाकर स्वर्ग ले आने के लिए किसी बुद्धिमान देवता को भेजना चाहिए। इसके लिए उपयुक्त गणेशजी ही हो सकते हैं। उन्हें कवि को बुलाने और अपनी पीठ पर बिठाकर लाने के लिए हाथी रूपी गणेश जी को भेजा। वे ही मेरे सामने सुरपुर ले जाने के लिए खड़े हैं। कविता की अन्तिम पंक्ति थी—"कवि गंग को लेन गणेश पठायो।"

कवि को हाथी ने पैर से कुचल दिया, पर वे मरते समय तक अपनी कल्पना में मस्त थे। मृत्यु को उन्होंने स्वर्ग का निमन्त्रण और उनके स्वाभिमान की रक्षा करने वाला आह्वान ही माना।

बादशाह सहित सभी दर्शक आश्चर्यचकित रह गये कि मृत्यु जैसे दारुण कष्ट को भी, भावनाशील मनुष्य किस प्रकार सुख स्वप्न मे परिणत कर सकते हैं ?

शिक्षा-संस्कृति जनता की धरोहर

"प्रजा महर्षि यज्ञदीति को सबसे अधिक सम्मान देती है, यहाँ तक ठीक है महाराज। शिक्षक ही समाज का निर्माण करता है, इसलिए वह सबसे अधिक आदर-सत्कार पाने लायक है किन्तु आचार्यगण राजकीय व्यवस्था की आलोचना करें यह सह्य नहीं। महाराज ! शिक्षा राजनीति का आश्रित अंग है, राजनीति शिक्षा की आश्रित नहीं। शिक्षकों को राजतन्त्र की आलोचना करने या मार्गदर्शन का कोई अधिकार नहीं।" महामन्त्री आंत्रेष्टक आवेश में बोले चले जा रहे थे।

महाराज भद्रबाहु ने रोकर पूछा—"तुम्हारा आशय क्या है महामात्य, वह कहो—क्या तुम यह चाहते हो कि आचार्य यज्ञदीति के गुरुकुल में अध्यापन करने वाले आचार्यगणों को दण्डित किया जाय ?"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं महाराज !' आंत्रेष्टक ने छलबाज जुआरी की तरह विश्वस्त दाँव फेंकते हुए कहा—"मेरी ऐसी कुछ इच्छा नहीं, पर यदि प्रजा ने राज्य के प्रति विद्रोह कर दिया तो ? कैसे भी हो आचार्यों को राजनीति का आश्रित होना ही चाहिए। मेरा तो यह सुझाव भर है कि समस्त गुरुकुलों को दी जाने वाली सहायता समाप्त कर दी जाये। जब भूख सताएगी तो ये आचार्य अपने आप सीधे हो जाएँगे।"

सम्राट भद्रबाहु के माथे की लकीरें गहरी हो गईं, वे कुछ चिन्तित स्वर में बोले—"यह मत भूलो महामन्त्री तुम्हारी योग्यता भी इन गुरुकुलों की ही देन है। यदि उनके साधन समाप्त कर दिए तो आज देश में जो प्रतिभाएँ हैं, प्रज्ञा है, तेजस्विता है, ज्ञान और विज्ञान है, वह नष्ट हो जाएगा।"

"राज्य को अराजकता से बचाने और आपके सम्मान को सुरक्षित रखने के लिए यदि प्रतिभाओं के स्रोत बन्द करने पड़ें तो क्या बुरा है ?" महामन्त्री की यह कूटनीति काम कर गई। दाँव ठिकाने पर लगा। भद्रबाहु ने घोषणा करा दी—"अब आगे किसी भी गुरुकुल को राजकीय सहायता नहीं मिलेगी। अब तक दी गई सारी गाएँ, अन्न और वस्त्र छीनकर अविलम्ब लौटा लिए जाएँ।"

देखते-ही-देखते आश्रमों के सारे साधन छिन गए। स्थिति गम्भीर हो चली। विद्यार्थियों का भरण-पोषण तो भिक्षाटन से किया जा सकता था, पर आचार्य क्या करते ?

महर्षि यज्ञदीति की अध्यक्षता में आचार्यों का सम्मेलन बुलाया गया। सर्वसम्मति से यह निश्चय किया गया कि महर्षि स्वयं ही महाराज तक जाएँ और उन्हें वस्तुस्थिति से अवगत कराकर राजकीय वृत्तियाँ पुनः प्रारम्भ कराएँ।

महर्षि ने जाकर सम्राट के सामने स्थिति का निवेदन किया, पर महामन्त्री आंत्रेष्टक की धूर्तता के आगे उनकी एक न चली। लेकिन मार्ग में उन्होंने निश्चय किया 'शिक्षा जन-जीवन की नैसर्गिक आवश्यकता है, राजतन्त्र के दबाव में उसे नष्ट नहीं किया जा सकता। लोकजीवन उस जरूरत को अनुभव करेगा तो स्वयं ही आगे बढ़कर सहायता भी करेगा। गुरुकुल बन्द कदापि नहीं होंगे। देश को निरक्षरता के कलंक में धकेला नहीं जायेगा।"

यही सोचते हुए महर्षि जैसे ही अपने पर्णकुटीर में पहुँचे, उन्होंने देखा कि उनका नन्हा-सा बालक भूख से व्याकुल पृथ्वी पर लेटा हुआ है। क्षुधित शिशु पर माँ के समझाने-मनाने का कोई असर नहीं था। माँ भी क्या करती, आज कई दिनों से अन्न का दाना न मिलने के कारण उसके स्तनों में भी दूध नहीं आ रहा था।

यज्ञदीति की आँखें भर आयीं—"जो सारे समाज का हित-चिन्तन करते हैं, समाज क्या उन्हें इसी स्थिति में रखेगा।" पर वे मनस्वी महात्मा थे। परिस्थितियों से विचलित होना उनके स्वभाव में न था। उन्होंने धर्म-पत्नी के कान में कुछ कहा—"पत्नी भीतर गई और एक कटोरे में कुछ ले आयीं। बच्चे ने प्रसन्नतापूर्वक दूध पी लिया। उस बेचारे को क्या पता था कि श्वेत रंग का दिया गया तरल पदार्थ दूध नहीं, चावल के आटे का घोल है।

आचार्यगण भद्रबाहु के निर्णय से बड़े निराश हुए। पर गुरुकुल न बन्द किए जाएँ, इस बात पर सब एक मत थे। प्रातःकाल सभी विद्यार्थियों को भिक्षाटन के लिए भेजा गया। किन्तु जिस घर के सामने गुहार लगाई वहीं से फटकार भरे स्वर सुनने को मिले—"जो शिक्षा बालकों को भिखारी बनाती हो, उस शिक्षा से अच्छा है, बच्चे अनपढ़ रहें। घरों में रहकर परिश्रम से उपार्जित अन्न ग्रहण करें। भीख माँगना, मानवीय शक्ति एवं परमात्मा का अपमान करना है। अध्यात्म-धर्म, शिक्षा और संस्कृति के नाम पर इस अनात्म कृत्य का पोषण नहीं किया जा सकता।"

ब्रह्मचारी खाली हाथ गए थे और लौटे तब भी हाथ खाली ही निकले। एक बार तो ऐसा लगा कि अब विद्यालय बन्द हो जाएँगे। किन्तु आचार्य अभी भी साहस हारने को तैयार न थे। राज्य की शिक्षा और संस्कार परम्परा को बनाये रखने के लिए वे प्रत्येक तितिक्षा पर कसे जाने के लिए तैयार थे।

विद्यार्थियों के लिए यह नियम बनाया गया कि अपनी व्यवस्था के लिए वे अपने अभिभावकों का आश्रय लें। इधर आचार्यों ने अपने लिए आश्रम में ही फल-फूल, शाक और अन्न उगाकर पेट पालन प्रारम्भ कर दिया। मुसीबतें आयीं पर गुरुकुल एक दिन के लिए भी बन्द न हुए। आचार्य कौपीन पहनकर रहने लगे पर अध्यापन एक दिन भी बन्द न किया। आचार्य पत्नियों के पास जो मंगलसूत्र थे, विक्रय कर आश्रम के लिए गायें मँगा ली गईं। उनके दाने-चारे का प्रबन्ध भी वे स्वतः करने लगीं, पर उन्होंने आचार्यों के अध्यापन कार्य में थोड़ी भी रुकावट न आने दी।

अभाव तो आखिर अभाव ही थे। आश्रमों के पास इतनी भूमि भी तो नहीं थी कि उसमें आचार्यों और उनके आश्रित सभी-बच्चों को पेटभर अन्न मिलता रहता। महर्षि यज्ञदीति समय निकालकर स्वयं भी जंगल जाया करते और जितना बन पड़ता उतनी सूखी लकड़ियाँ काटकर लाया करते। यह कार्य वे दूसरों की आँख बचाकर करते, जिससे विद्यार्थियों के अध्यापन में अवरोध न आने पाए।

शरीर पहले ही कृश था। भूख ने रही-सही शक्ति और तोड़ दी। यज्ञदीति ने लकड़ी का बोझ उठा तो लिया, किन्तु दो पग भी आगे न बढ़ सके। आँखों के सामने अँधेरा छा गया, पैर लड़खड़ा गए और वे वहीं सिर के बल गिर पड़े।

देखते-देखते ग्रामवासियों की भीड़ एकत्रित हो गई। जल के छींटें लगाए गए। महर्षि की चेतना लौटी पर वह शून्य में थी। वे बुदबुदाए—"हे प्रभु ! जब तक शिक्षा और संस्कृति के आधार यह गुरुकुल स्वावलम्बी और साधन सम्पन्न नहीं हो जाते, तब तक मैं बार-बार जन्म लेता रहूँ। बार-बार गुरुकुलों की सेवा करता रहूँ।" इन शब्दों के साथ महर्षि ने अपना यह नश्वर शरीर छोड़ दिया।

ग्रामवासियों एवं नगर निवासियों में यह समाचार वर्षाकालीन मेघों के समान सर्वत्र पल भर में फैल गया। एक ओर चिता प्रज्ज्वलित हो रही थी, उस पर महर्षि का पार्थिव शरीर फूँका जा रहा था। दूसरी ओर जनता साधनों से आश्रमों के आँगन पाट रही थी। लोगों ने संकल्प कर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिया था—शिक्षा और संस्कृति हमारी अपनी आवश्यकता है। राजतन्त्र उसे सहायता नहीं देता तो न दे पर हम नागरिक उसे साधनहीन नहीं रहने देंगे।

अखण्ड प्रेम

वे दोनों अनाथ बालिकाएँ लन्दन के पश्चिमी भाग की एक छोटी-सी बस्ती में अपनी झोंपड़ी में रहती थीं। अनाथ थीं तो भी वे साहसी थीं। अकेलापन उन्हें दुःख न दे सका। उन्होंने अपनी उन्नति जारी रखी। स्वास्थ्य, शिक्षा, संस्कृति सभी विषयों में वे दत्तचित्त रहीं। गरीब घराने की ये अनाथ बालिकाएँ जब वयस्क हुईं तो सबकी दृष्टि में वे सुगन्धित स्वर्ण के समान आकर्षक और आदरणीय बन गईं। अद्वितीय रूप-सौन्दर्य और उच्च मानवीय गुणों से संस्कारित उनका स्वभाव सर्वत्र प्रशंसनीय बना हुआ था।

बड़ी का नाम था जेन और छोटी एनी। उम्र में तीन-चार वर्ष का अन्तर था तो भी वे देखने में बिल्कुल एक जैसी प्रतीत होती हैं। जैसे उनका शरीर और रूप-सौन्दर्य एक जैसा था, वैसा ही उनका हृदय भी उच्च गुणों में परिमार्जित एक ही प्रकार का था। दोनों में प्रेम इतना था मानो एक ही आत्मा ने दो स्वरूप धारण कर रखे हों।

समय की गति के साथ उनकी आयु बढ़ने लगी। अब वे बालकपन और किशोर अवस्था को पार करके यौवन के क्षेत्र में पदार्पण कर चुकी थीं। जेन अपने धार्मिक अध्ययन में लगी हुई थी और किन्तु ऐनी के मन में यौवन की मादक मदिरा छलकने लगी। उसका मन चार्ल्स नामक एक युवक की तरफ आकर्षित हुआ। युवक ऐनी के अनुरूप ही था। उच्च शिक्षा, उत्तम स्वास्थ और अन्य सद्गुणों के कारण समाज में वैसा ही आदरणीय था, जैसी कि वे दोनों बहिनें। प्रतीत होता था कि ईश्वर ने यह जोड़ा बड़ी चतुराई के साथ अपने हाथों से बनाया हो। दोनों का प्रेम बढ़ते-बढ़ते एक दिन प्रणय रूप में परिणत हो गया।

ईश्वर की इच्छा दोनों अधिक दिनों तक सोने के दिन और चाँदी की रातें न देख सके। काल की कराल गति ने दोनों को एक-दूसरे से अलग कर दिया। चार्ल्स सेना में भर्ती हो गया और शीघ्र ही एक घमासान युद्ध में सेना का अधिनायकत्व करने के लिए चला गया। ऐनी ने छाती पर पत्थर रखकर चार्ल्स को विदाई दी और एक सती-साध्वी देवी की भाँति पति का नाम स्मरण करती हुई विछोह के दिन तपस्यापूर्वक बिताने लगी।

वैसे वह किन्हीं भोज-उत्सवों में सम्मिलित नहीं होती थी, पर उस दिन एक निकट सम्बन्धी के यहाँ दावत में उसे जाना पड़ा। ऐनी के कोकिल कण्ठ की वाणी सुनने के लिए अतिथियों का अत्यन्त आग्रह था। वह अनुरोध जब अत्यधिक बढ़ गया तो उससे इनकार करते न बन पड़ा। उसे एक गीत गाने को विवश होना पड़ा।

ऐनी की उँगलियाँ पियानो पर नाचने लगीं। उसने एक बड़ा ही भावपूर्ण गीत गाया। सारी सभा चित्रलिखित सी मुग्ध हो बैठी थी, मानो उसकी स्वर लहरी में सब लोग तन्मय हो गये हों। उस गोष्ठी में एक अमृतमयी निर्झरिणी झर रही थी।

लेकिन अरे ! यह क्या ? गीत पूरा भी न होने पाया था कि अचानक बीच में ही एक व्यवधान आ उपस्थित हुआ। ऐनी मूर्तिवत् जड़ हो गई, मानो उसे काठ मार गया हो। हाथ पियानो पर था, मुँह खुला हुआ था और आँखें घबराई हुईं। वह एकदम घबराई हुई विक्षिप्त सी दीखने लगी। उसकी यह दशा देखकर सब लोग घबरा गये और कारण जानने के लिए उसके पास दौड़े। सभा का रंग भंग हो गया।

ऐनी एक प्रकार का प्रलाप कर रही थी। बहुत समय के उपरान्त लगातार प्रश्न करने पर पता चला कि अचानक ऐनी को ऐसा दिखाई पड़ा कि उसके सामने चार्ल्स की छाया मूर्ति खड़ी हुई है। सैनिक वेष में सुसज्जित उसका पति मरणासन्न दशा में वहाँ आया है। छाती में ठीक दिल के पास एक बड़ा भारी जख्म हुआ है, जिसमें से छलछल रक्त की धारा प्रवाहित हो रही है। उसके सारे कपड़े खून में तरवर हो रहे हैं। बड़ा कातर होकर वह ऐनी की ओर निर्निमेष दृष्टि से देख रहा है।

उपस्थित सज्जनों में से किसी ने इसे भ्रम बताया किसी ने स्वप्न, पर ऐनी हतबुद्धि होकर मूर्च्छा में गिर पड़ी, उसे विश्वास हो गया कि अवश्य ही यह घटना सत्य है। मूर्च्छित ऐनी को घर ले जाया गया और यथाविधि उसका उपचार आरम्भ किया गया। डाक्टर लोग बराबर यह विश्वास दिला रहे थे कि यह सब भ्रम है। हमारी दवाओं से तुम बहुत शीघ्र स्वस्थ हो जाओगी, किन्तु ऐनी का हृदय हाहाकार कर रहा था।

चौथे दिन युद्ध क्षेत्र से एक बन्द लिफाफा आया। जेन उस सीलबन्द पत्र को बिना खोले ही ऐनी के पास ले गई। मूर्च्छित अवस्था में उसने एक बार आँखें खोलीं, देखा कि जेन के हाथ में एक लिफाफा है, जिसमें युद्धक्षेत्र की सील मुहर लगी हुई है। उस लिफाफे को देखते ही ऐनी के मुँह से एक बड़ी हृदय-विदारक चीत्कार निकली। मानो हजार छुरियों से किसी ने उसके ऊपर हमला किया हो। दूसरे ही क्षण उसके प्राण पखेरू उड़ गये। उसका मृत शरीर शय्या के ऊपर लुढ़क रहा था।

उपस्थित महानुभावों ने उस सील बन्द लिफाफे को खोला तो उसमें फौजी कर्नल ने लिखा था कि—"युद्ध क्षेत्र में मातृभूमि की महान् सेवा करते हुए शत्रु की सनसनाती हुई गोली का हृदयालिंगन करके वीर चार्ल्स ने स्वर्ग प्रयाण किया।"

वह कालजयी

तेज धमाके ने पाम्पिआई निवासियों को स्वप्नों के रंग-बिरंगे संसार से जागरण की भूमि पर ला पटका। आँखें मलते हुए वे सोचने लगे इसका कारण क्या है ? सभी का मन सोच पाने में अवश महसूस कर रहा था। प्रायः सबके सब एक अनचाही बेचैनी से घिर गए थे, उसकी तीव्रता वातावरण में फैलती जा रही गर्म लहर की तरह लगातार बढ़ती जा रही थी। कोई अपने को सँभाल पाए तब तक मकान के दरवाजे की तली से धुआँ प्रवेश करने लगा। रात का घना अन्धकार धुएँ से लिपटकर गहराता जा रहा था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तरह-तरह की आशंकाओं से प्रत्येक मन घिरा था। शाम को सभी प्रसन्न थे। प्रसन्नतापूर्वक सभी ने नींद की चादर ओढ़ी थी। ओढ़ते समय कितनी कल्पनाएँ की थीं प्रत्येक ने। नींद में जाने से पहले मन न जाने कितने तरह के सुखद-दुःखद कल्पनाओं की चादर बुनता रहता है ?

विवश होकर मकानों के दरवाजे खुलने लगे। बाहर आते हुए लोग भय और आश्चर्य से जड़ प्रायः हो गए थे। यदा-कदा एक-दूसरे की ओर सूनी आँखों से देख लेते। दहकते-अँगारों और जलते-उछलते पत्थरों से दिशाएँ चमक उठी थीं। गर्मागर्म लावा, आग की नदी बनकर नगर की ओर बहता चला आ रहा था।

"ज्वालामुखी" अनेकानेक कण्ठ चीत्कार उठे। इस चीत्कार के साथ वातावरण चीख-पुकारों से भर गया। सभी को अपना जीवन बचाने की पड़ी थी। जीवन क्या है ? एक अनोखा प्रश्न चिन्ह उभरकर जनसमूह के बीच फैलने लगा। साथ ही उभरने लगे अनेकों जवाब। कहीं निर्ममता तो नहीं, अन्यथा बिलखते शिशुओं, असहाय वृद्धों अपंग-अपाहिजों को आग की भट्टी में छोड़कर लोग इस तरह क्यों भागते ? तब निश्चित ही यह स्वार्थ होगा। इसी कारण हड़बड़ी में कुछ औरों के कीमती सामान को हथिया कर भागकर सुरक्षित स्थान में जा छुपना चाहते थे।

एक प्रश्न के अनेक उत्तर चिन्तन के द्वारा नहीं क्रिया के माध्यम से अभिव्यक्त हो रहे थे। इनके सत्य-असत्य होने का निर्णय होता तब चीख पुकार के बीच एक अन्य वाणी उभरी। इसमें आश्वासन था। सभी स्वर मौन हो गए। बस वही मुखर था। वह सभी को व्यवस्थित करता हुआ नगर द्वार से बाहर कर सुरक्षित स्थान पर पहुँचने के लिए निर्देश देने लगा। एक-एक कर सभी बाहर निकलने लगे। अब पहले जैसी हड़बड़ी न थी। उसकी निश्चिन्तता स्वयं की ओर से बेफिक्र होकर औरों को बचाने के प्रयास देख के मन में भी विश्वास जगने लगा था।

एक समूह नगर से बाहर होता। वह दूसरों को व्यवस्थित कर नगर द्वार से बाहर करने के प्रयास में लीन हो जाता। द्वार से बाहर निकलते लोग उससे कहते "आप भी भाग चलिए।" इन वाक्यों के साथ उसके होठों पर हँसी की एक क्षीण रेखा उभर उठती। उन्हें जाने का संकेत करता हुआ वह कह देता "आप लोग जाएँ मुझे औरों को बाहर करना है।" ऐसे विकट समय में औरों की चिन्ता भीड़ आश्चर्य से उसकी ओर देखती। शंकाकुल मन-प्रश्न उछालने में कुशल बुद्धि से सवाल टपक पड़ते "कौन है यह जिसे अपने जीवन की परवाह नहीं ?"

हड़बड़ी में उभरे इन प्रश्न चिन्हों के उत्तर तलाशने जितना समय किसी को न था। एक समूह के बाद दूसरा समूह उसकी निर्भीकता पर आश्चर्य प्रकट करता, बाहर चला जाता। धीरे-धीरे सारा नगर खाली हो गया। वह बाहर निकला। नगर द्वार के लौह कपाट बन्द किए। द्वार से सटकर एक कोने में खड़ा हो गया। यह उसका चिर-परिचित स्थान था। पिछले कई दशकों से वह यहाँ खड़ा होता रहता था। वह नगर का रक्षक था। विकट समय में भी उसे अपने कर्तव्य का ध्यान था। उसके लिए कर्तव्य जीवन का पर्याय था। कर्तव्य की सुरक्षा जीवन, की सुरक्षा थी।

इतनी देर में लावे का उफान समीप आ चुका था। एक गर्म झोंका उठा वह आकण्ठ आग में डूब गया। सारा शरीर जल गया। अन्तिम क्षणों में भी उसके चेहरे पर आनन्द की लहरें थिरक रही थीं।

बहुत दिनों के बाद भूकम्प के गर्भ में विलीन हुए पॉम्पिआई नगर के ध्वंसावशेषों की खुदाई हुई तो किले के फाटक पर एक सन्तरी का कंकाल सटा पाया। वह सावधान की स्थिति में सीधा खड़ा था। बन्दूक उसके कन्धे पर थी।

इस कंकाल को शीशे की अलमारी में सावधानीपूर्वक सजाया गया। उसे उस स्थान पर बने म्यूजियम के फाटक पर लगा दिया गया। अब वह पॉम्पिआई अकेली इटली का गर्व नहीं जीवन की परिभाषा बन चुका था। 'जिसने जीवन को कर्तव्यनिष्ठा के रूप में पहचान लिया। वह मृत्युजयी है कालजयी है। शीशे की अलमारी के ऊपर टँके ये शब्द आज भी जिज्ञासुओं के मनों को स्पन्दित करते हैं, जीवन का नया द्वार खोलते हैं।

साधु का धर्म

राजा चन्द्रगुप्त के समय में भद्रबाहु नाम के जैनियों के एक आचार्य हुये थे। वे बड़े त्यागी, तपस्वी और परमार्थी चरित्र के व्यक्ति थे। वे इतने बड़े विद्वान और ज्ञानी थे कि देश भर के पंडित और राजा उनके सामने मस्तक झुकाते थे और उनका आदर करते थे। उनके पिता सोमशर्मा एक बड़े राजा के पुरोहित थे और घर में धन वैभव की कोई कमी नहीं थी। पर भद्रबाहु ने सांसारिक सम्पत्ति और सुख की ओर ध्यान न देकर युवावस्था में ही घर छोड़कर तपस्वी जीवन व्यतीत करना आरम्भ कर दिया था। उनके पिता ने उनको घर में रखने और विवाह करके गृहस्थ धर्म का पालन करने को बहुत समझाया, पर उन्होंने यही उत्तर दिया कि जब मुझे इन चीजों की निस्सारता मालूम हो गई और मुक्ति का मार्ग समझ में आ गया तब इसके चक्कर में फँसना कोई बुद्धिमानी की बात नहीं है। इसके बाद ही वे घर-बार और समस्त सम्पत्ति का त्याग करके वन में चले गये और ऐसी कठोर तपस्या की कि कुछ ही समय बाद उनको समस्त जैन मुनियों के संघ का आचार्य नियत कर दिया गया।

एक दिन महाराज चन्द्रगुप्त ने एक अद्भुत स्वप्न देखा जिसका प्रभाव उनके मन पर बहुत अधिक पड़ा और बराबर उसी में ध्यान लगा रहा। तब वे आचार्य भद्रबाहु की सेवा में उपस्थित हुये और निवेदन किया कि मुझे कल रात्रि में एक ऐसा स्वप्न दिखलाई पड़ा है, जिसका अर्थ मेरी समझ में नहीं आता इसलिये एक चिन्ता-सी मन में लग गई है। भद्रबाहु के पूछने पर उन्होंने बतलाया कि "महाराज, मैंने देखा कि आकाश में चन्द्रमा प्रकाशित हो रहा था, पर उसमें बहुत से छेद दिखलाई दे रहे थे। मेरे आस-पास पृथ्वी पर अनेक अच्छे रत्न बिखरे पड़े थे, पर उनमें धूल और मिट्टी लगी थी और उनकी चमक मन्द पड़ गई थी। इसके पश्चात् काले रंग के हाथियों के दो समूह लड़ते हुए दिखलाई पड़े जो कुछ देर बाद आकाश में लोप

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org

www.vicharkrantibooks.org

हो गये। इनके अतिरिक्त एक बारह फन वाला भयंकर नाग दिखलाई दिया, जो फनों को फैलाकर पृथ्वी पर बैठा था।"

भद्रबाहु ने कुछ विचार कर उत्तर दिया कि "आपने चन्द्रमा में जो छेद देखे, उनका आशय यह है कि आगे चलकर अपने धर्म में अनेक सम्प्रदाय हो जायेंगे। रत्नों में धूल लगने से प्रकट होता है कि नये-नये सम्प्रदायों के मतभेद और कलह के कारण धर्म के सत्य सिद्धान्त का स्वरूप विकृत हो जायगा। काले हाथियों के लड़ने से बादलों का अभाव और वर्षा का न होना जान पड़ता है। जब बहुत समय तक वर्षा न होगी तो समस्त देश में भीषण अकाल पड़ेगा और वह बारह फन वाला सर्प इस बात का प्रतीक है कि बारह वर्ष तक फसल खराब होती रहेगी और दुर्भिक्ष के फल से समस्त, जनता त्राहि-त्राहि करने लगेगी।"

इसके पश्चात् आचार्य ने अपने संघ के समस्त मुनियों और साधुओं को बुलाकर भयंकर अकाल की भविष्यवाणी कह सुनाई। उन्होंने यह भी कहा कि ऐसे कठिन समय में यहाँ रहकर मुनि-धर्म का पालन कर सकना और उसके नियमानुसार शुद्ध तथा पवित्र आहार प्राप्त कर सकना असम्भव होगा। उस समय या तो भूखे रहकर प्राण त्याग देने होंगे या फिर मुनिधर्म का त्यागकर चाहे जैसा आहार ग्रहण करना होगा। इसलिए हमने यह निश्चय किया कि हम अभी अपने समस्त संघ को लेकर दक्षिण भारत में चले जायेंगे और जब तक अकाल न मिटेगा तब तक वहीं निवास करके धर्म प्रचार करेंगे।

आचार्य भद्रबाहु की चेतावनी का महाराज चन्द्रगुप्त पर भी बड़ा प्रभाव पड़ा और उन्होंने राज्यभार अपने पुत्र को देकर स्वयं मुनि धर्म स्वीकार कर लिया। आचार्यजी के इस निश्चय का पता जब उनके गृहस्थ अनुयायियों को लगा तो वे बड़े व्याकुल हुये और उनकी सेवा में उपस्थित होकर कहने लगे कि महाराज, अगर आप इस प्रदेश को त्यागकर चले जायेंगे तो हम लोगों को सत्य-धर्म का उपदेश कौन देगा और धर्म की रक्षा कैसे हो सकेगी ?

भद्रबाहु—"भाइयो, आप लोगों को हम से सच्चा प्रेम है और आपकी भक्तिभावना भी सराहनीय है। पर जैसा समय आ रहा है, उसमें हमारे संघ के यहाँ रहने से लाभ के बजाय हानि की अधिक सम्भावना है। ऐसे समय में जबकि प्रत्येक व्यक्ति को अपने भोजन की चिन्ता होगी, इस बारह हजार मुनियों के संघ का भार आप लोगों पर डालना उचित नहीं है। इसी कारण हम इन समस्त मुनियों को उस प्रदेश में ले जाना चाहते हैं, जहाँ अकाल पड़ने का भय नहीं है।"

इस पर कई बड़े सेठों ने कहा कि हम लोगों के पास बहुत काफी परिमाण में अन्न का भण्डार मौजूद है, जो बारह वर्ष तक भी आप सबका काम दे सकता है। इसलिए आप अकाल की चिन्ता न करके इसी स्थान पर निवास करें।

भद्रबाहु—"भाइयो, तुम उस अन्न से अपने दूसरे गरीब भाइयों की सहायता करना क्योंकि सबके पास तो अन्न का संचय नहीं है और भयंकर अकाल के अवसर पर पेड़ों के पत्ते और छाल का प्राप्त होना भी कठिन हो जाता है। साधु का यह धर्म नहीं कि ऐसे आपत्तिकाल में गृहस्थों के ऊपर भार स्वरूप बनकर रहें। जब हम अपनी व्यवस्था अन्य प्रकार से कर सकते हैं तो गरीबों के हिस्से के अन्न में भाग बँटाना सर्वथा अनुचित है।"

यह कहकर भद्रबाहु ने संघ को दक्षिण भारत की यात्रा का आदेश दिया। यद्यपि उनकी आयु अधिक हो गई थी और इतनी दूर की पैदल यात्रा उनके स्वास्थ्य की दृष्टि से कठिन थी, फिर भी जनता के ऊपर अपना भार न डालने की दृष्टि से वे सब कष्ट सहने को तैयार हो गये। जब संघ दक्षिण भारत तक पहुँच गया तो उन्होंने आचार्य के पद पर एक अन्य मुनि का अभिषेक कर दिया और सबको आगे बढ़ने की आज्ञा दी। लोगों ने उनसे भी साथ चलने का बहुत आग्रह किया पर उन्होंने उसे इस लिये स्वीकार किया कि अब उनमें चलने-फिरने की शक्ति बहुत कम थी और उनके कारण समस्त संघ को उसी प्रकार मन्दगति से चलना पड़ता था। जब संघ चला गया, तो उन्होंने चन्द्रगुप्त से कहा—"महाराज, अब आप भी उचित स्थान पर जाकर निवास कीजिये। हमारा समय और शक्ति तो अब समाप्त हो चुकी हैं, इसलिए हम इसी स्थान पर रहकर परमात्मा का ध्यान करते हुए जीवन के अवसान होने की राह देखते रहेंगे। ऐसे समय में हम किसी पर भी अपने भोजन के निमित्त भार डालना ठीक नहीं समझते। यह सत्य है कि हमारे अनुयायी श्रावकगण हमारे लिए सब प्रकार की उत्तम से उत्तम व्यवस्था करने को प्रस्तुत हैं, पर यदि हम स्वयं त्याग का उदाहरण उपस्थित न करेंगे और सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते रहेंगे तो अन्य लोग त्याग और परमार्थ को कैसे तैयार होंगे ? अब तो हमने मुनियों को जो मार्ग दिखलाया है उससे वे जनता पर अपना भार कम से कम डालेंगे और दूसरे गरीब लोगों की भूख-प्यास का ध्यान भी रखेंगे। यही साधु का धर्म है और यही परमार्थ का मार्ग है। सब लोगों का कर्तव्य है कि यथाशक्ति इसी का अनुसरण करने का प्रयत्न करें।"

न्योछावर कर गये प्राण जो

अफगानी आक्रमणकारी अहमदशाह अब्दाली ने भारत विजय के लिए कूच किया। राह में पड़ने वाले राज्यों प्रदेशों को जीतते हुए उसकी सेनाएँ आगे बढ़ती गयीं और पानीपत के मैदान तक आ पहुँचीं। यहाँ उसकी मराठे सैनिकों से सीधी टक्कर थी। वह पहले मराठों की वीरता तथा पराक्रम के विषय में सुन चुका था। अतः वह अपनी ओर से हमला करने का साहस नहीं जुटा पा रहा था। उसकी सेना ने वहीं अपना पड़ाव डाल दिया। उसे ऐसे अवसर की प्रतीक्षा थी जब विजयश्री हाथ लगने की पूरी आशा हो।

एक दिन अब्दाली अपने कुछ गुप्तचरों के साथ विचार-विमर्श कर रहा था। मराठा शिविर से कई स्थानों पर अग्नि जलती दिखाई दी। उसने अपने एक गुप्तचर से पूछा—"क्या ये गर्मी में आग तापते हैं ?"

"जहाँपनाह ! ये किसी का स्पर्श किया खाना नहीं खाते। सभी अलग-अलग भोजन बनाने में जुटे हैं।" गुप्तचर ने बताया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अब्दाली ने कहा—"अच्छा ! ऐसी बात है तब तो इन्हें जीतना बायें हाथ का खेल है।"

अपने शिविर में पहुँचकर उसने आक्रमण की योजना बना ली। अपने सेनापति को बुलाकर तत्काल तीन ओर से मराठा शिविर घेर लेने का हुक्म दिया। जब तक मराठा सैनिक रणभूमि में आते तब तो कितने ही सैनिक पकड़े जा चुके थे। मराठों का प्रधान सेनापति सदाशिव राव तो लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ, किन्तु इब्राहीम गार्दी नामक मुख्य सेनापति बन्दी बना लिया गया, जो दस हजार सैनिकों का नायक था।

इब्राहीम को अहमदशाह के समक्ष लाया गया। उसने बहुत पहले ही इब्राहीम के शौर्य, साहस तथा रणकौशल सम्बन्धी गाथाएँ सुनी थीं। उसने कहा—"तुम्हारे जैसा वीर सेनापति मैंने आज तक नहीं देखा। मैं स्वयं रणभूमि में तुम्हारा कौशल देख चुका हूँ। तुम्हारे बन्दी होने के पश्चात् मुझे पूर्ण विश्वास है कि हमारी सेना को विजय ही मिलेगी। यह देखकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ कि तुम मुसलमान होकर भी मराठों का साथ क्यों दे रहे हो ? मैं अब तुमको अपने बीस हजार सैनिकों का सेनानायक बनाना चाहता हूँ। आशा है तुम इसे स्वीकार कर मराठों को परास्त कर सकोगे।"

अहमदशाह का यह कथन इब्राहीम के मर्म को स्पर्श कर गया। उसने आत्म-गौरव के साथ कहा—"अहमदशाह ! आपने जो जाति-गत प्रश्न उठाया है वह गलत है। भारत मेरी जन्मभूमि है। इसी की पावन मिट्टी में, मैं बड़ा हुआ हूँ। इसी के रक्त से सींचा गया हूँ और इसी की कृपा से इतना योग्य हुआ हूँ। मेरी जाति और धर्म यही मातृभूमि है। मुझे इससे बेहद प्यार है। मैं इतना नीच नहीं कि समाज और देश के प्रति विद्रोह करूँ। मेरी अन्तरात्मा कभी इसको स्वीकार नहीं करेगी।"

"अच्छा ! तो तुम्हें अपनी मातृभूमि पर इतना गर्व है।

इब्राहीम बिना रुके बोला—"बादशाह ! कुछ क्षण के लिए आप यह सोचें कि आपकी सेना में यदि हिन्दू सेनापति हो तो क्या आप उसे हिन्दुओं की ओर से लड़ने की इजाजत देंगे।"

अहमदशाह की त्यौरियाँ चढ़ गईं। यह सत्य कथन उसके लिए असह्य था। 'अभिमानी ! क्या तू यह भूल गया है कि अभी तू एक बन्दी है। मैं जो चाहूँ कर सकता हूँ। अब भी समय है, सोचकर जवाब दे। जिन्दगी चाहता है या मौत ? इब्राहीम की भुजाएँ फड़कने लगीं। उसने बड़े जोश के साथ कहा—"इसमें सोचने की कौन-सी बात है ? वीर जीना नहीं मरना भी जानते हैं। यहाँ बन्दी रहने की अपेक्षा मृत्यु श्रेयस्कर है। अपनी मातृभूमि के लिये प्राणोत्सर्ग का सुअवसर सभी को नहीं मिलता। मुझसे अधिक सौभाग्यशाली और कौन होगा ?"

अब्दाली आगे कुछ न सुन सका। पास ही तैयार खड़े दो अफगान सैनिकों को संकेत दिया। उन्होंने अपने तलवार के वार द्वारा उसे वीरगति दी और इस देशभक्त ने भारत माता के चरणों में अपना जीवन समर्पित कर दिया।

साहस को रास्ते हजार

भाई परमानन्द क्रान्तिकारियों में अप्रतिम साहस के लिए प्रसिद्ध थे। कैसी भी संकटपूर्ण घड़ी में भी उन्होंने भयभीत होना नहीं सीखा था इसीलिये कई बार वह ऐसे काम कर लाते थे जो और कोई भी बुद्धिमान क्रान्तिकारी नहीं कर पाता था। साहस को इसी से तो मनुष्य जीवन की सबसे बड़ी योग्यता कहा गया है। हिम्मत न हो तो बड़ी-बड़ी योजनायें धरी की धरी रह जाती हैं। पर साहसी व्यक्ति रेत में भी फूल उगा लाता है।

बम बनाने की योजना बनाई गई। विस्फोटक पदार्थ आदि और सब सामान तो जुटा लिया गया पर बमों के लिए लोहे के खोल (शेल) कहाँ से आयें यह एक समस्या थी। ऐसी घड़ी में भाई परमानन्द को याद किया गया।

बड़ी देर तक विचार करने के बाद उन्होंने एक योजना बना ही डाली। काम था जोखिम का पर "हिम्मते मरदां मददे खुदा" वाली कहावत सामने थी, भाई परमानन्द ने अमरसिंह को साथ लिया और वहाँ से चल पड़े।

उन्होंने अमरसिंह को सारी योजना समझाई। अमरसिंह को एकाएक तो विश्वास नहीं हुआ कि अँग्रेजों को चकमा देकर बमों के खोल कैसे बनवाये जा सकते हैं ? पर वह परमानन्द की हिम्मत को जानते थे, इसलिये साथ-साथ जीने मरने के लिए तैयार हो गये। अगले ही क्षण वे एक लोहा फैक्ट्री के अँग्रेज मैनेजर के सामने खड़े थे।

सब कुछ स्वाभाविक तरीके से ही हो सकता था। बात-चीत से लेकर हाव-भाव तक नकली बात तभी चल सकती थी जब वह पूरी हिम्मत के साथ बयान की गई हो। थोड़ा भी सकपका जाने या अस्वाभाविक प्रतीत होने पर तुरन्त गिरफ्तार होने का भय था, सो तो था ही एक बड़ी भारी योजना के विफल हो जाने का अपयश भी था।

परमानन्द भाई नकली माली और अमरसिंह मजदूर बनकर गये, अँग्रेज मैनेजर से बोले—साहब सर सुन्दरसिंह मजीठिया के बगीचे को सजाने के लिए लोहे के खम्भे लगाये गये हैं। आपने देखा ही होगा हमारे साहब की इच्छा है कि उनके ऊपर लोहे के गुम्बज लगाये जायें ताकि शोभा और बढ़े ?

सर सुन्दरसिंह मजीठिया हिन्दुस्तानी पर अँग्रेजी—"सर" की उपाधि प्राप्त—साहब बहादुर, भला इनकार कैसे करते बोले, "कितने खोल चाहिये ?" हिसाब लगाने में जरा भी कमअकली से अँग्रेज मैनेजर को सन्देह हो सकता था। साहस की यही तो पहचान है कि हृदय और मुख में जरा शिकन न आये। भय बिलकुल पास भी न फटके।

"यही २ हजार आवश्यक होंगे।" नकली माली बने परमानन्द ने कहा। अफसर थोड़ा चौंका तो परमानन्द के साहस ने सब कुछ ढाँप लिया। आर्डर तय हो गया। एक सप्ताह में खोल बन जाने की साई तय हो गई।

ठीक एक सप्ताह बाद उसी तरह बमों के खोल ले आये और मैनेजर साहब को कुछ भी भान न हुआ। वह तो कभी भी पता न चलता यदि कुछ क्रान्तिकारी बन्दी न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org

www.vicharkrantibooks.org

बना लिये जाते और उनके साथ बमों की बात का भंडा-फोड़ न हो जाता।

मुकदमा चला। कचहरी में अँग्रेज मैनेजर भी उपस्थित हुआ। उसने अपनी भूल तो स्वीकार कर ली पर यह कहे बिना वह भी न रहा—"परमानन्द सचमुच गजब का साहसी है मुझे भी धोखा दे गया।"

चट्टान की दृढ़ता

अन्तरीप द्वीप से आया, जीवन के संघर्ष और आँधियों से दुःखी एक नाविक जहाज से उतरकर बाहर आया। समुद्र के मध्य अडिग और अविचलित चट्टान की स्वच्छता को देखकर उसको कुछ शान्ति मिली। वह थोड़ा आगे बढ़ा और एक टेकरी पर खड़ा होकर चारों ओर दृष्टिपात करने लगा। उसने देखा समुद्र की उत्ताल तरंगें चारों ओर से उस चट्टान पर निरन्तर आघात कर रही हैं तो भी चट्टान के मन में न रोष है और न विद्वेष। संघर्षपूर्ण जीवन पाकर भी उसे कोई ऊब और उत्तेजना नहीं है। मरने की भी उसने कभी इच्छा नहीं की।

यह देखकर नाविक का हृदय श्रद्धा से भर गया। उसने चट्टान से पूछा—"तुम पर चारों ओर से आघात लग रहे हैं फिर भी तुम निराश नहीं हो चट्टान!" और तब चट्टान की आत्मा धीरे से बोली—"तात्, निराशा और मृत्यु दोनों एक ही वस्तु के उभय पृष्ठ हैं, हम निराश हो गये होते तो एक क्षण ही सही दूर से आये अतिथियों को विश्राम देने, उनका स्वागत करने से वंचित रह जाते।" नाविक का मन एक चमकती हुई प्रेरणा से भर गया—जीवन में कितने संघर्ष आयें, अब मैं चट्टान की तरह जीऊँगा ताकि हमारी न सही, भावी पीढ़ी और मानवता के आदर्शों की रक्षा तो हो सके।

अपने लिए क्या माँगूँ ?

द्वितीय महायुद्ध तक जिन यहूदियों के देश का कहीं कोई अस्तित्व नहीं था, वह सर्वप्रथम सन् १९४८ में बना। कुल २७ लाख जनसंख्या वाले इस इजराइल की सफलता और उसकी आन्तरिक सम्पन्नता का कारण यहूदियों की गहन धर्मनिष्ठा विश्व का एक आदर्श उदाहरण है।

यहूदी अपने धर्म-ग्रन्थों पर बहुत अधिक विश्वास रखते हैं। वैसे ही मातृ-भूमि और जातीय आदर्शों की रक्षा के लिए अपने निजी स्वार्थों को हँसते हुए बलिदान कर देने का उनका स्वभाव भी अपने आप में अनूठा है। आज उसी के बल पर इजराइल ने इतनी प्रगति की है, आत्म-निर्भरता प्राप्त की और विश्व-राजनीति में एक विशिष्ट स्थान बनाकर रखा है।

यहूदियों में धर्म, प्रेम और जातीय सेवा का भाव कितना प्रबल होता है, यह सन्दर्भ यहाँ प्रस्तुत है।

द्वितीय महायुद्ध में ब्रिटेन के एक यहूदी ने ब्रिटेन को अपने अथक परिश्रम और लगनपूर्ण वैज्ञानिक उपलब्धियों से युद्ध-विजय में महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया। वैज्ञानिक की विशेष सैनिक सेवाओं के लिए अधिकारियों ने पुरस्कार देने की इच्छा प्रकट की।

एक उच्च ब्रिटिश शासनाध्यक्ष ने प्रश्न किया। "आपने ब्रिटेन की महान् सेवा की है, इस उपलक्ष्य में ब्रिटेन आपका सम्मान करना चाहता है। बताइये ! आपकी महान् सेवाओं के बदले हम आपको क्या दे सकते हैं ?"

करोड़ दो करोड़ सम्पत्ति, कोई जागीर या पद-प्रतिष्ठा प्राप्त की जा सकती थी। एक बार मन में भावी जीवन का रस-विलासपूर्ण आकर्षण सामने आ प्रस्तुत हुआ किन्तु दूसरे ही क्षण अन्तःकरण ने कहा—"क्षुद्र, अति क्षुद्र स्वार्थ या लौकिक वासना के पीछे अपने धर्म, संस्कृति और जातीय हित को न भूल, कुछ माँगना है तो धर्म के लिये माँग। तू तो अन्ततः विनष्ट होगा ही चिरंतन धर्म की रक्षा में यदि कुछ योगदान बन सके, तो यह न केवल तेरे अपितु सारी यहूदी जाति के गौरव का एक भव्य इतिहास बनेगा।"

और तब उस वैज्ञानिक ने कहा—"मान्यवर ! यदि आप हमें कुछ दे सकते हैं तो हम यहूदियों की मातृ-भूमि वापस कर दें, ताकि हम अपने धार्मिक आदर्शों की रक्षा कर सकें।" अँग्रेज बड़े कृतज्ञ थे। उन्होंने फिलिस्तीन का कुछ भाग दे दिया, जहाँ यहूदी पुनः संगठित हुये। थोड़े से यहूदियों ने अपने निजी स्वार्थों को त्यागकर अपनी जाति के लिए सर्वस्व त्याग के इस उदाहरण को आदर्श बनाया। सब यहूदी रेगिस्तानी इलाके को हरा-भरा बनाने में जुट गये और सबके सामूहिक श्रम का ही फल है कि आज इजरायल न केवल आन्तरिक दृष्टि से ही सम्पन्न है वरन् थोड़े होने पर भी विश्व-रंगमंच पर एक विशिष्ट महत्व रखता है।

जो मरकर भी अमर हैं

फरवरी सन् १९०८ का एक धुन्ध भरा प्रातःकाल। बलूचिस्तान के क्वेटा जिले के पर्वतीय ग्राम शेख वासाल के नागरिक अपने-अपने घरों में बन्द थे। आज बड़ी जोर की बर्फ गिर रही थी। इस कारण किसी ने बाहर निकलने की हिम्मत नहीं की। डॉक्टर मिल्खीराम अपने घर से लगे हुए अस्पताल में बैठे अपना काम कर रहे थे। ऐसी भयंकर बर्फ गिरने के कारण आज कोई मरीज नहीं आयेगा यह सोचकर वह दूसरे जरूरी काम निपटाने में लगे हुए थे।

किसी ने द्वार पर दस्तक दी। उन्होंने समझा हवा के कारण ऐसा हुआ होगा किन्तु दूसरी बार द्वार पर दस्तक हुई तो उन्होंने दरवाजा खोला, देखा, बाहर कम्बल में लिपटा कोई आदमी खड़ा था जिसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। दूर से चलकर आने के कारण उसके कम्बल पर स्थान-स्थान पर बर्फ जमी हुई दिखाई पड़ रही थी। उन्होंने आश्चर्य से उस व्यक्ति को देखा जो इस विकट हिमपात की परवाह न करके उनके पास आया था।

आगन्तुक ने औषधालय में प्रविष्ट होते ही डॉक्टर के पाँव पकड़ लिये—"डाक्टर साहब मेरे बच्चे को बचा लीजिये!"

"भाई, शान्ति रखो ! धीरज रखो, बताओ क्या हुआ है उसे ?"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"उसके बाँह की हड्डी टूट गयी है। वह दर्द के मारे बुरी तरह चिल्ला रहा है। आप जल्दी चलिये।" यह एक पिता का अनुरोध था उसके हृदय की तड़प थी। पुत्र मोह ने ही उसे उस बर्फीले दिन में भी यहाँ तक आने को विवश किया था। किन्तु डॉक्टर भला पराये पुत्र के दर्द को अपने सीने में कैसे महसूस कर सकते थे ? किन्तु नहीं **'आत्मवत सर्वभूतेषु'** की भावना से ओत-प्रोत आस्तिक और ईश्वरविश्वासी करुणापूरित हृदय रखने वाले डॉक्टर मिल्खीराम ने अपना ओवरकोट पहना, डॉक्टरी उपकरणों का बक्सा हाथ में लिया और अपनी नव-विवाहिता पत्नी को उसकी सूचना व अस्पताल की ओर निगाह रखने की कहकर उसके साथ चल दिये। सेवा परायण व मानवीय संवेदनाओं से ओत-प्रोत पत्नी ने भी उनके जाने के सम्बन्ध में कोई प्रतिवाद नहीं किया।

डॉक्टर साहब उसके साथ तीन मील दूर के गाँव में उसके घर तक गये। उसकी चिकित्सा व मरहम पट्टी की और अपने घर की ओर लौट पड़े। लौटने तक बर्फ गिरना कम हो चुका था, रास्ते में पहले जैसा फिसलने व बर्फ में दबकर मर जाने का खतरा नहीं था।

लौटते समय वे रेलवे स्टेशन के सामने से गुजरे तो स्टेशन मास्टर की नजर उन पर पड़ गयी। उन्होंने डॉक्टर साहब को थोड़ी देर अपने पास रोक लिया। दोनों में पूर्व परिचय तो था ही बातचीत चली तो कुछ समय बीत गया। रेल आने का समय हो चुका था। वे स्टेशन मास्टर से विदा लेकर चले ही थे कि उनका ध्यान प्लेटफार्म के अगले दौर पर आने वाली गाड़ी और उससे कोई पचास गज दूर ठीक उनके सामने पटरी के ठीक बीचोंबीच खड़ी गाय पर गया जो कहीं से भटक कर यहाँ आ गयी थी और उसे ट्रेन आने का पता ही नहीं था। दूसरे ही क्षण उन्होंने लपककर गाय को पटरियों से बाहर ठेल दिया किन्तु यह क्या उनका ओवर कोट पटरी में फँस गया। और वे अपने आपको सामने आती हुई ट्रेन से बचा नहीं पाये। वे बुरी तरह आहत हो गये। दूसरे प्राणियों के प्राण बचाने वाले डॉक्टर के प्राण पखेरू घर लाते-लाते ही उड़ गये। किन्तु आत्मा के अमरत्व में विश्वास करने वाले डाक्टर को अपनी इस मृत्यु पर कोई पश्चाताप नहीं था वरन् उनके मुख-मण्डल पर प्रसन्नता की दिव्य आभा बरस रही थी। उनकी पत्नी ने असमय वैधव्य के इस आघात को दैवी विधान मानकर अपने शेष जीवन को समाज व राष्ट्र सेवा के लिए समर्पित कर दिया, जिन्हें तपस्विनी माता पार्वती देवी के नाम से सारा भारत जानता है।

अज्ञातनामा किशोर का अनूठा बलिदान

गया (बिहार) कोतवाली के पास एक स्तूपाकार स्मृति चिन्ह खड़ा है। कई लोगों को ज्ञात नहीं है कि यह चिन्ह यहाँ क्यों खड़ा किया है और फिर आज की व्यस्त जिन्दगी में ऐसी बातों की ओर ध्यान देने की फुरसत ही किसे है ? पर यदि कोई ध्यान देकर इसके पीछे छिपी कहानी को जानने का प्रयास करे तो उसका मस्तक इस स्थल पर श्रद्धानत हुए बिना नहीं रहेगा।

इस स्मृति चिन्ह के साथ एक ऐसे किशोर की कहानी जुड़ी हुई है, जिसने अपने बलिदान के द्वारा, अपने स्वकेन्द्रित पिता को सोचने के लिये विवश कर दिया था कि देश और समाज का हित व्यक्तिगत हितों से ऊपर होता है व राष्ट्रीय और सामाजिक हितों को ही महत्ता दी जानी चाहिए।

इस अज्ञातनामा किशोर के पिता अँग्रेजी शासन के अन्तर्गत पुलिस सुपरिन्टेण्डेंट थे। एक उच्च पुलिस अधिकारी का पुत्र होना इस किशोर के लिए बहुत बड़ा दुर्भाग्य हो गया। उन दिनों आजादी की लड़ाई चल रही थी। क्रान्तिकारियों और देशभक्तों की पढ़ी-सुनी कहानियों ने उसके रक्त में भी सनसनी उत्पन्न कर दी थी। उसके मकान के सामने से जब सत्याग्रहियों की टोलियाँ विदेशी हुकूमत से टकराने के लिये निकलतीं तो उसका भी मन होता था कि वह भी भागकर उन टोलियों में सम्मिलित हो जाय और 'भारत माता की जय' का घोष करता हुआ हुकूमत की शक्ति से जा टकराए। किन्तु उसके लिए इस मार्ग के द्वार बन्द थे। घर के लोग उस पर बराबर चौकीदारी करते रहते थे।

उसके पिता जिन्हें अच्छा-खासा वेतन, कोठी, नौकर-चाकर, मोटर रुतबा सब कुछ मिला हुआ था और इनको पाने के खातिर उन्हें अपने ही निरपराध निहत्थे भाइयों पर लाठी व गोली की वर्षा करनी पड़ती थी, ऐसी स्वार्थपरता व संकीर्णता से उसे घृणा-सी हो जाती। एक दिन तो वह अपने पिता के सम्मुख जा खड़ा हुआ और बोला—"पिताजी आप अपनी नौकरी की खातिर देश की स्वतन्त्रता के लिए आन्दोलन करने वाले देशवासियों पर यों निर्मम अत्याचार करने के स्थान पर तो ऐसी गुलामी से छुट्टी पा लें तो अच्छा है।" पुत्र के इस कथन का उत्तर पिता ने मुँह से नहीं हाथों से दिया। उस किशोर के कोमल गाल पर तीन-चार तमाचे जड़ दिये।

पुलिस सुपरिन्टेण्डेंट को देश से अधिक अपने पद और नौकरी की चिन्ता थी अतः वह अपनी आत्मा की आवाज को दबाए बैठा था, पर उसके पुत्र की आत्मा पर तो कोई पहरा नहीं चल पाया। इस घटना के कुछ दिन बाद ही जब वह एक विशाल जुलूस को रोकने के लिये कोतवाली के पास पहुँचा तो यह देखकर उसका कलेजा धक्क-सा रह गया कि उसका पुत्र जुलूस की अग्र पंक्ति में 'भारत माता की जय' का घोष कर रहा है। जाने कैसे वह घर से निकल आया था और जुलूस में सम्मिलित हो गया। जुलूस को आगे बढ़ने से रोकने के लिए उसे गोली चलाने का आदेश देना पड़ा। सिपाहियों की बन्दूकें गरज उठीं। उसकी आँखों के सामने उन्हीं की बन्दूकों में से निकली एक गोली उसके बेटे के कलेजे में जा घुसी। अपने प्राणों का बलिदान कर पुत्र ने पिता को सही मार्ग पर ला दिया था। पिता ने सरकारी नौकरी त्याग दी और देश-सेवा में जुट पड़ा।

वह अज्ञातनामा किशोर अपने प्राणों का बलिदान कर गया परन्तु अपने बलिदान द्वारा स्वयं अपने पिता और उन जैसे अन्य उन्मत्त, दासता के पाश में जकड़े हुए लोगों को राह बताने में जो आदर्श प्रस्तुत किया उस आदर्श ने जनमानस में एक ऐसी चिंगारी भड़का दी जो दावानल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बनकर फूटी। ऐसे ही बलिदानी अदम्य आत्माओं के अकथ्य अगम्य साहस की कहानी है स्वतन्त्रता पूर्व के भारतीय समाज की। काश देश को अब भी ऐसे वीर सपूत मिल सके होते, जो अपनी कुर्बानियों से भारत माता का मस्तक ऊँचा उठा सकें। देश कोई माटी और लोहे से नहीं बनता, वह बनता है ऐसे जीवन और उबलते लहू से जिसमें युग-धारा को बदल सकने जैसी प्रचण्ड क्षमता उत्पन्न हो गयी हो।

सन्तान से भी मूल्यवान

स्पेन में गृहयुद्ध छिड़ा हुआ था। कम्युनिस्टों की लाल सेना और सत्तासीन सरकार की सेना में बराबरी का संघर्ष चल रहा था। तब स्पेन में प्रजातन्त्रीय ढंग की शासन प्रणाली थी और कम्युनिस्ट वहाँ अपनी अधिनायकवादी सरकार गठित करना चाहते थे। उनकी सेनाओं के पास काफी गोला-बारूद भी था और जुझारू नवयुवक भी। शस्त्रास्त्रों की सहायता अन्य कम्युनिस्ट राष्ट्रों से प्रचुर मात्रा में मिल रही थी इसलिए गृहयुद्ध में उनका पक्ष भी कमजोर नहीं पड़ रहा था और प्रजातन्त्रवादी सरकार के पास भी कर्तव्यनिष्ठ सैनिक थे इसलिए उसके पतन की सम्भावना भी नहीं दीख रही थी।

स्पेन की सेना का नेतृत्व जिस ढंग से कर्नल मास्करेडो कर रहे थे, वह सुरक्षा पंक्ति के रूप में इतनी मजबूत सिद्ध हो रही थी, उसे बेधकर आगे बढ़ पाना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं दीख रही था। इसलिए कम्युनिस्ट नेताओं ने छलछद्म से काम लेकर उस सुरक्षा पंक्ति को बेधने का निश्चय किया। कर्नल मास्करेडो का पुत्र मेनुअल मैड्रिड नगर में पढ़ता था और उस नगर पर कम्युनिस्ट सेनाओं ने अधिकार कर लिया था। उससे आगे था टोलेण्ड नगर जहाँ की रक्षा का दायित्व कर्नल मास्करेडो सँभाल रहे थे और उनके गढ़ को बेध पाना ही कठिन लग रहा था।

एक दिन कर्नल मास्करेडो अपने कैम्प में बैठे हुए युद्ध के अगले चरण पर विचार कर रहे थे कि तभी टेलीफोन की घण्टी घनघना उठी। कर्नल ने रिसीवर उठाया उधर से कम्युनिस्ट दल का नेता बात कर रहा था और कह रहा था—"कर्नल तुम्हारा पुत्र मैनुअल हमारी गिरफ्त में है। बन्दी के रूप में हमारे पास है। तुम टोलैण्ड नगर को छोड़ दो वरना हम उसे गोली मार देंगे।"

"आप अपने बन्दी से कैसा भी व्यवहार करने के लिए स्वतन्त्र हैं।" मास्करेडो ने कहा और रिसीवर रख दिया।

उत्तर सुनकर कम्युनिस्ट नेता को विश्वास नहीं हुआ कि यह कर्नल मास्करेडो बोल रहे हैं और अपने पुत्र के प्रति इस प्रकार निरपेक्ष भाव से बोल रहे हैं।

किसी ने कहा—"कर्नल को शायद यह विश्वास नहीं हुआ होगा कि उनका पुत्र मैनुअल बन्दी बना लिया गया है। इसलिए मैनुअल से ही फोन पर बात करवानी चाहिए।"

बात युक्तिसंगत थी। इसलिए कम्युनिस्ट नेता ने फिर फोन किया और कहा—"कर्नल तुम इस भ्रम में मत रहो कि मैनुअल बन्दी नहीं है। लो तुम स्वयं अपने पुत्र से बात कर लो।"

इसके बाद कम्युनिस्ट नेता ने फोन मैनुअल के हाथ में दे दिया। मैनुअल ने कहा—"पिताजी मैं मैनुअल बोल रहा हूँ। इन लोगों ने मुझे विद्यालय में ही बन्दी बना लिया है और मैं यहाँ बन्दी बनाकर रखा गया हूँ। मुझे भीषण यातनायें दी जा रही हैं और अन्तिम रूप से मुझे यह कह दिया गया है कि यदि तुम्हारे पिता फाटक नहीं खोलेंगे तो तुम्हें गोली से उड़ा दिया जायगा।"

कर्नल ने अपने पुत्र की आवाज पहचान ली। पुत्र की करुण वाणी ने उनके अन्तस्तल को स्पर्श किया किन्तु कर्तव्य पालन की दृढ़ता के सामने वात्सल्य की लहर विलीन हो गयी। उनका कण्ठ अवरुद्ध होने लगा फिर उन्होंने कहा—"बेटे ! मेरे प्यारे बेटे ! तुम मेरा कर्तव्य जानते हो और अपना भी। मातृभूमि के लिए एक सत्पुत्र की भाँति बलिदान देना पड़े, उसमें अपना गौरव समझो और मुझे भी इसी में गौरव अनुभव होगा।"

मैनुअल ने इन प्रेरणाओं को आशीर्वाद समझा। मृत्यु से पहले भी उन्हें कोई भय नहीं था। कम्युनिस्ट दल के नेता भी वहीं पास में ही बैठे हुए पिता पुत्र की बात सुन रहे थे पर उनके लिए इस बलिदान भावना का कोई मूल्य नहीं था। नेता ने आज्ञा दी और तुरन्त मैनुअल को गोली मार दी गयी।

परोपकाराय सतां विभूतयः

रात्रि का समय था। कल-कल करती नर्मदा बही जा रही थी। मण्डला के समीपवर्ती एक कच्चे पुल पर से एक नौ वर्षीया कन्या अपनी माँ के साथ नर्मदा पार कर रही थी।

पता नहीं कैसे—अचानक ही लड़की का पैर फिसला और वह नदी में जा गिरी। उसकी माँ जोर-जोर से सहायता के लिए चिल्लाने लगी। उसी पुल पर से, उस समय एक मोटर मैकेनिक भी गुजर रहा था। उसने महिला का करुण-क्रन्दन सुना और पास आकर पूछा—"क्या बात है बहिन ?" रोते-रोते महिला ने लड़की के गिरने की बात बताई तथा सहायता के लिए उपयुक्त तैराक व्यक्ति को शीघ्र खोज लाने की प्रार्थना की।

अथाह जल। नर्मदा का बहाव भी काफी तेज है। फिर रात का समय। दिन होता तो डूबती-उतराती बालिका दीख पड़ती और आसानी से दिशा ज्ञान हो जाता, किन्तु वह व्यक्ति वास्तव में मानव कहलाने योग्य ही था। वह सामान्य रूप से तैरना जानता था। तत्काल पानी में कूद पड़ा। उसने सोचा कि अपने प्राणों का मोह क्या करना ? यदि एक माँ की गोद सूनी होने से बचा ली तो मानवता के प्रति अपना कर्तव्य पूरा कर लूँगा।

उधर पानी में वह व्यक्ति निरन्तर खोजता रहा उस बालिका को और इधर उसकी माँ अब भी निरन्तर विलाप कर रही थी तथा सहायता के लिए चिल्ला रही थी। कुछ व्यक्ति उसकी आवाज सुनकर आये तथा निकट के पुलिस थाने को सूचना पहुँचा दी गई।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनवरत् ढूँढ़ते-ढूँढ़ते आखिर वह व्यक्ति उस बालिका को पा ही गया। जैसे-तैसे उसे किनारे पर एक पहाड़ी के नीचे लाकर फेंक दिया किन्तु इस प्रयास में वह इतना अधिक थक गया था कि स्वयं अपना शरीर सँभालकर पानी से बाहर न निकल सका और पानी के एक थपेड़े के साथ ही प्रवाह में बह गया।

तब तक वहाँ पुलिस भी पहुँच चुकी थी और बचाव के साधन भी।

हाल ही कुछ आदमी एक नाव पर चल दिये। एक रस्सा उसी दिशा में फेंका गया उसके सहारे वह धीरे-धीरे नाव तक आ गया और उसके प्राण बचा लिये गये।

किनारे पर लाकर तात्कालिक उपचार किया गया। होश में आते ही उसने सबसे पहले पूछा कि—"बालिका सकुशल है या नहीं ?" तब तक उसका उपचार किया जा चुका था और ठीक ढंग से साँस ले रही थी।

इधर लड़की की माँ, जिसे इस समय अपनी लड़की के बचने की प्रसन्नता से अधिक उस व्यक्ति के बचने की प्रसन्नता थी—आनन्द सिंचित कृतज्ञता के आँसू बहा रही थी।

जिसने सुना—उसी ने सराहा उस व्यक्ति के इस साहस को। हर वस्तु को दाँव पर लगा देना आसान है परोपकार के लिए। किन्तु प्राणों की बाजी आत्मबल के धनी बिरले ही लगा पाते हैं। पर जो लगा देते हैं वे ही सम्मान तथा गौरव पाते हैं संसार में।

महानता की ओर जाने वाला मार्ग

गुरुदासपुर के सिंधौली क्षेत्र में हैजे का प्रकोप हो गया। पानी के बुल-बुलों की भाँति आदमी औरतें बच्चे और वृद्ध मरने लगे। चारों ओर हाहाकार मच गया। उपचार अथवा रोकथाम का कोई साधन नहीं। लोग अपने सगे-सम्बन्धियों को छोड़-छोड़ कर गाँव से भागने लगे। भयानक अस्तव्यस्तता की परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गईं। ऐसा मालूम होता था कि यह संक्रामक रोग दूर-दूर फैलकर महामारी का रूप धारण कर लेगा।

युवक गुरुबख्शसिंह तीन दिन बाद शहर से गाँव आया था। साइकिल रखने भी न पाया था कि माँ ने कहा—"बेटा, जल्दी शहर लौट जा यहाँ तो बीमारी चल गई है। तीन दिन में ही न जाने कितने लोग मर गए हैं ?"

गुरुबख्शसिंह ने गाँव की जो हालत देखी, सुनी उससे उसकी आँखों में आँसू आ गये। वह एक मिनट भी घर न ठहर सका और रोग-शोक से ग्रस्त लोगों के घर जा-जाकर सान्त्वना, धैर्य और साहस देने लगा।

लोगों की हालत देखकर उसे कुछ करते-धरते न बन पड़ रहा था। वह उस विभीषिका से कुछ अचकचाने-सा लगा था और सोच रहा था कि क्या करे और क्या न करे, कि सहसा जैसे उसे कुछ-कुछ प्रकाश मिल गया और घर की ओर भागा। कुछ ही देर में लोगों ने देखा कि गुरुबख्शसिंह अपना प्राथमिक सहायता का डिब्बा और होम्योपैथिक दवा का वह बक्स उठा लाया, जिससे गाँव वालों को साधारण खाँसी, जुकाम, बुखार या सिर दर्द में दवा दिया करता था।

जो कुछ है वही सही—कुछ तो किया ही जाना चाहिए। युवक गुरुबख्शसिंह ने दुआ के साथ दवा देनी शुरू की और लोगों में आत्मविश्वास जगाया। हृदय की भावना से भरे सत्प्रयास का प्रभाव पड़ा। दवा ने अनेकों पर अपना काम किया और रोगी तथा भय-रोगी आशान्वित होने लगे। लोगों को ऐसा लगने लगा जैसे रोग रुकने लगा। विश्वास भावना के फैलते ही आतंकित गाँव में चेतना आ गई। अब तो बहुत से लोग सिरका, प्याज, नमक, नीम, हींग, काली मिर्च आदि के निदान बताने और पड़ौस से अमृतधारा, कपूर लाने और लोबान, गन्धक तथा हवन-सामिग्री रोगियों के घरों में जलाने में लग गए। गाँव में जन-सेवा का एक आन्दोलन ही चल पड़ा।

किन्तु यह सब आशा और रोकथाम थी भावनात्मक ही। गुरुबख्शसिंह अच्छी तरह समझ रहा था कि रोग का वास्तविक उपचार अथवा रोकथाम नहीं हो पा रही है। उसने सबसे कह दिया कि चिन्ता का विषय नहीं सब ठीक हो जाएगा जो कोई जो कुछ ठीक-ठीक उपाय जानता हो करता रहे अधूरे ज्ञान से गलती न हो जाये। मैं अभी आता हूँ।

इतना कहकर गुरुबख्शसिंह घर आया और साइकिल लेकर चलने को हुआ। तभी माँ ने फिर कहा—"बेटा शहर चला जा गाँव में रोगियों के पास जा-जाकर क्यों अपनी जान को खतरे में डाल रहा है।" गुरुबख्शसिंह यह कहकर, कि "तू चिन्ता मत कर भगवान सबका रक्षक है और यदि ग्रामवासियों की सेवा में मेरी जान भी चली जायेगी तो भी तुझे एक अच्छे बेटे की माँ होने का गौरव मिलेगा," चल दिया माँ अपने अच्छे बेटे को प्रेम-भरी आँखों से देखती विह्वल हृदय से उसका मंगल मनाती रही।

दो-तीन घण्टे बाद गुरुबख्शसिंह दो डाक्टरों तथा बहुत-सी दवाओं के साथ एक कार में आ पहुँचा। समुचित उपचार शुरू हुआ। कुओं में लाल दवा पड़ गई और लोगों को दवा बाँटी गई। डॉक्टर अपना काम करके चले गए किन्तु गुरुबख्शसिंह तीन दिन डाक्टरों की दी और बताई दवा को विधिपूर्वक देता और रोगियों की सेवा करता रहा। उस दिन के बाद फिर गाँव मे कोई मौत नहीं हुई और शीघ्र ही सब अमन-चैन हो गया।

संस्कृति की रक्षा बातों से नहीं, कार्यों से

सन् १८८६ की बात है कि ला. मुन्शीराम जी ने (बाद में स्वा. श्रद्धानन्द) ने अपनी छोटी लड़की को एक ईसाई स्कूल में दाखिल कराया, क्योंकि तब तक हिन्दुओं के या आर्य समाज के कोई कन्या-स्कूल नहीं खुले थे। एक दिन स्कूल से आकर लड़की खेलते-खेलते गाने लगी—

तू तो ईसा—ईसा बोल—तेरा क्या लगेगा मोल।
ईसा मेरा राम रमैया—ईसा मेरा कृष्ण कन्हैया।।

इस गीत को सुनते ही मुन्शीराम जी चौंक पड़े। उन्होंने समझ लिया कि विधर्मियों के स्कूलों में अपनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सन्तानों को भेजने का यही परिणाम होगा कि उनकी श्रद्धा अपने धर्म पर से शिथिल हो जायेगी और वे अन्य धर्म को श्रेष्ठ समझने लगेंगे। उसी दिन से उन्होंने एक "आर्य कन्या शाला" स्थापित करने का निश्चय कर लिया। अगले वर्ष ही जालन्धर में इसका बीजारोपण किया गया, जो धीरे-धीरे बढ़कर "कन्या महाविद्यालय" के नाम से देश-विदेशों में प्रसिद्ध हो गया। इसमें कन्याओं को प्रचलित पढ़ाई के साथ धार्मिक और जातीयता के भावों को दृढ़ करने वाली शिक्षा देने का ध्यान रखा जाता था। जैसा कहा जाता है कि "नारी ही राष्ट्र की निर्मात्री होती है" कन्या महाविद्यालय का पाठ्यक्रम ऐसा रखा गया कि वहाँ से प्राचीन भारतीय आदर्श का पालन करने वाली लड़कियाँ शिक्षित होकर निकलें, जो हर तरह से जाति और धर्म में फैली हुई शिथिलता को दूर करके भावी सन्तान को स्वदेश और स्वधर्म का रक्षक बनायें।

कुछ समय बाद मुन्शीराम जी को लड़कियों की तरह लड़कों के शिक्षण का विचार आया। उन्होंने देखा कि वर्तमान कालेजों की शिक्षा, जो अँग्रेजी के माध्यम से ही दी जाती है, युवकों में से भारतीय संस्कृति का लोप करती जाती है, वहाँ पढ़ने वालों का आचार-विचार, वेष-भूषा, खान-पान सब विदेशीपन की तरफ झुकता जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि लड़कों को प्राचीन भारतीय आदर्श के अनुसार पच्चीस वर्ष की आयु तक लौकिक शिक्षा के साथ वेद और शास्त्रों का भी अध्ययन कराया जाय जिससे वे वैदिक सिद्धान्तों के ज्ञाता बन सकें। ऐसे ही युवक आगे चलकर भारतीय संस्कृति के पालन करने वाले और रक्षक हो सकते हैं। इस उद्देश्य को सामने रखकर उन्होंने गुरुकुल की स्थापना का प्रस्ताव "अपनी प्रतिनिधि सभा, पंजाब" के सम्मुख रखा। चूँकि यह कई प्रकार से ऋषि दयानन्द जी के सिद्धान्तों के अनुकूल था इसलिए अधिकांश सदस्यों ने इसका समर्थन किया और यह पास हो गया।

प्रस्ताव तो पास हो गया, पर इसको कार्य रूप में परिणत करना सहज न था। उस समय लाहौर में "दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालेज" की स्थापना हो चुकी थी और लाला हंसराज तथा अधिकांश शिक्षा-प्रेमी कार्यकर्त्ता उसे सफल बनाने में संलग्न थे। इसलिये यह प्रश्न सामने आया कि इस नवीन शिक्षा-संस्था के लिए धन और कार्यकर्त्ता कहाँ से प्राप्त किये जाएँ ? उन्होंने प्रतिज्ञा की कि जब तक गुरुकुल के लिये पर्याप्त धन इकट्ठा न कर लूँगा तब तक मैं अपने घर में कदम नहीं रखूँगा। मुन्शीरामजी प्रतिनिधि सभा के अधिवेशन से लौटकर अपने घर जालन्धर आये, पर अपनी प्रतिज्ञा को याद करके घर नहीं गये वरन् आर्य समाज मन्दिर में ही रुक गये। अपनी अच्छी तरह चलती हुई वकालत स्थगित कर दी और कुछ सहकारियों को लेकर गुरुकुल के लिये धन-संग्रह करने को निकल पड़े और तीस हजार के बजाय चालीस हजार की धनराशि लाकर प्रतिनिधि सभा के सम्मुख उपस्थित कर दी।

इसके पश्चात् ऐसे कार्यकर्ता तथा विद्यार्थियों की बात आई तो मुन्शीराम जी ने ही अपनी वकालत सदा के लिए छोड़कर वन में रहने की प्रतिज्ञा की और सबसे पहले अपने दोनों पुत्रों—इन्द्र और हरिश्चन्द्र को गुरुकुल में भर्ती कराया। उनके इसी त्याग और तपस्या का यह परिणाम निकला कि एक दिन यह गुरुकुल एक अद्वितीय शिक्षा-संस्था बन गया, जिसे देखने समस्त भारत तथा विलायत तक के महान् व्यक्ति आते रहते थे।

देशहित के लिए अपने अरमानों का खून करने वाली वीरवती

चौदहवीं शताब्दी की बात है। देवगिरि नामक एक छोटे से राज्य में एक क्षत्रिय वंशीय राजा राज्य करता था। उसका नाम रामदेव था। उस समय भारतवर्ष देवगिरि जैसे अनेकों छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। हिन्दू राजाओं की परस्पर फूट से लाभ उठाकर समय-समय पर विदेशियों ने भारत पर आक्रमण किया है, इस सुनहले खेत को उजाड़कर वीरान किया है। यहाँ की अपार धन राशि को लूटकर अपने खजानों को भरा है। यहाँ की संस्कृति, सभ्यता को कुचलकर नष्ट किया है।

राजा रामदेव के समय भी अलाउद्दीन ने देवगिरि पर चढ़ाई की। अलाउद्दीन ने राजा रामदेव को अपनी आधीनता स्वीकार करने का सन्देश भेजा। सन्देशवाहक ने यथासमय देवगिरि पहुँचकर सन्देश राजा को दिया।

आधीनता स्वीकार करने का नाम सुनते ही राजा रामदेव का राजपूती खून उबल उठा। उसने अलाउद्दीन से लड़ाई करने की ठान ली और सन्देशवाहक से कहलवा भेजा कि "भारत के क्षत्रिय पराधीन होने के बदले युद्ध में खुशी-खुशी मर जाना ही पसन्द करते हैं।"

अलाउद्दीन ने राजा रामदेव का प्रत्युत्तर प्राप्त कर युद्ध की तैयारियाँ शुरू कर दीं। उसे अपनी असंख्य सेना युद्ध के लिये परिपूर्ण सामग्री, भिन्न-भिन्न तरह के अस्त्र-शस्त्र एवं साधनों पर पूरा विश्वास था और राजा रामदेव को जीत लेना बायें हाथ का खेल समझता था। दोनों ओर से युद्ध प्रारम्भ हो गया। अलाउद्दीन की अपार सेना के साथ मुट्ठी भर राजपूत अपनी पूरी शक्ति और शौर्य के साथ युद्ध कर रहे थे। कई दिनों तक युद्ध होता रहा। आखिर राजपूतों के प्रचण्ड पराक्रम के सम्मुख अलाउद्दीन अधिक देर तक नहीं टिक सका और उसे हारकर वापस लौट जाना पड़ा।

राजा रामदेव की विजय हुई। देवगिरि की सारी प्रजा एवं सिपाहियों ने विजय के उपलक्ष में उत्सव मनाया। सारी नगरी विजयोत्सव में मग्न थी।

राजा रामदेव की सेना का एक मराठा सरदार कुछ समय पूर्व एक लड़ाई में मारा गया था। वह पीछे अपनी विधवा पत्नी एवं एकमात्र कन्या को छोड़ गया था। कन्या का नाम वीरवती था। राजा ने इस अनाथ बालिका का पालन-पोषण अपनी पुत्री के समान मानकर किया था। उसकी माँ की व्यवस्था ठीक प्रकार से की थी। राजा रामदेव ने इस असहाय परिवार की भाँति अन्य परिवारों का पालन भी इसी प्रकार करते हुए एक सच्चे शासक का परिचय दिया। वीरवती युद्ध कौशल में भी इतनी छोटी उम्र में ही काफी चतुर थी और अदम्य साहस और स्फूर्ति की मूर्ति ही थी। वह राजा रामदेव की सेना में एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सिपाही के रूप में काम करती थी और लड़ाई के वक्त युद्ध करती थी। वीरवती की आयु लगभग २० साल हो जाने पर उसका विवाह सम्बन्ध एक मराठा युवक कृष्ण राव से तय कर दिया गया जो राजा की सेना में एक उच्च पद पर कार्य करता था। वीरवती ने भी उसे मन ही मन अपना भावी पति चुन लिया था।

छोटी-सी राजपूत सेना से हारकर अलाउद्दीन मन ही मन दुःखी होता हुआ अपने राज्य की ओर लौट रहा था। इस पराजय ने उसके हृदय को भारी धक्का पहुँचाया। देवगिरि के राज्य पर उसकी क्रूर दृष्टि लगी हुई थी। वह येन-केन प्रकारेण इस राज्य का अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहता था। मार्ग में शाम हो जाने से उसने एक जंगल में अपनी सेना के डेरे लगा दिये। युद्ध से थके एवं काफी दूर चले हुए भूखे सिपाही अपना-अपना भोजन कर विश्राम कर रहे थे, किन्तु उधर अलाउद्दीन को मन ही मन बड़ा दुःख हो रहा था, किन्तु वह एक दूरदर्शी एवं कूटनीतिज्ञ भी था। अन्त में उसे एक सूझ उत्पन्न हुई। उसने सोचा कि ये हिन्दू परस्पर एक-दूसरे से ईर्ष्या-द्वेष रखते हैं तथा अपने-अपने स्वार्थ के लिए एक दूसरे का अहित करने में नहीं चूकते और इसी कारण इतना बड़ा भारत देश छोटे राज्यों में बँटा हुआ है और इस पर भी ये परस्पर लड़ते-झगड़ते रहते हैं। वह इतना सोच ही रहा था कि पहरेदार ने आकर उसे खबर दी कि एक मराठा सरदार आपसे मिलना चाहता है, सम्भव है वह राजा रामदेव की सेना का एक उच्च अफसर है। बादशाह ने उसे अन्दर आने की आज्ञा दी।

राजा रामदेव की सेना का एक मराठा सरदार जिसका नाम कृष्णराव था और जिसका विवाह वीरवती से होने वाला था, बड़ा लोभी और स्वार्थपरायण व्यक्ति था। ऐसे व्यक्ति जिस देश एवं समाज में होते हैं वह दुर्भाग्य ही समझना चाहिए। कृष्णराव अलाउद्दीन के पास गया और उसने देवगिरि के किले का तथा वहाँ की सेना रसद आदि का पूरा-पूरा भेद बताने का वचन दिया, परन्तु इस शर्त पर कि वह जीते जाने पर उसे वहाँ का राजा बना देगा। फिर क्या था अलाउद्दीन खुशी के मारे फूल उठा और देश-द्रोही कृष्णराव का दिखावटी सम्मान किया। बादशाह पुनः लौट आया और उसने देवगिरि पर चढ़ाई कर दी। कृष्णराव भी चुपके से अपनी सेना में आ शामिल हुआ।

देवगिरि में अभी विजयोत्सव, समारोह के साथ मनाया जा रहा था कि अलाउद्दीन के दूसरे आक्रमण के समाचार ने रंग में भंग कर दिया। राजा रामदेव ताड़ गये कि हमारी तरफ के ही किसी व्यक्ति ने अलाउद्दीन को सारी गुप्त बातें बताकर चढ़ाई करने की प्रेरणा दी है।

अब अधिक सोचने का समय नहीं था। अल्प संख्या वाले राजपूत पुनः लड़ने के लिए तैयार हो गये। दोनों ओर से घमासान युद्ध हुआ। इतने में ही राजा रामदेव तथा उसके सैनिकों ने देखा कि सेना का प्रमुख अफसर कृष्णराव युद्ध नहीं कर रहा है वरन् अपनी सैनिक टुकड़ी का गलत निर्देशन कर रहा है। कई सिपाहियों ने इसका कारण पूछा इतने में ही शत्रु पक्ष को काटती हुई वीरवती वहाँ आ पहुँची और उसने वस्तुस्थिति को ताड़ लिया। वह समझ गई कि कृष्णराव ने ही बादशाह को गुप्त भेद बताकर आक्रमण के लिए प्रेरित किया है। वीरवती की आँखों में खून उतर आया। उसके कोमल अंग क्रोध से थर-थर काँपने लगे। उसे कृष्णराव की उस बात का ध्यान आया जो कुछ ही समय पहले उसने बताई थी। वीरवती ने गरजकर कृष्णराव की छाती में अपनी लपलपाती हुई कृपाण मार दी और कहने लगी यह देशद्रोही है, इसकी यही गति होनी चाहिए।

कृष्णराव ने घायल अवस्था में भूमि पर लेटते हुए कहा "वीरवती मैं देशद्रोही हूँ। किन्तु तुम्हारा....." वीरवती बीच में ही बोल उठी 'मैं जानती हूँ कि मेरा तुमसे निकट भविष्य में ही विवाह होने वाला था और मैंने तुम्हें अपना भावी पति चुन लिया था और इस सम्बन्ध में भारतीय कुमारी एक पुरुष को अपना पति मानकर स्वप्न में भी दूसरे युवक का स्मरण नहीं करती है, ठीक इसी प्रकार मैं भी दूसरे व्यक्ति की बात नहीं सोच सकती। किन्तु एक देशद्रोही को मारकर मैंने अपने देश के प्रति अपना कर्तव्यपालन किया है। वीरवती का अपने देश के प्रति कर्तव्यपालन भारतीय इतिहास के सुनहरे पन्नों में निर्मल प्रकाश से चमकता रहेगा। वीरवती की तरह हमें भी अपने कर्तव्य पालन के लिए बड़े से बड़े साहसी कदम उठाने में संकोच न करना चाहिए।

बालक जो देश के लिए मर मिटा

यह महाराणा प्रताप की बात नहीं है। यह तो चित्तौड़ के एक साधारण राजपूत बालक की वार्ता है। उसका नाम भी प्रताप था। उसे गाने-बजाने का बहुत ही शौक था। उसके माता-पिता और मित्र उससे अप्रसन्न थे। सब लोग उसे डाँटते और चिढ़ाते थे कि 'राजपूत के लड़के होकर तुम तलवार चलाना नहीं सीखते हो। देश धर्म पर जब संकट आयेगा तब तुम अपने कर्तव्य का कैसे पालन करोगे ? देश की सेवा न करे, जाति और धर्म के लिए मर-मिटने को तैयार न हो, ऐसा राजपूत भी क्या किसी काम का।'

प्रताप उन लोगों से कहा करता था—'देश और धर्म की रक्षा केवल तलवार से नहीं होती। संगीत द्वारा भी पर्याप्त कार्य हो सकता है। काम पड़ने पर मैं बता दूँगा कि देश और धर्म की रक्षा के लिए मर मिटने में, मैं किसी से पीछे नहीं हूँ।

किसी को भी प्रताप की बात पर विश्वास नहीं होता था। लोग समझते थे कि यह सुकुमार तो है ही, डींग हाँकने वाला भी है। प्रताप भी अपनी धुन का ऐसा पक्का था कि वह किसी की भी बात पर ध्यान नहीं देता था।

उन दिनों दिल्ली में मुगलों का राज्य था। वह मनमाने अत्याचार का बर्ताव हिन्दुओं के साथ कर रहे थे। बराबर हिन्दुओं से लड़ाइयाँ हो रही थीं। हारे हुये हिन्दुओं को मुसलमान बनाया जा रहा था। यहाँ तक कि हिन्दू धर्म को ही जड़ से खोदकर नष्ट कर देने पर तुले हुये थे। उस समय मेवाड़ हिन्दू राजपूतों का केन्द्र तथा सबका सिरमौर था। हिन्दुओं के इस केन्द्र को ही समाप्त करने के विचार से मुगल बादशाह ने एक बड़ी भारी सेना लेकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चित्तौड़ पर चढ़ाई कर दी। लेकिन चित्तौड़ का किला इतना दृढ़ था कि मुगल सेना उस पर विजय नहीं पा सकती थी। किले की दीवार या फाटक टूटते ही न थे। बार-बार मुगल सेना को किले के भीतर के राजपूत वीरों के बाणों की मार खाकर पीछे लौटना पड़ता था।

चित्तौड़ के सभी शूरवीर राजपूत महाराणा की सेना में भर्ती हो गये थे। लेकिन प्रताप एक तो बालक था और दूसरे उसे अस्त्र-शस्त्र चलाना भी नहीं आता था। वह सेना में भर्ती नहीं हुआ, पर उसने अपने अनुकूल काम चुन लिया। वह राजपूतों की सेना में घूम-घूम कर वीरता के गीत गाता और उन्हें उत्साह दिलाता था। वह आसपास की बस्तियों में घूम-घूम कर वीरता के गीत सुनाकर युवकों को सेना में सम्मिलित होने को प्रोत्साहित करता था। उसके गीतों का यह प्रभाव हुआ कि महाराणा की सेना दुगुनी हो गई।

एक दिन जब प्रताप किसी पास की बस्ती में सितार बजाकर गीत सुना रहा था, एक मुगल सैनिक ने छुपकर उसका गीत सुन लिया। जब शाम को प्रताप लौटने लगा, तब उस सैनिक ने प्रताप को पकड़ लिया और सेनापति के पास ले आया। मुगल सेनापति प्रताप को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उसने कहा—'लड़के तुम्हें हमारे लिए गीत सुनाना होगा।'

प्रताप ने कहा—'मेरा काम ही गीत सुनाना है। आप जब कहें मैं गाने को तैयार हूँ।"

मुगल सेनापति ने रात को सेना सजायी। चित्तौड़ के किले के पास वह सेना के साथ आया। किले के दरवाजे पर प्रताप को खड़ा करके उसने कहा—"प्रिय तुम अपने गीत गाओ।"

मुगल सेनापति ने सोचा कि प्रताप के गीत सुनकर किले के भीतर के लोग समझेंगे कि उनकी सहायता के लिए कोई दूसरी राजपूती सेना आयी है। इस धोखे में वे किले का फाटक खोल देंगे। प्रताप मुगल सेनापति की चालाकी समझ गया। उसने ऐसा गीत गाना प्रारम्भ किया कि उसे सुनकर किले के राजपूत सावधान हो गये। उन्होंने मुगल सेना पर पत्थरों और तीरों की वर्षा प्रारम्भ कर दी। बहुत-से मुगल सैनिक मारे गये। मुगल सेनापति ने डाँटते हुये प्रताप से पूछा—'लड़के ! तू क्या गा रहा है ?'

प्रताप ने बड़ी निर्भयता से कहा—मैं गीत में अपने वीरों से कह रहा हूँ, शत्रु द्वार पर खड़ा है। सोओ मत। धोखे में मत आओ ! किला मत खोलो ! पत्थर मारो ! शत्रु का कचूमर निकाल दो।'

मुगल सेनापति ने प्रताप का सिर एक झटके में काट दिया किन्तु राजपूत सावधान हो गये थे। मुगल सेना को निराश होकर लौट जाना पड़ा। दूसरे दिन राजपूतों को प्रताप की लाश मिली। उस धर्मप्रेमी, देश पर प्राण देने वाले वीर बालक के शव को स्वयं महाराणा ने अपने हाथों से चिता पर रखा।

सिंहगढ़ विजय

शिवाजी को सूचना मिली कि कोडलगढ़ में औरंगजेब द्वारा नियुक्त अधिकारी एक हिन्दू कन्या के साथ बलात् निकाह पढ़वाने वाला है। उन्होंने इस अनीति को रोकने के लिए कोडलगढ़ विजय के लिए तुरन्त कूच करने की आज्ञा अपने प्रिय योद्धा तानाजी के पास भेज दी।

उन्हीं दिनों तानाजी के पुत्र का विवाह होने वाला था, किन्तु उन्होंने कर्तव्य की गरिमा समझी और तुरन्त प्रस्थान किया। समय पर पहुँचकर कन्या का उद्धार किया तथा गढ़ जीत लिया किन्तु उस अभियान में स्वयं भी बलि हो गये।

शिवाजी को गढ़ विजय तथा तानाजी के बलिदान का समाचार मिला तो उनके मुख से निकला—गढ़ आया पर सिंह चला गया। दुर्ग का नाम सिंहगढ़ ही रख दिया गया।

(१) कर्तव्य की पुकार पर पारिवारिक बन्धनों को महत्व नहीं दिया जाना चाहिए।

(२) कर्तव्य पालन करने वाले कर्मवीरों को यश और सम्मान दिया जाना चाहिए।

नमस्कार

सन्त फ्राँसिस ने एक कोढ़ी को चिकित्सा के लिए धन दिया, वस्त्र दिये स्वयं ने उसकी सेवा की। एक गिरजाघर की मरम्मत के लिए दुकान की कपड़े की कई गाँठें और अपना घोड़ा बेचकर, सारा धन दे दिया। उनके पिता को इन बातों का पता चला तो उन्होंने उन्हें मारा-पीटा ही नहीं अपनी सम्पदा के उत्तराधिकार से वंचित भी करने की धमकी दी।

पिता की यह धमकी सुनकर—"आपने मुझे एक बहुत बड़े मोह बन्धन से मुक्त कर दिया है। मैं स्वयं उस सम्पत्ति को दूर से प्रणाम करता हूँ जो परमार्थ और लोक मंगल के काम में नहीं आ सकती।" यह कहते हुए उन्होंने अपने कपड़े तक उतार दिये। उन्होंने पिता की सारी सम्पदा के अधिकार को लात मार दी।

लोकसेवा के मार्ग में बाधा बनने वाली सम्पदा का परित्याग ही उचित है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर्त्तव्यपरायणता और सिद्धान्तनिष्ठा

कर्त्तव्य की वेदी पर ममता

आकाश में घटाटोप बादल छाये हुए थे और घनघोर वर्षा हो रही थी। नदी में इतनी तेज बाढ़ आई हुई थी कि जहाँ तक दृष्टि जाती, असीम और अगाध जलराशि ही दिखाई देती थी। बाढ़ के अतिरिक्त एक समस्या यह भी थी कि कई जगह जर्मन सेनाओं का जबरदस्त पहरा बैठा हुआ था। इधर रूसी गुप्तचर संस्था का एक गुप्तचर अपनी पत्नी और बच्चों को साथ लेकर एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण सूचना लेकर रूसी अधिकारियों के पास पहुँचने के लिए बेचैन था। जिस नगर में वह रहता था, उस पर जर्मनी की सेनाओं ने कब्जा कर लिया था और उस गुप्तचर के बारे में उन लोगों को पता लग गया था कि वह रूस का भेदिया है। इसलिए वहाँ रहना किसी भी दृष्टि से खतरे से खाली नहीं था।

इस गुप्तचर का नाम था कोत्सीनेन, साथ में उसकी पत्नी थी तानिया और दो बच्चे, यह दूसरे विश्वयुद्ध के समय की बात है। कोत्सीनेन और तानिया ने अपने दो बच्चों के साथ नदी के उस पार बसे गाँव में एक ग्रामीण की झोंपड़ी में डेरा डाला, वह ग्रामीण कोत्सीनेन का परिचित था। लम्बा और पैदल सफर करने के कारण दोनों बच्चों की हालत बुरी हो गई थी। रात का एक पहर बीत चुका था।

कोत्सीनेन ने उठकर सोने के लिए बिस्तर बिछाया आस-पास की झोंपड़ियों में रहने वाले लोग समझ चुके थे कि उनके पड़ोस में आकर ठहरा परिवार कोई साधारण परिवार नहीं है। कोत्सीनेन और तानिया बच्चों को लेकर चर्चा कर रहे थे कि मौसम बहुत खराब है और बच्चों की हालत पहले से ही खराब है। फिर मौसम की मार न जाने कब क्या गुल खिला दे ?

विचित्र धर्म संकट में उलझे थे दोनों कि क्या किया जाए ? तानिया ने कुछ देर चुप रहने के बाद कहा—"शायद सुबह तक इन दोनों की हालत सुधर जाय।"

कुछ नहीं बोला कोत्सीनेन।

तानिया ने अपने पति को चिंतित देखकर कहा—"तुम चिन्ता मत करो। इस कारण हमें अपना कर्त्तव्य पालन करने में कोई बाधा नहीं आयेगी।"

कहने को कह दिया था तानिया ने, पर कोत्सीनेन जानता था कि वह एक माँ है और एक माँ के लिए अपने बच्चों की चिन्ता, अपनी चिन्ता से बढ़कर होती है।

वह चुप रहा।

दोनों पति-पत्नी अपने भीतर चल रहे अन्तर्द्वन्द्व से जूझते हुए एक-दूसरे की ओर ताक रहे थे। बच्चे बीच-बीच में जोरों से खाँसने लगते और तानिया दौड़कर हड़बड़ा कर उन्हें सँभालने में जुट जाती।

तभी दरवाजे पर दस्तक सुनाई दी। तानिया ने उठ कर दरवाजा खोला तो उसी झोंपड़ी में रह रही स्त्री थी। उसने पूछा—"क्या हुआ है बच्चों को ?"

'बहुत तेज बुखार है और पसलियाँ भी चल रही हैं,' तानिया ने कहा।

'बहन मैं कोई वैद्य-हकीम तो हूँ नहीं। बस थोड़ी-सी घरेलू दवाएँ जानती हूँ, वह स्त्री अन्दर आ गई थी और कुछ देर तक बातचीत करने के बाद बोली—"मैं जानती हूँ कि तुम लोग हमारे दुःख-दर्द मिटाने के लिए अपने हृदय पर पत्थर रखे हो। सफर के कारण ये तुम्हारे कोमल फूल कुम्हला गये हैं। अगर तुम इन्हें मेरे पास छोड़ जाओ, तो इनके इलाज का कोई प्रबन्ध हो सकता है।"

मकान मालकिन को संभवतः इन लोगों के मिशन का पता था। तभी उसने ऐसा प्रस्ताव रखा। वास्तव में इन लोगों का वहाँ से चल देना जरूरी था, सुरक्षा की दृष्टि से भी और कर्त्तव्य की दृष्टि से भी।

बड़े ही भारी मन से तानिया अपने आप में यह प्रस्ताव मानने के लिए तैयार हुई और फिर उस घर से ऐसे बाहर आई कि पीछे मुड़कर भी नहीं देखा।

कर्त्तव्य की चूक का ऋण

द्वितीय महायुद्ध चल रहा था। आरम्भ में मित्र राष्ट्रों को बड़ी क्षति उठानी पड़ी। परन्तु अमेरिकन सेना के कर्त्तव्यनिष्ठ सैनिकों का हौसला कम नहीं हुआ। उसी युद्ध में एक महत्त्व के मोर्चे पर विलियम स्कॉट नामक सैनिक भी लड़ रहा था। जिस दिन की यह घटना है, उस दिन स्कॉट को पूरे दिन पहरा देना पड़ा था। उस सीमा पर शत्रु-सेना के हमले की, हर घड़ी संभावना थी। स्कॉट सारे दिन पहरा देता रहा। संध्या समय जब वह अपने डेरे पर लौटा तो थकान के मारे उसका बदन चूर-चूर हुआ जा रहा था।

अब उसकी ड्यूटी बदलनी थी। उसके स्थान पर दूसरा व्यक्ति पहरे पर नियुक्त होना था। उसे डेरे में वह और उसका साथी मिलाकर दो व्यक्ति थे। शेष अपने-अपने स्थानों पर ही तैनात थे। अपने आगमन की सूचना देने और साथी को ड्यूटी देने जाने के लिए कहने हेतु वह कुछ कहने को हुआ ही था कि उसकी निगाह टैण्ट के भीतर लगे बिस्तर पर पड़ी। नियमानुसार प्रतिदिन उसका साथी इस वक्त तो जाने के लिए पूरी तरह तैयार हो चुका होता था। फिर आज वह सो क्यों रहा है ? आज सुबह जब वह अपनी ड्यूटी पर लौटा था तो बुखार की शिकायत कर रहा था, कहीं उसकी तबियत तो ज्यादा खराब नहीं हो गयी। मुँह से निकलने वाले शब्द होठों में ही रह गये और उसने अपने साथी के सिर पर हाथ रखा-मुँह पर ढका ओढ़ना हटाकर।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शरीर की गर्माहट मालूम होते ही उसने अपना हाथ एकदम हटाया और चिन्तित मुद्रा में बिस्तर पर पड़े साथी की ओर ताकने लगा। हाथ का स्पर्श पाकर साथी सैनिक ने आँखें खोली। वह कुछ कहे इसके पूर्व ही स्कॉट बोल उठा—'तुम चिन्ता न करो। तुम्हारी ओर से ड्यूटी मैं दूँगा।' एक क्षण रुककर वह फिर बोला—'मैं डाक्टर को कहता जाऊँगा।' आवश्यक व्यवस्था कर वह जैसी हालत में आया था वैसा ही लौट गया।

यद्यपि शरीर इस कदर थका हुआ था कि अब किसी प्रकार का दबाव सहन करने से इनकार कर रहा था तो भी मानवीय हृदय और उसमें बसने वाली संवेदना, सहानुभूति तथा प्रेम का तकाजा भी तो उपेक्षित नहीं किया जा सकता। स्कॉट रात भर ड्यूटी देता रहा। शरीर को धक्के देकर, मन को कड़ा करके, नींद को परास्त करने के लिए संघर्ष करते हुए वह अपने साथी का दायित्व मुस्तैदी से पूरा करता रहा। नींद को दूर ही रखने के लिए वह भले ही लाख सावधान रहा हो फिर भी रात्रि के अन्तिम पहर में उसकी झपकी लग ही गयी। दुर्भाग्य—जाँच के समय वह पकड़ा गया और सैनिक न्यायालय ने उसे गोली से उड़ाने की सजा दी।

जेल की कोठरी में पहुँच जाने के बाद दुःख हुआ, बड़ा पछतावा आया। लेकिन इस बात का नहीं कि मैंने अपने साथी की ड्यूटी अपने जिम्मे लेकर यह आफत मोल ली। वरन् इस बात का कि मैं अपना कर्त्तव्य निभाने से चूक गया। यह संयोग ही था कि उस दिन देश के सर्वोच्च सेनाधिपति राष्ट्राध्यक्ष मोर्चे पर दौरा करने आये। इस दौरे में ही वे जेल का निरीक्षण करने भी गये। स्कॉट को देख और उसकी सारी कहानी सुनकर उन्होंने मनुष्य हृदय की इस आत्मीयता और सहानुभूति को सराहा तथा बोले—"जवान ! तुम्हें गोली तो नहीं मारी जाएगी परन्तु तुम्हारे कारण सेना को जो तकलीफ हुई, क्या उसका ऋण चुका सकोगे।"

"मैं अपनी सारी जायदाद देश का ऋण चुकाने के लिए तैयार हूँ"—स्कॉट ने कहा।

राष्ट्रपति ने स्कॉट के कन्धे पर हाथ रखकर बड़ी ही आत्मीयता से कहा—"कर्त्तव्य की चूक का ऋण जायदाद से नहीं चुकाया जा सकता मित्र ! तुम प्रतिज्ञा करो कि वैसी भूल दुबारा न करोगे।" स्कॉट ने प्रतिज्ञा कर ली कि—"मैं दुबारा वैसी भूल नहीं करूँगा।" कुछ दिनों बाद ही राष्ट्रपति को एक छोटा-सा सैनिक पत्र मिला जिसमें लिखा था—"आपको जो वचन दिया था, उसे पूरा करते हुए ही मैं इस संसार से विदा हो रहा हूँ।"

चेहरे पर खिली मुसकान

बीजापुर की सेनाओं ने पन्हाला दुर्ग पर घेरा डाल रखा था। किले में कैद से हो गये थे, छत्रपति शिवाजी—जिन्होंने भारत में एक भारतीय राष्ट्र की स्थापना का लोह संकल्प लिया था और उस संकल्प को पूरा करने में जी-जान से जुटे हुए थे। बीजापुर के सुल्तान को इस बात में कोई रुचि नहीं थी कि दुर्ग पर किसका अधिकार हो ? वह तो शिवाजी को अपने सामने एक बन्दी के रूप में देखना चाहता था, जिन्होंने उसके चुने हुए योद्धाओं को चुटकियों में खेत कर दिया था और इसका बदला वह शिवाजी को अपने सामने तड़पते हुए देखकर लेना चाहता था तथा इसके लिए उसने अपनी सेना के शूरवीर सरदार सिद्धी जौहार तथा अफजल खाँ के लड़के फाजल खाँ को भेजा था।

सिद्धी जौहार १४ हजार पैदल और दस हजार सवारों को लेकर पन्हाला दुर्ग पर पहरा डाले हुए था और पन्हाला दुर्ग में घिरे हुए छत्रपति शिवाजी, शत्रु सेनाओं की ताजीतर सूचनाओं से अवगत होते हुए अपनी रणनीति बनाते जा रहे थे। उस दिन उन्हें सूचना मिली कि दुर्ग में खाद्य सामग्री कम होने लगी है। भूखे सैनिकों का उत्साह कभी भी टूट सकता है और उन्होंने अपने सरदारों को इकट्ठा कर कहा—"हमें अब सिद्धी से सन्धि कर लेनी चाहिए। उसके पास दूत भेजो और कहलवा दो कि सन्धि की वार्ता के लिए मैं स्वयं उसके पास आऊँगा, बड़े ही चतुर आदमियों को भेजना और किसी भी तरह सायंकाल का समय वार्ता के लिए निश्चित करना।"

छत्रपति स्वयं जायेंगे ?

कई सरदार हतप्रभ देखते रह गये।

कुछ ने कहा—"महाराज को जानबूझ कर शेर की माँद में नहीं जाना चाहिए और फिर यह तो वर्षाकाल है। इस ऋतु में कोई कब तक टिका रह सकता है।"

"ठीक कहते हो मैं भी इस बात को जानता हूँ पर इसके अलावा कोई उपाय नहीं है।" और फिर शिवाजी ने जो योजना उन सरदारों के सामने रखी, उसकी सफलता के सम्बन्ध में सभी आश्वस्त हो गये। सिद्धी जौहार के पास सन्धि प्रस्ताव लेकर एक दूत भेजा गया, जिसमें शिवाजी द्वारा स्वयं सन्धि के लिए आने की बात भी शामिल थी।

सिद्धी जौहार को और क्या चाहिए ? वह तो चाहता ही था कि किसी प्रकार शिवाजी पर हाथ डालने का मौका भर मिल जाये फिर तो वह उन्हें गिरफ्तार कर सुल्तान के सामने हाजिर करने तक जरा भी गफलत नहीं करेगा। वह इसके लिए तुरन्त तैयार हो गया और नियत समय पर शिवाजी अपने सैनिकों के साथ सिद्धी के डेरे में पहुँचे।

सिद्धी जैसे पहले से ही इसकी प्रतीक्षा कर रहा था। जब विश्वास हो जाय कि पंछी खुद जाल में आ रहा है तो शिकारी का मन आह्लाद से क्यों नहीं भर उठेगा। सिद्धी जौहार और शिवाजी दोनों आपस में बड़ा प्रेम प्रदर्शन करते हुए मिले परन्तु वस्तुतः प्रेम किसी के हृदय में नहीं था। शिवाजी एकदम सतर्क और सजग होकर सिद्धी की हरकतों को देख रहे थे। कहीं अफजल खाँ जैसा धोखा न हो, इसलिए उन्होंने अपने वस्त्रों के नीचे लौह कवच पहन रखा था और कपड़ों में ही बघनखा भी छिपा रखा था ताकि किसी भी प्रकार की चालाकी होते देखकर वे भी अपना वार कर बैठें। इधर सिद्धी भी आतंकित और सशंकित-सा था।

दोनों बहुत देर तक बातें करते रहे। शिवाजी ने अपनी व्यवहार-कुशलता और वाक्चातुर्य से सिद्धी जौहार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को प्रभावित कर लिया। प्रभावित ही नहीं सिद्धी के मन में यह बात भी बैठा दी कि वे सन्धि की सभी शर्तों को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं। शिवाजी ने अपनी बातों से सिद्धी का मन मोह लिया। उसकी प्रशंसा के पुल बाँध कर उसे आसमान पर चढ़ा दिया।

सिद्धी इस सफलता से फूला नहीं समा रहा था। शिवाजी ने सिद्धी के साथ बीजापुर चलना स्वीकार कर लिया और सिद्धी को बेतरह प्रभावित हुआ देखकर कहा—"रात बहुत बीत गयी है। आप भी थक गये होंगे अतः कल प्रातःकाल सन्धि की शर्तें तय करेंगे।"

सिद्धी को इसमें क्या आपत्ति हो सकती थी ? वह घर बैठे, बिना संघर्ष छेड़े इस सिंह को कैद कर बीजापुर के सुल्तान के समक्ष प्रस्तुत करने की प्रसन्नता से सराबोर हुआ जा रहा था। उसकी आँखों के सामने वह अनागत दृश्य कौंध उठा, जब वह शिवाजी के साथ बीजापुर नगर में प्रवेश करेगा। जब बीजापुर का सुल्तान सरदार और प्रजा उसको शिवाजी के साथ देखेगी, तो उसका सम्मान कितना बढ़ जायगा ? कोई आश्चर्य नहीं कि इस सफलता के कारण सुल्तान उसका पद व ओहदा भी बढ़ा दे।

साथ ही उसके कानों में गूँज उठे सुल्तान के यह शब्द "शिवाजी को जिन्दा या मुर्दा दरबार में हाजिर करो। क्या मेरी सल्तनत में ऐसा कोई जवाँ बहादुर नहीं रह गया जो शिवा जैसे धूर्त और मक्कार काफिर को पकड़ सके।"

उस समय सुल्तान के चेहरे से कैसी बेताबी टपकती थी। सिद्धी जौहार की आँखों में सफलता के फलस्वरूप होने वाली भावी उन्नति, शाही सम्मान और बढ़े हुए रुतबे के मधुर स्वप्न नाचने लगे। शिवाजी के जाते ही वह उस तम्बू में चला गया जहाँ नाचरंग हो रहे थे और जाम से जाम टकरा रहे थे। आज की महफिल का रंग कुछ और ही था। सिद्धी ने कामयाबी की खुशी में भर-भर प्याले पिये और नर्तकियों की मादक चितवन, मोहक मुद्राओं को रस भीनी निगाहों से ताकता रहा।

महफिल तब तक जमी रही जब तक सिद्धी और फाजल नशे में पूरी तरह डूब नहीं गये। उनके सो जाने के बाद शिविर में सन्नाटा छा गया। देर तक सन्नाटा छाया रहा और सन्नाटा जब टूटा तो सिद्धी के पाँव तले की जमीन खिसक गयी थी। कारण था शिवाजी अपनी सैनिक टुकड़ी के साथ दुर्ग से भाग निकले थे। यह खबर सुनते ही सिद्धी ने अपने पुत्र अजीज और फाजल खाँ को तुरन्त शिवाजी का पीछा करने का हुक्म दिया।

इधर शिवाजी ने निकलने के बाद विशालगढ़ का रास्ता पकड़ा था। वे रात भर चलते रहे। सुबह तक चलते रहने पर विशालगढ़ कुछ ही मील दूर था कि नीचे घाटी में सिद्धी की सेनायें आती दिखाई दीं। आगे पहाड़ की विकट चढ़ाई थी और पीछे शत्रु सेना। उन्हें चिन्तातुर देखकर बाजी प्रभु देशपाण्डे ने कहा—"मैं घाटी के नीचे ही शत्रुओं को रोके रखता हूँ। आप सीधे विशालगढ़ पहुँचिये और पहुँचने के बाद तोप चलवाइये ताकि मैं समझ सकूँ कि आप पहुँच गये हैं। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि गढ़ में पहुँचने तक बीजापुरी सेना को एक कदम भी आगे नहीं बढ़ने दूँगा।"

इसके सिवाय कोई दूसरा मार्ग नहीं था। उन्होंने अश्रुपूर्ण नेत्रों से बाजी प्रभु को देखते हुए उन्हें गले से लगा लिया और आगे बढ़ गये। शिवाजी के जाते ही बाजी प्रभु ने तुरन्त अपने चार-पाँच सौ सैनिकों को लेकर मोर्चा बना लिया। पहाड़ी मार्ग इतना सँकरा था कि उस पर दो-तीन आदमियों से अधिक व्यक्ति एक साथ नहीं चल सकते थे। इस मार्ग को भी बाजी प्रभु ने मालवा वीरों को निर्देश देकर पत्थरों और शिलाखण्डों से पाट दिया तथा पाढर पानी नाले के पास छुपकर शत्रु सेनाओं की प्रतीक्षा करने लगे। कुछ ही समय में शत्रु सेनाएँ घाट तक पहुँच गयीं।

कहाँ तो चार-पाँच सौ मालवा सैनिक और कहाँ २०-२२ हजार की बीजापुरी कुमुक। लेकिन मालवे सैनिकों का मनोबल आकाश को चूम रहा था। उनमें राष्ट्र धर्म और संस्कृति के लिए लड़ने-मरने का जोश उफान ले रहा था, इसलिए संख्या बल में अधिक देखकर भी ये न घबराये, न किंकर्तव्यविमूढ़ ही हुए। थोड़े ही समय में बाजी प्रभु के रणनीतिज्ञ मस्तिष्क ने ऐसी व्यूह रचना कर ली थी कि बीजापुरी जवानों का आगे बढ़ पाना टेढ़ी खीर हो गया। जब वे घाट चढ़ने लगते तो बाजी प्रभु के सैनिक उन पर ऊपर से पत्थर और शिलाखण्ड लुढ़का देते। पहाड़ी मार्ग ऐसा था कि आगे का व्यक्ति पीछे नहीं दिखाई देता था और पीछे वाले को आगे का पता नहीं चलता बीजापुरी सिपाही कुछ देर तक तो इसी प्रकार मृत्युपाश में बँधकर निष्पन्द पड़ते गये, किन्तु शीघ्र ही अजीज को इसका पता चल गया।

अजीज ने सैनिकों को रुकने के लिए कहा। कुछ देर बाद उसने अपने जवानों को नीचे से ही बन्दूक का प्रयोग करने के लिए कहा। लेकिन बन्दूक का निशाना बनाये तो किसे ? सब मालवे तो पत्थरों की ओट में छिपे हुए थे। अज़ीज ने कुछ इस तरह जाहिर करना शुरू किया जैसे उसके सैनिक आगे बढ़ रहे हैं। इस भ्रम में आकर मालवे ऊपर से पत्थर लुढ़का देते। सामने का पत्थर लुढ़का देने के कारण वे दिखाई दे जाते थे और उसी समय बीजापुरी सैनिक उन्हें अपनी गोली का निशाना बना लेते।

अभी तक एक भी मालवा वीर नहीं मारा गया था ? अब क्या बात हो गयी यह जानने के लिए बाजी प्रभु ने ऊपर उठकर देखा तो एक गोली उनके भी आकर लगी। पर उन्होंने बजाय चीखने या कराहने के जोर से कहा—"हर हर महादेव ! जय भवानी माता की।"

"बहादुरो ! हिम्मत से काम लो। जीतोगे तो जियोगे मरोगे तो पूजे जाओगे। साहस को मत जाने देना।"

अपने सरदार के शौर्य पूर्ण आह्वान से उत्साहित होकर मालवे वीर द्विगुणित उत्साह से लड़ने लगे। अपने आपको बचाकर शत्रु सेना पर वार करने के लिए वे बड़ी सूझ-बूझ और चातुरी से काम ले रहे थे, पँरन्तु इस संघर्ष में वे भी तो अक्षत नहीं रह सकते थे। मालवे वीर मरने लगे, कई घायल होते जा रहे थे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर घायल सैनिकों का मनोबल भी बहुत ऊँचा था। स्वयं बाजी प्रभु को २६ घाव लगे थे। कभी गोली रगड़ खाकर निकल जाती, तो कभी पिण्डलियों को छीलती हुई चली जाती। इस प्रकार उनके शरीर में २६ बार गोलियों की रगड़ लगी और कुछ अंगों में छर्रे भी घुस गये।

इसके बाद जो गोली बाजी प्रभु को लगी वो उनके लिए मौत का संदेशा लायी थी। वे जमीन पर गिर पड़े किन्तु उनकी ललकार नहीं रुकी, वे अपने सैनिकों को बार-बार प्रोत्साहित करते हुए लड़ने-जूझने, मरने-मारने के लिए प्रोत्साहित करते जा रहे थे। शायद वे प्राण भी छोड़ देते, परन्तु उनके कान तो विशालगढ़ से तोप की आवाज सुनने के लिए आतुर प्रतीक्षा कर रहे थे और यह प्रतीक्षा पूरी होने तक वे मृत्यु को भी इन्च भर दूर प्रतीक्षा करने के लिए बाध्य किये दे रहे थे। सिर चकरा रहा था, गला सूख रहा था, घावों से निरन्तर हो रहे रक्त प्रवाह के कारण प्राण पानी के लिए तरस रहे थे। पर कण्ठ से आवाज निकलने में कोई कमी नहीं आयी। वे बराबर अपने सैनिकों का हौसला बढ़ाते रहे।

इधर विशालगढ़ से तोप दागे जाने की आवाज सुनी, उधर बाजी प्रभु ने द्वार पर खड़े प्रतीक्षा कर रहे मृत्यु अतिथि का स्वागत किया। २७ घावों से निरन्तर बहते हुए रक्त के कारण, उनका शरीर सफेद हो गया था पर उनके चेहरे पर एक मुसकान खिली हुई थी। यह मुसकान अपने कर्त्तव्य को वीरता के साथ पूरा करने के सन्तोष से निःसृत हुई थी।

"अब तो उधर से तोप का इस्तेमाल किया जाने लगा है।"—अजीज ने अपने पिता सिद्धी जौहार से कहा और सिद्धी बोला—"चलो वापस चलते हैं। ओहदा जान से ज्यादा नहीं है।" और वे लोग अपना-सा मुँह लेकर लौट गये।

कर्त्तव्य-परायणता का बल ही पुरस्कार

बुलन्दशहर की कचहरी के पास काफी लोगों की भीड़ इकट्ठी थी। शोरगुल मच रहा था। बिजली के खम्भे ने एक बारह वर्षीय लड़के को पकड़ लिया था। बच्चे की छटपटाहट और उसके मौत के मुख में जाने की लीला को लोग कौतूहलपूर्ण निगाहों से देख रहे थे। न बुद्धि, न विवेक और न ही किसी में ऐसा साहस दिखाई दे रहा था, जो झपटकर बच्चे को बचा लेता। भीड़ तो बस शोरगुल मचाने के लिये थी।

दादरी थाने के कान्स्टेबल बनवारीलाल शर्मा किसी काम से कचहरी आये थे। शोरगुल सुनकर वे भी भीड़ की ओर चले आये और वहाँ का दृश्य जो देखा तो हृदय करुणा से भर आया। निर्दयी बिजली एक किशोर बालक के प्राण हरे ले रही थी।

जहाँ बिजली है, वहाँ अधिकांश लोगों को यह पता होता है कि कोई भी वस्तु जिसमें विद्युत संचार हो रहा हो, स्पर्श करना मृत्यु को बुलाना होता है। कोई आदमी इस झपट में आ जाये, तो उसे बचाने वाले को भी बिजली पकड़ लेती है।

श्री शर्मा को भी इस बात का पता था, किन्तु उनके हृदय में बच्चे की जीवन-रक्षा के लिये करुणा उमड़ उठी और वे केवल तमाशबीन की तरह देखते न रह सके। उन्होंने साहस किया और बच्चे को अपने शरीर की जोरदार टक्कर दी। लड़का इस धक्के से दूसरी ओर बचकर जा गिरा और श्री शर्मा जी उसकी बगल में। कुछ चोटें आ गईं तो क्या हुआ, उस बालक के जीवन की रक्षा हो गई।

श्री शर्मा का मन उस दिन बहुत आनन्दित रहा। दूसरे के लिये किया गया त्याग और सेवा-भाव आत्मा की वह निधियाँ हैं, जो बड़े वैभव की अपेक्षा अधिक सुखद होती हैं। श्री शर्मा ने उसका रसास्वादन किया। जब उनसे पूछा गया कि आपको लड़के के अभिभावक या अन्य लोगों में से किसी ने पुरस्कार दिया, तो उन्होंने कहा—"भाइयो यह कहकर कर्त्तव्य-भाव को कलंकित न करिये। यह तो हर मनुष्य का आध्यात्मिक कर्त्तव्य है कि वह हर दीन-दुःखी असहाय और संकटग्रस्त की सहायता निष्काम भाव से करे, विनिमय-भाव से नहीं।" श्री शर्मा की इस निःस्वार्थता की सबने प्रशंसा की।

गौरव तो कम न करें

धारवाड़ (मैनूपाजी) में एक बहुत बड़े धनीमानी व्यक्ति थे। एक दिन उनकी कोठी में बिजली खराब हो जाने के कारण आग लग गई। थोड़ी ही देर में लपट सारे घर में फैल गई। घर के लोग डरकर भागे। आपाधापी में माँ ने समझा ६ वर्षीय उनका लड़का बाहर है। पिता ने समझा उसे माँ उठा ले गई। किसी को पता नहीं चल पाया। काफी देर बाद समझ में आया कि गोपाल भीतर ही दालान में सो रहा है, पर अब क्या हो सकता था ? घर ज्वालामुखी बन गया था और आग तो इतनी प्रचण्ड हो गई थी कि पानी भी डालने से जलने लगता।

बच्चे को निकाल लाने का मतलब था मृत्यु और अपनी जान देने को वहाँ कोई भी तैयार नहीं था। उन्हीं की बगल में एक और परिवार रहता था, जिससे उनकी वर्षों पुरानी रंजिश थी। इसी परिवार का २६ वर्षीय युवक था, जिससे उस परिवार का कई बार झगड़ा हो चुका था। कहीं से उसने सुन लिया कि गोपाल की जान खतरे में है।

किसी को पता भी न चला कि वह किस रास्ते से घुसा ? यह तो तब पता चला जब वह कम्बल में लपेटे बालक को सुरक्षित बाहर निकाल लाया। पर उसके सिर, आँखें, भौंहें सब बुरी तरह जल गये थे, मुश्किल से जान बची।

धनी परिवार ने हजार रुपये एवं इलाज का पूरा खर्च देने का आग्रह किया तो युवक ने कहा—"कर्त्तव्य के लिये पुरस्कार देकर आप कृपया उसका गौरव कम न कीजिये। मुझे क्या मिला यह आप नहीं जानते।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संन्यासी कौन ?

उन दिनों विवेकानन्द भारत भ्रमण के लिये निकले हुए थे। इसी क्रम में घूमते हुए एक दिन हाथरस पहुँचे। भूख और थकान से उनकी विचित्र हालत हो रही थी। कुछ सुस्ताने के लिये वे एक वृक्ष के नीचे निढाल हो गये।

अरुणोदय हो चुका था। उसकी सुनहरी किरणें स्वामी जी के तेजोदीप्त चेहरे पर पड़कर उसे और कान्तिवान बना रही थीं। इसी समय उधर से एक युवक निकला। स्वामी जी के आभावान चेहरे को देखकर ठिठका। अभी वह कुछ बोल पाता, इससे पूर्व ही उनकी आँखें खुलीं और एक मृदु हास्य बिखेर दिया। प्रत्युत्तर में युवक ने हाथ जोड़ लिये और आग्रह भरे स्वर में कहा—"आप कुछ थके और भूखे लग रहे हैं। यदि आपत्ति न हो, तो चलकर मेरे यहाँ विश्राम करें।"

बिना कुछ कहे स्वामी जी उठ पड़े और युवक के साथ चलने के लिये राजी हो गये।

चार दिन बीत गये। नरेन्द्र अन्यत्र प्रस्थान की तैयारी करने लगे। इसी समय वह युवक उनके समक्ष उपस्थित हुआ। चल पड़ने को तैयार देख उसने पूछ लिया—

"क्या अभी इसी समय प्रस्थान करेंगे ?"

"हाँ, इसी वक्त।" उत्तर मिला।

"तो फिर मुझे भी संन्यास दीक्षा देकर अपने साथ ले चलिये, मैं भी संन्यासी बनूँगा।" स्वामीजी मुस्करा दिये। बोले—"संन्यास और संन्यासी का अर्थ जानते हो ?" "जी हाँ, भलीभाँति जानता हूँ। संन्यास वह जो मोक्ष की ओर प्रेरित करे और संन्यासी वह जो मुक्ति की इच्छा करे।"

"किसकी मुक्ति ?" स्वयं की, साधक की।" तत्क्षण उत्तर मिला।

स्वामीजी खिलखिलाकर हँस पड़े। बोले—"तुम जिस संन्यास की चर्चा कर रहे हो, वह संन्यास नहीं, पलायनवाद है। संन्यास न कभी ऐसा था, न आगे होने वाला है। तुम इस पवित्र आश्रम को इतना संकीर्ण न बनाओ। यह इतना महान् व शक्तिवान है कि जब कभी इसकी आत्मा जागेगी, तो बम की तरह धमाका करेगा। तब भारत, भारत (वर्तमान दयनीय भारत) न रहकर, भारत (आभायुक्त), महाभारत, विशाल भारत बन जायेगा और एकबार पुनः समस्त विश्व इसके चरणों में गिरकर शान्ति के सन्देश की याचना करेगा। यही अटल निर्धारण है। ऐसा होने से कोई भी रोक नहीं सकता। अगले ही दिनों यह होकर रहेगा। मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि भारत के युवा संन्यासी इस मुहिम में पूर्ण निष्ठा के साथ जुट पड़े हैं और अपनी सम्पूर्ण क्षमता लगाकर इसे मूर्तिमान करने में कुछ भी कसर उठा नहीं रख रहे हैं। इनके प्रयासों से भारत की आत्मा को जगते, मैं देख रहा हूँ और देख रहा हूँ उस नवविहान को, जिसकी हम सबको लम्बे समय से प्रतीक्षा है।"

तनिक रुककर उन्होंने पुनः कहना आरम्भ किया—"यह वही संन्यास है, जिसकी सामर्थ्य को हम विस्मृत कर चुके हैं, जिसके दायित्व को भुला चुके हैं। इसका तात्पर्य आत्म-मुक्ति कदापि नहीं हो सकता। यह स्वयं में खो जाने की, अपने तक सीमित होने की प्रेरणा हमें नहीं देता, वरन् आत्मविस्तार का उपदेश करता है। यह व्यक्ति की मुक्ति का नाम नहीं, अपितु समाज की, विश्व की, समस्त मानव जाति की मुक्ति का पर्याय है। यह महान् आश्रम अपने में दो महान् परम्पराओं को साथ लेकर चलता है—साधु और ब्राह्मण की। साधु वह, जिसने स्वयं को साध लिया। ब्राह्मण वह, जो विराट् ब्रह्म की उपासना करता हो, उसी की स्वर्ग मुक्ति की बात सोचता हो। तुम्हारा संन्यास गुफा-कन्दराओं तक, एकान्तवास तक परिमित है किन्तु हमारा संन्यास जन-संकुलता का नाम है।

वाणी कुछ क्षण के लिये रुकी, तत्पश्चात् पुनः उभरी—"बोलो ! तुम्हें कौन-सा संन्यास चाहिये ? एकान्त वाला आत्म-मुक्ति का संन्यास या साधु-ब्राह्मणों वाला सर्व-मुक्ति का संन्यास ?"

युवक स्वामीजी के चरणों में गिर पड़ा, बोला—"नहीं, नहीं मेरा आत्म-मुक्ति का मोह भंग हो चुका है। मुझे ऐसा संन्यास नहीं चाहिये। मैं समाज की स्वर्ग मुक्ति के लिये काम करूँगा। देखा जाय तो समाज-मुक्ति के बिना व्यक्ति की अपनी मुक्ति सम्भव नहीं।"

युवक के इस कथन पर स्वामीजी ने सिर हिलाकर सहमति प्रकट की। एक क्षण के लिये दोनों के नेत्र मिले मानों प्राण-प्रत्यावर्तन की प्रक्रिया चल पड़ी हो। फिर उसे गुरु ने उठाकर गले से लगा लिया और कहा—"आज से शरत्चन्द्र गुप्त नहीं, स्वामी सदानन्द हुए।" गुरु-शिष्य दोनों उसी समय आगे की यात्रा पर प्रस्थान कर गये।

परमात्मा को क्या उत्तर दूँगा ?

बात उन दिनों की है जब रूस और जापान के मध्य युद्ध चल रहा था। जापानी सेना की कमान उन दिनों जनरल कोडामा के हाथ में थी।

प्रातःकाल का समय था। सारा वातावरण शान्त दिखाई दे रहा था। केवल छुटपुट गोली चलने की आवाजें आ रही थीं। जापानी सैनिक कुछ देर के लिये विश्राम कर रहे थे, जनरल कोडामा अपने शिविर में जलपान कर रहे थे।

रूसियों ने स्थिति अनुकूल देखी और अपनी तमाम शक्ति लगाकर जापानी कैम्पों पर हमला कर दिया। जापानी इस अप्रत्याशित हमले के लिये तैयार न थे। इधर रूसियों की भयंकर गोलाबारी के कारण खेमें धूल-धुयें से भर गये। बुद्धि चकरा गई अब क्या किया जाय ?

जनरल कोडामा ने चिल्लाकर अपने सैनिकों को धैर्य और वीरता के साथ जवाबी हमले के लिये तैयार हो जाने को कहा। सेनापति को साथ पाकर सैनिकों का साहस और बढ़ गया, जिस तरह कर्त्तव्यनिष्ठ राजा की प्रजा भी कर्त्तव्यनिष्ठ होती है, जिस विभाग के प्रशासनिक अधिकारी भले और ईमानदार होते हैं, उसके अन्य कर्मचारी भी उनका अनुसरण करते हैं, ठीक ऐसी ही बात यहाँ भी हुई। सिपाहियों ने देखा जब हमारा मार्ग-दर्शक हमारे साथ है तो फिर मरने से क्या डरना ? बन्दूकें उठ गईं, संगीनें तन गईं और जवाबी आक्रमण भी शुरू हो गया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

लेकिन कोडामा के सहकारी जनरलों को यह समझते देर न लगी कि कैम्प रूसी सैनिकों से बुरी तरह से घिर चुका है और उनमें से किसी का भी बचाव कठिन ही नहीं असंभव भी है। ऐसे समय उन्होंने अपने जनरल को बचाने का निश्चय किया।

एक गोला ऐसा भी होता है जिसके फायर करने से धुयें की दीवार खड़ी हो जाती है और फिर एक तरफ का आदमी दूसरी तरफ के आदमी को नहीं देख सकता। इन धुयें के गोलों से एक सँकरी गली बनाकर जनरल कोडामा को वहाँ से बचाकर ले जाने का पूरा प्रबन्ध कर दिया गया।

अब अधिकारी, जनरल कोडामा के पास गये और आग्रह किया कि वे तुरन्त यहाँ से निकलकर सुरक्षित स्थान को चले जाएँ।

जनरल ने दृढ़ता से कहा—"नहीं ऐसा नहीं हो सकता। अपने सैनिकों को असुरक्षित छोड़कर अपने जीवन की रक्षा के लिये मैं भाग नहीं सकता। मुझे अपने बीच न पाकर उनका साहस टूट जायेगा और फिर मैं परमात्मा को क्या उत्तर दूँगा कि अपने जीवन की रक्षा के लिये तुम मार्गभ्रष्ट और कर्त्तव्यच्युत हुये।"

मेरे प्यारे साथियो ! छोटा हो या बड़ा जो भी कर्त्तव्य सौंपा जाता है, उसकी अवहेलना करना परमात्मा का अनादर और उसकी आज्ञाओं की उपेक्षा करना है। मैं अपने पथ से एक इन्च भी विचलित नहीं हो सकता।

मेरे देशवासियों ने मुझ पर भरोसा किया है, उन्हें मेरी योग्यता और कर्त्तव्यनिष्ठा पर विश्वास रहा है, तब यह पद मुझे दिया गया है मैं अपने आप, अपने ईश्वर और स्वदेशवासियों के साथ विश्वासघात नहीं कर सकता। जाओ अपने-अपने मोर्चे सँभालो, यह बात का नहीं काम का समय है।

जनरल का आदेश न मानने का साहस किसमें था ? मोर्चे जम गये। भयंकर युद्ध हुआ और अन्त में यह मोर्चा भी जापानियों के ही हाथ रहा। सच है जहाँ सच्चाई, ईमानदारी और कर्त्तव्य के प्रति सजग कर्मचारी हो वह देश सदैव जापान की तरह सुरक्षित और उन्नतिशील ही होते हैं।

पुण्य की प्रतिष्ठा

"देवानाम् प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् अशोक" के विशाल साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र और भागीरथी का उफनता हुआ कोप, बढ़ती हुई जलराशि का निरन्तर तीव्र होता जा रहा वेग, सम्राट अपने मन्त्रियों, सेनापतियों और राजपुरोहितों के साथ अवश भाव से खड़े गंगा की बाढ़ देख रहे थे। गंगा का जलस्तर निरन्तर बढ़ता जा रहा था, किसी भी क्षण कुपित नदी की विपुल जलराशि तट बन्धों को तोड़कर राजधानी को अपने में समेटने के लिए बढ़ सकती थी पर किया क्या जाय ?

सम्राट् ने बाढ़ के सनसनाते हुए जल की ओर एक दृष्टि दौड़ाई और फिर दूसरे ही क्षण महामन्त्री और खड़ी भीड़ की ओर टुकर-टुकर देखने लगे। फिर कहा, "क्या अपने साम्राज्य में ऐसी कोई पुण्यात्मा नहीं जो इस भीषण बाढ़ पर काबू पा सके ?"

यह अनुरोध अकेले महामन्त्री से नहीं किया गया था वरन् वहाँ उपस्थिति लाखों नगरवासियों से भी था। सम्राट् के दायें-बायें सहस्रों लोगों का जमघट था। सभी इस समस्या के लिए अपने-अपने ढंग से सोच रहे थे, समाधान का उपाय खोज रहे थे। पर किसी को कहाँ से कैसे क्या करना चाहिए कुछ सूझ नहीं रहा था। पशोपेश में पड़ी हुई इतनी भीड़ को चीरती हुई तभी एक महिला आगे बढ़ी। उसे देखकर कितनों के ही मुँह घृणा से दूसरी ओर घूम गये। बहुतों ने तो यहाँ तक कहा 'रोको इसे नहीं तो विनाश नहीं होगा, तो भी हो जायगा। इस अधम नारी के जलस्पर्श से गंगा और कुपित हो उठेगी।' यह सब स्वाभाविक भी था, इतने लोगों की भीड़ को चीरकर बढ़ने वाली वह महिला रूपाजीवा वेश्या बिन्दुमती थी।

अनेकों कण्ठों से निकले तिरस्कार और अपमान भरे स्वरों को सहते हुए विंधे कण्ठ से मग्न, हृदय से उसने अपना परिचय दिया। 'मैं हूँ बिन्दुमती ! रूपाजीवा !! अपना रूप और यौवन बेचकर जीविका चलाने वाली एक वेश्या। पर माँ भागीरथी से एक प्रार्थना करने का अवसर चाहती हूँ सम्राट्।"

अब वह अशोक की ओर देख रही थी। उन्होंने स्वीकृति दी और बिन्दुमती भयंकर गर्जना करती हुई गंगा के समीप पहुँची। उसने नदी की ओर हाथ उठाते हुए कहा, "माँ गंगे ! यदि मेरे पाप कर्मों के बीच पुण्यकर्मों के तनिक भी संस्कार रहे हों, यदि मैं सत्य-निष्ठ रही हूँ तो उन पुण्यों का फल परलोक में देने के स्थान पर इसी लोक में दीजिये। आप अपना कोप समेट लें माँ।"

यह कहकर बिन्दुमती के नेत्रों से एक और गंगा दो धाराओं में बह उठी। उन आँसुओं का स्पर्श गंगा के गर्जन करते जल से स्पर्श होना था कि निरन्तर वेगवान होता जा रहा जल प्रवाह घटने लगा। कुछ क्षणों में ही गंगा का उफान शनैः-शनैः शान्त होने लगा।

सम्राट् को आश्चर्य हुआ कि इस वेश्या में ऐसे कौन-से पुण्य संस्कार हैं, जिनके प्रताप से उफनता हुआ गंगा का जल-प्रवाह भी शान्त हो गया। सम्राट् ही नहीं वहाँ खड़े सहस्रों नागरिक भी विस्मय-विमुग्ध थे। अपने प्रश्न का उत्तर जानने के लिए सम्राट बिन्दुमती को अपने पास बुलाने के स्थान पर स्वयं उसके पास गये और बोले, "भद्रे ! तुम वेश्या हो। तुम्हारा कार्य घृणित है, लोगों को पथ-भ्रष्ट करने वाला है। फिर तुम जैसी पाप-पंक में पली हुई नारी ने किस तरह इतना पुण्य अर्जित किया कि भागीरथी को तुम्हारी बात माननी पड़ी ?"

"राजन ! आपकी प्रत्येक बात सत्य है," बिन्दुमती ने कहा, "पर मैं धन, जाति, शिक्षा, कुल और रूप के आधार पर किसी से पक्षपात नहीं करती। परिस्थितियों ने मुझे रूपाजीवा बनाया पर सत्य, व्यवसाय के प्रति ईमानदारी और प्रत्येक व्यक्ति के सम्मुख निश्छलता के साथ उसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सन्तुष्ट करने का प्रयास ही वह पुण्य हो सकता है, जिसे गंगा ने स्वीकार किया।"

सम्राट् ने स्वीकार किया और राजकीय सम्मान से विभूषित करते हुए एक समारोह में यह शिलालेख भी खुदवाया, अपने कर्त्तव्य का ईमानदारी से पालन करने वाला प्रत्येक व्यक्ति पुण्यात्मा है। वह चाहे जो भी हो पर देश और समाज के लिए संकट के समय वही सबसे अधिक उपयोगी सिद्ध होता है।

विद्या का मर्म इस तरह समझें

आचार्य द्रोण, कौरवों तथा पाण्डवों को समान रूप से समस्त विद्याओं का प्रशिक्षण करते थे। उनकी वाणी से ओज, व्यक्तित्व से प्रभावशीलता तथा व्यवहार से वात्सल्य स्रवित होता था। बदन की आभा से गाम्भीर्य छलकता, विशाल उन्नत ललाट जैसे अगाध ज्ञान की गरिमा का परिचायक था।

एक दिन वे समस्त शिष्यों के मध्य बैठे उपदेश दे रहे थे। उन्होंने कहा—"मनुष्य को कभी क्रोध नहीं करना चाहिए। क्रोध करने से विवेक नष्ट हो जाता है और विवेक से शून्य मनुष्य कभी कोई सारगर्भित निर्णय नहीं ले पाता।" और साथ ही दूसरे दिन याद करके लाने का भी आदेश था।

जैसे कुछ फूल नियमित रूप से प्रतिदिन उपवन में समय पर खिल ही जाते हैं—प्रातः होने पर नित्य कर्म से निवृत्त होकर—उपासना तथा यज्ञ कर्म करके सभी शिक्षार्थी आचार्य प्रवर के सदुपदेश सुनने के उद्देश्य से एकत्रित हो गये।

गुरुदेव आये। नया क्रम आरम्भ करने से पूर्व उन्होंने सभी को सम्बोधित करते हुए कहा—"वत्स कल की बात आपको स्मरण रही ?"

लगभग सभी ने स्वीकार किया हमें याद है। केवल युधिष्ठिर ही थे जो चुपचाप सिर नीचा किए बैठे थे।

आचार्य समझ गये और प्रताड़ित करते हुए कहा "कल अवश्य याद करके लाना।"

दूसरे दिन फिर वही क्रम। अगली बात बताने से पूर्व वही प्रश्न हुआ "युधिष्ठिर ! आशा है आज तुमने अवश्य ही याद कर लिया होगा।"

किन्तु युधिष्ठिर का उत्तर आज भी नकारात्मक था। द्रोणाचार्य क्रोधित हो उठे। "मूर्ख ! तीन दिन में भी एक पंक्ति याद नहीं कर सके तुम ? लज्जा आनी चाहिए तुम्हें। तुमसे छोटे भाई सभी कल ही सुना चुके हैं। अच्छा आज और क्षमा करता हूँ। कल अवश्य ही याद कर लाना।"

किन्तु तीसरे दिन भी युधिष्ठिर ने यही उत्तर दिया "गुरुदेव ! अभी भी मुझे पूरी तरह वह पाठ याद नहीं हुआ।"

अब तो द्रोणाचार्य का क्रोध सीमा पार कर गया। उन्होंने युधिष्ठिर के एक चाँटा लगाया और कान पकड़ कर कहा—"अब तो याद हो गया कि नहीं ?"

युधिष्ठिर पीड़ा से चीत्कार करते हुए बोले—"हाँ भगवन्। अब याद हो गया।"

क्षोभ भरे स्वर में आचार्य द्रोण बोले—"मुझे नहीं मालूम था, कि तुम लातों के देव हो। बातों से नहीं मानोगे।"

अब युधिष्ठिर दो मोती नयनों से ढलकाकर बोले—"नहीं गुरुदेव ! ऐसी बात नहीं है। आपने कहा था, मनुष्य को कभी क्रोध नहीं करना चाहिए। पहले दिन मुझे शंका थी कि आप प्रताड़ित करें और मुझे क्रोध आ जाय। अतः मैंने मना किया कि मुझे पाठ याद नहीं हुआ। दूसरे दिन भी मुझे विश्वास नहीं था कि आप क्रोध करें और कुछ अपशब्द कहें तो मुझे कदाचित क्रोध आ जाय और तीसरे दिन, इस सोपान को पार कर लेने पर भी मुझे शंका थी कि कहीं आप कुछ शारीरिक कष्ट दें, मारें और मुझे क्रोध आ जाय ! किन्तु आज जब मुझे क्रोध नहीं आया, तभी मैं कह सका कि मुझे पाठ याद हो गया है।"

द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर को छाती से लगा लिया और कहा—"वत्स ! सही अर्थों में तुमने ही विद्या के मर्म को जाना है। मात्र स्मरण कर लेना ही पर्याप्त नहीं, विद्या तभी फलवती होती है, जब उसे अपने व्यावहारिक जीवन में उतारा जाय।" अब अन्य सभी शिष्यों के मस्तक झुके हुए थे।

जब स्वर्ग पृथ्वी पर भीख माँगने आया

कर्ण एक वीर था। वह तपस्वी, जितेन्द्रिय और सत्यवादी था। मनुष्य को दुःख और विपत्ति ही महान् बना सकती है। जो दुःख में धैर्य धारण करता है वह ही सुख को प्राप्त कर सकता है। कर्ण दुःख से ही आगे बढ़कर महान् बन गया था। वह महादानी था। साथ-साथ निरभिमानी भी। कर्ण के माता-पिता का पता नहीं था मगर वह एक राजकुमार जैसा लगता था। उसका भाल प्रदेश सूर्य की तरह चमकता था। दुर्योधन ने कर्ण को अंग देश का राज्य दे दिया और अपना मित्र बनाया। कर्ण की मित्रता पाकर दुर्योधन सदा गर्व करता था। कर्ण के हृदय में अर्जुन के प्रति बैर था।

पाण्डव बारह वर्ष वन में कष्ट सहन कर हस्तिनापुर लौटे और दुर्योधन से अपना राज्य वापस माँगा। दुर्योधन ने मना कर दिया और भगवान कृष्ण के मनाने पर भी वह कुछ न समझा।

कौरव और पाण्डव के बीच युद्ध होने की नौबत आ पहुँची और कुरुक्षेत्र में अठारह अक्षौहिणी सेना इकट्ठी हुई—

महाभयंकर युद्ध शुरू हुआ। राज्य के लिये भाई-भाई आपस में टकराने लगे। भगवान कृष्ण ने देखा, कि जहाँ तक कर्ण को निर्बल नहीं किया जा सकेगा, वहाँ तक अर्जुन कर्ण को नहीं मार सकेगा। इसलिए स्वर्ग पति इन्द्र को विप्र के स्वरूप में कर्ण के पास भेजा गया।

वास्तव में अर्जुन के पिता इन्द्र थे और कर्ण के पिता भगवान सूर्य थे। कर्ण के पास कवच और कुण्डल थे, इसलिए वह जीता नहीं जा सकता था। इन्द्र अपने पुत्र की रक्षा के लिये विप्र बनकर पृथ्वी पर आया और कर्ण के पास चला।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सूर्योदय का समय था। कर्ण नदी के जल में खड़ा था। उसका मुख दूसरा सूर्य प्रतीत हो रहा था। सुवर्ण जैसे शरीर की कान्ति मन को हर लेती थी। सूर्य की प्रकाश रेखाएँ कर्ण की देह को छूती थी। कर्ण नतमस्तक हो जगदात्मा सूर्य की अर्चना कर रहा था। सूर्य को अर्घ्य प्रदान कर वह सूर्योपासना पूर्ण कर बाहर आया। कपटी इन्द्र, कर्ण के सामने आकर बोला—"महाराज कर्ण की जय हो !" कर्ण ब्राह्मण को देखकर प्रसन्न हुआ और बोला—"पधारिए ब्रह्मदेव ! जो आज्ञा हो सुनाइए सेवक ब्राह्मण के पवित्र चरणों में नमन करता है।"

कर्ण की बात सुनकर विप्र बोला—"महाराज ! मैं आप जैसे महादानी से कुछ माँगने आया हूँ। मगर अब ऐसा लगता है कि 'न माँगू, यदि माँगू, आप न दे सके तो आपकी विश्व में फैली हुई कीर्ति कलंकित हो जायेगी। मैं विप्र, आपके अपयश का कारण बन जाऊँगा।" ब्राह्मण की ऐसी वाणी सुनकर कर्ण बोल उठा—"विप्रवर ! चिन्ता तजिये, आपको जो माँगना हो वह माँग लें। कर्ण के पास से अभी तक कोई भी खाली हाथ वापस नहीं लौटा। बादल समुद्र से निराश होकर वापस जा सकते हैं, मगर कर्ण के पास से कोई भी निराश होकर नहीं जाता। मैं आपको अपने प्राण भी दे सकता हूँ। आप जो चाहते हैं वह माँग लें।"

विप्र ने कहा—"महाराज ! मैं दूसरा कुछ नहीं चाहता। मुझे आपका कवच और कुण्डल चाहिए।"

विप्र की बात सुनकर कर्ण समझ गया कि, यह कपट है। वह स्वस्थ होकर बोला, "अच्छा, मैं समझ गया आप विप्र नहीं हैं, स्वर्गपति इन्द्र हैं", जो अपने लाल को बचाने के लिये यह तुच्छ भीख माँगने आये हैं, परन्तु फिर भी कोई दुःख की बात नहीं है, आप हर्ष से इस कवच और कुण्डल को ले जा सकते हैं। इस बात से मेरे हृदय में तनिक भी ग्लानि नहीं है। मुझे इस बात का हर्ष है कि, आज स्वर्ग धरती से भी नीचा हो गया है। मेरे इस दान के व्रत से आज देवपति इन्द्र भिक्षुक बना है ! आज स्वर्ग धरती पर भीख माँग रहा है ! सच है कि, मनुष्य देवत्व से भी आगे जा सकता है। लीजिये ये मेरे कवच और कुण्डल, जो मेरा रक्षण कर रहे हैं।" कर्ण ने छुरी से अपने देह की चमड़ी को काटकर पिण्डरूप में स्थित इन्द्र को कवच और कुण्डल अर्पित किया।" कर्ण के बहते रुधिर को देखकर इन्द्र शर्मिन्दा हो गया। उसकी दृष्टि भूमि में स्थित हो गई। वह बोला—"वीर कर्ण ! तू बड़ा तपस्वी और न्यायी है। तू सच्चा वचन पालक और महादानी है। तेरे इस सद्गुणों के आगे मेरा सिर झुक जाता है। मैं स्वर्ग के सहित तेरे जैसे धरती के मानव को प्रणाम करता हूँ। मैं इस बात से बहुत दुःखी हूँ कि मैंने तेरे साथ कपट किया। लो मेरी यह शक्ति, महान् शक्ति है और मैं अपने पाप के प्रायश्चित्त के रूप में तुझे देता हूँ।" यह कहकर कवच और कुण्डल लेकर इन्द्र स्वर्ग में चला गया।

भगवान भास्कर आकाश में प्रसन्न हो उठे और अपनी रश्मि से कर्ण के शरीर को छूकर बोले—"वीर ! तू मेरा सच्चा पुत्र निकला, तुझे मैं आशीर्वाद देता हूँ। आज तूने पृथ्वी को महान् और स्वर्ग को तुच्छ बना दिया है। आज स्वर्ग ने पृथ्वी पर भीख माँगी है। धन्य है वीर कर्ण तुझे !"

गाय हमारी माता है

"गोवध के लिए मुसलमानों, कसाइयों और चमड़े के कारखाने वालों को दोष दें, इससे पहले हम अपने दायित्व पर विचार क्यों न करें ? यदि गायों के प्रति हमारी सही निष्ठा होती, तो क्या मांस, क्या चमड़ा किसी के लिये भी गायें कट्टीखाने पहुँचतीं।"

यह शब्द है, फीरोजपुर झिरका के तहसीलदार मुन्शी अब्दुर्रहमान के। गुड़गाँव के लोग इनकी गोनिष्ठा से अच्छी तरह परिचित हैं। इसलिये नहीं कि उन्होंने गौहत्या को लेकर कहीं सत्याग्रह किया हो या नारे लगाये हों वरन् गाय की सेवा करके, गाय की रक्षा करके, उन्होंने गो-निष्ठा का श्रेय संकलित किया है।

एक दिन तहसीलदार के दरवाजे दो कसाई पहुँचे। उनके घर एक बूढ़ी गाय थी। कसाई उसी का पता लगाते हुए पहुँचे। उन्होंने तहसीलदार साहब से भेंट की और बड़ी देर तक उनकी प्रशंसा करते रहे, "साहब देखिये हिन्दू लोग गायों से प्रेम तो बहुत दिखाते हैं पर कितने हिन्दू हैं जो अपने घरों में गायें पालते और उनका पेट भरते हैं अधिकांश ज्यादा दूध और घी के लालच में भैंस पालते हैं फिर कहाँ रहा उनका गो-प्रेम ?"

साहब चुपचाप सुनते रहे। कसाई बोलते गये, "बाबूजी आपके घर बूढ़ी गाय है, पर आपने कभी भी हम लोगों को सूचित तक नहीं किया। हिन्दू हैं कि जब तक गाय दूध दे तब तक तो चारा देंगे, बाँधें रहेंगे पर जैसे ही गाय बूढ़ी हुई, चारा देना बन्द। स्वयं कुछ चर ले तो चर ले, न चरे तो पड़ी भूखी मरे। उसी के बैल-बच्चे जोतते हैं, उसी की देन खाते हैं और फिर भी उसके लिए भरपेट चारा भी नहीं देते। खरीद के लिए हम अपनी तरफ से नहीं जाते, वहीं बुलाते हैं तो हम गायें ले आते हैं।"

"आखिर आपका मतलब क्या है ?" अब्दुर्रमान साहब ने बीच में टोका। "बात कुछ नहीं साहब। हम तो आपकी दिक्कत दूर करने आये हैं। आपकी यह बूढ़ी गाय है सुना है अब वह दूध भी नहीं देती, चरने भी नहीं जाती। पड़ी-पड़ी खाती है, उसमें आपके दो रुपये से कम घास में ही न जाते होंगे। आप गाय बेच दें इसलिये आये हैं।" कसाइयों ने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया।

और तब यदि तहसीलदार साहब की आँखें कोई देखता तो भ्रम में पड़ जाता कि आँखें हैं या लाल बर्र। क्रोध को भीतर दबाकर बोले—"बजाय मेहरबानी बाहर चले जाइये।" कसाइयों ने समझा—अभी साहब काम में हैं, इसलिये पूछ बैठे—तो फिर कब आयें साहब, आप जो कहें हम रुपये अभी देते जाएँ ?

तहसीलदार साहब का सधा हुआ गुस्सा अब उबल पड़ा—"चपरासी को बुलाकर कहा—"इन्हें अहाते से बाहर निकाल दो और कह दो दुबारा इधर आने की हिम्मत की तो जेल भिजवा देंगे। जानते नहीं गाय हमारी माता है। माँ को बेचने का पाप हमसे करवाना चाहते हो।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चपरासी ने उन्हें बाहर निकालते हुए समझाया—मूर्खो ! भली चाहो तो फिर कभी इधर मत आना। तहसीलदार साहब मुसलमान हैं तो क्या ? हैं तो मनुष्य, वह किसी का उपकार नहीं भूलते। बचपन से ही इनके घर में गाय का दूध पिया जाता है। उपयोगिता के अभाव में बछड़ों को केवल कृषकों को बेचा, बछिया तो कभी बाहर गई ही नहीं। जन्म से मृत्यु तक गाय एक ही खरी पर बँधी रही। वृद्धावस्था में वृद्धा माता के समान एक स्थान पर बैठी खाती रही। कसाई के पल्ले उसकी मृत चर्म भी न पड़ी।

कसाई लज्जित होकर लौट गये, पर कितने ही हिन्दू हैं, जो गाय को नकारा अवस्था में भी घर रखकर उसे गौ-प्रेम का परिचय देते हैं, इसकी ढूँढ़ करें तो मुश्किल से कुछ परिवार ही सारे देश में उपलब्ध होंगे। धर्म और पंचगव्य की दृष्टि से तो अब उनका महत्त्व ही कहाँ रहा ?

जबान बचाने की चिन्ता

मुगल बादशाहों के दिन लद चुके थे। शायर और कलाकार अच्छी तरह समझ गये थे कि बादशाही खानदान वालों को रोटियों के भी लाले पड़े हैं फिर उन्हें राज्य का आश्रय कैसे मिल सकता है ? उर्दू के मशहूर शायर 'मीर' उन दिनों वहीं थे। उनके जीवन का उत्तर काल था। मुगल साम्राज्य के पराभव ने उनकी आर्थिक स्थिति खस्ता कर दी थी। वह कभी भले ही गुल और बुलबुल के तराने गाते रहे हों पर अब दो समय की रोटी का इन्तजाम मुश्किल पड़ रहा था।

वह मिजाज से वैसे ही नाजुक थे। उस पर भी शरीर की दुर्बलता ने उन्हें और जर्जर कर दिया था। एक दिन तो परेशान होकर वह कह उठे—"या परवरदिगार !" किसने सोचा था ? जिन्दगी के आखिरी वक्त में ये मनहूस दिन भी देखने पड़ेंगे।

'मीर' को दोस्तों और शुभचिन्तकों की क्या कमी थी ? उनकी परेशानियाँ दोस्तों से छिपी न रह सकीं। सबने यही सलाह दी—"आपको दिल्ली छोड़कर हैदराबाद चला जाना चाहिए। वहाँ के निजाम, उर्दू शायरों की बड़ी कद्र करते हैं।"

मीर को बात समझ में आ गयी। उन दिनों आज की तरह तेज रफ्तार से चलने वाले परिवहन के साधन तो थे नहीं। अतः बैलगाड़ियाँ जुतवाली गयीं। उन्ही पर 'मीर' का परिवार सवार होकर हैदराबाद की ओर चल पड़ा। दिल्ली से हैदराबाद का सफर कुछ घण्टों या दिनों का तो था नहीं, उसमें महीनों लगने थे। पड़ाव पर पड़ाव पड़ने लगे। मीर का काफिला कछुए की चाल से धीरे-धीरे चलने लगा। एक सुबह मीर ने अपनी पोती से जो कुछ सुना उस पर उनके कानों को विश्वास नहीं हो रहा था। वह आज अपनी बात गलत उर्दू बोलकर व्यक्त कर रही थी। जिन मीर के कान सपने में भी नफीस उर्दू को सुनने के अभ्यस्त थे, वह जाग्रत अवस्था में गलत जुबान कैसे सुन सकते थे ? उनके दिल को बड़ी चोट पहुँची वह अपना सिर पकड़कर बैठ गये। उर्दू के नामी शायर की पोती अशुद्ध शब्दों का उच्चारण करे यह उन्हें भला कैसे सहन होता ? वह समझ गये कि सारी मेहनत पर पानी फिर गया है।

कारण स्पष्ट था। दिल्ली दूर होती जा रही थी। उसकी नफासत भी पीछे छूट गयी थी। वहाँ का साहित्यिक और सांस्कृतिक वातावरण इस बीहड़ मार्ग में कहाँ मिलता ? बच्चों की जुबान बिगड़ती जा रही थी। 'मीर' को बड़ा धक्का लगा। इस छोटी-सी घटना ने उन्हें सचेत कर दिया। उनकी आँखें खुल गईं। क्षण भर में ही उनकी स्थिति दर्पण की तरह स्पष्ट हो गयी। उन्होंने लौटने का निश्चय कर लिया।

अब बैलगाड़ियों का रुख हैदराबाद की तरफ नहीं दिल्ली की ओर था। बेगम ने पूछ ही लिया—"तुम यह कर क्या रहे हो ? बच्चों के पालन-पोषण की नीयत से तो हम हैदराबाद को रुखसत हुए थे और तुमने बैलगाड़ियों के मुँह फिर दिल्ली की ओर कर लिये। यदि दिल्ली ही प्यारी थी, तो मार्ग की इतनी परेशानियाँ उठाने से क्या लाभ हुआ ?"

मीर ने बीच में ही बात काटते हुए कहा—"बेगम ! तुम्हें गुजारे की पड़ी है और यहाँ लाखों रुपयों की जुबान बिगड़ी जा रही है। दिल्ली में भूखे रह लेंगे, पर वहाँ कम से कम जुबान तो बची रहेगी।"

विश्व-मैत्री

"हाँ-हाँ, अम्बे ! कमराज (शेर) को मैंने स्वयं चन्द्रारिका उपत्यिका की ओर जाते देखा। राजमाता (शेरनी) उनके साथ ही थीं। लगता है उनके नवाप्रसूत शावकों पर किसी रीछ ने आक्रमण कर दिया है। मचान बनाते समय मैंने उनका करुण-क्रन्दन सुना है। जननी ! तू इधर आ, देख यह मेरे परिधान यहाँ रखे हैं। मेरा धनुष और तूणीर मुझे देना—देखूँ तो मेरे मित्रों को कष्ट देने का साहस किसने किया है ?" इतना कहते-कहते बालक ने स्वयं उठाकर धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाई और निविड़ वनस्थली में एक ओर विलीन हो गया।

शकुन्तला के लिये यह कोई नई बात नहीं थी। उसे कोई भय या आशंका भी नहीं थी। महाराज दुष्यन्त से परित्यक्त होने के बाद पितामह कण्व ने बहुत प्रयत्न किया कि शकुन्तला आश्रम में रहे, पर शकुन्तला ने अस्वीकार कर दिया था। उन्हें मालूम था कि समाज में परित्यक्ता की स्थिति क्या होती है। अपनी ही बात होती तो वह सहन भी कर लेती, उदर में पल रही आत्मा को आत्महीनता की परिस्थितियों में डालना आर्य ललनाओं ने कभी भी स्वीकार नहीं किया, शकुन्तला ही अपवाद क्यों बनती ? वह जंगल चली आई। अपना आश्रम अपने हाथों बनाया। भगवती गायत्री की उपासना की थी उसने। इसलिये प्राणवान् पुत्र ने उनकी कोख में जन्म लिया था।

भरत ११ वर्ष के सुकुमार बालक थे। जब वह ५ वर्ष के थे, शकुन्तला ने उनका उपवीत संस्कार अपने हाथों एकाकी आश्रम में भगवान यज्ञ की साक्षी में सम्पन्न कराया था। मन्त्र-दीक्षा उन्होंने ही दी थी और उस दिन से भरत उनका पुत्र ही नहीं, शिष्य भी हो गया था। पुत्रों के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साथ माताओं की जो ममता होती है, शकुन्तला ने उसे शिष्य के प्रति कठोरता में परिणत कर दिया था। ममता तो अन्तःकरण में प्रकाश भरती थी, पर उनका पुत्र—नहीं उनका शिष्य कहीं निम्नकोटि का नागरिक बनकर न रह जाये इसलिये जितनी कठोरता कर सकती थीं, की थी। ५ वर्ष से ही उन्होंने गायत्री महापुरश्चरण प्रारम्भ किये थे। यज्ञ के लिये समिधायें लाने से लेकर हविष्यान्न तैयार करने तक का सारा श्रम भरत को स्वयं करना पड़ता था। माँ उसे पढ़ाती भी थी—उसकी तैयारी और पहले दिये हुए पाठ को कण्ठस्थ करने का काम भी उसे साथ-साथ पूरा करना पड़ता था। इतनी कठोर साधना में ढालने का एकमात्र उद्देश्य यही था—भरत साहसी बनें, भरत प्राणवान, प्रज्ञावान् और यशस्वी बने। सो वह सब राजसूय लक्षण उसमें अभी से परिलक्षित होने लगे थे।

दो दिन पूर्व ही उसने व्याघ्र के एक बालक को पकड़कर पटका था, तब शकुन्तला ने उसे न्याय-दर्शन पढ़ाया था—'तात् ! तुम राजपुत्र हो। तुम्हें मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षियों के साथ भी न्याय करना चाहिए। उनकी प्रकृति जो भी हो, पर तुम्हें अकारण दण्ड देने का क्या अधिकार ? मेरी तरह इस व्याघ्र शिशु की माता जब इसे पीड़ित अवस्था में देखेगी, तब उसके अवसाद का अभिशाप क्या तुझे पीड़ित नहीं करेगा ? खबरदार, फिर कभी किसी प्राणी को पीड़ा मत पहुँचाना। तुम्हें प्राणिमात्र के प्रति रक्षा, क्षमा और न्याय की भावना रखनी चाहिए।"

आज माँ की उस शिक्षा की कसौटी थी। इसलिये शकुन्तला उसे रोक भी नहीं सकती थी। बालक भरत उधर ही बढ़ते गये, अब भी ज़िधर से सिंह-शावकों का करुण-क्रन्दन बहता आ रहा था। सघन लताओं और वृक्षों को चीरते हुए राजकुमार भरत वहाँ जा पहुँचे, जहाँ से आवाज आ रही थी। सचमुच ५ भालुओं ने दो नन्हें सिंह-शावकों को घेर रखा था। शेर के आने से पहले ही वे उन्हें झपटकर खा जाना चाहते थे। प्रतिरोध की तो उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी। उनमें से एक भालू झपटा और जैसे ही उसने तलवार की धार के समान तीक्ष्ण पंजों से बच्चों पर प्रहार करना चाहा कि गृद्ध-पंखों से पुच्छावेष्ठित तीर सनसनाता हुआ आया और पास ही पड़े शिलाखण्ड को तोड़ता हुआ गहराई तक भीतर प्रविष्ट हो गया।

भालू चौंक पड़े। पत्थर को फोड़कर तीर का उसमें प्रवेश कर जाना उनके लिये भारी आश्चर्य था। वे आक्रमण करना भूल गये। सब पीछे मुड़ गये। अब भरत कुमार को दस और चार चौदह आँखें निहार रही थीं। १० क्रूर दृष्टि से और ४ करुणा और दया की दृष्टि से।

शिकार के समय वन्य जीव-जन्तुओं का रक्त वैसे ही गर्म हो उठता है, फिर प्रतिरोध से तो उनके क्रोध की सीमा ही टूट जाती है। विलम्ब किये बिना पाँचों भालू भरत पर टूट पड़े। आह्लाद चित्त भरत एक बार मुसकराये, माँ की बात याद कर—"वत्स ! दण्ड तो अपराधी को ही दिया जा सकता है। अपराधी को दण्ड न देना तो पाप भी है, पर अकारण किसी को नहीं सताना चाहिए।"

भरत ने पूर्व ही चेतावनी दी थी, पर भालुओं पर उसका कुछ प्रभाव न पड़ा तो अब दण्ड देना ही उचित था। तड़ित गति से भरत का हाथ खंग पर गया और उसने एक ही प्रहार में दो भालुओं के शीश धड़ से उड़ा दिये। शेष तीन में उस वीर बालक का सामना करने की हिम्मत न रही। वे अपना-सा मुँह लेकर जंगल में एक ओर भाग गये।

दोनों सिंह-शावकों ने आगे बढ़कर महाराज कुमार का विनीत स्वागत किया। वह उनके चरणों में लोट गये। भरत ने दोनों बच्चों को दोनों हाथों से उठाकर छाती से लगा लिया और कहा—"बच्चो चलो, आज तुम्हें अपनी माँ-अपने गुरु के दर्शन करायें।" यह कह जैसे ही वह पीछे मुड़े, उन्होंने देखा—पीछे सिंह-सिंहनी दोनों ही कृतज्ञ मुद्रा में खड़े तीनों बालकों की क्रीड़ा ध्यान से देख रहे हैं। देखने से पता चलता था कि वे काफी समय पूर्व ही आ गये थे। उन्होंने भरत को अपने बालकों की रक्षा करते देखा था। उनकी आँखें अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने के लिये झर-झर बह रही थीं। उन्होंने कोई विरोध नहीं किया। अपने दोनों बच्चों को वनराज ने भरतकुमार के साथ सुखपूर्वक खेलने जाने दिया।

माँ ने अपने पुत्र के साहस और कर्त्तव्यनिष्ठा के लिये भगवान को धन्यवाद दिया और भरत ने अपनी माँ को, जिनकी कृपा से आज उसे खेलने के लिए दो मित्र मिल गये थे।

साहस और सामूहिकता का अनुपम चमत्कार

सन्ध्या बेला थी। दिवाकर की अन्तिम अरुणिम किरणें उस हरी-भरी वाटिका के पुष्पों को दुलार रही थीं। नाना प्रकार के सुन्दर-सुरभित पुष्प-गुच्छ उपवन की शोभा को द्विगुणित कर रहे थे।

सभी बच्चों ने मिलकर इसी वाटिका को अपना क्रीड़ा-स्थल चुना था। आज भी सदैव की भाँति सभी बालक एकत्रित हो, यहीं खेलने आये।

सभी अपना अलग-अलग मन्तव्य देने लगे कि आज अमुक खेल खेलेंगे, किन्तु कुछ समय पश्चात् यह निर्णय लियां गया कि आज लुका-छिपी का खेल खेला जायगा। छिपने के लिये एक बालक उस वाटिका की सीमा से बाहर निकलकर कुछ दूरी पर एक पेड़ के नीचे जाकर छिप गया। सभी बालक इकट्ठे होकर फिर छिपने की तैयारी में थे, तभी एक बालक को कम पाया, सभी चिन्तित हो गये।

एक लड़का जो कि टोलीनायक था; उसने सभी का शोरगुल बन्द करवाया तथा एक-एक से पूछने लगा। कोई भी उसका सही पता नहीं बता सका।

इसी शान्त वातावरण के बीच ही एक ओर से कुछ चीखें सुनाई दीं। बालकों ने सोचा शायद उसी की आवाज होगी। वे तुरन्त ही भीड़ की भीड़ उस आवाज की ओर भागे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुछ ही क्षण में सभी बालक उस निर्जन स्थान में पहुँच गये, जहाँ वह बालक अजगर की लपेट में फँसा छटपटा रहा था। बालक इस भयावह दृश्य को देखते ही उल्टे पाँव भागे, किन्तु उन्हीं बालकों में से एक ग्यारह वर्षीय बालक वहीं खड़ा रहा। वह अपने साथी को इस स्थिति में छोड़कर न जा सका।

उसने अपने भागते हुए साथियों को पुकारकर कहा—"हमें अपने साथी को इस विपत्तिग्रस्त स्थिति में छोड़कर भागना नहीं चाहिए। एक तरफ तो वह अकेला सर्प है और एक तरफ हम इतने ढेर से साथी। फिर डरकर भाग रहे हैं। क्या हम सभी अपने साथी को छुड़ा न सकेंगे ?"

अपना वह साथी कुछ ही क्षणों में मृत्यु का ग्रास बनने वाला है और हम हैं कि उसे बचाने का प्रयास भी नहीं कर पा रहे हैं, दूर से ही डर रहे हैं। यह तो उसके प्रति विश्वासघात होगा। हमें ऐसा नहीं करना चाहिये। हम साथ खेलने आये थे, साथ ले जाना चाहिये।

इतना कहते ही वह उस बालक को बचाने के प्रयास में अपने प्राणों का मोह त्यागकर सर्प की तरफ भागा। उसे जाते देख अन्य साथी भी निकट से डण्डे उठाकर ले आये, कोई टहनियाँ तोड़ लाया और वे अपने साथी को छुड़ाने हेतु आगे बढ़े।

लड़कों की भीड़ को अपने ऊपर झपटते देख उसने पकड़ ढीली कर दी और समीपवर्ती झाड़ी में छिप गया।

बौखलाया हुआ बालक मृत्यु के पंजे से स्वतन्त्र हो गया और प्रसन्न होता हुआ अपने साथियों के गले से लिपट गया।

ऐसे विकट समय में यदि वह बालक साहस से काम न लेता तो अपने एक साथी को खो देता। साथ ही कायरता का कलंक भी लगता। संकट से जूझने से उन्हें आत्मविश्वास की शक्ति भी मिली और पारस्परिक सहयोग से सफलता की नींव का मर्म उनकी निर्मल बुद्धि में बैठ गया।

जिन बालकों में ऐसे साहस एवं सहयोग के गुण होते हैं, उन्हें यदि प्रस्फुटित होते रहने का पर्याप्त अवसर मिलता रहे तो वे अपने भावी जीवन, महान कार्य भी सम्पादित कर जाते हैं, जिससे दूसरों को प्रेरणा मिलती है।

यह साहसी बालक था "वर्द्धमान" जो आगे चलकर तीर्थंकर "महावीर स्वामी" के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

ब्रह्म एक समष्टि चेतना और जीव व्यष्टि

अपनी यथार्थ जिज्ञासा और मोक्ष-ज्ञान प्राप्ति की पात्रता प्रदर्शित कर चुके तो महाराज जनक ने शुकदेव को पास बुलाया और कहा—"तात् ! तुम्हारी निष्ठा से मैं बहुत प्रभावित हुआ हूँ, तुम जो कुछ जानना चाहते हो मुझसे पूछो ?"

आत्म-कल्याण की इच्छा वाले शुकदेव ने तब प्रश्न किया आर्य श्रेष्ठ ! दर्शन कहता है—**'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति'** संसार में जो कुछ है वह ब्रह्म ही है उपनिषद् कहते हैं—

अभ्यास वैराग्य युतादा क्रान्तेन्द्रिय पन्नगात्।
नात्मनः प्राप्यते यत्तत्प्राप्यते न जगत्त्रायत्।।

अर्थात्—जो गति अभ्यास वैराग्य और इन्द्रिय-जय द्वारा आत्मा से प्राप्त होती है, वह तीनों लोकों में अन्यत्र कहीं नहीं मिलती इसलिए आत्मा की उपासना ही अनिवार्य है।

दूसरे तत्वदर्शी मनीषी कहते हैं—

अनन्यां तस्यं तां विद्धि स्पन्दशक्तिं मनोमयीम्।।

मन ब्रह्म की स्पन्द शक्ति ही है दोनों में कोई अन्तर नहीं।

जीव, आत्मा, ब्रह्म तीन तत्व योगीजन तीनों को एक ही सत्ता मानते हैं, फिर यह परस्पर भेदभाव क्यों? जीव ! ईश्वरीय, सर्वज्ञता, सर्वव्यापकता, चिन्मयता और परमानन्द की स्थिति में नहीं है, जबकि वह स्वयं ही ईश्वर अंश और अविनाशी है ?

सन्त शुकदेव का यह प्रश्न सुनकर महाराज जनक बहुत प्रसन्न हुए उन्होंने उत्तर दिया—"तात् ! समुद्र का कोई उद्गम है क्या ? नहीं वह अपने आपमें ही पूर्ण है। उस अनन्त जलराशि सिन्धु को बड़वानल जलाता है, जिससे वाष्प उठती है और वह अंग, वंग, कुरु, कौशल, पंचनद, अफराद, अगस्तारण्य, कुमांचल प्रदेश में सर्वत्र छा जाती है। वर्षा होती है फिर वही जल कहीं नदी, कहीं पोखरे, कहीं तालाब, कहीं कुएँ का रूप लेकर स्थिर हो जाता है और अपनी मात्रा के अनुसार जितना समय उपयुक्त है उतने समय तक बना रहता है फिर उसका सूखना, सोखना बहकर समुद्र में जाना या बीच में ही वाष्पीकृत होकर फिर बरसना, रूप बदलना कभी ठोस, कभी द्रव, कभी वाष्प होना यह क्रम चिरकाल तक जारी रहता है, जब तक कि वह फिर से अपने समुद्र की गोद में नहीं पहुँच जाता।"

तात् ! महाराज जनक निष्कर्ष देते हुए बोले—"ब्रह्म भी समुद्र की भाँति एक ऐसी चेतन-सत्ता है, जिससे संसार का न तो एक कण रिक्त है और न एक क्षण। वह ब्रह्म ही सूर्य रूप में (आत्मा रूप में) तत्व रूप में प्रतिभासित, होता है, और प्रकृति के संयोग से भिन्न-भिन्न शरीरों और वासनाओं वाले जीवों का निर्माण करता है। जिस प्रकार एक सूर्य-एक आत्मा के अनन्त जीव हैं, जो उस मूल चेतना आद्यशक्ति से प्राण पाते हैं, उसी प्रकार अनेक आत्माएँ ब्रह्म से जीवन और चेतना प्राप्त करती हैं—जिस प्रकार समुद्र, नदी, और ताल, पोखरों में एक तत्व जल ही सर्वत्र है, उसी प्रकार जीव आत्मा-ब्रह्म में एक ही प्राणतत्व का विकास और एक ही मनोदय चेतना कर रही है। अपने जीवन तत्व को भाप नदी में बदलकर नदी हो जाती है और नदी समुद्र। उसी प्रकार प्राणों को जीव से आत्मा में आत्मा से ब्रह्म में विकास और उसी में मानसिक चेतना या संकल्प की स्थिरता ही जीव का आत्मा और आत्मा का ब्रह्मीभूत होना है।

शुक महाराज जनक के आख्यान से बहुत प्रसन्न हुए और ब्रह्मानन्द में झूमते हुए समस्त विश्व में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आच्छादित, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, चिन्मय, परमानन्द स्वरूप उस एक ही विराट् चेतना का भजन करते हुए वहाँ से चल दिये।

राजा जनक विदेह क्यों कहलाए ?

गुरु ने शिष्य से कहा—"तुझे अब व्यावहारिक ज्ञान की दीक्षा के लिए राजा जनक के पास जाना होगा। राजा जनक राज-काज करते हुए राज महलों में रहकर भी सद्ज्ञान को प्राप्त हो गये हैं। उन्हें विदेह कहा जाता है।" शिष्य बड़ी उलझन में पड़ गया कि ख्यातिलब्ध गुरु के पास वर्षों रहा, घोर तप किया, किन्तु फिर भी ज्ञान प्राप्त न हो सका। भला राजमहलों में किस तरह ज्ञान मिलेगा, किन्तु गुरु आज्ञा शिरोधार्य कर शिष्य राजा जनक के राज दरबार में पहुँचा। देखा राजा जनक राज-काज में व्यस्त हैं। राजमहलों में सुख-सुविधा की प्रचुर सामग्री सुलभ है। नाच, गान, रास रंग में पूरा राजदरबार डूबा है। वह बड़ा हैरान हुआ कि इस विलासी राजा से क्या ज्ञान मिलने वाला है, किन्तु फिर भी राजा को अपने आने का मन्तव्य कह सुनाया।

राजा जनक ने कहा कि आज तो वह राजमहलों में घूमकर देख लें। कल सत्संग और ज्ञान की बात करेंगे और एक दीपक हाथ में थमाकर कहा कि देखना यह दीपक बुझ न जाय अन्यथा महल के रास्ते विकट हैं, भूल-भुलैयों में भटकने का डर है। शिष्य ने पूरा महल घूमा तो, किन्तु मन में डर बैठा ही रहा कि यदि दीपक बुझ गया तो रास्ते से भटक सकता है। अतः महल भली प्रकार न देख सका। पूरा ध्यान दीपक संभालने में ही लगा रहा।

सोने को सुन्दर, सुकोमल बिस्तर पलंगों की व्यवस्था तो थी, किन्तु शयन-कक्ष में पलंग के ठीक ऊपर नंगी तलवार पतले धागे से लटकती देखकर शिष्य रात भर न सो सका। रात भर सोचता रहा कि गुरु ने किस मुसीबत में फँसा दिया ? यहाँ क्या ज्ञान मिलेगा ? जान बच जाय यह क्या कम है ? प्रातः शिष्य राजा जनक के पास जाकर बोला—"महाराज अब क्या आज्ञा है ?" राजा ने पूछा—"रात को नींद कैसी आई, पहले यह तो बताइए।" उसने कहा—"बिस्तर पलंग आदि की व्यवस्था बहुत अच्छी थी, किन्तु सिर पर नंगी तलवार लटकती देखकर रात भर नहीं सो सका। इससे तो अच्छी नींद हमें हमारे झोंपड़ों में ही आती थी।" अब सम्राट ने कहा—"ठीक है।" आओ भोजन कर लें। सुस्वाद भोजनों का थाल परोसकर शिष्य के सामने रखा और कहा भोजन करें, किन्तु एक सन्देश आपके गुरु का आया है कि शिष्य को सत्संग में ज्ञान प्राप्त होना ही चाहिए। यदि न हो तो फिर सूली लगवादें।" यह समाचार सुनकर शिष्य स्वादिष्ट भोजन का स्वाद भूल गया, अब तो उसको सूली सामने नजर आने लगी। बड़े बेमन से भोजन किया और उठकर चल दिया और हाथ जोड़कर राजा से प्रार्थना की महाराज अब नहीं करना सत्संग। प्राण बच जाएँ यही बहुत है।

राजा जनक ने कहा—"सत्संग तो हो चुका, तुम इतना भी नहीं समझ सके।" शिष्य ने कहा—वह कैसे ? राजा ने कहा—"जैसे तुम रात को दीपक लेकर महल में घूमे, किन्तु दीपक बुझने के भय से महल का सुख न भोग सके। इसी प्रकार मुझे हर समय यह ध्यान बना रहता है कि यह जीवन का दीपक बुझने ही वाला है, अतः मैं रास रंग में रमता नहीं मात्र दृष्टा बना रहता हूँ। राज-काज करता अवश्य हूँ किन्तु लिप्त नहीं होता।"

"रात को नंगी तलवार लटकती देखकर तुम सो नहीं सके। इसी प्रकार मुझे प्रतिपल मृत्यु का ध्यान रहता है। मृत्यु कभी भी घट सकती है। अतः मैं रास-रंग में कभी डूबता नहीं। सुस्वाद भोजन में तुम्हें जिस तरह सूली का सन्देश सुनकर स्वाद नहीं आया। इसी प्रकार संसार में सब कुछ चल रहा है, घट रहा किन्तु मुझे भी उस शाश्वत अन्तिम सन्देश का प्रतिपल स्मरण रहता है। अतः माया, ममता, लोभ, आकर्षणों में मैं कभी लिप्त नहीं होता। मैं महल में अवश्य हूँ किन्तु महल मुझ में नहीं। ज्ञानी का यही परम लक्षण है कि वह संसार में अवश्य है किन्तु संसार रंचमात्र भी उसमें नहीं है। वह कर्म करते हुए भी लिप्त नहीं होता।" शिष्य उसी क्षण परम ज्ञान को प्राप्त हो गया। विदेह से वह सही अर्थों में तत्वदर्शन की दीक्षा ले चुका था।

अन्धकूप के पाँच प्रेत

आचार्य महीधर अपनी शिष्य मण्डली सहित तीर्थयात्रा पर जा रहे थे। रात्रि में एक सुरक्षित स्थान पर विश्राम के लिए रुक गये। थकी मण्डली गहरी निद्रा में सो गई।

महीधर को नींद नहीं आई। कहीं दूर पर कई व्यक्तियों का संयुक्त करुण-क्रन्दन सुनाई पड़ रहा था। वे चुपके से उठे और उधर चल पड़े जिधर से रुदन की ध्वनि आ रही थी। वे एक अन्धकूप के निकट जा पहुँचे। देखा कि पाँच व्यक्ति उसमें औंधे मुँह पड़े बिलख रहे हैं।

आचार्य ने निकालने का प्रयत्न करने से पूर्व उनसे पूछा—"वे कौन हैं और क्यों इस गर्त्त में गिरकर दुःख पा रहे हैं। निकलने का प्रयत्न क्यों नहीं करते ?"

उनमें से एक ने कहा—"हम पाँचों प्रेत हैं। कर्मफल भोगने के लिए इस गर्त्त में गिराये गये हैं। विधि-विधान को तोड़कर निकल सकना हमारे लिए संभव नहीं है।"

आचार्य का कौतूहल और भी बढ़ा। उन्होंने कहा—"भला जानें तो, आप लोगों को किस कारण इस दुर्गति में पड़ना पड़ा ?"

प्रेतों में से एक-एक ने अपनी दुर्गति का कारण बताया। पहले ने कहा—'वह पूर्व जन्म में ब्राह्मण था। दक्षिणा बटोरता और विलास में खर्च करता था। ब्रह्म कर्मों की उपेक्षा करता रहा।' दूसरे ने कहा—मैं क्षत्रिय था। दुःखियों की रक्षा सहायता से बचता और मद्य, मांस, वेश्यागमन, अनाचार जैसे कुकृत्यों में निरत रहा।' तीसरा बोला—मैं वैश्य था। अतिशय लाभ कमाने वाला, विक्रय वस्तुओं में हेरा-फेरी करने वाला, सम्पन्न होते भी कृपणता बरतने, किसी को कुछ न देने की प्रकृति वाला निष्ठुर।' चौथे ने कहा—मैं शूद्र था। अहंकारी, आलसी, दुर्व्यसनी। किसी की सीख मानी नहीं, जिम्मेदारी जानी नहीं।'

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पाँचवें प्रेत की स्थिति विचित्र थी। वह साथियों को भी मुँह नहीं दिखाता था। पीठ फेरकर खड़ा होता और दोनों हाथों से मुँह ढक लेता। महीधर ने उसकी इस विचित्र स्थिति का कारण आश्चर्यचकित होकर पूछा।

रुदन भरे स्वर में वह बोल पड़ा—"मैं पूर्व जन्म में साहित्यकार-कलाकार था। पर अपनी कलम से मैंने कभी नीति, धर्म, सदाचार का शिक्षण नहीं किया। अश्लीलता, कामुकता और फूहड़पन बढ़ाने वाला साहित्य लिखकर लोगों को पतित, भ्रमित ही करता रहा। ऐसे संगीत, अभिनय का सृजन किया जिसने कुत्साएँ जगाईं, वासना भड़काई। चित्र व मूर्तियाँ बनाने में प्रवीण-पारंगत होते हुए भी उन्हें कुरुचिपूर्ण गढ़ा। सारे समाज को भ्रष्ट करने के आरोप में यमराज ने मुझे अन्य सभी प्रेतों की तुलना में अधिक कष्टकर स्थिति में रहने—ब्रह्मराक्षस बनने हेतु इस स्थिति में पहुँचा दिया। यहाँ भी मैं इतना लज्जित हूँ कि अपना मुँह इन प्रेत भाइयों को भी नहीं दिखा सकने की स्थिति में हूँ।" इतना कहते उसका हिचकियाँ बँध गयीं वह आगे बोल नहीं सका।

अन्धकूप से निकलने-निकालने के प्रयत्न को व्यर्थ बताते हुए पाँचों प्रेतों ने महीधर से एक ही प्रार्थना की कि यदि वे कर सकें तो इतना भर कर दें, कि जन-जन को हमारी दुर्गति का कारण बता दें ताकि अन्य लोग ऐसी भूल न करें। पाप की चर्चा हो चले, तो वह हल्का पड़ता है। दूसरों को शिक्षा मिलती है।"

महीधर वापस लौट आये। उस दिन से वे अपने प्रवचनों में उन पाँच प्रेतों की कथा को भी सम्मिलित रखने लगे।

राजा भोज का स्वप्न

एक दिन राजा भोज गहरी निद्रा में सोया हुआ था। उसे स्वप्न में एक बड़े तेजस्वी वृद्ध पुरुष के दर्शन हुए। भोज ने उससे पूछा—"भगवन् आप कौन हैं ?" वृद्ध ने कहा—"हे राजन ! मैं सत्य हूँ। तुझे तेरे कार्यों का वास्तविक स्वरूप दिखाने आया हूँ। मेरे पीछे-पीछे चला आ और अपने कार्यों की वास्तविकता को देख।" राजा प्रसन्नता पूर्वक उस वृद्ध पुरुष के पीछे-पीछे चल दिया।

राजा भोज अपने को बड़ा धर्मात्मा समझता था। उसने दान, पुण्य, यज्ञ, व्रत, उपवास, तीर्थयात्रा, कथा-कीर्तन, भजन-पूजन आदि में कुछ भी कसर न रहने दी थी। वह ब्राह्मणों का बड़ा सत्कार करता था, उन्हें प्रचुर दक्षिणा देकर सन्तुष्ट करता था। मन्दिर, बाग, बगीचे, कुआ, बावड़ी, तालाब आदि उसने एक से एक अच्छे बनवाये थे। अपनी इन वृत्तियों को देख-देखकर राजा मन ही मन बहुत अभिमान किया करता था।

वृद्ध पुरुष के रूप में आया हुआ सत्य, राजा भोज को अपने साथ उसकी कृतियों के पास ले गया। पहले एक बड़े भारी बगीचे में वह उसे ले गया। भोज का लगाया हुआ यह बगीचा फल-फूलों से लदा हुआ था। सत्य ने कहा—"हे भोज ! तुझे अपनी इस कृति के वाह्य रूप को देखकर बड़ा अभिमान होगा। पर इसमें असलियत कितनी है, यह मैं तुझे अभी दिखाये देता हूँ।" सत्य ने एक पेड़ को छुआ, छूते ही उसके सारे फल-फूल और पत्ते जमीन पर गिर पड़े और वह ठूँठ हो गया। एक-एक करके सत्य ने सब पेड़ छुए और वे सभी ठूँठ हो गये। यह सब देखकर भोज के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। आकुलतापूर्वक चिन्तित नेत्रों से सत्य की ओर देखा। वृद्ध पुरुष ने कहा—"मैं जानता हूँ कि तुम इसका कारण जानना चाहते हो पर आओ मुझे अभी तुम्हारी अन्य कृतियों का भी खोखलापन दिखाना है। उन्हें दिखा लेने के बाद ही इसका कारण तुम्हें बताऊँगा।"

सत्य, राजा भोज को साथ लेकर आगे बढ़ा। वह उसे उस स्वर्ण जड़ित मन्दिर के पास ले गया, जिस पर भोज को बड़ा अभिमान था। सत्य ने उसे जरा-सा छुआ, छूते ही उसकी सारी चमक उड़ गई। सोना लोहे के समान काला हो गया, आलीशान पत्थर जमीन पर गिर-गिर कर चूर होने लगे। थोड़ी ही देर में वह गगनचुम्बी मन्दिर टूटे-फूटे खण्डहर के रूप में परिणत हो गया। इस दृश्य को देखकर राजा के होश उड़ने लगे। वह जड़ पत्थर की तरह गतिहीन होकर खड़ा हो गया, सत्य ने कहा—"राजन् ! विषाद मत करो, अभी और मेरे साथ आओ, मैं तुम्हारे सभी धर्म कार्यों की वास्तविकता खोल-खोलकर सामने रखे देता हूँ।"

वृद्ध पुरुष आगे बढ़ा उसने राजा के यज्ञ, तीर्थ, कथा, कीर्तन, पूजन, भजन, दान, व्रत आदि के निमित्त बने हुए स्थानों, व्यक्तियों और उपादानों को छुआ। सत्य, जिस वस्तु से उँगली लगाता था, उसी की चमक-दमक गायब हो जाती थी और टूटे-फूटे, नष्ट रूप में वह भूमि पर गिर पड़ती थी। कुआ, बावड़ी, मन्दिर, मठों की भी यही दुर्गति हुई। दान में दी हुई धन की बड़ी भारी स्वर्ण राशि के निकट भी उसे ले जाया गया, सत्य ने जैसे ही उसे छुआ वह भी मिट्टी, कंकड़ की शक्ल में बदल गई। राजा को अपनी जिन-जिन वस्तुओं पर अभिमान था, उन सभी को सत्य ने स्पर्श करके दिखाया। वे सभी निकम्मी, झूठी और निष्फल साबित हुईं। राजा की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। जिन वस्तुओं को देख-देखकर वह फूला नहीं समाता था, उनकी यह दुर्गति होते देखकर भोज के पैरों तले से जमीन खिसकने लगी। वह हतबुद्धि होकर वहीं जमीन पर बैठ गया।

सत्य ने कहा—"राजन ! वास्तविकता को समझो। भ्रम में मत पड़ो। भौतिक वस्तुओं के न्यूनाधिकता के आधार पर धर्म की न्यूनाधिकता नहीं होती। कर्म के राज्य में भावना का सिक्का चलता है। भावना के अनुरूप ही पुण्य फल प्राप्त होता है। यश की इच्छा से, लोकदिखावे के लिए जो कार्य किये गये हैं, उनका फल इतना ही है कि दुनिया की वाहवाही मिल जाय। सच्ची सद्भावना से, निःस्वार्थ होकर, कर्त्तव्य भाव से जो कार्य किये गये हैं। वे ही पुण्य फल हैं। एक गरीब आदमी जिसके पास पैसा नहीं है, यदि निःस्वार्थ भाव से किसी को एक लोटा जल पिलाता है, तो उसका पुण्य किसी यश लोलुप धनी के लाख करोड़ रुपया खर्च करने से अधिक है। मजहबी कर्मकाण्डों की कवायद पूरी कर देने मात्र से यदि पुण्य प्राप्त हो जाता, तो धनिकों के लिए या अमुक मजहब वालों के लिए ही धर्म खरीद लिया गया होता परन्तु

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सच्चाई यह नहीं है। वास्तविकता यह है कि जो मनुष्य अपने तुंच्छ स्वार्थों से आगे बढ़कर कर्त्तव्य भावना से लोक कल्याण के लिए ठीक कार्य करता है, वही पुण्य होता है और उसी का पुण्य फल प्राप्त होता है। बाकी अन्य आडम्बर तो दिखावा मात्र हैं, उनकी पहुँच तो इस लोक तक ही है। धर्म के राज्य तक इनकी पहुँच नहीं हो सकती।

इतना कहकर वह वृद्ध पुरुष के रूप में आया हुआ सत्य अन्तर्द्धान हो गया। भोज की निद्रा टूटी। उसने गम्भीरतापूर्वक अपने स्वप्न पर विचार किया और अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि भौतिक साधनों की सहायता से पुण्य कमाने की आशा छोड़कर मनुष्य को अपने अन्तःकरण की पवित्रता और विशुद्धता की ओर प्रवृत्त होना चाहिए, क्योंकि धर्म-अधर्म की जड़ मन में है, बाहर नहीं।

निर्दोष कौन है ?

एक चोर चोरी करता हुआ पकड़ा गया। सिपाही पकड़कर उसे राजा के पास लाये। राजा ने चोर को अपराधी पाया और उस समय के दण्डविधान के अनुसार फाँसी की सजा का हुक्म सुना दिया।

जब फाँसी की तिथि निकट आई, तो राज कर्मचारियों ने चोर से पूछा—"तू कुछ चाहता है ? यदि चाहता हो तो बता, जिसे हम तेरे इन अन्तिम समय में प्रस्तुत करने का प्रयत्न करें।" चोर ने नम्रतापूर्वक कहा—"भगवन् ! मेरी एक ही इच्छा है कि मृत्यु से पूर्व अपने प्रजापालक महाराज के एक बार दर्शन कर लूँ। यदि आप ऐसा करा सकें, तो मुझे बड़ी शान्ति मिलेगी।"

कर्मचारियों ने राजा के पास उसकी इच्छा का सन्देश भेजा। राजा दयालु था। उसने एक मरते हुए आदमी की अन्तिम इच्छा को ठुकराना उचित न समझा और खुद ही उठकर जेलखाने में चोर से मिलने चल दिया।

राजा को आया देखकर चोर ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया और कहा—"श्रीमान्, मैंने जैसा किया वैसा पाया। इसमें मुझे कुछ भी रंज नहीं है कि मेरी मृत्यु होगी, क्योंकि एक दिन तो मरना ही था। रंज मुझे इस बात का है कि मैं एक अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण विद्या जानता था जो कि मेरे साथ ही लुप्त हो जायगी।" राजा ने पूछा—"वह विद्या क्या है ?" चोर ने कहा—"वह है सोने की कृषि करना। मैं खेतों में सोना देने वाले पेड़ उगाना जानता हूँ।"

राजा स्वयं इस विद्या को जानने के लिये उत्सुक हो उठा। उसने तुरन्त ही फाँसी की तिथि स्थगित कर दी और चोर से कहा—हमें उस विद्या को सिखाओ। जब सिखा चुकोगे, तभी फाँसी दी जायगी। चोर ने कहा—अधिक नहीं, एक मास पर्याप्त है। इतने दिनों में आप एक खेत अच्छी तरह जुतवा दीजिये !

खेत जोतने का विशेष प्रबन्ध हो गया। दिन-रात हल चलने लगे। सारे राजदरबार का ध्यान उस खेत पर था। कोई मिट्टी की परीक्षा करता, कोई जोतने का ढंग सुधारता, कोई नमी की जाँच करता, कोई कुछ करता तो कोई कुछ। राजा खुद दस-पाँच बार उस खेत की जुताई देखने जाते, बड़ी उत्सुकता और प्रतीक्षा के बाद महीना पूरा हुआ, जैसे-तैसे सीखने की तिथि आई। उसी दिन बड़ा उत्सव मनाया गया। सारी प्रजा कौतूहलवश देखने को उपस्थित हुई। भारी भीड़ लगी हुई थी।

नियत समय पर चोर बड़ी प्रसन्नता के साथ मुस्कराता हुआ गम्भीरतापूर्वक खेत पर पहुँचा। उसने अपनी जेब में से कुछ काले-काले अत्यन्त ही छोटे बीज निकाले, जो देखने में किसी जंगली घास के से प्रतीत होते थे। उन बीजों को बड़े गर्व के साथ उसने सँभाल-सँभाल कर हथेली पर रखा और एक ऊँची जगह पर खड़े होकर सारे प्रजाजनों को वह बीज दिखाये और कहा—आप लोग देखें! यही स्वर्णलता के बीज हैं, "इन्हें मैं शल्य देश से, बड़े प्रयत्नपूर्वक लाया था और इनके उगाने की सारी विद्या सीखकर आया था। इन बीजों से जो पौधे उत्पन्न होंगे, वह सेरों सोना रोज दिया करेंगे।" इसके बाद उसने बड़े दुःख के साथ एक लम्बी साँस खींची और कहा—"हाय ! मैं पहले से ही चोर न हुआ होता, तो खुद ही सोने की खेती करता और पृथ्वी का कुबेर बन जाता।"

लोगों ने पूछा—चोरी करने से और उन बीजों से क्या सम्बन्ध ? उसने कहा—"बस यही तो कठिनाई है, इन्हें वही बो सकता है, जिसने कभी चोरी न की हो। आप में से जिसने कभी चोरी न की हो, वह आगे आवे और महाराज के इस खेत में बीज बो दे।"

प्रजाजन सब चुपचाप खड़े थे। कोई ऐसा न था, जिसने कभी चोरी न की हो। जब चोर ने उधर सन्नाटा देखा, तो हाथ पर बीज रखे, राजकर्मचारियों की ओर मुड़ा, पर वे भी सब काठ की मूर्ति की तरह खड़े थे। सारी भीड़ में एक भी ऐसा न था, जो अपने को निर्दोष समझता हो, कभी न कभी हर एक चोरी कर चुका था। अब राजा की बारी आई। उस सन्नाटे को चीरता हुआ चोर राजा के समक्ष पहुँचा और कहा—"महाराज ! आप ही इन बीजों को बो दें" परन्तु महाराज का हाथ भी न उठा। वे भी अपने घर में अनेक बार चोरी कर चुके थे। चोर मस्तक झुकाये खड़ा था। फैले हुए हाथों पर स्वर्णलता के बीज रखे हुए थे, पर बोने वाला कोई न था।

घण्टों बीत गये। चोरों का हज्जूम एक-एक करके खिसकता गया। राजदरबारी भी चले गये। राजा के सामने अकेला चोर खड़ा था, वह चरणों पर झुक गया और कहा—"महाराज ! मुझ अकेले ही को फाँसी क्यों ?"

राजा विचारक था और दयालु भी। उसने मनुष्य प्राणी की आन्तरिक कमजोरियों का दर्शन अनुभव किया और चोर से कहा, "जा, तुझ अकेले को ही मैं फाँसी नहीं दे सकता।"

सत्ता एवं सम्पदा का सदुपयोग

महाराज रघु ने कितने ही युद्ध लड़े और अपने राज्य का चक्रवर्ती विस्तार किया, साथ ही राजकोष में विपुल सम्पदा भी बढ़ गई। इस सफलता पर दृष्टिपात करने और भावी योजनाएँ बनाने के लिए राज्य परिषद की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बैठक हुई। मन्त्रिगण, शासन संचालक और प्रमुख आमात्य सभी उस गोष्ठी में उपस्थित थे।

रघु ने बताया—इतने युद्ध न रक्तपात के मनोरंजन के लिये लड़े गये हैं और न आपा-धापी के अहंकार की वृद्धि के लिए। शासकों के विलास-वैभव के लिए भी युद्ध के देवता को जगाया नहीं गया। उसका मात्र उद्देश्य उच्छृंखल अव्यवस्था को एक सउद्देश्य युक्त अनुशासन में परिणत करना था। विशृंखलित जनसमूह को एक सूत्र में पिरोने और संगठित लोकशक्ति को सत्पथगामिनी बनाने के लिए ही राज्य विस्तार किया गया है।

उपस्थित आमात्यों ने इस सदुद्देश्य को जाना तो पहले भी था, पर अब रघु के विश्लेषण से यह जाना कि चक्रवर्ती शासन के साथ जुड़े हुए उत्तरदायित्वों को भी निभाना होगा। कहना कुछ और करना कुछ जैसा भेड़िया शासन ऐसे आदर्शवादी शासन में चल सकना संभव नहीं। रघु ने अपनी बात को आगे जारी रखते हुए कहा—"राजकोष को बढ़ाने में ही हमें संलग्न नहीं रहना वरन् उसे तेजी से घटाना भी है। कर से जो कोष जमा होता है, उसमें न्यूनतम ही हम शासनाधिकारी अपने लिए उपयोग करें और शेष को लोककल्याण प्रयोजनों के लिए वापस कर दें।"

आमात्यों ने समझ लिया कि जनकल्याण की विविध योजनाएँ अगले दिनों आरम्भ होंगी और उनमें राज्य कोष चुक जायेगा।

कोषाध्यक्ष की चिन्ता बढ़ी। उन्होंने उदास होकर पूछा, "राजन् शत्रुओं के आक्रमण होने पर युद्ध लड़ने पड़ते हैं और उसके लिए विपुल धनराशि व्यय करनी पड़ती है। जब कोष खाली हो जायेगा तो सैन्य प्रयोजनों की आवश्यकता कैसे पूरी होगी ?"

रघु नरेश ने इस बात को उसी गम्भीरता से समझा और निश्चित शब्दों में कहा—"सशक्त लोकशक्ति अपने आप में एक सेना है। समुन्नत राष्ट्र का हर नागरिक एक सैनिक होता है। यदि हम अपनी प्रजा को सशक्त बना डालें तो फिर कोई बहुत बड़ी अतिरिक्त सेना रखने की आवश्यकता न पड़ेगी।" यथार्थता को एक स्वर से स्वीकार किया गया और राज्यपरिषद्, लोकमंगल की अनेकों योजनाएँ बनाने में लग गई। शिक्षा, स्वास्थ्य, सांस्कृतिक, ग्रामपंचायत, कृषि, पशुपालन, परिवहन, सिंचन, शिल्प, व्यवसाय, न्याय आदि अनेक विभागों का पुनर्गठन किया गया। गुरुकुलों को विपुल धनराशि अलग से दी गई जिससे लोकनायकों की महती आवश्यकता पूरी कर सकने योग्य जीवन्त उत्पादन वहाँ से हो सके। शासनतन्त्र के सभी सदस्य एक मन और एक लगन से उस प्रयास में जुट पड़े। कुछ ही वर्ष बीते होंगे कि रघुराज्य की तुलना स्वर्ग से की जाने लगी। प्रजा को लगा मानो यह शासन उसे दैवी वरदान जैसा मिला। जनता उत्साहपूर्वक कर देती थी, पर जनमंगल की योजनाएँ निरन्तर बढ़ती ही जाती थीं, सो संचित कोष घटता ही चला गया। जब वह चुकने की स्थिति में पहुँचा तो कोषाध्यक्ष ने महाराज के सामने स्थिति का प्रतिवेदन प्रस्तुत किया और बताया, कि शिक्षा संचालक महामुनि कौत्स, गुरुकुलीय राशि राज्यकोष से न मिल सकने के कारण खाली हाथों वापस जा रहे हैं। विद्यालय अगले दिनों कैसे चलेगा, इस चिन्ता से वे भी चिन्ताग्रस्त हो रहे हैं। रघु ने दूसरे ही दिन धनाधीश कुबेर के राज्य पर चढ़ाई कर दी और उनका विपुल कोष लूटकर निराश लौटने वाले कौत्स मुनि को विपुल धन दिया ताकि वे राज्य की शिक्षा योजना को और भी अधिक विस्तृत कर सकें। तत्वज्ञानियों की गोष्ठी में इस अनैतिक कहे जा सकने वाले आक्रमण एवं अपहरण को भी नीतिसम्मत ही ठहराया गया।

हमारा काम यहाँ से

ऋषि शमीक और उनके शिष्यों को कुरुक्षेत्र के मैदान में मचे महाभारत के महारण में टिटहरी और उसके अण्डों का गज के खण्डित घण्टे के नीचे बचे रह जाने पर प्रभु की इस माया पर बड़ा सुखद आश्चर्य हुआ। ऋषि शमीक ने अपने शिष्यों से उन्हें आश्रम ले जाकर पालन-पोषण करने को कहा तो शिष्य बोला—"भगवन् ! जब ईश्वर ने महासमर से इनकी रक्षा की है, तो क्या वह इनका पोषण न करेगा ?"

"वत्स ! जहाँ उसका काम समाप्त हो जाता है, वहीं हमारा काम आरम्भ हो जाता है। ईश्वर ने हमें यह सामर्थ्य और सहृदयता उसके छोड़े काम को पूरा करने के लिये ही तो दी है।

ईश्वर अपना कार्य करता है, पर उसमें मनुष्य को अपनी भूमिका भी समझनी और निभानी चाहिये।"

प्रभु ! कर्त्तव्य पालन की शक्ति दो

महाराज रंतिदेव की प्रचण्ड तपश्चर्या से जब इन्द्रासन डोल उठा तो प्रजापति को उनके सामने प्रकट हो वरदान देने के लिये बाध्य होना पड़ा। उन्होंने कहा—"तुम्हारी तपश्चर्या से मैं अत्यधिक प्रसन्न हूँ। चाहो जो वरदान माँग लो।"

महाराज बोले, "देवराज ! मैं चाहता हूँ मेरे राज्य में ही नहीं, समस्त पृथ्वी पर कोई भूखा न रहे, कोई पीड़ित-शोषित, धनहीन न रहे। प्रचुर अन्न धन से सबके भण्डार भरे रहें। पृथ्वी हिरण्यगर्भा हो। जन-जन के मन में बैर, ईर्ष्या, द्वेष, कलह व दुर्भावनाओं का नाम निशान न रहे। पारस्परिक आत्मीयता व सौहार्द्र बढ़े। कोई रोगी न हो, दुःखी न हो। यह मेरा कर्त्तव्य है और मुझे इस कर्त्तव्य के पालन की शक्ति दीजिये।"

महाराज ने तप के बदले अपने लिये कुछ भी न माँगा, सब कुछ जनकल्याण के लिये माँगा। यह सच्चे तपस्वी की अनूठी मिसाल है।

भगवान से लौकिक सुख-सुविधाएँ माँगने की अपेक्षा कर्त्तव्य पालन की क्षमता माँगना ही संगत है।

मत्स्यावतार और मनु

एक बार मनु नाव में वेद रखे हुए जा रहे थे कि समुद्र में तूफान आ गया। तूफान शान्त हुआ तो देखा कि एक बड़ी मछली उनकी नाव को सहारा दिये खड़ी है, मनु ने विनीत भाव से पूछा—"भगवन् आपने ही मेरी रक्षा की आप कौन हैं ?" मत्स्य भगवान् दिव्य रूप में प्रकट होकर बोले—"वत्स ! तूने ज्ञान की रक्षा का व्रत लिया इसलिये तेरी सहायता के लिये मुझे आना पड़ा।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(१) सदुद्देश्य के लिए प्रयत्न करने वालों का भगवान ही सहायक होता है।

(२) सद्ज्ञान की रक्षा, प्रत्येक विचारवान और मननशील का धर्म कर्त्तव्य है (भगवान मनु)।

अर्जुन का अज्ञातवास

पाण्डवों ने एक नियम बना लिया था कि जब एक भाई द्रोपदी के साथ सहवास कर रहा होगा तब दूसरा भाई उधर नहीं जायेगा, यदि गया तो उसे एक वर्ष का अज्ञातवास भोगना पड़ेगा। एक बार हस्तिनापुर में शेर घुस आया। उसे मारने के लिए अस्त्रों की आवश्यकता पड़ी। अस्त्र वहाँ रखे थे, जहाँ धर्मराज युधिष्ठिर द्रोपदी के साथ एकान्तवास में थे। इधर गायों की रक्षा का प्रश्न उधर मर्यादा की बात आखिर अर्जुन अन्दर चले गये और अस्त्र उठा लाये। शेर को मारकर वे अज्ञातवास के लिये चल पड़े। घर वालों ने बहुत समझाया कि यह तो आपत्ति धर्म की बात थी। आपको जंगल नहीं जाना चाहिए लेकिन अर्जुन ने आपत्ति धर्म से हुई त्रुटि का प्रायश्चित्त अनिवार्य समझा और अज्ञातवास में चले गये।

(१) मर्यादा की आड़ में कर्त्तव्य का अवसर न चूके (सिंह वध के लिये अस्त्र उठाने का प्रसंग)।

(२) मर्यादा के रक्षण के लिये उचित प्रायश्चित्त करने से गलत परम्परा नहीं पड़ती (अर्जुन वनगमन)।

शिक्षक का कर्त्तव्य

महर्षि आश्वल्यायन को गौरव प्राप्त था कि उनका पढ़ाया हुआ हर छात्र राष्ट्र का प्रतिभाशाली और यशस्वी व्यक्ति है। प्रधान मन्त्री, सेनापति से लेकर कुरुपद का कृषि-पण्डित भी उन्हीं का छात्र था। तभी एक दिन उन्होंने सुना, उन्हीं का एक छात्र देवदत्त दस्यु हो गया है। उसके क्रूर कर्मों के कारण समस्त कुरुपद में त्राहि-त्राहि मच गई है। कोई भी सेना और सेनापति उसे वश में नहीं कर सका। महर्षि के लिए यह सन्देश वज्राघात के समान था। भीषण रात, आकाश में बादल घिरे हुए, महर्षि को रोका भी गया, पर वे नहीं रुके सीधे वहाँ पहुँचे जहाँ देवदत्त दस्यु कर्म किया करता था। अँधेरे में एक छाया देखते ही देवदत्त ने ललकारा, रुक जाओ नहीं तो खड्ग प्रहार करता हूँ, किन्तु आगन्तुक रुका नहीं। देवदत्त का खड्ग छूटा और आगन्तुक के माथे में जा धँसा। रक्त के फव्वारे के साथ आकाश में बिजली चमकी, देवदत्त महर्षि के चरणों में गिर गया। गुरुदेव यह क्या हुआ तीव्र वेदना में देवदत्त चिल्लाया। महर्षि ने कहा—"वत्स ! मेरे शिक्षण में कुछ कमी रह गई थी, उसका दण्ड मुझे मिलना ही था।" देवदत्त गुरु का आशय समझ गया फिर उसने कभी भी डकैती नहीं डाली।

(१) शिक्षक का कर्त्तव्य है कि वह छात्र के बौद्धिक और मानसिक ही नहीं चारित्रिक विकास का भी मार्ग-दर्शन करे।

(२) शिष्य के कुमार्गगामी होने का शिक्षक को दुःख और उसको दिशा देने के लिए स्वयं को खतरे में डालना।

(३) शिष्य की कमी अपने शिक्षण की कमी मानना।

(४) सच्चे शिक्षक की बात का शिष्य पर अद्भुत प्रभाव।

सबसे बड़ा पुरस्कार

पूर्व दिशा में उषा की लालिमा दिखाई देने लगी। अंधकार के विदा होने का समय निकट आ गया। भगवान भास्कर भी अपने रथ पर सवार होकर गगन पथ पर आगे बढ़ने लगे। दीपक की लौ ने अपना मस्तक उठाकर सूर्य को प्रणाम किया और बुझ गया।

सूर्य को यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि मेरी अनुपस्थिति में दीपक ने अपने कर्त्तव्य को अच्छी तरह निभाया है। वह दीपक को वरदान देने के लिए तैयार हो गया।

दीपक की आत्मा सहज भाव से बोल पड़ी—"सूर्य देव ! संसार में अपने कर्त्तव्य पालन से बढ़कर कोई अन्य पुरस्कार हो सकता है, मैं नहीं जानता। मैंने तो आपके द्वारा दिये गये उत्तरदायित्वों का निर्वाह किया है इसमें प्रशंसा की बात ही क्या ?"

सूर्य ने सन्तुष्ट होकर अपने रथ को आगे बढ़ने का आदेश दिया।

सहज भाव से निभाया कर्त्तव्य महानता का ही प्रतीक है।

बाँध टूटा पर निष्ठा न टूटी

वर्षा की बात है। गीली मिट्टी टिक नहीं रही थी। एक बाँध का छेद बढ़ता जा रहा था, उससे देश के डूब जाने की आशंका थी। क्या किया जाए ? एक आदमी आगे बढ़ा और जहाँ बाँध टूट रहा था वहाँ लेट गया। थोड़ी देर में ठण्ड से उसका शरीर अकड़ गया, तो उसे लोगों ने उठाकर आग के पास पहुँचाया और दूसरा लेट गया। सारा गाँव इसी तरह पानी को तब तक रोके रहा जब तक सरकारी कर्मचारी नहीं आ गये। इन्जीनियर ने ग्रामीण भाइयों का त्याग देखकर कहा—"जहाँ तुम्हारे जैसे त्यागी व साहसी लोग हों, उस देश का कभी अहित नहीं हो सकता।"

निष्ठा सम्पन्न साधनहीन हों, तो भी कार्य साध लेते हैं।

पन्नाधाय का त्याग

उदयसिंह तब छोटे थे, इसलिये उनके बड़े न होने तक के लिए बनवीर को राज्य का उत्तराधिकार सौंप दिया गया, पर उसके मन में लोभ आ गया उसने उदयसिंह और विक्रमसिंह को मार डालने का निश्चय किया।

उदयसिंह की माँ का देहान्त हो चुका था, उनका पालन-पोषण पन्नाधाय ने किया था। पन्ना का अपना पुत्र भी था जो उदयसिंह के साथ ही रहता था। एक दिन बनवीर ने विक्रमसिंह की हत्या कर दी, पन्ना को इसका पता चला तो उसने उदयसिंह को वहाँ से सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दिया। क्रोध से भरा बनवीर उसके पास पहुँचा तो उसने अपने बच्चे को ही उदयसिंह बताकर उसका शीश कटा दिया, पर कर्त्तव्य को आँच नहीं आने दी।

नैतिक कर्त्तव्य पारिवारिक मोह-ममता से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गुरु गोविन्दसिंह के पुत्र

दूत गुरु गोविन्दसिंह को समाचार बता रहे थे, "बड़ी सी मुगल सेना चमकौर दुर्ग पर आक्रमण करने के लिये चल पड़ी है ..... और कहते-कहते वे रो पड़े।" "आगे बताओ रुक क्यों गये ? जोरावर सिंह और फतहसिंह का क्या हुआ ?" गुरु गोविन्दसिंह ने पूछा।

"सरहिन्द के नबाब ने उन्हें इस्लाम धर्म स्वीकार नहीं करने के कारण जिन्दा दीवार में चुनवा दिया।" दूतों ने रोते-रोते कहा।

गुरु गोविन्दसिंह का मस्तक गर्व से ऊँचा हो गया, वे बोले—"वे दोनों सच्चे धर्मवीर थे हमें उनसे शिक्षा लेनी चाहिए।"

(१) निष्ठा की वेदी पर बलिदान भी सार्थक है।

(२) बलिदान पर दुःख नहीं गौरव ही अनुभव करना चाहिए (गुरु गोविन्दसिंह)।

संरक्षक मात्र

नासिरुद्दीन दिल्ली के बादशाह थे, पर वे अवकाश के समय टोपियाँ बनाकर कुरान की नकल करके जो धन मिलता उसी से अपना खर्च चलाते। बादशाह की बेगम हाथ से खाना पकाया करती थी।

एक बार खाना पकाती हुई बेगम का हाथ जल गया। वह सोचने लगी एक बादशाह की बेगम होते भी उसे एक नौकर भी मयस्सर नहीं। उसने अपने पति से कहा, "आप राज्य के स्वामी हैं, क्या आप हमारे लिये भोजन पकाने वाले एक नौकर का प्रबन्ध नहीं कर सकते ?"

"बेगम आपके लिये नौकर रखा जा सकता है बशर्ते कि हम अपने सिद्धान्तों से डिग जाएँ। राज्य, धन, वैभव तो प्रजा का है। हम तो उसके संरक्षक मात्र हैं। उसका उपयोग अपने लिये करें यह तो बेईमानी होगी।" नासिरुद्दीन ने उत्तर दिया। उनकी सिद्धान्तनिष्ठा के आगे पत्नी को झुकना पड़ा।

(१) ईमानदारी और श्रम की कमाई ही स्वीकार करना।

(२) सम्पत्ति को भगवान एवं समाज की धरोहर मानना।

(३) दैहिक कष्ट से विचलित होकर सिद्धान्तनिष्ठा खो न देना।

व्रतनिष्ठा

वानप्रस्थ ग्रहण करने के बाद महाराजा दिलीप पत्नी सहित महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में पहुँचे। वशिष्ठ ने उन्हें एक गाय, नन्दिनी की सेवा पर नियुक्त किया।

नन्दिनी जब चरने के लिए जंगल में जाती, तो महाराज दिलीप धनुष-बाण लेकर उसकी रक्षार्थ साथ जाते। पत्नी भी साथ होती। एक दिन एक सिंह नन्दिनी पर आक्रमण करने के लिए लपका। दिलीप ने धनुष की प्रत्यंचा पर बाण चढ़ाया, सिंह रुका और बोला—'दिलीप तुम जिसे सिंह समझते हो वह नहीं, मैं भगवान शंकर का वाहन हूँ तुम्हारे शस्त्रों का मुझ पर प्रभाव न होगा।"

'आप जो भी हों वनराज'—दिलीप ने कहा—मैं नन्दिनी पर किसी भी प्रकार का प्रहार नहीं करने दूँगा।'

वनराज ने कहा—मैं मान जाऊँगा यदि तुम नन्दिनी के बदले में अपना शरीर देकर मेरी भूख मिटाओ।'

'सहर्ष प्रस्तुत हूँ' और दिलीप ने यह कहकर धनुष-बाण समेटे। उन्होंने सिर झुकाया परन्तु काफी समय तक कोई हलचल नहीं हुई, तो उस स्थान की ओर देखा जहाँ सिंह खड़ा था, परन्तु वहाँ सिंह भी नहीं था, मुसकरा रहे थे महर्षि वशिष्ठ। 'तुम्हारी साधना तपश्चर्या पूरी हुई वत्स ! अब तुम तत्वज्ञान के अधिकारी हो गये हो।'

सौंपे गये दायित्व को निष्ठापूर्वक निभाकर ही आध्यात्मिक पात्रता उपलब्ध होती है।

ईश्वरीय न्याय में विश्वास

कोर्ट मार्शल के सम्मुख तात्या टोपे को उपस्थित करने के बाद अँग्रेज न्यायाधीशों ने कहा—"यदि अपने बचाव के लिए तुम्हें कुछ कहना है तो कह सकते हो।"

मैंने ब्रिटिश शासन से टक्कर ली है—"तात्या ने स्वाभिमानपूर्वक कहा—मैं जानता हूँ कि इसके बदले मुझे मृत्यु दण्ड प्राप्त होगा। मैं केवल ईश्वरीय न्याय और उसके न्यायालय में विश्वास करता हूँ इसलिए अपने बचाव के पक्ष में कुछ नहीं कहना चाहता।

नियमानुसार उन्हें फाँसी ही दी गयी। बध-स्थल पर ले जाते समय उनके हाथ-पैर बाँधे जाने लगे तो वे बोले—"तुम मेरे हाथ-पाँव बाँधने का कष्ट क्यों करते हो ? लाओ फाँसी का फन्दा मैं स्वयं अपने हाथों में पहन लेता हूँ।"

कर्त्तव्य का पालन करते हुए मृत्यु भी आ जाय तो श्रेष्ठ है।

ठीक ही तो है

मुगल सम्राट बहादुरशाह जफर रंगून में निर्वासित का जीवन बिता रहे थे। वे एक दिन सम्राट थे, किन्तु आज उनका जीवन अभाव और कष्टों की एक कहानी बन गया था। किसी ने पूछा—"आप इतने कष्टों को मौन होकर सहते जा रहे हैं, विरोध क्यों नहीं करते ?"

"विरोध करने की क्या आवश्यकता ? अपराध मुझसे हुआ है तो दण्ड भी मुझे ही भुगतना होगा। यदि इससे भी अधिक यातनाएँ दी जायेंगी, तो उन्हें भी मैं खुशी-खुशी सहन करूँगा।" सम्राट ने बड़ी गम्भीरता के साथ उत्तर दिया।

"क्या अपराध किया है आपने ? मुझे भी बताइये।"

सम्राट ने उत्तर दिया—"देश का प्रहरी होकर मुझे प्रत्येक समय सजग रहना चाहिए था, पर मैं बेहोशी की नींद में सोया रहा। शत्रु ने आक्रमण कर दिया, पर मैं समय पर उसे ललकार न सका इससे बड़ा देश-द्रोह और अपराध क्या हो सकता है ?"

(१) अपने दायित्वों को भलीभाँति न निभा पाना भी एक अपराध है।

(२) प्रतिकूल परिस्थितियों को पूर्वकृत अपराधों पर परिणाम जानकर शान्त एवं सुखी रहा जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संयम, सन्तुलन एवं आत्मनियन्त्रण

वरदायी अभिशाप

जुए में सारा राजपाट हार जाने के बाद दुर्योधन द्वारा पुनः निमन्त्रित किये जाने पर द्यूतक्रीड़ा के लिए बैठे युधिष्ठिर फिर हार गए और अबकी बार उन्हें वनवास के लिए जाना पड़ा। पाण्डव उन दिनों वनवास में जीवन व्यतीत कर रहे थे, तभी भगवान वेदव्यास ने अर्जुन को तपस्या की प्रेरणा दी। दिव्य दृष्टि से भगवान व्यास को यह ज्ञात हो गया था कि महाभारत अवश्यम्भावी है। इस महाभारत में पाण्डवों का पक्ष सुदृढ़ करने के लिए ही उन्होंने अर्जुन को तपश्चर्या के लिए जाने का परामर्श दिया था।

अपने भाइयों से अनुमति प्राप्त कर अर्जुन हिमालय पर तप करने चले गए। वहाँ उन्होंने तप के द्वारा भगवान शंकर को प्रसन्न कर लिया। औघढ़ दानी भगवान शंकर ने प्रसन्न होकर अर्जुन को पाशुपतास्त्र दिया, जो अजेय और अमोघ था।

शिव से अनुगृहीत होने के उपरान्त अर्जुन के पास देवलोक से देवराज इन्द्र आये और उन्हें अपने दिव्यरथ में बिठाकर स्वर्गलोक ले गए। वहाँ इन्द्र ने तथा अन्य लोकपालों ने अर्जुन को अनेकानेक दिव्यास्त्र प्रदान किये तथा वनवास की समाप्ति के बाद निश्चित रूप से सम्भावित महाभारत युद्ध में सहयोग देने, उनकी ओर से युद्ध करने का आश्वासन दिया।

इन्द्र के पास रहते समय ही देवताओं के शत्रु निवातकवच नामक असुर ने देवलोक पर आक्रमण किया। गाण्डीवधारी अर्जुन ने अकेले ही इस असुर का सामना किया और द्वन्द्व युद्ध कर उसे परास्त कर दिया।

असुरों पर विजय प्राप्त कर जब अर्जुन अमरावती लौटे तो देवताओं ने बड़े उल्लास से उनका स्वागत किया। देवसभा में उन्हें इन्द्र ने अपने समीप, अपने समकक्ष सिंहासन पर बिठाया। गन्धर्वगणों ने वीणा उठाई और मधुर रागनियाँ छेड़ीं। अप्सराओं ने नृत्य आरम्भ किया। देव प्रतिहारी एक-एक कर अप्सराओं के नाम पुकारता और वह अप्सरा अपनी सम्पूर्ण नृत्यकला का परिचय देती हुई सहनर्तकियों के साथ नृत्य करती। अप्सराओं के नृत्य और गन्धर्वों की रागिनियों से देवसभा के वातावरण में मुग्ध कर देने वाली झंकृति व्याप्त हो जाती। परन्तु जिस अतिथि के स्वागत में यह सब हो रहा था, वह इन सबसे असंपृक्त-सा शान्त अपने आसन पर विराजमान था। स्वर्ग के इस वैभव-विलासमय वातावरण में बैठे अर्जुन को बल्कलधारी, कन्दमूल खाकर निर्वाह करने और भूमिशयन कर क्लांति मिटाने वाले वनवासी भाई स्मरण आ रहे थे। उनकी स्मृति मानसपटल पर रह-रहकर उभर आने से अर्जुन को इन सबमें तनिक भी रस और आकर्षण नहीं अनुभव हो रहा था।

नृत्य चल रहा था, एक अप्सरा आ रही और पूर्ववर्ती अप्सरा जा रही थी। इसी क्रम में देव प्रतिहारी ने उर्वशी का नाम लिया। अर्जुन ने उर्वशी की ओर सिर उठाकर देखा। इसके पूर्व उन्होंने किसी अप्सरा की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा था। देव प्रतिहारी ने जब उर्वशी का नाम लिया तो अर्जुन की दृष्टि सहसा उठ गई थी और उन्होंने नृत्यरत उर्वशी को कई बार देखा भी था।

निकट ही बैठे देवराज इन्द्र ने अर्जुन की यह दृष्टि लक्षित कर ली और महोत्सव समाप्त होने पर गन्धर्वराज चित्रसेन को अपने पास बुलाकर कहा—"उर्वशी के पास जाकर मेरी यह आज्ञा सूचित कर दो कि वे आज रात्रि में अर्जुन की सेवा में रहे। अर्जुन हम सबके परमप्रिय हैं। उन्होंने हम पर उपकार किया है। उन्हें प्रत्येक भाँति प्रसन्न रखना हमारा कर्त्तव्य है।"

तप-तेज से कान्तिमान अर्जुन की स्वर्णिम काया, उन्नत, ललाट, पुरुषोचित सौन्दर्य और भव्य व्यक्तित्व को देखकर उर्वशी स्वयं उन पर अनुरक्त हो चुकी थी। चित्रसेन द्वारा तब उसे देवराज इन्द्र का यह आदेश मिला, तो अयाचित और अनायास ही अपना मनोरथ पूरा हो जाने से उसने आदेश को अनुमति मानकर प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया। उर्वशी अपने स्वर्गिक रूप सौन्दर्य का जितना शृंगार सज्जित कर सकती थी, किया और रात्रि का प्रथम पहर बीतते ही अर्जुन के कक्ष में जा पहुँची।

अर्जुन उस समय जाग ही रहे थे। उन्हें वन में कष्ट सह रहे अपने भाई, माता और पत्नी का स्मरण आ रहा था। उनके कष्टों की कल्पनाएँ मन में रह-रहकर उठ रही थीं और वे उन कल्पनाओं से व्यथित होकर शय्या पर इधर-उधर करवटें बदल रहे थे। उर्वशी ने जैसे ही उनके कक्ष में प्रवेश किया, अर्जुन शय्या छोड़कर उठ खड़े हुए तथा मस्तक झुकाकर करबद्ध प्रणाम करते हुए बोले, "माता ! आप इस समय कैसे पधारीं ? आपकी क्या सेवा करूँ ?"

"माता" ! सम्बोधन सुनकर ही उर्वशी जैसे आकाश से जमीन पर गिर पड़ी। विस्मय आघात को सँभालते हुए उर्वशी ने बतलाया कि वह स्वयं अर्जुन पर आसक्त है तथा देवराज इन्द्र ने भी ऐसा ही आदेश दिया है। उर्वशी ने आग्रह किया कि वे उनकी प्रार्थना स्वीकार कर लें।

"आप मुझसे ऐसी अनुचित बात फिर न कहना।" अर्जुन ने स्थिर भाव से कहा, "मैंने महर्षिगणों से सुन रखा है कि आप ही कुरुकुल की जननी हैं। आज के महोत्सव में जब देव प्रतिहारी ने आपका नाम लिया, तो मुझे यह स्मरण हो आया और आपके दर्शन की इच्छा अनायास ही जाग्रत हो गई। इस इच्छा से प्रेरित होकर मैंने अपनी कुलमाता समझकर आपके पावन चरणकमलों के अनेक बार दर्शन किए, प्रतीत होता है इसी से देवराज को भ्रम हो गया।"

"भ्रम हुआ हो या यथार्थ अनुभव," उर्वशी ने समझाया, "पार्थ यह ध्यान रखो कि यह पृथ्वी नहीं स्वर्ग है। हम अप्सराएँ न किसी की माता हैं, न बहिन। स्वर्ग में आया हुआ प्रत्येक प्राणी अपनी स्थिति के अनुसार हमारे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यौवन का उपभोग कर सकता है। यही यहाँ का नियम है और मैं स्वयं अपनी ओर से प्रस्तुत हूँ।"

रात्रि का एकान्त समय। शृंगार विभूषित स्वर्ग राज्य की सर्वश्रेष्ठ अक्षय रूप, यौवन सम्पन्न अप्सरा, उर्वशी का प्रणय निवेदन, किन्तु धर्मज्ञ अर्जुन के चित्त को कामदेव स्पर्श भी नहीं कर सका। उन्होंने पूर्व की भाँति ही करबद्ध विनती की—"देवी ! जिस प्रकार कुन्ती मेरी माता है, जिस प्रकार माद्री मेरी माता है और जिस प्रकार इन्द्राणी शची देवी मेरी माता हैं, उसी प्रकार आप भी मेरी माता हैं। आप मुझे पुत्र समझकर ही अनुगृहीत करें और मेरे योग्य कोई सेवा बताएँ।"

अर्जुन अपने पवित्र भावों को व्यक्त कर रहे थे। और उर्वशी को इस प्रकार के भाव अपना अपमान प्रतीत हो रहे थे। किसी ऋषि ने भी उसकी इस प्रकार उपेक्षा नहीं की थी, जैसे अर्जुन कर रहे थे। जिसे भी, जब भी चाहा उर्वशी ने अपने कमनीय कोमल और उद्दीपक सौन्दर्य से पराभूत किया है। मृत्युलोक का एक प्राणी उसके अनिंद्य अपूर्व और अद्वितीय सौन्दर्य की उपेक्षा कर रहा था। उर्वशी इस अपमान से विदग्ध हो उठी और उसने क्रुद्ध होकर अर्जुन को शाप दिया, "अर्जुन तुम नपुंसक की भाँति मेरे निवेदन को अस्वीकार कर रहे हो। मैं तुम्हें शाप देती हूँ कि तुम्हें पुंसत्व हीनों की भाँति रहकर एक वर्ष तक स्त्रियों के बीच नाचते, गाते हुए रहना पड़ेगा।"

इतना कहकर उर्वशी वहाँ से फुफकारती हुई चली गई। अर्जुन इस शाप से भी अविचलित रहे और उन्होंने जाती हुई उर्वशी को शिरसा प्रणाम किया। प्रातःकाल देवराज इन्द्र को यह सारा घटना-क्रम विदित हुआ। अर्जुन की संयमनिष्ठा पर प्रसन्न होते हुए उन्होंने कहा, "धनंजय ! धर्म का पालन करने वाले पर कभी विपत्ति नहीं आती। यदि कोई विपत्ति आती भी है तो अन्ततः उससे मंगल ही होगा। उर्वशी का शाप एक मानव वर्ष तक रहेगा और उस शाप के कारण वनवास के अन्तिम अज्ञातवास वाले एक वर्ष के समय में तुम्हें कोई पहचान नहीं सकेगा। तुम्हारे लिए यह शाप भी उस समय वरदान ही सिद्ध होगा क्योंकि धर्म पर दृढ़ रहने के कारण तुम निर्दोष होते हुए भी शाप के भागी बने हो।"

मन का निरोध 'निग्रह'

एक राजा था। उसने राज्य के ज्ञानियों की परीक्षा करने के लिए एक विचित्र उपाय अपनाया। एक बकरा पाला। घोषणा की कि जो इसका पेट भर देगा, उसे हजार स्वर्ण मुद्राओं का पुरस्कार मिलेगा। बकरे को कोई भी सवेरे से शाम तक अपने साथ ले जा सकता है और पेट भर सकता है। शाम को यह राजा ही जाँचेगा कि पेट भरा या नहीं।

घोषणा सुनकर बहुतों का उत्साह उभरा। काम जरा सा और सरल भी। इनाम इतना बड़ा। अनेकों लालायित हुए और उसे कर दिखाने का आवेदन लेकर राजदरबार में आये।

राजा ने सभी के नाम नोट कर लिए और बारी-बारी से एक-एक दिन बकरा सभी को मिलने का वायदा करते हुए, निश्चित दिन बता दिया।

अब सिलसिला शुरू हुआ। जिसकी बारी थी, वह ले जाता और साधारण-सी घास न खिलाकर—गेहूँ, चने आदि के पौधे खिलाता पूरी छूट देता और बढ़िया से बढ़िया हरियाली सामने रखता। शाम को इस आशा से दरबार पहुँचता कि उसे इनाम जरूर मिलेगा। पर परीक्षा के समय सभी को निरुत्तर होना पड़ता। राजा द्वारा जब घास सामने रखी जाती, तो बकरा आदत के अनुसार उसे खाने लगता। फलतः उसका भूखा होना सिद्ध हो जाता।

रोज की इस घिस-घिस का रहस्य एक विचारशील ने समझा और नया उपाय सोच लिया। वह बकरे को खेत में ले गया और घास खाने के लिए जैसे ही उसने मुँह खोला वैसे ही एक छड़ी उसके मुँह पर जड़ दी। सारे दिन यही चलता रहा। बकरे को कुछ भी खाने का अवसर न मिला। वरन् यह खाने का प्रयत्न करते ही मार पड़ने के डर से इतना भयभीत हो गया कि चराने वाले के हाथ में छड़ी देखकर, मुँह खोलना तो दूर उल्टा मुँह फेर लेता और उसकी ओर पीठ कर लेता।

नई परिस्थिति में बकरे ने नई आदत अपना ली। तो वह व्यक्ति भूखे बकरे को लेकर राजदरबार में पहुँचा। रोज वाली परीक्षा की गई। बकरे के सामने घास थी, पर सामने ही चराने वाला छड़ी लेकर खड़ा रहा। भयभीत बकरे ने घास खाना तो दूर उल्टे उस ओर से मुँह फेर लिया और पीठ कर ली।

दर्शकों ने तालियाँ बजाईं और चराने वाला विजयी घोषित हुआ और उसे सहस्र स्वर्ण मुद्राओं का इनाम मिल गया।

प्रसंग समाप्त हो जाने पर सभी विज्ञजन बुलाये गये। राजगुरु ने उपस्थित लोगों को सम्बोधित करते हुए कहा—"अपना मन बकरा है। उसे भोग-विलास की हरी घास खाने की रुचि है। इतने पर भी उसका पेट भरता नहीं, चाहे कितना ही कुछ क्यों न मिले ? जैसे ही नई वस्तु सामने आती है वह आदत के अनुसार अपनी अतृप्त ललक का परिचय देता है और पेट भरा होने पर भी नये को खाने के लिए मचल पड़ता है। उसे तृप्त नहीं किया जा सकता भले ही कितना ही चारा क्यों न डाला जाता रहे ?"

उन्होंने प्रसंग आगे बढ़ाते हुए कहा—"उपाय एक ही है—रोकथाम करने का और छड़ी जमाने का। छड़ी जमाना अर्थात् अनुपयुक्त के दुष्परिणामों का बोध करना। यह अपने अनुभव से भी सीखा जा सकता है और दूसरों की दुर्गति का परिचय कराने पर भी। मन को मारना हो तो उसे संयमी बनाने और सही रास्ते पर चलने के लिए बाधित करने का उपयुक्त उपाय है। सरकस के जानवर, रिंग मास्टर के हण्टर के इशारे पर करतब दिखाना सीखते हैं। मन को भी कड़े अंकुश, अनुशासन और प्रतिरोध से ही काबू में लाया जाता है।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शक्ति और महानता का द्वार—संयम

एक समय जंभ नामक दैत्य बड़ा पराक्रमी योद्धा हुआ। उसने अपनी शक्ति को खूब बढ़ाकर स्वर्ग पर आक्रमण किया और इन्द्र को हराकर देवताओं सहित वहाँ से भगा दिया।

अपने गुरु बृहस्पति की सम्मति से देवगण सहायतार्थ दत्तात्रेय के पास पहुँचे। उस समय दत्तात्रेय के पास लक्ष्मी जी बैठी थीं। देवताओं की बात सुनकर दत्तात्रेय ने कहा—"मैं तो इस नारी के साथ रहने से दूषित हो गया हूँ, मैं तुम्हारी क्या सहायता कर सकता हूँ ?"

देवताओं ने कहा कि ये तो जगत की माता लक्ष्मी हैं और इनके आप नारायण के स्वरूप हैं। पास रहने से आपको दोष नहीं लग सकता। आप ही हमारे कष्ट दूर कर सकते हैं।

दत्तात्रेयजी ने हँसकर कहा—"अच्छा तो किसी उपाय से दैत्यों को मेरे पास भेज दो।"

जब दैत्य वहाँ पहुँचे तो उन्होंने दूर से ही लक्ष्मी जी को बैठे देखा। वे उनके रूप और वैभव पर मुग्ध हो गये और उनको हरण कर पालकी में बैठाकर अपने स्थान की ओर चले। तब दत्तात्रेय ने देवताओं को बुलाकर कहा—यही अवसर है कि तुम दैत्यों पर आक्रमण कर दो। इस समय उनके सिर पर लक्ष्मी जी चढ़ी हुई हैं और पर-स्त्री के स्पर्श करने से उनके पुण्य नष्ट हो गये हैं। अतएव इस अवसर पर वे निस्तेज हो गये हैं और सहज में हराये जा सकते हैं।

दत्तात्रेय की सम्मति को मानकर देवताओं ने आक्रमण कर दिया और युद्ध करके दैत्य-सेना को नष्ट कर डाला।

सन्तुलन डगमगाने न दें

एक बार लोकमान्य तिलक को एक सभा में भाषण देना था। सरकारी पक्ष के कितने ही किराये के उपद्रवी सभा में उपद्रव करने लगे। ढेले और ईंटें फेंकने लगे। लोकमान्य ज्यों के त्यों खड़े रहे जब उपद्रवी शान्त हो गये, तब उन्होंने अपना शेष भाषण निर्भीकतापूर्वक कहा। उपस्थित जनता पर अच्छा असर पड़ा। उपद्रवी भी शान्त होकर वापस चले गये। लोकमान्य इस प्रकार घर लौटे मानो कुछ हुआ ही नहीं।

मानसिक सन्तुलन बनाये रहना उत्तेजित परिस्थितियों का सामना करने का सबसे अच्छा इलाज है।

परिस्थितियों का सामना करें

अलबानिया की रानी ऐलजावेथ एक दिन समुद्री यात्रा पर जा रही थी। तूफान आया और जहाज बुरी तरह डगमगाने लगा। मल्लाहों का धीरज टूट गया और वे डूबने की आशंका व्यक्त करने लगे। रानी ने गम्भीर मुद्रा में मल्लाहों से कहा, "अलबानिया के राजपरिवार का कोई सदस्य अभी तक जलयान की दुर्घटना में डूबा नहीं है। मैं जब तक इस पर सवार बैठी हूँ, तब तक तुममें से किसी को भी डूबने की आशंका करने की जरूरत नहीं है।" मल्लाह निश्चिन्त होकर डाँड चलाते रहे। तूफान ठण्डा हुआ और जहाज शान्तिपूर्वक निश्चित स्थान पर पहुँच गया। यदि उन्हें घबराहट रही होती तो अस्त-व्यस्त काम करते और जहाज को डुबो बैठते।

हिंसा पर साहस की विजय

ठाकुर रवीन्द्रनाथ का अध्ययन कक्ष। आस-पास पुस्तकों का अम्बार और बीच में बैठे रवीन्द्रनाथ ठाकुर निजी पत्रों के उत्तर लिख रहे थे। व्यक्तिगत और पारिवारिक समस्याओं में इतनी तन्मयता कि कमरे के बाहर क्या हो रहा है ? कुछ भी ध्यान नहीं।

पैरों की आहट कानों में पहुँची, कलम थम गई और दृष्टि सामने खड़े व्यक्ति पर गई। यह आगन्तुक कोई साहित्य या कला प्रेमी न था। विश्व कवि ने परख लिया कि यह कोई अपराधी वृत्ति का व्यक्ति है, जिसके चेहरे से क्रोध प्रकट हो रहा है। डरावने नेत्र, चेहरे पर तनाव मानो अभी एक पल में आक्रमण करके काम तमाम कर देगा।

शेर, जैसे निरीह बकरी पर झपटकर उसे अपना आहार बना लेता है। वैसे ही वह दुष्ट विश्वकवि को भयभीत करने का प्रयत्न करता रहा। दोनों ने भरपूर एक-दूसरे को देखा, पर वातावरण एकदम शान्त।

एक ओर विश्व के समस्त मानवों में ईश्वरीय सत्ता को व्याप्त देखने वाला विश्व कवि और दूसरी ओर चाँदी के चन्द टुकड़ों में अपने ईमान को बेचकर महापुरुष के जीवन से खिलवाड़ करने वाला नर अधम। बड़े ही मीठे स्वर में स्नेह के साथ पूछा, "आपने बेमौके यहाँ आने का कष्ट क्यों किया ? क्या कोई आवश्यक कार्य था ? संकोच क्यों करते हो अपने आने का उद्देश्य तो बताओ।"

रुखाई के साथ उत्तर मिला—"देखो यह छुरा। आज मैं तुम्हारे जीवन को समाप्त करने आया हूँ। अपनी कलम नीचे रख दो और मरने के लिये तैयार हो जाओ।"

अब बात खुल गई। दुष्ट किसी के द्वारा लालच पाकर विश्व कवि की हत्या के उद्देश्य से यहाँ आया है। कमरे में प्रवेश करते हुये भी किसी ने देख नहीं पाया। उस समय रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रक्षा के लिये वहाँ कोई न था।

जीवन और मृत्यु का प्रश्न सामने था। यदि सामान्य श्रेणी का कोई व्यक्ति होता तो साक्षात् मृत्यु को देख आक्रान्ता के सम्मुख अपने को आत्मसमर्पित कर देता। रोता, चिल्लाता, जिन्दगी की भीख माँगता और यह भी हो सकता है कि इतना अधिक डर जाता कि उसके मुख से एक भी शब्द न निकलता।

पर विश्वकवि के साहस का क्या ठिकाना ? भयभीत और कायर व्यक्ति साहसी से वैसे ही दब जाते हैं। विश्वकवि प्रफुल्लित मुद्रा में कोमल स्वर में बोले—"इस समय मैं विशेष कार्य में व्यस्त हूँ। मेरी व्यस्तता तुम देख ही रहे हो। मुझे अनेक आवश्यक पत्रों के उत्तर देने हैं कल तुम मुझसे भेंट करने आ जाना। तुम्हारी इच्छा पूर्ति के लिये मैं तैयार रहूँगा" और वह अधूरी पंक्ति को पूरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करने लगे। जैसे वह अपने अध्ययनकक्ष में अकेले ही हों और हत्यारे का उन पर तनिक भी प्रभाव न पड़ा हो।

कल तक मैं नहीं रुक सकता। आज और अभी मुझे अपना काम पूरा करना है। अतः अपनी कलम नीचे रख दो और तैयार हो जाओ। हत्यारे ने कर्कश स्वर में पुनः धमकी दी।

विश्वकवि शान्त और संयत। मौत की ओर से पूर्ण लापरवाह, जैसे उन्होंने मृत्यु की चुनौती को स्वीकार ही न किया हो। पृष्ठ पलटा और फिर लिखना शुरू कर दिया। 'जाओ मुझे अपना कार्य करने दो।'

हत्यारे की हिंसावृत्ति आत्म-ग्लानि में बदल गई। वह सोचता रहा 'इस व्यक्ति में बड़े गजब की शक्ति है।' मृत्यु को अपने दरवाजे पर आया देखकर भी तनिक भी विचलित न हुआ। एक क्षण में इसका जीवन समाप्त होने जा रहा है और यह निश्चिन्त भाव से तल्लीनता के साथ अपने पत्र को पूरा करने में लगा है।

हत्यारे के मन में सोया देवत्व जाग पड़ा, अपनी करनी पर शर्म आई। अतः वह दबे पाँव जिधर से आया था उधर चला गया।

अपना व्रत क्यों तोड़ूँ ?

राहगीर ने पत्थर मारा, आम के वृक्ष से कई पके आम गिरे। राहगीर ने उठाये और खाता हुआ वहाँ से चल दिया।

यह दृश्य देख रहे आसमान ने पूछा—"वृक्ष ! मनुष्य प्रतिदिन आते हैं, तुम्हें पत्थर मारते हैं। फिर भी तुम इन्हें फल क्यों देते हो ?"

वृक्ष हँसा और बोला भाई ! मनुष्य अपने लक्ष्य से भ्रष्ट हो जाये तो क्या हमें भी वैसा पागलपन करना चाहिए ?.

व्यवहार और आचरण का आधार बाह्य परिस्थितियाँ नहीं आन्तरिक निष्ठाएँ होनी चाहिए।

शैतान का षड्यन्त्र

सन्त कबीर के मन में यदि कोई इच्छा-वासना है, तो मैं उन्हें वश में करके गुमराह कर दूँ। यह सोचकर शैतान उनके सामने प्रकट हुआ। उस दिन कबीरदास के पास निर्वाह की व्यवस्था भी नहीं थी। अवसर उचित था। शैतान ने पूछा—"आज तुम क्या खाओगे ?"

"मिट्टी खाऊँगा" कबीर साहब ने कहा और "पहनोगे क्या ?" शैतान के पूछने पर वे बोले—"मुर्दे का कफन"।

"अच्छा यह भी ठीक लेकिन यह भी तो बताओ कि रहने का भी कहीं ठौर है या नहीं।"

"हाँ है—उनके पास मकान नहीं था फिर भी वे बोले—श्मशान भूमि में रहूँगा।"

वश न चलता देख शैतान लौट गया।

तृष्णा, वासना युक्त चित्त पर ही आसुरी शक्तियों का वश चलता है।

सुख-दुःख में एक समान

चन्द्रचूड़ ने तीर्थयात्रा पर जाने का निश्चय किया। पीछे घर में धर्मपत्नी सौदाम, एक पुत्र, एक पुत्री और भृत्य रह रहे थे, सो चन्द्रचूड़ ने धन घर में रखना उचित न समझा। उन दिनों नगर में देव निपुण की साधुता घर-घर सराही जा रही थी, सो चन्द्रचूड़ ने अपना धन उसी को सौंप जाने का निश्चय किया।

तीर्थयात्रा पर चलने से पूर्व चन्द्रचूड़ ने देवनिपुण के पास जाकर वह पोटली दी और लौटने तक उसे अपने पास सुरक्षित रखने की याचना की। देवनिपुण ने कहा, "चन्द्रचूड़ ! तुम धर्म कार्य सम्पन्न करने जा रहे हो, इसलिये तुम्हारी सहायता करना मेरा धर्म है, अन्यथा पराया धन अपने पास रखना बड़ा ही अहितकर होता है। चाहे वह ऋण के रूप में हो या सुरक्षा के लिये।"

चन्द्रचूड़ हर्षित हो यात्रा पर निकल गया। देवनिपुण ने मुद्राओं की थैली एक टूटे बक्से में डाल दी और अपने काम में लग गया।

बहुत दिन बीते चन्द्रचूड़ यात्रा समाप्त कर घर लौटे। सबको कुशल-मंगल देखने के बाद उसे अपने धन का ध्यान आया। सो वह अपने सब काम छोड़कर सर्वप्रथम देवनिपुण के घर की ओर चल पड़ा।

देवनिपुण दरवाजे पर बैठे थे। जैसे जाते समय प्रसन्नचित्त छोड़ गया था, चन्द्रचूड़ को आज भी देवनिपुण में वैसी ही प्रसन्नता दिखाई दी। उसे एक बार तो ऐसा लगा जैसे तीर्थ बाहर नहीं मनुष्य शरीर में ही भरे पड़े हैं। आत्म-सन्तोष, संयम, दया, करुणा यह तीर्थ ही तो हैं, जो इनके दर्शन स्पर्श का लाभ पा गया वह सचमुच ही जीवित ही मुक्ति पा गया।

कुशल-क्षेम हुई फिर चन्द्रचूड़ ने अपना धन माँगा। उसी टूटी सन्दूक में पड़ी है तुम्हारी मुद्राएँ, भाई चन्द्रचूड़ मैंने तो उन्हें देखा भी नहीं, जाओ और उठा ले आओ। अनासक्ति! ऐसी अनासक्ति ! एक बार तो चन्द्रचूड़ भारी प्रभावित हुआ। उसे लगा मनुष्य जीवन में साधुता और ईश्वर-भक्ति से बढ़कर सुख व पुण्य नहीं है। वह फिर सन्दूक की ओर गया पोटली उठाई, रुपये गिने। कुछ विस्मय हुआ, रुपये फिर गिने। विस्मय सही था, सौ स्वर्ण मुद्राएँ कम थीं। लोभ-वृत्ति और धनासक्ति में इतनी प्रबल शक्ति होती है कि वह उचित-अनुचित का विवेक भी नहीं रहने देती। मुद्राएँ कम हैं तो निश्चित ही देवनिपुण ने चुराई होंगी। यह निश्चित समझकर वह देवनिपुण को बुरा-भला कहने लगा और उतनी धन-राशि लौटाने के लिये अड़ भी गया।

देवनिपुण बिना किसी क्षोभ या मनोमालिन्य के हँसे और बोले, "अरे भाई चन्द्रचूड़ ! गिनने में भूल हुई होगी। मुझे तो तुम्हारे पैसों का ध्यान भी नहीं रहा। देवनिपुण की प्रसन्नता और उसकी विषादयुक्त मुद्रा देखकर चन्द्रचूड़ की आशंका मानो और भी वेगवती हो उठी। उसने देवनिपुण को डाँटा-फटकारा ही नहीं, कुछ साथियों को बुलाकर पीटा भी। देवनिपुण को और कोई दुःख न था। था तो केवल इतना ही कि भविष्य में इससे सामाजिक जीवन में अविश्वास का भाव पनप उठेगा, अन्यथा उसे अपने कर्त्तव्य के लिये अब भी सन्तोष था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अन्ततः हारकर चन्द्रचूड़ घर गया। पत्नी ने देर से आने का कारण पूछा। जब चन्द्रचूड़ ने सारी घटना सुनाई तो सौदाम के दुःख का पारावार न रहा। उसने पति के पैर पकड़कर क्षमा माँगते हुये कहा, "आपने देवनिपुण को अकारण दण्ड दिया। आवश्यक समझकर उतनी मुद्राएँ तो मैंने ही निकाल ली थीं।"

चन्द्रचूड़ पश्चाताप से भर गया। उल्टे पाँव देवनिपुण के पास लौटा तो देखा कि वह तब भी गीत गा रहे थे और प्रसन्नचित्त थे। उसने देवनिपुण से अपनी भूल की क्षमा माँगी, पर देवनिपुण के मुख पर तब भी किसी प्रकार की विजय या अभिमान का भाव नहीं आया। चन्द्रचूड़ ने अनुभव किया, जो सुख, दुःख, यश और अपयश सबमें एक समान रहते हैं वस्तुतः वही सन्त हैं, साधु हैं।

दायें-बायें हाथ

जिस काम के लिये दाहिना हाथ आगे बढ़ता, बायाँ उससे पीछे हट जाता। बायें का काम होता तो दाहिना पीछे लौट आता, दोनों में अनबन हो गई थी। मिलना तो दूर कभी बात भी नहीं करते थे।

एक दिन दोनों कहीं जा रहे थे। रास्ता पहाड़ी के समीप से गुजरता था। रात में तूफान आ गया था सो रास्ते भर में टूटे पेड़ों के तने और भारी-भारी पत्थर लुढ़के पड़े थे, उन्हें साफ किये बिना आगे बढ़ना कठिन था।

छोटे-छोटे पत्थर तो चुनकर फेंक दिये। छोटी-छोटी डालें थीं उन्हें भी मार्ग से हटा दिया, पर आगे पड़ी थी भारी-भरकम पत्थरों की श्रृंखला। दाहिना हाथ आगे बढ़ा उसने अपनी सारी ताकत झोंक दी, पर पत्थर टस से मस न हुआ। बायाँ हाथ चुपचाप यह दृश्य देखता खड़ा मुसकराता रहा। पर उससे इतना भी न हुआ कि अपने भाई को थोड़ा सहयोग तो देता। भाई थककर चकनाचूर हो गया।

जब दाहिने हाथ के बस की बात न रही तब बायाँ हाथ आगे बढ़ा। झपट देखने योग्य थी। बायें हाथ महोदय ने सारा जोर पहली बार ही झोंक दिया पत्थर तो अपने स्थान से नहीं हटा, हाँ, बायाँ हाथ फिसल गया और बच गया नहीं तो हड्डी टूट जाती।

मस्तिष्क अब तक खड़ा चुपचाप तमाशा देख रहा था, अब उससे रहा न गया उसने कहा—"मूर्खो तुम भी लगता है मनुष्य जाति की तरह हिल-मिलकर काम करना भूल गये, तभी तो यह जरा-सा पत्थर का टुकड़ा भी उठा पाने में समर्थ नहीं हो रहे।"

हाथों को अपने अज्ञान पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उस दिन से मनोमालिन्य त्यागकर दोनों साथ-साथ काम करने लगे।

अपने पैरों पर खड़े हो

किसी चिड़िया ने चोंच में दबाकर पीपल का एक बीज नीम के तने में डाल दिया। वहाँ थोड़ी मिट्टी, थोड़ी नमी थी, बीज उग आया और धीरे-धीरे उस वृक्ष से ही आश्रय लेकर बढ़ने लगा।

प्रारम्भ में तो लगा कि यह पौधा प्रगति कर रहा है पर शीघ्र ही पता चल गया कि उसका आविर्भाव तो परावलम्बी है, दूसरों की कृपा सीमित ही हो सकती है, सो सीमित साधनों में पेड़ भी थोड़ा ही बढ़ पाया। न जड़ों को विकास के लिये स्थान मिला न डालों को फैलने के लिये, सो वह छाती का पीपल थोड़ा ही बढ़कर रह गया।

एक दिन उसने बड़े वृक्ष को डाँटते हुए कहा—"दुष्ट तू स्वयं तो आकाश छूने जा रहा है और मुझे थोड़ा भी बढ़ने नहीं देता। अब तूने शीघ्र ही मुझे विकास के और साधन न दिये तो तेरा सत्यानाश कर दूँगा।"

नीम के वृक्ष ने समझाया—मित्र औरों की दया पर पलने वाले इतना ही विकास कर सकते हैं, जितना तुमने किया है। उससे अधिक करना हो तो नीचे उतरो और अपनी नींव आप बनाओ, अपने पैरों पर खड़े हो।

पौधे से वह तो नहीं बना हाँ वह वृक्ष को कोसने से बाज नहीं आया। नीम वृक्ष को इतनी फुरसत कहाँ थी, जो पीपल के पौधे की गाली-गलौज सुनता।

एक दिन हल्की-सी आँधी आई। नीम का वृक्ष थोड़ा ही हिला था पर जब नींव ही कमजोर थी, तो रोकता कौन ? पीपल का पौधा धराशायी होकर मिट्टी चाटने लगा।

उधर से एक राहगीर निकला—उसने एकबार नीम के वृक्ष की ओर देखा दूसरी बार पीपल की ओर—धीरे से उसने कहा—"जो औरों के आश्रय में बढ़ने की आशा करते हैं, उनकी अन्त में यही गति होती है।"

सत्य की विजय होती है

एक व्यक्ति बड़ा ही कंजूस, पापी और दुष्ट स्वभाव का था, उसने अनीति के साथ बहुत-सा पैसा इकट्ठा किया और अपने बेटे को चोरी करने की कला में खूब निपुण कर दिया। समयानुसार जब वह व्यक्ति मरने लगा, तो अपने बेटे को बुलाकर उसने कहा—"पुत्र ! वैसे तो तुम स्वयं सब बातें जान गये हो, पर मेरी एक शिक्षा है उसे ध्यान रखना, वह यह है कि कभी कथा-वार्ता में, भजन-कीर्तन में, साधु-संगत में न बैठना, न उनकी बात सुनना।" पुत्र ने पिता की आज्ञा मान ली, पिता ने शरीर त्याग दिया।

पिता की तरह पुत्र भी चोरी का पेशा करने लगा। एक रात को वह चोरी करने जा रहा था कि मार्ग में भगवत्-कथा होती हुई दिखाई दी, नियत स्थान पर जाने के लिए और कोई रास्ता न था। चोर कुछ देर तो विचार करता रहा कि क्या करूँ, क्या न करूँ, अन्त में कथा श्रवण के पाप से बचने के लिए कानों में उँगली लगाई और आगे चल दिया। कुछ ही कदम चला था कि अकस्मात् पैर में काँटा चुभ गया, काँटा निकालने के लिए कानों में से उँगलियाँ निकालनी पड़ीं। इसलिए उसे कथा की बातें सुनाई पड़ने लगीं। चोर ने उन सुनी हुई बातों को भुलाने की पूरी कोशिश की, पर दो बातें उसे याद हो गईं—(१) देवताओं की छाया नहीं होती, (२) सत्य की सदा जीत होती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कथा श्रवण और काँटे की पीड़ा पर झुँझलाता हुआ चोर आगे चल दिया। उसने आज राजमहल में सेंध लगाई और खजाने में से बहुत-सा द्रव्य चुरा लिया। चोरी किया हुआ धन स्वर्ण और जवाहरात बहुत थे, उसे ले जाने के लिए उसने राजा का ही एक ऊँट लिया और उस पर सारा बोझ लाद कर पहरेदारों की निगाह बचाता हुआ गुप्त मार्ग से अपने घर आ गया। राजा का ऊँट पहचाना जा सकता था और चोरी खुल सकती थी, इसलिये चोर ने उसे काट डाला और शरीर के टुकड़ों को घर में गहरा गड्ढा खोद कर गाड़ दिया।

दूसरे दिन सबेरा होते ही राजा को सूचना मिली कि खजाने में से बड़ी जबरदस्त चोरी हो गई। चोरी किस प्रकार हुई, इसकी भारी खोज-बीन की जाने लगी। पशुशाला का एक ऊँट गायब मिला। खजाने के पास ऊँट लादने के निशान मौजूद थे, इसलिए यह अनुमान कर लिया गया कि चोर ऊँट पर लादकर चोरी का माल ले गया है। राजा ने चोर का पता लगाने वाले को बहुत-सा इनाम देने की घोषणा की और गुप्त पुलिस की दूतिका को यह कार्य खासतौर से सौंप दिया गया।

गुप्त पुलिस की दूतिका में एक बुढ़िया इस प्रकार के कार्यों की खोज लगाने में बड़ी ही प्रवीण थी। उसने विचार किया कि चोर, राजा के ऊँट को यों ही छोड़ नहीं सकता, क्योंकि ऐसा करने से चोर के, नगर को मालूम करके सारे नगर की तलाशी लेने पर चोरी पकड़ी जा सकती है, इसलिए चोर ने जरूर ऊँट को मार कर कहीं गाड़ दिया होगा। इसी अनुभव के आधार पर वह दूतिका भेष बदल कर घर से निकल पड़ी और घरों में जाकर स्त्रियों के सामने रोती-पीटती कि मेरा बेटा बीमार है। उसके लिए ऊँट का सड़ा हुआ माँस बताया है, न मिलेगा तो बेटा मर जायगा। हाय क्या करूँ, कहाँ जाऊँ ?

स्त्रियाँ उसकी बात सुनतीं, पर ऊँट का माँस कहाँ से देतीं, बेचारी अपनी लाचारी प्रकट करके चुप हो जातीं। वह गाँव-गाँव, नगर-नगर में फिरने लगी। एक दिन वह चोर के घर जा पहुँची। चोर की स्त्री भोली-भाली थी। बुढ़िया के रोने-पीटने पर उसे दया आ गई और गड्ढे में से निकालकर थोड़ा-सा ऊँट का माँस दे दिया। बुढ़िया खुशी से फूली न समायी। उसने दरवाजे पर एक काला निशान लगा दिया। ताकि दूसरे दिन उस घर को पहचान सके और प्रसन्न होती हुई लौट गई।

चोर के घर का पता तो लग गया, पर उसको अभी यह बात और मालूम करनी थी कि धन उसी के घर में है या कहीं दूसरी जगह रखा हुआ है। राजा को पूरी और पक्की सूचना देने पर ही पूरा इनाम मिलता, इसलिए दूसरे दिन भी जाँच जारी रखने का निश्चय कर लिया।

उस दूतिका ने काला रंग देह पर पोता, बाल फैलाये और भयंकर रूप बनाकर भैंसे पर चढ़कर उस चोर के घर रात को १२ बजे पहुँची और दरवाजे पर खड़ी होकर हुँकार देने लगी। चोर बाहर आया, दूती ने कहा, 'दुष्ट ! तू मुझे जानता नहीं, मैं भवानी दुर्गा हूँ। तू राजमहल से इतनी बड़ी चोरी कर लाया, पर मेरे लिए एक बलि भी न दी, अब मैं तुझे ही खा जाऊँगी।"

चोर धमकी में आ गया। वह गिड़गिड़ाकर देवी के पैरों पर गिर पड़ा और कहने लगा, "भगवती, चोरी का धन अभी ज्यों का त्यों घर में गढ़ा हुआ है, मैंने उसे छुआ भी नहीं, पहिले आपकी बलि दे दूँगा, तब उसमें हाथ लगाऊँगा, गलती के लिए माफ करें, कल ही आपके मन्दिर में नौ बकरों की बलि चढ़ा दूँगा। देवी खुश होती हुई वापस लौट चली।"

देवी के चले जाने के बाद चोर को शक हुआ कि कहीं यह कोई दूतिका तो नहीं है, जो दुर्गा का भेष बना कर आया हो। इसी समय उसे ध्यान आया कि कथा में मैंने सुना था कि देवताओं की छाया नहीं होती। अपना सन्देह निवारण करने के लिए वह उसी तरफ लपका जिस ओर कि देवी गई थी। आधे फर्लांग दौड़कर वह देवी के पास पहुँच गया और देखा कि उस की छाया मौजूद है। चोर को निश्चय हो गया कि यह भेदी है उसने उस देवी को पकड़ लिया और मारकर ऊँट के साथ ही गाढ़ दिया।

मुद्दतें बीत गईं, चोरी का कोई पता न चला, एक गुप्तचरी भी गायब हो गई। राजा को बड़ी चिन्ता हुई कि ऐसा भयंकर चोर यदि राज्य में रहेगा तो प्रजा की अत्यन्त हानि होगी, इसलिए उसने इनाम की मर्यादा बहुत अधिक बढ़ा दी। घोषणा की गई कि जो कोई चोर को पकड़कर दरबार में हाजिर करेगा, उसे आधा राज्य दिया जायगा और राजकुमारी ब्याह दी जावेगी।

चोर एक भीषण विपत्ति में से बचा। उसे रह-रह कर याद आ रहा था कि कथा सत्संग का एक टुकड़ा मैंने सुना था कि देवताओं की छाया नहीं होती, उसी टुकड़े ने मेरे प्राण बचा दिये, वरना उस दूतिका द्वारा पकड़वा दिया जाता और राजा मुझे कुत्तों से नुचवाकर मार डालता। अब वह सोचने लगा कि सत्संग में जो दूसरी बात सुनी थी, उसकी भी परीक्षा करनी चाहिए।

"सत्य की विजय होती है।" इस उपदेश की वास्तविकता जाँचने के लिए वह सीधा राज-दरबार में पहुँचा और राजा से कहा—"श्रीमान् ! यह चोर आपके सामने उपस्थित है, इसने ही चोरी की थी। उसने सारा हाल कह सुनाया।"

राजा विचारमग्न हो गया। उसने सोचा "सत्य की विजय होती है।" इस उपदेश ने जब चोर को इतना प्रभावित किया कि अपनी जान जोखिम में डालकर अपराध कबूल करने के लिए मेरे सामने उपस्थित हुआ है, तो मुझे भी अपने सत्य की रक्षा करनी चाहिए। राजा ने चोर का अपराध माफ कर दिया और अपने वचनानुसार उसे बेटी विवाहते हुए आधा राज्य दहेज में दे दिया।

चोर को प्राण-दण्ड के स्थान पर इतना बड़ा पुरस्कार क्यों मिला ? राज्य भर के सब लोग इस प्रश्न को आपस में एक-दूसरे से पूछते थे। विचारवान् और बुद्धिमान इसका यही एक उत्तर देते थे कि "सत्य की विजय होती है।"

अथ भारण्ड वार्ता

दो मुखों वाला विहंग भारण्ड निरभ्र सिन्धु तट पर निवास करता। सागर उद्दाम वेग से कभी जल राशि तट से दूर तक फेंकता और कभी स्वयं ही वापस समेट लेता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस आरोह-प्रत्यारोह में वह बहकर आये हुये अनेक फल तट पर छोड़ जाता। भारण्ड उन्हीं से अपना आहार चलाता और सुखमय जीवन व्यतीत करता।

दीर्घकाल तक यही क्रम चलता रहा; किन्तु एक दिन एकाएक अनहोनी हो गई। आये हुये समुद्री-ज्वार ने एक ऐसा मधुर फल तट पर छोड़ा जैसा भारण्ड ने पहले कभी नहीं देखा था। उसने फल का स्वाद चखा तो मानो उसे अमृत ही मिल गया। जिस मुख से उसने उस फल का रसास्वादन किया स्वार्थ बुद्धि ने उसे बदलने तक से इनकार कर दिया। दूसरे मुख ने कातर दृष्टि से देखते हुये प्रथम से अनुनय की। तात् ! मैं भी तो तुम्हीं से सम्बद्ध हूँ और दिन भी तो हम दोनों साथ-साथ स्वाद चखा करते थे और बन्धुवर आज अचानक ही मुझसे यह छल क्यों कर रहे हैं ?

अपनी बुद्धिमत्ता दर्शाते हुए प्रथम मुख ने कहा "आर्य ! तुमने खाया या मैंने, बात एक ही है। हम दोनों के हित तो समान हैं। हमारा उदर एक है, रुधिर संचार गति एक है, जीवन और प्राण एक है। अतएव तुम्हारे खाने न खाने से अन्तर ही क्या पड़ेगा ? यह देखो अब जो भाग शेष बचा है, उसे अपनी भारण्डनीया को ले चलते हैं। चलो-चलो इस विवाद में कितना विलम्ब हुआ बेचारी क्षुधा से व्याकुल होगी।"

दूसरा मुख अपमान का घूँट पीकर रह गया। फल दूसरे मुख में लगा था। कुछ कर भी नहीं सकता था; पर भीतर ही भीतर उसका अहंकार सुलग उठा, बदला लेने के अवसर की खोज करने में लग गया।

कुविचार की जड़ जब सुदृढ़ हो जाती है, तो कुकर्म होते देर नहीं लगती। नियम व्यवस्था हर दिन एक-सी नहीं रहती। एक दिन ऐसा भी हुआ कि समुद्र कहीं से अपने साथ विष-फल वहाँ लाया और अपने ज्वार के साथ उसे उसी तट पर छोड़ गया जहाँ भारण्ड निवास किया करते थे। दूसरा मुख इसी ताक में तो था ही, उसने अवसर आया जान तत्परता से काम किया और उस विष फल को अविलम्ब उठा लिया।

परिणाम आँखों के आगे तड़ित गति से नाच गया। प्रथम मुख ने एक प्राण और समान हित होने का बोध कराते हुये कहा—"तात् ! आप इसका भक्षण न करें अन्यथा हम दोनों का अवसान सुनिश्चित है। प्रथम मुख दर्प भरी हँसी हँसा और बोला—बन्धुवर ! वह दिन याद करो जब मैंने भी तुमसे ऐसी ही याचना की थी, तुम मुझे उपदेश तो देते रहे, किन्तु यह नहीं बन पड़ा था कि उपलब्ध सुख का एक कण मुझे भी दे देते अब अनिष्ट से क्यों डरते हो जैसा किया वैसा भरने को भी तैयार हो जाओ।" यह कहते हुये उसने विष-फल एक बार में ही उदरस्थ कर लिया।

भारण्ड की मृत्यु हो गई। शोकाकुल भारण्डनीया सिन्धु तट पर बैठी रुदन कर रही थी तभी अम्बुधि की एक उर्मि वहाँ तक आई और बोली—भामिनि ! जो केवल अपने स्वार्थ के लिये औरों की उपेक्षा करते हैं वह तथा जो प्रतिशोध की ज्वाला में निरन्तर जलते और अपनों को ही भिन्न मानकर नीचा दिखाते रहते हैं। दोनों ही निन्दा के पात्र हैं, ऐसे निन्दनीय के प्रति दुःख नहीं किया करते।

सागर-पुत्री अपने घर लौट गई पर भारण्डनीया यह सोचकर अब भी विलाप कर रही है कि आने वाली नियति कौन जाने इस पूर्वाग्रह के पाप से मुक्त होगी भी या नहीं।

न्याय का पालन

पुराने समय में भारतवर्ष में कल्याणी देवी नाम की एक विदुषी महिला रहती थी। उनके पति का नाम शारदा चरण था। वे राजपुरोहित थे। राजकोष की तरफ से उन्हें काफी धन मिलता था। दोनों बड़े मजे में रहते थे। पति-पत्नी का अधिकांश समय विद्या सत्संग में आराम से कट जाता था। कुछ दिन बाद राजदरबार में एक महर्षि आये, जिन्होंने अपने अनुभव और विचार से सरस्वती की उपासना की थी। उस समय के रिवाज के अनुसार दोनों में वाद हुआ और देश में कोई बड़ा विद्वान् न होने से कल्याणी देवी मध्यस्था बनाई गई। कल्याणी देवी को यह बात जँची कि महर्षि का पक्ष ही सच्चा सिद्ध हुआ है। एक तरफ पति प्रेम था, दूसरी तरफ सत्य था, पर सत्य न्याय में बाधक न हुआ। इसलिए कल्याणी देवी ने महर्षि को ही विजय घोषित किया।

राज्य का ऐसा नियम था कि जो राजपण्डित को जीत लेगा, वह राजपण्डित माना जायगा, इसलिए महर्षि राजपण्डित माने गये, परन्तु महर्षि ने जिनका नाम सत्य शरण था, कहा—"अगर शारदाचरण सत्य को स्वीकार कर मेरे पास दीक्षा ले लें, तो मैं उन्हें ही राजपण्डित बनाऊँगा।" अभिमानी शारदाचरण ने यह बात स्वीकार न की और लज्जावश वे नगर छोड़कर जंगल में जाने लगे। कल्याणी देवी भी साथ चलने लगीं। शारदाचरण ने कहा—"तुम्हें जंगल में चलने की कोई जरूरत नहीं है, पराजय मेरी हुई है न कि तुम्हारी।"

कल्याणी ने कहा—"मेरे देवता ! नारी के पराजय होने की जरूरत नहीं है, पति की जय ही उसकी जय है, पति की पराजय ही उसकी पराजय है और फिर जो कुछ सीखा है, मैंने आप ही से सीखा है। आप मेरे पति भी हैं और गुरु भी।"

शारदाचरण—"यदि ऐसा था तो तुमने मुझे पराजित घोषित क्यों किया ?"

कल्याणी—"मैं आपकी पराजय घोषित कर रही हूँ, यह मुझे ख्याल ही नहीं आया। मुझे तो यही ख्याल आया कि सत्य के आगे मैं झुक रही हूँ, मैं अपनी ही पराजय घोषित कर रही हूँ।"

शारदाचरण—"तो तुमने महर्षि के पास दीक्षा क्यों न ले ली, कदाचित महर्षि तुम्हें ही राजपण्डित बना देते ?"

कल्याणी—"राजपण्डित बनने की अपेक्षा आपकी अनुचरी (पीछे-पीछे चलने वाली) बनने में मुझे अधिक सुख है—मेरा कर्त्तव्य भी यही है, धर्म की भी यही आज्ञा है।"

लोगों के आवागमन से रहित एक जंगल में जाकर वे दोनों तपस्वी की तरह रहने लगे। जंगल के फल, कन्द-मूल आदि खाकर गुजर करते थे, बल्कल पहनते थे। एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

झोंपड़ी बनाकर रहते थे। झोंपड़ी को स्वच्छ रखना, उसके चारों तरफ जो आँगन बनाया गया था, उसे साफ रखना, फूलों की क्यारियों में पानी देना, फल-फूल लेने पति के साथ जाना, उन्हें अच्छी तरह पत्तों में सजाकर पति को परोसना, बचे हुए समय में तत्व चर्चा करना, काम करते समय भी हँसी-विनोद से पति के चित्त को प्रसन्न रखना, वे सब काम कल्याणी देवी उत्साह से करती थीं। कल्याणी देवी ने ही मुझे पराजित घोषित किया, इस बात को लेकर शारदाचरण के मन में जो गल्प था, वह कल्याणी देवी की सेवापरायणता और प्रेमी जीवन से दूर हो चुका था और जब एक बार तीन दिन को शारदाचरण बीमार पड़े तब कल्याणी देवी ने जो दिन-रात अटूट सेवा की उससे शारदाचरण का मन बिल्कुल पिघल गया और उन्होंने रोते-रोते कहा कि तुम्हारी निष्पक्षता के कारण तुम्हारे प्रेम पर मुझे अविश्वास हुआ था किन्तु उस भूल का अब मुझे गहरा पश्चाताप हो रहा है।

कल्याणी ने समझा मेरी तपस्या फल गई। आज प्रेम की पूरी जय हुई। उस जंगल में जब ये दम्पति स्वजन परिजन वैभव आदि से रहित जीवन बिता रहे थे। शारदा चरण के तीन दिन के लंघन के बाद जब कल्याणी देवी उन्हें पथ्य दे रही थी, उसी समय मनुष्यों का कल-कल सुनाई दिया। कोई कह रहा था इधर-इधर। कल्याणी ने देखा वह एक ब्राह्मण कुमार है, जिसे कि उन्होंने उस दिन राजसभा में महर्षि के साथ देखा था। उसके पीछे-पीछे ही बटुकों के साथ खुद महर्षि जी चले आते थे। कल्याणी ने उन्हें बैठने के लिए त्रणासन देते हुए कहा—"महाराज हम गरीब लोग इस जंगल में आपका और क्या स्वागत कर सकते हैं ?"

महर्षि—"बेटी, तुम्हारी इस गरीबी पर हजारों राज्य वैभव न्योछावर किए जा सकते हैं। कीचड़ मिले पानी में शक्कर डालने से मिठास तो आयेगी पर वह शुद्ध जल की बराबरी न स्वाद में ही कर सकता है न स्वास्थ्य में ही। तुम्हें इस जंगल में जो सुख मिला है वह राजाओं को भी न तो राजसिंहासन पर मिल सकता है न रनवास में। उसमें कितनी शक्कर पड़ी हो, पर कीचड़ सारा मजा किरकिरा कर देती है और उसमें जो रोगोत्पादक कीटाणु होते हैं। उनका विचार किया जाय तो दुःख पहाड़ के आगे सुख कण-सा ही दिखाई देगा।"

कल्याणी ने विनयपूर्वक लज्जा के कारण सिर नीचा झुका लिया, किन्तु महर्षि कहते ही गये।

"बेटी एक दिन तूने राजसभा में पति को पराजित घोषित किया था, किन्तु आज मैं अपनी पराजय घोषित करने के लिए इस जंगल में आया हूँ।"

कल्याणी ने कहा—"महाराज, यह आपकी नम्रता है। उस दिन जो सत्य मालूम हुआ वह अपने विरुद्ध होने पर भी मैंने स्वीकार किया। अगर मैं ऐसा न करती तो मैंने सत्य की अवहेलना करके पति प्रेम के बदले पति मोह का परिचय दिया होता। पति मोह से मैंने पति को भी खोया होता। पति-प्रेम से आज दोनों को पाया है।"

महर्षि—"इसीलिए तो कहता हूँ कि उस दिन तेरी ही जय हुई थी, पर मेरी पराजय हुई थी।

कल्याणी—नहीं महाराज अगर आपकी जय न हुई होती, तो उस दिन आपकी जय कभी घोषित नहीं करती मेरा क्या ? मैं तो उस दिन मध्यस्त थी। वादी-प्रतिवादी नहीं, इसलिए मेरी जय क्या और पराजय क्या ?"

महर्षि—"निःसन्देह उस दिन शब्द वाद में मेरी जय थी पर अर्थवाद में तेरी ही जय हुई।"

प्रेम और मोह में क्या अन्तर है यह बात मैं जीवन भर शब्दों में ही कहता रहा हूँ। पर तूने उसे जीवन में उतार-कर बताया। जीवन की परीक्षा में मैं उतना उत्तीर्ण नहीं हुआ जितनी तू हुई है। जिस दिन से तुम दोनों ने घर छोड़ा उस दिन से और मेरे शिष्य गुप्त रूप से तुम्हारी गतिविधि पर बराबर ध्यान देते रहे हैं। कल जब शारदा चरण की बीमारी और तेरी सेवापरायणता के मुझे समाचार मिले, तब मेरा पुण्य तेज मेरे लिए असह्य हो गया और आज रोता हुआ उसी तरह मैं चला आ रहा हूँ जैसे कोई बाप अपनी बेटी-बेटों के लिए दौड़ा चला आ रहा हो।"

इसी समय शारदाचरण धीरे-धीरे झोंपड़ी में से बाहर आये और महर्षि की चरण वन्दना करके बोले—"गुरुदेव ! उस दिन शब्द से पराजित हुआ था, आज अर्थ से पराजित हो रहा हूँ इसलिए मैं आपको अपना गुरु मानता हूँ, प्रेम और मोह का अन्तर तो कल्याणीदेवी ने अपने जीवन से बतला दिया पर उस अन्तर को परखने वाले जगत में कहाँ हैं ? आप उन्हीं पारखियों में से हैं। आपको गुरु बनाकर आज मैं कृतार्थ हो रहा हूँ।"

महर्षि—"बेटा, गुरु बनाकर कोई शिष्य कृतार्थ नहीं होता, वह कृतार्थ होता है गुरु दक्षिणा देकर।"

शारदाचरण—"गुरुदेव आज मेरे पास क्या है जो आपको गुरु-दक्षिणा मैं दूँ ? फिर भी जो कुछ मेरे पास सर्वस्व कहलाने लायक हो वह आप माँग लीजिए।"

महर्षि—"एक दिन वादी बनकर मैंने तुम्हारा वह घर उजाड़ा था, आज यह घर उजाड़ता हूँ। गुरुदक्षिणा में तुम्हारी यह झोंपड़ी ले लेता हूँ।"

कल्याणी—"गुरुदेव ! ..... !"

महर्षि—"नहीं, अब कुछ नहीं सुनूँगा। तुम लोग इसी समय मेरी झोंपड़ी में से निकल जाओ और अपने पुराने घर में चले जाओ। वहाँ तुम्हारा सारा वैभव तुम्हारी बाट देख रहा है। कुछ मुट्ठी, दो मुट्ठी मेरा भी उसमें शामिल हो गया है।"

कल्याणी—"पर ये बीमार हैं गुरुदेव !"

महर्षि—"रहने दो तुम दोनों के लिए दो पालकियाँ तैयार हैं, जाने में कोई कष्ट न होगा।"

कल्याणी की आँखों में आँसू निकल आये शारदाचरण ने भी आँखें पोंछीं, महर्षि बड़ी कठिनता से आँसू पोंछ पाये। भरे गले को साफ करते हुए उन्होंने कहा—बेटी प्रेम और मोह में आकाशपाताल का अन्तर है। पर रंगरूप में उनमें कैसी साधारण समानता है ?

कल्याणी गला भर जाने से कुछ •बोल न सकी, उसने गुरुदेव के पैर छुए और विदा ली, महर्षि ने उसी सुख-दुःख के साथ कल्याणी को विदा किया जैसे बाप अपनी बेटी को विदा करता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

फूल और काँटे

मैंने कुंज में एक गुलाब के पेड़ को देखा..... अत्यन्त सघन और फैला हुआ..... ।

उसके फूल भी बड़े-बड़े होते। बहुत ही खूबसूरत जिनकी हल्की गुलाबी रेशमी पँखुड़ियों को देखकर याद आ जाती, किसी अपरूप सुन्दरी के अधर बिम्ब की।

और उनमें से ऐसी मीठी-मीठी खुशबू आती कि सारा कुंज सुगन्ध से भर उठता।

जो उस रास्ते गुजरता, एक बार ललचाई हुई नजरों से उसके सौन्दर्य और सौरभ का पान कर ही लेता।

कोई-कोई तो खड़े के खड़े ही रह जाते और एकटक उसे निरखते, उनका हृदय आनन्द से पुलकित हो उठता।

..... हाँ..... गुलाब के पास ही एक कटैले का पौधा था। छोटा-सा छरहरा-सा।

वह बदसूरत था। बदशक्ल था। उसमें भी फूल लगते—पीले-पीले, अन्न कष्ट से द्रवित दरिद्र के पीले चेहरे की तरह।

और कोई भी उसके फूलों को ललचाई हुई नजरों से नहीं देखता, जितने गुलाब को।

सभी जानते इसके फूलों में सुगन्ध नहीं होती। लावण्य नहीं।

उस दिन गुलाब का वही प्रेमी आया। वह नित्य प्रति गुलाब के फूलों से अपनी नजर सेकता और सम्मान के साथ उनको निहारता, खुशामद से उसका जी भर देता।

उस दिन उसने चुन-चुन कर कुछ अच्छे खिले फूल लेने चाहे।

पेड़ के सिर पर जहाँ हाथों की मामूली पहुँच नहीं थी। दस-पाँच अच्छे फूल थे—बड़े-बड़े पूरे खिले।

वह उचककर तोड़ने लगा।

गुलाब के काँटों ने उसे रोकने की कोशिश की।

काँटे उसके कपड़े में घुस गये, हाथ-पैर और चेहरे में खरोंचे लगा गईं।

लेकिन उसने उन सुन्दर फूलों को तोड़ा ही। सफलता प्राप्ति के आनन्द से वह इतना विभोर हुआ कि उसे कतई पता ही नहीं चला कि गुलाब ने ही यह शरारत की है।

खुशी में झूमते हुए बाहर आया तो धोती कहीं उलझी और पैर के नीचे गड़ा एक काँटा।

मुड़कर देखा—कटैले का पौधा सिर नीचा किये खड़ा है।

चिल्ला पड़ा—इस कम्बख्त की यहाँ क्या जरूरत है ?

आवाज दी—अबे माली, बड़ा बेवकूफ है। फूलों की क्यारी में काँटे क्यों लगा रखे हैं ?

माली ने भिन्नाकर अपनी हँसिया कटैले की जड़ में भिड़ाई।

बेचारा रो पड़ा—"क्यों मुझे मारे डालते हो, मैंने तो किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा। जहाँ हूँ, सिर नीचा किये हूँ।"

माली उसकी भाषा को क्या समझता ? हाँ गुलाब ने समझा।

हँसकर कहा—"तूने मेरे पास उगने की बेअदबी की है। मेरा नौकर तुझे उसी की सजा दे रहा है।"

कटैला चिल्ला पड़ा—"क्यों मद में भूले हो सरकार, याद नहीं, सृष्टि के आरम्भ में केवल एक ही वनस्पति थी और उसी से हम सभी का विकास हुआ।"

गुलाब हँसा—"क्या अनाप-शनाप बक रहा है। मैं बड़ा हूँ जीने के लिए—तू छोटा है मरने के लिए..... अब मर।"

तब तक माली कटैले की जड़ काट चुका था।

बेचारा एक आह भी न ले सका।

गृहस्थाश्रम बनाम संन्यासाश्रम

एक गाँव के बीच से होकर एक वैरागी महात्मा चले जा रहे थे। रास्ते के एक घर में स्त्री-पुरुष के बीच उन्होंने लड़ाई होते देखी। यह देखकर सन्त जी चुपचाप खड़े हो गये। पुरुष कह रहा था—"मैं तो काशी जाऊँगा और भगवान की भक्ति कर ईश्वर को प्राप्त कर लूँगा। तेरे साथ रहने में मेरी इतनी आयु बेकार चली गई। मेरे बिना तेरा जो हाल होगा सो देखना।" स्त्री बोली—मैं भी यहाँ रहने वाली नहीं तुमसे पहले वृन्दावन को चली जाऊँगी, जहाँ मीरा ने अपने गिरिधर गोपाल को पाया था वहीं जाकर मैं भी यमुना जी में स्नान करती हुई श्रीकृष्ण भगवान का दर्शन करूँगी। मेरे बिना भी तुम्हें जो अड़चनें पड़ेंगी, सो देखना।"

बाहर खड़े महात्मा ने उन दोनों को बुलाकर पूछा, "तुम दोनों क्यों लड़ रहे हो ?" दोनों ने अपनी-अपनी बात कह सुनाई। महात्माजी व्यवहार तथा परमार्थ में भी कुशल थे। इसलिये उन्होंने दोनों को एक ही उत्तर दिया, "तुम दोनों को लड़ाने वाला तुममें से एक दूसरे का मन ही है और वह मन तुम जहाँ जाओ, वहाँ साथ रहेगा। आखिर ईश्वर को प्राप्त करना ही तुम्हारा अभीष्ट है न ? तो क्या तुम दोनों की मूर्ति ही ईश्वर जैसी नहीं है ? अरे, उससे भी अधिक अच्छी है क्योंकि तुम्हारे में चेतना स्फुरित हो रही है और वह तो एकदम जड़ पत्थर की मूर्ति है। तुम्हारी आँखों में क्या ईश्वरीय आनन्द नहीं झलक रहा है ? जाओ, घर में जाओ और आज से तुम परस्पर एक-दूसरे को ईश्वर की मूर्ति मानकर पूजो। ऐसा करने से तुममें अब कभी लड़ाई न होगी और तुम्हारा गृहस्थाश्रम संन्यासाश्रम की बराबरी करेगा।" उन दोनों ने वैसा ही किया और सुखी हुए।

सुखशान्ति का मूल परिस्थिति परिवर्तन नहीं मनःस्थिति परिवर्तन है।

लगाम मन की

एक घुड़सवार यात्री ने देखा कि पास ही कहीं रहँट चल रही है। तो सोचा कि घोड़े को पानी पिला दें। घोड़ा प्यासा था। वे दोनों रहँट के पास पहुँचे। रहँट की विचित्र आवाज सुनकर घोड़ा भड़का तो घुड़सवार ने कहा—भाई जरा आवाज बन्द कर दो तो मेरा घोड़ा पानी पी ले।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहँट बन्द कर दिया गया, परन्तु अब पानी नहीं था। घोड़े वाले ने कहा—'अरे भाई मैंने तो आवाज बन्द करने के लिए कहा था, पानी बन्द करने के लिए नहीं।' किसान ने कहा आवाज बन्द करने के लिए रहँट तो बन्द करना ही पड़ेगा। घोड़े को पानी पिलाना है, तो बेहतर है कि उसकी लगाम साधो और घोड़े को पुचकारो।

मनुष्य का मन भी निरर्थक शंका से भयभीत होकर लाभ से वंचित रहता है, उसे भी घोड़े की तरह नियन्त्रण में लाना होता है।

नृत्य-उत्सव में पतंजलि

सम्राट् पुष्यमित्र का अश्वमेध सानन्द सम्पन्न हुआ और दूसरी रात को अतिथियों की विदाई के उपलक्ष्य में नृत्योत्सव रखा गया।

यज्ञ के ब्रह्मा महर्षि पतंजलि उस उत्सव में सम्मिलित हुए। महर्षि के शिष्य चैत्र को उस आयोजन में महर्षि की उपस्थिति अखरी। उस समय तो उसने कुछ न कहा पर एक दिन जब महर्षि योगदर्शन पढ़ा रहे थे, तो चैत्र ने उपालम्भपूर्वक पूछा, "गुरुवर ! क्या नृत्य गीत के रसरंग चित्तवृत्तियों के निरोध में सहायक होते हैं ?"

महर्षि ने शिष्य का अभिप्राय समझा। उन्होंने कहा—"सौम्य ! आत्मा का स्वरूप रसमय है। रस में उसे आनन्द मिलता है और तृप्ति भी। वह रस विकृत न होने पावे और शुद्ध स्वरूप में बना रहे, इसी सावधानी का नाम 'संयम' है। विकार की आशंका से रस का परित्याग कर देना उचित नहीं। क्या कोई किसान पशुओं द्वारा खेत चर लिए जाने के भय से कृषि करना छोड़ देता है ? यह तो संयम नहीं पलायन रहा। रस रहित जीवन बनाकर किया गया संयम प्रयत्न ऐसा ही है, जैसे जल को तरलता और अग्नि को ऊष्मा से वंचित करना। सो हे भद्र ! भ्रम मत करो।"

रस नहीं, हेय और त्याज्य तो उसकी विकृति है।

मुँहमाँगा इनाम

एक बार विद्यार्थी कपिल सन्देह में चोरी के अपराध में पकड़े गये। उन्हें राजा के सामने लाया गया। राजा को जब वास्तविकता मालूम हुई कि कपिल सिर्फ सन्देह में ही पकड़े गये थे, क्योंकि कपिल सिर्फ दो मासा स्वर्ण पाने के लालच में राजा को आशीर्वाद देने ही आये थे और यह बात आरक्षकों को मालूम नहीं थी।

राजा ने कपिल से मुँहमाँगा इनाम माँगने को कहा। कपिल ने सोचा धन माँग लूँ तो अच्छा है, किन्तु धन बिना सत्ता के सुरक्षित नहीं रह सकता। अस्तु, साथ में सत्ता भी होनी चाहिए। अस्तु, कम से कम एक चौथाई राज्य तो राजा से ही माँगना चाहिए।

किन्तु चिन्तन चलता रहा। कपिल ने सोचा—हिस्से के रूप में राज्य प्राप्त करने पर राजा के बेटों और मुझमें प्रतिस्पर्धा की भावना जाग्रत हो सकती है। आपस में लड़ाई-झगड़े की पूर्ण सम्भावना है कि पूरा राज्य हासिल कर लूँ।

तब कोई झगड़े आदि की सम्भावना न रहेगी, किन्तु चिन्तन निरन्तर अबाध गति से चलता रहा और कपिल अपने आप में तृप्त न हो सके।

तभी राजा ने उनसे पुनः कहा—"कपिल ! बोलो तुम्हें क्या चाहिए ? जो चाहो माँग लो। राज्य का खजाना तुम्हारे लिये खुला है।"

कपिल कुछ क्षण मौन रहे और बोले—"राजन् ! मैंने निर्णय किया है कि मैं इस अर्थ संग्रह को त्यागकर आज से अपरिग्रही जीवन बिताऊँगा।"

और विद्यार्थी कपिल जीवन और धन एवम् वैभव का मोह छोड़कर दुनिया के एक सत्य की आँच में तपने चले गये।

तृष्णा की तृप्ति सदा असम्भव है। अस्तु, प्राप्ति की तृष्णा व धारणा त्यागते हुए जीवन को त्यागमय और संयमी बनाना ही सुख-शान्ति का मार्ग है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शील, सदाचार और सच्चरित्रता

सदाचार की शक्ति

धर्मराज युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ करने का निश्चय किया। अश्वमेध की प्रथा के अनुसार विश्व-विजय के लिये घोड़ा छोड़ा गया, उसके पीछे महाबली अर्जुन चले। जिस केसी ने घोड़े को पकड़ा, अर्जुन ने उसे युद्ध में परास्त किया। इस प्रकार दिग्विजय करते हुये वे आगे बढ़ रहे थे।

घोड़ा विन्ध्याचल पार कर चम्पापुरी में प्रविष्ट हुआ। उस समय वहाँ सम्राट हंसध्वज राज्य करते थे। उन्होंने अपने पुत्र सुधन्वा को घोड़ा पकड़ने की आज्ञा दी। यशस्वी राजकुमार सुधन्वा ने घोड़े को बन्दी बना लिया। यह समाचार मिलते ही दोनों ओर से युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं।

रणक्षेत्र में उतरने से पूर्व सुधन्वा अपनी पत्नी प्रभावती से मिलने गया। युद्ध-वेष में पति को सामने खड़ा देखकर वीरबाला प्रभावती की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उसने कहा—"देव ! शत्रु से संघर्ष करना ही हम क्षत्रियों का धर्म है, संघर्ष न करें तो सारा संसार अपनी हर अच्छी-बुरी इच्छा मनवाने का दुस्साहस करने लगता है।"

"किन्तु·····" कहकर प्रभावती चुप हो गई। सुधन्वा ने पूछा—"प्रियतमे ! कहो—रुक क्यों गईं, हमने अग्नि के समक्ष एक-दूसरे की आकांक्षाओं को पूर्ण करने की प्रतिज्ञा की थी, वह मुझे याद है, तुम्हारी किसी भी कामना को पूर्ण करना, मैं अपना धर्म समझता हूँ।"

"स्वामिन् !" प्रभावती ने विनीत भाव से कहा—"आज़ तक आपने विवाहित होकर भी ब्रह्मचर्य की मर्यादाओं का पालन किया है, मैं उससे सन्तुष्ट ही रही हूँ, आप युद्ध में जा रहे हैं, युद्ध में विजय ही नहीं होती—पराजय और मृत्यु की सम्भावनायें भी स्वाभाविक होती हैं। यदि आपको कुछ हो गया, तो मुझे निःसन्तान रहना पड़ेगा। एकाकी जीवन काटना नारी के लिये कठिन है। आज मेरे रजस्वला होने का १६वाँ दिन है, आप युद्ध प्रातःकाल प्रारम्भ करते तो महान् कृपा होती।"

सुधन्वा ने बात स्वीकार कर ली। उधर युद्ध की तैयारियाँ हो रही थीं, इधर गर्भाधान की तैयारी। सारी प्रजा अस्थिर थी, किन्तु सुधन्वा को किंचित मात्र असन्तोष न था। एक सद्गृहस्थ की भाँति उसने गृहस्थ धर्म का पालन हँसी-खुशी के साथ किया।

प्रातःकाल सुधन्वा रणक्षेत्र में आ डटा। उसका रथ अर्जुन के रथ के सामने आया, शंख-ध्वनि हुई और दोनों सेनाओं में बाण-वर्षा होने लगी। सुधन्वा के साथ सुमति, सुगति, तुष्ट, श्रद्धालु, सुबल, सुरथ आदि भाई और सामन्त युद्धरत थे, तो अर्जुन की ओर से सारथी भगवान श्रीकृष्ण और वृषकेतु, प्रद्युम्न, अनुशाल्व और कृतवर्मा आदि योद्धा युद्ध में भाग ले रहे थे। बड़ा घमासान युद्ध हुआ।

आज युद्ध का अन्तिम दिन था। सुधन्वा और अर्जुन दोनों आमने-सामने विजय की आकांक्षा से शस्त्र प्रहार कर रहे थे। सुधन्वा के बाणों के आगे अर्जुन की एक भी न चल पा रही थी, तभी अर्जुन ने क्रोध करके प्रतिज्ञा की—"यदि मैंने तीन बाणों से सुधन्वा का सिर न काट दिया, तो फिर कभी शस्त्र ग्रहण नहीं करूँगा।" अर्जुन की प्रतिज्ञा सुनकर सुधन्वा ने भी शपथ ली—"यदि मैंने अर्जुन के तीनों बाणों को न काट दिया, तो युद्ध में हार मानकर चला जाऊँगा।"

अर्जुन को विश्वास था, भगवान कृष्ण उनके साथ हैं, सो जयद्रथ वध की तरह प्रतिज्ञा पूरी होगी ही। सुधन्वा को अपने पर आत्म-विश्वास था—मैंने जीवन में कभी कोई कलुषित कर्म नहीं किया। कभी झूठ नहीं बोला, इसलिये मेरी आत्मा की आवाज कभी असत्य नहीं हो सकती। यों प्रतिज्ञायें अर्जुन और सुधन्वा ने की थीं, पर वस्तुतः टक्कर ईश्वर और सदाचार के बीच थी। भगवान को ही निर्णय करना था कि विजय सदाचारी की होती है अथवा भगवान के कृपा-पात्र की।

युद्ध फिर प्रारम्भ हुआ—अन्तिम और निर्णायक युद्ध। अर्जुन ने धनुष पर बाण चढ़ाया और प्रत्यंचा कान तक खींची। भगवान कृष्ण ने कहा—"मैंने गोवर्धन उठाकर इन्द्र के कोप से गाय और गोपालों की रक्षा की थी। उसका जो पुण्य हुआ हो, वह मैं अर्जुन के बाण में जोड़ता हूँ। अर्जुन की प्रतिज्ञा पूरी हो।"

सुधन्वा भी उसी समय गरजकर बोला—"दिशाओ ! यदि मैंने अपने जीवन में एक पत्नीव्रत का पालन किया हो, भूलकर भी किसी पराई स्त्री को कुदृष्टि से न देखा हो तो मेरा यह बाण अर्जुन के बाण को मध्य में ही काट दे।" यह कहकर उसने भी धनुष चढ़ाकर बाण छोड़ दिया। दोनों बाण एक साथ छूटे और सबने देखा कि अर्जुन का शक्तिशाली बाण सुधन्वा के बाण से बीच में ही कटकर चूर-चूर हो गया। सुधन्वा का बाल भी बाँका न हुआ।

अर्जुन ने दूसरा बाण चढ़ाया और पुनः उसे कान तक खींचा। भगवान कृष्ण ने पुनः शक्ति दी और कहा—"ऐरावत हाथी को ग्राह के चंगुल से बचाते समय, द्रोपदी को दुर्योधन द्वारा चीर-हरण करते समय बचाने से और भक्त प्रहलाद की हिरण्यकशिपु से रक्षा करने से मुझे जो पुण्य प्राप्त हुआ था, वह पुण्य अर्जुन के इस बाण में जोड़ता हूँ।"

उधर अर्जुन को धनुष तानते हुये देखकर सुधन्वा ने भी धनुष पर बाण चढ़ाया और बोला—"राजा होकर भी यदि मैंने प्रजा से अधर्म का धन ग्रहण न किया हो, प्राप्त धनराशि को केवल प्रजा के ही हित में लगाया हो, तो यह मेरा तीक्ष्ण बाण अर्जुन के बाण को काट डाले।" यह कहकर सुधन्वा ने भी अर्जुन के साथ ही बाण छोड़ दिया। दोनों बाण मध्य युद्धस्थल में टकराये और अर्जुन का बाण निरस्त होकर वहीं कट गिरा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अन्तिम बाण, आखिरी शक्ति लगाकर अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र शर का सन्धान किया। श्रीकृष्ण बोले—"काल पुरुष होकर भी पृथ्वी को आसुरी शक्तियों से बचाने के लिये मैंने २४ बार मनुष्य शरीर धारण किया है, मैंने अपनी सारी शक्ति लोक-कल्याण में ही लगाई है, उससे जो कुछ पुण्य हुआ हो, वह सब अर्जुन के इस तीसरे बाण में लग जाये।"

उधर सुधन्वा ने आकाश की ओर देखा और कहा—"हे तारागणो ! तुम साक्षी हो, एक सामान्य व्यक्ति होकर भी यदि मैं सम्पूर्ण जीवन अपने धर्म और अपनी संस्कृति की रक्षा में लगा रहा होऊँ, तो अर्जुन का यह तीसरा बाण भी नष्ट हो जाये।" यह कहकर उसने तीसरा बाण छोड़ा और अर्जुन के तीसरे बाण को भी काटकर रख दिया।

अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण की ओर देखा और श्री कृष्ण ने अर्जुन की ओर—दोनों एक-दूसरे का मुख ताकते खड़े थे और आकाश से देवतागण सुधन्वा पर पुष्पों की वर्षा कर रहे थे। सदाचार की इस विजय पर सारी चम्पापुरी हर्ष मना रही थी और पाण्डवों की सेना इस दुविधा में पड़ी थी कि युद्ध को यहीं विश्राम दे दिया जाये अथवा उसे आगे भी प्रारम्भ रखा जाये।

सदाचरण की शक्ति

"समस्त आर्यावर्त कबन्ध के कुत्सित कर्मों को धिक्कारता है तात् ! आज तो उसने अपनी भी एक शत गायें बलात् अपहरण कर लीं, उसका लक्ष्य अपनी कामधेनु को चुराना था, पर लगता है दस्यु उसे पहचान नहीं सके। इतना हो जाने पर भी आप कबन्ध की भर्त्सना नहीं करते। आर्यश्रेष्ठ ! आप तो मन्त्रज्ञ हैं। एक क्या, हजार कबन्धों के प्राण आप एक क्षण में ले सकते हैं। मन्त्र न भी सही जनमत आपके आदेश की अवज्ञा नहीं करता, आप एक संकेत कर दें, तो सारी प्रजा उठ खड़ी हो और दस्युराज कबन्ध के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। फिर ऐसी क्या दया, क्या-सहिष्णुता यह तो निरी कायरता है।" आचार्य पत्नी ने महर्षि व्यास को आज आड़े हाथों लिया।

उन्होंने लेखनी को एक पल का विराम दिया। पास पड़े भूर्जपत्रों को एक ओर कर उसकी ओर देखा। पत्नी के चेहरे पर अभी भी खीज के चिह्न थे, लेकिन वे स्वयं इस तीखेपन पर न खीझे, न उत्तेजित हुए। शान्त-निर्मल मन और मधुर वाणी से बोले, "भद्रे ! मनुष्य अपने अन्तःकरण से न पापी है न बुरा। सांसारिक परिस्थितियाँ कभी किसी को बुरा बना दें तो उसका यह अर्थ नहीं कि उसे सिखाने-समझाने की अपेक्षा मार डाला जाय। शरीर भगवान देता है, दण्ड तो दिया जा सकता है पर ईश्वर के दिए अधिकार को छीनना उचित नहीं।

'किन्तु क्या आप जानते हैं कि आप जैसी उदारता ही बुराइयों को बढ़ावा देती हैं—सबमें एक ही निर्मल आत्मा देखने के आपके दर्शन को बधाई। पर जिसके कारण सारी प्रजा त्रस्त हो रही है, उस बुरेपन को भी तो देखिये आर्यश्रेष्ठ !" आचार्य पत्नी ने अपने शब्दों को थोड़ा कोमल बनाने का प्रयास किया। इस प्रयास के बावजूद स्वरों में उग्रता का काफी कुछ अंश था। यह उग्रता उन्हें अपने पिता महाअथर्वण से विरासत के रूप में मिली थी।

महर्षि बोले, 'देवि ! कबन्ध जैसी वीरता क्या किसी सेनापति में है ? उसका स्वास्थ्य, आरोग्य, साहस, स्फूर्ति और अपने काम में पूर्ण दत्तचित्तता जैसे गुणों की क्या सराहना नहीं हो सकती, जो उसमें बुराइयाँ देखें और निन्दा की जाए। तुम नहीं जानती प्रिये—व्यक्ति आत्मीयता, मान और प्यार का भूखा होता है। यदि कबन्ध को यह मिले होते, तो वह दस्यु न होकर इस देश का वीरवर सेनानायक होता।"

अपने सम्मुख शत्रु की प्रशंसा, आर्य रमणी को किंचित सहन न हुई, वे क्रुद्ध हो उठीं और बोलीं, "अति भावुकता राष्ट्र को पतन की ओर ले जाती है आर्य ! आप यह भी भूलें मत।" कहते-कहते उठ खड़ी हुईं और वहाँ से चलने को समुद्यत हुई ही थीं कि चन्द्रद्युति के शीतल प्रकाश में एक सुडौल आकृति उन्हें अपनी ओर आती दिखाई दी। ध्यान बटा, उन्होंने उस ओर दृष्टि गड़ाकर देखा। कुछ विस्मित, कुछ भय से आक्रान्त महर्षि पत्नी कुछ कहें इससे पूर्व ही उस आकृति ने आगे आकर उनके चरणों का स्पर्श किया और फिर महर्षि के पैरों में गिरते हुए उसने कहा—"तात् ! वह पापी कबन्ध मैं ही हूँ, जिसकी आप इतनी देर से प्रशंसा कर रहे थे। देव ! आपकी कामधेनु चुराने मैं स्वयं आया था। हतबुद्धि में आपके प्राण हरण तक के लिए उतारू था, किन्तु आज आपके दर्शन, आपकी आत्मीयता ने मुझे परास्त कर दिया और अधिक पाप के लिए अब मेरे हाथ नहीं उठते। जो चाहे दण्ड मुझे दें, मैं पूरी तरह आपको आत्मसमर्पण करता हूँ।"

महर्षि ने एक स्नेह भरी दृष्टि अपनी धर्मपत्नी की ओर डाली, फिर कबन्ध को अपनी भुजाओं में लेते हुए उन्होंने स्नेहविगलित स्वर में कहा—"उठो तात् ! भूलें स्वभावतः मनुष्य से ही होती हैं पर उन्हें सुधारने वाला सराहनीय होता है। उठो ! अब तक के किए पापों का प्रायश्चित्त कर डालो, तुम अब भी अपनी आत्मा का प्रकाश ग्रहण कर सकते हो, करोगे ?"

महर्षि पत्नी वाटिका के पास खड़ी किंकर्तव्यविमूढ़ सारा दृश्य देख रही थीं। उन्हें अनुभव हो रहा था कि सदाचार की शक्ति अनाचार से हजार गुना बढ़कर है, जो कार्य राष्ट्राध्यक्ष और उनकी सेना नहीं कर सकी, वह एक व्यक्ति के सदाचार ने कर दिखाया।

शालीनता का ध्वजारोहण

तभी मन्दिर से उठ रही शंख की गहरी प्रतिध्वनि वातावरण को एक नए रंग में रँगने लगी और फिर हर-हर महादेव का प्रचण्ड स्वर उठा। सभी ने सुना अपने नायक छत्रपति का सिंह गर्जन उस समस्त ऊर्जस्वित निनाद में अग्रणी था। वह अपने शौर्य के कारण हवा को जैसे दो टूक तोड़ गया था। छत्रपति दरबार की ओर जा रहे थे। आज पिछले दिनों हुई जीत के उपलक्ष में विशेष आयोजन था। सभासदों के अलावा सामान्य नागरिक भी आमन्त्रित थे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पथ के दोनों ओर खड़ी जनता दरबार की ओर बढ़ रहे अपने नायक को एकटक निहार रही थी। उन्नत ललाट, लम्बी नाक, खिंची हुई भौहें, चढ़ी हुई दर्प भरी मूछें हल्की दाढ़ी, चौड़ा वक्ष और प्रशस्त भुजदण्ड और फिर पतली कमर—जिसके बाद फिसलती हुई आँखें मजबूत पिंडलियों से होती हुई चरणों पर अटक जातीं। उन्हीं चरणों पर जिन्होंने अभी हाल में आलमगीर के गौरव को ठोकर मारकर चकनाचूर किया था।

क्षण और पल घड़ी में बदले इसके पूर्व छत्रपति अपने सभासदों-सामन्तों के साथ दरबार में उपस्थित हो चुके थे। राजपुरोहित द्वारा उच्चरित वैदिक ऋचाओं की अनुगूँज के साथ दरबार की विशेष कार्यवाही प्रारम्भ हो गई थी। तानाबाजी पेशवा मोरोपन्त जीते गए कल्याण के किले का विवरण प्रस्तुत कर रहे थे। पाँच सौ हाथी, तकरीबन एक हजार घोड़े, तलवारों और अन्य हथियारों का जखीरा है। हीरे-जवाहरात, कीमती वस्त्र भण्डार इन सबके अलावा ऐसी अनेकों तरह की चीजें जिनकी गणना करना सम्भव नहीं हो पा रहा था। "सेनानायक आवाजी सोनदेव की वीरता इस जीत का प्रमुख कारण रही है।" तानाबा का स्वर सभा में गूँजा। छत्रपति की प्रशंसा भरी दृष्टि आवाजी की ओर उठी। फिर उन्होंने तानाबा की ओर देखते हुए कहा, "यह जीत एक की जीत नहीं, हम सबकी जीत है। महाराष्ट्र की इस भूमि को स्वतन्त्र करने के लिए हम सबने अपने रक्त से इसे तृप्त किया है। स्वतन्त्रता के जिस अदृश्य बीज के लिए इस वीर भूमि के पुरुषों ने केसरिया बाना पहनकर अपने अंगों को गंवाया, जिसके लिए हमारी कुलवधुओं, पुत्रियों और माताओं ने आग की लपटों में भस्म होकर अपने गौरव से एक अजेय बाड़ बनाई है, हमने उसी फैल रहे ऋषि संस्कृति के महावट को अपनी अंजलि भरकर रक्त से सींचा है। आओ आज इस विजय के अवसर पर हम सब प्रतिज्ञा करें कि इसी तरह इस महावट को अपने प्राणों से सींचते रहेंगे।" सबने प्रतिज्ञा की। सभा "हर-हर महादेव", "समर्थ गुरु रामदास की जय", "माता भवानी की जय" की गूँजों से भर गई।

सभी के हृदयों से भावों का ज्वार उमड़कर समूचे वातावरण को तरंगित करने लगा। इन तरंगों को अपने स्वरों से पिरोते हुए छत्रपति ने कहा, "पेशवा ! हाथी, घोड़ों और हथियारों से अपनी सेना को मजबूत किया जाय ताकि आक्रान्ता फिर कभी निरीहजनों को लूटने, सताने का साहस न कर सके। प्राप्त हुआ धन राजकोष का है। इससे लोकजीवन के लिए अनेकों कल्याणकारी कार्य सम्पन्न हो सकेंगे।" इतना कहकर छत्रपति ने मोरोपन्त की ओर देखा।

"छत्रपति ! कल्याण के किलेदार ने अपने तहखाने में बहुत-सा सामान रख छोड़ा है, उसमें खाने का बड़ा सामान भी है। आज्ञा दीजिए आज उत्सव मनाया जाय।"

मोरोपन्त के इन शब्दों के साथ छत्रपति के नेत्रों में आश्चर्य उभरा "उत्सव ?" वीर के लिए शाश्वत उत्सव है उसका कर्तव्य। यह सब सामान हमारी ही प्रजा से लूटकर ले जाया गया माल है। उसे इन्हीं ग्रामवासियों को लौटा दो और जो हमें वे खुशी से दे दें, हमारे लिए वही बहुत है।"

छत्रपति के इन शब्दों के साथ सभा की दर्शकदीर्घा में बैठे ग्रामीणजनों के मध्य से हल्की आवाजें आयीं "छत्रपति शिव है, स्वयं कष्टों का जहर पीकर हम सबके लिए खुशियों का जीवन उँड़ेलता है।" इन वाक्यों के स्पन्दन दूर तक फैलते जा रहे थे तभी एक स्वर गूँजा "एक प्रार्थना है महाराज !" "कहो वीर।"

"जीत का एक विशिष्ट रत्न अभी बाकी है, जिसे मैंने विशेष रूप से आपके लिए रख छोड़ा है।"

"विशेष रत्न ! मेरे लिए !!" उनके स्वर में असमंजस था जैसे वह समझ नहीं पा रहे हों। फिर एक पल रुककर बोले, "कौन-सा रत्न है, स्पष्ट करो सोनदेव ?" उत्तर था—"गौहरबानू।"

इस एक शब्द में पता नहीं क्या था, छत्रपति चौंक पड़े। उन्हें ऐसा लगा जैसे हजारों बिच्छुओं ने उनके सारे शरीर में अपने डंक चुभो दिये हों। वेदना की छाप उनके चेहरे पर घनीभूत हो गई।

"गौहरबानू तो स्त्री है।" स्वर कहीं दूर से आता प्रतीत हुआ। "हाँ कल्याण के किलेदार मुल्ला अहमद की पुत्रवधू।" "तब तुम मेरी आज्ञा कैसे भूल गए ? अपनी महान् संस्कृति के पवित्र सूत्रों को कैसे भूल गए ? तुम अपराधी हो नायक।" इस आवाज में दृढ़ता थी, शासक का तेज मुखर हो उठा था।

सोनदेव के पैर काँपने लगे। जैसे-तैसे उसने अपने साहस को समेटते हुए कहा, "देव ! विधर्मियों के किसी धर्मस्थल का अपमान नहीं किया गया। किसी भी बालक-वृद्ध को सताया नहीं गया। इसे छोड़कर किसी अन्य स्त्री को अपमानित अथवा बन्दी नहीं किया गया। अपमानित यह भी नहीं हुई, बस कैद कर लिया गया था।"

"कैद, लेकिन क्यों ?" छत्रपति की गर्जना से सभा काँप उठी एक पल रुककर सन्नाटों को भंग करते हुए कहा—"जाओ उसे ससम्मान दरबार में लाओ।"

थोड़ी देर में बुर्के में ढँकी हुई नारी सभा के रत्नजटित दीपकावलियों के चन्द्रिका मनोहर प्रकाश में आ खड़ी हुई। उसे सामने खड़ा देख, छत्रपति अपने सिंहासन से उठे। उन्हें उठते देख सामन्तों एवम् सभा में उपस्थितजनों के हृदय काँप उठे। पर वह इन सबसे बेखबर धीमे पदों से चलकर उसके पास पहुँचे, घुटने मोड़कर बैठते हुए उन्होंने हाथ जोड़कर कहा, "माँ ! अपने सरदार द्वारा किये गए अपराध के लिए मैं आपके सामने क्षमा प्रार्थी हूँ।"

"मुझे शर्मिन्दा न करें श्रीमन्त।" इन शब्दों के साथ "माँ" शब्द के जादू ने उसे बुर्के के आवरण उठाने के लिए विवश किया। सभा में बैठे जन स्तब्ध, मुग्ध और मूक थे। कोमल कदली के समान पैरों पर सुनहरी जरी की गाँठ से बाँधे हुए लहँगे के ऊपर चमकती मेखला में से किसी सुन्दर मन्दिर के निकले हुए अद्भुत शिखर की भाँति उसकी कमर और बालक के समान अत्यन्त मनोहर मुख बुर्के के बाहर प्रकट हुआ। उसके मुख पर पार्थिव सुन्दरी की अपूर्व रेखाएँ नहीं थीं, देवांगनाओं की भव्यता नहीं थी, मात्र छोटी बालिका की सुकुमारता न थी, वह तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किसी सुन्दर स्वप्न में क्षण भर देखा हुआ एक निर्दोष बाल वसन्त का मुख था।

नीरवता को भंग कर रहे, छत्रपति के स्वर सभा ने सुने—वह कह रहे थे, "देवि ! हमारी देव संस्कृति की पुण्य शपथ है नारी माँ है, उसके अक्षुण्ण सम्मान को विस्मृत करना इस महान संस्कृति की संतति के लिए आत्मघात है। मैं आपके सम्मुख बार-बार क्षमाप्रार्थी हूँ।" उनके प्रत्येक शब्दों से भावों का अमृत झर रहा था। "धन्य है यह अमर संस्कृति। धन्य है यह पुण्य भूमि !! और धन्य उसके आप सदृश रक्षक !!!" हृदय में अविराम उमड़ रही भावनाओं से मुश्किल से गौहरबानू अपने शब्द पूरे कर पाई। अपनी भरपूर कोशिश के बावजूद वह भाव-बिन्दु को आँखों से लुढ़कने से रोक न पाई।

"सोनदेव !" छत्रपति ने उठकर पास में सहमे खड़े नायक को पास बुलाते हुए कहा, "ये माँ हैं हम सब की वन्दनीय, इनसे क्षमा माँगो।"

सोनदेव को जैसे प्राणदान मिला वह घुटनों के बल बैठकर माफी माँगने लगा। इतने में शिवाजी ने पेशवा को सम्बोधित करते हुए कहा—"इन्हें अभी बीजापुर गए मुल्ला अहमद के पास भेजने का प्रबन्ध किया जाय। सम्मान और सुरक्षा का पूरा ध्यान रहे।"

"जो आज्ञा श्रीमन्त।" पेशवा का स्वरभाव गद्‌गद् था। आज्ञा देकर ही वे सन्तुष्ट न हुए, बाहर खड़ी शानदार बग्घी तक उसे छोड़ने आए। बग्घी के साथ पाँच सौ मराठों की टुकड़ी सुरक्षा के लिए जा रही थी। थोड़ी देर तक वह घोड़े के पाँव से उड़ती धूल को देखते रहे फिर सामन्तों, सभासदों, नागरिकों की ओर देखकर कहने लगे "देख रहे हो किले के कँगूरे पर फहरा रही ध्वजा को श्री—श्रीसमर्थ ने इसे थमाते हुए मुझसे कहा था शिवा ! इस ध्वज को झुकने न देना।" सभाजनों की आँखें ऊपर उठ गईं। किले के ऊपर वह भगवा ध्वज ऐसे फहरा रहा था, जैसे ऊपर जाकर सहस्रदल कमल खिल गया हो। आकाश के अनन्त विस्तार में उसकी फरफराहट देखकर सभी को ऐसा लगा जैसे अगाध समुद्र पर शेषशायी नारायण के नाभिकमल पर बैठे ब्रह्मा देवसंस्कृति का सनातन उद्‌घोष कर रहे हों। सचमुच संस्कृति के इस पुरोधा ने अपने गुरु के आदर्शों को अक्षरशः निभाया था।

सद्‌व्यवहार का अचूक अस्त्र

एक राजा ने एक दिन स्वप्न देखा कि कोई परोपकारी साधु उससे कह रहा है कि बेटा ! कल रात को तुझे एक विषैला सर्प काटेगा और उसके काटने से तेरी मृत्यु हो जायगी। वह सर्प अमुक पेड़ की जड़ में रहता है, पूर्व जन्म की शत्रुता का बदला लेने के लिए वह तुझे काटेगा।

प्रातःकाल राजा सोकर उठा और स्वप्न की बात पर विचार करने लगा। धर्मात्माओं को अक्सर सच्चे ही स्वप्न हुआ करते हैं। राजा धर्मात्मा था इसलिए अपने स्वप्न की सत्यता पर उसे विश्वास था। वह विचार करने लगा कि अब आत्मरक्षा के लिए क्या उपाय करना चाहिए ?

सोचते-सोचते राजा इस निर्णय पर पहुँचा कि मधुर व्यवहार से बढ़कर शत्रु को जीतने वाला और कोई हथियार इस पृथ्वी पर नहीं है। उसने सर्प के साथ मधुर व्यवहार करके उसका मन बदल देने का निश्चय किया।

संध्या होते ही राजा ने उस पेड़ की जड़ से लेकर अपनी शय्या तक फूलों का बिछौना बिछवा दिया, सुगन्धित जलों का छिड़काव करवाया, मीठे दूध के कटोरे जगह-जगह रखवा दिये और सेवकों से कह दिया कि रात को जब सर्प निकले तो कोई उसे किसी प्रकार कष्ट पहुँचाने या छेड़-छाड़ करने का प्रयत्न न करें।

रात को ठीक बारह बजे सर्प अपनी बाँबी में से फुसकारता हुआ निकला और राजा के महल की तरफ चल दिया। वह जैसे-जैसे आगे बढ़ता गया वैसे ही वैसे वह अपने लिए की गई स्वागत व्यवस्था को देख-देखकर आनन्दित होता गया। कोमल बिछौने पर लेटता हुआ मनभावनी सुगन्ध का रसास्वादन करता हुआ, स्थान-स्थान पर मीठा दूध पीता हुआ आगे बढ़ता था। क्रोध के स्थान पर सन्तोष और प्रसन्नता के भाव उसमें बढ़ने लगे।

जैसे-जैसे वह आगे चलता गया वैसे-ही-वैसे उसका क्रोध कम होता गया। राजमहल में जब वह प्रवेश करने लगा तो देखा कि प्रहरी और द्वारपाल सशस्त्र खड़े हैं, परन्तु उसे जरा भी हानि पहुँचाने की चेष्टा नहीं करते। यह असाधारण सौजन्य सर्प के मन में गढ़ गया, सद्‌व्यवहार, नम्रता, मधुरता के जादू ने उसे मन्त्र-मुग्ध कर लिया, वह राजा को काटने चला था, परन्तु अब उसके लिए अपना कार्य असंभव हो गया। हानि पहुँचाने के लिए आने वाले शत्रु के साथ जिसका ऐसा मधुर व्यवहार है, उस धर्मात्मा राजा को काटूँ, तो किस प्रकार काटूँ ? यह प्रश्न उससे हल न हो सका। राजा के पलंग तक जाने तक सर्प का निश्चय पूर्ण रूप से बदल गया।

सर्प के आगमन की राजा प्रतीक्षा कर रहा था। नियत समय से कुछ विलम्ब में वह पहुँचा। सर्प ने राजा से कहा—"हे राजन् ! मैं तुम्हें काटकर अपने पूर्व जन्म का बदला चुकाने आया था, परन्तु तुम्हारे सौजन्य और सद्‌व्यवहार ने मुझे परास्त कर दिया। अब मैं तुम्हारा शत्रु नहीं मित्र हूँ। मित्रता के उपहारस्वरूप अपनी बहुमूल्य मणि मैं तुम्हें दे रहा हूँ। लो इसे अपने पास रखो।" इतना कहकर और मणि राजा के सामने रखकर सर्प उलटे पाँव अपने घर वापस चला गया।

भलमनसाहत और सद्‌व्यवहार ऐसे प्रबल अस्त्र हैं, जिनसे बुरे से बुरे स्वभाव के दुष्ट मनुष्यों को भी परास्त होना पड़ता है।

सौन्दर्य की पराजय

कलिंग देश का छोटा-सा ग्राम पर्णियाँ—पर्णियाँ का एक अपना मूर्तिकार। उस सामान्य मूर्तिकार की अपूर्व सुन्दरी कन्या 'देवसी' की कीर्ति राज्य भर में इस तरह व्याप्त हो रही थी, जिस तरह पूर्णिमा के चन्द्रमा का धवल प्रकाश समस्त भू-मण्डल में छा जाता है।

धनमद, शक्तिमद की तरह सौन्दर्य का अहंकार भी मनुष्य को पागल कर देता है। बेचारी छोटी-सी देवसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भला उससे कैसे बच पाती ? पर्णियाँ ग्राम कुशल कलाकारों की बस्ती थी। भगवान ने इस ग्राम में अपनी भी कला को निखारा था। कई युवक सौम्य और सुन्दर थे पर देवसी के मन को एक भी युवक सन्तुष्ट न कर सका, वह अपने आपको उर्वशी से बढ़कर मानती और किसी भी अर्जुन से कम के साथ विवाह करने को राजी न थी।

सौन्दर्य के साथ यौवन का चढ़ाव, देवसी की कान्ति दिनों-दिन और भी द्युतिमान होती गई। नीलताल की शोभा उसके सम्मुख पानी भरती थी। कलिंग का अन्तःपुर और राजकुमारियाँ देवसी का नाम सुनते चौंकती थीं। राज्य भर के श्रेष्ठिसामन्तों, सत्ताधारियों और राजकुमारों तक में देवसी को पाने की प्रतिस्पर्धा थी, किन्तु देवसी किस-किस को दुतकार कर भगा दे, इसका कुछ ठिकाना नहीं था। अब तक सैकड़ों लोगों को उसने उँगली पर नचाकर दूर फेंक दिया था, अब तो लोग उसका नाम सुनते भयभीत होते थे।

एक दिन की बात है गाँव से एक अनजान युवक निकला, वह किसी कामना से नहीं निकला था। सत्य का शोध उसका लक्ष्य था और गुरु की खोज में वह इधर-उधर भटक रहा था। चलते-चलते शाम हो गई। थकावट से चूर युवक धनंजय ने पर्णियाँ में ही विश्राम के लिए डेरा डाल दिया। देवसी के पिता चुंक ने इस युवक को भी देवसी का हाथ माँगने वाला ही समझा सो उसने अपना परिचय देना प्रारम्भ किया। उधर उसकी रूपगर्विता कन्या युवक को जितनी बार देखती हँस देती और अपनी सहेलियों से कहती—"काला-कलूटा भ्रमर सौरभवती कलिका को प्राप्त करने की इच्छा करे, है न यह हास्यास्पद बात ?"

वृद्ध, मूर्तिकार धनंजय को अपनी एक मूर्ति के पास ले गया और उसे दिखाकर वह उसकी शोभा और मूर्तिकला की बारीकियों को समझाने लगा धनंजय हँसे और बोले—"तात् ! मूर्तिकारी तो बस उस कलाकार की ही निर्विकार है, जिसने इस संसार को बनाया है, उस जैसी विज्ञता और कलाकारिता मनुष्य में कहाँ, जिसने आग, पानी, वायु, मिट्टी और आकाश को मिलाकर जीवन पैदा कर दिया।"

वृद्ध कलाकार चौंका—"पहला युवक था, जिसके लिए कलाकार के मन में मोह जाग्रत हुआ था और तो सब रूप के प्यासे पुतले आते थे और देवसी की रूपाग्नि में झुलसकर चले जाते थे पर आज का अभ्यागत, रूप से नहीं ज्ञान से प्रभावित होने वाला था, सो कलाकार जान गया कि आज की पराजय प्रतिकूल भी हो सकती है।"

कलाकार एक-एक मूर्ति, मूर्तिकला के उपकरण, राजाओं द्वारा प्राप्त अलंकार और पदवियाँ दिखाता हुआ धनजंय को घर ले गया। अपनी कन्या का परिचय कराते हुए वृद्ध ने कहा—"तात् ! यही है वह मेरी रूपवती कन्या जिसके सौन्दर्य के सम्मुख राज घराने का सौन्दर्य भी प्रतिहत हो चुका है।"

ओह ! देवसी !! धनंजय ने उसके मुख मण्डल पर दृष्टि डालते हुये कहा—"मैंने सुना है तुमने कितने ही लोगों का मान भंग किया देवी ! किन्तु तुम नहीं जानती जिस सौन्दर्य को तुम अपनी सम्पत्ति समझ रही हो वह चार दिन का ज्वर मात्र है भद्रे।"

ऐसे स्थान पर रहना निरर्थक है, कहकर धनंजय ने अपनी लकुट कामर उठाई और अपने गन्तव्य की ओर चल पड़ा। देवसी का सौन्दर्य अभिमान चूर-चूर हो गया। वह युवक को पाने के लिये तड़प उठी, किन्तु जब तक वह कुछ कहे, धनंजय उसकी आँखों से ओझल हो चुका था।

सज्जनता और शालीनता की विजय यात्रा

एक राजा ने अपने राजकुमार को किसी दूरदर्शी मनीषी के आश्रम में सुयोग्य शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजा। उसे भर्ती कर लिया गया और पढ़ाई चल पड़ी। एक दिन मनीषी ने राजकुमार से पूछा तुम क्या बनना चाहते हो यह तो बताओ ? तब तुम्हारा शिक्षा क्रम ठीक बनेगा।

राजकुमार ने उत्तर दिया वीर योद्धा।

मनीषी ने उसे समझाया, यह दोनों शब्द तो एक जैसे हैं, पर इनमें अन्तर बहुत है। योद्धा बनना है तो शस्त्र कला का अभ्यास करो और घुड़सवारी सीखो, किन्तु यदि वीर बनना हो तो नम्र बनो और सबसे मित्रवत् व्यवहार करने की आदत डालो।

सबसे मित्रता करने की बात राजकुमार को जँची नहीं और वह असन्तुष्ट होकर अपने घर वापस चला गया। पिता ने लौटने का कारण पूछा, तो उसने मन की बात बता दी। भला सबके साथ मित्रता बरतना भी कोई नीति है ?

राजा चुप हो गया। पर जानता था, उससे जो कहा गया है सो सच है। कुछ दिन बाद राजा ने अपने लड़के को साथ लेकर घने जंगलों में वन-विहार के लिए गया। चलते-चलते शाम हो गई। राजा को ठोकर लगी और वह गिर पड़ा। उठा तो देखा कि उसकी अँगूठी में जड़ा कीमती हीरा निकलकर पथरीले रेत में गिरकर गुम हो गया है। हीरा बहुत कीमती था, सो राजा को बहुत चिन्ता हुई, पर किया क्या जाता, अन्धेरी रात में ढूँढ़ने की कोई व्यवस्था नहीं थी।

राजकुमार को एक उपाय सूझा। उसने अपनी पगड़ी खोली और वहाँ का सारा पथरीला रेत समेटकर उसकी पोटली में बाँध लिया और उस भयानक जंगल को जल्दी पार करने के लिए निकल पड़े।

रास्ते में सन्नाटा तोड़ते हुए राजा ने पूछा—"हीरा तो एक छोटा-सा टुकड़ा है, उसके लिए इतनी सारी रेत समेटने की क्या जरूरत थी ?" राजकुमार ने कहा—"जब हीरा अलग से नहीं मिलता, तो यही उपाय रह जाता है कि उस जगह की सारी रेत समेटी जाय और फिर सुविधानुसार उसमें से काम की चीज ढूँढ़ ली जाय।"

राजा चुप हो गया किन्तु कुछ दूर चलकर उसने राजकुमार से पुनः पूछा कि फिर मनीषी अध्यापक का यह कहना कैसे गलत हो गया कि 'सबसे मित्रता का अभ्यास

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

करो।' मित्रता का दायरा बड़ा होने से ही तो उसमें से हीरे ढूँढ़ सकना सम्भव होगा।

राजकुमार का समाधान हो गया और वह फिर उस विद्वान के आश्रम में पढ़ने के लिए चला गया।

जीवन सम्पदा

एक सेठ बड़ा चतुर भी था और बुद्धिमान भी। उसने अपनी चतुरता के बल पर बहुत सम्पत्ति कमाई। व्यापार चला और बहुत मुनाफा हुआ। घर धन-धान्य से भर गया। स्वर्ण मुद्राओं की कमी न थी। उनसे तिजोरियाँ भरी थीं।

घर में तीन व्यक्ति थे। पति-पत्नी और एक छोटा बच्चा। तीनों सुखपूर्वक रहते और प्रसन्नतापूर्वक दिन गुजारते।

दुर्दैव से एक दिन घर में अचानक आग लग गई। पता तब चला जब लपटें चारों ओर फूटने लगीं। घटना अकस्मात् घटी। पहले से वैसा होने की आशंका न थी, ताकि बुझाने का कुछ प्रबन्ध करके रखा जाता। जब यह दुर्घटना घटी थी तब आधी रात बीत चली थी। पड़ोस के सब लोग भी गहरी नींद सोये हुये थे। किसी को आग की लपट दीखी भी नहीं।

आग जब पलंग के निकट आ गई तब सेठ-सेठानी जगे। भयंकर दृश्य चारों ओर देखा, तो हड़बड़ाकर उठ बैठे। जल्दी बुझने की सूरत नहीं थी। चिल्लाये, पुकारें पर आवाज पड़ोस तक में नहीं पहुँची, सो दोनों मिलकर ही बहुमूल्य वस्तुएँ बचाने, उन्हें बाहर निकालने में जुट गये। साथ ही पड़ोसियों को भी सहायता के लिए आवाज देते रहे।

सामान निकालने का क्रम जारी रहा। पड़ोसी भी कुहराम सुनकर जग गये और आग बुझाने में सहायता करने के लिए दौड़े। वे आग भी बुझाते रहे और सामान निकालने में भी सहायता करते रहे। बहुतों के बहुत प्रयास से आग काबू में आ गई। सामान भी अधिकांश बाहर निकाल दिया गया।

सेठ-सेठानी ने बचे हुए सामान पर दृष्टि डाली तो सन्तोष की साँस ली। देखा तो प्रतीत हुआ कि बहुमूल्य सामान प्रायः सभी अग्नि की चपेट से बचा लिया गया था। जो जला था वह कम मूल्य का था। बचे धन के सहारे व्यापार चलता रह सकता था। सोचा फिर कुछ दिन के प्रयत्न से उतना ही कमा लेंगे, जितना जल गया था।

जब सब कुछ शान्त हो गया तो सूझा कि अपना प्राण प्यारा बच्चा तो है ही नहीं, सोचा भीड़ के साथ कहीं चला न गया हो। पड़ोसियों के घरों में खोज-बीन की गई पर वह वहाँ कहीं न था। जले हुए घर में प्रवेश करके देखा गया तो प्रतीत हुआ कि सोने वाले कमरे में ही पलंग पर पड़ा रहा और जलकर समाप्त हो गया।

हा-हा-कार मच गया। सेठ-सेठानी दहाड़ मारकर रोने लगे। विवाह के बहुत दिन बाद यह बच्चा हुआ था। बड़ा सुन्दर भी था, हँसमुख भी। सभी की आँख का तारा बन गया था, माता-पिता तो उस पर प्राण देते थे। पर अब क्या हो सकता है, जली हुई लाश के रूप में बच्चा आँखों के सामने पड़ा था। मृत शरीर को भी वे आँख से ओझल नहीं करना चाहते थे। छाती से लगाये बैठे थे। विलाप का अन्त होते न देखकर सम्बन्धी, कुटुम्बियों ने उसकी अन्त्येष्टि की। माता-पिता विक्षिप्त बने किंकर्तव्यविमूढ़ बने बैठे थे।

सहानुभूति प्रकट करने आने वालों में से एक ने कहा—"अग्निकाण्ड देखकर आप लोग सम्पत्ति बचाने तो दौड़े, पर बच्चे का ध्यान क्यों नहीं दिया ? उसे प्रथम खोजने और बचाने की याद क्यों नहीं रही ?"

दुर्घटना की चर्चा जहाँ-तहाँ बहुत दिनों तक होती रही। एक विचारगोष्ठी में उसी घटना का उदाहरण देते हुए एक ज्ञानी कह रहे थे—"मनुष्य जीवन रूप बालक को उपेक्षा में पड़ा और दुर्घटनाओं का शिकार होने देता है। धन-दौलत को ही सब कुछ समझता है और उसी को बढ़ाने-बचाने के लिए हाथ-पैर पीटता रहता है। अन्त में इतना घाटा आता है, जिसकी क्षतिपूर्ति नहीं हो सकती। उस सेठ की तरह हम सब भी तो सदा जीवन सम्पदा की ऐसी ही उपेक्षा करते हैं।"

प्रत्यक्ष देवता की पूजा

एक दिन एक बालक ने अपने पिताजी को पूजा के बीच नैवेद्य लगाते हुए देखा। जिज्ञासा बालकों की प्रवृत्ति होती है। उसने पिताजी से इसका मतलब पूछा। वात्सल्य प्रेमानुरक्त पिता ने बताया कि वह नैवेद्य ईश्वर को समर्पित किया जाता है और फिर उसका जूठन प्रसाद के रूप में लिया जाता है। बालक ही तो था, बात लग गई। दूसरे दिन उसने भी वही नाटक रचा। पूजा की सामिग्री एवं नैवेद्य लेकर वह ईश्वर की मूर्ति के सामने बैठ गया। स्वभावानुसार पूजा करने के उपरान्त उसने दही का नैवेद्य लगाया और आँख मींचकर ईश्वर को दही खाने के लिए विवश करने लगा। साम-दाम में सफल न होते देखकर उसने वशीकरण का तीसरा प्रयोग अर्थात् दण्ड का उपक्रम किया। ईश्वर तुझे दण्ड अपेक्षित है या यह नैवेद्य ? लकड़ी उसने हाथ में ले ली। प्रहार करने ही वाला था कि ईश्वर साकार होकर दही पीने लगे। "अरे ! सब को पी जाओगे या मेरे लिये भी कुछ रखोगे।" एक मुसकान के मध्य शेष दही भक्तवत्सल ने भक्त के लिए रख दिया।

आसक्ति से निवृत्ति

तात् ! अपनी विवशता मैं किन शब्दों में व्यक्त करूँ—विदूरथ ने गहन निःश्वास छोड़ते हुये बताना प्रारम्भ किया—"जब भी अपरान्ह होता है मेरे अन्तःकरण में एक विलक्षण आकर्षण पैदा होता है। ऐसा प्रतीत होता है नीलाचल उपत्यिका का वह अश्वत्थ वृक्ष मुझे अपने पास बुला रहा है। उसके चिर चंचल पत्तों की ध्वनि, उसकी शीतल छाया और उसकी विशालता में न जाने ऐसा क्या है, जो मुझे बारम्बार आकर्षित करता है और मैं अपने आपको रोक नहीं पाता। ओह आर्य ! मुझे क्षमा करें, गुरुकुल की मर्यादा का उल्लंघन मुझसे न हो इसका फिर प्रयास करूँगा। आज क्षमा करें।"

यह क्षमायाचना आज नई नहीं थी, विदूरथ को प्रवेश लिये हुये लम्बी अवधि बीत गई। वह इस वर्ष

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आचार्य पद प्राप्त करने को है। उसका अध्ययन अत्यन्त प्रगाढ़ है। उसकी वाणी विनत और स्नेह-आश्रम के आबाल, वृद्ध उस पर स्नेह रखते हैं। साधना के क्षेत्र में उसकी गति की सभी चर्चा करते हैं किन्तु उसे न जाने क्या मोह है जो वह दिन ढलने की प्रक्रिया प्रारम्भ होते ही आश्रम का परित्याग कर देता है, दूर तक चला जाता है। अश्वत्थ वृक्ष तक पहुँचना, वहाँ घंटों ध्यानमग्न बैठे रहना उसका दैनन्दिन क्रम हो गया है। सान्ध्य आरती में उसने कभी भाग लिया हो यह देखने में नहीं आया। सहपाठी अनेक बार महर्षि कौटिल्य को इस तथ्य से अवगत करा चुके हैं। महर्षि की तीक्ष्ण दृष्टि विदूरथ पर रही है, पर आज तक उन्होंने कुछ कहा नहीं। आज न जाने क्यों विदूरथ को उन्होंने सामुख्य के लिये बुला लिया है। विदूरथ ने अपनी बात अन्तःकरण से व्यक्त भी कर दी।

गुरुदेव ! इस बीच भावनाओं में खोये रहे। विदूरथ ने अपनी बात समाप्त की। महर्षि ने एक वत्सल दृष्टि विदूरथ पर डाली। विदूरथ ने दृष्टि नीचे झुकाई फिर सिर ऊपर उठाया किन्तु यह क्या ? विदूरथ ने देखा महर्षि के मुख-मण्डल पर एक श्वेत पिच्छिका झलक रही है, उसका एक-एक कण अनिर्वचनीय दिव्यता से ओत-प्रोत। मानो आज विशाल नभमण्डल अपने समस्त देदीप्यमान तारकों सहित महर्षि के आनन में उतर आया है। विदूरथ की चेतना विमोहित हो चली और निमिष मात्र में ही उस पिच्छिका में अन्तर्धान हो गई। अब वे एक-दूसरे लोक में थे, स्वप्नवत् किन्तु समस्त ज्ञान और चेतना से परिपूर्ण।

विदूरथ ने देखा अपना वही परम प्रिय अश्वत्थ वृक्ष, उसकी वही चंचलता, तनिक-सी बयारि बही और पत्ते नृत्य कर उठे, चैत्र मास की सन्ध्या जैसी शीतलता, नूतन पल्लवों की मोहकता सब कुछ परम मनोहर, परम मनोहर।

किन्तु विदूरथ की मानवी काया ! नहीं नहीं यह तो एक शुक की देह है। शुक के रूप में विदूरथ अपनी प्रिया शुकी के साथ। विगत जीवन के सारे दृश्य एक-एक कर उभर रहे हैं। ओह मैं विदूरथ—एक दिन इसी अश्वत्थ के कोटर में नन्हें-से शुक के रूप में जन्मा, मेरे माता-पिता ने कितने स्नेह से मुझे दाने चुगाये थे, उड़ना सिखाया था और बड़ा होकर मैंने स्वयं एक सुन्दर शुकी को अपना जीवनसाथी चुन लिया था, बड़े आनन्द का जीवन, कितना उल्लास, कितनी उन्मुक्तता ?

किन्तु एक दिन मेरे सामने ही एक बाज ने प्रेयसी शुकी पर आक्रमण कर दिया, मैं असहाय, कुछ न कर सका—अपनी ही भार्या को अपनी आँखों के सामने गँवाकर जीवन का यथार्थ मेरे सम्मुख प्रकट हुआ। वियोग का वह एकाकी जीवन, कितनी पीड़ा से परिपूर्ण था ? ऐसे में ही अपनी देह का एक दिन परित्याग कर उत्तर पाण्डेय के एक नगर में एक श्रेष्ठ परिवार में मैंने नया जीवन धारण किया। विदूरथ मेरा नाम है और अब मैं अविद्या के परिमार्जन के लिये महर्षि कौटिल्य के तपोवन में हूँ।

बालक विदूरथ की तन्द्रा टूट गई। अब वहाँ कोई पिच्छिका नहीं थी। महर्षि की तेजस्वी मुद्रा। अधरों में हल्की मुसकान मानो वे कह रहे हों, "साधक ! तूने समझ लिया क्या, पिछले जन्मों के संस्कार कितने प्रचण्ड वेग से मन को आकर्षित करते और श्रेयस् में बाधा उत्पन्न करते हैं।"

विदूरथ की आँखें भर आईं, हृदय उमड़ उठा। वे कुछ बोले नहीं, गुरुदेव को प्रणाम किया और सान्ध्य-प्रार्थना के लिए चल पड़े। आज उन्हें परम सन्तोष था, योगियों जैसा आत्म- सन्तोष। मन को बार-बार विपरीत दिशा में चलाने का तप क्यों करना पड़ता है ? यह उन्होंने आज जान लिया था।

छूत-अछूत का भेद

महात्मा प्रतिदिन जेल जाते और एक बन्दी को उपनिषद पढ़ाया करते। बन्दी काल कोठरी में था तो भी उसके जीवन में अपूर्व मस्ती, विलक्षण ओज झलक रहा था मानो वह उपनिषद नहीं पढ़ रहा था, सोम-रस का पान कर रहा था।

चढ़ाव-चढ़ाव हों, उतार न हों, तो जीवन क्या ? संकल्प-विकल्प, शान्ति-संघर्ष, उतार और चढ़ाव का नाम ही तो जीवन है। एक-सी स्थिति होती तो संसार में गति न होकर केवल शून्यता होती। बन्दी का जीवन उसी प्रकार बीत रहा था, महात्मा नियमपूर्वक उसे उपनिषद् पढ़ाने जाते रहते।

एक दिन वह आया जब उन महात्मा ने अपने शिष्य के मन में शान्ति और प्रसन्नता का अभाव ही नहीं पाया, देखा कि उसके मन में कोई भय समा गया है, देखने से लगता था वह रात भर सोया नहीं था। महात्मा ने पूछा—"तात् ! ऐसी क्या बात हो गई चिन्तातुर क्यों दिखाई दे रहे हो—उपनिषद पढ़कर भी कोई व्यक्ति शान्ति न पाये, समझना चाहिये उसके लिये संसार में और कहीं शान्ति नहीं।"

"आप ठीक कहते हैं गुरुवर !" बन्दी ने अत्यन्त विनीत भाव से उत्तर दिया। "किन्तु न जाने क्यों आज रात भर एक भयंकर स्वप्न ने मुझे पीड़ित करके रखा, नींद टूट गई तब से उस स्वप्न की भयंकरता मन से दूर नहीं होती ?"

"क्या था वह स्वप्न ?" संन्यासी ने अगला प्रश्न किया—उस प्रश्न का उत्तर युवक ने यों दिया—"रात जब सोया तो स्वप्न में अपने आपको एक गाँव के कच्चे मकान में पाया। एक कोठरी दिखाई दी, जिसमें मेरी माँ बाल खोले बैठी, बालों को सुखा रही थी, तभी मैं हाथ में तलवार लिये अन्दर चला गया और माँ के बाल पकड़कर उसे कोठरी से घसीटता हुआ बाहर बरामदे में ले आया। माँ चिल्लाती रही मैंने छोड़ा नहीं—सहन में आकर मैंने तलवार से उनका वध कर दिया।" आप जानते हैं मैं अपनी माँ को कितना प्यार करता हूँ, मेरी माँ मुझे कितना स्नेह करती है, जो बात मेरी कल्पना में भी नहीं आई वह स्वप्न में कैसे आ गई, यह भयंकर स्वप्न रात कई बार देखा उसी कारण मन उदास है।

महात्मा ने कुछ विचार किया—"पूछा कल खाना किसने बनाया, बाहर से मँगाकर तो कुछ नहीं खाया।" युवक ने उत्तर दिया, "नहीं गुरुदेव, पर हाँ कल का खाना पहले से स्वादिष्ट अवश्य था, लगता था किसी नये रसोइये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ने बनाया है।" महात्माजी ने और कुछ पूछे बिना—बन्दीगृह अधिकारी के पास जाकर पूछा, "क्या कल किसी नये बन्दी ने भोजन पकाया ?" कारागृह अधिकारी ने कहा, "हाँ"—और उसके साथ-साथ उसका रिकार्ड मँगाकर देखा तो पता चला कि वह व्यक्ति गाँव का रहने वाला है और अपनी माँ की हत्या के अपराध में आजीवन सजा पाकर आया है। हत्या की परिस्थितियाँ ठीक वही थीं, जो युवक ने स्वप्न में देखी थीं। महात्मा के कहने से उसे खाने के काम से छुट्टी दे दी गई।

महात्मा फिर अपने शिष्य के पास आये और सारी बात समझाते हुये बोले—"वत्स ! व्यक्ति के मानसिक संस्कार स्पर्श मात्र से दूसरों को कितना प्रभावित कर सकते हैं ? यह उसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। पूर्वजों ने छूत-अछूत का भेद, अच्छे-बुरे कर्मों के आधार पर बनाया था न कि जन्म से ही छूत-अछूत होने का सिद्धान्त। उसका कारण इस घटना से समझ गये होंगे। युवक सन्तुष्ट हो गया, रसोइया बदल जाने से फिर उसने वह स्वप्न भी नहीं देखा।

पूजा के फूल

मगध के सिंहासन पर तब सम्राट इन्द्रगुप्त आसीन थे। महाकौशल से उनकी शत्रुता हो गई। महाकौशल की शक्ति और सैन्यबल उन दिनों चर्मोत्कर्ष पर था। वहाँ से किसी भी क्षण आक्रमण की पूरी आशंका थी। यह बात मगध के एक-एक नागरिक को मालूम थी। इसलिए कोई भी रात में बाहर न निकलता। सारी प्रजा युद्ध की आशंका से भयभीत थी।

मगध के सैनिक पूरी तत्परता के साथ सीमा चौकियों की रक्षा कर रहे थे, पर आपात्कालीन स्थिति हो तो किसी भी व्यक्ति को चुप नहीं बैठना चाहिये, चाहे वह राजा हो या प्रजा। इन्द्रगुप्त स्वयं इस आदर्श का पालन कर रहे थे। वे रात-रात भर जागकर प्रजा की रक्षा व्यवस्था देखा करते थे।

तब जब मगध के युवक और प्रौढ़जन भी भयवश अंधकार में बाहर नहीं निकलते थे। एक स्त्री घर से बाहर निकलती। वह राजदरबार की मालिन थी। सम्राट और साम्राज्ञी दोनों प्रातःकाल पीयूष वेला में भगवान पाशुपत का पूजन किया करते थे, उसके लिये शुद्ध और ताजे पुष्पों की आवश्यकता होती थी। मालिन ने अपने इस कर्त्तव्य पालन में इन गाढ़े दिनों में भी भूल नहीं की। वह प्रतिदिन पूजा के पुष्प नियमित रूप से पहुँचाती रही। किसी को भी उँगली उठाने का अवसर नहीं मिला कि मालिन डरकर अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं कर रही।

प्रातःकाल होने में अभी देर थी। महाराज इन्द्रगुप्त भ्रमण करते हुये उधर ही आ निकले, जहाँ उस मालिन का निवास था। अंधकार में कुछ आकृतियाँ उधर घूमती दिखाई दीं। महाराज को सन्देह हुआ वह चुपचाप झुरमुट में खड़े होकर स्थिति का अध्ययन करने लगे।

भवन के बाहर पदचाप सुनकर मालिन की निद्रा टूट गई। उसने समझा प्रातःकाल हो गया है, सो फूल चुनने की पेटिका उठाकर वह घर से बाहर आई, पर यहाँ तो स्थिति कुछ और ही थी। महाकौशल के चार गुप्तचरों ने उसे बाहर आते ही घेर लिया। किसी तरह उन्हें पता चल गया था कि मालिन नियमपूर्वक राज्य-भवन में प्रवेश करती है, उसे वहाँ की सारी व्यवस्था का पता होगा, इसीलिए प्रातः होने से पूर्व ही यह दल वहाँ पहुँचा था।

नारी के कोमल नहीं, कठोर शब्द निकले—"कौन हो तुम ? इतनी रात गये यहाँ क्या कर रहे हो ?" "भद्रे ! हम आपके अतिथि हैं, आपकी सेवा पाने का अधिकार लेकर आये हैं, यदि वह अधिकार उपलब्ध हो गया, तो आप महाकौशल की सम्मानित महिलाओं में होंगी। धन, वैभव तुम्हारे चरणों पर ऐसे लोटेगा, जैसे नागराज के चरणों में सिन्धु का जल।" एक गुप्तचर ने धीमे स्वर में कहा।

"महाकौशल ! और मैं—मेरा महाकौशल से क्या सम्बन्ध ? साफ-साफ कहो क्या चाहते हो ?" मालिन ने पीछे हटते हुए दृढ़ स्वर में पूछा। "हम महाकौशल के सैनिक हैं, मगध राज्य का रहस्य ज्ञात करने के लिये आये हैं। उसकी जानकारी भर तुम्हें देनी है, उसके बदले महान् ऐश्वर्य की स्वामिनी बनोगी।"

और इससे पूर्व कि वह कुछ और कहें, मालिन ने तड़पकर कहा—"बस बन्द करो बकवास आगे और कुछ कहा तो जबान काट लूँगी। इस देश के निवासी महत्त्वाकांक्षाओं के लिए कर्त्तव्यों की हत्या करना नहीं जानते। हम प्राण दे सकते हैं, पर अपने कर्त्तव्य से एक इन्च भी डिग नहीं सकते।" गुप्तचर चिल्लाया, "मूर्ख स्त्री यदि ऐसा ही है, तो उसका फल तू ही भुगतेगी।" फिर अपने साथियों की ओर देखकर उसने आज्ञा दी—पकड़ लो इसे, डाल दो मुश्कें। जब लौह शलाकाओं से छेदा जाएगा तब कर्त्तव्यनिष्ठा याद आयेगी।

इससे पूर्व कि सैनिक उसे हाथ लगायें—महाराज इन्द्रगुप्त झुरमुट से बाहर निकल आये। मगध और महाकौशल की पहली झड़प वहीं हुई। कर्त्तव्यनिष्ठ मालिन की रक्षा के लिए महाराज इन्द्रगुप्त ने चारों सैनिकों को वहीं धराशायी कर दिया।

कृतघ्नता शत्रु के साथ भी नहीं

कौरवों और पाण्डवों की शत्रुता विश्व-विख्यात है। कौरवाधिपति दुर्योधन ने पाण्डवों को नीचा दिखाने के लिये कोई चाल नहीं छोड़ी, किन्तु उपकार के बदले अपकार, कृतज्ञता के बदले कृतघ्नता का पाप करने का साहस वह भी नहीं कर सका।

पाण्डव निष्कासित हो चुके थे। १२ वर्ष पूरे होने को थे, तेरहवें वर्ष उन्हें अज्ञातवास रखना था। उन्हीं दिनों की बात है, एक यक्ष ने हस्तिनापुर पर आक्रमण कर दिया। जब तक सेना तैयार हो उसने दुर्योधन को छलपूर्वक पकड़ लिया और विमान द्वारा बन्दी राजा को लेकर अपनी पुरी को लौट पड़ा।

विमान वहाँ से निकला जहाँ पाँच पाण्डव, सती द्रौपदी सहित विश्राम कर रहे थे। विमान में द्वन्द्व युद्ध करते दुर्योधन को युधिष्ठिर ने पहचान लिया। उन्होंने अर्जुन को बुलाकर तुरन्त आज्ञा दी—जाओ और इस यक्ष से युद्ध कर भाई दुर्योधन को छुड़ा दो।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अर्जुन ने कहा—"महाराज ! दुर्योधन हमारा शत्रु है। उसी की तो कुटिलता है जो आज हम लोग जंगल-जंगल भटकते फिर रहे हैं। शत्रु को बचाना भी भला कोई धर्म है ?"

युधिष्ठिर ने गम्भीर भाव से कहा—"अर्जुन, तुम्हारा कहना ठीक है, दुर्योधन ने हमें संत्रस्त करने में कोई कसर नहीं छोड़ी तथापि नीति कहती कि जब बाहरी आक्रमण हो तो आन्तरिक द्वेष भूलकर परस्पर मदद करनी चाहिये। कुछ भी हो दुर्योधन आखिर अपना भाई ही है, भाई की रक्षा करना धर्म ही है, अधर्म नहीं।"

अर्जुन ने आज्ञा शिरोधार्य की और यक्ष-बली से हठ ठान लिया। अर्जुन के पौरुष के आगे यक्ष की एक न चली आखिर उसे दुर्योधन को छोड़कर भागना ही पड़ा।

रक्षित दुर्योधन ने विनीत भाव से युधिष्ठिर को प्रणाम किया और पूछा—"इस उपकार के बदले वे क्या चाहते हैं ?" युधिष्ठिर ने उस समय यह कहकर टाल दिया कि अवसर आने पर माँगूँगा, अभी तो आप हस्तिनापुर लौट जायें, वहाँ आपके बिना राजसभा चिन्तित होगी।

समय बीता। पाण्डव वनवास से लौटे और महाभारत युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। कौरवों के सेनापति पितामह भीष्म नियुक्त हुये। उन्होंने ६ दिन भयंकर युद्ध किया। पाण्डव सेना को भारी क्षति उठानी पड़ी। यह पराजय देखकर पाण्डव बड़े चिन्तित हुये। आखिर भीष्म की मृत्यु का कारण उन्हीं से जानने का निश्चय किया गया, पर भीष्म की प्रतिज्ञा थी कि वे यह रहस्य केवल दुर्योधन से ही प्रकट कर सकते हैं।

उस समय पाण्डवों ने मन्त्रणा कर अर्जुन को दुर्योधन के पास भेजा और जंगल में दिये गये वचन के अनुसार राज-मुकुट माँग लाने को कहा। अर्जुन दुर्योधन के पास जाकर बोले—"भाई, आपने एक वचन दिया था, आज उसे पूरा कीजिये और अपना राज-मुकुट मुझे दे दीजिये।" पास ही उपस्थित अश्वत्थामा ने कहा—"राजन् ! युद्ध के समय शत्रु की किसी भी बात पर विश्वास नहीं करना चाहिये। कोई भी उपकार क्यों न किया हो, नीति कहती है ऐसे समय शत्रु से मित्रता का व्यवहार नहीं करना चाहिये।"

दुर्योधन ने एक क्षण विचार किया और यह कहते हुये—"अश्वत्थामा ! किये हुये उपकार और दिये हुये वचन को पूरा न करना दोनों ही पाप और असभ्यता है। इस कृतघ्नता से मैं अपनी आत्मा को कलंकित नहीं करना चाहता"—अपना मुकुट उतारकर अर्जुन को सौंप दिया।

वह मुकुट धारण कर भीष्म पितामह की मृत्यु का कारण जान लिया गया। दुर्योधन इस आशंका को पहले ही जानता था, पर शत्रु के उपकारों को भी न भूलने की मानवीयता का उसने जो सम्मान किया वही तो भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता है। कृतज्ञता पुण्य है इस पुण्य से वंचित होकर किसी को कभी आत्मा को नहीं गिराना चाहिये।

बाहुबलि की दूरदर्शिता

राजा ऋषभदेव यह नहीं चाहते थे कि उनकी मृत्यु के बाद राजगद्दी के लिए सन्तानों में झगड़ा हो अथवा राज्य की जनता को किसी प्रकार का कष्ट उठाना पड़े। पुत्र दो-चार होते तो समझा-बुझाकर ठीक कर लेते। एक साथ सौ पुत्रों के पिता बनने का उन्हें सौभाग्य मिला था। अतः उन्होंने अपने जीवन में ही यह व्यवस्था कर दी कि ज्येष्ठ पुत्र भरत को राजगद्दी दी जाये और शेष ९९ पुत्र गृह त्यागकर संन्यासी हो जायें।

पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर ९८ पुत्रों ने संन्यास ले लिया। साधना और समाज सेवा उनके जीवन के अंग बन गये। बाहुबली नहीं चाहता था कि उसका अग्रज भरत राजसिंहासन पर इसलिए आसीन हो कि वह उम्र में बड़ा है। उम्र के साथ-साथ योग्यता में भी बड़ा होना चाहिए।

विवाद खड़ा हुआ दोनों अपनी-अपनी योग्यता के प्रमाण प्रस्तुत करने लगे। राजनीति, धर्म, अर्थ और शस्त्र ज्ञान की प्रतियोगिताएँ हुईं। भरत पराजित हुआ और बाहुबली को निर्णायकों ने श्रेष्ठ सिद्ध कर दिया। योग्य और गुणवान की सर्वत्र पूजा होती है। प्रजा भी बाहुबली के प्रति आकर्षित होने लगी। निर्णायकों के निर्णय सुनने के बाद उपस्थित नागरिकों ने बाहुबली की जय-जयकार करना प्रारम्भ कर दिया।

भरत के मन में ईर्ष्या उत्पन्न हुई। वह किसी भी तरह बाहुबली को नीचा दिखाने का प्रयत्न करने लगा। अपने मार्ग के इस काँटे को निकालने के लिये उसके प्रयत्न चलने लगे। राज्य के लोभ में आकर भरत ने बाहुबली पर प्राणघातक प्रहार कर दिया। किसी को यह आशा न थी कि राजगद्दी भाई-भाई के मध्य भेद की इतनी बड़ी दीवार खड़ी कर देगी और प्राणों के मूल्य पर उसकी सौदेबाजी होगी। राजमद जो कराये कम ही है।

बाहुबली भी किसी से कम न था, जैसा उसका नाम वैसी ही उसमें शक्ति थी। उस तेजस्वी ने प्रहार के लिये जैसे ही हाथ उठाया, लोग समझ गये भरत का अन्त आ गया है, वह बाहुबली की एक मुष्टिका में ही धराशायी हो जायेगा।

बाहुबली में विवेक की किरणें अभी भी थीं जो उसके मस्तिष्क को ज्ञान से आलोकित कर रही थीं। उसमें जोश और होश दोनों ही थे। उसने सोचा यदि मेरा भाई राज्य के लोभ में विवेक शून्य तथा अधम बन सकता है तो मैं उसका प्रतिद्वन्द्वी क्यों न बनूँ ? यदि मैंने अपने भाई के प्राण लेकर राजगद्दी सँभाली तो राज्य की जनता यही कहेगी जो राजा पद के लिये अपने भाई का खून पी सकता है वह जनता की सेवा क्या करेगा ?

दूसरे ही क्षण शक्ति से उठा हुआ हाथ वापस आ गया। बाहुवली ने महत्त्वाकांक्षा को त्यागकर भरत को राजगद्दी सौंप दी और स्वयं विरक्ति को अपनाकर दुःखी मानवता के आँसू पोंछने के लिये चल पड़ा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संस्कृति-पुरुष से मिले—मर्यादा पुरुषोत्तम

जो भाला चलाना न जाने, जो शिकार न करे और लूट-पाट में उत्साह न रखे, वह भी क्या भील है ? बचपन से अल्हण ऐसा ही है। पता नहीं क्यों ? उसने भी भाला और तीर चलाना सीखा था। बड़ा अच्छा निशाना था उसका। पेड़ के पत्ते और फूलों पर सधा हुआ हाथ पड़ता था। जब सच्चे निशाने का समय आया, उसके हाथ बँध गए। हिरन ठीक सामने से भाग गया पर धनुष पर खींचा हुआ बाण छूटा नहीं। उसने पहले ही शिकार के दिन बाण उतार लिया। न फिर धनुष पर डोरी चढ़ी और न भालों पर सान।

माँस खाना सीख ही नहीं सका। बचपन में जब भी उसे माता ने बलात् माँस का ग्रास दिया, उसे वमन हो गया उसे तो रोटी-नमक प्रिय है। फल, कंद और पत्ते उसे रुचिकर हैं। खट्टे-मीठे, चरपरे के प्रति उसका कोई रुझान नहीं।

नाच-गाने में तो सम्मिलित होता ही नहीं, उसने कल पिता से स्पष्ट यह कहकर कि 'मैं शादी नहीं करूँगा !" भीलों को चकित कर दिया। उसने शादी की बात सुन ली थी और बिना संकोच के कह दिया। भीलों के लिए असह्य और नवीन बात थी। अपने इकलौते पुत्र के प्रति सरदार का बहुत स्नेह है। माता ने रो-रोकर आँखें लाल कर लीं, पर वह डिगा नहीं। अन्ततः हार माननी पड़ी सबको।

"आज बघोरे पर उत्सव है, चलोगे नहीं अल्हण !" एक मित्र ने उसकी तन्मयता को तोड़ते हुए पूछा।

"बाबू बीमार हैं, उनके पास रहना है। मैं नहीं जाऊँगा" सरदार को कल से ज्वर आ रहा था।

"हो आओ बेटा ! मैं अच्छा हूँ। मुझे कुछ चाहिए नहीं।" झोंपड़ी में से आवाज आई। लगता है वृद्ध ने बाहर की बात सुनली थी।

"मेरी इच्छा भी तो नहीं है बाबू !" अल्हण भीतर चला गया। पिता जानते थे कि वह जायेगा नहीं। गाँव में दूसरों की बीमारी में वह रात-रात भर जागकर सेवा करता है। आधी रात को भी जंगल में जड़ी लेने भाग जाता है, फिर अपने पिता को बीमार छोड़कर वह उत्सव देखने जा सकेगा ?

"तुम तनिक सो जाओ !" रात्रि भर जगने वाले पुत्र से पिता आग्रह कर रहे थे। "मुझे न नींद आती है और न आलस्य।" झूठ तो वह बोलता ही नहीं। बीमार को देखकर उसकी नींद और भूख दोनों भाग जाती हैं।

"कुछ खाया भी तो नहीं है ! रोटी खालो।" बीमार का आग्रह था। इच्छा न होने पर भी पिता की आज्ञा थी। आज तक उसने शादी, शिकार और लूट को छोड़कर पिता की कोई आज्ञा टाली नहीं। रोटी-नमक लेकर बैठ गया। पानी के सहारे कुछ ग्रास गले के नीचे ठेल लिए। पिता की चिन्ता में वह भोजन कर नहीं सकता था। बीमारी बढ़ती जा रही थी। जड़ी-बूटियाँ काम नहीं कर रही थीं।

"मेरा तो समय हो गया।" बूढ़े सरदार के समीप सभी भील एकत्र हो गये थे। गाँव के स्त्री-बच्चे भी साथ थे। झोंपड़ी भर गई थी। सभी की आँखें डबडबा आईं। स्त्रियाँ चीख रही थीं और देखा-देखी बच्चे भी। वृद्ध रुक-रुक कर बोल रहा था, "जो कुछ मुझसे कठोरता और भूल हुई हो उसे भूल जाना। यह अल्हण ....." वह आगे बोल नहीं सका।

कुहराम मच गया। अल्हण पिता के पैरों को अब भी हाथ में लिए मूक बैठा था। उसके नेत्र शून्य में कुछ ढूँढ़ रहे थे। वह न रोया, न चिल्लाया। चुपचाप ज्यों का त्यों बैठा रहा और जब भील पिता केशव को ले जाने लगे तो वह उनके साथ हो लिया।

सरदार पुत्र होने के कारण भील उसे ही सरदार बना रहे थे। यह बात कड़खू को सहन नही हुई। वह बलवान था, उसका हाथ शिकार में सधा हुआ था, निशाना पक्का था। उसके हृदय में स्वयं सरदार बनने की तीव्र इच्छा थी। इसी बलवती इच्छा के कारण वह अल्हण से द्वेष करता था। वही उसकी महत्त्वाकांक्षा में बाधक जो था।

कल बाघ ने दो बकरियाँ गाँव में मारी थीं। रात्रि में सोते समय वह घुस आया होगा। आज उसे जंगल में ढूँढ़ना है, नहीं तो वह बार-बार आता रहेगा और आदमियों को चोट करने लगेगा। कड़खू कल से ही सबको भड़का रहा था, पर कल तो दिवगंत सरदार के क्रियाकर्म में समय व्यतीत हो गया। आज वह अगुआ बनकर सरदार से साफ-साफ पूछने आया है। "इस तरह कैसे चलेगा ?"

आप ठीक कहते हैं। अल्हण ने उसकी महत्त्वाकांक्षा और द्वेष वृत्ति को समझते हुए प्रस्ताव रखा, "आप स्वयं इस जिम्मेदारी को सँभाल लें।" ऐसे विचित्र प्रस्ताव की किसी ने कल्पना तक नहीं की थी। सभी हतप्रभ थे कड़खू को तो जैसी मनमाँगी मुराद मिली।

सरदार का झोंपड़ा, उनके बाण, धनुष और बाघ चर्म क्या होंगे ? कड़खू ने पूछा। ये वस्तुएँ सरदार को उपहार मिलती थीं और दूसरों से श्रेष्ठ होती थीं। बीच का बड़ा झोंपड़ा सरदार का समझा जाता था। 'मुझे कुछ नहीं चाहिए। मैं तो पेड़ की छाल लपेटने जा रहा हूँ। सचमुच अल्हण ने जब बाघ चर्म हटाया तो लोगों ने देखा कि वह नीचे भोजपत्र पहने है। मेरे लिए वह गुफा काफी है। पहाड़ी में एक सूनी गुफा थी। उसी की ओर उसका संकेत था।

कोई कुछ कहे, इससे पहले ही अल्हण ने उनके बीच से निकलकर गुफा का रास्ता ले लिया। एक-दो जनों ने पुकारा पर उसने ध्यान दिया नहीं। कड़खू ने रोक दिया। "उसे जाने दो ! देर करने से काम नहीं होगा। आज बाघ को शाम से पहले ही मार डालना है।" वह ध्यान बँटाना चाहता था।

"वह कुछ भी नहीं ले जा रहा है।" एक भील ने कहा। "उसे चाहिए क्या ? फल, कंद जंगल से ले आएगा और शिकार करना नहीं, जो हथियार ले जावे। कुछ ले

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाना चाहेगा तो फिर आकर ले जाएगा।" कड़खू ने सबको जंगल में चलने को प्रस्तुत कर दिया।

इधर अल्हण सरदार पद छोड़कर अपने को बहुत सन्तुष्ट अनुभव कर रहा था। पर कर्तव्य और सेवाकर्म उसके अभिन्न अंग थे। रोगियों की सेवा, भूले-भटके यात्रियों को आश्रय और चुपचाप एकान्त में किसी का चिन्तन—किसी अज्ञात का जिसे वह भी नहीं जानता। यही उसकी दिनचर्या बन गई। जंगल से लाए कंदों से पेट भर जाता था।

ऐसे आदमी से कौन शत्रुता करेगा ? एक बाण अचानक से आया और कानों के पास से गुफा की दीवार में जाकर गड़ गया, लगा कि यह तो उसे मारने का प्रयास था। वह डरा या घबराया नहीं गुफा के बाहर देखने लगा। किसी शिकारी का भूल से हाथ चूक गया होगा। यह सोच ही रहा था कि सहसा एक चीख सुनाई पड़ी। दौड़ा वह गुफा के बाहर की ओर।

एक रीछ ने कड़खू को पकड़ लिया था। पास में बेर की झाड़ियाँ पड़ी थीं, उन्हीं में कटी कुछ टहनियाँ लिये अल्हड़ दौड़ा। रीछ के बालों में उसने जाकर उन्हें उलझा दिया और पीछे खड़े होकर रीछ के दोनों नेत्र-दोनों हाथों से बन्द कर लिए। घबड़ाकर उसने कड़खू को छोड़ दिया। वह भागा और अल्हण भी कूदकर अलग जा खड़ा हुआ। रीछ झपटा पर बड़े-बड़े बालों में जंगली बेर की टहनियाँ उलझी थी, वह उन्हें छुड़ाने में व्यस्त हो गया।

कड़खू दूर भाग नहीं सका था। रीछ के नखों ने बड़े घाव कर दिये थे। रक्त बह रहा था। अल्हण ने सहारा दिया। गुफा में लाकर लिटाया और घावों पर कुछ जड़ियाँ पीसकर लगा दीं। एक पखवाड़ा इसी प्रकार बीत गया।

"अल्हण उस दिन तुम्हारे हाथ में जो बाण लगा था मैंने मारा था।" ज्वर और पश्चाताप ने उसे व्याकुल कर दिया था।

"जानता हूँ।" अल्हण ने छोटा-सा उत्तर दिया। "कुछ भील मुझे अब भी सरदार बनाना चाहते हैं। वे बाबू के कृतज्ञ हैं और उनके लड़के को इस प्रकार गुफा में रहने देना नहीं चाहते। सरदार का झोंपड़ा और सामान तुम्हारे पास देखकर तुमसे वे द्वेष करते हैं।"

"इस झंझट को दूर करने और अपनी सरदारी को निर्विघ्न करने को रास्ता मैंने सोचा था, तुम्हें मार देना। उस दिन गुफा में आया बाण भी मेरा था। अब मुझे माफ कर दो।" वह रोने लगा। "रोओ मत। तुम्हें देखते ही मैं समझ गया था। चलो जो हुआ उसे भूल जाओ।" अल्हण में न रोष था और न क्रोध।

"तुमने सब जानकर मुझे बचाया क्यों ?" रोगी की हिचकी बँध गई। पश्चाताप ने उसे मूर्छित-सा कर दिया।

"वह मेरा कर्त्तव्य था। अब रो-रो कर अपनी तबियत बिगाड़ोगे, तो मैं नाराज हो जाऊँगा।" सगे भाई के समान स्निग्ध स्वर में उसने कहा। जड़ी-पिसी उसके हाथ में थी। रोगी ने उसके मुख की ओर भरे नेत्रों से देखा। दवा पीना अस्वीकार न कर सका। चुपचाप मुख खोल दिया।

उस दिन शाम को स्वस्थ प्रायः हो जाने पर कड़खू को उसके घर छोड़कर लौटा ही था तभी एक मधुर और चिरआत्मीय स्वर उसके कानों में पड़ा। "अल्हण हम आज तुम्हें गुफा में नहीं रहने देंगे। हमारे लिए इसे खाली कर दो।" भगवान राघवेन्द्र, जानकी और लक्ष्मण के साथ खड़े मुसकरा रहे थे। जो प्रार्थना करने पर भी महर्षियों के आश्रमों में कदाचित ही ठहरते हैं। बड़े-बड़े भील सरदारों के आग्रह पर जो पेड़ के नीच एक घड़ी भी नहीं ठहरे, वे अल्हण से स्वयं गुफा माँग रहे हैं। माँग कहाँ रहे हैं ? अपनी समझकर बिना माँगे ले लिया।

माता जानकी के साथ प्रभु उसी शय्या पर लेटे। वे पत्ते उन्होंने उठाने नहीं दिये। थोड़े किसलय उसने और बिछा दिये। लेटते हुए प्रभु भगवती सीता से कह रहे थे "देवि ! आज इस देश के परम सुसंस्कृत व्यक्ति के आवास में रहने का सौभाग्य मिल रहा है।" "सुसंस्कृत ?" जानकी के नेत्रों में आश्चर्य घना हो गया। उन्हें लगा अनेकानेक तपस्वी, ज्ञानी, ऋषियों, शक्तिशाली और वैभववान राजाओं के रहते एक भील..... । वह कुछ अधिक कह न सकीं।

मुसकराते हुए प्रभु का स्वर उभरा, "देवि ! संस्कृति की प्रतिष्ठा सदाचार में है और जिसमें सदाचार अपनी पूर्णता के साथ प्रतिष्ठित है, वही सुसंस्कृत है, संस्कृति पुरुष है और अल्हण से अधिक....." आगे के शब्द भाव में डूब गए। प्रभु की यह वाणी गुहाद्वार पर लक्ष्मण के साथ बैठे उसके कानों में भी पड़ी। लक्ष्मण की स्नेहिल आँखें उसकी ओर उठीं। प्रातः जब प्रस्थान करने लगे वह उनके श्रीचरणों में मस्तक रखने के लिए बढ़ा। पर पुरुषोत्तम ने इस संस्कृति पुरुष को उठाकर छाती से लगा लिया। यह लक्ष्य और मार्ग का मिलन था।

फौजी गोरे की अकड़ मिट्टी में मिला दी

बाबू बंकिम चन्द्र चटर्जी अपनी पालकी में बैठकर अदालत से घर जा रहे थे। सैनिक छावनी के समीप किसी ने पालकी ले जाने वाले कहारों को रोककर बन्द दरवाजे में एक धक्का मारा। बंकिम बाबू ने बाहर निकल कर देखा तो एक हट्टा-कट्टा अँग्रेज सामने खड़ा है। वे समझ गये कि धक्का मारने वाला यही है और क्रोधपूर्वक गरजकर कहा—"शैतान ! तू कौन है ?"

अँग्रेज ने बंकिम बाबू की बात का उत्तर मुँह से नहीं, हाथों से दिया। उसने उनका हाथ पकड़कर और मरोड़कर दूसरी तरफ धकेल दिया। उसका आशय था कि इस गोरों के मार्ग से दूर अन्य मार्ग से जाओ। इस अपमानजनक व्यवहार से उनकी आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। पर शारीरिक दृष्टि से वे उस लम्बे-चौड़े और ताकतवर फौजी का मुकाबला नहीं कर सकते थे। इसलिये उन्होंने उस पर मुकदमा चलाने का निश्चय किया और थोड़ी दूरी पर खेलने वाले अँग्रेजों के पास जाकर बहरामपुर के जिला जज मि. वेब्रिज से कहा—"महोदय ! क्या आपने अभी देखा है कि उस व्यक्ति ने मेरे साथ कैसा व्यवहार किया है ?"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जज साहब बुड्ढे आदमी थे। उन्होंने कहा—"महाशय ! मैं दूर की चीजों को नहीं देख सकता। मुझे कम दिखाई पड़ता है, इसलिये मैंने कुछ भी नहीं देखा।" इसके पश्चात् बंकिम बाबू ने वही बात अन्य अँग्रेजों से कही। वे भी यही कहने लगे—"हमने कुछ नहीं देखा।" वेब्रिज साहब तो वास्तव में कम देखते थे, पर और सब अँग्रेज तो ऐसा कम देखने वाले नहीं थे। पर अपने एक सजातीय के विरुद्ध कुछ कहने के बजाय उन्होंने झूठ बोलना ही ठीक समझा। इससे बंकिम बाबू का साहस कम नहीं हुआ। उन्होंने सब अँग्रेजों को चेतावनी देते हुये कहा—"अच्छा, आप अदालत में भी ऐसा ही कहियेगा।"

वह अँग्रेज भी साधारण नहीं था, वरन् उस सैनिक छावनी का प्रधान अफसर कर्नल डफिन था। बहरामपुर के सभी अँग्रजों से उसकी मित्रता थी और शहर में अच्छा दबदबा था। पर बंकिम बाबू ने उसे इस असभ्यता का प्रतिफल देने का निश्चय कर लिया और दूसरे ही दिन जिला जज मि. वेब्रिज की अदालत में दावा कर दिया। जब कर्नल साहब के पास अदालती सम्मन पहुँचा तो उसके सब अँग्रेज मित्रों में हलचल मच गई। कर्नल भी बहुत उछला-कूदा और कहने लगा—"काले आदमी का यह साहस कि मेरे विरुद्ध नालिश करे ! मैं उसे दिखा दूँगा कि गोरों पर नालिश करना और फिर उसमें सफलता प्राप्त करना सहज नहीं है।"

अधिकांश यूरोपियन भी एक गोरे की इज्जत बिगड़ती देखकर उसकी सहायतार्थ दौड़-धूप करने लगे। अन्त में कर्नल साहब को मुजरिम के कटघरे में आकर खड़ा होना पड़ा। इस नई बात को सुनकर नगर के सैकड़ों लोग तमाशा देखने अदालत में पहुँचे और जज साहब का कमरा ठसाठस भर गया। कोई कहता—"बंकिम बाबू कौन हैं ?" कोई पूछता—"जज साहब कहाँ है ?" कोई राय देता—"अँग्रेज-अँग्रेज आपस में मिल जायेंगे और अन्त में बंकिम बाबू को हारना ही पड़ेगा।" दूसरा कहता—"नहीं, वेब्रिज साहब बड़े ईमानदार हैं, वे सदा न्याय का पक्ष ही लेते हैं। जज साहब कोई साधारण आदमी नहीं, वे न्यायमूर्ति हैं।"

अब कर्नल साहब के सामने एक बड़ी कठिन समस्या यह उपस्थित हुई कि बहरामपुर का कोई भी वकील या मुख्तयार उनके मुकदमे की पैरवी करने को तैयार नहीं हुआ। वे जिसके पास गये उसी ने कहा ऐसे सज्जन और परोपकारी व्यक्ति के प्रति दुर्भाव की कल्पना भी नहीं कर सकते। कर्नल जज साहब के पास गये तो उन्होंने भी यही कहा—"मैं अन्याय नहीं कर सकता बेहतर है तुम बंकिम बाबू से क्षमा माँग लो।" कर्नल साहब हेकड़ी भूल गये, उन्हें क्षमा माँगनी ही पड़ी। बंकिम बाबू ने दिखा दिया सत्य और सदाचार में सत्ता से भी अधिक बल है।

जैसी नीयत वैसी बरक्कत

अब तो उनकी अच्छी-खासी बर्तनों की दुकान है और खाते-पीते आदमियों में गिने जाते हैं। लेकिन जब वह सिर पर बर्तनों का झाबा रखकर मोहल्ले की गलियों में टूटे-फूटे बर्तन बदलते या बेचते थे, तब भी कम खुश नहीं रहते थे। फीरोजपुर मोगा मण्डी के अधिकांश लोग उन्हें अच्छी तरह से जानते-पहचानते थे। इस पहचान का एक कारण यह था कि वे सिख थे और सरदार जी के नाम से पुकारे जाते थे। एक विचित्र बात यह थी कि जहाँ वे जाति से सरदार (सिख) थे, वहाँ उनका नाम भी सरदारसिंह था।

उनकी पहचान का दूसरा और मुख्य कारण उनकी एक सनक थी। वह खरीद अथवा बिक्री का कोई भी माल तौलते समय वह ग्राहक को अपनी तराजू व बाँट जरूर दिखा देते थे और कहते थे कि देख लो भाई मेरी तराजू में पासंग नहीं है और मेरे बाँट भी सरकारी मोहर लगे सच्चे और पूरे हैं। कितना भी परिचित और विश्वासी आदमी क्यों न हो ? वह मना करने पर भी तराजू और बाँट जरूर दिखा देते थे। लोग जब इसका कारण पूछते, तो वे कहते दुनिया में घट तौलों ने लोगों का यकीन उठा दिया है। मैं नहीं चाहता कि कोई मुझ पर बेईमान होने का शक तक करे या वह इस पशोपेश में रहे कि हो सकता है सरदार के तराजू बाँट सही न हों। इसलिए मैं पहिले से ही अपनी सफाई दे देता हूँ। गुरु महाराज ने बेईमानी और धोखाधड़ी को सबसे बड़ा पाप बताया है। हराम का पैसा हराम में तो जाता है साथ में हैरान ही नहीं करता बर्बाद तक कर देता है। बेईमान की कमाई से पानी के बुलबुले की तरह उठकर मिट जाने से कहीं अच्छा है कि एक बूँद की तरह छोटा और साफ बना रहे।

लोग सरदारजी की इन सब बातों को सनक ही समझते थे और कोई खास ध्यान नहीं देते थे। कभी-कभी बच्चे उन्हें सरदार तराजू-बाँट दिखाओ—कहकर चिढ़ाने की भी कोशिश करते थे और सरदार जी एक ही थे अपनी सनक के। वास्तव में यदि कोई बच्चा उनसे कोई चीज लेने या देने आ जाता था, तो वे तराजू-बाँट उन्हें भी दिखा देते थे।

लोग उनकी इस सफाई और ईमानदारी की सनक को तब तक सनक ही समझते रहे, जब तक बरतनों की एक बड़ी दुकान नहीं खुल गई और उस पर मोटे-मोटे अक्षरों में लिखे यह दो सिद्धान्त वाक्य नहीं लग गये। "ईमानदारी सर्वोत्तम नीति है और ईश्वर सबको देखता है।" सरदारजी की समृद्धि के बाद लोगों की समझ में आया कि वह सरदारजी की ईमानदार आत्मा की अतिरेकता पूर्ण अभिव्यक्ति थी जिसे सनक समझा जाता था।

सरदारजी की उन्नति में एक साधारण घटना की महानता रही है। जैसा कि सरदारजी का काम ही था कि वे पुराने बर्तन खरीदते थे और नये बेचते या बदलते थे। एक दिन उन्होंने एक मुसलमान परिवार से एक पुराना पानदान खरीदा। वह मुसलमान परिवार काफी सम्पन्न था। इसलिये उसका पानदान था तो पुराना, लेकिन बड़ा खूबसूरत और नक्काशीदार था।

दूसरे मुहल्ले में जब सरदारजी गये तो एक औरत ने वह पानदान खरीद लिया। लेकिन अगले दिन ही उसने वापस करते हुए कहा कैसा पानदान दे दिया ? इसका ढक्कन तो खुलता ही नहीं। सरदारजी ने बिना किसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हुज्जत के पानदान अपने झावे में रख लिया और पूरे पैसे वापस कर दिये। दूसरी बार फिर एक औरत ने पानदान वापस करते हुए वही शिकायत की।

किन्तु तीसरी बार जब पानदान वापस आया, तो सरदार जी झुँझला उठे। ग्राहक से पानदान वापस लेकर पैसे दे दिये और पानदान यह बड़बड़ाते हुए वहीं जमीन पर दे मारा कि कैसा पानदान है, जो खुलता ही नहीं ? चोट पाकर पानदान खट से खुल गया और साथ ही सरदारजी के भाग्य कपाट भी। लोगों ने बड़े आश्चर्य से देखा कि लगभग सात-आठ सौ रुपये के नोट भरे थे जो वहाँ जमीन पर छिटक गये थे।

इधर लोग सरदारजी के भाग्य की सराहना करने लगे, उधर सरदारजी पानदान के साथ सब नोट लेकर यह कहकर एक तरफ भाग चले 'मैं अभी आता हूँ मेरा झावा यहीं है।' लोगों को कुछ भी समझ में नहीं आया कि आखिर सरदार को यह क्या सनक सूझी ?

सरदारजी सीधे उस परिवार में पहुँचे जहाँ से पानदान खरीदा था। मालिक को रुपये सौंपते हुये बोले—"आपके पानदान से निकले हैं। वापस करने आया हूँ। मालिक ने रुपये लेने से इनकार करते हुये कहा कि मैं तो पानदान उसी दशा में बेच चुका हूँ। रुपये तुम्हारे हो गये, मैं वापस न लूँगा। सरदारजी रुपये लेने को तैयार नहीं और वह मुसलमान रईस वापस लेने को तैयार नहीं, आखिर बड़ी देर झंझट के बाद यह तय हुआ कि सरदारजी मालिक के हाथ आठ सौ रुपये के बरतन बेच दें। सरदार जी ने यह बात मान ली और बाजिव मुनाफे पर आठ सौ के बरतन लाकर मालिक के हाथ बेच दिया।

इस घटना से सरदार जी की ईमानदारी की डुग्गी पिट गई और बाजार में काफी माल एक साथ खरीदने से साख जम गई। बस फिर क्या था, धीरे-धीरे उन्होंने एक दुकान खोल ली और अपनी नेक-नीयत के बल पर दो साल में ही एक बड़े बर्तन विक्रेता बन गये। अब उनकी तराजू-बाँट दिखलाने की सनक तो कम हो गई लेकिन एक सनक और पैदा हो गई है—जब तब बैठे-बैठे कह उठते हैं कि "जैसी नीयत वैसी बरक्कत।" भले ही नासमझ लोग उनके इस महावाक्य को सनक समझें लेकिन यह वास्तव में समृद्धि सिद्धि का महामन्त्र है। जो इसके रहस्य को समझ लेते हैं उनकी उन्नति अवश्य होती है।

नीच और ऊँच की पहचान

रूस के राजा एलेग्जेण्डर अक्सर अपने देश की आन्तरिक दशा जानने के लिए वेश बदलकर पैदल घूमने जाया करते थे। एक दिन घूमते-घूमते एक नगर में पहुँचे, वहाँ का रास्ता उन्हें मालूम न था। राजा रास्ता पूछने के लिए किसी व्यक्ति की तलाश में आगे बढ़े।

आगे उन्हें एक हवलदार सरकारी वर्दी पहने हुए देखा। राजा ने उसके पास जाकर पूछा—"महाशय, अमुक स्थान पर जाने का रास्ता बता दीजिए।" हवलदार ने अकड़कर कहा—"मूर्ख, तू देखता नहीं मैं सरकारी हाकिम हूँ मेरा काम रास्ता बताना नहीं है। चल हट, किसी दूसरे से पूछ। राजा ने नम्रता से पूछा—"महोदय, यदि सरकारी आदमी भी किसी यात्री को रास्ता बता दें तो कुछ हर्ज थोड़ा ही है। खैर, मैं किसी दूसरे से पूछ लूँगा। पर इतना तो बता दीजिये कि आप किस पद पर काम करते हैं ?"

हवलदार ने और भौंऐं ऐंठते हुए कहा—"अन्धा है क्या, मेरी वर्दी को देखकर पहचानता नहीं कि मैं कौन हूँ ?' एलेग्जेण्डर ने कहा—"शायद आप पुलिस के सिपाही हैं।" उसने कहा "नहीं उससे ऊँचा।"

राजा—"तब क्या नायक हैं ?"

हवलदार—"उससे भी ऊँचा"

राजा—"हवलदार हैं ?"

हवलदार—"हाँ, अब तू जान गया कि मैं कौन हूँ, पर यह तो बता कि इतनी पूछताछ करने का तेरा क्या मतलब ? और तू कौन है ?

राजा ने कहा मैं भी सरकारी आदमी हूँ। सिपाही की ऐंठ कुछ कम हुई, उसने पूछा 'क्या तुम नायक हो ? राजा ने कहा—'नहीं उससे ऊँचा।'

हवलदार—"तब क्या आप हवलदार हैं ?"

राजा—"उससे भी ऊँचा।"

हवलदार—'दरोगा ?'

राजा—"उससे भी ऊँचा।"

हवलदार—"कप्तान ?"

राजा—"उससे भी ऊँचा।"

हवलदार—"सूबेदार ?"

राजा—"उससे भी ऊँचा"

अब तो हवलदार घबराने लगा, उसने पूछा—"तब आप मन्त्री जी हैं ?" राजा ने कहा, "भाई बस एक सीढ़ी और बाकी रह गई है।" सिपाही ने गौर से देखा तो सादा पोशाक में बादशाह एलेग्जेण्डर सामने खड़े हैं। हवलदार के होश उड़ गये, वह गिड़गिड़ाता हुआ बादशाह के पाँवों पर गिर पड़ा और बड़ी दीनता से अपने अपराध की माफी माँगने लगा।

राजा ने कहा—"माफी माँगने की कोई बात नहीं है। मैं जानता हूँ कि जो जितने नीचे हैं, वह उतने ही अकड़ते हैं। जब तुम बड़े बनोगे तो मेरी तरह तुम भी नम्रता का वर्ताव सीखोगे। जो जितना ही ऊँचा है वह उतना ही सहनशील एवं नम्र होता है और जो जितना नीच एवं ओछा होता है, वह उतना ही ऐंठा रहता है।"

चरित्र, सौन्दर्य से भी श्रेष्ठ

भगवान भास्कर शीर्ष दक्षिणावर्त हो चुके हैं, तथापि उनकी प्रखरता अभी कम नहीं हुई। यही कारण है कि मगध-निवासी अभी तक मध्याह्न विश्राम कर रहे हैं। पक्षी कोटरों से बाहर नहीं आ रहे। राजहंस अवश्य ही अपनी हंसिनी प्रेयसी के साथ जल-क्रीड़ा में निमग्न है। उसकी क्रीड़ा से स्पन्दित तरंगें राज-सरोवर के किनारे थपके लगा जाती हैं और उसके साथ ही कमलिनी नाच उठती है। लगता है ग्रीष्म की प्रखरता का राजोद्यान पर कोई प्रभाव नहीं है। न तो उसकी सुषमा यत्किंचित म्लीन हुई और न सौरभ मुरझाया। उपवन में प्रातःकाल जैसा मादक सौन्दर्य अब भी बिखरा पड़ रहा है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आम्र-निकुंज के सघन एकान्त में राजकुमार कुणाल बैठे हैं। उनकी मुद्रा बताती है कि वे किसी विचार में खोये हैं। यह समाधि न जाने कब तक चलती कि सहसा लौध्र पुष्पों की सुन्दर सुवास नासा-रन्ध्रों को पार कर उनके मर्मस्थल को आलोड़ित करने लगी। नूपुर और पायलों की मन्द मोह ध्वनि इस तरह सुनाई दी मानो स्वर्ग से कला-साम्राज्ञी उर्वशी का पदार्पण हो रहा हो ? कुणाल चौंके—कौन आ रहा है यह देखने के लिये जब तक नयन उठे, तब तक सौन्दर्य की प्रतिकृति साम्राज्ञी तिष्यरक्षिता सम्मुख आ उपस्थित हुईं। उनका केश विन्यास, नेत्रों की चपलता और मुखड़े की मादकता देखकर रति निष्प्रभ पड़ जातीं। तिष्यरक्षिता का सौन्दर्य देखकर लताओं में भी काम भाव छा गया। मनुष्य विछल जाता तो यह कोई बड़ी बात न होती।

"जननी ! आप ? कुणाल अब खड़े हो चुके थे और सस्मित पूछ रहे थे—आप स्वस्थ तो हैं न ? आर्य श्रेष्ठ विश्राम कर रहे होंगे। आज्ञा करती वहीं आ जाता, यहाँ तक आने का कष्ट आप ने क्यों किया ?"

"दीप-शिखा का रूप देखकर पतंग नर्तन क्यों करता है राजकुमार ?" तिष्यरक्षिता बोलीं—"कलिका का केसर चूमने के लिये भौंरा क्यों उड़कर आता है ? कुणाल ! पावस ऋतु आने पर पथिकगण सहसा अपने घरों की ओर क्यों मुड़ पड़ते हैं ? यह भी कुछ बताने की बात है राजकुमार कि लतिका तरु का सघन सान्निध्य प्राप्त करने के लिये क्यों आतुर हो उठती हैं ?"

कुणाल मर्माहत हो उठे ? "आप मेरी माँ के समान हैं भद्रे ! आर्य श्रेष्ठ के लिये आप तीसरी धर्म-पत्नी होंगी। मैंने तो तुम्हें सदैव अपनी माँ के रूप में ही देखा है। फिर मेरे साथ यह प्रवचंना कैसी ? नारी धर्म से विचलित न होइये माँ ?" कहते-कहते कुणाल के स्वर में कुछ तीक्ष्णता आ गई।

"कुणाल ! सम्बन्ध बनाना-बिगाड़ना मनुष्य के हाथ की बात है। महाराज अशोक से विवाह मेरे शरीर ने किया, मन ने नहीं। मन से तो तुम्हें ही अपना देवता माना है।"

"यह प्रतारणा है देवि ! आर्य सन्तानें एक पत्नीव्रत पालन करती हैं। मेरी सहचर कांचना ही हो सकती है आप तो मेरी पूज्या हैं, माँ हैं आपकी मनोकामना पूर्ण करना मेरे लिये असंभव है।"

यह कहकर कुणाल एक ओर चल दिये। तिष्यरक्षिता ने इसे सौन्दर्य का अपमान समझा और कहा—"कुणाल तुम्हारी जिन आँखों पर मैं मुग्ध हुई उन्हें ही निकलवा न लूँ तो मैं भी मगध साम्राज्ञी नहीं—मेरे अपमान के लिए तुम्हें एक दिन पछताना ही पड़ेगा।"

कुणाल एक क्षण रुके, पीठ फेर कर बोले—"माँ का हर प्रसाद स्वीकार है बेटे को।" और चरित्र के धनी कुणाल वहाँ से क्षिप्रगति से दूर—बहुत दूर चले गये, रुके नहीं। उनकी आँखें निकलवा ली गईं, पर वे अपने पथ से विचलित न हुये। उन्होंने यह दिखा दिया कि चरित्र, सौन्दर्य से भी श्रेष्ठ है।

चरित्र-साधना से भी अधिक पवित्र

जम्बूद्वीप का नृत्य-संगीत विश्वविद्यालय और आचार्य कुमारदेव को उन दिनों आर्यावर्त ही क्यों, सारा विश्व जानता था। वे संगीत-सिद्ध थे। संगीत की ऐसी कोई विद्या शेष न थी, जिसका मर्म कुमारदेव न जानते हों।

मगध, कौशल, कौशाम्बी, सिन्धु, पांचाल, उरु, कुरु, मिश्र, ईरान आदि अनेक राज्यों की राजकुमारियाँ और श्रीसामन्तों की पुत्रियाँ उनके गुरुकुल में नृत्य-संगीत सीखती थीं पर आचार्य देव को आज तक कोई ऐसा योग्य शिष्य नहीं मिल सका था, जिससे वह आशा करते कि वह नादयोग संगीत की परम्परा को उन्हीं के समान जीवित रख सकेगा।

उस दिन पहली बार आशा की पहली किरण आचार्य देव के हृदय में उतरी जिस दिन मगध की राजनर्तकी सुनन्दा की ज्येष्ठा कन्या कोसा ने आश्रम में प्रवेश लिया। आचार्य देव जानते थे—संगीत और नृत्य कलायें योग साधनायें हैं। उन्हें वही प्राप्त कर सकता है, जिसमें असीम श्रद्धा, निष्ठा और चारित्रिक पवित्रता भी हो। यह संस्कार आत्मा से सम्बन्ध रखते हैं—समृद्धि, सवर्णता और कुलश्रेष्ठता से नहीं। सो जब उन्होंने कोसा को उस रूप में पाया, तो उनकी वर्षों की निराशा दूर हो गई। कोसा को पाकर उनका आचार्यत्व और वात्सल्य दोनों एक साथ उमड़ पड़े। उन्होंने जितने परिश्रम से कोसा को आरती, अभिसारिका, परकीय, प्रमोद, मधुमिलन, संगोपन, सचिका, तांडव आदि गूढ़ और सूक्ष्म भावनाओं से ओत-प्रोत नृत्य सिखाये, कोसा ने उन्हें सीखा, कला पारगंत हुई और एक दिन मगध की राजनर्तकी का यशःशील पद भी प्राप्त कर लिया।

योग साधनायें कठिन बताई जाती हैं, पर सिद्धि संवरण उससे भी कठिन बात है। कोसा जिस दिन मगध राजनर्तकी घोषित हुई, उस दिन उसे प्राप्त करने के लिये श्रीसामन्तों, राजकुमारों तक में होड़ लग गई। स्वयं मगध नरेश की दृष्टि भी निष्कलुष न रह सकी, पर कोसा के मस्तिष्क में आचार्य देव के वह शब्द अभी भी सुप्त नहीं पड़े थे—"भद्रे ! राजनर्तकी का गौरव प्राप्त हुआ तो क्या तुम भारतीय नारी हो, भारतीय नारी सदैव एक पुरुष का वरण करती है और उसके आदर्शों के लिये अपने को न्योछावर करती रही है, उस परम्परा को भूलना मत।"

दीपक की लौ में जल जाने वाले पतंगों की तरह अनेकों कामुक व्यक्तियों की लालसायें बढ़ीं और कोसा की दृढ़ता की अग्नि में भस्मसात होती गईं। कोसा महामन्त्री शकटार के पुत्र स्थूलिभद्र को प्रेम करती थी। उनके अतिरिक्त उसने स्वप्न में भी किसी पुरुष का स्मरण नहीं किया।

कोसा जितनी पवित्रता से स्थूलिभद्र के प्रति प्रेम रखती थी, उतना ही रथाध्यक्ष राजकुमार सुकेतु उस पर आसक्त था। जिस दिन उसे पता चला कि कोसा स्थूलिभद्र को वरण कर चुकी है, उसका प्रतिशोध उमड़ उठा, उसने शकटार की हत्या करा दी, ताकि स्थूलिभद्र का कोई प्रभाव शेष न रहे। इस घटना से स्थूलिभद्र इतना दुःखी हुए कि उन्होंने वैराग्य धारण कर लिया और वन में जाकर तप करने लगे। यह कोसा के जीवन में वज्राघात की तरह था, किन्तु उसकी चारित्रिक दृढ़ता में रत्ती भर भी प्रभाव नहीं पड़ा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तपस्वी स्थूलिभद्र चातुर्मास के लिये मगध आने वाले हैं, यही नहीं वे कोसा के ही अतिथि होंगे। एक क्षीण आशा अब भी बनी हुई थी, पर जब वह आये और चतुर्मास साधना पास रहकर कर चुके, किन्तु उनके मन में एक क्षण के लिये भी काम-विकार और सांसारिक आकर्षण जाग्रत न हुआ तो कोसा की रही-सही आशायें भी टूट गईं।

स्थूलिभद्र चतुर्मास समाप्त कर निर्विकार लौट गये। वह रात कोसा के जीवन की सबसे निराशा और भयंकर रात थी। आशा जीवन को बाँध रखने वाली एक प्रबल आकर्षण शक्ति है, वह टूट जाये और फिर जीवन में प्रसन्नता दिखाई न दे तो विरक्ति स्वाभाविक ही है। रात का एक-एक पल कोसा के लिये भारी पड़ रहा था, एक परमात्मा के अतिरिक्त दूसरा कोई आश्रय समझ में नहीं आ रहा था, पर उस दिव्य सत्ता को समझ पाना एकाएक सबके बस की बात कहाँ ? वह तो योगियों को ही कठोर तपश्चरण से मिलता है।

रात्रि का समय, कोसा उठी और द्वार से बाहर की ओर चल पड़ी। वह घर से एक ही क्षण में निकलकर कहीं प्राणान्त कर लेना चाहती थी पर वह जैसे ही द्वार पर आई, सम्मुख खड़े आचार्य कुमारदेव को देखते ही अवाक् रह गई। आगे बढ़कर उसने सजल नेत्र गुरु को प्रणिपात किया—"यह जीवन बड़ा कठिन है गुरुदेव !" बस वह इतना ही कह सकी। आँखों से आँसुओं की अविरल धारा फूट पड़ी।

आचार्य देव ने उसे उठाकर हृदय से लगाते हुए कहा, 'पुत्री ! उठो तुम्हारा चरित्र स्थूलिभद्र की साधना से भी अधिक पवित्र है। अब तुम आश्रम में रहकर शिक्षण कार्य करो, तुम्हारी गाथा चिरकाल तक भारतीय नारी को चरित्र का उपदेश करती रहेगी।"

चरित्र-रक्षा के लिये बलिदान

राजनर्तकी मृदाल के सौन्दर्य की ख्याति पूर्णमासी के चन्द्रमा की तरह सारे उरु प्रदेश में फैली हुई थी। उसे पाने के लिये राजधानी के बड़े-बड़े सामन्तों, विद्वानों, प्रचारकों तथा राजघराने तक के लोगों में कुचक्र चल रहा था। ठीक उसी समय मृदाल अपने बिस्तर पर लेटी अपने और राष्ट्र के भविष्य पर विचार कर रही थी।

देश के कर्णधार, मार्ग-दर्शक और प्रभावशाली लोग ही चरित्र भ्रष्ट ही हो गये तो फिर सामान्य प्रजा का क्या होगा ? अभी वह इसी चिन्ता में डूबी थी कि किसी ने द्वार पर दस्तक दी—मृदाल ने दरवाजा खोला तो सामने खड़े महाराज करुष को देखते ही स्तम्भित रह गई।

"इस असमय आने का कारण महाराज !" न चाहते हुये भी मृदाल को प्रश्न करना पड़ा।

बड़ा विद्रूप उत्तर मिला—"मृदाल ! तुम्हारे रूप और सौन्दर्य पर सारा उरु प्रदेश मुग्ध है। त्यागी, तपस्वी तुम्हारे लिये सर्वस्व न्योछावर कर सकते हैं, फिर मेरे ही यहाँ आने का कारण क्यों पूछती हो भद्रे !"

"महाराज ! सामान्य प्रजा की बात आप छोड़िये। आप इस देश के कर्णधार हैं, प्रजा मार्ग-भ्रष्ट हो जाये तो उसे सुधारा भी जा सकता है, पर यदि समाज के शीर्षस्थ लोग ही चरित्र-भ्रष्ट हो जायें तो वह देश खोखला हो जाता है, ऐसे देश, ऐसी जातियाँ अपने अस्तित्व की रक्षा भी नहीं कर पातीं महाराज ! इसलिये आपका इस समय यहाँ आना अशोभनीय ही नहीं, सामाजिक अपराध भी है।"

किसी ने सच कहा है कि अधिकार और अहंकार मनुष्य के दो प्रबल शत्रु हैं। वह जिस अन्तःकरण में प्रवेश कर जाते हैं, उसमें उचित और अनुचित के विचार की शक्ति भी नहीं रह जाती। मृदाल के यह सीधे-सादे शब्द करुष को बाण की तरह चुभे। वे तड़पकर बोले—"मृदाल हम तुम्हारा उपदेश सुनने नहीं आये, तुम एक नर्तकी हो और शरीर का सौदा तुम्हारा धर्म है। कीमत माँग सकती हो, धर्म क्या है, अधर्म क्या है ? यह सोचना तुम्हारा काम नहीं है।"

"नर्तकी भर होते तब तो आपका कथन सत्य था महाराज !" मृदाल की गम्भीरता अब दृढ़ता और वीरोचित स्वाभिमान में बदल रही थी—"किन्तु हम मनुष्य भी हैं और मनुष्य होने के नाते समाज के हित, अहित की बात सोचना भी हमारा धर्म है। हम सत्ता को दलित करके अपने देशवासियों को मार्ग-भ्रष्ट करने का पाप अपने सिर कदापि नहीं ले सकते।"

स्थिति बिगड़ते देख महाराज करुष ने बात का रुख बदल दिया। पर वे अब भी इस बात को तैयार नहीं थे कि एक साधारण नर्तकी उनकी वासना का दमन कर जाये और मृदाल का कहना था कि विचारशील और सत्तारूढ़ का पाप सारे समाज को पापी बना देता है। इसलिये चरित्र को वैभव के सामने झुकाया नहीं जा सकता। मृदाल ने बहुत समझाया पर महाराज का रौद्र कम न हुआ। स्थिति अनियन्त्रित होते देखकर मृदाल ने कहा—"महाराज यदि आप साधिकार चेष्टा करना ही चाहते हैं, तो तीन दिन और रुकें, मैं रजोदर्शन की स्थिति में हूँ। आज से चौथे दिन आप मुझे 'चैत्य सरोवर' के समीप मिलें, आपको यह शरीर वहीं समर्पित होगा।"

तीन दिन करुष ने किस तरह बिताये यह वही जानते होंगे। चौथे दिन चन्द्रमा के शीतल प्रकाश में, अगणित उपहारों के साथ महाराज करुष जब चैत्य-विहार पहुँचे, तो वहाँ जाकर उन्होंने जो कुछ देखा उससे उनकी तृष्णा और उनकी कामुकता स्तब्ध रह गई। मृदाल का शरीर तो वहाँ उपस्थित था पर उसमें जीवन नहीं था। एक पत्र पास ही पड़ा हुआ था जिसमें लिखा था—सौन्दर्य राष्ट्र के चरित्र से बढ़कर नहीं, चरित्र की रक्षा के लिये सौन्दर्य का बलिदान किया जा सकता है तो उसके लिये मैं सहर्ष प्रस्तुत हूँ। शव देखने से लगता था मृदाल ने विषपान कर लिया है।

मृदाल के बलिदान ने करुष की आँखें खोल दीं। उस दिन से वे आत्म-सौन्दर्य की साधना में लग गये।

पाण्डित्य से बड़ा चरित्र

राजगृह का बौद्ध-विहार इन दिनों परिव्राजिका कुंडलकेशा के पाण्डित्य और सारिपुत्र की उत्कृष्ट योग साधना की चर्चा का केन्द्र बना हुआ है। बौद्ध-स्तूप ही क्यों राज्य के कोने-कोने तक कुण्डलकेशा के पाण्डित्य और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सारिपुत्र की साधना की ख्याति फैल रही है। प्रतिदिन हजारों जिज्ञासु कुण्डलकेशा के पास आते और धार्मिक समाधान प्राप्त करते, जबकि सारिपुत्र आत्मशोध के लिए नितान्त एकाकी जीवनयापन को ही महत्त्व दे रहे थे।

उनका एकाकीपन भंग किया धीरे-धीरे कुण्डलकेशा ने। "कुछ सीखने की आकांक्षा" तो एकमात्र बहाना थी जिसके माध्यम से कुण्डलकेशा प्रतिदिन सारिपुत्र के समीप जाने लगी। एक ओर पाण्डित्य का अहंकार, दूसरी ओर नारी सुलभ सौन्दर्य का दर्प। कुण्डलकेशा का अनुमान था एकदिन सारिपुत्र दीप-शिखा के प्रति शलभ की भाँति उसके प्रणय-पाश में बँध जायेंगे पर सारिपुत्र का वैराग्य कागज की नाव नहीं थी, जो जलावतरण होते ही गलकर नष्ट हो जाती। कुण्डलकेशा ने यों आत्मकल्याण के लिये संघ में प्रवेश किया था पर अपनी दुर्बलता उसने स्वयं ही जान ली थी—प्रेम और सांसारिक सुख का आकर्षण अभी तक नष्ट नहीं हुआ था। वह प्रतिदिन सारिपुत्र के पास धार्मिक चर्चा की बात लेकर जाती, पर उसका प्रत्येक हाव-भाव इस बात का स्वतः संकेत कर देता था कि कुण्डलकेशा उद्दाम काम-पिपासा से पीड़ित नारी है। यह बात धीरे-धीरे सारिपुत्र भी समझने लगे पर उन्होंने अपना मनोबल टूटने नहीं दिया।

सौन्दर्य-जाल सारिपुत्र को बाँध नहीं पाया तब कुण्डलकेशा का अहंकार जाग उठा। वह सारिपुत्र को अपने पाण्डित्य से पराजित करने की बात सोचने लगी। धर्मसम्मेलन होता या कोई विचारगोष्ठी कुण्डलकेशा सभासदों के सम्मुख ही ऐसे तार्किक प्रश्न पूछ बैठती। सामान्य बुद्धि के व्यक्ति को जिनका उत्तर देना कठिन हो जाता था। सारिपुत्र योगी थे। योग-उपार्जित तत्वज्ञान वाचिक ज्ञान की अपेक्षा कहीं अधिक सारभूत होता है तो अल्पशिक्षित होते हुए भी और यह जानते हुये भी कि कुण्डलकेशा का मंतव्य प्रश्नों का समाधान नहीं किसी तरह पराजित करना भर है, वे प्रश्नो के यथोचित उत्तर दे दिया करते थे।

सारिपुत्र को लगा जैसे कहीं इस तरह उनका भी अभिमान तो नहीं जग रहा है क्योंकि वे वज्रदेह हनुमान के समान कुण्डलकेशा के हर तर्क-तीर को निरस्त बनाते जा रहे थे। साधना की रक्षा के लिये उन्होंने अहंकार को मारने का ही निश्चय किया और उस दिन से उन्होंने कुण्डलकेशा के द्वारा पूछे गये हर प्रश्न का उत्तर मौन में देना प्रारम्भ कर दिया।

कालगति बड़ी निर्मम होती है। कुण्डलकेशा संग्रहणी ग्रस्त हो गई। उनका सारा शरीर सूखकर काँटा हो गया। सौन्दर्य का स्थान बीमारी की थकावट और वमनविरेचन की अपवित्रता ने ले लिया था। तथागत भगवान बुद्ध देशाटन पर थे। आज वह देशाटन से लौटे थे। कण्डलकेशा के समाचार भी सुने थे। उन्होंने न तो उसे देखा ही था न दीक्षा ही दी थी। उन्होंने कुण्डलकेशा को देखने की इच्छा प्रकट की, किन्तु कौन जाता उसके पास सभी मुँह फेरकर खड़े हो गये। केवल सारिपुत्र ऐसे थे जिनके मुख पर घृणा का कोई भाव नहीं था। वे चुपचाप उठे और संघ शिविर के एक ओर चले गये।

तथागत आये हैं, तुम्हारी याद कर रहे हैं कुण्डलकेशा ! एक मुधुर कण्ठ-स्वर सुनाई पड़ा कुण्डलकेशा को। साश्चर्य उसने देखा सारिपुत्र स्वयं ही उसे लेने उपस्थित हुये हैं। कुण्डलकेशा का अहंकार चूर-चूर हो उठा। करुणा आँसुओं के रूप में फूट पड़ी और वह सारिपुत्र के चरणों में गिर पड़ी।

"उठो भद्रे ! तथागत की शरण में किसी का अकल्याण नहीं होता।" कहकर उन्होंने कुण्डलकेशा को हाथ का सहारा देकर इस प्रकार उठाया मानो वह उनकी सगी बहिन हो और उसे लेकर भगवान बुद्ध के पास चले पड़े।

धर्म मर्यादा का ज्ञान

बोधिसत्व एक दिन सुन्दर कमल के तालाब के पास बैठे वायु सेवन कर रहे थे। कमल की मनोहारी छटा ने उन्हें अत्यधिक आकर्षित किया तो वे चुप बैठे न रह सके उठे और सरोवर में उतरकर निकट से जल-जगंध का पान कर तृप्ति लाभ करने लगे।

तभी किसी देव कन्या का स्वर सुनाई पड़ा—"तुम बिना कुछ दिए ही इन पुष्पों की सुरभि का सेवन कर रहे हो। यह चौर कर्म है। तुम गन्ध चोर हो।"

तथागत उसकी बात सुनकर स्तम्भित रह गये। तभी एक व्यक्ति आया और सरोवर में घुसकर निर्दयतापूर्वक कमल-पुष्प तोड़ने लगा। बड़ी देर तक उस व्यक्ति ने पुष्पों को तोड़ा-मरोड़ा पर रोकना तो दूर किसी ने उसे मना तक भी न किया।

तब बुद्धदेव ने उस कन्या से कहा—"देवि ! मैंने तो केवल गन्धपान ही किया था। पुष्पों का अपहरण तो नहीं किया था, तोड़े भी नहीं फिर भी तुमने मुझे चोर कहा और यह मनुष्य कितनी निर्दयता के साथ फूलों को तोड़कर तालाब को अस्वच्छ तथा असुन्दर बना रहा है, तुम इससे कुछ नहीं कहतीं ?"

तब वह देव कन्या गम्भीर होकर कहने लगी—"तपस्वी ! लोभ तथा तृष्णाओं में डूबे संसारी मानव धर्म तथा अधर्म में भेद नहीं कर पाते, अतः उन पर धर्म रक्षा का भार नहीं है। किन्तु जो धर्मरत है, सदअसद् का ज्ञाता है, नित्य अधिक से अधिक पवित्रता तथा महानता के लिए सतत् प्रयत्नशील है, उसका तनिक-सा पथ-भ्रष्ट होना एक बड़ा पातक बन जाता है।"

(१) ज्ञानी के उत्तरदायित्वों की तुलना अज्ञानी के उत्तरदायित्वों से नहीं की जा सकती।

(२) जिनके ऊपर समाज को दिशा और प्रेरणा देने का उत्तरदायित्व है, उनके छोटे-से-छोटे आचरण भी शुद्धतम होने चाहिये।

समाधिस्थ

एक बार भगवान बुद्ध के दर्शन के लिये अनेक भिक्षु अपने गुरु के साथ आये। वे आते ही बड़ा शोरगुल कर रहे थे। भगवान बुद्ध ने उनके गुरु को खबर भेजी कि उन्हें शील का अभ्यास ठीक से करायें, फिर उन्हें लायें। इनके गुरु ने वर्ष भर इनके शील का अभ्यास

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org

www.vicharkrantibooks.org

कराया। जब ये भिक्षु भगवान बुद्ध के पास आये, तब भगवान चुपचाप शान्त भाव से बैठ गये। वे रात्रि भर बैठे। आनन्द, बुद्ध को बार-बार उन भिक्षुओं के बैठे रहने की खबर देता परन्तु भगवान कुछ न बोलते। सबेरा होने पर देखा गया कि सभी भिक्षु भगवान बुद्ध की तरह ही समाधिस्थ हैं।

(१) अन्तःकरण की वृत्तियाँ अनुशासित हो जाने पर थोड़े प्रयास से ही सद्गति मिल जाती है (साथ बैठने से ही समाधि लग गयी)।

(२) अपना पूर्वाग्रह न करके निष्ठा आदेश पालन साधक का गुण है (बुद्ध के संकेत पर एक वर्ष की शील साधना)।

आज मेरी बारी है

सन्त एकनाथ जिस रास्ते स्नान को जाया करते थे, एक उद्दण्ड मनुष्य का घर उधर ही था। छत पर खड़ा होकर वह ताकता रहता, जैसे ही उधर से गुजरते, ऊपर से कूड़ा पटककर उन्हें गन्दा कर देता। दुबारा नहाने के लिए विवश करने में उसे बहुत मजा आता।

बहुत दिन ऐसे ही बीत गये। इसके बाद अचानक परिवर्तन आया। कूड़ा गिरना बन्द हो गया। सन्त को चिन्ता हुई। उन्होंने इधर-उधर पूछ-ताछ की तो मालूम पड़ा, वह उद्दण्ड व्यक्ति बीमार पड़ा है।

सन्त ने कहा—'मित्र, तुम मेरा रोज ध्यान रखते थे, अब मेरी बारी है कि बीमारी के कठिन समय में मैं तुम्हारा ध्यान रखूँ। जब तक वह व्यक्ति रोग-मुक्त न हो गया, वे रोज ही उसकी सहायता करते और आवश्यक साधन जुटाते।"

बीमारी से उठा तो उस व्यक्ति का स्वभाव ही बदल गया।

(१) सहनशील व्यक्ति अपना सन्तुलन नहीं खोते।

(२) सज्जनता के परिणाम प्रभाव शुभ परिवर्तन ही लाते हैं।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धर्म-धारणा का मर्म

धर्म का प्रयोजन, अंतःकरण की शुद्धि

"भगवन् ! यह जन अपने परम भट्टारक की ओर से श्रीचरणों में प्रणत है।" राजकवि ने साष्टांग प्रणाम करके घुटनों के बल बैठकर प्रार्थना की। "यों तो आपका आशीर्वाद भी काफी होगा उनके यज्ञ की सम्पूर्णता के लिए किन्तु हमारे महाराज अपने यज्ञीय आचार्य पीठ पर इन चरणों की अर्चा करने को अत्यन्त उत्कंठित हैं।"

वाराणसी भगवान विश्वनाथ की प्रियपुरी तो है सरस्वती के वरद् पुत्रों की सनातन क्रीड़ा भूमि भी है और विद्या तो वीतराग की विभूति है। अब भी सच्चे अर्थों में विद्वान् विद्या को विक्रय की कम और वितरण की वस्तु अधिक मानते हैं। आज भी किसी विद्याभिलाषी विद्यार्थी को निराश करना विद्वान् की गरिमा के विपरीत माना जाता है और यह जब की बात है, उस समय को बीते शताब्दियाँ हो गईं। काशी विद्या का परम केन्द्र और उस पर वहाँ के आचार्य चन्द्रमौलि—देश के सभी शासक उनके चरणों में माथा झुकाकर अपने को कृतार्थ ही मानते हैं।

चरणाद्रि (चुनार), वाराणसी का पार्श्ववर्ती राज्य है। उसके नरेश प्रायः भगवान विश्वनाथ की वन्दना करने पधारते हैं। आचार्य को प्रणिपात किए बिना अपनी यात्रा तो कभी उन्होंने पूर्ण मानी नहीं, किन्तु यज्ञीय आमंत्रण देने के लिए स्वयं आने का साहस उन्हें नहीं हुआ। वीतराग तपोधन आचार्य का क्या भरोसा ? वे यदि अप्रसन्न हो जाएँ तो उनके असन्तोष का प्रतिकार करने की बात तो दूर उसे सहन कर लेने की शक्ति भी शायद ही किसी में हो।

राजकवि ब्राह्मण होने के साथ आचार्य के स्नेह भाजन भी हैं। उन्हें सामने पाकर आचार्य का चित्त क्षुब्ध नहीं होगा। प्रार्थना की स्वीकृति की यदि कहीं थोड़ी भी संभावना है, तो इसी प्रकार। यह सोचकर ही राजकवि को चरणाद्रि नरेश ने भेजा था। राजकवि ने अपनी प्रार्थना पुनः कह सुनाई "यह अयोग्य ब्रह्मबन्धु श्रीचरणों के स्नेह से धृष्ट हो गया है। अनुरोध है कि आप यज्ञ की अध्यक्षता करें।"

"तुम्हारे यजमान का संकल्प क्या है ? वे यज्ञ करके किस उद्देश्य की पूर्ति चाहते हैं ?" आचार्य ने सीधे पूछ लिया।

"वे महाप्राण किसी लौकिक लोभ में नहीं हैं।" राजकवि ने कहा। "वे धर्मकाम हैं। यज्ञ सुरेश की सन्तुष्टि के संकल्प से ही होगा और वह पारलौकिक अभ्युदय की सिद्ध करेगा।"

'अपाम सोममृताऽभूमः' आचार्य ने एक श्रुति बोल दी और कहा—"यह पुष्पितावाणी जिसे प्रलुब्ध करती है, उस बालोद्योग में मेरे जैसे वृद्ध की अभिरुचि संभव नहीं है।"

"भगवन् !" राजकवि केवल सानुरोध संबोधन करके मौन रह गए।

"धर्म कामनाओं को पूरा करने का साधन नहीं है।" आचार्य ने शान्त स्वर में कहा। "इस लोक में धर्मानुष्ठान का फल भोगना अनेक पुरुष चाहते हैं और स्वर्गोपलब्धि चाहते हैं किंचित उदारचेता। किन्तु दोनों कामनाओं से ग्रसित हैं—बालक हैं। धर्म स्थूल या सूक्ष्म देह की तृप्ति, तुष्टि का साधन तो होता है, किन्तु है यह उसका दुरुपयोग ही और ऐसे किसी दुरुपयोग में सहयोग की संभावना तुम मुझ से नहीं कर सकते।"

'आचार्य।' राजकवि कुछ कहते इसके लिए समय नहीं मिला। सम्पूर्ण शस्त्र-कवच एवम् शिरस्त्राण दूर उतार कर कौशल के महासेनाध्यक्ष उसी समय आचार्य के सम्मुख दण्ड की भाँति भूमि पर गिरे **"शरणागतोऽस्मि।"**

"वत्स ! इस पुरी में प्रत्येक जन भगवान विश्वनाथ की शरण में है। दण्डपाणि काल भैरव यहाँ पुरीपाल हैं। तुम माता अन्नपूर्णा के आश्रम में अभय हो।" उन्होंने स्वयं सेनापति को उठाया।

"आप यहाँ और इस प्रकार एकाकी ?" राजकवि ने आगत सेनापति की ओर देखा।

'नहीं वत्स !' आचार्य ने रोक दिया, विश्वनाथ के शरणागत के संबंध में कुछ पूछने का स्वत्व किसी को नहीं है। जगजननी अन्नपूर्णा केवल ममतामयी वात्सल्यमयी हैं।

"प्रभु।" महासेनाध्यक्ष ने स्वयं कुछ कहना चाहा।

'नहीं-कोई आवश्यकता नहीं कुछ कहने की। तुम गंगास्नान करो और विश्वनाथ अन्नपूर्णा के दर्शन कर आओ। तुम्हारी व्यवस्था वे जग-माता कर देंगी।' गुरुदेव का संकेत पाकर एक विद्यार्थी आगन्तुक के साथ जाने को उठ खड़ा हुआ।

आगन्तुक के पीछे मुड़ने के कुछ ही देर बाद कौशल नरेश आते दिखाई पड़े। "राजन् ! अब तुम्हारा सेनाध्यक्ष भगवान गंगाधर की शरण में है। आचार्य ने अपने पदों में प्रणत कौशल नरेश से कहा।

'भगवन् ! आपका यह क्षुद्र सेवक इतना मूर्ख नहीं है कि यह कोई धृष्टता करने का साहस करेगा।" नरेश ने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया। "उसका अपराध क्या है, यह प्रश्न यहाँ कहाँ उठता है ? वैसे मैं उसके पीछे ही आया था लेकिन जब पुरी के बगल तक आ गया तो भगवान विश्वनाथ और आपके दर्शन का लोभ त्याग नहीं सका।"

"तुम विवेकवान् हो।" वृद्ध आचार्य मुसकराए। "एक जिज्ञासा अनेक वर्षों से है, किन्तु साहस नहीं होता।" नरेश ने सुअवसर देखकर ही कहा था।

"तुम्हें ब्राह्मण से भी भय लगता है ?" आचार्य के अधरों पर स्मित झलका।

"रघुवंश की परम्परा ही है यह।" नरेश का स्वर विनम्र था।

'मर्यादा पुरुषोत्तम के तुम योग्य वंशधर हो।' आचार्य ने सुप्रसन्न कहा। "तुम्हारी जिज्ञासा क्या है ?'

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org

www.vicharkrantibooks.org

पर दुःखभंजक महासम्राट विक्रम का सुयश किस धर्म का सुफल है ? नरेश की स्पर्धा कहाँ है यह छिपाने का कोई प्रयास उन्होंने नहीं किया।

"वत्स ! सुयश धर्म का फल अवश्य है, किन्तु धर्म का वही परम प्रयोजन नहीं है।" आचार्य का स्वर ऐसा स्नेह स्निग्ध हो गया, जैसे अपने शिशु को वे समझा रहे हों। "सुयश शरीर के नाम का और नश्वर शरीर का नाम—क्या सचमुच तुम्हारा नाम है ? राजन् ! नाम का सुयश क्या अज्ञान नहीं है ? इसका प्रलोभन तुम त्याग सकते हो।"

"प्रभु !" नरेश ने सिर झुका लिया। वे गहन चिंतन में डूब जाते, किन्तु इसका भी समय उन्हें मिलना नहीं था।

"भगवन् ! यह बेताल प्रणाम करता है।" दूर से घन-गम्भीर स्वर सुनाई पड़ा। "बेताल भट्ट।" आचार्य उठ खड़े हुए और उन्होंने आगे जाकर बलपूर्वक उज्जयिनी के महामंत्री को उठाया—"नीतिशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित को इस प्रकार प्रणिपात करने की जरूरत नहीं।"

"यह तो अधिकार है इस जन का।" बेताल ने कहा "पुत्र के अधिकार को पिता भी उससे छीन नहीं सकता।"

"तुम से व्यवहार संबंधी विवाद करके भला कोई विजयी हो सकता है ?" आचार्य ने हाथ पकड़कर बेताल भट्ट को समीप के आसन पर बैठाया। "शकारि सकुशल तो हैं ?"

"श्री चरणों के दर्शन की उत्कण्ठा लिए वे अनुमति की प्रतीक्षा कर रहे हैं।" इस बात ने कौशल नरेश को जितना चौंकाया, आचार्य उतना नहीं चौंके।

"शकारि के शील की समता नहीं है।" आचार्य ने अपने छात्रों से कहा। "उन्हें ले आओ।"

"भगवान महाकाल का प्रतिहार विक्रम प्रणिपात कर रहा है।" सम्राट भूमि पर गिरे और आचार्य उठाने उन्हें वेग से आगे बढ़े।

"शकारि ! तुम बहुत समय से आये।" कुशल प्रश्न समाप्त हो जाने पर आचार्य ने कहा, "इस बूढ़े ब्राह्मण को तुमने एक अनपेक्षित उत्तर देने से बचा लिया। कौशल नरेश जानना चाहते हैं कि तुम्हारा सुयश किस धर्माचरण का परिणाम है ?"

"मैं सम्राट का अनुचर हूँ। कौशल का राज्य ही नहीं राजधानी की प्रतिष्ठा भी जिनके पुण्य करों से हुई उन्हीं शकारि के सम्मुख अपनी स्पर्धा नरेश को लज्जाजनक लगी।"

"विक्रम धर्म कहाँ कर पाता है प्रभु ?" सम्राट ने सरल श्रद्धाभरित स्वर में कहा। फिर सुयश तो भगवान महाकाल का है, इसमें मेरा क्या ?

अपने सम्राट के उत्तर से बेताल भट्ट की आँखों में प्रसन्नता झलकी। किन्तु आचार्य ने कहा 'शकारि ! तब तुम धर्म का प्रयोजन क्या मानते हो ?'

धर्म का पथ तो वीतराग महापुरुषों के द्वारा प्रशस्त होता है। विक्रम गम्भीर स्वर में कह रहे थे। वैसे मैंने धर्म का एक ही प्रयोजन जाना है—अन्तःकरण, अर्थ और काम के लोभ से कलुषित न हो और वह महाकाल के चरणों में अनुराग के योग्य बने।

"धर्म से जो सुयश मिलता है ?" कौशल नरेश ने पूछ लिया। 'अज्ञजन सत्कार्य के परम प्रेरक को न देखकर देह की प्रशंसा करते हैं और उस प्रशंसा पर पुलकित भी अज्ञ ही होते हैं।' सम्राट ने नरेश की ओर सस्नेह देखा।

यह चर्चा चल रही थी कि चरणाद्रि के राजकवि ने आतुरतापूर्वक प्रवेश किया। लेकिन एक पल में वे ठिठक गये। उन्हें इसकी कोई संभावना नहीं थी कि आचार्य के समीप स्वयं सम्राट विक्रमादित्य अपने महामंत्री के साथ होंगे। केवल कौशल नरेश के आने का समाचार उन्हें मार्ग में मिला था।

'वत्स ! इतनी व्याकुलता किसलिए ?' आचार्य ने पूछा।

'अभी आपने जिनको भेजा है, वे अन्न-जल का त्याग किए बैठे हैं। पता नहीं कब तक वे इस तरह रहेंगे।

"कौन हैं वे महाभाग ?" शकारि ने सहज ढंग से आचार्य की ओर देखते हुए प्रश्न किया।

"कौशल का सेनाध्यक्ष था—वह।" आचार्य ने बतलाया। "हम उसे देखेंगे।" आचार्य के साथ सभी उठ खड़े हुए।

थोड़ी ही देर बाद सभी कौशल के सेनापति के पास पहुँच गए। उसने आचार्य के साथ सभी को प्रणाम किया। वह कह रहा था—"मेरे अपराध से ही मेरा सर्वस्व छीना गया। आज मैं कंगाल हूँ और अब किसी से कुछ नहीं लेना चाहता। जो औढरदानी है, उसी से अर्थ लेना है।"

"उससे तुम्हें अर्थ लेना है ?" आचार्य ने रोका "इतने मूर्ख हो तुम कि उस मोक्षदाता से मिट्टी के ढेले लेने के लिए मचल रहे हो ?"

"तब ?" मेरा यह उपवास रूप धर्म क्या मुझे श्रेष्ठ सम्पत्ति नहीं दे सकता ? सेनाध्यक्ष ने कहा, "न दे। उपवास करके प्राण त्याग तो मैं कर ही सकता हूँ।"

"तुम्हारा कुछ नहीं छीना गया है।" कौशल नरेश ने कहा। "केवल तुम्हें राजसेवा से मुक्त किया गया है।"

"मेरा कुछ नहीं छीना गया ?" वह चौंका। उसका आवेश शिथिल होने लगा। दुःख सर्वस्व चले जाने का दुःख गया तो उसके आवेश का वेग भी चला गया।

'तुम यहाँ यथेच्छ दान-पुण्य कर सकते हो। तुम्हारी सम्पत्ति अब भी तुम्हारी है।' नरेश ने आश्वासन दिया।

"तब मैं उससे धर्म करूँगा।" सेनाध्यक्ष शान्त हुआ। उसने आचार्य के चरण पकड़ लिए भगवन् आप.....!

"तुम किसलिए धर्म करोगे ?" आचार्य ने पूछा। "तुम देखते ही हो कि धर्म के संकल्पमात्र ने तुम्हारी समस्त सम्पत्ति दिला दी है, किन्तु दान-व्रत-यज्ञादि धर्मकार्य संकल्पपूर्वक ही होते हैं।"

"अक्षय सम्पत्ति की प्राप्ति के लिए।" सेनापति का निश्चय दो क्षण में स्थिर हो गया।

"समस्त पृथ्वी का सुवर्ण और सारी रत्नराशि तुम्हें मिल जाय कोई उपयोग है उसका तुम्हारे लिए ?" आचार्य के नेत्र उसके मुख पर स्थिर हो गए।

"नहीं है।" सेनाध्यक्ष को निर्णय करने में कुछ क्षण लगे। "किन्तु धर्म का प्रयोजन क्या है ?"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"धर्म का प्रयोजन है—मनुष्य में देवत्व का उदय। और यह तभी संभव है—जब मनुष्य वासना, तृष्णा और अहंता से मुक्त हो जाय।"

"धर्म से मोक्ष ?" बेताल भट्ट चौंके।

"धर्म का परम प्रयोजन है अन्तःकरण की शुद्धि।" आचार्य ने उनकी ओर देखा। "अन्तःकरण के शुद्ध होने पर ही ज्ञान अथवा भगवत्प्रेम का उदय होता है।"

आचार्य के कथन पर सभी चेहरों पर सन्तोष झलका। उन सभी के कदम उनका अनुगमन करने लगे।

जीत वहीं है जहाँ धर्म है

सिंहासन पर आरूढ़ होते ही सम्राट तारावलोक ने प्रजाजन की परिस्थितियों के अध्ययन का निश्चय किया। सामान्य नागरिक के वेष में सप्ताहान्त तक राज्य-भ्रमण करते रहे। जहाँ भी गये उन्होंने प्रजा की दुर्गति ही पाई। कोष के नाम पर उनके परिश्रम की कमाई राज्य हड़प लिया करें और उसका लाभ थोड़े से सत्ताधारी सामन्त उठाया करें, यह बात उन्हें पसन्द न आई अतएव वापस आते ही उन्होंने राजकीय कोष का धन प्रजाजनों को बाँट दिया।

किन्तु दुनिया में भावनाओं का, सदाचार का शोषण करने वाले लोग कम नहीं, सम्राट तारावलोक की उदार-वृत्ति देखकर कुछ शत्रु भी छद्म वेष में आये और जिस हाथी के कारण राज्य अपराजेय था उस कुवलया पीड़ गजराज को भी माँग ले गये।

सम्भ्रान्त नागरिकों को सम्राट की यह भावातिरेकता अच्छी न लगी। उन्होंने जाकर महाराज को समझाया—"राजन ! धर्म और भावनापरायण एक सीमा तक ही अच्छे होते हैं यदि वे सीमा का अतिक्रमण करते हैं, तो अपने आप शोषण का शिकार बनते हैं। आर्यावर्त को इस वृत्ति से बचाने का निश्चय किया गया है आप वह हाथी वापस ले लें अन्यथा गणराज्य आपकी उपेक्षा करेगा और आपको शासनच्युत होना पड़ेगा।"

'चिन्ता नहीं—तात् !" महाराज तारावलोक ने उत्तर दिया, "यदि दुष्ट व्यक्ति के लिये दुष्टता धर्म है, तो संत सज्जन को असफलता और विपत्ति के भय से सज्जनता का परित्याग नहीं करना चाहिये। मैंने दान दिया है उसे वापस नहीं ले सकता हाँ यदि मुझसे अनुचित कार्य हुआ है, तो हम राष्ट्र का शासन सूत्र सहर्ष त्यागने को तैयार हैं।" यह कह कर सम्राट ने गद्दी छोड़ दी। महारानी माद्री ने कहा—"तात् ! आपका निर्णय धर्मसंगत है, आपकी सहायिका आपका साथ नहीं छोड़ेगी।" वह भी राज्य त्याग के लिये समुद्यत हो गईं।

और महाराज के पुत्र—स्वाभिमानी पुत्र—उन्होंने पिता से कहा—"तात् ! हम आर्यकुल की परम्पराओं को नव-जीवन देना चाहते हैं। आपको याद है सत्य हरिश्चन्द्र के साथ भार्या तारा ने ही नहीं, कुमार रोहित ने भी त्याग किया था, हम सहर्ष समुद्यत हैं। आपके धार्मिक पथ का समर्थन करने के लिये हम भी आपके ही साथ राज्य का परित्याग करते हैं।"

दूसरे दिन ही सम्राट तारावलोक ने एक सामान्य नागरिक के वेष में राज्य त्याग दिया। सम्राट चन्द्रावलोक ने पुनः सत्ता संभाल ली। तारावलोक अभी कुछ ही दूर जा पाये थे कि एक श्रमिक ने उनके पुत्रों को दान में माँग लिया। महाराज कुछ कहें इसके पूर्व बालकों ने मर्यादा का पालन किया। वे श्रमिक के साथ चले गये और महाराज के सामने ही कठोर जीवन का अभ्यास करने लगे किन्तु महाराज उससे विचलित न हुये और तब इन्द्र ने भी उनकी निष्ठा परखने का निश्चय किया। ब्राह्मण का वेष रखकर उन्होंने सेविका के रूप में उनकी पत्नी का दान माँगा। माद्री ने कहा, "तात् ! शरीर आज नहीं तो कल नष्ट हो ही जायेगा। आत्मा से मैं प्रलय पर्यन्त आपकी ही रहूँगी अन्तिम समय आप पथ से विचलित न हों ?"

महाराज ने स्वीकृति दे दी। ब्राह्मणदेव वहाँ से चले गये। महाराज चन्द्रावलोक ने अपने पौत्रों के कठोर जीवन की बात सुनी तो वे द्रवित हो उठे, वे पैदल चलकर वहाँ पहुँचे जहाँ वन में तारावलोक निवास करते थे। पुत्र तारावलोक की धर्मनिष्ठा से प्रभावित होकर उन्हें हृदय से लगा लिया। उन्हें वापस राजधानी भी ले आये जहाँ उनके पुत्र और सौभाग्यवती माद्री पहले से ही स्वागत के लिये खड़े थे।

कर्मफल की सच्चाई

शाल्वन नगर के राजा सोमक के कोई सन्तान न थी। वे सन्तति प्राप्ति के लिए बड़े आतुर रहते, जिसे किसी लौकिक पदार्थ की अत्यन्त तृष्णा होती और उसे पाने के लिए विवेक छोड़ देता है, उस मनुष्य को या तो वह वस्तु प्राप्त ही नहीं होती या होती है, तो बड़े बुरे और विकृत प्रकार की, क्योंकि तृष्णा और अविवेक की आसुरी छाया पड़ने के कारण उसमें तामसी तत्व मिल जाते हैं, तदनुसार उस वस्तु की आकृति बड़ी कुरूप हो जाती है।

आखिर सोमक को एक पुत्र प्राप्त हुआ, पर वह अत्यन्त लालची और तृष्णा के कारण एक जन्तु की तरह था। सारे अंग उसके बड़े बेडौल थे। कोई अंग किसी जन्तु से मिलता-जुलता था, तो कोई किसी से। स्त्री के पेट से पैदा हुआ यह पशु रूपधारी बालक एक विचित्र आकृति का था, उसे देखने के लिए दूर-दूर से लोग आते।

ऐसे पुत्र को पाकर राजा को सन्तोष तो न हुआ, पर तो भी आखिर अपना पुत्र था। ज्यों-त्यों करके उसका लालन-पालन होने लगा। बालक बढ़ने लगा। कौतूहलवश रानियाँ उसे खेल खिलातीं और उसके भोलेपन पर मुग्ध हो जातीं। कुछ दिन में यही बालक सारे रनवास का प्रिय पात्र बन गया। राजा भी उसे स्नेह करने लगे।

कहते हैं कि तृष्णा सौ मुख वाली होती है। एक मुख को तृप्त कर दिया जाय, तो अन्य मुखों को भूख सताती है। इन सबको एक साथ तृप्त कर देना कठिन है। सोमक को बहुत पुत्रों की लालसा थी, वे इस एक जन्तु से सन्तोष न कर सके। उपायों की ढूँढ़-खोज करते-करते अन्त में उनकी एक तान्त्रिक से भेंट हुई। जो वाममार्ग की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अघोर साधनाओं के संबंध में अनेक अनुष्ठानों की मर्म उपासनाओं में पारंगत हो चुका था। राजा ने उसे प्रसन्न करके इस बात के लिए रजामन्द कर लिया कि अनुष्ठान द्वारा उसे सौ पुत्र प्राप्त करा देगा। उस अनुष्ठान में वर्तमान पुत्र को बलिदान करने की शर्त थी, राजा खुशी-खुशी इसके लिए तैयार हो गया।

अनुष्ठान हुआ। मख (यज्ञ) में उस निरपराध जन्तु को बलि देने के लिए उपस्थित किया गया। रानियों ने उसे इतने स्नेह से पाला था, इस प्रकार उस पोष्य-पुत्र की हत्या होते देखकर वे अश्रुपात करने लगीं। सगी माता तो बेहोश होकर गिर पड़ी, फिर भी राजा का कार्य न रुका। 'मुझे और चाहिए' 'बहुत चाहिए' के सन्निपात में ग्रसित राजा ने बालक का गला रेत डाला। निर्धारित अनुष्ठान पूरा हो गया।

राजा के सौ रानियाँ थीं, सभी गर्भवती हो गईं। एक वर्ष के अन्दर सभी ने पुत्र प्रसव किये, सूना रनवास हरा-भरा दीखने लगा। बालक किलकारियाँ मारते हुए खेलने लगे, राजा की तृष्णा के जलते तबे पर सन्तोष की कुछ बूँदें पड़ती दिखाई देने लगीं। नगर के धर्मात्मा पुरुष इस घटना से चिन्तित होने लगे, प्रश्न और सन्देहों के तूफान उनके मन में उठने लगे। अधर्म और अन्याय से जब ऐसे सुन्दर परिणाम उपस्थित हो सकते हैं और बेचारे धर्म को निष्फल पाकर कोई उसे टके सेर नहीं पूछता। क्या सचमुच धर्म व्यर्थ है और अधर्म से इच्छित फल प्राप्त होते हैं। इन सन्देहों के साथ-साथ नास्तिकता के बीजांकुर जमने लगे।

ईश्वर के यहाँ देर है अन्धेर नहीं, बुरे को बुरा और अच्छे को अच्छा फल तो अवश्य मिलता है, पर कुछ देर हो जाती है, यही इस माया का गोरखधन्धा है। यदि काम का तुरन्त फल मिल जाता तो सारा संसार धर्मात्मा हो गया होता। इच्छा, रुचि, स्वतन्त्रता और कर्त्तव्य की तब तो कोई आवश्यकता ही न रहती। गड़रिये की तरह यदि लाठी लेकर इन भेड़ों को ईश्वर हर घड़ी हाँकता-फिरता तो मनुष्य को 'स्वेच्छा' नामक कोई वस्तु न रहती संसार का सौन्दर्य ही नष्ट हो जाता।

चींटी मरने को होती है, तो उसके पंख उपजते हैं, अन्यायी का जब अन्त होना होता है, तो उसे एक बार खूब जोर से चमक कर अपना पिछला पुण्य फल शीघ्र से शीघ्र समाप्त कर देने की आवश्यकता होती है। इसीलिए जिनके पाप का घड़ा भर जाता है, वे अनन्त काल तक नरक में रहने के लिये बचे-खुचे पुण्यों को भुगतते हैं।

एक दिन अचानक महल में अग्नि लगी, सारा रनवास जलकर भस्म हो गया। कोई भी प्राणी उसमें से जीवित न बच सका। समस्त राजपरिवार घास-फूँस की तरह जलता हुआ मुट्ठी भर राख का ढेर बन गया। कल जो राजभवन नाच-रंग से गुलजार हो रहा था, आज उसमें २०१ प्राणियों की चिताएँ जल रही थीं। दैवी प्रकोप की एक टक्कर ने जनता की कर्मफल संबंधी समस्त आशंकाओं का समाधान कर दिया।

राजा सोमक का महल एक ध्वंसावशेष खंडहर मात्र रह गया, जिसमें २०१ चिताएँ यथास्थान प्रकृति द्वारा रची गयी थीं। तृष्णा और अधर्म की व्यर्थता पर हँसता हुआ वह मरघट अपने समस्त कलेवर को बखेरे पड़ा था। सघन अन्धकार में उधर से निकलने वाले, पथिक देखते और सुनते थे, कि राजा सोमक और अघोरी कापालिक जलती हुई लकड़ियाँ उठा-उठाकर एक-दूसरे के मुँह में ठूँसते हैं और पीड़ा से छटपटाते हुए भूमि पर गिर पड़ते हैं। इसी दृश्य की पुनरावृत्ति वहाँ रातभर होती रहती है। जब वे दोनों थक कर चूर-चूर हो जाते हैं, तो वहीं 'जन्तु-पुत्र' शीतल जल की कुछ बूँदें उनके ऊपर छिड़क जाता है।

इस प्रकार शाल्वन नगर के सोमक राजवंश का दुःखद अन्त हो गया। युग बीत गये, घटना पुरानी हो गई, पर कर्मफल की सच्चाई आज भी सुस्थिर शिला की भाँति उस शाही श्मशान में सोई पड़ी हुई है।

'धर्माचरण' का अटल प्रतिफल

ब्रह्मदत्त के राज्य-काल की घटना है। काशी में एक ब्राह्मण रहता था, जिसका नाम था 'धर्मपाल'। वह ब्राह्मण बड़ा ही सदाचारी, सत्यनिष्ठ एवं सद्गुणी था। दूसरों के साथ ऐसा व्यवहार करता था कि किसी को उसकी ओर से किंचित भी कष्ट न हो। लोग उसे धर्म का साक्षात् अवतार मानते थे। यथा नाम तथा गुण की उक्ति यहाँ चरितार्थ होती थी। उनके आचरण एवं स्वभाव का प्रभाव, उनके परिवार के अन्य लोगों यहाँ तक कि पास-पड़ोसियों पर भी पड़ा और वे धर्मानुकूल आचरण करते थे।

उनके एक ही पुत्र था। जब वह विद्याध्ययन के योग्य हो गया तो तक्षशिला-विश्वविद्यालय में विद्याभ्यास के लिए भेज दिया। उस समय वहाँ उसके समान पाँच सौ विद्यार्थी थे, किन्तु उनमें वह प्रतिभावान और कुशाग्र बुद्धि था। जितना वह बुद्धि की श्रेष्ठता में आगे था उतना ही अपने आचरण और व्यवहारों में सतर्क और कुशल था। बड़े नियम, संयम और सब की सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए, सबको उचित आदर भाव से बर्ताव करता था। सभी लोग उसकी श्रेष्ठता स्वीकार करते थे।

उसके विद्याध्ययन काल में ही दुर्भाग्य से एक दिन उसके आचार्य के युवा-पुत्र का देहान्त हो गया। सभी लोग रोने-पीटने लगे। सब जगह शोक का वातावरण छा गया। अन्त में उसका अन्तिम संस्कार आदि किया। श्मशान से लौटकर सब विद्यार्थी बैठे बातें कर रहे थे। "कैसा होनहार युवक था ? बेचारा चल बसा। आचार्य का भी शोक करना, ठीक ही है। जिसका जवान लड़का उठ जाय, वह रंज न करे, यह कैसे हो सकता है ?" धर्मपाल का लड़का भी वहाँ बैठा था, उन सब लड़कों की बातें सुनकर बोला—"किन्तु भाई ! क्षमा करना ! हमारे यहाँ तो कोई युवा व्यक्ति नहीं मरता।" सब लोगों को उसकी बात कुछ अटपटी-सी लगी। किसी को भी उस पर विश्वास नहीं हुआ इसलिए वह हँसी की बात बन गई। सब लोग उसकी हँसी उड़ाने लगे। होते-होते बात आचार्य जी के कानों तक पहुँच गई। आचार्य जी को बात कुछ बेतुकी लगी। इसके यहाँ विधाता का कौन-सा ऐसा नियम लागू है जो संसार से अलग है, किन्तु यह एक ऐसा विद्यार्थी था जिसकी बात पर सहसा आचार्य अविश्वास नहीं कर सकते थे। उसे बुलाकर सारी बात पूछी गई। उसने उत्तर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दिया—"आचार्य प्रवर ! हमारे गुरुजनों का कथन है कि धर्म के प्रभाव से हमारे यहाँ सात पीढ़ियों से कोई युवा सदस्य काल के गाल में नहीं गया।"

सबके समान आचार्य को भी महान् आश्चर्य हुआ। उन्होंने इस बात की वास्तविकता का पता लगाने का निश्चय किया। बकरे की कुछ हड्डियाँ मँगाई गईं और एक दिन आचार्य अपना कार्यभार दूसरे व्यक्ति को सँभला-कर काशी की ओर चल दिये। किसी प्रकार पता लगाते-लगाते वे धर्मपाल के ग्राम में पहुँच गये।

आचार्य का धर्मपाल ने बड़ा आदर और सत्कार किया। उनकी पूरी-पूरी सेवा-सुश्रूषा की। जब कुशलक्षेम की बात आई तो आचार्य ने कहा—"यह महान् खेद की सूचना हम दे रहे हैं कि आपका पुत्र अनायास एक दिन हृदय की गति रुक जाने से स्वर्गवासी हो गया है।" धर्मपाल को कब विश्वास होने वाला था ? उसने उत्तर दिया—"आचार्य वर ! कोई और मरा होगा। ऐसा नहीं हो सकता। हमारे यहाँ तो पिछली सात पीढ़ियों से किसी ने युवावस्था में अपनी जीवनलीला समाप्त नहीं की।" और हँसने लगा।

जब आचार्य ने देखा कि धर्मपाल को अपने ऊपर बहुत विश्वास था तो उन्होंने अपने साथ लाई हुई हड्डियाँ दिखाईं और कहा—"मैं उसकी अस्थियाँ लेता आया हूँ।"

धर्मपाल को भला कैसे फुसलाया जा सकता था ? वह बहकने वाला नहीं था। उसे धर्म पर अटल विश्वास था। "भगवन् ! आपको किसी ने झूठी सूचना दे दी है। उसे प्रमाणित करने के लिए आपको यह किसी बकरे या कुत्ते की हड्डियाँ दे दी होंगी।" अपनी प्रसन्न मुद्रा में उत्तर देकर हँसने लगा।

आचार्य ने जब यह देख लिया कि अपने धर्माचरण के बल के विश्वास के आगे, उनकी झूठमूठ कला नहीं काम देगी तो उन्होंने धर्मपाल से ऐसा होने का कारण पूछा।

धर्मपाल ने बतलाया—"श्रीमान् ! हमारे पूर्वज सात पीढ़ियों से ही धार्मिक आचरण करते थे। पाप-कर्मों से सदैव दूर रहते थे। वे सदा सत्य बोलते, असत्य को पास नहीं आने देते, सत्संग से लाभ उठाते एवं कुसंग के पास नहीं जाते थे। मीठे वचनों द्वारा संतुष्ट करके दान देते थे। श्रमण, ब्राह्मण, प्रवासी, याचक, दरिद्र आदि की सेवा करके उनको सुख पहुँचाने का प्रयास करते थे। हमारे कुटुम्ब में स्त्रियाँ पतिव्रता और पुरुष पत्नीव्रत होते हैं। इन्हीं सब कारणों से हमारे पूर्वज सुखी रहते थे। उन्हें किसी दुःख तकलीफ ने नहीं सताया और न हमारे परिवार में पिछली सात पीढ़ियों में कोई अल्पायु या युवावस्था में ही स्वर्गवासी हुआ। मुझे भी इसीलिए आत्म-विश्वास है कि मेरा पुत्र अल्पायु में नहीं मर सकता।"

आचार्य विश्वविद्यालय के प्रधान होते हुए भी अभी तक अज्ञानान्धकार में ही गोते लगा रहे थे। धर्मपाल के द्वारा उनको ज्ञान हुआ कि धर्माचरण में क्या रहस्य है ? उसमें कितना बल होता है। धर्माचरण करने वाले की, धर्म रक्षा करता है।

उन्होंने धर्मपाल को सब बातें सच-सच बताकर क्षमा माँगी। अपनी अज्ञानता द्वारा जो उन्हें कष्ट दिया, इसके लिए वे लज्जित हुए और वापस लौट आये।

आत्मज्ञान से देवत्व की प्राप्ति

सृष्टि-संरचना का कार्य पूर्ण हो गया। प्रजापति ने अपनी संतानों की ओर देखा तो उनकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा। सर्वांग सुन्दर और सर्वोपयोगी शरीर जैसा मनुष्य के पल्ले पड़ा वैसा किसी जीवधारी को भी अब तक उपलब्ध न हो पाया था, जैसी बौद्धिक क्षमताएँ मनुष्य में थीं किसी अन्य प्राणी में नहीं, प्रजापति ने सन्तोष की साँस ली और आत्मजनों को विदाई दी।

फिर न जाने क्या सोचकर पितामह ने प्रजाजन को रुक जाने को कहा। परिजन उनकी ओर उन्मुख हुए। प्रजापति ने कहना प्रारम्भ किया—"तात् ! तुम्हें सर्वांगपूर्ण शरीर दिया गया है। तुम शरीर नहीं हो, तुम्हें बुद्धि दी गई है, तुम बुद्धि नहीं हो, तुम जो हो—उस आत्मतत्व के ज्ञान के बिना तुम सुखी नहीं रह सकोगे। अतएव विपुल साधनों के स्वामी होकर भी आत्म-विमुख नहीं होना, क्योंकि समस्त समस्याओं का एकमात्र हल यह आत्म-ज्ञान ही है।"

प्रजाजन के दो वर्ग थे—एक सुर दूसरे असुर। यों भी कहा जा सकता है कि दो विभिन्न क्षेत्रों में विभक्त दो दलों का यह नामकरण मात्र था। दोनों ने निश्चय किया कि प्रजापति जिन्होंने हमें जन्म दिया, हमारे कल्याण के सभी साधन संग्रहीत किये इनकी उक्ति मिथ्या नहीं होनी चाहिए, अतएव दोनों वर्गों से प्रतिनिधि स्वरूप दो व्यक्ति नियत किये गये, जो प्रजापति से आत्मा का ज्ञान प्राप्त करें और अपने-अपने वर्ग को उसका प्रशिक्षण प्रदान करें। देव वर्ग ने इन्द्र को और असुरों ने विरोचन को अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा।

प्रजापति ने अन्तर्मुखी दृष्टि के विकास के लिये इन शिष्यों को दर्पण साधना बताई। उन्होंने कहा—"दर्पण में अपनी छवि देखना। छवि देखने वाले दृगों को देखना, दृगों की पुतलियों के बिन्दु के भीतर प्रविष्ट होकर यह पहचान करना कि यह भीतर कौन देखता है ? कैसे देखता है ? क्यों देखता है ?"

दोनों शिष्य अपनी साधना करने लगे। विरोचन ने तरह-तरह से दर्पण देखा, वेष-भूषा बदलकर, केश-विन्यास में परिवर्तन कर, सौन्दर्य प्रसाधनों में कई बार अन्तर कर, उसने जितनी बार दर्पण में देखा उसको अपनी सुडौल देह-यष्टि, सुन्दर मुखमण्डल ही स्मरण में आया तो उसने यही माना कि यह शरीर ही आत्मा है, उसे ही तरह-तरह से सजाने, उसी की तृप्ति में लगे रहना ही सुख का साधन है, विरोचन को और अधिक रुकने में उकताहट हुई, सो उसने अपनी इसी मान्यता को पूर्ण मान लिया और घर लौट आया।

इन्द्र ने बहुतेरी दृष्टि जमाई पर नेत्रों की पुतलियों से उन्हें कुछ नहीं दीखा। उन्होंने प्रजापति से आगे की कक्षा का पाठ पढ़ाने की याचना की। प्रजापति ने उन्हें और अधिक समय तप करने का आदेश दिया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रजापति ने कहा, "अब तुम यह ज्ञात करो कि स्वप्नावस्था में यह जो तुम्हारी तरह क्रियाएँ करता है, वह कौन है ?" इन्द्र ने तुलनात्मक अध्ययन के बाद पाया कि चेतन और स्वप्न दोनों का ही कर्त्ता एक है, पर कई बार प्रगाढ़ निद्रा में स्वप्न का चेतन अबोध हो जाता है, तब फिर उसे आत्मा कैसे माना जाए ?

प्रजापति ने उन्हें फिर तप करने की आज्ञा दी। इस बार इन्द्र को बोध हुआ। दर्पण के आगे से मुँह फेर लेने से शीशा रहने पर भी जिस तरह प्रतिबिम्ब नहीं रहता, उस तरह मृत्यु के बाद शरीर रहने पर भी आत्मा आकाशभूत हो जाती है। शरीर तो उस आत्मा की अभिव्यक्ति का दर्पण मात्र है। आत्मा उसका चेतन भाग है सो इन्द्र उस चेतना के विकास में ही लग गये और देवताओं को उसी का उपदेश दिया; जिससे देवगण अमर, पवित्र, पूज्य और उच्च पदस्थ हुये जबकि शरीर को ही आत्मा मानकर उसी को सजाने, सँवारने में, इन्द्रिय-सुखों की लिप्सा में पड़े असुरगण सर्वत्र विग्रह उत्पन्न करते और निकृष्ट जीवन जीते हुए प्रजापति की कृति को कलंकित करते रहते हैं।

न्याय की कमाई का दान— श्रेष्ठ दान

सोरठ राज्य के राजा वीरभद्र दान-पुण्य के लिए बड़े लोकप्रिय थे। द्वार पर आने वाला कोई भी याचक खाली हाथ न जाता था; पर उनका यह सारा दान, अनीति और अधर्म की कमाई से होता था।

सरकारी खजाने का कितना ही पैसा उसके ऐश और आराम पर खर्च हो रहा था ? जनता कर भार से दबी जा रही थी। मौका देख पड़ोसी राजा ने सोरठ राज्य पर चढ़ाई कर दी। दुर्ग को चारों ओर से घेर लिया गया। राजा वीरभद्र को रानी सहित बन्दी बना लिया गया; पर कुछ दिनों बाद वे दोनों शत्रु के बन्दीगृह से निकल भागे। प्राणरक्षा के लिए इधर-उधर घने जंगलों में भटकने लगे।

एक दिन परेशान होकर रानी ने कहा—"मैंने सुना है, कि सम्भरगढ़ का एक सेठ पुण्य खरीदने का कार्य करता है, आप तो जीवन भर दान देते रहे हैं यदि आप भी सम्भरगढ़ जाकर अपने पुण्य का एक अंश बेच दें तो उदरपूर्ति का साधन तो जुट ही सकता है।"

राजा ने रानी का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, पर उसके सामने केवल एक ही समस्या थी कि रास्ते में कई दिन लगेंगे अतः भोजन की क्या व्यवस्था होगी ? उस समय राजा एक गाँव में ठहरे हुए थे। अतः रानी गई और पड़ोसियों का आटा पीसकर मजदूरी का थोड़ा आटा कमा लाई। आटा एक पोटली में बाँधकर राजा वीरभद्र सम्भरगढ़ की ओर चल पड़े। चलते-चलते शाम हो गई तो एक गाँव में ही ठहर गये। उन्होंने आस-पास वृक्षों से लकड़ी तोड़कर आग सुलगाई और चार मोटी-मोटी रोटियाँ सेंक लीं। भगवान का भोग लगाकर ग्रास तोड़ने ही वाले थे कि एक भिखारी रोटी माँगता हुआ वहाँ आया और बुरी तरह गिड़गिड़ाने लगा। राजा को दया आ गई उसने अपने सामने से दो रोटियाँ उठाकर भिखारी को दे दीं और शेष दो रोटियों से अपनी क्षुधा निवृत्ति की।

वहाँ से चलकर राजा सम्भरगढ़ पहुँच गया। सेठ के सामने पहुँचने पर उसने अपने आने का उद्देश्य स्पष्ट बता दिया। सेठ ने कहा—'आप जिन पुण्यों को बेचना चाहते हैं एक कागज पर लिखकर इस तराजू के पलड़े में रख दीजिये।' राजा ने वैसा ही किया, पर तराजू ज्यों की त्यों रही। सेठ ने वस्तुस्थिति समझते हुए कहा—'मुझे ऐसा प्रतीत होता है; आपने अनीति और अधर्म की कमाई से दान दिया है।'

राजा बहुत लज्जित हुआ। वह पसीना-पसीना हो गया। अब उसके पास कहने के लिए शब्द ही कहाँ थे ? अतः सेठ ने पुनः कहा—"मुझे आपकी परेशानियों पर पूरी सहानुभूति है आप किसी ऐसे पुण्य का स्मरण करलें, जो ईमानदारी से अर्जित कमाई द्वारा संचित किया गया हो।" वह काफी देर सोचता रहा फिर उसे पिछले दिन की घटना याद आई, जब उसने अपने हाथ से रोटी बनाकर भिखारी को खिलाई थी। भिखारी को रोटी दान में देने की बात एक कागज पर लिखकर उसने तराजू के पलड़े में रख दी।

दूसरे ही क्षण राजा ने देखा कि पलड़ा नीचे झुक गया है। सेठ ने अनेक स्वर्ण मुद्राएँ उसमें रखीं फिर भी काँटा बराबर न आ रहा था। उसे आश्चर्य हुआ कि छोटे से पुण्य के लिए सेठ को (५०००) स्वर्ण मुद्राएँ रखनी पड़ीं तब कहीं काँटा बीचोंबीच आया। राजा मन ही मन पछता रहा था कि मैंने जीवन भर अनैतिक साधनों से धन कमाया और यश प्राप्ति की इच्छा से अभावग्रस्त लोगों को दान दिया। काश ! ईमानदारी और नैतिक साधनों से धन कमाकर दान दिया होता, तो मेरे पास भी पुण्य की कमी न रहती और शायद दूसरे के आगे हाथ फैलाने की भी आवश्यकता न पड़ती।

"महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीय क्रियते तनुः"

परिव्राजकों में परस्पर चर्चा चल रही थी। समाधान न मिलता देख उनमें से एक जिज्ञासावश संघ स्थविर आचार्य अभिष्यन्द से पूछ बैठा—"महात्मन्। आपने सर्वश्रेष्ठ दान को ही महायज्ञ की संज्ञा दी है। मूढ़-मान्यताओं से ग्रसित—बलि प्रथा से अभिशिप्त यज्ञ परम्परा को तो हम बौद्ध नहीं मानते। इस नाम से संव्याप्त अनाचार का तो हमने खण्डन भी किया है। परन्तु महायज्ञ का स्वरूप समझ पाने में हम असफल रहे हैं। कृपया इसकी व्याख्या करें ताकि किसी प्रकार का भ्रम न रहे ?"

जिज्ञासा को पूरा सम्मान देते हुए आचार्य श्री ने कहा—'भद्रजनो ! यज्ञ का अर्थ है उदारशील-दानवृत्ति, सत्प्रवृत्तियों का अभिनन्दन एवं सामूहिकता को समर्थन।' यदि अन्तः से उदार आत्मीयता का निर्झर निस्सृत होने लगे, संवेदना से अभिपूरित मानवी सत्ता अपनी गरिमा को पहचानकर व्यष्टिगत स्वार्थ को समष्टिगत हित में बदलने के लिये आतुर हो उठे तो मानना चाहिए कि व्यक्ति में देवत्व जाग उठा। महायज्ञ इसी पुनीत प्रयोजन को कहा गया है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संघ स्थविर प्रमुदित मन से बोले उठे—"भद्रजनो ! आपने सम्राट अशोक का तो नाम सुना ही होगा, जिन्होंने कलिंग के नर-संहार के बाद अपना जीवनक्रम ही बदल डाला। बौद्ध धर्म में दीक्षित होकर उन्होंने सारा जीवन भगवान बुद्ध की शिक्षाओं के प्रचार-प्रसार में लगा दिया।

"हे परिव्राजकगणो ! श्रेष्ठतम दान धन मुद्राओं का समर्पण नहीं, अपितु इससे भी ऊँचा है। सम्राट अशोक अपने अन्तिम समय में मृत्यु शय्या पर पड़े थे। अपना घर, परिवार, धन, विलास, दुःखी-पीड़ितों की सेवार्थ—परिव्राजकों के लिये संघाराम निर्माण हेतु लगाने के बाद भी उनके मन में असन्तोष ही बना हुआ था। भगवान के आह्वान पर एक साधारण गृहस्थ अनाथ पिण्डक द्वारा सौ करोड़ मुद्राएँ देने के बाद उन्होंने भी इतनी ही राशि जनहित में दान करने का संकल्प लिया था। विद्यालयों, मठों और लोक कल्याण के अन्यान्य कार्यों के लिए वे छियानवें करोड़ मुद्राएँ दे चुके थे। संकल्प पूर्ति के पूर्व ही रुग्ण होने के कारण वे क्षुब्ध होने लगे। लगा कि कहीं मृत्यु ने समय से पूर्व ही काल-कवलित कर लिया तो वे अपना संकल्प पूरा नहीं कर सकेंगे। सम्राट कुणाल के पुत्र सम्पदी को युवराज बना चुके थे। राज्य कोष से दान देने की व्यवस्था पर अंकुश लग चुका था। सत्ता अब नये राजा के हाथ में थी। विवश सम्राट अपने निजी उपयोग की वस्तुएँ दान में देने लगे। स्वयं वे मिट्टी के पात्रों व नाममात्र के वस्त्रों से काम चलाने लगे।

अन्तिम दिन संघाराम से आए भिक्षुक को दुःखी सम्राट ने काँपते हाथों से सूखे आँवले का आधा शेष भाग दे दिया और कहा—"अब मेरे पास इसके अतिरिक्त और कुछ भी शेष नहीं बचा है। इसे ही अन्तिम दान समझें और स्वीकार करें।" संघ अधीक्षक ने उस आँवले के टुकड़े को श्रद्धापूर्वक ग्रहण कर चूर्ण रूप बनाकर भिक्षुओं के लिये बनने वाले अमृताशन में मिला दिया। सबने उस महाप्रसाद को पाया। इस बीच सम्राट अशोक की अन्तिम वेला के समय आचार्य संघाराम उनके पास गए और मस्तक पर हाथ फेरते हुए कहा—"राजन् ! आप शान्तिपूर्वक स्वर्ग प्रयाण कीजिए। आपका संकल्प पूरा हुआ। आपने जो आधे आँवले का दान किया था, वह सहस्रों करोड़ मुद्राओं से भी अधिक पुण्यदायक है। उसका मूल्य आँका नहीं जा सकता। आपका संकल्प पूरा हुआ।" सम्राट ने सन्तोष की साँस ली व सदा-सदा के लिए अपने नेत्र बन्द कर लिए।

भिक्षुकों को संबोधित करते हुए आचार्य बोले—"यही सर्वमेध यज्ञ है—महायज्ञ है। इससे बढ़कर पुण्यदायक मुक्ति प्रदाता और कोई कर्म नहीं।"

कीमती रत्न

ऐसा कौन-सा जादू भरा है उस भिक्षु की वाणी में, जो जनता विजयोत्सव के राग-रंग, उत्सव-उल्लास छोड़कर नीरस धर्म-अध्यात्म के प्रवचन सुनने दौड़ पड़ी है। सम्राट के लिए यह एक विचित्र पहेली थी, उलझनों से भरी और नितान्त बेबूझ। अनेकों तरह की व्यूहरचना कर शत्रु को शिकस्त देने में कुशल राजनीति, कूटनीति, सैन्यनीति की पहेलियों को सुलझाने में माहिर अशोक से यह उलझन नहीं सुलझ रही थी। वह लोकप्रिय होना चाहता था। अपनी इस चाहत के लिए कितने ही तरह के नाच-रंग, उत्सव आयोजन करवाए लेकिन सब निष्फलप्रायः। इन सबके बीच पता नहीं कहाँ से उसकी क्रूरताओं की चर्चा निकल आती, हिंसा भरे कारनामे जनसमुद्र में ज्वार की तरह उफन पड़ते। फैल जाती आशंका, भय, दहशत की काली छाया। आम आदमी इससे दूर रहने में ही अपना कल्याण समझता।

उधर कुछ ही दिन पहले आया यह भिक्षु, चारों ओर उसी के बारे में बातें। गली-मुहल्लों घरों में उसके प्रवचनों की चर्चा। दिन-प्रतिदिन उसे सुनने के लिए उमड़ती भीड़ का सैलाव बढ़ता ही जाता। सुना है कि वह अपने पास कुछ नहीं रखता—देह में लिपटे अधफटे चीवर के अलावा कुछ नहीं। सम्राट को अपने वैभव-कोष समृद्धि पर गर्व था। कहाँ साधारण-सा भिक्षु कहाँ भारत सम्राट अशोक ? इस तुलनात्मक चिन्तन के साथ उसने एक गर्व भरी नजर स्वयं पर डाली, पर दूसरे ही क्षण तथ्य के कठोर प्रहार से गर्व चकनाचूर हो गया। एक के पास जाने के लिए लोग अपना काम छोड़कर दौड़ पड़ते हैं। दूसरे का नाम सुनते ही दहशत फैल जाती है। भिक्षु की इस लोकप्रियता का कारण ? वह कुछ सोच रहा था, शायद वह स्वयं भी जाना चाहता था। उस समय तक अशोक के लिए धर्म का कोई विशेष अर्थ न था।

एक दिन सचमुच वह महाभिक्षु का प्रवचन सुनने पहुँच गया। भिक्षु मौद्गलायन का गरिमा मण्डित व्यक्तित्व बरबस किसी को आकर्षित करने के लिए पर्याप्त था। अब उसे श्रावकों की संख्या के रोज बरोज बढ़ने, समूची पाटलिपुत्र नगरी द्वारा विजयोत्सव को भूल बैठने के बारे में कुछ-कुछ अनुमान लग रहा था, लेकिन तथ्यपूर्ण कारणों से वह अभी तक अविदित था। कुछ सोचते हुए उन्होंने महाभिक्षु को भोजन के लिए निमंत्रण दे डाला। शायद सम्राट भिक्षु की निष्ठाओं को परखना चाहते हों। प्रतिपादित त्याग, सादगी और आर्जव के आदर्श स्वयं भिक्षु के जीवन में कितनी गहराई तक समाविष्ट हैं। साथ ही उस कारण को खोजना जिसकी वजह से उसकी लोकप्रियता दिन पर दिन बढ़ती जा रही है।

भोजन के बाद सम्राट ने उन्हें अपना महल घुमाया। हर कक्ष की एक-एक मूल्यवान वस्तु का परिचय देते समय उनके चेहरे पर अहं और दर्प की मिली-जुली आभा देखने लायक थी। अन्त में वे एक विशाल आगार के सामने जाकर ठहर गए। यह रत्न भण्डार था। इसमें सुरक्षित बेशकीमती रत्नों को दिखाते हुए बोले "भिक्षु श्रेष्ठ ! ऐसे दुर्लभ रत्न भारत भर में कहीं न मिलेंगे।"

"ओह !" भिक्षु के माथे पर सिलवटें गहराईं "तब तो इनसे राज्य को भारी आय होती होगी।"

"आय ?" अशोक भिक्षु की नादानी पर मुसकराया। "इनकी सुरक्षा पर पर्याप्त व्यय और करना पड़ता है।"

"इन पत्थरों से कीमती पत्थर मैंने आपके राज्य में देखा है। विश्वास न हो, तो आप भी मेरे साथ चल कर देख लें।" भिक्षु के कथन को सुन अशोक स्वयं को रोक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

न सका। कुछ ही समय बाद दोनों एक उपेक्षित गरीब बस्ती में प्रवेश कर रहे थे। सम्राट को आश्चर्य था ऐसी मूल्यवान चीज यहाँ ? वह कुछ अधिक सोचता तब तक भिक्षु ने एक द्वार खटखटाया। थोड़ी देर बाद एक वृद्धा ने दरवाजा खोला। दोनों घर के अन्दर घुसे, भिक्षु ने एक कोने की ओर इशारा करते हुए कहा "यह है।"

उस ओर देखकर अशोक को झुँझलाहट हुई। उसे अपने ऊपर भी अफसोस हुआ "क्यों इस मूर्ख भिक्षु के साथ आकर वह मूर्ख बना।" झल्लाते हुए बोला "यह तो चक्की है।"

"ठीक कहते हो। पर तुम्हारे सभी रत्नों से श्रेष्ठ है यह। वृद्धा के श्रम की सहयोगिनी। इस पर उसे कुछ खर्च नहीं करना पड़ता। उलटे यह चक्की इस वृद्धा का इसके अन्धे पति और तीन बच्चों का पोषण करती है।"

अशोक चुप था। उसे सूझ नहीं रहा था भिक्षु को क्या उत्तर दें ? भिक्षु उसके मन को पढ़ते हुए कह रहे थे "राजन ! जीवन का रहस्य, त्याग और पुरुषार्थ है। संग्रह में इन दोनों की अवहेलना है। संग्रह का अर्थ है स्वयं के ऊपर, नियन्ता के ऊपर और जिस समाज में रहते हैं उस पर चरम अविश्वास। इन तीनों में जिसे एक पर भी विश्वास है, वह क्यों संग्रह करेगा ? जिसे लोक पर विश्वास नहीं लोक उसे सम्मान क्यों देगा ? उसे अपना प्रिय क्यों मानेगा ?"

अशोक ने मुड़कर भिक्षु की ओर देखा। भिक्षु की आँखों में इन तीनों विश्वासों की गहरी चमक थी। सम्राट को उसके फटे चीवर, उसे सुनने के लिए उमड़ती भीड़ का कारण ज्ञात हो रहा था। कहते हैं कि अगले दिन सम्राट ने अपनी सम्पत्ति जनहित के कार्यों में समर्पित कर दी। इसी दिन में वह **"देवानां प्रिय"** बना।

एक पैसे का दान

"अम्बे ! आज मैंने सहस्र स्वर्ण मुद्राओं का दान दिया है। सुन नहीं रहीं क्या ? बाहर मेरी जय-जयकार हो रही है। मेरे इस पुण्य पर अवश्य ही दान शिरोमणि स्वर्गीय पिता प्रसन्न होंगे ?"

वृद्धा ने पुत्र चन्द्रपीड़ की ओर पीड़ा भरी दृष्टि डाली और पुनः आरण्यक के स्वाध्याय में लीन हो गई। पुत्र को माँ की यह उपेक्षा अखरी तो पर वह अपनी अप्रसन्नता अपने अन्दर ही दबाकर चुपचाप वहाँ से चला गया।

चन्द्रपीड़ ने दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही निःशुल्क भोजनशाला प्रारम्भ करने की घोषणा की। द्वारावती से अनेक नर-नारी प्रातःकाल से अन्नपूर्णा पहुँचने लगे। पाकशाला में हर किसी के लिये इच्छित रस और स्वाद वाले व्यंजन प्राप्त करने की पूर्ण व्यवस्था थी। सायंकाल तक की गणना के अनुसार सात सहस्र स्वर्ण-मुद्राओं का खर्च आया। चन्द्रपीड़ ने सोचा आज माँ अवश्य प्रसन्न होंगी। घर पहुँचा, उस समय उसे देखकर ही यह बताया जा सकता था कि उसमें किसी बड़ी सिद्धि का अहंकार व्याप्त हो रहा है।

"जननी !" चन्द्रपीड़ ने उच्च स्वर में कहा—"आपने सुना होगा आज चन्द्रपीड़ ने सात सहस्र अभ्यागतों का सुरुचिपूर्ण व्यंजनों से सत्कार किया है। द्वारावती के घर-घर में यही चर्चा गूँज रही है कि चन्द्रपीड़ के समान और कोई भी दानी इस दुनिया में नहीं रहा। आज तो मेरे स्वर्गीय पिता अवश्य ही प्रसन्न होंगे।"

वृद्धा की आँखों में कहीं भी खुशी का भाव नहीं था। अन्यमनस्क भाव से वह उठीं और अपने स्वाध्याय सदन में प्रविष्ट होकर अध्ययन में तल्लीन हो गईं। चन्द्रपीड़ अन्तर्पीड़ा से कराह उठा। माँ का रूखापन उसे अच्छा नहीं लगा तथापि उसने कहा कुछ नहीं। विचार मंथन के सागर में डूब गया चन्द्रपीड़ और उसी स्थिति में उसे कब निद्रा आ गई पता भी नहीं चला।

सबेरा हुआ चन्द्रपीड़ के द्वार पर भारी भीड़ जमा है लोग तरह-तरह की याचनाएँ लेकर पहुँच रहे हैं। चन्द्रपीड़ उन सबकी बातें सुन-सुनकर किसी को अन्न दे रहा है किसी को वस्त्र। किसी को उसने गायें दान दीं, किसी को स्वर्ण मुद्राएँ। यही क्रम अहर्निश चलता रहा। तो भी उसे माँ से प्रशंसा का एक शब्द भी सुनने को नहीं मिला।

चन्द्रपीड़ मर्माहत हो उठा। उसने द्वारावती का सम्पूर्ण वाणिज्य अपने भाइयों में वितरण कर दिया। शरीर में आवेष्ठित वस्त्रों को छोड़कर अपने लिये उसने कुछ भी नहीं लिया। इसी स्थिति में वह घर से निकल पड़ा और कई दिन तक भूखा-प्यासा रहकर वह राजगृही जा पहुँचा।

जीवन-रक्षा के लिये आज चन्द्रपीड़ को चाकरी करनी पड़ी। प्रातः से सायंकाल तक कठोर परिश्रम करने के बाद उसे दो पैसे मिले। उन्हें लेकर वह अभी भोजन की तलाश में निकला ही था कि उसकी एक अपंग से भेंट हो गई। उस निर्धन को भी प्रातःकाल से अन्न नसीब नहीं हुआ था। चन्द्रपीड़ ने मुट्ठी खोली—एक सिक्का उसके हाथ में दिया, एक से स्वयं लेकर अन्नाहार किया।

रात को जीवन भर में सर्वाधिक सुखद नींद आई। स्वप्न में उसने देखा—माँ उसके शीश पर बैठी आशीर्वाद दे रही है और कह रही है तात् दान का श्रेय यश नहीं आत्म-सन्तोष है। परिश्रमपूर्वक कमाई का एक अंश निरहंकार भाव से केवल सत्पात्र को ही देने से दान की सार्थकता है तुम्हारे पिता ने आजीवन यही किया। चन्द्रपीड़ माँ की अब तक की उपेक्षा का आशय समझ गया।

सर्वोत्कृष्ट सम्पत्ति

कोटिकर्ण शोण का पदार्पण धर्म-मंच के लिये महान् शक्ति बन गया। भगवान बुद्ध के प्रभाव में आकर उन्होंने अनन्त जीवन की प्राप्ति की आवश्यकता समझी थी। लगन कुछ ऐसी लगी, वैराग्य कुछ ऐसा मचला कि कोटिकर्ण शोण अपना सम्पूर्ण वैभव त्यागकर परिव्राजक हो गया। एक समय था, जब शोण के कानों में पहनी हुई बालियों का मूल्य ही एक करोड़ स्वर्ण मुद्राओं के बराबर होता था पर आज तो उसका कौपीन भी ग्रामीण बुनकरों द्वारा बुना हुआ मोटा खद्दर मात्र था। आत्मिक ज्ञान की पिपासा में महलों का राजकुमार आज दर-दर का भिखारी बना, भटक रहा था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर क्या इससे उनका सम्मान चला गया, शांति तिरोहित हो गई, आनन्द नहीं रहा जीवन में ? नहीं ऐसा नहीं हुआ। वहीं एक समय वह आया जब शोण जहाँ भी निकल जाते, लाखों लोगों की पलक पाँवड़े बिछ जातीं। सम्पूर्ण अवंतिका उन दिनों महान् सन्त शोण की चरण धूलि लेने के लिये लालायित रहा करती। यह था त्याग का प्रभाव, आत्मार्चना का वरदान।

कुररघर में विशाल सभा आयोजित की गई थी। भिक्षु कोटिकर्ण का उपदेश सुनने के लिये नगर के सम्पूर्ण नर-नारी खिंचे चले आ रहे थे। देखते-देखते सभा भवन विशाल जनसमूह के सागर की भाँति लहराने लगा। धर्म के वास्तविक स्वरूप, आत्म-शोध की आवश्यकता, जन्म और मुक्ति के पुण्य-प्रसंगों पर शोण का प्राणपूर्ण शब्द-प्रवाह लोगों को ऐसे सम्मोहित कर रहा था, जैसे रमणी कामातुरों को अपनी रूपसज्जा से आकर्षित करती है।

सभा मण्डप में बौद्ध-श्राविका कात्यायनी भी बैठी हुई थीं। धार्मिक ग्रन्थ उन्होंने पढ़े थे पर आत्मिक सम्पदा पर जैसा अच्छा उपदेश कोटिकर्ण शोण कर रहे थे, वैसा अभिभाषण उन्होंने पहले कभी नहीं सुना था। वाणी में उनका तप, उनकी साधना और स्वाध्याय बोल रहा था। कात्यायनी ऐसी भाव-विभोर थी, जैसे कीट भृंग की मधुर गुञ्जार से विमोहित होकर अपना अस्तित्व भूल जाता है, वेणुनाद सुनकर सर्प लहराने लगता है। आत्मा का रस प्रवाह है ही ऐसा, जहाँ बहता है, वहाँ लोगों को अमृत पेय का-सा रसास्वादन कराता है। कात्यायनी आत्म-विस्मृत बैठी शोण की वाणी का रस ले रही थी।

सन्ध्या हो चली। दासी ने कहा, "स्वामिन् घर चलने का समय हो गया। प्रवचन अभी कुछ समय और चलेगा, रुकने में विलम्ब होगा।" कात्यायनी ने संक्षेप में कहा, "तू चल दीपक जला दे, मैं तो पूरा उपदेश सुनकर के ही उठूँगी ?"

दासी घर लौटी। वहाँ पहुँचते ही वह यह देखकर घबड़ा गई कि भवन की पीठिका पर चोरों ने सेंध लगा दी है। चोर घर की सारी सम्पत्ति बटोर रहे हैं, उनका सरदार बाहर खड़ा रखवाली कर रहा है। दासी उल्टे पैरों सभा-भवन को लौटी। पीछे-पीछे सरदार भी यह देखने चला आया, दासी जाती कहाँ है ?

दासी श्राविका कात्यायनी के पास पहुँची और कान में कहा "स्वामिन् घर में चोर आ गये हैं, सेंध काटकर सारा सामान लिये जा रहे हैं।" पर कात्यायनी ने जैसे कुछ सुना ही नहीं। वह तन्मय, आत्म-विभोर उपदेश सुने चली जा रही थी।

दासी ने कन्धा पकड़कर झकझोरा "घर में चोर घुसे हैं और आप उसकी कुछ चिन्ता भी नहीं कर रहीं। सारा धन ले जायेंगे वे।" ले जाने दे, अरी वे आभूषण तो नकली हैं, जो सर्वोत्कृष्ट सम्पत्ति है, वह यहाँ मिल रही है।

चोरों के सरदार ने यह सुना तो उसका हृदय धड़क गया। गृह-स्वामिनी को अपने आभूषणों से बढ़कर जिस सम्पत्ति से प्यार हो रहा है, वह वस्तुतः साधारण सम्पत्ति न होगी। वह भी वहीं बैठ गया और जब सभा विसर्जित हुई तो वहाँ से उठकर जाने वालों में वह आखिरी व्यक्ति था। सेंध लगी थी पर एक क्षण भी धन छूने की इच्छा सरदार को न हुई। वह भी उसी असली धन को पाने में लग गया, जिसका रस कात्यायनी पी रही थी।

देशरक्षा के लिए कर्त्तव्यनिष्ठा की आवश्यकता

प्रियदर्शी सम्राट अशोक के विशाल साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र और गंगा का मनोरम तट, जहाँ सम्राट अपने मन्त्रियों, सेनापतियों तथा पुरोहितों सहित उसके जल के उतार-चढ़ाव को देख रहे थे। गंगा का जल खतरे के चिह्न से ऊपर बढ़ता जा रहा था, विकराल वेग को देखकर सम्राट आशंकित थे। हो सकता है थोड़ी ही देर बाद विपुल जलराशि किनारों की उपेक्षा कर राजधानी को अपने में समेटने के लिए उतावली हो जाये। सम्राट के चेहरे पर बनती-बिगड़ती रेखाओं को देखकर यह आसानी से अनुमान लगाया जा सकता था कि वह विनाशलीला की कल्पना मात्र से ही कितने चिंतित हैं ?

बाढ़ के सनसनाते हुये जल को उन्होंने एक बार देखा और दूसरी बार उनकी दृष्टि पास में खड़े महामन्त्री के चेहरे से टकराई। उन्होंने मन्त्री की आँखों में आँखें डालकर अपनी चिन्ता व्यक्त करनी चाही और समस्या का समाधान भी। सम्राट ने बड़े दुःखी स्वर में कहा 'क्या अपने साम्राज्य में ऐसी कोई पुण्य आत्मा नहीं, जो इस भीषण बाढ़ पर काबू पा सके ? मेरी अपेक्षा तुम्हारा जनता से अधिक और सीधा सम्पर्क रहता है। शायद तुम्हारी दृष्टि में ऐसी कोई आकृति हो।'

यह प्रश्न अकेले महामन्त्री से ही नहीं था वरन् साम्राज्य के लाखों नागरिकों के लिए चुनौती भरा कथन था। सम्राट के दायें-बायें सहस्रों नगरवासियों और गाँववासियों का जमघट था। सभी इस समस्या से अपने-अपने ढंग से लड़ने के लिये सोच रहे थे, तैयारी कर रहे थे।

तभी भीड़ को चीरते हुए एक महिला आगे बढ़ी। सभी की दृष्टि उस ओर जम गयी। उसे देखकर आशा के स्थान पर निराशा ही हाथ लगने वाली थी। कितने ही व्यक्तियों ने उसकी शकल देखकर नाक भौं सिकोड़ने शुरू कर दिये। यह सब कुछ स्वाभाविक था, आखिर वह बिन्दुमती नामक वेश्या जो थी। एक वेश्या साम्राज्य की समस्या के लिए कुछ हल प्रस्तुत कर सकेगी, ऐसा किसी को विश्वास ही नहीं था।

बिन्दुमती बोल पड़ी "मैं हूँ अपना रूप, सौन्दर्य और यौवन बेचकर जीविका चलाने वाली एक वेश्या। मेरा पेशा घृणित है, इसमें कोई दो मत नहीं हो सकते पर मैं आज अपने को पाटलिपुत्र की वारांगना समझती हूँ।"

'वारांगना' शब्द पर लोगों को विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने और ध्यान देकर उसकी बात को सुनने का यत्न किया।

भयंकर गर्जना के स्वर में नदी की ओर हाथ उठाते हुये बिन्दुमती ने कहा, "यदि मेरे पाप कर्मों के बीच पुण्य कर्मों के तनिक भी संस्कार रहे हों, यदि मैं अपने जीवन में सत्यनिष्ठ रही हूँ तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अरे उसके मुख से इस ललकार का निकलना था के वैसे ही गंगा की भीषण बाढ़ भी उस गर्जना से सहमकर इधर-उधर बगलें झाँकने लगी हो, जैसे वह अपनी भूल पर पश्चाताप करने को आतुर हो उठी हो और कुछ क्षण बाद ही पीछे से आने वाले जल की मात्रा कम होने लगी, उसका उफान शान्त होने लगा।

सम्राट को आश्चर्य हुआ और उसके साथ वहाँ खड़े हजारों नर-नारियों को भी। सबके मन से एक ही प्रश्न उठ रहा था, क्या वेश्या की शक्ति से भी गंगा की बाढ़ का जल थम सकता है ? क्या उसके घृणित जीवन में सत्कार्यों के लिये भी कहीं स्थान हो सकता है ?

सम्राट ने बिन्दुमती को अपने पास बुलाना उचित न समझा, वह अपनी जिज्ञासा का समाधान करने स्वयं उसके पास जा खड़े हुये और अपने अन्तर में उमड़ते हुए कई प्रश्न एक ही साथ उपस्थित कर दिये। "भद्रे ! तू वेश्या है, तेरा कार्य घृणित है, लोगों को बिगाड़ने वाला है, तू कामान्ध व्यक्तियों को गुमराह करती है, उनकी जेब से पैसे निकाल कर तू अपने पेट की भूख और ग्राहकों की वासना की भूख तू अपने तन से शान्त करती है। तू नगण्य-सी ओछी औरत, तेरे प्रभाव से गंगा की यह बाढ़ कैसे शान्त हो गयी ?'

'राजन् आपकी प्रत्येक बात सत्य है। पर मैं धन, जाति, शिक्षा, कुल और रूप के आधार पर तनिक भी पक्षपात नहीं करती। मैं आने वाले प्रत्येक ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र, धनी और निर्धन, शिक्षित और अशिक्षित, छोटे और बड़े में किसी प्रकार का भेद न कर अपना ग्राहक समझ, अतिथि समझ बड़े सम्मान के साथ आवभगत करती हूँ। मेरे मन में किसी के प्रति अवज्ञा या उपेक्षा का भाव नहीं आता। प्रत्येक ग्राहक मेरे द्वार से सन्तुष्ट होकर जाए इस बात के लिए मेरा प्रयत्न रहता है। इसे ही आप मेरी सत्यनिष्ठा, धर्मनिष्ठा, कर्त्तव्यपालन और ईमानदारी कह सकते हैं। मेरे इसी आचरण ने गंगा को रुकने के लिये विवश किया है।'

सम्राट ने कहा 'तुम भले ही किसी के लिये वेश्या हो पर आज मेरे लिये देवी के समान हो और तुम्हारा कथन सत्य के बिल्कुल निकट है। मेरी समझ में निष्ठा के साथ अपने कर्तव्य का पालन करने वाला प्रत्येक व्यक्ति धर्मात्मा होता है और संकट के क्षणों में कर्त्तव्य के प्रति ईमानदार रहने वाले व्यक्ति ही देश के काम आते हैं।'

कर्तव्यपालन से बड़ी साधना नहीं

उलझी केश-राशि समेटी और उन्हें वेणी से गूँथते हुये परिचारिका बोली—"भन्ते ! तुमने सुना नहीं गौतमी ने प्रव्रज्या ली है, उन्होंने अर्हत्व भी प्राप्त कर लिया और अब उन्होंने भिक्षुणी संघ स्थापित किया है। उनका विचार है कि पुरुषों के समान ही महिलाएँ भी साधनाएँ करें और स्वर्ग तथा मुक्ति का अधिकार प्राप्त करें। पूर्णा, धीरा उपशया, मुक्ता, तिष्या तथा भद्रा आदि ने तो प्रव्रज्याएँ ग्रहण भी कर लीं, अब वे योग-साधनाएँ कर रही हैं।"

फिर एक क्षण मौन रहकर परिचारिका ने पुनः कहना प्रारम्भ किया—"भन्ते ! आपके भ्राता कौशल राज प्रसेनजित स्वयं भी गौतमी की योग-साधना से बहुत प्रभावित हैं, वे कई बार बेलुवन में उनके दर्शन कर चुके हैं। मैंने उन्हें देव माता से कई बार गम्भीर एकान्त-वार्ता करते देखा है और यह भी सुना है कि गौतमी चाहती है कि राजघरानों की कन्याएँ आगे आएँ और धर्म को जीवन की मूल आवश्यकता प्रदर्शित करने का नेतृत्व करें। कहीं उनका संकेत आपकी ओर तो नहीं है।"

वेणी बँध चुकी थी। सुमना ने खड़े होते हुए कहा—"विद्या ! आत्मोद्धार मनुष्य जीवन का प्रधान लक्ष्य और मूल आवश्यकता है फिर इन दिनों जबकि धर्म-तन्त्र विकृत हो चुका है, सामाजिक मर्यादाएँ टूट रही हैं, लोगों के जीवन में कल्मष-कषाय बढ़ते जा रहे हैं, महिलाएँ भी इस महान् अभियान में हाथ बँटाती हैं, तो यह अच्छी बात होगी किन्तु मैं यह नहीं चाहती कि कोई सांसारिक कर्त्तव्यों की उपेक्षा करके मुक्ति प्राप्त हो। ऐसी मुक्ति मेरी दृष्टि में बंधन से बढ़कर है। बौद्ध-धर्म और भगवान बुद्ध के प्रति मेरे अन्तःकरण में अपार आदर है पर आश्रम धर्म की वैधानिकता को मैं छोड़ नहीं सकती। आवेश में ग्रहण की गई प्रव्रज्याएँ किसी दिन भोग वृत्ति का दूषण न फैलाने लगें ऐसी मुझे पूरी आशंका है, इसलिये मैं चाहती हूँ कि साधना तो सभी करें पर ब्रह्मचर्य, गृहस्थाश्रम और वानप्रस्थ के चरण पूरे करते हुए ही मुक्ति की ओर बढ़ा जाए। जो शक्ति प्रारम्भिक अवस्था की साधनाओं में, मनोनिग्रह में खर्च होती है, वह परिपक्व अवस्था में नहीं, उस समय इन्द्रियाँ भी अशक्त हो उठती हैं इसलिये मुक्ति के लिये वही उपयुक्त समय होता है।

सुमना यह कह रही थी कि वहाँ आ पहुँचे प्रसेनजित। उन्होंने कहा—'तू ठीक कहती है सुमना ! मैंने तेरी बातें सुन ली हैं और उनकी यर्थाथता भी समझ ली। मेरी ओर से निश्चिन्त रह, मैं तुझे अभी प्रव्रज्या के लिये प्रेरित नहीं करूँगा।'

सुमना अपने माता-पिता की सेवा में लग गई। कौटुम्बिक उत्तरदायित्वों को भी साधना मानकर उसने अपने कर्त्तव्यों का पालन किया। वृद्धावस्था आने पर उसने प्रव्रज्या ग्रहण की और दीर्घकालीन तप के बाद भी जो लाभ अन्य भिक्षु-भिक्षुणियाँ नहीं ले पाई थीं वह उन्होंने थोड़े ही समय में प्राप्त कर लिया।

गहनो कर्मणोगतिः

बहेलिये ने तीर छोड़ दिया—समग्र तीक्ष्णता के साथ वह लता-बल्लरियों की बाधाओं को चीरता राजकुमार सुकर्णव के मस्तक पर जा लगा। सुकर्णव वहीं धराशायी हो गये। जब तक व्याध और अन्य अंगरक्षक सैनिक उनके पास तक पहुँचें, राजकुमार के प्राण-पखेरू काया का पिंजड़ा परित्याग कर आकाशभूत हो गये।

समस्त अन्तःपुर रो पड़ा, अपने राजकुमार की याद विसूरती प्रजा के अन्तःकरण उमड़ उठे। ऐसा कोई भी हतभाग्य राज्य में नहीं था, जिसने सुकर्णव की अर्थी देख कर आँसू न बहाये हों।

दाह-संस्कार सम्पन्न हुआ। पुत्र-शोक अब प्रतिशोध की ज्वाला में भड़क उठा। महाराज वेनु-विकर्ण ने कारागृह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में बन्दी बहेलिये को सम्मुख उपस्थित करने का आदेश दिया। सैनिकगण व्याध को बाँधकर ले आये। सिंहासन के सम्मुख पहुँचकर उसने महाराज सहित समस्त सभासदों को शीश झुकाया और मौन मुद्रा में खड़ा हो गया।

महाराज विकर्ण की कड़कती हुई आवाज गूँजी—"दुष्ट बहेलिये तूने राजकुमार का वध किया है, बोल ! तुझे मृत्युदण्ड क्यों न दिया जाए ?" बहेलिये ने एक बार सभा भवन में बैठे हर व्यक्ति पर दृष्टि दौड़ाई फिर राजपुरोहित पर एक क्षण को उसकी दृष्टि टिकी। उसे कुछ याद आया—उत्तर दिया बहेलिये ने—"महाराज ! मेरा इसमें क्या दोष, मृत्यु ने राजकुमार को मारने का निश्चय किया था; उसने ही मुझे माध्यम बनाया, मेरी बुद्धि भ्रमित की और मैंने राजकुमार को कस्तूरी मृग समझकर तीर छोड़ दिया। जो दण्ड आप मुझे देना चाहते हैं, वह मृत्यु को दें। चाहें तो राजपुरोहित से पूछ लें यह भी तो कहते हैं कि विधाता ने जितनी आयु लिख दी, उसे कोई घटा-बढ़ा नहीं सकता, घटनाएँ तो मृत्यु के लिए मात्र माध्यम होती हैं।"

विकर्ण का क्रोध विस्मय में बदल गया। उन्होंने राज-पुरोहित की ओर दृष्टि डाली तो लगा कि सचमुच ही वे भी बहेलिए का मूक समर्थन कर रहे हों। उन्होंने मृत्यु का आह्वान किया—मृत्यु उपस्थित हुई। महाराज ने उससे पूछा, आपने राजकुमार को मारने का विधान क्यों रचा ?' "उनका काल आ गया था" मृत्यु बोली। तो फिर काल को बुलाया गया। काल ने कहा—मैं क्या कर सकता था महामहिम ! राजकुमार के कर्मों का दोष था। कर्म-फल से कोई बच नहीं सकता। राजकुमार ही उसके अपवाद कैसे हो सकते थे ?'

कर्म की पुकार की गई—उसने उपस्थित होकर कहा—'आर्यश्रेष्ठ ! अच्छा हूँ या बुरा, मैं तो जड़ हूँ, मुझे तो आत्म-चेतना चलाती है, उसकी इच्छा ही मेरा अस्तित्व है, आप राजकुमार की आत्मा को ही बुलाकर पूछ लें, उन्होंने मुझे क्रियान्वित ही क्यों किया ?

और अन्त में बुलाई गई राजकुमार की आत्मा—दण्ड नायक ने प्रश्न किया—'भन्ते ! तुम कर्त्ता की स्थिति में थे क्या यह सच है कि तुमने कोई ऐसा कार्य किया, जिसके फलस्वरूप तुम्हें अकाल काल-कवलित होना पड़ा। 'शरीर के बन्धन से मुक्त आकाश में स्थिर राजकुमार की आत्मा थोड़ा मुसकराई फिर गम्भीर होकर बोली—"राजन् ! पूर्वजन्म में मैंने इसी स्थान पर मांस-भक्षण की इच्छा से एक मृग का वध किया था। मरते समय मृग को प्रतिशोध का भाव था, उसी भाव ने व्याध को भ्रमित किया। इसलिये व्याध का कोई दोष नहीं, न मुझे काल ने मारा है। मनुष्य के कर्म ही उसे मारते और जिलाते हैं इसलिये तुम मेरी चिन्ता छोड़ो। कर्म की गति बड़ी गहन है। अपने कर्मों का हिसाब करो, भावी जीवन की प्रगति और स्वर्ग मुक्ति सब कर्म की गति पर ही आधारित है, सो तात् तुम भी अपने कर्म सुधारो।"

अभी कमी है देवि !

राजा भर्तृहरि ने वैराग्य दीक्षा ले ली। विशाल राजपाट, वैभव-विलास, सुख-सुविधाएँ छोड़कर सन्यासी का बाना अपना लिया।

पार्वती जी ने देखा सराहा—"वाह ! कैसा प्रखर वैराग्य भाव उमड़ा, इतने विशाल वैभव को छोड़ दिया ..... !' भगवती कोई प्रशस्ति पत्र दें, इससे पूर्व ही शिवजी बोल पड़े "देवि ! अभी कमी है, देखो !"

पार्वती जी ने देखा सब कुछ त्यागने पर भी तीन वस्तुएँ आवश्यक समझकर भर्तृहरि ने साथ रखी ली थीं—

१. जलपात्र, २. तकिया और ३. हाथ का पंखा।

साधना चली, वैराग्य भाव और पुष्ट हुआ। क्रमशः वस्तुएँ छूटने लगीं। पहले पंखा छूटा हवा स्वतः मिलती है, दीवालों से घिरे होने पर ही तो कृत्रिम वायु-प्रवाह पैदा करने के लिए पंखा चाहिए। दूसरे क्रम में तकिया निरर्थक लगने लगा। सिर के नीचे अपना हाथ लगाना पर्याप्त है तो तकिया क्यों लिए फिरें ? तीसरे क्रम में जलपात्र भी निरर्थक लगने लगा। जगह-जगह निर्झर मिलते हैं, पीने के लिए अपने हाथ पात्र का आकार बना ही लेते हैं, फिर अलग से पात्र क्यों रखें ? पात्र भी छोड़ दिया। पार्वती जी ने कुछ कहना चाहा, शिवजी ने पुनः "कमी है" कहकर और देखने को कहा।

भर्तृहरि भिक्षा के लिए नियमित रूप से नगर गाँव में जाते। भिक्षा की सुविधा के लिए श्रद्धालुओं के निकट ही कहीं निवास की बात सोचते। वैराग्य भाव और परिपक्व हुआ। अपने अनुभव को जन हिताय समाज तक पहुँचाने के लिए 'वैराग्य शतक' लिखने लगे। श्मशान निवास, भोजन के लिए भिक्षार्थ भी जाना बन्द। कोई कुछ दे गया तो खा लिया अन्यथा निराहार ही साधना, चिन्तन, लेखन में तल्लीन रहने लगे।

एक बार ग्यारह दिन तक कोई आहार नहीं मिला। भर्तृहरि को शक्ति क्षीण होती अनुभव हुई। सोचा आहार न करने से शरीर असमय ही समाप्त हो जायेगा, कार्य अधूरा रह जाएगा। श्मशान भूमि में खोज की। पिण्डदान के क्रम में रखे गये आटे के पिण्ड मिल गये, एक पात्र में जल भी रखा था। चिता की अग्नि पर पिण्डों के आटे की रोटी सेंकने लगे। पार्वती जी से अब न रहा गया। बोलीं—"स्वामी ! अब देखिए, विशाल साम्राज्य का अधिपति, सर्वस्व त्यागी किस निस्पृह भाव से पिण्डों के आटे की रोटी चिता पर सेंककर क्षुधा शान्त करने की तैयारी कर रहा है। ऐसा वैराग्य ..... !"

शिवजी पुनः बीच में ही बोल पड़े—"देवि ! अभी कमी है।" जगज्जननी अधीर हो उठीं। बोलीं, "आपको क्या हुआ है ? अब क्या कमी दिखती है ?" शिवजी मुसकराये बोले, "देखना चाहती हो ? तो आओ मेरे साथ।" दोनों उठे। वृद्ध ब्राह्मण-ब्राह्मणी का स्वरूप बनाकर श्मशान भूमि में प्रकट हुए, जहाँ भर्तृहरि चिता की अग्नि पर रोटी पकाकर, ग्यारह दिन की भूख मिटाने की तैयारी में थे, ब्राह्मण ने अपना भिक्षापात्र आगे कर दिया। भर्तृहरि ने भिक्षुक पर एक दृष्टि डाली और सहज भाव से रोटियाँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसके पात्र में डाल दीं। स्वयं जलपात्र लेकर पानी पीकर ही पेट की अग्नि को कम करने को तैयार हुए। ब्राह्मण वेशधारी शिव बोले—"रोटी खाकर पानी कहा पीऊँगा ? वह भी मिल जाता तो……।" भर्तृहरि ने जलपात्र भी उसे थमा दिया।

ब्राह्मणी वेश में पार्वती ने पति पर प्रश्नवाचक दृष्टि डाली। मानो पूछती हों, "अभी भी कुछ कमी है ?" शिवजी ने पुनः वही संकेत किया।

भर्तृहरि ने उनके हाव-भाव देखे, पूछा "आप नेत्रों की भाषा में क्या बात कर रहे हैं ?" ब्राह्मण बोले, "यह कहती हैं कि तुमने इस बेचारे का सारा भोजन ले लिया, इसे कष्ट होगा। अच्छा ऐसा करो आधा तुम वापस ले लो—हम आधे से काम चला लेंगे ? भर्तृहरि की भौहें टेढ़ी हुईं, बोले "आप मुझे जानते नहीं। मैंने इतने बड़े साम्राज्य वैभव का मोह नहीं किया, इन रोटियों का मोह करूँगा ?"

शिवजी पात्र वहीं रखकर अन्तर्द्धान हो गये। पार्वती जी से बोले, "देखा देवि पदार्थों की आसक्ति तो नहीं रही, पर यश की आसक्ति अभी भी बनी हुई है।" इसीलिए मैंने कहा था "अभी कमी है देवि !" पार्वती जी का समाधान हो गया।

अनासक्ताः सुखिनो भवन्ति

प्रसेनजित की पुत्री राजकुमारी विपुला राजोद्यान भ्रमण के लिये निकली थीं। कौसुम्भ (केसरिया) परिधान के साथ हिरण्यमय चोली पहने राजकुमारी की सौन्दर्य कुमुदिनी सबको हतप्रभ कर रही थी। मस्तक पर ओपश, कानों में कर्णशोभन, उन्नत वक्षस्थल पर पड़ी मणियों की माला और ग्रीवा पर जड़ित सुवर्ण निष्क सब मिलकर उनकी रूप-राशि में शतगुणित सौन्दर्य की वृद्धि कर रहे थे। राजकुमारी की सुन्दरता की चर्चा उन दिनों सारे देश में थी। प्रत्येक युवक का हृदय उन्हें प्राप्त करने को बेचैन था।

प्रातःकाल की पीयूष बेला, भगवान भुवन भास्कर प्राची में अपना रथ तेजी से दौड़ाते आ रहे थे। इधर आयुष्मान नागसमाल, जो आज राजोद्यान में ही ठहरे हुये थे, भगवती सरस्वती की वन्दना में निमग्न थे। वीणा की झंकार से राजोद्यान का पत्ता-पत्ता भाव-विभोर हो रहा था। फूलों को देखकर ऐसा लगता था कि ये भैरवीराग सुनने के लिये ही ध्यान-मग्न हो गये हों।

केहरिनाद सुनकर मंत्र-मुग्ध मृग जिस प्रकार मरण-विस्मरण कर बहेलिये के पास जा पहुँचते हैं, सप्त स्वरों में अवगुण्ठित विपुला भी मदमस्त गजराज की भाँति उधर ही चलती चली गई, जहाँ नागसमाल वीणा पर भाव-विभोर भैरवी का अलाप कर रहे थे।

विपुला स्फटिक शिला पर बैठकर उन अमृतमय स्वर लहरियों का पान करते-करते भाव-विमुग्ध हो उठीं। प्राण विद्युत में चपलता आ गई, पाँव मचलने लगे, वीणा की झंकार के साथ पायलों का मधुर स्वर एकाकार होकर उद्यान के पक्षियों तक को मंत्र मुग्ध करने लगा।

न रुकती थी वीणा की संगीत धारा प्रवाहित करने वाली नागसमाल की उँगलियाँ और न थमना चाहते थे राजकुमारी के थिरकते पाँव। सूर्यदेव एक बाँस ऊपर चढ़ आये। महाराज प्रसेनजित स्वयं भी महारानी मल्लिका के साथ वहाँ आ उपस्थित हुये। महापंडित नागसमाल जो अब तक भगवती भक्ति की गोद में सच्चिदानन्द की रसानुभूति में डूबे थे, महाराज को सामने देखते ही रुक गये। वीणा की तान टूटते ही पाँव की थिरकन भी उजड़ गई। भाव-विभोर विपुला ने आगे बढ़कर वक्षस्थल पर पड़ी माला उतारी और चीवरधारी संन्यासी के गले में डाल दी।

स्थित प्रज्ञ की भाँति संन्यासी ने माला उतार फेंकी और प्रसेनजित की ओर देखते हुए कहा—"आर्य प्रवर ! कुशल-मंगल तो हैं न ?" "सब कुशल हैं ब्राह्मण श्रेष्ठ ! किन्तु आपने राजकुमारी द्वारा पहनाई गई माला क्यों उतार दी, आप जानते हैं कि भारतीय कुमारियाँ जिसे माला पहना देती हैं, वही उनका पति हो जाता है। फिर वे किसी और का वरण नहीं करतीं। आप यह भी अच्छी तरह जानते हैं। इसलिये अब तो आपको मेरी रूपवती कन्या के साथ विवाह करना ही पड़ेगा।"

नागसमाल ने हँसकर कहा—"महाराज ! सन्यासी और लोक-सेवक के लिये प्रजा ही पत्नी और प्रजा ही पति है। मैंने संसार की भलाई के लिये यह वेष धारण किया है, आप चाहते हैं, क्या मैं उससे पथ-भ्रष्ट हो जाऊँ।"

"सोच लो सन्यासी !"—महाराज के स्वर में कुछ तीखापन भी था और याचना का भाव भी—"हम आपको आधा राज्य भी देंगे। राजकुमारी के भरण-पोषण की कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी।"

'सौन्दर्य, प्रलोभन और भय कुछ भी संन्यासी को विचलित नहीं कर सकते राजन् !' यह कहकर नागसमाल ने वीणा उठाई और जिस तरह मृगों के बीच से सिंह निकलता है, उसी तरह धीरे-धीरे कदम बढ़ाते हुये राजोद्यान से बाहर निकल गये।

निर्दोष पर दया

बात उन दिनों की है जब चीन में ब्रिटेन शासन करता था। शंघाई (चीन) के एक गुरुद्वारे में आत्मासिंह नामक एक ग्रन्थी रहता था। आत्मासिंह के सौम्य स्वभाव से लोग बहुत प्रभावित थे। वह जितने चरित्रवान थे, उतने ही ईश्वर भक्त—उन्हें ईश्वरीय विधान पर अटूट आस्था थी।

आत्मासिंह के पास बाबासिंह नामक एक व्यक्ति आया करता था, वह कई बार आत्मासिंह की धर्म-पत्नी से भी मिला करता था। उसकी नीयत में और लोगों को शक था, इसलिये कई लोगों ने कानाफूसी की, पर आत्मासिंह ने कहा—"ईश्वर परायण की सच्ची पहचान यह है कि उसके घर व पास-पड़ोस के लोग भी नेक, ईमानदार और सच्चरित्र हों। मुझे अपनी धर्म-पत्नी पर पूर्ण विश्वास है। इसलिये मुझे कुछ करने की आवश्यकता नहीं। जो जैसा करेगा, वह अपना किया आप भर पावेगा।"

दैवयोग से कुछ दिन पीछे बाबासिंह की किसी ने हत्या कर दी। पुलिस ने आत्मासिंह पर सन्देह किया और परिस्थिति का लाभ उठाकर उसे गिरफ्तार कर मुकदमा चला दिया। आत्मासिंह अपनी निर्दोषिता के कोई स्थूल प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर सके इसलिये अंधे कानून ने उन्हें फाँसी की सजा दे दी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कई बार निर्दोष लोग ही सजा पा जाते हैं, तब लोग भ्रम में पड़ जाते हैं कि वास्तव में संसार में कोई ईश्वरीय सत्ता है भी अथवा यह केवल मात्र मनोविज्ञान है, जो कमजोर लोगों को डराने के लिये गढ़ा गया है, पर बात यह नहीं उसके गुणों की व्याख्या करते हुए वेद लिखते हैं—

त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजाअवसे धृषन्मनः।

चकृषे भूमि प्रतिमान मोजसोऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम्।।

—ऋग्वेद १/५२/१२

अर्थात् अन्तरिक्ष और आकाश से भी परे वह परमात्मा अनन्त धैर्य वाला है, पर वह अपने प्रभाव से बलशाली भी है। वह सबसे अधिक शक्तिशाली और सर्वव्यापक होकर भी निर्दोष की रक्षा और पापी को दण्ड भी देता है।

आत्मासिंह के साथ उसने अपने इस प्रभाव को साकार कर दिखाया। फाँसी के लिये शंघाई से जल्लाद न मिलने पर हाँगकाँग से जल्लाद बुलाये गये। नियत समय पर फाँसी प्रारम्भ हुई। गले में फाँसी का फन्दा डालकर जैसे ही नीचे का तख्ता हटाया गया कि एक जोर की धड़ाम की आवाज आई। रस्सा बीच से टूट गया आत्मासिंह फर्श पर जा गिरे, उन्हें कोई चोट नहीं आई।

पदाधिकारी बड़े विस्मित हुए। मामला ब्रिटिश काउंसिल जनरल सरजान ब्रेनन के पास पहुँचा। उन्होंने कई विशेषज्ञ बुलाकर रस्से की जाँच कराई परन्तु विशेषज्ञ कोई कारण नहीं ढूँढ़ सके कि रस्सा टूटा कैसे ? इस पर सभी आश्चर्यचकित थे। दूसरा रस्सा मँगाया गया। उसमें आत्मासिंह के वजन से चार गुना अधिक वजन के पत्थर लटकाकर रस्से की परीक्षा करली गई और दुबारा फाँसी की व्यवस्था की गई। इस बार बड़े-बड़े उच्च पदाधिकारी भी उपस्थित थे। जैसे ही दुबारा फिर फन्दा डालकर लटकाया गया कि पुनः पहले जैसी आवाज हुई और रस्सा टूट गया। आत्मासिंह को कोई चोट नहीं आई। चीन में ब्रिटिश राजदूत सर ह्यू नाचबुल ह्यूगेशन ने कहा—"आत्मासिंह निर्दोष है उसे फाँसी दी नहीं जा सकती क्योंकि उसका रक्षक परमात्मा है।" आत्मासिंह की फाँसी रद्द कर दी गई और उन्हें मुक्त कर दिया गया।

वैदूर्य कभी काँच नहीं हो सकता

आमोक्ष बहुत समय के बाद मिले थे। आचार्य भद्रबाहु के वह सभी सहपाठी रह चुके थे। सो उन्होंने उनका स्वागत राष्ट्राध्यक्ष के रूप में नहीं, मित्र के रूप में किया। आमोक्ष ने स्वयं भी समस्त राजकीय प्रतिबन्ध तोड़कर आचार्य भद्रबाहु से भेंट की। बहुत देर तक दोनों में एकान्त वार्ता होती रही।

आमोक्ष ने कहा—"तात् ! गुरुकुल में पढ़ाया गया ब्रह्मज्ञान तो भूल ही गये। आप नहीं जानते परिस्थितियाँ मनुष्य को क्या से क्या कर सकती हैं। राज्य का सुख व वैभव तो योगियों को भी भ्रष्ट कर सकता है, फिर हमारे लिए तो कहना ही क्या ? आप तो अभी भी आत्म-विकास की साधनाओं में रत हैं और एक हम हैं जो सारा धर्म-कर्म ही छोड़ बैठे, विवशता को क्या कहा जाए ?"

आचार्य बोले—"यह विवशता नहीं, मनुष्य की भूल है तात् ! यदि तुमने आत्महित का ध्यान रखा होता तो परिस्थितियाँ कैसी भी हों कुछ नहीं बिगाड़ पातीं।" आमोक्ष हँसकर बोले—"आर्य ! मेरे स्थान पर आप होते तो आपकी भी यही स्थिति होती ?" भद्रबाहु ने हँसकर कहा—

सुचिर पि अच्छमाणो, वेरुलिओ कायमणि ओभीसे।

न य उवेइ कायभावं, पाहन्न गुणेण नियएण।।

हे राजकुमार ! बैदूर्य रत्न है, तो उसे काँच की मणियों में कितने ही लम्बे समय तक मिलाकर क्यों न रखो, वह अपनी श्रेष्ठता के कारण रत्न ही रहेगा। कभी काँच नहीं होगा। सदाचारी व्यक्ति के प्रति अटूट निष्ठा वाले का जीवन भी ऐसा ही होता है।

अपनी तुलना काँच से हुई समझकर आमोक्ष मन ही मन कुढ़ गये, किन्तु उस समय वे कुछ ने बोले। प्रसंग बदल दिया। प्रातःकाल वे राजधानी लौट आये। कुछ दिन पीछे नगरोत्सव हुआ, उसमें अन्य भद्र पुरुषों के साथ वे आचार्य भद्रबाहु को भी आमन्त्रण देना न भूले। आचार्य भद्रबाहु के लिये निवास व्यवस्था राजोद्यान के एकांत अतिथि भवन में की गई। आमोद-प्रमोद के समस्त साधनों के अतिरिक्त वहाँ ऐसी कोई व्यवस्था न छोड़ी गई, जो कामोद्दीपन में सहायक न होती हो। रत्न-जटित सुकोमल शय्या, सामंतशाही परिधान, मदिर सुवास, नृत्यांगनाओं के चित्र, सब कुछ था वहाँ राग उत्पन्न करने वाला। दृष्टि मात्र से काम-वासना भड़काने वाली सुन्दरियाँ परिचारिकाएँ नियुक्त हुईं। आचार्य भद्रबाहु के आने पर उन्हें वहीं ठहराया गया।

नगरोत्सव एक सप्ताह चला, किन्तु भद्रबाहु के मन में किंचित मात्र विकार नहीं आया, उत्सव एक सप्ताह और भी चला—इस बार सुन्दरियों ने आचार्य भद्रबाहु को आकर्षित करने का हर संभव यत्न किया, किन्तु वे अपने प्रयत्न में असफल रहीं। उत्सव एक पूरा ही पखवारा बढ़ा दिया गया। सुन्दरियाँ, जिस तरह पतिंगा लौ पर टूटता है, उन्मत्त होकर आचार्य भद्रबाहु को विचलित करने का प्रयास करती रहीं, पर उन योगी के अन्तःकरण में दृष्टि दोष तक भी झाँक न पाया।

बसंत पर्व, राजोद्यान की सुषमा, सुन्दरियों के नृत्य गीत एक पल को भी उस वातावरण में कोई पहुँच जाता, तो कामासक्त हुये बिना न रहता और आचार्य भद्रबाहु तब वहाँ समाधि लगाये बैठे थे, जग की सुन्दरता में उनकी निष्कलुष आत्मा ब्रह्म के सौन्दर्य में विलीन हो रही थी। महाराज आमोक्ष मंत्रि परिषद के साथ वहाँ पहुँचे और आचार्य को प्रणिपात करते हुए बोले—"सत्य है तात् ! दृढ़ निष्ठा हो गई है आत्मा में जिसकी, संसार प्रलोभन उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संस्कृति के लिए त्याग

राजसूय-यज्ञ के समापन पर एक बृहत् सांस्कृतिक समारोह मनाया गया। महाराज तुर्वस् के आग्रह पर इस आयोजन में महर्षि जेमिनि भी सम्मिलित हुए थे।

ऋषि के स्वागत में राजकुमारी अर्णिका ने नृत्य प्रस्तुत किया। संगीताचार्य बोहित ने साज दिया था। राजकुमारी ने देवपूजन की अद्भुत नृत्य-नाटिकाएँ इस समारोह में प्रस्तुत कीं। दर्शक समाज को आत्म-विभोर कर दिया था उन्होंने।

जब उनके नृत्य-रास में सारा दर्शक समाज आत्मविस्मृत हो रहा था, उस समय त्रिकालज्ञ जेमिनि की आँखों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। अर्णिका ने देखा महर्षि रुदन कर रहे हैं—"मैंने ऐसा तो कोई दृश्य प्रस्तुत नहीं किया, जो उत्तेजक या अश्लील हो फिर महर्षि दुःखी क्यों हो गये ?" यह सोचते ही गति मध्य में ही भंग हो गई। पाँव रुक गये, हाथ नीचे, साज बन्द हो गया। सभा में इस अप्रत्याशित घटना के लिये सन्नाटा छा गया।

महाराज तुर्वस् की दृष्टि महर्षि के गीले मुख-मण्डल पर पड़ी। किसी अनहोनी के भय से उन्होंने समारोह तत्काल विसर्जित कर दिया। उत्सव-भवन में राजकुमारी अर्णिका, आचार्य बोहित, महाराज तुर्वस् और स्वयं जेमिनि के अतिरिक्त कोई शेष न रहा। सब लोग अपने-अपने निवास स्थानों को चले गये।

जेमिनि ने पूछा—"तुर्वस् यों ही समापन होने से पूर्व सभा क्यों विसर्जित कर दी गई ? कोई बात हो गई, अर्णिका को कुछ हो गया क्या ?"

"नहीं देव ! ऐसा कुछ नहीं, हम तो कारण आपसे ही जानना चाहते हैं। अर्णिका ने कोई भूल की, लगता है, जिससे आपको कष्ट हुआ। गुरुदेव ! यह आपकी ही बालिका हैं, रंगमंच पर आने का इसका प्रथम अवसर था। कोई भूल हुई हो, तो क्षमा करें देव !"

महर्षि को वस्तुस्थिति का अब पता चला। रुके हुये अश्रु बिन्दु उत्तरीय वस्त्र से पोंछते हुये उन्होंने कहा—"नहीं तुर्वस् ! ऐसी कोई बात नहीं, अर्णिका तो संगीत की साक्षात् देवी है, मेरी आँखों के आँसू तो विवशता के आँसू थे। मुझे वह भविष्य दिखाई दे रहा है, जब आयावर्त का संगीत-शास्त्र विदेशी आक्रमणकारियों के प्रभाव से अश्लील हो उठेगा। जो विद्या आज भारतीय जीवन में सरसता और संस्कार जाग्रत कर रही है, वही एक दिन कामुकता और अश्लीलता भड़काने का माध्यम बनेगी, बस यही एक दुःख है, जो हृदय को छलनी किये दे रहा है।" इतना कहते-कहते महर्षि की आँखें पुनः भर आईं।

"गुरुदेव !" अर्णिका ने आगे बढ़कर कहा—"कोई उपाय, जिससे हम अपनी संगीत संस्कृति को दूषित होने से बचा सकें, हो तो स्पष्ट आदेश दें भगवन् ! अपने धर्म, अपनी संस्कृति के लिए हम सर्वस्व न्योछावर करने के लिये तैयार हैं।"

महर्षि जेमिनि ने अर्णिका की पीठ पर स्नेह का हाथ फेरते हुए कहा—"अर्णिका ! तुमसे यही आशा थी मुझे। एक उपाय है, यदि तुम आजीवन अविवाहित रहकर संगीत कला का जन-सामान्य में प्रसार कर सको, तो उस समय भी राष्ट्र के किसी भी कोने में वह सुरक्षित रह सकती है। जड़ बनी रहेगी तो उसे हरे-भरे वृक्ष के रूप में कभी-भी पुष्पित और पल्लवित किया जा सकेगा।"

अर्णिका तथा आचार्य बोहित उस दिन से संगीत-कला का प्रसार करने लगे। मृत्युपर्यन्त अविवाहित रहकर उन्होंने इस कला को घर-घर पहुँचाया, पर आज जिनके पास साधन है, वह भी कामुक संगीत के विकास में लगे हैं, देश में महर्षि जेमिनी की आशंका ही सत्य सिद्ध हो रही है।

विद्यावान जयते कामः

"भद्रे !" आचार्य द्रुमत उपकौशल ने अपनी पत्नी के देदीप्यमान ललाट की ओर प्रश्न-वाचक दृष्टि डाली और बोले—"मनुष्य जीवन की सम्पूर्ण सफलता और तेजस्विता का आधार विद्या है—भगवती ! जिस प्रकार मेरी कन्या गृह-कार्य में निपुण, सुशीला और विदुषी है उसी प्रकार का बौद्धिक प्रतिभा सम्पन्न वर भी मिलता तो सोने में सुहागे का प्रसंग चरितार्थ हो जाता।"

आचार्य माता ने कहा—"ऐसे युवक की खोज करना आपके लिये तो कठिन नहीं है आर्य श्रेष्ठ ! आपके विद्यालय में तो न केवल सामान्य नागरिकों के बच्चे वरन् कौशल, कुरु, काँची, मगध, ऊरु, अर्यमारण्य, उदीच्यायनीय कांबोज, वाराणसी और अंगिरा द्वीप तक के छात्र विद्याध्ययन करते हैं, क्या उनमें से एक भी बालक आपकी कल्पना को साकार नहीं करता।"

"विद्या का अर्थ बौद्धिक प्रतिभा ही नहीं होता प्रिये ! वरन् उसका व्यावहारिक जीवन में नीति निपुण समावेश भी होता है। पवित्र बाह्याचरण वाले व्यक्तियों का भी अन्तःकरण कलुषित हो सकता है, ऐसा व्यक्ति कितना ही शिक्षित हो, विद्वान् नहीं कहा जा सकता। विद्वता विराट् ब्रह्म की उस आभ्यान्तरिक अनुभूति का नाम है, जो उसे विश्वात्मा के सिद्धान्तों का नैष्ठिक अनुगामी बना देती है। ऐसा व्यक्ति घोर विषम परिस्थितियों में भी आत्मा को प्रतारित नहीं कर सकता। अपने स्वार्थ के लिये एक कीड़े को भी न छला जाये, जिसमें यह भाव हो वही सच्चा विद्वान है। मुझे सन्देह होता है कि इस परीक्षा में कहीं समस्त गुरुकुल असफल न हो जाएँ, इसीलिये उसका साहस नहीं होता तथापि एक और उपाय कर देखता हूँ, सम्भव है योग्य युवक की प्राप्ति यहीं हो जाए।"

आचार्य प्रवर ने अपने समस्त स्नातकों को एकत्रित किया और बोले—"तात् ! आप सब जानते हैं कि मेरी कन्या विवाह योग्य हो चुकी है, मेरे पास धन का अभाव है आप लोग अपने घरों में जाएँ और एक-एक आभूषण मेरी कन्या के लिये लाएँ जो सर्वश्रेष्ठ आभूषण लायेगा, उसी के साथ अपनी कन्या का विवाह कर देंगे, किन्तु यह बात गुप्त रहनी चाहिये, माता-पिता तो क्या यदि दाहिना हाथ आभूषण लाये तो बाँयें हाथ को भी पता न चले।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

द्रुमत उपकौशलाचार्य की कन्या असाधारण विदुषी, सुशीला और सौन्दर्यवती थी, हर स्नातक का हृदय उसे पाने के लिये बेचैन हो उठा। वे सबके सब आतुरता-पूर्वक घरों को गये और आभूषण चुरा-चुराकर लाने लगे। जो भी स्नातक कैसा भी आभूषण लाता, आचार्य, उसे उसके नाम के सामने लिखकर एक ओर सुरक्षित रख देते। कुछ ही दिनों में आभूषणों के अम्बार लग गये, पर जिस आभूषण की खोज थी आचार्य प्रवर को वह अभी तक भी लाकर कोई न दे सका।

वाराणसी के राजकुमार ब्रह्मदत्त सबसे पीछे लौटे निराश और खाली हाथ। उत्सुकतापूर्वक आचार्य ने पूछा वत्स ! तुम कुछ नहीं लाये ? "हाँ गुरुदेव ! यों कि आपने कहा था कि आभूषण इस तरह लाया जाये कि कोई देख भी न पाये, वह शर्त पूरी करना असम्भव है क्योंकि मैंने बहुत उपाय किये, तो भी एकान्त तो मिल ही नहीं पाया।"

"क्या तुम्हारे माता-पिता और अन्य कुटुम्बीजन सोते नहीं—रात में निकाल लेते आभूषण" आचार्य ने विस्मय दृष्टि डालते हुये पूछा। ब्रह्मदत्त ने उत्तर दिया, "तात ! मनुष्यों से सूनापन मिल सकना सरल है, पर वहाँ से मेरे अतिरिक्त मेरी आत्मा, सर्वव्यापी परमात्मा की उपस्थिति तो टाली नहीं जा सकती थी, फिर आपकी शर्त कैसे पूरी होती ?

आचार्य की आँखें चमक उठीं, वह जो आभूषण चाहते थे मिल गया। ब्रह्मदत्त को उन्होंने हृदय से लगा लिया। सभी के आभूषण लौटा दिये उन्होंने और कन्या के पाणिग्रहण की तैयारी में जुट गये।

'साधु तो ऐसा चाहिये'

एक नगर का राजा बड़ा निर्दयी था। वह प्रजा का उत्पीड़न करके बहुत-सा धन जमा करता था, किन्तु उसे प्रजा की भलाई में लगाने के स्थान पर अपने व्यक्तिगत भोग-विलास में खर्च कर डालता था। प्रजा उसके शासन में बड़ी दुःखी थी, किन्तु उसके भय एवं आतंक के कारण कोई कान न हिला पाता था। सब चुप-चाप उसका अत्याचार सहन कर रहे थे।

राजा को आखेट का भी बहुत व्यसन था। वह प्रायः नित्य ही नगरान्तर में स्थित एक जंगल में शिकार खेलने जाया करता था और वहाँ पर अपने पैने बाणों से अनेक पशुओं को मार डालता और घायल कर देता था। जंगल के पशु उसके आने के समय उसके घोड़े की टापों का शब्द सुनकर भयभीत इधर-उधर भागने लगते थे। जंगल में बड़ा ही आतंक और अशान्ति छा जाती थी।

उसी जंगल में एक वृद्ध महात्मा रहा करते थे। वे लोक-मंगल की कामना से उस अटवी में अनेक वर्षों से अपनी साधना में निरत थे। राजा की उस अकरुण आखेट-क्रीड़ा से उनकी साधना में बड़ा विघ्न पड़ता था। किन्तु उस विघ्न की उन्हें उतनी चिन्ता नहीं थी, क्योंकि पद्मासन लगाकर जब वे ध्यान-मग्न होते थे, तो उनकी समग्र इन्द्रियाँ एकाग्र होकर अन्तर्मुखी हो जाती थीं और उन्हें जंगल की वह हलचल प्रवाहित नहीं कर पाती थी। किन्तु उनका करुण हृदय तब अवश्य विचलित हो जाता था, जब उस राजा के आहत किये हुये जीव उनके साधना-स्थल के सामने से बाण-बिद्ध शरीर से रक्त बहाते और कातर स्वर में कराहते हुये भागते थे, किन्तु तब तो वे विचलित होकर आसन से ही उठ खड़े होते थे, जब कोई निरीह मृग उनकी वेदिका के पास आकर शरीर में घुसे बाण को निकाल देने के लिये अपनी भाषा और भरे हुये नेत्रों से प्रार्थना करता था।

महात्मा ने धैर्यपूर्वक विचार किया और समझ लिया कि अवश्य ही राजा अपनी प्रजा पर अत्याचार करता और सताता होगा। उन्हें निश्चय करते देर न लगी कि अब उनका साधना-स्थल यह अटवी नहीं, राजा का नगर है। और साधना का स्वरूप ध्यानस्थ होना नहीं वरन् उस राजा का स्वभाव बदलना है। महात्मा तुरन्त ही आवश्यक उपकरणों के साथ नगर की ओर चल दिये।

नगर में पहुँचकर वे राजा से मिले और कहा—"राजन ! मैं आप के नगर में रहकर कुछ दिन साधना करना चाहता हूँ। उसके लिए एक स्थान चाहता हूँ।" राजा ने महात्मा का यथोचित सत्कार तो किया किन्तु स्थान के लिये तुरन्त उत्तर न दिया। वह कुछ सोचने लगा।

राजा का एक बड़ा ही अच्छा आम का बगीचा था। किन्तु उसकी देख-रेख का प्रबन्ध ठीक नहीं था। फल आने पर तमाम पशु-पक्षी और आने-जाने वाले राहगीर फसल को बरबाद कर डालते थे। राजा ने सोचकर कहा—"आप हमारे बगीचे में रह सकते हैं, किन्तु उसकी रक्षा का उत्तरदायित्व आप पर होगा।" महात्मा राजा की चतुरता पर मन ही मन मुसकराये और शर्त मानकर बाग में चले गये।

महात्माजी बाग में रहकर अपना भजन-पूजन करते और बड़े प्रेम से उसकी देखभाल करने लगे। फसल आई और महात्मा की देखभाल और शुभ प्रभाव के कारण पिछली फसलों की अपेक्षा अधिक फल उत्पन्न हुये। उचित रक्षक के कारण पिछले वर्षों की भाँति फलों की बरवादी भी न हुई। बच्चे जरूर आते थे, किन्तु महात्माजी को देखकर ठिठक जाते थे। कोई फल छूने का साहस न करता था। महात्माजी उन्हें प्रेम से बुलाते और अपने हाथ से पककर भूमि पर गिरे आम खिलाते और अच्छी-अच्छी शिक्षाएँ देते। उनके प्रेम और सद्व्यवहार से बच्चे बड़े सभ्य और सुशील बन गये।

इस प्रकार महात्मा अपने कर्तव्य में निरत अवसर की खोज में थे ही कि एक दिन राजा अपने एक संबंधी के साथ बाग में आया और महात्माजी से मीठे-मीठे आम लाने को कहा। महात्मा ने तुरन्त पके हुए आम तोड़कर और उन्हें धोकर बड़े प्रेम से राजा को लाकर दिये।

राजा का संबंधी भी राजा था, किन्तु इस राजा की भाँति अभिमानी तथा अन्यायी नहीं था। वह बड़ा धार्मिक तथा सुशील स्वभाव का था। वह महात्मा द्वारा ली जाने वाली उस सेवा से प्रसन्न न था, किन्तु दूसरे की व्यवस्था में हस्तक्षेप ठीक न मानते हुए इतना अवश्य कहा कि किसी महात्मा से कोई सेवा लेना उचित नहीं है। वह आम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org

www.vicharkrantibooks.org

खाने में संकोच कर रहा था। तभी बगीचे का स्वामी वह राजा बोला, "आप भी क्या संकोच में पड़ गये। आम खाइये। इस प्रकार हर जटा-जूटधारी और गेरुए वस्त्री बाबा को महात्मा मान लेना ठीक नहीं।" संबंधी कुछ न बोला।

तभी राजा ने एक आम मुँह में लगाकर चूँसा और तुरन्त थूक दिया। आम बहुत खट्टा था। राजा ने क्रोध के भाव में कहा—"देखा आपने कितना बड़ा महात्मा है कि बाग के सबसे खट्टे आम छाँटकर दे गया ?" इस बार तो वह राज-संबंधी भी असमंजस में पड़ गया। महात्मा के प्रति उसे भी संदेह होने लगा। राजा ने महात्मा को बुलाया और रुष्ट भाषा में बोला—"आप से लाने को कहा था मीठे आम और आप जान-बूझकर बाग के सबसे खट्टे आम दे गये। क्या यही आपका धर्म है ?"

महात्मा ने बिना किसी विकार के शान्त एवं विश्वस्त स्वर में कहा—"राजन् मैंने कोई अपराध नहीं किया। मुझे ज्ञान ही नहीं है कि बाग के कौन-से फल मीठे हैं और कौन-से खट्टे ? क्योंकि आमों को बिना खाये यह ज्ञान नहीं हो सकता। मैंने आम खाना तो दूर चखा भी नहीं।" राजा का रोष कुछ कम हुआ। वह बोला, "क्यों ! ऐसी क्या बात थी, जो आपने अब तक एक भी आम नहीं खाया।"

महात्मा ने उसी सस्मित मुख और शान्त वाणी में कहा, "राजन् ! मैं इस बाग में रक्षक होकर नियुक्त हुआ हूँ भक्षक होकर नहीं। आपने मुझे केवल रखवाली का उत्तरदायित्व सौंपा था, फल खाने का अधिकार नहीं दिया था। तब मैं आम खाने की अनाधिकार चेष्टा किस प्रकार कर सकता था ? ऐसा करके लोक में अपयश और परलोक में नरक-यातना का भागी बनना मुझे स्वीकार नहीं है।"

महात्मा का रहस्यपूर्ण उत्तर सुनकर वह संबंधी राजा बड़ा प्रभावित हुआ। उसने धन्य कहकर महात्मा को नमस्कार किया, किन्तु बाग का स्वामी राजा उस सबका अर्थ न समझ पाया। उसने जिज्ञासापूर्ण नेत्रों से सम्बन्धी की ओर देखा। संबंधी ने बतलाया कि अपने इस उत्तर के माध्यम से महात्माजी ने राजा का धर्म निरूपण किया है कि "राजा को अपनी प्रजा का रक्षक होना चाहिये, भक्षक नहीं। उसका पोषण करना चाहिये, शोषण नहीं। उसका घालन नहीं, पालन करना चाहिए।"

संबंधी की व्याख्या सुनकर राजा को समझते देर न लगी कि महात्मा अपने आचरण द्वारा सदाशयता की शिक्षा देने के लिये ही यहाँ आये हैं। महात्मा के मंत्रोपम प्रभाव से राजा को ज्ञान हो गया। उसे अपने पिछले जीवन पर बड़ी ग्लानि हुई। राजा ने महात्मा को प्रणाम कर उसी समय प्रजा का शोषण और निरीह जीव की हत्या न करने का संकल्प किया; जिसकी प्रामाणिकता उसकी भरी हुई आँखें और निरभिमान मुख-मुद्रा से प्रकट हो रही थी।

राजा का स्वभाव बदल गया। महात्मा का उद्देश्य पूरा हो गया। वे पुनः अपनी साधना के लिये अटवी को लौट गये।

देवता ऐसे ही होते हैं

"पटवारी जी ! विक्रमपुर से अकाल पीड़ित लोग धड़ाधड़ हमारे गाँव में आ रहे हैं। वहाँ के बड़े ही हृदय-दाहक समाचार प्राप्त हो रहे हैं। अन्न का बहुत अभाव हो गया है। लोग इसके लिए तड़प-तड़प कर मर रहे हैं, अपनी जमीन, जायदाद और जेबर आदि को बेचकर पेट की क्षुधा की पूर्ति कर रहे हैं। अन्न को जमा करने वालों के पौ बारह हो रहे हैं।" विक्रमपुर से आने वाले एक मित्र ने धामणगाँव के पटवारी श्री माणको जी बोघला को सूचना दी।

माणको जी के तन-बदन में आग लग गई। उसने सोचा "मनुष्य की यह दुर्दशा हो और हम यहाँ चैन की बंशी बजाते रहें, यह नहीं हो सकता। यदि हमारे ऊपर ऐसी मुसीबत आती तो हम भी किसी दयावान की दया के पात्र बनने की आशा करते हैं। आज हजारों लोग भूख के मारे बिलख रहे हैं, कई-कई रोज तक उन्हें खाना नसीब नहीं होता। धिक्कार है हमारे जीवन को जो हम भर पेट खाना नित्य प्रति खाते हैं। आज से हम भी दो दिन में एक बार अन्न ग्रहण करेंगे।"

माणको जी को अन्तःप्रेरणा हुई "माना कि अकाल-पीड़ितों को देखकर तुमने भी अपना भोजन कम कर दिया है। तुम्हारी प्रतिज्ञा सब प्रकार से प्रशंसनीय है। तुम्हारी भावना की हर एक व्यक्ति कदर करेगा। तुम्हारी उनके प्रति सहानुभूति औरों के लिए अनुकरणीय है। स्वयं भूखा रहकर दूसरों को खिलाना एक महान् आदर्श है। परन्तु इससे सारी समस्या का हल तो नहीं हो सकता।"

"तो इस समस्या का हल कैसे हो ?" उसने अपने मन से पूछा। आवश्यकता तो आविष्कार की जननी है ही। विचार-मंथन से वह इस परिणाम पर पहुँचा कि इस क्षेत्र के जितने जमींदार और अन्न के व्यापारी हैं, उनकी एक सभा बुलाई जाए। उनसे अनुरोध किया जाये कि वह अन्न के अभाव में तड़पती आत्माओं को तृप्त करने के लिए अपने भण्डार खोल दें या वह इसे सस्ते दामों पर दें और हम सार्वजनिक चन्दा करके पीड़ितों की सेवा करें।

मनुष्य के कार्य तो विचारों पर ही आधारित होते हैं। यह विचार करते ही माणको जी ने अपने क्षेत्र के बीच ग्रामों के जमींदारों और अन्न के व्यापारियों की एक मीटिंग बुला, पीड़ितों की दुर्दशा का चित्र खींचकर उन्होंने कहा कि इस समय मनुष्यता के नाते हमारा और आपका यह कर्तव्य हो जाता है कि हम पीड़ितों के लिए कुछ करें। यही हालत कभी हमारे साथ भी हो सकती है। इसलिए जिनके पास पर्याप्त मात्रा में अन्न जमा है, उनसे हम प्रार्थना करेंगे कि वह इसे दान रूप में दे दें, ताकि हम उसे एक स्थान पर एकत्रित करके कई जगह इसके भण्डार खोल दें। इस प्रकार से हम उन लोगों की कुछ सेवा कर सकेंगे।

हर एक मनुष्य की मनोवृत्ति पृथक्-पृथक् होती है। उनके विचारों में भिन्नता होती है। एक स्वार्थी है, तो दूसरा परमार्थी। एक अपने स्वार्थ के लिए दूसरों का गला घोंटना चाहता है, तो दूसरा अपने स्वार्थ की परवाह न करके दूसरों का भला करता है। भगवान निःस्वार्थ सेवा की बुद्धि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किसी-किसी को ही प्रदान करते हैं। धन्य हैं वह मनुष्य, जो अपना सर्वस्व प्रभु के चरणों में अर्पण कर देते हैं। इस स्वार्थी दुनिया में कौन किसी की बात सुनता है ? स्वार्थी को किसी के दुःख और कष्ट की चिन्ता नहीं होती। उसे तो केवल अपने ही काम की फिकर रहती है। बल्कि वह तो इसे स्वर्ण अवसर मानता है और इससे भरपेट लाभ उठाना चाहता है।

जितने भी लोग उस मीटिंग में आये थे, तीन व्यक्तियों के अतिरिक्त किसी के कान पर जूँ तक न रेंगी। सभी ने स्पष्ट उत्तर दे दिया। उन्होंने कहा, "दूसरों के लिए हम अपने बच्चों को भूखा नहीं मारना चाहते। अपने परिवार का पालन हमारा सबसे पहला कर्तव्य है। अब हम अपना सब कुछ लुटा दें तो कल हम क्यों करेंगे ?"

"मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि आप अपना सब कुछ दान कर दें। अपनी शक्ति सामर्थ्य के अनुसार ही दें।" माणको जी ने पुनः निवेदन किया। पहले तो वह बहाना कर रहे थे अब उन्होंने साफ कह दिया "इस समय हम कुछ दान न देंगे। दूसरों को सीख देने से पहले स्वयं करके क्यों नहीं दिखाते ? तुम्हारे पास भी तो इतनी धन सम्पत्ति है, इसे गरीबों को क्यों नहीं लुटा देते ? दूसरों के पीछे क्यों पड़ गये हो ?"

माणको जी अपनी धन सम्पत्ति को भगवान की ही मानते थे। वह समाज सेवा के कार्यों में इसे लगाने में कभी हिचकिचाते नहीं थे। वह तो पहले से ही इसे व्यय करने के लिए तैयार थे, परन्तु उस धन से हजारों पीड़ितों की आवश्यकता पूर्ति तो न हो सकती थी, इसलिए उन्होंने यह योजना बनाई थी। सब ओर से निराश होकर अपने अन्न धन पर ही सीमित रहना पड़ा। इस हालत में चन्दे की भी कोई सूरत न बन पाई। उन्होंने अपने अन्न के भण्डार खोल दिये। यहाँ पर एक अनार सौ बीमार वाली कहावत चरितार्थ हो रही थी। वह अन्न कितने दिन चलता ? इसके समाप्त होने के बाद उन्होंने अपने सारे धन से अन्न मोल ले लिया। स्वार्थी लोग अवसर से लाभ उठाकर बहुत महँगे दामों पर बेच रहे थे। माणको जी का धन कितने दिन काम देता ? सब पीड़ित इधर ही टूट पड़े। इससे उसका भी अन्त हो गया। अब पशु रह गये थे, वह भी बेच दिये गये। सुरसा की भूख के सामने माणको जी का धन क्या करता ?

अब वह कुछ उदास रहने लगे कि अब क्या करना चाहिए ? सब धन सम्पत्ति तो दरिद्रनारायण के अर्पण कर दी। अब क्या प्रबन्ध हो ? दानी पिता का पुत्र भी दानी निकला। उसने पिता को उदास देखकर कहा—"पिता जी ! आपने जो हमें जेवर दिया था, वह तो आपका ही है। उसे आप प्रसन्नतापूर्वक अपने काम में ले सकते हैं। आपकी प्रसन्नता के लिए तो मैं अपना शरीर तक दे सकता हूँ, यह जेवर तो कुछ चीज नहीं है।" माणको जी का मुरझाया हुआ चेहरा कमल के फूल की तरह खिल उठा।

जेवर बेचकर अभावग्रस्तों की सेवा की गई, परन्तु वह भी कब तक चलता ? समाप्त हो गया। माणको जी को अब कुछ सन्तोष हुआ कि मैं भी पीड़ितों के साथ पीड़ित हो गया हूँ। भगवान ने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की है। अब मैं उनके कष्ट को अच्छी तरह से अनुभव कर सकूँगा क्योंकि गरीब ही गरीब के दुःख को समझ सकता है। जिसे कभी किसी वस्तु का अभाव ही न हुआ हो वह क्या जाने गरीबों के दर्द को।"

क्या हमने कभी सोचा कि हम भी केवल अपने स्वार्थ के लिए ही प्रयत्नशील रहते हैं या कभी किसी दुःख के मारे की राम कहानी सुनकर उसे सहायता देने के लिए तैयार हो जाते हैं ? क्या हम केवल धनदान बनने की इच्छा ही रखते हैं या भगवान के दिये हुए धन का सदुपयोग करना भी जानते हैं ? क्या ऐसा तो नहीं होता कि अपने लाभ के लिए दूसरे के गले पर छुरी चलाते हों ? क्या माणको जी की तरह सत्कार्यों में अपने सारे धन को नहीं लगा देना चाहिए ?

बुला सकना संभव नहीं

हुसेन नाम का एक बड़ा जौहरी था, जो रत्नों का व्यापार करने के कारण सर्वत्र "हुसैन जौहरी" के नाम से प्रसिद्ध हो गया था। एक समय व्यापार के लिये इसको रोमनगर जाना पड़ा। वह उस देश के मंत्री से मिला और शीघ्र ही उसका मित्र बन गया।

एक दिन मंत्री के साथ घोड़े पर सवार होकर वह जंगल में जा रहा था। वहाँ उसे हीरा-मोती की झालरें लगा हुआ एक विशाल तम्बू नजर आया। इस तम्बू के पास एक बड़ी सुसज्जित सेना खड़ी थी। इस सेना ने अपने सेनापति के साथ उस तम्बू की प्रदक्षिणा की और रोमन भाषा में कुछ प्रार्थना करके चली गई। इसके पश्चात् अत्यन्त सफेद वस्त्र पहिने हुए कुछ वृद्ध पुरुष आये और वे भी तम्बू की प्रदक्षिणा तथा प्रार्थना करके चले गये। अब दो-तीन-सौ सुन्दरियाँ जवाहरात से भरे थालों को हाथ में ले कर आईं और सबकी तरह तम्बू की परिक्रमा करके चली गईं। सबके अन्त में उस देश का राजा अपने मन्त्रियों को लेकर आया और तम्बू के भीतर चला गया। थोड़ी देर बाद वह बाहर आया और गद्-गद् कंठ से कुछ कहकर चला गया।

हुसैन को यह कृत्य देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ उसकी समझ में कोई बात नहीं आई, इसलिये अपने साथी मंत्री से उसने इसका रहस्य जानना चाहा। मंत्री ने बतलाया कि हमारे राजाधिराज के एक बड़ा सुन्दर और गुणवान पुत्र था। उसके ऊपर राजा का बड़ा प्रेम था। अकस्मात् उसका देहान्त हो गया और बादशाह शोक सागर में डूब गया। इस तम्बू में उसी शाहजादे की कब्र बनी है। प्रतिवर्ष कुमार की मृत्यु तिथि के दिन बादशाह सेना और परिवार सहित यहाँ आता है और कब्र की प्रदक्षिणा करके चला जाता है। उन सबने रोमन भाषा में जो प्रार्थनाएँ की उन का आशय यही है कि अगर सेना की वीरता से, विद्वानों के ज्ञान से, धन सम्पत्ति आदि किसी शक्ति से संसार से चले गये व्यक्ति को वापस बुला सकना सम्भव होता तो हम तुमको अवश्य बुला लेते। पर किसी प्रकार ऐसा हो सकना असम्भव है, इससे हम तुम्हारे लिये शोक ही प्रकट कर सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस वृतान्त को सुनकर हुसैन के चित्त में वैराग्य और पश्चाताप की एक लहर पैदा हो गई और उसने अपना व्यापार-धन्धा छोड़कर भगवान का भजन करने का निश्चय कर लिया। अपने देश में आकर उसने प्रभु-भक्ति में ध्यान लगाना शुरू किया। वह प्रति आठवें दिन लोगों को उपदेश भी दिया करता था।

वास्तविक सीख

हुसेन का कहना है कि उसे तीन बार विशेष रूप से लज्जित होना पड़ा। इनमें से पहला एक शराबी था। वह एक दिन शराब के नशे में पैर इधर-उधर पटकता जा रहा था और कभी-कभी कीचड़ में गिर भी जाता था। हुसेन भी वहीं होकर जा रहा था। उसने कहा—"अरे भाई, पैर ठिकाने रखकर चलो, नहीं तो कीचड़ में गिर जाओगे।"

यह सुनकर शराबी ने कहा—"अरे भले आदमी ! तू ही अपने पैरों को सँभालकर रख, क्योंकि तू एक धार्मिक पुरुष है। मैं तो शराबी हूँ, अगर गिर जाऊँगा तो फिर उठ बैठूँगा और पानी से शरीर धो डालूँगा पर यदि तू गिर जाएगा तो फिर सहज में स्वच्छ न बन सकेगा।"

दूसरी घटना में एक बालक दीपक लेकर आ रहा था। हुसेन ने पूछा—"यह दीपक कहाँ से लाया ?" उसी समय संयोगवश हवा के झोंके से दीपक बुझ गया। उस बालक ने कहा—"पहले तो यह बतलाओ कि दीपक गया कहाँ ? फिर मैं तुमको बतलाऊँगा कि दीपक कहाँ से आया था।"

तीसरी घटना एक रूप यौवन सम्पन्न युवती की है। उसने हुसेन बाबा के पास आकर क्रोधपूर्वक अपने पति के निर्मोहीपन की शिकायत की।

हुसेन ने कहा—"बेटी, पहले तू अपने माथे के वस्त्र को ठीक करले जो हट गया है, फिर जो कुछ कहना हो सो कहना।"

यह सुनकर उस युवती ने कहा—"अरे भाई, मैं तो ईश्वर के बनाये एक पदार्थ के प्रेम में मुग्ध होकर बेखबर हो गई थी। मुझे अपने शरीर का भी होश न था। अगर तुमने सावधान न किया होता तो मैं ऐसी ही हालत में बाजार में चली जाती। पर प्रभु के ध्यान में मस्त होने पर भी 'माथा उघाड़ा है या ढका' ऐसी साधारण बात का तुम्हें ध्यान बना रहता है, यह देखकर मुझे तो आश्चर्य होता है।"

महात्मा हुसेन का कहना है कि इन शब्दों को सुनकर मैं वास्तव में सावधान हो गया।

आत्मशुद्धि की आवश्यकता

एक थे स्वामी जी। स्वामीजी का नाम था आचार्य ज्ञानसागर जी। वे बहुत बड़े ज्ञानी थे। उनके एक शिष्य ने उनके चरणों में बैठकर शास्त्रों का गहरा अध्ययन किया था। परिणामस्वरूप वह शिष्य भी अच्छा विद्वान बन गया। वह स्नान-ध्यान आदि नित्य कर्म बड़े नियम और विधि से करता था। कुछ समय बाद स्वामीजी के इस ज्ञानी शिष्य ने गुरू के आश्रम से पृथक् होकर नदी के किनारे अपना अलग आश्रम स्थापित कर लिया। शिष्य महोदय ने अपना नाम रखा कपिलाचार्य। बहुत-से धर्मप्रेमी उनके दर्शनों को आने लगे और उनका धर्मोपदेश श्रद्धापूर्वक श्रवण करने लगे।

इस प्रकार कपिलाचार्य अपना आश्रम जीवन व्यतीत कर रहे थे। एक दिन एक मैला-सा साधु उनके पास आया। कपिलाचार्य के पैर छूकर साधु ने कहा—"महाराज, आपके लिये एक खास तेल लाया हूँ, इसे स्वीकार कीजिये, इसकी विधि यही है कि पहले समस्त शरीर पर इस तेल की मालिश करना और फिर स्नान कर लेना।" ऐसा कहकर साधु ने कपिलाचार्य के सम्मुख तेल का बर्तन रख दिया।

कपिलाचार्य ने पूछा—"भाई इस तेल में कोई खास गुण है ?"

"शरीर की रक्षा करने वाले चर्म को यह तेल बड़ा लाभदायक है। आप इस तेल की एक बार मालिश करके देखें। ज्यादा नहीं तो चार दिन अवश्य इसकी परीक्षा करें। इतनी ही मेरी आपसे विनय है।" साधु ने गद्-गद् कंठ से प्रार्थना की।

साधु की भावुकता देखकर स्वामी कपिलाचार्य ने उसका तेल स्वीकार कर लिया और उसके बतलाये अनुसार नित्य उसकी मालिश करने लगे।

इस प्रकार चार दिन पूरे हो गये और पाँचवें दिन विचित्र घटना घटी। हमेशा की तरह आज भी लोग स्वामी जी का उपदेश सुनने तो आये, पर जैसे आये थे वैसे ही लौट गये। कोई प्रसाद लेने तक को नहीं रुका। दूसरे और तीसरे दिन भी यही हाल रहा। अब स्वामीजी विचार में पड़ गये कि "हो न हो, उस साधु के तेल में जरूर कोई बात है, जिसके कारण मेरे प्रति लोगों की भक्ति-भावना नष्ट हो गई। कदाचित् मेरी लोकप्रियता से ईर्ष्या करके साधु ने कोई काला जादू का तेल मुझे दे दिया हो ?"

लोगों के तिरस्कायुक्त व्यवहार के कारण कपिलाचार्य बहुत खिन्न हो गये और इस समस्या के समाधान के लिये अन्त में उन्होंने अपने गुरु ज्ञानसागर जी का आश्रय लिया। उनके मुख से तमाम वृतान्त सुनकर ज्ञानसागरजी ने पूछा—"कुछ तेल बचा है ?"

कपिलाचार्य ने गुरु के हाथ में बचा हुआ तेल दे दिया। गुरुजी ने तेल को सूँघा और उसकी परीक्षा की। फिर कहा—"भाई, इसी तेल के कारण ही लोगों में ऐसा परिवर्तन हो गया है। तेल को बनाते समय उसमें "सुदर्शन-मंत्र" फूँका गया है। मंत्र के प्रभाव से तेल में एक अद्भुत शक्ति आ गई है, जो कोई इस तेल की मालिश करके स्नान करेगा, उसके आन्तरिक भाव अपने आप प्रकट हो जायेंगे। इस तेल की मालिश करने के बाद लोगों से अपने मन के भीतरी भावों को छुपा सकना असंभव हो जाता है। हाँ, कुछ योगी ऐसे भी होते हैं, जो इस तेल की मालिश करके हृदय और अंतर के दोषों को पूर्णतया मिटाने के कार्य में लग जाते हैं, पर वैसे यह तेल अपने जैसों के काम का नहीं है।"

गुरुजी की बात सुनकर कपिलाचार्य एक दम शर्मिन्दा हो गये और वहाँ से चले गये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कपिलाचार्य के जाने के बाद गुरु ज्ञानसागरजी अपने शिष्यों को समझाने लगे—"हे शिष्यो ! जहाँ तक मन परिपक्व दशा को प्राप्त नहीं हुआ है, तब तक शास्त्रों का मनन अथवा पूजा पाठ सब महत्त्वहीन है। दुनियाँ में अगर कोई सबसे अधिक आवश्यक बात है, तो वह आत्मशुद्धि ही है।"

गुरु का उपदेश सुनने के बाद जब सब शिष्य बाहर निकल आये तो इस विषय में परस्पर चर्चा करने लगे।

कुछ शिष्य तो कहने लगे—"तब तो यह सुदर्शन तेल बहुत खराब चीज है।"

दूसरे कुछ शिष्यों ने विचार प्रकट किया—"मन को अंकुश में रखना कितना कठिन काम है ?"

कुछ के मन में यह बात आयी—"निडर होकर इस तेल का मर्दन करने की शक्ति न जाने हममें कब आयेगी ?"

भोले स्वभाव के और सीधे-सादे शिष्य कहने लगे—"अरे भाई, अपने लिये तो सरसों और तिल का तेल ही ठीक है। ऐसे जादू-मंत्र वाले तेलों से हमको क्या मतलब ?"

काक-वृत्ति बनाम हंस-वृत्ति

राजहंस 'कपिष्टल, इन्दुजात, श्वेतपुच्छ, उद्रक और विनता' पाँचों ने मन्त्रणा की और फिर निकल पड़े प्रवास पर। सुदूर देशों का प्रवास राजहंस प्रति वर्ष किया करते और कठोर शीत के चतुर्मास समाप्त होते ही मानसरोवर आ जाते। इस प्रवास में जहाँ देश—दुनिया के रंग-बिरंगे दृश्य दीखते, वहाँ संसार के विभिन्न लोगों से भेंट और उनकी परिस्थितियों के अध्ययन द्वारा एक विवेकपूर्ण दृष्टिकोण अपनाने में भी उन्हें मदद मिलती।

अनेक देश और भूखण्ड पार करते हुए राजहंसों की टोली समुद्र तट पर रुकी। कोर्णक राजवंश के प्रसिद्ध उद्यान यहीं पर थे, वहाँ का माली इन राजहंसों का प्रति वर्ष आतिथ्य करता। राजहंस प्रत्युपकार वश माली को प्रति वर्ष एक उपदेश दिया करते। इस बार भी माली ने अभ्यागतों को सुन्दर मीठे फलों से ब्रह्मभोज कराया। टोली नायक—कपिष्टल ने माली को उपदेश दिया और कहा—"तात् ! जो व्यक्ति अपनी शक्ति और साधनों की मर्यादा में रहता है, वह स्वल्प साधनों में भी अपना जीवन हँसी-खुशी में बिता लेता है किन्तु अपनी शक्ति से अधिक का मिथ्या प्रदर्शन करने वाले न केवल संकट में पड़ते हैं अपितु उपहास और निन्दा के पात्र भी बनते हैं।"

माली राजहंस की विद्वता से बहुत प्रभावित हुआ। मार्ग के लिये भी कुछ देने लगा तो राजहंसों ने मना किया, कहा—"तात् ! संचय पाप है, यह खाद्य तुम ले जाओ, दुनिया में और बहुत-से लोग अभावग्रस्त हैं, उन्हें दे दो, सामर्थ्यवान लोग अपनी आवश्यकताएँ स्वयं पूरी कर लेते हैं। कुछ भी मिले, कहीं से भी मिले उदरस्थ कर लेने की काकवृत्ति घटिया लोगों का काम है।"

कपिष्टल के यह शब्द वटवृक्ष पर बैठे कौवे—"उपद्रवी" ने सुन लिये। पंख फुलाता उपद्रवी राजहंसों की टोली के पास जाकर भला-बुरा कहने लगा और बोला—"राजहंसो ! तुम लोग यदि श्रेष्ठता का अभिमान करते हो, तो चलो न हमारी तुम्हारी प्रतिद्वन्द्विता हो जाये। यह देखो विशाल समुद्र दूर तक फैला है, चलो न, देख लें किसके पास शक्ति है इसे पार करने की ! अभी पता चल जायेगा कि तुम लोग समर्थ हो अथवा मैं ?"

राजहंस हँसे और बोले—"तात् ! हम लोग किसी से प्रतिद्वन्द्विता नहीं करते, आप भी न किया करें, परमात्मा ने एक से बढ़कर एक क्षमतावान प्राणी रचे हैं, फिर कोई अपनी शक्ति का गर्व क्यों करें ?" यह कहकर राजहंसों की टोली ने उछाल भरी और फिर अपनी यात्रा पर चल पड़े। किन्तु उपद्रवी कौवा उन्हें यों छोड़ने वाला नहीं था—अहंकार की सहजात है "अशान्ति" सो कौवा कैसे शान्त हो जाता है, वह भी राजहंसों की बगल में उड़ चला और थोड़ा तेजी दिखाकर आगे हो गया। आगे-आगे काक पीछे-पीछे अपनी सहज स्वाभाविक गति में हंस। कौवा बीच-बीच में कोई व्यंग मारता जाता और कहता—"थक जाना तो बता देना, हम तो केवल तुम्हें अपनी शक्ति दिखाना चाहते हैं, मारना नहीं चाहते।" राजहंस बिना कोई उत्तर दिये समुद्र के ऊपर धीर-गम्भीर उड़ते चले जा रहे थे।

अभी कुछ ही देर उड़े हुये हुई थी कि बकवादी कौवे का शरीर थक गया, पंख ढीले पड़ गये, यों लगा कि अब गिरा, तब गिरा, किन्तु हेकड़ी उसकी अभी तक भी जाती न थी। कौवा अब एक क्षण में समुद्र में गिरने ही वाला था, अपने ही कृत्य पर उसकी आँखें डबडबा आईं। यह देख राजहंसों को दया आ गई और उन्होंने कौवे को अपनी पीठ पर बिठाया, फिर पीछे लौटे और कौवे को वहाँ पहुँचा दिया, जहाँ वह रहता था। अभी तक उसका दम फूल रहा था, कपिष्टल बोले—"तात् ! आगे कभी अपनी शक्ति से बढ़कर प्रदर्शन मत करना अन्यथा मारे जाओगे।" यह कहकर टोली फिर अपने प्रवास पर चल पड़ी।

बन्धन से मुक्ति

एक था राजा। उसको धन-दौलत की कमी न थी तो भी उसको शांति प्राप्त नहीं होती थी। किसी व्यक्ति ने उसे बतलाया कि गुरु से मंत्र लेकर जप करने से शान्ति मिल सकती है। तब वह अपने कुलगुरु की खोज करने लगा। इतने दिन तक बेचारे गुरु का किसी को पता भी न था और वह बड़ी गरीबी की हालत में दिन बिता रहा था। राजा का बुलावा पाकर उसे बड़ा आनन्द हुआ। उसने भी राजा को विश्वास दिलाया कि मंत्र का जाप करने से उसको शान्ति मिलेगी। राजा ने विधिवत् मन्त्र लिया और श्रद्धापूर्वक उसका जाप करने लगा। गुरु महाराज को भरपूर दक्षिणा मिली और वे सुख से रहने लगे।

पर जब काफी समय बीत जाने पर भी राजा को शांति नहीं मिली, तब उसने गुरु को बुलाकर कहा कि देखो, आपके कथानानुसार सब कार्य करने पर भी मुझे शान्ति नहीं मिलती। अब आपको सात दिन का समय दिया जाता है। इस बीच में या तो मुझे शान्ति का सच्चा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपाय बतलाओ वरना तुमको कुटुम्ब सहित मरवा दिया जायेगा। यह सुनकर गुरु चले आये और चिंता से व्याकुल होने लगे। मृत्यु के भय से उनका खाना-सोना भी छूट गया।

गुरु के एक लड़का था, जो मूर्ख की तरह इधर-उधर जंगल में घूमकर समय व्यतीत करता और केवल भोजन के लिए घर आता था। जब छह दिन बीत गये तो सातवें दिन मृत्यु को निकट आया समझकर उसके माँ-बाप इतने दुःखी हुये कि उस दिन घर में चूल्हा भी न जला। जब वह लड़का भोजन के समय घर आया तो खाने की कोई सामग्री न पाकर लड़ने-झगड़ने लगा। उसके बाप ने उसे तमाम किस्सा बतलाया। लड़के ने कहा इसमें डरने की क्या बात है, तुम कल मुझे राजा के पास ले चलना, मैं उसे शान्ति प्राप्त करने का उपाय बतला दूँगा। बस अब तुम चिन्ता त्यागकर भोजन की व्यवस्था करो।

दूसरे दिन बाप और बेटा दोनों राजा के पास गये। राजा के प्रश्न करने पर गुरु ने लड़के की तरफ इशारा किया कि यह आपको शान्ति का मार्ग बतलायेगा। राजा के पूछने पर लड़के ने कहा कि अगर राजा उसके कहने के मुताबिक काम करने को राजी हो, तो वह अवश्य शान्ति का उपाय बतला सकता है। राजा ने इसे मंजूर कर लिया।

तब लड़के ने दो बड़ी और मजबूत रस्सियाँ मँगाईं और राजा तथा गुरु को अपने साथ जंगल में चलने को कहा। वहाँ एक स्थान पर तीन बड़े-बड़े पेड़ लगे हुये थे। लड़के ने एक पेड़ के साथ राजा को कसकर बाँध दिया और दूसरे से गुरु को बाँध दिया। तब वह स्वयं तीसरे पेड़ पर चढ़कर आनन्द से गाने और उछल-कूद मचाने लगा। कुछ समय बाद बन्धन की यंत्रणा से व्यथित होकर राजा ने लड़के को पुकारा, पर लड़के ने जरा भी ध्यान न दिया। वह अपने गाने, नाचने में मग्न हो रहा था। तब राजा ने गुरु को पुकारकर कहा, "लड़का तो सुनता नहीं आप ही इस बन्धन को खोल दीजिए।" गुरु ने उत्तर दिया—"मैं स्वयं ही बँधा हूँ आपके बन्धन को किस प्रकार खोल सकता हूँ ?"

बन्धन के कष्ट से चिल्लाते-चिल्लाते अकस्मात् राजा के चित्त में दिव्यज्ञान उत्पन्न हुआ। वह सोचने लगा कि मैं विषय-भोगों के बंधनों में रहकर शान्ति किस प्रकार पा सकता हूँ और जो गुरु स्वयं सांसारिक बन्धनों में बँधा है वह मुझे बंधन मुक्त किस प्रकार कर सकता है ? तब उसने गुरु के लड़के को पुकारा कि अब रस्सी को खोल दो, मुझे शांति का मार्ग मालूम हो गया। गुरु-पुत्र ने आकर उसे खोल दिया और वह अपनी राजधानी को लौटने के बजाय वहीं वन में रहकर आत्म-चिंतन करने लगा।

पिशाच से देवता

'मेस्टर हाण्ट' इस शब्द का उच्चारण करते ही एक पत्थर जैसे कड़े सीने वाले, हाथी-सी मोटी गर्दन के, सात फुट लम्बे, ढाई मन भारी, दुर्दान्त प्रकृति और क्रूरकर्मा मनुष्य का बोध होता है, जो गोरे रंग का राक्षस समझा जाता था। कहते हैं कि जब वह चलता था, तो धरती हिलती थी, मुक्का मार दे तो एक मजबूत साँड़ को बिठा दे, लाल आँखें देखकर बाघ भी डर जाय, आहट पाकर कुत्ते भोंकना बन्द कर दें, माताएँ उसका नाम सुन कर बच्चों को गोद में छिपा लें, ऐसा था वह भीमकाय और क्रूरकर्मा 'हाण्ट'।

व्याघ्र के समान स्वतंत्र गति से वह सर्वत्र विचरण करता था। दुबले-पतले मनुष्य उसका रास्ता छोड़कर अलग हट जाते थे, महिलाएँ अपने सतीत्व की आशंका से एक ओर छिप बैठती थीं। मेस्टर हाण्ट इंग्लैण्ड के ग्राम में धनी मानियों को डरा धमकाकर अपना खर्च चलाता था, वैसे तो जंगली पशुओं का शिकार करने से भी उसे अच्छी आमदनी हो जाती थी।

आप समझते हैं कि क्या ऐसे हिंसक पशु हृदय में भी प्रेमरस की कुछ बूँदें होंगी ? वे हों चाहे न हों, पर ऐसी भी एक स्त्री थी जो उसे प्यार करती थी और उसके प्रणय सूत्र में आबद्ध हुई थी। हाण्ट की धर्मपत्नी बड़ी ही सुशील, स्वरूपवती और सदाचारिणी थी, वह उसके अत्याचार सहती पर धर्म से विचलित न होती, किन्तु पशु हृदय के लिए मानवता का कोई महत्त्व नहीं। हाण्ट की दृष्टि में वह तुच्छ थी, तुच्छ ही नहीं, उपेक्षणीय भी थी। यह उपेक्षा यहाँ तक बढ़ी कि हाण्ट एक पड़ोस की दुराचारिणी स्त्री पर आसक्त हो गया और अपनी स्त्री को तरह-तरह से सताने लगा। इन चतुर्मुखी वेदनाओं ने उस भद्र महिला को रोग शय्या पर डाल दिया और वह आखिर कुछ दिन में घुल-घुल कर मर गई।

पत्नी की मृत्यु का हाण्ट को मक्खी मरने के बराबर भी दुःख नहीं हुआ। अन्त्येष्टि के दूसरे ही दिन वह दुराचारिणी पड़ोसिन उसके घर की मालकिन बनकर आ गई। सबको यह कार्य बड़ा दुःखद प्रतीत हुआ, पर किसी में साहस न था कि उससे कुछ कहता। हृदय से सब उसे बुरा कहते थे, जिह्वा में कुछ कहने का दम न था।

दूसरे विवाह को हुए एक महीना व्यतीत हो चुका है। पति-पत्नी एक ही शय्या पर लेटे हुए थे और अर्द्ध-निद्रा में अचेत पड़े हुए थे। इसी समय बन्द खिड़की को थपथपाने की-सी आवाज हुई। दोनों ने समझा कोई कुत्ता, बिल्ली होगा और चुप पड़े रहे। जब बार-बार खड़-खड़ होने लगी तो कारण जानने की इच्छा हुई। हाण्ट अलसाया हुआ पड़ा था। उसने स्त्री से कहा—"उठ देख तो कौन खिड़की को खड़खड़ा रहा है ?" स्त्री उठी और दरवाजा खोलकर बाहर देखा। जो दृश्य उसने देखा, उससे उसकी घिग्घी बँध गई और भयभीत होकर बेतरह चिल्लाने लगी।

"क्या है ? क्यों चिल्लाती है ?" हाण्ट ने चारपाई पर पड़े-पड़े ही कर्कश स्वर से पूछा। पत्नी के होश-हवाश गायब थे। वह आपे से बाहर हो रही थी। उसने घिघियाते हुए कहा—"देखते नहीं, आपकी पूर्व पत्नी खड़ी हुई है।" अब तो हाण्ट का पारा और चढ़ गया, उसने गरजते हुए कहा—"देखता हूँ तेरा सिर ! गधी की तरह खड़ी-खड़ी बक-झक कर रही है। चल हट उधर से, दरवाजा बन्द कर और सीधे से इधर चली आ। अबकी बार कुछ बका तो मुँह कुचल दूँगा।" दोनों तरफ से प्रताड़ित स्त्री सभीत शावक की तरह पति के पास लौट आई। उसका कलेजा धकधका रहा था और पाँव पत्ते की तरह काँप रहे थे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्त्री का यह हाल देखकर पति का मन कुछ पसीजा। मामला क्या है, यह जानने के लिए वह उठा और दरवाजे पर पहुँचा। अब तो उसकी भी आँखें स्थिर रह गईं और माथा चकरा गया। सचमुच उसकी पूर्व स्त्री सामने खड़ी हुई थी, रत्ती भर भी तो कोई फर्क उसमें दिखाई नहीं पड़ता था। लाल-लाल अंगारे-सी उसकी आँखें जल रही थीं, मानो दो जलती हुई लौह शलाकाएँ उसे भस्म करने के लिए लपलपा रही हों, जिस हाण्ट ने कभी यह नहीं जाना था कि भय किस चिड़िया का नाम है। वह आज चूहे की तरह सकपका रहा था। वह अधिक देर इस स्थिति में खड़ा न रह सका और एक चिंघाड़ मारता हुआ बेहोश हो गया।

हो हल्ला सुनकर पड़ोसी इकट्ठे हो गये। उसे उठाकर बिस्तर पर डाला गया और दवा दारू की गई। इस पर भी उसकी दशा में कुछ अन्तर नहीं आया। पूरे पाँच महीने तक वह रोग शय्या पर पड़ा रहा। "अरे यह तो मेरी ही स्त्री है। अरे प्रिय तू यहाँ क्यों ?" ऐसे शब्दों को वह दिन भर दुहराता और बड़बड़ाता रहता। सारे दिन उसकी आँखों में आँसू और मुँह से हाय का प्रवाह जारी रहता। जैसे-जैसे दिन बीतते गये हाण्ट का हृदय बदलता गया।

पाँच महीने की बीमारी में उसका शरीर बिल्कुल घुल गया था और साथ ही हृदय का कुषाय आँसुओं की राह बहकर निकल गया। अब वह पुराना पिशाच हाण्ट नहीं रहा था, वरन् दयालु और सदाचारी हाण्ट बन गया था। विपत्ति में एक ऐसी खूबी है, जो मनुष्य का हृदय पवित्र कर देती है, हाण्ट को भी प्रकृति के इस नियम ने बदल ही दिये।

वह मरा नहीं, उसकी पतिव्रता पूर्व पत्नी का रोष शान्त हो गया और उसे अभय दान देकर वापस लौट गई। हाण्ट अच्छा हो गया। अब उसके पुराने सारे स्वभाव जड़ मूल से नष्ट हो गये थे। अपनी नगरी का सर्वश्रेष्ठ नागरिक इस समय वही था। अब उसे लोग आदर के साथ पुकारते थे। 'त्राता हाण्ट' सचमुच अब वह एक निःस्वार्थ परोपकारी संत हो गया था, यह उसकी मृत पूर्व पत्नी की कृपा थी।

संतवेष को कलंकित न होने दें

एक राजा कोढ़ी हो गया। वैद्यों ने उपचार बताया राजहंसों का मांस खाया जाय। हंस मानसरोवर पर रहते थे। वहाँ तक कोई पहुँचता न था। साधु-सन्तों की ही वहाँ तक पहुँच थी। कोई सन्त तो पाप कर्म के लिए तैयार न हुआ पर बहेलिया ने सन्त का बाना पहनकर वहाँ जाना और पकड़ना स्वीकार कर लिया।

मान सरोवर के हंस साधुओं से हिले रहते थे। उन्हें देखकर उड़ते नहीं थे। बहेलिया की बात लग गई और हंस पकड़ लिये। राजा के सामने प्रस्तुत कर दिये।

राजा सोच में पड़ गया। सन्त श्रद्धा से अभिप्रेत इन भावुक हंसों का स्वार्थवश वध करना अनुचित है। दया उमड़ी और हंसों को मुक्त कर दिया गया। राजा का दूसरा उपचार चलने लगा।

इस घटना का बहेलियों पर भी प्रभाव पड़ा। वे सोचने लगे जिस सन्त वेष के लिए हंसों तक में इतनी श्रद्धा है, उसे हेय प्रयोजनों के लिए कलंकित नहीं करना चाहिए। बहेलियों ने सन्यास ले लिया और वे सब सन्त हो गये।

'उठो ! यह समय सोने का नहीं है'

अचानक दरवाजा खुलने की आवाज से उसका ध्यान भंग हुआ। पुस्तक से सिर उठाकर देखा तो डाक बँगले का चपरासी सामने खड़ा था। उसकी ओर देखते हुए पूछा, "कहो क्या कहना है ?" "साहब कोई आपसे मिलना चाहता है" टूटी-फूटी अँग्रेजी में चपरासी का जबाव था।

"अच्छा भेज दो" सुनने के साथ चपरासी के कदम दरवाजे की ओर मुड़ गए।

उसने कलेण्डर की ओर देखा, सन् १९३८ चल रहा था। कुछ हिसाब लगाते हुए वह होंठों में बुदबुदाया आज तीन महीने हो गए। ठीक तीन मास पूर्व वह भारत की ब्रिटिश सरकार के निमन्त्रण पर अमेरिका से चला था, उद्देश्य था—आधुनिक मनोविज्ञान पर आयोजित भाषण श्रृंखला में बोलना। प्रत्यक्ष में तो मकसद यही था पर परोक्ष में उसने अनेकों आशाएँ सँजोई थीं। कुछ सीखना चाहता था। अभी तक वह यही पढ़ता आया था कि विश्व में भारत एक मात्र ऐसा देश है, जिसने मानवीय चेतना पर सर्वाधिक काम किया है। स्वयं भी उपनिषदों, पुराणों, शास्त्रों को कितना कुछ नहीं पढ़ा किन्तु । वह आगे कुछ सोचता कि इसके पहले श्वेत पैण्ट कमीज पहने एक युवक ने कमरे में प्रवेश किया। विदेशी परिधान में वह भारतीय था।

"ओह ! आप ! बैठिए !" एक ही वाक्य को तीन खण्डों में विभक्त कर बोलने के साथ ही उसने पास की कुर्सी की ओर इशारा किया।

"मैंने आपके बारे में बहुत कुछ सुन रखा है, थोड़ा बहुत पढ़ा भी है। सुना है आपने स्वप्नों पर, मन की गहराईयों पर काफी काम किया है। मेरी अपनी भी एक समस्या है। समस्या का निराकरण और आप से मिलने का लोभ दोनों के सम्मिलित आकर्षण से आप तक खिंचा चला आया।"

"बताइए" उसने सहज भाव से कहा।

"मुझे कोई पुकारता है, उठो ! समय सोने का नहीं है। जब मैं प्रगाढ़ निद्रा में होता हूँ तो कोई मेरा नाम लेकर स्पष्ट पुकारता है।" उसने बतलाया कि सदा वह मुझे दो बार पुकारता है। हृदय से उठती है पुकार—कहती है "उठो !"

"आप को स्मरण है उस समय कैसे स्वप्न देखते हैं ?" मनोविज्ञानिक ने पूछा।

"हाँ ध्यान आया नीले प्रकाश के सागर जैसा आकाश और उसमें अद्भुत ढंग से चमकता सुनहरा सूर्य, फिर जैसे दोनों ज्योतियाँ सम्मिलित रूप से पास आती हैं और साथ ही एक अलौकिक संगीत के स्वरों में पुकार।" "अच्छा !" सुनने वाले के स्वर में कुछ आश्चर्य था। उसने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अब तक अनेकों स्वप्नों की मीमांसा की है पर ऐसा स्वप्न ? युवक आगे बोला, "मुझे स्वयं आश्चर्य है, जब यह पुकार आती है मेरी गाढ़ी निद्रा पहली ही पुकार में टूट जाती है।" उसने बताया, "परन्तु आँखें खोलने या सिर उठाने के पूर्व ही दूसरी बार पुकार आती है। दूसरी बार का पुकारना मैं सदा जागकर पूरी सावधानी से सुनता हूँ।"

"जब आप उठते हैं, आप को कैसा लगता है ?" मनोवैज्ञानिक ने बीच में पूछा।

जब-जब मैं पुकार सुनता और स्वप्न देखता हूँ उठने पर अपने को एक अद्भुत आनन्द में डूबा पाता हूँ। उस मनोवैज्ञानिक की आशा के सर्वथा विपरीत उसने बताया—"हमेशा की अपेक्षा दुगनी स्फूर्ति रहती है, मन प्रसन्न रहता है।"

"दुबारा नींद आने में कितना समय लगता है ?" उसने फिर पूछा। "यह सर्वथा मेरी इच्छा पर रहा है।" उसने फिर मनोवैज्ञानिक की इच्छा के विपरीत उत्तर दिया—"कभी मैं लघुशंकादि कर दस-पन्द्रह मिनट बाद सोता हूँ, कभी केवल सिर उठाकर देखकर एक मिनट बाद सोता हूँ और कभी तो नेत्र भी नहीं खोलता। सोने का प्रयत्न करते ही निद्रा आ जाती है, पहले की भाँति प्रगाढ़ निद्रा।"

समस्या टेढ़ी है। उसने गम्भीरतापूर्वक कहा शायद मैं अभी मानव मन की गहराईयों को ठीक से नहीं जान सका हूँ। मैं यहाँ कुछ सीखने आया था। सुना था भारत ऋषियों का देश है उसके स्वरों में कुछ विवशता थी। अब ऋषि नहीं, आगन्तुक युवक अपना वाक्य पूरा करता इसके पूर्व डाक बँगले का चपरासी अन्दर आया और उत्साह भरे स्वर में बोला साहब कुछ ही किलोमीटर दूर पहाड़ पर एक ऋषि रहते हैं। मिलना चाहेंगे ? वह शायद कोई वस्तु उठाने आया था, सुनकर बोल पड़ा। दोनों अवाक् हो उसके चेहरे पर देख रहे थे। फिर उन्होंने एक-दूसरे की आँखों में देखा और हाँ कहने के साथ जाने की योजना बन गई।

अगले दिन वह अरुणाचलम कहे जाने वाले पहाड़ के पद प्रान्त में एक कौपीनधारी किंचित प्रौढ़ के पास बैठे थे। अद्भुत था दृश्य—हिंसक जानवर भी शालीन हो बैठे थे। मनुष्यों और पशुओं को एक साथ अनुशासित बैठे देख उसने जो कुछ पढ़ा था साकार होता लगा। संक्षेप में पूरी बात कही।

महर्षि कहे जाने वाले इस महामानव ने तनिक हँसते हुए कहा, "आप लोगों ने मन को दो भागों में बाँटा है बहिर्मन—अन्तर्मन, परन्तु भारतीय मनोवैज्ञानिक चार भाग करते हैं, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार।" उन्होंने अपनी व्याख्या सुनाई—"जगते समय हम संकल्प करते हैं और उसके अनुसार काम करें या न करें, यह निर्णय भी करते हैं। आपने इन दोनों को बहिर्मन का काम माना है। पर भारतीय मानते हैं कि संकल्प करना मन का काम है और निर्णय करना बुद्धि का।"

मनोवैज्ञानिक को अभी कुछ नहीं बोलना था। वह कहते गये—"अन्तर्मन को भारतीय चित्त कहते हैं। उसकी व्याख्या और कार्य की मान्यता में कोई मतभेद नहीं। वह संस्कारात्मक स्मृतियों का भण्डार है। सपने में वही कार्यरत होता है। परन्तु उसमें निर्णय की शक्ति न होने से स्वप्नों में कोई क्रम कोई ठीक व्यवस्था नहीं रहती। स्वप्न में ऊँट के धड़ पर बकरी का सिर या बकरी के हाथी जैसी सूँड़ इसी अव्यवस्था की उपज है।"

अब भी मनोवैज्ञानिक कुछ बोले नहीं। वे गम्भीरता से सुन रहे थे। उन्होंने बताया कि सामान्य अवस्था में बहिर्मन और निर्णायक मन (बुद्धि) सो जाते हैं। अन्तर्मन भी सो जाय तो प्रगाढ़ निद्रा आएगी। अन्तर्मन जागता रहे तो स्वप्न दीखेंगे, परन्तु किसी कारण केवल बहिर्मन सो जाय और अन्तर्मन के साथ निर्णायक मन (बुद्धि) भी जागता रहे तो मनुष्य जाग्रत के समान व्यवस्थित रूप से काम करने लगेगा।"

"यद्यपि पश्चिमी चिन्तन के लिए, 'अहं' को समझना कठिन है फिर भी कोशिश करो।" वह बताने लगे—"आपने सुना होगा जब कोई समाधि लगा लेता है तब हृदय की गति, खून का प्रवाह तक बन्द हो जाता है। समाधि का अर्थ है मन के सभी कार्यालयों को बन्द कर देना। शरीर का अन्तर्बहिः संचालन मन के द्वारा ही होता है। मन के इस संचालक भाग को, गहरी नींद में भी सदा जागता रहता है, अहंकार कहते हैं।"

बात समझ में आ रही थी। सुनकर वह बोले "आपने तो मन की व्याख्या ही अनूठी कर दी, पर इनकी समस्या ?" उसका इशारा युवक की ओर था। वह भी उनकी बात को गहराई से सुन रहा था। "इनकी समस्या वैश्व चेतना से जुड़ी है।" स्वरों में स्पष्टता के साथ सौम्यता थी।

"वैश्व चेतना ?" उसका वैज्ञानिक मन बोल उठा। "हाँ ! मन यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति में अलग-अलग होता है परन्तु सब मनों को अपने आप में समेटने वाला विपुल ब्रह्माण्डव्यापी एक समष्टि मन भी है। इसी की संचालक है वैश्व चेतना, जो प्रत्येक व्यक्ति को समय-समय पर संकेतों द्वारा जीवनोद्देश्य समझाती है। बताती है, मनुष्य वैसा कुरूप भोंडा बनने के लिए नहीं है, उसे अपने जीवन को दिव्य व्यक्तित्व को परिष्कृत बनाना है। अन्तर की पुकार तम की तमिस्रा त्याग सत्य में प्रवेश करने का संकेत मात्र है। सुनहला सूर्य परम सत्य का प्रतीक है और नीला आकाश देवत्व की दिव्य चेतन का। पुकार का तात्पर्य है कि देवत्व ही सत्य है जीवन में इसी को लाना है। इसे लाए बिना चैन की नींद हराम है।"

"मनोवैज्ञानिक आश्चर्यचकित थे। उनके आश्चर्य को परखते हुए महर्षि ने—युवक की ओर इशारा करते हुए कहा, "पुकार सिर्फ इन्हीं के लिए नहीं है। सभी के लिए है। हर एक को अपने जीवन में सोते-जागते संकेत मिलते हैं। घटनाएँ घटती हैं, सिर्फ यह बताने के लिए कि बहको मत, छलावे में मत आओ—तुम पशु नहीं अमृत पुत्र हो। जीवन बीज की तरह बन्द है। इसे जीने का मतलब है कर्तव्य की बेदी पर आत्मदान कर वृक्ष की तरह पुष्पित दिव्यता की सुरभि बिखेरना। मनुष्य में देवत्व का उदय मानवी चेतना का रहस्य है। इसे ही समझना और क्रियान्वित करना है।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धन्य हो गया मनोवैज्ञानिक, सफल हो गई उसकी भारत यात्रा। मनोविज्ञान के संसार में सर्वप्रथम सामूहिक मन की घोषणा कर मनुष्य में दिव्य जीवन की प्रेरणा भरने वाले मनोवेत्ता थे कार्ल गुस्ताव जुंग और मानवी चेतना के मर्मज्ञ के ऋषि थे—महर्षि रमण।

पुरुषार्थ वाला स्वर्ग

एक गाँव में बड़े धर्म परायण व्यक्ति रहते थे। समय-समय पर कथा आयोजन होते रहते, दान-पुण्य की महत्ता बताई जाती। लोग यथाशक्ति यह करते भी थे। अभी तक गाँव में किसी ऐसे महात्मन् का आगमन नहीं हुआ था, जो उन्हें अध्यात्म का मर्म समझाता, जीवन-साधना का महत्त्व समझाता। इसी कारण प्रत्यक्षतः धार्मिक क्रियाकलापों में रत दीखते हुए भी सभी अनगढ़ ही थे।

एक बार एक साधु महाराज आए। उनकी भव्य आकृति, दाढ़ी से सुसज्जित व्यक्तित्व व चेहरे पर तेज सभी को प्रभावित, आकर्षित कर रहा था। उन्होंने अपने एक घण्टे के पूरे प्रवचन में स्वर्गलोक की महत्ता का गुणगान किया एवं बार-बार कहा कि वैराग्य लेने से स्वर्ग मिलता है। जो भी दुनिया के सुखों को, घर-गृहस्थी को, रोजमर्रा के कृत्यों को त्यागकर वैरागी बन जाता है, वह स्वर्ग में जाने का अधिकारी बन जाता है। इसके लिए कैसे पात्रता उपार्जित करनी पड़ती है व क्या तप-तितिक्षा करनी पड़ती है, यह न बताते हुए मात्र वैराग्य एवं स्वर्ग की गुणगाथा गाकर वे तो गाँव से दान-दक्षिणा लेकर प्रस्थान कर गए, पर गाँव वालों की मनःस्थिति को डाँवाडोल करके चले गये। लगभग सभी सोचने लगे कि यह जीवन व्यर्थ है। यदि स्वर्ग प्राप्ति की लक्ष्य-सिद्धि करनी है, तो खेती, व्यापार इत्यादि में समयक्षेप करने से क्या लाभ ? वैराग्य ले लेना चाहिए व घर छोड़कर बाहर जंगल में रहना चाहिए।

सभी ने अपने औजार-उपकरण घूरों पर डाले, पीले कपड़े पहने एवं गाँव से कुछ ही दूर एक आम के बगीचे में डेरा डालने का निश्चय किया। सोचा, वहीं वैराग्य की साधना करेंगे। बगीचे में बनाई गई झोंपड़ियों में बैठे-बैठे बहस होने लगी कि स्वर्ग में चलकर क्या-क्या वस्तुएँ प्राप्त करेंगे, यह तो विचार कर ही लेना चाहिए। वहाँ तो मनचाही वस्तुएँ प्राप्त करने की छूट है। सब अपने मनोरथों की सूची बनाने लगे।

किसी ने यौवन-रूप, किसी ने धन, किसी ने नई पत्नी, किसी ने पति, बेटे, पोते, महल, बगीचे आदि पाने की, धन कुबेर बनने की अपनी आवश्यकताएँ, अभिलाषाएँ जताईं व नोट कर लीं। एक व्यक्ति ने याद दिलाया कि इससे पूर्व एक महात्मा आए थे, उन्होंने तप की महत्ता भी बतायी थी, तब वैराग्य की चर्चा की थी। उसे डाँट-डपटकर चुप कर दिया गया। जब वैराग्य की फलश्रुति व्यक्तित्व सम्पन्न महात्मा बताकर गए ही थे, फिर कौन तप-साधना के कष्ट साध्य झंझटों में पड़े, यही सबका दृष्टिकोण था। एक अकेला चना उस भाड़ में क्या करता ?

आम के पेड़ों में एक बहुत पुराना वृक्ष भी था। उसने उन लोगों की मूर्खता और शेखचिल्ली की-सी उड़ान सुनी व देखीं तो हँस पड़ा। बोला—"पुरुषार्थ के बल पर स्वर्ग में ही क्या, कहीं भी मनोरथ पूरे किये जा सकते हैं। तुम्हारे मन में मात्र मनोकामनाएँ ही तो हैं, कोई ऊँचा लक्ष्य भी नहीं है। मनोकामनाओं का मूल्य चुकाकर ही यदि पुरुषार्थ करना है, तो स्वर्ग जाने और घर छोड़ने की क्या आवश्यकता ? यह सब तो घर में रहकर अपनी कर्म साधना करते हुए भी किया जा सकता है। याद रखो ! बिना कर्म के, तप-तितिक्षा के, पात्रता अर्पित किए न कोई आध्यात्मिक विभूति किसी को मिली है, न मिलेगी।"

थका माँदा किसान समुदाय सही मार्ग दर्शन पाकर गाँव वापस लौट आया और परिश्रमपूर्वक अधिक कमाने-खाने व साथ-साथ स्वयं की अनगढ़ता मिटाने की साधना में निरत रहने लगा। कर्म साधना का सही मर्म अब उनकी समझ में आ गया था।

ऋण मुक्ति बिना शान्ति नहीं

नदी के दाहिनी ओर स्काटलेण्ड में पार्थ नामक नगरी में फौजी छावनी के पास अपनी झोंपड़ियाँ बनाकर दो गरीब विधवाएँ रहती थीं। एक का नाम था एनी दूसरी का नाम मालय। इन दोनों में बहुत प्रेम था। मजदूरी करने साथ-साथ जातीं और साथ भोजन बनातीं। उनकी दुनियाँ बहुत छोटी थी पर संतोषपूर्ण।

मृत्यु, राजा और रंक का भेद नहीं पहचानती। मालय को निमोनिया हुआ और एक सप्ताह बीमार रहकर मर गई। अब ऐनी अकेली थी। कई दिन उसे बड़ा दुःख रहा। फिर आखिर उसे संतोष करना पड़ा। वह अकेली मजदूरी करने जाती और अकेली ही सो रहती। अब अकेलापन भी उसे अखरता न था।

एक रात को ऐनी बिस्तर पर लेटी हुई थी कि अचानक मालय वहाँ आ खड़ी हुई। ऐनी ने आँखें फाड़-फाड़ कर देखा कि यह तो मालय ही है। बेचारी बुढ़िया बहुत डरने लगी, मालय ने कहा, "ऐनी डरो नहीं। तुम समझती हो कि मैं मर गई हूँ। पर मृत्यु के बाद भी मैं जीवित हूँ। तुम्हें कोई कष्ट देने नहीं आई हूँ, किन्तु एक विनम्र प्रार्थना करती हूँ, यदि उसे स्वीकार कर सको तो बहुत कृतज्ञ हूँगी।"

ऐनी को हिम्मत बँधी और साहस करके पूछा—"हाँ कहो मालय, क्या कहती हो ?" मालय की छाया मूर्ति ने कहा—"मेरे ऊपर तेरह आना कर्ज है। सो तुम उसे चुका देना, क्योंकि बिना उस ऋण के चुकाये मेरी आत्मा को शान्ति नहीं मिल सकती। तुमसे चुकाने के लिए इसलिए कहती हूँ कि तुम्हारे पास मेरे पुराने बर्तन, कपड़े भी तो रह गये हैं, जो तेरह आने से कम कीमत के नहीं हैं। इतना कहकर मालय अन्तर्द्धान हो गई।"

दूसरे दिन प्रातःकाल ही ऐनी उठी और रात की प्रतिज्ञा को पूरी करने के लिए बटुए में तेरह आने रखकर घर से बाहर निकली, यह पैसे किसे देने हैं, यह तो उसे याद ही न था। या तो मालय ने ऋणदाता का नाम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बताया ही नहीं था, या बताया था तो वह भूल गई थी। अब क्या किया जाय ? एनी बड़ी द्विविधा में पड़ गई।

सोचते-सोचते एक विचार उसे आया कि किसी आध्यात्मवादी पादरी के पास चलना चाहिए। वह अपने एक परिचित पादरी रेवेण्डर चार्ल्स के मकान पर पहुँची और उनसे सब वृतान्त कह सुनाया।

पादरी बड़े दयालु और सहृदय सज्जन थे। उन्होंने इस सम्बन्ध में दिलचस्पी दिखाई और ऋणदाता की तलाश करने के लिए ऐनी के साथ चल दिये। उन्होंने ढूँढ़ा कि किस-किससे यह उधार लिया करती थी। आखिर एक मोदी का पता मालूम हुआ, जिससे वह आटा दाल खरीदा करती थी। पादरी उसी के पास गया और पूछा कि मृतक मालय से तुम्हारा कुछ हिसाब-किताब तो शेष न था। मोदी को जवानी कुछ याद न था। उसने हिसाब बही ढूँढ़ी तो उनमें मालय के नाम तेरह आने लिखे हुए थे।

पादरी चार्ल्स ने मोदी को वह पैसे चुका दिये। फिर मालय की छाया मूर्ति को कभी किसी ने नहीं देखा।

थूकने योग्य स्थान

वह भवन उस नगरी में अद्वितीय बना था, यों तो कितनी ही विशाल इमारतों से वह नगर सुशोभित था, पर इतना सुन्दर और भव्य दूसरा न था, देश-विदेश से बहुमूल्य पत्थर मँगाकर उसमें लगाये गये थे, सैकड़ों कुशल कारीगरों ने वर्षों तक अपनी बुद्धि का सर्वोत्तम प्रयोग इसके बनाने में किया था, तब कहीं वह भवन बनकर तैयार हुआ था। जिस धनी पुरुष ने उसे बनवाया था, उसने उसकी सजावट में भी रुपया पानी की तरह खर्च किया। कीमती गलीचे, बहुमूल्य काँच, मखमल मढ़ी हुई कुर्सियाँ और रत्नजटित बन्दनवारों से सजे हुए कमरे आँखों को चकाचौंध करते थे। प्रशंसा सुनकर दूर-दूर से लोग उस विशाल भवन को देखने आते। सेठ प्रसन्नतापूर्वक सबको दिखाता और लोगों के मुँह से अपनी प्रशंसा सुनकर बहुत प्रसन्न होता

एक दिन दैवयोग से एक साधु उधर आ निकले, भवन की इतनी प्रशंसा सुनी तो वह भी उसे देखने के लिये चल दिये, वह साधु बहुत पहुँचे हुए थे, उनके ज्ञानवैराग्य की बहुत ख्याति थी, लोग उन्हें देवता तुल्य पूजते थे।

सेठ ने सुना कि अमुक साधु मेरा भवन देखने आ रहे हैं, तो उसे बड़ी प्रसन्नता हुई, दरवाजे पर अगवानी करने खुद पहुँचा और आदर से उन्हें साथ लिवा लाया, हँस-हँसकर उसने भवन के सारे विभाग कार्यगृह, आमोद गृह, शयनागार, अट्टालिकाएँ और उपवन दिखाये, हर स्थान पर लगी हुई विशेषता प्राप्त वस्तुओं का भी परिचय कराया और बताया कि कितनी चातुरी, धन व्यय एवं कला का समन्वय करके यह विशाल भवन निर्माण कराया है।

साधु, सेठ के मुँह से उन विभिन्न वस्तुओं का परिचय प्राप्त करके प्रसन्न होते जाते थे। सभी जगह उन्होंने बड़ी ही सजावट और सफाई देखी। उन्हें थूकने की जरूरत पड़ी, परन्तु कोई उपयुक्त स्थान न देखकर उन्होंने उस इच्छा को दबाया। सेठ जब भवन के सम्पूर्ण विभाग दिखा चुके तो साधु ने पूछा—"श्रीमान ! इसमें उपासनागृह कहाँ है ? आप जहाँ बैठकर आत्म चिन्तन करते हैं, वह स्थान मेरे देखने में नहीं आया, कृपया उस स्थान को भी दिखाइये, उसे देखने के लिये मैं विशेष उत्सुक हूँ।"

सेठ को कभी उपासनागृह की आवश्यकता प्रतीत न हुई थी, धनवैभव से चौंधिया जाने वाले अन्य अनेक नर-कीटों की तरह वे भी मनुष्य के असली अस्तित्व से अपरिचित थे। जब धन है, तो ईश्वर से क्या प्रयोजन ? जब सुख है, तो आत्म चिन्तन से क्या लाभ ? जब स्वस्थ हैं, तो भविष्य की क्या चिन्ता ? शक्ति के अहंकार में मनुष्य अन्धा हो जाता है। धन के मद में सेठजी की भी वैसी ही दशा थी। उपासना की भी कोई जरूरत है ? इस प्रश्न पर कुछ सोचने की उन्हें कभी फुरसत नहीं मिली थी। साधु के प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने लापरवाही से कहा—"वह तो मैंने नहीं बनवाया है।"

साधु सेठ के अज्ञान को शुरू से ही समझ रहे थे। मकान देखने और प्रश्न पूछने का उनका कुछ विशेष उद्देश्य था। इमारतें उन्होंने बहुत देखी थीं, वे आज उसका तमाशा देखने नहीं आये थे। अपनी सहज उदारता का प्रसाद उस अज्ञ प्राणी को देने आये थे। उन्होंने बस यही ठीक अवसर समझा और बहुत देर से थूकने के लिये जो स्थान ढूँढ़ रहे थे, उसे देख लिया। साधु गला खोलकर खाँसे और एक बड़ा-सा कफ का डेला सेठ के मुँह पर थूक दिया।

घृणित ! बीभत्स ! बेशर्मी ! जंगलीपन ! अपराध ! चारों ओर से यही शब्द सुनाई पड़ने लगे। सेठ के नौकरों ने साधु को पकड़ लिया और उसे मारने को उद्यत हो गये। सेवक लोग दौड़े, तुरन्त ही जल लाया गया, उन्होंने उस थूक को धोया और स्नान किया। स्नान करने के उपरान्त क्रोध कुछ शान्त हो चला था, साधु से बदला लेने के जो भाव उसके हृदय में जल रहे थे, वे अब कुछ ठण्डे हो चुके थे। उसने सोचा इस हरकत की बाबत अपराधी से एकबार पूछ क्यों न लिया जाय ?

सेठ ने साधु को बुलाकर भवें तरेरते हुए पूछा—"मेरे मुँह पर क्यों थूका था ?" साधु और अधिक नम्र बन गये, उन्होंने कहा—"भगवन् ! मुझे बहुत देर से थूकने की इच्छा सता रही थी, आप मुझे सब विभाग दिखा रहे थे पर मैं थूकने का स्थान ढूँढ़ रहा था। जब आपने बताया कि इतने बहुमूल्य भवन का निर्माण करते हुए भी इसमें उपासना गृह नहीं बनवाया है तो मुझे लगा कि आपका मुँह ही थूक देने योग्य स्थान है। अस्तु मैंने थूक दिया।"

सेठ के पूर्व संस्कार एक ठोकर खाकर जाग्रत हो उठे। सचमुच, जो मनुष्य बाहरी ठाट-बाट में इतनी दिलचस्पी लेता है, किन्तु आत्मचिन्तन से उदासीन है, वह बहुत ही घृणित कर्म में प्रवृत्त है और उसका मुँह थूक देने योग्य ही स्थान है। धनपति अपनी गरीबी को समझ गया। उसने साधु के चरण पकड़ लिये और अपनी भूल सुधारने की प्रतिज्ञा कर ली।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

थोथा ब्रह्मज्ञान

एक वैद्य अपनी जीविका के लिए एक नगर में पहुँचा। वहाँ उसने अपना ओषधालय स्थापित किया। सैकड़ों व्यक्ति दवा लेने आते और लाभ उठाते, किन्तु जब वैद्य जी दवा के दाम माँगते तो वे ब्रह्मज्ञान का उपदेश देने लगते। कहते हम सब ब्रह्म हैं। आप और हम एक ही हैं। ओषधि भी ब्रह्म रूप हैं। फिर ब्रह्म को ब्रह्म से क्या लेना देना ?

उस नगर में थोथे ब्रह्मज्ञान का शब्दांडम्बर लोगों ने खूब रट लिया था और बाहर के आदमियों को मूर्ख बनाने के लिए उन्होंने यह अच्छा बहाना ढूँढ़ रखा था। अपने मतलब में तो चौकस रहते, जब किसी दूसरे को कुछ देने का अवसर आता, तो ब्रह्मज्ञान की बात बनाकर छुटकारा पा जाते।

वैद्यजी इन ब्रह्मज्ञानियों के मारे बड़े चकराये जब दवा लेने आवें, तब तो लोग 'लाभ ज्ञानी' रहें और जब देने का समय आवे, तब ब्रह्मज्ञानी बन जाएँ। वैद्यजी इस व्यवहार से बड़े दुःखी हुए और अपना औषधालय बन्द करके अपने देश वापस चले जाने की बात सोचने लगे। वैद्यजी सोच-विचार में बैठे ही थे कि उस नगर के राजा का एक दूत उन्हें लिवाने आया। वैद्यजी की प्रशंसा दूर-दूर तक फैल चुकी थी, राजा ने भी उनके संबंध में कुछ सुना था। राजकुमार की बीमारी जब अन्य वैद्यों से अच्छी न हुई, तो राजा ने इन परदेशी वैद्य को बुलवाया।

दूतों के साथ वैद्यजी राजा के यहाँ पहुँचे और राजकुमार की बीमारी का इलाज करने लगे। धीरे-धीरे रोग अच्छा होने लगा। एक दिन राजा ने वैद्यजी से कहा—कोई ऐसी दवा बनाइये, जिससे राजकुमार जल्दी अच्छा हो जाय।

वैद्य को यह अवसर बड़ा अच्छा जान पड़ा, उसकी समझ में आ गया कि यही मौका ब्रह्मज्ञानियों से बदला लेने का है। वैद्य ने कहा—राजन् आपके राजकुमार एक दिन में बिलकुल चंगे हो सकते हैं, इस प्रकार की मैं एक दवा जानता हूँ, पर उसके लिए एक कठिन वस्तु की आवश्यकता है, यदि आप उसे मँगा सकें, तो दवा बन सकती है। राजा ने उत्सुकतापूर्वक पूछा—वह क्या वस्तु है ? वैद्य ने कहा—"कुछ ब्रह्मज्ञानियों का तेल चाहिये।" राजा ने प्रसन्नतापूर्वक कहा—"यह क्या कठिन बात है ? हमारी सारी प्रजा ब्रह्मज्ञानी है। अभी सौ दो सौ ब्रह्मज्ञानी पकड़कर मँगाता हूँ।" राजा की आज्ञा पाते ही पुलिस के सिपाही ब्रह्मज्ञानियों को तलाश करने के लिये चल दिये।

नगर में यह खबर बिजली की तरह फैल गई थी कि राजकुमार के लिये ब्रह्मज्ञानियों के तेल की जरूरत है। इस समाचार से सबके कान खड़े हो गये। पुलिस के जत्थे बड़ी सरगर्मी के साथ खोजते फिर रहे थे कि ब्रह्मज्ञानी कौन है ? परन्तु कुछ भी पता न चला, जिससे पूछते मना कर देता। बड़े-बूढ़ों, मुखिया, पंचों से पूछा गया तो उन्होंने गिड़गिड़ाकर यही कहा—"भगवन् ! हमारे कुटुम्ब में सात पुश्त से कोई ब्रह्मज्ञानी नहीं हुआ। दूसरे मुहल्ले में तलाश कीजिये।" दूसरे मुहल्ले वालों से पूछा गया तो उत्तर मिला कि हम तो अल्पज्ञानी हैं, ब्रह्मज्ञानी का तो हमने कभी नाम भी नहीं सुना। जब सारे शहर में कोई ब्रह्मज्ञानी न मिला, तो वैद्य ने अपनी दुःख गाथा राजा से कह सुनाई और बताया कि किस प्रकार लोगों ने उनके पैसे ब्रह्मज्ञान की आड़ में रख लिये हैं। वैद्य ने दूसरी दवा देकर राजकुमार को अच्छा कर दिया और राजा ने उन थोथे ब्रह्मज्ञानियों को बुलाकर वैद्यजी के पैसे दिलवा दिये।

हम ऐसे लोगों की बहुतायत देखते हैं, जो अपने मतलब में कभी नहीं चूकते और बुरे-बुरे कर्म करते हैं। किन्तु जब भेद खुलता है या दण्ड मिलता है, तो कहने लगते हैं भाग्य में ऐसा ही लिखा था, ऐसी होनी थी, होनहार को कौन मिटा सकता है ? कलियुग का प्रभाव है, अच्छी बुद्धि को बुरी कर देता है, बुरे दिनों का चक्कर है. ईश्वर की ऐसी ही मर्जी है, इस प्रकार ब्रह्मज्ञान बघारक अपने को निर्दोष साबित करना और दूसरों को मूर्ख बनाकर जीवन मुक्त परमहंस का ज्ञान अपने ऊपर लागू करते हैं, जो ब्रह्म को सर्वत्र एक समान देखने लगेगा, वह दूसरों के हित और लाभ को अपने लाभ से किसी प्रकार कम नहीं समझ सकता। वह पाप-पुण्य से बहुत ऊँचा उठ जाता है, किन्तु हम साधारण लोगों के लिये तो प्रेम और परोपकार यही ब्रह्म ज्ञान है। स्वय कष्ट सहकर दूसरों का भला करना यही उत्तम वेदान्त है।

गरीब की हाय

एक राजा ने किसी विद्वान से पूछा कि दुष्ट लोग जल्दी क्यों मर जाते हैं ? और सज्जन पुरुष चिरकाल तक क्यों जीवित रहते हैं ? विद्वान् इसका उत्तर तो अच्छी तरह जानता था, लेकिन फिर भी उसने उत्तर राजा को उस समय न बतलाकर तीन माह की अवधि माँगी। राजा ने तीन माह की अवधि दे दी।

बड़ी उत्सुकता और प्रतीक्षा के बाद तीन माह पूरे हुये। सारी प्रजा भी इस विचित्र प्रश्न का उत्तर सुनने को उत्सुक थी। भारी भीड़ लगी थी ! नियत समय पर विद्वान भी उपस्थित हुआ। वहाँ आकर उसने एक लम्बी साँस ली, बड़े दुःख के साथ कहा, "श्रीमान ! मैं आपके इस प्रश्न का उत्तर किसी जंगल में दूँगा। अंतः आपको ५०० सैनिक साथ ले चलना होगा।" राजा तो प्रश्न का उत्तर चाहता था, इसलिये विद्वान के कथानुसार बाहर जाने की भी तैयारी प्रारम्भ कर दी।

राजा ने बाहर जाने के लिये विशेष रूप से प्रबन्ध किया। ५०० सिपाहियों को शस्त्र सहित तैयार होने की आज्ञा दे दी। मन्त्री को खासतौर से हिदायत कर दी जब तक लौटकर मैं वापस न आऊँ, तब तक राज कार्य बड़ी सावधानी से चलाना। प्रजा की भलाई का सदैव ख्याल रखना, प्रजा को तकलीफ न हो। आदि प्रजा के हित की अनेक बातें समझा-बुझाकर राजा ने प्रस्थान किया।

सारे दिन चलते-चलते एक घने जंगल में पहुँचे, जहाँ आदमी का नामो-निशान तक न था। पक्षियों की बोली भी कम ही सुनाई पड़ती थी। ऐसी जगह पहुँचकर विद्वान ने राजा से कहा—"श्रीमान्, यहीं पर ठहरना ठीक होगा।" राजा ने सैनिकों को वहीं ठहरने की आज्ञा दी, सैनिक लोग वहीं ठहर गये। कुछ ही देर में ५०० सैनिकों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सहायता से वहाँ पर तम्बू बँध गये। भोजन करने के पश्चात् दिन भर के थके सैनिक विश्राम करने लगे। सोते ही सब को नींद आ गई।

सबेरे नित्य कर्म से निवृत्त हो सबने फिर भोजन किया और उसके पश्चात् महाराज के आदेश की प्रतीक्षा करने लगे। विद्वान ने बड़ी गम्भीरतापूर्वक दुःख प्रकट करते हुए कहा, "श्रीमान् ! मैंने सोचा था कि बाहर आकर मैं आपके प्रश्न का उत्तर सुगमतापूर्वक दे सकूँगा, लेकिन यहाँ पर फिर एक विघ्न उपस्थित हो गया है ? यह सामने वाला बरगद का पेड़ इस विघ्न का खास कारण है ! अतः यह पेड़ जब तक जड़-सहित अपने आप न गिर जाय तब तक मैं अपना उत्तर नहीं बता सकता ! इसलिये अच्छा हो आप अपने ५०० सैनिकों को उस बरगद की देख-रेख में तैनात कर दें।"

राजा की पहले तो ऐसा करने की लिए इच्छा न हुई, लेकिन कुछ सोचने के पश्चात् उन्होंने इस कठिन कार्य को भी करना मंजूर कर लिया। राजा ने जब यह प्रस्ताव मंजूर कर लिया तब विद्वान ने कहा—"महाराज ! सैनिकों को तैनात करने के पूर्व उनसे आप यह भी सख्ती कर दीजिये कि जब तक वह पेड़ न सूख जाय तब तक कोई भी वहाँ से न हटे और एक बात की हिदायत यह भी कर दीजिये कि कोई सैनिक भूलकर भी उस पेड़ को नष्ट करने के लिये, उस पर शस्त्र का प्रयोग न करे।" महाराज ने विद्वान के कथनानुसार सब करवा दिया। ५०० सैनिक उस पेड़ की देख-रेख में लग गये। महाराज स्वयं भी उस पेड़ के सूखने की राह देखने लगे।

एक-दो दिन तो जैसे-तैसे बीत गये, लेकिन फिर सैनिकों का हाल बुरा हो गया। ज्येष्ट की लू से सब घबरा गये। पीने को पानी भी बड़ी कठिनता से प्राप्त होता था। सारे दिन धूप में चने की भाँति सिक जाते थे। ५०० जवान केवल घबरा ही न गये थे, बल्कि बड़े व्याकुल हो गये थे। लेकिन करते क्या ?

हाय ! यह पेड़ कब सूखेगा ? कब हम अपने घर जाकर अपने बाल-बच्चों को सँभालेंगे ? बस सोते-जागते, खाते-पीते, उठते-बैठते, बोलते उनके मुँह से यही हाय ! के शब्द निकलते थे। इस तरह ५०० जवान उस पेड़ के लिये हृदय से दुःखी थे।

किसे विश्वास था कि यह सैकड़ों वर्षों में गिरने वाला पेड़ जल्दी ही सूखकर गिर जायेगा, लेकिन यह क्या ? तीन मास भी न हुए और पेड़ के तमाम पत्ते एक-एक करके झड़ गये। अब था तो सिर्फ पत्तों रहित पेड़। सबको कुछ आशा बँधी। पूरे ६ माह भी समाप्त न हुए कि वह पेड़ जड़ सहित जमीन पर गिर गया।

सबकी खुशी का पार न रहा। घर जाने के लिये कई दिनों से लालायित सिपाहियों की इच्छा पूर्ण हुई। खुशी के मारे उछलते-कूदते एक सिपाही ने यह सन्देश राजा को भी सुना दिया कि, श्रीमान् ! बरगद का पेड़ अपने आप जड़ सहित गिर पड़ा है। राजा और विद्वान बड़ी उत्सुकतापूर्वक देखने आये। यह सब देखकर विद्वान ने सैनिकों से पूछा—"तुमने इस हजारों वर्ष में नष्ट होने वाले पेड़ को कैसे गिरा दिया है ? क्या तुमने किसी शस्त्र की सहायता से ऐसा किया है ?" वे सब डरते-डरते बोले, "महाराज ! यह तो अपने आप ही गिर पड़ा है। हमने कोई शस्त्र का प्रयोग नहीं किया है। हाँ ! हमने सोते-जागते इतनी विनती प्रभु से अवश्य की है कि हाय ! यह पेड़ कब सूखे ? और कब हम अपने घर जाँय ?"

तब विद्वान ने कहा, "राजन् ! जिस प्रकार यह हजारों वर्षों में नष्ट होने वाला पेड़ ५०० जवानों की 'हाय' खाकर अपने आप ही जड़ सहित गिर पड़ा है, उसी तरह आदमी भी अनेकों की हाय खाकर अपने आप ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।" राजा ने कभी भी इस प्रश्न पर विचार न किया था कि "हाय क्या है ?" आज यह अच्छी तरह समझ गया कि हाय से कौन-सी चीज नाश को प्राप्त नहीं हो सकती ?

काटो मत, पर ·····

किसी गाँव के बाहर रास्ते के किनारे एक बड़ा विषधर सर्प रहता था। उस मार्ग से निकलने वाले मनुष्यों को डस लेता था, इस कारण उसके भय से उस मार्ग से लोगों का आना-जाना बन्द हो गया। संयोगवश एक दिन एक महात्मा उस गाँव में पधारे, लोगों ने उनकी सेवा-सुश्रूषा की। जब वह महात्मा उस मार्ग से जाने लगे, तब लोगों ने उनको रोका और निवेदन किया कि महाराज इस रास्ते में एक बड़ा विषधर सर्प रहता है, जो सबको काट लेता है। इस पर महात्मा ने उत्तर दिया, "हम निर्भय हैं, हमारा साँप कुछ नहीं कर सकता।" महात्मा उसी मार्ग से चल दिये। सर्प महात्मा को देखकर फुसकारता हुआ उनकी ओर दौड़ा, महात्मा ने थोड़ी-सी मिट्टी उठाकर मन्त्र पढ़कर उस पर फेंकी, सर्प वहीं स्थगित हो गया। इसके पश्चात् महात्मा ने उसके पास जाकर उसको उसके पिछले जन्म का ज्ञान कराया और कहने लगे कि तू अपने पिछले जन्म में लोगों को अत्यन्त कष्ट देता था, इससे तुझको सर्प योनि मिली, अब भी तू नहीं मानता है और लोगों को कष्ट पहुँचाता है, तू सबको डसना छोड़ दे, जिससे तुझको भविष्य में अच्छी योनि मिले। सर्प ने कहा, "जो आज्ञा, अब मैं भविष्य में किसी को नहीं काटूँगा।"

महात्मा सर्प को उपदेश देकर चले गये, सर्प ने उस समय से मनुष्यों को डसना बन्द कर दिया। अब तो सर्प को सब लोग तथा बच्चे बहुत तंग करने लगे, कोई उस पर पैर रखकर निकल जाता, तो कोई उसे लकड़ी से उठा कर फेंक देता, बालक उसकी पूँछ पकड़कर घसीटने लगे, सारांश यह कि सर्प अत्यन्त निर्बल हो गया, उसको अपना भोजन ढूँढ़ना भी कठिन हो गया।

कुछ दिनों बाद उस मार्ग से फिर वही महात्मा निकले तथा देखा कि सर्प अत्यन्त निर्बल तथा दीन दशा में पड़ा है। सर्प से महात्मा ने प्रेम तथा दया से पूछा—"तेरी ऐसी दशा क्यों हो गई ?" सर्प ने उत्तर दिया कि आपकी आज्ञा मानने से।

जिस दिन से आपका उपदेश सुना, मैंने सबको डसना बन्द कर दिया, परिणाम यह हुआ कि मनुष्य तथा बालक सभी ही मुझको तंग करने लगे, यहाँ तक कि मुझको अपना भोजन ढूँढ़ना भी कठिन हो गया। इस पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महात्मा ने सर्प से कहा कि मैंने तुझको काटने के लिये मना किया था, न कि फुसकार देने के लिये।

आज, हमारे समाज की ऐसी ही दशा हो गई है। धार्मिक विचारों के कारण लोग अपने को हानि पहुँचाने वाले गुण्डे, बदमाश, आतातायी लोगों का भी विरोध नहीं करते। फलस्वरूप स्त्रियों तथा बालकों का अपहरण, साम्प्रदायिक दंगों में जनसामान्य की अधिक हानि आदि दृष्टिगोचर होती है। हमें किसी पर आक्रमण नहीं करना चाहिये, पर अपने ऊपर होने वाले हमलों से बचाव के लिए शक्ति सम्पन्न जरूर रहना चाहिये, जिससे हर कोई मीठा गुड़ समझकर चट न करने लगे।

प्रतिशोध कथा

आज भगवती कात्यायनी का मन्दिर इस तरह सजा था, जैसे नव-वधू शृंगार करके ससुराल जाती है। युवराज आदित्य सेन दर्शनार्थ आने वाले थे, उन्हीं के लिये यह साज-सज्जा की गई थी। दूर से आती हुई गज-घण्टा ध्वनि क्रमशः समीप होती आ रही थी। देव-भवन के सभी परिचारक सन्नद्ध खड़े हो गये।

आदित्य सेन मन्दिर के सामने आकर रुके। चरण पादुकाएँ उन्होंने द्वारपाल चित्रक के संरक्षण में छोड़ीं और स्वयं देवी के दर्शनों के लिये मन्दिर में प्रवेश कर गये। चित्रक ने देखा युवराज की रेशम मढ़ी हुई पादुकाओं में ओस कणों के साथ कुछ धूल कण भी आ गये हैं, सो उसने उन्हें उठाकर अपने उत्तरीय वस्त्र (अँगोछे) से पोंछ देने का यत्न किया। द्वारपाल का वस्त्र मैला था, उससे पादुकाएँ और गन्दी हो गईं।

युवराज दर्शन करके बाहर लौटे। पादुकाओं की ओर देखा तो भौंहें तन गईं। कड़ककर पूछा—"किसने मैली की हैं यह पादुकाएँ ?" चित्रक भयभीत हो उठा, बोला—"क्षमा करें महाराज यह भूल.....।" वाक्य जब तक पूरा हो, चित्रक के कपाल पर उसी पादुका का तीव्र प्रहार हुआ। मस्तक फट गया, रक्त बहने लगा। आदित्य सेन को थोड़ी-सी भूल भी सहन न हुई। युवराज राजभवन चले गये और चित्रक—अपमानित चित्रक प्रतिशोध की ज्वाला में जलता हुआ अपने घर पहुँचा।

कई दिन तक उसने न अन्न लिया, न जल। वह किसी प्रकार युवराज आदित्य सेन से प्रतिकार लेना चाहता था। सप्ताहों तक वह इसी प्रतिशोध की ज्वाला में जलता रहा। चित्रक की पत्नी कुशला ने समझाया—"स्वामी ! प्रतिशोध की भावना अग्नि की तरह है, वह जहाँ भी रहती है, जलाती और शक्ति नष्ट करती है। यदि आपको युवराज से बदला ही लेना है, तो उसका उपयुक्त मार्ग मैं बताती हूँ, उठिये और यह मलिनता परित्याग कर स्वस्थ होइये।"

चित्रक उठे। स्नान किया, भोजन किया। स्वच्छ वस्त्र धारण कर बैठक में आए। कुशला वहाँ पहले से उपस्थित थी। उसने पहले ही प्रबन्ध कर रखा था। चित्रक को विद्याध्ययन के लिये वाराणसी भेज दिया।

भगवान विश्वनाथ के चरणों की छाया में बैठकर चित्रक ने दस वर्ष तक कठोर विद्याध्ययन किया। जब तक वह पुनः वाराणसी से लौटे, तब तक उनके पांडित्य की ख्याति सारे देश में फैल गई थी। चित्रक अब आचार्य चित्रक बन गये थे।

युवराज आदित्य सेन भी अब महाराज आदित्य सेन हो गये थे। इन दिनों राजमाता अस्वस्थ थीं। वैद्यों के सारे उपचार निरर्थक हो गये थे, सो उनके उपचार के लिये यज्ञ आयोजित किया गया। उसका ब्रह्म चित्रक को नियुक्त किया गया।

उन दिनों आचार्य को लोग महाराजाओं से अधिक सम्मान देते थे। चित्रक चाहते तो आदित्य सेन से बदला ले सकते थे, पर ऐसा करने की अपेक्षा उन्होंने आदित्य सेन की वह पुरानी चरण-पादुकाएँ माँग लीं और प्रतिदिन उनकी पूजा करने लगे। एक दिन आदित्य सेन ने पूछा—"आचार्य प्रवर ! पुरानी पादुकाएँ भी कोई पूजा की वस्तु हैं ? फिर मैं आपका गुरु भी तो नहीं हूँ, उन पादुकाओं से आपका लगाव समझ में नहीं आया ?"

चित्रक ने कहा—"महाराज ! इनकी कृपा से ही आज मैं इस पद पर विभूषित हुआ हूँ। आपने एक दिन यही पादुकाएँ मेरे सिर पर मारी थीं। मैं प्रतिशोध से जल उठा था। संभव था कि आवेश में मुझसे कोई अपराध हो जाता। मेरी धर्मपत्नी ने प्रतिशोध के लिये मुझे वाराणसी भेजा, उसी का फल है कि आपका द्वारपाल आज इस यज्ञ का ब्रह्म है।" इस विलक्षण प्रतिशोध से आदित्य सेन पराभूत हो उठे। उन्होंने चित्रक का बड़ा सम्मान किया और उन्हें राजपुरोहित का पद प्रदान किया।

पुरोहित—सर्वोच्च पद

परिचारक ने जाकर सन्देश दिया—"महात्मन् ! महाराज त्रैवृष्ण स्वयं पधारे हैं, आपसे अभी भेंट करने की इच्छा प्रकट की है उन्होंने।"

महर्षि जन के पुत्र महर्षि बृशजान सायंकालीन संध्या से अभी उठे ही थे। परिचारक ने जैसे ही सन्देश दिया—वह स्वयं उठकर द्वार तक आये और सम्राट त्रैवृष्ण का स्वागत कर अपने परामर्श कक्ष की ओर चल पड़े। मार्ग में ही पूछा—"महाराज ! दिग्विजय के लिये प्रस्थान की सारी तैयारी सम्पन्न हो चुकी होंगी। विजय-दशमी को प्रातः कालीन अग्निहोत्र के बाद ही प्रस्थान कर देना होगा।"

"ऐसा ही होगा भगवन् ! हम आपकी आज्ञाओं का अक्षरशः पालन करा रहे हैं। सेवा में तो हम एक अन्य अकिंचन आकांक्षा लेकर उपस्थित हुये हैं। देवर्षि ! आपके प्रताप से इक्ष्वाकु-वंश की विजय पताका दिक्मण्डल में फहरा रही है। प्रजा को कोई कष्ट नहीं, कहीं अपराध नहीं, अराजकता नहीं, सब आपका ही आशीर्वाद है। हमारी इच्छा है भगवन् कि इस युद्ध में मेरे साथ रथ की रास आप ही संभालें, आपने पुरोहित का गुरुतर भार संभालकर अपनी शास्त्रज्ञता सिद्ध कर दी है, जब तक आप जैसे समर्थ पुरोहित इस देश में जन्म लेते रहेंगे, प्रजा के हित की तब तक चिन्ता नहीं की जा सकती, पर हम यह भी देखना चाहते हैं कि, शास्त्रज्ञ पुरोहित शस्त्रज्ञाता का निर्वाह कैसे करते हैं ? आज तक आपके ब्राह्मणत्व को जानते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आये हैं, अब आपमें समाहित क्षात्रत्व देखने की अभिलाषा भी तीव्र हो उठी है, आशा है निवेदन ठुकरायेंगे नहीं।"

वृश हँसे और बोले, "ऐसा ही होगा महाराज ! जाओ युद्ध की अवशीष तैयारियाँ भी पूरी करो। इस युद्ध में आपके रथ का संचालन हम स्वयं करेंगे।"

और सचमुच सारी प्रजा ने देखा कि कल तक जो गैरिक वस्त्र धारण किए सारी प्रजा को ज्ञान का उपदेश दिया करते थे, आज वह वीर-केसरिया-वेश से सुसज्जित इक्ष्वाकु श्रेष्ठ त्रैवृष्ण के रथ की बागडोर अपने हाथ में लिये चल रहे हैं। वय का पूर्वार्द्ध समाप्त कर वे उत्तरार्द्ध में चल रहे थे, बाल पकने लगे थे तो भी जटा-जूट सँवारकर जब उन्होंने एक योद्धा का रूप धारण किया, तो वह वीर वेश में देखते ही बनता था। जन्मजात् योद्धा सरीखे दीख पड़ रहे थे बृश। सैकड़ों कलाकारों ने प्रस्थान की उस पुण्य बेला में राजधानी पहुँचकर महर्षि का वह वीर-वेश तूलिकांकित किया।

दिग्विजय की युद्ध श्रृंखला प्रारम्भ हुई। महर्षि बृश-जान ने रथ का संचालन बड़ी कुशलता से किया। वे स्वयं सिद्ध योद्धा थे। युद्ध पर युद्ध जीतते गये और एक बार फिर इक्ष्वाकु-वंश का ऐश्वर्य सारे विश्व में छा गया।

विजय-वाहिनियाँ राजधानी लौट रही थीं। स्वागत के लिये प्रजा उमड़ पड़ी। दोनों ओर पंक्तिबद्ध खड़े नागरिकों का अभिनन्दन करता हुआ, राज-स्यन्दन आगे बढ़ रहा था, तभी एक ब्राह्मण बालक रथ के पहिये के नीचे आकर कुचल गया। कुछ ही क्षणों में उसकी मृत्यु भी हो गई। सर्वत्र हाहाकार मच गया। ब्राह्मण बालक की मृत्यु न केवल अशोभनीय थी, वरन् दंडनीय भी थी। अभी तक जिन महाराज और महर्षि की जय-जयकार हो रही थी, अगले ही क्षण वे न्यायालय में ले जाए गये।

नागरिक परिषद के प्रमुख न्यायाधीश ने महर्षि से कहा—"आप रथ का संचालन कर रहे थे, उसे सँभालना आपका कर्त्तव्य था। बच्चे की मृत्यु का दोष आप पर है, क्यों न उसके लिये आपको दंडित किया जाए ?"

महर्षि बृशजान ने नागरिक परिषद से प्रश्न किया—"इस रथ का संचालन तो युद्ध में भी मैंने ही किया था, फिर विजयश्री महाराज के नाम के साथ क्यों जोड़ी गई ? मैं तो निमित्त मात्र हूँ, मुझे कर्म-फल से कोई लगाव नहीं बालक की मृत्यु का दोष महाराज को है, मुझे नहीं।"

महर्षि अपना दोष स्वीकार नहीं करते थे, महाराज त्रैवृष्ण अपने को निर्दोष कहते थे। विलक्षण द्वन्द्व था। कई दिनों तक यह स्थिति रही। सर्वोच्च न्यायपालिका में इक्ष्वाकुवंशियों का ही आधिपत्य था, सो अन्तिम निर्णय महाराज के पक्ष में ही गया। इस तिरस्कार से दुःखी होकर महर्षि बृशजान ने राज्य का परित्याग कर दिया।

महर्षि बृश के जाते ही धर्म-तन्त्र शीतल पड़ गया। राज घराने में होने वाला अग्निहोत्र समाप्त हो गया, तो सामान्य प्रजा भी धर्म-कृत्यों को छोड़ बैठी। देखते ही देखते राज्य की सम्पूर्ण तेजस्विता नष्ट-भ्रष्ट हो गई। लोग आलसी, कामुक एवं उच्छृंखल हो गये। व्यापार ठप्प पड़ गया, कृषि टूट चली, देश की दुर्गति हो चली। तब लोगों को महापुरोहित बृश का अभाव खटका।

एक दिन एक सामान्य नागरिक की पत्नी ने अपने पति की उपेक्षा कर दी, उसके भूखे और थके होने पर भी उसने भोजन नहीं बनाया। पति-पत्नी के मध्य प्रेम और आत्म-भाव न रहे तो उस युग को दुःख और दैन्य की चरम अवस्था कहना चाहिये। उपेक्षा राजवंश में भी न चल पड़े, इसकी चिन्ता हो चली। हुआ भी ऐसा ही। एक दिन महाराज त्रैवृष्ण की एक महारानी ने ही महाराज के प्रति कर्त्तव्य का प्रमाद किया, तब उन्हें धर्म मन्त्र के जागरण की आवश्यकता प्रतीत हुई।

दुःखी नरेश स्वयं बृश को लेने गये। बृश को अपनी प्रजा के समाचार सुनकर बड़ा दुःख हुआ। यद्यपि उन्हें तिरस्कृत किया गया था, तो भी लोकहित के लिये अपने अपमान का ध्यान न दिया और पुनः राजधानी लौट आये। उनके आते ही लोक-मर्यादाएँ पुनः प्रदीप्त हो उठीं।

महाराज ने धर्म-मंत्र के स्वरूप को पहचाना और तब से अनन्तकाल तक के लिये पुरोहित का पद शासनाध्यक्ष से भी उच्च घोषित कर दिया।

सच्चा-सहचर

सिद्धि के क्षण समीप थे। सहाद्रि तब अपनी वनवासी गुफा छोड़कर कहीं नहीं जाते थे। गुरु का आदेश भी ऐसा ही था, उन्हें पता न था साधना के परिपक्व अवस्था तक पहुँचने में साधक के चित्त उसी प्रकार चंचल होते हैं, जिस प्रकार गर्भवती स्त्रियों के मन। उनके आहार में से लवण और मधु दोनों निकाल दिए गये थे। सहाद्रि अस्वाद व्रत और निर्झर के शीतल जल के अतिरिक्त और कुछ भी ग्रहण नहीं करते थे।

प्रातःकालीन बयारि के शीतल मन्द झोंके ऐसे सुखद लग रहे थे, जैसे माँ की गोद। सहाद्रि का ध्यान उस दिन चरम बिन्दु तक पहुँच रहा था। आत्मा, परमात्मा की दिव्य ज्योति में समा जाने के लिये उतावली हो रही थी, तभी भव्य एकान्त को चीरता हुआ कोकिल स्वर और साथ में पायलों की मधुर झंकार सहाद्रि के अन्तस्तल को बेध गया। समाधि भंग हो गई, नेत्र खुल गये, पद्मासन विश्रृंखलित हो गया। सामने दाड़िम-प्रभा बिखेरने वाली राजनर्तकी अलोपा सम्पूर्ण साज-श्रृंगार के साथ उपस्थित थी। वह वन-विहार के लिये आई थी। योगी के अंग सौष्ठव और साधना से दीप्त मुखमण्डल ने उसे इस ओर आने को आकृष्ट किया। अलोपा अपने आपको रोक नहीं पाई थी।

अलोपा ने पखवारा सहाद्रि के आश्रम में ही बिताया और जब वहाँ से लौटी तब सहाद्रि अपने योग से, तप से पूर्णतया भ्रष्ट हो चुके थे। हीरा कौड़ियों के मोल बिक चुका था। वासना के इन्द्रजाल ने सिद्ध के प्रकाश का अपहरण कर लिया था। लक्ष्य की ऊँचाई तक आ जाने पर सहाद्रि इतने वेग से गिरे कि अब उनके लिये उतनी ऊँचाई पर चढ़ना इस तरह असंभव लगा, जैसे चींटी के लिये समुद्र पार करना। हृदय क्षोभ और आत्म-ग्लानि से भर गया। सहाद्रि पश्चाताप की अग्नि में जलने लगे। एक मास तक उन्होंने कुछ खाया-पिया नहीं और इसी अवस्था में उन्होंने अपना प्राणान्त कर लिया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कहते हैं, योग भ्रष्ट को भगवान् दूसरे जन्म में वह सब परिस्थिति अपने आप प्रदान करते हैं, जिससे वह अपने आत्म-कल्याण की शेष दूरी स्वल्प प्रयत्न में ही सुविधापूर्वक पूरी कर ले। सहाद्रि का जन्म भी ऐसी ही परिस्थिति में महान् सम्पन्न और ईश्वर भक्त घर में हुआ। पूर्व जन्मों के सभी संस्कार सहाद्रि में प्रारम्भ से ही विद्यमान थे, पर अब वह रिपुदमन के पुत्र विश्वजित् के नाम से पुकारे जाते थे।

बालक विश्वजित् तब बालक ही था, वह एक दिन मिट्टी में खेल रहा था। उधर से उस देश के राजा का आगमन हो रहा था। सचिव पुत्र को मिट्टी में खेलते देख कर राजा ने पूछा—"वत्स ! तुम मिट्टी से क्यों खेल रहे हो, घर में धातु निर्मित खिलौने नहीं हैं क्या ?" विश्वजित् ने उत्तर दिया—"शरीर मिट्टी से बना है, सो उसे मिट्टी में खेलने से बढ़कर आनन्द खिलौने में नहीं मिलता।"

राजा इस उत्तर से बड़ा विस्मित हुआ। उसने बालक को राज्य-संरक्षण में लेने की इच्छा से कहा—"वत्स ! तुम हमारे साथ चलो, हम तुम्हें अच्छे वस्त्र, स्वाद युक्त भोजन और आभूषणों से युक्त सुखद जीवन के सब साधन प्रदान करेंगे। हमारे साथ रहकर तुम बड़ी प्रसन्नता का अनुभव करोगे।"

विश्वजित् ने गम्भीर होकर उत्तर दिया—"राजन् ! मनुष्य का एकमात्र सहचर तो परमात्मा है, जो उसको छोड़कर अन्य किसी की शरण में ढूँढ़ते हैं, वह संसार में व्यर्थ भटकते हैं।" यह कहकर बालक घर की ओर चल पड़ा। महाराज उसे विस्मय विस्फारित नेत्रों से देखते ही रह गये। पूर्व जन्म के शुभ-संस्कार जब उदय होते हैं, तब ऐसी ही ज्ञान गरिमा अनायास प्रस्फुटित देखी जाती है। अन्त में विश्वजित् महान् तपस्वी बनकर उस युग के विलक्षण सिद्ध-पुरुषों की पंक्ति में जा विराजे।

निष्कलंक भगवान की जय

कौशलपुर के राजा प्रसेनजित के पुरोहित आचार्य भार्गव अपनी दयालुता, न्यायशीलता और परोपकार वृत्ति के लिये प्रसिद्ध थे। पराये दुःख दूर करने को आत्म त्याग करने के लिये वे सदैव तत्पर रहते थे।

आचार्य भार्गव के घर एक बड़ा ही सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। इस समाचार से सारे कौशलपुर में आनन्द छा गया। घर-घर बधाये बँटने लगे। घड़ी महूर्त देखने के लिये ज्योतिषी लोग पधारे, उन्होंने बालक के जो लक्षण बताये उसे सुनकर सब लोग सन्न रह गये। आचार्य का मुख सूख गया। ज्योतिषियों ने कहा कि "यह बालक बड़ा होकर भयंकर डाकू होगा, यह अनेक निरपराध मनुष्यों की हत्या करेगा।"

ऐसा बालक भला भार्गव जैसे ऋषि के लिये कुछ प्रसन्नता का कारण थोड़े ही हो सकता था। उसने सोचा कि इसे अभी ही मार दिया जाय तो अनेक लोगों की विपत्ति कट जायगी। उन्होंने निश्चय किया कि अपना विचार राजा के सम्मुख रखूँगा और इस बालक का वध करा दूँगा।

दूसरे दिन अपने नवजात बालक को लेकर आचार्य भार्गव राज दरबार में पहुँचे। उन्होंने राजा को अपना विचार सुनाया और कहा, "अनेक मनुष्यों के लिये विपत्ति बनने वाले इस बालक का आप वध करा दीजिये।"

आचार्य की त्याग वृत्ति और बालक की सुन्दर आकृति को देखकर राजा का हृदय दया से भर गया। उसने कहा—"भगवन् ! देवताओं तक से भूल होती है और ज्योतिषी तो मनुष्य ही है। कौन जाने ज्योतिषियों का कथन मिथ्या ही निकले। फिर यदि यह डाकू हुआ तो राज-शक्ति द्वारा जैसे अनेक डाकुओं का दमन किया जाता है, वैसे ही इसका भी प्रबन्ध कर दिया जाएगा। इस बालक का अकारण वध करना मुझे उचित प्रतीत नहीं होता, इसलिये आप इसे लौटा ले जाइये।

भार्गव को राजा की बात माननी पड़ी, वे बालक को घर लौटा लाये। मृत्यु के मुख में से वापस आये हुए बालक को पाकर माता को बड़ा आनन्द हुआ। उसने पुचकारते हुए बच्चे को छाती से लगा लिया। माता ने हाथ जोड़कर ईश्वर से प्रार्थना की कि प्रभो ! मेरे बच्चे को कलंक से बचाना। इसे निष्कलंक रखना। माता को निष्कलंक नाम इतना प्रिय लगा कि उसने बालक का नाम ही 'निष्कलंक' रख दिया।

निष्कलंक बड़ा होने लगा। उसकी बुद्धि ऐसी तीव्र थी कि सभी को आश्चर्य होता। सद्गुणों का तो मानो अवतार ही हो, पिता ने समस्त स्वभाव उसमें कूट-कूट कर भरे थे। ऐसे सुयोग्य बालक को पाकर माता-पिता के आनन्द की सीमा न रही। सात वर्ष का होते-होते उसे तक्षशिला के विश्वविद्यालय में विद्याध्ययन करने के लिये भेज दिया गया।

विधि की इच्छा। निष्कलंक को ऐसे अध्यापक के पास पढ़ना पड़ा, जो छिपकर मद्य पान करता था। थोड़े दिन तो वह कुछ न समझ सका। पर जब वह अठारह वर्ष का हो गया तो ऊँच-नीच समझने लगा। एक दिन उसने गुरु को छिपकर मद्य पान करते देखा। ब्राह्मण और उपाध्याय होते हुए भी सुरा पान ! बालक को बड़ा क्षोभ आया। उसने अपना रोष प्रकट करते हुए कहा—"गुरु जी यह बहुत ही अनुचित है। आप इतने विद्वान होते हुए भी ऐसा पाप करते हैं। मैं राजा से इसकी शिकायत करूँगा।"

अध्यापक भय से काँपने लगे। उस युग में ब्राह्मण के लिये सुरापान करना अक्षम्य अपराध था, यदि राजा को पता चल जाय तो कठोर दण्ड भोगे बिना छुटकारा न मिले। जन्म भर को जाति से बहिष्कृत होकर अपमान की अग्नि में जलना पड़े सो अलग। इस विपत्ति की सम्भावना से अध्यापक अत्यन्त व्याकुल हो गया। फिर उसने धैर्य धारण किया और एक उपाय सोच निकाला।

अध्यापक ने एक मर्म भरी हँसी हँसते हुए बालक के सिर पर हाथ फिराया और उसके कान के पास मुँह ले जाकर अत्यन्त धीमे स्वर में कहा—"बेटा, इसमें बड़ा भारी रहस्य छिपा हुआ है। मेरे साथ घर चल, तुझे यह सब बताऊँगा।" निष्कलंक गुरु के साथ हो लिया। जब दोनों कुटी पर पहुँच गये तो आदरपूर्वक बालक को बिठाते हुए गुरु ने कहा—"बेटा, मैं तान्त्रिक हूँ। तन्त्र द्वारा कैसे-कैसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जादू भरे चमत्कारी कार्य मनुष्य कर सकता है सो तो तुम जानते ही हो। उसी तन्त्र साधना के लिये मुझे मद्यपान करना पड़ता है। तुम मेरे सबसे प्यारे शिष्य हो। यदि तुम तन्त्र विद्या सीखना चाहते हो, तो मैं तुम्हें सिखा सकता हूँ।"

विभूतियों का लोभ किससे त्यागा गया है। अपने अन्दर आश्चर्यजनक शक्तियाँ पाने और दुनिया को अपनी उँगली के इशारे पर नचाने का लालच एक किशोर को फँसा लेने के लिए पर्याप्त था। वह गुरु के चरणों पर गिर पड़ा, 'भगवान् मुझे वह विद्या सिखाकर कृतार्थ कर दीजिये।" अध्यापक ने देखा कि मेरा जादू काम कर गया। उन्होंने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया, "अवश्य ! मैं तुम्हें अवश्य सिखा दूँगा, पर उसकी साधना में जो कठोर कार्य करने पड़ते हैं उन्हें तुम कर सकोगे ?"

किशोर ने कहा, "कैसी ही कठोर साधना क्यों न हो, मैं उसे पूरी करूँगा।' गुरु ने उससे कहा, "बेटा ! तुम्हें एक हजार मनुष्यों का वध करना पड़ेगा। उनके गले की हड्डियाँ निकाल निकाल कर लानी पड़ेगी।" युवक ने यह स्वीकार कर लिया और वह तलवार लेकर जंगल की ओर चल दिया।

निष्कलंक घने वन में एक ऐसे स्थान पर छिप गया जहाँ आठ मार्गों का चौराहा था। वहाँ से जो पथिक निकलता, वही निष्कलंक की तलवार का शिकार बन जाता। इस प्रकार राज पथ के बन्द हो जाने से चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गई। सारा कौशल राज्य उसके आतंक से त्रस्त हो उठा। गुप्तचरों ने घोषित कर दिया कि यह डाकू और कोई नहीं आचार्य भार्गव का पुत्र निष्कलंक है। राजा एक बड़ी सेना के साथ स्वयं जाकर उस डाकू को मारने गये, पर उन्हें बहुत प्रयत्न करने के बाद भी निराश लौटना पड़ा।

दस्यु की दुष्टता का सबसे अधिक दुःख निष्कलंक की माता को हुआ। वह तपस्वी ज्योतिर्भिक्षु के आश्रम में पहुँची। यह बौद्ध भिक्षु अहिंसा धर्म का प्रबल प्रचारक और ऐसा तेजस्वी था कि असंख्य मनुष्यों के जीवन का प्रवाह उसने पश्चिम से पूरब को पलट दिया था। माता ने भिक्षु के चरणों में अपना मस्तक रख दिया। माता की ममता उसकी आँखों में से टपक कर अपनी कथा आप कह रही थी। आँसू का प्रत्येक कण प्रार्थना कर रहा था। ऋषि निष्कलंक को सकलंक होने से बचा दीजिये।

भिक्षु को सारी घटना क्रम जानने में क्षण भर का भी विलम्ब न हुआ। उनके वृद्धा को भूमि पर से उठाते हुए कहा, "माता तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी, तुम्हारा पुत्र निष्कलंक ही रहेगा। तुम्हारा दुःख दूर करके अपना जीवन धन्य करूँगा।" यह कहता हुआ भिक्षु अपने आसन पर से उठा और उत्तर दिशा के लिये चल दिया।

डाकू को ढूँढ़ता हुआ ज्योतिर्भिक्षु निविड़ वन में पहुँचा। अचानक अपने आप एक शिकार पास में आया देखकर दस्यु को बड़ी प्रसन्नता हुई। एक हजार मनुष्यों का वध करने में आज एक ही की कमी रह गई थी, सो ईश्वर ने अपने आप घर बैठे भेज दिया। साधना पूरी होने पर जो विभूतियाँ प्राप्त होंगी, उनकी कल्पना करता हुआ, तलवार हाथ में लेकर डाकू आगे बढ़ा।

दोनों की निगाह से निगाह मिली। भिक्षु ने आत्म तेज की एक किरण फेंकते हुए कहा—"बस, आगे पैर मत बढ़ाओ, जहाँ हो वहीं खड़े रहो।" डाकू प्रस्तर मूर्ति की तरह जहाँ का तहाँ खड़ा रहा। अब वह अपना एक अंग हिलाने में भी असमर्थ था।

भिक्षु ने कहा—"बेटा, तुम्हें बहुत भ्रम हुआ। धूर्त द्वारा बुरी तरह ठगे गये। हत्या और हिंसा द्वारा जो विभूतियाँ प्राप्त होती हैं, वे बड़ी ही मलीन और नीच कोटि की होती हैं, और अधिक दिन ठहरती भी नहीं। तुमने दुष्ट के बहकावे में आकर अपना लोक और परलोक बिगाड़ा। अब तुम्हें इस प्रपंच से बचकर ब्राह्मण धर्म का पालन करना चाहिये। चलो मेरे साथ चलो, मैं देखता हूँ कि तुम्हारे अन्दर ज्ञान की ज्योति जल रही है, मैं इसे प्रदीप्त करूँगा और तुम्हें ब्रह्म विद्या की शिक्षा दूँगा।"

डाकू मन्त्र मुग्ध की तरह खड़ा हुआ था। उसके हृदय से मानो कोई जोर-जोर से मसोस रहा हो, पश्चाताप से सौ बिच्छू काटने की पीड़ा वह अनुभव कर रहा था। हाय ! मैं किस भ्रम में पड़ा रहा, मैंने अपने कर्त्तव्य धर्म की कितनी भारी उपेक्षा की ? आँखों में से पानी की बूँदें टपक पड़ीं। भिक्षु उसे अपनी कुटी पर ले आया और सत्य धर्म की शिक्षा देने लगा।

समय बीतने लगा। निष्कलंक के कषाय कटने लगे। गुरु के लिये भिक्षा माँग लाना और विद्या पढ़ना, यही दो कार्य आश्रम में उसे करने पड़ते थे। अब वह सचमुच अपने नाम को सार्थक करने की स्थिति में पहुँच चुका था। ज्ञान की महिमा ऐसी ही है, उस गंगा में स्नान करके कौए कोयल हो जाते हैं और बगुले हंस बन जाते हैं।

एक दिन वह भिक्षा माँगने गया हुआ था। रास्ते में देखा कि एक विधवा का बालक मर गया है और वह बिलख-बिलख कर रो रही है। निष्कलंक का हृदय दया से भर गया। उसने विधवा से कहा—"माता चलो, हमारे गुरु जी इस बच्चे को जीवित कर देंगे।" भिक्षा माँगना छोड़कर निष्कलंक उस विधवा को आश्रम में ले पहुँचा और गुरु जी से सब वृतान्त कह दिया।

ज्योतिर्भिक्षु ने कहा—"वत्स, आज तुम्हारी ही परीक्षा का समय है। मृत बालक को हाथ में लो और कहो कि "यदि मैंने जीवन भर में आज तक किसी भी प्राणी की हिंसा न की हो, तो मेरे पुण्य प्रताप से यह बालक जीवित हो जाय।" निष्कलंक ने उन्हीं शब्दों को दुहरा दिया। वाक्य समाप्त होते ही मृत बालक ने आँखें खोल दीं।

निष्कलंक आश्चर्य से चिल्ला उठा—प्रभो ! यह कैसी विडम्बना ! मैंने ९९९ मनुष्यों की तो हत्या प्रत्यक्ष ही की है, फिर "किसी भी प्राणी की हिंसा न करने का क्या अर्थ ?"

ज्योतिर्भिक्षु खिल-खिलाकर हँस पड़े और बोले, "वत्स ! कर्म-बन्धन तो तभी तक है जब तक कि मनुष्य उसमें बँधता है। स्वार्थ और लोभ जब तक है तब तक कर्मों के भले-बुरे फल भी अवश्य मिलते हैं ! पर जब आत्मा के असली स्वरूप को समझ लिया जाता है, तो उसके अन्तर ईश्वरीय अखण्ड ज्योति से भर जाता है। उसके आचरण स्वार्थ, तृष्णा एवं भोगों के लिये नहीं वरन् सत्य, प्रेम, न्याय के लिये होते हैं। ऐसा जीवन मुक्त आत्मा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सर्वथा निष्कलंक है। तुमने सत्य की शोध करके तत्वज्ञान प्राप्त कर लिया है इसलिये पिछले कर्म-बन्धन से तुम्हें अनायास ही छुटकारा मिल गया। हे आत्मन ! तुम सत्चित आनन्द स्वरूप हो, इसलिए निष्कलंक हो, जीवन मुक्त हो। आत्मा और परमात्मा को पहिचान लेने पर तुम्हारी तरह अन्य प्राणी भी निष्कलंक हो सकते हैं।"

आश्रम के छात्र और अनेक दर्शक इस उपदेश को सुन रहे थे। यह सार उनके अन्तर में उतर गया और सबने अपने को निष्कलंक बनाने की प्रतिज्ञा कर ली।

गुरु ने उच्च स्वर में आवाज लगाई—"निष्कलंक भगवान की जय।" सुनने वालों के असंख्य कण्ठों ने उसका अनुगमन किया। निष्कलंक भगवान की जय। आश्रम का पवित्र वातावरण उसकी प्रतिध्वनि से गूँज उठा। वायु ने यह पवित्र सन्देश दूर-दूर देशों में फैला दिया। जाग्रत आत्माएँ एक स्वर से पुकारने लगीं—निष्कलंक भगवान की जय।

निमाई की मित्रता

नव द्वीप (बंगाल) की एक पाठशाला। इसमें छात्र तो अनेकों थे, पर निमाई और रघुनाथ दो प्रतिभाशाली बालकों की गणना छात्रों में विशेष आदर के साथ होती थी। इन दोनों में भी निमाई विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न थे। आपस में दोनों की पटती भी खूब थी। वैसे निमाई प्रत्येक सहपाठी से खूब स्नेह रखते थे, पर रघुनाथ के साथ इनका सम्बन्ध कुछ अधिक घनिष्ठ था। कहीं बाहर आना-जाना, घूमना-फिरना, उठना-बैठना प्रायः साथ-साथ ही हुआ करता था।

एक बार निमाई ने गंगा में नौका-विहार का कार्यक्रम बनाया और रघुनाथ को बताया। मित्र को यह भा गया और साथ चलने की स्वीकृति दे दी।

निश्चित दिन दोनों सखा नाव में सवार होकर गंगा और आस-पास के मनोरम दृश्यों का अवलोकन करने लगे। नदी की उद्दाम तरंगों में नाव कभी ऊपर उठती तो दूसरे ही क्षण नीचे आ जाती। जल-प्रवाह के साथ नौका की यह अठखेलियाँ उन्हें बहुत पसन्द आ रही थीं। बीच-बीच में तरह-तरह की चर्चाएँ भी छिड़ जातीं। चर्चा का विषय कभी पाठशाला के स्नेही सखा, मित्र, आचार्य और उनका विद्वतापूर्ण अध्यापन होता, तो विषय बदलकर कभी प्रकृति के मनोहारी दृश्य, गंगा की उत्पत्ति, नामकरण प्रभृति प्रकरणों पर आ जाता। कुल मिलाकर इस जल-विहार से आज दोनों दोस्त बड़े प्रसन्न थे।

तभी अचानक रघुनाथ चौंके, कुछ याद आ गया हो। सचमुच इस नौकायन के मध्य उन्हें एक बात स्मरण हो आयी। उन्होंने न्याय शास्त्र पर "दधीति न्याय" नामक एक ग्रन्थ की रचना की थी, जिसे कुछ दिन पूर्व पढ़ने व समीक्षा के उद्देश्य से अपने परम स्नेही मित्र निमाई को दी थी, पर उसकी सम्मति अब तक ज्ञात न हो सकी थी। पूछने का समुचित अवसर पाकर उन्होंने पूछ ही लिया—"मित्र ! मेरा वह न्याय ग्रन्थ तुम्हें कैसा लगा ?"

"बहुत उत्तम" छोटा-सा उत्तर मिला।

"कोई कमी ?"

"नहीं, पूर्णतः त्रुटिहीन। तुमने सूत्रों की बहुत अच्छी टीका और टिप्पणी की है, पर मेरे विचार से समय और परिस्थिति के अनुरूप यदि ग्रन्थ का भाष्य किया जाता, तो अधिक अनुकूल होता। टीका से विद्वता तो दिखायी जा सकती है, किन्तु समय और समाज को दिशा देने की सामर्थ्य भाष्य ही रखता है।"

"हाँ, मित्र ! तुम ठीक कह रहे हो।" रघुनाथ ने निमाई का समर्थन किया—"आज समाज जिन कुरीतियों, मूढ़-मान्यताओं और अन्ध-परम्पराओं से घिरा है, वैसी ही स्थिति में आर्ष-वाङ्मय की टीका करना, समाज के साथ न्याय करना नहीं है। इससे तो मनीषा और मनीषी दोनों की महत्ता समाप्त हो जाती है। मनीषा का काम है—श्रेष्ठ चिन्तन देना और मनीषी का कार्य समाज का मार्गदर्शन करना।

यदि यही मूर्धन्य अपने प्रयोजन से च्युत हो जाते हैं, तो फिर उपयुक्त मार्गदर्शन के अभाव में जनसामान्य का भटकाव अवश्यम्भावी है।"

"बिल्कुल सही सोच है।" निमाई ने हाँ में हाँ मिलाते हुए कहा—"तुमने ग्रन्थ का प्रणयन किया है, इसलिये निश्चय ही तुम मनीषी वर्ग के अन्तर्गत आते हो, परन्तु तुम्हारा उक्त ग्रन्थ आज के परिवेश के अनुरूप वह उद्देश्य पूरा करने में सर्वथा विफल रहा है।"

"अरे हाँ, इस वाद-विवाद में मैं तो यह बताना भूल ही गया कि न्यायशास्त्र पर मैंने भी एक भाष्य लिखा है। शायद उसे झोली में साथ लाया भी हूँ।"

निमाई कन्धे से लटकती अपनी झोली टटोलने लगे और एक मोटी पांडुलिपि निकाल कर रघुनाथ के हाथों में थमा दी, कहा—"जरा देखना, कैसी बन पड़ी है ? कोई सुझाव, संशोधन मस्तिष्क में आये, तो उसे निःसंकोच बता देना, संकोच न करना।"

रघुनाथ ने पोथी को लेकर ज्योंही पलटा तो संयोग से द्वितीय अध्याय के प्रथमाहिनकम का सोलहवाँ सूत्र—**"प्रमेयता च तुला प्रामान्यात्"** आँखों के सामने पड़ गया। इसकी जिस प्रकार उन्होंने व्याख्या की थी, उससे वे हतप्रभ रह गये। बेमन से फिर दोस्त का मन रखने के लिये उन्होंने ग्रन्थ के पन्ने इधर-उधर थोड़ी देर उलटे-पल्टे और पुनः पांडुलिपि निमाई को लौटा दी।

निमाई ने पूछा—"क्यों रघु ! कोई त्रुटि ?"

रघुनाथ चुप रहे, कुछ बोले नहीं। उनका मुखमण्डल विषादयुक्त हो उठा था।

सखा ने पुनः प्रश्न किया—"क्या पसन्द नहीं आयी ?" इस प्रश्न के साथ उनकी आँखों से टप-टप आँसू टपकने लगे।

निमाई आश्चर्य में पड़ गये। सोचने लगे आखिर बात क्या हो गयी ? कोई अनुचित आचरण तो हमने किया नहीं, फिर यह अश्रु कैसे ? निमाई ने जब बार-बार आग्रह किया, तो उन्होंने बात टालने की कोशिश की, कहा—"नहीं मित्र ! बात कुछ भी नहीं है।"

"कुछ भी नहीं ! निमाई ने आश्चर्य प्रकट किया—"तो फिर यह आँसू कैसे हैं ?"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"यह आँसू !" एक फीकी हँसी हँसते और सचाई को छिपाने का प्रयास करते हुए रघुनाथ ने कहा—"आँसू अपने प्रिय मित्र की उत्कृष्ट रचना से उत्पन्न प्रेम व प्रसन्नता के उद्दाम प्रवाह को न रोक पाने का परिणाम है।"

"नहीं रघु ! तुम मुझसे कुछ छिपा रहे हो ? तुम्हारी यह मुरझाई मुख-मुद्रा इसकी पुष्टि कर रही है। यदि सचमुच यह प्रेम के आँसू होते, तो तुम्हारा चेहरा अभी थोड़ी देर पूर्व की भाँति खिला रहता, पर इसकी विवर्णता तुम्हारे कथन को झुठला रही है।" निमाई कह रहे थे।

बहुत अनुरोध करने के बाद रघुनाथ ने अत्यन्त क्षीण स्वर और व्यथित मन से कहा—"निमाई ! इस संदर्भ में बस इतना ही कहना काफी होगा कि तुम्हारे ग्रन्थ के आगे मेरा ग्रन्थ सूर्य को दीपक दिखाने के समान है। तुम्हारी रचना के आगे मेरी कृति की कोई पूछ न होगी, उसे पढ़ना कोई पसन्द नहीं करेगा·····।" रघुनाथ बुझे मन से कहे चले जा रहे थे।

"बस इतनी-सी बात" हँसते हुए निमाई ने कहा—"इसी से तुम्हारे चेहरे की चमक जाती रही। लो इसका भी मैं इन्तजाम किये देता हूँ। भला वह रचना किस काम की, जो मित्र की खुशियाँ छीन ले, उसके दिल को ठेस पहुँचाए।"

इतना कहकर निमाई ने झोली टटोली। उससे कलम-दवात निकाली और ग्रन्थ के ऊपर प्रणयनकर्त्ता के नाम के स्थान पर लिखे नाम को काटकर वहाँ "रघुनाथ" लिख दिया।

नाव पर सामने बैठे रघुनाथ बड़ी उत्सुकतापूर्वक यह देखना चाह रहे थे कि इसका क्या व कैसा उपाय निकालने जा रहे हैं निमाई, किन्तु जैसे ही उन्होंने निमाई की जगह स्वयं का नाम लिखते देखा, तो बरबस उनके मुख से निकल पड़ा—"अरे ! अरे !! यह क्या कर रहे हो ?" उन्होंने सखा को रोकते हुए कहा—"ऐसा कैसे हो सकता है ? तुम्हारी रचना हमारी कृति कैसे बन सकती है ? बिल्कुल असम्भव है, यह हो नहीं सकता।"

जब रघुनाथ अपने बात पर अड़ गये, तो निमाई ने बड़े विनम्र भाव से कहा—"भाई ! इसे मेरी ओर से भेंट समझकर ही रख लो। भला मित्र का उपहार ठुकराया जाता है और तुम जैसे दोस्त से ऐसी आशा भी नहीं है।"

यह निवेदन कर निमाई ने रघुनाथ को पांडुलिपि स्वीकार करने के लिए मजबूर कर दिया। रघुनाथ ने मित्र की महानता व प्रेम से अभिभूत एवं गद्‌गद् होकर उन्हें अपने बाहुपाश में बाँध लिया। अब तक नाव किनारे लग चुकी थी। दोनों स्नेही सखा उससे उतरे और घर की ओर चल पड़े।

बाद में चलकर निमाई ही चैतन्य महाप्रभु के नाम से प्रख्यात हुए, जिन्होंने तत्कालीन समय में समस्त भारत में विशेषकर बंग प्रान्त में भक्ति की उत्ताल भाव-धारा बहाकर अनेक ऐसे सन्त पैदा किये, जिन्होंने मध्यकालीन समाजोत्थान में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई और उनके सहपाठी आगे चलकर रघुनाथ शिरोमणि नाम से प्रसिद्ध हुए। उनकी अनेक कृतियाँ उस समय के जनमानस का मार्गदर्शन करने में अग्रणी साबित हुईं।

ऐसे थे ये त्यागपूर्ण महामानव, जिनमें से एक ने भक्ति का आश्रय लेकर विचार-क्रान्ति की मुहिम चलाई, तो दूसरे ने लेखनी को माध्यम बनाकर ज्ञान-गंगा की वैतरणी बहायी।

मृत्यु को याद रखो

किसी जंगल में एक महात्मा रहते थे। अपने शिष्यों को पढ़ा देना और योगाभ्यास करना यही महात्मा का नित्य कार्य था। उदर पोषण के लिये कन्द मूल फल तथा नदियों का स्वच्छ जल पीकर ही सन्तुष्ट रहते थे। वल्कल वस्त्र, तृण, शैय्या, फूस की झोंपड़ी में विश्राम, इस प्रकार सन्तोष, धैर्य और शान्ति की साक्षात् मूर्ति महाराज योगीराज थे।

परन्तु महाराज का एक शिष्य बड़ा ही चपल था, उसके हृदय में बार-बार विविध विचारों की तरंगें उठती थीं। सांसारिक भोग विलासों की कल्पना में उसका मन रात्रि-दिवस उलझा रहता और योग में न लगता था। आखिर मन की कल्पना का, कार्यरूप में करने की ठानी और गुरुजी से कहने लगा कि "महाराज आप तो सदा वन में पड़े रहते हैं, कभी-कभी नगर की भी सैर किया कीजिये।" बीसियों राजे-महाराजे आपके शिष्य बनेंगे, सबमें नाम होगा, राजमहलों तथा नगर की शोभा को हम शिष्य लोग भी देख लेंगे। योगीराज यह सुनकर कहने लगे, "भाई मुझे तो अवकाश नहीं है, हाँ तू चाहे तो नगर में जा सकता है।" चेला कहने लगा कि महाराज आपको अवकाश क्यों नहीं, यहाँ बैठे आप रात-दिन योग अभ्यास ही तो करते रहते हैं, दो-चार दिन को चलिये घूम आवें, हर वक्त का भजन किस काम का ? यह सुन महात्मा हँस दिये और चेले से कहा कि भाई मैं तो जाता नहीं, तू जैसा चाहे वैसा कर।

चेला अकेला ही नगर की सैर को चला। बाजार की शोभा देखता-देखता गली-कूंचों को चला। इधर-उधर महलों की शोभा देखता फिर रहा था कि एक अट्टालिका पर निगाह पड़ी, देखता क्या है एक युवती खड़ी बाल सुखा रही है। बस उसे देखते ही लोट-पोट हो गया, कामदेव के बाण से बेधित होकर छटपटाने लगा, परन्तु करता क्या, बेवश था।

सायंकाल समीप जान आश्रम को लौटा। गुरु जी महाराज ने चेहरा देखते ही जान लिया कि बच्चा माया का शिकार बन गया है। बोले कहो, "क्या दशा है ?" चेला गिर पड़ा और कराहता हुआ कहने लगा कि महाराज छाती में दर्द होता है। गुरु जी ने हँसकर कहा, "क्या नजर का काँटा हृदय में लग गया, सच-सच बता ? गुरु जी से झूँठ बोलकर परलोक न बिगाड़।" गुरु जी के यह वचन सुन चेले ने लज्जा से सिर झुका लिया। फिर गुरु जी के आग्रह पर सारा असली वृत्तान्त कह सुनाया, तब गुरुजी ने चेले को आश्वासन देते हुये कहा कि घबराओ मत, यह कितनी बड़ी बात है, तुम पता बताओ वह स्त्री यहीं उपस्थित होगी। चेले ने पता बताया, गुरु जी ने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने दूसरे से चेले के हाथ एक पत्र उस स्त्री के पति के नाम लिखकर भेज दिया। उस शिष्य ने स्त्री के पति को जो कि एक सेठ था पत्र दिया। पत्र में लिखा था कि हमारे ऊपर विश्वास कर अपनी स्त्री को इस रात के लिए आश्रम में भेज दो, उसके पतिव्रत धर्म के हम पिता के समान रक्षक हैं।

महात्मा को दूर-दूर तक सब जानते थे, उन पर सबको पूरा विश्वास था, सेठ अपनी स्त्री सहित उपस्थित हो गया। महात्मा जी सेठ को अलग बैठाकर स्त्री को ले शिष्य के पास पहुँचे और कहने लगे ले, "भाई ! यह देवी मौजूद है, तू जो चाहे सो कर परन्तु इतना ध्यान रख कि प्रातःकाल सूर्य निकलते ही तेरा देहान्त हो जावेगा, रात्रि के थोड़े-से घण्टे ही तेरे जीवन के हैं।" स्त्री को महात्मा जी ने पहिले ही समझा दिया था कि पुत्री घबड़ाना मत। तुम्हारे धर्म पर आँच नहीं आयेगी, थोड़ी देर का मायाजाल है। स्त्री बैठी रही। इधर मृत्यु के भय से चेला चिन्ता में डूब गया और उसके हृदय से सारी काम वासना काफूर हो गई। रह-रहकर यही सोच सता रहा था कि प्रातःकाल होते ही काल का कलेवा बन जाऊँगा। बस सारी रात बीत गई, प्रातःकाल होते ही गुरुजी आ पहुँचे। चेले ने चरण छुये। गुरुजी ने कहा, "कहो भोग-तृष्णा को बुझा चुके ?" चेला कहने लगा, "कैसा भोग और कैसा विलास ? मैं तो सारी रात चिन्ता में रहा हूँ।" गुरुजी ने कहा कि मूर्ख तुझे तो रात्रि भर का समय दिया था फिर क्यों न कुछ कर सका। "मुझे तो यही पता नहीं है कि मृत्यु कब आ जाये ? फिर किस प्रकार योगाभ्यास छोड़कर सैर-सपाटे को निकलूँ, मृत्यु के स्वागत के लिये ही मैं हर समय तैयार बैठा रहता हूँ।"

याद रख, भोग-विलास में फँसे रहना और परलोक की तैयारी न करना भूल है। यह नर तन इसलिये ही मिला है कि मुक्ति प्राप्त की जाए। परन्तु भोग-विलास में फँसा हुआ मनुष्य सोचता रहता है कि अन्त में भजन कर लूँगा। इसी प्रकार टालते-टालते मृत्यु आ जाती है और हम तैयार नहीं हो पाते। मनुष्य यदि वह विचार सदा रक्खे कि मृत्यु आने वाली है, तो फिर भोग में लिप्त नहीं हो सकता। चेला यह सुनकर चरणों में गिर पड़ा। गुरुजी ने कहा कि उठ, अब तू अमर हुआ। यदि तू भोग में फँसता तो ब्रह्मचर्य से गिर जाता, यही तेरी धार्मिक मृत्यु होती। अब तूने मृत्यु चिन्ता के कारण भोगों से उदासीनता दिखाई है, इसलिये स्थिर होकर योगाभ्यास कर और मृत्यु के मुकाबिले को तैयार रह।

मजबूत रस्सी बाँधो

एक किसान के खेत में एक गाय नित्य चर जाती थी। दुःखी होकर किसान ने एक दिन उस गाय को पकड़ लिया और लेकर राज दरबार में पहुँचा। जब फरियादियों की पुकार हुई तो उस किसान ने अर्जी दी कि यह गाय नित्य मेरा खेत चर जाती है। हाकिम ने उस गाय को बँधवा लिया और उस गाय के मालिक को सिपाहियों द्वारा बुलवाया। जब वह आया तो हाकिम ने पूछा कि अपनी गाय को इस तरह चोरी करने के लिये क्यों छोड़ देते हो ?

गाय के मालिक ने कहा—"महाराज मेरा दोष नहीं है। यह गाय बहुत ही सीधी थी, कभी किसी का खेत नहीं खाती थी, पर मेरे पड़ौसी की गाय को चोरी की आदत है, उसी ने मेरी गाय को भी अपना जैसा बना लिया है।" हाकिम ने पड़ोसी को भी बुलाया और पूछा कि तुमने ऐसी चोर गाय क्यों रखी है जो दूसरी गायों को भी चोर बनाती है। इस प्रश्न के उत्तर में उस पड़ोसी ने विनीत भाव से कहा--"भगवन्, इसमें मेरा भी दोष नहीं है। पहले मेरी गाय बहुत ही सुशील थी पर जब से नया ग्वाला उसे चराने ले जाने लगा है, तब से इसमें चोरी की लत पड़ी है।" हाकिम ने हुक्म दिया कि अच्छा उस ग्वाले को पकड़ लाओ। ग्वाला आया उससे पूछा गया कि तूने किस तरह इस गाय को चोरी करना सिखाया ? ग्वाले ने उत्तर दिया कि श्रीमान् ! मेरी आधीनता में चरने वाले सब पशु कुछ दिन पूर्व तक बड़े ईमानदार थे, भूलकर भी किसी के खेत में मुँह न डालते थे, पर जब से मोती धीवर की गाय मेरे झुण्ड में आई है, तब से ही सब गाएँ बिगड़ी हैं, उसी के दुःस्वभाव ने सारे झुण्ड को चोर बना दिया है।

हाकिम ने सोचा तब तो मोती धीवर का ही कसूर है। सिपाही आज्ञा पाते ही मोती धीवर को बाँधकर कचहरी में ले आये। हाकिम ने भौंहें तिरछी करते हुए कहा—"क्यों रे ! तूने गाय को चोरी करना किस प्रकार सिखाया ?" मोती के पाँव काँप रहे थे, उसने डरते-डरते कहा, "हुजूर ! मैंने चोरी करना नहीं सिखाया। कुछ दिनों तक कमजोर रस्सी से इसे बाँधता रहा, उस रस्सी को यह झट तोड़ देती थी और पास के खेतों में चर आती थी। उसी टूटी हुई कमजोर रस्सी को जोड़-जोड़ कर फिर इसे बांधता, लेकिन दूसरे दिन यह फिर तोड़ जाती। कई दिन यह क्रम चलता रहा, बस, तभी से यह पक्की चोर बन गई है।"

दोष मामूली-सा था, इसलिये सब को डाँट-फटकार कर और आगे से ऐसा न करने की चेतावनी देकर किसान, गाय का मालिक, पड़ोसी, ग्वाला और मोती को छोड़ दिया गया। पर हाकिम को स्वयं सन्तोष न हुआ उसने चोरी की जड़ जानने के लिये और सारे मामले पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने के लिये बड़े-बड़े न्याय अधिकारियों की एक सभा बुलाई। सभा में बहुत समय तक तर्क-वितर्क और विचार-विनिमय की धूम रही। पीछे यही तय किया गया कि झुण्ड की सारी गायों को चोर बना देने का दोष कमजोर रस्सी बाँधने पर है। यदि मोती मजबूत रस्सी से गाय को बाँधता तो चोरी का इतना प्रचार होने के कारण राज्य में जो अशान्ति उत्पन्न हुई है वह न होती।

लोग अपने मन को कमजोर रस्सी से बाँधते हैं, वह उसे तुड़ाकर हरियाली चरने चल देता है, कुछ दिनों में उसकी आदत मजबूत हो जाती है और पक्का चोर बन जाता है। एक चोर अपनी बुरी बात और बहुतों को सिखाता है, इस प्रकार बुराई की बेल फैलती है और संसार में अशान्ति का साम्राज्य छा जाता है। दुनियाँ को दुःखों से बचाने का उपाय यह है कि हम लोग अपने मनों को धर्म की मजबूत रस्सी से बाँधें और उसे इधर-उधर न भटकने दें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आकुलता भरी पुकार

"तुम प्रार्थना करने आये थे ? सभ्यता के नाते तो कहना चाहिए था मि. बुडफेयर, किन्तु चार्ल्स फिल्मोर में जो सहज आत्मीयता है, अपने अल्प-परिचितों के भी प्रति उसके कारण वे औपचारिकता का निर्वाह आवश्यक नहीं मानते।

उसका पूरा नाम है अल्फ्रेड जान्सन बुडफेयर। चौंक कर उसने पीछे मुड़कर देखा। समुद्र के किनारे इस छोटे-से गाँव में उसे जानने वाला, उसका नाम लेकर पुकारने वाला कौन है ? उसे यहाँ आए अभी दो ही सप्ताह तो हुए हैं और खेतों में फसल काटने वाला एक मजदूर क्या इस योग्य है कि उसे लोग जाने और इतने स्नेह से नाम लेकर पुकारें।

"ओह आप !" अल्फ्रेड पूरा पीछे घूम गया और उसने अपना हाथ आगे बढ़ा दिया। फिल्मोर से उसने घनिष्ट परिचय है, यह तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु सभी से आत्मीय सम्बन्ध रखने वाले इस विचित्र व्यक्ति से कई बार पहले भी वह मिल चुका है। उसे अभी तक याद है कि एक बार तूफानी रात्रि में फिल्मोर उसकी झोंपड़ी में अतिथि रह चुके हैं।

मैं जानता था कि तुम यहाँ आओगे। आखिर आए न। फिल्मोर उसके बराबर आ गए और हँसते हुए उसका हाथ पकड़कर गिरजाघर की सीढ़ियाँ उसके साथ ही उतरने लगे। "मनुष्य कैसा भी हो, कोई भी हो अपने पिता के सामने आए बिना रह कैसे सकता है।"

वह देखता रहा इस सामान्य व्यक्ति को। कौन नहीं जानता इन्हें, यह भी तो मनुष्य मात्र को अपना सगा मानते हैं। पर्यटन इनकी आदत है। इस गाँव में भी वे घूमते-घामते ही आ निकले होंगे, रविवार की प्रार्थना करके गाँव के अधिकांश वृद्ध, स्त्री-पुरुष जिनके साथ घरों के बालक भी हैं, गिरजाघर के बाहर निकल रहे थे। बहुत थोड़े गिने-चुने युवक प्रार्थना करने आते हैं युवतियाँ, उनसे अवश्य अधिक थीं। तारुण्य का गर्व जब शिथिल पड़ने लगता है, तभी तो मनुष्य में जीवन के उस पार भी कुछ है यह झाँकने की समझदारी आती है।

"लेकिन बुडफेयर ! मैं भूलता नहीं हूँ तो केवल बीस दिन पूर्व हम यहाँ से पर्याप्त दक्षिण समुद्र के वक्ष में मिले थे।" फिल्मोर को इसकी चिन्ता नहीं जान पड़ती थी कि उनके जैसे मूल्यवान उज्जवल वस्त्रधारी को एक मजदूर का हाथ पकड़कर चलते देख पास से जाने वाले वृद्ध और वृद्धाएँ किस प्रकार देखते हैं, किस प्रकार मुख सिकोड़ते हैं और परस्पर फुसफुसाकर क्या कहते हैं ?

"तब मैं गोता लगाने को प्रस्तुत हो रहा था।" बुडफेयर ने इतनी देर बाद बोलना आवश्यक समझा। "वही समुद्र में मेरा अन्तिम गोता था और फिर जब मैं चल सकने योग्य हुआ, सीधे गिरजाघर पैदल चलकर आया। यद्यपि बहुत कष्ट हुआ उस दिन मुझे चलने में, किन्तु बहुत आनन्द भी मिला। प्रार्थना तो उसी दिन मैंने की।" वह पता नहीं क्या और कितनी बातें एक साथ बता जाना चाहता था, लेकिन उस दिन की प्रार्थना का स्मरण करके ही उसके नेत्र भर आए।

'मैं तुम्हारे साथ चल रहा हूँ। आज जो विश्राम का दिन है। फिल्मोर ने आमन्त्रण की अपेक्षा नहीं की। जो व्यक्ति केवल बीस दिन पहले धर्म और आस्तिकता की बात सुनकर ठठाकर हँस पड़ता था, जिसे सुरा ···· जाने दीजिए किसी के दोषों का वर्णन भी दोष ही है। इतना जानना पर्याप्त होना चाहिए कि अल्फ्रेड खाओ, पियो और मौज उड़ाओ के नियम को मानकर चलने वाला था। वह कहा करता था धर्म तो कायर और अशक्त लोगों के मन को संतोष देने का बहाना है। वही अल्फ्रेड किसी दिन की प्रार्थना का स्मरण करके पुलकित हो उठा। बिना विशेष घटना के यह कैसे सम्भव है ? लेकिन यहाँ मार्ग में कुछ पूछना शिष्टता नहीं होगी।

दोनों के कदम एक ओर मुड़ चले। फिल्मोर के मन में उसके समूचे को बदल डालने वाले रहस्य को जानने की इच्छा बलवती हो रही थी। थोड़ी देर बाद उन्होंने छोटी कोठरी में प्रवेश किया। अल्फ्रेड ने चटाई बिछाई और दोनों एक-दूसरे के सामने बैठ गए और वह रहस्य का आवरण खोलने लगा "नित्य की भाँति मैं उस दिन भी समुद्र तल में उतरा। मेरे दोनों सहकारी बहुत सावधान और कार्यकुशल थे। लेकिन गोताखोर तो प्रत्येक गोते के समय मृत्यु के मुख में ही उतरता है और उसे केवल अपनी स्फूर्ति, प्रत्युत्पन्न बुद्धि तथा सतर्कता पर निर्भर करना पड़ता है।"

अल्फ्रेड मजदूर बनने से पहले अभी बीस दिन पहले एक समुद्री गोताखोर था। समुद्र के गहरे तल उतरकर मोती के सीप उठा लाना ही उसका व्यवसाय था। सीप में मोती है या नहीं, यह बात तो ऊपर आकर देखने की होती है। समुद्र तल में तो यथा-शीघ्र जो सीप मिले, उन्हें समेटकर ऊपर आ जाना पड़ता है।

"मौसम अच्छा था। ऊपर चमकीली धूप निकल रही थी। जल के भीतर पर्याप्त दूरी तक इतना प्रकाश था कि मैं अपने आस-पास दौड़ती भागती छोटी-बड़ी मछलियों तथा तल प्रदेश की अद्भुत लताओं को सरलता से देख सकता था। अल्फ्रेड बता रहा था समुद्र तल में सृष्टिकर्त्ता ने जो उपवन लगा रखा है कहीं-कहीं तो तल में प्रदेश के पौधे, घासें और लताएँ अद्भुत सुन्दर हैं। उस दिन मैं ऐसे ही एक मनोहर समुद्री उद्यान में उतर पड़ा था। नीचे पहुँचकर मैं खड़ा हो गया और झुककर सीपों को अपने झोले में झट से डाल दिया। फिल्मोर उत्सुकता से उसकी बात सुन रहे थे। मैं बहुत प्रसन्न था, वहाँ पर्याप्त सीप थीं। आज का गोता मुझे अच्छी रकम दे देगा। सहसा ऐसा लगा कि कोई कोमल गिलगिली वस्तु दाहिने पैर में लिपट गई है। मैं चौंका बाएँ हाथ का चाकू दाहिने में लेकर झुक गया। आक्टोपस के दो पैर मेरे चाकू ने काट दिए। इसी समय मुझे कसकर झटका लगा।"

"आक्टोपस समुद्र का सबसे भयंकर प्राणी और गोताखोरों का सबसे बड़ा शत्रु।" अल्फ्रेड सिहर उठा "पता नहीं किस चट्टान के नीचे से निकलकर एक भयानक आक्टोपस ने अपने सूँड़ जैसे पैर मेरी कमर और कंधे में लपेट लिए थे। उसकी दोनों आँखें मेरी आँखों के सामने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चमक रही थीं और वह दुष्ट अपना विशाल मुख मेरे पास ला रहा था। मेरे मुख से भय के कारण चीख निकल गई। आक्टोपस ने मुझे एक और तगड़ा झटका दिया। मेरा पूरा ललाट और कपोल हिल गए। नकाव कँधें पर खिसक आया। मेरी नाक से कुल चार इंच दूर मुझे आक्टोपस के क्रूर नेत्र चमकते दिखे। उसकी चोंच उसकी रक्त-पिपासु चोंच नजदीक आती जा रही थी।" दीर्घ श्वांस ली अल्फ्रेड ने "नकाव ठीक करने का समय भी नहीं रह गया था। मैं निराश हो गया था। सब ओर से हारकर चीख पड़ा मैं 'हे भगवान !' और फिर मुझे पता नहीं क्या हुआ ? मेरी आँखों के सामने अन्धकार छा गया।"

मि. फिल्मोर ! एक बात अब तक मेरी समझ में नहीं आयी। अल्फ्रेड ने बीच में दूसरी बात कही मुझे ठीक-ठीक स्मरण है कि पहले ही झटके में चाकू मेरे हाथ से छूटकर गिर गया था और वह मुझे बीसों झटके देता रहा। उसके वे पैर जो मेरी कमर और कँधे को पकड़े थे काटे कैसे गए ?

"यह तुम्हारे सहायक की तत्परता होगी।" फिल्मोर ने कहा।

"मेरा सहायक बहुत सावधान है। अपेक्षित समय से अधिक देर लगते उसे आशंका हो गई और वह स्वयं नीचे उतर पड़ा।" अल्फ्रेड ने कहा "मैंने उससे बार-बार पूछा है। वह कहता है कि उसने मुझे मूर्च्छित पाया। मेरी नकाब उसने ठीक की। कमर और कन्धे में आक्टोपस के पैर ऊपर लिपटे थे, किन्तु वे कटे हुए पैर थे। भारी आक्टोपस सब पैरों के कट जाने से मेरे पास ही तड़फड़ा रहा था।

"तुमने अभी बताया कि तुमने मूर्च्छित होते-होते कहा था—'हे भगवान ! 'फिल्मोर के स्वर में दृढ़ता और विश्वास था "और भगवान ने मेरी रक्षा की।" अल्फ्रेड के नेत्र भर गए "सचमुच भगवान ने मेरी रक्षा की मि. फिल्मोर। मैं इतना घायल हो गया था कि छुरा मेरे हाथ में होने पर भी मैं कुछ नहीं कर पाता। मैं अपने सहकारी द्वारा जब ऊपर लाया गया, तब मेरा शरीर खून से लथपथ था। पूरे तीन दिनों बाद मैं उठकर चलने योग्य हुआ और तब सीधे गिरजाघर आया।"

"भगवान तो सुनते हैं और रक्षा भी करते हैं" किन्तु—फिल्मोर रुके दो क्षण 'किन्तु हम मनुष्य इतने भाग्यहीन हैं कि प्राण संकट में होने पर भी वे दयामय स्मरण में नहीं आते। उस समय भी हम अपने उस कृपालु पिता से प्रार्थना नहीं कर पाते।"

"सचमुच आश्चर्यजनक है प्रार्थना। वह पुकार जैसे चेतना की एक चिनगारी थी। नव जागरण की पहली घण्टी थी, नए प्रभात की सुनहली आभा थी। "अल्फ्रेड ने वहते आँसुओं को पौंछने का प्रयत्न नहीं किया 'माँस-मदिरा दुराचार पता नहीं सबके सब कैसे हट गये सारे पुराने विश्वास हट गए। एक नया विश्वास जम गया एक नया प्रकाश छिटक गया। मैं ईश्वर की प्रिय सन्तान हूँ मुझे उसके योग्य बनना है।"

"फिल्मोर के चेहरे पर एक मुसकान थिरक उठी।" बस इन भावों को उसी तरह उमगना चाहिए, जैसे समुद्र तल में उमगे थे।" आज गज और ग्राह का उपाख्यान पुनः चरितार्थ हुआ था। "प्रार्थना जीवन में दिव्यता के अवतरण का विज्ञान है।" इस महान् सन्देश के प्रसार के लिए चार्ल्स फिल्मोर ने यूनिटी स्कूल आफ क्रिश्चिएनिटी की स्थापना की। स्वयं के जीवन को बदल डालने वाले अल्फ्रेड उनके सहकारी हुए।

जब संवदेना का अंकुर पल्लवित हुआ.....

वह फटी-फटी आँखों से देखे जा रही थी। सूखते-चटकते तालाब तड़पते, विकल होते, प्राण छोड़ते जानवर और मनुष्य क्या कहा जाय उनके बारे में सब कुछ तो प्रत्यक्ष दीख रहा था। हाय ! पेट का वह धधकता ज्वालानल ! सभी तो दिन-रात उसी आग में पतंगों की तरह जले-भुने जा रहे हैं। क्षुधा तृषा से पीड़ित कृषक मजदूर इस दुष्काल में कौन सुनता है इनकी ? सिवा उस धरती के जिसकी छाती अपनी सन्तानों के दुःख से सूख-चटख कर विदीर्ण हो रही थी। जो कभी सभी का पेट भरते थे आज वे स्वयं ही.....। आगे कुछ सोच न सकी वह दोनों हाथों सिर थामकर बैठ गई।

आज वर्षों बाद उसका इधर आना हुआ। सुना था दुष्काल है, चारों ओर आर्त स्वर उठ रहे हैं। अनुभव इसलिए नहीं हुआ क्योंकि उसके पिता स्वयं बड़े श्रेष्ठी थे। उनके निजी आगार में अनाज की विशाल राशि थी, जल दूर की नदी से बहँगियों में आता था। उसी के घर क्यों आस-पास के सभी घरों में यही स्थिति थी। वैभव की इतराहट विलास की उन्मादी गूँज में अकाल पीड़ितों के कारुणिक स्वर भला कैसे घुसें ? एक ओर कुत्ते भी पेट भर दूध छकते, थे दूसरी ओर इन्सान पानी के लिए तड़प रहा था। क्या कहा जाये इसे ?

वह कौन-सी चीज है, जिसने हम लोगों की मनुष्यता, हमारी मान-मर्यादा, भूख का, अन्न-प्यास का जल सभी कुछ छीन लिया। कहा जाता है कि कसाई खाने में कटे बैल का माँस, बैल ही ढोकर ले जाते हैं। पर बैल तो बेचारे बेजवान, विवश हैं। लेकिन मनुष्य, वह तो अकलमन्द है, क्या हो गया है उसे, जो अपने जाति भाइयों की लाशें ढो रहा है, उनके घरों में आग लगाकर जिन्दा जला रहा है। वह सोचते-सोचते लौट पड़ी। ऐसे दुष्काल में श्रेष्ठियों के समूह की यह निर्दयता नहीं..... नहीं, वह पिता से कहेगी, भीख माँगेगी, हाथ पसारेगी, कुछ भी हो अकाल से लड़ेगी उसे पराजित करके रहेगी। बढ़ते कदम उसे हवेली तक ले आए। पता तो तब चला जब पिता ने म्लान मुख बेटी की परेशानी का कारण जानना चाहा।

सारी बात सुनकर पिता ने उसास भरी। बेरुखे स्वर में कहा—"हम कर भी क्या सकते हैं—बेटी सबका अपना भाग्य है। इस तरह यदि हम लोग अन्न-धन लुटाने लगे तो चल चुका व्यापार। अब उस ओर न जाना।" चलो स्नान आदि करके भोजन करो। पुत्री के सिर पर हाथ फेरते हुए उन्होंने अपनी बात पूरी की।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"भोजन ! न, न, एक कौर भी नहीं, एक दाना भी नहीं। आप को दया नहीं आती पिताजी, अनेकों भूख से तड़पते हुओं को जान गँवाते देखकर। किसी दिन अपने कृषि प्रधान देश के गाँव ही प्राण थे, आज वे ध्वंसोन्मुख हैं। जानते हैं क्यों ?" वह आक्रोश से उबल पड़ी। 'सिर्फ इसलिए कि आप जैसे लोग सदाशयता को भूलकर शोषण में जुट गए। इसके सिवा क्या सम्बन्ध है आप लोगों का किसानों से। जो लोग इस देश के मुख का अन्न जुटाते आ रहे हैं, वे ही आज निरन्तर, निरक्षर, निरुपाय होकर मृत्यु पथ में तेजी से बढ़ते जा रहे हैं। क्यों अब कुछ बोलते क्यों नहीं ?"

वृद्ध पिता ने मुँह फेरकर ज्यों ही देखा, त्यों ही उसके दोनों होंठ थर-थर काँपने लगे। वह बोली—"मनुष्य होकर मनुष्यता की कोई बात न हो—यह कैसे हो सकता है, पिताश्री !" कहकर उसने दाँतों से भींचकर अपने होठों का काँपना रोक लिया, लेकिन आँखों के कोनों से झर-झर करके आँसू बह निकले।

अब वह प्रतिवाद न कर सके। ऐसा लगा मानो उनकी सुरमा अंजित आँखों की दीप्ति कुछ धीमी पड़ गई हो। बड़ी मुश्किल से कंठ से स्वर फूटा—मेरा सब कुछ तेरा, तू कुछ भी कर।

एक घर, दो घर, दस घर प्रायः सभी धनिकों के यहाँ नंगे पाँवों वह भागती फिरी। उसके द्वारा किए गए कारुणिक चित्रण ने अनेकों के दिलों में संवेदना के बीज बो दिए। आगार खुल गए। अन्न-वस्त्रों की बाढ़ लग गई। उसने सब कुछ ला समर्पित किया तथागत के उन्हीं चरणों में, जिनके पास बैठकर एक दिन उसने अकाल की कहानी सुनी थी। दुष्काल पीड़ित क्षेत्र को देखने की प्रेरणा ग्रहण की थी।

आंज समूचा भिक्षु संघ इस अनोखी बाला के सम्मुख नतमस्तक था। हतप्रभ था उसके कर्त्तव्य के सामने। एक छोटी-सी दुबली-पतली लड़की अकाल के दानव को इस तरह पराजित कर सकेगी—कौन सोच सकता था भला ? सचमुच अकाल पराजित हो तो गया—सभी तो उसका गुणगान कर रहे थे।

भिक्षुओं के आश्चर्य को भंग करते हुए तथागत का स्वर गूँजा—"भाव संवेदना की शक्ति असीम है पुत्रो ! जिसका जीवन सुप्रिया की तरह इन उदात्त भावों का घनीभूत पुंज बन गया हो, उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है।"

एक विभूति, जो गंगा में समा गई

"ओ देखो, ओ देखो, वह अन्त्यज आ गया" पण्डित मण्डली में से कोई चिल्लाया—"उसे पास फटकने न देना, न ही कोई उसका स्पर्श करना, अब वह कुलीन नहीं रहा।"

तभी कोई क्षीण स्वर सुनाई पड़ा "ब्राह्मण देवता, जिसे आप अस्पृश्य और नीच बता रहे हैं, वह तो पण्डितराज जगन्नाथ मिश्र हैं। संस्कृत के उद्भट विद्वान, पिंगल और दर्शनशास्त्र के प्रकाण्ड पंडित एवं व्याकरण के मर्मज्ञ। शायद पहचानने में कोई भूल हुई हो।" इसी बीच आगन्तुक कुछ और निकट आ गया। युवक पुनः चिल्लाया पुनः "हाँ-हाँ, महाराज ! यह वही "पंडितराज" है, जिन्हें सम्राट शाहजहाँ के दरबार में इसकी मानद उपाधि प्रदान की गई है, इनकी विद्वता को देखते हुए।"

"चुप रह, तभी से बक-बक किये जा रहा है। तुम जानते हो इस तथाकथित 'अभिजात' पंडितराज का इतिहास।" ब्राह्मण मण्डली में से कई स्वर साथ-साथ उभरे, पर स्फुट एक ही आवाज जो तनिक ऊँची थी, गरजती हुई सुनाई पड़ी।

"हाँ, आचार्य ! इनका इतिहास मैं भली-भाँति जानता हूँ। समूह में सम्मिलित युवक का निर्भीक उत्तर था। "यह एक सम्पन्न घराने के कुलीन ब्राह्मण हैं। गलती इन्होंने इतनी ही की थी कि पाणिग्रहण एक यवन-कन्या से परिवार वालों के विरुद्ध कर लिया था, क्योंकि उन्हें कन्या से प्रेम था और वह भी उन्हें चाहती थी। अब जबकि शाहजहाँ अपने पुत्र औरंगजेब की कालकोठरी में मृत्यु का इन्तजार कर रहे हैं और इनकी प्रियतमा भी इस संसार से विदा ले चुकी है, इन्होंने शेष जीवन वैराग्यपूर्ण ढंग से बिताने का निश्चय कर ही यहाँ काशी विश्वनाथ के दर्शनों के लिए पधारे हैं। इन्हें दर्शन की अनुमति दी जाय महाराज।" युवक का अनुरोध भरा आग्रह था।

"नहीं" एक साथ कई स्वर गूँज उठे। "क्या तुम्हें नहीं मालूम इन्हें इस अपराध के कारण जातिच्युत कर दिया गया है।"

"सो तो पता है आचार्य" युवक का उत्तर था—"पर आप जैसे मूर्धन्य भी इस साधारण-सी बात को तूल देंगे कि जाति-बन्धन ईश्वर का निर्धारण है, आश्चर्य होता है और अन्तरजातीय विवाह से ईश्वरीय-विधान में हस्तक्षेप होता एवं व्यक्ति जातिच्युत होता है, अचम्भा होता है। मैंने तो आज तक ऐसा ग्रन्थ में पढ़ा नहीं उल्टे, लोम-विलोम विवाह की मान्यता का समर्थन ही आर्ष ग्रन्थों में किया गया है। ऐसी शादियों से न तो कोई ऊँचा बनता है, न नीच, न शूद्र और न ब्राह्मण। यह तो मानव की स्वार्थपूर्ण संरचना है। क्या आपने ऐतरेय के प्रसंग को विस्मृत कर दिया ? वे किस प्रकार नीच कुल में जन्म लेकर शूद्र होकर भी ब्राह्मण बन गये, इसे भूल गये। यह सब तो आप्तजनों ने कर्म के आधार पर निर्धारित किया था कि जो जैसा कर्म करेगा, उसकी गणना चतुर्वर्णों में से किसी में की जायेगी। जगह-जगह शास्त्रों में इसी प्रसंग को उभारा भी गया है अनेक दृष्टान्तों में देखने को मिलता है कि ब्राह्मण क्षुद्र कर्म करने के कारण शूद्र बन गया और शूद्र ने अपने उच्च आचरणों और कर्मों से ब्राह्मण की उपाधि धारण कर ली।"

"यह सब कुछ जानते-समझते हुए भी आप सब इस विद्वान पण्डित की अवमानना करने पर तुले हुए हैं। आखिर क्यों ?"

"चक्रपाणि अभी तुम अपरिपक्व हो। इन गूढ़ बातों को नहीं समझोगे, अस्तु चुप रहने में ही तुम्हारी भलाई है, अन्यथा ..... !"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"अन्यथा क्या आचार्य ?" युवक का आक्रोश भरा स्वर उभरा—"यही न कि मेरी भी वही दशा होगी जो इस ब्राह्मणराज की हो रही है ? कोई बात नहीं, मैं इसे सह लूँगा, पर किसी निरपराध का इस प्रकार अपमान बर्दाश्त न कर सकूँगा।"

अभी इस बूढ़े ब्राह्मण आचार्य और चक्रपाणि के बीच विवाद चल ही रहा था कि निकट ही खड़ी ब्राह्मण-मण्डली के मध्य से जोर-जोर के शोर की आवाजें आने लगीं।

दोनों उस ओर चल पड़े। इस बीच पंडितराज जगन्नाथ उनके अत्यन्त निकट पहुँच चुके थे। वे भगवान विश्वनाथ के दर्शन की तीव्र आकांक्षा सँजोये उन तथाकथित 'ब्राह्मणों' से इसकी अनुमति चाह रहे थे, पर वे थे कि रास्ता रोके खड़े थे और उन्हें आगे बढ़ना नहीं देना चाह रहे थे। उनका कहना था कि तुम यवन कन्या के संसर्ग से अपवित्र हो चुके हो, किन्तु विद्वान् जगन्नाथ अपनी पवित्रता के सम्बन्ध में ढेर सारे प्रमाण प्रस्तुत करते चले जा रहे थे, परन्तु उनके तर्कों और प्रमाणों को कोई मानने के लिए तैयार नहीं हो रहा था। अन्ततः एक बात पर सहमति हुई कि जगन्नाथ पण्डित को अपनी पवित्रता की साक्षी देनी पड़ेगी, उसे एक अग्नि-परीक्षा से गुजरना पड़ेगा। यदि इसमें वह सफल हो जाते हैं, तो उन्हें भगवान के दर्शनों के लिए जाने दिया जा सकता है, अन्यथा नहीं।

अनुबन्ध रखा गया कि यदि वे सचमुच शुद्ध और पवित्र हैं, तो गंगा तट की सबसे ऊपर की सीढ़ी पर बैठ कर गंगा की स्तुति करें। यदि भागीरथी गंगा धीरे-धीरे ऊपर चढ़ते हुए अन्तिम सीढ़ी पर उनका स्पर्श कर लेती हैं, तो उन्हें शुद्ध और पवित्र मान लिया जायेगा।

पं. जगन्नाथ मिश्र ने चुनौती स्वीकार कर ली और अश्रुपूरित नेत्रों से भाव-विह्वल होकर पतित पावनी गंगा का आह्वान शुरू किया।

वे कहने लगे "हे गंगे ! जिसके पावन स्पर्श से पतितों के पाप और दुष्टों के दुरित धुल जाते हैं, आज उसी के समक्ष एक पापी उपस्थित होकर कातर प्रार्थना कर रहा है। हे भगवती ! मुझे इनसे मुक्त कर अपना अंकशायी बना ले। मुझ जैसे पापियों का और स्थान भी कहाँ हो सकता है। मुझ पर कृपा कर अपने में समाहित कर ले·····।" इस प्रकार वे एक-एक श्लोक बोलते गये और भगवती गंगा एक-एक सीढ़ी ऊपर आती गईं। कहते हैं कि अजस्र अश्रुप्रवाहयुक्त बावनवें श्लोक के पूरा होते-होते तरणतारिणी कलिमलहारिणी गंगा ने अन्तिम सीढ़ी पार कर सदा-सदा के लिए पंडिताधिराज को अपने में आत्मसात् कर लिया।

उनकी परीक्षा पूर्ण हुई और मूढ़ ब्राह्मण समुदाय एक विलक्षण प्रतिभा को कुप्रथाओं की बलिदेवी पर चढ़ाकर हाथ मलते और सिर धुनते रह गया।

चक्रपाणि अभी भी उन तथाकथित विद्वानों के झुण्ड में खड़ा था। उनके इस अविद्वतापूर्ण कार्य से उसे रोष तो बहुत आ रहा था, पर उसने तनिक संयम बरता और एक फीकी मुस्कान बिखेरते हुए व्यंग-वाण छोड़ा—**"अब पण्डिताः ?"**

अचानक उपस्थिजनों की विचार चेतना भंग हुई, तो निगाहें आवाज की दिशा की ओर उठ गईं; देखा कि एक तेजस्वी युवक की आँखों से घृणा की बूँदें सजल होकर टपक रही हैं।

सम्बोधन जारी रहा—"अब तो आप लोगों को संतुष्टि मिली ! मन शान्त हुआ ? एक निरपराध विद्वान को इस प्रकार का दण्ड देते हुए लज्जा नहीं आयी ? धिक्कार है ऐसी विद्वता और विद्वानों को, जो परम्परा के नाम पर प्रथा की दुहाई देते हुए किसी को मिटा दें, संसार से उठा दें ? शास्त्र हमें लकीर का फकीर नहीं बनाते, तोता रटन्त की विद्या नहीं सिखाते ? वे हमें विद्वान के साथ-साथ बुद्धिमान और विवेकवान भी बनाते हैं। समय और परिस्थिति के अनुरूप दूरदर्शिता का कैसे उपयोग किया जाय—यह भी बताते हैं, पर आज आपने जो कृत्य किया है, उससे न सिर्फ हमारे पवित्र ग्रन्थ और उनके रचयिता अपवित्र हुए हैं, वरन् समस्त ब्राह्मण समुदाय के सिर पर कलंक का एक ऐसा टीका लग गया, जो शायद ही कभी मिटे, जब भी कभी इस घटना की चर्चा होगी तो बाद की पीढ़ियाँ कोसती हुईं यही कहेंगी कि तत्कालीन समय में शास्त्र रटने वाले विद्वान तो थे, पर वे बुद्धिमान और विवेकवान् थे, ऐसा नहीं कहा जा सकता।"

युवक का स्वर उत्तेजित होता चला जा रहा था एवं विद्वत् मंडली सर्वथा मौन रहकर सिर झुकाये उसे सुनती चली जा रही थी। इसी बीच चक्रपाणि को शान्त न होते देख पं. शशिधर उठे और उसे एक ओर ले जाकर समझाने का प्रयास करने लगे।

युवक पुनः उत्तेजित हो उठा।

"महाभाग ! आप भी उन्हीं के समर्थन करने का प्रयास कर रहे हैं।"

"क्या करूँ चक्रपाणि मैं भी विवश हूँ।" सजल नेत्रों से उन्होंने कहा "जगन्नाथ मेरा घनिष्ट मित्र था। उनकी कठोर सजा सुनकर मेरे भी प्राण जुबान तक आ गये थे, पर अकेला मैं कर भी क्या सकता था। मुझे भी तो इसी समाज में रहना है, जाति बहिष्कृत तो होना नहीं। इन्हीं कारणों से मजबूर होकर मौन रहना पड़ा।"

"तो फिर यह क्यों नहीं कहते आचार्य कि आप भी कायर हैं, भीरू हैं, डरपोक हैं।"

"चाहे जो समझ लो, किन्तु मुझे भी इस पाप का हार्दिक दुःख है और इसका प्रायश्चित भी मैं अवश्य करूँगा" पंडित शशिधर का कातर स्वर था।

युवक का स्वर अब कुछ शान्त हुआ। उसने विनम्रतापूर्वक कहा—"महाभाग ! आप हमसे अनेक वर्ष आयु में बड़े हैं। हृदय की बात कहते संकोच होती है, पर कहे बिना मन शान्त भी न हो सकेगा।"

"चक्रपाणि तुम आज कुछ भी कह लो, मैं उसका तनिक भी बुरा नहीं मानूँगा। "सच।" "हाँ।"

"तो सुनिये" युवक ने कहा "आपने वह भोज-वर्णन तो सुना ही होगा ?"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"कौन-सा ?" आश्चर्य मिश्रित प्रश्न था।

"वही-विभुना च सभा सभयाच विभु, विभुना सभयाच विभाति वयं।" अर्थात् विद्वानों से सभा की शोभा होती है और सभा से विद्वानों की तथा दोनों से हम लोगों या समग्र समाज की शोभा होती है।"

"हाँ-हाँ सुना है" शशिधर चहक उठे।

"तो क्या आप यह नहीं मानते कि आज जो कुछ घटित हुआ उससे न सिर्फ विद्वानों और सभा की शोभा मारी गई अपितु समाज की महिमा भी धूमिल हुई है।"

स्वीकृति में आचार्य ने सिर हिला दिया और फिर चिरमौन धारण कर लिया, किन्तु युवक कहता जा रहा था—"काश ! आज वे जीवित होते, तो उन्हें मैं आश्रय देता। भले ही इसके लिए मुझे परिवार और जाति से संघर्ष ही क्यों न करना पड़ता, पर जब वे नहीं रहे, तो मैं उनकी गंगा स्तुति को ही लिपिबद्ध करके उस महान् विभूति के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पितकर, उन्हें अमर बनाये रखूँगा।" एक श्रुतिधर चक्रपाणि द्वारा संकलित जगन्नाथ मिश्र की गंगा स्तुति ही बाद में 'गंगालहरी' के नाम से प्रख्यात हुई, जो उन्हें अब तक अविस्मरणीय बनाये हुए है।

कहीं ऐसा न हो कि आज ऐसी ही प्रथा-परम्पराओं के नाम पर प्रतिभाओं को समाज खोता चला जाय। समाज को समय और परिस्थिति को ध्यान में रखकर तनिक लचीलापन अपनाना होगा और पनपती कुरीतियों को अंकुरित होने से पूर्व समय रहते उखाड़-पछाड़ फेंकना पड़ेगा, ताकि फिर कभी जगन्नाथ मिश्र जैसी विलक्षण विभूतियों को खोना न पड़े।

जो पीर पराई जाने रे

चीनांशुक (रेशमीवस्त्र) धारण किए हुए वह एक दिन ग्राम्य सौन्दर्य के दर्शनों के लिए घर से निकल पड़े। कृत्रिम-संसाधनों से भरी-पूरी राजधानी में जो लालित्य कभी देखने को नहीं मिल सका, वह लावण्य लहलहाते हुए हरे-भरे खेतों, वृक्षों पर गीत गाते पक्षियों के कलरव, कल-कल करते झरनों और निर्धनता में भी मस्ती के गीत गाते हुए भोले-भाले ग्रामवासियों में भरपूर देखने को मिला। वह बढ़ते ही गए। उन्मुक्त प्रकृति में सौन्दर्य देखकर उन्हें जितनी प्रसन्नता हुई, अभावग्रस्त ग्रामीणों का दैन्य देखकर उनकी करुणा उससे कहीं अधिक उमड़ती गई। कवि आज सारे संसार का दुःख-दर्द अपने भीतर आत्मा में रखकर कहीं अन्तर्ध्यान हो जाना चाहता था। उसकी भावनाएँ जन-जन के हृदयों से एकात्म होने लगी।

कवि ऐश्वर्य में पले थे। उन्हें कभी किसी प्रकार का अभाव न हुआ था। वैभव-विलास उनके आँगन में खेलता था। वे सौराष्ट्र के राज-कवि थे। राजधानी पाटल कवि की भक्ति श्रद्धा-दार्शनिकता पर अपना सर्वस्व लुटा सकती थी। उतना सम्मान राज्य में और किसी को न मिला था। स्वयं सौराष्ट्र नरेश आचार्य प्रवर की पद-धूल माथे पर चढ़ाना अपना सौभाग्य मानते। उनकी किसी भी इच्छा की पूर्ति में उन्हें अपने जीवन की सार्थकता अनुभव होती।

ऐश्वर्य से घिरे रहने पर भी कवि की भावनाएँ विशुद्ध संन्यासिनी थीं। उनके अन्तःकरण से करुणा का स्रोत उमगता था। किसी के भी दुःख-दर्द को दूर करने के लिए वह अपना सब कुछ दे डालने के लिए उतावले हो उठते। अपने एकान्त चिन्तन में वह एक ऐसे विश्व की कल्पना करते, जिसमें कोई दीन न हो-दुःखी न हो, रोगी और अस्वस्थ न हो। उनके काव्य की एक-एक पंक्ति में प्राणिमात्र के प्रति प्रेम, दया-करुणा और आत्म-भावना भरी होती थी। यही कारण था कि राजकवि गाँव के किसान मजदूरों से लेकर सौराष्ट्र नरेश कवि के परम-प्रिय हो गए थे।

जैसे ही ग्रामवासियों ने सुना-आज राज कवि हेमचन्द्र सूरि पधारे हैं, तो सबके सब उनके दर्शनों के लिए उमड़ पड़े। भेंट तो क्या वे दे सकते थे, किसी ने कन्द लाकर रख दिए, किसी ने कुछ फल-फूल। जिसने षटरस व्यंजनों का रसास्वादन किया था, उसके लिए भला रूखे-सूखे कन्दों का क्या महत्त्व हो सकता था ? पर आत्मा की सरसता तो थी ही, जिसकी वजह से वह ग्रामीणों की इन साधारण वस्तुओं में इतनी तृप्ति महसूस कर रहे थे, जितनी सौराष्ट्र नरेश द्वारा दिए जाने वाले किसी भोज में भी उन्हें न मिली थी, सच बात तो यह थी कि वह पदार्थ नहीं प्रेम-रस पान कर रहे थे।

आतिथ्य ग्रहण करने के बाद वह पास खड़े लोगों से बातचीत कर रहे थे, तभी एक किसान आया। एक मोटा परिधान—लगता था, उसे सूत और सन मिलाकर बुना गया था—लाकर आचार्य के चरणों में समर्पित करते हुए उसने प्रार्थना की—"यह वस्त्र मेरी पत्नी ने आपके लिए बुना है, आप उसे स्वीकार करें तो हम अपने जीवन को कृतार्थ हुआ समझें।"

एक नजर उस टाट जैसे मोटे कपड़े पर, दूसरी नजर अपने वस्त्राभूषणों पर डालते हुए कवि की आँखें भर आयीं। ओह ! घोर वैषम्य ! जी-जान लगाकर परिश्रम करते हैं—ये लोग और उनके परिश्रम का आनन्द राज्य के थोड़े-से लोग लूटते हैं। इनकी दीनता का कारण हम हैं, जिन्हें अपने बड़प्पन का झूठा अभिमान हो गया है। हमने कभी एक बार भी नहीं सोचा कि हम भी उसी माटी के बने हैं, जिसने इन गरीब किसानों को शरीर दिया है, एक ही माँ के बेटों में इतना अन्तर, इससे बड़ा कलंक सत्ताधारियों और लोकसेवियों के लिए दूसरा कुछ नहीं हो सकता।

आचार्य ने वह परिधान हाथ में लिया, माथे से लगाया और शरीर पर धारण कर लिया। राजकीय वस्त्राभूषण उतारकर उस ग्रामीण को दे दिए। स्वयं उस मोटे वस्त्र में राजधानी लौट आये।

राजकवि के वस्त्रों पर दृष्टि जाते ही महाराज द्रवीभूत होकर बोले—"आचार्य देव ! यह क्या देख रहा हूँ ? आप ऐसे वस्त्र पहनें, पाटण के लिए यह जीवन-मरण का प्रश्न है। क्या मै उसका कारण जान सकता हूँ, इन वस्त्रों की क्या जरूरत आ पड़ी ?"

आचार्य जो अब सरलता की प्रतिमा लगा करते थे, आज उनमें सूर्य-सी प्रखरता फूट पड़ी, उन्होंने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कहा—"महाराज ! अधिकांश प्रजा ऐसे ही कपड़े पहनती है तो फिर मुझे ही बहुमूल्य वस्त्र पहनने का क्या अधिकार ? यदि मैं ग्रामीणजनों को कुछ दे नहीं सकता, तो उनसे लूँ भी क्यों ? और आप जो देते हैं, वह भी तो उन्हीं का है।"

महाराज को अपनी भूल अनुभव हुई और उसके बाद वह जन-कल्याण में स्वयं को उत्सर्ग करने लगे।

महानात्माओं की कृपादृष्टि

दक्षिण देश के एक नगर में धन मदान्ध एक बनियाँ रहता था, वह अपने तुल्य किसी को भी बुद्धिमान और धनी नहीं जानता था। रात-दिन धन कमाने की चिन्ता में लगा रहता था, कभी भी किसी साधु महात्मा तथा ब्राह्मण का सत्कार नहीं करता था, भूलकर भी ईश्वर का नाम नहीं लेता था। दैव योग से एक दिन एक महात्मा उस रास्ते से आ निकले, जहाँ पर उस बनिये की दुकान थी। महात्मा उसकी दुकान के सामने जाकर खड़े हो गये और उस बनिये की तरफ देखने लगे। वह बनियाँ अपने धन के मद से ऐसा उन्मत्त था कि उसने आँख उठाकर भी महात्मा की तरफ नहीं देखा, क्योंकि धन का मद बड़ा भारी होता है।

यह दशा देखकर महात्मा को अपने दयालु स्वभाव से उस बनिये पर दया आ गई। मन में सोचा कि इसको इस कीचड़ से निकालना चाहिये। ऐसा विचार करके उस बनिये से कहा कि "राम-राम कहो।" उसने महात्मा की तरफ न देखा न बोला, जबकि दो तीन बार कहने से भी वह बनियाँ न बोला तब महात्मा ने सोचा कि यह महामूर्ख तथा अभिमानी है, इस प्रकार यह न मानेगा, इसको दण्ड दिया जावेगा, ऐसा विचारकर महात्मा उस नगर के समीप बहने वाली नदी के तीर पर चले गये। प्रातः काल जब वह बनियाँ नदी पर स्नान करने को गया। तब महात्मा ने अपने योग-बल से अपना रूप उस बनिये के रूप में समान बना लिया, वह तो अभी स्नान ही कर रहा था, महात्मा उस बनिये का रूप धारण करके उसके घर की तरफ चल दिये। घर पर पहुँचते ही उस बनिये के लड़कों ने देखा कि पिताजी जी आज जल्दी स्नान करके आ गये। पूछा कि पिताजी ! आज जल्दी आने का क्या कारण है ? महात्मा ने उत्तर दिया कि आज एक इन्द्रजाली हमारी सूरत बनाकर आवेगा, हम देख आये हैं। वह चाहें जिसकी सूरत बना लेता है। तुम लोगों को सजग रहना चाहिये। जब वह तुम्हारे यहाँ आवे उसे घर में मत घुसने देना, धक्के देकर निकाल देना, यदि वह घर में घुसने का आग्रह करे तो दो चार जूते भी लगा देना। ऐसा कहकर महात्मा जी भोजन करके घर के कमरे में पलंग पर लेट गए।

उधर बनियाँ स्नान करके घर को आया, ज्यों ही घर में घुसने लगा, उसके छोटे पुत्र ने डाँटा, कहने लगा, "कौन है, किधर जाता है ?" बनियाँ बोला, "क्या तुमने भाँग पी ली है, जो पागलों की-सी बातें करते हो।" यह कहकर घर में घुसने लगा, छोटे लड़के ने हाथ पकड़कर बनिये को दरवाजे से बाहर कर दिया, कहने लगा कि मेरे पिताजी तो कमरे में लेटे हैं, तू तो मायावी (इन्द्रजाली) है। मेरे पिता का रूप बनाकर घर में घुसना चाहता है, बनियाँ घबड़ाकर कहने लगा कि बेटा बाप तो तुम्हारा मैं ही हूँ, मुझे घर में जाने से क्यों रोकते हो, भोजन पाकर झटपट दुकान पर जाऊँ। ग्राहक लौटे जाते होंगे, क्या तुमको किसी ने बहका दिया है, जो मेरे जीते जी मेरी सम्पत्ति के मालिक बनके मुझे निकाल देना चाहते हो। इतने में बड़ा लड़का भी आ गया। दोनों ने मिलकर उसे खूब पीटा धक्के लगाकर घर से दूर भगा दिया।

बनिये ने जाकर उस शहर के हाकिम से फरयाद की कि मेरे बेटों ने मुझे घर से निकाल दिया है, मेरी सम्पत्ति अपने अधिकार में कर ली है। हाकिम ने बनिये के दोनों लड़कों को बुलाकर कुल हाल पूछा, उन्होंने उत्तर दिया कि हुजूर हमारे पिताजी तो घर में मौजूद हैं। यह तो कोई बहुरूपिया ठग है, जो हमारे पिताजी को रूप बना कर घर में घुसकर हमको ठगना चाहता है। हाकिम ने लड़कों से कहा कि अच्छा अपने पिताजी को घर से लिवा लाओ, लड़के अपने पिता जी महात्मा को तुरन्त लिवा लाये, हाकिम दोनों की एक-सी सूरत देखकर अचम्भे में पड़ गया। सोचने लगा क्या किया जावे, दोनों का अंग प्रत्यंग एक ही सा मिलता है। बोल-चाल एक-सी है, किसको असली पिता कहा जावे, किसको नकली। तब महात्मा कहने लगे कि श्रीमान् यदि यह असली पिता है, तो इस बात को बतलावे कि बड़े लड़के के विवाह में कितना रुपया लगा था ? तथा जब मकान बना था, उसमें कितनी रकम खर्च हुई थी, यदि यह न बता सके तो मैं बतलाता हूँ, बनियाँ बोला कि मुझे जबानी याद नहीं है, महात्मा ने दोनों रकमें रुपये आना, पाई से ठीक बतला दीं, बस क्या था, हाकिम ने तुरन्त हुक्म दे दिया। उस बनिये से कहा कि ६ घंटे के अन्दर शहर से निकल जाओ, वरना जेल में डाल दिये जाओगे।

अब तो बनिये का धन-मद् उतर गया। अपने भाग्य को धिक्कारता हुआ नदी के किनारे पर बैठकर रोने लगा। सन्ध्या को महात्मा जी जब नदी पर स्नान करने को गये, तब उन्होंने अपना असली रूप महात्मा का धारण कर लिया। क्या देखते हैं कि वह बनियाँ दिन भर का भूखा-प्यासा फूट-फूट कर रो रहा है, महात्मा जी ने उसके समीप जाकर कहा कि "लाला जी, राम-राम कहो" सब दुःख दूर हो जाएगा। महात्मा के वचन सुनकर बनियाँ काँपने लगा और जोर से "राम राम" पुकारने लगा। जब महात्मा ने देखा कि अब इसको राम राम की तन, मन से रटन लग गई है, तब महात्मा बोले अब तू धक्के और जूते खाकर राम-राम पुकारने लगा है। यदि तू पहले ही राम नाम से प्रेम रखता तब क्यों धक्के और जूते खाकर घर से निकाला जाता ? जिन लड़कों के लिये तूने अनेक अनर्थ करके धन कमाया, उन्हीं लड़कों ने तुझे जूते मार-मार कर घर से निकाल दिया। फिर भी तू अगर बेटों के प्रेम तथा मोह में फँसकर राम नाम का स्मरण न करेगा, तो भविष्य में तेरी इससे भी बुरी दशा होगी। अरे ! तूने अपना जीवन व्यर्थ खो दिया। कभी राम-नाम भूलकर मुख से न निकाला और न साधू ब्राह्मण की सेवा की।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह सुनकर वह बनियाँ महात्मा के चरणों पर गिर गया, महात्मा ने कहा कि तेरे घर पर जो लड़कों का पिता पलंग पर लेटा था, मैं ही था, तुझे इस कार्य का दण्ड दिलाने को मैंने ऐसा किया, मैं बहुत समय तक तेरी दुकान के आगे खड़ा रहा, तेरी वाणी ने भी सत्कार न किया। तू इतना धन-मदान्ध हो गया था। अब तू अपने घर जा आनन्द से रह, पर कभी उन्माद मत करना। धर्म करना, सत्संग करना, साधु ब्राह्मण की सेवा करना, ऐसा कहकर महात्मा तो चले गये, उस दिन से वह बनियाँ भगवान की भक्तिपूर्वक आनन्द से रहने लगा। दान, पुण्य, भजन करने लगा।

दैवी प्रतिशोध

सूर्यास्त के बाद अन्धकार घना होता जा रहा था। अरब की मरुभूमि में रातें भी बड़ी भयावह लगा करती हैं। ऐसे ही रेतीले सुनसान स्थान पर यात्री को एक झोंपड़ी दिखाई दी, जिसमें कोई व्यक्ति गीत गा रहा था। यात्री एक क्षण को रुका और गीत के बोल सुनने लगा।

यात्री को झोंपड़ी में रहने वाले वृद्ध पुरुष की आकृति जानी-पहचानी लगी। स्मृतियाँ उघड़ती गयीं और उसे याद आया कि इस व्यक्ति से उसका निकटतम सम्बन्ध रह चुका है। झोंपड़ी में रहने वाला वृद्ध व्यक्ति यूसुफ के नाम से जाना जाता था, जो अपने समय के बहुत ही विख्यात सन्त थे। यात्री ने यूसुफ से कहा—"मैं समाज द्वारा बहिष्कृत एक पापी हूँ। सभी ने मुझे अधम कहकर मेरा परित्याग कर दिया। राज कर्मचारी मुझे पकड़ कर दण्डित करने के लिए मेरा पीछा कर रहे हैं। आज की रात आपके घर में गुजारने का मौका मिल जाय तो बड़ी दया होगी। युसूफ आप तो अपनी दया के लिये संसार भर में प्रसिद्ध हैं।"

युसुफ ने बड़ी विनम्रतापूर्वक कहा—"भद्र पुरुष ! यह घर मेरा नहीं उस परमात्मा का ही है। इसमें तुम्हारा भी उतना ही अधिकार है जितना कि मेरा। मैं तो इस देह का भी स्वामी नही हूँ, यह भी एक धर्मशाला है। तुम प्रसन्नतापूर्वक जी चाहे जब तक यहाँ रहो।"

वह अन्दर खाना खाने के लिए चला गया। अभ्यागत को भरपेट भोजन करवाकर सोने के लिए बिस्तर लगा दिया और बिना परिचय पूछे ही सो जाने के लिए कहा।

प्रातःकाल हुआ। पूर्व दिशा में अरुणिमा फैलने लगी और पक्षियों का कलरव गूँजने लगा। यूसुफ उठ गये थे और नहा-धोकर अतिथि के जागने का इन्तजार कर रहे थे। उधर अतिथि कई दिनों का हारा थका होने के कारण चैन की नींद ले रहा था। युसूफ अतिथि के पास गये और धीरे से जगाकर बोले—"उठो भाई, सूरज उग आया है। तुम्हारी सुविधा के लिये मैं थोड़ा-बहुत धन लाया हूँ उसे लेकर द्रुतगामी घोड़े पर सवार होकर दूर चले जाना ताकि तुम अपने शत्रुओं की पहुँच से बाहर निकल सको।"

इस सत्पुरुष के मुखमण्डल पर हार्दिक पवित्रता 'शीतल' रजनी चन्द्रिका की भाँति फैली हुई थी। उनके शब्द जैसे अन्तःकरण से निकलकर आ रहे थे तभी तो उनका व्यवहार इतना दिव्य बन पड़ा था। इस दिव्य व्यवहार के प्रभाव स्वरूप ही आगन्तुक के हृदय में भी पवित्र और सात्विक विचारों का प्रवाह बहने लगा था। अतिथि को अपना पूरा विगत स्मृत हो आया और लगा कि पापपूर्ण प्रवृत्तियों की कालिमा पश्चाताप के रसायन से स्वच्छ होती जा रही हैं और उनके स्थान पर निर्मल भावों की तरंगें उठने लगी हैं।

पृथ्वी पर घुटने टेक यूसुफ के चरणों में झुककर अतिथि ने कहा—"हे शेख ! आपने मुझे शरण दी, भोजन दिया, शान्ति दी और पवित्रता भी दी, अब आपके प्रति कृतज्ञता के लिये क्या कहूँ ?"

मैं कैसे कहूँ कि यह उपकार पापी इब्राहीम के लिए किया है, जो आपके बड़े पुत्र का हत्यारा है। हमारे कबीलों में हत्यारे का शिरच्छेद कर ही मृतात्मा को शांति पहुँचायी जाती है, आप भी उसी परम्परा का पालन कीजिए।'

इब्राहीम यह कहकर मौन हो गया, परन्तु यूसुफ ने तो उसे भगाने में और भी जल्दी की क्योंकि वे डरने लगे थे—अपने आप से कहीं अपने पुत्र के हत्यारे का बध करने के लिए पाशविक प्रतिशोध न जाग पड़े। वे बोले—"तब तो तुम और भी जल्दी चले जाओ। कहीं मैं प्रतिशोध के कारण कर्त्तव्य भ्रष्ट न हो जाऊँ।"

इब्राहीम चला गया और यूसुफ ने अपने दिवंगत पुत्र को सम्बोधित करते हुए कहा—"मैं तेरे लिये दिन-रात तड़पता रहा हूँ। आज मैंने तेरा बदला ले लिया है। तेरे हत्यारे की नृशंस भावना पश्चाताप की अग्नि में जलकर नष्ट हो गयी है और उसका हृदय पवित्र हो गया। अब तू शान्ति की चिरनिद्रा में सो जा।"

मंगलामंगलम्

भवन अमंगल—मकड़ियों ने जहाँ-तहाँ जाले बुन रखे हैं, शिशुओं का शौच दुर्गन्ध फैला रहा है—पशुओं ने सर्वत्र गोबर फैला रखी है, सर्वत्र अस्वच्छता, अमंगल ऐसे घर में रहना तो नर्क में रहना है। दिन भर यही विचार उठता रहता, श्रुतिधर बेचैन हो उठे, यह भवन अमंगल है कह कर एक दिन उन्होंने गृह-परित्याग किया और समपी के एक गाँव में जाकर रहने लगे। ग्रामवासी निर्धन हैं, अशिक्षित हैं मेले-कुचेले वस्त्र पहनकर सत्संग में सम्मिलित होते हैं। गाँव की गन्दगी ने पुनः श्रुतिधर के मन में पीड़ा भर दी। ग्राम भी अमंगल है—इस अमंगल में कैसे जिया जाए ? श्रुतिधर ने उसका भी परित्याग किया और निर्जन वन में एक वृक्ष के नीचे एकांकी कुटी बनाकर रहने लगे।

रात आनंद और शान्ति के साथ व्यतीत हो गई किन्तु प्रातःकाल होते ही पक्षियों का कलरव, कुछ जंगली जीव उधर से गुजरे थे कुटी के बाहर उन्होंने आखेट किये जीवों की हड्डियाँ छोड़ दी थीं, आशंका से ओत-प्रोत श्रुतिधर के अन्तःकरण को आकुलित करने के लिए इतना ही पर्याप्त था, उन्हें वन में भी अमंगल के ही दर्शन हुए । अब क्या किया जाए वे इसी चिन्ता में थे तभी उन्हें सामने बहती हुई श्वेत सलिला सरिता दिखाई दी; उन्हें आनन्द हुआ, विचार करने लगे यह नदी ही सर्वमंगल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org

www.vicharkrantibooks.org

सम्पन्न है सो कानन-कुटी का परित्याग कर वे उस शीतल पयस्विनी के आश्रय में चल पड़े।

शीतल जल के सामीप्य से उन्हें सुखद् अनुभूति हुई, अंजुलि बाँधकर उन्होंने जल ग्रहण किया तो अन्तःकरण प्रफुल्लित हुआ, पर इस तृप्ति के क्षण अभी पूरी तरह समाप्त भी नहीं हो पाये थे कि उन्होंने देखा एक बड़ी मछली ने आक्रमंण किया और छोटी मछली को निगल लिया, इस उथल-पुथल से सरिता के तट पर हिलोर पहुँची—जिससे वहाँ रखे मेढकों-मच्छरों के अण्डे बच्चे पानी में उतराने लगे अभी यह स्थिति भी न हो पाई थी कि ऊपर से बहते-बहते किसी श्वान का शव उनके समीप आ पहुँचा। यह दृश्य देखते ही श्रुतिधर का हृदय घृणा से भर गया। उन्हें उस नदी के जल में भी अमंगल के ही दर्शन हुए।

अब कहाँ जाया जाए ? इस प्रश्न ने श्रुतिधर को झकझोरा। वन, पर्वत, आकाश सभी तो अमंगल से परिपूर्ण हैं उनका हृदय उद्वेलित हो उठा। इससे अच्छा तो यही है कि जीवन ही समाप्त कर दिया जाए, अमंगल से बचने के एक ही उपाय उनकी दृष्टि में शेष रहा था।

श्रुतिधर ने लकड़ियाँ चुनीं, चिता बनाई, प्रदक्षिणा की और उस पर आग लगाने लगे तभी उधर कहीं से वासुकी आ पहुँचे। यह सब कौतुक देखकर उन्होंने पूछा—"तात् ! तुम यह क्या कर रहे हो ?" दुःख भरे स्वर में श्रुतिधर ने अपनी अब तक की सारी कथा सुनाई और कहा, "जिस सृष्टि में सर्वत्र अमंगल ही अमंगल हो उसमें रहने से तो मर जाना अच्छा।"

वासुकी मुसकराये, एक क्षण चुप रहे फिर मौन भंग करते हुए बोले—"वत्स तुम चिंता में बैठोगे, तुम्हारा शरीर जलेगा, शरीर में भरे मल भी जलेंगे उससे भी अमंगल ही तो उपजेगा, उस अमंगल में क्या तुम्हें शान्ति मिल पायेगी ?

तात् ! सृष्टि में अमंगल से मंगल कहीं अधिक है घर में रहकर सुयोग्य नागरिकों का निर्माण, गाँव में शिक्षा संस्कृति का विस्तार, वन में उपासना की शान्ति और जल में दूषण का प्रच्छालन प्रकृति की प्रेरणा यही तो है कि सृष्टि में जो मंगल है उसका अभिसिंचन, परिवर्द्धन और विस्तार हो, जो अमंगल है, उसका शुचि-संस्कार, यदि तुम इसमें जुट पड़ो तो अशान्ति का प्रश्न ही शेष न रहे। श्रुतिधर को यथार्थ का बोध हुआ वे घर लौट आये और मंगल की साधना में जीवन बिताने लगे।

नरमेध यज्ञ

सतयुग में एक बार बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ा। कई वर्ष तक लगातार वर्षा न होने के कारण अन्न बिल्कुल पैदा न हुआ। कुएँ, नदी और तालाब सूख गये। चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गई। पृथ्वी पशु-पक्षियों से रहित दिखाई पड़ने लगी। भूख और प्यास से पीड़ित नर-नारी तड़प-तड़प कर प्राण त्यागने लगे।

राजाओं ने अपने खजाने खाली कर दिये। धनियों ने अपनी सम्पदाएँ लुटा दीं। विभुक्षितों को बचाने के लिए सबने अपनी शक्ति भर उद्योग किया, पर दैवी प्रकोप के आगे आखिर किसका, कब तक बस चलता ? जब सब शक्तिहीन हो गये और दुर्भिक्ष का दानव विकराल रूप धारण करके प्रजा को चबाने लगा, तो चारों दिशाओं में हाहाकार गूँजने लगा।

विपत्ति से छुटकारा पाने के उपाय ढूँढ़ने के लिए राजा ने एक बड़ी भारी सभा बुलाई, जिसमें उस समय तक जीवित सभी गण्यमान ऋषि और मनीषी एकत्रित हुए। बहुत सोच-विचार के बाद ऋषियों ने निश्चय किया कि इन्द्र देवता कुपित हो गये हैं, उन्हें शान्त करने के लिए नरमेध यज्ञ होना चाहिए।

नरमेध यज्ञ क्या ? प्रजा की इस जिज्ञासा का समाधान करते हुए ऋषियों ने बताया कि पाप-पूर्ण कुविचारों से जब अदृश्य लोक भर जाता है, तो उसकी प्रतिक्रिया से सभी सृष्टि पर नाना प्रकार की आपत्तियाँ आती हैं। उन्हें शान्त करने के लिए प्रबुद्ध आत्माओं का उच्च कोटि का स्वेच्छा-त्याग आवश्यक है। कुछ दिव्य आत्माएँ पवित्रतम विचारों के साथ लोक कल्याण के लिए अपने को बलिदान कर दें, तो विकृत वातावरण शुद्ध हो सकता है, इन्द्र देवता सन्तुष्ट हो सकते हैं।

सब लोग चिन्ता में पड़े कि नरमेध यज्ञ के 'बलि पशु' कौन बनेगा ? लोग कुत्ते की मौत आये दिन मरते थे। पर धर्म के लिए प्राण देना तो बड़ा कठिन है। ऋषि ने खड़े होकर पूछा—"आप लोगों में से कोई व्यक्ति अपने को यज्ञ में बलिदान करने के लिए देता है ? सभा में सन्नाटा छाया हुआ था, ऋषि की याचना प्रतिध्वनित होकर वापस लौट आई। दर्शकों और विचारकों की सभा में से किसी का मुँह न खुला। कार्यवाही दूसरे दिन के लिए स्थगित कर दी गई।

सभा का कार्य समाप्त हो जाने के बाद एक ब्राह्मण युवक अपने विचारों में मग्न अपने घर पहुँचा। घर पर उसके वृद्ध माता-पिता भूख से तड़प रहे थे। प्यास के मारे उसके होंठ सूख रहे थे। युवक ने माता-पिता के पैर छुए और कहा—"मैं अब जा रहा हूँ, सदा के लिए जा रहा हूँ, आप मुझे प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा दीजिये।" उसने सभा का सारा वृतान्त कह सुनाया कि, किस प्रकार नरमेध यज्ञ की आवश्यकता बताई गई और उसके लिए एक यज्ञ-पशु का कार्य करने के लिये कोई उद्यत न हुआ। अब मैंने अपने प्राण देकर उस महान् कार्य की पूर्ति करने का निश्चय किया है।

माता-पिता का भूख प्यास के कारण होने वाला चीत्कार बन्द हो गया। उन्होंने अपनी धुँधली आँखों से अपने प्राणों से प्यारे पुत्र को देखा और उसे उठाकर छाती से लगा लिया। उनकी आँखों से आँसुओं का अविरल प्रवाह जारी था और गला रुँध रहा था। एक मात्र पुत्र की ममता उनका कलेजा नौंचे खा रही थी। पुत्र को चरण स्पर्श का उत्तर देते हुए पिता ने कहा—"बेटा, प्रसन्नतापूर्वक जाओ। यदि तुम्हारे बलिदान से असंख्य प्राणियों की तड़पती हुई आत्माओं को शान्ति मिलेगी, तो तुम बड़े भाग्यशाली हो, प्रसन्नतापूर्वक अपना बलिदान करो, बेटा !"

दूसरे दिन प्रातः काल सभा की कार्यवाही पुनः आरम्भ हुई। ऋषि ने उठकर पूछा—"क्या यज्ञ न हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकेगा ? क्या आज भी कोई महानुभाव अपने को बलिदान करने के लिये तैयार होकर नहीं आये हैं ?" सभा मण्डप में भीड़ को चीरता हुआ एक दुर्बल, कृशकाय, गौरवर्ण युवक आगे बढ़ा। उसने कहा, "यज्ञ होगा ! अवश्य होगा। हाँ, मैं शतमन्यु शर्मा तैयार होकर आया हूँ।" सब लोग प्रसन्नता से तालियाँ बजाने लगे।

यज्ञ की तैयारियाँ होने लगीं। होता, अध्वर्यु, उद्गाता, ब्रह्मा सब अपना-अपना कार्य करने लगे। एक विशाल मण्डप के बीच यज्ञ वेदिका बनाई गई। आहुतियों से अग्नि की लपटें आकाश का चुम्बन करने के लिये बढ़ने लगीं।

बलिदान की वेदी के निकट तेजस्वी शतमन्यु खड़ा हुआ था, प्रसन्नता से उसका चेहरा खिल रहा था। उसकी आहुति दी ही जाने वाली थी, आकाश से पुष्प वर्षा होने लगी। एक दिव्य-ज्योति ने प्रकट होकर कहा—"पुत्र, शतमन्यु ! मैं ही इन्द्र हूँ, तुम्हारे त्याग से बहुत प्रसन्न हूँ। जिस देश में तुम्हारे जैसे आत्म-त्याग करने वाले मौजूद हैं, वह अधिक दिन दुःखी न रहेगा। अब नरमेध की आवश्यकता नहीं रही, शीघ्र ही वर्षा होगी और दुर्भिक्ष मिट जाएगा।"

ज्योति के अन्तर्ध्यान होते ही घनघोर घटाएँ उमड़ीं और मूसलाधार वर्षा होने लगी। मरणासन्न प्राणियों में पुनः प्राण लौट आये, सर्वत्र शतमन्यु का यशगान होने लगा।

सत्युग के आदि में ऋषि के आदेश का उत्तर देते हुए शतमन्यु ने कहा था—"यज्ञ होगा। मैं तैयार हूँ।" आज कलयुग के अन्त में अखण्ड ज्योति पूछती है कि असत्य और पाप के कारण दुर्भिक्ष-पीड़ित संसार को शान्ति देने के लिये, सत्य प्रचार करने के लिये, क्या कोई तेजस्वी युवक तत्पर न होंगे ? क्या इस सत्य-यज्ञ का अनुष्ठान न हो सकेगा ? क्या नरमैध यज्ञ का महत्त्व समझने वाले कोई आत्मत्यागी नहीं हैं ?

देखें कोई शतमन्यु यह कहने का साहस करता है कि 'हाँ मैं हूँ।' असत्य को मिटाने के लिये सत्य की बलिवेदी पर प्राण देने के लिये मैं तैयार हूँ। अखण्ड ज्योति के प्यासे कान ऐसे उत्तर सुनने के लिये लालायित हैं।

बलिदान जो सार्थक हो गया

वैशाली महानगरी आज दुल्हन की भाँति सजी थी। सर्वत्र हर्ष उल्लास का वातावरण था। राज्य महोत्सव मनाने के लिए यह सब तैयारियाँ हुई थीं। बाल-वृद्ध, नर-नारी सभी महोत्सव में भाग लेने के लिए राजमहल के समीप प्रांगण में एकत्रित हुए थे। 'राज्य नर्तकी का नृत्य आरम्भ हुआ। नृत्य की मस्ती में धीरे-धीरे राजा और प्रजा सभी डूबते जा रहे हैं।

अचानक महल में लगे विशाल घण्टे की आवाज ने सबका ध्यान तोड़ा। पर यह क्या ? घण्टा तो निरन्तर ही बजता जा रहा था। राज परम्परा के अनुसार घण्टे का निरन्तर बजना आने वाले संकट का परिचायक था जिसका अर्थ होता था कि शत्रु ने राज्य पर आक्रमण कर दिया है। नृत्य अपने-आप थम गया और देखते ही देखते युद्ध की रणभेरी वातावरण में गूँजने लगीं। पर शत्रु की विशाल सेना और पूर्व तैयारी न होने से वैशाली के सैनिकों के पैर उखड़ने लगे। राजा को बन्दी बना लिया गया। शत्रु सेना वैशाली नगर पर कहर ढाहती निरन्तर आगे बढ़ रही थी। लूट-पाट एवं बाल-वृद्ध नर-नारियों की हत्या से वातावरण चीत्कार कर उठा।

नगर नायक 'महायायन' कभी अपनी शूरवीरता के लिए विख्यात था। पर आज तो यह भी अपने को असमर्थ पा रहा था। वृद्धावस्था के कारण उसका अपना शरीर भी साथ नहीं दे रहा था। तो क्या हमारी आँखों के सामने ही यह अत्याचार होता रहेगा ? नहीं ऐसा नहीं हो सकता, यह सोचकर वृद्ध नायक चल पड़ा शत्रु सेनाध्यक्ष से मिलने।

रास्ता रोके खड़े वृद्ध को शत्रु सेनाध्यक्ष ने हटने का आदेश दिया। 'महायायन' की आँखें दृढ़ता से चमक उठी। उसने कहा, "आगे बढ़ने के लिए तुम्हें मेरी लाश से गुजरना होगा—मेरे सामने तुम बाल-वृद्ध, नर-नारियों पर अत्याचार नहीं कर सकते। शत्रु सेनानायक को वृद्ध जानकर दया आ गई। उसने कहा "रास्ता छोड़ो। हम तुम और तुम्हारे परिवार की सुरक्षा का वचन देते हैं।" महायायन को लगा जैसे किसी ने उसके स्वाभिमान पर थप्पड़ मार दिया हो। उसने कहा, "मुझे अपने जीवन का लोभ नहीं है। यदि तुम्हें दया दिखानी ही है, तो इन मासूमों पर अत्याचार बन्द करो।"

शत्रु सेनानायक को जाने क्या सूझी उसने 'महायायन' के समक्ष एक विचित्र शर्त रखी। "तुम जितनी देर सामने बह रही नदी में डूबे रहोगे हमारी सेना लूट-पाट एवं हत्या बन्द रखेगी।" शर्त स्वीकार कर अविलम्ब वृद्ध महायायन नदी में कूद पड़ा। बचनबद्ध शत्रु सेनानायक ने सेना को तब तक के लिए लूटपाट एवं संहार बन्द रखने को कहा जब तक कि वृद्ध का सिर पानी के बाहर न दिखायी पड़े। विशाल सेना, सेनाध्यक्ष के नेतृत्व में महायायन के बाहर निकलने की प्रतीक्षा बेचैनी से कर रही थी। प्रातः से दोपहर हुई और फिर शाम होने को आई पर वृद्ध महायायन पानी में डूबा और डूबा ही रहा। सेनानायक को आश्चर्य हुआ। उसने गोताखोरों को वृद्ध का पता लगाने को कहा। लम्बी खोज-बीन के बाद नदी की गहराई में महायायन का मृत शरीर चट्टान से लिपटा पाया गया। उसने दोनों हाथों से चट्टान को मजबूती से पकड़े ही दम तोड़ दिया था।

इस अनुपम त्याग एवं बलिदान को देखकर शत्रु सेनानायक का हृदय भी द्रवित हो उठा। आँखों से अश्रु धारा बह चली। मानवता के इस वृद्ध पुजारी के समक्ष अपनी हार स्वीकारते हुए उसने सैनिकों को लूट की वस्तुओं को वापस देने तथा अपने राज्य की ओर वापस लौटने का आदेश दे दिया।

गृहस्थ में ईश्वर प्राप्ति

एक बार राजा ने अपने मंत्री से पूछा कि, "क्या गृहस्थ में रहकर भी ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है ?" मंत्री ने उत्तर दिया, "हाँ, श्रीमान् ऐसा हो सकता है।" राजा ने पूछा कि यह किस प्रकार संभव है ? मंत्री ने उत्तर दिया कि इसका ठीक-ठाक उत्तर एक महात्मा जी दे सकते हैं, जो यहाँ से गोदावरी नदी के पास एक घने वन में रहते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

राजा अपने प्रश्न का उत्तर पाने के लिए दूसरे दिन मंत्री को साथ लेकर उन महात्मा ने मिलने चल दिया। कुछ दूर चलकर मंत्री ने कहा—"महाराज, ऐसा नियम है कि जो उन महात्मा से मिलने जाता है, वह रास्ते में चलते हुए कीड़े-मकोड़ों को बचाता चलता है। यदि एक भी कीड़ा पाँव से कुचल जाय तो महात्मा जी श्राप दे देते हैं।" राजा ने मंत्री की बात स्वीकार कर ली और खूब ध्यानपूर्वक आगे की जमीन देख-देखकर पैर रखने लगे। इस प्रकार चलते हुए वे महात्माजी के पास जा पहुँचे।

महात्मा ने दोनों को सत्कारपूर्वक बिठाया और राजा से पूछा कि आपने रास्ते में क्या-क्या देखा मुझे बताइए। राजा ने कहा, "भगवन् मैं तो आपके श्राप के डर से रास्ते के कीड़े-मकोड़ों को देखता आया हूँ। इसलिए मेरा ध्यान दूसरी ओर गया ही नहीं, रास्ते के दृश्यों के बारे में मुझे कुछ भी मालूम नहीं है।"

इस पर महात्मा ने हँसते हुए कहा—"राजन् यही तुम्हारे प्रश्न का उत्तर है। मेरे श्राप से डरते हुए जिस तरह तुम आये, उसी प्रकार ईश्वर के दंड से डरना चाहिए, कीड़ों को बचाते हुए जैसे चले, उसी प्रकार दुष्कर्मों से बचते चलना चाहिए। रास्ते में अनेक दृश्यों के होते हुए भी वे दिखाई न पड़े। जिस सावधानी से तुम मेरे पास आये हो, उसी से जीवन क्रम चलाओ तो गृहस्थ में रहते हुए भी ईश्वर को प्राप्त कर सकते हो।" राजा ठीक उत्तर पाकर संतोषपूर्वक लौट आये।

बहुत गई, थोड़ी रही

राजा जहाँ बुद्धिमान था, वहाँ वह विचारवान् और न्यायवान् भी था। प्रजा को अपने प्राणों से अधिक प्यार करता था। इसे अपनी प्रजा के सुख-दुःख का बड़ा ध्यान रहता था। अतः यदा-कदा रात को भी भेष बदलकर प्रजा की दशा जानने निकल जाता था।

एक दिन कोतवाल को साथ लेकर वह सारे शहर का चक्कर लगा रहा था कि रास्ते में राजा ने एक मकान में रोशनी जगमगाती हुई देखी। राजा ने सोचा दो बजने वाले हैं और अभी तक इसमें से इतने तेज रोशनी कैसे आ रही है ? उसे सन्देह हुआ वह मकान के पास जाकर आहट लेने लगा। राजा ने एक छेद में से झाँका तो दिखाई दिया कि एक सुन्दर लड़की कह रही है—"नींद नहीं लेती हूँ, सब कुछ मैं करती हूँ। इतने पर भी मेरी माँ मुझे डाँटती है और सारी कमाई भी अपने पास रखती है, इसलिये मैं तो कल ही माँ को जहर देकर मार डालूँगी।" इतना कहकर वह लड़की बैठ गई।

राजा को अधिक जानकारी प्राप्त करने का कौतूहल बढ़ा, वह छेद में आँखें लगाकर दीवार के सहारे अधिक सावधानी से खड़ा हो गया उसने देखा कि एक साधु वेशधारी युवक वहाँ उपस्थित है और कह रहा है कि वाई ! मैं भी तुम्हारी ही तरह फँसा हूँ। गुरु जी रात दिन चैन नहीं लेने देते। यहाँ तक आने का अवकाश बड़ी मुश्किल से कभी-कभी ही निकाल पाता हूँ। कल रात को मैं भी उनका गला घोंट दूँगा, जिससे मार्ग की सारी बाधा हट जाय। इसी प्रकार एक तीसरे उपस्थित सज्जन जो देखने में कोई सेठ प्रतीत होते थे, कह रहे थे कि मेरा लड़का जवान हो चला है और मेरे मार्ग में रोड़ा अटकाता है, अब उसे जल्लादों को सुपुर्द कर दूँगा, ताकि मेरी राह साफ हो जाए।

तीनों के कथन जब राजा सुन चुका तो उसे बड़ा दुःख हुआ और अपने साथी कोतवाल से पूछने लगा कि प्रियवर ! कोई ऐसा उपाय बताओ जिससे कल तीन व्यक्तियों की हत्या होने से रुक जाए और भविष्य में इनका जीवन सुधर जाए। कोतवाल ने बताया कि—"श्रीमान्, यह लोग अपनी मृत्यु को भूल गये हैं और समझते हैं कि शायद हम सदैव ही जीवित रहेंगे, इसीलिए यह ऐसे कुकर्म करने पर उतारू हैं। इसमें यह सेठ जी तो अपनी पुत्र वधू तक पर पाप दृष्टि रखते हैं, पुत्र के समझाने पर अपना आचरण सुधारकर परलोक साधना में प्रवृत होना तो दूर रहा, वरन् अपने इन्द्रिय स्वार्थ पर आत्मज—पुत्र तक का बलिदान करने को तैयार हो गये। इन लोगों को शरीर की नश्वरता का बोध हुए बिना सद्गति प्राप्त नहीं हो सकती।"

दूसरे दिन राजा ने एकान्त कमरे में साधु, सेठ और वेश्या को बुलाया। राज्य कार्य तो प्रधान मन्त्री को सौंप दिया और स्वयं उन तीनों के साथ एकान्त दरबार में जा बैठे। राजा ने वेश्या को आज्ञा दी कि गाना गाओ, वेश्या ने गाना गाया पर राजा को वह पसन्द न आया। दूसरा गाना गाने की आज्ञा हुई, वह भी पसंद न आया। शाम तक इसी प्रकार गाने होते रहे, पर राजा को एक भी पसन्द न आया। सब लोग भूखे प्यासे बैठे हुए थे, वेश्या भी थक गई थी, उसने कहा—"महाराज ! मुझे जितने गाने याद थे वह सब समाप्त हो गये अब बस, एक ही गाना शेष रह गया है। आज्ञा हो, तो उसे भी सुना दूँ।" राजा ने कहा—"सुनाओ।" वेश्या ने एक बड़ा मर्मस्पर्शी गाना गाया—"बहुत गई, थोड़ी रही, यह भी बीती जाय।" यह गाना इतने वेदना भरे स्वर में गाया गया था कि राजा के मुँह से वाह-वाह निकलने लगी। साधु और सेठ के पत्थर हृदयों पर तो अद्भुत असर पड़ा, वे पानी की तरह पिघल पड़े और फूट-फूट कर रोने लगे। स्वयं वेश्या की आँखों से पश्चाताप की अविरल धार बह रही थी।

राजा ने गद्-गद् स्वर से कहा—"अज्ञानी मित्रो ! मैं तुम्हारी आन्तरिक दशा जान चुका हूँ। रोने से कुछ न होगा। इस पद के महत्त्व पर ध्यान दो—तुम्हारी आयु बहुत बीत गई है और थोड़ी-सी शेष रह गई है। इसके बीतने में भी अब देर नहीं है। यह मनुष्य शरीर बार-बार नहीं मिलता। तुच्छ इन्द्रिय-लिप्सा को छोड़ो और धर्म का पालन करो, जिससे तुम्हारा मनुष्य जीवन सफल हो।" उन तीनों ही व्यक्तियों ने अपने जीवन की क्षण भंगुरता का अनुभव किया और भविष्य में सदाचारपूर्ण जीवन बिताने की प्रतिज्ञा कर ली।

तीनों जब राज दरबार से विदा हुए तो उनका जीवन दूसरे ही प्रवाह में बह रह था। उनका अन्तरात्मा इसी पद को गाता जाता था—"बहुत गई थोड़ी रही, यह भी बीती जाय।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

माता या शत्रु

एक नगर में एक विधवा स्त्री रहती थी, जिसका एक ही लड़का था। एक तो इकलौता बेटा, फिर दूसरा कोई सहारा नहीं, इसके अतिरिक्त मोहिनी मूढ़ भी काफी थी। इसलिये उसे अपने लड़के का गहरा मोह था। निरंकुश रहने से लड़का उदंड होने लगा। जब वह कोई बदमाशी करता और पड़ोसी उलाहना देते तो वह लड़के के अपराध का विचार किये बिना पड़ोसियों से लड़ने लगती। अगर पड़ोसी इतना प्रभावशाली होता कि उससे लड़ना कठिन होता, तो लड़के को अंचल से ढककर रोने लगती। इस प्रकार कहीं जीभ चलाकर, कहीं आँसू दिखाकर वह पड़ोसियों को हरा देती और अपने लड़के पर आँच न आने देती। परिणाम यह हुआ कि लड़का चोर, बदमाश और क्रूर हो गया और जवानी के प्रारम्भ से ही वह रंडीबाजी भी करने लगा। उसकी प्यारी वेश्या से जब एक-दूसरे आदमी ने सम्बन्ध जोड़ा तो इसने उस आदमी का और वेश्या का खून कर दिया। जब सरकार से उसे मृत्यु दंड मिला और अधिकारियों ने जब दण्ड देने के समय उसकी अन्तिम इच्छा जानना चाही तो उसने माता से मिलने की इच्छा प्रकट की। जब माँ उससे मिलने आई तब उसने माँ की नाक काट ली और कहा अगर तूने मेरी छोटी अवस्था में ही मोह में भूलकर मुझे उद्दंड न बनने दिया होता, पड़ोसियों के उलाहनों का विचार करके मुझे सुधारा होता तो आज मेरी यह दशा न हुई होती।

इस प्रकार मोह से मोहिनी का जीवन भी बर्बाद हुआ, दूसरों की भी हानि हुई और उसका प्यारा लड़का भी जान से गया। सन्तान से प्रेम और वात्सल्य रखना चाहिए, मोह नहीं। मोह से अपना भी नुकसान होता है और सन्तान का भी जीवन बर्बाद होता है।

सत्संगति कथय किं करोति पुंसाम

उसका नाम गुलिक था। वह व्याध था। पशु-पक्षियों को ही व्याध नहीं, वह मनुष्यों का भी व्याध था। हिंसा एवं लूट-पाट ही उसके व्यसन एवं व्यवसाय थे। वह इतना निर्दयी और अकरुण था कि लोग उसका नाम सुनते ही काँपने लगते थे। नित्य प्रति लोगों को लूटना और मारना उसका स्वभावगत पेशा था। इसी के आधार पर उसकी और उसके परिवार की आजीविका चलती थी।

संयोगवश एक दिन उसे कोई शिकार न मिल सका। सबेरे से शाम तक वह शिकार की घात में घूमता रहा किन्तु निराशा के सिवाय उसके हाथ कुछ न लगा। निराशा, भूख और परिवार की चिन्ता ने उसे इतना व्यग्र कर दिया कि वह बस्ती की ओर चल दिया। वह बस्ती से कुछ दूर स्थित एक मंदिर के समीप पहुँचा और दूर से अनुमान लगा लिया कि इस स्थान पर अर्थसिद्धि हो सकती है। किन्तु उस समय उस मन्दिर में अनेक व्यक्ति मौजूद थे, इसलिये अवसर न देखकर वह रात होने तक के लिये वापस चला गया।

उस मन्दिर के अधिष्ठाता एक वयोवृद्ध बाबाजी थे, नाम था सत्यजित। वे अपने सद्व्यवहार, संयम-नियम, उदारता और ज्ञान के लिए उस जनपद में प्रसिद्ध थे। वे लोगों का दुःख दूर करने और उनकी सहायता करने में सदा तत्पर रहते थे। लोग उन्हें बड़ी श्रद्धा से देखते थे। दूर-दूर से लोग उनका सत्संग करने आते थे और अन्न-वस्त्र, दूध, दही और धन आदि, जो जिसके पास होता था, दे जाते हैं। सत्यजित को किसी बात की कमी न थी। किन्तु वे पाई हुई सामग्री का अधिकांश भाग, अतिथों, गरीबों, यात्रियों और आवश्यकताग्रस्त लोगों की सहायता में लगा देते थे। वे बड़े त्यागी और उदार प्रवृत्ति के थे।

संध्या गहरी होने लगी। बाबा ने सत्संग समाप्त करके श्रृंगार-आरती की और आगन्तुकों को प्रसाद देकर विदा कर दिया। वे सदा ध्यान रखते थे कि आये हुये लोगों को ज्यादा देर न हो जाए क्योंकि तब मार्ग में गुलिक के आक्रमण का डर हो जाता था। गुलिक व्याध—व्याघ्र से भी अधिक सांघातिक है—यह बात सत्यजित अच्छी तरह जानते थे।

देवता की शयन-सेवा के बाद सत्यजित मंदिर बन्द करके अपने आसन पर बैठकर ध्यान मग्न हो गये। आज वे अन्य दिनों की अपेक्षा कुछ विशेष अनुभव कर रहे थे। उनका हृदय आज कुछ अधिक आर्द्र होकर भगवान के चरणों में तन्मय हो रहा था। कारण की चिन्ता से निरपेक्ष वे भजन का आनन्द ले रहे थे। तभी बाहर दरवाजे पर थाप लगी। वह एक बार ध्यान देकर फिर भजन में डूब गये।

अबकी बार थपथपाहट के साथ एक कर्कश आवाज भी थी। "दरवाजा खोलिये।" "कौन है भाई ?" बाबा ने पूछा। "एक भूखा यात्री।" उत्तर आया। 'एक भूखा यात्री !' मन ही मन दोहराते हुये पुजारी बाबा ने उठकर साँकल खोल दी और कहा, "आ जाइये अन्दर आ जाइए। "आप न भी कहते तब भी मैं बाहर न खड़ा रहता"—कहते हुये कठोर अवयव वाले उस भयानक दस्यु ने हाथ में परशु के लिये हुये मंदिर में प्रवेश किया।

सत्यजित ने देखा और कहा—"गुलिक !" "हाँ ! गुलिक ही नहीं गुलिक व्याध। इस प्रान्त का व्याध गुलिक"—कहते हुये उसने बाबा की गर्दन पकड़कर गिरा दिया और उनकी छाती पर चढ़कर कमर से कटार निकाल ली। किन्तु उसे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि पुजारी बाबा भयभीत होने के स्थान पर हँस रहे हैं। उनके मुख पर किसी प्रकार की विकृति का कोई चिह्न नहीं है। उनका मुख एक विलक्षण तेज से चमक रहा है। यह उसके लिये एक सर्वथा नया और आश्चर्यजनक दृश्य था। उसकी उठी हुई कटार नीची हो गई।

गुलिक ने प्रभावित वाणी में पूछा, "बाबा मौत के मुख में पड़े हुये भी तुम हँस रहे हो। जिस स्थिति में लोग बिना मारे ही मर जाते हैं, उस स्थिति में तुम्हारी यह निर्भयता मुझे इसका कारण जानने के लिये उत्सुक कर रही है। अब मैं इसका कारण जानकर ही तुम्हारी हत्या करूँगा।"

बाबा ने हँसते हुए पूछा, "पहले तुम मुझे यह बताओ कि तुम मेरी हत्या क्यों करना चाहते हो ?" "आज सबेरे से मैं और मेरा परिवार भूखा है। मुझे कहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कोई शिकार नहीं मिला है। इसलिये आप को लूटने का निश्चय किया है।" गुलिक ने अपना मन्तव्य बतलाया। बाबा ने कहा, "इसके लिये मुझे मारने और लूटने की क्या आवश्यकता है ? तुम्हें जिस वस्तु की आवश्यकता हो वैसे ही ले जा सकते हो। यह द्वार तो सबके लिये सदा समान रूप से खुला हुआ है।" बाबा ने अपनी बात कही।

गुलिक ने कहा, "मैं किसी का दिया हुआ नहीं लेता, मैं तो अपने पराक्रम से कमाया हुआ भोजन स्वीकार करता हूँ और बिना कमी किसी की कोई वस्तु नहीं लेता, यह मेरा नियम है। अब जल्दी ही मुझे अपनी इस निर्भय हँसी का रहस्य बतलाइये, जिससे मैं अविलम्ब अपना काम पूरा करूँ।"

"क्या तुम्हार माता-पिता, भाई-बन्धु जीवित हैं ?" बाबा ने पूछा। "नहीं, वे सब कब के मर चुके हैं।" गुलिक ने उत्तर दिया। "उनके मरने पर तूने या तेरे सम्बन्धियों ने क्या किया ?" बाबा ने फिर पूछा। "मरने के बाद उन्हें श्मशान ले जाया गया। चिता पर रखकर एक लुकारी से उनका मुँह झुलसाया गया और चिता में आग लगा उन्हें जला दिया गया। अन्त में श्राद्ध आदि हुआ और कुटुम्ब के लोगों को भोज दिया गया। सबने प्रीति-पूर्वक पूरी-पकवान और मिठाई खाकर मृतक के परिवार को पवित्र किया। बस यही सब हुआ और क्या किया गया ?" गुलिक ने पूरी कहानी सुना दी।

सत्यजित ने मुसकराते हुये कहा कि बस, इसी में मेरी हँसी का रहस्य छिपा हुआ है। इसी प्रकार जब तुम भी मृत्यु के अतिथि बनकर इस संसार से विदा होंगे, तब तुम्हें भी केवल लुकारी ही मिलेगी और तुम्हारे नाम पर लोग पूरी-पकवान और मिष्ठान आदि खायेंगे। तब तुम पता नहीं, इस निस्सार एवं नश्वर जीवन में यह पाप क्यों कमा रहे हो। तुम्हारी इसी अबोधता को सोच-सोचकर मुझे हँसी आ रही है। बाबा ने अपनी बात समाप्त कर दी।

गुलिक के हाथ की कटार गिर गई। वह पुजारी बाबा की छाती से उतरकर उनके चरणों में लिपटकर रोता हुआ बोला, "बाबा अवश्य ही अन्त में मुझे लुकारी ही मिलेगी। आपने मेरी आँखें खोल दीं। अब मैं कभी ऐसा पाप न करूँगा। आप मुझे पिछले पापों से छूटने का उपाय बतला दें।" बाबा ने उसे हृदय से लगाकर धीरज बँधाया और कहा, "गुलिक तुम्हारे इन पश्चाताप के आँसुओं से ही तुम्हारे पिछले पापों का प्रायश्चित्त हो गया। अब तू निष्पाप है। क्रूर कर्मों को छोड़कर दया और सहानुभूतिपूर्वक दीन-दुखियों और निर्बलों की सेवा सहायता कर तुझे-शाश्वत शान्ति मिलेगी।"

गुलिक ने अपने सारे अस्त्र-शस्त्र नदी में बहा दिये और उसी दिन से सत्यजित के निर्देशानुसार सदाचरण में रत होकर एक सन्त का जीवन व्यतीत करने लगा। कुसंयोग से भी हुये एक सच्चे संत के समागम ने गुलिक जैसे दुर्दान्त दानव को सच्चा मानव बनाकर अपना प्रभाव प्रमाणित कर दिया। धन्य है सन्त-समागम !

जीवन का सत्य और सार्थकता

युवराज भद्रबाहु अपने समय के सभी युवकों में सर्वश्रेष्ठ, सुन्दर और सुगठित काया का स्वामी था। उसे अपनी सुन्दर काया और अतुल रूप यौवन का गर्व भी था। इस गर्व के कारण वह अन्य राजकुमारों के सामने दर्प भरे वचन भी बोलता था। एक दिन युवराज महामन्त्री के पुत्र सुकेशी के साथ बजरा से बाहर सरिता के तट पर भ्रमण कर रहा था। भ्रमण करते हुए युवराज और मन्त्री पुत्र नगर से कुछ दूर चले गये।

एक स्थान पर—जहाँ सरिता के दूसरे तट पर श्मशान था, कुछ लोग शवदाह कर रहे थे। युवराज ने मन्त्री पुत्र से पूछा—"वहाँ क्या हो रहा है ?"

"वहाँ खड़े लोगों का कोई स्नेहीजन मर गया है"—सुकेशी ने कहा—"वे लोग उसके मृत शरीर पर दाह संस्कार कर रहे हैं।"

"अवश्य ही वह कोई कुरूप व्यक्ति होगा"—भद्रबाहु यहाँ भी दर्पभरी टिप्पणी किये बिना नहीं रह सका—"यदि वह सुन्दर होता तो कोई क्यों जलाना चाहता। अपने पास नहीं रखता।"

"नहीं। ऐसी बात नहीं है, शरीर सुन्दर हो या न हो, मर जाने पर सभी शरीर सड़ने-गलने लगते हैं। अतः उन शरीरों को जला देना पड़ता है।"—सुकेशी ने कहा।

यह बात युवराज के जाने किस मर्मस्थल को स्पर्श कर गयी कि उसे अपने रूप, सौन्दर्य और यौवन का दर्प टूटे हुए काँच के टुकड़ों की तरह बिखर गया प्रतीत होने लगा और वह उदास रहने लगा। उदासी ने उसे इस बुरी तरह आ घेरा कि उसका सुन्दर चेहरा म्लान दिखाई पड़ने लगा। राजा ने अनेक प्रकार युवराज की उदासी और म्लानता का कारण जानना तथा उसे दूर करना चाहा पर कोई परिणाम नहीं निकला।

युवराज को इस प्रकार चिन्तित और उदास देखकर मन्त्रीपुत्र सुकेशी भी व्यथित हुआ। वह भद्रबाहु को हर तरह से बहलाने का प्रयत्न करता, पर युवराज के मुख पर छायी रहने वाली म्लानता मिटती ही नहीं थी। राजगुरु कालाचार्य को एक विधि सूझी और वे भद्रबाहु को अपने गुरु महाचार्य के पास ले गये।

सिद्धयोगी महाचार्य ने अपनी अन्तर्दृष्टि से भद्रबाहु की मनोव्यथा, खिन्नता का कारण जान लिया और कहा—"भद्र तुम इस शरीर के अन्तिम परिणाम की चिन्ता करते हो।"

लगा किसी ने दुःखती रग को पहचान लिया हो और भद्रबाहु ने अपनी सारी व्यथा उड़ेल दी। महाचार्य ने कहा—"अच्छा बताओ ! आज तुम भवन के स्वामी हो, उस भवन में निवास करते हो। कल को वह भवन रहने योग्य नहीं रह जाता, तो उस भवन को छोड़कर अन्य भवन में जाओगे अथवा नहीं।"

"सो तो जाना ही पड़ेगा महात्मन्"—भद्रबाहु ने कहा। कालाचार्य बोले—"इसके बाद वह भवन गिर जाता है या उसमें आग लग जाती है, तो इससे तुम्हारा क्या बिगड़ा ?"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"कुछ नहीं गुरुदेव।"

"वही नियम शरीर के लिए भी लागू होता है। इसमें निवास करने वाली आत्मा के लिए जब तक यह रहने योग्य है तभी तक यह सुन्दर है। जरा जीर्ण हो जाने पर आत्मा द्वारा इसका त्याग और इसका नाश स्वाभाविक ही है। शरीर नहीं, सुन्दर तो यह आत्म तत्व है, जिसके कारण इसकी प्रतिष्ठा है। इसलिये आत्मा के प्रीत्यर्थ, उसके हित व विकास के लिए शरीर को एक उपकरण मात्र समझो। उसके लिए चिंतित मत होओ।"

इन वचनों ने भद्रबाहु के ज्ञान चक्षु खोल दिये और उसने निश्चय किया कि यह शरीर के गर्व की अपेक्षा आत्मा की महिमा को समझकर जीवन सार्थकता की सिद्धि के लिए ही प्रयत्नशील रहेगा।

दीपक का ध्येय

दीपक जल रहा था, घृत चुकने को आया। लौ क्षीण हो चली। वायु के झोंकों ने देखा कि अब दीपक पर विजय पाना आसान है, तो वे वृन्द-वृन्द मिलकर तेज आक्रमण करने लगे। अंधकार नीचे दबा पड़ा था—अट्टहास कर हँसा और बोला—"दीपक अब तो तुम्हारा अन्त आ गया अब कुछ ही देर में यहाँ हमारा साम्राज्य होगा।"

दीपक मुसकराया और बोला—"बन्धु यह देखना काम विधाता का है, मेरा ध्येय है प्रकाश के लिये निरन्तर जलना सो अब अन्त समय उससे विमुख क्यों होऊँ।" यह कहकर वह एक बार इतने वेग से जला कि वहाँ का सम्पूर्ण अन्धकार सिमटकर रह गया, भले ही दूसरे क्षण दीपक का अस्तित्व स्वयं भी शेष न रहा हो।

पूजा का मर्म

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा आई और भक्तगण भगवती नवरात्रि की उपासना, पूजा पुरश्चरण में लग गये। भक्त कुरेश पुत्र पाराशर भट्ट ने भी सदा की भाँति गृह-मन्दिर को खूब सजाया और उस दिन नवरात्रि की विशेष उपासना का श्रीगणेश अपने ही हाथों सम्पन्न किया, ज्योति स्वरूपा भगवती गायत्री की प्रतिमा, ज्योति कलश की स्थापना, पंचोपचार और जप में कोई अधिक समय नहीं लगाया। उन्होंने स्तोत्र पाठ भी नहीं किया, थोड़े ही समय में प्रसन्न मुद्रा में पूजा-गृह से बाहर निकल आए।

दूसरे दिन की पूजा फिर उनके ब्राह्मण ने ही की। बड़े भाव से उसने जप-ध्यान और स्तवन किया। श्लोक खूब जोर-जोर से पढ़े और जितना समय उपासना में लगना चाहिये उतना ही लगाया, किन्तु अभी वह पूजागृह से बाहर निकले ही थे कि पाराशर भट्ट ने टोका—"पण्डित जी आज भी आपने यथेष्ट पूजा नहीं की ?"

ब्राह्मण को बड़ा गुस्सा आया, पर वह तो मात्र रसोइया थे। गृहस्वामी की आज्ञा से पूजा भी कर दिया करते थे। उन्हें अपने वेतन से मतलब था, इसलिये गृहस्वामी की डाँट-डपट भी सुन लेते थे। उन्हें दुःख इस बात का होता था कि पाराशर आप तो स्वयं कभी १० मिनट, कभी १ घण्टा अस्त-व्यस्त पूजा करते हैं और मैं जो हिसाब से पूजा करता हूँ, उसे सदैव ही कम बताते रहते हैं ? इस आशय की शिकायत वे कई बार उनकी माता जी से भी कर चुके थे। माता जी ने पुत्र को कई बार समझाया भी था कि बेटे ! पण्डित जी की आलोचना न किया कर, आलोचना करना तो वैसे ही अच्छा नहीं होता, पर न जाने पाराशर को क्या अभाव दिखाई देता कि वह जब भी पण्डित जी को पूजागृह से बाहर निकलते देखकर, टोकते अवश्य—पण्डित जी आज भी आपने यथेष्ट पूजा नहीं की। आज पण्डित जी अधिक क्रोध में आ गये, सो उन्होंने माता जी से भी स्पष्ट कह दिया—पाराशर जी को स्वयं तो पूजा आती नहीं, फिर उन्हें इस तरह बार-बार आलोचना करने का क्या अधिकार ?

माता जी ने आज भी पण्डित जी को ध्यान से ही सुना, पर बोलीं कुछ नहीं। पण्डित जी ने समझा आज पाराशर को अच्छी डाँट-फटकार लगेगी, सो वह प्रसन्न होकर अपने दैनिक कार्यों में लग गये।

कूरेश भगवान की भक्ति में अपनी सारी सुध-बुध खो बैठे थे, इसलिये पुत्र पाराशर के पालन-पोषण का सारा उत्तरदायित्व उनकी माता ने ही निभाया था। वे अपने पुत्र की गम्भीरता और उसकी ईश्वर भक्ति को अच्छी तरह समझती थीं, तो भी वह यह चाहती थीं कि बच्चे में यह दोष भी क्यों रहे, इसलिये वे आज तक सदैव ही पाराशर को डाँट देती थीं, किन्तु आज उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि ब्राह्मण की आशंका का निराकरण होना ही चाहिये अन्यथा उसे उपासना के प्रति भ्रान्ति बनी रहेगी।

इससे पूर्व कि वह पण्डित जी से कुछ कहें, उन्होंने पाराशर को बुलाया और बोली—"तात् ! मुझे पता है कि पण्डित जी जब भगवती गायत्री का स्तवन और देवी भागवत् का पाठ कर रहे होते हैं, तब तू उसमें इतना लीन हो जाता है कि पण्डित जी की यथेष्ट पूजा का समय भी तुझे कम लगता है, पर अपनी रसानुभूति के लिये किसी और का तो जी नहीं दुःखाना चाहिये। क्या यह भागवत् धर्म नहीं कि आत्म-कल्याण की जितना साधना सम्भव हो स्वयं पूरी की जाए, यदि और कोई इच्छानुकूल साथ न दे तो उसे दोषी क्यों ठहराया जाए ?"

पाराशर ने अम्बिका के चरण स्पर्श कर क्षमा-याचना की और वचन दिया आगे वह कभी ऐसा नहीं करेंगे।

दूसरे, तीसरे, चौथे दिन भी ब्राह्मण ने ही पूजा की पाराशर भट्ट पास ही बैठे सब सुनते, पर पहले की तरह अब उन्होंने एक दिन भी नहीं टोका। ब्राह्मण को अपनी इस विजय का बड़ा अभिमान था। वह जब पूजागृह से निकलते तो अकड़कर यह जताते हुये कि पाराशर जी पूजा तो हमारी है। कितनी देर पूजा करते हैं, एक तुम हो जो आधा घण्टे भी मन्दिर में नहीं बैठा जाता ? पाराशर उन्हें देखकर थोड़ा मुसकरा देते और फिर दोनों ही अपने-अपने काम से लग जाते।

आज पूर्णाहूति थी। निर्धारित परम्परा के अनुसार आज कुटुम्बियों और मित्रजनों का प्रीतिभोज भी सम्पन्न होना था, उसके लिये दिनभर तैयारी होती रही। ब्राह्मण ने तरह-तरह के पकवान बनाये, पहले भोजन परोसते भी वही थे, किन्तु आज न जाने किस आशय से भोज के समय माता जी ने ब्राह्मण को छुट्टी दे दी और सबके साथ उन्हें भी भोजन में बैठ जाने को कहा। परोसने का कार्य आज उन्होंने स्वयं ही सँभाल लिया था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सब लोग बैठ गये, पण्डित जी और पाराशर जी पास-पास बैठाये गये। माता जी ने परोसना प्रारम्भ किया। सब कुछ परोस जाने के बाद खीर परोसने की बारी आई। माता जी कटोरा लिये परोसती हुई, जब पाराशर के पास पहुँची तो यह कहती हुई लौट गईं खीर कम हो गई अभी लाती हूँ। दुबारा आईं तो उनके हाथ में दूसरा कटोरा था। उसमें से पाराशर और ब्राह्मण दोनों को खीर परोसी गई। सब लोगों ने भोजन करना प्रारम्भ कर दिया।

पर यह क्या ? ब्राह्मण ने खीर मुख से लगाई तो वह कठिनाई से ही निगली जा सकी। खीर में इतना नमक, उसे सहसा विश्वास नहीं हुआ। पंगत में बैठे सभी लोग कितने प्रेम से खीर का स्वाद ले रहे हैं, फिर पाराशर जी को तो अपने साथ ही खीर परोसी गई थी, वह भी तो उसी तरह खा रहे हैं, जिस तरह और सब, उन्हें समझ में नहीं आया, बात क्या है ?

बेचारे खीर खा भी नहीं सकते थे, क्योंकि उसमें नमक की मात्रा बहुत अधिक थी, इसलिये उन्होंने माता जी को पास बुलाकर पूछ ही लिया। माता जी आपने नमकीन खीर बनवाई थी, वह लगता है भूल से हमें और पाराशर जी को परोस दी। माता जी ने विस्मय की मुद्रा बनाते हुए कहा—"नमकीन खीर आ गई, पर पाराशर ने तो कुछ नहीं कहा।" फिर पाराशर की ओर देखते हुए उन्होंने पूछा—"वत्स !" क्या सचमुच खीर नमक वाली है ?" पाराशर जी अब तक आधी खीर खा चुके थे, ने उंगली से उठाकर चखा और बोले—"अरे हाँ माँ। खीर तो सचमुच नमकीन है ?"

ब्राह्मण को बड़ा कौतूहल था, इन्होंने आधी खीर खा ली—तब भी नमकीन होने का पता नहीं चला और मुझसे एक कौर भी नहीं खाया गया, उनके विस्मय को उभारते हुये माता जी ने पूछा—"अरे पाराशर तूने आधी खीर खाली और तब भी तुझे पता नहीं चला।"

विनीत भाव से पाराशर ने कहा—"अम्बे ! आज पण्डित जी ने भगवती गायत्री की एक ऐसी स्तुति गाई थी, जिसमें उनकी मनोहर छवि का वर्णन था। नीले आकाश में सूर्य तेज मध्यस्थ प्रकट होकर उन्होंने अपने भक्तपुत्र शुम्भ-निशुम्भ को किस तरह वरदान दिया कुछ ऐसा ही वर्णन था, जब से वह सुना मन में वही चित्र रम गया है, मैं उसी विचार में डूब गया था, क्या जगत् जननी वैसी भक्ति, वैसा अनुग्रह मुझे प्रदान नहीं करेंगी। माँ उस तल्लीनता में ही यह ध्यान नहीं रहा कि खीर में नमक है या मीठा।"

इससे पूर्व कि माता जी ब्राह्मण से कुछ कहें, उसने स्वयं उठकर पाराशर के पैर पकड़ लिये और कहा—"तात् ! मैंने सारी बात आज समझी। पूजा के इस मर्म को समझ गया होता तो मेरा भी कल्याण हो गया होता। भावनाओं से की गई ५ मिनट की पूजा सचमुच एक घण्टे की उपासना से अधिक फलदायक होती है, जो केवल समय पूरा करने के लिये की जाती है।"

पण्डित जी भी आज इतने भाव-विभोर थे कि उन्हें पता भी न चला कि उनकी बात सुनने के लिये माता जी वहाँ हैं भी नहीं, जब उन्होंने दृष्टि उठाई तो देखा माता जी मीठी खीर से भरा कटोरा लिये आ रही हैं।

समर्पण योग की सच्ची साधना

अन्तःकरण में वैराग्य की ज्योति जलते ही महाराज हरिदास का मन राजपाठ के भोग विलास से उचटने लगा। एक अभाव सदा महसूस होने लगा कि अपने स्वरूप एवं लक्ष्य से अपरिचित रहकर जीवन का एक बड़ा भाग व्यर्थ चला गया। शेष को गँवाना उचित नहीं, यह सोचकर राज्य भार महामन्त्री को सौंपकर वे वन में कठोर तप करने के उद्देश्य से चल पड़े।

दिन बीतते गये और उसके साथ-साथ हरिदास की साधना भी प्रचण्ड होती चली गयी। चित्त की वृत्तियों के निरोध तथा मन की मलीनताओं के परिशोधन के लिए उन्होंने जप, तप एवं तितीक्षा की कठोर साधनाएँ कीं। तपाग्नि में जलकर काया अत्यन्त दुर्बल हो गयी। आत्मदेव की उपासना में शरीर का भी ध्यान न रहा, पर इन कठोर साधनाओं के बावजूद भी हरिदास का मन व्यग्र असन्तुष्ट बना हुआ था। आत्मसाक्षात्कार का लक्ष्य पूरा नहीं हो रहा था। सब कुछ निराशाजनक और प्रयत्न निष्फल जान पड़ रहे थे।

साधना की तन्द्रा की स्थिति में भीतर से आवाज आयी—'सबसे मूल्यवान वस्तुओं का समर्पण कर, तुझे लक्ष्य की प्राप्ति होगी। महाराज संशय में पड़े सर्वाधिक मूल्यवान चीजें कौन-कौन-सी हैं। वापस राज-दरबार लौटे। राजपुरोहित, महामन्त्री तथा प्रधान सेनापति को अविलम्ब परामर्श के लिए बुला भेजा। उनके आते ही संशय प्रकट करते हुए तीनों से जानना चाहा कि मनुष्य के लिए सबसे मूल्यवान कौन-कौन-सी चीजें हैं। राजपुरोहित ने शास्त्र को सर्वोपरि महत्त्व दिया, सेनापति ने शस्त्र को तथा महामन्त्री ने सत्ता को। राजा हरिदास को लगा जैसे समाधान मिल गया हो।

शास्त्र के प्रतीक महाभारत को शस्त्र के प्रतीक तलवार को तथा सत्ता के प्रतीक राज मुकुट के समर्पण का राजा ने संकल्प लिया। बुद्धिबल, शस्त्रबल तथा धन बल की तीनों शक्तियों को अपने इष्ट के समक्ष उत्सर्ग का निर्णय लेकर वे पुनः मुदित मन से तप करने चल पड़े। भीतर के अहम् ने गर्व से कहा सर्वस्व इष्ट के चरणों में अर्पित कर दिया गया। पर त्याग का यह अहंकार अधिक समय तक सन्तोष न दे सका। साधना से जिस आत्म सन्तोष, शान्ति एवं आनन्द की अनुभूति होनी चाहिए, हरिदास का अन्तःकरण कोसों दूर था। पहले की अपेक्षा मन की व्याकुलता और भी बढ़ी। समर्पण में कहाँ, किस तरह की गलती रह गयी है, राजा को यह नहीं सूझ रहा था ?

अन्तःकरण के कोने से पुनः आवाज आयी "मूर्ख ! तूने भौतिक चीजों का तो समर्पण किया पर अपने अहम् को छाती से चिपकाये हुए है। अहम् के रहते समर्पण पूरा नहीं हो सकता। इष्ट के प्रति भावनाओं का आरोपण नहीं हो पाता। अपने अहं को विगलित कर। जा दीन-दुःखियों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की सेवा कर, उनके दुःखों में हिस्सा बँटा। उनमें ही अपना रूप देख। तेरी साधना सफल होगी।"

राजा को अपनी भूल मालूम हुई। जप, तप के साथ-साथ उस दिन से उन्होंने सेवा को भी साधना का अनिवार्य अंग माना। पीड़ितों की सेवा से अहं विगलित हुआ, आत्म विस्तार का अवरुद्ध मार्ग खुल गया। धीरे-धीरे आत्म सत्ता की प्रकाश किरणें भी अन्तःकरण में झिल-मिलाने लगीं। उस पावन आलोक में हरिदास ने सर्वत्र अपनी सत्ता को ही एक अखण्ड रूप में क्रीड़ा कल्लोल करते देखा। अन्तस् का तमस् सच्ची समर्पण योग की साधना से जाता रहा, अवतरित दिव्य प्रकाश के आलोक ने हरिदास के समूचे व्यक्तित्व का कायाकल्प कर दिया। अब वे राजा हरिदास नहीं, तत्व ज्ञानी हरिदास थे।

धर्म के नाम पर मानवता का उपहास न होने दें

खारस (ईरान) के आर्दशीर का पिता सासान "इस्तखार" नामक नगर के हाकिम बाबक का दास था और उसकी भेड़ें चराने का कार्य किया करता था। एक बार बाबक ने तीन स्वप्न देखे और ज्योतिषियों को बुलाकर उनके रहस्य समझाने को कहा।

बाबक—"मैंने तीन रातों को बड़े अद्भुत स्वप्न देखे हैं, जिनका अर्थ मेरी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा है। पहली रात को मैं अपने सामने भेड़ चराने वाले दास सासान को खड़ा देखा। उसके मस्तक के आसपास सूर्य के समान बड़ा भारी प्रकाश फैल रहा था, जिससे मेरी आँखों में चकाचौंध होने लगा। दूसरी रात को मैंने देखा कि सासान हाथी पर चढ़कर जा रहा है और समस्त फारस के लोग उसको प्रणाम कर रहे हैं। तीसरी रात को देखा कि सासान खड़ा है और उसके सामने एक दस्तूर (पारसियों के पुजारी) हाथ में तीन प्याले लेकर खड़े हैं। उन प्यालों में तीन तरह की अग्नि जल रही है, जिनको सिपाही, पुजारी और साधारण जनता के लोग प्रायः जलाया करते हैं। उस अग्नि का प्रकाश चारों तरफ फैला दिखलाई देता था।"

ज्योतिषी—"महाराज, इन स्वप्नों में आपने जिस मनुष्य को देखा है, वह या तो स्वयं ही कहीं का राजा बनेगा या उसका पुत्र बड़ा राजा होगा।"

यह सुनकर बाबक ने सासान को बुलाया और कहा कि तुम अपना वास्तविक परिचय दो। सासान ने हाथ जोड़कर कहा—"स्वामी, मैं तो आपका दास हूँ और भेड़ चराने का काम करता हूँ। मेरे लिये इतनी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं।" पर बाबक न माना और उससे उसके वंश का हाल बतलाने का आग्रह करता रहा। तब सासान ने बतलाया कि फारस के प्रसिद्ध बादशाह गुश्तास्प के पोते दराजदस्त का एक पुत्र था, जिसका नाम "सासान" था, पर किसी कारणवश पिता के मरने पर उसे राज्य का अधिकारी न बनाकर उसकी बहिन को रानी बना दिया गया। मैं उसी सासान के वंश में हूँ। समय के फेर से इस समय हम लोग निर्धन हो गये और मजदूरी करके जीवन निर्वाह कर रहे हैं।

यह हाल मालूम होने पर बाबक ने सासान का बड़ा आदर किया और उसके रहने के लिये एक अच्छा महल बनवाकर अपनी बेटी का विवाह उसके साथ कर दिया। इसी सासान का पुत्र आर्दशीर हुआ। बाबक आर्दशीर को बहुत प्यार करता था और बेटे की तरह उसका पालन-पोषण करता था, इसलिए उसका नाम आर्दशीर बाबकान पड़ गया। आर्दशीर आरम्भ ही से बड़ा साहसी और चतुर था। बाबक ने उसे राज्य कार्य की भी भली प्रकार शिक्षा दी थी। जब उसकी प्रशंसा फारस के तत्कालीन बादशाह "अर्दवान" ने सुनी तो उसे अपने पास बुलाकर दरबार में जगह दे दी।

एक दिन बादशाह अर्दवान, उसका राजकुमार और आर्दशीर तीनों शिकार खेलने गये। शिकार के समय एक भयानक हिंसक पशु राजकुमार पर दौड़ पड़ा। आर्दशीर ने तुरन्त ही उसे तीर से मार दिया। इसके बाद बादशाह के लड़के ने भी उस पर तीर चलाया। इस पर दोनों में शिकार के ऊपर विवाद होने लगा।

आर्दशीर—"इस जानवर को मैंने तीर मारकर गिराया है, इसलिये यह मेरा शिकार है।"

राजकुमार—"तुमने तीर मारा ही क्यों ? यह तो मेरा शिकार था।"

आर्दशीर—"वह तो आपके ऊपर दौड़ पड़ा था। मैंने तो उससे आपकी जान बचा दी। क्या इसमें कुछ बुराई हो गई ?"

राजकुमार—"मैं अपनी जान आप बचा सकता था, तुमने बीच में ही तीर मारकर यह झगड़ा खड़ा कर दिया। शिकार तो मेरा ही है।"

अन्त में यह विवाद राजा के सामने पहुँचा और उसने आर्दशीर से कहा—"आर्दशीर ! तुम शहजादे की बराबरी करते हो, यह अनुचित है। इस कसूर में तुमको अपने वर्तमान पद से हटाकर अस्तंबल का हाकिम बना दिया जाता है। वैसे यह दोष तो बहुत बड़ा था, पर तुमने अपनी होशियारी और बहादुरी से हमको प्रसन्न किया है इसलिये अधिक सजा नहीं देते।"

आर्दशीर को यह व्यवहार पक्षपात पूर्ण और अपमान जनक जान पड़ा, वह चुपचाप राजधानी से चला आया और अपने नगर हस्तखार में ही रहने लगा। बाबक के मरने के बाद आर्दशीर ही यहाँ का राजा बना। उसने बादशाह अर्दवान को "कर" देना बन्द कर दिया और अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। इसके बाद उसने आस-पास के कई देशों को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया और एक शक्तिशाली राज्य कायम किया, जिसमें सबके साथ न्याय और दया का व्यवहार किया जाता था।

जिस नगर को आजकल "करमनशाह" कहते हैं, पुराने जमाने में उसका नाम "किर्मानशाह" था। वहाँ किले के भीतर एक बड़ा मंदिर बना था, जिसमें "किर्म" नाम का एक विशालकाय अजगर साँप रहा करता था। मंदिर के पुजारियों ने उसे सबसे बड़ा देवता प्रसिद्ध कर रखा था और उसके नाम पर वे आस-पास के प्रदेश पर शासन करते रहते थे। उस अजगर को नित्य प्रति भोग के रूप में बैलों और भेड़ों का खून पिलाया जाता था। आर्दशीर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को यह प्रथा बड़ी घृणित और क्रूरतापूर्ण जान पड़ी कि एक अजगर को पालने के लिये हर रोज निर्दोष पशुओं का खून बहाया जाता है। उसने उस अजगर को मारने का निश्चय किया। वह एक व्यापारी का रूप धारण करके और कुछ सेना साथ लेकर किर्मानशाह के किले पर पहुँचा। फौज को तो उसने आस-पास छुपा दिया और स्वयं भेंट के लिये बहुत-सी बहुमूल्य चीजें लेकर फाटक पर पहुँचा। पहरेदारों के पूछने पर उसने बतलाया कि 'किर्म' की कृपा से उसे व्यापार में बहुत लाभ हुआ है और इसके उपलक्ष्य में वह उनकी पूजा करने तथा भेंट चढ़ाने आया है। जब उसे किले में घुसने और ठहरने की आज्ञा मिल गई तो उसने सबको कीमती चीजें बाँटकर प्रसन्न कर दिया। फिर उसने पुजारियों से कहा कि "किर्म की मेरे ऊपर जो कृपा हुई है, उसके लिये मैं एक दिन उनको स्वयं अपने हाथ से भोग लगाना चाहता हूँ। पुजारी धन के लालच से राजी हो गये। उस दिन पहले तो आर्दशीर ने समस्त किले वालों को बहुत बढ़िया दावत दी, पर खाने की चीजों में ऐसा नशे का पदार्थ मिला दिया जिससे वे बेहोश हो गये। फिर उसने बहुत-सा ताँबा आग पर गलाया जब अजगर खून पीने को आया तो एकाध बार तो उसके मुँह में खून डाला, पर बाद में गला हुआ ताँबा उड़ेल दिया। ताँबे के भीतर जाने से 'किर्म' का पेट फट गया और उससे बहुत अधिक शब्द होकर धुँआ निकलने लगा। उसी समय आर्दशीर की बाहर छिपी फौज ने किले में घुसकर हमला कर दिया। किले वाले भी 'किर्म' के मरने के शब्द से होश में आ गये और लड़ाई करने लगे, पर आर्दशीर की सेना हर तरह से तैयार थी और उसने किले वालों को हराकर उस पर कब्जा कर लिया। आर्दशीर ने अजगर को पूजने की घृणित प्रथा का सदा के लिये अन्त कर दिया, जिससे नित्य अनेक पशुओं का वध किया जाना बन्द हो गया। उसने वहाँ पर पारसी धर्म का प्रचार किया और लोग अग्नि के रूप में एक सर्वशक्तिमान भगवान की पूजा करने लगे।

जब आर्दशीर बहुत वृद्ध हो गये तो अपने बेटे को राज्यसिंहासन पर बिठाकर स्वयं भगवत् भजन करने लगे। उस समय उन्होंने अपने बेटे को जो उपदेश दिया, वह बड़ा महत्त्वपूर्ण था। उन्होंने कहा कि तुम कभी इस बात को मत भूलना कि तुमको धर्म और राज्य दोनों की रक्षा प्राणपण से करनी है। राज्य और धर्म एक-दूसरे को शक्ति प्रदान करते हैं। राज्य में शान्ति रहने के लिये धार्मिक बन्धन ही सर्वोत्तम साधन है। इसलिये तुम अपनी प्रजा के सामने अपने जीवन और व्यवहार से ही धर्म का आदर्श उपस्थित करो कि जिससे तुम्हारी प्रजा हृदय से तुमको आशीर्वाद दे।



Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रेरणाप्रद कथा-वार्ताएँ

मनुष्य की अपूर्णता

ब्रह्माजी को इच्छा हुई "सृष्टि रचें।" उसे क्रियान्वित किया। पहले एक कुत्ता बनाया और उससे उसकी जीवनचर्या की उपलब्धि जानने के लिए पूछा—"संसार में रहने के लिये तुझे कुछ अभाव तो नहीं ?" कुत्ते ने कहा—"भगवन् ! मुझे तो सब अभाव ही अभाव दिखाई देते हैं, न वस्त्र, न आहार, न घर और न इनके उत्पादन की क्षमता।" ब्रह्माजी बहुत पछताये। फिर रचना शुरू की—एक बैल बनाया। जब अपना जीवन-क्रम पूर्ण करके वह ब्रह्मलोक पहुँचा तो उन्होंने उससे भी वही प्रश्न किया। बैल दुःखी होकर बोला—"भगवन् ! आपने भी मुझे क्या बनाया, खाने के लिये सूखी घास, हाथ-पाँवों में कोई अन्तर नहीं, सींग और लगा दिये। यह भोंडा शरीर लेकर कहाँ जाऊँ।" तब ब्रह्माजी ने एक सर्वांग सुन्दर शरीरधारी मनुष्य पैदा किया। उससे भी ब्रह्माजी ने पूछा—"वत्स, तुझे अपने आप में कोई अपूर्णता तो नहीं दिखाई देती ? थोड़ा ठिठक कर नव-निर्मित मनुष्य ने अनुभव के आधार पर कहा—"भगवन्, मेरे जीवन में कोई ऐसी चीज नहीं बनाई जिसे मैं प्रगति या समृद्धि कहकर सन्तोष कर सकता।

ब्रह्माजी गंभीर होकर बोले—"वत्स ! तुझे हृदय दिया, आत्मा दी, अपार क्षमता वाला उत्कृष्ट शरीर दिया। अब भी तू अपूर्ण है, तो तुझे कोई पूर्ण नहीं कर सकता।"

अनासक्त कर्म ही सच्चा योग

अश्वघोष को वैराग्य हो गया। भोग-विलास से अरुचि और संसार से विरक्ति हो जाने के कारण उसने गृह-परित्याग कर दिया।

ईश्वर-दर्शन की अभिलाषा से वह जहाँ-तहाँ भटका पर शांति न मिली। कई दिन से अन्न के दर्शन न होने से क्षुधार्त और थके हुये अश्वघोष एक खलिहान के पास पहुँचे। एक किसान शांति व प्रसन्न मुद्रा में अपने काम में लगा था। उसे देखकर अश्वघोष ने पूछा—'मित्र ! आपकी प्रसन्नता का रहस्य क्या है ?"

'ईश्वर-दर्शन' उसने संक्षिप्त उत्तर दिया। "मुझे भी उस परमात्मा के दर्शन कराइये ?" विनीत भाव से अश्वघोष ने याचना की।

"अच्छा" कहकर किसान ने थोड़े चावल निकाले। उन्हें पकाया, दो भाग किये, एक स्वयं अपने लिये, दूसरा अश्वघोष के लिये। दोनों ने चावल खाये, खाकर किसान अपने काम में लग गया। कई दिन का थका होने के कारण अश्वघोष सो गया। प्रचंड भूख में भोजन और कई दिन के श्रम के कारण गहरी नींद आ गई।" और जब वह सोकर उठा तो उस दिन जैसी शांति, हल्का-फुल्का, उसने पहले कभी अनुभव नहीं किया था। किसान जा चुका था और अब अश्वघोष का क्षणिक वैराग्य भी मिट गया था। उसने अनुभव किया अनासक्त कर्म ही ईश्वर-दर्शन का सच्चा मार्ग है।

आत्माभिमुख बनो

माहिष्मती के प्रतापी सम्राट् नृपेन्द्र का यश पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति सर्वत्र फैल रहा था। राजकोष, सेना, स्वर्ण, सौन्दर्य, शक्ति किसी वस्तु का कोई अभाव न था। महाराज नृपेन्द्र प्रजावत्सल और न्यायकारी थे। सम्पूर्ण प्रजा भी उन्हें बहुत श्रद्धा की दृष्टि से देखती थी।

समय बीता। शक्तियाँ घटीं। शरीर टूटा। वृद्धावस्था बढ़ने लगी और उसके साथ ही नृपति के अन्तर में उद्वेग और क्षोभ छाने लगा। उन्होंने बोलना-चालना बन्द कर दिया। किसी से मिलते भी नहीं थे। उदास, बेचैन राजा न जाने किस चिन्ता में डूबे रहते ?

एक दिन बड़े सबेरे सम्राट् राज उद्यान की ओर निकल गये। एक स्फटिक शिला पर पूर्वाभिमुख अवस्थित नृप अब भी कोई वस्तु खोज रहे थे। धीरे-धीरे प्रातः रवि उदित हुआ। राजसरोवर में उनकी बालकिरणें पड़ीं और सहस्त्र दल-कमल खिलने लगा। धीरे-धीरे कमल पूर्ण रूप से खिल गया और अपना सौरभ सर्वत्र बिखेरने लगा।

आत्मा से आवाज फूटी—क्या तुम अब भी रहस्य नहीं जान पाये कि सूर्य का प्रकाश कहाँ से आता है ? प्रकाश उसकी अन्तर स्फुरण नहीं है क्या ? कमल का सौरभ उसके भीतर से ही फूटता है। यह जो सर्वत्र जीवन दिखाई देता है, वह सब विश्व-आत्मा के भीतर से ही फूटता है। आनन्द का स्रोत तुम्हारे भीतर है, उसे तुम्हें ही जगाना पड़ेगा। उसके लिये आत्मोन्मुख बनना पड़ेगा और साधना करनी पड़ेगी।

पंचाग्नि विद्या

वाजश्रवा ने अपने पुत्र नचिकेता के लिये यज्ञ-फल की कामना से विश्वजित यज्ञ आयोजित किया। इस यज्ञ में वाजश्रवा ने अपना सारा धन दे डाला। दक्षिणा देने के लिये जब वाजश्रवा ने गायें मँगाई तो नचिकेता ने देखा वे सब वृद्ध और दूध न देने वाली थीं, तो उसने निरहंकार भाव से कहा—'पिताजी निरर्थक दान देने वाले को स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती।" इस पर वाजश्रवा क्रुद्ध हो गये और उन्होंने अपने पुत्र नचिकेता को ही यमाचार्य को दान कर दिया।

यम ने कहा—"वत्स ! मैं तुम्हें सौन्दर्य, यौवन, अक्षय धन और अनेक भोग प्रदान करता हूँ।" किन्तु नचिकेता ने कहा जो सुख क्षणिक और शरीर को जीर्ण करने वाले हों उन्हें लेकर क्या करूँगा, मुझे आत्मा के दर्शन कराइये। जब तक स्वयं को न जान लूँ, वैभव-विलास व्यर्थ है।

साधना के लिये आवश्यक प्रबल जिज्ञासा, सत्यनिष्ठा और तपश्चर्या का भाव देखकर यम ने नचिकेता को पंचाग्नि विद्या (कुण्डलिनी जागरण) सिखाई, जिससे नचिकेता ने अमरत्व की शक्ति पाई।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देवता भी नहीं कर सकते

एक गुरु के दो शिष्य थे। दोनों बड़े ईश्वर भक्त थे। ईश्वर उपासना के बाद वे आश्रम में रोगियों की चिकित्सा में गुरु की सहायता किया करते थे।

एक दिन उपासना के समय ही कोई कष्ट-पीड़ित रोगी आ पहुँचा। गुरु ने पूजा कर रहे शिष्यों को बुला भेजा। शिष्यों ने कहला भेजा—"अभी थोड़ी पूजा बाकी है, पूजा समाप्त होते ही आ जायेंगे।"

गुरुजी ने दुबारा फिर आदमी भेजा। इस बार शिष्य आ गये, पर उन्होंने अकस्मात् बुलाये जाने पर अधैर्य व्यक्त किया। गुरु ने कहा—"मैंने तुम्हें इस व्यक्ति की सेवा के लिये बुलाया था, प्रार्थनाएँ तो देवता भी कर सकते हैं, किन्तु अकिंचनों की सहायता तो मनुष्य ही कर सकते हैं। सेवा प्रार्थना से अधिक ऊँची है, क्योंकि देवता सेवा नहीं कर सकते।"

शिष्य अपने कृत्य पर बड़े लज्जित हुये और उस दिन से प्रार्थना की अपेक्षा सेवा को अधिक महत्त्व देने लगे।

पण्डित और मूर्ख

श्रावस्ती के दो युवकों में बड़ी प्रगाढ़ मैत्री थी, दोनों ही दूसरों की जेब काटने का धन्धा करते थे। एक दिन भगवान बुद्ध का एक स्थान पर प्रवचन चल रहा था। अच्छा अवसर जानकर दोनों मित्र वहीं जा पहुँचे। उनमें से एक को भगवान बुद्ध के प्रवचन बहुत अच्छे लगे और वह ध्यानावस्थित होकर उन्हें सुनने लगा।

दूसरे ने कई जेबें इस बीच साफ कर लीं। शाम को दोनों घर लौटे। एक के पास धन था दूसरे के पास सद्विचार। गिरहकट ने व्यंग्य करते हुए कहा—"तू बड़ा मूर्ख है रे, जो दूसरों की बातों से प्रभावित हो गया। अब इस पांडित्य का ही भोजन पका और पेट भर।"

अपने पूर्व कृत-कर्मों से दुःखी दूसरा गिरहकट तथागत के पास लौटा और उनसे सब हाल कहा। बुद्ध ने समझाया—"वत्स ! जो अपनी बुराईयों को मानकर उन्हें निकालने का प्रयत्न करता है वही सच्चा पण्डित है, पर जो बुराई करता हुआ भी पण्डित बनता है वही मूर्ख है।"

बासा मन ताजा करो

श्रावस्ती का मृगारि श्रेष्ठि करोड़ों मुद्राओं का स्वामी था। वह मन में मुद्राएँ ही गिनता रहता था। उसे धन से ही मोह था। मुद्राएँ ही उसका जीवन थीं। उनमें ही उसके प्राण बसते थे। सोते-जागते मुद्राओं का सम्मोहन ही उसे भुलाये रहता था। संसार में और भी कोई सुख है यह उसने कभी अनुभव ही नहीं किया।

एक दिन वह भोजन के लिये बैठा। पुत्रवधू ने प्रश्न किया—'तात् भोजन तो ठीक है न ? कोई त्रुटि तो नहीं रही ?' मृगारि कहने लगा—"आयुष्मती ! आज यह कैसा प्रश्न पूछ रही हो ? तुम जैसी सुयोग्य पुत्रवधू भी कहीं त्रुटि कर सकती है, तुमने तो मुझे सदैव ताजे और स्वादिष्ट व्यञ्जनों से तृप्त किया है।"

विशाखा ने निःश्वास छोड़ी, दृष्टि नीची करके कहा—"आर्य ! यही तो आपका भ्रम है। मैं आज तक सदैव आपको बासी भोजन खिलाती रही हूँ। मेरी बड़ी इच्छा होती है कि आपको ताजा भोजन कराऊँ पर एष्णाओं के सम्मोहन ने आप पर पूर्णाधिकार कर लिया है। खिलाऊँ भी तो आपको उसका सुख न मिलेगा। आपका जीवन बासा हो गया है फिर मैं क्या करूँ ?

मृगारि को सारे जीवन की भूल पर बड़ा पश्चाताप हुआ। अब उसने भक्तिभावना स्वीकार की और धन का सम्मोहन त्यागकर धर्म-कर्म में रुचि लेने लगा।

भौतिकता का आकर्षण प्रातः मनुष्य की सदिच्छाओं और भावनाओं को समाप्त कर देता है। उस अवस्था में तुच्छ स्वार्थ के सिवाय भोजन की उत्कृष्टताओं से मनुष्य वंचित रह जाता है।

संयम की शक्ति

महाभारत लिखने के लिए व्यास जी को किसी योग्य व्यक्ति की तलाश हुई। गणेश जी लिखते गये। महाभारत पूरा हुआ तो व्यास जी ने गणेश जी से कहा—"महाभाग ! मैंने २४ लाख शब्द बोलकर लिखाये, आश्चर्य है कि इस बीच आप एक शब्द भी न बोले। सर्वथा मौन बने रहे।" गणेश जी ने उत्तर दिया—"बादरायण, बड़े काम सम्पन्न करने के लिये शक्ति चाहिये और शक्ति का आधार संयम है। संयम ही समस्त सिद्धियों का प्रदाता है। वाणी का संयम न रख सका होता, तो आपका ग्रन्थ कैसे तैयार होता ?"

सच्चा आग्रह

एक व्यक्ति के घर रात को मेहमान आया। उस समय घर में खाने को कुछ न बचा था। उस व्यक्ति ने पड़ोसी का द्वार खटखटाया। लेकिन पड़ोसी ने बिछौने पर पड़े-पड़े ही कहा—"इस आधी रात के समय परेशान न करो, मैं नहीं उठ सकता।" परन्तु वह व्यक्ति भी अड़कर खड़ा हो गया। बोला—"मैं तुम्हें चैन से नहीं सोने दूँगा। मेहमान के लिए रोटी तो देनी होगी।" अन्त में इसके आग्रह के सामने पड़ोसी को किवाड़ खोलने ही पड़े। इसी प्रकार सच्चे आग्रह से भगवान का द्वारा खटखटाएँ तो वे अवश्य खोलेंगे।

आत्मवत् सर्वभूतेषु

संत केवलराम जी एक गाड़ीवान को उसकी गाड़ी के साथ चलते-चलते श्रीकृष्ण चरित्र कथामृत पान करा रहे थे। अचानक एक स्थान पर बैल रुक गये तो गाड़ीवान ने उनमें दो-तीन सोटे जोर से जमाये। सोटों के डर से बैल जोर से भागने लगे। गाड़ी वाले को अब संत जी का ध्यान आया, उसने मुड़कर देखा तो आप मूर्च्छित होकर गिर पड़े थे। गाड़ीवान ने दौड़कर उन्हें उठाया और उसने देखा कि बैलों के मारे गये सोटों के निशान केवलराम जी के शरीर पर स्पष्ट दिखाई पड़ रहे थे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वैद्य की आवश्यकता

महात्मा ईसा अपनी दयालुता के कारण सदा दुःखी और पापी कहे जाने वाले अपराधियों से हर समय घिरे रहते थे। यहाँ तक कि जब वे भोजन किया करते थे, तब भी बहुत-से पतित लोग उन्हें घेरे रहते थे।

एक बार वे बहुत-से नीच जाति के और पापी, पतितों के साथ बैठे भोजन कर रहे थे। यह देखकर एक विरोधी ने उनके शिष्य से कहा—"तेरे गुरु ! जिसे तुम लोग भगवान का बेटा और पवित्र आत्मा बतलाते हो, इस प्रकार नीचों और पतितों से प्रेम करता है, उनके साथ बैठा भोजन पा रहा है। फिर भला तुम लोग किस प्रकार आशा कर सकते हो कि हम लोग उसका आदर करें और उनकी बात मानें ?"

महात्मा ईसा ने विरोधी की बात सुन ली और विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया—"भाई वैद्य की आवश्यकता रोगियों को होती है, निरोगों को नहीं। धर्म की आवश्यकता पापियों को होती है, उनको नहीं जो पहले से ही अपने को धार्मिक समझते हैं। मैं धर्मात्माओं का नहीं पापियों का हित करना चाहता हूँ। उन्हें मेरी बहुत जरूरत है।"

कृतज्ञता प्रकाश

कुछ ग्रामीण एक साँप को मार रहे थे तभी संत एकनाथ उधर आ पहुँचे। सन्त एकनाथ बोले, "भाइयो इसे क्यों पीट रहे हो ? कर्मवश सर्प होने से क्या ? यह भी आत्मा ही तो है।" एक युवक ने कहा—"आत्मा है, तो फिर काटता क्यों है ?" एकनाथ ने कहा—"तुम लोग सर्प को न मारो तो वही तुम्हें क्यों काटेगा ? लोगों ने एकनाथ के कहने से सर्प को छोड़ दिया।

कुछ दिन पीछे एकनाथ अँधेरे में स्नान करने जा रहे थे। तभी उन्हें सामने फन फैलाए खड़ा सर्प दिखाई दिया, उन्होंने उसे बहुत हटाना चाहा पर वह टस से मस न हुआ। एकनाथ मुड़कर दूसरे घाट पर स्नान करने चले गये। उजाला होने पर लौटे तो देखा बरसात के कारण वहाँ एक गहरा खड्ड हो गया है, सर्प ने न बचाया होता तो एकनाथ उसमें कब के समा चुके होते।

सच्चा गीतार्थी

चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथपुरी से दक्षिण की यात्रा पर निकले थे। रास्ते में एक सरोवर के किनारे पर एक ब्राह्मण को गीता पाठ करते देखा। वह गीता के पाठ में इतना तल्लीन था कि उसे अपने शरीर की सुध नहीं थी उसका हृदय गद्‌गद् हो रहा था और नेत्रों से आँसुओं की धारा बह रही थी। पाठ समाप्त होने पर चैतन्य ने पूछा, "तुम श्लोकों का अशुद्ध उच्चारण कर रहे थे, तुम्हें इसका अर्थ कहाँ मालूम होगा ?" उसने उत्तर दिया—"भगवन् ! मैं कहाँ जानूँ संस्कृत ? मैं तो जब पढ़ने बैठता हूँ तो ऐसा लगता है कि कुरुक्षेत्र के मैदान में दोनों ओर बड़ी भारी सेना सजी हुई खड़ी है। जहाँ बीच में एक रथ पर भगवान कृष्ण अर्जुन से कुछ कह रहे हैं। उन्हें देखकर रुलाई आ रही है।" चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "भैया तुम्ही ने गीता का सच्चा अर्थ जाना है।" और उसे अपने गले लगा लिया।

तलाश

एक मनुष्य को संसार से वैराग्य हुआ, उसने कहा—"यह जगत् मिथ्या है, माया है अब मैं इसका परित्याग करके सच्ची शान्ति की तलाश करूँगा।" आधी रात बीती और वैराग्य लेने वाले ने कहा, "अब वह घड़ी आ गई। मुझे परमात्मा की खोज के लिये निकल पड़ना चाहिये ?"

एक बार पार्श्व में लेटी हुई धर्मपत्नी और दुधमुहे बच्चे की ओर सिर उठाकर देखा उसने। बड़ी सौम्य आकृतियाँ थीं दोनों। वैरागी का मन पिघल उठा। उसने कहा—"कौन हो तुम जो मुझे माया में बाँधते हो ?" भगवान ने धीमे से कहा—"मैं तुम्हारा भगवान !" लेकिन मनुष्य ने उनकी आवाज नहीं सुनी। उसने फिर कहा कौन है ये जिनके लिये मैं आत्म-सुख, आत्म-शान्ति खोऊँ ?"

एक और धीमी आवाज आई—बाबरे, यही भगवान हैं इन्हें छोड़कर तू नकली भगवान की खोज से मत भाग। बच्चा एकाएक चीखकर रो पड़ा। कोई सपना देखा था उसने। माँ ने बच्चे को छाती से लगाकर कहा—"मेरे जीवन आ, मेरी छाती में जो ममत्व है वह तुझे शांति देगा।" बच्चा माँ से लिपटकर सो गया और आदमी अनसुना करके चल दिया। भगवान ने कहा—"कैसा मूर्ख है यह मेरा सेवक, मुझे तजकर मेरी तलाश में भटकने जा रहा है।"

नशा एक बला

मुकदमे के लिये कचहरी में हाजिर होने के लिये दो शराबी घर से निकले। शराब की धुन में बोतल झोले में रखली पर कागज-पत्र घर में ही भूल गये।

घोड़े पर बैठकर चल पड़े। मध्याह्न भोजन के समय दोनों ने शराब भी पी। नशे में धुत, दोनों एक-दूसरे से पूछते तो रहे कि कोई चीज भूल तो नहीं रहे, पर यह दोनों में से किसी को भी याद न रहा कि घोड़े पर चढ़कर आये थे, अब वे पैदल यात्रा कर रहे थे। रात जहाँ टिके, वहाँ फिर शराब पी। थोड़ी देर में चन्द्रमा निकला तो एक बोला—"अरे यार ! सूरज निकल आया चलो जल्दी करो नहीं तो कचहरी लग जायेगी।" बजाय शहर की ओर चलने के वे गाँव की ओर चल पड़े और सबेरा होते-होते जहाँ से चले वहीं फिर जा पहुँचे। अनुपस्थिति में मुकदमा खारिज हो गया।

परोपकारी को कहीं भी भय नहीं

एक गीदड़ एक दिन गड्ढे में गिर गया। बहुत उछल-कूद की, किन्तु बाहर न निकल सका। अन्त में हताश होकर सोचने लगा कि अब इसी गड्ढे में मेरा अन्त हो जाना है। तभी एक बकरी को मिमियाते सुना। तत्काल ही गीदड़ की कुटिलता जाग उठी। वह बकरी से बोला—"बहिन बकरी ! यहाँ अन्दर खूब हरी-हरी घास और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मीठा-मीठा पानी है। आओ, जी भरकर खाओ और पानी पियो।" बकरी उसकी लुभावनी बातों में आकर गड्ढे में कूद गई।

चालाक गीदड़ बकरी की पीठ पर चढ़कर गड्ढे से बाहर कूद गया और हँसकर बोला—"तुम बड़ी बेवकूफ हो, मेरी जगह खुद मरने गड्ढे में आ गई हो।" बकरी बड़े सरल भाव से बोली—"गीदड़ भाई, मैं परोपकार में प्राण दे देना पुण्य समझती हूँ। मेरी उपयोगितावश कोई-न-कोई मुझे निकाल ही लेगा किन्तु तुम निरुपयोगी को कोई न निकालता। परोपकारी को कहीं भी भय नहीं होता है।"

अपरोपकारी का सार निष्फल ही चला जाता है

प्यासा मनुष्य अथाह समुद्र की ओर यह सोचकर दौड़ा कि महासागर से जी भर अपनी प्यास बुझाऊँगा ! वह किनारे पहुँचा और अंजलि भरकर जल मुँह में डाला किन्तु तत्काल ही बाहर निकाल दिया।

प्यासा असमंजस में पड़कर सोचने लगा कि सरिता सागर से छोटी है, किन्तु उसका पानी मीठा है। सागर सरिता से बहुत बड़ा है, पर उसका पानी खारी है।

कुछ देर बाद उसे समुद्र पार से आती एक आवाज सुनाई दी—"सरिता जो पाती है, उसका अधिकांश बाँटती रहती है किन्तु सागर सब कुछ अपने में ही भरे रखता है। दूसरों के काम न आने वाले स्वार्थी का सार यों ही निःसार होकर निष्फल चला जाता है।" आदमी समुद्र के तट से प्यासा लौटने के साथ एक बहुमूल्य ज्ञान भी लेता गया, जिसने उसकी आत्मा तक को तृप्त कर दिया।

समदर्शी भगवान के जात नहीं

आखेट की खोज में भटकता विश्वबन्धु शवर नील पर्वत की एक गुफा में जा पहुँचा। वहाँ भगवान नील-माधव की मूर्ति के दर्शन पाते ही शवर के हृदय में भक्ति-भावना का स्रोत उमड़ पड़ा। वह हिंसा छोड़कर भगवान नील की रात-दिन पूजा करने लगा।

उन्हीं दिनों मालव राज इन्द्र प्रद्युम्न किसी अपरिचित तीर्थ में मन्दिर बनवाना चाहते थे। उन्होंने स्थान की खोज के लिये अपने मन्त्री विद्यापति को भेजा। विद्यापति ने वापस जाकर राजा को नील पर्वत पर शवर विश्वबन्धु द्वारा पूजित भगवान नील माधव की मूर्ति की सूचना दी। राजा तुरन्त मन्दिर बनवाने के लिये चल दिया।

विद्यापति राजा इन्द्र प्रद्युम्न को उक्त गुफा के पास लाया, किन्तु आश्चर्य, मूर्ति वहाँ नहीं थी। राजा ने क्रोधित होकर कहा, "विद्यापति तुमने व्यर्थ ही कष्ट दिया है। यहाँ तो मूर्ति नहीं है।"

विद्यापति ने कहा—"महाराज मैंने अपनी आँखों से इसी गुफा में भगवान नील माधव की मूर्ति देखी है। अवश्य ही कोई ऐसी बात हुई है, जिससे भगवान की मूर्ति अन्तर्धान हो गई है। राजन् ! आते समय आप क्या भावना करते आये हैं ?" राजा इन्द्र प्रद्युम्न ने बताया कि मैं केवल इतना ही सोचता आया हूँ कि अपने स्पर्श से भगवान की मूर्ति को अपवित्र करने वाले शवर को सबसे पहले भगा दूँगा और कोई अच्छा पुजारी नियुक्त कर दूँगा और तब मन्दिर बनवाने का आयोजन करूँगा। विद्यापति ने बड़ी नम्रता से कहा कि आपकी इसी भेद भावना के कारण भगवान रुष्ट होकर चले गये हैं। समदर्शी भगवान जात-पाँत नहीं हृदय की सच्ची निष्ठा ही देखते हैं।

राजा ने अपनी भूल सुधारी। भगवान से क्षमा माँगी उनकी स्तुति की। उसी स्थान पर जगन्नाथ जी के प्रसिद्ध मन्दिर की स्थापना कराई।

अब तू मेरी सच्ची बेटी है

हजरत मोहम्मद एक दिन फातिमा से मिलने उसके घर गये। वहाँ जाकर देखा उनकी बेटी हाथों में चाँदी के मोटे-मोटे कंगन पहने है और दरवाजों पर रेशमी परदे लहरा रहे हैं। मोहम्मद साहब बिना कुछ बोले उल्टे पाँव घर से वापस चल दिये और मस्जिद में जाकर रोने लगे।

फातिमा कुछ न समझ सकी। उसने लड़के को दौड़ाया कि देख तो तेरे नाना घर आकर एकाएक क्यों चले गये ?

लड़के ने जाकर देखा कि नाना मस्जिद में बैठे रो रहे हैं। उसने घर से एकाएक वापस चले आने और इस प्रकार रोने का कारण पूछा। मोहम्मद साहब ने कहा—"यहाँ गरीब भूख से परेशान होकर मस्जिद के सामने रो रहे हैं और वहाँ मेरी बेटी रेशमी परदों के बीच चाँदी के कड़े पहने मौज कर रही है—यह देखकर मुझे बड़ी शर्म आई और मैं मस्जिद में वापस चला आया।"

लड़के ने जाकर अपनी माँ को सारी बातें बतलाईं। फातिमा ने रेशमी परदों में चाँदी के कड़े बाँधकर पिता के पास भिजवा दिये। मोहम्मद साहब ने उन्हें बेचकर गरीबों को रोटी बाँटी और खुशी से जाकर फातिमा से मिले और बोले—"अब तू मेरी सच्ची बेटी है।"

कुछ तो कर यों ही मत मर

रायगढ़ के राजा धीरज के अनेक शत्रु हो गये। एक रात शत्रुओं ने पहरेदारों को अपनी ओर मिला लिया और महल में जाकर राजा को दवा सुँघाकर बेहोश कर दिया। उसके बाद उन्होंने राजा के हाथ-पाँव बाँधकर एक पहाड़ की गुफा में ले जाकर बन्द कर दिया।

राजा को जब होश आया तो अपनी दशा देखकर घबरा उठा। उस अँधेरी गुफा में उसे कुछ करते-धरते न बना। तभी उसे अपनी माता का बताया हुआ मंत्र याद आ गया, "कुछ कर, कुछ कर, कुछ कर"। राजा की निराशा दूर हो गई और उसने पूरी शक्ति लगाकर हाथ पैरों की ढोरी तोड़ डाली। तभी अँधेरे में उसका पैर साँप पर पड़ गया जिसने उसे काट लिया। राजा फिर घबराया, किन्तु फिर तत्काल ही उसे वही मंत्र "कुछ कर, कुछ कर, कुछ कर" याद आ गया। उसने तत्काल कमर से कटार निकालकर साँप के काटे स्थान को चीर दिया। खून की धार बह उठने से वह फिर घबरा उठा। लेकिन फिर उसी "कुछ कर, कुछ कर, कुछ कर" के मन्त्र से प्रेरणा पाकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपना उत्तरीय फाड़कर घाव पर पट्टी बाँध दी, जिससे रक्त बहना बन्द हो गया।

इतनी बाधाएँ पार हो जाने के बाद उसे उस अँधेरी गुफा से निकलने की चिन्ता होने लगी, साथ ही भूख-प्यास भी व्याकुल कर ही रही थी। उसने अँधेरे से निकलने का कोई उपाय न देखा तो पुनः निराश होकर सोचने लगा कि अब तो यहीं पर बन्द रह कर भूख-प्यास से तड़प-तड़प कर मरना होगा। वह उदास होकर बैठा ही था कि पुनः उसे माँ का बताया हुआ मन्त्र 'कुछ कर, कुछ कर, कुछ कर' याद आ गया और द्वार के पास आकर गुफा के मुख पर लगे पत्थर को धक्का देने लगा। बहुत बार प्राणपण से जोर लगाने पर अन्ततः पत्थर लुढ़क गया और राजा गुफा से निकलकर अपने महल में वापस आ गया।

परमात्मा का पल्ला मत छोड़ो

एक सन्त निश्चित दिन अपनी गुफा से बाहर निकलते और जिससे उनका स्पर्श हो जाता वही रोग मुक्त हो जाता था। एक भक्त यह सुनकर वहाँ पहुँचा और जिस समय महात्मा गुफा से निकलकर आरोग्यता दान करते हुए गुफा में घुसने को थे, तभी भक्त ने उनकी चादर का कोना पकड़ लिया और बोला कि आपने सबका रोग दूर किया, मेरे भी मन का रोग दूर कीजिये।

महात्मा हड़बड़ाकर कहने लगे—"मुझे जल्दी छोड़ो। वह ईश्वर देख रहा है कि तुम उसका पल्ला छोड़कर दूसरे का पल्ला पकड़ना चाहते हो। मुक्ति दाता वही है उसी का पल्ला पकड़। महात्मा चादर छुड़ाकर गुफा में घुस गये और ईश्वर भक्ति में लीन हो गये।"

आत्म-विजय

एक था कुत्ता, सड़ गये थे कान जिसके। कई दरवाजों में घूमा, जहाँ भी गया वहाँ दुतकारा गया। वह दिन भर घूमा रोटी के लिये, कौर मिले दो, मार और फटकार का कोई ठिकाना नहीं था। इन्द्रियों की लिप्सा में दर-दर भटकता हुआ अज्ञानी व्यक्ति भी इसी प्रकार सर्वत्र तिरस्कार पाता है।

एक था हाथी, जंगल में मस्त घूमा करता था, न कोई अभाव था, न दुःख। एक दिन एक हाथिन की आसक्ति में आ गया। वासना-भूत हाथी को हथिनी उधर ले गई जहाँ शिकारी जाल बिछाये बैठे थे। हाथी पकड़ लिया गया। न रही मस्ती, न रहा वह मुक्त आनन्द। वासना में फँसा अज्ञानी मनुष्य भी उसी प्रकार अपने शाश्वत आनन्द से भटककर दुःखों के जाल में जा गिरता है।

एक था कछुआ, कुछ शिकारियों ने उसे दूर से देखा और आक्रमण के लिये दौड़े। कछुआ समझदार था, ज्ञानी था अंग-प्रत्यंगों को समेटकर खाल के भीतर छिपा रहा। शिकारी इधर-उधर ढूँढ़ते ही रहे। कछुये की तरह जो ज्ञानी-जन बाहरी मोह और आकर्षणों से बचकर आत्मा का अनुसरण करते हैं, उनकी सब प्रकार रक्षा होती है।

भगवान का क्या दोष

बेटे ने कहा—"पिता जी हम भगवान का भजन नहीं करेंगे। भगवान पक्षपाती है, उसने किसी को बहुत धन दिया, किसी को बहुत थोड़ा। ऐसे भेदभाव करने वाले की याद हम क्यों करें ?" उस समय पिता ने कोई उत्तर नहीं दिया। दूसरे दिन पिता ने कहा—"बेटे आज घर के सामने बाग लगायेंगे।" पिता-पुत्र दोनों उसमें जुट गये, पर बेटा असमंजस में था कि पिताजी ने उत्तर क्यों नहीं दिया ?

एक फल नीम का बोया गया दूसरा आम का। दो फुट के फासले पर दोनों पेड़ बढ़ने लगे। पेड़ बड़े हुए, कुछ दिन में फल आये, एक का कड़ुवा दूसरे का मीठा। पिता ने कहा—"बेटा एक ही धरती के दो बेटों ने एक ही स्थान पर समान सुविधाएँ पाईं, पर यह विषमता कहाँ से आ गई ? बेटे ने समझा लिया कि यह प्रकृति-गुण है कि जो जैसा चाहता है अपनी सृष्टि बना लेता है, परमात्मा उसके लिये दोषी नहीं।

निर्भीकता

मूसा किसी गाँव की यात्रा कर रहे थे। एक स्थान पर उन्हें झोंपड़ी में कुछ आवाज-सी सुनाई दी। रुककर देखा तो साँप फुंकार रहा था। मूसा भय से काँपने लगे, सांस जोर-जोर से चलने लगी, दम फूलने लगा, बुद्धि ने जवाब दे दिया, अब क्या करना चाहिये।

तभी एक आवाज आई, "मूसा ! डरो मत उठो, साहस करो और साँप को जकड़कर पकड़ लो।" मूसा ने थोड़ा साहस बाँधा, पाँव आगे बढ़ाया और साँप को पकड़ लिया। जब मूसा ने साँप को पकड़ा तो वह साँप सोने का डण्डा बन गया। निष्कर्ष यह है कि भय का, साहस से, धैर्य से सामना करना ही सफलता है।

पात्रता की परीक्षा

एक महात्मा के पास तीन मित्र गुरु-दीक्षा लेने गये। तीनों ने बड़े नम्र भाव से प्रणाम करके अपनी जिज्ञासा प्रकट की। महात्मा ने शिष्य बनाने से पूर्व पात्रता की परीक्षा कर लेने के मन्तव्य से पूछा—"बताओ कान और आँख में कितना अन्तर है ?"

एक ने उत्तर दिया—"केवल पाँच अंगुल का, भगवन् ?" महात्मा ने उसे एक ओर खड़ा करके दूसरे से उत्तर के लिये कहा। दूसरे ने उत्तर दिया—"महाराज आँख देखती है और कान सुनते हैं, इसलिये किसी बात की प्रामाणिकता के विषय में आँख का महत्त्व अधिक है।" महात्मा ने उसको भी एक ओर खड़ा करके तीसरे से उत्तर देने के लिये कहा। तीसरे ने निवेदन किया—"भगवन् ! कान का महत्त्व आँख से अधिक है। आँख केवल लौकिक एवं दृश्यमान जगत् को ही देख पाती है, किन्तु कान को पारलौकिक एवं पारमार्थिक विषय का पान करने का सौभाग्य प्राप्त है।" महात्मा ने तीसरे को अपने पास रोक लिया। पहले दोनों को कर्म एवं उपासना का उपदेश देकर अपनी विचारणा शक्ति बढ़ाने के लिये विदा कर दिया, क्योंकि उनके सोचने की सीमा ब्रह्म तत्व की परिधि में अभी प्रवेश कर सकने योग्य, सूक्ष्म बनी न थी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पक्षियों की रक्षा

कौरवों और पाण्डवों की सेनाएँ आमने-सामने आ गईं। शंख बजने लगे, घोड़े खुरों से जमीन खुँदने और हाथी चिंघाड़ने लगे। कुरुक्षेत्र के समरांगण में सर्वनाश की तैयारी पूरी हो चुकी थी। ठीक तभी एक टिटहरी का आर्तनाद गूँज उठा।

दोनों शिविरों के मध्य एक छोटी-सी टोकरी थी, उसी की खोह में उसका घोंसला था। उसकी आँखें अपने बच्चों की ओर लगी थीं और कान धनुषों की टंकार पर। उसे चिन्ता स्व-जीवन की नहीं, अपने बच्चों की थी और निःसहाय पुकार के रूप में आकुल मातृत्व सारे घोंसले में बिखर गया था। कृष्ण के कानों तक यह पुकार पहुँची। असंख्य वीरों की बलि और युद्ध के भयंकर कोलाहल के बीच भी जिनकी बाँसुरी के स्वर कभी विचलित नहीं हुए थे, उन्हीं कृष्ण को इस टिटहरी के स्वर ने झकझोर डाला। वे दौड़े गये। एक पत्थर उठाकर घोंसले के द्वार पर सहेज दिया और वापस आकर अपना स्थान ग्रहण करते हुए सेनापति से भी कहा, "महावीर भीम, अब तुम युद्ध का बिगुल बजा सकते हो।"

भगवान का प्यार

शाम हुई मनसुख घर लौटे। आज भगवान कृष्ण गायें चराने नहीं गये हुए थे। उनका जन्म-दिवसोत्सव था। घर में पूजा थी, यशोदा ने उन्हें घर में ही रोक लिया था।

गोप-बालकों ने पूछा—"मनसुख तुम जो अनन्य भक्त और सखा हो गोपाल के, फिर आज कृष्ण ने तुम्हें प्रसाद के लिये नहीं पूछा। तुम तो कहते थे गोपाल मेरे बिना अन्न का ग्रास भी मुँह में नहीं डालते।"

"हाँ-हाँ ग्वालो ! ऐसा ही है, तुम्हें विश्वास कहाँ होगा। कन्हाई तो आज भी मेरे पास आये थे। आज तो उन्होंने मुझे अपने हाथ से ही खिलाया था।"

"यह झूठ है" यह कहकर गोप बालक कृष्ण को पकड़ लाये और कहने लगे, "लो मनसुख ! अब तो कृष्ण सामने खड़े हैं, पूछले इन्होंने तो आज देहलीज के बाहर पाँव तक नहीं रखा।"

कृष्ण ने गोप-बालकों का समर्थन किया और कहा—"हाँ-हाँ मनसुख ! तुम्हें भ्रम हुआ होगा, मैं तो आज बाहर निकला तक नहीं।"

मनसुख ने मुसकराते हुए कहा—"धन्य हो नटवर ! तुम्हारी लीलाएँ अगाध हैं, पर क्या आप बता सकते हैं कि यदि आज आप मेरे पास नहीं आये, तो आपका यह पीताम्बर मेरे पास कहाँ से आ गया। देख लो न अभी भी मिष्ठान्न का कुछ अंश इसमें बँधा हुआ है।"

ग्वालों ने पीताम्बर खोलकर देखा—वही भोग, वही मिष्ठान्न जो पूजा गृह में था, पीताम्बर में बँधा था। मनसुख को वह कौन देने गया किसको पता था ?

एक निश्चय—एक अमल

एक लड़के ने एक बहुत धनी आदमी को देखकर धनवान बनने का निश्चय किया। कई दिन तक वह कमाई में लगा रहा और कुछ पैसे भी कमा लिये। इसी बीच उसकी भेंट एक विद्वान् से हुई। अब उसने विद्वान् बनने का निश्चय किया और दूसरे ही दिन से कमाई-धमाई छोड़कर पढ़ने में लग गया। अभी अक्षर अभ्यास ही सीख पाया था कि उसकी भेंट एक संगीतज्ञ से हुई। उसे संगीत में अधिक आकर्षण दिखाई दिया, अतः उस दिन से पढ़ाई बन्द कर दी और संगीत सीखने लगा।

काफी उम्र बीत गई, न वह धनी हो सका न विद्वान्। न संगीत सीख पाया न नेता बन सका। तब उसे बड़ा दुःख हुआ। एक दिन उसकी एक महात्मा से भेंट हुई। उसने अपने दुःख का कारण बताया। महात्मा मुसकरा कर बोले—"बेटा ! दुनिया बड़ी चिकनी है जहाँ जाओगे कोई न कोई आकर्षण दिखाई देगा। एक निश्चय कर लो और फिर जीते-जी उसी पर अमल करते रहो, तो तुम्हारी उन्नति अवश्य हो जायेगी। बार-बार रुचि बदलते रहने से कोई भी उन्नति न कर पाओगे।" युवक समझ गया और अपना एक उद्देश्य निश्चित कर उसी का अभ्यास करने लगा।

सधन्यवाद वापस

भगवान बुद्ध परिव्राजन करते हुये एक ब्राह्मण के घर ठहरे। जब ब्राह्मण को मालूम हुआ कि वह बुद्ध हैं, तो उसने जी भरकर गालियाँ दी, अपशब्द कहे और तुरन्त निकल जाने को कहा।

बुद्ध देर तक सुनते रहे। जब उन सज्जन ने बोलना बन्द किया तो उन्होंने पूछा—"द्विजवर ! आपके यहाँ कोई अतिथि आते होंगे तो आप उनका सुन्दर भोजन और मिष्ठान्न से स्वागत करते होंगे ?" "इसमें क्या शक ?" उन्होंने उत्तर दिया और यदि किसी कारणवश मेहमान उसे स्वीकार न करें, तो आप उन पकवानों को फेंक देते होंगे ?

"फेंक क्यों देते हैं, हम स्वयं ग्रहण कर लेते"—उन्होंने विश्वासपूर्वक उत्तर दिया।

"तो हम आपकी यह गालियों की भेंट स्वीकार नहीं करते, अपनी वस्तु आप ग्रहण करिये।" यह कहकर बुद्ध मुसकराते हुये वहाँ से चल पड़े।

निष्ठा की भूख

शौरपुच्छ नामक बनिक ने एक बार भगवान बुद्ध से कहा—"भगवन् मेरी सेवा स्वीकार करें। मेरे पास १ लाख स्वर्ण मुद्राएँ हैं, वह सब आपके काम आएँ।" बुद्ध कुछ न बोले चुपचाप चले गए ?

कुछ दिन बाद वह पुनः तथागत की सेवा में उपस्थित हुआ और कहने लगा—"देव ! यह आभूषण और वस्त्र ले लें दुःखियों के काम आयेंगे मेरे पास अभी बहुत-सा द्रव्य शेष है।" बुद्ध बिना कुछ कहे वहाँ से उठ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गये। शौर-पुच्छ बड़ा दुःखी था कि वह गुरुदेव को किस तरह प्रसन्न करे ?

वैशाली में उस दिन महान् धर्म-सम्मेलन था, हजारों व्यक्ति आये थे। बड़ी व्यवस्था जुटानी थी। सैकड़ों शिष्य और भिक्षु काम में लगे थे। आज शौरपुच्छ ने किसी से कुछ न पूछा—काम में जुट गया। रात बीत गई सब लोग चले गये, पर शौरपुच्छ बेसुध कार्य-निमग्न रहा। बुद्ध उसके पास पहुँचे और बोले—शौरपुच्छ ! तुमने प्रसाद पाया या नहीं ? शौर पुच्छ का गला रुँध गया। भाव-विभोर होकर उसने तथागत को साष्टांग प्रणाम किया। बुद्ध ने कहा—"वत्स परमात्मा किसी से धन और सम्पत्ति नहीं चाहता, वह तो निष्ठा का भूखा है। लोगों को निष्ठाओं से ही वह रमण किया करता है आज तुमने स्वयं यह जान लिया।"

आत्मीय लगाव

भक्तराज जयदेव की धर्मपत्नी का राजभवन में बड़ा सम्मान था। एक बार उन्होंने रानी से कहा कि पति के मरने पर उसकी देह के साथ सती होना निम्न श्रेणी का पतिव्रत धर्म है। सच्ची पतिव्रता तो वे हैं जो पति का मृत्यु सम्वाद मिलते ही प्राण त्याग देती हैं।

रानी को शंका हुई। एक दिन राजा के साथ जयदेव भी आखेट स्थल पर गये थे। अवसर पाकर रानी ने कहा कि 'पण्डित जी को वन में एक शेर खा गया।' जयदेव की स्त्री श्रीकृष्ण कहती हुई धड़ाम से भूमिगत हो गई। उनके मरने का रानी को बड़ा दुःख हुआ। बहुत देर तक वे अपने झूठ बोलने पर पछताती रहीं।

राजा के साथ जयदेव लौटे तो उन्हें पूर्ण समाचार दिया गया। जयदेव ने कहा, "रानी माँ से कहो कि वे घबराएँ नहीं, मेरे मृत्यु सम्वाद से उनके प्राण गये हैं, जो मेरे जीवित लौटने पर लौट भी आयेंगे।" भक्त आज अपनी पत्नी की मृत देह के पास हरिकीर्तन में विह्वल हो गये। एक क्षण तक उन्हें अपनी पत्नी की मृत्यु का भी ध्यान न रहा ? 'और उनकी पत्नी की देह में चेतना लौट आई।'

सत्य को मजबूती से पकड़ो

भगवान बुद्ध जब मरने लगे तब उन्होंने अपने शिष्यों को बुलाकर अन्तिम उपदेश दिया 'तुम लोग अपने-अपने ऊपर निर्भर रहो। किसी दूसरे की सहायता की आशा न करो। अपने भीतर से ही अपने लिए प्रकाश उत्पन्न करो। सत्य की ही शरण में जाओ और उसे मजबूत हाथों से पकड़े रहो।'

पश्चात्ताप

बौद्ध धर्म की नास्तिकवादी विचारधारा का खण्डन करने के लिए कुमारिल भट्ट ने प्रतिज्ञा की और उसे पूरा करने के लिए उन्होंने तक्षशिला के विश्वविद्यालय में बौद्ध धर्म का गहन अध्ययन पूरा किया। उन दिनों की प्रथा के अनुसार छात्रों को आजीवन बौद्ध धर्म के प्रति आस्थागत रहने की प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी तभी उन्हें विद्यालय में प्रवेश मिलता था। कुमारिल ने झूठी प्रतिज्ञा ली और शिक्षा समाप्त होते ही बौद्ध मत का खण्डन और वैदिक धर्म का प्रसार आरम्भ कर दिया।

अपने प्रयत्न में उन्हें सफलता भी बहुत मिली। शास्त्रार्थ की धूम मचाकर, उन्होंने शून्यवाद की निस्सारता सिद्ध करके लड़खड़ाती हुई वैदिक मान्यताएँ फिर मजबूत बनायीं।

कार्य में सफलता मिली पर कुमारिल का अन्तःकरण विक्षुब्ध ही रहा। गुरु के सामने की हुई प्रतिज्ञा एवं उन्हें दिलाये हुए विश्वास का घात करने के पाप से उनकी आत्मा हर घड़ी दुःखी रहने लगी। अन्त में उन्होंने इस पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए अग्नि में जीवित जल जाने का निश्चय किया। इस प्रायश्चित्त के करुण दृश्य को देखने देश भर के अगणित विद्वान पहुँचे, उन्हीं में आदि शंकराचार्य भी थे। उन्होंने कुमारिल को प्रायश्चित्त न करने के लिए समझाते हुए कहा—'आपने तो जन हित के लिए वैसा किया था फिर प्रायश्चित्त क्यों करें ?' इस पर कुमारिल ने कहा—"अच्छा काम भी अच्छे मार्ग से ही किया जाना चाहिये, कुमार्ग पर चलकर श्रेष्ठ काम करने की परम्परा गलत है। मैंने आपत्ति धर्म के रूप में वह छल किया पर उसकी परम्परा आरम्भ नहीं करना चाहता। दूसरे लोग मेरा अनुकरण करते हुए अनैतिक मार्ग पर चलते हुए अच्छे उद्देश्य के लिए प्रयत्न करने लगेंगे, तो इससे धर्म और सदाचार ही नष्ट होगा और तब प्राप्त हुए लाभ का कोई मूल्य न रह जायगा। अतएव सदाचार की सर्वोत्कृष्टता प्रतिपादित करने के लिए मेरा प्रायश्चित्त करना ही उचित है।"

कुमारिल प्रायश्चित्त की अग्नि में जल गये, उनकी प्रतिपादित आस्था सदा अमर रहेगी।

गधों का सत्कार

किसी समय एक जंगल में गधे ही गधे रहते थे। पूरी आजादी से रहते, भर पेट खाते-पीते और मौज करते।

एक लोमड़ी को मजाक सूझा। उसने मुँह लटकाकर गधों से कहा—"मैं चिन्ता से मरी जा रही हूँ और तुम इस तरह मौज कर रहे हो। पता नहीं कितना बड़ा संकट सिर पर आ पहुँचा है ?"

गधों ने कहा—"दीदी, भला क्या हुआ, बात तो बताओ।" लोमड़ी ने कहा—"मैं अपने कानों से सुनकर और आँखों से देखकर आई हूँ। मछलियों ने एक सेना बना ली है और वे अब तुम्हारे ऊपर चढ़ाई करने ही वाली हैं। उनके सामने तुम्हारा ठहर सकना कैसे संभव होगा ?"

गधे असमंजस में पड़ गये। उन्होंने सोचा व्यर्थ जान गँवाने के क्या लाभ ? चलो कहीं अन्यत्र चलो। जंगल छोड़कर वे गाँव की ओर चल पड़े।

इस प्रकार घबराये हुए गधों को देखकर गाँव के धोबी ने उनका खूब सत्कार किया। अपने छप्पर में आश्रय दिया और गले में रस्सी डालकर खूँटे में बाँधते हुए कहा—"डरने की जरा भी जरूरत नहीं। मछलियों से मैं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भुगत लूँगा। तुम मेरे बाड़े में निर्भयतापूर्वक रहो। केवल मेरा थोड़ा-सा बोझ ढोना पड़ा करेगा।"

गधों की घबराहट तो दूर हुई, पर उसकी कीमत महँगी चुकानी पड़ी।

नासमझ को समझ दो, वरदान नहीं

एक राजा वन भ्रमण के लिए गया। रास्ता भूल जाने पर भूख-प्यास से पीड़ित वह एक वनवासी की झोंपड़ी पर पहुँचा। वहाँ उसे आतिथ्य मिला तो जान बची।

चलते समय राजा ने उस वनवासी से कहा—"हम इस राज्य के शासक हैं। तुम्हारी सज्जनता से प्रभावित होकर अमुक नगर का चंदन बाग तुम्हें प्रदान करते हैं। उसके द्वारा जीवन आनंदमय बीतेगा।"

वनवासी उस परवाने को लेकर नगर अधिकारी के पास गया और बहुमूल्य चंदन का उपवन उसे प्राप्त हो गया। चंदन का क्या महत्त्व है और उससे किस प्रकार लाभ उठाया जा सकता है, उसकी जानकारी न होने से वनवासी चंदन के वृक्ष काटकर उनका कोयला बनाकर शहर में बेचने लगा। इस प्रकार किसी तरह उसके गुजारे की व्यवस्था चलने लगी।

धीरे-धीरे सभी वृक्ष समाप्त हो गये। एक अंतिम पेड़ बचा। वर्षा होने के कारण कोयला न बन सका, तो उसने लकड़ी बेचने का निश्चय किया। लकड़ी का गठ्ठा लेकर जब बाजार में पहुँचा तो सुगन्ध से प्रभावित लोगों ने उसका भारी मूल्य चुकाया। आश्चर्यचकित वनवासी ने इसका कारण पूछा तो लोगों ने कहा—"यह चंदन काष्ठ है। बहुत मूल्यवान है। यदि तुम्हारे पास ऐसी ही और लकड़ी हो, तो उसका प्रचुर मूल्य प्राप्त कर सकते हो।"

वनवासी अपनी नासमझी पर पश्चाताप करने लगा कि उसने इतना बड़ा बहुमूल्य चंदन वन कौड़ी मोल कोयले बनाकर बेच दिया। पछताते हुए नासमझ को सान्त्वना देते हुए एक विचारशील व्यक्ति ने कहा—"मित्र, पछताओ मत, यह सारी दुनिया तुम्हारी ही तरह नासमझ है। जीवन का एक-एक क्षण बहुमूल्य है पर लोग उसे वासना और तृष्णाओं के बदले कौड़ी मोल में गँवाते हैं। तुम्हारे पास जो एक वृक्ष बचा है, उसी का सदुपयोग करलो तो कम नहीं।" बहुत गँवाकर भी अन्त में यदि कोई मनुष्य संभल जाता है, तो वह भी बुद्धिमान ही माना जाता है।

पुरुषार्थ की विजय

घर के सामने कई पीढ़ियों से खड़े पर्वत ने चुनौती दी—"है कोई माई का लाल जो मुझे अपने स्थान से हटा दे।" पर्वत की यह गर्वोक्ति किसी ने सुनी, किसी ने नहीं सुनी। किसी ने सुनकर भी अनसुनी कर दी, पर सामने वाले मकान में बैठे हुए एक बूढ़े किसान ने सोचा यदि पहाड़ इस स्थान से हट जाता तो कई बीघे जमीन खेती के लिए निकल आती, बालक-बच्चों का उदर-पोषण होता।

दाढ़ी पर हाथ फेरा, घर वालों को आवाज लगाई। पिता की आवाज सुनकर सब लड़के और पोते घर से बाहर निकल आये और बोले—"बाबा ! कहिए क्या आज्ञा है।" वृद्ध ने संकेत करते हुए कहा—"बच्चो, वह देखो पहाड़ दिखाई देता है न, कितनी जमीन घेरे खड़ा है, हम लोग प्रयत्न करें तो उसे अपने स्थान से हटा सकते हैं। एक-दो, चार दिन नहीं, जब तक वह हट न जाए चैन नहीं लें, तो निश्चित ही पहाड़ को खोदकर समतल भूमि निकाल सकते हैं ?"

वृद्ध की उत्साह भरी बातें बच्चों को भा गईं। उन्होंने कहा—"हाँ, हाँ बाबा हटा क्यों नहीं सकते ?" "तो फिर विलम्ब न करो चलो अभी जुट जाओ।" वृद्ध ने विजय की कामना करते हुए बच्चों से कहा। फावड़ा-कुदाली, लेकर सब जुट गये पर समस्या आ खड़ी हुई इतना बड़ा पहाड़ खोदकर डाला कहाँ जाये ? वृद्ध ने बच्चों को निरुत्साहित होते देखा तो फिर दौड़ा-दौड़ा आया और बोला—"थोड़ा चलना ही तो पड़ेगा पर समुद्र में तो हम ऐसे-ऐसे हजारों पहाड़ फेंक सकते हैं।" बच्चे अब दुगुने उत्साह से जुट गये और पहाड़ को खोदकर समुद्र में फेंक डाला।

सार्थक श्रद्धा

वाजश्रवा के शिष्यों—धर्मद और विराध में विवाद छिड़ गया। दोनों अपने-अपने को अधिक श्रद्धावान सिद्ध करना चाहते थे।

दोनों गुरु के समीप गये और निर्णय देने का आग्रह किया। गुरु ने कहा—"अपनी-अपनी श्रद्धा की व्याख्या करो तब निर्णय देंगे।"

धर्मद बोला—"देव, आश्रम जीवन में आपकी प्रत्येक बात मानी। उचित, अनुचित का भी ध्यान नहीं किया। आपकी किसी भी आज्ञा को तर्क या विवेक से परखने का प्रयत्न नहीं किया। क्या इससे बढ़कर भी कोई श्रद्धा हो सकती है ?"

गुरुदेव मुसकराये, अब उन्होंने विराध को संकेत किया। विराध बोला—"भगवान ! मुझे ज्ञान की प्रबल आकांक्षा है, अतएव आप पर श्रद्धा भी अगाध है, पर साथ ही यह भी परखना आवश्यक समझता हूँ कि जो कुछ कहा या बताया जाता है, वह सत्य से परे तो नहीं है। सत्य का मूल्य अधिक है, इसलिए सत्य को पाने के लिए सर्वस्व छोड़ने के लिए तैयार रहता हूँ।"

गुरु ने कहा—"धर्मद ! सत्य को परखकर धारण की जाने वाली श्रद्धा ही श्रेष्ठ है।"

निर्विकल्प समाधि

निर्विकल्प समाधि की साधना में जब सफलता न मिली तो महर्षि उद्दालक ने सोचा—असफल होकर जीना क्या ? निराहार रहकर मृत्यु का वरण करना चाहिये। उन्होंने अन्न-त्याग कर मरण की साधना आरम्भ कर दी।

जिस वट-वृक्ष के नीचे महर्षि का अनशन व्रत चल रहा था, उसके कोटर में वीरुध नामक एक बूढ़ा तोता रहता था। उसने ऋषि को सन्तप्त दृष्टि से देखा और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सजल नेत्रों से कहा—"वाचालता क्षमा करें तो एक बात पूछूँ ? उद्दालक ने आँखें खोलीं और तोते से बोले—"कहो क्या कहना है ?" वीरुध बोला—"शरीर तो मरण-धर्मा है ही, उसकी मृत्यु-योजना करने में क्या पुरुषार्थ हुआ ? मृत्यु का अमरता में बदलने के लिए ऐसा ही दृढ़ निश्चय किया जाय और इतना ही त्याग किया जाय तो क्या अमृत की प्राप्ति न होगी ?"

उद्दालक देर तक सोचते रहे। शुक की वाणी उनके अन्तस्तल तक प्रवेश करती गई। अनशन त्यागकर ऋषि ने अमृत की प्राप्ति के लिए प्रबल पुरुषार्थ आरम्भ किया तो निर्विकल्प समाधि भी उनके समीप आ उपस्थित हुई।

तेजस्वी ब्राह्मण

राजा जनक अपनी साज-सज्जा के साथ मिथिलापुरी के राजपथ पर होकर गुजर रहे थे। उनकी सुविधा के लिए सारा रास्ता पथिकों से शून्य बनाने में राज कर्मचारी लगे हुये थे। राजा की शोभा यात्रा निकल जाने तक यात्रियों को अपने आवश्यक काम छोड़कर, जहाँ-तहाँ रुका रहना पड़ रहा था।

अष्टावक्र को हटाया गया तो उन्होंने हटने से इनकार कर दिया और कहा प्रजाजनों के आवश्यक कार्यों को रोककर अपनी सुविधा का प्रबन्ध करना राजा के लिए उचित नहीं। राजा अनीति करे तो ब्राह्मण का कर्तव्य है कि उसे रोके और समझावें। सो आप राज्याधिकारी गण राजा तक मेरा संदेश पहुँचायें और कहें कि अष्टावक्र ने अनुपयुक्त आदेश मानने से इनकार कर दिया है। वे हटेंगे नहीं और राज-पथ पर ही चलेंगे।

राज्याधिकारी कुपित हुए और अष्टावक्र को बन्दी बनाकर राजा के पास ले पहुँचे। जनक ने सारा किस्सा सुना तो वे बहुत प्रभावित हुए और कहा—"इतने तेजस्वी ब्राह्मण जहाँ मौजूद हैं जो राजा तक को ताड़ना कर सकें, वह देश धन्य है। नीति और न्याय के पक्ष में आवाज उठाने वाले सत्पुरुषों के द्वारा ही जन-मानस की उत्कृष्टता स्थिर रह सकती है। ऐसे निर्भीक ब्राह्मण राष्ट्र की सच्ची सम्पत्ति हैं। उन्हें दंड नहीं सम्मान दिया जाना चाहिए।"

राजा जनक ने अष्टावक्र से क्षमा माँगी और कहा—"मूर्खतापूर्ण आज्ञा चाहे राजा की ही क्यों न हो तिरस्कार के योग्य है। आपकी निर्भीकता ने हमें अपनी गलती समझने और सुधारने का अवसर दिया। आज से आप राजगुरु रहेंगे और इसी निर्भीकता से सदा न्याय पक्ष का समर्थन करते रहने की कृपा करेंगे।"

अष्टावक्र ने वह प्रार्थना जनहित की दृष्टि से स्वीकार कर ली।

अन्नपूर्णा रोटियाँ

ईसा अपने शिष्यों के साथ धर्म प्रचार के लिए जा रहे थे। रास्ते में रेगिस्तान पड़ा, दूर तक कोई गाँव दिखाई न देता था। भोजन की समस्या उत्पन्न हुई तो ईसा ने कहा—"जो कुछ तुम्हारे पास है, उसे इकट्ठा करलो और मिल बाँटकर खाओ।"

शिष्यों के पास कुल मिलाकर पाँच रोटी और दो टुकड़े तरकारी निकली। गुरु ने उसे इकट्ठा किया और मन्त्र बल से अन्नपूर्णा बना दिया। शिष्यों ने उसे भर पेट खाया और जो भूखे भिखारी उधर से निकले, वे भी उसी से तृप्त हो गये।

सोलोमन नामक शिष्य ने पूछा—"गुरुवर, इतनी कम सामिग्री में इतने लोगों को तृप्ति का रहस्य क्या है ?"

ईसा ने कहा—"हे शिष्यो ! धर्मात्मा वह है जो खुद की नहीं सबकी बात सोचता है। अपनी बचत सबके काम आए, इस विचार से ही तुम्हारी पाँच रोटी अक्षय अन्नपूर्णा बन गई। जो जोड़ते हैं वे ही भूखे रहेंगे। जिन्होंने देना सीख लिया है, उनके लिए तृप्ति के साधन आप ही आ जुटते हैं।"

ईमानदार गरीब

सीलोन में एक जड़ी-बूटी बेचकर गुजारा करने वाला व्यक्ति रहता था। नाम था उसका महता शैसा। उसके घर की आर्थिक स्थिति बहुत ही खराब थी, कई-कई दिन भूखा रहना पड़ता। उनकी माता चक्की पीसने की मजदूरी करती, बहिन फूल बेचती तब कहीं गुजारा हो पाता। ऐसी गरीबी में भी उनकी नीयत सावधान थी।

महता एक दिन एक बगीचे में जड़ी-बूटी खोद रहे थे कि उन्हें कई घड़े भरी हुई अशर्फियाँ गढ़ी हुई दिखाई दीं। उनके मन में दूसरे की चीज पर जरा भी लालच न आया और मिट्टी से ज्यों का त्यों ढककर बगीचे के मालिक के पास पहुँचे और उसे अशर्फियाँ गढ़े होने की सूचना दी।

बगीचे के मालिक लरोटा की आर्थिक स्थिति भी बहुत खराब हो चली थी। कर्जदार उसे तंग किया करते थे। इतना धन पाकर उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। सूचना देने वाले शैसा को उसने चार सौ अशर्फियाँ पुरस्कार में देनी चाहीं। पर, उसने उन्हें लेने से इनकार कर दिया और कहा—"इसमें पुरस्कार लेने जैसी कोई बात नहीं, मैंने तो अपना कर्तव्य मात्र पूरा किया है।"

बहुत दिन बाद लरोटा ने अपनी बहिन की शादी शैसा से करदी और दहेज में कुछ धन देना चाहा। शैसा ने वह भी न लिया और अपने हाथ-पैर की मजदूरी करके दिन गुजारे।

माँ की सेवाएँ वेद ज्ञान

आचार्य महीधर आत्मज्ञान की इच्छा से घर छोड़कर विरक्त हो गये। उनकी माँ घर में कष्ट उठा रही है, उन्हें इसका भी ध्यान न रहा। बहुत दिन तप-साधना करने पर भी उन्हें पूर्णता प्राप्त न हुई, तब वे घर लौट आये। बेटे को पाकर माँ के हर्ष का ठिकाना न रहा। उन्होंने कहा, "बेटा ! तूने दुःखी का दुःख पहचान लिया तुझे पूर्णता प्राप्त होगी।" माँ के आशीर्वाद का ही फल था कि महीधर को वेद ज्ञान प्राप्त हुआ। उन्होंने चारों वेदों का भाष्य करने का गौरव प्राप्त किया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अहंकार ले डूबा

शिष्य अपने गुरु के दर्शन के लिये घर से चल पड़ा। रास्ते में नदी पड़ी। उसे अपने गुरु पर अपार श्रद्धा थी। नदी उसके मार्ग में बाधक बनना चाहती थी। पर जब वह नदी के किनारे पहुँचा, तो अपने गुरु का नाम लेते हुए पानी पर कदम रखकर उस पार पहुँच गया।

नदी के दूसरे किनारे पर ही तो गुरु की कुटिया थी। गुरु ने अपने शिष्य को बहुत दिनों बाद देखा तो उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। शिष्य चरण स्पर्श के लिये नीचे झुका ही था कि उन्होंने बीच से ही उठाकर गले से लगा लिया। क्षण भर में ही उनका ध्यान भंग हुआ। उन्होंने सोचा—"मेरे नाम में यदि इतनी शक्ति है, तो मैं बहुत ही महान् और शक्तिशाली हूँ।" और अगले दिन नाव का सहारा न ले नदी पार करने के लिये 'मैं, मैं, मैं' कहकर जैसे ही वह कदम बढ़ाया कि पाँव रखते ही वह नदी में डूबने लगे और देखते ही देखते उनका प्राणान्त हो गया।

अपने लिये कम

"बेटा ले ये दो टुकड़े मिठाई के हैं। इनमें से यह छोटा टुकड़ा अपने साथी को दे देना।"

"अच्छा माँ" और वह बालक दोनों टुकड़े लेकर बाहर आ गया अपने साथी पास। साथी को मिठाई का बड़ा टुकड़ा देकर छोटा स्वयं खाने लगा। माँ यह सब जंगले में से देख रही थी, उसने आवाज देकर बालक को बुलाया।

"क्यों रे ! मैंने तुझसे बड़ा टुकड़ा खुद खाने और छोटा उस बच्चे को देने के लिए कहा था, किन्तु तूने छोटा स्वयं खाकर बड़ा उसे क्यों दिया ?"

वह बालक सहज बोली में बोला, "माताजी ! दूसरों को अधिक देने और अपने लिए कम से कम लेने में मुझे अधिक आनन्द आता है।"

माताजी गंभीर हो गईं। वह बहुत देर विचार करती रहीं, बालक की इन उदार भावनाओं के सम्बन्ध में। उसे लगा सचमुच यही मानवीय आदर्श है और इसी में विश्व शांति की सारी संभावनाएँ निर्भर हैं। मनुष्य अपने लिए कम चाहे और दूसरों को अधिक देने का प्रयत्न करे तो समस्त संघर्षों की समाप्ति और स्नेह, सौजन्य की स्वर्गीय परिस्थितियाँ सहज ही उत्पन्न हो सकती हैं।

आत्मज्ञान आवश्यक

मनुष्य को एक पंख उग आया। विज्ञान का पंख। उसने जोर लगाया और आकाश में उड़ गया। पर अब वह मुक्त और शांत नहीं था। उसे चारों ओर से जटिलता की आँधियों ने सताना प्रारम्भ कर दिया।

मनुष्य बहुत घबराया। प्रार्थना की हे प्रभो ! कैसे संकट में डाल दिया। इससे तो अच्छा था, हमें जन्म ही न देते।

आकाश को चीरती हुई काल-पुरुष की आवाज आई—"वत्स, आत्मज्ञान का एक और पंख उगा। भीतर वाली चेतना का भी विकास कर। वही संतुलन पैदा कर सकेगी।"

दया यज्ञ

एक गृहस्थ ने तीन यज्ञ किये, जिनमें उसका सब धन खर्च हो गया। गरीबी से छूटने के लिए एक विद्वान् ने बताया कि तुम अपने यज्ञों का पुण्य अमुक सेठ को बेच दो, वह तुम्हें धन दे देंगे।

वह व्यक्ति पुण्य बेचने चल दिया। रास्ते में एक जगह भोजन करने बैठा, तो एक भूखी कुतिया वहाँ बैठी मिली, जो बीमार भी थी, चल-फिर भी नहीं सकती थी। उसकी दशा देखकर गृहस्थ को दया आई और उसने अपनी रोटी कुतिया को खिलादी और खुद भूखा ही आगे चल दिया।

धर्मराज के यहाँ पहुँचा तो उन्होंने कहा— "तुम्हारे चार यज्ञ जमा हैं। किसका पुण्य बेचना चाहते हो ?" गृहस्थ ने कहा—"मैंने तो तीन ही यज्ञ किये थे, यह चौथा यज्ञ कैसा ?" धर्मराज ने कहा—"यह दया-यज्ञ है। इसका पुण्य उन तीनों से बढ़कर है।"

कंजूसी किस काम की ?

एक महात्मा ने किसी भक्त की सेवा भावना से प्रसन्न होकर उसे सात दिन के लिए पारसमणि देकर कहा—"इसे छूने से लोहा सोना हो जाता है। जितने सोने की जरूरत हो, बनालो। सात दिन बाद वह वापस लेली जाएगी।"

भक्त बड़ा प्रसन्न हुआ कि अब मेरा सारा दरिद्र दूर हो जायगा। पर वह था बड़ा कंजूस। सस्ता लोहा बड़ी तादाद में ढूँढ़ने लगा। जिस दुकान पर वह गया वहाँ उसकी समझ में लोहा थोड़ा था और महँगा भी था बहुत, सस्ता और बहुत बड़ा ढेर ढूँढ़ने के लालच में वह कई नगरों में गया पर उसे कहीं सन्तोष न हुआ।

इसी भाग-दौड़ में सात दिन पूरे हो गये। मणि वापस लेली गई और वह रत्तीभर भी सोना प्राप्त न कर सका।

अधिक सयाने बनने वाले और अधिक कंजूस सदा घाटे में रहते हैं।

मेरा भाई-बन्धु और कोई नहीं

एकबार महात्मा ईसा बहुत-से जिज्ञासुओं से घिरे हुए उन्हें उपदेश कर रहे थे। तभी किसी ने आकर उनसे कहा कि—"तुम्हारे भाई और माता वहाँ बाहर खड़े तुम से बात करना चाहते हैं। तुम जाकर उनसे मिल लो।"

महात्मा ईसा बड़े साधारण भाव से यह उत्तर देकर अपने उपदेश कार्य में लग गये—

"संसार में मेरा भाई और मेरी माता अन्य कोई नहीं, यही जिज्ञासु जनता ही मेरे भाई और मेरी माता हैं क्योंकि जो मेरे स्वर्गीय पिता के आदेश पर चलें वही मेरा भाई, बहन व माता-पिता हैं। मैं परमात्मा के आदेशों का पालन करने वाले को ही बन्धु-बान्धव मानता हूँ।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सज्जन की खोज

बादशाह को एक कर्मचारी नौकर की आवश्यकता थी। तीन उम्मीदवार सामने पेश किये गये।

बादशाह ने पूछा—"यदि मेरी और तुम्हारी दाढ़ी में साथ-साथ आग लगे तो पहले किसकी बुझाओगे ?"

एक ने कहा कि पहले आपकी बुझाऊँगा। दूसरे ने कहा—"पहले अपनी बुझाऊँगा।" तीसरे ने कहा—"एक हाथ से अपनी और दूसरे हाथ से आपकी बुझाऊँगा।"

बादशाह ने तीसरे आदमी की नियुक्ति कर दी और दरबारियों से कहा—"जो अपनी उपेक्षा करके दूसरों का भला करता है वह अव्यावहारिक है। जो स्वार्थ को ही सर्वोपरि समझता है, वह नीच है और जो अपनी और दूसरों की भलाई का समान रूप से ध्यान रखता है, उसे ही सज्जन कहना चाहिये। मुझे सज्जन की आवश्यकता थी, सो उस तीसरे आदमी की नियुक्ति की गई।"

इन्हें पता नहीं कि वह क्या कर रहे हैं ?

जब नगर-नायक विक्षिप्त जनता की भीड़ लेकर ईसा को उनके निवास-स्थान पर गिरफ्तार करने लगे, तो उनके शिष्य शमौन पतरस से न देखा गया, वह तलवार निकाल कर गिरफ्तार करने वालों की ओर झपटा।

महात्मा ईसा ने उसे रोकते हुए कहा—"शमौन ! तलवार म्यान में करो। इन पर क्रोध मत करो। यह बेचारे नहीं जानते कि यह क्या कर रहे हैं ? किन्तु तुम्हें तो जानना चाहिये कि तुमको क्या करना चाहिए और क्या कर रहे हो ? यदि इनको अपने कृत्य का ज्ञान रहा होता, तो ये ऐसा कदापि नहीं करते। अज्ञानी व्यक्ति क्रोध के नहीं, दया के पात्र हैं।

वातावरण शांत रखो और जो मृत्यु का प्याला परमपिता ने मेरे लिए पीने को भेजा है, उसे मुझे खुशी से पीने दो। मेरे कर्तव्य में हिंसा की दुर्गन्ध न भरो। इन्हें खुद क्षमा करो और परमपिता से भी क्षमा कर देने के लिए प्रार्थना करो।"

न्याय रक्षा

ईरान का बादशाह नौशेरवाँ एक दिन शिकार खेलते हुये दूर निकल गया। दोपहर का समय हो जाने से एक गाँव के पास डेरा डालकर भोजन की व्यवस्था की गई। अकस्मात् मालूम हुआ कि नमक नहीं है। इस पर सेवक पास के घर में जाकर थोड़ा-सा नमक ले आया। बादशाह ने उसे देखकर पूछा "नमक के दाम दे आये ?" उसने उत्तर दिया—"इतने से नमक का दाम क्या दिया जाय ?" नौशेरवाँ ने फौरन कहा—"अब से आगे कभी ऐसा काम मत करना और इस नमक की कीमत इसी समय जाकर दे आओ। तुम नहीं समझते कि अगर बादशाह किसी के बाग से बिना दाम दिये एक फल ले ले, तो उसके कर्मचारी बाग को ही उजाड़कर खा जायेंगे।" नौशेरवाँ की इसी न्यायशीलता ने उसके राज्य की जड़ जमादी और आज भी शासकों के लिए उसका आचरण आदर्शस्वरूप माना जाता है।

छोटी भूल का बड़ा दुष्परिणाम

कहते हैं कि कलिंग देश का राजा मधुपर्क खा रहा था। उसके प्याले में से थोड़ा-सा शहद टपककर जमीन पर गिर पड़ा।

उस शहद को चाटने मक्खियाँ आ गईं। मक्खियों को इकट्ठी देख छिपकली ललचाई और उन्हें खाने के लिए आ पहुँची। छिपकली को मारने बिल्ली पहुँची। बिल्ली पर दो-तीन कुत्ते टूटे। बिल्ली भाग गई और कुत्ते आपस में लड़कर घायल हो गये।

कुत्तों के मालिक अपने-अपने कुत्तों के पक्ष का समर्थन करने लगे और दूसरे का दोष बताने लगे। उस पर लड़ाई ठन गई। लड़ाई में दोनों ओर की भीड़ बढ़ी और आखिर सारे शहर में बलवा हो गया। दंगाइयों को मौका मिला, तो सरकारी खजाना लूटा और राजमहल में आग लगा दी।

राजा ने इतने बड़े उपद्रव का कारण पूछा तो मन्त्री ने जाँचकर बताया कि भगवन् आपके द्वारा असावधानी से गिराया हुआ थोड़ा-सा शहद ही इतने बड़े दंगे का कारण बन गया है।

तब राजा ने समझा कि छोटी-सी असावधानी भी मनुष्य के लिए कितना बड़ा संकट उत्पन्न कर सकती है।

कर्तव्यनिष्ठा का पुरस्कार

बादशाह अब्बास अपने एक पदाधिकारी के यहाँ दावत में गये। वहाँ उन्होंने और सब साथियों ने इतनी मदिरा पी ली कि किसी के होश हबाश दुरस्त नहीं रहे। नशे की झोंक में बादशाह खड़ा हो गया और उस पदाधिकारी के अन्तःपुर की ओर जाने लगा। पर दरवाजे पर उस पदाधिकारी का नौकर इस प्रकार खड़ा था कि उसे हटाये बिना बादशाह भीतर नहीं घुस सकते थे। उन्होंने नौकर से कहा—"अभी यहाँ से हटजा वर्ना मैं तलवार से तेरा सिर उड़ा दूँगा।"

नौकर ने सिर झुकाकर कहा—"हजूर मेरे देश के स्वामी हैं, इसलिये मैं आप पर हाथ तो उठा नहीं सकता। पर यह निश्चय है कि आप मेरी लाश पर पैर रखकर ही भीतर जा सकेंगे, पर याद रखिये कि भीतर जाने पर बेगमें तलवार लेकर आपका मुकाबला करेंगी, क्योंकि जब उनकी इज्जत पर हमला किया जायगा तो वे अपना बचाव जरूर करेंगी।"

बादशाह का नशा सेवक की खरी बातों को सुन कर ठण्डा पड़ गया और वे वापस चले गये। दूसरे दिन उस पदाधिकारी ने बादशाह से कहा—"मेरे जिस नौकर ने कल आपके सामने बेअदबी की थी, उसे मैंने दण्ड स्वरूप अपने यहाँ से निकाल दिया है।"

बादशाह ने कहा—"यह तो बहुत अच्छा हुआ, मैं उसे आपसे माँगकर अपने अंग रक्षकों का सरदार बनाना चाहता था। बस अब आप उसे बुलाकर मेरे पास भेज दीजिये।" सच्चे व्यक्ति की कदर सभी जगह होती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विश्वासघात

रोम की राज्य सभा के सभापति जुलियस सीजर पर षड्यन्त्रकारियों ने आक्रमण किया। षड्यन्त्रकारी उन पर आघात कर रहे थे। सीजर निरस्त्र थे फिर भी किसी प्रकार अपना बचाव करने का प्रयत्न कर रहे थे। इसी समय उनके परम विश्वासी मित्र ब्रूट्स ने भी उन पर आक्रमण किया। अब असह्य हो गया। मित्र के विश्वासघात से उनका हृदय फट गया। सीजर ने ब्रूट्स की ओर देखकर कहा—"मित्र ! तुम भी ·····"।

सीजर ने अपने बचाव का प्रयत्न छोड़ दिया और आहत होकर मृत्यु की गोद में गिर पड़ा।

विरोधी को प्रवेश नहीं

विकासवाद के अन्वेषक चार्ल्स डार्विन, जब मरणासन्न थे, तो उनके घर वालों ने पादरी को बुलाया और कहा—"इनकी आत्मा को शान्ति देने वाला धर्म संस्कार करा दीजिए।"

पादरी ने कहा कि यह महोदय नास्तिक रहे हैं। नास्तिक को स्वर्ग नहीं मिल सकता। इनके लिये धर्म संस्कार मैं तभी करा सकूँगा, जब यह अपने आस्तिक होने की आस्था प्रकट करें।

डार्विन की छोटी पुत्री मार्था, ने पादरी से पूछा—"मेरे पापा को, जो आजीवन सन्त की तरह रहे हैं, क्या संस्कार के अभाव में फिर भी नरक ही जाना पड़ेगा ? क्या इन्हें स्वर्ग में बिना धर्म संस्कार के ही स्थान न मिल पाएगा ?

पादरी बोला कि स्वर्ग तो ईश्वर का घर है, वे अपने विरोधियों को क्यों प्रवेश करने देंगे ?

ईर्ष्या साँपिनि को न सतावा

जंगल में गाय और घोड़ा घास चर रहे थे। घोड़े को ईर्ष्या हुई कि वह गाय के सीगों के डर से अच्छी घास नहीं खा पाता, किसी तरह उस पर काबू पाया जाए। तभी वहाँ इन्सान आ निकला और उसने दोनों को ललचाई नजर से देखा। घोड़ा इन्सान के पास आकर बोला—"देखते क्या हो, गाय का मीठा दूध पीकर अपनी भूख मिटाओ।" "पर वह तो मुझसे तेज दौड़ सकती है, उस पर काबू कैसे पा सकूँगा ?" मेरी पीठ पर सवार हो जाओ, मैं गाय से तेज दौड़ सकता हूँ ?" इन्सान घोड़े की पीठ पर सवार हो गया। उसने पहिले घोड़े को गुलाम बनाया और फिर गाय को काबू में किया। उसी दिन से दोनों पशु इन्सान के गुलाम हैं।

मान्यता अपनी-अपनी

किसी अरब व्यापारी को पता चला कि इथोपिया के लोगों के पास चाँदी बहुत अधिक है। उसे वहाँ जाकर व्यापार करने की सूझी और एक दिन सैकड़ों ऊँट प्याज लादकर वह इथोपिया के लिये चल भी पड़ा।

ईथोपियावासियों ने पहले कभी प्याज नहीं खाया था। प्याज खाकर वे बहुत प्रसन्न हुये। उन्होंने सब प्याज खरीद लिया और उसके बराबर सोना, चाँदी तोल दिया। व्यापारी बहुत प्रसन्न हुआ। धनवान बनकर देश लौटा।

एक दूसरे व्यापारी को इसका पता चला तो उसने भी इथोपिया जाने की ठानी। उसने प्याज से भी अच्छी वस्तु लहसुन लादी और इथोपिया जा पहुँचा। वहाँ के लोगों ने लहसुन चखा तो प्रसन्नता से नाच उठे। सारा लहसुन उन्होंने ले लिया पर बदले में दें क्या, यह प्रश्न उठा। उन्होंने देखा सोना, चाँदी तो बहुत है पर सोने से भी अच्छी वस्तु उनके पास प्याज है, इसलिये प्याज से दूसरे व्यापारी की बोरियाँ लाद दीं।

व्यापारी खीझ उठा पर बेचारा करता क्या, चुपचाप प्याज लेकर घर लौट आया। बेचारा व्यापारी समझ नहीं पा रहा था कि अमूल्यता की कसौटी क्या है ? उसे लगा यह सब अपने-अपने मन की मान्यताओं और प्रसन्नता के खेल हैं। सत्य तो कुछ और ही है, जिसे मनुष्य नहीं समझ पा रहा।

स्वप्न पर मत रीझो

एक युवक ने स्वप्न में देखा कि वह किसी बड़े राज्य का राजा हो गया है। स्वप्न में मिली इस आकस्मिक विभूति के कारण उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा।

प्रातःकाल पिता ने काम पर चलने को कहा, माँ ने लकड़ियाँ काट लाने की आज्ञा दी, धर्मपत्नी ने बाजार से सौदा लाने का आग्रह किया, पर युवक ने कोई भी काम न कर एक ही उत्तर दिया—मैं राजा हूँ, मैं कोई काम कैसे कर सकता हूँ ?'

घर वाले बड़े हैरान थे, आखिर किया क्या जाये ? तब कमान सँभाली उनकी छोटी बहिन ने एक-एक कर उसने सबको बुलाकर चौके में भोजन करा दिया, अकेले खयाली महाराज ही बैठे-के-बैठे रह गये।

शाम हो गई, भूख से आँतें कुलबुलाने लगीं। आखिर जब रहा नहीं गया, तो उसने बहन से कहा—क्यों री ! मुझे खाना नहीं देगी क्या ?"

बालिका ने मुँह बनाते हुए कहा, "राजाधिराज ! रात आने दीजिये, परियाँ आकाश से उतरेंगी, वही आपको उपयुक्त भोजन प्रस्तुत करेंगी। हमारे रूखे-सूखे भोजन से आपको सन्तोष कहाँ होगा ?"

व्यर्थ की कल्पनाओं में विचरण करने वाले युवक ने हार मानी और मान लिया कि धरती पर रहने वाले मनुष्य को निरर्थक लौकिक एवं भौतिक कल्पनाओं में ही न डूबे रहना चाहिए वरन् जीवन का जो शाश्वत और सनातन सत्य है, उसे प्राप्त और धारण करने का प्रयत्न भी करना चाहिए—इतना मान लेने पर ही उसे भोजन मिल सका।

अपना बल क्षीण न करो

समुद्र से जल भरकर वापस लौट रहे मरुत-देवों को विन्ध्याचल शिखर ने बीच में ही रोक दिया। मरुत विन्ध्याचल के इस कृत्य पर बड़े कुपित हुये और युद्ध ठानने को तैयार हो गये।

विन्ध्याचल ने बड़े सौम्य भाव से कहा—"महाभाग ! हम आपसे युद्ध करना नहीं चाहते, हमारी तो एक ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अभिलाषा है कि आप यह जो जल लिये जा रहे हैं, वह आपको जिस उदारता के साथ दिया गया है उसी उदारता के साथ आप भी इसे प्यासी धरती को पिलाते चलें तो कितना अच्छा हो ?"

मरुतों को अपने अपमान की पड़ी थी, सो वे शिखर से भिड़ गये, पर जितना युद्ध किया उन्होंने उतना ही उनका बल क्षीण होता गया और धरती को अपने आप जल मिल गया। मनुष्य न चाहे तो भी ईश्वर अपना काम करा ही लेता है, पर श्रद्धापूर्वक करने का तो आनन्द ही कुछ और है।

सुजाता की खीर

सुजाता ने खीर दी, बुद्ध ने उसे ग्रहण कर परम सन्तोष का अनुभव किया। उस दिन उनकी जो समाधि लगी तो फिर सातवें दिन जाकर टूटी। जब वे उठे, उन्हें आत्म-साक्षात्कार हो चुका था।

नेरञ्जरा नदी के तट पर प्रसन्न मुख आसीन भगवान बुद्ध को देखने गई सुजाता बड़ी विस्मित हो रही थी कि यह सात दिन तक एक ही आसन पर कैसे बैठे रहे ? तभी सामने से एक शव लिये जाते हुए कुछ व्यक्ति दिखाई दिये। उस शव को देखते ही भगवान बुद्ध हँसने लगे।

सुजाता ने प्रश्न किया—"योगिराज ! कल तक तो आप शव देखकर दुःखी हो जाते थे, आज वह दुःख कहाँ चला गया ?"

भगवान बुद्ध ने कहा—"बालिके ! सुख-दुःख मनुष्य की कल्पना मात्र है। कल तक जड़ वस्तुओं में आसक्ति होने के कारण यह भय था कि कहीं यह न छूट जाय, वह न बिछुड़ जाये। यह भय ही दुःख का कारण था, आज मैंने जान लिया कि जो जड़ है, उसका तो गुण ही परिवर्तन है, पर जिसके लिये दुःख करते हैं, वह तो न परिवर्तनशील है न नाशवान्। अब तू ही बता जो सनातन वस्तु पा ले, उसे नाशवान् वस्तुओं का क्या दुःख ?"

सुजाता यह उत्तर सुनकर प्रसन्न हुई और स्वयं भी आत्म-चिन्तन में लग गई।

प्रमादी की पहचान

एक दिन भिक्षु संगाम जी ने भगवान बुद्ध से पूछा—"भगवन् ! संसार के प्रमाद में पड़े हुये की क्या पहचान है ?" भगवान बुद्ध ने तत्काल कोई उत्तर न दिया, और-और बातें करते रहे।

दूसरे दिन कुण्डिया नगर की कोलिय पुत्री सुप्पवासा के यहाँ उनका भोज था। सुप्पवासा सात वर्ष तक गर्भ धारण करने का कष्ट भोग चुकी थी। भगवान बुद्ध की कृपा से ही उसे इस कष्ट से छुटकारा मिला था, इसी प्रसन्नता में वह भिक्षु-संघ को भोज दे रही थी।

जब सुप्पवासा तथागत को भोजन करा रही थी, उसका पति नवजात शिशु को लिये पास ही खड़ा था। सात वर्ष तक गर्भ में रहने के कारण बालक जन्म से ही विकसित था। देखने में अति सुन्दर। उसके हँसने और क्रीड़ा करने की गतिविधियाँ बड़ी मनमोहक थीं। बार-बार माँ की गोद में जाने के लिये मचल रहा था।

भगवान बुद्ध ने मुसकराते हुये पूछा—"बेटी सुप्पवासा ! तुझे ऐसे-ऐसे पुत्र मिलें तो कितने और पुत्रों की कामना तू कर सकती है ?"

सुप्पवासा ने कहा—"भगवन् ! ऐसे सात पुत्र हों, तो अच्छा है।"

संगाम जी बगल में ही बैठे थे। कल तक जो प्रसव पीड़ा से बुरी तरह व्याकुल थी, आज फिर पुत्रों की कामना कर रही है, यह देखकर संगाम जी बड़े आश्चर्यचकित हुये।

बुद्ध ने हँसकर कहा—"संगाम जी चौंकिये मत, तुम्हारे कल के प्रश्न का उत्तर यही तो है।"

प्रगति के अवरोध

किसी ने कहा—"मनुष्य बड़ा, बहुत बड़ा हो सकता था, लेकिन दोष ही उसे देवत्व तक पहुँचने से लाचार कर देते हैं। सहज, प्रकृति सिद्ध अहं पर विजय प्राप्त कर सकना, सत्पुरुषार्थ के एक कण से भी सम्भव है, किन्तु पराक्रम और वैभव को उद्घाटित करने के बदले, लोग निन्दा और ईर्ष्या की कोठरी में छिद्रान्वेषण और दोष-दर्शन के सहारे अनायास जा पहुँचते हैं और तब परिणाम होता है कि हम अपना सब कुछ गँवा बैठते हैं।"

"दूसरे के दोषों में जिसका दर्शन हमें होता है, वह दूसरे का न होकर हमारे मन का गरल ही तो है, जिसे हम दूसरों पर सर्वथा लादने के असफल प्रयत्न में, मुक्तिकामी की भाँति अपने को निष्कलंक प्रमाणित करने का प्रयत्न करते हैं।"

श्रोता का चेहरा प्रफुल्लित हो उठा—कमलदलों की तरह।

भाव की भूख

यहूदी अनपढ़ था और ग्रामीण भी। किसी ने उसे बता दिया कि जिस दिन प्रायश्चित्त पर्व हो, उस दिन खूब अच्छा-अच्छा खाना चाहिये और मिले तो शराब भी पीनी चाहिये। सो जब अगला 'प्रायश्चित्त पर्व' आया तो एक दिन पूर्व ही उसने खूब डटकर खाया, शराब पी और नशे में धुत्त हो गया।

प्रातःकाल नींद टूटी तो भोले-भाले ग्रामीण यहूदी ने देखा, उसका साथी तो प्रायश्चित्त पर्व की लगभग आधी प्रार्थना पूरी कर चुका है। उसे तो एक भी मन्त्र याद न था, सो उसे अपने आप पर भारी ग्लानि हुई। कल शराब न पीकर मन्त्र याद कर लेता तो कितना अच्छा होता, यह सोचकर वह बड़ा दुःखी हुआ।

सबको प्रार्थना करते देखकर वह वहीं बैठ गया और वर्णमाला के अक्षरों का ही पाठ करता हुआ भावना करने लगा—"हे प्रभु ! मुझे तो कोई मन्त्र याद नहीं, इन अक्षरों को जोड़कर तुम्हीं मन्त्र बना लेना। मैं तो तुम्हारा दास हूँ, पूजा के लिये नये भाव कहाँ से लाऊँ ?" जब तक दूसरे लोग प्रार्थना करते रहे, वह ऐसे ही भगवान का ध्यान करता रहा।

सायंकाल जब वे दोनों सामूहिक प्रार्थना में सम्मिलित हुये तो धर्मगुरु रबी ने उस ग्रामीण को भक्तों की अग्र-पंक्ति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में रखा। यह देखकर उसके साथी ने आपत्ति की—"श्रीमान् जी ! इसे तो मन्त्र भी अच्छी तरह याद नहीं।"

"तो क्या हुआ ?"—रबी ने आर्द्र कण्ठ से कहा—"इनके पास शब्द नहीं, भाव तो हैं। भगवान तो भाव का ही भूखा है, मन्त्र तो हमारे-तुम्हारे लिये हैं।"

स्वर्ग और नरक भावनाओं में

एक गुरु के दो शिष्य थे। दोनों किसान थे। भगवान का भजन, पूजन भी दोनों करते थे। स्वच्छता और सफाई पर भी दोनों की आस्था थी, किन्तु एक बड़ा सुखी था, दूसरा बड़ा दुःखी।

गुरु की मृत्यु पहले हुई, पीछे दोनों शिष्यों की भी। दैवयोग से स्वर्गलोक में भी तीनों एक ही स्थान पर जा मिले, पर स्थिति यहाँ भी पहले जैसी ही थी। जो पृथ्वी में सुखी था, यहाँ भी प्रसन्नता अनुभव कर रहा था और जो आये दिन क्लेश-कलह आदि के कारण पृथ्वी में अशान्त रहता था, यहाँ भी अशान्त दिखाई दिया।

दुःखी शिष्य ने गुरुदेव के समीप जाकर कहा—"भगवन् ! लोग कहते हैं, ईश्वर-भक्ति से स्वर्ग में सुख मिलता है, पर हम तो यहाँ भी दुःखी के दुःखी रहे।"

गुरु ने गम्भीर होकर उत्तर दिया—"वत्स ! ईश्वर भक्ति से स्वर्ग तो मिल सकता है पर सुख और दुःख मन की देन हैं। मन शुद्ध हो, तो नर्क में भी सुख ही है और मन शुद्ध नहीं, तो स्वर्ग में भी कोई सुख नहीं है।"

बुद्धिहीन वैज्ञानिक

एक बार चार मित्र यात्रा पर निकले। उनमें तीन 'बुद्धिहीन वैज्ञानिक' थे और एक 'बुद्धिमान अवैज्ञानिक'। मार्ग में उन्हें एक मरे हुए शेर का अस्थिपंजर मिला। बुद्धिहीन वैज्ञानिकों ने सोचा कि क्यों नहीं हम इस पर अपनी विद्या की परीक्षा कर लें। तुरन्त एक ने उसका अस्थिसंचय किया, दूसरे ने उसमें चर्ममांस और रुधिर संचारित किया और तीसरा उसमें प्राण डालने ही वाला था कि चौथे बुद्धिमान अवैज्ञानिक ने कहा—"अरे-अरे, यह आप क्या कर रहे हैं ? आप सिंह को जीवित करने जा रहे हो। वह जीवित होते ही हमें खा जायेगा। पहले अपनी रक्षा का उपाय तो कर लो।" लेकिन उसकी बात किसी ने नहीं मानी।

लाचार, वह अकेला वृक्ष पर चढ़ गया। उधर तीसरे ने जैसे ही उसमें प्राण डाले, शेर जीवित होकर उन तीनों को खा गया।

प्रत्यक्ष को देखने वाला आज का संसार भी इन बुद्धिहीन वैज्ञानिकों की तरह है। जो शरीर के लिये तो साधन बढ़ाते चले जा रहे हैं, पर आत्मा की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते।

निराश न लौटाओ

भगवान बुद्ध मृत्यु-शय्या पर पड़े थे। उनकी जीवन-ज्योति के अस्त होने में कुछ ही विलम्ब था।

सुभद्र नामक साधु ने यह समाचार सुना तो वह अपनी धर्म सम्बन्धी कुछ शंकाओं का निवारण करने के उद्देश्य से उनकी सेवा में उपस्थित हुआ। पर आनन्द ने, जो कुटी के द्वार पर स्थित था उसे भीतर जाने से रोका और कहा—"भगवान को इस समय कष्ट देना उचित न होगा।" पर सुभद्र बराबर आग्रह करता रहा कि उसे भगवान का दर्शन कर लेने दिया जाय।

बुद्ध जी ने भीतर पड़े हुए इस चर्चा को अस्पष्ट रूप से सुना और वहीं से कहा—"आनन्द ! सुभद्र को भीतर आने दो। वह ज्ञान-प्राप्ति की इच्छा से आया है, मुझे कष्ट देने नहीं आया।"

सुभद्र ने जैसे ही भीतर जाकर करुणा की उस शांत मूर्ति को देखा, वैसे ही बुद्ध जी के उपदेश उसके हृदय में प्रविष्ट हो गये और वह प्रव्रज्या लेकर बौद्ध भिक्षु बन गया। बुद्ध भगवान ने शरीरान्त होते हुये भी किसी ज्ञान के अभिलाषी को निराश नहीं किया।

साधुओं के लिये संदेश

संसार के कुशल समाचार जानने के लिये एक दिन भगवान ने नारद को पृथ्वी पर भेजा।

उन्हें सबसे पहले एक दीन दरिद्र वृद्ध पुरुष मिला जो अन्न वस्त्र के लिए तरस रहा था। नारदजी को उसने पहचाना तो अपनी कष्ट-कथा रो-रोकर सुनाने लगा और कहा, जब आप भगवान से मिलें तो मेरे गुजारे का प्रबन्ध उनसे करा दें।

नारद उदास मन आगे बढ़े तो एक धनी से उनकी भेंट हो गई। उसने भी नारदजी को पहचाना तो उसने खिन्न होकर कहा—"मुझे भगवान ने किस जंजाल में फँसा दिया। थोड़ा मिलता तो मैं शान्ति से रहता और कुछ भजन पूजन कर पाता, पर इतनी दौलत तो सँभाले नहीं सँभलती, ईश्वर से मेरी प्रार्थना करें कि इस जंजाल को घटा दें।"

यह विषमता देवर्षि को अखरी। वे आगे चल ही रहे थे कि साधुओं की एक जमात से भेंट हो गई। जमात वाले उन्हें चारों ओर से घेरकर खड़े हो गए और बोले—"स्वर्ग में तुम अकेले ही मौज करते रहते हो। हम सबके लिए भी वैसे ही राजसी ठाठ जुटाओ, नहीं तो नारद बाबा चिमटे मार-मार कर तुम्हारा भुस बना देंगे।"

घबराए नारद ने उनकी माँगी वस्तुएँ मँगा दीं और जान छुड़ाकर भगवान के पास वापस लौट गए। जो कुछ देखा वही उनके लिए बहुत था और देखने की उन्हें इच्छा ही न रही।

भगवान ने नारद से उस यात्रा का वृत्तान्त पूछा, तो देवर्षि ने तीनों घटनाएँ कह सुनाईं। नारायण हँसे और बोले—"देवर्षि, मैं कर्म के अनुसार ही किसी को कुछ दे सकने में विवश हूँ। जिसकी कर्मठता समाप्त हो चुकी उसे मैं कहाँ से दूँ। तुम अगली बार जाओ तो उस दीन-हीन वृद्ध से कहना—दरिद्रता के विरुद्ध लड़े और सुविधा के साधन जुटाने का प्रयत्न करे, तभी उसे दैवी सहायता मिल सकेगी। इसी प्रकार उस धनी से कहना—यह दौलत उसे दूसरों की सहायता के लिए दी गई है। यदि वह संग्रही बना रहा तो जंजाल ही नहीं आगे चलकर वह विपत्ति भी बन जाएगी।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नारदजी ने पूछा—"और उस साधु मण्डली से क्या कहूँ ?" भगवान के नेत्र चढ़ गये और बोले—"उन दुष्टों से कहना कि त्यागी और परमार्थी का वेष बनाकर आलस्य और स्वार्थपरता की प्रवंचना इतनी असह्य है कि उन्हें नरक के निकृष्टतम स्थान में अनन्त काल तक पड़ना पड़ेगा।"

आयु कुल चार वर्ष

नौशेरवाँ का, जो भी मिले उसी से कुछ न कुछ सीखने का स्वभाव हो गया था। अपने इस गुण के कारण ही उन्होंने अपने जीवन के स्वल्प काल में महत्त्वपूर्ण अनुभव अर्जित कर लिये थे।

राजा नौशेरवाँ एक दिन वेष बदलकर कहीं जा रहे थे। मार्ग में उन्हें एक वृद्ध किसान मिला। किसान के बाल पक गये थे, पर शरीर में जवानों जैसी चेतनता विद्यमान थी। उसका रहस्य जानने की इच्छा से नौशेरवाँ ने पूछा—"महानुभाव ! आपकी आयु कितनी होगी ?"

वृद्ध ने मुसकान भरी दृष्टि नौशेरवाँ पर डाली और हँसते हुये उत्तर दिये—"कुल ४ वर्ष।" नौशेरवाँ ने सोचा बूढ़ा दिल्लगी कर रहा है, पर सच-सच पूछने पर भी जब उसने ४ वर्ष ही आयु बताई तो उन्हें कुछ क्रोध बढ़ गया। एकबार तो मन में आया कि उसे बता दूँ—'मैं साधारण व्यक्ति नहीं नौशेरवाँ हूँ।' पर उन्होंने अपने विवेक को सँभाला और विचार किया कि उत्तेजित हो उठने वाले व्यक्ति सच्चे जिज्ञासु नहीं हो सकते, किसी के ज्ञान का लाभ नहीं ले सकते, इसलिए उठे हुये क्रोध का उफान वहीं शान्त हो गया।

अब नौशेरवाँ ने नये सिरे से पूछा—"पितामह ! आपके बाल पक गये, शरीर में झुर्रियाँ पड़ गईं, लाठी लेकर चलते हैं, मेरा अनुमान है आप ८० से कम के न होंगे, फिर आप अपने को ४ वर्ष का कैसे बताते हैं ?"

वृद्ध ने इस बार गम्भीर होकर कहा—"आप ठीक कहते हैं, मेरी आयु ८० वर्ष की है, किन्तु मैंने ७६ वर्ष धन कमाने ब्याह-शादी और बच्चे पैदा करने में बिताये, ऐसा जीवन तो कोई पशु भी जी सकता है, इसलिये उसे मैं मनुष्य की अपनी जिन्दगी नहीं, किसी पशु की जिन्दगी मानता हूँ।"

इधर चार वर्ष से समझ आई। अब मेरा मन ईश्वर उपासना, जप, तप, सेवा, सदाचार, दया, करुणा उदारता में लगा रहा है। इसलिये मैं अपने को ४ वर्ष का ही मानता हूँ। नौशेरवाँ वृद्ध का उत्तर अति सन्तुष्ट हुये और प्रसन्नतापूर्वक अपने राजमहल लौटकर सादगी सेवा और सज्जनता का जीवन जीने लगे।

सुलस का हृदय-परिवर्तन

राजगृह में एक कसाई रहता था। नाम था 'काल कसूरी'। यथा नाम तथा गुण। वह प्रतिदिन एक सौ भैंसों का वध किया करता था। धीरे-धीरे यह वृत्ति स्वभाव बन गई। वध किये बिना उसे चैन न मिलता।

एक दिन उसने एक भैंसे पर तलवार चलाई। भैंसा मजबूत और बलवान् था, कटा नहीं। सारी शक्ति लगाकर छटपटाया तब पिता की सहायता के लिये पास खड़ा सुलस भी जुट गया। उथल-पुथल में तलवार की नोंक बिचक गई और सुलस के पाँव में लग गई। उससे बच्चे को तीव्र वेदना हुई। उसने अनुभव किया भैंसा मूक प्राणी है, बोल नहीं सकता तो क्या, पर इसे भी निःसन्देह ऐसी ही पीड़ा होती होगी। बालक ने निश्चय किया वह कभी भी पशुओं का वध नहीं करेगा।

पर यह बात काल कसूरी के लिये संभाव्य न थी। एक दिन राजा श्रेणिक ने आज्ञा दी ..... काल कसूरी ! तुम्हारा अन्तिम समय है अब तुम पशु-वध बन्द कर दो। किन्तु उसने सविनय उत्तर दिया—"महाराज ! मेरे लिये यह असंभव है। संस्कार कितना ही बुरा हो पक जाता है, तो ऐसा ही होता है। तब पाप भी पाप नहीं लगता वरन् उससे भी मोह हो जाता है।"

श्रेणिक ने उसे बन्दी गृह में डाल दिया, पर वहाँ भी काल कसूरी की यह वृत्ति न छूटी। वह मिट्टी के भैंसे बनाता और लकड़ी की तलवार से उनका वध करता और इस तरह आत्म-संतोष प्राप्त करता।

मृत्यु का समय पास आया। उसने अपने बच्चे सुलस को बुलाकर आग्रह किया—वत्स ! मुझे आशा है कि तुम मेरी अन्तिम इच्छा पूर्ण करोगे। बच्चे ने कहा—"पिता जी ! मेरे स्वभाव से जो विपरीत न होगा, वह हर कार्य करने को तैयार हूँ।"

काल कसूरी ने प्रसन्न होकर कहा—"मैं जानता हूँ, तेरी इच्छा और रुचि का मुझे ध्यान है। ऐसा कुछ न कहूँगा जिससे तेरी भावनाएँ दुःखें। मेरी इच्छा है मेरे न रहने पर तुम घर के मुखिया बनो।" बालक सुलस ने उसे स्वीकार कर लिया।

काल कसूरी की मृत्यु हो गई। नियत दिन सुलस को मुखिया बनाने की रस्म अदा की गई। अन्त में कुलदेवी के सम्मुख भैंसा खड़ा कर सुलस को बुलाया गया और उसका वध करने को कहा गया, पर वह स्तब्ध खड़ा रह तलवार ऊपर न उठी।

बुजुर्गों ने कहा—"बेटे यह कुल परम्परा है। जो मुखिया बनता है उसे देवी को प्रसन्न करने के लिये रक्तदान करना ही पड़ता है।" अच्छा यह बात है ? पिताजी की इच्छा अपूर्ण न रहे। यह कहकर उसने तलवार चलाई और अपना पाँव काट दिया। परिजनों ने कहा—"सुलस ! तुमने यह क्या किया ?" सब चीख-चिल्ला रहे थे।

उस दिन से उस परिवार की हिंसा सदैव के लिये छूट गई।

गुरु निष्ठा

प्राचीन काल में गुरु अपने शिष्यों को विद्याध्ययन के साथ-साथ अनुशासन, शिष्टाचार, क्षमाशीलता, तितीक्षा आदि सद्गुणों की भी शिक्षा देते थे। उस समय यह विश्वास था कि विद्या के समान ही चरित्र भी आवश्यक है और उसके शिक्षण पर भी पूरा-पूरा ध्यान किया जाना चाहिये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

थे। नौकरों द्वारा कोड़े बरसाये जाने लगे। सन्त का शरीर चोट खाकर बेहोश हो गया। वह सत्य के लिये मरते दम तक शासन की क्रूरता को सहन करते रहे, पर उस चोर सिपाही के वचन को न भूलें।

श्रम का अमृत

चलते-चलते शाम हो गई तो गुरु नानक पास के गाँव में एक निर्धन किसान के यहाँ ठहर गये। उस गाँव के सेठ ने यह सुना कि आज रात्रि को गुरु नानक यहीं विश्राम कर रहे हैं, तो वह भी उनके दर्शन के लिए गया। उस समय नानक भोजन कर रहे थे।

भोजन में सूखी रोटी और दाल थी। ऐसा रूखा-सूखा भोजन करते नानक को देखा तो उस सेठ को बड़ा बुरा लगा। उसने कहा—"आप ऐसा भोजन क्यों कर रहे हैं ? इस गाँव में तो जो भी कोई संत महात्मा आता है वह मेरे यहाँ ही ठहरता है। भगवान की कृपा से मेरे यहाँ किसी भी प्रकार की कमी नहीं है। मेरा आपसे निवेदन है कि आप भी मेरे यहाँ चलकर ही निवास करिये।"

नानक ने बड़ी शान्ति से उत्तर दिया—"महोदय !' मैं तो श्रम की कमाई से उत्पन्न अमृत खा रहा हूँ। निर्धन व्यक्तियों के शोषण से बने पकवान मुझे पसन्द नहीं हैं।"

अधिक भोले भी न बनो

दो मित्रों ने ईख की। खेत तैयार होने पर बाँटने की बात चली तो भोले मित्र ने कहा—"तुम्हीं बाँट कर दो, जो दोगे वही ले लूँगा।" चालाक मित्र ने कहा कि जड़ मैं लेता हूँ तुम ऊपर का भाग ले लो। उसने स्वीकार किया। अतः गन्ने चालाक मित्र ने ले लिये और ऊपर का भाग जिसे अगोला कहते हैं भोले मित्र के पल्ले पड़ा। संसार में अधिक भोलापन भी हानिप्रद है।

दार्शनिक की विजय

एक दिन देवलोक से एक विशेष विज्ञप्ति निकाली गई। जिसने आकाश, पाताल तथा पृथ्वी तीनों लोकों में हलचल मचा दी। प्रसारण इस प्रकार था—

"अगले सात दिन तक लगातार श्री चित्रगुप्त जी की प्रयोगशाला के मुख्य द्वार पर कोई भी प्राणी असुन्दर वस्तु देकर उसके स्थान पर सुन्दर वस्तु प्राप्त कर सकेगा। शर्त यही है कि वह विधाता की सत्ता में विश्वास रखता हो। इसकी परीक्षा वहीं कर ली जावेगी।"

बस फिर क्या था ? सभी अपनी-अपनी बदलने वाली वस्तुओं की सूची तैयार करने लगे। याद कर-करके सभी ने अपनी उन वस्तुओं को लिख लिया जो उन्हें अरुचिकर या असुन्दर लगती थीं।

निश्चित तिथि पर देवलोक से कई विमान भेजे गये, जो सुविधापूर्वक सभी को देवलोक पहुँचाने लगे। जब सब लोग वहाँ पहुँच गये तो विधाता ने अपने तीसरे नेत्र की योग दृष्टि से तीनों लोकों का अवलोकन किया कि कोई बचा तो नहीं आने से। उन्होंने पाया कि स्वर्ग तथा पाताल में कोई शेष नहीं रहा केवल पृथ्वी पर एक मनुष्य आराम से पड़ा अपनी मस्ती में डूबा आनन्द मग्न है। पास जाकर उससे पूछा—"तात् ! तुमने हमारा आदेश नहीं सुना क्या ? तुम भी चित्रगुप्त के दरबार में क्यों नहीं चले जाते और अपने पास जो कुरूप, कुरुचिपूर्ण वस्तुयें हैं, उन्हें बदलकर अच्छी वस्तुएँ ले आते, जानते नहीं कि अच्छाई की वृद्धि से सम्मान बढ़ता है।"

वह व्यक्ति बड़ी ही नम्रता तथा गम्भीरता से बोला—"सुना था भगवन् ! किन्तु मुझे तो आपकी बनाई इस सृष्टि में कुछ भी असुन्दर नहीं दीखता। जब सभी कुछ आपका बनाया हुआ है—सबमें ही आपकी सत्ता व्याप्त हो रही है, तो असुन्दरता कहाँ रह सकती है वहाँ ? मुझे तो इस सृष्टि का कण-कण सुन्दर दिखाई देता है, प्रभु ! फिर भला मैं किसी को असुन्दर कहने का दुःसाहस कैसे कर सकता हूँ ?"

बाद में पता चला कि उस कसौटी पर केवल वही मनुष्य खरा उतरा था। बाकी सबको निराश ही लौटना पड़ा था।

यह थी एक दार्शनिक की विश्व-विजय। जो संसार की कुरूप से कुरूप वस्तु में भी सौन्दर्य का दर्शन करे, वही सच्चा दार्शनिक है।

पंच-रत्न

महर्षि कपिल प्रतिदिन गंगा-स्नान के लिये जाया करते थे। मार्ग में एक गाँव पड़ता था। कृषक लोग उसमें रहा करते थे। जिस रास्ते से महामुनि जाया करते थे, उसमें एक विधवा ब्राह्मणी की भी झोपड़ी पड़ती थी। महामुनि जब भी उधर से निकलते विधवा या तो चर्खा कातते मिलती या धान कूटते। पूछने पर पता चला कि उसके पति के अतिरिक्त घर में आजीविका चलाने वाला और कोई है नहीं, सारे परिवार का भरण-पोषण उसी को करना पड़ता है।

मुनि कपिल को उसकी इस अवस्था पर बड़ी दया आई। उन्होंने उसके पास जाकर कहा—"भद्रे ! मैं इस आश्रम का कुलपति कपिल हूँ। मेरे कई शिष्य राज्य-परिवारों से सम्बन्ध रखते हैं, तुम चाहो तो तुम्हारे लिए, आजीविका की स्थायी व्यवस्था कराई जा सकती है। तुम्हारी असहाय अवस्था मुझसे देखी नहीं जाती।"

ब्राह्मणी ने आभार व्यक्त करते हुये कहा—"देव ! आपकी इस दयालुता के लिये हार्दिक धन्यवाद, किन्तु आपने पहचानने में भूल की, न तो मैं असहाय ही हूँ और न ही निर्धन। आपने देखे नहीं, मेरे पास पाँच ऐसे रत्न हैं, जिनसे चाहूँ तो मैं स्वयं राजाओं जैसा जीवन प्राप्त कर सकती हूँ, मैंने उसकी आवश्यकता अनुभव नहीं की, इसलिये वह पाँच रत्न सुरक्षित रखे हैं।"

कपिल बड़े आश्चर्यचकित हुये, उन्होंने पूछा—"भद्रे ! अनुचित न समझें तो वह रत्न कृपया मुझे भी दिखाएँ। देखूँ तो तुम्हारे पास कैसे रत्न हैं ?"

ब्राह्मणी ने आसन बिछा दिया। बोली—"आप थोड़ी देर बैठें, अभी रत्न दिखाती हूँ।" यह कहकर ब्राह्मणी पुनः चरखा कातने लगी। थोड़ी देर में उसके पाँच बेटे विद्यालय से लौटकर आएँ। उन्होंने माँ के पैर छूकर कहा—"माँ ! हमने आज भी किसी से झूठ नहीं बोला, किसी को कटु

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

थे। नौकरों द्वारा कोड़े बरसाये जाने लगे। सन्त का शरीर चोट खाकर बेहोश हो गया। वह सत्य के लिये मरते दम तक शासन की क्रूरता को सहन करते रहे, पर उस चोर सिपाही के वचन को न भूलें।

श्रम का अमृत

चलते-चलते शाम हो गई तो गुरु नानक पास के गाँव में एक निर्धन किसान के यहाँ ठहर गये। उस गाँव के सेठ ने यह सुना कि आज रात्रि को गुरु नानक यहीं विश्राम कर रहे हैं, तो वह भी उनके दर्शन के लिए गया। उस समय नानक भोजन कर रहे थे।

भोजन में सूखी रोटी और दाल थी। ऐसा रूखा-सूखा भोजन करते नानक को देखा तो उस सेठ को बड़ा बुरा लगा। उसने कहा—"आप ऐसा भोजन क्यों कर रहे हैं ? इस गाँव में तो जो भी कोई संत महात्मा आता है वह मेरे यहाँ ही ठहरता है। भगवान की कृपा से मेरे यहाँ किसी भी प्रकार की कमी नहीं है। मेरा आपसे निवेदन है कि आप भी मेरे यहाँ चलकर ही निवास करिये।"

नानक ने बड़ी शान्ति से उत्तर दिया—"महोदय !' मैं तो श्रम की कमाई से उत्पन्न अमृत खा रहा हूँ। निर्धन व्यक्तियों के शोषण से बने पकवान मुझे पसन्द नहीं हैं।"

अधिक भोले भी न बनो

दो मित्रों ने ईख की। खेत तैयार होने पर बाँटने की बात चली तो भोले मित्र ने कहा—"तुम्हीं बाँट कर दो, जो दोगे वही ले लूँगा।" चालाक मित्र ने कहा कि जड़ मैं लेता हूँ तुम ऊपर का भाग ले लो। उसने स्वीकार किया। अतः गन्ने चालाक मित्र ने ले लिये और ऊपर का भाग जिसे अगोला कहते हैं भोले मित्र के पल्ले पड़ा। संसार में अधिक भोलापन भी हानिप्रद है।

दार्शनिक की विजय

एक दिन देवलोक से एक विशेष विज्ञप्ति निकाली गई। जिसने आकाश, पाताल तथा पृथ्वी तीनों लोकों में हलचल मचा दी। प्रसारण इस प्रकार था—

"अगले सात दिन तक लगातार श्री चित्रगुप्त जी की प्रयोगशाला के मुख्य द्वार पर कोई भी प्राणी असुन्दर वस्तु देकर उसके स्थान पर सुन्दर वस्तु प्राप्त कर सकेगा। शर्त यही है कि वह विधाता की सत्ता में विश्वास रखता हो। इसकी परीक्षा वहीं कर ली जावेगी।"

बस फिर क्या था ? सभी अपनी-अपनी बदलने वाली वस्तुओं की सूची तैयार करने लगे। याद कर-करके सभी ने अपनी उन वस्तुओं को लिख लिया जो उन्हें अरुचिकर या असुन्दर लगती थीं।

निश्चित तिथि पर देवलोक से कई विमान भेजे गये, जो सुविधापूर्वक सभी को देवलोक पहुँचाने लगे। जब सब लोग वहाँ पहुँच गये तो विधाता ने अपने तीसरे नेत्र की योग दृष्टि से तीनों लोकों का अवलोकन किया कि कोई बचा तो नहीं आने से। उन्होंने पाया कि स्वर्ग तथा पाताल में कोई शेष नहीं रहा केवल पृथ्वी पर एक मनुष्य आराम से पड़ा अपनी मस्ती में डूबा आनन्द मग्न है। पास जाकर उससे पूछा—"तात् ! तुमने हमारा आदेश नहीं सुना क्या ? तुम भी चित्रगुप्त के दरबार में क्यों नहीं चले जाते और अपने पास जो कुरूप, कुरुचिपूर्ण वस्तुयें हैं, उन्हें बदलकर अच्छी वस्तुएँ ले आते, जानते नहीं कि अच्छाई की वृद्धि से सम्मान बढ़ता है।"

वह व्यक्ति बड़ी ही नम्रता तथा गम्भीरता से बोला—"सुना था भगवन् ! किन्तु मुझे तो आपकी बनाई इस सृष्टि में कुछ भी असुन्दर नहीं दीखता। जब सभी कुछ आपका बनाया हुआ है—सबमें ही आपकी सत्ता व्याप्त हो रही है, तो असुन्दरता कहाँ रह सकती है वहाँ ? मुझे तो इस सृष्टि का कण-कण सुन्दर दिखाई देता है, प्रभु ! फिर भला मैं किसी को असुन्दर कहने का दुःसाहस कैसे कर सकता हूँ ?"

बाद में पता चला कि उस कसौटी पर केवल वही मनुष्य खरा उतरा था। बाकी सबको निराश ही लौटना पड़ा था।

यह थी एक दार्शनिक की विश्व-विजय। जो संसार की कुरूप से कुरूप वस्तु में भी सौन्दर्य का दर्शन करे, वही सच्चा दार्शनिक है।

पंच-रत्न

महर्षि कपिल प्रतिदिन गंगा-स्नान के लिये जाया करते थे। मार्ग में एक गाँव पड़ता था। कृषक लोग उसमें रहा करते थे। जिस रास्ते से महामुनि जाया करते थे, उसमें एक विधवा ब्राह्मणी की भी झोपड़ी पड़ती थी। महामुनि जब भी उधर से निकलते विधवा या तो चर्खा कातते मिलती या धान कूटते। पूछने पर पता चला कि उसके पति के अतिरिक्त घर में आजीविका चलाने वाला और कोई है नहीं, सारे परिवार का भरण-पोषण उसी को करना पड़ता है।

मुनि कपिल को उसकी इस अवस्था पर बड़ी दया आई। उन्होंने उसके पास जाकर कहा—"भद्रे ! मैं इस आश्रम का कुलपति कपिल हूँ। मेरे कई शिष्य राज्य-परिवारों से सम्बन्ध रखते हैं, तुम चाहो तो तुम्हारे लिए, आजीविका की स्थायी व्यवस्था कराई जा सकती है। तुम्हारी असहाय अवस्था मुझसे देखी नहीं जाती।"

ब्राह्मणी ने आभार व्यक्त करते हुये कहा—"देव ! आपकी इस दयालुता के लिये हार्दिक धन्यवाद, किन्तु आपने पहचानने में भूल की, न तो मैं असहाय ही हूँ और न ही निर्धन। आपने देखे नहीं, मेरे पास पाँच ऐसे रत्न हैं, जिनसे चाहूँ तो मैं स्वयं राजाओं जैसा जीवन प्राप्त कर सकती हूँ, मैंने उसकी आवश्यकता अनुभव नहीं की, इसलिये वह पाँच रत्न सुरक्षित रखे हैं।"

कपिल बड़े आश्चर्यचकित हुये, उन्होंने पूछा—"भद्रे ! अनुचित न समझें तो वह रत्न कृपया मुझे भी दिखाएँ। देखूँ तो तुम्हारे पास कैसे रत्न हैं ?"

ब्राह्मणी ने आसन बिछा दिया। बोली—"आप थोड़ी देर बैठें, अभी रत्न दिखाती हूँ।" यह कहकर ब्राह्मणी पुनः चरखा कातने लगी। थोड़ी देर में उसके पाँच बेटे विद्यालय से लौटकर आएँ। उन्होंने माँ के पैर छूकर कहा—"माँ ! हमने आज भी किसी से झूठ नहीं बोला, किसी को कटु

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

थे। नौकरों द्वारा कोड़े बरसाये जाने लगे। सन्त का शरीर चोट खाकर बेहोश हो गया। वह सत्य के लिये मरते दम तक शासन की क्रूरता को सहन करते रहे, पर उस चोर सिपाही के वचन को न भूलें।

श्रम का अमृत

चलते-चलते शाम हो गई तो गुरु नानक पास के गाँव में एक निर्धन किसान के यहाँ ठहर गये। उस गाँव के सेठ ने यह सुना कि आज रात्रि को गुरु नानक यहीं विश्राम कर रहे हैं, तो वह भी उनके दर्शन के लिए गया। उस समय नानक भोजन कर रहे थे।

भोजन में सूखी रोटी और दाल थी। ऐसा रूखा-सूखा भोजन करते नानक को देखा तो उस सेठ को बड़ा बुरा लगा। उसने कहा—"आप ऐसा भोजन क्यों कर रहे हैं ? इस गाँव में तो जो भी कोई संत महात्मा आता है वह मेरे यहाँ ही ठहरता है। भगवान की कृपा से मेरे यहाँ किसी भी प्रकार की कमी नहीं है। मेरा आपसे निवेदन है कि आप भी मेरे यहाँ चलकर ही निवास करिये।"

नानक ने बड़ी शान्ति से उत्तर दिया—"महोदय !' मैं तो श्रम की कमाई से उत्पन्न अमृत खा रहा हूँ। निर्धन व्यक्तियों के शोषण से बने पकवान मुझे पसन्द नहीं हैं।"

अधिक भोले भी न बनो

दो मित्रों ने ईख की। खेत तैयार होने पर बाँटने की बात चली तो भोले मित्र ने कहा—"तुम्हीं बाँट कर दो, जो दोगे वही ले लूँगा।" चालाक मित्र ने कहा कि जड़ मैं लेता हूँ तुम ऊपर का भाग ले लो। उसने स्वीकार किया। अतः गन्ने चालाक मित्र ने ले लिये और ऊपर का भाग जिसे अगोला कहते हैं भोले मित्र के पल्ले पड़ा। संसार में अधिक भोलापन भी हानिप्रद है।

दार्शनिक की विजय

एक दिन देवलोक से एक विशेष विज्ञप्ति निकाली गई। जिसने आकाश, पाताल तथा पृथ्वी तीनों लोकों में हलचल मचा दी। प्रसारण इस प्रकार था—

"अगले सात दिन तक लगातार श्री चित्रगुप्त जी की प्रयोगशाला के मुख्य द्वार पर कोई भी प्राणी असुन्दर वस्तु देकर उसके स्थान पर सुन्दर वस्तु प्राप्त कर सकेगा। शर्त यही है कि वह विधाता की सत्ता में विश्वास रखता हो। इसकी परीक्षा वहीं कर ली जावेगी।"

बस फिर क्या था ? सभी अपनी-अपनी बदलने वाली वस्तुओं की सूची तैयार करने लगे। याद कर-करके सभी ने अपनी उन वस्तुओं को लिख लिया जो उन्हें अरुचिकर या असुन्दर लगती थीं।

निश्चित तिथि पर देवलोक से कई विमान भेजे गये, जो सुविधापूर्वक सभी को देवलोक पहुँचाने लगे। जब सब लोग वहाँ पहुँच गये तो विधाता ने अपने तीसरे नेत्र की योग दृष्टि से तीनों लोकों का अवलोकन किया कि कोई बचा तो नहीं आने से। उन्होंने पाया कि स्वर्ग तथा पाताल में कोई शेष नहीं रहा केवल पृथ्वी पर एक मनुष्य आराम से पड़ा अपनी मस्ती में डूबा आनन्द मग्न है। पास जाकर उससे पूछा—"तात् ! तुमने हमारा आदेश नहीं सुना क्या ? तुम भी चित्रगुप्त के दरबार में क्यों नहीं चले जाते और अपने पास जो कुरूप, कुरुचिपूर्ण वस्तुयें हैं, उन्हें बदलकर अच्छी वस्तुएँ ले आते, जानते नहीं कि अच्छाई की वृद्धि से सम्मान बढ़ता है।"

वह व्यक्ति बड़ी ही नम्रता तथा गम्भीरता से बोला—"सुना था भगवन् ! किन्तु मुझे तो आपकी बनाई इस सृष्टि में कुछ भी असुन्दर नहीं दीखता। जब सभी कुछ आपका बनाया हुआ है—सबमें ही आपकी सत्ता व्याप्त हो रही है, तो असुन्दरता कहाँ रह सकती है वहाँ ? मुझे तो इस सृष्टि का कण-कण सुन्दर दिखाई देता है, प्रभु ! फिर भला मैं किसी को असुन्दर कहने का दुःसाहस कैसे कर सकता हूँ ?"

बाद में पता चला कि उस कसौटी पर केवल वही मनुष्य खरा उतरा था। बाकी सबको निराश ही लौटना पड़ा था।

यह थी एक दार्शनिक की विश्व-विजय। जो संसार की कुरूप से कुरूप वस्तु में भी सौन्दर्य का दर्शन करे, वही सच्चा दार्शनिक है।

पंच-रत्न

महर्षि कपिल प्रतिदिन गंगा-स्नान के लिये जाया करते थे। मार्ग में एक गाँव पड़ता था। कृषक लोग उसमें रहा करते थे। जिस रास्ते से महामुनि जाया करते थे, उसमें एक विधवा ब्राह्मणी की भी झोपड़ी पड़ती थी। महामुनि जब भी उधर से निकलते विधवा या तो चर्खा कातते मिलती या धान कूटते। पूछने पर पता चला कि उसके पति के अतिरिक्त घर में आजीविका चलाने वाला और कोई है नहीं, सारे परिवार का भरण-पोषण उसी को करना पड़ता है।

मुनि कपिल को उसकी इस अवस्था पर बड़ी दया आई। उन्होंने उसके पास जाकर कहा—"भद्रे ! मैं इस आश्रम का कुलपति कपिल हूँ। मेरे कई शिष्य राज्य-परिवारों से सम्बन्ध रखते हैं, तुम चाहो तो तुम्हारे लिए, आजीविका की स्थायी व्यवस्था कराई जा सकती है। तुम्हारी असहाय अवस्था मुझसे देखी नहीं जाती।"

ब्राह्मणी ने आभार व्यक्त करते हुये कहा—"देव ! आपकी इस दयालुता के लिये हार्दिक धन्यवाद, किन्तु आपने पहचानने में भूल की, न तो मैं असहाय ही हूँ और न ही निर्धन। आपने देखे नहीं, मेरे पास पाँच ऐसे रत्न हैं, जिनसे चाहूँ तो मैं स्वयं राजाओं जैसा जीवन प्राप्त कर सकती हूँ, मैंने उसकी आवश्यकता अनुभव नहीं की, इसलिये वह पाँच रत्न सुरक्षित रखे हैं।"

कपिल बड़े आश्चर्यचकित हुये, उन्होंने पूछा—"भद्रे ! अनुचित न समझें तो वह रत्न कृपया मुझे भी दिखाएँ। देखूँ तो तुम्हारे पास कैसे रत्न हैं ?"

ब्राह्मणी ने आसन बिछा दिया। बोली—"आप थोड़ी देर बैठें, अभी रत्न दिखाती हूँ।" यह कहकर ब्राह्मणी पुनः चरखा कातने लगी। थोड़ी देर में उसके पाँच बेटे विद्यालय से लौटकर आएँ। उन्होंने माँ के पैर छूकर कहा—"माँ ! हमने आज भी किसी से झूठ नहीं बोला, किसी को कटु

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org

www.vicharkrantibooks.org

वचन नहीं कहा, गुरुदेव ने जो सिखाया और बताया उसे परिश्रमपूर्वक पूरा किया है।"

कपिल मुनि को और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं पड़ी, उन्होंने ब्राह्मणी को प्रणाम कर कहा—"भद्रे ! सचमुच तुम्हारे पाँच रत्न बहुमूल्य हैं, ऐसे अनुशासित बच्चे जिस घर में, जिस देश में हों, वह कभी अभावग्रस्त नहीं रह सकता।"

दृढ़ संकल्प

महाप्रलय की रात्रि का चौथा चरण—प्रजापति ब्रह्मा की निद्रा टूटी। परमेश्वर का स्मरण कर पुनः सृष्टि रचना की इच्छा से उन्होंने शय्या-त्याग की और बाहर आये तो देखा कि सृष्टि तो पहले से ही तैयार है।

"जिस सृष्टि की रचना की बात मेरे मन में आ रही थी, वह तो पहले से ही तैयार है।" यह सोचकर ब्रह्मा को बड़ा विस्मय हुआ, उन्होंने सूर्य भगवान से प्रश्न किया—"देव ! मैं यह क्या देख रहा हूँ, सृष्टि निर्माण की क्षमता और अधिकार तो केवल मुझ प्रजापति को ही है, फिर यह सृष्टि किसने रचकर तैयार कर दी ?"

जगदात्मा सविता देवता हँसे और बोले—"महापुरुष ! यह तो आपने एक ओर ही देखा अभी आप आग्नेय, दक्षिण नैऋतय, पश्चिम, वायव्य, उत्तर, ईशान ऊर्ध्व और अधः दिशाओं की ओर भी तो दृष्टिपात करें।"

प्रजापति ने दसों-दिशाओं की ओर घूमकर देखा तो उन्हें सर्वत्र एक-एक सृष्टि के दर्शन हुये। इससे उनका असमंजस और भी गहरा होता गया ! विस्मित ब्रह्मा ने कहा—"भगवन् ! अब और अधिक पहेली मत बुझाइये कृपया यह बताइये कि यह सब सृष्टियाँ रचीं किसने ? मुझ जैसी क्षमता किसी में आई तो कैसे आई ?"

सूर्य भगवान ने बताया—"प्रजापति ! आपकी पूर्व रचित सृष्टि में इन्दु नामक एक ब्राह्मण के बहुत समय तक कोई सन्तान न हुई, तब उसने भगवान् शिव की पूजा की। शिव ने प्रसन्न होकर उन्हें दस पुत्रों का वरदान दिया। समय पाकर इन्दु के दस पुत्र उत्पन्न हुए। उनकी शिक्षा-दीक्षा सम्पन्न हुई ही थी कि एक दिन ब्राह्मण इन्दु की मृत्यु हो गई। पुत्रों ने सोचा कोई ऐसा काम करना चाहिये, जिससे हमारे पिता की कीर्ति अमर हो जाए। उन सबने निर्णय किया कि आज तक किसी मनुष्य ने सृष्टि नहीं रची सो हम दसों को दस ब्रह्मा बनकर अपने पिता की स्मृति में दस सृष्टियों की रचना करनी चाहिये। इस निर्णय के साथ ही वह आपका ध्यान करने बैठ गये। कुछ ही दिन में आपका ध्यान करते-करते उनका संकल्प पक गया, तो उनमें भी आपकी-सी शक्ति आ गई और उसके आगे का चमत्कार आप देख ही रहे हैं।

इतनी कथा सुनाने के बाद महर्षि वशिष्ठ ने कहा—"हे राम ! मन्त्र के साथ ध्यान का यही विज्ञान है। मनुष्य जिसका भी दृढ़ता से ध्यान करता है, वैसी ही शक्ति वाला बन जाता है।"

सत्संकल्प अधूरे नहीं रहते

शीमक कठिन शीत ज्वर से पीड़ित हैं, उनके पुत्र-पौत्रों ने उपचार की अच्छी व्यवस्था की है, तो भी वे ओषधि नाम मात्र को ही ले रहे हैं, उनका कथन है कि ओषधि का काम विष के प्रभाव रोकना भर है, रोग को नष्ट करना नहीं, वह काम तो प्रकृति स्वयं ही करती है। तब हम उसमें हस्तक्षेप क्यों करें ? पर उनके इस कथन का भी वही अर्थ लगाया गया जो अब तक लगाया जाता रहा था अर्थात् शीमक बड़ा कृपण है। घर में अथाह धनराशि होते हुये भी वह न तो अच्छा खा सकता है, न अच्छा पहन सकता है, बाल-बच्चों को देना तो दूर, अब जब उसका अपना ही जीवन संकट में पड़ गया, तब भी पैसे का इतना मोह—छिः शीमक की कृपणता-कलंक नहीं तो और क्या है ?

बहुत बार तो शीमक को कई ऐसे व्यक्ति भी मिले थे, जो उसके मुख पर ही कह गये थे—"शीमक इतनी कृपणता तो न किया करो, कभी कुछ दान, कभी कुछ पुण्य, तीर्थ-यात्रा, ब्राह्मण भोज, नगर भोज कुछ तो ऐसा कर डालो, जिससे यह धन ठिकाने लग जाए ? मर गये तब वह धन किसी और के हाथ लग गया तो तुम्हारी इस कमाई का क्या लाभ ?"

शीमक हँस पड़ते और अच्छा ! अच्छा !! कहकर उस प्रसंग को टाल देते। ऐसे अवसर आते तो दूर दृष्टि डालते हुए शीमक की मुख-मुद्रा देखने से प्रतीत होता था, मानो वे सुदूर भविष्य में कुछ खोजना चाहते हैं, यह आज तक उनके पुत्र परिजन भी नहीं समझ सके थे।

आज जितने चिन्तित शीमक बैठे थे, उससे अधिक विकल आचार्य महीधर दिखाई दे रहे थे। उन्होंने बड़े परिश्रम के साथ वेदों का भाष्य किया था। भाष्य भी ऐसा कि जो भी विद्वान उसे पढ़ता धन्य हो जाता, किन्तु धन के अभाव के कारण आज स्वयं महीधर इतने निराश हो गये थे कि उन्हें अपना इतना सारा तप ही निरर्थक लगने लगा था। वे चाहते थे कि वेदों का यह भाष्य घर-घर पहुँचे ताकि बौद्धों के प्रभाव को रोका जा सके, पर उनकी आकांक्षा, आकांक्षा ही रही। कोई उपाय बन नहीं सका।

शीमक ने समाचार सुना तो चुपचाप घर से निकल पड़ा। कहाँ गया शीमक, कई दिन तक खोज की गई पता न चला। बहुत दिन बाद जब महीधर के वेद-भाष्य घर-घर पहुँचने लगे, तब लोगों ने इतना भर सुना कि कोई एक देवपुरुष उनके पास आया था और उसने अपनी सारी सम्पत्ति उन्हें देकर कहा था—"आचार्य प्रवर ! सदिच्छाएँ धन के अभाव में रुकती नहीं, यह रही मेरी जीवन भर की कमाई इसे काम में लेकर मेरा जीवन धन्य करें।"

उसके बाद फिर उस महापुरुष के कभी दर्शन नहीं हुए। कहते हैं, वह वानप्रस्थ ग्रहण कर अन्तिम साधना के लिये अन्तेवासी हो गया था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धन यहाँ न सही कहीं और सही

एक व्यक्ति के पास बहुत धन था, पर स्वभाव से वह था कंजूस। न स्वयं खा-पी सके और न किसी को दे ही सके। घर में अपने धन को इसलिये नहीं रखता था कि कोई चोर-डाकू न चुरा ले। अतः गाँव के बाहर एक जंगल में गड्ढा करके अपना सारा धन गाड़ आया। दूसरे-तीसरे दिन जाता और उस स्थान को चुपचाप देख आता। उसे अपने पर बड़ा गर्व था।

एक बार एक चोर को शक हुआ, वह कंजूस के पीछे-पीछे चुपचाप गया और छिपकर देख आया। उसे समझते देर न लगी कि इस स्थान पर अवश्य कोई मूल्यवान् वस्तु दबी है। जब कंजूस चक्कर लगाकर घर चला आया तो उस चोर ने खुदाई करके सारा धन प्राप्त कर लिया और वहाँ से रफूचक्कर हो गया।

दूसरे दिन जब वह कंजूस फिर अपने छिपे धन को देखने गया तो उसे जमीन खुदी हुई दिखाई दी। आस-पास मिट्टी का ढेर लग रहा था और बीच में एक खाली गड्ढा था। उसका सारा धन जा चुका था। इतनी बड़ी हानि वह सहन नहीं कर सका। माथा पकड़कर जोर से रोने-चिल्लाने लगा—"हाय मैं तो लुट गया, मेरे सारे जीवन की कमाई चोर ले गये।"

रोना-चिल्लाना सुनकर जंगल में रहने वाले आस-पास के कई आदमी आ गये। उन्होंने पूछकर सारी स्थिति जानी। एक आदमी ने समझाते हुये कहा—"सेठ जी ! धन तो आपके काम पहले भी न आया था और न आपके जीवन में आ सकता था। हाँ उस पर आपका अधिकार अवश्य था और उसे यहाँ छिपाकर रख छोड़ा था। अब यदि यहाँ से कहीं और जगह चला गया, तो आपकी कौन-सी हानि हो गई, क्योंकि आपके लिए तो वह बेकार ही था। ऐसी स्थिति में दुःखी होने की क्या आवश्यकता है ?"

स्वर्ग क्या ? नरक क्या ?

स्वर्ग और नरक करनी के फल हैं, एक सन्त ने अपने शिष्य को समझाया पर शिष्य की समझ में बात चढ़ी नहीं। तब उसका उत्तर देने के लिये अगले दिन सन्त शिष्य को लेकर एक बहेलिये के पास पहुँचे। वहाँ जाकर देखा व्याध कुछ जंगल के निरीह पक्षी पकड़कर लाया था, वह उन्हें काट रहा था, उसे देखते ही शिष्य चिल्लाया—"महाराज ! यहाँ तो नरक है, यहाँ से शीघ्र चलिये।"

सन्त बोले—"सचमुच इस बहेलिये ने इतने जीव मार डाले, पर आज तक फूटी कौड़ी इसे न जुड़ी, न जुड़ेगी। कपड़ों तक के पैसे नहीं, इसके लिये यह संसार भी नरक है और परलोक में तो इतने मारे गये जीवों की तड़पती आत्माएँ उसे कष्ट देंगी, उसकी तो कल्पना भी नहीं हो सकती।"

सन्त दूसरे दिन एक साधु की कुटी पर पधारे। शिष्य भी साथ थे, वहाँ जाकर देखा, साधु के पास है तो कुछ नहीं पर उनकी मस्ती का कुछ ठिकाना नहीं, बड़े सन्तुष्ट, बड़े प्रसन्न दिखाई दे रहे थे। सन्त ने कहा—"वत्स ! यह साधु इस जीवन में कष्ट का, तपश्चर्या का जीवन जी रहे हैं, तो भी मनमें इतना आह्लाद—यह इस बात का प्रतीक है कि इन्हें पारलौकिक सुख तो निश्चय ही है।"

सायंकाल सन्त एक वेश्या के घर में प्रवेश करने लगे, तो शिष्य चिल्लाया—"महाराज ! यहाँ कहाँ ?" सन्त बोले—"वत्स ! यहाँ का वैभव भी देख लें। मनुष्य इस सांसारिक सुखोपभोग के लिये अपने शरीर, शील और चरित्र को भी जिस तरह बेचकर मौज उड़ाता है, पर शरीर का सौन्दर्य नष्ट होते ही कोई पास नहीं आता, यह इस बात का प्रतीक है कि इसके लिये यह संसार स्वर्ग की तरह है पर अन्त इसका वही है, जो उस बहेलिये का था।"

अन्तिम दिन वे एक सद्गृहस्थ के घर रुके। गृहस्थ बड़ा परिश्रमी, संयमशील, नेक और ईमानदार था, सो सुख-समृद्धि की उसे कोई कमी नहीं थी, वरन् वह बढ़ ही रही थी। सन्त ने कहा—"यह वह व्यक्ति है, जिसे इस पृथ्वी पर भी स्वर्ग है और परलोक में भी।"

शिष्य ने इस तत्व-ज्ञान को भली प्रकार समझ लिया कि स्वर्ग और नरक वस्तुतः करनी का फल है।

मन नहीं लगता

नव-दीक्षित शिष्य ने कहा—"गुरुदेव ! उपासना में मन नहीं लगता। भगवान की ओर चित्त दृढ़ नहीं होता।"

गुरु ने गम्भीर दृष्टि डालकर शिष्य को देखा और जैसे कोई बात समझ में आ गई हो, बोले—"सच ही कहते हो वत्स ! यहाँ ध्यान लगेगा भी नहीं। अन्यत्र चलकर साधना करेंगे, वहाँ ध्यान लगेगा। आज सायंकाल ही यहाँ से प्रस्थान करेंगे।"

"सायंकाल !" शिष्य कुछ चिन्तित स्वर में प्रश्न कर बैठा, जिसका गुरु ने कोई उत्तर न दिया। सूर्यास्त के साथ ही वे दोनों एक ओर चल पड़े। गुरु के हाथ में मात्र एक कमण्डल था, शिष्य के हाथ में थी एक झोली जिसे वह बहुत यत्नपूर्वक सँभाले हुये चल रहा था।

मार्ग में एक कुआँ आया। शिष्य ने शौच की आशंका व्यक्त की। दोनों रुक गये। बहुत सावधानी से उसने झोला गुरु के पास रखा और शौच के लिये चल दिया। जाते-जाते उसने कई बार झोले की ओर दृष्टि डाली।

"गड़ाम् !" एक तीव्र प्रतिध्वनि भर सुनाई दी और झोले में पड़ी कोई वस्तु कुएँ में जा समाई। शिष्य दौड़ा हुआ आया और चिन्तित स्वर में बोला—"भगवन् ! झोले में सोने की ईंट थी, सो क्या हुई ?"

"कुएँ में चली गई, अब कहें तो चलें, कहें तो फिर वहीं लौट चलें जहाँ से आये हैं, अब ध्यान न लगने की चिन्ता कहीं न रहेगी।"

एक दीर्घ श्वाँस छोड़ते हुये शिष्य ने कहा—"सच ही गुरुदेव ! आसक्ति का मन से परित्याग किये बिना कोई भी ईश्वर में मन नहीं लगा सकता।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दीपक जलाओ, प्रकाश फैलाओ

सायंकाल होती तो घर के सब काम-काज ठप्प पड़ जाते। आग का 'अलाव' जलाकर सब बैठते और अन्धकार को मनमाना कोसते। कोई कहता भगवान को भी लगता है, बुद्धि नहीं थी, अन्धकार बनाकर रख दिया, तो कोई कहता, इस अन्धकार में तो दम घुटता है, भगवान ने हमारे साथ बड़ा अत्याचार किया। यह क्रम वर्षों चलता रहा पर उस परिवार के लोगों को अन्धकार से बचने का उपाय न सूझा।

बड़े बेटे का हुआ विवाह तब आई बहू। घर के सदस्यों में एक की वृद्धि हुई। पर यह छोटी-सी वृद्धि भी बहुत बड़ी थी, क्योंकि बहू पढ़ी-लिखी और समझदार थी।

पहला दिन पहली साँझ। उसके पति ने कहा—"घर में इतना अंधकार है प्रिये ! तुम्हारा स्वागत कैसे करें ? इस दुष्ट अन्धकार को भगवान न बनाता तो उसका क्या बिगड़ जाता ?"

पति के भोलेपन पर पत्नी को हँसी आ गई। उसने कहा—"मेरे देवता ! अन्धकार कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं, प्रकाश के न होने का ही दूसरा नाम अन्धकार है।" पति था अनपढ़ उसे तब भी कुछ समझ में नहीं आया।

फिर तो बहू उठी और एक दीपक लाई। उसमें घर में से तेल डाला फिर थोड़ी रुई लाई। बत्ती बनाकर दिये में डाली और फिर उसे आग से जला दिया। वर्षों से घिरा घर का ढेर सारा अन्धकार पल भर में सिमटकर न जाने कहाँ अस्त हो गया ? घर के सब लोग हर्षातिरेक से झूम उठे, सबने बहू की आरती उतारी और उसका दही, मिश्री से स्वागत किया।

आज का संसार ही अँधेरे में भटकते लोग हैं, उन्हें कोसने वाले वे लोग हैं, जो आज समाज के नेता हैं, वह उन जाग्रत आत्माओं का प्रतीक है, जो संसार की वस्तुस्थिति को समझते हैं। अभी तक ऐसे प्रबुद्ध व्यक्तियों का समाज से विवाह नहीं हुआ, जब आज के विचारशील लोग समाज से विवाह कर लेंगे अर्थात् अन्धकार में भटकते हुये लोगों को प्रकाश देने की ठान लेंगे, तो फिर अन्धकार का ठहरना कठिन हो जायेगा।

संकल्प की सुगन्ध

भिशक अनंगपाल के लिये यह कोई नई बात नहीं थी। वे जिस जल से स्नान करते थे, उसमें तो प्रत्येक ही दिन कोई न कोई इत्र, चन्दन, अगरु, केवड़ा या गुलाब की सुबास मिलाई जाती थी, पर जो मादकता और मधुरता आज के जल में थी, वह कभी भी नहीं मिली थी।

विस्मित महाराज भिशक अनंगपाल ने परिचारिका को बुलाया और पूछा—"आज जल-कलश में कौन-सी सुबास मिलाई गई है ?" परिचारिका किसी अज्ञात भय से स्तब्ध हो गई। उसने कहा—"क्षमा करें, महाराज ! आज एक नई परिचारिका, जो कल ही नियुक्त की गई है, ने स्नान का प्रबन्ध किया था, आज्ञा हो, तो सेवा में उसे ही उपस्थित करूँ।"

महाराज भिशक अनंगपाल ने उस दूसरी परिचारिका को बुलाकर पूछा तो वह सहसा बोली—"महाराज ! उस जल में तो कुछ भी नहीं मिलाया गया। हाँ वह जल मैं स्वयं ही अपने साथ अपने मायके से लाई थी। मायके से।" महाराज की उत्सुकता और भी बढ़ी, उन्होंने पूछा—"बताओ परिचारिके तुम्हारा पितृगृह कहाँ है, क्या यह जल किसी कुएँ का है या पद्म-पुष्पित किसी सरोवर का ?"

"नहीं, नहीं महाराज ! ऐसे किसी स्थान का जल नहीं था वह। मेरा घर गन्धमादन पर्वत की तलहटी पर है और यह जल जो मैं अपने साथ लाई ·····।"

"वह तुम्हारे पिता का तैयार किया हुआ है भद्रे ! अच्छा यह तो बताओ, तुम्हारे पिता गन्धी तो नहीं हैं" महाराज ने बीच काटते हुये पूछा। परिचारिका बोली—"महाराज ! यह जल मेरे पिता का तैयार किया हुआ नहीं हैं। मेरे ग्राम के समीप एक आश्रम है। वहाँ एक योगी रहते हैं। आश्रम के समीप ही एक कुण्ड है, जो वर्ष भर जल से भरा रहता है, यह जल उसी कुण्ड का है। मैं उसे विशेष रूप से आपके लिये ही लाई थी।"

भिशक अनंगपाल की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। नव-परिचारिका को पर्याप्त पारितोषिक दे वे उस आश्रम की ओर चल पड़े। दो दिन की अनवरत् यात्रा के बाद सब लोग उस आश्रम में जा पहुँचे। महाराज ने वहाँ पहुँचते ही अनुभव किया कि यहाँ की तो प्रत्येक वस्तु उसी सुगन्ध से परिपूर्ण दिखाई देती है। महाराज बड़े आश्चर्यचकित हुए। सत्वर ही योगी को प्रणाम कर उन्होंने पूछा—"महात्मन् ! आपके आश्रम में यह भीनी-भीनी सुगन्ध कहाँ से आ रही है ?"

योगी ने हँसकर कहा—"महाराज ! एक वृक्ष यहाँ से सौ योजन दूरी पर इसी पर्वत पर है, मैं सदैव उसका ध्यान करता रहता हूँ, आश्रम उसी की सुगन्ध से अहर्निशि गूँजा करता है।"

"केवल स्मरण मात्र से ऐसा होना बड़ी कठिन बात है महात्मन् !" "आप समझ भी नहीं सकते, यह सब संकल्प का चमत्कार है। संकल्प-बल से व्यक्ति अपने जीवन को ही नहीं, प्रत्युत अपने वातावरण को भी जैसा चाहें, वैसा ही बना सकते हैं, महाराज !" महाराज को वह पुष्प तो नहीं मिल सका, पर जो तत्त्व-ज्ञान लेकर लौटे वह उससे भी महत्त्वपूर्ण था।

आसक्ति ही बन्धन

काकभुशुण्डि जी के मन में एक बार यह जानने की इच्छा हुई कि क्या संसार में ऐसा भी कोई दीर्घजीवी व्यक्ति है, जो विद्वान भी हो, पर उसे आत्म-ज्ञान न हुआ हो ? इस बात का पता लगाने के लिये वे महर्षि वशिष्ठ से आज्ञा लेकर निकल पड़े।

ग्राम ढूँढ़ा, नगर ढूँढ़े, वन और कन्दराओं की खाक छानी तब कहीं जाकर विद्याधर नामक ब्राह्मण से भेंट हुई, पूछने पर मालूम हुआ कि उनकी आयु चार कल्प की हो चुकी है और उन्होंने वेद शास्त्र का परिपूर्ण अध्ययन किया है। शास्त्रों के श्लोक उन्हें ऐसे कंठस्थ थे, जैसे तोते को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

राम-नाम। किसी भी शंका का समाधान वे मजे से कर देते थे।

काकभुशुण्डि जी को उनसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई, किन्तु उन्हें बड़ा आश्चर्य यह था कि इतने विद्वान होने पर भी विद्याधर को लोग आत्म-ज्ञानी क्यों नहीं कहते ?

यह जानने के लिये काकभुशुण्डि जी चुपचाप विद्याधर के पीछे घूमने लगे। विद्याधर एक दिन नीलगिरि पर्वत पर वन-विहार का आनन्द ले रहे थे, तभी उन्हें कण्वद की राजकन्या आती दिखाई दी, नारी के सौन्दर्य से विमोहित विद्याधर प्रकृति के उन्मुक्त आनन्द को भूल गये, कामावेश ने उन्हें इस तरह दीन कर दिया जैसे मणिहीन सर्प। वे राजकन्या के पीछे इस तरह चल पड़े जैसे मृत पशु की हड्डियाँ चाटने के लिये कुत्ता। उस समय उन्हें न शास्त्र का ज्ञान रहा, न पुराण का। राजकन्या की उपेक्षा से भी उन्हें बोध नहीं हुआ। वे उसके पीछे लगे चले गये, सिपाहियों ने समझा यह कोई विक्षिप्त व्यक्ति है, इसलिए उन्हें पकड़कर बन्दीगृह में डाल दिया।

कारागृह में पड़े विद्याधर से काकभुशुण्डि ने पूछा—"भुनिवर ! आप इतने विद्वान होकर भी यह नहीं समझ सके कि आसक्ति ही आत्म-ज्ञान का बन्धन है। यदि आप कामासक्त न होते, तो आज यह दुर्दशा क्यों होती ?"

यह सुनते ही विद्याधर के ज्ञान नेत्र खुल गये और उन्हें आत्म-ज्ञान हो गया।

विवेक ही बड़ा है

एक बार हनुमानजी की भेंट अर्जुन से हुई। हनुमान राम के भक्त थे, अर्जुन श्री कृष्ण के। दोनों में बहस छिड़ गई। हनुमानजी कहने लगे राम बली हैं, अर्जुन कहते श्रीकृष्ण बली हैं।

बहस का अन्त न होते देख परीक्षा करने का निश्चय हुआ और शर्त तय हुई कि जो हारे वह आत्महत्या कर ले।

अर्जुन ने श्रीकृष्ण का ध्यान किया और तुरन्त समुद्र में एक विशाल पुल बाँध दिया और हनुमानजी से बोले—"अब यदि तुम्हारे राम बली हैं, तो इस पुल को तोड़ दो। यदि न तोड़ सके तो राम का पराक्रम घटिया माना जायेगा।"

हनुमानजी जोश में भर गये। उन्होंने शरीर का शतयोजन विस्तार किया और पुल पर कूद पड़े। भक्तों के इस झगड़े का पता भगवान को हुआ तो वे बहुत चिन्तित हुए। यदि हनुमान की रक्षा करते हैं, तो अर्जुन का अन्त होता है। अर्जुन जीतते हैं, तो हनुमान की मृत्यु निश्चित है। सोच-विचार कर उन्होंने स्वयं ही अपना शरीर पुल के नीचे लगा दिया। हनुमानजी ने जैसे ही अपना कदम बढ़ाया कि उनके भार से भगवान का शरीर फट गया और खून बहने लगा। हनुमानजी ने राम को पहचाना, वे कूदकर उनके पास पहुँचे और दुःख करने लगे। अर्जुन ने कृष्ण रूपी भगवान् को पहचाना वे भी दौड़कर विलाप करने लगे। भगवान ने समझाया—"अच्छा होता आप लोग विवेक से काम लेते। मैं एक हूँ, मेरे ही अनेक रूप संसार में फैले हैं। इसलिये किसी से झगड़ा नहीं करना चाहिए। कोई विवाद आए तो उसे विवेक से हल कर लेना चाहिए।"

'जो सिर काटे आपना'

ज्ञान प्राप्ति के लिए अति उत्सुक एक भक्त के आग्रह से एक दिन कबीर ने कहा—"वत्स, पैर के नीचे की शिला को उठा।" शिष्य ने तुरन्त शिला उठाई। शिला के नीचे भोंयार था। दोनों भीतर घुसे। अन्दर एक दरवाजे पर लिखा था। 'अपने कान काटने वाला इस दरवाजे को खोल सकेगा।'

कबीर ने अपने दोनों कान काट डाले। वह दरवाजा खुला और कबीर अन्दर गये और पुनः दरवाजा बन्द हो गया। भक्त ने खोलने का प्रयत्न किया तो अन्दर से आवाज आई कि मैंने जैसा किया वैसा करने पर ही द्वार खुलेगा। भक्त भी कान काटकर अन्दर गया। दूसरे दरवाजे पर इसी प्रकार लिखा था। कबीर नाक काटकर अन्दर घुस गये। भक्त ने भी अनुसरण किया और वह अन्दर दाखिल हुआ। तीसरे पर लिखा था 'जिसको अन्दर आना हो वह पहले अपना सिर काटे' कबीर तो सिर उड़ा कर अन्दर चले गये पर भक्त बाहर ही रहा। नाक, कान और मस्तक जाने के बाद क्या उपयोग ? वह इसी विचार में डूबा हुआ था कि उसे नींद आ गई।

जब नींद खुली तो वहाँ दूर से कबीर आते दिखाई दिये। "क्या मेरी राह देख रहे हो ?" कबीर ने पूछा। "मैं तो कुछ समझ ही नहीं सका, गुरुदेव !" "यह रहस्य सरलता से समझ में आने लायक नहीं है।" "तो क्या गुरुदेव, मेरे नाक-कान अब सदा के लिए गये ?"

"वे तो गये ही, इसमें क्या सन्देह ?"

"पर भगवान ! आपके तो कान-नाक पूर्ववत् हो गये हैं। मेरे भी पूर्ववत् कीजिए न प्रभू !"

'यह कैसे हो सकता है ? सिर काटा होता, तो सब अंग मेरे समान पूर्ववत् हो जाते।'

मोक्ष के सन्मुख राज्य तुच्छ

राजा विक्रमादित्य के राज्य में एक सदाचारी, संतोषी ब्राह्मण रहता था। वह निर्धन था। स्त्री की प्रेरणा से धन प्राप्ति के निमित्त घर से निकला तो जंगल में एक महात्मा से भेंट हुई। उन्होंने इसे चिन्तित देख आश्वासन दिया और विक्रमादित्य को पत्र लिखा कि तुम्हारी इच्छा पूर्ति का अब समय आ गया है। अपना राज्य इस ब्राह्मण को देकर यहाँ चले आओ।

वह पत्र विक्रमादित्य ने पढ़ा, तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और ब्राह्मण को राज्य सौंपने की तैयारी की। ब्राह्मण ने राजा को राज्य-त्याग के लिए इतना उत्सुक और अत्यन्त आनन्द विभोर देखा तो सोचने लगा कि जब राजा ही राज्य सुख को लात मारकर योगी के पास जाने में विशेष आनन्द अनुभव कर रहे हैं, तो योगी के पास अवश्य ही कोई राज्य से भी बड़ा सुख है। अतः उसने राजा से कहा कि महाराज ! मैं अभी महात्माजी के पास पुनः जा रहा हूँ लौटकर राज्य लूँगा। यह कहकर योगी के पास पहुँचकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बोला कि भगवन् ! राजा तो राज्य त्याग कर आपके पास आने के लिये नितांत उतावला और हर्ष विभोर हो गया, इससे जान पड़ता है कि आपके पास राज्य से भी बड़ी कोई वस्तु है, मुझे वही दीजिए।

महात्मा ने प्रसन्न हो उसे पूर्ण योगक्रिया और ब्राह्मण पूर्ण तपस्वी होकर मोक्ष सुख पा गया। मोक्ष सुख से राज्य सुख नितांत तुच्छ है।

ईश्वर प्राप्ति का अधिकार

गुरुकुल का प्रवेशोत्सव समाप्त हो चुका था, कक्षाएँ नियमित रूप से चलने लगी थीं। योग और अध्यात्म पर कुलपति स्कन्धदेव के प्रवचन सुनकर विद्यार्थी बड़ा संतोष और उल्लास अनुभव करते थे।

एक दिन प्रश्नोत्तर-काल में शिष्य कौस्तुभ ने प्रश्न किया—"गुरुदेव ! क्या ईश्वर इसी जीवन में प्राप्त किया जा सकता है ?"

स्कन्धदेव ! एक क्षण चुप रहे। कुछ विचार किया और बोले—"इस प्रश्न का उत्तर तुम्हें कल मिलेगा और हाँ आज सायंकाल तुम सब लोग निद्रादेवी की गोद में जाने से पूर्व १०८ बार वासुदेव मंत्र का जप करना और प्रातःकाल उसकी सूचना मुझे देना।"

प्रातःकाल के प्रवचन का समय आया। सब विद्यार्थी अनुशासनबद्ध होकर आ बैठे। कुलपति ने अपना प्रवचन प्रारम्भ करने से पूर्व पूछा—"तुममें से किस-किस ने कल सायंकाल सोने से पूर्व कितने-कितने मंत्रों का उच्चारण किया ?" सब विद्यार्थियों ने अपने-अपने हाथ उठा दिये। किसी ने भी भूल नहीं की थी। सबने १०८-१०८ मंत्रों का जप और भगवान का ध्यान कर लिया था।

किन्तु ऐसा जान पड़ा—स्कन्धदेव का हृदय क्षुब्ध है, वे संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। कौस्तुभ नहीं था, उसे बुलाया गया। स्कन्धदेव ने अस्त-व्यस्त कौस्तुभ के आते ही प्रश्न किया—"कौस्तुभ ! क्या तुमने भी १०८ मंत्रों का उच्चारण सोने से पूर्व किया था ?"

कौस्तुभ ने नेत्र झुका लिए विनीत वाणी और सौम्य मुद्रा में उसने बताया—"गुरुदेव ! अपराध क्षमा करें—मैंने बहुत प्रयत्न किया किन्तु जब जप की संख्या गिनने में चित्त चला जाता तो भगवान का ध्यान नहीं रहता था और जब भगवान का ध्यान करता तो गिनती भूल जाता। रात ऐसे ही गई और वह व्रत पूर्ण न कर सका।"

स्कन्धदेव मुसकराये और बोले—"बालको ! कल के प्रश्न का यही उत्तर है। जब संसार के सुख, सम्पत्ति भोग की गिनती में लग जाते हैं, तो भगवान् का प्रेम भूल जाता है। उसे तो कोई भी पा सकता है, बाह्य कर्मकांड से चित्त हटाकर उसे कोई भी प्राप्त कर सकता है।"

आत्मज्ञान की प्राप्ति

महेन्द्र पर्वत पर गंगा के सुरम्य तट पर दीर्घतपस् नाम के एक ब्राह्मण अपनी धर्म-पत्नी सहित निवास करते थे। दीर्घतपस स्वाध्यायशील धार्मिक और ईश्वर परायण महात्मा थे, उनकी धर्म-पत्नी भी सुशील स्त्री थी। समय पाकर उनके उन्हीं के गुणों वाले दो पुत्र जन्मे। बड़े का नाम पुण्य और छोटे का नाम पावन रखा गया।

पुण्य बड़ा तपस्वी था। थोड़े ही समय में उसने आत्म-ज्ञान प्राप्त कर लिया। अब उसे संसार में किसी प्रकार का न राग था न द्वेष, मोह न आसक्ति वह निष्काम भावना से सांसारिक कर्तव्यों का पालन करता।

पावन शिक्षित था सुशील था, किन्तु उसे आत्म-बोध न हुआ। एक दिन दीर्घतपस् का देहान्त हो गया, उससे पुण्य को दुःख न हुआ पर पावन ने कई दिन पिता की स्मृति में रो-रो कर बिताये। समय का संयोग कुछ दिन में ही माता का भी देहावसान हो गया। तब तो पावन पर एक तरह से वज्रपात ही हो गया। मारे दुःख के उसने कई दिन तक अन्न भी ग्रहण नहीं किया। पुण्य ही ऐसा था जिसे न तो पिता की मृत्यु का दुःख हुआ और न माता के निधन का, उसने दोनों का मृतक संस्कार और श्राद्ध तर्पण शास्त्रीय विधान से सम्पन्न किया।

काफी समय बीत जाने पर भी पावन का शोक जब समाप्त न हुआ तो एक दिन पुण्य ने उसे समीप बुलाकर समझाया—"तात् ! हमारे माता-पिता ने इस लोक में धर्म और पुन्य का पर्याप्त अर्जन किया, सो वे जीवन मुक्त हो गये। शरीर तो वस्त्र की तरह है आत्मा अनेक शरीर बदलती रहती है,' उसके लिए दुःख किस बात का ?" इतना समझाने पर भी पावन को बोध न हुआ तो पुण्य ने योग-दृष्टि से उसे उसके कई जन्मों का हाल दिखाया। वही पावन दशार्णव देश में वानर, तुषार में राजपुत्र, त्रिगर्त देश में गधा और शाल में वन पक्षी के रूप में जन्मा था। सौ जन्मों में अनेक योनियों का विवरण देखकर पावन का मोह छूटा और तब उसे आत्म-ज्ञान की प्राप्ति हुई।

सिद्धि से पहले

एक आवश्यक राज-काज के लिए मंत्री की तुरन्त आवश्यकता पड़ी। उन्हें बुलाया गया तो मालूम पड़ा कि वे पूजा में बैठे हैं, इस समय न आ सकेंगे। काम जरूरी था राजा ने स्वयं ही मंत्री के पास पहुँचना उचित समझा। राजा के पहुँचने पर भी मंत्री उपासना पूरी होने तक जप ध्यान में बैठे ही रहे। पूजा समाप्त होने पर जब मंत्री उठे तो राजा ने पूछा—"भला ऐसी भी कौन महत्त्वपूर्ण बात है जिसके लिए तुम मेरी उपेक्षा करके भी लगे रहे ?"

मंत्री ने कहा—"राजन् ! मैं गायत्री जप कर रहा था। यह महामंत्री लोक और परलोक में कल्याण के सब साधन जुटाता है। इसका फल बहुत बड़ा है। इसी की मैं तन्मय होकर उपासना करता हूँ।" राजा ने कहा—"तब तो इसे हम भी सीखेंगे और वैसा ही लाभ हम भी उठावेंगे।" मंत्री ने कहा—"सीखने में हर्ज नहीं, पर आपको वैसा लाभ न मिल सकेगा जैसा बताया गया है। श्रद्धा और विश्वास के बिना मंत्र भी फल नहीं देते। मंत्र सीखने से पहले आपको श्रद्धा की साधना करनी चाहिये।"

राजा जिस काम से आये थे वह मन्त्रणा करके वे वापस चले गये, पर उस मंत्र की बात उनके मस्तिष्क में जमी ही रही, जिसे मंत्री इतना महत्त्व देते हैं। एक दिन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

राजा ने प्रसंगवश मंत्री से पूछा—"श्रद्धा के बिना मन्त्र क्यों फल नहीं देता ?"

मंत्री ने कुछ उत्तर न दिया चुप हो गये, पर थोड़ी देर में एक बालक कर्मचारी उधर से निकला तो मन्त्री ने उसे पास बुलाकर आज्ञा दी—"राजा से गाल पर एक चपत लगा दो।"

बालक इस आज्ञा को सुनकर सन्न रह गया, पर उसने वैसा किया नहीं। मंत्री ने दो-तीन बार वही आज्ञा दी, तो भी उस लड़के ने मंत्री का कहना नहीं माना और चुपचाप खड़ा रहा।

"मंत्री की असभ्यता देखकर राजा को क्रोध आया और उसने लड़के को आज्ञा दी कि इस मंत्री के गाल पर दो चपत लगाओ। कर्मचारी ने तुरन्त मंत्री के गाल पर दो चपत जड़ दिये।

मंत्री ने नम्रतापूर्वक कहा—"राजन्, यही आपके प्रश्न का उत्तर है। लड़के ने मेरा कहना नहीं माना उसने आपको वैसी आज्ञा का अधिकारी और मुझे अनधिकारी माना। मंत्रों की भी यही बात है, वे श्रद्धावान और सत्पात्र की ही इच्छा पूरी करते हैं। इसलिये आपको अधिकारी बनने के लिए मैंने कहा था और मंत्र जप से भी पहले श्रद्धा सदाचार को अपनाने की प्रार्थना की थी।

एक विचार को दूसरे पर टिकने न दो

महात्मा ईसा कहीं जा रहे थे कि मार्ग में उन्होंने अपने मैथ्यू नामक शिष्य को देखा। उसके पिता की मृत्यु हो गई थी और वह उसे रो-रोकर दफन कर रहा था।

मैथ्यू ने जैसे ही ईसा को देखा, वैसे ही दौड़कर उनके पास आया और आस्तीन चूम कर तुरन्त ही अपने पिता के शव की ओर लौट पड़ा।

ईसा ने समझा कि इसकी ममता नहीं मरी। अतः उन्होंने मैथ्यू को पुकारकर अपने पास बुलाया और उसे आज्ञा दी—"जिसकी मृत्यु हो गई वह भूत का साथी हुआ, तू उसकी लाश से मोह कर, वर्तमान से दूर क्यों होना चाहता है ?"

जब तक मैथ्यू कुछ समझे तब तक ईसा फिर बोल पड़े—"समय बड़ा बलवान है; इसने अनेक लाशों को यत्नपूर्वक दफनाया है। उसके लिए तेरे पिता की लाश का दफनाना कुछ कठिन कार्य नहीं है।"

मैथ्यू इस असमंजस में था कि वह इस समय क्या करे ? तभी उसने ईसा की स्पष्ट आज्ञा सुनी—"भूत को देखता रहेगा, तू यहाँ से मेरे साथ आ।"

शिष्य को गुरु की आज्ञा माननी पड़ी और वह लाश को वहीं पड़ी छोड़कर उनके साथ चल दिया।

संयोग की बात है कि जब यह दोनों आगे बढ़े तो ईसा का एक अन्य शिष्य भी उन्हें अपने पिता की लाश दफनाता हुआ मिला, परन्तु जैसे ही उसने अपने गुरु को देखा वैसे ही दौड़कर उनके पास पहुँचा और उनके साथ चल दिया। ईसा ने उसे देखा तो बोले—"अरे तू क्यों चला आ रहा है ?"

शिष्य ने साथ चलने का हठ किया तो ईसा बोले—"ऐसी कोई जल्दी नहीं है। मैं आगे के गाँव में ठहरूँगा। तुम लाश को दफनाकर वहीं चले आना।"

वह शिष्य तो चला गया, परन्तु एक समान घटनाओं पर दो प्रकार की व्यवस्था सुनकर मैथ्यू को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने गुरु से पूछा—"इसका क्या कारण है गुरुदेव ! आपने मुझे तो अपने पिता की लाश को दफनाने भी नहीं दिया और उसे अपने पिता को दफन करने की आपने स्वयं आज्ञा दी। एक प्रकार की घटनाओं पर ही दो प्रकार की आज्ञा क्यों ?"

ईसा ने उसे समझाया—"मैथ्यू ! मैं जो कुछ कहता हूँ वही मेरे अन्तर की आवाज है और वह आवाज एक निश्चित मत बनाकर निकलती है। जीवन की धारा को एक घाट पर बाँधा जाना कभी सम्भव नहीं है। धर्म यह कहता है कि एक विचार को दूसरे विचार पर मत टिकने दो, परन्तु ऐसा करना लोहे के बंधन को दृढ़ करने के समान है और मनुष्य का यथार्थ बन्धन लौह-श्रृंखला नहीं, कच्चा सूत है !"

अतः जो राग में फँसा है, उसे वैराग्य का उपदेश दो, परन्तु जो राग मुक्त है, उसे वैराग्य का उपदेश देने से कोई लाभ नहीं।

बुरी संगति से दुर्गति

एक चित्रकार को किसी अत्यन्त सौम्य किशोर का चित्र बनाना था। ऐसे लड़के की तलाश में चित्रकार देश-विदेश में वर्षों तक मारा-मारा फिरा।

बहुत कठिनाई से उसे एक ऐसा लड़का मिला, जिसके रोम-रोम से सज्जनता टपकती थी। उसे सामने बिठाकर चित्र बनाया गया।

चित्र बहुत ही सुन्दर बना। उसे बाजार में बहुत पसंद किया गया, भारी बिक्री हुई। चित्रकार की सर्वत्र प्रशंसा होने लगी। उसे धन भी बहुत मिला।

वर्षों बाद चित्रकार को सूझा कि वह एक अत्यन्त घृणित और दुष्ट भाव भंगिमा वाले अपराधी का भयंकर चित्र बनावेगा।

इसके लिए वह अपराधियों के अड्डे, बन्दीगृह और दुराचारियों के आवास स्थानों में भ्रमण करने लगा। अन्त में एक बड़ी डरावनी आकृति का मनुष्य मिला। चित्रकार ने उसका चित्र बनाया और वह भी बहुत बिका। सज्जनता और दुष्टता की दो परस्पर विरोधी प्रतिकृतियों का यह अद्भुत जोड़ा, चित्र जगत् में बहुत विख्यात हो गया।

एक दिन वही दुष्ट, दुराचारी चित्रकार से मिलने जा पहुँचा। चित्रकार ने उसका परिचय पूछा तो उसने कहा—"यह दोनों चित्र मेरे ही आपने बनाये हैं। जब मैं बालक था तब सौम्य था और जब अधेड़ हुआ तो मैं ही ऐसा भयंकर दुष्ट हो गया। क्या आप इस रहस्य को जानते हैं ?"

चित्रकार अवाक् रह गया। उसने पूछा—"तुम..... तुम.....तुम, भला इस प्रकार कैसे इतने परिवर्तित हो गये ?"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अधेड़ ने मुँह ढक लिया। उसकी आँखें बरसने लगीं। रुँधे गले से बोला— "बुरी संगति ने मेरी दुर्गति बनाई। चित्रकार ! संगति तुम्हारी कला से भी अधिक प्रभावशाली है।"

वासना का अभिशाप

रूपगर्विता अप्सरा वपु अपनी पूर्ण साज-सज्जा के साथ चल दी, महर्षि दुर्वासा को उनके तप से विचलित करने के लिए। वपु ने सोचा सर्वत्र मेरा ही प्रभुत्व क्यों न रहे ?

सारा वन प्रान्त गूँज उठा, उसके थिरकते गीत और पायलों की झंकारों से। दुर्वासा की कुटिया के समीप ही वह जा पहुँची। उन्मादकारी स्वर लहरी महर्षि के कर्ण कुहरों में प्रवेश करने लगी।

ऋषि का ध्यान भंग हुआ। उन्होंने योग-दृष्टि से देखा तो सब कुछ समझने में उन्हें देर न लगी। अप्सरा उन्हें लुभाने और पथभ्रष्ट करने आई है। तप को वासना परास्त करे, यह कल्पना उन्हें बुरी लगी। उन्हें क्रोध हो आया, आँखें लाल हो गईं।

कुटी से बाहर निकलकर उस रूपगर्विता की थिरकन को एकक्षण के लिए ऋषि ने देखा और कहा—"अभागी ! तुझे जो सौरभ मिला था, उससे तू जगत की प्रसुप्त भक्ति-भावना को जगा सकती थी, सरसता को अमृत की दिशा में मोड़ सकती थी, पर हाय री मूर्खा ! तू तो उलटा ही करने को उद्यत हो गई। जा, अपने कर्म का फल भोग। तू पक्षी की योनि में मारी-मारी फिरेगी। तेरे चार पुत्र होंगे, पर वे अपंग ही बने रहेंगे।"

महर्षि का शाप मिथ्या कैसे होता ? वपु अप्सरा का कलेवर छोड़, एक साधारण-सी चिड़िया बन गई। अण्डे दिये, उनसे चार बच्चे निकले, पर वे चारों ही अपंग थे। रूपगर्विता अप्सरा के पास अब पश्चाताप ही शेष था। कला की देवी वपु अपने नृत्य संगीत से आज भी दुर्वासना को भड़काकर जन मानस में अपनी प्रभुता जमाने में संलग्न है, पर लक्ष्य भ्रष्ट होने के कारण निराश्रित पक्षी की तरह ही उसे इधर-उधर मारी-मारी फिरना पड़ रहा है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों ही बच्चे कला के गर्भ से उत्पन्न होते हैं, पर वासना का लक्ष्य बन जाने से तो वे अपंग ही रहेंगे।

कला की अप्सरा को आज भी शापित वपु की तरह पश्चाताप करना पड़ रहा है। वासना के लिए उसका किया हुआ नृत्य भला और किसी परिणाम पर पहुँचता भी कैसे ?

दक्षिणा

सोमदत्त नामक एक ब्राह्मण राजा के पास गया और बोला, "महाराज ! आपकी आज्ञा हो, तो उज्जयिनी के नागरिकों को भागवत् कथा सुनाऊँ। प्रजा का हित होगा और मुझ ब्राह्मण को यज्ञ के लिये दक्षिणा का लाभ भी मिल जायेगा।"

भोज ने अपने नवरत्नों और सभासदों की ओर देखा और फिर सोमदत्त की ओर मुख करके बोले—"आप अभी जाइये कुछ दिन भागवत् का और पाठ कीजिये ?"

पहला अवसर था जब महाराज भोज ने किसी ब्राह्मण को यों निराश किया था। लोगों को शंका हुई कि महाराज की धर्म-बुद्धि नष्ट तो नहीं हो गई, उन्होंने विद्या का आदर करना तो नहीं छोड़ दिया ? कई सभासदों ने अपनी आशंका महाराज से प्रकट भी की, पर उन्होंने तत्काल कोई उत्तर नहीं दिया।

ब्राह्मण निराश तो हुआ, पर उसने प्रयत्न नहीं छोड़ा। उसने सारी भागवत् कण्ठस्थ कर डाली और फिर राज-दरबार में उपस्थित हुआ, किन्तु इस बार भी वही—उपेक्षापूर्ण शब्द सुनने को मिले। भोज ने कहा—"ब्राह्मणदेव ! अभी आप अच्छी तरह अध्ययन नहीं कर सके। जाकर अभी और अध्ययन कीजिये।" इसी प्रकार सोमदत्त कई बार राज-दरबार में उपस्थित हुआ, पर उसे उपेक्षा ही मिली।

ब्राह्मण ने इस बार भागवत् के प्रत्येक श्लोक को पढ़ा ही नहीं, एक-एक भाव का मनन भी किया जिसने भगवान् के प्रति निष्ठा जाग गई। उसने आदर, सत्कार, सम्पत्ति और सम्मान की सारी भावनाएँ छोड़ दीं और लोगों में ही धर्म भावनाएँ जाग्रत करने लगा।

बहुत समय तक भी जब वे दुबारा उज्जैन न गये, तो भोज ने उनका पता लगाया। सारी स्थिति का पता लगाकर उन्होंने एक दिन सोमदत्त को बुलाकर प्रणाम किया और विनयपूर्वक निवेदन किया—"महाराज ! आप उज्जयिनी के नागरिकों को भागवत् सुनाएँ तो इनका कल्याण हो।"

भागवत् हुई और सोमदत्त को इतनी दक्षिणा मिली कि फिर कभी यज्ञ के लिये धनाभाव नहीं हुआ। एक दिन सभासदों ने पूछा—"महाराज एक दिन यही ब्राह्मण जब अपनी ओर से आया था, तब आपने उपेक्षा बरती थी, आज आपने उसे प्रणाम भी किया और आग्रह भी सो क्यों ?"

भोज ने कहा—"तब यह धन के लिये भागवत्-कथा सुनाना चाहते थे, पर अब इनकी भागवत्-कथा धन के लिये नहीं लोक-मंगल के लिये हो गई है।"

चावलों में कंकड़

सन्त पुरन्दर गृहस्थ थे तो भी क्या लोभ, क्या काम और क्रोध उन्हें छू भी नहीं गये थे। दो तीन घरों में भिक्षाटन करते, उससे जो दो मुठ्ठी चावल और आटा मिल जाता, उससे वे अपना और अपनी धर्मपत्नी सरस्वती देवी का उदर पोषण कर लेते और दिन भर लोक-सेवा के कार्यों में जुटे रहते।

एक दिन विजय नगर के राजपुरोहित व्यासराय ने महाराज कृष्णदेवराय से कहा—"राजन् ! सन्त पुरन्दर गृहस्थ होकर भी राजा जनक की तरह विकार मुक्त हैं, दिनभर बेचारे पिछड़ों को ज्ञान दान देने, कष्ट-पीड़ितों की सेवा करने में लगे रहते हैं। स्वार्थ की बात तो उनके मन में ही नहीं आती। महाराज कृष्णदेव राय हँसे और बोले

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गृहस्थ में रहकर कौन तो निर्लोभ रहा, कौन काम-वासना से बचा ? यदि गृहस्थ में ऐसा सम्भव हो जाये तो संसार के सभी अपना मनुष्य शरीर सार्थक न कर लें ?"

"कर सकते हैं" व्यासराय बोले—"यदि लोग सन्त-पुरन्दर और देवी सरस्वती की भाँति निर्लोभ, सेवा परायण व सरल जीवन जीना सीख लें।" महाराज कुछ खिन्न से हो गये, बोले, "ऐसा ही है, तो आप उनसे कुछ दिन यहीं हमारे यहाँ भिक्षाटन के लिये कह दें।" व्यासराय ने सन्त पुरन्दर से जाकर आग्रह किया—"आप आगे से राजभवन से भिक्षा ले आया करें।" सन्त पुरन्दर ने कहा—"मैं जिन लोगों के बीच रहता हूँ, जिनकी सेवा करता हूँ उन अपने कुटुम्बीजनों से मिल गई भिक्षा ही पर्याप्त है। दो ही पेट तो हैं उसके लिये राजभवन जाकर क्या करूँगा ?" पर व्यासराय तब तक बराबर जोर डालते रहे, जब तक सन्त ने उनका आग्रह स्वीकार नहीं कर लिया।

सन्त पुरन्दर राजभवन जाने लगे। वहाँ से मिले चावल ही उनके उदर पोषण के लिये पर्याप्त होते। सन्त अपनी सहज प्रसन्नता लिये हुये जाते, उसका अर्थ महाराज कुछ और ही लगाते। एक दिन तो उन्होंने व्यासराय से कह भी दिया देख ली आपके सन्त की निस्पृहता। आजकल देखते नहीं कितने प्रसन्न रहते हैं ? व्यासराय बोले आपका तात्पर्य समझा नहीं। इस पर महाराज ने कहा—"आप मेरे साथ चलिये, अभी बात स्पष्ट हो जायेगी।" महाराज राजपुरोहित के साथ सन्त पुरन्दर के घर पहुँचे, देखा उनकी धर्मपत्नी चावल साफ कर रही हैं। महाराज ने पूछा— "बहन ! यह क्या कर रही हो ?" इस पर वे बोलीं—"आजकल न जाने कहाँ से भिक्षा लाते हैं ? इन चावलों में कंकड़-पत्थर भरे पड़े हैं।" यह कहकर उन्होंने अब तक बीने कंकड़ उठाये और बाहर की तरफ उन्हें फेंकने चल पड़ीं। महाराज बोले—"भद्रे ! यह तो हीरे-मोती हैं—जिन्हें आप कंकड़-पत्थर कहती हैं।" सरस्वती देवी हँसी और बोलीं कि पहले हम भी यही सोचते थे, पर अब जब से भक्ति और सेवा की सम्पत्ति मिल गई, इनका मूल्य कंकड़-पत्थर के ही बराबर रह गया। महाराज यह उत्तर सुनकर अवाक् रह गये, वे आगे और कुछ न बोल सके।

बिना विचारे जो करे

एक बार वन्य पशुओं ने प्रजातन्त्र की स्थापना की। लोकसभा के चुनाव के लिए गज दल, सिंह दल, श्वान और श्रृंगाल दल आदि अनेक राजनैतिक पार्टियाँ चुनाव अभियान में उतरीं। समय समीप आ जाने से चुनाव में थोड़ी तेजी आ गई। सभी दल अपने-अपने पक्ष की दलीलें देते और मतदाताओं को अपने दल के समर्थन की अपील करते।

श्वान दल उनमें ज्यादा बातूनी और चालाक था। उसने सभी छोटे-छोटे दलों को बुलाकर समझाया—"देखो बड़े-बड़े नेताओं के भ्रष्टाचार और शोषण से तुम्हारी हम रक्षा करेंगे, सो तुम हमारा ही समर्थन करो।" उन्होंने सियारों, भेड़ों, खरगोश और लोमड़ियों सबको आश्वासन दिया, हम तुम्हें देखकर कभी भूँका नहीं करेंगे।

छोटे-छोटे जन्तु शरीर से ही नहीं बुद्धि के भी बौने निकले, उन्होंने श्वान पार्टी को जमकर वोट दिये और सचमुच संसद में कुत्तों का आधिपत्य हो गया। अब क्या था, कुत्तों की मौज आ गई। संसद में कोई बिल रखा जाता, तो एक कुत्ता भूँककर उसका समर्थन करता तो शेष सभी कुत्ते भी तुक मिलाते और इस तरह वे जो, चाहते मनमानी करते, पर अब हो भी क्या सकता था अब तक कुत्तों ने अपनी जड़ें मजबूत करलीं थीं, उनसे सत्ता छीनना आसान न था।

अन्य जीव अपने बिना विचारे किये पर घोर पश्चाताप करते रहे।

समय के पंख

एक बार एक कलाकार ने अपने चित्रों की प्रदर्शनी लगाई। उसे देखने के लिये नगर के सैकड़ों धनी-मानी व्यक्ति भी पहुँचे। एक लड़की भी उस प्रदर्शनी को देखने आई। उसने देखा सब चित्रों के अन्त में एक ऐसे मनुष्य का भी चित्र टँगा है, जिसके मुँह को बालों से ढक दिया गया है और जिसके पैरों पर पंख लगे थे। चित्र के नीचे बड़े अक्षरों से लिखा था "अवसर"। चित्र कुछ भद्दा-सा था इसलिये लोग उस पर उपेक्षित दृष्टि डालते और आगे बढ़ जाते।

लड़की का ध्यान प्रारम्भ से ही इस चित्र की ओर था। जब वह उसके पास पहुँची तो चुपचाप बैठे कलाकार से पूछ ही तो लिया—"श्रीमान् जी यह चित्र किसका है ?" "अवसर का" कलाकार ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया। "आपने इसका मुँह क्यों ढक दिया है ?" लड़की ने दुबारा प्रश्न किया। इस बार कलाकार ने विस्तार से बताया, "बच्ची ! प्रदर्शनी की तरह अवसर हर मनुष्य के जीवन में आता है और उसे आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है किंतु साधारण मनुष्य उसे पहचानते तक नहीं, इसलिये वे जहाँ थे वहीं पड़े रह जाते हैं। पर जो अवसर को पहचान लेता है, वही जीवन में कुछ काम कर जाता है।"

"और इसके पैरों में पंखों का क्या रहस्य है ?" लड़की ने उत्सुकता से पूछा। कलाकार बोला—"यह जो अवसर आज चला गया, वह फिर कल कभी नहीं आता।"

लड़की इस मर्म को समझ गई और उसी क्षण से अपनी उन्नति के लिये जुट गई।

मिथ्या-प्रेम

एक नवयुवक, एक सिद्ध महात्मा के आश्रम में आया करता था। महात्मा उसकी सेवा में प्रसन्न हो बोले—"बेटा ! आत्म कल्याण ही मनुष्य जीवन का सच्चा लक्ष्य है, इसे ही पूरा करना चाहिए।" यह सुन युवक ने कहा—"महाराज ! वैराग्य धारण करने पर मेरे माता-पिता कैसे जीवित रहेंगे ? साथ ही मेरी युवा पत्नी मुझ पर प्राण देती है वह मेरे वियोग में मर जायगी।" महात्मा बोले—"कोई नहीं मरेगा बेटा ! यह सब दिखावटी प्रेम है। तू नहीं मानता तो परीक्षा कर ले।" युवक राजी हो गया तो महात्मा ने उसे प्राणायाम करना सिखाया और बीमार बनकर साँस रोक लेने का आदेश दिया। युवक ने घर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाकर वहीं किया। बड़े-बड़े वैद्यों की चिकित्सा हुई परन्तु दूसरे दिन ही उसने साँस रोक ली। घर वाले उसे मरा समझ हो-हल्ला मचाने और पछाड़ें खाने लगे। पड़ोस के बहुत-से लोग इकट्ठे हो गये।

तभी महात्मा भी वहाँ जा पहुँचे और युवक को देखकर उसकी गुण गरिमा का बखान करते हुए बोले कि "हम इस लड़के को जीवित कर देंगे, परन्तु तुम्हें कुछ त्याग करना पड़ेगा।" घर वाले बोले कि "आप हमारा सारा धन, धन-बार, यहाँ तक कि प्राण भी ले लें, परन्तु इसे जीवित कर दें।" महात्मा बोले "एक कटोरा दूध लाओ।" तुरन्त आज्ञा का पालन किया गया। महात्मा ने उसमें एक चुटकी राख डालकर कुछ मंत्र-सा पढ़ा और बोले—"जो कोई इस दूध को पी लेगा वह मर जायगा और यह लड़का जीवित हो जायगा।" अब समस्या यह थी कि दूध को कौन पीवे ? माता-पिता बोले—"कहीं न जिया तो एक जान और गई। यदि हम रहेंगे तो पुत्र और हो जायगा।" पत्नी बोली—"इस बार जीवित हो जायेंगे तो क्या है, फिर कभी मरेंगे। मरना तो पड़ेगा ही। इनके न रहने पर मायके में सुख से जिन्दगी काट लूँगी।" रिश्तेदार बगलें झाँकने लगे और पड़ोसी तो पहले ही नदारद हो गए। तब महात्मा ने कहा—"अच्छा, मैं ही इस दूध को पिये लेता हूँ।" तो सभी प्रसन्न होकर बोले—"हाँ महाराज ! आप धन्य हैं। साधु-सन्तों का जीवन ही परोपकार के लिए है।" महात्मा ने दूध पी लिया और युवक को झकझोरते हुए बोले—"उठ बेटा ! अब तो तुझे पूरी तरह ज्ञान हो गया कि कौन तेरे लिए प्राण देता है ?" युवक तुरन्त उठ पड़ा और महात्मा के चरणों में गिर पड़ा। घर वालों के बहुत रोकने पर भी वह महात्मा के साथ चला गया और सांसारिक मोह त्यागकर आत्म कल्याण की साधना करने लगा।

साधक की कसौटी

एक शिष्य ने अपने आचार्य से आत्म साक्षात्कार का उपाय पूछा। पहले तो उन्होंने समझाया कि बेटा यह कठिन मार्ग है, कष्ट साध्य क्रियाएँ करनी पड़ती हैं। तू कठिन साधनाएँ नहीं कर सकेगा, पर जब उन्होंने देखा कि शिष्य मानता नहीं, तो उन्होंने एक वर्ष तक एकान्त में गायत्री मन्त्र का निष्काम जप करके अन्तिम दिन आने का आदेश दिया। शिष्य ने वही किया। वर्ष पूरा होने के दिन आचार्य ने झाड़ू देने वाली महतरानी से कहा कि अमुक शिष्य आवे तब उस पर झाड़ू से धूल उड़ा देना। महतरानी ने वैसा ही किया। साधक क्रोध में उसे मारने दौड़ा, पर वह भाग गई। वह पुनः स्नान करके आचार्य-सेवा में उपस्थित हुआ। आचार्य ने कहा—"अभी तो तुम साँप की तरह काटने दौड़ते हो, अतः एक वर्ष और साधना करो।" साधक को क्रोध तो आया, परन्तु उसके मन में किसी न किसी प्रकार आत्मा के दर्शन की तीव्र लगन थी अतएव गुरु की आज्ञा समझकर चला गया।

दूसरा वर्ष पूरा करने पर आचार्य ने मेहतरानी से उस व्यक्ति के आने पर झाड़ू देने को कहा। जब वह आया तो मेहतरानी ने वैसे ही किया। परन्तु इस बार वह कुछ गालियाँ देकर ही स्नान करने चला गया और फिर आचार्य जी के समक्ष उपस्थित हुआ। आचार्य ने कहा—"अब तुम काटने तो नहीं दौड़ते, पर फुफकारते अवश्य हो। अतः एक वर्ष और साधना करो।"

तीसरा वर्ष समाप्त होने के दिन आचार्य जी ने मेहतरानी को कूड़े की टोकरी उड़ेल देने को कहा। महतरानी के वैसा करने पर शिष्य को क्रोध नहीं आया बल्कि उसने हाथ जोड़कर कहा—"हे माता तुम धन्य हो। तीन वर्ष से मेरे दोष को निकालने के प्रयत्न में तत्पर हो।" वह पुनः स्नान कर आचार्य सेवा में उपस्थित हो उनके चरणों में गिर पड़ा।

एक रुपये की औषधि, स्वस्थ रहे संसार

नानक ने सोचा कबीर की बुद्धि की परीक्षा करनी चाहिए। उन्होंने एक चवन्नी कबीर के पास भेजी और कहला भेजा कि इस चवन्नी की कोई ऐसी वस्तु लेनी चाहिए जिसे खाकर एक सौ व्यक्ति तृप्त हो जाएँ ?

कबीर ने चवन्नी ले ली, बाजार गये और चार आने की बढ़िया वाली हींग लाये। उसी दिन नगर के एक सेठ भोज दे रहे थे। चार आने की हींग लेकर कबीर सेठ के पास पहुँचे और उसकी छोंक लगवा दी। वह दाल जिस-जिसने खाई, कबीर की हींग की सबने प्रशंसा की। हींग ने सब को तृप्त किया।

अब कबीर ने सोचा नानक की बुद्धि की परीक्षा लेनी चाहिये। उन्होंने एक रुपया नानक के पास भेजा और कहलवा भेजा एक रुपये की ओषधि से सारे संसार के रोगियों को अच्छा कर दो। नानक ने गम्भीरतापूर्वक विचार किया, सारे संसार में ३ अरब तो मनुष्य ही हैं उन्हीं को एक स्थान पर बुलाना कहाँ सम्भव है ? फिर भेड़, बकरी, चूहे, खरगोश, मछली, कछुये न जाने कितने जन्तु इस पृथ्वी पर हैं। एक रुपये में सबकी ओषधि किस प्रकार हो ?

उन्होंने एक रुपये की गुग्गल, छार छबीला, तालीस पत्र, कपूरकचरी, पृष्ठपर्णी आदि ओषधियाँ मँगाईं और हवन करने लगे। ओषधियाँ जलकर नष्ट नहीं हुईं वायुभूत होकर सारे संसार में फैल गईं। जलचर, थलचर, नभचर, सबने साँस ली ओषधि सबके शरीर में पहुँची, सबके शरीरों के रोग कीटाणु नष्ट हो गये। सब स्वस्थ हो गये।

कबीर ने नानक की भूरि-भूरि प्रशंसा की, तो नानक ने कहा—"कबीर यह श्रेय तो उन ऋषियों का है जिन्होंने संसार के स्वास्थ्य के लिए यज्ञ जैसे महान् विज्ञान की शोध की थी।"

ग्राहकता

विद्यालय की शिक्षा समाप्त कर लौटे एक नवयुवक को अपने ज्ञान का बड़ा अभिमान हो गया। कोई भी आता वह किसी को भी नमस्कार नहीं करता था, उसे अहंकार था कि अब मुझे सीखने के लिए कुछ रहा ही नहीं। इस अभिमान में वह अपने माता-पिता की भी अवज्ञा करता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पिता बड़ा चतुर था उसने जान लिया कि मति-भ्रम बेटे को अहंकार से उबारा न गया तो उसका विकास रुक जायेगा। वह एक दिन अपना सर्वनाश कर लेगा।

सो एक दिन घर से थोड़ी चीनी ली और उसे धूल में मिलाकर घर के एक कोने में पटक दी। पिता जब वहाँ से चला गया तो घर के छोटे लड़कों ने सोचा कि धूल से निकालकर चीनी खानी चाहिए, पर मुश्किल यह थी कि धूल से चीनी के कण ढूँढ़ निकालना कठिन था। लड़कों ने सोचा बड़े भैया बहुत विद्वान हैं, उन्हें जरूर कोई ऐसी विद्या आती होगी, जिससे इस चीनी को धूल से अलग किया जा सके। बालकों ने जाकर निवेदन किया, तो वे ऐंठते हुए वहाँ पहुँचे भी, पर ढेर में चीनी ऐसे मिल गई थी कि उसे देखते ही उनकी अक्ल गुम हो गई। कई उपाय किये पर तोले भर चीनी भी नहीं निकाली जा सकी।

जितनी युवक की खीझ बढ़ती, उतना ही छोटे बच्चे हँसते और उनके अहंकार को अँगूठा दिखाते। हार कर युवक वहाँ से भाग गया और शाम तक किसी को दिखाई न दिया।

सायंकाल पिताजी भी आये और पुत्री भी। ढेर के पास से गुजरे तो वह आश्चर्यचकित थे कि धूल के ढेर से सारी चीनी गायब थी। पिता ने छोटे-छोटे लड़कों को बुलाया और डाँटकर पूछा, इसकी चीनी कौन निकाल ले गया ?

लड़कों ने कहा—"पिता जी वह तो सब चींटियाँ चुन ले गईं।" युवक यह सुनते ही हैरान रह गया। जो काम वह घन्टों की परेशानी के बाद भी नहीं कर सका, उसे चींटियाँ इतनी आसानी से कर गईं।

युवक का सारा अहंकार गल गया। उसने सोचा यदि चींटी जैसी गुण ग्राहकता से हम भी वंचित न हुए होते, तो अब तक कितनी उन्नति कर गये होते ?

सती का तेज

पतिव्रत की साधिका कौशिकी को रुग्ण पति मिला। किसी पूर्वजन्म के कुकृत्य से कुष्ठ पीड़ित था वह ब्राह्मण। स्वयं चलने-फिरने में भी अशक्त। किन्तु कौशिकी की साधना अपने आप में पूरी थी। दुर्बल व्यक्तित्व समर्थ को खोजता है और समर्थ अशक्तों की सहायता में ही अपनी सार्थकता देखता है। रुग्ण पति से उसे कोई शिकायत न थी। अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए उसके पास हाथ-पैर थे और उसके साथ परमात्मा का अनुग्रह था कि सेवा वृत्ति के विकास के लिये घर में ही अवसर प्रदान किया। कौशिकी ईश्वर के अनुग्रह के रूप में अपने रुग्ण पति को देवता तुल्य मानती थी, जो उसके विकास के लिए रोगी का स्वरूप स्वीकार किये थे।

एक दिन अँधेरी रात्रि। पति को पीठ पर लिये कौशिकी चली जा रही थी। मार्ग में माण्डव्य ऋषि तपस्या में लीन थे। अन्धकार में दिखाई न देने के कारण पति का पैर महर्षि से टकरा गया। सामान्य भूल को ऋषि ने सम्भवतः तपस्वी होने के अहंकार के कुप्रभाव से, जान-बूझकर की हुई अनीति मान लिया। बिना वस्तु-स्थिति समझने का प्रयास किये शाप दे दिया—"जिस व्यक्ति ने यह धृष्टता की है वह सूर्योदय होते ही मृत्यु को प्राप्त होगा।"

कौशिकी ने सुना—स्पष्टीकरण दिया—किन्तु कोई लाभ न निकला। विनयशील की विनय को कभी-कभी लोग उसकी असमर्थता समझ लेते हैं। अपनी व्रतशीलता से सांसारिक भयानक रोग को साधना एवं प्रगति का सोपान बनाने वाली नारी की सामर्थ्य सम्भवतः प्रकट होने को थी। कौशिकी ने कहा—"मैं निरपराध वैधव्य दण्ड न भोगूँगी। यदि सूर्योदय के साथ पति की मृत्यु आने वाली है, तो सूर्योदय ही न होगा।"

पतिव्रता के व्रत की शक्ति की अवहेलना करने से सूर्यदेव मुकर गये। हाहाकार मच गया। ऋषि माण्डव्य ने अपनी भूल तो समझी—किन्तु छोड़ा हुआ तीर वापस करने की क्षमता का अपने में अभाव पाया। कौशिकी के पति का श्राप वे वापिस न ले सकते थे, तो क्या विश्वहित के लिये कौशिकी को वैधव्य स्वीकार करना होगा ?

"नहीं !" सती अनुसुइया आगे आईं। उन्होंने कौशिकी से कहा—"बहन, सूर्योदय होने दो। तुम्हारे पति को पुनर्जीवित मैं कर लूँगी।" दोनों सती नारियों के तेज, तथा विवेक का प्रमाण पाकर सारा संसार धन्य-धन्य कर उठा।

अमानत की वापसी

धर्मगुरु रबी मेहर और दिनों की भाँति आज भी अपनी पाठशाला में बच्चों को पाठ सिखाते रहे। उस दिन उन्होंने भगवान की न्यायकारिता का उपदेश किया। अपनी धर्मपत्नी को भी वह प्रातःकाल यही समझाकर आये थे कि यह संसार और यहाँ का सब कुछ भगवान का है उसे समर्पित किये बिना किसी वस्तु का उपभोग नहीं करना चाहिये।

उन दिनों नगर में महामारी फैली थी। दुर्भाग्य ने उस दिन उन्हीं के घर डेरा डाला और मेहर के दोनों फूल से सुन्दर बच्चों को मृत्यु की गोद में सुला दिया। मेहर की धर्मशीला पत्नी ने दोनों बच्चों के शव शयनागार में लिटा दिये और उन्हें सफेद चादर से ढक दिया। आप घर की सफाई और भोजन व्यवस्था में व्यस्त हो गईं।

साँझ हुई और रबी मेहर घर लौटे। सबाथ का दिन था। मेहर ने आते ही पूछा—"दोनों बच्चे कहाँ है ?" सन्तोष स्मित मुद्रा में पत्नी ने कहा यहीं कहीं खेल रहे होंगे। जल लीजिए, हाथ मुँह धोकर भोजन कीजिए। भोजन तैयार है। मेहर ने निश्चिन्त होकर भगवान का ध्यान दिया और फिर पाकशाला में आये। उन्हें घर में आज कुछ उदासी दीख रही थी। बच्चे नहीं थे पूछा—"बच्चे अभी खेलकर नहीं लौटे क्या ?" पत्नी ने कहा, "अभी बुलाये देती हूँ लीजिए दिन भर उपवास किया है, भोजन कर लीजिए।"

रबी ने भोग लगाया और फिर उस अन्न को प्रसाद मानकर प्रेमपूर्वक ग्रहण किया। हाथ मुँह धोकर उठे तो फिर पूछा—"बच्चे अभी तक नहीं आये—बाहर जाकर पता लगाऊँ क्या ?"

पत्नी ने कहा—"नहीं" स्वामी बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है पर हाँ यह तो बताइये—"आप जो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कह रहे थे कि संसार में जो कुछ है वह सब भगवान का है। यदि भगवान अपनी कोई वस्तु वापस ले ले, तो क्या मनुष्य को उसके लिए दुःख करना चाहिए ?" "इसमें दुःख की क्या बात भद्रे !" रबी मेहर ने आत्म-सन्तोष की मुद्रा में कहा। "पर आज तुम्हारी बातें कुछ रहस्यपूर्ण-सी लगती हैं प्रिये कहो न बात क्या है, कुछ छुपाना चाहती हो क्या ?"

"नहीं स्वामी ! आपसे क्या छुपाना ? मैं तो आपके ही आदर्श का पालन कर रही हूँ। यह लीजिये यह रहे आपके दोनों बच्चे, प्राण भगवान के थे सो उन्होंने वापस ले लिये।" यह कहकर मेहर की पत्नी ने बच्चों के कफन मुँह से हटा दिये।

तुम एक दिन भी सहन न कर सके

एक जंगल के निकट एक महात्मा रहते थे। वे बड़े अतिथि-भक्त थे। नित्यप्रति जो भी पथिक उनकी कुटिया के सामने से गुजरता था, उसे रोककर भोजन दिया करते थे और आदरपूर्वक उसकी सेवा किया करते थे।

एक दिन किसी पथिक की प्रतीक्षा करते-करते उन्हें शाम हो गई, पर कोई राही न निकला। उस दिन नियम टूट जाने की आशंका में वे बड़े-व्याकुल हो रहे थे कि उन्होंने देखा कि एक सौ साल का बूढ़ा थका-हारा चला आ रहा है। महात्माजी ने उसे रोककर हाथ-पैर धुलाये और भोजन परोसा।

बूढ़ा बिना भगवान का भोग लगाए और बिना धन्यवाद दिए तत्काल भोजन पर जुट गया। यह सब देख महात्मा को आश्चर्य हुआ और बूढ़े से इस बात की शंका की। बूढ़े ने कहा—"मैं न तो अग्नि को छोड़कर किसी ईश्वर को मानता हूँ, न किसी देवता को।"

महात्माजी उसकी नास्तिकतापूर्ण बात सुनकर बड़े क्रुद्ध हुए और उसके सामने से भोजन का थाल खींच लिया तथा बिना यह सोचे कि रात में वह इस जंगल में कहाँ जायेगा, कुटी से बाहर कर दिया। बूढ़ा अपनी लकड़ी टेकता हुआ एक ओर चला गया।

रात में महात्माजी को स्वप्न हुआ, भगवान कह रहे थे—"साधु, उस बूढ़े के साथ किए तुम्हारे व्यवहार ने अतिथि-सत्कार का सारा पुण्य क्षीण कर दिया।"

महात्मा ने कहा—"प्रभु, उसे तो मैंने इसलिए निकाला कि उसने आपका अपमान किया था।" प्रभु बोले—"ठीक है, वह मेरा नित्य अपमान करता है, तो भी मैंने उसे सौ साल तक सहा किन्तु तुम एक दिन भी न सह सके।" भगवान अन्तर्द्धान हो गये और महात्माजी की भी आँख खुल गई।

घात नहीं करते

अश्वपति ने राज्य विस्तार तो नहीं किया पर समर्थ नागरिक तैयार करने के लिए जो भी उपाय सम्भव थे, उसने किये। यही कारण था कि उसके राज्य में सब स्वस्थ, वीर और बहादुर नागरिक थे। काना, कुबड़ा, दीन-हीन और आलसी उनमें से एक भी न था। अश्वपति के राज्य में जन्म लेते ही बच्चे राज्याधिकारियों के नियन्त्रण में सौंप दिये जाते थे। उनकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध अश्वपति स्वयं करता था। उसका हर नवयुवक चरित्र बल, दृढ़ता, शौर्य और संयम की प्रतिमूर्ति था। यही कारण था कि उस छोटे-से राज्य से कोई टक्कर नहीं ले पाता था।

प्रतापी सम्राट् पोरस से युद्ध करने के बाद सिकन्दर की सेना ने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया, उस समय सिकन्दर ने सोचा आस-पास के छोटे राज्य को हस्तगत क्यों न कर लिए जाएँ ? उसकी वक्र दृष्टि अमृतसर के समीप रावी नदी के तट पर बसे अश्वपति के राज्य पर पड़ी। सिकन्दर ने अश्वपति की वीरता की गाथाएँ पहले ही सुन रखी थीं, उसके सिपाही भी हिम्मत हार चुके थे, इसलिए उसने मुकाबले की अपेक्षा छल से रात में अश्वपति पर आक्रमण कर दिया। युद्ध के लिए अनिश्चित अश्वपति के सैनिकों को सिकन्दर के सिपाहियों ने छलपूर्वक काटा और इस तरह यह युद्ध भी यूनानियों के हाथ रहा। महाराज अश्वपति बन्दी बना लिए गये। सिकन्दर ने अश्वपति के शौर्य की परीक्षा लेने के इरादे से उसे बन्धन मुक्त कर दिया और सन्धि कर ली। इस खुशी में दोनों नरेशों का एक सम्मिलित दरबार आयोजित किया गया। अश्वपति अपने खूँखार लड़ाका कुत्तों के लिए विश्व-विख्यात था, चार कुत्ते हमेशा अश्वपति के साथ रहते थे। जब वह दरबार में पहुँचे तब वह कुत्ते भी उनके साथ थे। सिकन्दर ने उनके पहुँचते ही व्यंग किया—"महाराज यह 'भारतीय कुत्ते' हैं ?" अश्वपति ने तुरन्त उत्तर दिया—"हाँ यह छिपकर आक्रमण नहीं करते, शेरों से भी मैदान में लड़ते हैं।" लड़ाई का आयोजन किया गया।

उधर शेर इधर दो कुत्ते—लड़ाई छिड़ गई। शेर ने कुत्तों को लहू-लुहान कर दिया पर कुत्तों ने भी शेर के छक्के छुड़ा दिए। शेष दो कुत्ते भी छोड़ दिये गए और तब शेर को भागते ही बना। पर कुत्तों ने उसके शरीर में ऐसे दाँत चुभाये कि शेर आहत होकर वहीं गिर पड़ा। अश्वपति ने ललकारकर कहा—"महाराज ! आपकी सेना में कोई वीर है जो कुत्ते के दाँत शेर के माँस से अलग कर दे ?" बारी-बारी से कई योद्धा उठे और कुत्तों की टाँगें पकड़कर खींचने लगे, कुत्तों की टाँगें टूट गईं पर वे उनके दाँत छुड़ा न सके। सात फुट लम्बे अश्वपति ने अपने अंगरक्षक को संकेत किया। वह उठकर शेर के पास पहुँचा और कुत्ते को पकड़कर एक ही झटका लगाया कि शेर की हड्डी और मांस सहित कुत्ता भी खिंच गया।

सिकन्दर ने युद्ध जीत लिया था, पर इस यथार्थता के आगे वह अपना सिर झुकाये बैठा था।

शुभ कार्य तत्काल करो

कोई स्त्री अपने पिता के यहाँ से लौटी थी, अपने पति से कह रही थी—"मेरा भाई विरक्त हो गया है। वह अगली दीवाली पर दीक्षा लेकर साधु होने वाला है। अभी से उसने तैयारी प्रारम्भ कर दी है। वह अपनी सम्पत्ति की उचित व्यवस्था करने में लगा है।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पत्नी की बात सुनकर पति मुसकराया। स्त्री ने पूछा—"तुम हँसे क्यों ? हँसने की क्या बात थी ?"

पति बोला—"और तो सब ठीक है, किन्तु तुम्हारे-भाई का वैराग्य मुझे बहुत अद्भुत लगा। वैराग्य हो गया है दीक्षा लेने की तिथि अभी निश्चित हुई है और वह सम्पत्ति की उचित व्यवस्था में लगा है।" भौतिक सम्पत्ति में सम्पत्ति-बुद्धि और इस उत्तम काम में भी इतनी दूर की योजना ! इस प्रकार की तैयारी करके त्याग नहीं हुआ करता। त्याग तो सहज ही हुआ करता है।"

स्त्री को बुरा लगा वह बोली—"ऐसे ज्ञानी हो, तो तुम्हीं क्यों कुछ कर नहीं दिखाते।"

"मैं तो तुम्हारी अनुमति की प्रतीक्षा में था।" पुरुष ने वस्त्र उतार दिये और एक धोती मात्र पहिने घर से निकल पड़ा। स्त्री ने समझा कि यह परिहास है। थोड़ी देर में उसका पति लौट आवेगा, परन्तु वह तो लौटने के लिये गया ही नहीं था। सच है वैराग्य के लिये कोई तिथि नहीं सोची जाती।

सच्चा प्रजासेवक

हजरत अबूबकर का विश्वास था कि निर्धन से निर्धन नागरिक को जीवनयापन के लिए जितनी सुविधाएँ उपलब्ध हैं, उससे अधिक सुविधाएँ लेने का अधिकार राज्य के किसी उच्च कर्मचारी को नहीं है. इसलिये राज्य के कोषालय से अपने खर्च के लिए वे केवल दो दिरहम लेते थे।

हजरत की इस जान-बूझकर बुलाई गई निर्धनता से उनकी पत्नी तंग आ गई थीं। उन्हें यह बिल्कुल पसन्द न था कि जिस व्यक्ति का पूरे राज्य में सम्मान हो, उसकी पत्नी इतनी गरीबी और परेशानी से जीवनयापन करे। एक दिन परेशान होकर उन्होंने कह ही दिया—"यह भी 'कोई व्यवस्था है जब देखो तब सूखी रोटियाँ। ऐसा प्रयत्न कीजिए न किसी दिन कुछ मिठाईयों की व्यवस्था भी हो सके, तो भोजन कुछ अच्छा लगे।"

'खाना बनाने का काम तुम्हारे जिम्मे ही है, तो थोड़ा-थोड़ा बचाकर मिठाई की व्यवस्था क्यों नहीं कर लेतीं ?" उनकी पत्नी ने सुझाव पर विचार किया तथा अपने दैनिक भोजन में से प्रतिदिन कुछ न कुछ बचत प्रारम्भ कर दी। कुछ दिनों की निरन्तर बचत से एक दिन के भोजन में मिठाई की व्यवस्था हो सके—इतनी बचत हो जाने पर, उसने एक दिन और बड़े उल्लास के साथ अपने पति को भोजन के साथ-साथ वह मिष्ठान्न भी परोसा। पति को प्रेमपूर्वक भोजन कराकर पत्नी ने भोजन किया। अबूबकर ने मिठाई के बारे में जानना चाहा तो उनकी पत्नी ने गर्वपूर्वक बचत की बात बताई।

बचत की बात सुनकर अबूबकर प्रसन्न हुए, उन्होंने सोचा यह देन परमपिता परमात्मा की है। ऐसा करने से जो बचत होगी, उससे भी जनता की सेवा की जा सकेगी, मेरी गरीब जनता मुझसे जितना भी लाभ उठा सकती है वह लाभ क्यों न उठाये और मैं भी शक्ति भर उनकी सेवा कर सकूँ, भगवान मुझे ऐसा साहस प्रदान करे, ऐसा सोचकर वह पत्नी से बोला—जनता रूखा खाकर जिस-तिस प्रकार अपना पेट पालती है, रूखा-सूखा भोजन भी वह कड़ी मशक्कत करने के बाद ही पाती है, तब फिर सोचो तो हमें मिष्ठान्न जैसे स्वादिष्ट भोजन का अधिकार कहाँ है।"

"फिर तो दो दिरहम की रकम हम लोगों के गुजारे के लिए अधिक है।" इतना कहकर दूसरे दिन से अबूबकर ने केवल डेढ़ दिरहम ही लेना शुरू कर दिया।

मंदबुद्धि वरदराज

संस्कृत-व्याकरण के सारभूत ग्रन्थ लघुसिद्धान्त कौमुदी को कौन नहीं जानता ? लघुसिद्धान्त कौमुदी संस्कृत व्याकरण का वह ग्रन्थ है, जिसका अध्ययन किये बिना संस्कृत का पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं होता और पढ़ लेने पर संस्कृत व्याकरण की योग्यता में सन्देह नहीं रहता।

इस विलक्षण ग्रन्थ के रचयिता श्री वरदराज जी अपने छात्र काल में वरदराज अर्थात् बैलराज कहे जाते थे और एक तरह से उनका यह विकृत नाम ठीक भी था। वरदराज इतना मंदबुद्धि था कि पाठशाला में पढ़ाया हुआ एक भी अक्षर न तो समझ पाता था और न याद कर पाता था। अपनी इस मन्दबुद्धिता के लिये वह अपने सहपाठियों के बीच एक मनोरंजक कुतूहल बना रहता था और आखिर जब वह प्रारम्भिक कक्षा में ही तीन-चार बार असफल हुआ, तो सबने मिलकर उसका नाम वरदराज रख दिया।

एक दिन वरदराज अध्ययन की असफलता से निराश होकर घर से निकलकर चल दिया। दिनभर चलने के बाद वह सन्ध्या समय एक गाँव के निकट एक पुराने मन्दिर के चबूतरे पर पड़ा रहा। रात-भर उसे नींद न आई और वह यह सोचकर रोता रहा कि भगवान ने मुझे ऐसी मंद बुद्धि दी कि मैं कुछ भी पढ़-लिख न सका। मेरा जीवन व्यर्थ है। बिना विद्या के मैं मनुष्य होकर भी एक पशु के समान ही हूँ। धिक्कार हैं मेरे जीवन को। जहाँ मेरे मित्र पढ़-लिखकर यश और ऐश्वर्य कमायेंगे वहाँ मैं जीविका के लिये मिट्टी ढोता या घास काटता मर जाऊँगा ! न मैं धर्म का अध्ययन कर सकता हूँ और न साहित्य का रस पा सकता हूँ। इसी सोच-विचार और रोने-धोने में वरदराज की रात बीत गई। किन्तु, कहाँ जाए, क्या करे—यह निश्चित न कर सकने के कारण वह अभी पड़ा ही था कि सहसा उसकी दृष्टि दीवार पर चढ़ते हुए पतंगे पर पड़ी। पतंगे के पर कमजोर थे और पैरों से चलकर चढ़ रहा था।

वरदराज ने देखा कि वह पतंगा बार-बार चढ़ता और गिरता है, किंतु जितनी बार गिरता है उतनी बार फिर चढ़ता है और पहले से कुछ अधिक ऊपर जाता है। वरदराज उसका गिरना-चढ़ना देखता रहा और अन्त में उसने देखा कि बीस बार गिरने के बाद वह लगनशील पतंगा अपने गन्तव्य दीवार की कगार पर पहुँच ही गया। वरदराज ने इस दृश्य से शिक्षा ली और वह पूरी तत्परता और आत्मविश्वास के साथ अध्ययन में जुट गया, जिससे उसके लिये सफलता के द्वार खुलते और मिलते चले गये और वह अल्पकाल ही में संस्कृत का उद्भट विद्वान बन गया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

फूट विनाश का कारण

कुछ लकड़हारे लकड़ी काटने के मन्तव्य से एक जंगल में घूम-घूम कर वृक्षों का निरीक्षण करने लगे। उनको ऐसा करते देखकर जंगल के वृक्ष शोक करने लगे। उनको शोक करते देखकर एक पुराने वट वृक्ष ने पूछा—"बन्धुओ ! तुम लोग इस प्रकार किस कारण से शोक कर रहे हो ?"

"वृक्षों ने कहा कि आप देख नहीं रहे हैं कि यह अनेक लकड़हारे हम सबको देखते फिर रहे थे। कुछ ही समय में यह सबको काटकर गिरा देंगे।" वट वृक्ष ने उन्हें ढाढ़स बँधाते हुए कहा—तुम सब व्यर्थ चिन्तित हो रहे हो, लकड़हारे हममें से किसी का कुछ बिगाड़ नहीं सकते।"

कुछ समय बाद लकड़हारों ने जंगल में अपने तम्बू लगा लिये और काटने की योजना बनाने लगे। वृक्ष अब और दुःखी होने लगे। उस वृक्ष ने उन्हें पुनः समझाया तुम सब प्रसन्न रहो हम सब इतने मजबूत हैं कि इनकी योजना कदापि सफल नहीं हो सकती।' वट वृक्ष की बात सुनकर वृक्षों की चिन्ता जाती रही, किन्तु जब एक दिन बहुत-सी लोहे की कुल्हाड़ियाँ बनकर आ गईं, तो बेचारे वृक्ष वटवृक्ष को भला-बुरा कहने लगे। वे बोले—"आप तो कह रहे थे कि ये लकड़हारे अपनी योजना में सफल नहीं हो सकते, किन्तु यह तो दिन-दिन हम सबको काटने का उपक्रम करते ही जा रहे हैं। अब तो लोहे की कुल्हाड़ियाँ भी बनकर आ गईं अब हममें से किसी की खैरियत नहीं है।"

वट वृक्ष ने फिर कहा, "इतनी ही नहीं, इससे चार गुनी कुल्हाड़ियाँ बनकर क्यों न आयें और इतने ही लकड़हारे इकट्ठे हो जाएँ तब भी हममें से किसी का बाल-बाँका नहीं कर सकते।" किन्तु एक दिन जब कुल्हाड़ियों में लकड़ी के वेट पड़ गये तो अन्य वृक्षों के कुछ कहने से पहले ही वट वृक्ष बोला, "भाइयो ! अब हम सबको इस सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा भी नहीं बचा सकते, हम सब काट डाले जायेंगे।"

जंगल के सारे वृक्ष बरगद से कहने लगे, "जब हम सब कटने की बात कहते थे, तब आप हमको मूर्ख समझते थे और विश्वास दिलाते थे कि यह लकड़हारे हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते, पर अब क्या बात हो गई जो आप स्वयं ही निराशा की बात करने लगे ?" वट वृक्ष ने गम्भीरता से उत्तर दिया, "तब तक केवल लकड़हारे और कुल्हाड़ी एक-दूसरे के सहायक थे इसलिए हमको कोई खतरा नहीं था, किन्तु अब देखो न कि हमारे ही कुल का काष्ठ लकड़हारों की कुल्हाड़ी का बेंट बनकर हमारे विनाश में सहायक हो रहा है। जब तक अपना ही कोई व्यक्ति विश्वासघात करके शत्रुओं से नहीं मिल जाता, तब तक किसी बात का खतरा नहीं रहता, किन्तु जब अपना ही कोई व्यक्ति शत्रु का सहायक बन जाता है, तब विनाश से बच सकना असम्भव हो जाता है।" वट वृक्ष की बात ठीक निकली। दूसरे ही दिन से लकड़हारों ने वृक्षों पर कुल्हाड़ी बजाना शुरू कर दिया और कुछ ही समय में जंगल को काटकर नीचे गिरा दिया।

अमरत्व से श्रेष्ठ सदाचार

बलाधि ऋषि के नवजात शिशु की मृत्यु हो गई। उससे वे बहुत व्याकुल हो उठे। उन्होंने देवराज की उपासना कर एक अमर पुत्र प्राप्त करने का निश्चय किया।

बलाधि ने तपस्या आरम्भ की। तप शक्ति से उन्होंने देवराज को प्रभावित कर लिया। इन्द्रदेव प्रकट हुए और वर माँगने को कहा। बलाधि ने कहा—"देव मुझे एक ऐसा पुत्र दीजिये जिसकी देह कभी क्षय न हो।"

देवराज ने कहा—"मनुष्य देह का अमर होना तो सम्भव नहीं है आप कोई दूसरा वर माँगो।"..... कुछ सोचकर ऋषि ने कहा—"तो फिर आप यह वरदान दीजिये कि यह सामने जो पहाड़ है, जब तक अचल खड़ा है तब तक मेरे पुत्र की मृत्यु न हो।"

एवमस्तु ! कहकर इन्द्र प्रसन्नतापूर्वक चले गये। इधर समय पाकर बलाधि को पुत्र प्राप्त हुआ। उसका नाम मेधावी रखा गया। मेधावी को बाल्यावस्था से ही यह अहंकार हो गया कि उसे कोई नहीं मार सकता, फलस्वरूप वह जहाँ भी जाता ढिठाई करता। किसी से न डरता। जो जी में आता वही करता।

बलाधि ने एक दिन अपने पुत्र को बुलाकर समझाया—"वत्स ! विद्या, धन, रूप, शक्ति और देवकृपा का अहंकार नहीं करना चाहिए। अहंकार ही मनुष्य के पतन और सर्वनाश का कारण है। मुझे मिले वरदान का चिरसुख चाहो तो अहंकार करना छोड़ दो।" मेधावी को पिता की बात पर बड़ा गुस्सा आया। उन्हें दुर्वचन कहकर वहाँ से चल दिया। उधर धनुषाक्ष से भेंट हो गई। उसने उन्हें भी अपशब्द कह डाले। ऋषि धनुषाक्ष ने उसे शाप दे दिया—तुम्हारी तत्काल मृत्यु हो जाए। किन्तु आश्चर्य ! ऋषि का शाप निरर्थक गया। मेधावी उद्धत हँसी, हँसता हुआ जीवित ही खड़ा रहा। ऋषि को वरदान की बात याद आई, उन्होंने तुरन्त भैंसे का रूप धारण कर सींगों से पहाड़ को ढहा दिया। उसके गिरते ही मेधावी भी वहीं धराशायी हो गया।

ऋषि बलाधि बहुत दुःखी हुए। उन्होंने समाचार सुना तो बोल उठे—"अमर पुत्र प्राप्त करने की अपेक्षा शान्त, सरल और सद्गुणी बालक होता तो अल्पायु में ही वह कहीं अधिक सुख देता।"

अतिथि देवो भव

शाकम्भर राज्य का मौरका गाँव—दस्युओं और अपराधियों का गढ़ समझा जाता था। अपने प्राचीन इतिहास में इस गाँव ने हत्या, डाकाजनी, छीना-झपटी, चोरी, बदमाशी के अतिरिक्त कोई धर्म-कर्म के दृश्य न देखे थे। अच्छे आदमी वहाँ जाने से भी डरते थे।

एक दिन मना करने के बाद भी आचार्य पुनर्वा के प्रिय शिष्य जातबन्धु धर्म-प्रसार के लिये मौरका पहुँच गये। जातबन्धु गुरुकुल से निकला सद्य-स्नातक था। उसकी आयु

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कोई २५ से अधिक न थी, पर उसे धर्म की शक्ति पर पूरा भरोसा था। जातबन्ध दुष्टता को प्रेम और आत्मीयता से जीतने की कला में बड़ा पटु था। ग्राम-प्रवेश करते ही उसे कुछ नवयुवकों ने पकड़ लिया और दस्युराज सूरसेन के पास ले गये। सूरसेन बड़ा नास्तिक और क्रूर व्यक्ति था। उसने कड़ककर पूछा—"युवक तुम यहाँ किसलिये आये हो, राज्याध्यक्ष के गुप्तचर लगते हो, साफ-साफ बताओ अन्यथा सिर धड़ से अलग कर दिया जायेगा।" जातबन्ध ने कोई उत्तर न दिया। केवल उसकी हिंसक आँखों की ओर प्यार और कोमल दृष्टि से देखता रहा। कोई उत्तर न पाकर सूरसेन की क्रोधाग्नि भभक उठी। उसने आज्ञा दी इसे खम्भे से बाँध दो और जब तक प्राण न निकल जाएँ, इसे कुछ खाने-पीने को मत दो।

एक दिन एक रात उसी स्थिति में बँधे जातबन्ध को आश्वस्त किया सूरसेन की पुत्री वारिजाता ने, किन्तु जैसे ही वह भोजन लेकर वहाँ पहुँची सूरसेन स्वयं वहाँ आ पहुँचा। उसने कड़ककर कहा—"लड़की तू यहाँ से हट, मैं इसका सर अभी काटकर अलग किये देता हूँ।" किन्तु वारिजाता सामने आ गई और बोली—"पिताजी ! अतिथि पर हाथ उठाना पाप है।" सूरसेन ने तलवार उठाई कि वारिजाता फिर सामने आ गई और बोली, "जब तक आप मुझे नहीं मार देते, आपको आगे न बढ़ने दूँगी। उठा हुआ हाथ वहीं रुक गया। पुत्री मृत्यु का स्मरण करुणा बनकर फूटा और उसने सूरसेन का हृदय परिवर्तित कर दिया। उसकी दुष्प्रवृत्ति श्रद्धा में बदल गई और एक दिन यही गाँव राज्य का सर्वश्रेष्ठ नगर घोषित हुआ।"

शक्ति का स्रोत पतिव्रत

दशरथ और मायासुर का युद्ध हो रहा था। मायावी राक्षस से सभी राजा परास्त हो चुके थे। दशरथ को अपनी विजय में सन्देह ही दिखाई दे रहा था। तब एक नारी संग्राम में उतरी। दशरथ की अर्धांगिनी कैकय सुता ने सारथि का पद सँभाला। उस दिन दशरथ ने घोर संग्राम कर असुरों के छक्के छुड़ा दिये। इसी बीच रथ के एक पहिये की धुरी टूट गई, रथ ने हिलने-डुलने से जवाब दे दिया। उस समय कैकेयी ने अपनी उँगली पहिये में लगादी और तब तक उस स्थिति में बनी रहीं जब तक उस दिन का युद्ध समाप्त नहीं हो गया। वह युद्ध कहते हैं दशरथ ने जीता था, पर यदि सच्चाई को अभिव्यक्त होने का अवसर दिया जाय तो यह कहना पड़ेगा कि विजय पतिव्रत की थी।

सुलोचना ने जीवन भर पतिव्रत की कठोर साधना द्वारा मेघनाद को वह बल प्रदान किया था कि उसके आगे देवता भी नहीं टिक सकते थे। ऐसे अपराजेय योद्धा को मारने वाले महारथी लक्ष्मण को भी यह सौभाग्य उनकी महान पतिव्रता उर्मिला ने ही प्रदान किया था। उर्मिला—भारतीय नारी के गौरवमय इतिहास का चन्द्रमा, जिसने चौदह वर्ष तक अपने पति की अनुपस्थिति में पलक ऊपर उठाकर किसी पुरुष के दर्शन भी नहीं किये थे। उसने राज्यभोग आभूषण और स्वाद युक्त भोजनों का केवल इसलिये परित्याग कर दिया था क्योंकि उसके पति वनवासी थे। ऐसी निष्ठाएँ भारतीय समाज को वह शक्ति प्रदान करती रही हैं, जिनकी यश गाथाएँ आज भी विश्व इतिहास के अन्तरिक्ष में सूर्य की भाँति दैदीप्यमान् हैं।

आज परिस्थितियाँ कुछ बदल अवश्य गई हैं, पर भावनाओं को कोई प्रतिबन्ध नहीं लगा। उतने त्याग और तप के लिये अवसर भले ही न हो पर सामान्य जीवन में, पारिवारिक व्यवस्था में तो स्त्री पुरुषों को सच्चे अर्थों में सहयोग प्रदान कर ही सकती हैं।

तैमूरलंग की कीमत

दुनिया के कट्टर और खूँखार बादशाहों में तैमूरलंग का भी नाम आता है। व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा, अहंकार और जवाहरात की तृष्णा से पीड़ित तैमूर ने एक बार विशाल भू-भाग को रौंदकर रख दिया। बगदाद में उसने एक लाख मरे हुये व्यक्तियों की खोपड़ियों का पहाड़ खड़ा कराया था। इसी बात से उसकी क्रूरता का पता चल जाता है।

एक समय की बात है। बहुत से गुलाम पकड़कर उसके सामने लाये गये। तुर्किस्तान का विख्यात कवि अहमदी भी दुर्भाग्य से पकड़ा गया। जब वह तैमूर के सामने उपस्थित हुआ तो एक विद्रूप की हँसी हँसते हुये उसने दो गुलामों की ओर इशारा करते हुये पूछा—सुना है कि कवि बड़े पारखी होते हैं, बता सकते हो इनकी कीमत क्या होगी ?

"इनमें से कोई भी ४ हजार अशर्फियों से कम कीमत का नहीं है।" अहमदी ने सरल किन्तु स्पष्ट उत्तर दिया—"मेरी कीमत क्या होगी ?" तैमूर ने अभिमान से पूछा। "यही कोई २४ अशर्फी" निश्चिन्त भाव से अहमदी ने उत्तर दिया।

तैमूर क्रोध से आगबबूला हो गया। चिल्लाकर बोला—"बदमाश ! इतने में तो मेरी सदरी भी नहीं बन सकती, तू यह कैसे कह सकता है कि मेरा मूल्य कुल २४ अशर्फी है।"

अहमदी ने बिना किसी आवेश या उत्तेजना के उत्तर दिया—"बस, वह कीमत उसी सदरी की है आपकी तो कुछ नहीं। जो मनुष्य पीड़ितों की सेवा नहीं कर सकता, बड़ा होकर छोटों की रक्षा नहीं कर सकता, असहायों की अनाथों की जो सेवा नहीं कर सकता, मनुष्य से बढ़ कर जिसे अहमियत प्यारी हो उस इनसान का मूल्य चार कौड़ी भी नहीं, उससे अच्छे तो यह गुलाम ही हैं जो किसी के काम तो आते हैं।"

धन्य है इस न्यायप्रियता को

तक्षशिला के राजा आम्भीक से स्वागत पाकर सिकन्दर सुस्ताने के लिए तक्षशिला में ठहर गया। एक दिन सायंकाल वह घूमता-घूमता एक गाँव की तरफ निकल गया। वहाँ एक पंचायत हो रही थी। सिकन्दर पंचों का न्याय देखने ठहर गया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पंचायत की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। वादी बोला—"मैंने प्रतिवादी से एक खेत खरीदा। हल जोतते समय जमीन के नीचे मुझे एक सोने के सिक्कों से भरा घड़ा मिला। मैंने केवल जमीन खरीदी थी, उसके नीचे की सम्पत्ति नहीं। इन मुद्राओं पर प्रतिवादी का ही अधिकार है मेरा नहीं, किन्तु वह मुहरें लेने से इनकार कर रहा है। कृपा कर न्याय किया जाए और प्रतिवादी से स्वर्ण मुद्राएँ लेने को कहा जाए।"

आज्ञा पाकर प्रतिवादी बोला—"मैंने जमीन बेच दी। उसमें उगने वाली फसल की तरह उसकी अन्तरस्थ सम्पत्ति से भी मेरा कोई सरोकार नहीं। उन मुहरों पर मेरा कोई अधिकार नहीं है। वादी से कहा जाए कि वह सारा स्वर्ण अपने पास रक्खे।"

कोई भी पक्ष उन स्वर्ण मुद्राओं को लेने को तैयार न था। पंच बड़े असमंजस में पड़े ! बड़ी देर विचार-विमर्श के बाद सरपंच ने फैसला दिया।

सरपंच बोला—"वादी के विवाह योग्य लड़की और प्रतिवादी के विवाह योग्य लड़का है ! वादी अपनी लड़की का विवाह प्रतिवादी के लड़के के साथ कर दे और वह सारा स्वर्ण वर-कन्या को उनके जीवन विकास के लिये प्रदान कर दे !"

वादी-प्रतिवादी ने पंचायत का फैसला मान लिया और लड़की-लड़के का विवाह कर सारा स्वर्ण उनको दान कर दिया।

सिकन्दर चुपचाप यह सारी कार्यवाही देखता रहा। भारतीयों का त्यागपूर्ण जीवन देखकर उसकी आत्मा कह उठी कि एक यह गरीब ग्रामीण जन हैं जो पाए हुए स्वर्ण को अपने पास नहीं रखना चाहते और एक तू है जो राजा होकर भी दूसरों की धन-दौलत छीनने के लिए रक्तपात करता फिर रहा है। धिक्कार है तेरे लोभ और तेरी तृष्णा को !

विवेक की विजय

प्राचीन पंचनद का एक लकड़हारा एक दिन जंगल गया। जैसे ही वह लड़की काटने को हुआ उसने देखा एक जौहड़ में सुअर का बच्चा फँस गया है। लकड़हारे ने असहाय सुअर को कीचड़ से बाहर निकाला और उसे अपने साथ घर ले आया।

उसने घर में भी कई सुअर पाल रखे थे, उन्हीं में इसे भी छोड़ दिया। घर में सुअरों में भी एक छोटा बच्चा था, इन दोनों में गहरी दोस्ती हो गई।

एक दिन घर वाले सुअर के बच्चे ने पूछा—"भाई ! तुम जिस प्रदेश में रहते थे, वहाँ तो किसी प्रकार के साधनों का अभाव नहीं है, फिर भी तुम इतने दुबले-पतले क्यों हो ?"

जंगल का सुअर दुबला था, पर था समझदार। उसने कहा—"भाई ! किसी के पास बहुत साधन होना ही सुख का प्रतीक नहीं है, मूलवस्तु है निर्भयता, जो शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और दैविक सभी प्रकार के भय से मुक्त हो जाता है, वही सुखी होता है। भय चाहे किसी व्यक्ति का हो या मृत्यु का सदैव ही दुःख देता है, उसके रहते न कोई ज्ञान काम देता है, न दर्शन। मेरी स्थिति भी यही थी। वन में स्वतन्त्रता अवश्य है, पर वहाँ भी शक्तिशाली द्वारा निर्बल को सताये जाने का भय सदैव बना रहा है। मैं जहाँ रहता हूँ, वहाँ एक सिंह रहता था, वह छोटे-छोटे जीवों को खा जाता था, उसी के भय ने मुझे पनपने नहीं दिया। स्वतन्त्र रहकर भी उद्वेग और चिन्ता खाये जाती थी।"

दूसरे सुअर के बच्चे ने कहा—"मित्र ! स्वच्छन्दतावाद की सर्वत्र ऐसी ही दुर्गति होती है। देखो हम यहाँ कम साधनों में भी अनुशासन और सामाजिक मर्यादाओं में रहकर भी कितने स्वस्थ और प्रसन्न हैं ?"

लेकिन, उसने कुछ सोचकर अपनी बात फिर जारी कर दी—"तुम तो बुद्धिमान हो, सिंह का संगठित मुकाबला करते तो सम्भवतः वहाँ भी भय-मुक्त हो सकते थे।"

दूसरे दिन उस बच्चे के सेनाधिपत्य में सुअरों के एक दल ने शेर पर आक्रमण कर दिया। शेर बहुत-से सुअरों को देखकर घबरा गया और वहाँ से अन्यत्र भाग गया। शेर की माँद के पास एक बूढ़ा सियार रहता था, उसने यह दृश्य देखा तो अपनी सियारनी से बोला—"किसी ने सच ही कहा है, बुद्धि और विवेक से काम लेने वाले छोटे लोग ही संसार में सदैव निर्भय और विजयी होते हैं।"

शान्ति, सुख और प्रसन्नता

मिट्टी के टीले पर बैठे हुए सन्त अनाम अस्ताचलगामी भगवान सूर्य को बड़े ध्यान से देख रहे थे। वे देख रहे थे, किस प्रकार एक दिन महाशक्तियों का वैभव नष्ट हो जाता है।

सन्त अनाम इन्हीं विचारों में डूबे थे कि एक आदमी उनके समीप आया और प्रणाम कर चुपचाप खड़ा हो गया। मुसकराते हुये सन्त अनाम ने पूछा—"वत्स ! मुझ से कुछ काम है ?"

आगन्तुक ने विनय की—"भगवन् ! मैं पुरुदेश का धनी सेठ हूँ। तीर्थ-यात्रा के लिये चलने लगा तो मेरे एक मित्र ने मुझसे कहा—"आप इतने स्थानों की यात्रा करेंगे कहीं से मेरे लिये शान्ति, सुख और प्रसन्नता मोल ले आना।" मैंने अनेक स्थानों पर ढूँढ़ा पर यही तीन वस्तुएँ कहीं नहीं मिलीं। आपको अत्यन्त शान्त, सुखी और प्रसन्न देखकर ही आपके पास आया हूँ, सम्भव है आपके पास ही वह वस्तुएँ उपलब्ध हो जाएँ।

सन्त अनाम फिर मुसकराये और अपनी कुटिया के भीतर चले गये। एक निमिष के उपरान्त ही लौटकर आये और एक कागज की पुड़िया देते हुए बोले, "यह अपने मित्र को दे देना और हाँ तब तक इसे कहीं खोलना मत।"

आगन्तुक पुड़िया लेकर चला गया। मित्र ने एकान्त में ले जाकर उसे खोला और उसमें रखी ओषधि का सेवन करके कुछ दिन में ही सुखी, शान्त और प्रसन्न हो गया। एक दिन वह धनी सज्जन मित्र के पास जाकर बोले—"मित्र ! मुझे भी अपनी ओषधि का कुछ अंश दे दो, तो मेरा भी कल्याण हो जाए।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मित्र ने पुड़िया खोलकर दिखाई—उसमें लिखा था—"अन्तःकरण में विवेक और सन्तोष से ही स्थायी सुख-शांति और प्रसन्नता मिलती है।"

नरमेध

यूनान के शाह का स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन खराब होता गया। बचने के आसार नजर नहीं आ रहे थे। अन्त में वहाँ के सभी हकीमों ने मिलकर यह निश्चय किया कि यदि निर्धारित लक्षणों वाले किसी व्यक्ति का पित्ताशय प्राप्त हो सके, तो शाह के जीवन को बचाया जा सकता है।

शासकीय कर्मचारी निकल पड़े और दो-तीन दिन की खोज-बीन के बाद चाहे हुये लक्षणों वाले एक बालक को पकड़ लाये। निर्धन माँ-बाप का वह सीधा-साधा बालक। पिता को विपुल मात्रा में धन दे दिया गया तो उसने चूँ तक न की।

काजी से इस सम्बन्ध में परामर्श लिया गया तो उन्होंने भी कह दिया कि राजा के प्राण रक्षा हेतु यदि प्रजा के किन्हीं एक दो व्यक्तियों को अपना बलिदान भी देना पड़े, तो वह अपराध की कोटि में न आयेगा।

वह लड़का राजा के सम्मुख उपस्थित किया गया। सभी हकीम अपनी तैयारी के साथ आये ही थे। जल्लाद को तलवार से काम तमाम करने की आज्ञा दे दी गई। जल्लाद ने जैसे ही तलवार उठाई कि बालक को ऊपर आकाश की ओर देखकर हँसी आ गई।

राजा को, मृत्यु के मुँह में जाते बालक को हँसते देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ, उन्होंने संकेत से उस जल्लाद को रुकने के लिए कहा। जल्लाद ने अपना हाथ नीचे कर लिया। बालक गम्भीर हो गया उसने कहा—"आज मैंने देखा कि माता-पिता जिस सन्तान के लिये प्राण देते हैं, उन्होंने उसे पैसों के लोभ में आकर बेच दिया। काजी जो धर्म और मर्यादा की रक्षा करने वाला कहा जाता है, उसने राजा को खुश करने के लिए धर्म के सिद्धान्त को ही बदल दिया और राजा के जीवन को बचाने के लिये भले ही किसी के प्राण लिये जाए, पर धर्म उसे अपराध और पाप की दृष्टि से मान्य करने को तैयार नहीं। प्रजा का रक्षक बादशाह ही भक्षक बना जा रहा हो, उस समय ईश्वर के अलावा व्यक्ति को सहारा देने वाला और हो भी कौन सकता है ?"

"अतः मुझे उस परमपिता की याद करके हँसी आ गई कि यहाँ तो ऐसा अँधेर मचा हुआ है, देखें सबका रक्षक क्या करता है ?"

"मुझे क्षमा कर बेटा ! अब तू निश्चिन्त हो जा। जल्लाद की तलवार अब तुम्हारा कुछ न बिगाड़ सकेगी।" शाह ने अपनी भूल स्वीकार करते हुए कहा।

लोभ का फल

एक बार एक सेठजी का इरादा था किसी ब्राह्मण को भोजन करा दिया जाय, परन्तु लोभी बहुत थे वे। एक दिन सेठजी एक गाँव वाले ब्राह्मण से बातचीत कर रहे थे तो सेठजी ने उनसे पूछा, "महाराज आप कितना खाते होंगे ? महाराज बोले, "लगभग एक छटांक।" यह सुनकर लालाजी ने उन्हें न्योता दे दिया और कहा, "मैं तो कल सौदा तुलाने जाऊँगा, आप घर जाकर भोजन कर आवें।" यही बात सेठजी ने सेठानी से घर आकर कही कि मैं तो कल सौदा तुलाने जाऊँगा, ब्राह्मण जीमने आएँ तो जो वह माँगे दे देना। सेठजी ने सोचा, पंडितजी एक छटांक ही तो खाते हैं, तो वे ज्यादा तो ले नहीं जायेंगे। दूसरे दिन ब्राह्मण भोजन करने आये, तो आते ही सेठानी को आशीर्वाद दिया। उसने पंडितजी की बड़ी आवभगत की। पंडितजी से आते ही पूछा—"कहिए पंडितजी, आपको क्या-क्या चाहिए ?" पंडितजी ने मौका अच्छा जानकर, आटा १० मन, चावल चार मन, दो मन शक्कर, एक मन घी, पाँच सेर नमक और दो सेर मसाला लिया और घर भिजवा दिया, फिर भोजन करके दक्षिणा में दो सौ अशर्फियाँ लेकर घर आ गये और आते ही घर पर ओढ़ कर लेट गये और ब्राह्मणी से बोले—"अगर सेठजी आवें तो तू रोने लगना और कहना जबसे आपके यहाँ से आये हैं तब से बहुत सख्त बीमार हैं ?" इधर सेठजी बाहर से हारे थके, भूखे, प्यासे घर आये। सेठानी से पूछा, "ब्राह्मण जी भोजन कर गए ?" सेठानी ने सारा सामान बता दिया तथा दक्षिणा देने की भी बात बताई। सेठ सुनकर मूर्च्छित हो गया। होश आने पर वह ब्राह्मण के घर गया। उसे देखते ही ब्राह्मणी रोने लगी और बोली, उनको तो जब से आपके यहाँ से भोजन करके आए हैं, न जाने क्या हो गया है ? सख्त बीमार हैं। बचने की कोई आशा नहीं।" यह सुनकर सेठजी बड़े घबड़ाये। सेठजी ब्राह्मणी के हाथ जोड़कर बोले, "चिल्लाओ मत हम तुम्हें दो सौ रुपये और देते हैं और तुम उनकी दवा करो, पर यह न कहना कि सेठ जी के घर खाने गये थे।" ठीक है, अत्यन्त लोभ करने का यही फल है।

श्रद्धाभाव से सब कुछ प्राप्ति

बहुत दिन हुए एक व्यापारी गुजरात में जाकर व्यापार करने लगा। उसने अपने पुत्र को नालन्दा विश्वविद्यालय में पढ़ने भेजा। कुछ दिनों में उसकी पत्नी की मृत्यु हो गई। उसके दुःख में उसने भी प्राण त्याग दिये। मरने से पूर्व उसने सारी सम्पत्ति अपने पुत्र के नाम कर दी और उसके पास समाचार भेज दिया तथा तब तक व्यवस्था एक न्यायाधीश को सौंप दी।

समाचार प्राप्त होते ही वह व्याकुल होकर घर की ओर चला। मार्ग में उसे एक अन्य बालक मिला तथा सहानुभूति दिखाते हुए उसने उसके उत्तराधिकारी होने तथा परिवार में अकेला होने का सारा भेद मालूम कर लिया और उसके साथ हो लिया। दोनों में गाढ़ी मित्रता हो गई। किन्तु घर पहुँचते ही अशोक के साथ वह भी रोने लगा, अपने को उत्तराधिकारी कहने लगा। न्यायाधीश चकराया, उसने व्यापारी के पुत्र को पहचानने की एक युक्ति निकाली। उसने व्यापारी का एक चित्र मँगवाकर, उसकी छाती की ओर इशारा करते हुए, एक-एक तीरकमान उनके हाथ में देकर निशाना लगाने को कहा। यह भी कहा जो ठीक निशाना लगायेगा, वही उत्तराधिकारी माना जायेगा। अशोक के साथी ने तो तीर ठीक निशाने पर छोड़ दिया। परन्तु, अशोक उन्हें फेंककर फोटो से लिपट गया। उसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देखकर उसके दिल में पिता के प्रति श्रद्धाभाव जाग्रत हो गया। अशोक ने न्यायाधीश से सम्पत्ति उसे ही दे देने को कहा तथा अपने लिये पिता की निशानी माँगी। न्यायाधीश ने समझकर कि असली उत्तराधिकारी कौन है, उसे उत्तराधिकारी घोषित किया और साथी को जेल भेज दिया। इस प्रकार के त्याग और श्रद्धा भाव से उसे सर्वस्व प्राप्ति हो गई।

विनाश के कारण सांसारिक आकर्षण

कालिन्दी के महापंडित कौत्स स्नानकर भगवती ऊषा का वंदन कर रहे थे। एक घड़ियाल उन्हें काफी दूर से ताक रहा था, किन्तु कौत्स ऐसी ऊँची और सुदृढ़ शिला पर बैठे थे कि घड़ियाल वहाँ तक पहुँच भी नहीं सकता था।

निदान उसने युक्ति से काम लिया। यमुना की तलहटी से रत्नों का ढेर उठाकर उसने ऊपर की ओर उछाला। मोतियों का ढेर कौत्स के आस-पास जाकर बिखर गया। कौत्स ने चारों ओर बिखरे मोती और मणि मुक्ताएँ देखीं तो अन्तःकरण में छिपा उनका लोभ जाग पड़ा। मन में विलासितापूर्ण जीवन के चित्र बनने लग गये। कोई और न आ जाए, इस भय से कौत्स जल्दी-जल्दी वह रत्न बीनकर अपने उत्तरीय वस्त्र में बाँधने लगे।

घड़ियाल को अवसर मिल गया। जल से ऊपर शीश निकालकर उसने कहा—"आचार्य श्रेष्ठ ! आपके दर्शन कर कृतकृत्य हो गया। यह तो मेरी तुच्छ भेंट थी। आपको जल्दी न हो, तो आप मुझे त्रिवेणी तक पहुँचा दें। मैं वहाँ का रास्ता नहीं जानता यदि इस पुण्य कार्य में आप मेरी मदद करें, तो मैं इन तुच्छ मोतियों से भी बढ़कर पाँच मुक्ताहार दे सकता हूँ।"

कौत्स के हर्ष का ठिकाना न रहा। उन्होंने घड़ियाल का प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया। वह त्रिवेणी तक ले चलने को सहमत हो गये। क्षणिक लोभ और लालच ने उनका विवेक ही नष्ट कर दिया। घड़ियाल ने उन्हें सादर पीठ पर बैठाया और वहाँ से चल पड़ा। अभी वह सौ गज चलकर बीच धार में पहुँचा ही था कि उसे हँसी आ गई। घड़ियाल को हँसते देखकर कौत्स ठिठके और पूछा—"तात् ! असमय आपकी हँसी का रहस्य क्या है ?"

घड़ियाल एक बार वीभत्स हँसी हँसा और फिर दार्शनिक की सी मुद्रा बनाकर बोला—"आचार्यवर ! आप जीवन भर दूसरों को उपदेश देते रहे कि विनाश सांसारिक आकर्षण के रूप में आता है, क्षणिक तुष्टि भी प्रदान करता है, पर एकबार मनुष्य को अपने शिकंजे में पा जाने वाली वासनाएँ मनुष्य को वहाँ ले जाती हैं, जहाँ सिवाय विनाश के कुछ नहीं होता। दूसरों को उपदेश देने के बावजूद भी तुम यह तथ्य न समझ सके और आज एक लालच ने ही तुम्हें सर्वनाश के पास पहुँचा दिया।" यह कहकर उसने कौत्स को उछाला और एक ही क्षण में उदरस्थ कर लिया।

सच है, सांसारिक आकर्षणों में जो अडिग नहीं रह सकता, वासनाएँ उसे उसी तरह खा जाती हैं; जैसे कौत्स को घड़ियाल ने धोखा देकर चट कर लिया।

परोपकार के लिए आत्मबलिदान

संसार में न जाने कितने ऐसे परोपकारी हो गये हैं, हो रहे हैं और आगे भी होते रहेंगे, जिन्होंने किसी कीर्ति, ख्याति, लोभ अथवा लाभ के लिए नहीं बल्कि मनुष्यता की उदात्त भावना से प्रेरित होकर स्वान्तः सुखाय मानव कल्याण के लिए अपार कष्ट सहा, सह रहे हैं और सहते रहेंगे। इतिहास के खुले पन्नों में लिखे हुए महान् पुरुषों की अपेक्षा ऐसे बेनाम उपकारी अधिक महान् हैं, इसमें संदेह नहीं। ऐसे ही अनेक गुमनाम धाम उपकारियों ने अपनी अमूल्य सेवाओं से पनामा नहर के बनते समय मानवता को उपकृत किया था।

एक द्वीप से दूसरे द्वीप और एक देश से दूसरे देश का सम्पर्क स्थापित करने के लिए जल मार्ग पनामा नहर का निर्माण हो रहा था। उन दिनों वहाँ अनेक भयंकर रोगों का प्रकोप था, जिनमें से मलेरिया का रोग तो महामारी की तरह फैला हुआ था और इस रोग की साधारण रोग नहीं असाध्य रोग समझा जाता था। एक बार जिसको यह रोग पकड़ लेता था, उसे या तो समाप्त करके छोड़ता था अथवा इतना कमजोर कर देता था कि वह किसी काम के योग्य न रहता था।

मलेरिया का यह भयंकर रोग पनामा नहर पर काम करने वाले सैकड़ों, हजारों मजदूरों में फैल गया, जिससे जाने कितने मजदूर मर गये और कितने बुरी तरह बीमार पड़ गये ? बड़ा हाहाकार मच गया। ऐसा लगने लगा कि इस रोग के कारण न केवल पनामा का निर्माण ही रुक जायेगा बल्कि अगणित मनुष्यों का संहार हो जायेगा।

उपचार करने वाले उपचार करने में लग गये और डॉक्टर मलेरिया को समूल नष्ट करने के उपायों में जुट गये। इस रोग के समूल विनाश के लिए डॉक्टरों को कठिन प्रयोग की आवश्यकता पड़ी। उन्होंने कहा कि यदि हमको कुछ ऐसे आदमी मिल जाएँ जिनके शरीर में मलेरिया के कीटाणुओं को प्रवेश कराकर उनकी प्रक्रिया एवं प्रतिक्रिया का अध्ययन किया जा सके तो सम्भव है कि हम लोग मलेरिया के समूल विनाश के उपाय खोज निकालें।

कठिन कार्य था, मलेरिया के कष्ट से लोग परिचित थे। तब भी क्या किसी कष्ट के भय से मानव कल्याण के इतने बड़े काम को अधूरा रहने दिया जाता। निदान अनेक ऐसे आदमी आगे आये, जिन्होंने अपने स्वस्थ शरीर में मलेरिया के कीटाणु प्रवेश कराकर डॉक्टरों को उपचारक उपाय खोज निकालने में सहायता दी, किन्तु जिनका आज तक संसार को पता नहीं लग सका।

विद्या से विनय

महर्षि आरुणि के पुत्र श्वेतकेतु ने गुरुकुल में रहकर लगन के साथ विद्याध्ययन किया। साथ ही गुरु-सेवा से उनके कृपा पात्र भी बन गये। यद्यपि गुरु को अपने सभी शिष्य प्रिय थे तथापि अपने सेवा बल से श्वेतकेतु ने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विशेषता प्राप्त करली थी। गुरु की कृपा से जहाँ उन्होंने शीघ्र ही चारों वेदों का अखण्ड ज्ञान प्राप्त कर लिया था, वहाँ गुरु की प्रशंसा और प्रियता के कारण उनमें कुछ अहंकार भी आ गया था। अपने पाण्डित्य के अभिमान में गुरु के सिवाय अन्य किसी का आदर करना ही भूल गये।

निदान श्वेतकेतु जब गुरु का आशीर्वाद और चारों वेदों का सम्पूर्ण ज्ञान लेकर घर आये तो अहंकारवश पिता को भी प्रणाम नहीं किया। उनके पिता महर्षि आरुणि को इसका बड़ा दुःख हुआ। दुःख इसलिये नहीं कि वे पुत्र के प्रणाम के भूखे थे और श्वेतकेतु ने उन्हें प्रणाम नहीं लिया। वरन् दुःख इसलिए हुआ कि पुत्र एक लम्बी अवधि के बाद जहाँ ज्ञानी वहाँ अभिमानी भी होकर आया है।

महर्षि आरुणि पुत्र की इस वृत्ति से चिन्तित हो उठे क्योंकि वे जानते थे कि जिस विद्या के साथ विनय नहीं रहती वह न तो फलीभूत होती है और न आगे विकसित ! उन्होंने पुत्र के हित में उसका यह विकार दूर करने के मन्तव्य से व्यंगपूर्वक कहा—"ऋषिवर ! आपने ऐसी कौन ज्ञान की गूढ़ पुस्तक पढ़ ली है, जो गुरुजनों का आदर तक करना भूल गये। मानता हूँ आप बहुत बड़े विद्वान् हो गये। चारों वेदों का ज्ञान आपने प्राप्त कर लिया है। किन्तु इसके साथ यह भी जानते होंगे कि विद्या का सच्चा स्वरूप विनय है। जब आप वही न सीख पाये तो विद्वान कैसे ?"

पिता की बात सुनकर श्वेतकेतु ने अपनी भूल अनुभव की और लज्जित होकर पिता के चरणों में गिर गये। महर्षि आरुणि ने श्वेतकेतु को उठाकर छाती से लगा लिया और कहा—"अभिमान तुम्हें नहीं, अपने पुत्र की विद्वता पर अभिमान तो मुझे होना चाहिये था।"

आज के पुण्य, कल की प्राप्ति

एक बार एक व्यक्ति ने अपना सर्वस्व परोपकार में लगाकर संन्यास ग्रहण किया। वह सभी प्रकार से ईश्वर में शरणागत हो गया। इसके कारण उसके योग क्षेम का भार स्वयं उठाने के लिए भगवान को सहर्ष बाध्य होना पड़ा। उसके लिए एक देवदूत एक थाली में बड़े सुस्वादु भोजन लाता था और उसे कराकर लौट जाता था। यह देख एक अन्य व्यक्ति भी अपना सब कारोबार लड़कों को सौंपकर, गेरुआ वस्त्र पहनकर उसी के निकट तप करने लगा।

अब देवदूत दो थाली लाने लगा, एक में सूखी रोटी तथा दूसरी में वही सुस्वादु भोजन। दूसरे व्यक्ति ने लगातार सूखी रोटी आते देख कहा—"मुझे ही क्यों यह सूखी रोटी मिल रही है।" देवदूत ने उत्तर दिया—"भगवान ! यह फल तो संचित पुण्य के अनुसार मिल रहा है। उसने पुण्य में सर्वस्व लगा दिया और आपने जीवन भर में केवल एक बार बड़े अहंकार से एक व्यक्ति को रोटी दी थी, उसी के ब्याज स्वरूप यह रोटियाँ मिल रही हैं। अब आपकी सूखी रोटी भी समाप्त होने को हैं, फिर कुछ न मिलेगा।"

अब इस व्यक्ति को चेतना हुई और उसने अपनी बाकी बची रोटी देवदूत से मँगाकर दान करदीं और आप भूखा रहा। दूसरे दिन जब देवदूत भोजन लेकर आया तो दोनों थाली सुस्वादु पकवानों से भरी थीं।

पहले पात्रता तब दीक्षा

एक बार एक धनी वणिक ने एक महात्मा से दीक्षा देने का अनुरोध किया। साधु ने बात टालने का प्रयत्न किया किन्तु वणिक ने पाँव पकड़ लिए। अन्त में साधु कुछ समय बाद आकर दीक्षा देने का वचन देकर चला गया।

पाँच पखवारे बाद महात्मा उसी वणिक के द्वार पर आये और भिक्षा के लिए आवाज लगाई। वणिक ने स्वर पहचान लिया और एक से एक बढ़कर पकवानों से थाली सजाकर ले आया। उसे आशा थी कि सन्त इस बार दीक्षा अवश्य देंगे।

साधु ने अपना कमण्डल आगे करते हुए कहा कि भोजन इसी में डाल दो। वणिक ने देखा कमण्डल में न जाने कूड़ा-करकट आदि क्या-क्या गन्दगी भरी हुई थी। उसने साधु से कहा—"महात्मन् ! आपका कमण्डल तो बहुत ही गन्दा है, उसमें भोजन अशुद्ध एवं अभोज्य हो जाएगा।"

साधु ने तुरन्त उत्तर दिया, "कमण्डल की गन्दगी से जिस प्रकार भोजन अशुद्ध हो जायेगा उसी प्रकार विषय-विकारों से मलिन अन्तःकरण में दीक्षा अशुद्ध हो जायेगी। उसका कोई फल न निकलेगा।"

वणिक ने सन्त का आशय समझकर प्रणाम किया और कहा—"महाराज मुझे अभी दीक्षा की आवश्यकता नहीं है। पहले पात्रता उत्पन्न करूँगा तब दीक्षा की इच्छा !"

सफलता का श्रेय

सफलता का श्रेय किसे मिले इस प्रश्न पर एक दिन विवाद उठ खड़ा हुआ। 'संकल्प' ने अपने को, 'बल' ने अपने को और 'बुद्धि' ने अपने को अधिक महत्त्वपूर्ण बताया। तीनों अपनी-अपनी बात पर अड़े हुए थे। अन्त में तय हुआ कि 'विवेक' को पंच बना इस झगड़े का फैसला कराया जाय।

तीनों को साथ लेकर विवेक चल पड़ा। उसने एक हाथ में लोहे की टेड़ी कील ली और दूसरे में हथौड़ा। चलते-चलते वे लोग ऐसे स्थान में पहुँचे, जहाँ एक सुन्दर बालक खेल रहा था। विवेक ने बालक से कहा कि—"बेटा, इस टेड़ी कील को अगर तुम हथौड़ा से ठीक कर सीधी कर दो तो मैं तुमको भर पेट मिठाई खिलाऊँ और खिलौने से भरी एक पिटारी भी दूँ।"

बालक की आँखें चमक उठीं। वह बड़ी आशा और उत्साह से प्रयत्न करने लगा, पर कील को सीधा कर सकना तो दूर उससे हथौड़ा उठा तक नहीं। भारी औजार उठाने के लायक उसके हाथों में बल नहीं था। बहुत प्रयत्न करने पर सफलता न मिली तो बालक खिन्न होकर चला गया। इससे उन लोगों ने यह निष्कर्ष निकाला कि सफलता प्राप्त करने को अकेला 'संकल्प' अपर्याप्त है।

चारों आगे बढ़े तो थोड़ी दूर जाने पर एक श्रमिक दिखाई दिया। वह खर्राटे लेता हुआ सो रहा था। विवेक ने उसे झकझोरकर जगाया और कहा कि "इस कील को हथौड़ा मारकर सीधा कर दो मैं तुम्हें दस रुपया दूँगा।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उनींदी आँखों से श्रमिक ने कुछ प्रयत्न भी किया, पर वह नींद की खुमारी में बना रहा। उसने हथौड़ा एक ओर रख दिया और वहीं लेटकर फिर खर्राटे भरने लगा।

निष्कर्ष निकला कि अकेला 'बल' भी काफी नहीं है। सामर्थ्य रखते हुए भी संकल्प न होने से श्रमिक जब कील को सीधा न कर सका तो इसके सिवाय और क्या कहा जा सकता था ?

विवेक ने कहा कि हमें लौट चलना चाहिये, क्योंकि जिस बात को हम जानना चाहते थे वह मालूम पड़ गई। संकल्प, बल और बुद्धि का सम्मिलित रूप ही सफलता का श्रेय प्राप्त कर सकता है। एकाकी रूप में आप लोग तीनों अधूरे-अपूर्ण हैं।

एक सेब का मूल्य

तुर्की में जकीर नाम के एक फकीर हुए हैं। वह आईन नदी के किनारे कुटी बनाकर रहते थे। एक दिन नदी में एक सेब बहता आ रहा था। जकीर ने उसे पकड़ लिया।

अभी उसे खाने की तैयारी कर ही रहे थे कि अन्तःकरण से आवाज आई—"फकीर ! क्या यह तेरी सम्पत्ति है, क्या तूने इसे परिश्रम से पैदा किया है ? यदि नहीं तो इसे खाने का तुझे क्या अधिकार ?"

सेब झोले में डालकर अब फकीर उसके स्वामी की खोज में नदी के चढ़ाव की ओर चल पड़े। थोड़ी दूर पर एक सेब का बाग मिला। कुछ सेब के वृक्षों की डालें पानी को छू रही थीं, फकीर ने विश्वास किया सेब यहीं से टूटा हुआ होगा।

उन्होंने बाग के स्वामी से कहा—"यह लीजिये आपका सेब नदी में बहा जा रहा था।" उसने कहा—"भाई, मैं तो बाग का रखवारा मात्र हूँ, इसकी स्वामिनी तो बुखारा की राजकुमारी है।"

फकीर वहाँ से बुखारा के लिये रवाना हुआ। कई दिन की पैदल यात्रा के बाद वहाँ पहुँचा और वह सेब लेकर राजकुमारी जी के पास उपस्थित हुआ।

फकीर को एक सेब लेकर इस तरह आने का हाल सुनकर राजकुमारी हँसकर बोली—"अरे बाबा ! इसको वहीं खा लेते, एक सेब यहाँ लाने की क्या आवश्यकता थी ?"

फकीर ने कहा—"राजकुमारी जी आपकी दृष्टि में एक सेब का कुछ भी मूल्य नहीं, पर इस एक सेब ने तो मेरा सारा धर्म, संयम और सारे जीवन की साधना नष्ट कर दी होती ?"

सच्चा प्रजा पालन

एक बार महाराजा अशोक के राज्य में अकाल पड़ा। जनता भूख तथा प्यास से त्रस्त हो उठी। राजा ने तत्काल राज्य में अन्न के भण्डार खुलवा दिये। सुबह से लेने वालों का तांता लगता और शाम तक न टूटता।

एक दिन सन्ध्या हो गई। जब सब लेने वाले निबट गये तो एक कृशकाय बूढ़ा उठा और उसने अन्न माँगा, बाँटने वाले भी थक चुके थे अतः उन्होंने उसे डाँटकर कहा "कल आना आज तो अब खैरात बन्द हो गई।"

तभी एक हृष्ट-पुष्ट शरीर के नवयुवक जैसा व्यक्ति आया और बाँटने वालों से कहा—"बेचारा बूढ़ा है। मैं देख रहा हूँ बड़ी देर से बैठा है यह। शरीर से दुर्बल होने के कारण सबसे पीछे रह गया है। इसे अन्न दे दो।"

उसकी वाणी में कुछ ऐसा प्रभाव था कि बाँटने वालों ने उसे अन्न दे दिया। उस नवयुवक की सहायता से उसने गठरी बाँध ली। अब उठे कैसे ? तब वही युवक बोला, "लाओ, मैं ही पहुँचाए देता हूँ।" और गठरी उठा कर पीछे-पीछे चलने लगा।

बूढ़े का घर थोड़ी दूर पर रह गया था। तभी एक सैनिक टुकड़ी उधर से गुजरी। टुकड़ी के नायक ने घोड़े पर से उतरकर गठरी ले जाने वाले का फौजी अभिवादन किया। उस व्यक्ति ने संकेत से आगे कुछ बोलने को मना कर दिया। फिर भी बूढ़े की समझ में कुछ-कुछ आ गया। वह वहीं खड़ा हो गया और कहने लगा "आप कौन हैं, सच-सच बताइये।"

वह व्यक्ति बोला "मैं एक नौ जवान हूँ और तुम वृद्ध हो, दुर्बल हो। बस इससे अधिक परिचय व्यर्थ है। चलो बताओ तुम्हारा घर किधर है ?" पर अब तक बूढ़ा पूरी तरह पहचान चुका था। वह पैरों में गिर गया और क्षमा माँगते हुये बड़ी मुश्किल से बोला, "प्रजापालक ! आप सच्चे अर्थों में प्रजापालक हैं।"

जीवन का रहस्य

देवों और असुरों में घोर युद्ध हो रहा था। राक्षसों के शस्त्र बल और युद्ध-कौशल के सन्मुख देवता टिक ही नहीं पाते थे। वे हारकर जान बचाने भागे, सब मिल कर महर्षि दत्तात्रेय के पास पहुँचे और उन्हें अपनी विपत्ति की गाथा सुनाई। महर्षि ने उन्हें धैर्य बँधाते हुए पुनः लड़ने को कहा। फिर लड़ाई हुई, किन्तु देवता फिर हार गये और फिर जान बचाकर भागे महर्षि दत्तात्रेय के पास। अबकी बार असुरों ने भी उनका पीछा किया। वे भी दत्तात्रेय के आश्रम में आ पहुँचे। असुरों ने दत्तात्रेय के आश्रम में उनके पास बैठी हुई एक नवयौवना स्त्री को देखा। बस, दानव लड़ना तो भूल गये और उस स्त्री पर मुग्ध हो गये। स्त्री जो रूप बदले हुए लक्ष्मीजी ही थीं, असुर उन्हें पकड़कर ले भागे। दत्तात्रेयजी ने देवताओं से कहा "अब तुम तैयारी करके फिर से असुरों पर चढ़ाई करो।" लड़ाई छिड़ी और देवताओं ने असुरों पर विजय प्राप्त की। असुरों का पतन हुआ।

विजय प्राप्त करके देवता फिर दत्तात्रेय के पास आये और पूछने लगे, "भगवन ! दो बार पराजय और अंतिम बार विजय का रहस्य क्या है ?" महर्षि ने बताया अब तक मनुष्य सदाचारी संयमी रहता है जब तक उसमें उसका पूर्ण बल विद्यमान बना रहता है और जब वह कुपथ पर कदम रखता है, तो उसका आधा बल क्षीण हो जाता है। पर-नारी का अपहरण करने की कुचेष्टा में असुरों का आधा बल नष्ट हो गया था, तभी तुम उन पर विजय प्राप्त कर सके।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अभ्यास से सब कुछ संभव

राजा भोज अपने मन्त्री के साथ कहीं दूर यात्रा कर रहे थे। रास्ते में उन्होंने एक किसान को ऊबड़-खाबड़ जमीन पर गहरी नींद में सोते देखा। राजा ने मन्त्री से पूछा—"ऐसी ऊँची-नीची, ढेले और कंकड़ों से भरी हुई जमीन में इस किसान को गहरी नींद क्यों आ गई ? हमें तो थोड़ी अड़चन होने पर निद्रा उचट जाती है।"

मन्त्री ने कहा—"महाराज ! यह सब अभ्यास और परिस्थितियों पर निर्भर है। मनुष्य से अधिक कोई कठोर नहीं और न उससे अधिक कोई कोमल होता है। परिस्थितियाँ मनुष्य को अपने अनुकूल बना लिया करती हैं।"

पर यह बात राजा को पूरी तरह नहीं जँची। मन्त्री ने कहा—"तब इसकी परीक्षा करली जाय।" दोनों ने सलाह करके उस किसान को राजमहलों में रखने का निर्णय किया जिससे उसे कुछ दिन तक राजसी ठाठ-बाट से रखकर उसकी जाँच की जाय। महलों में पहुँचने पर उसके खाने, पीने और सोने का बढ़िया-से-बढ़िया इन्तजाम किया गया और उसे खूब आराम से रखा जाने लगा। इस प्रकार कई महीने बीत गये और किसान वैसे ही राजसी जीवन का अभ्यस्त हो गया।

प्रयोग का अन्तिम दिन आ पहुँचा। मन्त्री ने किसान के पलंग पर बिछे गद्दे के भीतर कुछ पत्ते और तिनके चुपके से रखवा दिये। राजा छिपकर देखने लगा कि देखें इस परिवर्तन का क्या परिणाम होता है ?

किसान रातभर करवटें बदलता रहा। उसे नींद नहीं आई। सबेरे राजा उसके पास पहुँचे तो उसने शिकायत की कि गद्दे में कुछ गढ़ने वाली चीज मालूम पड़ती हैं, जिसने नींद हराम कर दी।

मन्त्री ने कहा—यह वही किसान है जो ढेले, कंकड़ों पर धूप में पड़ा सो रहा था। आज इसे पलंग पर बिछे रुई के गद्दे में तिनके भी चुभते हैं। यह अभ्यास का ही अन्तर है। कठोरता और कोमलता की जैसी परिस्थितियों का सामना करना पड़े, कुछ ही दिनों में मनुष्य उन्हीं का अभ्यस्त हो जाता है।

अँधेरा और उजाला

किसी समय चन्द्रमा बहुत सुन्दर था। हर दिन उसका चेहरा खिला ही रहता था और चाँदनी पूरी रात छिटकी रहती थी। कुछ दिन बाद चाँद पर मनहूसी सवार हुई। वह चुप रहने लगा, हँसने और मुसकराने की आदत छोड़कर वह मुँह लटकाए बैठा रहता।

जैसे-जैसे चुप्पी बढ़ी वैसे-वैसे चाँद की रोशनी भी घटने लगी। यहाँ तक कि पन्द्रह दिन में वह बिलकुल कुरूप हो गया। न उसके चेहरे पर रोशनी रही न चाँदनी निकली। लोगों को भी अखरा। चाँद अपना दुखड़ा रोने विधाता के पास पहुँचा और कहा मेरी खूबसूरती कहाँ चली गई ? मैं काला कुरूप क्यों हो गया ? विधाता ने कहा—"मूर्ख तू इतना भी नहीं जानता। हँसना ही खूबसूरती है, मुसकराहट का नाम ही चाँदनी है। जा, मनहूसी छोड़ और हर दिन हर घड़ी खिलखिलाता रह, तेरी खूबसूरती फिर वापस आ जायगी। चन्द्रमा ने विधाता की बात मानी, वह फिर हँसने की कोशिश करने लगा, जितनी सफलता मिलती गई उतनी ही उसकी खूबसूरती चमकती गई। पन्द्रह दिन में फिर पुरानी हालत पर पहुँच गया। पूर्णमासी के दिन पूरे प्रकाश के साथ चमका। पर हायरी पुरानी आदत, वह छुड़ाये न छूटी। मनहूसी फिर उस पर सवार हुई, मुरदनी का-सा चेहरा लटकाने और चुप्प रहने का ढर्रा उसने फिर अपनाया तो वही हालत फिर हुई। अमावस्या आते-आते वह फिर काला कुरूप हो गया।

यह देखकर वह घबराया और विधाता की नसीहत को ध्यान में रख फिर मुसकराने लगा और धीरे-धीरे अपनी खोई खूबसूरती उसने फिर बढ़ाली। दूसरों की तरह चन्द्रमा भी आखिर आदत का गुलाम बन गया। पन्द्रह दिन इस पर मनहूसी सवार होती तो मुँह लटकाए रहते हैं, परन्तु उसकी रोशनी घटती जाती है। जब फिर होश सँभालता है, तो हँसते-मुसकराते अपनी खोई सुन्दरता फिर प्राप्त कर लेता है। मुद्दतों से यह क्रम चलता आ रहा है। इसे ही अँधेरा और उजेला पाख कहा जाता है।

शिक्षा देने से पहले

सात वर्षीय बालक को माँ पीटे जा रही थी। पड़ोस की एक महिला ने जाकर बचाया उसे। पूछने पर उसकी माँ ने बताया कि यह मन्दिर में से चढ़ौती के आम तथा पैसे चुराकर लाया है—"इसीलिए पीट रही हूँ इसे।" उक्त महिला ने बड़े प्यार से उस बच्चे से पूछा—"क्यों बेटा ! तुम तो बड़े प्यारे बालक हो। चोरी तो गन्दे बच्चे करते हैं। तुमने ऐसा क्यों किया ?"

बार-बार पूछने पर सिसकियों के बीच से बालक बोला—"माँ भी तो रोज ऊपर वाले चाचाजी के दूध में से आधा निकाल लेती हैं और उतना ही पानी देती हैं और हमसे कहती हैं कि उन्हें बताना मत। मैंने तो आज पहली बार ही चोरी की है।"

महिला के मुँह की आभा देखते ही बनती थी उस समय। वास्तव में बच्चों के निर्माण में घर का वातावरण बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

परोपकारी वकील

यहूदी धर्म गुरु रबी वूल्फ के यहाँ चोरी हुई तो उसमें चाँदी का एक मूल्यवान पात्र गया। रबी की पत्नी सोचती रहीं कि यदि घर का काफी सामान चोरी जाता तो सम्भवतः बाहर के चोर चोरी करने वाले माने जाते। केवल एक पात्र के लिए बाहर से चोरों को आने का साहस भी न होगा। घर का काम-काज करने वाली यह नौकरानी आती रहती है। निर्धन तो वैसे भी है बेचारी ! हो सकता है यही चुरा ले गई हो।

धर्म गुरु रबी ने तो इस चोरी के सम्बन्ध में कुछ न कहा पर उनकी पत्नी को नौकरानी पर सन्देह बना ही रहा। नौकरानी से पूछताछ करने पर भी कुछ पता न चला, तो उनकी पत्नी ने यह मामला यहूदी धर्म न्यायालय को सुपुर्द करने का निश्चय किया। पत्नी को धर्म

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

न्यायालय की तैयारी करते देख रबी ने भी धर्माचार्य का चोगा पहनकर जाने की तैयारी की। पत्नी ने कहा, "प्राण प्रिय ! धर्म न्यायालय चलने की आपको आवश्यकता नहीं। मुझे अच्छी तरह ज्ञात है कि धर्म-न्यायालय में बोलते समय शिष्टाचार के किन नियमों का पालन करना पड़ता है।"

रबी ने शान्तिपूर्वक पत्नी की बात सुनकर उत्तर दिया—"प्रिये ! तुम्हें तो इस सम्बन्ध की सारी जानकारी है। पर बेचारी अशिक्षित नौकरानी जो कभी धर्म न्यायालय गई नहीं, उसे तो यह सब बातें न आती होंगी। अतः उसके वकील के रूप में मैं न्यायालय जा रहा हूँ। उसे उचित न्याय मिल सके, यह देखना मेरा ही तो उत्तरदायित्व है।"

धोखा नहीं दूँगा

प्राचीन परम्पराओं की तुलना में विवेकशीलता को अधिक महत्त्वपूर्ण प्रतिपादन करने वाले सन्त सुकरात को वहाँ के कानून से मृत्युदण्ड की सजा दी गई।

सुकरात के शिष्य अपने गुरु के प्राण बचाना चाहते थे। उन्होंने जेल से भाग निकलने के लिए एक सुनिश्चित योजना बनाई और उसके लिए सारा प्रबन्ध ठीक कर लिया।

प्रसन्नता भरा समाचार देने और योजना समझाने को उनका एक शिष्य जेल में पहुँचा और सारी व्यवस्था उन्हें कह सुनाई। शिष्य को आशा थी कि प्राण-रक्षा का प्रबन्ध देखकर उनके गुरु प्रसन्नता अनुभव करेंगे।

सुकरात ने ध्यानपूर्वक सारी बात सुनी और दुःखी होकर कहा—"मेरे शरीर की अपेक्षा मेरा आदर्श श्रेष्ठ है। मैं मर जाऊँ और मेरा आदर्श जीवित रहे तो वही उत्तम है, किन्तु यदि आदर्शों को खोकर जीवित रह सका तो वह मृत्यु से भी अधिक कष्टकारक होगा। न तो मैं सहज विश्वासी जेल कर्मचारियों को धोखा देकर उनके लिए विपत्ति का कारण बनूँगा और न जिस देश की प्रजा हूँ उसके कानूनों का उल्लंघन करूँगा। कर्तव्य मुझे प्राणों से अधिक प्रिय है।"

योजना रद्द करनी पड़ी। सुकरात ने हँसते हुए विष का प्याला पिया और मृत्यु का संतोषपूर्वक आलिंगन करते हुए कहा—"हर भले आदमी के लिए यही उचित है कि वह आपत्ति आने पर भी कर्त्तव्य-धर्म से विचलित न हो।"

स्वर्ग और नरक का अस्तित्व

जापान के सन्त हाकुइन के पास एक योद्धा स्वर्ग और नरक के अस्तित्व के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा से गया। सन्त ने नीचे से ऊपर तक बड़े ध्यान से उसे देखा, पास में बिठाया और पूछा, "तुम कौन-सा व्यवसाय करते हो ?"

"मैं शस्त्रजीवी हूँ।"

"तुम्हारी शक्ल तो भिखारियों जैसी लगती है। मुझे आश्चर्य है कि किस मूर्ख राजा ने तुम्हें अपनी सेना में भर्ती कर लिया ?"

उस योद्धा को सन्त की बात सहन न हुई, क्रोध के कारण उसका चेहरा तमतमा उठा, उसका हाथ तलवार की मूठ पर गया। सन्त की दृष्टि उस तलवार पर गई तो उन्होंने अपनी बात शुरू करते हुए पुनः कहा, "अच्छा तो तुम्हारे पास तलवार भी है। अरे इससे तुम मेरा सिर काटना चाहते हो, पर मेरी समझ में इससे पेंसिल भी काटना कठिन है।"

अब तो उस योद्धा का पारा चढ़ गया, उसे सन्त की बातें सहन न हो सकीं, सन्त और कुछ कहते तब तक तलवार म्यान से बाहर आ चुकी थी। उस योद्धा ने सन्त के मुँह से सुना, "वीरवर ! नरक का द्वार खुल गया।" और उस योद्धा ने सन्त की बात सुनकर तलवार म्यान में रखली और अपनी भूल को नवाकर स्वीकार किया।

तब सन्त ने कहा, "अब यदि तुम स्वर्ग के दर्शन करना चाहते हो, तो वह भी कर सकते हो। काम, क्रोध, लोभ, मोह, दम्भ और हिंसा नरक के द्वार हैं और प्रेम, दया, शान्ति, सन्तोष, क्षमा और संयम आदि सत्गुण ईश्वर प्राप्ति के साधन हैं।"

ध्यान का महत्त्व

दो मित्र थे। एक व्यक्ति दिन भर परिश्रम कर पेट भरता, दूसरा केवल दो घण्टे परिश्रम करता था। पहला व्यक्ति तो और भी क्षीणकाय हो गया, दूसरा नगर प्रसिद्ध पहलवान बन गया। पहलवान को दिन प्रतिदिन मान व धन मिलता जा रहा था। एक दिन उन दोनों की भेंट हुई, तो पहलवान ने उससे पूछा—"तुम तो दिनभर मेहनत करते हो, तो भी तुम्हारा शरीर और दुर्बल हो गया है और मैं केवल दो-तीन घंटे ही मेहनत करके और अधिक शक्ति हो गया हूँ" फिर उसने पूछा—"तुम जब मेहनत करते हो, तो तुम्हारा ध्यान कहाँ रहता है ?" उस दूसरे ने कहा—"पैसे कमाने में।" पहलवान ने कहा—"यही कारण है, मेरा ध्यान तो मेहनत करते समय शक्ति में लगा रहता है, मैं सोचता हूँ मेरी ताकत बढ़ रही है।"

वीणा का मर्म

मंदिर के जिस प्रकोष्ठ में भगवान सुब्रह्मण्यम् की मूर्ति थी, उसी के सामने वाले भाग में एक सुन्दर वीणा रखी हुई थी। मन्दिर में कई लोग कुछ तो वीणा के दर्शन कर लेते और चले जाते। कुछ उसे बजाने की इच्छा करते पर उसे बजाने की इच्छा करने पर वहाँ बैठा हुआ मन्दिर का रक्षक उनसे मना करता और वे वहाँ से चल देते। इस प्रकार सुन्दर स्वरों वाली वह वीणा जहाँ थी, वहीं रखी रहती थी उसका कभी कोई उपयोग न होता था।"

एक दिन एक व्यक्ति आया, उसने वीणा बजाने की इच्छा व्यक्त की, पर उस व्यक्ति ने उसे भी मना कर दिया। वह व्यक्ति वहाँ चुपचाप खड़ा रहा। थोड़ी देर में सब लोग मन्दिर से निकलकर बाहर चले गये, तो उस व्यक्ति ने वीणा उठाली और उसका लयपूर्वक वादन करने लगा। वीणा का मधुर स्वर लोगों के कानों तक पहुँचा, तो लोग पीछे लौटने लगे और उस मधुर संगीत का रसास्वादन करने लगे। वाद्य घण्टों चला और लोग मन्त्र मुग्ध सुनते रहे। जब वह बन्द हुआ तब भी लोग ईश्वरीय आनन्द की अनुभूति करते रहे। लोगों ने कहा आज वीणा सार्थक हो गई।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इतनी कथा सुनाने के बाद गुरु ने शिष्य से कहा—"तात् ! इस कथा का भावार्थ यह है कि भगवान मनुष्य शरीर सबको देता है, पर कुछ लोगों को तो अज्ञान और कुछ लोगों को अहंकार उस महत्त्वपूर्ण यन्त्र का उपयोग करने नहीं देता, पर यदि कोई इन दोनों की उपेक्षा करके शरीर रूपी वीणा से मधुर लहरियाँ निकालने लगता है, तो यह शरीर इतना परिपूर्ण है कि न केवल उसे ही वरन् उसके सम्पर्क के सैकड़ों दूसरे लोग भी उसमें ईश्वरीय आनन्द की झलक पाने लगते हैं।"

आत्म-भाव का चमत्कार

एक आदमी सन्त तुकाराम का कीर्तन सुनने तो नित्य ही आता-पर उनसे बहुत द्वेष रखता। वह मन ही मन किसी अवसर पर सन्त तुकाराम को नीचा दिखाने की ताक में रहा करता था।

एक दिन तुकाराम की भैंस उसके बाग के कुछ पौधे चर आई। बस वह आकर लगा गालियाँ सुनाने। इस पर भी जब सन्त उत्तेजित न हुए तो उसे और भी गुस्सा आया और एक काँटों वाली छड़ी लेकर तुकाराम को इतना पीटा कि रक्त बहने लगा। फिर भी तुकाराम को न क्रोध आया—न प्रतिरोध ही किया।

सन्ध्या समय जब वह व्यक्ति नित्य की [illegible] कीर्तन में नहीं आया—तो सन्त तुकाराम स्वयं उसके घर गये और स्नेहपूर्वक भैंस की गलती की क्षमा माँगते हुये उसे कीर्तन में ले आए।

अब वह व्यक्ति तुकाराम के चरणों में पड़ा क्षमा-याचना कर रहा था।

सत्य की प्रतिष्ठा

अपनी गिरफ्तारी से कुछ दिन पूर्व ईसा येरुशलम में ही प्रचार कर रहे थे, जहाँ कि उनकी जान के ग्राहक सबसे ज्यादा थे, साथ ही जहाँ प्रचार की सबसे अधिक आवश्यकता थी। उनके शिष्यों ने उनसे येरुशलम छोड़ देने के लिए अनुरोध करते हुए कहा—"यहाँ के लोग आपको मार डालने की घात में हैं।" किन्तु ईसा ने वहाँ से जाना अस्वीकार करते हुए कहा—"जीवन को उत्सर्ग किए बिना न तो सत्य की प्रतिष्ठा होगी और न उसका महत्त्व बढ़ेगा।"

धन का गर्व तुच्छ है

पुराने जमाने में लीडिया नामक देश का बादशाह "कारूँ", अपने धन के लिए बड़ा विख्यात था। उसने इतना अधिक सोना, चाँदी, रत्न, जवाहरात आदि अपने खजाने में संग्रह किए थे कि संसार में अभी तक उसका नाम उदाहरण के रूप में लिया जाता है। एक बार यूनान का एक महान् पुरुष सोलन उसके दरबार में गया। वहाँ पर कारूँ ने उसे अपना अपार धन दिखाकर पूछा कि "क्या संसार में मुझसे बढ़कर और कोई सुखी हो सकता है ?" पर सोलन तो तत्वज्ञानी था। उसने कहा, 'मैं तो उसी व्यक्ति को सुखी समझता हूँ, जिसका अन्त सुखमय हो" यह सुनकर कारूँ अप्रसन्न हो गया और उसने सोलन को बिना विशेष आदर सत्कार के विदा कर दिया। कुछ समय बाद ईरान देश के राजा साइरस ने कारूँ को हराकर कैद कर लिया और उसे मृत्यु दण्ड दिया। जब वह जीवित जलाया जाने लगा तो उसे सोलन की बात याद आ गई और उसके मुख से "हाय सोलन", "हाय सोलन" शब्द निकला। साइरस के पूछने पर उसने सोलन की बात बतला दी। साइरस पर भी इस उपदेश का प्रभाव पड़ा और उसने कारूँ को प्राणदान दे दिया।

संघर्ष से बड़ी शक्ति नहीं

द्रोणाचार्य कौरव सेना के सेनापति नियुक्त हुए। पहले दिन का युद्ध वीरतापूर्वक लड़े, तो भी विजय-श्री अर्जुन के हाथ रही।

यह देखकर दुर्योधन को बड़ी निराशा हुई। वह गुरु द्रोणाचार्य के पास गयें और कहा—"गुरुदेव ! अर्जुन तो आपका शिष्य मात्र है, आप तो उसे क्षण भर में परास्त कर सकते हैं, फिर यह देर क्यों ?"

द्रोणाचार्य गम्भीर हो गये और कहा—"आप ठीक कहते हैं, अर्जुन मेरा शिष्य है, उसकी सारी विद्या से परिचित हूँ, किन्तु उसका जीवन कठिनाई से संघर्ष करने में रहा है और मेरा सुविधापूर्वक दिन बिताने का रहा है। विपत्ति ने उसे मुझसे भी अधिक बलवान् बना दिया है।

किम् आश्चर्य

पाण्डव वन में थे। एक दिन उन्हें बहुत जोरों की प्यास लगी। सहदेव पानी की तलाश में भेजे गए। शीघ्र ही उन्होंने एक सरोवर खोज लिया, पर अभी पानी पीने को ही थे, किसी यक्ष की आवाज आई—"मेरे प्रश्नों का उत्तर दिए बिना पानी पिया तो अच्छा न होगा ?"

सहदेव प्यासे थे। आवाज की ओर ध्यान न देकर पानी पी लिया और वहीं मूर्छित होकर गिर पड़े। भीम और अर्जुन भी आये और मूर्छित होकर गिर गये। अन्त में धर्मराज युधिष्ठिर पहुँचे। यक्ष ने उनसे भी वही बात कही।

युधिष्ठिर ने कहा—"देव ! बिना विचारे काम करने वाले अपने भाइयों की स्थिति मैं देख रहा हूँ। आपके प्रश्न का उत्तर दिये बिना पानी ग्रहण न करूँगा।" प्रश्न पूछिये।

यक्ष ने पूछा—" **'किमाश्चर्यम्'** संसार में सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है ?"

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—'देव ! एक-एक व्यक्ति करके सारा संसार मृत्यु के मुख में समाता जा रहा है, फिर भी जो जीवित हैं, वे सोचते हैं कि हम कभी न मरेंगे, इससे बढ़कर आश्चर्य और क्या हो सकता है।" यक्ष बहुत प्रसन्न हुए और पानी पीने की आज्ञा दे दी। चारों भाइयों को भी जीवित कर दिया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अधूरी भक्ति

मृत्यु के उपरान्त एक साधु तथा एक डाकू साथ-साथ यमराज की सभा में पहुँचे। यमराज ने अपने बहीखातों की जाँच-पड़ताल करके उनसे कहा—"यदि तुम दोनों को अपने लिए कुछ कहना हो, तो कह सकते हो।"

डाकू विनम्र स्वर में बोला—"महाराज ! मैंने जीवन में बहुत पाप किये हैं। जो भी दण्ड विधान आपके यहाँ मेरे लिये हो—वह करें। मैं प्रस्तुत हूँ।"

फिर साधु बोले—"आप तो जानते ही हैं, मैंने जीवन भर भक्ति की है। कृपया मेरे सुख साधनों का प्रबन्ध शीघ्र करवाएँ।"

यमराज ने दोनों की इच्छा सुनकर डाकू से कहा—"तुम्हें यह दण्ड दिया जाता है कि तुम आज से इस साधु की सेवा किया करो।" डाकू ने सिर झुकाकर आज्ञा शिरोधार्य की, परन्तु साधु ने आपत्ति की—"महाराज ! इस दुष्ट के स्पर्श से मैं भ्रष्ट हो जाऊँगा। मेरी भक्ति तथा तपस्या खण्डित हो जायेगी।"

अब यमराज आदेश के स्वर में सक्रोश बोले—"निरपराध भोले व्यक्तियों का वध करने वाला तो इतना विनम्र हो गया कि तुम्हारी सेवा करने को तत्पर है और एक तुम हो कि वर्षों की तपस्या के पश्चात् भी यह न जान सके कि सबमें एक ही आत्म-तत्व समाया हुआ है। जाओ—तुम्हारी भक्ति अभी अधूरी है, अतः आज से तुम इसकी सेवा किया करो।"

श्रद्धा से विद्या मिलती है

हाथ में समिधाएँ लेकर दिलीप गुरु वशिष्ठ के पास गये, प्रणाम किया और विनीत भाव से पूछा, "गुरुदेव ! विद्या प्राप्ति के लिए कौन-सी वस्तु सबसे अधिक आवश्यक है ?" वशिष्ठ ने कहा "दिलीप ! जो छात्र श्रद्धा और अनुशासन से रहकर अध्ययन करते हैं विद्या केवल उन्हें ही प्राप्त होती है।"

सत्य, भावना पर निर्भर

एक बार एक अपराधी पकड़ा गया। उसे फाँसी की सजा मिली। फाँसी की कोठरी में जाने से पूर्व वह राजा को बुरी-बुरी गाली और दुर्वचन कहने लगा। वह था विदेशी, उनकी भाषा को सभा के एक दो सरदार ही जानते थे। राजा ने विदेशी भाषा जानने वाले एक सरदार से पूछा—"यह अपराधी क्या कह रहा है ?" उसने उत्तर दिया—"आपकी प्रशंसा करते हुए अपनी दीनता बताता हुआ यह दया की प्रार्थना कर रहा है।"

इतने में एक दूसरा सरदार उठ खड़ा हुआ, उसने कहा—"नहीं, सरकार, यह झूँठ बोलता है। अपराधी ने आपको गाली दी है और दुर्वचन बोले हैं।"

राजा तो विदेशी भाषा जानता न था और भी कोई तीसरा आदमी फैसला करने वाला न था। अब वास्तविकता कैसे मालूम हो ? सत्य का पता कैसे चले ? राजा ने स्वयं विचार किया और पहले सरदार को ही सत्यवादी कहा तथा अपराधी की सजा कम कर दी। दूसरे सरदार को उसने कहा—"चाहे तुम्हारी बात ठीक भले ही हो, पर उसका परिणाम दूसरों को कष्ट मिलना तथा हमारा क्रोध बढ़ाना है, इसलिए वह सत्य होते हुए भी असत्य जैसी है और इस पहले सरदार ने चाहे असत्य ही कहा हो, पर उसके फलस्वरूप एक व्यक्ति की जीवन रक्षा होती है तथा हमारे हृदय में दया उपजती है, इसलिए वह सत्य के ही समान है।"

आत्म कल्याण की साधना

साधु के दर्शनार्थ गाँव की भीड़ उमड़ पड़ी। लोग आते साधु चरणों पर भेंट चढ़ाते और उनके वचनामृत का पान करने के लिये बैठ जाते।

साधु कह रहे थे—"सांसारिक प्रेम मिथ्या है, स्त्री, पुत्र सब लौकिक नेह और नाते छोड़कर मनुष्य को आत्म-कल्याण की बात सोचनी चाहिये। भगवान का प्रेम ही सच्चा प्रेम है।"

एक छोटा-सा बालक साधु की बातें बड़े ध्यान से सुन रहा था उसने छोटा-सा प्रश्न किया—"महात्मन् मैं कौन हूँ ?" "आत्मा" साधु ने संक्षिप्त उत्तर दिया। "महाराज मेरे पिता, मेरी माता दिन भर मेरे कल्याण की बात सोचते हैं क्या वह 'आत्म-कल्याण' न हुआ। सर्वत्र फैली हुई विश्वात्मा से प्रेम क्या ईश्वर-प्रेम नहीं जो उसके लिये संसार का परित्याग किया जाये ?" साधु चुप थे उनसे कोई उत्तर देते न बन पड़ा।

तप की सामर्थ्य

देवता और असुरों का युद्ध बहुत दिन चलता रहा। असुर तगड़े पड़े। देवता अपनी सज्जनतावश उतनी धूर्तता बरत न पाते थे, जितने निश्शंक हो कर असुर छल करते थे। वृत्रासुर के नेतृत्व में असुरों की विजय दुंदभी बजने लगी।

निराश देवता ब्रह्माजी के पास पहुँचे और पूछा—"भगवन् ! विजय के लिए हम किस अस्त्र का प्रयोग करें ?"

ब्रह्माजी ने कहा—"धातुओं से बने अस्त्र उतने प्रभावशाली नहीं हो सकते जितने तप और त्याग से बने आयुध प्रभावशाली होते हैं। तपस्वी की हड्डियों से ही वज्र बनाया जा सकता है। यदि तुम लोग तप त्याग विनिर्मित वज्र बना सको तो जीत तुम्हारी ही होगी। जाओ इसके लिए प्रयत्न करो।"

देवता तपस्वी को तलाश करने लगे और उसकी हड्डियाँ प्राप्त करने का उपाय सोचने लगे। अभीष्ट वस्तु की तलाश में उन्होंने गिरि, कानन और कन्दराओं को तलाश करना आरम्भ कर दिया।

महर्षि दधीचि अपनी दिव्य दृष्टि से इस कौतुक को देख रहे थे। उन्होंने देवताओं को पास बुलाया और प्रेमपूर्वक अपनी हड्डियाँ देने के लिए शरीर का परित्याग कर दिया।

तपस्वी दधीचि की अस्थियों से वज्र बना। वृत्रासुर मारा गया और उसकी सेना परास्त हुई। तब से देवताओं का सर्वश्रेष्ठ आयुध इन्द्र का वज्र माना जाने लगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

विजयोल्लास मनाने के लिए एकत्रित हुई देव सभा में गुरु बृहस्पति ने कहा—"देवताओ ! विजय का स्थायित्व शक्ति पर निर्भर है और शक्ति आयुधों से नहीं तप त्याग से भरी रहती है। यदि तुम सदैव अपराजित रहना चाहते हो, तो तप और त्याग की शक्ति एकत्रित करो। इसमें प्रमाद करोगे तो फिर कभी कोई वृत्रासुर तुम्हें परास्त करने आ खड़ा होगा। दधीचि की माँगी हुई हड्डियों से कब तक काम चलेगा। तुम में हर एक को वज्र बनने के लिए दधीचि जैसा आत्मबल एकत्रित करना चाहिए।"

देवताओं ने वस्तु स्थिति को समझा और सुर गुरु के आदेशानुसार आत्म-निर्माण का प्रयत्न आरम्भ कर दिया।

भगवान के दर्शन

'मैं तो इतने दिनों से भगवान की भक्ति कर रही हूँ—एक स्त्री ने सन्त को बताया—पर मुझे तो आज तक उन्होंने कभी स्वप्न में भी दर्शन नहीं दिया, आप कहते हैं कि वे आप से कभी अलग भी नहीं होते ?" बात यह थी कि वह स्त्री भक्ति तो करती थी पर अपने परिवार, पड़ोसी और सम्बन्धियों सबके साथ उसका व्यवहार बहुत रूखा अहंकारपूर्ण था। घर वाले भी उसके आचरण से दुःखी थे।

सन्त बोले—"आज भगवान से पूछकर बतायेंगे आप से क्यों नहीं मिलते ?" दूसरे दिन स्त्री मिली तो वह बोले—"माई ! भगवान तुम पर नाराज हैं कह रहे थे, वह हमारे बच्चों से लड़ती—मारती-पीटती और द्वेष रखती है उससे मिलने का मन नहीं करता।"

स्त्री समझ गई। उस दिन से उसने अपना व्यवहार मीठा बना लिया फलस्वरूप दूसरे लोग उसे इतना प्यार और आदर देने लगे कि वह उस शान्ति में ही भगवान की उपस्थिति अनुभव करने लगी।

वेश्या बनाम पतिव्रता

एक पतिव्रता के सामने ही वेश्या रहती थी। पतिव्रता उसकी चेष्टाओं को लुक-छिपकर देखा करती और समय-समय पर उसकी भरपेट निन्दा करती।

वेश्या देखती कि कुरूप, गुणहीन, अस्वस्थ और निर्धन पति की भी पतिव्रता एकाग्र भाव से कैसी सेवा करती है, तो उसका मन श्रद्धा से गद्‌गद् हो जाता। उसे वह साक्षात् देवी मानती और जब भी अवसर मिलता उसकी भरपूर प्रशंसा करती।

कुछ दिन बाद मृत्यु का समय आया। पतिव्रता की आत्मा स्वर्ग को गई। संयोगवश दूसरे ही दिन वेश्या भी मर गई और उसकी आत्मा भी वहीं जा पहुँची।

पतिव्रता को निम्न श्रेणी का स्वर्ग मिला और वेश्या को ऊँचे स्वर्ग में ले जाने की आज्ञा हुई। इस न्याय को अनुचित बताते हुए पतिव्रता ने धर्मराज से कहा—भगवान ! वेश्यावृत्ति का पाप कर्म करते हुए भी इसे मुझ से श्रेष्ठ सद्‌गति क्यों ?"

धर्मराज गम्भीर हो गये। उन्होंने कहा—"तुम्हारा पतिव्रत शरीर मर्यादा तक सीमित रहा। मन से उस वेश्या की रंगरेलियों में रस लेती रहीं और अपनी श्रेष्ठता का अहंकार और उसकी मजबूरी को न समझते हुए अपना चित्त घृणा और द्वेष से भरे रहीं, सो तुम्हारे शारीरिक पतिव्रत का जितना पुण्य हो सकता था, उतना ही छोटा-सा स्वर्ग तुम्हें मिल रहा है।"

अपनी बात जारी रखते हुए धर्मराज ने कहा—"वेश्या ने परिस्थितियों की विवशता में वह व्यवसाय तो अपनाया, पर अपने पाप के लिए सदा दुःखी रही। तुम्हारे सत्कर्म को देखकर श्रद्धा से उसका मन भरा रहा और वैसी ही स्वयं बनने की प्रार्थना भगवान से करती रही। शरीर से मन बड़ा है। क्रिया से भावना श्रेष्ठ है। सो हे भद्रे ! स्वर्ग की संहिता के अनुसार हम मन के भी पुण्य-पापों की गणना करते हैं और उसी आधार पर फल का निर्धारण करते हैं।"

हीरे बनाम पत्थर

एक राजा ने महात्मा को अपना हीरे-मोतियों से भरा खजाना दिखाया। महात्मा ने पूछा इन पत्थरों से आपको कितनी आय होती है ? राजा ने कहा—"आय नहीं होती बल्कि इनकी सुरक्षा पर व्यय होता है ?" महात्मा, राजा को एक किसान की झोंपड़ी में ले गया। वहाँ एक स्त्री चक्की से अनाज पीस रही थी। महात्मा ने उसकी ओर संकेत कर कहा "तुम्हारे उन उपयोगहीन पत्थरों से यह अच्छे जो पूरे परिवार का भरण-पोषण करते हैं।"

राजा की भूल

एक सन्त के त्याग से प्रभावित होकर एक राजा ने भी उनसे गुरु दीक्षा ली। पहले भी हजारों लोग उनसे दीक्षा ले चुके थे। उन्होंने राजा को दीक्षितों में देखा तो सबने जाकर कहा, "महाराज ! अब तो आप हमारे गुरुभाई हैं अब हमसे राज्य कर नहीं माँगना। राजा ने द्विविधावश सबका कर माफ कर दिया। परिणाम यह निकला कि राज्य-व्यवस्था के लिये पैसा मिलना बन्द हो गया। सारी व्यवस्था नष्ट-भ्रष्ट हो गई। यह देखकर सन्त ने राजा को बुलाया और कहा—"राजन् धर्म की सार्थकता कर्म से है। आलसी लोग दीक्षा भी ले लें तो क्या, इनमें मेरा एक भी शिष्य नहीं।"

राजा ने भूल समझी और टैक्स लगा दिया; तब कहीं बिगड़ती शासन-व्यवस्था सँभली।

विवेक सबसे बड़ा धर्म

मअद को यमन का शासक नियुक्त किया गया। राज्याभिषेक के उपलक्ष में जन-उत्सव सम्पन्न हुआ, बहुत सी प्रजा अभिषेक देखने आई। मअद बड़े नेक और ईश्वर भक्त राजकुमार थे।

ताज धारण कराने से पूर्व राजपुरोहित ने प्रश्न किया—"आपके सामने जो मामले, मुकदमे आयेंगे उन्हें किस प्रकार हल करेंगे।" मअद ने उत्तर दिया—"कुरान शरीफ को आधार मानकर जो कुरान के सिद्धान्त के अनुसार होगा उसी का समर्थन करूँगा।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"पर यदि कुरान में वह बात न लिखी हो तो ?" "तब मैं धर्माचार्यों और जिन पर प्रजा का विश्वास है ऐसे पैगम्बरों का निर्देश प्राप्त करूँगा"—मअद ने उत्तर दिया।

"यदि वह भी उपलब्ध न हो तो ?" राज पुरोहित ने फिर प्रश्न किया।

"तब मैं अपने विवेक के अनुसार न्याय करने का यत्न करूँगा" मअद ने विनीत उत्तर दिया।

लक्ष्मी-निवास

इस बार देवताओं की प्रार्थना स्वीकार हो गई। लक्ष्मी जी असुरों का वास-स्थान सदैव के लिए परित्याग कर देवताओं के आश्रम में पहुँच गईं। देवराज इन्द्र ने सविस्मय पूछा—"देवि ! असुरों के पास से आपके चले आने का कारण जानने की प्रबल उत्कंठा है।" आगे बढ़कर स्वागत करते हुए इन्द्र ने और भी कहा—"अम्बे पहले आपने हमारी विनती नहीं सुनी, इसका भी कारण बताइये ?"

इन्द्र के आमन्त्रण से महादेवी लक्ष्मी गद्‌गद् हो गईं और अपना वरदहस्त उठाकर बोलीं—

"देवराज ! जब किसी राष्ट्र में प्रजा सदाचार खो देती है, तो वहाँ की भूमि, जल, अग्नि कोई भी मुझे स्थिर नहीं रख सकते। मैं लोक-श्री हूँ, मुझे लोक सिंहासन चाहिए। मुझे आलस्य, अकर्मण्यता, फूट, कलह, कटुता पसन्द नहीं। व्यक्ति के सदाचारी मानस में ही मैं अचल निवास करती हूँ। जहाँ लोग रीतिपूर्वक रहते हैं और परिश्रमपूर्वक अपना उद्योग करते रहते हैं, उस स्थान को मैं कभी नहीं छोड़ती, पर जहाँ अकारण बैर-भाव, हिंसा, क्रोध, प्रमाद, अत्याचार आदि बढ़ जाते हैं; उस स्थान को छोड़कर मैं तत्काल अन्यत्र चली जाती हूँ। मैं शुभ कार्यों से उत्पन्न होती हूँ, उद्योग से बढ़ती हूँ और संयम से स्थिर रहती हूँ जहाँ इन गुणों का अभाव होता है उस स्थान को छोड़ जाती हूँ। बस इतने से ही मेरे असुरों का निवास छोड़ने और देवताओं की प्रार्थना स्वीकार कर लेने का रहस्य जान लेना।"

खाँड़ के खिलौने

एक गृहस्थ तीन खाँड के खिलौने लाया जो कि तीन साधुओं की मूर्तियाँ थीं। संयोगवश उसके यहाँ तीन अतिथि साधु भोजन करने आये। गृहस्थ ने उन्हें बड़ी श्रद्धा से बैठाया। इतने ही में गृहस्थ का एक छोटा लड़का आया वह उन खिलौनों को लेकर पूछने लगा, "यह क्या है, पिताजी !" गृहस्थ बोला, "यह साधु हैं" बालक ने पूछा, "इनका क्या होगा ?" गृहस्थ ने कहा—'इन्हें खायेंगे।' लड़का बोला, "कब"। गृहस्थ बोला, "पहिले इन साधुओं को भोजन कराकर हम खाना खा लें, फिर एक-एक तीनों खा लेंगे।"

गृहस्थ तो इस प्रकार अपने बालक को उन खाँड़ के खिलौनों के बारे में बतला रहा था, उधर साधुओं ने समझा कि यह बातचीत उनके बारे में चल रही है। यह समझकर साधु उसके यहाँ से भागे, गृहस्थ को बड़ा अचरज हुआ, वह उनके पीछे भागा। वे लोग एक जगह रुके, थक गये तो गृहस्थ ने उनके भागने का कारण पूछा। साधुओं ने कहा कि तुम हमें मार डालना चाहते थे, हम तुम्हारी सब बात सुन रहे थे। गृहस्थ ने कहा, "महाराज ! मैं तो बालक से खाँड़ के खिलौनों के बारे में बातचीत कर रहा था।" तब साधुओं की समझ में आया और वे फिर वापस उसके घर गये और भोजन किया। मन की दुर्बलता से लोग ऐसे ही डरे रहते हैं जब कि वास्तविकता कुछ और ही होती है।

नकल अच्छी नहीं

एक व्यापारी एक घोड़े पर नमक और एक गधे पर रुई की गाँठ लादे जा रहा था। रास्ते में एक नदी पड़ी। पानी में धँसते ही घोड़े ने पानी में डुबकी लगाई तो काफी नमक पानी में घुल गया। गधे ने घोड़े से पूछा यह क्या कर रहे हो, घोड़े ने उत्तर दिया वजन हलका कर रहा हूँ। यह सुनकर गधे ने भी दो डुबकी लगाई पर उससे गाँठ भीगकर इतनी भारी हो गयी कि उसे ढोने में गधे की जान आफत में पड़ गई। सच है कि नकल के लिए भी बड़ी अकल चाहिये।

चित्र-विचित्र

एक आदमी बड़ा नास्तिक था। वह कहता था कि यह सारा संसार स्वाभाविक है, क्रियाएँ प्राकृतिक अपने आप होती हैं। एक दिन एक लड़का एक बड़ा सुन्दर चित्र बनाकर लाया। वह आदमी उसे देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने पूछा, "यह शक्ल किसने खींची है।" तब तो लड़के ने कहा—"चाचा ! मेरे ट्रेनिंग स्कूल में एक जगह एक कागज, रंगीन पैंसिलें और कलम दवात रखे थे। आप तो जानते ही हैं कि हर एक प्राकृतिक वस्तु में हरकत होनी स्वाभाविक है। झट अपने आप ही शक्ल खिंच गई। यह सुन वह आदमी बोल पड़ा कि यह भी कभी हो सकता है ? झट ही लड़का बोल पड़ा, "यदि वह शक्ल बिना खींचने वाले के नहीं खिंच सकती तो यह संसार बिना किसी कर्त्ता के अपने आप नहीं बन सकता।"

भगवान अच्छा ही करता है

एक सिपाही छुट्टी लेकर अपने घर जा रहा था। मार्ग में वर्षा आने से उसके पास में कच्चे रंग की चुनरी, कागज के खिलौने बताशे आदि जो वस्तुएँ थीं सब गलकर खराब हो गईं। सिपाही ईश्वर को गाली देने लगा कि उसने इसी समय वर्षा की। आगे चला तो कुछ डाकू आड़ में बैठे थे, उन्होंने इस पर निशाना चलाया, पर कारतूस सील गये थे इसलिए गोली न चली और सिपाही ने भाग कर प्राण बचाये। तब तो वह ईश्वर को धन्यवाद देता हुआ क्षमा माँगने लगा और अपने अज्ञान पर पश्चाताप करने लगा।

बोनीफेस झरना

सन्त बोनीफेस ने आजीवन औरों की सेवा की, पर कभी किसी से कुछ माँगा नहीं, भले ही उन्हें कई दिन का उपवास ही क्यों न करना पड़ा हो ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक बार उन्हें कई दिन तक कुछ खाने को न मिला। एक स्त्री दूध निकाल रही थी। उन्हें ऐसा लगा कि अपने भीतर न माँगने का अहंकार उठ रहा है, सो उन्होंने तुरन्त ही उस स्त्री से थोड़ा दूध माँगा। उसके पति ने बीच में ही टोककर दूध देने से इनकार कर दिया। सन्त बिना किसी दुर्भाव से आगे बढ़े, पर भूख सहन न करने के कारण जमीन पर गिर पड़े। वहीं एक निर्झर फूट पड़ा। जो आज भी बोनीफेस निर्झर के नाम से विख्यात है।

धर्म का सौदा

तथागत एकबार काशी में एक किसान के घर भिक्षा माँगने चले गये। भिक्षा पात्र आगे बढ़ाया। किसान ने एक बार उन्हें ऊपर से नीचे तक देखा। शरीर पूर्णांग था। वह किसान कर्म पूजक था। गहरी आँखों से देखता हुआ बोला—"मैं तो किसान हूँ। अपना परिश्रम करके अपना पेट भरता हूँ साथ में और भी कई व्यक्तियों का। तुम क्यों बिना परिश्रम किये भोजन प्राप्त करना चाहते हो ?"

बुद्ध ने अत्यन्त ही शान्त स्वर में उत्तर दिया—"मैं भी तो किसान हूँ। मैं भी खेती करता हूँ। किसान ने आश्चर्य में भरकर प्रश्न किया—"फिर..... आप भिक्षा क्यों माँग रहे हैं ?"

भगवान बुद्ध ने किसान की शंका का समाधान करते हुए कहा—"हाँ वत्स ! मैं भी खेती करता हूँ, पर वह खेती आत्मा की है। मैं ज्ञान के हल से श्रद्धा के बीज बोता हूँ, तपस्या के जल से सींचता हूँ, विनय मेरे हल की हरिस, विचारशीलता फाल और मन नरैली है। सतत् अभ्यास का यान, मुझे उस गन्तव्य की ओर ले जा रहा है जहाँ न दुःख है—न सन्ताप। मेरी इस खेती से अमरता की फसल लहलहाती है। तब यदि तुम मुझे अपनी खेती का कुछ भाग दो—और मैं तुम्हें अपनी खेती का कुछ भाग दूँ—तो क्या-यह सौदा अच्छा न रहेगा ?"

किसान की समझ में बात आ गई और वह तथागत के चरणों में अवनत हो गया।

कर्त्तव्य की कसौटी

स्वतन्त्रता संग्राम में जूझते हुए राणा प्रताप वनपर्वतों में अपने छोटे परिवार सहित मारे-मारे फिर रहे थे। एक दिन ऐसा अवसर आया कि खाने के लिए कुछ भी नहीं रहा। अनाज को पीसकर उनकी धर्मपत्नी ने जो रोटी बनाई थी, उसे भी वनविलाव उठा ले गया। छोटी बच्ची भूख से व्याकुल होकर रोने लगी।

राणा प्रताप का साहस टूटने लगा। वे इस प्रकार बच्चों को भूख से तड़पकर मरते देखकर विचलित होने लगे। एक बार मन में आया शत्रु से सँधि कर ली जाय और आराम की जिन्दगी जिया जाय। उनकी मुख मुद्रा गम्भीर विचार धारा में डूबी हुई दिखाई दे रही थी।

रानी को अपने पतिदेव की चिन्ता समझने में देर न लगी। उसने प्रोत्साहन भरे शब्दों में कहा—"नाथ कर्त्तव्य पालन मानव जीवन की सर्वोपरि सम्पदा है, इसे किसी भी मूल्य पर गँवाया नहीं जा सकता, सारे परिवार के भूखों या किसी भी प्रकार मरने के मूल्य पर भी नहीं। सच्चे मनुष्य न कष्टों से डरते हैं न आघातों से, उन्हें तो कर्त्तव्य का ही ध्यान रहता है। आप दूसरी बातें क्यों सोचने लगे ?"

प्रताप का उतरा हुआ चेहरा फिर चमकने लगा। उन्होंने कहा—"प्रिये, तुम ठीक ही कहती हो। सुविधा का जीवन तुच्छ जीव भी बिता सकते हैं, पर कर्तव्य की कसौटी पर तो मनुष्य ही कसे जाते हैं। परीक्षा की इस घड़ी में हमें खोटा नहीं खरा ही सिद्ध होना चाहिए।"

राणा वन में से दूसरा आहार ढूँढ़कर लाये और उनने दूने उत्साह से स्वतंत्रता संग्राम जारी रखने की गति विधियाँ आरम्भ कर दीं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सद्गुण और सत्प्रवृत्तियाँ

'आत्मवत् सर्वभूतेषु'

महामुनि मेतार्य ने कृच्छ चान्द्रायण तप विधिवत् सम्पन्न किया। अनुष्ठान काल में सम्पूर्ण एक मास केवल आँवला के फलों पर ही निर्वाह किया, इससे उनके शरीर में दुर्बलता तो थी, किन्तु तपश्चर्या से अर्जित प्राण शक्ति और आँवले के कल्प के कारण उनके सम्पूर्ण शरीर में तेजोवलय स्पष्ट झलक रहा था।

अनुष्ठान समाप्त कर वे राजगृह की ओर चल पड़े। नियमानुसार वे दिन में एक बार किसी सद्गृहस्थ के घर भोजन ग्रहण कर लोक-कल्याण के कार्यों में जुटे रहते थे। उनकी लोक कल्याणकारी वृत्ति देखकर मगध का हर नागरिक उनके आतिथ्य को अपना परम सौभाग्य मानता था।

आज वे राजगृह के एक स्वर्णकार के द्वार पर खड़े थे। स्वर्णकार कोई आभूषण बनाने के लिए स्वर्ण के छोटे-छोटे गोल, दाने बनाकर ढेर करता जा रहा था। द्वार पर खड़े मेतार्य को देखा तो उसका हाथ वहीं रुक गया "अतिथि देवोभव" कहकर उसने मुनि मेतार्य का हार्दिक स्वागत किया। उनकी भिक्षा का प्रबन्ध करने के लिए जैसे ही वह अन्दर गया वृक्ष पर बैठे पक्षी उतरकर वहाँ आ गये जहाँ स्वर्णकार सोने के दाने गढ़ रहा था। उन्होंने इन दानों को अन्न समझा अतः जब तक स्वर्णकार वापस लौटे सारे दाने चुग डाले और उड़कर डाली में जा बैठे।

स्वर्णकार बाहर आया और सोने के बिखरे दानों को गायब पाया तो उसके गुस्से का ठिकाना न रहा। उसने देखा द्वार पर मुनि मेतार्य चुपचाप बैठे हैं आतिथ्य भूल गया, पूछा "आचार्य प्रवर यहाँ कोई आया तो नहीं ?" "नहीं तात् ! मेरे सिवाय और तो कोई नहीं आया।" मेतार्य ने सहज ही उत्तर दिया। इस पर स्वर्णकार का क्रोध और भी बढ़ गया। उसने निश्चय कर लिया मेतार्य ने ही यह स्वर्ण चुरा लिया और अब यहाँ ढोंग करके बैठा है।

मेतार्य से उसने पूछा—"स्वर्णकण तुमने चुराये हैं ?" इस पर वे कुछ न बोले। अब तो स्वर्णकार को और भी विश्वास हो गया कि मेतार्य ही वास्तविक चोर हैं सो उसने अन्य कुटुम्बियों को भी बुला लिया और उनकी अच्छी मरम्मत की। जितनी बार पूछा जाता कि तुमने स्वर्ण चुराया है ? मेतार्य चुप रहते, कुछ भी न बोलते इससे उनका सन्देह और बढ़ जाता।

अन्त में निश्चय किया गया कि मेतार्य के मस्तक पर गीले चमड़े की पट्टी बाँधकर चिल-चिलाती धूप में पटक दिया जाये। यही किया गया, उनके मत्थे पर चमड़े की गीली पट्टी बाँध दी गई और धूप में खड़ा कर दिया गया। जैसे-जैसे पट्टी सूखती गई महर्षि का सिर कसता गया। शरीर पहले ही दुर्बल हो रहा था। पीड़ा सहन न हो सकी। वे चक्कर खाकर गिर पड़े। दिन उन्होंने मरणान्तक पीड़ा में बिताया।

साँझ हो चली। वृक्ष पर बैठे पक्षियों ने बीट की तो वह दाने नीचे गिरे। किसी ने यह देखा तो कहा अरे सोने के दाने तो पक्षियों ने चुग लिए महर्षि को क्यों कष्ट दे रहे हो ? स्वर्णकार हक्का-बक्का रह गया। उसने दौड़कर महर्षि के माथे की पट्टी खोली—उन्हें जल पिलाया और दुःखी स्वर में पूछा—"महामहिम ! आपने बता दिया होता कि स्वर्ण दाने पक्षियों ने चुगे हैं, तो आपकी यह दुर्दशा क्यों होती ?"

महर्षि मुसकराये और बोले—"वैसा करने से जो दण्ड मैंने भुगता उससे भी कठोर दण्ड इन अज्ञानी पक्षियों को भुगतना पड़ता।" महर्षि की इस महान् दयालुता पर सबको रोमांच हो गया। स्वर्णकार बोला—"जो प्राणिमात्र में अपनी तरह अपनी ही आत्मा को देखता है, वही सच्चा साधु है।"

क्षमया वशीकृते लोके

शौर्य और धर्मनिष्ठा जितना श्रेष्ठ समन्वय उन दिनों सिन्धु-सौवीर राज्य के शासक सम्राट् उद्रायण में मिलता था, किसी अन्य प्रजा तो क्या नरपालों में भी नहीं था। उद्रायण अधर्मी और अन्यायी शासकों को दण्ड देते समय जितने कठोर हो सकते थे, किसी दीन और दुःखी को देखकर उतने ही दयार्द्र भी। कर्म और भावनाओं में धर्म की एकरस धारा का यह प्रवाह ही था, जिसने सम्राट् उद्रायण को चक्रवर्ती बना दिया था।

अब वे तृतीय वय में प्रवेश पा चुके थे। एक दिन उनकी धर्म परायण पत्नी प्रभावती ने कहा—"स्वामी ! धार्मिक मर्यादा के अनुसार अब हमें राज्य-शासन राजकुमार अभीचि को सौंप देना चाहिए और अपने को परमार्थ एवं परलोक की तैयारी के लिए मुक्त कर लेना चाहिए।" उद्रायण राजमाता की यह सम्मति पाकर अत्यधिक प्रसन्न हुए। राजकुमार अभीचि के राज्याभिषेक की तैयारी होने लगी।

महाराज उद्रायण की एक बहिन भी थी। उसका एक पुत्र केशीकुमार इन दिनों सिन्धु-सौवीर के संरक्षण में ही पल रहा था। केशीकुमार के पिता किसी अन्य राज्य के शासक थे पर एक युद्ध में वह मारे गये थे। तब सम्राट् उद्रायण की बहन सिन्धु-सौवीर ही चली आई थी। एक दिन पति वियोग में जब वह परलोक प्रयाण करने लगी थीं तब उसने ही केशीकुमार को सौंपा था। महाराज ने वचन दिया था कि उसे अपने पुत्र राजकुमार अभीचि से अधिक ध्यान देकर रखेंगे। अपने कर्त्तव्य का उन्होंने अब तब अक्षरशः पालन किया था। शिक्षा-दीक्षा तथा आमोद-प्रमोद के जो साधन अभीचि को उपलब्ध होते थे, वह केशीकुमार के पास पहले ही पहुँचा दिए जाते थे, तब भी केशीकुमार के मन में फणिधर के विष की तरह अभीचि के प्रति अज्ञात दुर्भाव पनपता रहा। हर शंकालु व्यक्ति की तरह उसे अभीचि से सदैव भय बना रहता था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

राज्याभिषेक की तैयारियाँ अभी प्रारम्भ भी नहीं हुई थीं कि केशीकुमार महाराज के पास जा पहुँचा। धूर्तों की सजगता ही तो होती है कि उन्हें कभी-कभी अनायास सफलता भी हाथ लग जाती है। उसने सम्राट् को उनके दिए वचन की याद दिलाई और कहा—"अब तक प्राप्त प्राथमिक सुविधाओं के समान क्या सिन्धु-सौवीर के राज्य-सिंहासन पर मेरा प्रथम अधिकार नहीं ?"

प्रश्न बड़ा टेढ़ा आ पड़ा। मन्त्रिगण, सचिव और सेनापति सब इस पक्ष में थे कि राजकुमार अभीचि ही राज्य के उत्तराधिकारी और योग्य प्रशासक हैं, किन्तु महाराज उद्रायण ने जब अपनी स्थिति देखी तो पाया कि वे वचनबद्ध हैं। यों वह केशीकुमार के दुष्ट स्वभाव को जानते थे। दुष्ट को दबाना पाप नहीं होता पर अपयश का भय धर्म के नाम पर एक प्रकार की दीनता ही कही जायेगी, जीवन भर एक क्षत्र, क्षात्र धर्म का पालन करने वाले सम्राट् उद्रायण से उतना भी साहस करते न बना। राज्याभिषेक उन्होंने केशीकुमार का ही कर दिया।

बन्दर के हाथ तलवार वाली कहावत हो गई। दुष्ट स्वभाव के मनुष्य को शक्ति और साधन देना तो दुष्टता का अभिसिंचन और परिपोषण करना ही होता है। राज्य पाकर केशीकुमार का जीवन और उद्दण्ड हो गया। प्रजा के हित की चिन्ता न रही। मार्ग की एक मात्र बाधा अभीचि को भी उसने राज्य से निष्कासित कर मुट्ठी भर समर्थकों के साथ भोग-विलास का जीवन जीने लगा। अभीचि अपने मौसेरे भाई चंपापति के राजकुमार कुणिक के पास चला गया।

उद्रायण ने महाश्रमण महावीर से धर्म-दीक्षा ग्रहण की और आत्म-कल्याण की साधना में रत हो गये। साधना और लोक-सेवा में तत्पर श्रमण उद्रायण बहुत समय तक देश का भ्रमण और तीर्थाटन कर अपनी आत्मिक क्षमताएँ बढ़ाने में लगे रहे। धर्म-साधना के क्षेत्र में भी उनका यश पहले की ही भाँति सारे संसार में फैल गया।

कुठीचक के रूप में रह रही प्रभावती का देहावसान हो गया, तब श्रमण उद्रायण अकेले ही लोकहित में परिव्रजा करने लगे। बहुत दिनों के बाद उनके मन में अपनी राजधानी सिन्धु-सौवीर की स्मृति ताजा हो उठी। वे वीतभय की ओर प्रस्थान कर गये और कुछ दिन में सिन्धु-सौवीर जा पहुँचे। अपने भूतपूर्व धर्मप्रिय शासक को पाकर प्रजा ने अपना सारा प्यार उन पर उँड़ेल दिया। यह अंतर्स्नेह ही तो व्यक्ति को धर्म और सदाचरण की प्रेरणा देता है, अन्यथा आज संसार में दुष्ट, दुराचारियों का ही प्रभुत्व रहा होता।

सब अच्छे ही नहीं होते, इस संसार में बुरे भी कम नहीं। एक ओर जहाँ प्रजा अपने भूतपूर्व शासक के स्वागत में तल्लीन थी, वहीं दूसरी ओर निहित स्वार्थ के चापलूस पदाधिकारी केशीकुमार को भड़का रहे थे कि महाराज प्रजा का समर्थन लेकर आपको राज्यच्युत करने वाले हैं और राजकुमार अभीचि को पुनः राज्य-सिंहासन दिलाने वाले हैं।

कृतघ्नता नीचता की पहली और अन्तिम कसौटी है। किसी के किये हुए उपकार के प्रति श्रद्धा नहीं रखता, उससे बढ़कर दूसरा कोई पापी नहीं हो सकता। केशीकुमार ने दुष्ट व्यक्तियों के प्रभाव में आकर घोषणा करा दी कि सिन्धु-सौवीर का जो भी नागरिक श्रमण उद्रायण को आश्रय प्रदान करेगा, उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति छीन ली जायेगी और उसे मृत्यु-दण्ड भी दिया जायेगा।

ज्येष्ठ की चिलचिलाती धूप में श्रमण उद्रायण भिक्षाटन के लिए निकले पर भिक्षा तो दूर जिसने भी उन्हें देखा द्वार बन्द कर लिए, मुख छुपाकर लोग घरों में घुस जाते। इसी से तो भय को भी पाप कहा गया है। भयभीत व्यक्ति अन्याय का प्रतिकार भी नहीं कर सकता है। जो प्रजा कल तक उद्रायण के लिए अपना सर्वस्व तक न्योछावर करने को तैयार रहती थी, आज वही लोग भयवश अपने कर्तव्यपालन से भी विमुख हो रहे थे।

ऐसे समय एक कुम्भकार ने आगे बढ़कर उद्रायण का स्वागत किया और यह दिखा दिया कि साहसी व्यक्ति सत्य के समर्थन में किसी भी भय से विचलित नहीं होते, चाहे मृत्यु-दण्ड की ही आशंका क्यों न हो ? उसने उद्रायण की समुचित सेवा की और विश्राम दिया। उसके इस साहस ने श्रीमन्तों के सिर लज्जा से झुका दिए। अब तो और लोग भी उनके स्वागत को उद्यत हो गये।

केशीकुमार तक यह समाचार पहुँचा। पापी में साहस कितना ? वह कुम्भकार के साहस का भी सामना नहीं कर सका। उसने छलपूर्वक उद्रायण को मरवा देने का निश्चय किया। कुम्भकार के समीपवर्ती एक ग्वाले के हाथ विष भरा दुग्ध भिजवाकर उसने उन्हें मार डालने की योजना निश्चित कर दी।

सायंकाल का समय था। उद्रायण ने दुग्धपान कर लिया। विष का प्रभाव शरीर में फैलने लगा। उद्रायण भयंकर पीड़ा से कराह उठे। सारे नगर में यह समाचार बिच्छू के विष की तरह फैल गया। नगरवासी विद्रोह कर उठे। महाराज उद्रायण की आज्ञा लेने और केशीकुमार की सत्ता उखाड़ फेंकने के लिए मतवाली भीड़ कुम्भकार के द्वार पर जा पहुँची।

उद्रायण ने एक बार सिर ऊपर उठाया और धीमे, बहुत धीमे स्वर में कहा—"आप लोग केशीकुमार का प्रतिकार न करना। वह क्षमा के पात्र हैं, शरीर आज नहीं तो कल नष्ट होना ही था।"

उद्रायण के प्राण-पखेरू उड़ गये, पर उनके अन्तिम शब्द केशीकुमार के कानों में जा पड़े। उसका हृदय पश्चाताप से जल उठा। आज वह अपनी ही दृष्टि में गिर चुका था। इस भयंकर आत्म-दाह में ही उसने अपने प्राण त्यागे।

भय आधी मृत्यु

गरुड़ को द्वार पर ही छोड़कर भगवान विष्णु भीतर चले गये। विश्व व्यवस्था पर उन्हें शिवजी से देर तक चर्चा करनी थी। इतना समय कैसे काटा जाये ? अभी द्वार पर रुके गरुड़ यह सोच ही रहे थे कि उन्हें समीप ही दाने चुग रहा एक कपोत दिखाई दिया। उन्होंने संकेत से कपोत को समीप बुलाया और समय काटने के लिए उससे बातचीत प्रारम्भ कर दी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अभी वार्ता अच्छी तरह प्रारम्भ भी न हो पाई थी कि यमराज आ धमके। उन्होंने कबूतर की ओर एक अर्थपूर्ण दृष्टि डाली और न जाने क्या सोचकर हँस दिये। फिर बिना कुछ कहे अन्दर चले गये। यमदेव का अपनी ओर दृष्टिपात करके हँसना था कि कबूतर के प्राण सूख गये। कम्पित स्वर में उसने गरुड़ से कहा—"तात् ! यमदेव की हँसी अकारण नहीं हो सकती है। वे त्रिकालदर्शी और मृत्यु के देवता हैं, अवश्य ही मेरी मृत्यु आ गई है इसीलिए वे मुझे देखकर हँसे। बन्धु ! मेरी सहायता करो, मुझे अविलम्ब यहाँ से हटाकर किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दो।"

गरुड़ हँसे और कहने लगे, "मित्र ! जिस तरह आपातकालीन परिस्थितियों में राष्ट्र के वरिष्ठ अधिकारी मन्त्रणाएँ करते और आपातकालीन परिस्थितियों से निबटने के उपाय ढूँढ़ते हैं वैसे ही संसार की बिगड़ती स्थिति को सुधारने के उपायों पर विचार करने के लिए भगवान विष्णु को शिवजी ने बुलाया है, यमराज भी इस वार्ता में सहायक होंगे इसीलिए वे यहाँ आये हैं, तुम निरर्थक भय मत करो। मित्र ! नीति कहती है भय आधी मृत्यु है, इसलिए किसी को अकारण भय नहीं करना चाहिए, जो अवश्यम्भावी है उसके लिए तो भय करना और भी मूर्खता है। उस परिस्थिति के लिए तो शूरवीरों की तरह तैयार रहना चाहिए।"

गरुड़ ने बहुतेरा समझाया पर भीत-कपोत की समझ में कुछ न आया। उसके मस्तिष्क ने विचार करना तक छोड़ दिया। सच है भयग्रस्त व्यक्ति इसी कारण एक संकट से अनेक संकट स्वतः पैदा कर लेते हैं।

उसने गरुड़ से कहा—"तात् ! आप तो मुझे विन्ध्याचल की नीलाद्रि गुफा तक पहुँचा दीजिये, वहाँ मैं पूर्ण सुरक्षित रहूँगा। गरुड़ ने बहुतेरा समझाया—"अभी यमराज आते होंगे उन्हीं से पूछकर शंका-समाधान कर लिया जाय पर कबूतर के मस्तिष्क में पूर्वाग्रह का अज्ञान छा गया था। उसने एक भी न सुनी अन्ततः गरुड़ को उसकी प्रार्थना स्वीकार ही करनी पड़ी। चटपट अपनी पीठ पर बैठाकर वे कबूतर को विन्ध्याचल ले जाकर नीलाद्रि गुफा में छोड़ आये।"

गरुड़ लौटकर अभी एक क्षण विश्राम भी न कर सके थे कि भीतर से यमदेव निकल आये। वहाँ कबूतर को न पाकर उन्हें आश्चर्य हुआ। उन्होंने गरुड़ से प्रश्न किया, "तात् ! आपके पास कुछ समय पूर्व जो कपोत क्रीड़ा कर रहा था वह कहाँ गया ?" गरुड़ ने हँसकर कहा—"महाराज ! आपकी यह विकराल दाढ़, लम्बी मूँछें और भयंकर आकृति, उस पर आपकी असामयिक हँसी ने उस बेचारे को भयग्रस्त कर दिया। बहुत समझाने पर भी वह माना नहीं, अभी-अभी उसे विन्ध्याचल एक सुरक्षित स्थान पर छोड़कर आ रहा हूँ।" यमराज कुछ गम्भीर होकर पूछने, "लगे आपने वहाँ और किसी को तो नहीं देखा।" गरुड़ ने कहा, "नहीं—हाँ जिस गुफा में उसे छोड़कर आया उसके अन्दर जाते हुए किसी बिल्ली के पंजों के निशान मैंने अवश्य देखे क्यों कोई बात है क्या ?"

"यमराज ने कहा" हाँ बात न होती तो पूछता क्यों ?" "तात्—मैं यहाँ से निकला तो मैंने कबूतर के मस्तक पर विधि का एक लेख पढ़ा—लिखा था एक घड़ी बाद उसे विन्ध्याचल की एक बिल्ली खा जायेगी। मैंने उसे शिव लोक में देखकर विचार किया था कि ब्रह्माजी भी कभी-कभी कितनी भूल करते हैं कहाँ विन्ध्याचल—कहाँ शिव लोक—पर अब स्पष्ट हो गया कि वैसे चाहे कबूतर बच जाता, पर उसके भय ने लगता है ब्रह्माजी के लेख को सचमुच सत्य कर दिया।" बेचारा कबूतर उस गुफा में भी न बच सका अन्त में बिल्ली ने उसे यथासमय खा ही लिया।

निर्भयता और साहस की सिद्धि

दो हजार वर्ष पहले की बात है कि उज्जयिनी नगरी में एक राजपूत युवक रहता था। वह रूप गुण सम्पन्न था, पर उसे एक दमड़ी की भी आमदनी नहीं होती थी। जिस प्रकार कितने ही व्यक्ति गर्भ श्रीमन्त होते हैं, उसी प्रकार वह गर्भ दरिद्र था, तो भी वह स्वभाव से पराक्रमी और साहसी था। गरीबी की कठोर ठोकरें खाने पर भी उसने कभी नीति का त्याग नहीं किया था। जब अनेक प्रयत्न करने पर भी उसे स्वदेश में सफलता न मिल सकी, तो एक भट्टमात्र नामक सच्चे मित्र को लेकर परदेश को रवाना हो गया।

उस समय एक ऐसी जनश्रुति थी कि दक्षिण भारत का रोहणाचल पर्वत दरिद्रता के कष्टों का अन्त कर देता है। ये दो मित्र कुछ ऐसे ही विचार से उसी तरफ चले गये और कितने ही जंगलों, नदियों, पहाड़ों और ग्रामों को पार करते रोहणाचल के पास अवस्थित प्रवर नामक गाँव में जा पहुँचे और वहाँ एक कुम्हार के घर में ठहर गये।

उस रात्रि को कुम्हार के घर में विश्राम करके प्रातःकाल वे रोहणांचल की तरफ चलने को उद्यत हुए। उस समय भट्टमात्र ने कुम्हार से एक कुदाली माँगी। कुम्हार ने उनका आशय जानकर कहा कि "हमारे देश में ऐसा चमत्कारपूर्ण रिवाज है कि यदि सबेरे के समय कोई दरिद्र मनुष्य ईश्वर का स्मरण कर खान के पास जाकर खड़ा हो जाय और कपाल पर हाथ लगाकर दीन वाणी में "हा देव !", "रे नसीब" ऐसा उद्‌गार निकालकर कोदाली खान में मारे तो उसमें से उसकी योग्यता के अनुसार रत्न उसको मिल जाते हैं।"

भट्टमात्र ने इस रहस्य को भली प्रकार समझ तो लिया, पर अपने स्वाभिमानी मित्र से ऐसा करने के लिए कहने की उसकी हिम्मत नहीं पड़ी। तब उसने एक तरकीब सोची और जब राजपूत युवक कुदाली उठाकर खान में मारने को तैयार हुआ तो एकाएक उसने कहा—"अपने देश का एक यात्री कल मिला था।"

"तो ?" यह कहते हुए राजपूत ठहर गया।

"उससे आपके परिवार का कुशल समाचार पूछा।"

"अच्छा·····" राजपूत युवक सुनने को उत्सुक हो गया।

"उसने आपकी पूज्य माताजी के देहावसान का समाचार सुनाया।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भट्टमात्र के शब्दों को सुनते ही उसके मुख में से एक गहरा निःश्वास निकला "हा दैव !" इसके साथ स्वभावतः माथा पीटने के लिए हाथ चलाते हुए उसकी कुदाली भी खान में गिर गई। उसी समय खान में से सवा लाख रु. का एक सुन्दर रत्न निकला। उसे भट्टमात्र ने उठा लिया और दोनों मित्र घर वापस चले आये।

अपने मित्र को मातृ-वियोग के दुःख से शोकपूर्ण देखकर भट्टमात्र ने उसे वास्तविक बात कह दी और अपनी चालाकी के लिए क्षमा याचना की। यह सुनकर उसका राजपूती रक्त जोश में आ गया और उसने मित्र को "लोभी भट्ट" कहकर फटकारा और वह तुरन्त रत्न को लेकर खान की तरफ दौड़ा। भट्ट को यह सुझाई भी न पड़ा कि इस अवसर पर वह क्या करे कि इतने में युवक ने खान पर पहुँचकर रत्न खान में फेंक दिया और कहा—"दारिद्र-दुःख को मिटाने वाले रोहण पर्वत तुझे धिक्कार है, जो दीन-दुःखियों से पहले पिटवाकर 'हा दैव" ऐसा निकलवा लेता है।" पर्वत को इस प्रकार उपालम्भ देकर वह वापस आ गया।

भटकते-भटकते युवक फिर अपने देश में आ पहुँचा, उज्जयिनी की सीमा में प्रवेश करते ही उसे ढोल की आवाज सुनाई दी। जल्दी से पास जाकर पूछताछ करने पर पता लगा कि राजा के निःसन्तान मर जाने से मन्त्रीगण नया राजा तालाश कर रहे हैं। युवक इसके लिए तुरन्त तैयार हो गया, पर उसकी निर्दोषता पर तरस खाकर किसी दर्शक ने उसे इस बात का वास्तविक मर्म इस प्रकार समझाया—

"मेरे भाई, यह तो लोहे के चने हैं। तुम्हारे जैसे अनजान मनुष्य लोभ में आकर फँस जाते हैं, पर वे पहली रात को ही मारे जाते हैं। कोई राक्षस या भूतपिशाच रात्रि के समय उसका संहार कर डालता है। इसलिए हमको नित्य प्रति एक राजा ढूँढ़ना पड़ता है। अब तो लोग इस बात को जान गये हैं और एक दिन के लिए राजा बनने को कोई तैयार नहीं होता। तुम्हारा भोलापन देखकर मैंने तुम्हें सब बात बतला दी।"

उत्तर में युवक ने जरा मुसकरा दिया। उसका विशाल वक्षस्थल ऊँचा हो गया, नेत्र अधिक तीव्र हो गये; उसकी समस्त मुख मुद्रा दैदीप्यमान हो उठी। वह निर्भयतापूर्वक ढिंढोरा पीटने वाले अधिकारी के साथ राजसभा में पहुँचा और वहाँ मन्त्रियों ने **"शुभस्य शीघ्रम्"** सिद्धान्त के अनुसार उसी समय उसका राज्याभिषेक कर दिया।

फिर एकान्त मिलने पर नये राजा ने सोचा कि वह आदमी जैसा कहता था इस राज्य पर अवश्य ही किसी देव या दानव का रोष उतरा है; वही प्रतिदिन राजा को खा जाता है। इसलिए भक्ति या शक्ति से उसे राजी कर लेना चाहिए।

ऐसा सोचकर उसने बहुत-सी उत्तम मिठाईयाँ मँगवायीं और राजमहल के ऊपर के कमरे में सुन्दर ढंग से सजाकर रख दीं। साथ में इत्र, पान, माला आदि वस्तुएँ भी मँगवा कर रख दीं। फिर राजा के बहुमूल्य पलंग पर कोमल रेशमी शय्या बिछाकर अपना बहुमूल्य साफा तकिया के सहारे रख दिया। यह सब तैयारी करके तलवार हाथ में लेकर वह अँधेरे कोने में छुप गया। उसकी एक-एक घड़ी युग के समान बीत रही थी पर उसमें बड़ा धैर्य था और वह बराबर मुस्तैदी के साथ अपने स्थान पर खड़ा रहा।

इतने में आधी रात का समय हुआ और धुएँ के बादल खिड़की में होकर भीतर आने लगे। उसने उसके पीछे धधकती ज्वाला भीतर आती दिखलाई दी। फिर एक महा भयंकर पुरुष दिखलाई पड़ा। उसकी आँखों से मानो आग निकल रही थी, चेहरा अत्यन्त विकराल था। समस्त शरीर मोटे और लम्बे वालों से ढका हुआ था। जब वह पलंग के पास पहुँचा और उसने तमाम सामग्री को वहाँ रखे देखा तो जोर से अट्टहास कर उठा। उस आगन्तुक ने सब मिठाईयाँ खा डालीं, सुगन्धित वस्तुएँ बदन में लगा लीं, पान का बीड़ा मुख में रख लिया। तब वह पलंग पर बैठ गया और कहने लगा—

"हे मृत्युलोक के मनुष्य, मैं स्वर्ग के राजा इन्द्र का अग्नि वेताल नाम का द्वारपाल हूँ। यहाँ हर रोज मैं एक-एक का संहार करता हूँ। तेरी भक्ति को देखकर तुझे अभय प्रदान करता हूँ, परन्तु शर्त यह है कि आज की जितनी सामग्री हर रोज मुझको देनी पड़ेगी।"

चतुर राजा ने इस शर्त को स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन अपने नए राजा को राजी-खुशी और प्रसन्न बदन देखकर मन्त्रियों को आश्चर्य हुआ और प्रजा ने हर्ष से उत्सव मनाया। राजा भी अपने देश की समृद्धि और उन्नति के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहने लगा।

इस प्रकार दिन बीतने लगे। हर रोज रात्रि के समय चतुर राजा वेताल को भोजन कराता और फिर दोनों में आगम-निगम की बातें होती। इस प्रकार दोनों में मित्रता उत्पन्न हो गई। एक बार राजा ने वेताल से अपनी पूर्ण आयु पूछी। वेताल ने कहा—"भाई, मुझे तो इसकी खबर नहीं है, पर मैं अपने स्वामी से पूछकर कल बतला दूँगा।" दूसरी रात्रि को उसने बतलाया कि इन्द्रदेव ने आपकी आयु पूरी सौ वर्ष की बतलाई है।

राजा ने कहा, "इसमें कुछ परिवर्तन हो सके तो ठीक है।"

वेताल ने कहा—"यह कैसे संभव है ?"

राजा ने हठ पकड़ ली—"तुम तो हमारे पक्के मित्र हो और तुम्हारा देवताओं के राजा के साथ इतना निकट संबंध है, तो क्या तुम इतना भी काम नहीं कर सकते। महेन्द्र तो जो चाहे कर सकता है। मैं कुछ ज्यादा नहीं माँगता, वह मेरी आयु में केवल एक वर्ष बढ़ा दे या घटा दे। अगर आप इतना कार्य नहीं कर सकते तो आपकी इतनी शक्ति का क्या लाभ ?"

राजहठ के सामने वेताल को हार माननी पड़ी और दूसरे दिन उसकी इच्छा पूर्ण करने को कहा, पर दूसरी रात्रि को जब वह आया तो उसने राजा को बतलाया—

"हे मित्र, महेन्द्र ने तो साफ इनकार कर दिया। उसने तो निश्चयपूर्वक कह दिया कि यह कार्य कोई भी देवता नहीं कर सकता।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बस अब राजा वेताल के भय से निर्भय हो गया। दूसरे दिन राजा ने उसकी भोजन-सामग्री बन्द कर दी और युद्ध करने को तैयार हो गया। जब वेताल ने यह दशा देखी तो वह क्रोधित होकर राजा को खाने के लिए दौड़ा, पर राजा ने निडरता के साथ उसका मुकाबला किया और दोनों में बड़ी देर तक द्वन्द्व युद्ध होता रहा। उससे पृथ्वी हिल उठी, पक्षी तथा अन्य प्राणी व्याकुल हो उठे, वायुदेव भी एक प्रकार से स्थगित हो गये, आकाश भी मानो काँप उठा।

कहाँ विकराल वेताल और कहाँ एक साधारण नवयुवक। राजा को मसल डालना उसे चबा जाना तो उसके लिए एक खेल था, परन्तु अदृष्ट का पता किसी को नहीं लगता। अन्तिम विजय तो सत्य, न्याय और निर्मलता की ही होती है वीर राजा ने अपने पूर्व सत्कार्यों और अन्तःशुद्धि के प्रभाव से भयंकर शब्द के साथ वेताल को पृथ्वी पर दे मारा और उसके विशाल वक्षस्थल पर जोर के साथ पैर रखकर खड़ा हो गया और कहा—"अब तू अपने इष्टदेव का स्मरण कर ले।" सदा दुष्कृत्यों में रहने वाले और अनेकों का खून पीने वाले वेताल का साहस अब जाता रहा और वह बोल उठा—

"हे राजा ! तेरे इस अद्भुत साहस से मुझे अत्यन्त सन्तोष हुआ है। आज तूने एक बड़ी सिद्धि प्राप्त की है। मैं अग्नि वेताल तेरा आज्ञाकारी बन गया हूँ। तू जिस समय जो कार्य करने को कहेगा, उसे मैं तुरन्त पूरा करूँगा।"

निडर राजा ने अपना चरण वेताल के ऊपर से हटा लिया, उसे अपने हाथ से उठाकर बैठाया और उसकी पीठ थपथपाई तब से वह उनका अनुयायी बन गया। अजेय समझे जाने वाले वीर वेताल पर विजय प्राप्त करके उस पराक्रमी राजा ने सच्चे अर्थों में 'वीर' के गौरवयुक्त पद को प्राप्त किया।

इस महा-पराक्रमी राजा को कौन नहीं जानता ? वह और कोई नहीं, वही है जिसने समस्त राष्ट्र का अभ्युदय साधकर २०१६ वर्ष पूर्व अपना संवत्सर स्थापित किया था। वह है भारतवर्ष के श्रेष्ठ प्रथम श्रेणी के राष्ट्रवीरों में शोभा पाता हुआ पर दुःख-भंजन राजा वीर विक्रमादित्य।

निर्भयता अपराजेय है

"आप सब कहाँ जा रहे हैं, पंचनद के ये बहुमूल्य घोड़े, हाथी और खजाना किसकी भेंट के लिए जा रहा है ?" साधुओं में से एक ने सेनापति से पूछा। सैनिकों के बुझे चेहरे, सेनापति का मलिन मुख, सेना की यह मौन यात्रा सब कुछ विचित्र लगा। कहाँ तो पंचनद की विजयवाहिनी रण-वाद्यों का घोष करते हुए निकला करती थी, चारों ओर विजय का उल्लास फैलता दिखता था। और आज ..... ?

कोई आगे कुछ सोचे, इसके पहले महासेनापति ने कातर स्वर से कहा—"भगवन् ! महाराज देवदर्शन की आज्ञा से हम सिकन्दर के लिए सन्धि प्रस्ताव लेकर जा रहे हैं। सैनिकों की इच्छा के विरोध में महाराज का असामयिक निर्णय जँचा नहीं पर हम विवश हैं, क्या करें ?"

साधुजन तड़प उठे, बोले—"यह तुम आर्यावर्त के एक सेनापति बोल रहे हो। विवशता कायरों का शब्द है। उसे मुख पर लाने से पहले तुमने राजद्रोह कर दिया होता तो तुम यशस्वी होते, सैनिक ! संख्या नहीं समर्थता विजय पाती है। तुम यह न भूलो कि हमारे देश के नागरिक संयमित और सदाचारी जीवन यापन करते हैं। इसलिए उनकी शक्ति का लोहा लेना सिकन्दर के लिए भी कठिन है। पराधीन जीवन जीने से पहले तुम शहीद हो गए होते तो देश के मस्तक पर कलंक का टीका लगने का अवसर तो न आता। जाओ, जब तक इस देश का ब्राह्मण जीवित है, तब तक राज्य पराजय स्वीकार नहीं कर सकता। तुम यह उपहार लेकर लौट जाओ। सिकन्दर से सन्धि नहीं युद्ध होगा, और यह निमन्त्रण हम लेकर जाएँगे।"

सेनापति, सैनिकों की टुकड़ी के साथ लौट गए। सभी को जैसे मन माँगी मुराद मिली। उन सबका दमित शौर्य उल्लास बनकर चेहरों पर चमकने लगा। एक साधु सिकन्दर को युद्ध की चुनौती देने चला, शेष ने प्रजाशक्ति को जाग्रत करना प्रारम्भ किया। देखते-देखते जनशक्ति हथियार बाँधकर खड़ी हो गई। देवदर्शन को भी अब युद्ध के अतिरिक्त कोई मार्ग न दिखा। सारे राज्य में रण-भेरी बजने लगी।

साधु सिकन्दर को सन्धि के स्थान पर युद्ध का निमन्त्रण दे, इससे पूर्व गुप्तचर ने सारी बात उस तक पहुँचा दी। यूनान-सम्राट क्रोधित हो उठा। उसने साधु के वहाँ पहुँचने से पूर्व ही बन्दी बनाकर कारागार में डलवा दिया। उसके बाद अन्य तीन साधुओं को भी उसने छलपूर्वक पकड़वा मँगाया।

अगले दिन सिकन्दर का दरबार सजाया गया। ऐश्वर्य प्रदर्शन के सारे सरंजाम इकट्ठे थे। सर्वप्रथम बन्दी बनाए गए साधु की प्रशंसा करते हुए सम्राट ने कूटनीतिक दाँव फेंकते हुए कहा—"आचार्य ! आप इन सबमें वीर और विद्वान हैं। आप हमारे निर्णायक नियुक्त हुए। शेष तीन साधुजनों से हम तीन प्रश्न करेंगे, इनके उत्तर आप सुनें।"

एक साधु की ओर संकेत करते हुए सिकन्दर ने प्रश्न किया—"तुमने देवदर्शन की प्रजा को विद्रोह के लिए क्यों भड़काया ?" "इसलिए कि हमारा धर्म, हमारी संस्कृति की सुरक्षा, हमारे स्वाभिमान से अनुबद्ध है। इस देश के नागरिक स्वाभिमान का परित्याग करने की अपेक्षा मर जाना अच्छा समझते हैं। देश की रक्षा हमारा धर्म है।"

सिकन्दर ने दूसरा प्रश्न किया—"जीवन और मृत्यु में अधिक श्रेष्ठ कौन है ?"

"दोनों"— साधु ने उत्तर दिया। जब तक कठिन परिस्थितियों में भी भय न व्याप्त हो, जीवन श्रेष्ठ है। किन्तु दुष्कर्म करने से पहले मृत्यु हो जाय तो वह जीवन से अच्छी।"

"संसार में जीवित मनुष्य अधिक हैं या मृतक ?" सिकन्दर का तीसरा प्रश्न था।

"जीवित" तीसरे साधु ने उत्तर दिया। "मृत्यु तो क्षणिक-दुर्घटना मात्र है। जिसके बाद या तो जीवन रहता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही नहीं या रहता है, तो भी जीवित आत्माओं की संख्या में ही आता है।"

इससे पूर्व कि सिकन्दर अपना कोई निर्णय दे, साधुओं की निडरता देखकर सिकन्दर के सैनिकों ने युद्ध करने से ही इनकार कर दिया।

वातावरण में एक पल को घनीभूत हो गई स्तब्धता। पर आघात करते हुए प्रथम साधु दण्डायन ने निर्णय के स्वर में कहा—"निर्भयता—अपराजेय है।" वह और उसके तीनों शिष्य एक ओर चल पड़े। अपने सैनिकों के हठ भरे आग्रह के सामने झुककर सिकन्दर लौट चलने की व्यवस्था बना रहा था।

ऋण का परिशोध

निकोलस और वेक इंग्लैण्ड के वेस्ट मिनिस्टर स्कूल में साथ-साथ ही पढ़ते थे। दोनों की प्रकृति में बड़ा भारी अन्तर था, एक भीरु था दूसरा निर्भीक फिर भी दोनों में गहरी मित्रता थी।

एक दिन अध्यापक महोदय किसी काम से बाहर गये हुए थे, लड़कों ने पढ़ना बन्द कर दिया और ऊधम मचाने लगे। शरारती लड़कों में निकोलस सबसे आगे था। उसने सोचा कोई ऐसा काम करना चाहिए, जिससे सब लड़कों को मजा आवे। इधर-उधर खोज करने के बाद उसकी निगाह एक दर्पण पर रुकी, उसने कहा—"यदि इसे फोड़ दूँ तो कैसा अच्छा हो ?" आवेश में उसके हाथ आगे बढ़ गये, एक झोंके की तरह पत्थर का टुकड़ा उसने दर्पण पर दे ही मारा। दर्पण गिरा और गिरकर चूर-चूर हो गया।

दर्पण गिरते ही निकोलस की सारी शरारत काफूर हो गई। उसका दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। शिक्षक द्वारा कठोर दण्ड मिलने की विभीषिका उसकी आँखों के आगे नाचने लगी। हो सकता था उसे स्कूल से निकाल दिया जाय।

सारे स्कूल में सन्नाटा छाया हुआ था, किसी के मुँह से एक शब्द नहीं निकल रहा था। लड़कों की झुकी हुई गर्दनें मानो निकोलस के अपराध को स्वीकार कर रही हों। अध्यापक ने आकर यह विचित्र निस्तब्धता देखी तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ, रहस्य को जानने के लिए इधर-उधर दृष्टि दौड़ाने लगे। उन्होंने देखा कि सामने के फर्श पर स्कूल का कीमती शीशा टूटा हुआ पड़ा है। अध्यापक की आँखों में आग बरसने लगी।

उन्होंने गरजते हुए कहा—"यह शरारत जिसने की है, वह उठकर खड़ा हो जाय।" शिक्षक ने अपने आदेश को कई बार दुहराया, पर उस निस्तब्धता को तोड़ने की किसी को हिम्मत न हुई। भय और आशंका से सबकी नसें जकड़ गई थी। अध्यापक ने बारी-बारी सबसे पूछना शुरू किया। लड़के मना करते जा रहे थे। निकोलस की बारी आई तो उसने भी इनकार सूचक सिर हिला दिया।

अब वेक का नम्बर आया, उसने सोचा निकोलस मना कर चुका है पीछे भेद खुलेगा ही, उसे दण्ड भी सहना पड़ेगा और अध्यापक की दृष्टि में झूठा भी ठहरेगा, इसलिए इसका अपराध मुझे अपने सिर ले लेना चाहिए, सच्चे मित्र का यही तो कर्तव्य है। अध्यापक के प्रश्न के उत्तर में वह उठ खड़ा हुआ, उसने गम्भीर स्वर में कहा—"हाँ ! मैंने दर्पण तोड़ा है।" उत्तर का अन्तिम शब्द पूरा भी न हो पाया था, कि बेंतों की सड़ासड़ मार उसके ऊपर पड़ने लगी। कई जगह से चमड़ी छिल गई, बेंतों के नीले-नीले निशान उठ आये। देखने वाले सिहर रहे थे, पर विजय, दृढ़ता और सन्तोष की भावना आँखों में भरे हुए वेक अपने स्थान पर अविचल खड़ा हुआ था।

स्कूल की छुट्टी हुई। वेक के अंग-अंग से पीड़ा हो रही थी, पर वह उल्लासित हृदय के साथ बाहर निकला। साथी उसे घेरे हुए खड़े थे, मानो उसे सच्ची मित्रता की विजय बधाई दे रहे हों। निकोलस पर घड़ों पानी पड़ रहा था। उसकी आँखों में से आँसुओं की धारा बह रही थी, रुँधे कण्ठ से वेक को सम्बोधन करते हुए उसने कहा—"मित्र ! तुम्हारे त्याग ने मेरे अँधेरे हृदय में एक नवीन ज्योति उत्पन्न कर दी है, तुम्हारे इस ऋण से जन्म भर ऋणी रहूँगा।"

समय बीतने में कुछ देर थोड़े ही लगती है एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा, क्रम से पैंतीस वर्ष बीत गये, वेक और निकोलस एक-दूसरे से बहुत दूर पड़ गये। वे एक-दूसरे को भूल भी चुके थे। निकोलस जज हो गया था और वेक फौजी कप्तान था। इंग्लैण्ड के शासक से असन्तुष्ट होकर प्रजा ने गदर कर दिया। अन्त में गदर सफल हुआ, राजा के सहायकों को पकड़कर एक्जेस्टर की जेल में ठूँस दिया गया। इन बन्दियों का मुकदमा निकोलस की अदालत में हो रहा था। विद्रोहियों को आशा थी कि अदालत इन समस्त बन्दियों को प्राण दण्ड की सजा देगी। अदालत में बन्दी उपस्थित किये जाने लगे, निकोलस सबको फाँसी की सजा दे रहा था।

सदा की भाँति उस दिन भी अदालत लगी हुई थी। सबसे पहले एक फौजी कप्तान पेश किया गया। उसका नाम था—वेक। 'वेक' इस शब्द के साथ निकोलस के अन्तर में पड़ी हुई अतीत की एक स्मृति जाग्रत हो गई। उसने बड़े ध्यान से बन्दी के चेहरे को घूर-घूर कर देखा। अरे ! यह तो वही उसका बचपन का साथी वेक था। निकोलस की आँखों के आगे स्कूल, दर्पण, अध्यापक, बेंत और अपना वचन, चित्र की तरह नाचने लगे पर वह कर्तव्य के लिए विवश था।

आज केवल इस एक बन्दी को मृत्यु की सजा सुनाकर ही अदालत उठ गई। जज ने हुक्म दिया कि अब एक सप्ताह तक अदालत की छुट्टी रहेगी और जब तक अदालत न खुले इस कप्तान को फाँसी पर न चढ़ाया जाय। इस विचित्र आज्ञा का अर्थ कोई कुछ न समझ सका। लोग तरह-तरह की अटकल लगा रहे थे।

निकोलस एक तेज घोड़ा लेकर लन्दन के लिए दौड़ा। राजधानी वहाँ से बहुत दूर थी। दो तीन दिन दिन-रात की तेज यात्रा करता हुआ न्यायाधीश लन्दन पहुँचा। उसके सभी कपड़े बर्फ से भीगे हुए थे और बेंत की तरह जाड़े से काँप रहा था। विद्रोही शासक ऋग्य बेल ने न्यायाधीश निकोलस को इस रूप में खड़े देखकर आश्चर्य से कहा—"निकोलस, तुम ! यहाँ ! इस प्रकार !"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निकोलस ने कहा—'मि. त्रुग्य वेल, मैंने आपका विद्रोह सफल कराने में सहायता दी है, आज मुझे आपकी सहायता की जरूरत है और इसीलिए आपके पास दौड़ा आया हूँ। वेक मेरा मित्र है, उसका बहुत बड़ा ऋण मेरे ऊपर है, आज मैं उसके प्राणों की भिक्षा माँगने आपसे आया हूँ।"

त्रुग्य बेल बड़ा कठोर और राज पक्ष के लोगों के लिए तनिक भी दया न रखने वाला शासक था, पर जब उसने इन दोनों के बचपन की मित्रता का सारा हाल सुना और वेक के हृदय की महानता का परिचय पाया तो उसकी आँखों में भी आँसू छलक आये। उसने वेक का मृत्यु दण्ड माफ करने का क्षमा पत्र लिखकर निकोलस को दे दिया और कहा—निकोलस, आखिर मैं भी तो मनुष्य ही हूँ।

निकोलस सन्तोष की श्वास लेता हुआ एकजेस्टर लौटा। वह सीधा जेलखाने पहुँचा और काल कोठरी में वेक को ढूँढ़कर क्षमा पत्र देते हुए उसे अपनी भुजाओं में कस लिया और रुँधे हुए कण्ठ से कहा—"मुझे पहचानते हो वेक ?"

वेक के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। न्यायाधीश ! यहाँ, क्षमा पत्र लेकर ! इतनी कृपा क्यों ?

निकोलस ने कहा वेक, मैं तुम्हारा बचपन का साथी निकोलस हूँ। आज तुम्हारा ऋण चुका रहा हूँ।

दोनों मित्र एक-दूसरे को पहचानकर भुजा पसारकर मिले। दोनों की आँखों से आँसू झर रहे थे। कण्ठ रुद्ध थे। इस मौन मिलन में सच्ची मित्रता का प्रवाह बह रहा था और मानवता की अन्तरात्मा अदृश्य लोक से उन पर पुष्प वर्षा कर रही थी।

सत्य में ही सर्वस्व सन्निहित

महाराज ! शान्तनु, मृगया से लौटकर अभी अपने राजमहल में प्रवेश कर ही रहे थे कि उन्होंने एक दिव्याभूषण जटित सुन्दरी को प्रवेश द्वार से बाहर निकलते देखा। महाराज ने सौम्य वाणी में प्रश्न किया, "भद्रे ! राज प्रासाद का परित्याग कर जाने वाली दिव्यालोचन तुम कौन हो ?"

"लक्ष्मी"—दिव्याकृति बोली—"महाराज आज तक मैं आपके पास रही, किन्तु मैं देखती हूँ कि आप दिनोंदिन जीव हिंसा का पाप कमाकर अधर्म को प्रश्रय दे रहे हैं। जहाँ अधर्म रहता है, वहाँ मैं नहीं रह सकती—इसीलिए आज तुम्हारा यह भव्य प्रासाद छोड़कर जा रही हूँ।"

महाराज कुछ चिन्तित मुद्रा में आगे बढ़े किन्तु अभी वह प्रवेश द्वार पार ही कर पाये थे कि एक और दिव्य-आकृति बाहर आती दिखाई दी। समीप आने पर सम्राट श्री ने प्रश्न किया—"प्रदीप्त मुख मण्डल वाले आप श्रीमन्त को देखकर मेरा हृदय प्रफुल्लित हो रहा है किन्तु इस बात का कौतूहल भी हो रहा है कि आप कौन हैं और यहाँ से क्यों जा रहे हैं ?"

"मैं दान हूँ, राजन् !" देव पुरुष ने बताया—"महाराज ! जहाँ लक्ष्मीजी का निवास होता है, मैं वहीं रहता हूँ आपके राज्य में अधर्म ने आश्रय पा लिया है अस्तु लक्ष्मीजी ने विदा ले ली है, लक्ष्मीजी के न रहने पर मेरा रहना भी संभव नहीं है।"

महाराज ने कोई उत्तर नहीं दिया। वे अभी कुछ विचार कर रहे थे, तभी उन्हें 'एक और भद्र पुरुष की दिव्य छाया बाह्य द्वार की ओर जाती दिखाई दी। उन्होंने उससे भी वही प्रश्न किया, "आप कौन हैं ? और इस राजमहल का परित्याग क्यों कर रहे हैं ?" आकृति बोली—"राजन् मेरा नाम है, सदाचार। जहाँ दान होता है मेरा निवास भी वहीं रहता है। दान के न रहने से परमार्थ और परोपकार वृत्ति के नष्ट हो जाने से स्वाभाविक ही है कि मेरा जीवन आधार नष्ट हो जाए अतएव अब मेरा भी यहाँ रहना संभव नहीं है।"

सदाचार को विदा हुए अभी दो क्षण ही बीते थे कि एक और परम तेजस्वी देव पुरुष वहाँ आ उपस्थित हुए। महाराज ने उनसे भी परिचय पूछा। उन देव पुरुष ने बताया—"महाराज मैं तुम्हारा सत्य हूँ आज तक आपके समीप रहा पर अब जब कि यहाँ लक्ष्मी नहीं रही, दान ने भी स्थान परिवर्तन कर लिया, सदाचार भी यहाँ से चला गया तब मेरा भी यहाँ रह सकना संभव नहीं।"

महाराज के मुख-मण्डल पर उस समय उदासी और चिन्ता के लक्षण स्पष्ट देखे जा सकते थे। उन्होंने विनीत शब्दों में प्रार्थना की—"देव ! लक्ष्मीजी के जाने का मुझे उतना दुःख नहीं हुआ—प्रतिभावान् पुरुष आध्यात्मिकता को सर्वोपरि महत्त्व देते हैं, उसके लिए धन की आवश्यकता है तो पर ऐसा नहीं कि उसके बिना काम न चले। 'दान' रहित होने का भी मुझे दुःख नहीं क्योंकि जिस व्यक्ति के पास ज्ञान की सम्पत्ति हो वह कुछ न होने पर अपने ज्ञान दान से ही अक्षय पुण्य कमा सकता है। सदाचार चला गया। इसमें भी मुझे दुःख नहीं क्योंकि उससे लोगों को ईश्वरीय व्यवस्था की सच्चाई और कठोरता का पता तो चलता है। किन्तु आप 'सत्य' को त्यागकर तो मैं एक क्षण भी नहीं रह सकता। बन्धु-बान्धवों से प्रेम-व्यवहार, प्रजा का पालन, साधना और उपासना इन सब में तो सत्य ही आधार है सो मैं आपको नहीं जाने दे सकता।"

सत्य रुक गये और कुछ ही देर में सदाचार, दान और लक्ष्मी भी लौट आये। राजन् फिर धर्मपूर्वक आनन्द से रहने लगे।

भीम की मुनादी

उसी दिन गले में ढोल डालकर भीम स्वयं ही नगर में मुनादी पीटने निकल पड़े। लोगों को आश्चर्य हो रहा था कि जहाँ यह कार्य एक साधारण कर्मचारी किया करता था वहाँ उसे भीम स्वयं ही करने क्यों निकल पड़े हैं ? संभवतः कोई बड़ी और महत्वपूर्ण बात होनी चाहिए, जिसको पता चला वही सुनने के लिए दौड़ पड़ा। भारी भीड़ जमा होने लगी।

भीम की घोषणा विचित्र थी। वे जगह-जगह ढोल बजाते, जनता को एकत्रित करते और कहते कि "सज्जनो, कितनी प्रसन्नता की बात कि महाराज युधिष्ठिर ने कालबली को जीत लिया है। यह विजय हम सभी के लिए गर्व की बात है।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मुनादी दिन भर बजती रही। चर्चा एक से दूसरे के कानों पहुँची। सारा नगर अवगत हो गया, साथ ही आश्चर्यचकित भी। भला काल किस प्रकार जीत लिया गया ? इससे तो मृत्यु को भी टाला जा सकेगा।

मुनादी की सूचना गुप्तचरों ने महाराज युधिष्ठिर तक पहुँचाई। वे स्वयं आश्चर्यचकित थे कि ऐसी अनहोनी बात भीम जैसे जिम्मेदार द्वारा जनता तक स्वयं पहुँचाई गई ? यह तो और भी अधिक असमंजस की बात है।

भीम को दरबार में बुलाया गया। महाराज ने कड़ककर पूछा—"क्या तुमने काल जीतने वाली मुनादी की है ? यदि की है, तो एक मिथ्या भ्रम फैलाने का क्या कारण है ?"

भीम अविचल थे। वे न तो झिड़की पर डरे और न तनिक भी लज्जित हुए। उन्होंने शान्त भाव से उत्तर देते हुए कहा—"राजन कल आपने ही तो एक ब्राह्मण के धन माँगने पर यह उत्तर दिया था कि कल आना तब मिलेगा।"

इस उत्तर से मैंने जाना कि आपको जीवन का पूरा पक्का विश्वास हो गया है कि कल तक आप भी जीवित रहेंगे और वह ब्राह्मण भी। यदि इसमें कुछ सन्देह होता तो आप कल की बात कैसे कहते ? आप दोनों में से मृत्यु किसी को उठा ले जाती तो आपका वचन झूठा पड़ जाता और आप पर मिथ्यावादी होने का दोष लगता। काल को वश में करने वाला ही किसी को ऐसा वचन दे सकता है, जैसा कि आपने उस ब्राह्मण को दिया। इसलिए मैंने जो निष्कर्ष निकाला वह वास्तव में बड़ा आनन्ददायक था। मैं भी आनन्द विभोर हो गया और सेवक को बुलाने की अपेक्षा उत्साह के आवेश में स्वयं ही मुनादी करने निकल पड़ा। इसमें कोई भूल हो, तो बताएँ ?

युधिष्ठिर गम्भीर हो गये। कल के लिए ब्राह्मण को टाल देने की बात पर दार्शनिक दृष्टि से गम्भीर विचार करने लगे। घटना तो छोटी थी। उस समय व्यस्त रहने के कारण याचक को कल आने के लिए कह दिया गया था। पर इतनी गहराई से नहीं सोचा गया कि काल का क्या ठिकाना ? वह कभी भी आ धमक सकता है। ऐसी दशा में वचन भंग का दोष लगने की बात तो निश्चय ही सारगर्भित थी।

याचक को सेवक भेजकर तुरन्त बुलाया गया। जो देना था, सो दे दिया गया। युधिष्ठिर को बोध हुआ। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वे वही कहेंगे जो आज कर सकते हैं। कल की बात तो कल की परिस्थितियों पर ही निर्भर रह सकती है।

नगर भर में फैला हुआ कौतूहल और असमंजस यथार्थता विदित होने पर शान्त हुआ। सभी नगरवासियों को एक महत्वपूर्ण शिक्षा मिली कि आज का काम आज ही कर लेना चाहिए उसे कल पर नहीं टालना चाहिए। कल न जाने किन परिस्थितियों का हो और उसमें वह करते बन पड़े या नहीं, जो आज सोचा या कहा गया था।

समस्याओं का समाधान

एक गाँव में एक वयोवृद्ध सरपंच रहते थे। दूर-दूर के लोग उनसे अपनी समस्याओं के समाधान और झंझटों के न्याय कराने आया करते थे। सरपंच के नाम से ही उनकी ख्याति थी।

एक दिन किसी गाँव से कुछ आदमी अपना इन्साफ कराने आये। उस गाँव में वे पहली बार ही आये थे और सरपंच का घर भी उन्होंने देखा न था। इसलिए गाँव के समीप पहुँचने पर उन्होंने नियत स्थान पर पहुँचने संबंधी पूछताछ आरम्भ की।

एक खेत में चार हलवाहे खेत जोत रहे थे। उनसे उन्होंने पूछा। सरपंच जी का घर बताएँ और उनके कुशल समाचार बताएँ। हलवाहों ने उत्तर दिया—"घर तो सामने ही है, पर वे कुछ सुनते-समझते नहीं।" आगन्तुक असमंजस में पड़ गये कि यदि सुनते-समझते ही नहीं, तो समस्या का समाधान कैसे करेंगे ? फिर भी उन्होंने उनके पास तक चलना ही ठीक समझा।

आगे चलने पर एक कुएँ पर चार महिलाएँ पानी भरती मिलीं। उनसे सरपंच जी के बारे में कुछ पूछा। उन्होंने कहा—"उनको कुछ दीखता-भालता तो है ही नहीं। आप व्यर्थ जा रहे हैं।

तो भी इस कौतूहल के रहते वे सरपंच के घर जाने से रुके नहीं। जब मकान समीप आ गया तो दरवाजे पर एक बुढ़िया बैठी मिली। उससे पूछा—"सरपंच जी का घर यही है ?" उसने तपाक् से कहा—"वह तो मर गए, जाकर क्या करोगे ?" आगन्तुकों का आश्चर्य और भी बढ़ा। पर वे आगे ही बढ़े।

सरपंच अच्छे-खासे अपने तख्त पर बैठे थे। आगन्तुकों से कुशल समाचार पूछे। सत्कार किया और आने का कारण बताने को कहा।

आगन्तुकों ने अपनी बात कहने से पहले उनके संबंध में जो कहा गया उसका ब्यौरा बताया और पूछा कि लोग आपके बारे में ऐसी बातें क्यों कहते हैं ?

सरपंच ने कहा—"मेरी बड़ी गृहस्थी है। उसमें अनेक प्रकृति के सदस्य हैं। सभी अपनी माँगें बढ़-चढ़ कर रखते हैं। न परामर्श मानते हैं न अनुशासन। ऐसी दशा में उनका रुष्ट होना स्वाभाविक है।"

चार हलवाहे मेरे चार बेटे हैं। काम करने से जी चुराते हैं और लड़ते-झगड़ते हैं। कुएँ पर जो चार महिलाएँ मिली थीं, वे चारों बेटों की बहुएँ हैं—अपने-अपने जेवर, कपड़े के लिए, मैके जाने के लिए रोज तकरार करती रहती हैं। मैं उनकी बातों पर ध्यान न देकर टालता रहा हूँ। बुढ़िया जो दरवाजे पर बैठी थी, मेरी पत्नी है। आये दिन तीर्थयात्रा पर चलने और घर के झंझट छोड़ने की बात कहती है, उससे भी मेरा सहमत होना कठिन है।

आगन्तुकों ने समझा कि समस्या सभी के घरों में हैं, पर उनका समाधान आवेश में आकर तत्काल करने की बात नहीं सोची जा सकती। सहनशीलता, दूरदर्शिता और धैर्य रखकर ही उन्हें समयानुसार पूरा किया जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तथ्य को समझ लेने के बाद आगन्तुकों का भी समाधान हो गया। उन्होंने भी अपनी घरेलू समस्याएँ इसी आधार पर हल करने का निश्चय किया।

गरीबी—ईमानदारी को डिगा नहीं सकती

"भाई ! तुम समय नहीं देखते ? इस जमाने में इतनी ईमानदारी बरतने से जीवन बसर होने का नहीं। तुमने न तो किसी की चोरी की है और न किसी से छीना-झपटी ही की है। इतने आदमी तुम्हारे ताँगे में बैठे थे। न जाने किसका यह थैला छूट गया है। तुम किस-किसको और कहाँ-कहाँ खोजते फिरोगे ? हमारी बात मानो। इसे घर ले जाओ और इसमें जो कुछ भी हो उसे ईश्वर का दिया हुआ समझकर अपने उपयोग में लाओ"—ऐसा रघुवर को उसके साथी ने कहा।

"भाई ! आप तो हमारे लाभ और भलाई के लिए ही ऐसा सुझाव दे रहे हैं, परन्तु यह मेरी समझ में नहीं बैठ रहा है। जब थैले के ऊपर उस व्यक्ति का नाम और पता साफ-साफ लिखा हुआ है और ट्रेन पकड़ने की जल्दी में उससे ऐसी भूल हो गई तो क्या इसी को मैं ईश्वर का दिया हुआ धन मान लूँ ? इतनी जल्दबाजी में भूल हो जाना हर एक के लिए सम्भव हो सकता है। फिर मैं कैसे इस धन को अपना मानूँ ? यदि इसका पता ठिकाना न होता तब तो कठिन-सी बात होती परन्तु यदि थोड़ा परिश्रम किया जाय तो उसके पास तक पहुँचाया जा सकता है।" ऐसा रघुवर ने अपने साथी से विचार प्रगट किया।

इस प्रकार की बातें सुनते ही साथी मानो झल्ला उठा और बोला—"लगता है तूने ही सारी ईमानदारी का ठेका ले रखा है ? बात जो मैं बतलाता हूँ वह समझ में नहीं आती और दुनिया भर की आदर्शवादिता बघारने चला है। रोज ही तो देखता हूँ कि पैसे-पैसे के लिए इधर से उधर मारे-मारे फिरते हो ! सुबह से लेकर शाम तक इस बूढ़े टट्टू को टिकटिकाते हुए दम फूल जाता है, तो शाम को किसी तरह से भोजन भर को पाते हो। यदि ऐसा नहीं चाहता तो क्या इस जाड़े में एक अच्छा-सा कुर्ता ही नहीं बनवा लेते जिससे कम से कम सर्दी से तो रक्षा होती रहती। पत्नी पहले ही से बीमार है। बच्चों को भी देखता हूँ तो उनके शरीर पर भी वस्त्र नहीं हैं और तुझे भी किसी दिन-ठण्ड लग जावेगी बस काम बन ही जावेगा। ऐसा भी तो नहीं कि किसी दिन बीमार पड़ जाओ तो पहले से रखी कमाई तुम्हारे काम आ जाय और फिर तुम रखोगे ही कहाँ से ? एक ताँगे के सहारे तुम दोनों और चार बच्चों का भरण-पोषण होता रहे, यही क्या कम है ? तुम मेरी बात अब भी मान जाओ और इसे घर ले जाओ। यदि बात समझ में नहीं आती तो मुझे ही दे दो। यदि तुम्हें इसकी आवश्यकता नहीं है, तो मुझे तो है ही।"

रघुवर हँसता भर रहा और बोला—"मित्र, यदि इन पैसों से ही मेरी जिन्दगी कट जाय और सारे कष्ट दूर हो जाएँ, तो तुम्हारी ही तरह सोचने की भी कोशिश करूँ। पर देखता हूँ कठिनाईयाँ तो सहने और सामना करने से ही दूर होती हैं। अपने ही पसीने की कमाई से नाव पार लगती है। अनीति का पैसा मन का धन है। वह जैसा आता है वैसा ही चला भी जाता है। फिर सोचो तो जिसका पैसा था न जाने उसने किस काम के लिए—किस प्रकार—किससे प्राप्त किया होगा ? और उसके खो जाने से उस पर क्या बीतेगी, यदि ऐसी ही चोट हम पर पड़ती तो कैसे-कैसे तिलमिलाते और कैसे दुःखी होते ऐसा ही दूसरों के बारे में भी सोचना उचित है ?"

रघुवर ने अपना ताँगा अलीगढ़ रेलवे स्टेशन से फिर चौक के उस स्थान को मोड़ा, जहाँ से उसे बिठाया था। वहाँ पहुँचने पर पता लगाने लगा। अन्त में पता लगाते-लगाते उस व्यक्ति के पास पहुँचा जो दूर से देखते ही अपने सम्बन्धी के बैग (थैले) को पहचान गया और पता पूछने पर उसका वही नाम और पता बतलाया जो थैले पर था। पूरा विश्वास और सबूत मिल जाने पर कई आदमियों के समक्ष रघुवर ने थैला उसे वापस कर दिया। बैग भी रुद्रदत्त शर्मा का था, जो सर्वोदय प्रकाशन दिल्ली के एक प्रतिनिधि थे। उसके अन्दर देखने पर पता चला कि उसमें १५००-१५०० रुपये के दो बिअरर चैक, ८३ रुपया नकद और कुछ अन्य सामान भी था। अन्त में उन्हें सब सामान सुरक्षित वापस पहुँचा दिया गया। रघुवर की ईमानदारी देखकर सभी लोग दंग रह गये और उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। उस व्यक्ति ने इस ईमानदारी के लिए उसे २० रुपए इनाम देने चाहे परन्तु उनका पैसा उन्हें ही वापस करते हुए रघुवर बोला—"श्रीमान् जी आपके पैसे मुझे नहीं चाहिए। यदि ऐसे पैसे की आवश्यकता होती तो मुझे यह सम्पत्ति वापस करने की आवश्यकता ही क्या थी ? मुझे तो अपने परिश्रम की कमाई ही मीठी लगती है और फिर मैंने कौन ऐसा काम ही किया है जिसके लिए यह इनाम लूँ। यह तो मेरा सहज धर्म और कर्तव्य था। यदि इसके लिए भी इनाम लूँ तो यह मेरे लिए शोभा नहीं देता" यह कहते हुए अपना ताँगा आगे बढ़ाया।

आज शाम को जब वह घर वापस लौटा तो बहुत कम पैसे कमा सका था फिर भी उसकी अन्तरात्मा में काफी शान्ति और प्रसन्नता थी। लगता था अन्दर से कोई कह रहा हो, "रघुवर ! तू गरीब होकर भी अनेक धनियों से धनी है और तुझे वह सुख और शान्ति प्राप्त है, जो रुपये-पैसे के बदौलत किसी कीमत पर भी प्राप्त नहीं होती।"

वनपरी की प्रतिध्वनि

उस दिन लड़के के मन में घर से उच्चाटन हुआ अतः जंगल में निकल गया। कुछ समय तो सुहावने दृश्य बहुत भले लगे पर पीछे उसे एकाकीपन खलने लगा और किसी अज्ञात आपत्ति भय से उसका मन शंकाकुल हो उठा।

आशंका उठने की देर थी कि झाड़ी के पत्ते खड़-खड़ाये, उसे नानी द्वारा सुनाई गई वनपरी की कहानी याद आ गई। हो न हो झाड़ी में भूत ही बैठा है। लड़का जल्दी घर वापस लौटने के लिए तेजी से चलने लगा। उसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्पष्ट सुनाई दे रहा था कि कोई पैर पर पैर रखता हुआ पीछे-पीछे बढ़ता चला आ रहा है। पीछे मुड़कर देखा तो चमकते चाँद के कारण उत्पन्न हुई अपनी ही परछाई वनपरी की प्रतिमा बनकर अपना रूप प्रकट करने लगी।

लड़के को भरोसा हो गया कि वनपरी ही पीछा कर रही है। दिल जोर से धड़कने लगा तो पूरा साहस समेटकर वह जोर से चिल्लाया—"कौन है अपना नाम बता ?" ठीक उन्हीं शब्दों में वन पर्वतों से टकराती हुई आवाज गूँजी—"कौन है अपना नाम बता ?" लड़का बेतरह डर गया। अब की बार उसने पूरी हिम्मत समेटी और प्रति पक्षी को ललकारा—"खबरदार-दौड़ना मत"। चौगुने स्वर से प्रतिध्वनि गूँजी—"खबरदार—दौड़ना मत।"

लड़का थर-थर काँपने लगा और मुट्ठी बाँधकर घर की ओर भागा। बड़ी कठिनाई से घर तक पहुँचा और जाते-जाते बेहोश हो गया। रह-रहकर वनपरी-वनपरी चिल्लाता था।

माँ ने शान्तिपूर्वक उसकी बात सुनी और समझाया बेटा, वह वनपरी अपनी ही कुल देवी है। वह हम लोगों की हानि नहीं सहायता करती है।

कई दिन में लड़के का डर दूर हुआ, तब उसने सुनसान जंगल में रहने वाली कुलदेवी वनपरी के बारे में अधिक जानकारी देने के लिए माता से आग्रह किया।

माँ ने फिर वनपरी की बहुत बड़ाई की और कहा आज फिर उसी जंगल में जा और जोर से पुकारना—स्नेह और सहायता का उपहार स्वीकार करो।

लड़का हिम्मत बाँधकर फिर गया और उसने माँ के बताये शब्द बार-बार स्थान-स्थान पर दुहराए। वनपरी ने ठीक उन्हीं शब्दों में दूने चौगुने उद्घोष के साथ दुहराया—स्नेह और सहायता का उपहार स्वीकार करो।

लड़का बहुत प्रसन्न था। माँ से चिपट गया और बोला—"माँ उस भली वनपरी का नाम तो बताओ जो मुझे इस प्रकार दुलारती और सहायता का आश्वासन देती है।"

माँ ने गम्भीर स्वर में कहा—"बेटा उसका नाम है—'प्रतिध्वनि'। पर उसमें एक ही कमी है वह हमें देख अपना रुख बदल लेती है। कभी वह बहुत डरावनी लगती है और कभी बहुत सुहावनी।"

दयालुता का दंभ

एक पादरी ने स्कूल भी चला रखा था। वे बच्चों को रोज शिक्षा देते कि कोई दया का काम जरूर करना चाहिए। शिक्षा देते बहुत दिन हो गये तो उन्होंने सोचा लड़कों से पूछें तो, कि क्या कोई दया धर्म-पालन के लिए उत्साहित हुआ भी या नहीं ?

उस दिन पादरी पूछ ही बैठे, जिन्होंने इस महीने कुछ दया के काम किये हों वे हाथ उठाएँ।

तीन लड़कों ने हाथ उठाये। पादरी ने उन्हें पास बुलाया और प्यार से पूछा बच्चो, बताओ तो तुमने भला क्या-क्या दयालुता के काम किये ?

पहले लड़के ने कहा—"एक जर्जर बुढ़िया को मैंने हाथ पकड़कर सड़क पार कराई।" पादरी ने उसकी प्रशंसा की।

दूसरे से पूछा गया तो उसने भी—"एक बुढ़िया को हाथ पकड़कर सड़क पार कराने की बात कही।" पादरी ने उसे भी शाबासी दी।

तीसरे ने भी जब वही बुढ़िया का हाथ पकड़कर सड़क पार कराने वाली बात कही तो पादरी को सन्देह भी हुआ और आश्चर्य भी। उन्होंने पूछा बच्चो कहीं तुमने एक ही बुढ़िया का हाथ पकड़कर तो सड़क पार नहीं कराई थी।

बच्चों ने एक स्वर से कहा हाँ हाँ, बिल्कुल ऐसा ही किया गया था। अब तो पादरी का आश्चर्य और भी अधिक बढ़ा। उन्होंने फिर पूछा भला, एक ही बुढ़िया को पार कराने के लिए तुम तीनों को क्यों जाना पड़ा ?

लड़कों ने कहा—"हमने उसे कहा था—हमें दया धर्म का पालन करना है, चलो तुम्हें हाथ पकड़कर सड़क पार करायेंगे बुढ़िया रजामन्द नहीं हुई। उसने कहा मुझे जहाँ जाना है वह पटरी के इसी किनारे पर है। सड़क पार करने की मुझे तनिक भी आवश्यकता नहीं है। इस पर हम तीनों चिपट गये और उसके हाथ पकड़कर घसीटते ले गये और सड़क पार कराके ही माने।"

पादरी लड़कों द्वारा आत्मश्लाघा के लिए किए गये इस धृष्ट परोपकार से बड़ा दुःखी हुआ। वे कुछ देर मुँह लटकाये बैठे रहे पर फिर यह सोच कर शान्त हो गये कि दुनिया में लोक सेवा के नाम पर यही विडंबना तो चल रही है, अकेले बच्चे ही तो गुनहगार नहीं हैं।

जन्मा उस दिन, एक देवमानव !

नदी घड़ियालों से भरी थी, आकाश मच्छरों से, तटीय प्रदेश लम्बी घासों से, जिनमें विषैले सर्पों की गणना नहीं। वन में शेर, तेंदुएँ, चीते। पेड़ों पर भी शरण लेना मुश्किल था। वहाँ भी साँप और तेंदुएँ छलाँग लगा सकते थे।

उसने सोचा भी नहीं था कि जर्मनी के इस इलाके में उसे रात बितानी पड़ेगी। सूरज डूबने के पहले वे लौट जाएँगे ऐसा उसका विचार था। लेकिन सूरज कब के पश्चिम में पहुँच चुके और अभी पता नहीं वह कहाँ है ? कितनी दूर है यहाँ से उसका शिविर ?

किसी भी नक्शे में इधर की नदी के मोड़ों एवं उसकी धाराओं का स्पष्ट अंकन नहीं है। दलदल से भरे इस इलाके में आने का साहस कितनों को है। जब सुबह वह चला था, सबने रोका था उसे। एक अनजाने प्रदेश में केवल अनुमान के भरोसे जाना ठीक नहीं, यह चेतावनी उसे न जाने कितनी बार मिली थी, पर वह शिकारी कैसा जो डर जाए ?

सिर्फ एक मल्लाह तैयार हुआ था साथ चलने को, वह मल्लाह इस ओर एक बार आ चुका था। आया वह भी था दुर्घटनावश ही, लेकिन रास्ता उसने देख लिया था। अन्य लोगों में सब हतोत्साह करने वाले ही थे।

"नदी की कई धाराएँ हैं मुख्य धारा से चले तो दोपहर तक सागर के समीप जा पहुँचेगें और जब समुद्र में ज्वार आएगा, नौका अपने आप ऊपर बह निकलेगी। हम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दोनों शाम तक यहीं आ जाएँगे।" चलते समय मल्लाह ने बताया था।

'शिकार के लिए मगर, शेर और दूसरे जानवर आसानी से मिल जाएँगे।" यह बात पक्की थी—नदी की इस धारा का नक्शा ठीक बनाया जा सकेगा। यही बड़ा प्रलोभन था, क्योंकि वह वन-विभाग का अधिकारी भी तो है। देश को ठीक मानचित्र देना उसके कर्तव्य में आता है।

इस ओर उसका पड़ाव आया था सात दिन पहले। वन का सर्वेक्षण चल रहा है। साथ में डाक्टर है, दूसरे और कर्मचारी हैं, हेलीकॉटर यान भी है। दलदलीय इलाके में सर्वेक्षण का काम आकाश से ही करना पड़ता है। किन्तु इधर वन बहुत सघन हैं। पानी में भी सब जगह ऊँची घास खड़ी है। आकाश से नदी की धारा का पता ही नहीं लगता। ये सब तमाम कारण और शिकार का प्रलोभन उसे इधर खींच लाए। वह नदी के मार्ग का अंकन करने वाला माना जाएगा यह कम प्रतिष्ठा की बात नहीं थी।

एक की जगह दो छोटी नावें पसन्द कीं उसने। दोनों में पीने का पानी, दोपहर का भोजन, दूरबीन तथा अन्य जरूरी सामान, लेकिन प्रस्थान करने के दो-ढाई घण्टे बाद ही दोनों ने समझ लिया कि उनके सब अनुमान ठीक नहीं हैं। नदी में मोड़ बहुत थे अनुमान से सोलह मोड़। धूप में तेजी आयी तो लगा शरीर का चमड़ा जैसे भस्म हो जाएगा। दोनों नावें एक में बाँध दी गईं और उन्होंने बारी-बारी खेना प्रारम्भ किया।

मच्छरों का आक्रमण चल रहा था। उनसे बचना कठिन था। घड़ियाल मिले अच्छे बड़े भी मिले। लेकिन मल्लाह ने सलाह दी अभी कारतूस उपयोग में न लाएँ। पता नहीं कब कैसी परिस्थिति आ पड़े ? अब उसे भी अपने मार्ग-ज्ञान पर भरोसा नहीं रह गया था। उसे जो कुछ स्मरण था वह बहुत धुँधला और अपूर्ण था। नदी आगे चलकर दो धाराओं में बँट गई थी और उसे यह मालूम नहीं था कि उनमें मुख्य धारा कौन-सी है ?

"तुम एक धारा से जाओ और मैं दूसरी से।" अन्त में उन्होंने निर्णय किया—"नदी की दोनों धाराएँ जरूर आगे मिल गई होंगी। हर दशा में हम तीसरे प्रहर लौट पड़ेंगे और यहाँ आकर दूसरे साथी की प्रतीक्षा करेंगे।" दोनों नावें अलग-अलग चल पड़ीं। अब न मच्छरों को भगाने का अवकाश था और न हाथों को नौका खेने से विश्राम मिलता था। नदी से घास के सड़ने की गन्ध आ रही थी। ऊँची घास को चीरते हुए नौका को मार्ग बनाना था। साथ का भोजन समाप्त हो गया और पानी भी। दोपहर ढलने लगी थी। प्रत्येक मोड़ पर लगता था कि अब आगे दूसरी धारा आ मिलेगी, किन्तु मोड़ बीतते ही दूसरा मोड़ दीखने लगता।

संयोग से किनारे पर सूखी भूमि दिखाई पड़ी। कुछ फल के पेड़ भी थे। पके मधुर फलों ने उदर की ज्वाला भड़का दी। उसने नौका तट से बाँधी एक घास के झुरमुट से, और कूद पड़ा। राइफल भूमि में पटक दी वृक्ष पर चढ़ते समय। बड़े स्वादिष्ट फल भर पेट खाया। शाखा पर बैठकर शरीर को विश्राम दिया किन्तु जब उतरने की इच्छा की 'अरे' वह चौंक पड़ा।

नीचे राइफल की नाल पर सूर्य की किरणें चमक रही थीं और एक कद्दावर शेर उस पर पंजे रखकर गुर्रा रहा था। वह राइफल के सर्वेक्षण में लगा था। पेड़ पर भी कोई इस ओर उसका ध्यान नहीं था।

'अब क्या हो ?' उसे लगा कि शरीर का सारा खून जम रहा है। विपत्ति अकेले नहीं आती। तट की ओर नजर गई तो नौका नदारद। नदी का पानी अब पूरे वेग से नीचे बह रहा था। समुद्र में सम्भवतः भाटा आ चुका था। नदी उतर रही थी। पानी में प्रवाह आने के कारण नाव-नीचे बह गई थी। घास उसे रोकने में समर्थ नहीं हुई थी। आज जीवन में शायद पहली बार उसका साहस टूटा रहा था। जिस "ईश्वर" की वह हमेशा खिल्ली उड़ाया करता था—आज मन के किसी कोने में उसकी याद उभरने लगी थी।

अपनी असहायता को अनुभव कर वह चीख पड़ा। शेर गुर्राया चीख सुनकर। उसने सिर उठाकर ऊपर देखा और उठ खड़ा हुआ। पता नहीं क्या सोचा उसने, किन्तु धीरपदों से वन में चला गया। उसकी जान में जान आई। वह उतरा वृक्ष से। नदी के किनारे-किनारे नौका ढूँढ़ने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं था। यही एक आशा थी कदाचित कहीं घास में या मोड़ पर वह अटक उलझ जाय।

कितनी दूर गया वह, स्वयं उसे पता नहीं। दिन छिपने को आ गया। नाव का पता न मिलना था, न मिला। अब अँधेरा होने से पहले उसे कोई ठीक स्थान रात बिताने के लिए ढूँढ़ लेना चाहिए। समुद्र में ज्वार आएगा—तब नाव स्वतः ऊपर लौट जाएगी यही आशा थी।

उसने लकड़ियाँ जमा कीं। अँधेरा होने से पहले आग जला ली। अब आग के सहारे रात-बिता सकता है। लेकिन सूर्यास्त के बाद बादल छा गए। अँधेरा इतना घना कि अपना हाथ भी दिखाई न दे। अग्नि में बार-बार लकड़ियाँ डालता रहा। उसे लगा कि लकड़ियाँ थोड़ी हैं। आधी रात तक भी आग जल नहीं सकेगी। अग्नि के प्रकाश में उसने नजर दौड़ाई तो नदी के समीप एक बड़ा कुन्दा दीख पड़ा। वह गया और घसीटते हुए काले कुन्दे को ले ही आता पर कुन्दा उसके पास पहुँचने से पहले ही पानी में सरक गया। 'घड़ियाल' काँप गया उसका शरीर। आग स्वतः बुझने वाली थी। बरसात ऊपर से शुरू हो गई। राइफल का सहारा लिए वह वृक्ष के तने के समीप खड़ा हो गया। कुछ सोच पाता इसके पहले कोई भारी वनपशु और नदी में भारी ध्वनि हुई। तेंदुआ और घड़ियाल मौत ने अब झपट्टा मार दिया था उस पर। एक कड़ा झटका पीठ पर लगा और राइफल हाथ से छूटकर पानी में छपाक करती गिरी।

"हे ईश्वर।" प्राण जाते समय प्राणी के कण्ठ से जो आर्तनाद फूटता है बिना अनुभव के कोई उस स्वर को समझ नहीं सकता। कोई आशा, कोई युक्ति कोई बल नहीं रह जाता दिखाई देता है मौत का कराल जबड़ा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धन्यभाग्य वह जो उस परम सहायक को पुकार सके। आज उसमें पहली बार प्रार्थना के स्वर फूटे थे। जगा था एक अनोखा विश्वास।

सर्वेश्वर से प्रार्थना करने वाले को निराश नहीं होना पड़ता। पर प्रार्थना शब्द नहीं है वह भाव है—समूचे अस्तित्व का सार जो विश्वास बनकर उमड़ पड़ता है। सहसा आकाश की घटा में चन्द्रमा की किरणें निकल पड़ीं। उसने उस ज्योत्सनाधौत जल में जो कुछ देखा—अद्भुत, रोमांचकारी और चकित कर देना वाला दृश्य था वह। उसके ठीक पीछे तेंदुआ कूदा था और अब उससे घड़ियाल का युद्ध चल रहा था। सम्भवतः घड़ियाल ने जब स्वयं उसका पैर पकड़ना चाहा तेंदुआ वृक्ष पर से कूदा। घड़ियाल के मुख में तेंदुए का पैर आ गया था। घड़ियाल उसे खींच रहा था और एक पैर जल में डूबे किसी वृक्ष की जड़ में अड़ाए तेंदुआ दूसरे पैर का पंजा घड़ियाल पर फटकारे जा रहा था। घड़ियाल पूँछ फटकार रहा था, जिससे तेंदुआ उसे मुख पर न मार सके और इस युद्ध में उछलते छींटें समीप खड़े उसे भिगो रहे थे।

उसने झुककर पानी में से अपनी राइफल उठाई। कण्ठ से फिर निकला दयामय प्रभु ! और सिर उठाया तो दिखाई दिया कि एक काली लम्बी वस्तु नीचे से ऊपर नदी में ज्वार के वेग में बहती चली आ रही है। दो क्षण में स्पष्ट हो गया कि वह उसकी नौका है।

शब्द तो नहीं थे, इन क्षणों में उसके समूचे अस्तित्व से प्रार्थना झर रही थी। कब वह नाव को चलाते हुए वहाँ पहुँच गया, जहाँ मल्लाह उसकी प्रतीक्षा कर रहा था—उसे तो पता भी नहीं चलता। लेकिन "जार्ज साहब" मल्लाह के इन शब्दों ने उसे चौंकाया। उसने मल्लाह की ओर देखा वह कहे जा रहा था मैं सायंकाल यहाँ पहुँचा था। मल्लाह ठीक वहीं था जहाँ से वे पृथक् हुए थे। नदी की मुख्य धारा वह है जिससे आप गए थे, किन्तु यह शाखा छोटी है। ज्वार ने मुझे जब यहाँ पहुँचाया अँधेरा घिर आया था। किसी प्रकार मैं रस्सी वृक्ष में उलझाकर यहाँ रात भर टिका रहा।

और मैं। कौन-सा मैं ? जैसे उन्होंने स्वयं से प्रश्न किया। कल वाला जार्ज मूलर तो मर गया जो नास्तिक था, अविश्वासी था। उस रूप वाले मेरे सारे विचार, इच्छाएँ, स्वीकृति, सम्बन्ध आदि प्राणहीन हो गए। नाविक उनकी ओर आश्चर्य से देखे जा रहा था। बार-बार पूछने पर उन्होंने रात्रि की सारी घटना कह सुनाई। वह भी श्रद्धानत था। बता रहे थे नदी के रास्ते की खोज और मेरी रक्षा उसने की, जो सदा से असहायों की रक्षा करता आया है। जब मेरा बल थक गया, शस्त्र गिर गया वह दयाधाम आ पहुँचा। अरुणोदय का प्रकाश समूची सृष्टि को स्वर्णिम बनाने लगा था—उस दिन से इन नए जार्ज मूलर ने यूरोप और अमेरिका में घूम-घूमकर प्रार्थना का प्रचार करना शुरू किया। उनका सारा जीवन भगवतमय और दिव्य हो उठा। प्रार्थना मनुष्य को देवता बना देती है। उनके कथन का प्रमाण उनका जीवन था लोग उन्हें 'प्रार्थना मानव' के नाम से जानने लगे।

पैदल चलने का इलाज

अरब में एक पहुँचे हुए फकीर रहते थे—नाम था अल्लामा इंशा। प्रख्यात था कि उनके इलाज से कठिन रोगों के रोगी अच्छे हो जाते हैं।

बगदाद के एक सरदार सिर दर्द की बीमारी से बहुत दुःखी थे। उन्हें चारपाई पर छट-पटाते हुए ही दिन गुजारना पड़ता था। बहुत इलाज कराने पर भी जब कोई लाभ न हुआ तो लोगों ने उसे अल्लामा इंशा की ही दवा लेने के लिए कहा।

सामन्त ने अपने गुमाश्ते बढ़िया सवारी लेकर फकीर के पास भेजे और प्रारम्भिक भेंट धन देने के अतिरिक्त इलाज का भारी इनाम मिलने का भी सन्देश भिजवाया।

गुमाश्ते नियत स्थान पर पहुँचे। वहाँ एक हृष्ट-पुष्ट ऊँट चराने वाले के अतिरिक्त और कोई दिखाई न पड़ा। उन्होंने उसी से सन्त अल्लामा का पता पूछा। ऊँट चराने वाले ने कहा—"मैं ही वह फकीर हूँ।" इस पर उन्हें बहुत अचम्भा हुआ। इतना बड़ा सन्त और चिकित्सक ऊँट चराने जैसा काम करे, इस जिज्ञासा को उन्होंने प्रस्तुत किया तो अल्लामा ने इतना ही कहा—"मैं पैदल चलने को शरीर और मन की श्रेष्ठ साधना के रूप में ही अपनाये हुए हूँ।"

सरदार के इलाज के लिए चलने का अनुरोध जब गुमाश्तों ने किया तो उन्होंने इतना ही उत्तर दिया। मैं किसी मरीज के घर में नहीं जाता। उन्हें ही मेरे यहाँ पैदल चलकर आना पड़ता है। दूत निराश होकर वापस लौट गये।

सरदार के पास जब कोई और चारा न रहा तो उसने पैदल चलकर फकीर तक पहुँचने का निश्चय किया और कई हफ्तों में उतनी दूर की मंजिल पार करके चिकित्सक तक पहुँचा।

अल्लामा ने मरीज को भली प्रकार देखा परखा और उसे एक कीमती दवा की पुड़िया देते हुए कहा इसकी एक-सौ खुराकों का प्रयोग करने पर आपका मर्ज जरूर अच्छा हो जायगा। उस दवा के प्रयोग की विधि यह बताई कि जब माथे पर पसीना आवे तब एक पुड़िया खोलकर उसे सिर पर मल लिया जाए।

निर्देश के अनुसार सरदार को वापस भी पैदल ही लौटना पड़ा। पसीना सिर पर निकले इसका एक ही उपाय था तेज चाल से यात्रा करना। उसने वही किया घर लौटने में उसे बीस दिन लगे। जब तक सिर पर पसीना न निकलता तब तक उसे चलते ही रहना पड़ता। आखिर दवा का प्रयोग तो तभी होना था जब सिर पर पसीना निकले।

घर लौटने तक सरदार का सिर दर्द पूरी तरह अच्छा हो गया। बची हुई दवा का क्या किया जाय ? इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने के लिए उसने गुमाश्ते फिर सन्त के पास भेजे। अल्लामा ने हँसते हुए कहा—"वह दवा मामूली मिट्टी भर थी उसे फेंक दिया जा सकता है। असली इलाज तो लम्बा पैदल सफर करना और उसी तरह वापस लौटना था।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org

www.vicharkrantibooks.org

फकीर ने गुमाश्तों को पैदल चलने के लाभ समझाये और कहा अपने सरदार तथा उनके साथियों से कहना—"पैदल चलने की आदत छोड़ देने से ही लोग मरीज बनते हैं, यदि उन्हें अपना शरीर और मन निरोग रखना है तो मेरी ही तरह पैदल चलने की आदत डालें और सदा के लिए निरोग रहने का लाभ उठाएँ।"

गरीबों का हक

अरब देश में एक समय 'नबोर' नाम का गरीब व्यक्ति रहता था। गरीब होने पर भी उसमें दया, क्षमा, प्रेम आदि सद्गुण कूटकर भरे हुए थे। उसके पास एक बढ़िया घोड़ा था। वैसे भी अरब देश घोड़ों के लिए प्रसिद्ध हैं। उसके घोड़े की किस्म का घोड़ा दूर-दूर तक नहीं मिल सकता था।

दहेर नाम का एक दूसरा व्यक्ति भी उसी नगर में रहता था। यह बड़ा चालाक और धूर्त था। नबोर के बढ़िया घोड़े को देखकर इसकी नीयत खराब हो गई। दहेर अमीर भी था।

दहेर ने पहले तो घोड़े की कीमत खूब लगाई और मोल लेना चाहा किन्तु नबोर ने अपना घोड़ा नहीं बेचा। बेचता कैसे उसे तो वह अपने घर का सदस्य ही मानता था। वह इस लालच में नहीं आया। दहेर ने कई तरह से प्रयत्न किया। कई बार नबोर को धमकाया। किन्तु नबोर अपने घोड़े को देने के लिए तैयार न हुआ।

दहेर ने अन्त में एक युक्ति सोची जब किसी चीज पर मनुष्य की नीयत खराब हो जाती है, तो वह जैसे-कैसे बन पड़े उसे हड़पने का प्रयत्न करने लगता है। ठीक इसी तरह दहेर ने भी किया। उसने एक चालाकी की। नबोर प्रातःकाल अँधेरे में जिस रास्ते से जाया करता था, वहाँ एक परदेशी का रूप बनाकर पड़ गया। बीमारी का बहाना बनाकर धीरे-धीरे कराहने लगा।

नबोर बहुत ही दयालु प्रकृति का व्यक्ति था। रोजाना की तरह वह जल्दी ही सबेरे जबकि थोड़ा-थोड़ा अँधेरा फैला हुआ था उस रास्ते से अपने घोड़े पर बैठकर गुजरा।

दहेर कुछ समय पहले से ही उस रास्ते पर पड़ा हुआ बीमारी का बहाना बनाकर कराह रहा था। नबोर के पास में आते ही उसने दर्द भरे हुए बीमार का स्वर बनाकर कहा—"ओ ! भाई घुड़सवार मैं परदेशी हूँ। बीमारी के कारण मुझसे उठा भी नहीं जाता। जरा मेहरबानी करके मुझे पास के शहर तक पहुँचा दो। खुदा तुम्हारा भला करे।"

नबोर का दयालु हृदय उसकी स्थिति को सुनकर पिघल गया। वह झट से घोड़े से उतर गया और बीमार के पास आकर खड़ा हो गया। कुछ अँधेरा होने के कारण उसे पहचान तो सका नहीं और उसे उठाकर घोड़े पर बिठा दिया। स्वयं पैदल चलने लगा। नबोर उस बीमार की दयनीय स्थिति पर तरह-तरह के विचार करता जा रहा था कि इतने में उक्त बीमार ने घोड़े को जोर से ऐड़ लगाई। घोड़ा भी हवा से बातें करने लगा।

नबोर ने छद्म वेशधारी दहेर को अब पहचान लिया। उसकी आँखें खुल गईं। उसने सोच लिया कि चालाक दहेर ने उसे धोखा दिया है। फिर भी उसके हृदय में कोई प्रतिहिंसा की बात नहीं थी क्योंकि वह तो दयालुता और क्षमा से ओत-प्रोत था।

नबोर ने चिल्लाकर घोड़ा ले जाते हुए दहेर से कहा "भाई घोड़ा तो तुम्हारे हाथों आ ही गया, पर मेरी भी एक बात तो सुन लो।"

कुछ दूरी पर दहेर ने घोड़ा खड़ा किया और कहा, "जो कुछ कहना है जल्दी कहो।"

"देखो भाई ! घोड़ा तो तुमने ले ही लिया किन्तु इस बात का किसी से जिक्र मत करना कि तुमने मेरा घोड़ा इस प्रकार के छल से लिया है क्योंकि लोगों को ऐसा मालूम हो जाने पर वे भविष्य में गरीबों, बीमारों, पीड़ितों, अभावग्रस्तों को चालाक, धोखेबाज समझेंगे। इन बेचारों की आवश्यकता पड़ने पर कोई सहायता नहीं करेगा और ये अधिक दुःख उठायेंगे इनका हक छिन जायगा।" नबोर ने शान्त होकर नम्र और करुणाजनक शब्दों में कहा।

इन शब्दों को सुनते ही दहेर का अन्तःकरण पिघल गया। नबोर की इस आत्मीयता, क्षमा, दयालुता से उसके भाव बदल गये, वह मन ही मन पछताने लगा। उसने नबोर से कहा "भाई ! जिससे गरीबों का हक छिनता हो," मैं वह कार्य नहीं करूँगा।" घोड़े की जीन से उतर- कर उसने कहा यह है तुम्हारा घोड़ा, लो।

दहेर, नबोर के पैरों पर पड़ गया और कहने लगा "भाई ! आज से तुम मेरे गुरु हो, मुझे आपने आज सचेत कर दिया है। आपने मुझे गलत मार्ग से बचा लिया है। आज मैं अच्छी तरह समझ गया हूँ कि दूसरे की वस्तु लेना बुरी बात है। उस पर गरीब और असहाय, पीड़ितों, बीमार आदि के नाम पर और भी बुरा है। इससे इस श्रेणी के लोगों पर लोग सन्देह करने लगते हैं और उनका हक छिन जाता है।"

नबोर ने दहेर को उठाकर छाती से लगा लिया। उसको अपना घोड़ा इस विचार परिवर्तन के लिए पुरस्कार रूप में दे दिया।

संग्रह से क्या लाभ

वैष्णव भक्त कुम्भनदास जी एक जल भरे कटोरे में अपना प्रतिबिम्ब देखकर तिलक लगा रहे थे, तभी महाराजा मानसिंह उनके दर्शनार्थ आ उपस्थित हुए। मानसिंह ने यह देखा तो सेवक को भेजकर महल से रत्न जटित दर्पण मँगवाया और भक्तराज को देते हुए बोले—"यह तुच्छ भेंट स्वीकारिये और अपनी आवश्यकता की वस्तुओं की सूची दे दीजिये, आपके पास पहुँचती रहेंगी।"

कुम्भनदास जी बोले—"आप निश्चिन्त रहिये मुझे किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। घर परिवार और शरीर की आवश्यकता खेती माता पूरी कर देती है और ईश्वर का भजन करने के सब साधन मेरे पास हैं अब और वस्तुएँ संग्रह करके मैं क्या करूँ ?"

सबसे ज्यादा सुखी वह है जिसकी आवश्यकताएँ सबसे कम हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उठाकर बिठा दिया

एक किसान जो महात्मा गाँधी से बड़ा प्रभावित था, उन्हें देखने के लिए रेल से पास के नगर में जा रहा था। सोचता जा रहा था वह गाँधीजी के बारे में। उसकी कल्पना थी कि गाँधीजी बड़ी शान-शौकत वाले व्यक्ति होंगे।

रेलगाड़ी में सवार हुआ तो डिब्बे में भी भारी भीड़ थी। एक सीट पर कोई सज्जन लेटे थे—काफी थके जान पड़ते थे। किसान ने उनके पास जाकर हाथ पकड़ा और उठाते हुए बोला उठकर बैठो। ऐसे लेटे हो जैसे तुम्हारी अपनी गाड़ी हो।

वह महाशय उठकर बैठ गये। इस तरह उठाये जाने पर भी वे न तो खिन्न हुए थे और न ही उदास। बड़े मजे से खाली हुई जगह में बैठकर किसान गुनगुनाने लगा—"धन-धन गाँधी महाराज, दुःखियों का दुःख मिटाने वाले।" उधर डिब्बे के सब लोग मुसकराते रहे।

गंतव्य स्थान पर पहुँचकर रेलगाड़ी रुकी तो लोग गाँधीजी को उतारने दौड़ पड़े। बड़ा आश्चर्य हुआ और क्षोभ भी जब उसे यह पता चला कि जिस व्यक्ति को उन्होंने हाथ पकड़कर बिठा दिया था, वह गाँधीजी ही थे।

सादगी, सज्जनता और महानता के महत्वपूर्ण अंग हैं।

आधा महाभारत

महाभारत युद्ध का पहला दिन दोनों सेनाएँ संग्राम के लिए आपने-सामने जा डटीं। युद्ध शुरू होने को ही था कि युधिष्ठिर रथ से उतरकर कौरवों की सेना में घुस गये और जाकर गुरु द्रोणाचार्य, पितामह भीष्म आदि को प्रणाम किया और उनका आशीर्वाद लिया। इधर चिन्तित अर्जुन ने कृष्ण से पूछा—"भगवन् ! महाराज यह क्या कर रहे हैं ?" इस पर कृष्ण भगवान बोले—"अर्जुन ! महाराज युधिष्ठिर ने गुरुजनों के प्रति हार्दिक सम्मान व्यक्त कर आधा महाभारत जीत लिया इससे विपक्ष के श्रेष्ठ जनों की हार्दिक सद्भावना हमारे पक्ष में आ गयी उस ओर केवल उनका शारीरिक पुरुषार्थ रह गया है। आंधा शेष रहा उसे जीतने के लिए अब तुम सब युद्ध प्रारम्भ करो।"

(१) उचित सम्मान प्रदर्शित करने से लोगों का हार्दिक समर्थन सुलभ हो जाता है।

(२) गुरुजनों के प्रति सम्मान प्रकट करने से अपना नैतिक बल बढ़ता है, जो अलौकिक क्षमताएँ विकसित करता है।

कीमती हथौड़ा

एक लुहार बढ़िया हथौड़े बनाने के लिए प्रसिद्ध था। एक व्यक्ति उसके पास आया और बोला—"जैसे हथौड़े आप बनाते हैं, उससे भी अच्छा मेरे लिए बना दें, मैं उसकी अधिक कीमत देने को तैयार हूँ।" लुहार ने उत्तर दिया—"मान्यवर, मैं उससे और अच्छा हथौड़ा नहीं बना सकता। यदि बना सकता होता तो पहले ही बना दिया होता। मैं हथौड़ा उत्कृष्टता को अपनी उत्कृष्टता मानता हूँ और उसमें किसी प्रकार की कमी रहने देना पसन्द नहीं करता।"

मूल्य को देखकर नहीं अपने गौरव को देखकर काम का स्तर ऊँचा रखना चाहिए।

शरीर से दुर्गन्ध

सम्राट वृष मातंग शील साधुता में अद्वितीय थे पर उन्हें क्रोध बहुत जल्दी आता था। एक बार उनकी परिचारिका तुषार ने उसकी सेवा परिचर्या करने से इनकार कर दिया, बोली—"आपके शरीर से दुर्गन्ध आती है।" सम्राट क्षण भर को क्रोध में उबल पड़े तभी उन्हें अपने आचार्य के ये वचन याद आ गये—"प्रशंसा और निन्दा को समभाव से ग्रहण करने वाला व्यक्ति ही सच्चा योगी होता है।" अतः वे क्रोध को पी गये।

भिषगाचार्यों से दुर्गन्ध का कारण पूछा गया, शरीर परीक्षा हुई। पता चला उनके दाँत में भयंकर रोग हो गया है। यदि एक-दो दिन में चिकित्सा न हुई तो वह असाध्य हो जाएगा। चिकित्सा हुई वे स्वस्थ और दुर्गन्धरहित हो गये।

(१) अपने दोष बताने वाले से क्रुद्ध न हों, उसका कारण समझें तो अपना हित ही है।

(२) बड़ों की सीख याद रखने वाला अनर्थ से बच जाता है।

सूअर का उद्धार

कीचड़ में लोटते और गन्दगी चाटते उस सूअर को घिनौना जीवन जीते देखकर नारद जी को बड़ी दया आई, वे उसका उद्धार करने की बात सोचने लगे।

महर्षि उस वराह के पास पहुँचे और स्नेहपूर्वक बोले—"इस घिनौनी रीति से जीना गर्हित है। चलो तुम्हें स्वर्ग पहुँचा देते हैं।"

नारद जी की बात सुनकर वराह तैयार हो गया और उनके पीछे-पीछे चलने लगा।

रास्ते में उसे स्वर्ग के बारे में अधिक जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई, सो पूछ ही बैठा—"वहाँ खाने, लोटने और भोगने की क्या-क्या वस्तुएँ हैं ?"

नारदजी उसे स्वर्ग का मनोरम वर्णन विस्तारपूर्वक बताने लगे। कौतूहलपूर्वक वह उन्हें सुनता रहा। बात पूरी हो चुकी तो उसने दूनी जिज्ञासापूर्वक पूछा—"खाने के लिए गन्दगी, लोटने को कीचड़ और सहचर्या के लिए वराह-कुल है या नहीं ?"

महर्षि ने असमंजस में पड़ते हुए कहा—"मूर्ख ! इन निकम्मी चीजों की वहाँ क्या जरूरत है ? वहाँ तो देवताओं के अनुरूप वातावरण है और वैसे ही श्रेष्ठ पदार्थ सुसज्जित हैं। उन्हें पाकर के जीवधारी धन्य हो जाते हैं।"

वराह को नारदजी के उत्तर से कोई समाधान नहीं मिला। भला, मैले की टोकरी, गन्धयुक्त कीचड़ और वराह-कुल के बिना भी सुख मिल सकता है ?

सूअर ने आगे चलने से इनकार कर दिया और वह वापस लौट पड़ा।

प्राणी का आन्तरिक स्तर ऊँचा उठे बिना उसे उत्तम स्थिति का लाभ मिल सकना सम्भव नहीं हो सकता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लोहे के टोप में पानी

नादिरशाह करनाल के मैदान में मुहम्मदशाह की सेना को परास्त करके दिल्ली पहुँचे। वहाँ दोनों ही बादशाह एक ही सिंहासन पर आसीन हुये। नादिरशाह ने मुहम्मदशाह से पीने के लिए पानी माँगा और वहाँ बजने लगा नगाड़ा, जैसे किसी उत्सव की शुरूआत होने जा रही है।

दस बारह सेवक उपस्थित हो गये। किसी के हाथ में रूमाल था तो किसी के हाथ में खासदान। दो-तीन सेवक चाँदी के बड़े थाल को लेकर आगे बढ़े उसमें मानिक का कटोरा जल से भरा रखा था। ऊपर से दो सेवक कपड़े से उस परात को ढके हुये बराबर चल रहे थे। नादिर की समझ में यह नाटक न आया, यह घबरा गया माँगा पानी था और यह क्या तमाशा होने जा रहा है। उसने पूछा यह सब क्या हो रहा है ? मुहम्मदशाह ने उत्तर दिया—"आपके लिए पानी लाया जा रहा है।" नादिर ने ऐसा पानी पीने से साफ इनकार कर दिया। उसने तुरन्त अपने भिश्ती को आवाज लगाई। भिश्ती हाजिर हुआ, नादिर ने अपना लोहे का टोप उतारकर भिश्ती से पानी भरवाकर प्यास बुझाई। पानी पीने के बाद बड़े गम्भीर स्वर में कहा—"यदि हम भी तुम्हारी तरह पानी पीते तो ईरान से भारत न आ पाते।"

वीरता, विलासिता और वैभव से नहीं कठिन परिस्थितियों के अध्ययन से ही जन्मती और बढ़ती है।

वीर प्रकृति का दर्शन

दक्षिण भारत में एक छोटा-सा राज्य बल्लारी नाम का था। एक बार महाराज शिवाजी की सेना ने उस पर आक्रमण किया। बल्लारी के सैनिक जी जान से लड़े, पर अल्प-संख्या में होने के कारण उनकी पराजय हुई शेष सैनिक बन्दी कर लिये गये और उन्हीं में वहाँ की शासिका रानी मलबाई थी। शिवाजी ने उसको सम्मानपूर्वक लाने की आज्ञा दी, पर मलबाई को बन्दिनी दशा में यह सम्मान बुरा लगा और उसने शिवाजी से कहा कि—"मैं तो इस सम्मान के व्यवहार को अपमान की तरह समझती हूँ। आप मुझे एक हारे हुए शत्रु के नाते मृत्यु दण्ड दें।"

शिवाजी महाराज ने सिंहासन से उतरकर स्वयं उसका अभिवादन किया और कहा—"आप जैसी वीर रमणियों का मैं अपमान नहीं कर सकता। मेरी माता जीजाबाई का हाल ही में देहावसान हो गया है। मैं उन्हीं की वीर प्रकृति का दर्शन आपमें कर रहा हूँ और अब से मैं सदैव आपको माता के समान ही मानूँगा।" मलबाई के नेत्र स्नेहवश भर आये, उसने कहा—"तुम वास्तव में छत्रपति हो, तुमसे अवश्य ही धर्म और देश की रक्षा होगी।"

(१) सच्चा वीर विपक्ष की वीरता का भी सम्मान करता है।

(२) वीर व्यक्ति किसी की कृपा की आकांक्षा नहीं करता (मलबाई द्वारा दण्ड माँगना)।

(३) सच्ची सद्भावना विपक्षी को भी अपना बना लेती है (मलबाई द्वारा शिवाजी की सराहना)।

बीती ताहि विसार दे

छोटे भाई की कन्या का विवाह था। बड़े भाई वर्षों पहले छोटे द्वारा कहे गये कुछ अपमानजनक शब्दों को लेकर उस विवाह में सम्मिलित नहीं हो रहे थे। छोटा भाई अनुनय-विनय करके हार गया, तो किसी ने सुझाया वह बड़े भाई नित्य जिन सन्त के पास सत्संग को जाया करते थे, उनसे मिले।

सन्त ने छोटे भाई की पश्चाताप व क्षमा याचना पूर्ण बात सुनी। दूसरे दिन उन्होंने बड़े को छोटे की कन्या के विवाह में सम्मिलित होने की बात कही। बड़े ने छोटे के पूर्वाचरण की बात कहते हुए मना किया। इस पर सन्त ने पूछा—

"बताओ गत रविवार को मैंने क्या प्रवचन दिया था ?"

"याद नहीं पड़ता महाराज !"

"प्रयास करो !"

"प्रयास करने पर भी ठीक से याद नहीं आता।"

"तो वर्षों पूर्व कहे हुए कटु वचन अब तक तुम्हारे हृदय को कैसे बेध रहे हैं ? अच्छी बातें याद नहीं रख सकते, तो बुरी को तो बिसार दो।"

सन्त के वचन सुनकर बड़े को अपनी भूल ज्ञात हुई। उसने ब्याह का प्रबन्ध अपने जिम्मे ले लिया।

विगत कटु प्रसंगों को भुला ही दिया जाना चाहिए।

मेरा क्या बिगड़ा

चीन के राजा क्वांग ने शुनशूआओ को तीन बार अपना प्रधानमन्त्री बनाया और तीन बार हटाया इस पर न तो वे कभी प्रसन्न हुए न कभी खिन्न। विद्वान किनबू ने उनकी इस स्थिरता का कारण पूछा। शुनशूआओ बोले—"जब मुझे मन्त्री बनने को कहा गया मैंने सोचा अस्वीकार करना ठीक नहीं, जब निकाला गया तो सोचा मेरी उपयोगिता नहीं तो चिपका क्यों रहूँ ? मन्त्री पद ने मुझे न कुछ दिया और न उसके छिनने पर मेरा कुछ गया और वह सम्मान जो मुझे मिला था वह पद का था तो मुझे उससे क्या लेना-देना ? यदि मेरा था तो पद के रहने न रहने में उसमें न्यूनता या वृद्धि होने वाली नहीं थी।"

विवेकपूर्ण विचार द्वारा प्रत्येक परिस्थितियों में सुखी और सन्तुष्ट रहा जा सकता है।

अभाव का दुःख

शहर में एक युवक रहता था, वह बड़ा परिश्रमी था। दिनभर काम करता और शाम को जो मिलता खा-पीकर चैन की नींद लेता था।

एक दिन एक धनी व्यक्ति को देखकर उसकी ईर्ष्या जाग पड़ी। ईर्ष्या की जलन में युवक को रात में अच्छी तरह नींद नहीं आती।

संयोग से एक दिन उसे बहुत-सा धन जमीन में गड़ा मिल गया। अब तो उसकी सारी चिन्ता दूर हो गई। दूसरे दिन से ही उसका समय भोग और वासना की तृप्ति में बीतने लगा। कुछ ही दिनों में उसका सारा शरीर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कमजोर पड़ गया। मित्र लोग ईर्ष्या करने लगे, सब पैसे से प्रेम करने वाले मिलते, उसे किसी पर विश्वास न रहा। फलस्वरूप उसकी चिन्ता पहले से दुगुनी हो गई। उसने सोचा इससे तो पहले ही अच्छे थे, सुख और सन्तोष की नींद तो लेते थे।

एक दिन महात्मा उधर से निकले, युवक ने उनसे सुखी होने का उपाय पूछा। महात्मा ने कहा—'सन्तोष।' और इतना कहकर आगे बढ़ गये। युवक ने बात समझी, अपनी मुफ्त की सम्पत्ति एक विद्यालय को दान कर दी और फिर वही परिश्रमशील जीवन जीने में लग गया।

(१) वैभव विलास नहीं सुख का मूल सन्तोष है।

(२) सम्पत्ति का उपयोग स्वयं के भोग में नहीं समाज के विकास में करना चाहिए।

(३) परिश्रमी व्यक्ति ही सुख को प्राप्त कर सकते हैं।

कम मुनाफे की बढ़िया दुकानदारी

अमेरिका के एक किसान के मन में दुकानदारों के प्रति बड़ा लोभ था कि वे बहुत लोभ करते हैं। अधिक लाभ लेकर भी घटिया वस्तु देते हैं। जब वह किसी दुकानदार से वैसा न करने को कहता तो लोग कहते कि, "भाई कम मुनाफे से दुकानदार घाटे में रहेगा। इसलिए अधिक मूल्य देना ग्राहक के हित में भले ही न हो, पर दुकानदार का लाभ इसी में है।"

एक दिन किसान ने अपनी जमीन बेच दी और एक दुकान खोल ली। वह यह सिद्ध करना चाहता था कि कम मुनाफा लेना न केवल ग्राहक के वरन् दुकानदार के भी हित में है। अपनी दुकान में गल्ला, बिसातखाना और कपड़ा सब कुछ रखा उसने। सब वस्तुओं के लागत से दो पैसा अधिक ही मूल्य लगाकर उसने एक मूल्य-तालिका टाँग दी, उससे अधिक मूल्य नहीं लिया।

बहुत दिन बाद जब हिसाब हुआ तो इतना अधिक लाभ पाया गया कि उसे दुकान के कई और विभाग खोलने पड़े।

जनहित की भावना लेकर यदि कम मुनाफा और अच्छा माल देने की नीति अपनाई जाय, तो ग्राहक ही नहीं बिक्री अधिक बढ़ जाये और खरीददार का विश्वास पाने से दुकानदार भी अधिक नफे में रहता है।

देखना असम्भव

अकाल का वर्ष। बवापुर (महाराष्ट्र) के श्री नामदेव वाडेकर के घर आज चूल्हा नहीं जला था क्योंकि राशन की दुकान पर अनाज नहीं मिला था। ब्लेक में खरीदने का प्रयास किया पर वहाँ भी कमी पड़ चुकी थी। ऐसी स्थिति में इधर-उधर से माँगने पर भी कहाँ से मिलता ?

उनके पड़ोसी शिवाजी लाड़ को इस बात का पता चला तो वे अपने घर से अनाज की गठरी बाँधकर लाये और उनके घर रख गये। उनके घर में अन्न की कमी नहीं थी। श्री नामदेव कन्ट्रोल रेट से पैसे देने लगे तो वे बोले—"अनाज बेचना मेरा धर्म नहीं। मैं तो पड़ोसी धर्म निभा रहा हूँ। हम दोनों समय भरपेट भोजन करें और पड़ोसी के घर चूल्हा न जले, यह कैसे देखा जा सकता है ?"

अपना ही नहीं, अपने पड़ोसी का भी ध्यान रखना मानव धर्म है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनीति से संघर्ष—अन्याय का प्रतिकार

अनीति से समझौता नहीं

साम्राज्ञी समुद्रा के सम्मुख अपनी मनोव्यथा व्यक्त करते हुए अनर्त नरेश जरुत्कार ने कहा—"समुद्रे ! आप जानती हैं सम्राट पुलकेशिन ने बाजपेय यज्ञ आयोजित किया है, एकबार अनर्तवासी प्रजाजन के बौद्धिक उत्कर्ष के लिए मैंने भी बाजपेय आयोजित किया था, उस समय सम्राट पुलकेशिन स्वयं ही पधारे थे, महारानी भी उनके साथ थीं। आज जब उन्होंने बाजपेय आयोजित किया है, तो नियमानुसार राजकुल के ही किसी प्रतिनिधि को उसमें भाग लेना चाहिए।"

अपनी विवशता को स्पष्ट करते हुए महाराज ने आगे कहा—"मैं सान्तापन कर रहा हूँ। पूर्णाहुति में आपको मेरे साथ रहना चाहिए। अपने कोई पुत्र भी नहीं—ऐसी स्थिति में इस यज्ञ में किसे भेजा जावे यही मेरा असमंजस है।"

महाराज का वाक्य अभी पूरा हुआ ही था कि राजकुमारी रत्नावती बोल उठीं—"महाराज ! स्मृत्यर्थ सार में बताया गया है कि कोई यजमान किसी अनुष्ठान में भाग न ले सकता हो, तो उसकी पत्नी, पुत्र अथवा पुत्री भाग ले सकते हैं। स्पष्ट शास्त्रीय आदेश के बाद भी असमंजस। आर्यश्रेष्ठ ! मुझे आज्ञा दीजिये, महाराज पुलकेशिन के इस यज्ञ में अनर्त का प्रतिनिधित्व आपकी कन्या रत्नावती करेगी और यह दिखा देगी कि नारियाँ गृहस्थ-संस्था का ही नहीं, धर्म मंच का भी सम्पादन सफलतापूर्वक कर सकती हैं।"

पुत्री रत्नावती के शीश पर हाथ फिराते हुए महाराज श्री, किंचित रूखी हँसी हँसे और बोले—"मैं जानता हूँ रत्नावती तू योग्य है, तूने शास्त्राध्ययन ही नहीं किया, तेरे पास विचारों की पूँजी भी है, जन-समाज को जाग्रत करने की प्रतिभा का तुझमें अभाव नहीं है तथापि ·····।" महाराज कुछ रुके फिर स्वयं ही बोले—"तू नहीं जानती रत्ना ! भारतीय कन्या का एक बार सम्बन्ध निश्चित हो जाने पर उस पर उसके माता-पिता के अधिकार गौण हो जाते हैं। राजकुमार वृहद्बल की आज्ञा प्राप्त किये बिना, तुझे इस यज्ञ में भेजना सम्भव नहीं है और उससे स्वीकृति प्राप्त करने के लिए यथेष्ट समय भी नहीं है।"

"इसमें स्वीकृति की क्या आवश्यकता—महाराज ! यह तो अन्तर्राष्ट्रीय आवश्यकता है। संसार के किसी भाग की धर्म विमुखता, मदान्धता और अज्ञानता का प्रतिफल समूचे विश्व के विनाश का कारण हो सकता है। पड़ोस में लगी आग की लपटें कब अपने घर आ जाएँ, कहा नहीं जा सकता। इसलिए विज्ञजन इसे अपना स्वार्थ समझकर दूसरों के घर लगी आग बुझाने दौड़ते हैं। लोक-मंगल के पुण्य परमार्थ के लिए आप आज्ञा लेने की बात कहते हैं मैं तो कहती हूँ कि यदि ऐसे पवित्र कार्यों में विघ्न-बाधा उपस्थित करने वाला कोई अपना सगा-सम्बन्धी हो, तो उसकी अवज्ञा-उपेक्षा ही नहीं प्रतिरोध भी किया जाना चाहिए।"

जरुत्कार ने पुत्री की दृढ़ता देख उसे यज्ञ में भाग लेने की अनुमति दे दी। रत्नावती ने यज्ञ में भाग लेने के साथ ही जन-जाग्रति अभियान का निपुणतापूर्वक संचालन भी किया, सारा राष्ट्र जाग उठा और साथ ही राजकुमारी का यश भी चारों ओर फैल गया।

राजकुमार वृहद्बल को यह बात अच्छी नहीं लगी। उन्होंने रत्नावती का सम्बन्ध ठुकरा दिया। महाराज जरुत्कार ने दूसरा सम्बन्ध ढूँढ़ने का प्रयास किया, किन्तु रत्नावती ने दूसरा सम्बन्ध नहीं स्वीकारा, उन्होंने आत्म-साक्षात्कार के लिए कठोर तप किये। उनकी साधना के संवाद वृहद्बल तक भी पहुँचे। एक दिन वे स्वतः राजकुमारी के पास जाकर अपनी भूल के लिए क्षमा माँगने लगे पर राजकुमारी ने विवाह करने से इनकार करते हुए कहा—"इस देश की कोई भी कन्या अन्याय के सम्मुख घुटने न टेके, मैं इसकी प्रेरणास्वरूप आजीवन कुमारी ही रहूँगी।"

रत्नावती ने सुख और वैभव का जीवन त्याग दिया और जीवन की अन्तिम साँस तक लोक-मंगल का कार्य किया।

अनीति के इलाज के लिए प्रतिकार भी चाहिए

डंडे लेकर बढ़ती हुई कुछ महिलाएँ एवं लड़कियाँ सामने से बन्दूक लेकर एक व्यक्ति का आना कुछ महिलाओं का भागकर बचने का प्रयास ·····! उसी बीच एक षोडसी द्वारा आगे बढ़कर बन्दूक पर डंडे की चोट ···· बन्दूक गिरना बन्दूकधारी का भागना—और जीत का जयकारा।

यह घटना भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का एक दृश्य-सी लगती है, किन्तु वास्तव में यह भारत की राजनैतिक स्वतन्त्रता संग्राम की नहीं, पुरुष की पशुता के नीचे कुचली जाती हुई नारी को त्राण दिलाने के प्रयास का एक अंग थी। आगे बढ़कर डंडे की चोट से बन्दूकधारी को निशस्त्र करने वाली थीं, आजकल की कहानी-लेखिका रजनी पनिकर।

उस समय रजनी पनिकर कालेज में पढ़ती थीं। घर का वातावरण राष्ट्रीय नहीं था, फिर भी वे आत्म-प्रेरणा से राष्ट्रीय तथा सामाजिक कार्यों में अभिरुचि रखती थी। कालेज की अनेक हलचलों में उनका महत्त्वपूर्ण हाथ रहता था। कालेज के बाहर भी वह अपना कार्य क्षेत्र बनाये थीं। उनका भावुक हृदय अनाचार को देखकर उबल पड़ता था। विशेष रूप से नारी जाति की दीनहीन स्थिति तथा पुरुष वर्ग का अत्याचार उन्हें असह्य हो उठता था। यह घटना भी उन्हीं दिनों की है।

उनके पड़ोस में एक ऑफीसर रहते थे। बड़ा पद पाकर, मनुष्य हीन आचरण छोड़ ही दे यह आवश्यक नहीं। उसके लिए तो विशेष रूप से अपने अन्तःकरण को सँभालना, सँवारना पड़ता है। वह ऑफीसर महोदय भी पद के मद में अंधे, मानवता को न देखते हुए, मनमानी किया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करते थे। कभी भी अपनी पत्नी को बुरी तरह पीटना उनके लिए सामान्य-सी बात थी। बेचारी पत्नी-बच्चों का तथा अपने परिवार की इज्जत का ध्यान रखकर बहुत कुछ सह लेती थी। लोग उन्हें समझाते थे तो भी उन्हें कुछ अक्ल नहीं आती थी। उनकी पत्नी रजनी पनिकर से आयु में काफी बड़ी थी, किन्तु फिर भी उनसे अपना दुःख-सुख कह लिया करती थी।

एक दिन होली के आस-पास उन महोदय ने शराब पीकर पत्नी को बेदर्दी से मारना प्रारम्भ कर दिया। उनकी लड़की से न देखा गया, तो माँ को बचाने का आग्रह करती हुई रजनी पनिकर के पास दौड़ी आई। बात सबने सुनी। रजनी के माता-पिता ने रजनी को रोका, "पति-पत्नी के बीच पड़ना उचित न होगा।"

जब अनीति के प्रतिकार का अवसर आता है, तो लोग किसी सिद्धान्त की आड़ लेकर किनारा काटने लगते हैं पर वास्तव में सिद्धान्त प्रेम के कारण नहीं, अनीति के प्रतिकार की क्षमता की कमी के कारण ही ऐसा बहाना बनाया जाता है। रजनी के माता-पिता को चाहिए था कि वे भी अबला असहाय की सहायता के लिये कुछ करते, पर वह उलटे रजनी को भी रोकने लगे।

किन्तु रजनी के मन में अनीति के प्रति गहरा रोष था। उन्होंने पड़ोसियों को ललकारा और स्वयं आगे बढ़ीं। जोश में आकर ४-५ साथिनें पर्दों के डंडे निकालकर आ गयीं। वह मुक्ति-दल आगे बढ़ा। पड़ोसी को ललकारा गया अनीति को बन्द करने के लिए और वह निकल आये अपनी बेहूदगी पर मोहर लगाने के लिए बन्दूक लेकर।

अनीति करने वाला समझता है कि उसकी पशुता का कोई मुकाबला नहीं कर सकता, पर जहाँ मनोबल सम्पन्न प्रतिद्वन्दी सामने आ जाता है वहाँ पर वे मुँह की खाते हैं।

बन्दूक देखकर महिलाएँ भागीं, पर रजनी पनिकर ने साहस के साथ आगे बढ़कर चोट की। नैतिक बल के आगे अनैतिक बल टिक नहीं पाता। डंडे से बन्दूक हार गयी। उनकी बेहोश पड़ी पत्नी का उपचार किया गया तथा उसे मैके भेजने की व्यवस्था कर दी गई। अपनी हेकड़ी टूटने पर अपना छोटापन सिद्ध हुआ। अकेले रहकर पत्नी का मूल्य समझ में आया और वे महानुभाव सुधर गये। उन्होंने पत्नी से क्षमा माँगी तथा फिर सद्गृहस्थ की तरह रहने लगे। पाशविक अनीति उसी प्रकार का प्रतिकार भी चाहती है।

जहाँ "आप" वहाँ विजय जहाँ "पाप" वहाँ हार

कौरव और पाण्डव दोनों ही महाभारत युद्ध की तैयारी कर रहे थे तब की बात है। दुर्योधन ने विचार किया, क्यों न श्रीकृष्ण को अपने पक्ष में कर लिया जाय ? यह विचार आते ही वह द्वारिका के लिये चल पड़ा। श्रीकृष्ण उस समय सो रहे थे। दुर्योधन अहंकारवश सिरहाने बैठकर श्रीकृष्ण के जागने की प्रतीक्षा करने लगा।

पाण्डवों ने श्रीकृष्ण को अपने पक्ष में लेने के लिये अर्जुन को भेजा। अर्जुन भी उसी समय पहुँचे जब श्रीकृष्ण सो रहे थे, किन्तु अपनी श्रद्धा और भक्ति भावना वश वे सिरहाने न बैठकर पाँवताने बैठकर भगवान कृष्ण के जागने की प्रतीक्षा करने लगे।

श्रीकृष्ण जागे तो उनकी पहली दृष्टि अर्जुन पर पड़ी। कुशल क्षेम के बाद अभी वे अभिप्राय पूछने जा रहे थे कि दुर्योधन ने हस्तक्षेप किया और बताया कि सर्व प्रथम मैं आया हूँ और इस दृष्टि से मेरा अधिकार सर्वप्रथम है कि मैं अपना अभिप्राय व्यक्त करूँ।

श्रीकृष्ण असमंजस में पड़ गये। नीतिवेत्ता तो वे थे ही साथ ही साहसी और चतुर भी कम नहीं थे। वे जानते थे दुर्योधन ने छलपूर्वक पाण्डवों को जुए में हराया, उन्हें वन जाने को विवश किया और अब वह अपनी मन-मर्जी भी करना चाहता है। सच्चाई के साथ सच्चाई का वर्णन न किया जाय वह पाप हो सकता है, पर यदि कोई छल और कपट करता है, तो नीति कहती है कि उसके साथ कूटनीति का बर्ताव बुरा नहीं। कृष्ण ने उसी चतुराई का साथ लेते हुए कहा—"भाई मैंने सर्वप्रथम अर्जुन को देखा है, अर्जुन है भी आप से छोटा। छोटों को माँगने का अधिकार विज्ञजन सर्वप्रथम दिया करते हैं, इसलिये प्राथमिकता तो अर्जुन को ही दी जायेगी, किन्तु आप यहाँ पहले आने की बात कहते हैं इसलिए माँग आपकी भी पूर्ण की जायेगी।"

"एक तरफ तो मैं हूँ किन्तु मेरा प्रण है मैं शस्त्र नहीं उठाऊँगा। दूसरी तरफ मेरी विशाल चतुरंगिणी चमू है। बोलो अर्जुन तुम दोनों में से कौन-सा भाग लोगे ? श्री कृष्ण ने प्रश्न किया ? इस पर अर्जुन बोले—"भगवन् मैं तो आपको ही लूँगा भले ही आप युद्ध न करें केवल हमारे साथ बने रहें।"

दुर्योधन मन ही मन अर्जुन की मूर्खता मानकर बहुत प्रसन्न हुआ। श्रीकृष्ण की विशाल अपराजेय सेना पाकर वह फूला नहीं समाया। अब उसने बलराम को भी अपने पक्ष में लेने की सोची किन्तु वे थे स्पष्टवादी, उन्होंने साफ कह दिया मैं अन्याय का पक्ष कदापि नहीं लूँगा साथ ही वे अर्जुन से भी खीजे हुए थे, सो उसकी ओर जाने से भी इनकार कर दिया। दुर्योधन ने यह भी अपनी कूटनीतिक विजय मानी।

संजय इतनी कथा सुना चुके तो दुर्योधन के पिता धृतराष्ट्र ने उनसे प्रश्न किया, "हे तत्व दर्शी महामात्य ! यह तो बताइये कि वास्तविक बुद्धिमत्ता इनमें किसकी रही अर्जुन की अथवा मेरे पुत्र दुर्योधन की ?" संजय बोले—"तात् ! बुद्धिमान तो अर्जुन को ही कहा जायेगा क्योंकि उसे मालूम है नैतिक, आर्थिक और बौद्धिक दृष्टि से समर्थ एक व्यक्ति की ताकत लाखों व्यक्तियों से बढ़कर होती है। श्रीकृष्ण की नीतिप्रज्ञता, न्यायप्रियता, बौद्धिक और आत्मिक क्षमता का मुकाबला—आज सारे राष्ट्र में कोई नहीं कर सकता इसलिए निश्चित मानिए अर्जुन ने उन्हें लेकर चतुराई ही की और विजय भी उसी की होगी।"

धृतराष्ट्र चुप हो गए, पर इतिहास चुप नहीं हुआ वह बताता है कि विशाल सेना वाला अनीतिवादी दुर्योधन ईश्वरीय समर्थन वाले अर्जुन, जिनके पास श्रीकृष्ण भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निशस्त्र थे, से हारा ही नहीं महाभारत के युद्ध में बन्धु-बांधवों सहित मारा भी गया।

दण्ड और पुरस्कार साथ-साथ

भगवान परशुराम की प्रतिज्ञा थी कि वे केवल ब्राह्मण बालकों को ही धनुर्विद्या देंगे अन्य किसी वर्ण को नहीं। ऐसा उन्हें क्षत्रियों के औद्धतपन को देखकर करना पड़ा।

विद्याभिलाषी कर्ण ने निश्चय किया, मुझे भले ही छल करना पड़े परन्तु परशुराम जैसे समर्थ गुरु से ही बाण-विद्या सीखनी चाहिये। कर्ण ब्राह्मण बालक का वेष धारण कर ऋषि आश्रम पहुँचे और समित्पाणि वाण-विद्या सीखने के लिये ऋषि-चरणों में सानुनय निवेदन किया।

बालक की तेजस्विता और पात्रता परखकर परशुराम ने उसे आश्रम में रख लिया और धनुर्विद्या का अभ्यास कराने लगे। गुरुवर जितना बताते, कर्ण उसका अभ्यास पूरी लगन और अध्यवसाय से करता था। शिष्य का प्रमुख लक्षण ज्ञान प्राप्ति की प्रबल जिज्ञासा है। यदि वह अपने मुख्य विषय से नहीं भटकता, तो वह विद्या का सच्चा पात्र है, इसीलिये प्राचीन-काल में विद्यार्थी आजीविका, गृहस्थ और अन्य सभी लौकिक उत्तरदायित्वों से उन्मुक्त रखे जाते थे। कर्ण ने जितने दिन विद्या सीखी, अभ्यास और गुरु-सेवा के अतिरिक्त और कुछ जाना ही नहीं कि संसार में सुख नाम की भी कोई वस्तु होती है।

एक दिन प्रातःकालीन अभ्यास समाप्त हुआ, तो नियमानुसार भगवान परशुराम मध्याह्न सन्ध्या के स्नान के लिये सरोवर की ओर चल पड़े। कर्ण गुरुदेव के पीछे उत्तरीय वस्त्र और उबटन लेकर चलता था, उनके स्नान के उपरान्त स्वयं स्नान करके और त्यागे हुये वस्त्र प्रच्छालित कर आश्रम लौटता। यह क्रम प्रतिदिन का था। गुरुदेव बालक की निष्ठा की सदैव परीक्षा लेते रहते थे। आज उन्होंने उसकी विद्या की परीक्षा लेनी चाही।

मार्ग में सेमर का वृक्ष पड़ता था। शीत के दिन थे सेमर पूरी तरह फूल रहा था। रक्ताभि सुमनों की आभा भी अनुपम और अवर्णनीय थी। गुरु ने प्रत्यंचा चढ़ाई और धनुष लगाकर उसे कान तक खींचकर शर-सन्धान किया और सेमर-वृक्ष के सभी फूल एक ही बाण में आधे-आधे काटकर पृथ्वी में पाट दिये और फिर सरोवर की ओर आगे बढ़ गये।

कर्ण वहाँ पहुँचा तो यह दृश्य देखकर आश्चर्यचकित रह गया। गुरुदेव के सिवाय यह करनी और किसकी हो सकती थी ? श्रद्धा और भक्ति भावना से उसकी भावनाएँ उमड़ पड़ीं। यही नहीं उसने गुरुदेव की विद्या की व्यवहारिक प्रशंसा भी उन्हीं के समान करने का निश्चय किया।

पर वह धनुष चलाता कैसे, एक हाथ तो उसका घिरा हुआ था। उबटन का कटोरा पृथ्वी पर तो नहीं रखा जा सकता था। उसने कटोरे को आकाश की ओर उछाला और जितनी देर कटोरा आकाश में रहा कर्ण ने उतनी देर में शर-संधान कर आधे कटे फूलों को पूरी तरह काटकर धरती में पाट दिया।

भगवान परशुराम ने अपनी दिव्य-दृष्टि से यह सब देखा तो वह कर्ण की विद्या और श्रद्धा पर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

उसी दिन मध्याह्न के समय परशुराम कर्ण की जंघा पर सिर रखे सो रहे थे कि उनके शरीर से ब्रह्म-कीट निकला। उसे नीचे पृथ्वी पर जाना था। ब्रह्म-कीट कहते हैं सीधा ही चलता है, पर मार्ग में कर्ण का पैर बाधक था, इसीलिये वह जंघा को बीच से छेदता हुआ पार निकल गया। गुरुदेव जग न पड़ें इस आशंका से कर्ण ने वह पीड़ा सह ली, पर पाँव टस से मस न हुआ।

गुरुदेव की नींद टूटी तो वहाँ बहता हुआ खून देखकर वे सारी स्थिति समझ गये। उन्होंने कर्ण को डाँट कर पूछा—"क्यों रे तेरा वर्ण क्या है ?

अब भला क्या छिपाव था ? कर्ण ने सच-सच बता दिया। परशुराम बहुत क्रोधित हुये और उसे श्राप देना चाहा पर आत्मा ने कहा—"बालक की श्रद्धा और सेवा भावना के बदले कृतज्ञता न प्रकट करना भी तो पाप होगा। यदि झूठ बोलने और अपराध करने के लिये दण्ड आवश्यक है, तो सेवा और श्रद्धा के लिये पुरस्कार भी।"

भगवान संयत हो गये। अपने तरकस से तीन बाण निकाले और कर्ण को देकर कहा—"वत्स तुमने मेरी बड़ी सेवा की, उसके पुरस्कार स्वरूप यह तीन अमोघ बाण देता हूँ, इन्हें जिस पर चला दोगे, उसे परमात्मा भी न बचा सकेंगे। पर तुमने झूठ बोलकर मेरी प्रतिज्ञा भंग की है, इसलिये उसका दण्ड भी मिलना चाहिये। वह यह है कि यही बाण ही तुम्हारी भी मृत्यु का कारण हो सकते हैं।"

अन्त में यही बाण ही कर्ण की मृत्यु का कारण बने पर उसकी शस्त्र संचालन की निपुणता की प्रशंसा भी महाभारत में सर्वत्र हुई।

एकता के तीन सूत्र

आर्य सभ्यता उस समय अपने विकास के चरम शिखर पर थी। भारत में कई आर्य प्रान्त थे। सब स्वाधीन, स्वतन्त्र, सर्वप्रभुत्व सम्पन्न और स्वशासित। इन्हीं आर्य प्रान्तों के वन बीहड़ों में रहती थीं अनार्य जातियाँ। आर्य जनता के सुखी, सुविधा सम्पन्न और समृद्ध जीवनयापन से ईर्ष्यालु होकर अनार्य जातियों ने एक वाहिनी तैयार कर ली और लोगों को परेशान करने लगे। उनके लूट-खसोट, मार-काट और डकैती तो सामान्य कर्म थे, शासनतन्त्र और राज्य व्यवस्था को भी नष्ट-भ्रष्ट करने तक उनके हौसले बढ़े।

उनके उत्पात बढ़ने लगे और इधर आर्य-प्रान्तों की सेनाएँ आतंकित हो उठीं। अनार्य जातियाँ जब दूसरे राज्यों में भाग जातीं तो वे हाथ मलकर देखते रह जाते और उन दस्युओं का उत्पीड़न चक्र वहाँ चलने लगता। वे भी इसी तरह परेशान हो जाते। आखिर सब हार, थककर पहुँचे ऋषि शौनक के आश्रम में। पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, ईशान आदि प्रान्तों के नरेशों ने ऋषिवर के चरणों में प्रणाम किया और अपनी समस्या सामने रखी तथा विजय का आशीर्वाद माँगा तो शौनक ने कहा—"आर्यजन, विजय आशीर्वादों से नहीं शक्ति और सामर्थ्य से मिलती है। तुम शक्तिवान बनो और बल प्राप्त करो।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"शक्ति तो हमारे पास कम नहीं। हम दस्युओं से निर्बल नहीं हैं। फिर भी हमें पराजय क्यों भोगनी पड़ती है।" पूर्व देश के नरेश ने कहा।

"शायद तुम्हारा संकेत बाहुबल की ओर है परन्तु वही पर्याप्त नहीं है, इससे भी बड़ी और एक शक्ति है।"

"तो पूज्यपाद उस बल से भी अधिक शक्ति हमारी सैनिक क्षमता में है। हमारे पास सैनिकों की कमी नहीं।"—पश्चिम प्रान्त के राजा का कहना था।

"सैन्य शक्ति भी अपर्याप्त है उस शक्ति के अभाव में।"

"शस्त्रों से ही सेना की सामर्थ्य बढ़ती है। उससे भी हम प्रचुर सम्पन्न हैं।" दक्षिण नरेश बोले।

'शस्त्र बल से भी महान् शक्ति है एक ओर जो मेरा आशय है'—ऋषि शौनक ने कहा।

"सम्भवतया आपका आशय धन, बल से है"—ईशान अधिपति ने कहा।

"नहीं आर्य शरीर, सेना शस्त्र और 'धन बल' से भी अधिक समर्थ एक और 'शक्ति है'—उपस्थित नरेशों की मुख मुद्रा पर तैरती आतुरता को पढ़ते हुए ऋषि ने कहा—'एकता का बल। संघ शक्ति की सामर्थ्य।"

"यह बल किस प्रकार अर्जित किया जाय"—आर्य नरेशों ने जिज्ञासावश पूछा तो ऋषि बोले—"इससे अर्जन का पहला सूत्र है—**संगच्छध्वम्**—एक साथ मिलकर चलो। तुम लोग अलग-अलग दस्युओं के आक्रमण का सामना करते हो, इसी से वे लोग तुम पर भारी पड़ते हैं। दूसरा सूत्र है—संवदध्वम् एक स्वर में बोलो। दस्युओं के सम्बन्ध में अलग-अलग मत व्यक्त करना, उनके हौसले को बढ़ाना है इसलिए मिलकर एक निश्चय करो—**संघो मनासि जानताम्**—एक निर्णय लो और एक जुट होकर लड़ो, तो विजय तुम्हारे हाथ है यही तीसरा और अन्तिम सूत्र है।

ऋषि की प्रसाद वाणी से अपनी त्रुटियों का बोध प्राप्त कर समस्त नरेश वहाँ से चले और उन्होंने एकमत होकर योजना बनायी, उस पर अपनी सहमति व्यक्त की, स्वीकृति दी और समरभूमि में डट गये। जब संगठित होकर आगे आये और समस्त दस्युओं, अनार्यों को उनसे लोहा लेना पड़ा तो आत्म-समर्पण करते ही बना।

मनसा, वाचा और कर्मणा, एकता—मिलकर सोचने, एक स्वर में बोलने और एक साथ चलने की त्रिविधि एकता योजना—संघ साधना ही महान् लक्ष्यों को प्राप्त करने का अभियान, अनुष्ठान है, जिसे कोई भी सम्पन्न कर विजेता बन सकता है।

आपसे नहीं, अन्याय से विद्रोह

जालंधर जिले के संधोवाल गाँव में—अब से पचास वर्ष पूर्व की घटना है—सूरज की पहली किरण ने गाँव में प्रवेश किया था कि लोगों ने अपने घरों के सामने घोड़ों के टापों की आवाज सुनी। स्वतन्त्रता आन्दोलन के दिन थे वे और लोग आये दिनों इस तरह सुबह से पहले ही सुनायी देने वाली टापों से परिचित थे। गाँव में ब्रिटिश पुलिस अधिकारियों ने प्रवेश किया था और वे शायद किसी की खोज कर रहे थे। किसी अपराधी की ही तलाश होगी—नहीं ! नहीं !! किसी क्रान्तिकारी की तलाश थी।

खट् ! खट् !! खट् !!! एक-एक कर सभी घरों में दस्तक हुई। दरवाजा खोला गया तो वही परिचित प्रश्न—'बन्ता को कहाँ छुपा रखा है ?'

पहले भी पुलिस कई बार इस तरह के प्रश्न करते हुए गाँव में घूम चुकी थी। बन्तासिंह गाँव में ही छुपा था याकि लोगों ने छुपा रखा था, पर उसके प्रति ग्रामवासियों के मन में इतना स्नेह था कि रहस्य खुल जाने का परिणाम जानते हुए भी उसका अता-पता नहीं बता रहे थे। पुलिस भी हार चुकी थी। गाँव का गली-कूचा और गाँव वालों का कोना-कोना छान मारा था, पर बन्तासिंह का कहीं पता नहीं चल रहा था। जानते थे कि उसे गाँव वालों ने ही कहीं छुपा रखा है, पर कहाँ ? यही तो प्रश्न था जिसका हल नहीं मिल रहा था।

पुलिस ने बन्तासिंह के घर वालों की जबान खुलवाने का दूसरा तरीका अपनाया। यद्यपि उन्हें पता ही नहीं था कि बन्ता कहाँ है ? फिर भी पुलिस वालों ने बन्ता के पिता और भाई को पकड़ लिया तथा उन पर कितने ही जुल्म ढाये ? फिर भी पता नहीं चला तो 'बन्ता फरार' की टिप्पणी के साथ केस फाइल कर दिया गया।

इस घटना के कुछ दिन बाद की ही बात है। गाँव पर एक नयी मुसीबत आ गयी। इनसान की मार सही जा सकती है, सरकार से भिड़ा जा सकता है, पर प्रकृति की मार कैसे सही जाय ? बरसात के दिनों में खूब पानी बरस गया और गाँव वालों की फसलें चौपट हो गयीं। जो थोड़ी बहुत फसल हुई वह साहूकारों ने वसूली के नाम पर लूट लीं। साधारण किसान के पास खाने के लिए अनाज का एक दाना भी नहीं बचा। लोग भूख से छटपटाने लगे। कोई उपाय नहीं सूझ रहा था और था भी कोई उपाय तो उसे अपने प्रिय नेता और हितैषी युवक बन्ता से कैसे कहें ? वह उपाय ही अप्रिय था और इसीलिए कहने में संकोच हो रहा था।

किन्तु भूख की मार संकोच की बड़ी से बड़ी और मजबूत से मजबूत दीवार को भी तोड़ डालती है। आखिरकार भूख से व्याकुल ग्रामीण एक दिन बन्ता सिंह के पास पहुँच ही गये, "कोई उपाय कीजिए। हम लोगों के घरों में अनाज का एक दाना भी नहीं है। हम और हमारे स्त्री बच्चे भूख के कारण तड़प-तड़प कर मर जायेंगे।"

बन्तासिंह ने कहा—"गाँव में अनाज तो होना चाहिए भाइयो। साहूकारों ने जरूर अपने पास खत्तियाँ भर रखी होंगी और वे रुपये का आठ छटांक अनाज बेचकर अपना घर धन से भरने की सोच रहे होंगे। कौन हो सकता है ऐसा क्रूर और स्वार्थी हृदय ?"

कहते-कहते बन्ता की आवाज जोश से दहाड़ने-सी लगी। अज्ञात आशंका से आगन्तुक ग्रामीण काँप उठे। बन्ता ने कहा, "बताइये, आपको मालूम होगा कि अनाज किसने छुपा रखा है। मुझे तो आजादी के लिए लड़ते रहने के कारण इधर-उधर भागते रहने से ही फुरसत नहीं है। आपको मालूम है, तो बताइये न। अनाज किसने छुपा रखा है ? आज पहला काम यह होगा कि जहाँ भी गल्ला होगा किसी ने भी उसे जमा कर रखा हो वह लूटकर सब लोगों में बाँट दिया जायेगा।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक बूढ़े सरदार ने कहा—"अनाज तो आपके पिता ने ही छुपा रखा है।"

"अच्छा"—बन्ता तैश में आ गया और बोला—"तो चलिये मेरे साथ।" और आगे-आगे बन्ता तथा पीछे-पीछे गाँव के लोग चल दिये। चल क्या दिये, भाग से उठे।

"अपने पिता के पास पहुँचकर बन्ता ने कहा बाबा गोदाम खोलिये।" बाबा ने प्रश्न सूचक मुद्रा में देखा तो बन्ता ने कहा—"सारा गाँव भूखा मर रहा है और आप भूख के साथ मिलकर गाँव वालों की हड्डियाँ भी चूस लेंगे क्या ?"

पिता ने आनाकानी की तो बन्ता ने गाँव वालों को साथ-लेकर गोदाम का ही ताला तोड़ लिया और सारा अनाज लोगों को बाँट दिया। इसके बाद बन्ता अपने पिता के पास आया और बड़े ही विनम्र शब्दों में कहने लगा—"माफ करना बाबा, मैंने आपसे नहीं अन्याय से विद्रोह किया है। यह अन्याय ही तो था कि हमारे घर में अनाज सड़ता रहे और गाँव वाले अनाज बिना सूखते रहें।"

सन्त—राष्ट्र की आत्मा

"एक नागरिक का ही सही—अपमान तो किसी वेश्या का भी नहीं होना चाहिये। मनुष्य का अधिकार किसी को सुधारने और सही पथ-प्रदर्शन करने में तो है पर अपशब्द और अपमान तो एक बच्चे का भी असह्य है सेनापति ! जाओ युद्ध की तैयारी करो।" सम्राट् विश्वजित् की आज्ञा टालना किसके लिये सम्भव था ? महामन्त्री और आचार्य दसमेध ने भी समझाया—"महाराज ! जिस तरह माताएँ बच्चों की छोटी-छोटी भूलें क्षमा कर देती हैं, उसी प्रकार कैवर्त्त सम्राट तोमराज की भूल भी साधारण है, नागरिक अनंगपाल के पास वहाँ की स्वर्ण-मुद्राएँ न होती तो उसे अपमानित न किया गया होता।

विश्वजित् अपनी प्रजा को प्राणों से भी अधिक प्यार करते थे, इसलिये किसी का भी कहा उन्होंने सुना नहीं। उसी दिन सेना सजा दी गई और कैवर्त्त पर चढ़ाई कर दी गई।

कई दिन के निरन्तर युद्ध के बाद भी कैवर्त्त को जीता न जा सका। युद्ध की अवधि बढ़ती ही गई। तभी एक दिन एक विचित्र घटना घटी कैवर्त्त राज्य के प्रकाण्ड पण्डित और सन्त देवलाश्व विश्वजित् के सैनिक खेमों के पास से गुजरे। सैनिकों ने समझा यह कोई गुप्तचर है, सो उन्हें बन्दी बनाकर महाराज के सामने लाया गया। महाराज विश्वजित् ने उन्हें प्राण-दण्ड की सजा सुना दी।

तेज आँधी की तरह यह खबर सारे कैवर्त्त देश में फैल गई कि सन्त देवलाश्व बन्दी बना लिए गये हैं और उन्हें शीघ्र ही मृत्यु-दण्ड दिया जाने वाला है। विश्वजित् के आक्रमण से भी प्रजा को जो कष्ट न हुआ था, वह देवलाश्व के बन्दी बना लिये जाने से हो गया। कैवर्त्तवासियों ने अपने प्रिय सन्त के लिये अन्न-जल का भी परित्याग कर दिया। सारे राज्य में शोक छा गया।

रात्रि के चतुर्थ प्रहर में जबकि विश्वजित् की सेनाएँ युद्ध की तैयारी कर रही थीं—एक आकृति वहाँ पहुँची और सैनिकों से निवेदन किया मैं कैवर्त्त का राजदूत हूँ, मुझे विश्वजित् के पास सम्राट् तोमराज का सन्देश पहुँचाना है। इस पर आगन्तुक को नरेश विश्वजित् के पास पहुँचा दिया गया।

"कहो ! क्या सन्देश लाये हो सम्राट तोमराज का। क्या उन्होंने पराजय स्वीकार कर ली।" स्वाभिमान से अपनी मूँछों पर ताव देते हुये विश्वजित् ने प्रश्न किया।

"नहीं महाराज, कैवर्त्त नरेश इतने भीरु नहीं जो युद्ध सम्पन्न हुये बिना पराजय स्वीकार कर लें पर यदि आप बन्दी सन्त देवलाश्व को मुक्त कर दें, तो वे उनके बदले आपको दो करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ भेंट कर सकते हैं।"

"बस ! गुप्तचर का मूल्य कुल दो करोड़ रुपये। बोलो दूत उन्हें इस बन्दी से इतना मोह क्यों है ?" विश्वजित् ने उसी वीर भाव से प्रश्न किया।

आगन्तुक ने उत्तर दिया—"महाराज ! वह गुप्तचर नहीं यथार्थ ही एक बड़े सन्त हैं। सन्त राष्ट्र की आत्मा होती है, वह न रहे तो कैवर्त्त अनाथ हो जायेगा, पथ-भ्रष्ट हो जायेगा, हम स्वदेश को पथ-भ्रष्ट होने से बचाने के लिये दो करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ तो क्या सम्पूर्ण राज्य आपको भेंट कर सकते हैं।"

"इसका प्रमाण ?" विश्वजित् ने फिर प्रश्न किया। शान और स्वाभिमान वहीं पूर्ववत् और उत्तर में आगन्तुक ने अपना दाहिना हाथ आगे बढ़ा दिया। अनामिका पर शोभित-मुद्रिका में साफ लिखा था—"सम्राट तोमराज !"

और तब विश्वजित् ने अपना राज्यासन छोड़ दिया और तोमराज को हृदय से लगाते हुए कहा—"सम्राट् हम आज आपसे पराजित हुए। आप सम्राट नहीं हमारे गुरु हैं, मार्गदर्शक हैं। सचमुच जिस राष्ट्र में सन्त को सम्मान नहीं मिलता, वह पथ-भ्रष्ट और खोखला हो जाता है।"

सन्त देवलाश्व मुक्त कर दिए गये और विश्वजित् की सेनाएँ भी वापस लौट पड़ीं।

देश की बलिवेदी पर अविस्मरणीय बलिदान

उन दिनों फ्रांस और इटली के बीच घमासान युद्ध चल रहा था। फ्रांसीसी सैनिकों की विशाल सेना के सामने इटली के सैनिक संख्या में कम और कमजोर पड़ रहे थे। ऐसा लगता था कि पराजय सुनिश्चित है। फ्रांसीसी सेना इटली के गाँवों में प्रवेश कर चुकी थी। अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अन्तर्गत यह प्रावधान है कि सेनाएँ असैनिक क्षेत्रों तथा वहाँ निवास करने वाले नागरिकों को किसी तरह की क्षति नहीं पहुँचाये, पर समस्त नियमों का उल्लंघन करते हुए फ्रांसीसी सैनिक गाँवों को उजाड़ते निरीह निरपराध बच्चों, स्त्रियों तथा पुरुषों को अपनी गोलियों का शिकार बनाते हुए द्रुतगति से आगे बढ़ रहे थे। यह खबर समीपवर्ती गाँवों में चारों ओर बिजली की तरह फैल गयी। ग्रामवासी बाल बच्चों एवं स्त्रियों को लेकर किसी सुरक्षित स्थान पर भागने की तैयारी कर रहे थे। इसके पूर्व कि वे जंगलों आदि में जा छुपें, फ्रांस के सैनिकों का आगमन हो चुका था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गाँव में प्रविष्ट होने का एक ही कामचलाऊ मार्ग था कि नदी में गिरे पेड़ से होकर निकला जाय। पुल का काम वह पेड़ ही करता था। इटली के गाँवों में फ्रांस की सेना को प्रवेश करने से रोकने का एक ही तरीका था कि उस पेड़ को काट दिया जाय जो नदी के आर-पार जाने का एक मात्र माध्यम था। नदी का प्रवाह इतना तीव्र था कि उसे तैरकर पार करना हर किसी के लिए सम्भव न था।

सेना को रोकने के लिए गाँव के लोगों ने एक जुट होकर यह निश्चय किया कि पेड़ को काटना ही होगा चाहे इसके लिए कितनी ही बड़ी कुर्बानी क्यों न देनी पड़े ? सौ व्यक्ति हाथ में कुल्हाड़ी लिए चल पड़े। उधर फ्रांसीसी सैनिक भी साक्षात् मृत्यु के रूप में बढ़ते चले आ रहे थे। नदी के किनारे पहुँचने में अभी थोड़ा विलम्ब था। उनके आने के पूर्व ही वृक्ष को काटकर नदी में बहा देना आवश्यक था।

कुछ व्यक्ति पुल का काम दे रहे वृक्ष को काटने में तत्पर थे। इतने में फ्रांसीसी सैनिक नदी के दूसरे किनारे पर आ पहुँचे। बिना एक क्षण भी गँवाये उन्होंने निहत्थे इन व्यक्तियों को गोलियों से भून डाला। गोली खाकर नदी में गिरते ही दूसरी टोली पेड़ काटने में लग गयी। उधर निरन्तर गोलियों की बौछार हो रही थी अंग-प्रत्यंगों में गोलियाँ लग रही थीं पर इटली के नागरिकों की हिम्मत देखते बन रही थी। एक-एक करके सभी व्यक्ति मारे गये पर उस पुल का कुछ हिस्सा अभी भी कटना बाकी था। किनारे खड़ा एक बारह वर्षीय किशोर अलबर्ट यह कारुणिक दृश्य देख रहा था। उसने सोचा यदि पेड़ नहीं कटता है, तो फ्रांसीसी सेना उससे होकर इस पार आ जायेगी। बिना एक क्षण भी गँवाये वह हाथ में कुल्हाड़ी लिए टूट पड़ा। उधर फ्रांसीसी सैनिकों ने देखा कि एक बालक अकेला ही वृक्ष को काट रहा है, तो दौड़ पड़े उसे पकड़ने के लिए। गोली-बारी उन्होंने बन्द करा दी। पेड़ का एक हिस्सा दूसरे हिस्से से अभी थोड़ा जुड़ा हुआ था। शत्रु को निकट आया देखकर उसने अपनी कुल्हाड़ी नदी में फेंक दी और पूरे जोर से वृक्ष के कटे हुए भाग पर कूद पड़ा। मध्य से वृक्ष टूटकर नदी में जा गिरा और इसके साथ ही नन्हा वीर बालक भी। यह अन्तिम आहुति रंग लायी। फ्रांस की सेना को नदी पार न कर पाने के कारण वापस लौटना पड़ा। आज भी नदी के किनारे पर बना स्तम्भ उस महान् बलिदान की याद दिलाता है, जिसके कारण इटली को पराजय के मुख से बचना पड़ा।

बदला तो फिर ऐसा बदला

नाम था उसका 'जारक खान।' कबायिली सरदार का छह फुट चार इंच ऊँचा, दैत्याकार होनहार बेटा, समाज की अव्यवस्था तथा दुष्प्रवृत्तियों का शिकार होकर वह दस्यु बन गया। सामान्य दस्यु दल का नायक नहीं, एक हजार सुसंगठित दस्यु सेना का सेनापति। भारत के पश्चिमोत्तर सीमान्त क्षेत्र को अपने आतंक से हिला देने वाला। फौज तथा हवाई जहाजों का उपयोग करके भी ब्रिटिश सरकार जिससे पार न पा सकी। उसके सर की कीमत बढ़ते-बढ़ते सन् १९३० तक २५००० पौण्ड (तीन लाख पच्चीस हजार रुपया) तक पहुँच गई। सबसे अप्रभावित उसका आतंक बढ़ता हुआ। १९३९ की अपनी परम चरम सीमा पर था।

किन्तु जिस दुष्टतापूर्ण कार्य से उसे विरत करने में ब्रिटिश सरकार समर्थ न हो सकी, उसे उसके अन्तःकरण में पड़े हुए एक छोटे संस्कार ने कर दिया। अपनी दुष्टता की तृप्ति हेतु एक व्यक्ति को कोड़ों से पीट-पीट कर अपने हाथों मार डालने के बाद जारक को पता लगा कि वह एक मुल्ला था। निर्दोष तथा अपनी काम की सेवा में लगा हुआ। इस पवित्र व्यक्ति की हत्या का उसे इतना अधिक दुःख हुआ कि फिर वह अपने उस कार्य को चालू न रख सका। मनुष्य को यदि वास्तविक आत्मग्लानि हो जावे, तो वह आत्म-सुधार हेतु बड़े से बड़ा कदम उठा सकता है। जारक चुपचाप अड्डे से भाग निकला और प्रायश्चित स्वरूप दो वर्ष तक भिखारी की तरह घूमता रहा। फिर अपने पिता के पास आत्म-समर्पण कर दिया।

पिता द्रवित हो गया और उसे छिपा लिया, किन्तु कानून की निगाह से वह बच न सका। सुराग लगा और पकड़ा गया। मुकदमा चला और फाँसी की सजा सुना दी गई। अब जारक की मृत्यु-दिवस की प्रतीक्षा की जा रही थी, किन्तु लोगों को क्या पता था कि जारक एक कैदी की घृणित मौत नहीं—शहीद की शानदार मौत मरेगा, जिसके शव के आगे बड़े-बड़े अधिकारी मस्तक झुकायेंगे। जारक खान के अन्तःकरण का दुष्ट दस्यु मर चुका था, पर वीर योद्धा जीवित था। सन् १९४२ के विश्व युद्ध में हिटलर का बढ़ता हुआ प्रभाव। ब्रिटिश सरकार के लिये एक-एक सिपाही मूल्यवान् था। तभी जारक ने प्रस्ताव रखा—"मेरे जैसे व्यक्ति के लिये मौत कोई मायने नहीं रखती। मरना तो मुझे है ही। अच्छा हो कि फाँसी के फन्दे को गन्दा करने के स्थान पर मुझे दुश्मन की गोलियों का सामना करने दिया जावे।" उसमें विश्वास की झलक तथा हृदय की सच्चाई की महक थी। अधिकारियों ने बात आगे बढ़ाई और प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

जारक को विभिन्न क्षेत्रों में जासूसी पर तथा गुरिल्ला टुकड़ियों में रखा गया। हर जगह उसकी सूझ-बूझ और साहस की धाक जमती रही। १९४३ में उसे वर्मा की गुरिल्ला दुकड़ी में भेज दिया गया। अपने कार्य और गुणों के कारण टोली के नायक का वह परम मित्र बन गया।

६ अप्रैल को वह अपने एक गोरखा साथी के साथ जापानी शत्रु सेना की टोह लेने गया। लौटने पर उसने देखा कि उसके अड्डे पर जापानी सेना की एक टुकड़ी ने अधिकार कर लिया है। १२ साथियों में से ९ की वह हत्या कर चुके थे। शेष तीन बँधे थे।, जिनमें एक उसका नायक भी था। दो को जापानी सैनिक संगीन चुभो-चुभोंकर अधमरा कर चुके थे और उनके बाद नायक का नम्बर था।

जारक सुरक्षित था—आसानी से निकल भाग सकता था। किन्तु अपने साथियों की दुर्दशा उससे न देखी गई। उसके जिन संस्कारों ने उसे दस्यु जीवन से तथा फाँसी के फन्दे से मुक्ति दिलाई थी, एक बार पुनः आगे आ गये। उसने उनका निर्देश पुनः माना और जो सम्मान पाया उसके लिये बड़े-बड़े सेनानी तरसते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जारक ने अपने गोरखा साथी को तेजी के साथ पास की छावनी से सहायता लाने को कहा। स्वयं अपने लिये उसने रक्त की अन्तिम बूँद तक साथियों को बचाने का संकल्प लिया। गोरखा साथी के सुरक्षित दूरी तक निकल जाने का भरोसा होते ही उसने अपनी पिस्तौल निकाल ली तथा तैयार हो गया अपनी आत्माहुति—मित्र प्रेम के नाम पर देने के लिये। उसका उद्देश्य था किसी प्रकार छावनी से सहायता आने तक जापानियों को उलझाये रखना।

अब तक उसके दोनों साथी भी मर चुके थे। जापानी सैनिक बढ़े नायक की ओर। जारक की पिस्तौल गरज उठी। जब तक सम्हलें-सम्हलें तब तक दो सिपाही उसका निशाना बन चुके थे। अब मोर्चा चालू हो गया। अकेला जारक अपनी फुर्ती तथा कुशलता के बल पर पूरी टुकड़ी को आधा घण्टे तक नचाता रहा। फिर उसने सोचा यदि इन गोलियों के युद्ध में मारा गया तो नायक न बच सकेगा। इस प्रकार देर तक पूरी टुकड़ी को उलझाए रखना भी सम्भव नहीं, अतः बिना घायल हुए ही स्वयं को पकड़ा दिया। जापानी कमाण्डर ने आज्ञा दी, "बाँधकर गोलियों से भून दो।" जारक जोर से हँसा, बोला—'मौत के लिये इतने आसान तरीके के लिये धन्यवाद।" कमाण्डर चिढ़ाकर बोला—"संगीन चुभो-चुभोकर मार डालो।"

किन्तु अभी जारक का उद्देश्य पूरा नहीं हुआ था। उसे जापानियों को उलझाये रखना था अपने शरीर से। इसके लिये आवश्यक था कि मृत्यु का धीमा से धीमा मार्ग चुनना, जिसका अर्थ था लम्बे समय तक मर्मांतक शारीरिक कष्ट, किन्तु जारक हर शर्त पर तैयार था। उसकी आँखों में वैसी ही चमक थी जैसी कभी संयमराम की आँखों में दीखी होगी, पृथ्वीराज को बचाने के लिये अपने शरीर का मांस काट-काट कर गिद्धों को खिलाने का संकल्प करते समय और उसने अपने संकल्प को पूरा भी इस शान से किया कि यदि कहीं से संयमराम देख रहे हों तो उनकी आँखों से भी दो बूँद आँसू चू पड़े होंगे।

जारक ने अपने नायक की ओर देखा और एक कठोर व्यंग छोड़ा अपने प्रतिद्वन्द्वियों पर। बोला—"हम लोग अपने शत्रुओं को हण्टर मार-मार कर सुला देते हैं। इन कायरों के हाथों में उतनी ताकत कहाँ ?" निशाना ठीक बैठा जापानी कमाण्डर अपना सन्तुलन खो बैठा, समय वे समय का ध्यान, सैनिक रीति के नियम वह भूल गया। गरज पड़ा, "बाँध दो इसके हाथ ऊपर डाल से और उधेड़ दो चमड़ी बैल्टों की मार से।" सुनने वाला सिहर जाता पर जारक मुसकरा उठा अपनी सफलता पर। उसने देखा अपने नायक मित्र की ओर रहस्य भरी दृष्टि से मानो कह रहा हो—"अब मैंने तुम्हें बचा लिया मेरे दोस्त।" नायक के नेत्र डबडबा आये—पर असमर्थ था। जापानी इस मौन संवाद से अनभिज्ञ अपनी कार्यवाही में लगे थे।

जारक पर दो सैनिकों ने बेल्टें उतारकर पूरी शक्ति से बरसाना प्रारम्भ कर दी। जारक खड़ा था शान्त निश्चल। जब कभी जापानी कमाण्डर की आँखों से आँखें मिलतीं तो खिल-खिलाकर हँस पड़ता। कमाण्डर जल-भुन जाता—कोड़े तेज हो जाते। शरीर की चमड़ी, मांस एवं रक्त के कण, धुनी जाती हुई रुई के रेशों की तरह हवा में उड़ रहे थे और जारक जैसे शरीर से परे, **"नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि"** बना हुआ खड़ा था। मारते-मारते सिपाहियों के हाथ थक गये तो फिर चुनौती दी—"बस, इसी बूते पर चले थे हमारा मुकाबला करने ?" फलस्वरूप दो के स्थान पर चार नये सैनिक आ गये।

अनवरत् दो घण्टे तक उस राक्षसी मार का सामना वह करता रहा। निढाल होने लगा, किन्तु जैसे ही कमाण्डर उसके परीक्षण को आगे आता कहता—"घबरा मत अभी मैं जिन्दा हूँ।" भयंकर शारीरिक पीड़ा, शरीर का दो-दो इन्च मांस धुएँ की तरह उड़ गया था—प्राण शरीर छोड़ने को छटपटा रहे थे। परन्तु अपने आत्मबल से वह उन्हें रोके था। प्रबल संकल्प के आगे मौत सहम गई थी।

जारक सफल हुआ। छावनी से कुमुक पहुँच गई। जापानी खदेड़ दिये गये। उसने देखा नायक को सुरक्षित बन्धन खोले जाते हुए और मृत्यु को आज्ञा दे दी प्राण ले जाने की। वहाँ, जहाँ शायद संयमराम ने आगे बढ़कर उसे कलेजे से लगा लिया होगा, यहाँ तो उसके शरीर की अंत्येष्टि पूर्ण सैनिक सम्मान के साथ हुई थी।

ऐसी गुलामी से कुर्बानी

विश्व विजय का स्वप्न दृष्टा हिटलर अपनी विशाल सेना के साथ आँधी तूफान की भाँति बढ़ रहा था। छोटे-छोटे देश बिना संघर्ष किये भयवश समर्पण करते जा रहे थे। हालैण्ड हिटलर की आँखों में तिनके की भाँति खटक रहा था। आगे बढ़ने के लिए जर्मन सेना का हालैण्ड पर विजय प्राप्त करना आवश्यक था। आदेश मिलते ही से सुसज्जित विशाल सेना हालैण्ड पर चढ़ दौड़ी।

उन दिनों देश को गरीबी के भयंकर दौर से गुजरना पड़ रहा था। इस छोटे-से मुल्क के साथ प्रकृति ने भी क्रूर मजाक किया है। पिछड़ेपन एवं गरीबी का सबसे प्रमुख कारण यह है कि हालैण्ड की जमीन की सतह समुद्र से भी नीची है। हर वर्ष समुद्र भी बड़ा विप्लव खड़ा करता है। हालैण्ड के नागरिकों को बड़ी दीवारें बनाकर अपनी सुरक्षा करनी पड़ती थी। लगभग देश की आधी शक्ति इस सुरक्षा प्रबन्ध में खप जाती थी। उनके पास न सेना थी न ही लड़ने के लिए शस्त्र।

जर्मन सैनिकों ने सोचा हालैण्ड को तो मिनटों में जीता जा सकता है। सेना और शस्त्र के बिना वह देश क्या लड़ेगा ? जर्मन सेना का हमला हुआ इस अप्रत्याशित संकट से जूझने के लिए हालैण्ड के मूर्धन्य विचारशीलों ने अविलम्ब एक आपत्तिकालीन मीटिंग बुलायी। सर्वसम्मत से तय हुआ कि समर्पण कर देने और गुलामी स्वीकार कर लेने की अपेक्षा बहादुरी से लड़ते हुए मर मिटना अधिक अच्छा है। गाँव-गाँव में नगाड़े आदि के माध्यम से मुनादी पिटवा दी गयी कि जब तक हालैण्ड का एक भी बच्चा जीवित है, हम गुलामी नहीं स्वीकार करेंगे। न शस्त्र, न सेना फिर मुकाबला कैसे हो ? निश्चय यह किया गया कि जिस भी गाँव पर जर्मन सेना हमला करे, उस गाँव की दीवाल तोड़ दी जाय अन्यथा जर्मन सैनिक जबरन गुलाम बना लेंगे। गुलाम होकर जीने की अपेक्षा शान से मरना अधिक श्रेयष्कर है। इस प्रकार समुद्र के पानी से गाँव तो डूबेगा ही, जर्मन सेना भी डूबेगी। इस युद्ध में यदि हालैंड का अस्तित्व मिट जाता है, तो कोई हर्ज नहीं, पर किसी भी कीमत पर हम गुलामी की जंजीरें नहीं पहनेंगे, हालैंड-वासियों का यह निश्चय था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिस गाँव पर जर्मन सेना ने आक्रमण किया, उसे हालैंड के युवकों ने दीवाल तोड़कर डुबो दिया और गाँव के बच्चे-बच्चे ने जल समाधि ले ली पर साथ ही जर्मन फौज की टुकड़ी भी उसमें काल-कवलित हो गयी, दूसरे और तीसरे नगर पर हमला हुआ वहाँ भी हालैंड के नागरिकों ने ऐसी ही नीति अपनायी। तीन गाँव अथाह जलराशि में समा गये, साथ में जर्मनी की फौजें भी डूब गयीं।

हिटलर को आशा भी नहीं थीं कि ऐसी परिस्थितियों से भी सामना करना पड़ सकता है। जर्मन सेना का मनोबल टूट गया। देश भक्ति उनमें भी थी, पर हालैंड-वासियों की कुर्बानी के समक्ष फीकी पड़ गयी। हिटलर ने सेना को वापस लौट जाने का आदेश दिया तथा कहा कि हालैंड पर विजय प्राप्त करना सम्भव नहीं है। अपनी डायरी में उसने लिखा—"आज मुझे पहली बार पता चला कि संगीनों, बन्दूकों तथा बमों से अधिक ताकतवर शक्ति होती है—मन एवं आत्म की। जिस देश के नागरिक आत्म-स्वाभिमान की रक्षा के लिए मरने के लिये तैयार हैं, उन्हें कोई गुलाम नहीं बना सकता।" बची हुई जर्मन सेना पराजय स्वीकार करके वापस लौट गयी।

एक सन्त जिसने गोआ को स्वतन्त्र कराया

सन् १६५० की एक रात। एक युवक अपने छोटे-से कमरे में दीपक के मद्धिम प्रकाश में बड़ी तन्मयतापूर्वक कुछ लिखने में संलग्न था। देखने से ऐसा प्रतीत होता था, मानो कोई ऋषि ध्यान की अतल गहराई में उतर गया हो और पास-पड़ोस में होने वाली किसी भी हलचल से अनभिज्ञ हो, क्योंकि कमरे के पास के नुक्कड़ पर अक्सर लड़के धमाचौकड़ी मचाते और शोरगुल करते हुए अपने खेल में मस्त रहते, पर वह युवक इन सब गतिविधियों से अप्रभावित होकर अपनी साहित्य साधना में निरत रहता। प्रतिदिन का यही उसका क्रम था। दिन में स्वयं कालेज में पढ़ता और रात में साहित्य-सृजन में जुट सकता। अनेक रातों के अथक् परिश्रम से उसने एक पुस्तक लिखी "गोवा माई विलवैड लैण्ड"।

आज रात वह उसी पुस्तक के संशोधन में लगा था और सोचता जा रहा था कि इसकी छपाई का प्रबन्ध कैसे हो ? क्योंकि वह अनेक प्रकाशकों के पास चक्कर लगा चुका था, पर पुस्तक का कथानक सुनकर सब छापने से इनकार कर देते। तभी उसके मस्तिष्क में विचार आया कि क्यों न अपनी पैतृक सम्पत्ति का इसके लिये प्रयोग किया जाय ? समाज की सम्पदा समाज के काम आ जाए, तो इसमें हर्ज क्या है ? रही अपने गुजारे की बात, तो इस छह इन्च के पेट को तो तनिक से परिश्रम से भी भरा जा सकता है।

चार एकड़ जमीन और कुछ सोने के गहने, यही उसकी कुल दौलत थी। उसे बेचकर जब पुस्तक छपवायी, तो उसने क्रान्ति मचा दी। जन-जन में वह लोकप्रिय हुई। उसमें लगा धन भी वापस आ गया। पुस्तक के प्रतिपादित विषय इतने सशक्त और सारगर्भित थे मानो मुर्दों में भी प्राण आ गये हों। समस्त गोवा चैतन्य हो उठा। उसने पराधीनता की हानियों को समझा और पुर्तगाल सरकार के विरुद्ध मुहिम छेड़ दी। इसी के फलस्वरूप सन् १९६२ में पुर्तगाल सरकार को गोवा छोड़ना पड़ा।

गोवा स्वतन्त्र हुआ। युवक को अपनी उपलब्धियों से प्रोत्साहन मिला, तो अब उसने जन्मभूमि के सांस्कृतिक पुनरुत्थान की जिम्मेदारी अपने मजबूत कन्धों पर उठायी। इसके लिये उसने "इण्डियन इन्स्टीट्यूट" नामक एक संगठन की स्थापना की और उसके माध्यम से "इण्डिया नोवा" नामक एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया। इसका मूलभूत उद्देश्य भारतीय संस्कृति की महान् परम्पराओं से गोआवासियों को अवगत कराना था, ताकि लोग देव संस्कृति की महानता को जानते-समझते हुए अपने चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में तदनुरूप परिवर्तन ला सकें। जब इस पत्रिका की एक प्रति महान् दार्शनिक रोम्यां रोलां के हाथ लगी, तो उन्होंने उसके विचारों से प्रभावित होकर अपने उद्गार प्रकट करते हुए कहा—"जिस देश में ऐसे सपूत पैदा हों, भला यह देश पराधीन कैसे रह सकता है ? पराधीनता चाहे राजनैतिक हो अथवा सांस्कृतिक, वह वहाँ टिक ही नहीं सकती।" फ्रांस के दार्शनिक सिल्वेन लेवी इस पत्रिका की विचार शैली से इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने वहाँ **"इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ सिविलाइजेशन"** नामक संस्था की स्थापना कर डाली।

आज हमें राजनैतिक स्वतन्त्रता भले ही मिल गयी हो, पर हमारी मानसिक गुलामी अभी भी बनी हुई है। प्रथा-परम्पराओं के नाम पर मूढ़-मान्यताओं, अवांछनीयताओं, कुप्रथाओं, अनैतिकता के भँवरजाल में अब भी जकड़े हुए हैं, जिससे उबरना अति आवश्यक है। ऐसा तभी सम्भव हो सकेगा, जब साहित्यकार अपनी कला का उपयोग समय और समाज को मार्गदर्शन देने के लिये स्वयं को साहित्य सृजन में नियोजित करें, तभी सांस्कृतिक गौरव के पुनरुत्थान की परम्परा को आगे बढ़ाया जा सकता है।

यह साहित्यकार और कोई नहीं वरन् गोवा के अमर सपूत टेलो डि मैस्कारेन्हास थे, जिसे गोआवासी "गोवानी संत" के नाम से पुकारते हैं। कार्य की अधिकता के कारण उत्तरार्द्ध जीवन में जब उन्हें एक सहयोगी की आवश्यकता पड़ी, तो एल्सा नाम्क एक गोआवासी समाज सेविका से इस शर्त पर शादी की कि हम बच्चे पैदा करने की तुम्हारी इच्छा पूरी नहीं कर सकेंगे। ऐल्सा तैयार हो गयी। बाद में उन्हीं की प्रेरणा से वे "ए मुल्हर हिन्दू" नामक नारी उत्थान सम्बन्धी पुस्तक लिखने सफल हुए।

काला पहाड़

"राजन् ! नाशवान शरीर इतना जरूरी नहीं कि उसके मोह से ब्राह्मण अपने कर्तव्य को ठुकरा दे।" दुबले-पतले झुर्रीदार शरीर वाले इस वृद्ध के बाल ही नहीं रोएँ तक सफेद पड़ गए थे, किन्तु गोरे रंग के इस ब्राह्मण के विशाल माथे पर सौम्य तेज की चमक थी। उनकी आँखों में भय का नामोनिशान न था। "भगवान विश्वनाथ यह विग्रह स्वयम्भू है। उन प्रलयंकर ने यदि इससे अपना तेज समेटने की सोची है, तो सेवक को अपने शरीर की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अन्तिम भावाञ्जलि भी अर्पित करनी चाहिए। तुम प्रजा और अपने परिवार की रक्षा करो।"

"प्रजा का रक्षणीयवर्ग यथा सम्भव सुरक्षित जगहों पर भेजा जा रहा है।" काशी नरेश के स्वर में कोई उत्साह नहीं था वैसे वह मृत्युदूत किधर से आएगा कोई ठिकाना नहीं ? अब तो आप आशीर्वाद दें कि क्षात्रधर्म के पालन में यह शरीर सार्थक हो।"

"तुम शूर हो।" तपस्वी ने एक बार आकाश की ओर ऐसे देखा जैसे नियति की लिखावट पढ़ रहे हों। "मरण भी उसका मंगल पर्व है, जो जीवन यज्ञ की पूर्णाहुति देश, धर्म, समाज, संस्कृति की रक्षा के लिए कर सके।"

"लेकिन आतंक का अंत असम्भव-सा लगता है। कहीं सचमुच मैं इस भारत भूमि के आतंक का अन्त कर पाता।" राजा के इन शब्दों में संघर्ष के निश्चय के बावजूद निराशा की वेदना थी। "हाँ ! आत्माहुति जरूर दे सकता हूँ और वह दूँगा।"

"नरेश ! जो द्वेष और स्वार्थ रहित हैं, जिन्होंने अपनी स्वाभाविक दुर्बलताओं को जीत लिया है, उनके बलिदान को बेकार कर देने की ताकत विश्व नियन्ता में भी नहीं।" ब्राह्मण का मुख तेजोदीप्त हो गया। नाभिकमल से उठते परावाणी के पूर्ववर्ती स्वर पश्यन्ती से अलंकृत आशीर्वाद दे गए—"तुम्हारा आत्मदान आतंक के अन्त का निमित्त अवश्य बनेगा।"

"देव।" नरपति ने विह्वल होकर उनके चरण पकड़ लिये। "मेरे मरण को तो अशून्य कर दिया आपके इस आशीर्वाद ने, किन्तु आप ....."

"मेरी चिन्ता न करो। मैं विश्वनाथ की गोद में अभय बैठा हूँ।" उन्होंने सुरक्षित स्थान जाने का आग्रह दुबारा अस्वीकार कर दिया। वह कह रहे थे, "आतंक के अन्त में ब्राह्मण अग्रणी न बने तो कर्म की पूर्णता कैसे सधेगी ?" विवश नरेश लौट गए।

"काला पहाड़ आ रहा है !" कितना भयंकर है यह संवाद। प्रलय का संदेश भी शायद इतना दारुण नहीं। वह नृशंसता की नग्न मूर्ति जनपदों को फूँकते-रौंदते, मानव के छिन्न-भिन्न शवों से धरती को वीभत्स बनाते, पिशाचों की सेना के समान आँधी के वेग से आने वाला निष्ठुर हत्यारा जिधर जाता है, दिशा उजाड़ हो जाती है। उड़ीसा को रौंदकर उसके शासक मुकुंद देव को मारकर उसने मित्रता गाँठी है दिल्ली के बहलोल लोदी से। अब जौनपुर को तबाह करता चल पड़ा है काशी की ओर।

काला-पहाड़ हिन्दू समाज की जातीय संकीर्णता की उपज। उच्च ब्राह्मण कुल में जन्मे नयनचन्द राय का लड़का "कालाचन्द राय।" बंगाल के नवाब की लड़की दुलारी बीबी से शादी करने के बाद कितना अपमानित किया उसके पैतृक समाज ने। उसने आरजू-मिन्नतें कीं "जो कहोगे प्रायश्चित्त कर लूँगा मुझे अपने से बाहर न करो।" किसी ने नहीं सुनी उसकी एक। अब वह है प्रतिशोध का आतंक, मन्दिरों का विरोधी पूरी हिन्दू जाति का शत्रु। वह अपने को मुहम्मद फर्मूली कहता है लोग कहते हैं उसे काला पहाड़, असलियत में है वह सामाजिक कट्टरपन से उपजा मूर्तिमान आतंक।

"उसका आना।" नगर उजाड़ बन गए। घर उल्लुओं, सियारों के रहने के लिए छोड़ दिए गए। लोगों के समूह भाग रहे थे। पैदल-छकड़ों की असंख्य संख्या भाग रही थी। हर मुख पर एक ही चर्चा काला पहाड़ आ रहा है। इस समूची तेरहवीं शताब्दी में उस जैसा कोई नहीं, शायद पहले भी नहीं बाद में भी नहीं। हर मुख श्रीहीन, भय विह्वल। बालक, वृद्ध, स्त्री-पुरुष और उनके पशु भी साथ हैं। हर कोई भयभीत है चारों दिशाओं में भय समाया है आज। सामाजिक कट्टरता जाति से बहिष्कृत करने की प्रवृत्ति यही है भय की माँ। अभी तक हमने सीखा है अपनों को पराया बनाना, कब बनाएँगे परायों को अपना ?

"देश पुकारता है ! धर्म पुकारता है !" अकस्मात् भेरीनाद के साथ उस दिन गाँव-गाँव पथ-पथ में घोषणा सुनाई पड़ी "आतंक के दिन अधिक नहीं हैं, बढ़ चलो संघर्ष की राह पर। युवको ! तरुणो ! देश तुम्हें पुकारता है। संस्कृति तुम्हारा आह्वान करती है ! तुम इस पुकार को भी अनसुनी कर दोगे ? "भागते कदम ठहर गए। नारियाँ कान उठाकर सुनने लगीं। उद्घोषक कह रहा था "एक ब्राह्मण के नेतृत्व में संस्कृति की रक्षा का महापर्व आज पुकार रहा है। तुम इसे अनसुना कर सकोगे ?"

"नेतृत्व ब्राह्मण का है ?" विश्वास जगा "हम सुनेंगे यह पुकार क्या करना है हमें ?" युवकों, तरुणों ने ही नहीं वृद्धों तक ने उद्घोषकों को जगह-जगह घेर लिया। अनेक जगहों पर नारियाँ आगे आ गई थीं "बतलाओ हमें क्या करना है ?"

"संगठित हो जाओ और संघर्ष करो, तपस्वी सुगतभद्र का यही आदेश है। महाकाल के आराधक ने यही कहा है कि पहले तुम अपनी बुराईयाँ निकालो ईर्ष्या-द्वेष को समूल उखाड़ दो तभी तुम संगठित हो सकोगे और तब बढ़ जाओ आसुरी शक्तियों से लोहा लेने यही अन्तिम क्षण है।"

प्राणों का ज्वार अनेक रूपों में वह चला संघर्ष ! संघर्ष !! संघर्ष !!! संघर्ष अनीतियों से, कुविचारों से वे चाहें कहीं क्यों न हों ? बड़ा तुमुल संघर्ष था। दैवी शक्तियों और आसुरी शक्तियों की प्रबल भिड़न्त थी। लोमहर्षक रोंगटे खड़ा कर देने वाला संग्राम। वर्तमान के सघन तिमिर और भविष्य के उजाले के बीच जोरदार टक्कर।

"कापुरुष। तू और क्या कर सकता था ?" ढाई हड्डी का दुर्बल ब्राह्मण काला पहाड़ को ये शब्द कहे, कौन कल्पना कर सकेगा ? जिस प्रचण्ड झंझावात के सम्मुख समूचा महाअरण्य धराशायी हो जाता है उसके सामने ..... । भीषण ताण्डव मचा काशी में। रणभूमि से रक्तारक्त शरीर, अंगारे जैसे नेत्र, खून टपकती तलवार लिए काला पहाड़ सीधे विश्वनाथ मन्दिर आया था। नीले रंग के कपड़े पहने, मलेच्छ सेना के कुछ मुख्य नायक उसके पीछे थे। उन उद्धत लोगों के घोड़े मन्दिर के भीतर गर्भगृह के सामने तक आ गए, किन्तु जैसे ही वह घोड़े

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

से कूदा महाकाल का आराधक यह वृद्ध ब्राह्मण द्वार पर सामने दिखा।

"कापुरुष ! काला पहाड़ तू कायर है ?" "मूर्ख ब्राह्मण ! क्या कहता है तू ?" चीखा वह काजल जैसे काले रंग का अत्यन्त दीर्घ एवं प्रचण्डकाय दैत्य।

"इन असहायों की हत्या से, अपवित्र शस्त्र और इन दौलत के लोभी पिशाचों को लेकर तू शूर समझता है अपने को ? कायर कहीं का।" बूढ़े ब्राह्मण की वाणी में सिर्फ शब्दों का तीखापन नहीं था, उसमें वह उपेक्षा और तिरस्कार था, जो कोई किसी पशु को भी नहीं देता। "शूर थे वे, जिन्होंने अन्याय का प्रतिकार करने में अपना बलिदान दिया। तू अभिमान में डूबा भीरु है।"

"ले" कहकर हाथ का शस्त्र काला पहाड़ ने पूरी ताकत से एक ओर फेंक दिया। झनझनाकर टूट गई वह भारी तलवार। पीछे घूमकर उसने अपने-अनुचरों को हुक्म दिया "दूसरे सब बाहर चले जाएँ।"

"नपुंसक ! मैं नहीं जानता था तू मूर्ख भी है।" ब्राह्मण ने झिड़क दिया। अब तू मुझ बूढ़े से मल्ल युद्ध करेगा। तू समझता है कि शौर्य सैनिकों में और शस्त्र में नहीं है तो तेरे इस हिंसा परायण पापी शरीर में है। हड्डी, मांस, विष्ठा में है शौर्य यह तेरे जैसे बेवकूफ की ही समझ है। वृद्ध की वाणी नहीं उनका तप प्रवाहित हो रहा था। वाणी तो सिर्फ माध्यम थी। उनकी दोनों आँखें दो मध्यान्हकालीन सूर्यों की तरह प्रकाशित थीं। कुछ घट रहा था अद्भुत-अद्वितीय, जिन्हें सामान्य सांसारिक आँखें देखने में असमर्थ थीं।

"ओह।" काला पहाड़ ने अपने होंठ दाँतों से इतनी जोर से दबाए कि उनसे खून की बूँदें छलछला आयीं। क्रोध के अधिकतम आवेश में आँखों से टपाटप आँसू टपकने लगे। पसीने से भीगा शरीर थर-थर काँपा कुछ क्षण और स्तम्भित जड़ हो गया। वह पलक तक नहीं गिरा पाया। मूर्ति की तरह स्थिर खड़ा रह गया वह। आँखें अँगारे की तरह जल रही थीं। विष निचोड़े जा रहे नाग के समान फुंकार भरी साँसें छोड़ रहा था वह।

"शौर्य अन्तरात्मा का गुण है। चित्त की स्वाभाविक प्रक्रिया पर विजय प्राप्त करने पर मिलता है यह। क्रोध राग, द्वेष को जीतने का नाम है शौर्य। है तुम में साहस शौर्य पाने का ?" ब्राह्मण श्रेष्ठ के इन शब्दों के बाद इतिहास के पृष्ठ मौन हैं, यह रहस्योद्घाटन करने के विषय में कि इस घटना के बाद तेरहवीं सदी का वह आतंक "काला पहाड़" कहाँ चला गया ?

कतिपय इतिहास विज्ञ लिखते हैं कि वह चला गया था भीषण-घनघोर जंगलों में तप-तितिक्षा द्वारा स्वयं को बदलने, सच्चा शौर्य पाने, **"स्वभाव विजयं शौर्य"** उक्ति को चरितार्थ करने।

संघ शक्ति कलियुगो

गुजरात के बोरसद क्षेत्र की जनता उन दिनों चक्की के दो पाटों के बीच पिस रही थी। एक ओर तो था डाकुओं का आतंक और दूसरी ओर सरकारी पुलिस द्वारा अपना निर्वाह व्यय ग्रामीण जनता से लिया जाना। जनता परेशान थी। उसे दोनों ओर से लूटा जा रहा था। एक ओर तो डाकू लूट रहे थे, दूसरी ओर उन्हें पकड़ने में असफल हो रही सरकारी पुलिस।

बोरसद क्षेत्र में उन दिनों डाकुओं का आतंक फैला हुआ था। दिन छिपते ही सब लोग अपने-अपने घरों में जा घुसते थे। बाहर एक बच्चा भी नजर नहीं आता था। डाकू संख्या में थोड़े थे पर संगठित होने के कारण वे पचासों ग्रामों के हजारों ग्रामवासियों के लिये सिर दर्द बने हुए थे।

अँग्रेज सरकार ने उन गाँवों की सुरक्षा के लिये पुलिस दलों की नियुक्ति कर रखी थी। पुलिस के इन सिपाहियों का खर्च ग्रामवासियों को देना पड़ता था। जब कि ये डाकुओं को पकड़ने में नितान्त असमर्थ सिद्ध होते थे। उन्हें तो अपने से मतलब था। डाकुओं से मुकाबला करके प्राणों को संकट में डालना उन्हें प्रिय नहीं था। वे डाकुओं को पकड़ते तो भी उनका खर्च वहन करने का कोई औचित्य नहीं था, पर पराधीन देश की जनता पर जितने अन्याय थोपे जाँय उतने ही कम हैं, यह सोचकर सरकारी अंधिकारी भी कानों में तेल डाले बैठे थे।

इस दोहरी मार से त्रस्त होकर उस क्षेत्र की जनता ने सरदार वल्लभ भाई पटेल का स्मरण किया। सरदार पटेल को यह सूचना मिली तो वे तुरन्त बोरसद के लिये चल पड़े। उनके मन में न डाकुओं के आतंक का भय था न सरकार की नाराजगी की परेशानी।

उन्होंने बोरसद क्षेत्र के एक ग्राम में पहुँचकर ग्रामवासियों को धीरज बँधाते हुए कहा—"हमें न डाकुओं से डरना है और न पुलिस वालों को अपनी रक्षा के लिये गाँव में रखना है। हम अपनी रक्षा स्वयं कर लेंगे।" फिर उन्होंने ग्राम के मुखिया से पूछा—"आप यह बताइये कि इस गाँव में कितने लोग रहते हैं ?"

"सात सौ"

"इन में से कितने हट्टे-कट्टे आदमी हैं—जवान और अधेड़।"

"कोई दो सौ"

"और डाकू कितने आते हैं डाका डालने ?"

"यही कोई पन्द्रह बीस या अधिक हुए तो तीस।"

"मैं समझता हूँ। हर घर में एक लाठी तो होगी ही, बीस-बीस तलवारें व दस-बारह बन्दूकें भी होंगी। कई लोग इन्हें चलाना भी जानते होंगे। इस लिहाज से गाँववासियों की ताकत डाकुओं से पाँच गुनी तो है ही। फिर अपने घर, अपना गाँव, अपने जाने-पहचाने रास्ते इनका लाभ हमें ही मिलता है। डाकू तो इतना जानते भी नहीं फिर उनसे डरने का प्रश्न ही नहीं उठता। हममें और उनमें अन्तर यही है कि वे संगठित होते हैं इसलिये जीत जाते हैं। हम लोग असंगठित व असावधान होते हैं, इसलिये उनका मुकाबला भी नहीं कर पाते।"

सरदार पटेल ने समझाया। बात ग्रामवासियों के समझ में आ गयी। एक व्यक्ति बोला—"आपका कहना बिल्कुल ठीक है।"

"तो देर किस बात की है ? गाँव में जितने भी स्वस्थ, समर्थ पुरुष हैं वे तीस-तीस का दल बनाकर

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बारी-बारी से रात में गाँव का पहरा लगाएँ। पुलिस वालों को खर्च देना बन्द कर दें। अन्य लोग भी चौकन्ने होकर सोएँ। डाकू आने पर डरें या भागें नहीं, संगठित होकर मुकाबला करें। फिर क्या मजाल कि वे इस ओर दोबारा आने का साहस कर सकें।" उनकी बातों ने जादू का-सा असर किया। देखते ही देखते दो सौ ग्राम रक्षकों की दो कम्पनियाँ हो गयीं। फिर कभी डाकुओं का आक्रमण नहीं हुआ। अपनी रक्षा में जो स्वयं समर्थ हों उसे न शत्रु का भय रहता है न अपने लिये किसी रक्षक की ही आवश्यकता।

वैरागी मुक्त पुरुष

"माँ !" बन्दा चौंक पड़े। उन्होंने बड़ी कठिनाई से वृद्धा को अपने पैरों पर से उठाया। वृद्धा ने रोते हुए कहा "मेरा बेटा मरणासन्न है, आप आशीर्वाद दें, वह अच्छा हो जाय। आपके आशीर्वाद से वह अवश्य रोगमुक्त हो जाएगा।"

"मैं क्या आशीर्वाद दूँगा। मेरे पास न तो कोई सिद्धि है, न तपस्या की शक्ति और न पुण्य।" बन्दा ने समझाने का प्रयत्न किया। कुछ मेरे द्वारा होता भी है, तो वह परम पुरुष की कृपा और गुरु की प्रेरणा से। मैं कौन होता हूँ ? जिसकी शक्ति कार्य करती है, कार्य के फल उसके।"

"आप एक चुटकी भस्म दे दें।" बुढ़िया इस समय उपदेश सुनने समझने की स्थिति में नहीं थी। वह गिड़गिड़ा रही थी।

"जैसी जगदम्बा की आज्ञा !" बन्दा अत्यन्त गम्भीर हो उठे, उन्होंने बुढ़िया को मस्तक झुकाया "आप जगदम्बा ही तो हैं। बच्चे से जो कराना हो, करा लें।" एक साधु की गम्भीरता से बन्दा ने वृद्धा के पैरों के पास से ही एक चुटकी धूल उठाई, उसे मस्तक तक ले गए एक बार नजर आकाश की ओर गई और वह धूल उन्होंने वृद्धा के हाथ में रख दी।

"मेरा बेटा अब जी जायेगा !" बुढ़िया उल्लासपूर्वक उठ खड़ी हुई, उसने नहीं देखा कि बन्दा की आँखें भर आई हैं। भाव-बिन्दुओं को रोकने की कोशिश में उन्होंने दूसरी ओर मुँह मोड़ा देखा उनका सहयोगी धीरसिंह खड़ा है। एक पल को अपने को सामान्य करते हुए उन्होंने उसके चेहरे पर नजर टिकाई। इस दृष्टि में प्रश्न की झलक थी। "सूबेदार की सेना आ रही है। बहुत बड़ी सेना है और हमारे साथ इस समय केवल पच्चीस सैनिक हैं।" बन्दा के समीप खड़े सुदृढ़काय, विशालदेह पुरुष ने बन्दा की ओर देखते हुए कहा—"आप आज्ञा करें तो हम लोग अब भी पर्वत तक पहुँच सकते हैं।"

"छिः ! बन्दा के नेत्रों में चमक आयी।" अपने प्राणों के मोह से बैरागी इन ग्रामीणों को भेड़ियों की कृपा पर छोड़कर भाग जायेगा ?" बन्दा ने कवच धारण करते हुए कहा।" बन्दा अपने आश्रितों को आततायियों के हाथों छोड़ जाएगा ऐसी आशा तुम उससे नहीं कर सकते।"

सभी जानते थे बन्दा योगी हैं। गुरु ने अपना तेज दिया है। वे महापुरुष हैं। अकालपुरुष की ज्योति उनमें उतरी है, पर बन्दा अपने को दीनों दलितों का सेवक मानते थे, उनकी वज्रदेह के भीतर फूल-सा कोमल हृदय था। जिसमें संवेदनाएँ लबालब भरी थीं, जो किसी की पीड़ा देखकर तड़प उठता था। न जाने कितनों की कराहें बन्दा को बेचैन बनाए रखती थीं।

"धीरसिंह !" अपने घोड़े पर बैठते-बैठते बन्दा ने सहचर को सम्बोधित किया—"हमारे पास केवल पच्चीस सैनिक नहीं हैं।" "मैं आपके नाम का प्रताप समझता हूँ।" धीरसिंह ने देखा कि हल पकड़ने वाले हाथ अब भाला-तलवार उठाए हैं। ग्रामीण तरुणों की संख्या बढ़ती जा रही है। वृद्ध तक दौड़े आ रहे हैं।

"प्रताप तो सर्वत्र परमात्मा का !" बन्दा ने किसी अलक्ष्य के प्रति माथा झुकाया "कर्म का प्रयोजन अपनी समूची सामर्थ्य का आदर्श के लिए उत्सर्ग है। काम तो सभी करते हैं धीरसिंह ! कोई लोभ या भय के वशीभूत होकर करता है—तो कोई अकाल पुरुष के प्रति भक्ति और अनुरक्ति से विभोर होकर। एक बँधता है दूसरा मुक्त होता है।" अपनी धुन में कहते-कहते कुछ सोचकर बोले "तुम इन नवीन सैनिकों को सँभाल लोगे ?"

"जैसी आपकी आज्ञा।" धीरसिंह सभी को व्यूह बद्ध करने लगा। वृक्षों के शिखर, ऊँचे टीले, गहरे खड्ड सब कहीं वैरागी के सैनिक बैठ चुके थे। थोड़ी देर में दृश्य बदल गया—तीन घण्टे विकट संघर्ष के थे। सेना सूबेदार की ही थी, वे लोग आए थे गाँव के निरीह लोगों को लूटने काफिरों को कत्ल करके गाजी बनाने और हो सके—तो कोई सुन्दर-सी लड़की ले जाने। सिर का सौदा करने को उनमें कोई तैयार न था, बैरागी से सामना हो जाएगा, यह उन्हें पता होता तो इधर कदम रखने की भूल वे कर नहीं सकते थे।

"बैरागी आ गया।" कयामत उतर आयी उसके साथ ! बहुत शीघ्र शत्रु के पैर उखड़ गए। अपने घायलों तक को कराहते छोड़कर वे भागे और भागते चले गए। उन्हें बन्दा नहीं, बन्दा का भय खदेड़े जा रहा था। आततायियों को खदेड़ कर वे अपने सदा के नियम के अनुसार पास के घने जंगल में अकेले ध्यान के लिए जाना चाहते थे। धीरसिंह ने आग्रह किया "आपकी कृपा से हमने विजय प्राप्त की। शत्रु से छीनी सामग्री के वितरण का तो आप आदेश दे जायँ।" "आप साक्षात् भगवान हैं। आपने मेरे पुत्र को जीवित कर दिया।" सहसा वृद्धा गिरी वैरागी के चरणों पर। उसके साथ था उसका पुत्र। दुर्बल होने पर भी उसके चेहरे पर आरोग्य की चमक थी।

"माता परमात्मा को धन्यवाद दो। तुम्हारे पुत्र को दयामय ने अच्छा किया है।" बन्दा वैरागी ने धीरसिंह की ओर मुख किया—"और भाई तुम भी। विजय उस प्रभु की हुई और उसी की शक्ति से हुई।"

"फल हुआ वह प्रभु की कृपा उनका प्रसाद।" वैरागी अश्व पर बैठते हुए बोले उसे अपने कर्म का फल मानकर पूरे कर्म का उत्तरदायित्व क्यों सिर पर लेते हो ? अपने को कर्म फल का कारण कभी मत बनाओ, फल को भगवान् पर छोड़ दो। कोई कर्म तुम्हें बाँध नहीं सकेगा।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वैरागी का अश्व उड़ चला। विजय में प्राप्त श्रेय यश तथा सम्पत्ति वे कभी न लेते थे। पद और प्रतिष्ठा उनके पास फटकने के नाम से काँप उठते थे। वे मुक्त पुरुष · · · · · ।

दूरदर्शिता और बैर का नाश

तब दक्षिण भारत में मराठों का जोर था और सारे भारत में उनका दबदबा माना जाता था। एक बार उनके मित्र राज्य ने शत्रुओं के आक्रमण का मुकाबला करने के लिए सहायता हेतु बुलाया और बालाजी पेशवा के सेनापतित्व में मराठों की सेना अपने मित्र राज्य की सहायता के लिए चल पड़ी।

मार्ग में पड़ाव डाला गया। उसके आसपास चारों ओर किसानों के खेत थे, पर सेनापति ने सचेत कर दिया कि किसी भी किसान की फसल की कोई हानि न पहुँचायी जाय। पास-पड़ोस के किसानों को भी यह सान्त्वना दे दी गयी कि वे घबराये नहीं, सेना विश्राम के लिए यहाँ रुकी है और उससे किसी को हानि उठानी नहीं पड़ेगी।

एक दिन सेनानायक कहीं गये हुए थे। मराठी सेना के कुछ उद्दण्ड सैनिकों ने थोड़ी दूर पर स्थित कुछ खेतों की फसल काट ली और अपने घोड़ों को खिला दी। बेचारे किसान रोते हुए शिविर में आये। उस समय सेनापति तो थे नहीं अतः सेना में ही उच्च अधिकारी बाजीराव से अपनी तकलीफ कही। किसानों पर हुआ यह अत्याचार बाजीराव को सहन नहीं हुआ और वे स्वयं उठकर शिकायत की जांच के लिए चल पड़े। किसानों के साथ वे उस जगह आये जहाँ उनके श्रमसीकरों से सींची गयी उपज घोड़ों के सामने पड़ी थी। बाजीराव ने उद्दण्ड सैनिकों को बुरी तरह फटकारा।

ये सैनिक मल्हारराव होल्कर के थे, जो स्वयं को बाजीराव से वरिष्ठ तथा ऊँचा समझते थे। उन्होंने बाजीराव को अपने सैनिकों पर इस प्रकार फटकार लगाते देखा तो सहन नहीं हुआ और गुस्सा होने लगा। बाजीराव यद्यपि नम्रतापूर्वक व्यवहार कर रहे थे, परन्तु उसमें श्री मल्हार राव को अपना अपमान महसूस हो रहा था। क्रुद्ध होकर उन्होंने पास ही पड़ा बड़ा-सा पत्थर उठाया और वाजीराव पर दे मारा। निशाना यद्यपि चूक गया था, फिर भी पत्थर उनके सिर से रगड़ खाता हुआ निकल गया और इस कारण माथे से खून निकलने लगा।

परन्तु बाजीराव ने उस समय धैर्य और सहनशीलता से काम लिया तथा वापस लौट आये।

सेनानायक जब शिविर में वापस लौटे, तो उन्हें घटना का सारा वृत्तान्त मालूम हुआ। स्पष्टतः दोष मल्हारराव का था। उन्हें दण्ड देने तथा किसानों की समुचित सहायता करने के लिए सेनाधिकारियों की बैठक हुई। सैनिकों को दण्डित किया गया मल्हारराव के सम्बन्ध में निर्णय लिया गया कि वे बाजीराव से क्षमा माँगे।

मल्हारराव ने इसे सामूहिक अपमान समझा। उस समय तो उन्होंने क्षमा माँग ली पर मन में यह गाँठ बाँध ली कि इस अपमान का बदला बाजीराव से अवश्य लेना है। सोचा कि बाजीराव कभी एकान्त में मिले तो उन्हें वहीं मौत के घाट उतार दिया जाय। सेनानायक तथा अन्य लोग समझेंगे कि बाजीराव को किसी वन्य-पशु ने आहार बना लिया होगा।

वह न तो बाजीराव से बोलता था और न ही कोई व्यवहार रखता था। मन में तो प्रतिशोध की आग जल रही थी, जो अवसर मिलने पर बाजीराव को मारकर बुझना चाहती थी। एक दिन अवसर मिला। अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। बाजीराव टहलने जा रहे थे और मल्हारराव भ्रमण से लौट रहे थे। बाजीराव को रोकते हुए उसने तलवार निकाली और कहा—"रुक रे। नरकीटक आज अपने अपमान का बदला लेकर छोड़ूँगा।"

बाजीराव के पास भी तलवार थी। वे मल्हारराव की अपेक्षा शक्तिशाली भी थे। चाहते तो उसे इस उद्दण्डता का दण्ड दे सकते थे। पर उन्होंने निःशस्त्रपाणि मल्हारराव के पास पहुँचकर कहा—"मल्हारराव ! तुम वीर हो और हम सब एक लक्ष्य लेकर निकले हैं। सोचो हम लड़ेंगे तो इससे हम लोगों में आपसी फूट पड़ेगी या नहीं। मुझे मारकर हीं तुम शान्त हो सकते हो, तो मार डालो पर मराठा जाति के लक्ष्य मार्ग में फूट के काँटे मत डालो।"

इस दूरदर्शिता पर मल्हारराव पिघल उठा और उसने एकान्त में बाजीराव के पैरों में पड़कर सच्ची क्षमा मांगी।

शत्रु भी मित्र बन गये

मध्याह्नकाल का सूर्य तप रहा था। पाटन का प्रतापी शासक सिद्धराज राजभवन के एक विशाल कमरे में इधर-उधर घूम रहा था। उसके मुख पर रोष की रेखाएँ स्पष्ट दिखलाई पड़ रही थीं। बार-बार दाहिने हाथ मुट्ठी को बाँयें हाथ पर मार रहा था। उसके क्रोध की सीमा न थी। कुछ देर बाद उसने आवाज दी—"अरे, कोई हाजिर है।"

"जी हजूर ! प्रतिहारी उपस्थित है।"

"आज किसी को अन्दर मत आने देना।"

"जैसी महाराज की आज्ञा।"

प्रतिहारी नमस्कार करके बाहर चला गया। महाराज फिर कमरे में घूमने लगे। उनका मुख ऐसा गम्भीर हो रहा था कि कोई अनजान आदमी उनके मन की बात को नहीं समझ सकता था। उनकी आँखों में क्रोधित सिंह की-सी लालिमा आ गई थी। कभी-कभी उनके मुख में से एक-दो शब्द भी अपने आप निकल पड़ते थे।

अवन्ती नगरी का महाअमात्य पाटन आकर वापस चला गया था। सिद्धराज को यह घटना पाटन और सौलंकियों के लिये अपमानजनक प्रतीत हुई। वर्षों से पाटन और अवन्ती में शत्रुता चली आ रही थी। किसी के सामने न झुकने वाले पाटन ने आज अवन्ती के साथ सन्धि की थी। इस सन्धि के प्रतीक के रूप में वहाँ का महाअमात्य उबक परमार पाटन में घूम फिरकर गया था। इससे सिद्धराज बड़ा क्रोधित हो रहा था। ऐसा उद्वेग उसे कभी नहीं हुआ था। वह पिंजड़े में बन्द सिंह की तरह चक्कर लगा रहा था कि पीछे से आवाज आई—"महाराज"।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सिद्धराज ने चौंककर पीछे की तरफ देखा। उसके मुँह की लालिमा और भी अधिक हो गई। सख्त ताकीद कर देने पर भी उसके एकान्त में दखल देने वाला कौन है ? उसने प्रधानमन्त्री मुंजाल महेता को देखा।

महाराज ने कहा—"मेरा निषेध होने पर भी तुम चले आये।"

"हाँ महाराज।"

"क्यों ?" राजा की आवाज में कड़वाहट थी।

आपका क्रोध देखने को।"

"अर्थात्—"

"मैं यही देखना चाहता था कि सिंह कितनी गर्जना कर सकता है ?"

"पर तुमको उस गर्जना से क्या मतलब ?"

मुंजाल ने बात को बदल दिया। वह महाराज के मुख को देखकर वास्तविक बात को समझ गया था। उसने कहा—"अवन्ती का महाअमात्य पाटन में आया यह महाराज को अच्छा नहीं लगा, यह मैं समझता हूँ।"

"मुझे अच्छा लगा या नहीं इसकी तुमको क्या चिन्ता है ?"

"आप भूल करते हैं महाराज ! साम्राज्य केवल तलवार के जोर से ही स्थापित नहीं किये जाते।"

"तो ?"

"साथ मैं बुद्धिबल भी उतना ही आवश्यक होता है ?"

"पर वह बुद्धि सिद्धराज सोलंकी की टेक को तो नहीं समझ पाती।"

"महाराज, आप अकारण ही अपने मन को व्यथित कर रहे हैं।"

"उबक पाटन में आया, तुमने उसको अपने साथ फिराकर पाटन दिखाया और फिर भी तुम अपनी बुद्धि की प्रशंसा करते हो ?"

"हाँ, पर इसमें भी कुछ रहस्य है। एक दिन आप देखेंगे कि अवन्ती का महाराजा कैदी के वेश में पाटन की सड़कों पर फिराया जायेगा।"

"समझकर बोलना, महेता।"

"जो बोल रहा हूँ उसे पूरा करके दिखा दूँगा।"—अमात्य मुंजाल के शब्दों में आत्माभिमान का कुछ भाव प्रकट हो रहा था।

इस बात को कई वर्ष बीत गये। अन्त में वह दिन आ पहुँचा जब अमात्य मुंजाल और सिद्धराज का स्वप्न सत्य हुआ। वे अवन्ती की सेना को हराकर वहाँ के राजा यशोवर्मा को पकड़कर ले आये थे। आज पाटन मानों उल्लास के मारे पागल हो रहा था। सब मकान ध्वजा और पताकाओं से सजाये गये थे, रास्ते में फूल बिखेर दिये गये थे। महाराज के आनन्द का पार न था मुंजाल महेता को एक क्षण भर की भी फुर्सत नहीं थी। समस्त नगर में यह बात फैल गई थी कि यशोवर्मा हाथी पर पिंजरा में बन्द करके घुमाया जायेगा।

मुंजाल महेता आ पहुँचे। यशोवर्मा को बड़े सम्मान के साथ रखा गया था। मालवा के अधिपति के साथ जैसा उच्चश्रेणी का व्यवहार होना चाहिये वैसा ही किया गया था। उसके तम्बू के बाहर खूब सजाया हुआ हाथी खड़ा था। उसके ऊपर बैठने की गद्दी रखी थी और गद्दी पर सोने का पिंजरा लगाया गया था।

यशोवर्मा ने अपने लिये तैयार किया गया आसन देखा। उनके दोनों तरफ महाराज सिद्धराज और मुंजाल महेता खड़े थे। यशोवर्मा सोने के पिंजरे को देखकर खिलखिलाकर हँस पड़ा।

मुंजाल को यह अच्छा न लगा। घाव के ऊपर नमक डालने की तरह उसने कहा—"हँस लो, यशोवर्मा। समय बलवान होता है। एक समय का अवन्तीपति आज कैदी है।"

"सच्ची बात है मुंजाल महेता कि समय बलवान् होता है, पर मैं इस कारण नहीं हँसा।"

"तो ?"

"इस बात को जाने दो, पहले सवारी निकल जाय, तब बताऊँगा।"

सिद्धराज राजा था, वह राजा के हृदय को पहिचानता था। यशोवर्मा को पिंजरे में घुमाना उसे पसन्द न था, पर मुंजाल तथा अन्य मंत्रियों के आग्रह से वह विवश हो गया था। अवन्तीपति यशोवर्मा उस समय समस्त भारत वर्ष में ज्ञानी शासक के रूप में विख्यात था। सिद्धराज ने आदर सहित कहा—"अवन्तीपति, क्या मैं इस हास्य का रहस्य जान सकता हूँ।"

"वह आज समझ में नहीं आवेगा।"

"तो भी मैं कोशिश करूँगा।"

"जो वस्तु समझ में आने वाली न हो, उसे अगर समझाया भी जाय तो उसका उलटा ही अर्थ जान पड़ता है।"

"नहीं यशोवर्मा ! अगर हम उसे न समझ सकें तो वह हमारी ही त्रुटि समझी जायेगी।"

"तो सवारी का कार्यक्रम पूरा हो जाने दो, हारा हुआ अवन्ती अब पाटन को जीतेगा।"

"तुम्हारी बातें समझ में नहीं आती, यशोवर्मा"।

"तो मैं पूछता हूँ कि तुम्हारे यहाँ अतिथि के लिये पिंजरे का रिवाज है ?"

मुंजाल नीचे की तरफ देखने लगा। सिद्धराज ने कहा—"सामान्य अतिथियों के लिये नहीं।"

"इसी खयाल से मुझे हँसी आई और इसी से नीचे गिरा हुआ अवन्ती विजयी बनेगा।"

सिद्धराज नम्र हो गया। मुंजाल की बुद्धि में कोई बात नहीं आ रही थी। उसका बुद्धिमान होने का गर्व इस समय खंडित हो रहा था। सिद्धराज ने कहा—"यशोवर्मा देव, मैं सिद्धराज याचना करता हूँ कि मुझे इसका रहस्य समझाओ !"

"हँसी में तो टाल नहीं दोगे ?"

"नहीं, मैं गम्भीरता से सुनूँगा।"

"तो सुनो—पाटन में शूरवीरता है, राजनीतिज्ञता भी है परन्तु ....."

परन्तु क्या ? सिद्धराज ने अधीरता से पूछा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"पाटन में गौरव नहीं है !"

"है, इसका क्या मतलब ?"

"मतलब यही कि पाटन में गर्व विशेष है। मुंजाल अमात्य जैसे भी गर्व और गौरव के बीच के अन्तर को नहीं समझ पाते।"

मुंजाल सुनता रहा।

यशोवर्मा—"यह पिंजरा किसलिये तैयार कराया ? पाटन के गौरव को बढ़ाने के लिये या उसके गर्व का पोषण करने के लिये ? इसी विचार के आने से मैं हँस पड़ा।"

महाराज सिद्धराज ध्यान लगाकर सुन रहे थे।

"मुंजाल कहते हैं कि समय बलवान है, यह बात ठीक है। एक समय ऐसा भी हो सकता है कि पाटन भी न हो तुम भी न हो, और पिंजरे में यशोवर्मा नहीं वरन् उसका शव ही फिरता।"

सिद्धराज ने मस्तक नवाया और कहा—"धन्य है देव ! आपकी दीर्घदृष्टि के लिये।"

मुंजाल ने कहा—"आपकी बात सत्य है। मेरी बुद्धि भी गर्व और गौरव के बीच के अन्तर को न समझ सकी थी। अब मुझे ही इस पिंजरे में फिरने दो।"

"नहीं, मन्त्री जी ! तुम सत्य बात को समझ गये हो, अब इस सम्बन्ध में अन्य किसी प्रकार के भ्रम में न पड़ो !"

सिद्धराज ने कहा—"पाटन और अवन्ती में मित्रता कायम रहे और हमारी भूल के उदाहणस्वरूप यह पिंजरा खाली ही जलूस में फिरता रहे।"

सवारी आरम्भ हुई। एक महाराज के अनुरूप ही यशोवर्मा का मान-सत्कार किया गया। दूर-दूर से विजयोत्सव के आनन्द और संगीत की ध्वनि सुनाई दे रही थी। चारों तरफ उत्सव की जय गर्जनाओं और वाद्य-यन्त्रों के शब्द से पाटन गूँज रहा था।

अन्तिम जीत सत्य की ही

गजनी की सेना में अजीब हलचल हो रही थी। भारी आवाज में न आने वाली बोली में हुक्म दिए जाते, घोड़े हिनहिनाते, शस्त्रों की आवाज होती। दूर, पर जंगल के बिल्कुल पास जहाँ अमीर डेरे तम्बू डालकर पड़ा था, मशालें जल रही थीं। वहाँ से घोड़े छूट रहे थे और जैसे किसी महायन्त्र की चरखी घूमती है वैसे ही सारी सेना में समझ में न आने वाले व्यूह बन रहे थे।

इधर धोधागढ़ के दरवाजे खुले और उदय होते सूर्य की सुनहरी किरणों में दानों के समान दीप्तिमान चौहान वीर जगमगाती बागें, केसरिया पाग और चमकते खड्गों से वैरियों को अन्धा बनाते घुँघरू वाले घोड़ों और ऊँटों को नचाते गढ़ से उतरे। सबसे पहले चार गज आगे-आगे उतर रहे थे धोधा बापा। जैसे कोई तैराक समुद्र की तरंगों को चारों ओर फेंकता आगे बढ़ता है वैसे ही वे बढ़े। उनकी गर्जना दूर तक सुनाई देती थी। जहाँ तक उनका हाथ फिरता था यवन सेना में भगदड़ मच जाती, व्यूह पर व्यूह चकनाचूर हो जाते। उनकी केसरिया पाग इस भीड़ में भी चमकती-दमकती आगे बढ़ी, फिर अदृश्य हुई, फिर चमकी ..... और अचानक पीछे से हरी पगड़ी और लाल दाढ़ी वाले सुल्तान ने आकर छल से वार किया। हजारों दुश्मनों की तलवारें उनकी मत्यु शय्या पर छत्र की तरह तन गईं। यवन नाचते-कूदते, पुकार लगाते गढ़ के अन्दर प्रवेश कर चारों दिशाओं में फैल गए। चौक पर पहुँचते ही गजनी की नजर पत्थर की एक प्रतिमा पर पड़ी, वह स्तब्ध हो गया उसे देखकर। ऐसा अनुपम कला कौशल उसने आज तक नहीं देखा था। हाथी रुक गया, पीछे आ रही यवन सेना में भी ठहराव आ गया।

वह प्रस्तर निर्मित मानव मानों पराक्रम का प्रतीक हो। आकाश की ओर उठी हुई वे पैनी आँखें ! स्वर्ग से अमृत को लाने वाले गरुड़ की दृष्टि थी वह। पैरों में लिपटे हुए नागों को वह हाथों से मसलकर नष्ट कर रहा था मानों पक्षिराज गरुड़ ही हो।

मन्त्रमुग्ध अमीर ने पूछा—"इसका शिल्पी कौन है ? सामने आये।" उसे आशा थी कि जनसमूह में से कोई आगे आयेगा और झुककर अभिवादन करते हुए कहेगा—"सुल्तान ! मैं इसका निर्माता हूँ।" परन्तु जब यह आशा पूर्ण नहीं हुई तब अमीर ने तनिक ऊँचे और रूखे स्वर में फिर वही आदेश दुहराया, तब भी सन्नाटा छाया रहा। क्षुब्ध होकर सुल्तान ने पूछा—"किसकी प्रतिमा है यह ?" "महाप्रतापी सुल्तान ने अभी जिन्हें स्वर्गलोक पहुँचा दिया, उन्हीं की मूर्ति है यह।" किसी ने बहुत डरते-डरते निवेदन किया। अबकी बार सुल्तान को प्रतिमा में पहले जैसा सौन्दर्य दिखाई नहीं दिया। उसने पूछा—"क्या इस मूर्ति का शिल्पी इसी नगर में रहता है ?"

"जी।" किसी ने सहमते हुए संक्षिप्त-सा उत्तर दिया। "वह हमारे स्वागत के लिए क्यों नहीं आया ? तुरन्त उसे यहाँ हाजिर किया जाए, तभी सवारी आगे बढ़ेगी।" सुल्तान ने दृढ़ स्वर में आदेश दिया। तुरन्त शिल्पी को तलाश करके उसके सामने उपस्थित किया गया।

गजनी ने उसे तीव्र दृष्टि से घूरते हुए प्रश्न किया "तुम्ही ने बनाई है यह मूर्ति ?"

"जी हाँ।" शान्त स्वर में शिल्पी बोला।

"कैसे ?" सुल्तान ने फिर सवाल किया कुछ अटपटा-सा।

"कैसे ? यह कैसे बताया जा सकता है ? लताओं पर कलियाँ कैसे उगती हैं, क्या यह सुल्तान बता सकेंगे ?" शिल्पी ने प्रश्न को प्रश्न में ही लपेट लिया।

सुल्तान निरुत्तर ! वह भीतर ही भीतर जल उठा फिर भी संयत स्वर में बोला—"यह मूर्ति किसकी है ?"

"महाप्रतापी धोधा राणा की।" शिल्पी ने पूर्ववत् निर्भीकता से कहा।

आज तेरा महाप्रतापी धोधा राणा तो क्या सामान्य मनुष्य भी नहीं है। जब वह कुछ नहीं है—तब उसे पराक्रमी बताया दुनिया को धोखा देना नहीं है ?

"यदि मैं आज आपकी प्रतिमा बनाऊँ तो कल उसके सम्बन्ध में भी यही होगा।" शिल्पी ने निर्भयतापूर्वक कहा। "क्या मतलब ?" सुल्तान के मस्तक पर प्रश्नात्मक रेखाएँ खिंच गईं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"मृत्यु से कौन बच सका है सुल्तान ? अन्तर सिर्फ यह है कि एक सत्कर्म करके युगान्तर व्यापी कीर्ति अर्जित करता है। दूसरा नृशंसता और बर्बरतापूर्वक हँसते खिलखिलाते जीवन पुष्पों को कुचल-मसलकर अपने लिए आहें, चीत्कारें बटोरता है।"

शिल्पी कुछ और बोलता—इतने में सुल्तान ने लाल-लाल आँखों से शिल्पी को देखा और दृढ़ संयत स्वर में कहा—"कलाकार ! तुम्हारा हाथ पत्थर से स्वर्ग का निर्माण भले करे, किन्तु तुम्हारी जीभ तुम्हें रसातल की ओर ले जा सकती है।"

"अमीर कलाकार की जीभ और हाथ अलग-अलग नहीं होते। उसका मस्तिष्क और हृदय भी अलग-अलग नहीं होता। राजनीति भले ही वारांगना हो, कलाकार की नीति तो पतिव्रता है। वह मानती है कि जीवन में एक ही सत्य है और वह है परमसत्ता के आलोक में विकसित होना।" जैसे कोई ज्वालामुखी धीरे-धीरे सुलगने लगे उसी तरह शिल्पी के एक-एक शब्द से सुल्तान का क्रोध प्रज्वलित हो रहा था। अब वह सहसा फूट पड़ा। सुल्तान चिल्ला उठा—"किसी और ने यह बात कही होती तो उसका सिर कटवा लेता। परन्तु ....." फिर वह मुसकरा पड़ा और बोला "मैं तुम्हें बिल्कुल मामूली दण्ड दूँगा। सारी जनता के समक्ष तुम्हें इस मूर्ति को तोड़कर चूर-चूर करना होगा।"

भीड़ में तहलका मच गया। काना-फूँसी होने लगी। केवल तीन ही शान्त और स्थिर थे—सुल्तान, शिल्पी और मूर्ति। एक-एक क्षण एक युग जान पड़ता था। कई क्षण बीत गए, लेकिन शिल्पी का मौन न टूटा। वह अविचल भाव से खड़ा रहा। अन्त में सुल्तान ने ही चुप्पी भंग की—"मेरी आज्ञा स्वीकार है ?" "नहीं" दृढ़ स्वर में शिल्पी का संक्षिप्त उत्तर था।

"तो सिर कटाने के लिए तैयार हो जाओ।"

"हृदय गँवाने से सिर गँवाना कहीं अच्छा है।"

"क्या आज तक तुमने अपने हाथ से अपनी कोई रचना नष्ट नहीं की ?" अमीर ने शिल्पकार को उलझन में डालने के इरादे से प्रश्न किया।

"एक नहीं अनेक प्रतिमाएँ मैंने अपने हाथों से बनायीं और नष्ट की हैं।"

"किस कारण ?" सुल्तान ने विस्मित होकर पूछा। "क्योंकि उनमें मेरी कला पूर्णतया अवतीर्ण नहीं हो सकी थी। मेरे हृदय का प्रतिबिम्ब उनमें नहीं प्रकट हो सका था। परन्तु इस प्रतिमा की बात दूसरी है। यह मेरी सबसे सुन्दर कृति है और मेरा काम-सौन्दर्य का निर्माण करना है उसका विध्वंस नहीं। उस कार्य के लिए तो ईश्वर ने आप जैसे सुल्तान पैदा किये हैं।"

जन समूह थर-थर काँप उठा। उपस्थित जनों में से प्रत्येक आकुल-व्याकुल हो गया। सबने समझ लिया—सुल्तान का इस तरह उद्धत अपमान करने वाला उद्धत कलाकार अब कुछ ही क्षणों में परलोक का मेहमान बनने वाला है।

परन्तु सबके सब चकित रह गए। अमीर सिर झुकाकर खड़ा था। बड़ी देर बाद उसने गर्दन ऊपर उठाई और कहा—"कलाकार। मैंने तुम्हारे राणा को परास्त कर दिया है। शस्त्र की जीत अन्तिम जीत होती है, यही मेरा आज तक विश्वास था। परन्तु आज तुमने मेरी आँखें खोल दीं। शस्त्र की जीत अन्तिम जीत नहीं होती, सत्य की ही विजय होती है—यह ज्ञान मुझे मिल गया।"

सत्यनिष्ठ बालक

अपने शयनागार में सोये हुए महाराज छत्रपति शिवाजी के निकट पहुँचकर वह बालक तलवार का प्रहार करने ही वाला था कि सेनापति तानाजी ने उसे देख लिया और लपककर उसका हाथ पकड़ लिया और धक्का देकर जमीन पर गिरा दिया।

धमाका सुनकर महाराज शिवाजी जाग पड़े। देखा कि तानाजी द्वारा एक बालक पकड़ा हुआ है, जो उन्हें मारने के लिए किसी प्रकार शयनागार में घुस आया था, पकड़ा हुआ बालक निर्भीकता से खड़ा हुआ था। शिवाजी ने उससे पूछा—"तुम कौन हो ? और यहाँ किसलिए आए थे ?"

बालक ने कहा—"मेरा नाम मालोजी है और मैं आपकी हत्या करने के लिए यहाँ आया था।" महाराज ने पूछा—"तुम नहीं जानते हो कि इसके लिए तुम्हें क्या दण्ड मिलेगा ?"

"जानता हूँ महाराज ! मृत्युदण्ड" बालक ने उत्तर दिया।

"तो इतना जानते हुए भी तुम मेरी हत्या करने क्यों आये ? क्या तुम्हें अपने प्राणों का मोह नहीं था, मालो !" शिवाजी ने उससे पूछा।

बालक ने अपनी सारी कथा कह सुनाई। उसने कहा—"मेरे पिता आपकी सेना में नौकर थे, वे एक युद्ध में मारे गये। पीछे राज्य से हम लोगों को कोई सहायता न मिली। अब हम माँ-बेटे बड़े कष्ट से जीवन काट रहे हैं। माँ तो कई रोज से बीमार पड़ी है, घर में अन्न का एक दाना भी न होने के कारण हम लोगों को कई फाके हो गये।" बालक की आँखें छलक आईं, उस अपने वृत्तान्त को जारी रखते हुए कहा—"मैं भोजन की तलाश में घर से बाहर निकला था कि आपके शत्रु सुभागराय ने मुझे बताया कि शिवाजी कितना निष्ठुर है, जिसकी सेवा में तेरे पिता की मृत्यु हुई, वही अब तुम्हारी कुछ फिक्र नहीं करता। इसलिए तुझे शिवाजी से बदला लेना चाहिए, यदि तू उन्हें मार आवेगा, तो मैं तुझे बहुत-सा धन दूँगा। यह बात मुझे उचित प्रतीत हुई और आपकी हत्या के लिये चला आया।"

तानाजी ने कहा—"दुष्ट ! तेरे कुकृत्य से महाराष्ट्र का दीपक बुझ गया होता, अब तू मरने के लिए तैयार हो जा।"

"तैयार हूँ ! मृत्यु से मैं बिल्कुल नहीं डरता, पर एक बात चाहता हूँ कि मृत्यु शय्या पर पड़ी हुई माता के चरण स्पर्श करने की एक बार आज्ञा मिल जाय। माता के दर्शन करके सबेरे ही वापस लौट आऊँगा।" बालक ने उत्तर दिया।

शिवाजी ने कहा—"यदि तुम भाग जाओ और वापस न आओ तो ?"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बालक ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया—"मैं क्षत्रिय पुत्र हूँ, वचन से नहीं लौटूँगा।" महाराज ने मालोजी को घर जाने की आज्ञा दे दी।

दूसरे दिन सबेरे ही मालोजी दरबार में उपस्थित था, उसने कहा—"महाराज ! मैं आ गया, अब मृत्यु दण्ड के लिए तैयार हूँ।"

शिवाजी का दिल पिघल गया। "ऐसे चरित्रवान बालक को दण्ड दूँ, न मुझसे यह न होगा। महाराज ने बालक को छाती से लगा लिया और कहा—"तेरे जैसे उज्ज्वल रत्न ही देश और जाति का गौरव बढ़ा सकते हैं, मालो ! तुझे मृत्युदण्ड नहीं, सेनापति का पद प्राप्त होगा। तेरी सत्यनिष्ठा को सम्मानपूर्ण गौरव से पुरष्कृत किया जायेगा।"

संवेदना का रत्नाकर

होंठों ही होंठों में वह कुछ बुदबुदाया। शब्द अस्फुट थे, सुने नहीं जा सके। कुछ पल को ठिठके कदम एक दिशा की ओर बढ़ चले। यही दिशा क्यों उसकी याद में आज हर दिशा बेचैन थी। नगर का प्रत्येक व्यक्ति उसकी ओर आशा भरी नजरों से ताक रहा था। यहाँ तक लाशों की शून्य-अधखुली बन्द आँखों में उसी की पुकार थी। वही था जो जीवितों को त्राण, अर्धमृतकों को प्राण और मरे हुओं को अन्तिम गति दे सकता था, दे भी रहा था। वह भिक्षु था तथागत का अनुयायी, करुणा उसके जीवन का केन्द्र थी।

इन दिनों वह सेवामय हो गया था। संसार से विरक्त रहकर अपनी साधना में मग्न रहने वाला यह चीवरधारी भिक्षु इस तरह स्वयं को उत्सर्ग कर देगा—किसने सोचा था ? किन्तु संवेदना स्वयं में रत्नाकर है—प्रत्यक्ष में भले ही यह जल लहरों का समूह नृत्य भर लगे। पर समय का मन्दराचल—इसमें से अनेकों गुणों विभूतियों को प्रकट कर सिद्ध करता रहता है सब कुछ इसमें है—इसी में है।

नगर में भयंकर महामारी फैलने से उसकी सेवा स्फूर्त हुई थी। अनवरत् बढ़ते महामारी के प्रकोप ने नगर में हाहाकार मचा दिया। जिधर देखो-उधर ही कराहटें सुनाई देती थीं। लोगों में भगदड़ मच गई। किसी को कोई पूछने वाला न था। महामारी ने सारे सम्बन्ध सूत्रों को एक झटके में तोड़कर फेंक दिया था। किसी-किसी मुहल्ले में प्रत्येक व्यक्ति रोग का शिकार बना था और कोई-कोई मुहल्ला एकदम जनशून्य हो गया था। ऐसे में जब सब नगर से जंगल में भाग रहे थे, वह जंगल से नगर में आया था। घूम-घूम कर लोगों की सुश्रूषा करना, दवा पहुँचाना, पथ्य की व्यवस्था करना यही उसकी दिनचर्या थी।

वर्षों पूर्व एक बार और इस नगर में आया था, लेकिन स्वेच्छ से नहीं, राजा के आग्रह पर विवश होकर। तब ..... , कुछ सोचकर उसने आँख उठाकर ऊपर की ओर देखा, भगवान भास्कर का जरठ रथचक्र पश्चिमी क्षितिज की ओर जा रहा था। सन्ध्याकालीन वायु में उसका पीत चीवर फहरा उठा। जैसी बची हुई रश्मि राशि को तेजी से अपने में समेट लेना चाहता हो। लेकिन उसकी आँखों ने इस सबको देखकर भी नहीं देखा। वे अतीत की चित्रकारी देखने में निमग्न थीं।

उस दिन राजा के यहाँ उत्सव में वासवदत्ता का नृत्य था। अपनी पूरी तैयारी के साथ आयी थी वह। उसकी समूची देह लता किसी कवि द्वारा निबद्ध छन्दोधारा की तरह लहरा रही थी। द्रुत-मन्थर गति अनायास विविध भावों को इस प्रकार अभिव्यक्त कर रही थी, मानो किसी कुशल चित्रकार द्वारा चित्रित कल्पवल्ली सजीव होकर थिरक उठी हो। उसकी आँखों का कटाक्ष निक्षेप ऐसा था जैसे नील कमलों का चक्रवाल चंचल हो उठा हो। पूर्ण शरत्यन्द्र के समान उसका मुख इस तरह घूम रहा था कि जान पड़ता था शत-शत चन्द्र मण्डल ही आरती प्रदीपों की आरक्त माला में गुंथकर जगर-मगर दीप्ति उत्पन्न कर रहे हों। अद्भुत नृत्य था। ऐसा लगता था, वह छन्दों से बनी है, रागों से ही पल्लवित हुई है, तानों से सँवारी गई है और तालों से कसी गई है। सभी एकाग्र मन्त्रमुग्ध साँस रोके उसके नृत्य का आनन्द ले रहे थे।

नृत्य की समाप्ति के बाद वह उससे मिली थी। उत्सव की समाप्ति पर उसके आवास पर भी आयी थी वह अनेकों हाव-भाव-शील अश्लील मुद्राओं के साथ आमन्त्रण देने स्वयं को समर्पित करने। "समय पर आऊँगा" यही तीन शब्द निकले थे उसके मुख से ..... और वह समय शायद आज आया है, तभी उसके कदम इस दिशा की ओर मुड़े हैं। समय जिसने इस महानगर को महा श्मशान में परिवर्तित कर दिया है। जब उल्लास की हर्ष ध्वनि कराहटों चीख चीत्कारों के रुदन में बदल चुकी है। बढ़ते हुए कदम उसे विशाल प्रासाद के सामने ले आये। चारों ओर भयंकर सुनसान था। घर का द्वार भर खुला था, किन्तु दिखाई कोई नहीं दिया। पूरा प्रसाद भाँय-भाँय कर रहा था। एक बत्ती तक नहीं जल रही थी। भिक्षु को एक पल के लिए लगा कि कदाचित वह कहीं अन्यत्र चली गई है। क्षण भर के लिए ठिठका। मन में आया क्या लौट पड़ना उचित है ?

तभी ऊपरी तल्ले से क्षीण कण्ठ के कराहने की ध्वनि उनके कानों में पड़ी। उन शब्दों का अनुसरण करते हुए वह सीढ़ियों पर चढ़ गया और उसके शयन कक्ष तक पहुँच गया। अन्धकार में कुछ भी दिखाई न दिया। फिर उसने निश्चित सूचना पाने के उद्देश्य से आवाज लगाई "कोई है ?" उत्तर में अत्यन्त क्षीण कातर-ध्वनि सुनाई पड़ी "पानी।" भिक्षु की आँखें भर आयीं। निश्चित ही यह वासवदत्ता का कण्ठ था। जिस कण्ठ स्वर को सुनने, जिसके दृष्टि निक्षेप को पाने के लिए संभ्रान्त, श्रेष्ठीगण, स्वयं राजाधिराज, हाथ बाँधे पंक्तिबद्ध खड़े रहते थे उसी की यह दशा ?, परन्तु शाश्वत को पाए बिना स्वयं को जाने बगैर किसकी यह दशा नहीं होती ? उमड़ी करुणा ने उसके गले को रुद्ध कर दिया। भर्रायी वाणी में बोले, "मैं उपगुप्त हूँ देवि, तुम्हारा आमन्त्रण स्वीकार करके आ गया हूँ। चिन्ता न करो अभी सब ठीक हुआ जाता है।" अँधेरे में उसे कोई बरतन नहीं दिखाई दिया, न वासवदत्ता का वह मुख ही, जिसे पानी से तर करना था। आँगन में नक्षत्रों के हल्के प्रकाश में एक मिट्टी का घड़ा दिखाई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दिया। संयोग से उसमें थोड़ा पानी भी मिल गया। उसने अपना चीवर भिगोया घर में आकर पुकारा, "किधर हो, देवि ! उपगुप्त आया है।" क्षीण कण्ठ से फिर कराहने की ध्वनि हुई। धीरे-धीरे पैर रखते हुए जिधर से आवाज आई थी, उधर की ओर बढ़ा। हाथ से स्पर्श करके उन्होंने वासवदत्ता के मुख का पता लगाया और फिर उसके अधरों के पास एक हाथ रखकर दूसरे हाथ से चीवर के पानी की कुछ बूँदें गिरा दीं। ऐसा जान पड़ा, मानो वासवदत्ता की चेतना कुछ अधिक सजग हुई। कदाचित उसकी आँखें भी खुलीं। क्षीण कण्ठ से पूछा, "कौन है ?" उत्तर मिला, "उपगुप्त हूँ देवि !" उसे जैसे विश्वास न हुआ हो, बोली, "कौन भिक्षु उपगुप्त ?"

"हाँ देवि, आज मैंने तुम्हारा निमन्त्रण स्वीकार किया। साहस न छोड़ो। सब ठीक हुआ जाता है।" अँधेरे में कुछ दिखाई तो न दिया, परन्तु उपगुप्त को समझने में देर न लगी कि उसकी आँखों से अश्रुधारा बह रही है। वह सुबक-सुबक कर रो रही है। बड़े कष्ट के साथ उसने कहा, "अब आए हो भिक्षु जब सौन्दर्य नष्ट हो चुका। वह सब कुछ बीत चुका, जिसके लिए मैंने तुम्हें आमन्त्रित किया था।" कहकर वह मौन हो गई लगा—अपनी निस्तेज हो रही आँखों से उसे देखने का प्रयास कर रही है। "बीता नहीं उपज रहा है। नष्ट नहीं हुआ प्रकट हो रहा है। अपने को खोकर ही अपने को पाया जाता है, वही हो रहा है देवि।" कहते हुए उसने वासवदत्ता के ललाट का स्पर्श किया, बर्फ की तरह ठण्डा मालूम पड़ा। कुछ सोचते हुए वह बोला, "जो सुन्दर है वह शरीर नहीं शरीर तो उसके सौन्दर्य का एक लघु अंश प्रकट करके सुन्दर दिखता है। अन्यथा इस चमड़े से लिपटे हड्डियों के ढाँचे में जिसमें विष्ठा, मूत्र, खून, मवाद भरा है, क्या सुन्दरता है ?" कोई उत्तर न मिलने पर भी ऐसा लगा कि इन शब्दों को प्रयत्नपूर्वक ग्रहण किया जा रहा है।

"सौन्दर्य तो सत्य के शिवत्व का है। आत्मा ही परम ज्योति का प्रकाश है। जो शरीर की क्रिया प्राण की इच्छा, मन के चिन्तन के माध्यम से प्रकट होता है। किन्तु इसका प्राकट्य वहीं होता है जहाँ शिवत्व हो।" कहकर वह रुक गया।

"कहो-कहो भिक्षु रुक क्यों गए ?" वासवदत्ता क्षीण कण्ठ से कह रही थी "आज प्रथम बार मुझे कोई सौन्दर्य का पारखी मिला है, अन्यथा सारा जीवन तो मानव तनधारी मांस के भुक्खड़ भेड़ियों से जूझते बीता है।"

"ओह ! रूपगर्विणी—महाभिमानिनी समझी जाने वाली इस वासवदत्ता के अन्दर में भी व्यथा है" उसे आज पता चला। प्रत्यक्ष में विपत्ति का ढेर लगा देने वाले—जीवन को दहकते अँगारों में झोंक देने वाले—कष्ट, परोक्ष में इसी आत्म सौन्दर्य को प्रकट करने के लिए यह वेदना है। आत्मसत्ता पर चढ़े मल, विक्षेप, आवरणों को भस्म करने के निमित्त है, ताकि सत्प्रवृत्ति सद्चिन्तन के रूप में जीवन अपने खोए सौन्दर्य को प्राप्त कर सके।

रात्रि समाप्त हो रही थी साथ ही वासवदत्ता के जीवन की कालिमा भी। वह अपने खोए सौन्दर्य को अनुभव करने लगी थी। उसने अपने अन्दर के देवता को पहचान लिया था।

महामारी समाप्त होने के बाद वासवदत्ता परिव्राजिका हो गई, तथागत की जीवनविद्या का प्रसार करने वाली भिक्षुणी। अब वह रूपगर्विता नहीं, स्वरूप का सौन्दर्य बोध कराने वाली शिक्षिका थी। एक सौन्दर्य का पारखी अनेकों को उनका खोया स्वरूप, वैभव उपलब्ध करा सकता है, उसका जीवन इस तथ्य का प्रमाण बना।

जब अंतःकरण से बह उठे अश्रुधार

शालिवाहन मृगया (शिकार) के लिए निकलते तो वनचरों में प्रलय मच जाती। लाशों के ढेर बिछ जाते उस दिन। शेर, चीते जैसे हिंसक जन्तु ही नहीं हिरन, सांभर, नीलगाय जैसे कोमल प्रकृति के जीव-जन्तु भी उनकी कोप दृष्टि से न बचते। उनकी पशु निर्दयता दूर-दूर तक विख्यात हो गई।

महारानी वसुप्रिया मृगया से क्लान्त महाराज शालिवाहन की सेवा तो करतीं, पर उस दिन जीव दया पर उपदेश देना भी न भूलतीं। वे कहतीं—"जीव-जन्तु विराट विश्वात्मा के ही परिजन हैं। किसी को मारने और जीवन देने का अधिकार परमात्मा को है। हम मनुष्यों पर उनके उपकार पहले ही कम नहीं हैं, अपनी क्षणिक तृष्णा और दम्भ के लिए उन बेचारों का बध क्यों करें ? महाराज ! जिस तरह हम मनुष्य दूसरों के द्वारा सताया जाना बुरा मानते हैं, उसी तरह जीवों का जी दुःखाना भी पाप है। आप परमात्मा के कोप भाजन न बनें। जीवों को न सताया करें उससे दुर्गति होती है।"

शालिवाहन हँसते और कहते, "बावरी ! हर शक्तिशाली अशक्त को मारकर खा जाता है यह तो प्रकृति का नियम है, इसमें पाप क्या हो गया ?" महारानी उत्तर देती, "नहीं महाराज ! हर महान् आत्मा छोटों को प्रश्रय सहयोग और सहानुभूति देती हैं। जब समुद्र वारिद बनकर बरसता है, तब ही तो नदी-नद भरे रहते हैं, सूर्य तपता है, तभी तो सृष्टि चक्र चलता है। संसार दया और दान पर टिका है। हम यदि वह न कर सकें तो कम से कम अपने से गए-गुजरों को सताएँ भी नहीं।"

वह उपदेश सुनने के आदी नहीं थे। वह उन अहंकारी व्यक्तियों में से थे, जो स्वयं को भगवान मानने जैसा दम्भ दिखाते हैं, पर इस संसार में अहंकार टिका किसका ? कौन व्यक्ति क्रूरता करके महान् बन सका ?

वह दूसरे दिन ही मृगया के लिए निकल पड़े। असंख्य पशु-पक्षियों का वध किया उन्होंने। जीवों के विलाप के कारण वन शोक सागर में डूब गया। किसी पशु का वंशनाश ही हो गया, तो किसी मृगी के छौने मारे गए। प्रलयकाल जैसा जीव संहार कर रहे शालिवाहन ने एक हिरणी के देखते-देखते उसके दो सुकुमार बच्चों का बध कर दिया। हिरणी भी वहाँ से हटी नहीं, उसकी आँखें कह रहीं थीं—निर्दयी एक तीर और निकालकर बेध मेरा वक्षस्थल, तुझे यह तो पता चले कि जीवों के भी ममता होती है, उन्हें भी अपने बच्चे तुम मनुष्यों के समान ही प्यारे लगते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हाथ तूणीर पर गया, तो वह बिलकुल रिक्त हो चुका था। एक भी तीर न बचा था तरकस में। शंख ध्वनि की गई और महाराज शालिवाहन विजयी की भाँति दल-बल के साथ राजधानी की ओर लौट पड़े थे।

उस दिन से नवरात्रि प्रारम्भ होने थे। महारानी वसुप्रिया भगवती दुर्गा के अभिषेक के लिए राजमहल से निकलकर पर्वतीय उपत्यिका पर बने मन्दिर में जाया करती थीं। उस दिन उनके साथ राजकुमारी उत्पल भी थीं।

अभी वे पर्वत के समीप पहुँच ही पाई थीं कि झाड़ियों के एक ओर से नरभक्षी बाघ झपटा और राजकुमारी को झपटकर उठा ले गया। अंगरक्षक सैनिक देखते ही रह गए। बाघ क्षण भर में ही घने-जंगल में घुस गया। शालिवाहन के भय से भयभीत सैनिक बाघ का पीछा करते ही गए। बाघ सैनिकों की आँख बचाकर एक झाड़ी में छुपना चाहता था, पर उसका वहाँ रुकना भारी पड़ गया। शाम हो चली थी। हिरणी जिसके दोनों बच्चे आज ही महाराज शालिवाहन द्वारा मृत्यु के घाट उतार दिए गए थे, ने राजकुमारी उत्पल की ओर ममता भरी दृष्टि से देखा। एक बार अपने बच्चों की ममता फिर उमड़ पड़ी हिरणी के हृदय में। वह बाघ पर टूट पड़ी बाघ थका था इतने में पीछे से सैनिक आ गए। बाघ उत्पल को वहीं छोड़कर भाग निकला। सैनिक राजकुमारी को न देख पाने के कारण फिर से बाघ के पीछे लगे गए। हिरणी ने उत्पल को झाड़ी के अन्दर सुरक्षित स्थान पर पहुँचाया।

रात हो गई थी। उत्पल के शरीर पर बाघ के पंजों के घाव जहाँ-तहाँ लगे थे। हिरणी उन स्थानों को रात भर चाटती रही। बार-बार उसके हृदय में जितनी अपने बच्चों की ममता और करुणा उमड़ती, वह उतनी ही ममता से उत्पल को चाटती रही मानो उसे अब उत्पल में ही अपने बच्चों की आत्मा झाँकती दिखाई दे रही थी।

रातभर की प्रकृति प्रधान सुश्रूषा से उत्पल चंगी हो गई। प्रहर भर रात रह गई, तब उत्पल की चेतना लौटी। हिरणी के ममत्व में वह राज परिवार का स्नेह और ममत्व भूल गई। सूर्योदय तक वह हिरणी से ऐसी हिल-मिल गई जैसे वह उसके ही परिवार की एक सदस्या हो।

प्रातःकाल शालिवाहन स्वयं राजकुमारी को खोजते-खोजते उस स्थान पर जा पहुँचे, जहाँ उत्पल हिरणी से खेल रही थी। चुपचाप बैठी हिरणी को कुछ ध्यान नहीं था, कौन आया कौन गया ? क्रोधावेश में आकर उन्होंने तीर निकालकर प्रत्यंचा चढ़ाई। उसे कान तक खींचकर बाण छोड़ना ही चाहते थे कि उत्पल ने देख लिया। छोटी-सी बालिका उत्पल हिरणी को ओट करके दोनों हाथ फैलाकर तीर अपनी छाती में चुभा लेने के लिए खड़ी हो गई। महाराज ने डांटा "हट जा उत्पल ! एक ही तीर से इस दुष्ट हिरणी का वध कर देता हूँ।"

उत्पल मूर्तिवत खड़ी रही, उसकी बड़ी-बड़ी आँखें भाव-बिन्दुओं से भर गईं। ऐसा लगा जैसे उसके नेत्र मुखरित हो कह रहे हों। "तुम ही पिता नहीं इन जीवों के भी माता-पिता हैं। इन्हें भी मालूम होने दो कि जो मनुष्य आज निर्दयतापूर्वक पशुओं को मार सकता है, वह कल मनुष्य को भी मार सकता है।"

बढ़ी हुई प्रत्यंचा ढीली पड़ गई। धनुष हाथ से छूट गया। शालिवाहन की आँखों से आँसू झरने लगे। वह खाली हाथ हिरणी के पास तक चले गए। हिरणी की आँखें झर-झर झर रही थीं। उन्होंने निर्झर से जल लिया और प्रतिज्ञा की कि अब वे कभी किसी पशु का वध नहीं करेंगे।

प्रलयंकर का पश्चात्ताप

"महेश्वर की जय" महामन्त्री ने प्रवेश किया। किसी प्रकार मिहिरकुल का क्रोध शान्त न हुआ तो किसी भी दिन उसका मस्तक धड़ से अलग कर देने की आज्ञा दे बैठेगा। कोई उपाय होना चाहिए मिहिरकुल के मन की दिशा बदलने का। हूण महामन्त्री ने उपाय सोच लिया है, बड़े परिश्रम से साधन सफल करके वे स्वीकृति लेने आए हैं। हाथ जोड़कर बड़ी नम्रता से उन्होंने कहा "कश्मीर विश्व की सौन्दर्य भूमि है। श्रीमान की सेवा में इस सौन्दर्य भूमि की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरियाँ।"

"क्या बकते हो ? वह चिल्लाया" गन्दी नाली के कीड़ों के साथ तुम मिहिरकुल की गिनती करना चाहते हो ? उसने इतने जोर से घूँसा मारा कि सामने रखी हाथी-दाँत की रत्न-जटिल चौकी टूट गयी। मैं'। महामन्त्री थर-थर काँपने लगे। उनके मुख से शब्द नहीं निकल पा रहा था।

"फूलों से खेलना बच्चों का काम है और फूलों को खाकर नष्ट कर देना गन्दे कीड़ों का काम।" मिहिरकुल गम्भीर बना बोल रहा था—"तुमने कभी मुझे विलासी देखा है ? मैं महेश्वर का आराधक प्रलयंकर महारुद्र का दास। ध्वंस-विनाश मेरी उपासना है। भव्य नगरों के खण्डहर मेरा यशोगान करते हैं। मैं महेश्वर के श्रीअंग में जनपदों को श्मशान करके उनकी विभूति अर्पित करने की महती कामना हृदय में सेवित करता हूँ। वीणा की पिन-पिन और छुई-मुई लड़कियों की चें, चें, पें, पें, मेरा मनोरंजन करेंगी ? मेरा मनोरंजन ?"

"श्रीमान !" जैसे मन्त्र प्रेरित कोई कार्य हो रहा हो उसकी दैत्याकार भयंकर आकृति। उपसचिव हाथ जोड़े कक्ष में आ खड़ा हुआ। केवल नेत्रों के संकेत से ही उसे अपनी बात कह देने की आज्ञा मिल गई। उसने निवेदन किया—"सामने के शिखर पर पूरे सत्ताइस महागज चढ़ाए जा चुके हैं। नीचे जनसमूह श्रीमान की प्रतीक्षा कर रहा है।"

"ठीक !" मिहिरकुल उठ खड़ा हुआ। "मन्त्रि श्रेष्ठ ! मेरे मनोरंजन से यदि आपका मनोरंजन हो सके तो साथ चल सकते हैं।"

उसका मनोरंजन—कदाचित ही संसार में कोई इतना क्रूर आयोजन कभी करे। पर्वत की एक दिशा मिट्टी एकत्र करके ढालू बना दी गई है और उस ढाल के सहारे किसी प्रकार चलते-फिरते पर्वतों जैसे हाथी पर्वत के शिखर पर पहुँचा दिए गए हैं। शिखर पर पहुँचाकर उनकी सूँड़

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और पैर जंजीरों से जकड़ दिये गए हैं। बेचारे हाथी हिल तक नहीं सकते।

हूण सैनिकों ने खड्ग उठाकर जयघोष किया और वह उनके मध्य होता हुआ आगे आ खड़ा हुआ। उसे तड़क-भड़क स्वीकार नहीं। साज-सज्जा वह सदा अनावश्यक मानता है। मैदान साधारण स्वच्छ भर किया गया था। दोनों पैर फैलाकर दोनों हाथ कमर पर रखकर वह खड़ा हो गया पर्वत शिखर की ओर मुख करके।

शिखर पर हूण सैनिकों ने मोटे-मोटे लट्ठों के सहारे एक हाथी को धक्का दिया। बेचारा हाथी गिरा और लुढ़क पड़ा। चिंग्घाड़ मारता पर्वत से गिरिश्रृंग के समान लुढ़कता चला वह दीर्घकाय गज। उसकी क्षण-क्षण बढ़ती करुण चिंग्घाड़, मांस रक्त मेद का लुढ़कता लोथड़ा और हा-हा करके अट्टहास करके नीचे उसे देख-देख वह प्रसन्न हो रहा था।

एक, दो, तीन—एक के बाद एक हाथी लुढ़काया जा रहा है। नीचे सैनिकों तक के भाल पर पसीने की बूंदें छलछला आयीं, उनके पैर काँपने लगे। थक-घबराकर सबने आँखें बन्द कर लीं। किन्तु मिहिरकुल वह क्या मनुष्य है ? वह तो पिशाच है ! पिशाच !! चल रहा था उसका पैशाचिक मनोरंजन। उच्च स्वर से वह बार-बार पुकार रहा था—एक और, एक और लुढ़कने दो।

"श्रीमान् ! सहसा प्रधान सेनापति घोड़ा दौड़ाता हुआ आया। पसीने से लथ-पथ, हाँफते हुए अस्त-व्यस्त सेनापति ने मर्यादानुसार 'महेश्वर की जय' का जो जयघोष किया वह भी थके व्याकुल कण्ठ से और घोड़े से कूदकर उसके पास आ खड़ा हुआ।

रुको दो क्षण ! वह अपने मनोरंजन में बाधा नहीं आने देना चाहता था। उसने सेनापति की ओर देखा तक नहीं।

"श्रीमान समय नहीं ! "सेनापति ने आतुरता से कहा—यशोवर्मा की अपार सेना ने चारों ओर नगर घेर लिया है। अपने सैनिक गिरते जा रहे हैं।"

"यशोवर्मा !" चौंककर वह घूम पड़ा "कहाँ है यशोवर्मा ?" ठीक कहाँ है यह कैसे कहा जा सकता है ? लगता है कि नगर के सभी मोर्चों पर वही है। हूण सेनापति ठीक कह रहा था। यशोवर्मा का अश्व इतनी तेजी से अपनी सेना के समस्त अग्रिम मोर्चों पर घूम रहा था कि स्वयं उसके सैनिक समझते थे कि उनका प्रधान सेनापति उनकी टुकड़ी के साथ है। हूण सेनापति इससे और भी अस्त-व्यस्त हो उठा था। उसने कहा, "बहुत संभव है—कुछ क्षणों में वह यहीं दिखाई पड़े। इस पर्वत पर होकर ही निकल जाने का मार्ग है।"

"जय महाकाल" दिशाएँ गूँज रही थीं। नगरद्वार लगता था टूट चुके थे। कोलाहल पास आता जा रहा था। उसके लिए भाग जाने को छोड़कर दूसरा कोई मार्ग नहीं रहा था।

पर्वत के मार्ग से वन-वन भटकना जैसे उसकी नियति हो गई। उसके सैनिकों की संख्या घटती जा रही थी। कोई भूखों मरता, कोई पर्वत से लुढ़ककर जान गँवा बैठता, किसी को कच्ची हिम में लुप्त हो जाना पड़ता। हूण सैनिक पर्वतीय युद्ध के अभ्यस्त भले हों, हिमालय की शीत-हिम में निरन्तर भटके रहना कहाँ तक सहन कर सकते हैं ?

"यशोवर्मा आ रहा है।" भटकन ने उसके दैत्याकार शरीर को भी दुर्बल बना दिया। वह जिधर भटकता निकला है, जिस दिशा से जनपदों के पास पहुँचना चाहता उसे एक ही समाचार मिलता है—"यशोवर्मा की असंख्य सेना चढ़ी आ रही है।"

"यशोवर्मा ! कश्मीर में, नेपाल में, असम में जिधर जाओ उधर यशोवर्मा और उसकी असंख्य सेना। मिहिरकुल को ठीक समझना मुश्किल था कि कितने यशोवर्मा हैं। कितनी सेना है उसकी ? जादू के अतिरिक्त यह सब कैसे सम्भव है ?

"महाकाल की जय।" स्वप्न से चौंका मिहिरकुल और उठकर बैठ गया "मैं भी तो उस महाकाल महेश्वर का उपासक हूँ। क्या अपराध किया है मैंने महाकाल का ? मैंने रुद्र की अर्चना के लिए ही इतने ध्वंस किए और वही प्रलयंकर मुझसे अप्रसन्न होता गया ?"

उसने उठकर हाथ-पैर धोए, आचमन किया और बैठ गया नेत्र बन्द करके "महेश्वर ! प्रलयंकर महारुद्र ! तूने क्यों एक जादूगर मेरे पीछे लगा दिया है ? क्या दोष है मेरी आराधना में ? मैंने कहाँ अपना स्वार्थ सिद्ध किया है ?" उस पाषाण जैसे दीखने वाले भीमकाय व्यक्ति की आँखों से भी धाराएँ चल रही थीं उस दिन।

'जय महाकाल।' जब हिम-शिखर अरुणोदय की अरुणिमा लेकर सिंदूरारूढ़ हो रहे थे, ध्यानस्थ मिहिरकुल ने नेत्र खोल दिये। एक गौरवर्ण शस्त्र सज्ज कांतिमान पुरुष उसके सामने खड़ा था। उसने स्थिर भाव से पूछा—"कौन ?"

"यशोवर्मा ?" बड़े शान्त स्वर में उत्तर मिला "यशोवर्मा ?" सहसा उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। "हाँ ?" बहुत छोटा उत्तर था।

"यशोवर्मा। तब तू मेरे प्राण छोड़े दे !" उसने दीनता से कहा मैं मानता हूँ "महेश्वर की तुझ पर कृपा है, महेश्वर को छोड़कर किसी के आगे न झुकने वाला सिर तेरे आगे झुकाने के लिए तैयार हूँ।"

"तुम महेश्वर को ही मस्तक झुकाओ भाई !' यशोवर्मा ने उसे हृदय से लगा लिया—"मैं तुम्हारे प्राण लेने नहीं आया। तुम्हें महाकाल महेश्वर का सन्देश देने आया हूँ।

क्या ? फटे नेत्रों से देखता रह गया वह हूण सम्राट।

"महेश्वर केवल प्रलय के समय प्रलयंकर होते हैं !" यशोवर्मा शान्त स्वर में कह रहे थे, "देखते नहीं। उन महाकाल का सुविस्तृत श्वेत स्वरूप ! वे महाकाल आशुतोष शिव हैं। जगत् की रक्षा, प्राणियों का पालन उनका व्रत है। क्रूरता नहीं बन्धु ! सात्विकता उनकी सच्ची सेवा है। ध्वंस नहीं सृजन उनकी अर्चना है। नव निर्माण के लिए प्राणपण से प्रयत्न उनकी उपासना है। उठो ! चीन-हिन्द से पश्चिमोत्तर प्रदेश तक का तुम्हारा समस्त प्रदेश तुम्हारी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

प्रतीक्षा कर रहा है। तुम शक्तिशाली हो महान् हो, विश्व को महेश्वर का यह पावन सन्देश दो।"

"तुम सचमुच विजयी हो यशोवर्मा !" मिहिरकुल की आँखें भर आयीं। "सचमुच सात्विकता विजयी है। लेकिन मुझे अब राज्य नहीं चाहिए मैं तो महेश्वर की उस उतुंग विभु सात्विकता की उपासना करने जा रहा हूँ।"

सैनिक उस छोटे-से पर्वतीय शिविर को घेरे खड़े थे। जब यशोवर्मा बाहर आए—हूण सैनिक उनके पीछे चले आए। स्वयं यशोवर्मा ने मस्तक झुका रखा था। ध्वंस का परित्याग कर सृजन की अभिनव साधना में दीक्षित मिहिरकुल चला जा रहा था दूसरी ओर हिमश्रेणियों में दूर-दूर और उसकी वह धुँधली छाया नेत्रों में अदृश्य हो गयी।

तथ्य का सत्य के प्रति समर्पण

विद्या विहार का उस दिन दीक्षान्त संस्कार था। आचार्य रौहित्य स्नातकों के सम्मुख समापन का प्रवचन कर रहे थे। सुनने वालों में अन्तेवासी ही नहीं—सुदूर प्रदेशों के सहस्रों जिज्ञासु और भद्र पुरुष भी सम्मिलित थे। उस सत्र में जो ज्ञान गंगा बह रही थी, उसमें अवगाहन करके श्रोता मन्त्र मुग्ध हो रहे थे। प्रत्येक मुख से यही निकल रहा था—ऐसे अमृत वर्षण का लाभ कभी कदाचित ही किन्हीं भाग्यशालियों को मिलता है।

उस समारोह में स्वयं कौशल नरेश उपस्थित थे। विद्या विहार के समापन समारोह में उनकी उपस्थिति अनिवार्य तो नहीं थी, पर आचार्य रौहित्य द्वारा ओजस्वी वाणी में जो तत्वान्वेषी प्रतिपादन होता था, उससे अवगत होने का लोभसंवरण कर सकना भी उनके लिए कठिन था। सो वे उपस्थित रहे ही। उपस्थिति का एक और भी कारण था—विद्या विहार को निर्माण कराने से लेकर उसके संचालन तक का सारा उत्तरदायित्व राज नर्तकी मधूलिका के कन्धों पर था। राजाधिराज उसे प्राणाधिक प्यार करते थे। उसके भृकुटि विलास पर उनका मन मयूर नाचता रहता था। एक क्षण के लिए भी उससे विलग रहना उनके लिए कठिन था। मधूलिका उन दिनों सत्र समारोह में पूरी तरह व्यस्त थी सो कौशल नरेश की इस कारण भी उपस्थिति सहज स्वाभाविक हो गई।

आचार्य की अमृत वर्षा कई दिन चली, वे मेघ गर्जन जैसे अपने ओजस्वी प्रतिपादनों में तत्व दर्शन के गम्भीर विषयों पर प्रकाश डालते चले जा रहे हैं, इस बार उनका प्रधान विषय था—"तथ्य और सत्य' सन्दर्भ पर अधिकाधिक गहरा प्रकाश डालते हुए वे यह सिद्ध कर रहे थे कि "सत्य अविछिन्न रूप से तथ्य के साथ जुड़ा हुआ है।" तथ्य के आधार पर ही सत्य को पहचाना और पाया जा सकता है। तथ्यरहित सत्य भ्रान्ति मात्र है। सत्य को पाना हो, तो तथ्यों का अवलम्बन करना होगा।

विषय गम्भीर था। प्रवाह की धारा इतनी वेगवती थी कि उसके साथ बहने के अतिरिक्त सामान्य बुद्धि के लिए और कोई चारा ही न था। करतल-ध्वनि से विद्वान और जिज्ञासु प्रतिपादन के समर्थन में बार-बार करतल-ध्वनि कर रहे थे। समारोह का क्रम बड़े उत्साहवर्धक वातावरण में चल रहा था।

मधूलिका राजनर्तकी थी। उसका रूप यौवन समय की परिधि का उल्लंघन करके उस स्तर पर जा पहुँचा था जिसे सर्वोपरि कहा जा सके। प्रकृति ने उसकी काया जिस कला का आश्रय लेकर रची थी, मानो वह अनुपम और अपूर्व ही रही हो। कौशल नरेश उसके सौन्दर्य पर इतने मुग्ध थे कि और कुछ देखना सुनना उन्हें फीका ही लगता था। धन के उसके पास भण्डार भरे पड़े थे। महाराज ने उसे इन्द्राणी और कुबेर पत्नी की तरह सुसम्पन्न बनाने में कुछ छुपा न रखा था। राज्यकोष की चाबियाँ उसके संकेतों पर खुलती बन्द होती थीं।

यह सब तो तथ्य था—वह अपनी मांसलता को बेचकर महाराज को अपने मोहपाश में बाँधने वाली मायाविनी ही सर्वत्र समझी जाती थी। राज्यकोष खाली करके अपना घर भर लेने का दोष भी उस पर मढ़ा गया था और यह दोनों ही आरोप अपने स्थान पर तथ्य थे। किन्तु यदि यही सत्य भी है, तो उस नगर वधू का व्यक्तित्व कितना हेय और पतित हो सकता है, इसकी कल्पना करने से मधूलिका का हृदय विदीर्ण होने लगा। वह रूपवती ही नहीं—बुद्धिमती और सूक्ष्मदर्शी भी थी। दूसरों की तरह उसने आचार्य रौहित्य का प्रवचन कानों से ही नहीं सुना वरन् उसके प्रकाश में अपने आपको भी देखा परखा। एक बार ही वह तिलमिला गई।

अब तक मधूलिका के स्वप्न कुछ दूसरे ही थे। वह कुलीन परिवार में उत्पन्न हुई थी। उदरपूर्ति के लिए अथवा वासना के लिये उसे राजनर्तकी बनना पड़ा हो सो बात भी नहीं थी और न किसी ने उसे इसके लिए बाध्य किया था। यह उसका स्वेच्छा चयन ही था। अपने ही प्रयास में वह सफल हुई थी। इसके पीछे एक विशेष उद्देश्य था। वह चाहती थी कि कौशल देश का विद्या विहार—धर्म संघ की महती आवश्यकता पूरी करे और मानव अन्तरात्मा पर छाई हुई मोह कालिमा को धोने के लिए बढ़-चढ़ कर काम करे। सहस्रों सुयोग्य भिक्षु तैयार हों और वे विश्व के कोने-कोने में संव्याप्त अधर्म के उन्मूलन में अपने ज्योतिर्मय जीवन द्वारा महती भूमिका प्रस्तुत करें। ऐसे सुसम्पन्न विद्या केन्द्र के लिए प्रचुर साधनों की आवश्यकता थी। धर्म के प्रति लोक-रुचि के अभाव में वे साधन बड़ी मन्दगति से जुट रहे थे और लगता था इस क्रम से तो दिग्भ्रान्त वातावरण को दिशा देने में युगों तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। मधूलिका ने सोचा क्यों न वह अपने रूप यौवन को बेचकर इतने साधन जुटाये और एक धर्म संघ को समर्थ बेना सकने वाला सुसम्पन्न विद्या विहार चलाये।

वर्षों वह उस विचार के सित-असित पक्षों पर ऊहापोह करती रही थी और इस निष्कर्ष पर पहुँची थी कि लोगों की दृष्टि में तथ्य कुछ भी क्यों न रहें—वह सत्य के लिए—सदुद्देश्य के लिये अपने सर्वस्व का सृजन करेगी यहाँ तक कि गौरव गरिमा को भी—श्रेय और परलोक का भी। लोग उसे वारांगना ही कहेंगे न ? मायाविनी ही समझेंगे ? वासना की अग्नि को जलाने वाली एक काष्ठ खण्ड की तरह उसे अपना अस्तित्व

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

खोना पड़ेगा न ? यह उसकी व्यक्तिगत क्षति हुई। समष्टि के कल्याण का सम्पादन करने में यदि व्यक्ति को अपना शील भी होमना पड़े तो हानि उसी की तो होगी—संसार को तो उसका लाभ ही मिलेगा। मधूलिका का यही विचार पक्ष क्रमशः प्रबल होता चला आया था और अन्ततः उसने इसी निष्कर्ष के आधार पर राजनर्तकी बनने का प्रयास किया था। जिसमें उसकी माँसलता ने सहज ही सफलता भी प्रस्तुत कर दी थी।

मधूलिका ने जान बूझ कर अपने मोह पाश में कौशल नरेश को जकड़ा था। चतुरता का समग्र उपयोग करके राज्यकोष से विपुल धन प्राप्त किया था किन्तु उसका समस्त उपयोग विद्या विहार के चलाने में ही होता था। उसका शयन कक्ष बहुमूल्य उपकरणों से सुसज्जित था उपयोग के लिए उसे राजसी साधन उपलब्ध थे फिर भी उसका भूमिशयन, अस्वाद आहार अपने रहस्यमय ढंग से चलता ही रहा। वीतराग सन्त की तरह उसकी मनस्थिति थी। बाहर से निंद्य और भीतर से अनिंद्य जीवन क्रम का अद्भुत समन्वय करने में कितनी अद्भुत सफलता मिली इस पर वह स्वयं आश्चर्यचकित थी और सन्तुष्ट थी कि उसे जो कुछ सहना या करना पड़ रहा है, वह एक देव समर्पित बलिदानी के भाव स्तर से छोटा हेटा नहीं है।

पर इन दिनों आचार्य रौहित्य के जो प्रवचन हो रहे थे, उनसे मधूलिका को लगा वह भूल कर गई। तथ्य और सत्य को पृथक् मानती रही। तथ्यतः तो यह वारांगना ही है न ? सत्य का क्या मूल्य ? उसका उद्देश्य कुछ भी क्यों न हो वह रहेगी तो वही जो तथ्य की कसौटी सिद्ध करेगी। मधूलिका का चेहरा पीला पड़ गया उसके रोम-रोम में सहस्र वृश्चिक दंशन जैसी पीड़ा उमड़ने लगी। प्रवंचन को जहाँ श्रोताओं द्वारा अमृत वर्षण की उपमा दी जा रही थी वहाँ मधूलिका को वे मर्मबेधी पीड़ा के समान शूल से लगे जा रहे थे। अन्ततः वह अस्वस्थता का बहाना करके समीपवर्ती विश्रामकक्ष में जा लेटी और अंचल परिधान से मुँह छिपाकर सुबकने लगी। आँसू उसके मर्मस्थलों को वेध कर निकल रहे थे।

आचार्य रौहित्य का प्रवचन समाप्त हुआ विद्या विहार के कनिष्ठ प्राध्यापक विशालाक्ष का भी एक छोटा प्रवचन इसके उपरान्त होने वाला था सो वे उठे और अत्यन्त नम्रतापूर्वक बोले आचार्यश्री का परिपूर्ण सम्मान करते हुए भी मुझे यह मतभेद व्यक्त करना ही चाहिए कि तथ्य और सत्य एक नहीं है। दोनों एक-दूसरे के लिए सहायक हो सकते हैं पर यह सम्भावना भी झुठलाई नहीं जा सकती कि किसी व्यक्ति के भीतर और बाहर की स्थिति परस्पर सर्वथा भिन्न हो। साधु जैसा वेश-विन्यास बनाये हुए दस्यु भी हो सकते हैं और किसी दस्यु जैसा आचरण करने वाले व्यक्ति का बोधिसत्व होना भी सम्भव है। तथ्य और सत्य अपने स्थान पर दोनों ही महान् हैं फिर भी वे दोनों एक नहीं हो सकते। उनमें मौलिक अन्तर बना ही रहेगा।

सभा में सन्नाटा छा गया। बात मार्मिक थी सो किसी से खण्डन भी करते न बन पड़ा। रौहित्य का प्रतिपादन मानों आँधी के एक ही झोंके में उड़ गया। आचार्य की आँखें आग बरसाने लगीं उन्होंने इसे अपना अपमान माना। समय पूरा हो चुका था, सो इन्हीं असमञ्जस के क्षणों में सत्र विसर्जित करना पड़ा।

मर्माहत मधूलिका की आँखें तो आँसू बरसा रही थीं पर साथ ही उसके कान प्रवंचनों के शब्द श्रवणों से वंचित नहीं रह रहे थे। विशालाक्ष ने जो कुछ कहा उससे उसे बड़ी सान्त्वना मिली। लगा वह कनिष्ठ तो है पर वरिष्ठ आचार्य से भी उसका तत्व मन्थन कम नहीं है। आँसू सूख गये और वह अँगड़ाई लेती हुई कौशल नरेश के साथ राजभवन चली गई।

भाव भरी आवभगत के अतिरिक्त अटपटी तत्व चर्चा भी चली पर वह तो अपने को खोया-सा अनुभव कर रही थी। समीप खिसकती आई और उनकी गोदी में मस्तक रखकर ऐसी भाव-विभोर हो गई मानो उसे इष्ट की प्राप्ति हो गई हो जिस देवता के चरणों में वह अपना हृदय पुष्प चढ़ाना चाहती हो वह मूर्तिमान होकर सामने आ बैठा है।

इस अप्रत्याशित संभावना को सामने देखकर एक क्षण के लिए तो विशालाक्ष हतप्रभ और किंकर्तव्यविमूढ़ हुए किन्तु दूसरे ही क्षण संभल गये। उन्होंने अपनी सहज करुणासिक्त ममता भरे वात्सल्य के साथ सिर पर स्नेह भरे हाथ फिराये और उद्बोधन करते हुए कहा—"सत्य और तथ्य पृथक् रखे जा सकते हैं। सघन आत्मीयता को विलास आचरण से अछूता भी रखा जा सकता है। कल्याणी, श्रेयस्कर यही है। पूर्णता के लिए प्रेम से आगे बढ़कर श्रेय की शरण में ही जाना होता है।"

मधूलिका ने आँखें खोलीं उसने कातर होकर पूछा—"क्या सत्य को तथ्य के अनुरूप नहीं बनाया जा सकता ? स्नेह को ममत्व में परिणित नहीं किया जा सकता ?"

विशालाक्ष की करुणा उनके कमल जैसे अधखुले नेत्रों से एक-एक करके टपकने लगी बोले—"भद्रे ! सत्य और तथ्य का एकीकरण करना हो, तो तथ्य को ऊँचा उठाकर सत्य का वन्दन करना चाहिए। सत्य को तथ्य के अनुरूप बनाने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। प्रेम को श्रेय बनाना चाहिए। श्रेय को प्रेम नहीं।

विशालाक्ष का यह प्रतिपादन भी मधूलिका को मर्मस्पर्शी प्रतीत हुआ। उसने अपनी काया को गोदी में से हटा लिया और चरणों में मस्तक रखते हुए देव, मेरी अतृप्त आकुलता की साध का समाधान कैसे होगा ?

विशालाक्ष फफक उठे और रुंधे हुए कंठ से संघ का महामन्त्र ही देर तक लगातार गुनगुनाते रहे—**बुद्धं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणम् गच्छामि।**

गुनगुनाहट-मधूलिका का भी गुरु मन्त्र बन गई। उसके मुख से भी इन्हीं त्रिविध महासत्यों की रट विनिसृत होने लगी।

कुछ दिन महाप्रासाद के कपाट बन्द रहे। पीछे देखा गया कि मधूलिका ने राजकीय वेश-विन्यास का परित्याग कर दिया। वह भिक्षुणी के चीवर परिधानों से लिपटी हुई विद्या विहार की एक विनम्र अध्यापिका कनिष्ठ प्राध्यापक की कनिष्ठ सहायिका मात्र बनकर रह रही थी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कोटि-कोटि स्वर्ण मुद्राओं की उसकी समस्त सम्पदा विद्याविहार के कोष में जमा हो गई थी। कौशल नरेश अब नित्य विहार में आते थे। राज नर्तकी का भ्रूविलास देखने नहीं—महासती का पद-वन्दन करने और उसके चरणों की धूलि अपने मस्तक पर चढ़ाने।

शठे शाठ्यं समाचरेत्

सायंकाल का समय था। सब लोग अपने-अपने संध्या प्रार्थना के कार्यक्रम में व्यस्त थे। राजा यशस्कर देव भी संध्या कर चुके थे और इसके पश्चात् संध्या भोजन करने को जा रहे थे कि एक ब्राह्मण ने राज-द्वार पर आकर आमरण अनशन की घोषणा की। द्वारपाल के पूछने पर भी उसने कारण केवल महाराज को ही बताने को कहा। द्वारपाल ने राजप्रासाद में जाकर सूचना दी। राजा भोजन बाद में करने को कहकर स्वयं बाहर आये। अनशनकर्ता ब्राह्मण को दुःखी देख उन्होंने उसे ऐसा कठिन प्रण न करने की सलाह देते हुए उसका कारण बताने को कहा।

ब्राह्मण—"महाराज ! आपके राज्य में अधर्म ने प्रवेश कर लिया है। प्रजा अधर्म में सुख का अनुभव करने लगी है। आप ठीक तरह से न्याय करिये अन्यथा इस राजद्वार पर मैं अपने प्राण दे दूँगा।"

राजा—"हे ब्राह्मण ! मैं आपका आशय नहीं समझा। आप सब बात साफ-साफ बतलाएँ कि आपको किसने सताया है। कहीं किसी राज्य-कर्मचारी ने तो आपके साथ अशिष्ट व्यवहार नहीं किया ? अथवा किसी लम्पट ने तो आप को कष्ट नहीं पहुँचाया ? आप विश्वास रखिये मैं आपको न्याय के द्वारा सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करूँगा।"

यह बात एक हजार वर्ष पूर्व की है। काश्मीर का राजा यशस्कर देव स्वयं बड़ा धार्मिक और न्यायप्रिय व्यक्ति था और सदैव प्रजा के हित चिन्तन में ही लगा रहता था। यथा राजा तथा प्रजा। प्रजा भी राजा के ही अनुरूप आचरण करती थी। राज्य में सुख और स्वराज्य का सब लोग अनुभव करते थे।

राजा के कहने पर ब्राह्मण ने अपने दुःख का कारण सुनाना आरम्भ किया "महाराज ! मैंने विदेश में जाकर अपने श्रम के द्वारा सौ स्वर्ण मुद्राएँ उपार्जित कीं। इतना धन उपार्जित कर लेने पर मुझे सुनने को प्राप्त हुआ कि कश्मीर राज्य में अब स्वराज्य आ गया है। प्रजाजन सुख और शांति से धार्मिक जीवन व्यतीत कर रहे हैं। स्वदेश की ऐसी प्रशंसा सुनकर मातृ-भूमि का प्रेम उमड़ आया और मैं वापस लौट पड़ा। राज्य में घुसते ही कुछ क्षेत्र में लोकोक्ति सत्य ही प्रतीत हुई किन्तु चलते-चलते थक गया तो लवणोत्स ग्राम में विश्राम के लिए मैं एक कुँए पर ठहर गया। वहाँ रात्रि में विश्राम किया। विश्राम करते समय किसी प्रकार मेरी असावधानी से पोटली कुएँ में जा गिरी। मेरे जीवन की सारी पूँजी कुएँ में गिर गई, जिससे मुझे आन्तरिक दुःख और अत्यन्त निराशा हुई कि इतना समय परदेश में बिताया। अब खाली हाथ घर आकर क्या मुँह दिखाऊँ ? यह सोचकर कुएँ में ही प्राण देने का निश्चय कर रहा था। इतने में ग्राम के कुछ व्यक्ति उधर आ गए। उन्होंने हमें उदास, देख, दुःख का कारण पूछा तो मैंने सारा हाल कह सुनाया और उनसे प्रार्थना की कि यदि कोई पानी में घुसकर मेरी पोटली निकाल सकता हो तो बतलाएँ। उनमें से एक साहसी व्यक्ति ने पोटली निकाल देने को कहा और पूछा, "यदि पोटली निकाल दूँगा तो मुझे क्या मिलेगा ?" मैंने उससे कहा भाई अब उस पोटली पर मेरा क्या अधिकार रह गया है ? आप यदि उसे निकाल देते हैं, तो आप को जो ठीक लगे, उसे मुझे दे देना।

वह राजी हो गया। कुएँ में घुसकर उसने पोटली निकाल दी। उसे खोलकर देखा। सौ स्वर्ण मुद्राएँ देखकर उसे लालच हो गया और उनमें से केवल दो मुद्राएँ मुझे दे दीं। मेरी आपत्ति करने पर कहा—"यह महाराज यशस्कर देव का राज्य है। यहाँ व्यवहार मनुष्य के वचन पर चलते हैं। आपके कहे अनुसार मैंने व्यवहार किया है।"

"इस प्रकार सरलता के कारण इस औपचारिक वचन के कथन से मेरा धन उसने हड़प कर लिया। यह अन्याययुक्त व्यवहार आपके नाम पर किया गया है इसका उत्तरदायित्व आप पर है।"

राजा ने शान्तिपूर्वक सारा हाल सुना और कहा—"हे ब्राह्मण ! आप दुःखी न हों। सुखपूर्वक भोजन और विश्राम करें। कल न्याय होगा।" राजा के आश्वासन देने पर ब्राह्मण मान गया और राजा ब्राह्मण को साथ लेकर भोजन करने चले गए।

दूसरे दिन राजा की आज्ञा से लवणोत्स ग्राम के लोग सभा भवन में उपस्थित किये गए। राज दरबार में महाराजा ने न्यायाधीश का आसन सुशोभित किया। सभी व्यक्ति उपस्थित थे। राजाज्ञा से ब्राह्मण ने पोटली निकालने वाले को आकृति से पहचाना और अपनी प्रार्थना न्यायालय में उपस्थित की। राजा ने पूछा—"ब्राह्मण ने जो कुछ कहा है, इस विषय में तुम्हें क्या कहना है ?" पोटली निकालने वाले ने उत्तर दिया—"महाराज ! इनका कहना नितान्त सत्य है। ये बिल्कुल ठीक कहते हैं। किन्तु महाराज ! मैंने सत्य का पालन किया। वचन के अनुसार ही आचरण किया है।"

पोटली निकालने वाले के सत्य की स्वीकृति से शस्करदेव आश्चर्य में पड़ गये और गम्भीरतापूर्वक सोचने लगे। राजा की यह आज्ञा सुनकर सब लोग शंका में पड़ गए "अट्ठानवे स्वर्ण मुद्राएँ ब्राह्मण को दी जाँय और दो पोटली निकालने वाले को।"

लोगों के चेहरे पर शंका के भाव देख न्यायाधीश ने शंका का निवारण किया—ब्राह्मण ने पोटली निकालने से पहले तय करते समय यह नहीं कहा था कि "जो समझ में आये वह दे देना।" ऐसा कहा था "जो आपको ठीक लगे वह दे देना" पोटली निकालने वाले को अट्ठानवै (अधिक) मुद्राएँ ठीक लगीं वह तो उसने अपने पास रख ली और दो मुद्राएँ जो उसे अच्छा नहीं लगीं उसने ब्राह्मण को दे दीं। यह अन्याय है।

न्याय की इतनी सूक्ष्म दृष्टि देखकर सब लोगों ने राजा के न्याय की प्रशंसा की। जयकारों से सभाभवन गूँज गया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस न्याय से पोटली निकालने वाले और ब्राह्मण दोनों ही बहुत प्रभावित हुए। पोटली निकालने वाला अपने इस असत्य आचरण पर पश्चाताप करने लगा कि मेरे लोभ ने मुझे आज नीचा दिखाया। वास्तव में दूसरे की कमाई का अधिक भाग हमें क्यों लेना चाहिये था ? यदि मैंने उसकी सहायता की है, तो उसके पारिश्रमिक के रूप में थोड़ा-सा भाग ही लेना चाहिए था। जैसे अधिक धन मुझे प्रिय लगने के कारण ले लिया, उसी प्रकार कमाने वाले को भी उससे विलग होने में कितना दुःख हुआ होगा ? तीसरे हमने अपनी शर्तों का भी अक्षरशः पालन नहीं किया।

ब्राह्मण अपने अज्ञान पर लज्जित था कि वास्तव में मैं तो अपना सारा धन चले जाने से न्याय की दुहाई देकर राजा को मनमानी कहा-सुनी की थी। न्याय की इतनी बारीकी पर तो हमने कभी विचार भी नहीं किया था कि हमारी शर्तों का इस प्रकार अर्थ निकल सकता है।

ऐसे ही न्याय-प्रिय, प्रजा-वत्सल राजाओं ने भारत के इतिहास को उज्ज्वल रखा है।

अंगद का बैर

रावण ने एक और कूटनीतिक चाल फेंकी। बोला—"अंगद ! जिस राम ने तेरे पिता को मारा तू उन्हीं का सहायता कर रहा है। मेरे मित्र का पुत्र होकर भी तू मुझसे बैर कर रहा है।"

अंगद हँसा और बोला, "रावण ! अन्यायी से लड़ना और उसे मारना ही सच्चा धर्म है। चाहे वह मेरा पिता हो अथवा आप ही क्यों न हों ?"

अंगद के यह तेजस्वी शब्द सुनकर रावण को उत्तर देते न बना।

सम्बन्ध नहीं नीति और न्याय का पक्ष ही वरेण्य है।

रावण-विभीषण

रावण, राम की बुराई कर रहा था और सब सभासद् उसकी हाँ में हाँ मिला रहे थे, तब विभीषण ने कहा—"भैया ! आप राम की बुराई करें, इससे पहले आपको यह भी देखना चाहिये कि आपने उनके साथ कितनी बुराइयाँ बरती हैं ?" रावण ने क्रुद्ध होकर विभीषण को लंका से निकाल दिया, पर विभीषण ने जो बात उचित थी वही कही।

भय अथवा शारीरिक सम्बन्ध के मोह से अनैतिक बात का समर्थन नहीं करना चाहिए।

अहसान नहीं कर रहा हूँ

अफ्रीका में जोसेफ डोक नामक एक अँग्रेज पादरी गाँधीजी के चरित्र, व्यक्तित्व व उच्च आदर्शों से अत्यधिक प्रभावित हुए। वे भारतीय धर्म और अध्यात्म पर गहन निष्ठा रखने लगे। आगे चलकर वे भारतीय स्वाधीनता संग्राम को भी न्यायोचित समझने लगे और उसका समर्थन करने लगे। उनकी यह उदारता उनके जाति बन्धुओं को सहन नहीं हुई और वे उन्हें तरह-तरह से परेशान करने लगे।

गाँधीजी को यह ज्ञात हुआ, तो वे पादरी जोसेफ डोक से बोले—"आप हमारे लिये क्यों कष्ट उठाते हैं ? यह तो हमारी लड़ाई है।" इस पर श्री डोक ने मार्मिक उत्तर दिया—"आपने तो कहा था कि पीड़ितों की सेवा करना, उन पर अहसान करना नहीं है। वही तो मैं कर रहा हूँ।"

अन्यायी चाहे जो हो उसका प्रतिकार तो करना ही चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुरुषार्थ, अध्यवसाय, लगन और श्रमशीलता

गिलहरी का आदर्शवादी पुरुषार्थ

रावण का आतंक दक्षिण भारत में सर्वत्र व्याप्त था, उसने वनवासी दशरथ नन्दन श्रीराम की पत्नी का भी छलपूर्वक अपहरण कर लिया था।

सीता की वापसी के जब प्रयास सफल न हुए तो युद्ध ही एकमात्र विकल्प रह गया। राम रावण के युद्ध की भूमिका बन गई। रावण का तो अपना परिवार ही लाखों राक्षसों का था, पर रावण का आतंक इतना था कि राम का साथ देने के लिए तत्कालीन अनेक राजाओं में से भी कोई न आया। न्याय के पक्ष में अपने प्राण हथेली पर रखकर रीछ-वानरों का समुदाय ही जूझने को तैयार हुआ। इनमें भी हनुमान, जामवन्त, अंगद, सुग्रीव जैसे कई प्रतापी योद्धा थे, पर जो साधारण थे, वे भी लकड़ी-पत्थर लेकर लड़ाई में उतरे और बढ़-चढ़ कर पराक्रम दिखाने लगे।

युद्ध का सारा दृश्य एक पेड़ पर बैठी गिलहरी देख रही थी। रावण की अनीति और सीताहरण की गाथा भी उसने सुन रखी थी। इस धर्मयुद्ध में वह राम की विजय के लिए भगवान से प्रार्थना कर रही थी।

सद्भाव और प्रार्थना ही तो सब कुछ नहीं है। पुरुषार्थ भी तो सत्प्रयोजन में जुड़ना चाहिए। रीछ, वानर तक जब अपनी जान की बाजी लगा रहे थे, तो गिलहरी ही एक दर्शक बनकर क्यों बैठी रहे ? उसे भी तो अपनी सामर्थ्य के अनुरूप तो कुछ करना चाहिए, यही चिन्तन उसके मन में चल रहा था।

कुछ समय पूर्व सीता को रावण के हाथ से छुड़ाने के लिए बूढ़ा गिद्ध जटायु अपने प्राण दे चुका था। अनीतिकर्त्ता आततायियों से जीता नहीं जा सकता, तो उनके विरुद्ध अपनी नीति निष्ठा का परिचय देने के लिए बढ़-चढ़कर बलिदान तो किया जा सकता है। जटायु अपने प्राण दे चुका था। जटायु अपनी और रावण की शक्ति के अन्तर को जानता था, तो भी वह लड़ा, उसने कायरता नहीं दिखाई। अन्याय देखते रहने की अपेक्षा नीति से जूझने में उसने आदर्श का परिपालन समझा और रावण से लड़ते हुए ही अन्ततः जटायु ने अपने प्राण दे दिये।

गिलहरी को यह आदर्श-निर्वाह बहुत भाया। सोचने लगी कि वह भी इस धर्म युद्ध में सहयोग देने के लिए पीछे न रहेगी, भले ही यह योगदान स्वल्प ही क्यों न हो ?

गिलहरी को एक उपाय सूझा। वह रीछ-वानरों के लिए लंका पहुँचने तक का रास्ता बनाने के लिए समुद्र को उथला बनाने की बात सोचने लगी। उसके हाथ बहुत छोटे थे और कोई साधन था नहीं, बालों में बालू भरती और उसे समुद्र में झाड़ देती। लगातार वह इसी काम में लगी रहती। सबेरे से लेकर शाम तक इसी कृत्य में जुटी रहती, शरीर छोटा था, साधन सीमित थे, पर उसकी हिम्मत अटूट थी, जो बन पड़े सो नीति के समर्थन में करना ही चाहिए यह लगन उसे पूरी तरह लगी हुई थी।

सब अपने-अपने हिस्से के काम में जुटे हुए थे। गिलहरी का पुरुषार्थ तो और भी अधिक आश्चर्यजनक था। राम की दृष्टि उस पर पड़ी। साधन अल्प, पर पुरुषार्थ महान्। यह दृश्य देखकर राम पुलकित हो उठे।

उन्होंने गिलहरी के समीप जाकर उसके साहस को देखा और भावपूर्वक उसे हाथ में उठा लिया। हथेली पर बिठाया और दूसरे हाथ की उँगलियों अत्यन्त स्नेहपूर्वक उसकी पीठ पर सहलाने लगे। गिलहरी ने भी अपने को धन्य माना। वह छोटी है, तो क्या पर उसकी हिम्मत और भावना तो ऊँची मानी गई, सराही गई।

कहते हैं कि राम साँवले थे। उनकी उँगलियाँ भी वैसी ही थीं। पीठ पर हाथ फेरते रहने से गिलहरी की पीठ पर काली धारियाँ बन गईं, इसके बाद उसके वंशजों की पीठ पर काली धारियाँ बनती चली आईं। पहले उस वंश के प्राणी सफेद ही होते थे। राम के प्रति कृतज्ञता का चिन्ह उस वर्ग के प्राणियों की पीठ पर अभी भी अंकित पाया जाता है।

पुरुषार्थ देव की अभ्यर्थना—आराधना

बीमारियों को सभी ने दुतकारा तो वे पहाड़ के पास गईं और वे बोलीं आपकी सहनशीलता और उदारता प्रख्यात है; हमें सभी दुतकारते हैं, आप हमें आश्रय दें, तो यहीं रहकर दिन गुजारें।

पहाड़ ने स्वीकार कर लिया, वे चैन से रहने लगीं। रोज ही पूछती, पिताजी कोई सेवा हो, तो बताना। पहाड़ हँस भर देता।

एक बार उस क्षेत्र के किसानों का मन आया कि पहाड़ काटकर खेत बनायें और नई जमीन हथियाएँ। एक ओर से किसानों की सफलता देखकर चारों ओर लोग चिपट गये और पहाड़ का बहुत-सा हिस्सा कट गया, बीच का टीला भी गिरने जैसा हो गया।

पहाड़ चिन्ता में बैठा था। बीमारियों ने चिन्ता का कारण पूछा और कोई सेवा हो, तो बताइये, सदा की भाँति पूछा।

पहाड़ को एक बात सूझी। बीमारियों से कहा, "तुम लोग इन काटने वालों से चिपट पड़ो और यहाँ से भगा दो। नहीं तो हमारा सफाया हो जायेगा। तुम्हें भी भागना पड़ेगा।"

बीमारियाँ बहुत दिनों से ठाली बैठी थीं। उत्साहपूर्वक चल पड़ीं और पहाड़ काटने वालों से पूरी तरह चिपक गईं। फिर भी पहाड़ कटता रहा। काटने वालों ने हार नहीं मानी। कितने ही दिन बीत गये। पहाड़ ने बीमारियों से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पूछा—"लड़कियों, इतने दिन में क्या किया ? एक भी बीमार नहीं पड़ा और खुदाई ज्यों की त्यों चलती रही।"

बीमारियों ने अपनी हार पर बड़ी लज्जा प्रकट की और कहा—"यह लोग इतना पसीना बहाते हैं कि उनके साथ-साथ हमें भी बाहर निकलना पड़ता है, ठहरने की जगह ही नहीं मिलती।"

सबसे बड़ा पुरुषार्थी

एक श्रमिक पत्थर काटते-काटते थक गया तो सोचने लगा कि किसी बड़े मालिक का पल्ला पकड़े ताकि अधिक लाभ मिले और कम मेहनत पड़े।

सोचते-सोचते वह पहाड़ पर चढ़ गया और शिखर स्थित देवों की प्रतिमा से याचना करने लगा; उसने भी बात सुनी नहीं, तो सोचा बड़े देवता की आराधना करें। बड़ों में बड़प्पन अधिक होता है।

बड़ा कौन ? यों उसे सूर्य सूझा। सूर्य की आराधना करने लगा। एक दिन बादल आये और सूर्य को अपने अंचल में छिपा लिया। श्रमिक सोचने लगा—सूर्य से बादल बड़ा है। यों उसने अपना इष्ट देव बदला और बादलों की अभ्यर्थना करने लगा।

फिर सोचा बादल तो पहाड़ से टकराते और सिर फोड़कर वहाँ समाप्त हो जाते हैं। इसलिए पहाड़ का भजन क्यों न करें ?

बाद में सूझा कि पहाड़ को तो रोज हमीं काटते हैं। अपने आपको सबसे बड़ा क्यों न मानें ?

इसके बाद वह सबको छोड़कर अपने आप को सुधारने में लगा और कुछ दिन बाद पुरुषार्थ के सहारे उस क्षेत्र के बड़ों में गिना जाने लगा।

पुरुषार्थी के संग लक्ष्मी

देवता, चिरकाल से अनुरोध करते रहे कि लक्ष्मीजी असुरों के यहाँ न रहें पर लक्ष्मी ने असुर परिकर छोड़ा नहीं। एक दिन अनायास ही लक्ष्मी जी देवलोक में आ गईं। देवताओं ने असमंजस व्यक्त किया कि वे असुरों को छोड़कर क्यों चल पड़ीं।

लक्ष्मी ने कहा—"सुर और असुर होने का पुण्य-पाप भगवान देखते हैं। मेरा काम पराक्रम और पुरुषार्थ की जाँच-पड़ताल करना है; अब वे बदल गये हैं, आलस्य और दुर्व्यसन अपनाने लगे हैं। ऐसे लोगों के साथ मेरा निर्वाह कैसे हो सकता था ?"

अभ्यास भी एक चमत्कार है

फारस के बादशाह के दो पुत्र थे। बहराम और छोटा खुसरो। जिस समय बादशाह की मृत्यु हुई, बहराम अपने देश से दूर अरब के राजा के पास शिक्षा ग्रहण करने गया हुआ था। पीछे से कुछ सरदारों ने षड्यन्त्र करके छोटे राजकुमार खुसरो को सिंहासन पर बिठा दिया।

जब यह समाचार अरब पहुँचा तो वहाँ के बादशाह को बहुत बुरा लगा। उसने बहराम को एक बड़ी फौज देकर कहा कि तुम इसी समय फारस की तरफ कूच कर दो और अन्यायी सरदारों को मारकर अपने बाप की गद्दी पर अधिकार कर लो।

बहराम फौज लेकर फारस आ पहुँचा, पर उसको राज्य के लिए अपने भाई-बन्धुओं और खासकर निर्दोष सिपाहियों का खून बहाना बड़ा खराब काम जान पड़ता था। उसने खुसरो और उसके साथी अन्य सरदारों के पास सन्देश भेज दिया कि—"आपस के झगड़े के लिए निर्दोष सिपाहियों और सर्वसाधारण की जान खतरे में डालना उचित नहीं है। इसलिए हम दोनों ही किसी साहस और योग्यता के कार्य में प्रतियोगिता करें और उसमें जो सफल हो जाय वही सिंहासन का अधिकारी माना जाय।"

परीक्षा के लिए शीघ्र ही एक दिन नियत कर दिया गया। एक बड़े अखाड़े में दो भूखे शेर लाये गये और उनके बीच में राजमुकुट को रख दिया गया। अब दोनों से कहा गया कि जो कोई जाकर भूखे शेरों के बीच से मुकुट को उठाकर ले आयेगा, वही उसका अधिकारी होगा। खुसरो ने तो यह देखकर कहा कि यह कौन-सी परीक्षा है, जिसमें साफ-साफ तौर पर मौत के मुँह में जाना पड़े। मैं इसमें शामिल होने से इनकार करता हूँ, तब बहराम अपनी जगह से उठा और एक क्षण में दोनों शेरों के बीच में पहुँचकर मुकुट को उठा लिया। हजारों दर्शक एक साथ वाह-वाह करने लगे और सरदारों ने भी तुरन्त उसकी आधीनता स्वीकार कर ली। बहराम ने इस अवसर पर पूरी उदारता का परिचय दिया और जिन सरदारों ने खुसरो को राज सिंहासन पर बैठाने का षड्यन्त्र रचा था, उन सबको भी क्षमा करके पूर्ववत् अपने पदों पर बहाल रखा।

बहराम तीर चलाने में बहुत निपुण था। एक बार वह अपनी रानी के साथ शिकार खेलने गया। वहाँ एक हिरन सो रहा था। बहराम ने एक तीर ऐसा मारा कि हिरन के कान को जरा-सा छूकर निकल गया। हिरन ने समझा कि कान पर मक्खी बैठ गई है, इसलिए खुर से उसे झाड़ दिया। जब हिरन पैर को कान के पास ले गया तो बहराम ने दूसरा तीर ऐसा मारा कि पैर और कान आपस में जुड़ गये। बहराम ने तीर चलाने की निपुणता दिखाकर रानी की तरफ देखा पर रानी विशेष प्रभावित न हुई और उसने केवल इतना ही कहा—"अभ्यास से सब कुछ हो सकता है।" बहराम उसके उत्तर से नाखुश हुआ और कहने लगा—"तुम भी ऐसा अभ्यास करके दिखाओ।"

रानी भी टेक रखने वाली थी। वह किसी विशेष कार्य का बहाना करके कुछ समय के लिए एक गाँव में जाकर रहने लगी। वहाँ उसने गाय का एक बछड़ा खरीदा जिसे उठाकर वह अपने घर की छत पर चढ़ा करती थी। जैसे-जैसे बछड़ा और भारी होता जाता था वैसे-वैसे रानी का बोझा उठाने का अभ्यास भी बढ़ता जाता था। तीन वर्ष बाद बहराम शिकार खेलकर उसी गाँव के पास ठहरा जिसमें रानी रहती थी। अब बछड़ा पूरा साँड़ हो गया था और रानी उसको उठाकर छत के ऊपर चढ़ा रही थी। बहराम ने दूर से जो यह देखा, तो उसको बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह स्त्री कैसी बलवान है, जो इतने भारी साँड़ को उठाकर छत पर चढ़ जाती है। उसने इसका हाल मालूम करने के लिए अपने एक सरदार को रानी के मकान पर भेजा, पर रानी ने उसे कुछ भी बतलाने से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इनकार कर दिया और कहा, "अगर बादशाह सलामत इस बारे में कुछ जानकारी चाहते हैं, तो स्वयं अकेले यहाँ आकर मुझसे पूछें।" बहराम इस बात को सुनकर अकेला ही उसके पास पहुँचा और कहने लगा कि आपके जैसी शक्ति सम्पन्न कोई स्त्री तो क्या पुरुष भी नहीं देखा। आप इतने बड़े साँड़ को उठाकर छत पर किस तरह चढ़ सकती हैं ? बहराम को अकेले में देखकर रानी ने अपने मुँह से बुर्का हटा दिया और कहने लगी—"बादशाह सलामत अभ्यास से सब कुछ हो सकता है।"

बहराम ने तुरन्त अपनी रानी को पहचान लिया और उस दिन शिकार में होने वाली बातें भी उसे याद आ गईं। रानी की ऐसी दृढ़ता और चतुरता देखकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ और उसके सामने अपनी हार स्वीकार कर ली। वास्तव में अभ्यास से कठिन से कठिन कार्य भी सम्भव हो सकता है।

अपनी कमाई—सदा काम आई

राजा जनमेजय प्रति माह कुछ समय राज्य में यह देखने के लिए भ्रमण किया करते थे कि उनकी प्रजा को किसी प्रकार कष्ट तो नहीं है। विकास की जो योजनाएँ क्रियान्वित की जाती हैं, उनका परिपालन होता है या नहीं ? उनका लाभ नागरिकों को मिलता है या नहीं ?

वे एक गाँव से गुजर रहे थे। छद्म वेश में थे, इसलिए कोई पहचान नहीं सका। एक जगह, लड़के खेल, खेल रहे थे। एक लड़का उनमें शासक बनकर बैठा था, सभासद बने लड़के सामने बैठे थे। शासक का अभिनय करने वाला लड़का, जिसका नाम कुलेश था, खड़ा सभासदों को व्याख्यान दे रहा था—"सभासदो ! जिस राज्य के कर्मचारीगण वैभव-विलास में डूबे रहते हैं, उसका राजा कितना ही नेक और प्रजावत्सल क्यों न हो, उस राज्य की प्रजा सुखी नहीं रहती। मैं चाहता हूँ, जो भूल जनमेजय के राज्याधिकारी कर रहे हैं, वह आप लोग न करें, ताकि मेरी प्रजा असन्तुष्ट न हो। तुम सबको वैभव-विलास का जीवन छोड़कर जीना चाहिए। जो ऐसा नहीं कर सकता, वह अभी शासन सेवा से अलग हो जाय।"

सभासद तो अलग न हुए पर बालक की यह प्रतिभा उसे ही वहाँ से अवश्य खींच ले गई। जनमेजय उससे बहुत प्रभावित हुए और उसे ले जाकर महामन्त्री बना दिया। कुलेश युवक था तो भी वह बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से राज्य-कार्यों में सहयोग देने लगा। सामान्य प्रजा से उठकर जब वह महामन्त्री बनने चला था, तब उसके पास एक कुदाली, लाठी और एक उत्तरीय वस्त्र अँगोछा के अतिरिक्त कुछ नहीं था, वह इन्हें अपने साथ ही लेता गया था।

उसके प्रधानमन्त्रित्व काल में अन्य मन्त्रियों, सामन्तों एवं राज्य कर्मचारियों के लिए एक आचार-संहिता बनाई गई, जिसके अनुसार प्रत्येक पदाधिकारी को दस घण्टे अनिवार्य रूप से कार्य करना पड़ता था। अतिरिक्त आय के स्रोत बन्द कर दिये गये, इससे बचा बहुत-सा धन प्रजा की भलाई में लगने लगा। सारी प्रजा में खुशहाली छा गई, जनमेजय कुलेश के आदर्श व प्रबन्ध से बड़े प्रसन्न हुए।

लेकिन शेष सभासद, जिनकी आय व विलासितापूर्ण जीवन को रोक लगी थी, महामन्त्री कुलेश से जल उठे और उसे अपदस्थ करने का षड्यन्त्र रचने लगे।

उन्हें किसी तरह पता चल गया कि महामन्त्री के निवास स्थान में एक कक्ष ऐसा भी है, जहाँ वह किसी भी व्यक्ति को जाने नहीं देता; जब वह दिन भर के काम से लौटता है, तब स्वयं ही कुछ देर उसमें विश्राम करता है।

सभासदों ने इस रहस्य को लेकर ही जनमेजय के कान भर दिए कि कुलेश ने बहुत-सी अवैध सम्पत्ति एकत्रित कर ली है। महाराज उनके कहने में आ गये। अतएव जाँच का निश्चय कर एक दिन वे स्वयं सैनिकों सहित कुलेश के निवास पर जा पहुँचे। सब ओर घूमकर देखा पर महाराज को सम्पत्ति के नाम पर वहाँ कुछ भी तो नहीं दिखा, तभी उनकी दृष्टि उस कमरे में गई; वे समझे कुलेश निश्चय ही अपनी कमाई इसमें रखता है।

महाराज ने पूछा—"कुलेश ! तुम इस कक्ष में एकान्त में क्या किया करते हो ?" "इनकी पूजा महाराज !" उसने उत्तर दिया। "कुदाली मुझे सदैव परिश्रम की प्रेरणा देती है और लाठी स्वजनों की सुरक्षा की। उत्तरीय वस्त्र की पूजा मैं इसलिए करता हूँ कि घर हो या बाहर यही बिछौना मेरे लिए पर्याप्त है।" यह कहकर कुलेश ने तीनों वस्तुएँ उठा लीं और वहाँ से फिर उसी ग्रामीण जीवन में चला गया।

महाराज जनमेजय सभासदों के षड्यन्त्र से दुःखी होकर हाथ मलते रह गये। यही दुःख अब भी बना हुआ है; वह तब दूर हो जब कुलेश जैसे राज्य कर्मचारी देश में उत्पन्न हों।

समृद्धि कर्मठता की चेरी

शुक और शुकी एक वृक्ष की डाल पर सुखपूर्वक बैठे विश्राम कर रहे थे, कोटर में उनके बच्चे सोये थे। प्रातःकाल होने में अभी कुछ देर थी। तभी शुकी ने जिज्ञासु स्वर में शुक से पूछा—"स्वामी ! भगवान की इस सृष्टि में साधन और सम्पत्ति का कहीं भी अभाव नहीं है फिर भी कितने ही लोग दुःखी, साधनहीन और संकटग्रस्त क्यों हैं ? मैं कुछ समझ नहीं पाती।"

शुक एक दार्शनिक हँसी-हँसा और यह कथा कहनी प्रारम्भ की—"साँझ होने को थी शुकी ! तभी एक दम्पत्ति अपने तीन बच्चों के साथ इधर से ही निकले, देखने से लगता था कि ये लोग दिन भर के थके-मादे हैं और चल सकने की उनमें हिम्मत नहीं थी। सभी रुक गये और इसी वृक्ष के नीचे डेरा डाल दिया। उन दिनों मैं भी बालक ही था, तुम्हारे साथ विवाह तो अभी हुआ है, मैं अकेला ही बैठा बड़े ध्यान से इन नवागन्तुकों के क्रिया-कलाप देखने लगा।"

बच्चे बोले—"पिताजी ! भूख लग रही है खाने को दो, नहीं तो प्राण निकलते हैं।" माँ तो यह सुनकर चिन्तित हो उठी पर पिता था उत्साही, उसने कहा बच्चो ! जाओ थोड़ी सूखी लकड़ियाँ काट लाओ अभी भोजन तैयार करते हैं। पिता की बात सुनते ही बड़ा लड़का उठ खड़ा हुआ बोला—"मैं जाता हूँ अभी सूखी लकड़ियाँ काट लाता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हूँ।" अभी वह उठ भी नहीं पाया था दूसरा लड़का खड़ा होकर बोला—"पिताजी लकड़ियाँ तो मैं ही लाऊँगा मुझसे चुपचाप बैठा नहीं जाएगा, तब तक तीसरा उठकर चल भी पड़ा वह कह रहा था—"मैं छोटा हूँ लकड़ियाँ लाने का अधिकार तो मुझे ही है।"

उनकी इस प्रकार की बातें सुनकर, मुझे हँसी आ गई।

"क्यों, आपको हँसी क्यों आई ?" शुकी ने पूछा तो शुक ने बताया—मैंने उनसे कहा—मूर्खो, तुम्हारे पास न तो अन्न है और न शाक या फल, लकड़ियाँ लाकर क्या अपने हाथ-पाँव पकाकर खाओगे ? इस पर तीनों लड़कों ने मेरी ओर देखकर कहा—"अपने हाथ-पाँव नहीं, अरे ! पक्षी, हम तो तुझे खायेंगे।" उनका यह निश्चय सुनकर मैं डर गया शुकी ! और बोला, "भाई तुम लोग मुझे मत खाना, चलो मैं तुम्हें खजाना बताता हूँ, तुम उसे खोद लो और अपना अभाव दूर करो। यह कहकर मैंने उन्हें गन्धमादन पर ले जाकर रत्नों का ढेर दिखाया, जिसे पाकर वे सब बहुत प्रसन्न हुए और अपने घर चले गये।"

"इससे निष्कर्ष क्या निकला ?" शुकी ने प्रश्न किया, तो पक्षी बोला—"निष्कर्ष अभी कहाँ ? शुकी ! यह लोग अपने घर गये तो पड़ोसियों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह लोग इतने शीघ्र धनवान कैसे हो गये ? लोगों ने पूछा तो उन्होंने सारी बातें बता दीं। दूसरे ही दिन मैंने देखा कि इसी वृक्ष के नीचे वैसे ही एक और दम्पती भी आ टिके हैं।"

उनके बच्चों ने भी खाना माँगा। पिता बोला—"बच्चो जाओ और लकड़ियाँ ले आओ अभी भोजन तैयार करेंगे। लड़के आपस में झगड़ने लगे। स्वयं जाने की कोई तैयार न था. सब एक-दूसरे को आज्ञा दे रहे थे। मैंने कहा—झगड़ो मत, लकड़ियाँ लाकर ही क्या करोगे—तुम्हारे पास रखा ही क्या है, लकड़ियाँ भी ले आये तो खाओगे क्या ? इस पर वे बनावटी स्वर में बोले—तुझे खायेंगे ? मैं हँसा और बोला—"मुझे खाने वाले तो पहले आये थे, वह धन-दौलत ले भी गये, तुम तो जैसे खाली हाथ आये, वैसे ही खाली हाथ जाओगे।" हुआ भी यही शुकी ! वे बेचारे वैसे ही लौटे।

हँसते हुए शुक ने कहा—"प्रिये अब कहो तो निष्कर्ष बताऊँ" "नहीं स्वामी ! "शुकी बोली" मैं समझ गई। जिनके जीवन में क्रियाशीलता होती है, एकता और पौरुष में विश्वास होता है, लक्ष्मी उनका वरण अपने आप करती है।"

अब तक उनके बच्चे भी जग चुके थे और रात भी बीत चुकी थी। पक्षी कोटर से निकले और चहचहाते हुए भोजन की तलाश में निकल पड़े।

कल के लिए मत छोड़ो

लंका में राम-रावण का घोर युद्ध समाप्त हो चला था। दोनों ओर के हजारों योद्धा समरभूमि में अपना रक्त बहा चुके थे। रावण का परिवार इस युद्ध में नष्ट हो चुका था। आज रावण ने स्वयं अन्तिम युद्ध किया था, पर वह भी मारा गया। श्रीराम के बाणों ने उसका उदर विदीर्ण कर डाला था। अवसान की अन्तिम घड़ियों में रावण मृत्यु शय्या पर पड़ा हुआ था।

उसके कर्म आसुरी थे फिर भी वह पण्डित था। वेदों का उसे ज्ञान था। राजनीति और धर्म ग्रन्थों का उसने पारायण किया था; अपने समय का सर्वश्रेष्ठ विद्वान् था। विद्वान् होते हुए भी लोग पापकर्मी हो जाते हैं। रावण भी अपने ज्ञान को कर्म से सम्बन्धित न कर सका था। इसी से वह असुर था।

रावण का अन्तिम समय निकट जानकर राम ने लक्ष्मण को बुलाया और कहा—"लक्ष्मण ! अपने समय का सर्वश्रेष्ठ पण्डित अब मर रहा है। तुम उसके पास जाकर नीति सम्बन्धी कुछ शिक्षा प्राप्त करो।"

लक्ष्मणजी प्रसन्नतापूर्वक चल दिए और रावण से नीति की शिक्षा देने की प्रार्थना की, किन्तु उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। तीन बार लक्ष्मण ने वही प्रार्थना की, किन्तु मौन के अतिरिक्त उन्हें कुछ उत्तर न मिला। निराश लक्ष्मण वापस लौट आये।

राम ने पूछा—"कहो भाई ! क्या शिक्षा प्राप्त की ?" लक्ष्मण ने कहा—उसने कुछ भी उत्तर न दिया है। राम ने सारी स्थिति जान ली। उन्होंने कहा कि—"तुम्हें व्यवहार नीति का ज्ञान होना चाहिए। इस बार शत्रु की तरह युद्ध करने नहीं किन्तु उससे शिष्य की तरह विद्या पढ़ने गये थे। क्या तुमने शिष्य का-सा आचरण रावण के साथ किया था ?" लक्ष्मण को अपनी भूल मालूम हो गई और वे लज्जित होकर पुनः रावण के पास पहुँचे।

अबकी बार उन्होंने शिष्य की भाँति आचरण किया। रावण का पूजन करके, चरणों में सिर नवाया और उसकी प्रदक्षिणा की। धर्म-शास्त्र ने इस विधान को गम्भीर मनोवैज्ञानिक आधार पर स्थिर किया है कि शिष्य गुरु के सम्मुख विनम्र बनकर उन्हें सन्तुष्ट करते हुए विद्याध्ययन करे, क्योंकि बिना इसके वे विद्या का मार्ग प्राप्त नहीं कर सकता।

लक्ष्मण के उचित आचरण से रावण सन्तुष्ट हुआ और उन्हें अधिकारी जानकर नीति की शिक्षा देने के लिए मृत्यु शय्या से उठ बैठा।

धर्म और नीति की अनेक शिक्षा देने के उपरान्त उसने अपना सबसे मूल्यवान अनुभव बताना आरम्भ किया। रावण ने कहा—"लक्ष्मण ! मैं अपने जीवन में चार काम करना चाहता था। मेरा विचार था कि (१) लंका के आस-पास सौ योजन तक खारी समुद्र को मीठा कर दूँ, (२) सोने की लंका को सुगन्धित भी कर दूँ, (३) स्वर्ग के लिए सीढ़ियाँ लगवा दूँ और (४) मृत्यु को पूरी तरह वश में कर लूँ।

अपने बल-वैभव के सम्मुख मुझे ये चारों काम बहुत सरल और तुच्छ प्रतीत होते थे। सोचता था कि जिस दिन चाहूँगा उसी दिन उन्हें पूरा कर लूँगा। जिन देवताओं के अधिकार में उपर्युक्त बातें हैं, उन्हें किसी दिन पकड़ लाऊँगा और चारों ही बातें पूरी हो जाएँगी। अपने अभिमान के कारण इन कामों को छोटा समझकर उपेक्षा की दृष्टि से देखता रहा और समय को टालता रहा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आज मेरा अन्तिम समय आ पहुँचा है, चारों में से एक भी बात पूरी न कर सका और अब मैं इस दुनिया से जा रहा हूँ। मन के अरमान मन में ही रह रहे हैं। देखता हूँ कि उपेक्षा, समय को टालना, अपनी शक्ति के गर्व में छोटे काम को सरल समझना और जिस काम को आज कर सकते हैं, उसे कल के लिए छोड़ना मनुष्य जीवन की सबसे बड़ी भूल है। यही भूल मुझे इस मृत्यु की घड़ी में दारुण दुःख दे रही है।"

यह कहते-कहते रावण के नेत्र बन्द हो गये। लक्ष्मण उपदेशों को ग्रहण करके रावण के मृत शरीर का अभिवादन करते हुए वापस लौट आये।

बात छोटी परन्तु बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। हमें भी सोचना चाहिए कि कहीं हम भी छोटे कामों की उपेक्षा करके इन्हें समय पर न करने की गलती तो नहीं करते ?

धर्मजानि कुसुमानि

रंग-बिरंगे पुष्पों की सुशोभित छटा एवं अनुपम सौन्दर्य सहज ही उस रास्ते से आने-जाने वालों के मन को आकर्षित कर लेता था। पुष्पों की सुरभित गन्ध मन को मदमस्त बना देती थी। अपने पावन चरणों से अपनी परम भक्त शबरी की कुटिया को कृतार्थ करने भगवान स्वयं आज जा रहे थे। ये पुष्प मानो उनका अभिनन्दन कर रहे थे।

कुटिया पर अपने इष्टदेव को देखकर शबरी भाव-विह्वल हो उठी। आँखों से आनन्द एवं प्रसन्नता के अश्रु टपकने लगे। पद रज को मस्तक पर धारण कर उनके चरणों को पवित्र जल से धोया, उन्हें आसन पर बैठाकर भोजन आदि की तैयारी करने लगी। पुष्पों की लुभावनी सुगन्ध अब भी भगवान राम के मानसपटल पर छायी थी। शबरी के आते ही वह पूछने लगे कि इन सुन्दरतम् पुष्पों को किसने लगाया है ?

शबरी ने कहा कि "भगवन्, एक ऋषि कुछ दिनों पूर्व यहाँ रहते थे, जिनका नाम मातंग था। लोक कल्याण के लिए उन्होंने यहाँ आश्रम की व्यवस्था बनायी थी। मातंग ऋषि के आश्रम में दूर-दूर से बहुत-से विद्यार्थी विद्याध्ययन एवं जनसेवा का प्रशिक्षण लेने आते थे। लोक-कल्याण में निरत रहने वाले ऋषि-मुनियों को ठहरने की भी यहाँ समुचित व्यवस्था रहती थी। यहाँ विश्व-वसुन्धरा को सुन्दर बनाने एवं प्राणि मात्र के कल्याण के लिए शोध कार्य, प्रशिक्षण एवं तपश्चर्या के क्रिया-कलाप चलाये जाते थे।

एक बार आश्रम में भोजन आदि बनाने की लकड़ी का अभाव हो गया। वर्षा ऋतु भी आनेवाली ही थी। आश्रम में रहने वाले विद्यार्थी इस तथ्य से अवगत थे कि बरसात आने वाली है तथा लकड़ी का अभाव है। वर्षा के पूर्व ही इतनी लकड़ी की व्यवस्था कर ली जानी चाहिए जिससे चार मास बरसात में ईंधन का काम चल सके। यह जानते हुए भी विद्यार्थी उपेक्षा कर रहे थे तथा श्रम से बचना चाहते थे। विद्यार्थियों में छाये हुए अवसाद एवं उपेक्षा की प्रवृत्ति को देखकर मातंग ऋषि चिन्तित हो उठे, 'श्रम देवता का अपमान और वह भी ऋषि आश्रम में' भला यह कैसे हो सकता था ? विद्यार्थियों ने जब आचार्य श्री को लकड़ी लाने के लिए जंगल की ओर जाते देखा तो ग्लानि से भर उठे तथा उनके पीछे कुल्हाड़ी लेकर दौड़े।

सभी जंगल में पहुँचकर लकड़ी काटने लगे। तीसरे प्रहर विद्यार्थीगण अपने-अपने सिर पर भारी लकड़ी के गट्ठर लादे आश्रम की ओर लौट पड़े। शरीर से पसीना निकल कर गिरता जा रहा था, किन्तु सब प्रसन्न थे तथा एक अलौकिक आनन्द की अनुभूति कर रहे थे। उस दिन विद्यार्थियों की छुट्टी कर दी गई। कठोर श्रम एवं मन प्रफुल्लित होने के कारण सब जल्दी ही सो गये। प्रातःकाल ब्रह्म बेला में ऋषि उठे। विद्यार्थियों को साथ ले स्नानादि के लिए चल पड़े। एकाएक मन्द-मन्द उषाकालीन वायु के झोंके के साथ मन को प्रसन्न करने वाली सुगन्ध आने लगी। सभी विद्यार्थी आश्चर्य से युक्त स्वर में ऋषि से पूछने लगे—"पूज्यवर ! यह सुगन्ध आज कहाँ से आ रही है ?" मातंग ऋषि मुसकराते हुए बोले, "जाओ, स्वयं पता लगाओ।" हिरण के समान छलांग लगाते हुए बच्चे निकले। उन्होंने देखा कि जंगल से सिर पर लकड़ी लाते हुए जिन-जिन स्थानों पर आश्रमवासियों का पसीना गिरा था, उन स्थानों पर एक-एक पुष्प सुन्दर डालियों में खिला हुआ दिखायी दिया। "हे राम ! ये सुगन्ध युक्त रंग-बिरंगे पुष्प पसीने से उत्पन्न हुए हैं।" शबरी ने कहा।

बिना बुलाया मेहमान

एक बार समस्त प्रजापतियों ने मिलकर महायज्ञ का आयोजन किया। उसमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव सहित सभी देवताओं ने भाग लिया। यज्ञ-स्थल पर जब दक्ष प्रजापति का आगमन हुआ, तो ब्रह्मा और शिव कुछ ऐसी चर्चाओं में व्यस्त थे कि उन्हें दक्ष के आगमन का खयाल न रहा और वे अपने स्थान पर ही बैठे रहे। इस बात को दक्ष ने जान-बूझकर किया गया अपमान समझा और भरी सभा में शिव को फटकारा। दक्ष की कन्या का विवाह चूँकि शंकरजी के साथ हुआ था, इसलिए वे उनके ससुर भी होते थे। अतः अपने जामाता की उद्दण्डता सहन न कर दक्ष ने उन्हें भला-बुरा कहा।

शिव अनजाने में हुई भूल के कारण मिली प्रताड़ना से खिन्न होकर अपने अनुचरों सहित वहाँ से चले गये। दक्ष ने सोचा था कि शिव इस धृष्टता के लिए क्षमा माँगेंगे पर ऐसा न कर इसके विपरीत वहाँ से बहिर्गमन कर जाने को भी उन्होंने अपने पिता तुल्य ससुर की अवमानना समझी और जामाता होते हुए भी शिव से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया।

इधर ब्रह्मा ने दक्ष को समस्त प्रजापतियों का अधिपति बना दिया, तब तो उसका गर्व और भी बढ़ गया। समस्त प्रजापतियों का प्रमुख अनुशास्ता बन जाने पर दक्ष ने वाजपेय-यज्ञ का आयोजन करने का निश्चय किया। इस यज्ञ में भूमण्डल के सभी ऋषियों, महर्षियों, देवर्षि, पितर और देवगणों को आमन्त्रित किया गया, पर दक्ष ने जान-बूझकर शिव को नहीं बुलाया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org

www.vicharkrantibooks.org

उस यज्ञ के समाचार शिव को मिल चुके थे, पर आमन्त्रण न होने से इसमें भाग लेने का उन्होंने विचार तक नहीं किया। उधर शिव-पत्नी दक्ष की कन्या सती को अपने पिता द्वारा आयोजित किये जाने वाले यज्ञ का समाचार मिला तो वे जाने के लिए आतुर हो उठीं। अपने पिता के यज्ञ में जाने की उत्कण्ठा से प्रेरित होकर उन्होंने शिव से यज्ञ में चलने का आग्रह किया।

इस पर भगवान शंकर ने कहा—"अनामन्त्रित ही किसी के यहाँ पहुँच जाना, निरादर और अपमान का कारण बन जाता है। तुम्हारे पिता ने निमन्त्रण तो दिया नहीं है, फिर पहुँचना व्यर्थ ही है।"

"भगवन्"—सती ने कहा—"पिता, गुरु और सन्तजनों के पास तो बिना बुलाये भी जाना चाहिए।"

"वह जाना व्यक्तिगत रूप से हो सकता है। अतिथि के रूप में नहीं। तुम्हारे पिता हमारे प्रति कुटिल भाव रखते हैं, हमसे द्वेष करते हैं, उनके यहाँ न जाना ही उचित है।"

सती किसी भी प्रकार मानने को तैयार नहीं थीं। वे जिद ही किये जा रही थीं, अतः भगवान शिव ने उन्हें अकेले जाने की अनुमति दे दी और अपने अनुचरों को साथ भेजकर भावी घटनाओं का अनुमान करने लगे।

सती अपने पिता के घर पहुँचीं। वहाँ किसी ने उन्हें नहीं पूछा। इस पर भी निष्कलुष भाव से वे यज्ञशाला में गयीं। वहाँ देखा—सब देवताओं के लिए यज्ञ में समभाग रखा गया था पर शिव के लिए कोई भाग नहीं था। शायद भूल गये होंगे, यह सोचकर सती ने अपने पिता को याद दिलाई। दक्ष कुछ न बोले और वे सीधे अपनी कन्या को लेकर मुख्य द्वार के पास आये तथा द्वार पर रखी एक प्रतिमा की ओर इशारा किया।

प्रतिमा शिव की थी, जिसे द्वारपाल के रूप में रखा गया था। यह देखकर सती के क्रोध और पश्चाताप का पारावार न रहा। क्रोध इसलिए कि मेरे पिता इतनी निकृष्ट मनोवृत्ति के हैं और पश्चाताप इसलिए कि बार-बार मना करने पर भी उन्होंने शिव की बात नहीं मानी थी। क्रोध, पश्चाताप और प्रतिशोध की सम्मिलित ज्वालाओं से उफन कर सती ने यज्ञ-कुण्ड में कूदकर आत्म-दाह कर लिया। इस घटना को सुनकर भगवान शिव बड़े कुपित हुए। क्रोधस्वरूप उन्होंने भारी सर्वनाश भी किया।

इसमें दोष दंभी दक्ष का तो था ही, पर सती भी कम दोषी नहीं थीं, जो अनाहुत ही पिता के यज्ञोत्सव में सम्मिलित हुईं। स्वाभिमान नारी को भी नहीं छोड़ना चाहिए।

मुफ्त का माल दुःख देता है

एक ऊँट बड़ा आलसी था, चरने के लिए जंगलों में जाना और परिश्रम करना उसे बहुत बुरा लगता था; उसकी इच्छा थी कि कोई ऐसी तरकीब निकले कि घर बैठे-बैठे ही मनचाहा भोजन मिल जाया करे।

एक दिन उधर से महादेव-पार्वती जा रहे थे। ऊँट ने उन्हें देखा और अपनी इच्छापूर्ति का अच्छा अवसर देखकर उनके सामने गरदन झुकाकर जा खड़ा हुआ।

इस प्रकार रास्ता रोके खड़े ऊँट को देखकर महादेव जी ने उससे पूछा—"कहो भाई क्या बात है ?" ऊँट बोला—"हे त्रिभुवन के स्वामी आप अनाथों के नाथ हैं, दीनों का दुःख हरने वाले हैं, भक्तों की इच्छा पूरी कहने वाले हैं, सो हे औघढ़दानी ! मेरी भी इच्छा पूरी कीजिये।"

शंकरजी ने कहा—"जल्दी कहो, क्या चाहते हो ?"

ऊँट बोला—"भगवन् ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो ऐसा वरदान दीजिए कि मेरी गरदन एक योजन लम्बी हो, जिससे मैं एक ही स्थान पर बैठा-बैठा दूर-दूर तक के वृक्षों को चर लिया करूँ, इधर-उधर भागने का कष्ट न उठाना पड़े।"

महादेव जी ऊँट पर बहुत झल्लाये। उन्होंने कहा, "दुष्ट ! आलस्य का पोषण करने वाला वरदान माँगता है यह तो तेरे नाश का कारण बन जाएगा। उचित परिश्रम करके कमाई हुई वस्तुएँ ही सुखदायक होती हैं।" शिवजी ने बहुत देर समझाया कि ऐसी चीज नहीं माँगनी चाहिए जिससे अपनी श्रम-शक्ति कुण्ठित होती हो, परन्तु ऊँट की समझ में एक न आई। वह उसी प्रकार गरदन झुकाये, नेत्र मूँदे, दाँत निकाले, एक पाँव से महादेवजी के सामने खड़ा रहा। ऊँट की यह दशा देखकर पार्वती को बड़ी दया आई, उन्होंने अपने पति देवता से कहा—"भगवन् आपकी क्या हानि है ? हजारों प्राणियों को आप नित्य ही वरदान देते हैं, एक इसे भी दे दीजिए। आपका क्या बिगड़ जाएगा ?"

झमेला अधिक बढ़ते देखकर महादेवजी ने "तथास्तु" कह दिया और आगे चल दिये, ऊँट की छोटी-सी गरदन एक योजन लम्बी हो गई।

अब तो चैन की कटने लगी। ऊँट महाशय अपने चबूतरे पर बैठे रहते। जहाँ कहीं हरी-भरी कोमल सुस्वादिष्ट पत्तियाँ दिखाई पड़तीं वहीं गरदन लम्बी कर देते। एक योजन लम्बाई, चौड़ाई में से बीन-बीन कर उत्तमोत्तम चारा वे खाने लगे। प्रसन्नता के मारे वे फूल कर कुप्पा हो रहे थे।

समय जाते देर नहीं लगती। दिन पर दिन बीतने लगे। मौसम बदला, वर्षा आई, पानी बरसने लगा और बिजली चमकने लगी। ऐसे समय में एक योजन लम्बी गरदन को वर्षा में पड़ी रहने देना बड़ा कष्टकर मालूम होने लगा। ऊँट ने एक लम्बी गुफा में ज्यों-त्यों करके उसे घुसेड़ा और एक सन्तोष की ठण्डी साँस ली।

कुछ ही घड़ियाँ व्यतीत हुई थीं कि भीगता-भागता एक श्रृंगाल भी उसी गुफा में आ घुसा, वर्षा में भीगता हुआ वह भी भूखा-प्यासा आया था। माँस का इतना बड़ा लट्ठा अरक्षित पड़ा देखकर उसे बहुत प्रसन्नता हुई। श्रृंगाल महोदय निर्भयतापूर्वक उसे खाने लगा।

ऊँट के लिए यह सरल न था कि इतनी लम्बी गरदन को गुफा में से जल्दी से वापस निकाल लेता। जब तक उसने निकालने की कोशिश की तब तक सियार ने उस पतली गरदन को फाड़ डाला और काटकर दो टुकड़े कर दिये। ऊँट मर गया। सियार को अनायास बहुत दिनों का भोजन मिल गया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आलसी और अकर्मण्य पुरुष बिना परिश्रम किए बड़ी सम्पदाएँ चाहते हैं, यदि किसी प्रकार वे उन्हें मिल भी जाएँ तो अन्त में दुःखदायक ही होती हैं।

कितनी बड़ी सम्पदा ?

नंगे पैर, फटे कपड़े, सूखे बाल और मुरझाया चेहरा लिए एक व्यक्ति आया। उसकी परेशानी देखकर दूसरे से न रहा गया तो वह पूछ बैठा, "क्यों भाई ! क्या बात है ? ऐसा लगता है कि किसी आपत्ति में फँस गये हो।"

"हाँ खर्च करने को एक भी पैसा नहीं। निर्धनता सीमा तोड़कर बढ़ती ही जा रही है।"

'निर्धनता' शब्द से वह व्यक्ति चौंका। ऐसा लगता है कि तुम अपनी बात सत्यता के साथ प्रकट नहीं कर रहे हो।

वह बेचारा और सोच में पड़ गया। वह बोला— मैंने अपनी सारी स्थिति आपको सही-सही बता दी है। इतनी परेशानी में भला मैं झूठ क्यों बोलता और आपको परेशान करने में मुझे मिलेगा ही क्या ?"

"अच्छा ! तुम्हारी गरीबी दूर करने के लिए मैं कुछ प्रयत्न करता हूँ। तुम इतना करो कि मुझे अपना एक कान काट कर दे दो; उसके बदले में मैं तुम्हें एक हजार रुपया दे दूँगा।"

"भूखा मरना मंजूर है पर अपना एक कान काट कर नहीं दे सकता।"

"यदि दोनों कानों को आवश्यक समझते हो, तो एक आँख दे दो, एक आँख से देखने का काम चल ही सकता है, उसके बदले में मैं दो हजार रुपये दे दूँगा।"

"एक आँख लेकर आप मुझे काना बनाना चाहते हैं, जिधर भी मैं जाऊँगा, बच्चा काना कहकर चिढ़ाया करेंगे। अतः आँख देना भी मेरे वश की बात नहीं।"

"अच्छा तो फिर यह लो पाँच हजार रुपये और दे दो अपना एक हाथ। भीख तो तुम वैसे भी माँगते-फिरते हो। पाँच हजार रुपये मिल जाएँगे तो बैठ-बैठे खाते रहना।"

"यह भी सम्भव नहीं।"

"तो फिर मेरे साथ चलो मैं तुम्हारा एक पैर कटवाने की व्यवस्था करवाये देता हूँ और उसके बदले सात हजार रुपये दे दूँगा।"

सामने वाला व्यक्ति बिल्कुल चुप उस पर 'हाँ' या 'ना' कुछ भी कहते न बना।

"इसका तात्पर्य तो यह हुआ कि तुम्हारे पास दो हजार से अधिक के कान, चार हजार से अधिक की आँखें और दस हजार रुपये से अधिक के हाथ और चौदह हजार रुपये से अधिक के पैर हैं। कुल तीस हजार रुपये हुए इतने रुपये से अधिक के तो तुम्हारे पास कान, आँख, हाथ और पैर हैं यदि पूरे शरीर का हिसाब लगाया जाए तो वह लाखों रुपये का बैठेगा।"

"शायद तुम जानते नहीं कि जिस व्यक्ति के पास अच्छी-अच्छी बातें सुनने के लिए दो कान, ईश्वर की सुन्दर रचना देखने के लिए दो आँखें, श्रम देवता की उपासना के लिए मजबूत भुजाएँ और प्रगति पथ पर आगे बढ़ने के लिए दो पैर हों उससे बढ़कर इस संसार में सम्पत्तिशाली और भाग्यशाली भला कौन हो सकता है ? तुम ही नहीं संसार के प्रत्येक व्यक्ति के पास ऐसी सम्पदाएँ हैं फिर भी वह अपनी ओर न देखकर नकली सम्पत्ति की ओर लालच की दृष्टि से देखता रहता है।"

"हाँ ! शरीर के विभिन्न अंगों में ज्ञान चेतना उत्पन्न करने वाला जीवात्मा तो उससे भी अधिक मूल्यवान है जिसकी उपेक्षा हममें से अधिकतर व्यक्ति करते रहते हैं।"

अब, अपने को गरीब बताने वाला वह व्यक्ति बिल्कुल चुप था। वह अच्छी तरह समझ गया था कि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है। पुरुषार्थ द्वारा अपनी समस्याओं को आसानी से सुलझाया जा सकता है।

लोकरंजन के लिए नहीं, लोकमंगल के लिए

घर के सब लोग सो चुके हैं, पर रसाईघर में दीपक का मन्द प्रकाश अभी टिमटिमा रहा है। इसी दीपक तले बैठा एक चौदह वर्षीय बालक जमीन पर खड़िया से चित्र बना रहा है।

आधी रात इसी प्रकार बीत गयी। नींद आने लगी, तो वह कमरे में सोने चला गया और यह सोचकर प्रसन्न हो रहा था कि प्रातः जब लोग मेरे मर्मस्पर्शी चित्र को देखेंगे, तो खुश होंगे, पुरस्कार देंगे।

सुबह हुई। बालक प्रतिक्रिया जानने पिता के पास यह सोचते हुए पहुँचा कि आज यदि पुरस्कार मिला, तो सबसे पहले वह उससे एक तूलिका और कुछ रंग-रोगन खरीदेगा एवं कागज पर चित्रकारी करेगा। पिता के समक्ष जब वह उपस्थित हुआ तो इनाम की जगह मिला उसे एक जोरदार तमाचा और अपमान भरे भद्दे शब्द— 'चित्रकार बनने चला है। अरे ! पहले यह भी सोचा है कि तेरे इस पेट को भरेगा कौन ? चितेरा ही बनना है, तो पहले अपने इस पेट को भरने का उपाय कर फिर अपनी कलाकारी दिखाना अन्यथा निकल जा इस घर से। मैं कोई इतना धनी-मानी नहीं, जो तुम्हें बैठाकर खिला सकूँ और तुम्हें हाथ भी न हिलाना पड़े।"

बालक अभी था तो किशोरावस्था की दहलीज में, पर इतना अबोध भी नहीं कि मान-अपमान भी न समझ सके। स्वाभिमान जगा, तो घर और घरवालों को सदा-सदा के लिए तिलांजलि देकर निकल पड़ा आजीविकोपार्जन के लिए। थोड़े-से ही प्रयास से बालक राउल्ड को पेरिस के स्टेन्ले ग्लास मेकर कम्पनी में नौकरी मिल गयी। प्रतिमाह ४ फ्रेंक इस छोटी-सी नौकरी से ही उसने किराये का एक छोटा मकान लिया और किसी प्रकार अपनी गुजर करने लगा। मितव्ययता निर्वाह से पाँच महीने में उसने इतनी राशि इकट्ठी कर ली, जिससे कैनवास, स्टैण्ड, ब्रुश और रंग खरीदा जा सके। बस, फिर उसने चिरइच्छित अपनी चित्रकारी शुरू कर दी।

बालक राउल्ड बड़ा संवेदनशील था। वह चित्र के माध्यम से मानवीय संवेदनाओं को उभारना चाहता था चूँकि वह अल्पशिक्षित था, अतः मानवीय करुणा को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मूर्तिमान कर दूसरों के अन्तःकरण को छूने और पीड़ा का आभास दिलाने का एक मात्र आधार भी तो यही था, इसीलिए अपनी इस कला को और अधिक निखारने और जीवन्त बनाने के लिए पेरिस के नेशनल आर्ट इंस्टीट्यूट में उसने दाखिला ले लिया।

कहते हैं कि यदि सोने में सुगन्ध होती, तो अपनी चमक-दमक से वह चन्दन को भी फीका कर देता। राउल्ड के साथ ऐसा ही हुआ। सोने में सुगन्ध का सम्मिलन। जब वह प्रशिक्षण लेकर बाहर निकला तो मानवता के प्रति उसके हृदय में कसक और वेदना थी, वह उसकी तूलिका से ऐसी उभरी, मानो साक्षात् मानवीय करुणा को उठाकर कैनवास पर रख दिया हो। उसने जो पहला चित्र प्रशिक्षण लेने के बाद बनाया, वह एक ऐसी पीड़ित नारी का था, जिसके पाँवों के घावों पर मरहम पट्टी करते हुए एक सुहृदय की सौजन्यता को दर्शाया गया था। दूसरी तस्वीर उसने एक गाय को ऊँट के बच्चे को दूध पिलाती हुए बनायी थी। तीसरा चित्र उसने एक भूख से बिलबिलाते प्राण त्यागते बालक का बनाया था। इसी प्रकार उसने ढेर सारी तस्वीरें बनायीं, जो समाज की किसी न किसी समस्या का प्रतिनिधित्व करती थीं, जो भी उन चित्रों को देखता, आह निकले बिना न रहती। हाय ! ऐसी दुर्दशा है हमारे समाज की। लोगों मुँह से बरबस उस समय की वेदना फूट पड़ती।

एक बार राउल्ड के एक घनिष्ठ मित्र ने उसे सलाह दी—"राउल्ड ! यह क्या समाज की घिसी-पिटी समस्याओं को लेकर चित्र बनाते हो। शायद इसीलिए तुम्हारे चित्र दूसरों की तुलना में अधिक नहीं बिकते। मेरा कहा मानो तो 'मार्डन' आधुनिक तस्वीर बनाओ, फिर देखो तुम रातों-रात किस तरह चमकते हो ?"

"यह मार्डन तस्वीर क्या बला होती है ?" राउल्ड ने उत्सुकतावश पूछा, क्योंकि इस नये शब्द को उसने पहली बार सुना था।

"वही जो दूसरों की समझ में न आये।" मित्र ने स्पष्ट किया।

"जो दूसरों की समझ में ही न आये, वैसी तस्वीर बनाने का क्या तात्पर्य, उससे समाज को क्या लाभ ?"

"शायद तुमने भारतीय शायर की वह पंक्तियाँ नहीं सुनीं।"

"कौन-सी ?" राउल्ड ने पूछ लिया।

वही तस्वीर कलामय है,
जिसे आलिम तो क्या समझे।
अगर सौ साल सर मारे,
तो शायद ही खुदा समझे।

"आज मॉर्डन की परिभाषा यही है और एक बात और ! तुम समाज के हानि-लाभ के वणिक व्यापार में मत पड़ो। अपने नफे-नुक्सान की बात सोचो।"

"बस तुम्हारे-हमारे विचारों में यही सबसे बड़ा अन्तर है।" राउल्ड ने कहा—"तुम अपने हानि-लाभ के लिए, अपनी यश-कीर्ति के लिए काम करना चाहते हो, जबकि हमारा मत ठीक इसके विपरीत है। मैं हर कार्य का करने से पूर्व यह सोचता हूँ कि इससे समाज को क्या और कितना लाभ मिलेगा, भले ही उसमें हमें व्यक्तिगत रूप से हानि उठानी पड़े।"

इसलिए प्रिय बन्धु ! मैं समाज के समस्यामूलक चित्रों को बनाना न छोड़ूँगा, भले ही वे न बिकें और मेरा उद्देश्य भी पैसा कमाना नहीं है। मैं इन चित्रों की जगह-जगह प्रदर्शनी लगाकर समाज की विभिन्न समस्याओं के प्रति जनचेतना उभारूँगा और लोगों को उनके प्रति जागरूक करूँगा, उसे प्रेरणा तथा दिशा न दे सके, वह कला किस काम की ? कुत्सा भड़काने और यौन-उन्माद उत्पन्न करने अथवा प्रेरणाहीन तथाकथित 'आधुनिक' चित्र बनाने को मैं कला की श्रेणी में नहीं गिनता। यही मेरा अन्तिम निर्णय और निश्चय है।"

मित्र उसके तर्कों के आगे नतमस्तक हो गया।

कभी फ्रांस में मूक क्रान्ति लाने वाली इस चित्रकार की क्रान्तिधर्मी तस्वीरें आज भी पेरिस के मोरियो गुटराव संग्रहालय में सुरक्षित पड़ी हैं। यद्यपि आज इन चित्रों का सृष्टा तो न रहा, किन्तु उसकी आत्मा आज भी चीत्कार करती हुई भटक रही है, इस आशा में कि कोई संवेदनशील चितेरा उसकी प्रेरणा को ग्रहण कर उसके अधूरे आन्दोलन को पूरा करे। काश ! आधुनिक चित्रकार उनकी अन्तर्पीड़ा को समझकर उनकी आदर्शवादी लीक पर चल सकते, तो सामाजिक समस्याओं के प्रति जन-जागृति लाने में काफी मदद मिलती।

प्रतिकूलताओं ने प्रशस्त किया सफलता का पथ

अमेरिका का ख्यातिनामा शहर शिकागो—सर्दी के दिन। व्यस्त राजमार्ग पर भी बहुत कम चहल-पहल नजर आ रही थी। जितने अमरीकी सड़क पर गुजरते हुए दिखाई भी देते, वे लम्बा ऊनी कोट पहन और कैप लगाए थे। होटल और रेस्तरां खचाखच भरे थे। लोग गर्म चीजें खा-पीकर अपनी ठण्ड को भुलाने का प्रयास कर रहे थे।

ऐसी कड़ाके की ठण्ड में एक भारतीय संन्यासी वोस्टन से आने वाली रेलगाड़ी से शिकागो स्टेशन पर उतरा। सिर पर पगड़ी बँधी थी, उसका भी रंग गेरुआ ही था। विचित्र वेश-भूषा को देखकर अनेक यात्रियों की दृष्टि उस पर जम गई। वह फाटक पर पहुँचा। लम्बे चोंगे की जेब से टिकिट निकाला और टिकिट कलेक्टर को देकर वह प्लेटफार्म से बाहर आ गया। उसे देखने वालों की भीड़ बढ़ती जा रही थी। भीड़ में से ही किसी ने पूछ लिया—"आप कहाँ से आए हैं ?"

"वोस्टन से, पर निवासी भारत का हूँ।"

"यहाँ किससे मिलना है ?"

"डॉ बैरोज से,"

"कौन, डॉ बैरोज ?"

सन्यासी ने अपने चोगे की जेब में हाथ डाला पर हाथ खाली ही निकला।

"क्यों, क्या हुआ ?"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"मैं डॉ. बैरोज के नाम बोस्टन से प्रोफेसर जे. एच. राइट का एक पत्र लाया था। उसी पर पता लिखा था, पर वही कहीं रास्ते में गुम हो गया।"

दर्शक उसकी बात को सुनकर हँसने लगे। भीड़ धीरे-धीरे छँटने लगी। सन्यासी अब अकेला रह गया। पास से निकलने वाले एक शिक्षित व्यक्ति को रोककर संन्यासी ने पूछा—"क्या आप मुझे डॉ. बैरोज के घर का पता बता सकते हैं ?"

वह अनसुनी करके अपनी आँखें मटकाता हुआ आगे बढ़ गया। संन्यासी स्टेशन की सीमा पार कर राजमार्ग पर चलने लगा। उसकी दृष्टि दोनों ओर लगे साइन बोर्डों पर थी। शायद इन्हीं के बीच कहीं डॉ. बैरोज का बोर्ड दिखाई दे जाए।

इतने में ही स्कूल से छूटे बच्चों के एक समूह ने उसे घेर लिया। बच्चों ने ऐसी रंगीन वेश-भूषा वाला सन्यासी कभी न देखा था। आगे-आगे संन्यासी पीछे-पीछे शोर मचाते हुए बच्चे चले जा रहे थे।

ढूँढ़ते-ढूँढ़ते शाम हो गयी। बिना पूरे पते के इतने बड़े शहर में किसी व्यक्ति से मिलना आसान काम न था। ठण्ड बढ़ने लगी। शीत लहर चलने लगी। साधु के पास गर्म कपड़े तो थे नहीं। उसने दो दिन से भोजन भी न किया था। पास में एक पैसा नहीं। सोचा था शिकागो पहुँचकर वह डॉ. बैरोज का अतिथि बनेगा, पर कभी-कभी सोचा हुआ काम कहाँ हो पाता है ?

उसे सामने एक बहुत बड़ा होटल दिखाई दिया। केवल रात काटनी थी। उसने होटल की ओर कदम बढ़ाए। सीढ़ियों की ओर चढ़ना था कि दरबान ने रोक दिया—"तुम कौन हो ?"

"मैं रात्रि में यहाँ विश्राम करना चाहता हूँ।"

"नीग्रो को ठहरने के लिए इस होटल में कोई स्थान नहीं।"

"मैं भारतीय हूँ।"

"तुम काले हो। काले लोगों के लिए इस होटल में कोई जगह नहीं।" दरवान ने बड़ी बेरहमी से कहा।

संन्यासी के चरण पुनः सड़क की ओर अनमने भाव से बढ़ने लगे। बरफ गिरने लगी। भूखा संन्यासी काँपने लगा। उसे लगा कि अब आगे एक कदम भी चलना मुश्किल है। आँखों के सामने अन्धेरा छाने लगा। यदि वह आगे बढ़ा तो जमीन पर गिर जाएगा, पर क्या करता ? आगे बढ़ना ही जिसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य हो।

उसने देखा वह रेलवे मालगोदाम के पास आ गया है। वह उसी तरफ बढ़ता चला गया, गोदाम बन्द हो चुका था। बाहर लकड़ी का एक बड़ा बॉक्स खाली था अन्दर थोड़ी घास पड़ी थी। ऊपर ढक्कन रखा हुआ था। भोजन की कोई व्यवस्था न हो पायी, पर ठण्ड से अपने शरीर की रक्षा तो करनी ही थी। वह अन्दर की घास को एक तरफ करके उसमें उतर गया, ऊपर से ढक्कन खिसका लिया।

रात भर वर्फीली हवा चलती रही। जब तख्तों के छेदों से सर्दी अन्दर प्रवेश कर जाती तो वह काँप उठता था। जैसे-तैसे रात कट गयी। बॉक्स से संन्यासी बाहर निकला। शरीर सुन्न पड़ गया था, जैसे-तैसे लकड़ी की पेटी से निकलकर सड़क के किनारे पड़ी बैंच पर बैठ गया।

बैठकर सोच रहा था क्या करे ? संघर्ष, निरन्तर संघर्ष, परिस्थितियाँ कैसी भी क्यों न हों उसने हार मानना सीखा न था। विपरीतताएँ—उसका क्या कर सकती हैं, जिसने हार मानना सीखा न हो। फिर जिसे परमसत्ता पर, उसके निर्देशों के अनुसार चलने का विश्वास हो उसे कहना ही क्या ? उसकी मनोभूमि कुछ ऐसी ही थी। उसे पूर्ण विश्वास था कि जब मनुष्य किसी सत्कार्य में पूरी तरह अपने शरीर व मन को खपा देता है, तो जैसे ही उसकी शक्तियाँ चुकने को होती हैं दैवी-चेतना उसकी सहायता के लिए तत्पर हो जाती हैं।

और हुआ भी ऐसा ही—जिस स्थान पर बैठे थे, अचानक उसके सामने के भवन का द्वार खुला। एक सुशील सौम्य महिला बाहर निकली, पास आयी और बोली—"स्वामी जी मैं अज्ञात किन्तु सशक्त प्रेरणा से आपके पास आयी हूँ। आप यहाँ सर्व धर्म सम्मेलन हेतु पधारे हैं—मैं आपकी क्या सहायता कर सकती हूँ ?"

"मेरा नाम विवेकानन्द है। मैं भारत से इस सम्मेलन में भाग लेने आया हूँ। मुझे बोस्टन से डॉ. बैरोज के नाम प्रो. राइट ने पत्र दिया था वह कहीं गुम हो गया।"

वह महिला उन्हें बड़े सम्मान के साथ अपने घर ले गयी। भोजन, गर्म कपड़े तथा निवास की पूर्ण व्यवस्था की। दूसरे दिन सर्वधर्म सम्मेलन के कार्यालय में ले जाकर परिचय कराया।

११ सितम्बर, १८९३ का दिन बड़े ही महत्त्व का था। इसी दिन हजारों की संख्या में लोगों ने उनके उद्‌गारों को सुना, सराहा और अनुयायी हुए। अब प्रत्येक अमेरिकावासी की जुबान पर उन्हीं का नाम था। यह वही व्यक्ति था जो रात काटने के लिए एक दिन दरबदर भटकता रहा। आज लोगों के हृदय में अपना स्थान बनाए हुए था। अनेक समाचारों के मुखपृष्ठ पर उनके भाषण छपने लगे। उसी नगर में स्थान-स्थान पर अनेक बड़े-बड़े चित्र लगाए गए जिसके नीचे मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा था 'स्वामी विवेकानन्द' 'ए मॉक फ्राम इण्डिया' फिर क्या था उनकी सफलता का राज ? उसे उन्होंने ही बताते हुए एक अवसर पर कहा था—"उठो, जागो, रुको मत, जब तक अपने लक्ष्य तक न पहुँच जाओ।" इसी मन्त्र की उन्होंने साधना की, आदि काल से महामानवों ने इसी को अपने जीवन मन्त्र के रूप में अपनाया है। हमारे अपने लिए भी यही महामन्त्र है।

जो भी मिले राह में उससे अपना ज्ञान बढ़ाता चल

मरण शय्या पर लेटी माँ अपने बेटे को पास बुलाया स्नेह से उसके शीश पर हाथ फेरती हुई करुणासिक्त माँ ने कहा—"छौने ! परिस्थितियाँ कितनी असहाय हैं, तुझे पढ़ा भी नहीं सकी और अन्तिम विदा की वेला आ पहुँची। अब तेरे लिए सारा संसार ही स्कूल है। तुझे जो भी मिले

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उससे कुछ न। कुछ सीखना, वही तेरे जीवन में काम आयेगा" यह कहकर माँ ने सदैव के लिए आँखें मूँद लीं।

बच्चे का पाठशाला जाना बन्द हो गया। अब उसके लिए सारा संसार ही पाठशाला थी और हर व्यक्ति एक शिक्षक। बालक की यह विनम्रता और शोध-वृत्ति ही उसे न जाने कहाँ का कहाँ ले पहुँची ? जब बहुत पढ़-लिख जाने वाले भी अहंकारवश अपनी ज्ञानार्जन की बहुमूल्य क्षमता से वंचित रह उतने ही क्षेत्र में लटके रह जाते हैं जितना ज्ञान उन्हें स्कूल में मिला होता है, तब यह पाठशाला से वंचित रह जाने वाला छात्र अपनी लगन और सतर्कता से महान् बन गया।

उसने अपने दादा को देखा—"दादा जी पत्थर तोड़ने का काम किया करते थे। उसने भी हथौड़ा संभाला और पत्थर तोड़कर संगमरमर, अभ्रक और याकूत इकट्ठा करने का काम करने लगा। बालक ने न तो किसी से यह कहा कि मुझे नौकरी दिला दें और न ही किसी से काम और साधनों की माँग की। पत्थर तोड़ते समय अपने बुजुर्गों के मुँह से सुना कि समुद्री मल्लाह गोताखोरी करके किस प्रकार धरती के गर्भ से प्रबाल मोती-मूँगे और अन्य धातुएँ एकत्रित करते रहते हैं। पत्थरों के सम्बन्ध में बहुत-सी जानकारी प्राप्त कर लेने वाला लड़का अब मल्लाहों की टोल में जा पहुँचा और समुद्र में गोते लगाने लगा।

"जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ" उसे मोती तो दो-चार ही मिले, पर उसे इस गोताखोरी में समुद्री चट्टानों के अध्ययन का अवसर मिला। इससे अधिक यहाँ भी उसे कोई सफलता न मिली।

युवक ने अब एक संग-तराश के घर नौकरी कर उसमें उसे अनेक तरह के पत्थरों के गुणों का अध्ययन करने का अवसर मिलता। छैनी चलती रही और चलता रहा साथ ही साथ उसका मस्तिष्क भी। एक दिन वहाँ अपने मास्टर से पत्थर की चट्टानों सम्बन्धी कुछ बातें पूछ रहा था। बातचीत में ध्यान न रहा और एक कीमती पत्थर के टुकड़े में जोर का हथौड़ा लग गया। पत्थर टूट गया उसी के साथ, लड़के की नौकरी भी छूट गई।

उसे अपनी मेहनत का भरोसा था इसलिए उसे कोई बहुत बड़ी चिन्ता न हुई। अब उसने एक खान में नौकरी कर ली। उसे लाल रंग के एक पत्थर के अध्ययन की इच्छा थी, उसने खान में नौकरी के लिए कई दिन चक्कर काटे। खान मालिक ने समझा युवक बेकारी से पीड़ित है इसलिए बहुत कम पैसों में ही मजदूरी ठहरा ली। उसने सचमुच कहीं नौकरी की ही नहीं वह तो अपने आपको आजीवन एक शोध छात्र मानता था। इसलिए जो भी रोजी-रोटी मिलती, उसे ही छात्रवृत्ति मानकर वह श्रद्धापूर्वक शिरोधार्य करता आया था।

नीचे के गहरे लाल रंग के पत्थरों और ऊपर लाल रंग के लिए पीली मिट्टी का उसने बड़े ध्यान से अध्ययन किया और फिर जब से पत्थर तोड़ने का काम शुरू किया था अब तक के सारे अनुभवों को उसने लिख डाला। इन अनुभवों में भूगर्भ विद्या के अनेक ऐसे अकाट्य सिद्धान्तों का समावेश था, जिससे उसकी ख्याति देश भर में फैल गई।

यह बालक और कोई नहीं इंग्लैण्ड का ह्यूमिलर था, जिसने बाद में भू-गर्भ-शास्त्रवेत्ता के रूप से बड़ा यश और सम्मान अर्जित किया।

सफलता का मूल भाव 'संवेदना'

उन दिनों के मूर्धन्य वैज्ञानिक नागार्जुन को अपने शोध-कार्यों के लिए एक उपयुक्त सहायक की आवश्यकता पड़ी। घोषणा कराई गई और इच्छुकों के आवेदन आने आरम्भ हो गये।

नागार्जुन इस पद के लिए मेधावी और स्फूर्तिवान ही नहीं, ऐसा भी चाहते थे जो भावनाशील हो। भावना के अभाव में उच्चस्तरीय कार्यों की जिम्मेदारी उठती भी तो नहीं।

इच्छुकों को चित्र-विचित्र काम सौंपे जाते और यह पता चलाया जाता कि किसकी क्या प्रवृत्ति है ? कसौटी पर खरे न उतरने के कारण अनेकों को वापस लौटना पड़ा।

एक छात्र को किसी काम से बाहर भेजा गया। जितने समय में लौटता था, उसकी तुलना में उसने अधिक समय लगा दिया ? विलम्ब का कारण पूछने पर उसने बताया। एक जगह दुर्घटना घटित हुई। कितने ही घायल हो गये। उनकी सेवा-सुश्रुषा में लग गया और तब चला जब उनके उपचार की उपयुक्त व्यवस्था हो गई। ऋषि प्रवर नागार्जुन ने इस छात्र में मेधा एवं स्फूर्ति के साथ भाव सम्वेदना की उपयुक्त मात्रा देखी और उसे उस पद पर नियुक्त कर दिया गया।

शोध मात्र तार्किक गवेषणात्मक बुद्धि के सहारे नहीं, सरस अन्तःकरण का पुट मिलने पर ही सफल होती है।

ऐसी सीख न दीजिये

सुप्रसिद्ध दार्शनिक कंफ्यूशियस के बुद्धिमान शिष्य चाँग हो चाँग एक बार देश भ्रमण के लिए निकले। प्रजा की भलाई के लिए सामाजिक अध्ययन और उपयुक्त वातावरण का शोध इस भ्रमण का मुख्य उद्देश्य था।

घूमते-घूमते चाँग ताईवान पहुँचे। एक युवक माली कुएँ से जल निकाल रहा था, बाल्टी-बाल्टी पानी निकालने और फिर से ढोकर हर पौधे तक पहुँचाने में उसे बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ रहा था। माली की देह पसीने से तर हो रही थी। तो भी काफी काम बाकी पड़ा था। चाँग को उस पर बड़ी दया आई। काफी देर सोचते रहे कोई उपाय नहीं है क्या, जिससे माली का परिश्रम हलका किया जा सके।

विचार न करें तो सैकड़ों वर्षों को सड़ी-गली परम्पराएँ और रीति-रिवाज भी सगे-सम्बन्धी की तरह चिपके कष्ट देते रहते हैं, पर विचार की एक छोटी-सी लहर भी उन्नतियों के राजमहल खड़े कर सकती है। चाँग ने सोचा यदि लकड़ियों की एक घिर्री बनाकर उसमें रस्सी लपेटकर खड़े-खड़े ही खींचने का प्रबन्ध हो जाए और यहीं से प्रत्येक वृक्ष तक के लिए नाली खोद ली जाये तो माली का यथेष्ट श्रम बच सकता है। इतने ही परिश्रम में वह पहले से अधिक काम कर सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

माली ने इस योजना के लाभ समझे और उसे मान लिया। ढेंकलीनुमा पानी खींचने की व्यवस्था हो गई माली वहीं खड़ा-खड़ा पानी निकालकर पौधे सींचने लगा।

समय तो बचा पर किसान ने देखा, उसका चलने-फिरने, झुकने-लचकने के कई व्यायाम अब नहीं रहे इसलिए शरीर के कुछ अंग शिथिल रहने लगे हैं, तो भी उसे इस बात का सन्तोष था कि तब से कुछ अधिक काम हो जाने से शरीर का हर अंग कुछ न कुछ तो क्रियाशील हो ही जाता है, इसलिए स्वास्थ्य में गिरावट की कोई विशेष चिन्ता नहीं हुई।

चाँग आगे बढ़ गये। बहुत दूर तक घूम चुकने के बाद वे फिर उसी रास्ते से वापस लौटे तो उनके मस्तिष्क में एक और बाद याद आई कि यदि कुएँ में भाप से चलने वाली मशीन डाल दी जाए, तो परिश्रम भी बिल्कुल कम हो जाए और वृक्षों को जल भी खूब मिलने लगे। माली ने यह प्रस्ताव भी स्वीकार कर लिया। भाप का इंजन लग गया माली को चैन हो गया।

काफी दिन बीतने के बाद एक दिन चाँग की इच्छा उस बाग को देखने की हुई, उसने सोचा कि बगीचा अब लहलहा रहा होगा, पर वहाँ आकर देखा तो स्तब्ध रह गया। पूछने पर पता चला माली बीमार रहता है। इसलिए समय-बे-समय ही पानी मिल जाता है, इसी से पेड़-पौधे मुरझा रहे हैं।

चाँग माली को देखने उसके घर गये। सचमुच माली बीमार था। उसके हाथ सूख गये थे। टाँगे कमजोर हो गई थीं, पेट दो रोटी से ज्यादा नहीं पचा सकता था। माली का मुँह पीला पड़ गया था।

चाँग ने हँसकर पूछा—"कहो भाई ! अभी भी अधिक परिश्रम करना पड़ता है क्या, तो कोई और तरकीब सोचें ?" पास खड़ी मालिन ने हाथ जोड़कर कहा—"श्रीमान् जी और तरकीब लड़ाने की अपेक्षा तो आप इन्हें ऐसी सीख दीजिये कि पहले की तरह फिर से अपने हाथ से ही काम करने लगें। ढेंकली का आराम ही इनकी बीमारी का कारण है।" चाँग अपने एकांगी चिन्तन पर बहुत पछताये। उन्होंने सोचा मनुष्य यान्त्रिक और बिना परिश्रम के जीवन के आकर्षण में न पड़ता तो वह क्यों तो अस्वस्थ होता, क्यों रोगी ? उसने माली से अपनी स्त्री की ही राय मान लेने की सीख दी और वहाँ से वापस चला आया। माली अपनी पूर्व जीवन पद्धति में आकर पुनः स्वस्थ हो गया, पर उसकी छूत आज की पीढ़ी को लग गई जो मशीनों से काम लेकर स्वयं आराम से बैठा केवल कलम घिसना चाहता है। माली की तरह वह न तो उत्पादन बढ़ा पाता है, न बीमारी हटा पाता है। केवल मशीनें बढ़ रही हैं और मनुष्य उसमें निरन्तर दबता-पिसता चला जा रहा है।

आत्मविश्वास और आत्मपुरुषार्थ

बहुत प्रयत्न किया बेचारे ने, बुद्धि पर सारी शक्ति झोंक दी, पर एक भी विचार न उठ पाया तो मुँह में शब्द कहाँ से आते। वह बुरी तरह घबड़ा गया। उसकी यह विचित्र स्थिति देखकर व्याख्यान सुनने वाले लोग खिलखिलाकर हँस पड़े। बेचारे की और सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई। जब तक स्टेज से नीचे नहीं उतार दिया गया तब तक भीड़ तालियाँ पीटती रही।

इंग्लैण्ड के मिस्टर कौबडेन के एक भी शब्द उच्चारण न कर पाने के लिए सभापति ने क्षमा माँगी और यह युवक एक कोने में दुबका हुआ अपनी असफलता पर आँसू बहाता रहा, लेकिन दूसरे ही क्षण उसे हिम्मत बाँधी। आत्मविश्वास जगाया—हताश हो गया क्या, उठ-फिर प्रयत्न कर, सफलता तो पुरुषार्थी की चरणदासी है, आज नहीं तो कल सही, पर तू तो हिम्मत न हार।

कौबडेन फिर से पढ़ने लगा एक-एक विषय के सैकड़ों दृष्टान्त और आँकड़े उसने रट डाले। एकान्त में अभ्यास, मित्रों में अभ्यास, छोटी-छोटी पार्टियों और क्लबों में अभ्यास करता-करता एक दिन वह इंग्लैण्ड का सर्वश्रेष्ठ वक्ता बन बैठा।

अभी तो अवसर बाकी है

स्काटलैण्ड का सम्राट ब्रूस अभी गद्दी पर बैठ भी नहीं पाया था कि दुश्मनों ने आक्रमण कर दिया। बड़ी मुश्किल से संभल पाया था कि दुबारा फिर हमला कर दिया गया। हारते-हारते बचा। इस बार कई राजाओं ने हमला कर दिया तो बेचारे की राजगद्दी भी छिन गई। लगातार चौदह बार की असफलताओं के कारण उसके सैनिक भी कहने लगे कि ब्रूस के भाग्य में और सब कुछ है, पर विजय नहीं; उन्होंने साथ छोड़ दिया।

निराश ब्रूस एक पहाड़ी पर बैठा था। एक मकड़ी हवा में उड़कर एक-दूसरे पेड़ की टहनी से जोड़कर जाला बुनना चाहती पर जाला हर बार टूट जाता। मकड़ी ने बीस बार प्रयत्न किया फिर भी हिम्मत न हारी २१वें बार अन्ततः सफल हो गई तो ब्रूस उछला और बोला अभी तो सात अवसर बाकी हैं, अभी हिम्मत क्यों हारूँ ? एक बार फिर सारी शक्ति लगाकर उसने चढ़ाई की और न केवल अपना राज्य वापस कर लिया, वरन् सभी दुश्मनों को परास्त करता हुआ सबका सम्राट् बन बैठा।

जितनी बार गिरो, उतनी बार उठो

सुप्रसिद्ध अँग्रेज अभिनेता टाल्या के स्वास्थ्य और सौन्दर्य से आकर्षित होकर डाइरेक्टरों ने उसकी माँग स्वीकार कर ली और उसे रंगमंच पर पहुँचा दिया, किन्तु उस बेचारे से न तो एक शब्द बोलते बना, न नाचते-कूदते। फिल्म डाइरेक्टर ने गले की कमीज पकड़ी और झिड़ककर नीचे उतार दिया। कई अच्छे लोगों की सिफारिश के कारण एक बार फिर रंगमंच पर पहुँच तो गया, पर बेचारे की एक ड्रामे में बोलते समय ऐसे घिग्गी बँधी कि कुछ बोल ही नहीं पाया। फिल्म की आधी रीलें बेकार गईं। डाइरेक्टरों ने डाँटकर कहा—"अब दुबारा आने का प्रयत्न मत करना महाशय।" और उसे डाँटकर वहाँ से भगा दिया।

टाल्या फिर भी हिम्मत न हारा, कुलियों जैसे सामान उठाने के छोटे-छोटे पार्ट अदा करते-करते एक दिन सुप्रसिद्ध अभिनेता बन गया। किसी ने पूछा—"तुम्हारी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सफलता का रहस्य क्या है ?" तो उसने हँसकर कहा—'जितनी बार गिरो, उतनी बार उठो। यह सिद्धान्त स्वीकार कर लें तो आप भी निरन्तर उठते चले जाओगे किसी 'सहारे की जरूरत नहीं पड़ेगी।"

एकाग्रता का बल

इंग्लैण्ड के इतिहास में 'एल्फ्रेड' का नाम बड़े सम्मान से लिया जाता है। एल्फ्रेड ने प्रजा की भलाई के लिए अनेक साहसिक कार्य किए जिससे वह महान् एल्फ्रेड (एल्फ्रेड द ग्रेट) के नाम से पुकारा जाता है।

प्रारम्भ में एल्फ्रेड भी एक साधारण राजा की तरह, जो बाप-दादों से होता आया है, वह चाहे अच्छा हो या बुरा, करने की अन्धविश्वासी प्रवृत्ति के कारण सामान्य व्यक्तियों का-सा, खाओ-पियो और वैभव-विलास में डूबे रहो का जीवन जीने लगा। एक दिन ऐसा भी आया जब उसकी यह सुस्ती शत्रुओं के लिए वरदान सिद्ध हुई। एल्फ्रेड का राज्य औरों ने हड़प लिया और उसे गद्दी से उतारकर मार भगाया।

इधर-उधर मारे-मारे फिर रहे एल्फ्रेड को एक किसान के घर नौकरी करनी पड़ी। उसे बर्तन माँजने, पानी भरने और चौके का काम सौंपा गया। उसके काम की देख-रेख किसान की स्त्री करती थी। एल्फ्रेड छिपे वेश में जिन्दगी काटने लगे।

एक दिन किसान की स्त्री को किसी आवश्यक काम से बाहर जाना पड़ा। बटलोई पर दाल चढ़ी थी सो उसने एल्फ्रेड से कहा, 'कि जब तक मैं वापस नहीं आ जाती तुम बटलोई की दाल का ध्यान रखना।" यह कहकर स्त्री चली गई।

वहाँ से काम पूरा कर लौटी तो स्त्री ने देखा एल्फ्रेड एक ओर बैठा कुछ सोच रहा है और बटलोई की सारी दाल जल चुकी है। स्त्री ने कहा—"मूर्ख नवयुवक ! लगता है तुझ पर एल्फ्रेड की छाया पड़ गई है, तू भी उसकी तरह मारा-मारा घूमेगा।"

स्त्री बेचारी को क्या पता था कि जिससे बात कर रही है वह एल्फ्रेड ही है, पर एल्फ्रेड को अपनी भूल का पता चल गया। उसने यह बात गाँठ बाँध ली, आज से जो भी काम करूँगा, एकाग्रचित्त से करूँगा। कल्पना के किले बनाते रहने से कोई लाभ नहीं।

एल्फ्रेड एक बार फिर सहयोगियों से मिला। धन संग्रह किया, सेना एकत्रित की और दुश्मन पर चढ़ाई करके लन्दन को फिर से जीत लिया।

अपराध से सृजन एवं विकास तक

पश्चिम जर्मनी के एक नगर में किशोर वय का लड़का रोजगार की तलाश में भटक रहा था। सुस्त-सा लगने और कृशकाय होने के कारण किसी ने भी उसे अपने यहाँ नौकर नहीं रखा। उसकी कार्य क्षमता को परखने की बात तो दूर देखते ही उसे टरका दिया जाता।

इसी प्रकार तलाश करते-करते वह एक मोटर कम्पनी के मालिक से मिला। वह कम्पनी अवैध धन्धों के कारण बदनाम थी, पर मालिक दिखने में सीधा-सादा लगता था। उसने पूछा—"तुम्हें मालूम है हमारी कम्पनी बहुत बदनाम है। कोई हमारे यहाँ काम करने को भी तैयार नहीं होता। देखो न कितने दिनों से यहाँ की झाड़ू तक नहीं लगी है।"

"मुझे मालूम है" लड़का जिसका कि नाम जाइगेर था बोला—"परन्तु मैं अपना काम ईमानदारी से करूँगा। साँच को आँच क्या ?"

"ठीक है, तो जो काम तुम्हें दिखाई दे रहा है पहले वही करके दिखाओ।"

सुस्त जाइगेर ने तुरन्त झाड़ू उठाई और एक दोपहरी में ही कम्पनी की इमारत सफाई के कारण चमक उठी। दुबले-पतले जाईगेर की चुस्ती देखकर मालिक हतप्रभ रह गया। मालिक ने उसे अपने यहाँ नौकर रख लिया।

मोटर कम्पनी बदनाम इस कारण थी कि वहाँ कुछ अपराधी किस्म के सजायाफ्ता लोग पहले से काम किया करते थे। इसलिए सफाई करने के काम की भी कोई 'हाँ' न भरता था। जाइगेर अपने काम को पूरी तन्मयता और लगन के साथ करता था। मालिक पर उसका रंग चढ़ने लगा। दिनों-दिन उसके बढ़ते प्रभाव के कारण पुराने कर्मचारियों में जलन पैदा होना स्वाभाविक थी।

एक दिन उन्होंने मोटर का कोई कीमती पुर्जा जाइगेर के निवास की पीछे वाली कोठरी में छुपा दिया और बड़ा शोर-शराबा मचाया। कर्मचारियों की चाल सफल रही और जाइगेर पर इल्जाम आ गया। सफाई करने वाला मजदूर अपनी क्या सफाई पेश करता। उसे सजा हो गई। सोचा था काजल की कोठरी में हम बेदाग ही रहेंगे, परन्तु भेड़ियों के झुण्ड में बकरी का क्या मूल्य ? निरपराध होते हुए भी जाइगेर को सजा मिली। इससे वह बड़ा दुःखी हुआ। कैद से छूटने के बाद एक बदनाम जगह नौकरी और सजा पाया हुआ अपराधी होने के कारण रोजगार मिलना और भी कठिन हो गया। जाइगेर आर्थिक तंगियों से त्रस्त हो उठा। भूखों मरने लगा।

"बुभूक्षितः किं न करोति पापं"—भूखा आदमी कौन-सा पाप नहीं कर सकता। पेट की आग मिटाने के लिए झुका और उसने एक गिरोह बना लिया, जिसने ५० से अधिक डकैतियाँ और चोरियाँ कीं। एक दिन जाइगेर पुलिस की गिरफ्त में आ गया। उसे जेल में सड़ना पड़ा।

कारागृह में अपने पूर्व जीवन के प्रति उसे घृणा होने लगी और वह चौबीसों घण्टे पश्चाताप की आग में जलने लगा। यहाँ उसके भीतर छुपी हुई सद्प्रवृत्तियाँ अंकुरित होने के लिए अकुलाने लगीं और साबुन के एक रैपर पर उसने अपने मन की व्यथा लिख डाली। वह एक कविता के रूप में अभिव्यक्त हुई। जेल के पादरी से एक बार उसने अपनी मन की व्यथा सुनाई तो वह आश्चर्यचकित रह गया। एक अपराधी की पश्चाताप भरी कसक ने उसे द्रवित और प्रभावित किया। पादरी को लगा कि जाईगेर में प्रतिभा है और उसकी सहायता की जा सके तो न केवल वह अपना जीवन सुधार सकेगा वरन् दूसरे सैकड़ों लोगों को भी सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरणा दे सकेगा।

पादरी ने जाईगेर के लिए सरकार की ओर से उसकी साहित्यिक अभिरुचि को विकसित हो सकने जैसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधन जुटा दिए। कविता और गद्य के उसने सैकड़ों पृष्ठ जेल में ही रहकर लिखे।

जेल से छूटने के बाद जाईगेर मजदूरी कर अपना निर्वाह चलाने लगा और नियमित रूप से लिखने लगा। दिन भर काम कर वह शाम को लिखने बैठता। उसने एक अच्छा उपन्यास "दी फोट्रेस" लिख डाला। अपने मार्गदर्शक पादरी जेम्स विलियम को उसने उपन्यास की पाण्डुलिपि दिखाई। जेम्स अपने प्रयास और सहयोग को सफल हुआ देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ और पाण्डुलिपि पश्चिम जर्मनी के एक प्रकाशक को जो उसका मित्र भी था भेजी, जो प्रकाशित भी हो गयी।

विद्वानों के पास जब यह उपन्यास पहुँचा तो सबने इसे एक उत्कृष्ट साहित्यिक कृति के रूप में स्वीकार किया।

इसी कृति ने उसे पूरे जर्मनी में प्रसिद्ध और लोकप्रिय बना दिया। बाद में उसकी अन्य कृतियाँ सर्वाधिक संख्या में बिकीं।

एक मुजरिम से एक लोकप्रिय लेखक बनना मनुष्य की शक्ति सामर्थ्य की कहानी है, जो यह सिद्ध करती है कि अपने कृत्यों को थोड़ा-सा अवलोकित कर और उनके औचित्य-अनौचित्य को परखकर एक निश्चय और भविष्य की योजना बनायी जा सके, उसे क्रियान्वित किया जा सके तो व्यक्तित्व का विकास बड़ी सहजता से हो सकता है।

साहस सर्वोपरि समर्थता

वैरमखाँ के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए माँ हमीदा ने कहा—"बेटा ! आपत्तिकाल में आत्मरक्षा के लिए जो भी उपाय सामने हो करना चाहिए। तुम अभी किशोर हो, युद्ध तुम्हारे वश की बात नहीं।"

सेनापति का आदेश और माँ का समर्थन १४ वर्षीय बालक अकबर ने राजकुमारियों वाला जनाना वेश धारण कर लिया। रेशमी सलवार, कुरती, हाथ में मेंहदी और चूड़ियाँ, सिर चूनर से ढका हुआ, अकबर अपनी माँ के साथ पालकी में बैठा दिया गया। कहारों को पालकी उठाकर चलने की आज्ञा दे दी गई।

"हम लोग कहाँ जाएँगे माँ" अकबर ने हमीदा से प्रश्न किया—"दिल्ली के उस रास्ते से निकलेंगे जिस रास्ते जनानी पालकियाँ जाती हैं। इस प्रकार हम लोग बच निकल चलेंगे, राजपूत स्त्रियों पर हथियार नहीं उठाते, बेटा, इसलिए तुम्हें स्त्री वेश धारण करना पड़ रहा है। इसका तुम बिल्कुल दुःख मत करो।"

"अच्छा एक बात बताओ माँ ! मैं युद्ध क्यों नहीं कर सकता ? राजपूत मुट्ठी भर होते हैं, पर वे जीतते क्यों हैं ?"

हमीदा ने दीर्घनिश्वास छोड़ी और उत्तर दिया—"बेटा तुम्हारी आयु अभी छोटी है परिपक्व न होने तक तुम्हारा लड़ना उचित नहीं है। राजपूत तो बड़े साहसी होते हैं बेटा ! उन्हें बचपन से ही वीरता का पाठ पढ़ाया जाता है, लड़ना उनके लिए खेल है इसीलिए वे सदैव विजयी रहते हैं।"

"राजपूत बड़े साहसी होते हैं, इसीलिए वे जीतते हैं।" एक पंक्ति के इस तथ्य ने अकबर के मन में बिजली जैसी शक्ति भर दी, इसका यह अर्थ हुआ कि विजय व्यक्ति को नहीं उसकी हिम्मत को मिला करती है। अकबर ने अनुमान लगाया और दूसरे ही क्षण तलवार हाथ में लिए वह पालकी से बाहर कूद पड़ा। कहार हक्के-बक्के रह गये। हमीदा का श्वास हलक में अटक गया।

बैरमखाँ को जब तक खबर पहुँचे, तब तक अकबर अपना नारी परिधान उतारकर सैनिक वेश धारण कर चुका था। इधर बैरमखाँ के अनेक प्रयत्नों के बाद भी वह सेना वीर सम्राट् हेमू के सम्मुख टिक न सकी। पैर उखड़ गये सिपाही जान बचाकर भागने लगे।

भागती हुई मुगल सेना को ललकारते हुए १४ वर्षीय किशोर अकबर ने कहा—"दोस्तो ! पीछे मुड़ो अब हमें कोई नहीं हरा सकता। विजय मन्त्र मेरे हाथ लग चुका है।" बैरमखाँ तो यह दृश्य देखकर हक्का-बक्का ही रह गया।

सेना अपने स्वामी को देखते ही ठहर गई। युद्ध फिर गति पकड़ने लगा। तभी सनसनाता हुआ एक तीर आया और अकबर की बाईं भुजा में बिंध गया। चुभे हुए तीर की ओर एक दृष्टि डालकर अकबर ने दूर तक दृष्टि दौड़ाई मालूम हो गया कि उसका संधान स्वयं सम्राट् हेमचन्द्र ने किया है।

सेनापति बैरम खाँ और अकबर की सेना हतप्रभ हो, उससे पूर्व ही अकबर ने दाहिने हाथ से चुभे हुए तीर को निकाल दिया, इधर खून की धारा फूटी उधर धनुष से वही तीर सनसनाता हुआ आगे बढ़ा और हेमू की आँख में जा घुसा। हेमू अपने घोड़े से जमीन में जा गिरा।

पासा पलट गया। मुगल उत्साह से भर गये। अकबर की तरह वे भी सुनिश्चित विश्वास के साथ युद्ध करने लगे और विजयश्री उनके हाथ लगी।

इतिहासकार कहते हैं कि विजय का श्रेय बैरमखाँ को है, पर दूरदर्शी मुगलों की इस विजय को 'साहस की विजय' मानते हैं, जो अकबर को राजपूतों से उपहार मिला। सच है साहस ही सर्वोपरि समर्थता है।

पितृ-श्राद्ध

राजा सगर के सौ पुत्र अपने दुष्कर्मों के कारण कपिल मुनि के कोपभाजन होकर जलकर भस्म हो गये और पाप परिणाम से नरक की दुःखद यन्त्रणाएँ सहने लगे।

इन सौ नरकगामी राजकुमारों के भाई अंशुमान राजगद्दी पर बैठे, पर वे सदैव इस चिन्ता में जलते रहे कि किस प्रकार अपने भाईयों का उद्धार करें ? अंशुमान के पुत्र दिलीप भी अपने पितृ ऋण को भुला न सका। उसने पितरों के उद्धार निमित्त घोर तपस्या की, पर सफल मनोरथ न हो सका। दिलीप का पुत्र भागीरथ भी चुप न बैठा, पुरखों का उद्धार करना, उनके किए हुए पाप का प्रतिशोध करना आवश्यक था। अपने पूर्वजों की कलंक-कालिमा को धोये बिना कोई सपूत कैसे चैन पा सकता है ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बताया गया था कि सगर के सौ पुत्रों ने पृथ्वी पर जो पाप का बीज बोया है, इसका कलंक तब छूट सकता है, जब इस संसार पर भगवती गंगा लाई जाएँ, जिनके शीतल जल से उजाड़ खण्ड हरे हो जाएँ और प्यासे प्राणियों के सूखे कण्ठों को शीतलता प्राप्त हो। अभाव की पूर्ति का यही उपाय है कि जितनी हानि पूर्वकाल में हो चुकी है, उतना ही लाभ पहुँचा दिया जाय। पितरों के उद्धार का यही रास्ता है कि उनसे दुनिया का जो अपकार बन पड़ा हो वह सब पाई-पाई चुका दिया जाय।

भगीरथ के हृदय में सच्चा पितृ प्रेम था, वे पितरों का श्राद्ध करके उनकी परलोकस्थ आत्माओं को शान्ति लाभ कराना चाहते थे, इसलिए सुख-वैभव छोड़कर शक्ति सम्पादनार्थ वे घोर तप करने लगे। तप में, संयम में, एकाग्रता में, लगन में, शक्ति का सारा केन्द्र छिपा हुआ है। यह भगीरथ ने जाना और एक महान् कार्य को पूरा करने की तैयारी के लिए तप में प्रवृत्त हो गये। तप के बाद उनका पौरुष जागा और वे देवताओं की सहायता से भूमण्डल पर गंगाजी को ले आये।

गंगा के आने से संसार का बड़ा उपकार हुआ। सगर सुतों द्वारा दुनिया में जितना अधर्म हुआ था, उससे अधिक भगीरथ का धर्म हुआ। पितामहों के दुष्कर्म का परिमार्जन पुत्र के कार्यों द्वारा हो गया। पितरों की आत्माओं को स्वर्ग में शान्ति मिली, उनकी आन्तरिक जलन बन्द हो गई, कुम्भीपाक की आत्मवेदना की कोठरी में घुटता हुआ जी सुस्थिरता अनुभव करने लगा। सच्चे पिण्डोदक पाकर पितरों की आत्माएँ आशीर्वाद देने लगीं।

उपचार या परिष्कार

चरक के निदान में एक कथा आती है—महर्षि चरक द्वारा रचित उस महान् ग्रन्थ के प्रणेता पुनर्वसु अपने शोध प्रयासों के लिए सघन वनों में परिभ्रमण कर रहे थे। साथ में थे उनके पट्ट शिष्य अग्निवेश।

चलते चलाते पुनर्वसु ने अन्तरिक्ष की ओर देखा और किसी अप्रत्याशित आशंका से स्तब्ध होकर लम्बी साँसें भरने लगे। खड़े ऐसे थे जैसे काठ मार गया हो। आँखें ऐसी फट रही थीं, मानो वे किसी विभीषिका का दर्शन कर रहे हों।

शिष्य अग्निवेश गुरुदेव के इस अकस्मात् परिवर्तन को देखकर चिन्तातुर हो चला। समाधान के लिए उसने साहस बटोरकर डरते-काँपते प्रश्न किया—"देव ! क्या विग्रह उत्पन्न हुआ ? क्या असमंजस सामने आया ?"

पुनर्वसु ने लम्बी साँस खींचते हुए कहा—"मैं तो जन-साधारण को स्वस्थ बनाने की बात सोचता था, पर होता इससे ठीक विपरीत है। देखता हूँ सर्वनाश की घटाएँ घुमड़ी चली आ रही हैं। मनुष्य भयंकर विपत्ति में फँसेंगे। पाँचों तत्व देवता कुपित होंगे और विनाश की वर्षा करेंगे। प्रकृति विपर्यय से अनेकों संकट खड़े होंगे। ओषधियाँ अपना प्रभाव छोड़ देंगी और जिस मनुष्य के लिए हम इतना प्रयत्न-पुरुषार्थ कर रहे हैं, वह स्वयं आत्मघात करेगा। यह भविष्यव्यथा मेरे अन्तराल को विदीर्ण किये दे रही है।"

शिष्य अवाक् रह गया। उसने फिर हिम्मत की और विनयावत होकर पूछा—"देव ! आपने इतना महान् ग्रन्थ रच दिया। इतना शोध प्रयत्न करके जनसाधारण के हाथ में अमृत कलश थमा दिया फिर लोग क्यों रोगी पड़ेंगे ? क्यों विपत्ति में फँसेंगे और जो फँसेंगे वे क्यों न उबरेंगे ?"

पुनर्वसु की उद्विग्नता में तनिक भी कमी नहीं आई। वे बोले—"जब मन ही अधर्मरत होकर विपत्तियों को आमन्त्रित करेगा तो बेचारा उपचार किस काम आयेगा ? ओषधियाँ तो व्याधियों की रोकथाम भर करती हैं। मन के पतन पर उनका नियन्त्रण है। कुमार्ग पर चल पड़ने वाले को आत्महत्या से रोकने में उपचारों से क्या काम बनेगा ?"

अग्निवेश का समाधान फिर भी न हुआ। उन्होंने तीसरी बार पूछा—"देव ! मनुष्यों का अधर्माचरणों के लिए झुकाव किस कारण होता है और वे उसकी हानि को न समझते हुए क्यों उसे अपनाने लगते हैं ?"

ऋषि बोले—"तात् ! बुद्धि विपर्यय मनुष्य का सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। बुद्धि के भ्रमित और पतित होने पर सब उलटा दिखता है। हानि में लाभ और लाभ में हानि देखने की विपन्नता उपज पड़ती है और जो करने योग्य है उसका परित्याग करके न करने योग्य को करने की प्रवृत्ति उभरती है। फलतः न केवल शारीरिक व्याधियाँ बढ़ती हैं, वरन् हर दिशा से विपत्तियाँ बरसती हैं। जब विनाशकाल आता है तो दुर्बुद्धि का प्रकोप ही तूफान की तरह उतरता है और जो कुछ श्रेष्ठ है उसे उजाड़कर रख देता है। अगले दिनों मुझे ऐसी ही विपत्ति की संभावना आकाश में घुमड़ती दिखती है।"

शिष्य ने तथ्य को समझा और निराशाग्रस्त होकर भूमि पर लोट गया। बोला—"हाँ हन्त ! क्या हम लोगों को मनुष्य की सूखी देखने की आकांक्षा दिवास्वप्न होकर ही रह जाएगी ?"

पुनर्वसु बहुत समय तक हतप्रभ न रहे। अपना होश सँभाला और शिष्य को सहारा देकर उठाया, बोले—"साँस रहने तक हमें निराश न होना चाहिए और न प्रयत्न छोड़ना चाहिए। सम्भावना को पराक्रम के सहारे बदला जा सकता है। सो हमें अब भवितव्यता को प्रश्न में रखते हुए पराक्रम का नया निर्धारण करना चाहिए।"

आशा जगी। अनुरूप निर्धारण की आकांक्षा उठी। दोनों परस्पर विचार-विनिमय करते रहे। अन्ततः इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उस महाग्रन्थ के जितने प्रकरण लिख गये, उतने से ही सन्तोष करना और विराम देना चाहिए। अब हमें अपना शोध प्रयोग उस प्रयोग हेतु नियोजित करना चाहिए, जिससे शारीरिक व्याधियों के निवारण हेतु मानसिक व्याधियों का समाधान अधिक आवश्यक और प्राथमिकता देने योग्य है।

गृहस्थ का अधिकार

आचार्य काश्मोज की सुपुत्री निश्चला प्रतिदिन इसी मार्ग से भगवती सरस्वती के दर्शनार्थ विभास-वन जाया करती थी। आर्य पुत्री ने व्याकरण की शिक्षा प्राप्त की थी। नृत्य और संगीत में उन्होंने विशारद भी किया था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किन्तु इन सबसे बढ़कर वर्णनीय था, उनका शौर्य और साहस। कोई भी कुटिल व्यक्ति उनकी ओर ताक नहीं सकता था। उच्च शिक्षा के कारण जहाँ उनमें गम्भीरता आ गई थी, साहस भी कम नहीं था। उन्होंने आर्यकुल में जन्म लेने का सौभाग्य सार्थक किया था।

आज जब वे देवी के दर्शन कर लौट रही थीं, सामने से आते हुए राजकुमार भूरिश्रवा की दृष्टि उन पर अटक गई। सौन्दर्य ईश्वर की शक्ति है, पर जब उसे वासना की सामग्री समझ लिया जाता है, तो उसी शक्ति की गरिमा नष्ट हो जाती है। परमात्मा के इस महत्त्व स्वरूप की रक्षा के लिए, इसी कारण उन दिनों चरित्र को प्रधानता दी गई थी।

भूरिश्रवा का काम-लोलुप दृष्टि डालना था कि निश्चला सिंहनी की भाँति गरज उठी। "दुष्ट, आर्यकुल में स्त्रियों को माता, भगिनी व पुत्री की दृष्टि से देखते हैं, तुझे मालूम नहीं, जिन जातियों में वासना जीवन का सुख और इष्ट मान लिया जाता है, उनकी सामर्थ्य नष्ट हो जाती हैं। तेरी इस धृष्टता का समाचार महाराज सिन्धुराज तक पहुँचेगा, तब पता चलेगा कि किसी कन्या को छेड़ने का क्या दण्ड हो सकता है ?"

'किन्तु भद्रे ! आपने यह कैसे सोच लिया कि मैं एक सामान्य नागरिक हूँ ? आपको ज्ञात नहीं, मुझे राजकुमार भूरिश्रवा कहते हैं। सिन्धुराज मेरे पिता हैं, उन्हें अपने लिए त्रासदायक क्यों समझूँ ? आपके रूप-सौन्दर्य पर आसक्त हूँ किन्तु व्यभिचार को मैं भी नीच और घृणित कृत्य मानता हूँ। दूसरे की कन्याओं पर कुदृष्टि डालने वाला मेरी दृष्टि में भी अपराधी है। मैंने तो आप पर इस उद्देश्य से दृष्टि डाली है कि आप जैसी विदुषी बाला को हम अपनी साम्राज्ञी बना सकते तो इस राज्य को यशस्वी राजकुमार प्रदान करने का श्रेय प्राप्त करते। भद्रे ! आप असहमत न होंगी, जो युवक-युवती समान शारीरिक, मानसिक, आत्मिक, नैतिक योग्यता के आधार पर दाम्पत्य वरण करते हैं, वे ही योग्य सन्तानों को जन्म दे सकते हैं।

निश्चला—विचारशील निश्चला को भूरिश्रवा की बातें बहुत तथ्यपूर्ण जान पड़ीं। उन्होंने एक क्षण विचार किया और फिर हँसकर बोली—"आपका कथन सत्य हैं, महोदय ! किन्तु हमारी योग्यताएँ समान भी तो नहीं। आचार्य काम्भोज की पुत्री मुझ निश्चला के पास न धन है, न द्रव्य और आप हैं प्रजा द्वारा अर्जित अपार सम्पत्ति के स्वामी। मेरे पिता परिश्रम की कमाई पर विश्वास करते हैं। मैंने आज तक सदैव ही ईमानदारी से उपार्जित धान्य ग्रहण किया है, तभी अपने मनोबल उद्दात्त रख सके हैं। आप हमारे साथ परिश्रम का जीवन जी सकें, ऐसा आपके लिए कहाँ सम्भव है ?"

भूरिश्रवा निश्चला के कथन से बड़े प्रभावित हुए उन्होंने कहा—"देवी ! आपकी बात शिरोधार्य करता हूँ। राजकुमार भूरिश्रवा श्रम को ही प्रतिष्ठा देगा। अपनी आजीविका मैं अपने आप उपार्जित करूँगा। जब तक अपनी यह परीक्षा उत्तीर्ण न कर लूँ, तब तक आपको प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।"

राजकुमार भूरिश्रवा उस दिन से कृषक भूरिश्रवा का-सा जीवन जीने लगे, एक वर्ष तक बड़े परिश्रम का अभ्यास करने के बाद राजकुमार ने गृहस्थ का अधिकार प्राप्त किया। निश्चला ने तब भूरिश्रवा का पाणिग्रहण किया और सम्राट होकर भी अन्न केवल अपने परिश्रम से उपार्जित करके ही ग्रहण किया।

नीति और अनीति की कमाई का अन्तर

प्राचीन युग की बात है। तब प्रजा अधिकतर धर्म प्राण थी फिर भी अधार्मिक तत्व किसी मात्रा में थे ही। अधिकांश व्यक्ति त्यागी, सेवा परायण एवं ईश्वर भक्त साधुजनों से सदुपदेश तथा सद्ज्ञान प्राप्त किया करते थे।

एक सन्त थे। वे जनता को धार्मिक उपदेश दिया करते थे। किन्तु उन्होंने यह पढ़ा था शास्त्रों में कि—"ज्ञान-दान बिना किसी प्रतिदान की आशा अथवा लाभ के बिना ही किया जाना चाहिए, अन्यथा उसकी महत्ता कम हो जाती है।" सो सन्त अपना निर्वाह टोपियाँ सींकर, बेचकर ही करते थे। नित्य के व्यय के पश्चात् एक पैसे की बचत भी हो जाती थी, जिसे वे दान कर दिया करते थे।

उसी नगर के एक प्रतिष्ठित सेठ जी सन्त का प्रवचन सुना करते थे तथा उनकी गतिविधियों को निकट से देखा करते थे। उन्होंने देखा कि साधु जी नित्य एक पैसे का दान करते हैं।

उन्हें भी दान करने की प्रेरणा मिली और उन्होंने भी उस दिन से धर्मखाते में एक निश्चित मात्रा में धन निकालना प्रारम्भ कर दिया।

जब राशि पाँच सौ रुपये हो गई, तब वह उसे लेकर सन्त के पास पहुँचे। "मैंने धर्मखाते में निकाली हुई ये राशि एकत्रित की है। अब इसका क्या करूँ ?"

सन्त ने सहज भाव से कहा—"जिसे तुम दीन-हीन समझते हो उसे दान कर दो।"

सेठ जी गये। उन्होंने देखा कि दुबला-पतला, भूख से पीड़ित अन्धा मनुष्य जा रहा है। उन्होंने उसे सौ रुपये देकर कहा—"सूरदास जी ! आप इन रुपयों से भोजन, वस्त्र तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ ले लेना।"

अन्धा आशीर्वाद देता हुआ चला गया, किन्तु सेठ जी को न जाने क्या सूझा कि वे उसके पीछे-पीछे चले। उन्होंने देखा कि आगे जाकर उस अन्धे ने उन रुपयों से खूब मांस खरीदकर खाया। शराब पी और जुए के अड्डे पर जाकर जुए के दाव पर रुपये लगा दिये। नशा चढ़ा और वह सब रुपये हार गया तब जुए के अड्डे वालों ने उसे धक्के देकर बाहर निकाल दिया।

सेठ को बड़ी ग्लानि हुई। एक क्षण के लिए दान-धर्म से विश्वास ही हट गया, पर फिर वह साधु के पास गये और उन्हें सब कुछ कह सुनाया।

सन्त मन ही मन मुसकराये और उसे अपना बचाया हुआ एक पैसा देकर कहा—"आज इसे किसी आवश्यकता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वाले को दे देना और कल अपनी बात का उत्तर ले जाना।"

सेठ जी ने आगे जाकर एक दीन दरिद्र व्यक्ति को वह पैसा दे दिया और छिपकर उसके पीछे हो लिए। वह व्यक्ति थोड़ी दूर गया। उसने अपनी झोली में से एक चिड़िया निकालकर उड़ा दी। एक पैसे के चने खरीदे और उन्हें खाकर तृप्त होकर प्रसन्न होता हुआ आगे चला।

सेठजी ने उससे पूछा कि उसने ऐसा क्यों किया ? तब वह व्यक्ति बोला—"मैं कई दिन से भूखा था। कुछ न पाकर यह चिड़िया पकड़ लाया था कि भूनकर खा लूँगा, किन्तु अब आपने एक पैसा दे दिया। तो अब प्राणी की हत्या क्यों करूँ ? इतना अन्न मिल गया। क्या यह सन्तोष की बात नहीं ?"

सेठ ने यह घटना भी सन्त को सुना दी और दोनों घटनाओं का अन्तर पूछा।

सन्त बोले—"वत्स ! महत्ता केवल देने भर की नहीं होती। हमने जो धन दान में दिया है, वह किन साधनों द्वारा प्राप्त किया है ? इसकी भी भावना उस धन के साथ जुड़ जाती है, तुम्हारा अनीतिपूर्वक बिना परिश्रम के कमाया गया धन पाकर प्राप्तकर्त्ता ने सौ रुपये भी अनीति के कार्यों में लगाये। अतः तुम्हें उस उपयोगकर्त्ता के अनुरूप पाप ही लगेगा और मेरा एक पैसा परिश्रम से कमाया हुआ था, अतः जिसके पास गया, उसके द्वारा सद्बुद्धिपूर्वक ही व्यय किया गया।" सेठ की समझ में तथ्य आ गया और उस दिन से ही उसने व्यापार पूरी ईमानदारी के साथ करना प्रारम्भ कर दिया।

धन नहीं, धन का संग्रह पाप

गोपाल्लव—हजार गायों का स्वामी—नगरसेठ। धन की अथाह राशि थी उसके पास, किन्तु तो भी गोपाल्लव के जीवन में कोई रस नहीं था, शान्ति नहीं थी, उसने सन्तोष का अनुभव किया हो ऐसा कभी भी नहीं हुआ। वैभव विलास से परिपूर्ण जीवन का एक क्षण भी तो उसे ऐसा याद नहीं आ रहा था, जब उसने निर्द्वन्द्वता प्राप्त की हो।

विषय-भोगी गोपाल्लव को यह सब भली प्रकार सोचने का अवसर तब मिला, जब राजयक्ष्मा से पीड़ित होकर वह रोग शय्या से जा लगा। गोपाल्लव सोच रहे थे कि धन की आसक्ति, विषयों के सुख का आकर्षण कितना प्रबल है कि मनुष्य यह भी नहीं सोच पाता कि इस संसार से परे भी कुछ है क्या ? शरीर कृश और जरा-जीर्ण हो गया तब कहीं मृत्यु याद आती है और मनुष्य सोचता है कि जीवन व्यर्थ गया, पाया कुछ नहीं गाँठ में था सो भी खो दिया।

गोपाल्लव पड़े यही सोच रहे थे तभी उसके कर्ण-कुहरों पर टकराई एक ध्वनि—बहुत मीठी, भक्ति की भावनाओं से ओत-प्रोत। ऐसा लगा द्वार पर ही बैठा हुआ कोई व्यक्ति भक्ति गीत गा रहा है। मन को सच्चा सुख भावनाओं में मिलता है। जीवन भर के भूले-भटके राही को परसपिता परमात्मा की क्षणिक अनुभूति भी कितना सुख, कितना विश्राम देती है, यह उस गोपाल्लव को देखता तो सहज ही पता चल जाता। भजन सुनने से ऐसा आराम मिला, मानो जलते घावों पर किसी ने शीतल मरहम लगा दिया हो। गोपाल्लव को नींद आ गई। आज वे पूर्ण प्रगाढ़ नींद भर सोये।

नींद टूटी तो वह स्वर, अन्तर्ध्यान हो चुका था। गोपाल्लव ने परिचारक से पूछा—"अभी थोड़ी देर पूर्व बाहर कौन गा रहा था—उसे भीतर तो बुलाना, बड़ा ही कर्ण प्रिय स्वर था। उसने मुझे जो शान्ति प्रदान की वह अब तक कभी भी नहीं मिली।"

परिचारक ने हँसकर कहा—"वह कोई संगीतज्ञ नहीं था। पर आर्य ! वह तो नगर का मोची है यही बैठकर जूते गाँठता है और दिन भर के निर्वाह योग्य धन मिलते ही उठकर चला जाता है। सुना है वह अपने ही बनाये पद गाता है, बड़ा ईश्वर भक्त है, तभी तो उसके हर शब्द से रस टपकता है।"

प्रातःकाल वही स्वर फिर सुनाई दिया। गोपाल्लव ने मोची को बुलाकर उसे एक स्वर्ण मुद्रा देते हुए कहा—"तात् ! यह लो स्वर्ण मुद्रा तुम्हारे कल के गीत ने मुझे अपूर्व शान्ति प्रदान की।" स्वर्ण मुद्रा पाकर मोची बड़ा प्रसन्न हुआ। खुशी-खुशी घर लौट आया, किन्तु उसके बाद कई दिन तक उसका स्वर सुनाई न दिया। सप्ताहान्त मोची आया और सीधे गोपाल्लव के पास जाकर बोला—**"अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते"** तात् ! जो धन और इन्द्रियों के वशवर्ती नहीं हैं, वही धर्म और ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। आत्म-कल्याण के मार्ग में यह दोनों वस्तुएँ बाधक हैं—यह कहकर उसने स्वर्ण मुद्रा लौटा दी। गोपाल्लव ने पूछा—कई दिन से आये नहीं। मोची ने उत्तर दिया—"आर्य ! धन की तृष्णा बुरी होती है। आपकी दी इस स्वर्ण मुद्रा की रक्षा और उसके उपयोग का चिन्तन करने के आगे मुझे अपना मार्ग ही भूल गया था, इसीलिए तो इसे लौटाने आया हूँ।"

गोपाल्लव ने अनुभव किया धन का जीवनोपयोगी उपभोग ही पर्याप्त है। परिग्रह से कभी शान्ति नहीं मिल सकती अपना धन धर्मार्थ व्यय कर उसने भी मोची की तरह परम शान्ति पाई।

बीस उँगलियों की कमाई

एक तपस्वी ब्राह्मण धनाभाव के कारण बड़ा दुःखी रहता था। सारा दिन ब्रह्मनिष्ठा में व्यतीत हो जाता। पैसे आने का कोई अन्य साधन न था। आकाशी जीविका से जो थोड़ी-बहुत आय हो जाती, उसी से उनका कुटुम्ब अपना भरण-पोषण कर लेता। आमदनी इतनी स्वल्प थी कि कुटुम्ब के लिए भोजन और वस्त्र भी पूरे न हो पाते।

नित्य के अभावों से दुःखी होकर ब्राह्मण-पत्नी ने एक दिन अपने पति से कहा—"आर्य ! नित्य के कष्ट अब असहनीय होते जाते हैं, इसलिए कोई ऐसा उपाय कीजिए, जिससे यह कठिनाईयाँ कम हो जावें।" उस वन्य प्रदेश में ब्राह्मण क्या आजीविका कर सकता था, उसने बहुत सोचा कि अपने नियमित कार्यक्रम को पूरा करते हुए द्रव्य उपार्जन की कुछ व्यवस्था कर सकूँ, पर स्थिति कुछ ऐसी ही थी, वह वहाँ कुछ कर नहीं सकता था। बहुत विचार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करने के बाद भी जब वह किसी निश्चित परिणाम पर न पहुँच सका, तो ब्राह्मणी ने कहा—"नाथ ! हम लोग अकर्मण्य नहीं हैं। प्रमाद या आलस्य में समय बिताकर अयोग्यता के कारण अभाव नहीं भुगत रहे हैं। यदि हम अयोग्यता और अकर्मण्य होते, तब तो निश्चय ही हम दुःख भोगने के अधिकारी थे, परन्तु हम लोगों का जीवन तो लोकसेवा के लिए है। आप अपनी प्रकाण्ड विद्वता और उज्ज्वल आत्मशक्ति का उपयोग लोकसेवा के लिए कर रहे हैं। इसके बदले में क्या अन्न-वस्त्र की आवश्यकता हम समाज द्वारा पूरी करने के अधिकारी नहीं हैं ? निश्चय ही साधारण जनता ऐसे अप्रत्यक्ष सेवकों का महत्त्व अच्छी तरह पहचान नहीं पाती, जिनके द्वारा निर्मल ज्ञानगंगा का आविर्भाव होता है और जो अपनी आत्मशक्ति द्वारा जनसमाज के दुःखदायी अरिष्टों को दूर करने के भागीरथ प्रयत्न में प्रवृत्त रहते हैं। यदि अज्ञानवश लोग हमारी आवश्यकताओं की ओर ध्यान नहीं देते हैं, तो हमें इसके लिए उन्हें चेताना चाहिए।"

ब्राह्मण के मुख पर हँसी की एक रेखा दौड़ गई। वह समझ गया कि ब्राह्मणी की इच्छा किसी सम्पन्न व्यक्ति से कुछ माँग लाने की है। सन्तोषी ब्राह्मण का स्वभाव कुछ संकोचशील था, वह अपने को अधिक से अधिक तपस्या की कसौटी पर कसना पसन्द करता था, परन्तु जब ब्राह्मणी का आग्रह देखा, तो उसे इसमें भी कुछ अनुचित न प्रतीत हुआ कि किसी सम्पन्न व्यक्ति से कुछ याचना कर ली जाय। तपस्वी ने ब्राह्मणी की ओर स्वीकृति सूचक सिर हिला दिया।

दूसरे दिन प्रातःकाल नित्यकर्म से निवृत्त होकर ब्राह्मण उत्तरदिशा के लिए चल दिया और कई दिन की यात्रा को पार करते हुए उस देश के राजा के नगर में जा पहुँचा। राजदूतों ने उसके आने की सूचना राजा को दी। समाचार पाते ही राजा उनकी अगवानी को दौड़ा आया। वह जानता था कि धनी और शक्तिशाली होने का सच्चा महत्त्व इसमें है कि इससे लोकसेवी महानुभावों की सेवा और सहायता की जावे। कई व्यक्तियों की स्थिति धन और सत्ता एकत्रित करने को होती है। वे प्रत्यक्ष शरीर से संसार की भलाई का कोई अधिक कार्य नहीं कर सकते, ऐसे लोगों का कल्याण इसी में है कि वे अपनी शक्ति का अधिक से अधिक मात्रा में साधुजनों को समर्पण कर दें। राजा ने इस मानव धर्म को समझा था और वह साधुजनों की सेवा के लिए सदैव प्रस्तुत रहता था।

बड़ी आवभगत के साथ तपस्वी को अतिथिशाला में ठहराया गया। उनका वैसा ही आतिथ्य-सत्कार किया गया जैसा कि बड़े-बड़े राजकर्मियों का होता है। ब्राह्मण ने उस दिन अपनी थकान मिटाई और अतिथिशाला में विश्राम करते रहे। दूसरे दिन राजा उनके सन्मुख आया और प्रणाम करके विनम्र भाव से पूछा—"भगवन् ! आज्ञा दीजिए। इस सेवक के लिए क्या सेवा है।" ऋषि ने सरल स्वभाव से अपने आगमन का कारण कह सुनाया।

कोषाध्यक्ष को बुलाकर राजा ने आज्ञा दी कि दस हजार रुपये इन महापुरुष को भेंट किये जाएँ। रुपये जब ब्राह्मण के समक्ष आये तो उनके चेहरे पर प्रसन्नता नहीं, वरन् खिन्नता की रेखाएँ खिंच गईं। राजा ने पूछा—"महात्मन् कदाचित यह धन कम है, क्या इससे अधिक उपस्थित करूँ ?" ब्राह्मण ने कहा—"हाँ" अब दस हजार अशर्फियाँ लाई गईं। वह भी कम बताई गईं। राजा ने क्रमशः अधिक धन उपस्थित किया पर वह भी थोड़ा ही कहा गया। यहाँ तक कि राजा ने अपना सारा खजाना और राज्य उनके सम्मुख रखा पर ब्राह्मण को इससे भी सन्तोष न हुआ।

तब राजा ने कहा—"मेरे पास यही वस्तुएँ थीं अब इनके अतिरिक्त जो वस्तु आप चाहते हों वह स्वयं ही बतलाने की कृपा करें।" ब्राह्मण ने कहा—"राजन् ! दान का महत्त्व धन के अधिक परिमाण में होने में नहीं, वरन् उत्तम भावनाओं के साथ दान करने में है और उत्तम भावनाएँ उसी धन में हो सकती हैं, जो बीसों उँगलियों के परिश्रम से कमाया गया हो। क्या तुमने यह सब धन अपने परिश्रम से कमाया है यदि नहीं तो इस धन को देकर तुम्हारा और लेकर मेरा कुछ विशेष भला न होगा। मुफ्त का माल, देने और लेने वाले में से किसी का कल्याण नहीं कर सकता, यदि तुम्हारा अपने परिश्रम से कमाया हुआ कुछ धन हो, तो वह मुझे दे दो।

राजा ने ध्यानपूर्वक तलाश किया, पर उसे अपना कमाया हुआ एक पैसा भी प्रतीत न हुआ। तब तपस्वी खाली हाथ लौट जाने को तैयार होने लगे, राजा ने उनसे करबद्ध प्रार्थना की कि प्रभो ! आज ठहर जाइये। रात को मैं मजदूरी करूँगा और जो कुछ धन मुझे मिलेगा आपको दे दूँगा। ऋषि प्रसन्नतापूर्वक ठहर गये।

दिन को राजा किसकी मजदूरी करता और कौन उससे करवाता ? इसलिए उसने रात का समय इसके लिए तय किया। जब एक पहर रात चली गई तो फटे-पुराने कपड़े पहनकर राजा मजदूरी की तलाश में निकला। शहर के गली-कूँचों में घूमते हुए उसने एक जगह देखा कि एक लुहार की भट्टी जल रही है। राजा ने उससे प्रार्थना की कि यदि कोई काम हो, तो उसे रात भर के लिए नौकर रख ले। लुहार को एक आदमी की जरूरत भी थी, उससे कहा चार बजे तक भट्टी की धोंकनी चलाना, तुम्हें चार पैसे मिलेंगे। राजा धोंकनी चलाने लगा और प्रातःकाल चार पैसे लेकर अपने घर चला आया।

दूसरे दिन वह चार पैसे ले जाकर उसने ब्राह्मण के सामने रख दिये और उन्हें किस प्रकार कमाया, इसका सारा वृत्तान्त बता दिया। ब्राह्मण प्रसन्न होता हुआ उन चार पैसों को लेकर चल दिया। घर पर ब्राह्मणी प्रतीक्षा कर रही थी कि पति महोदय धन लेकर आते होंगे, जिससे गृहस्थी की सारी वस्तुएँ खरीदूँगी। कई दिन की प्रतीक्षा के बाद ब्राह्मण जब घर पहुँचा तो सबको बड़ी प्रसन्नता हुई और उत्सुकतापूर्वक उस धन को देखने के लिए सब उनके पास एकत्रित हो आये। देखा तो केवल चार पैसे उनके टेंट में लगे हुए थे। ब्राह्मणी दुःख और क्रोध से झुँझला गई, उसने उन चार पैसों को उठाकर दूर फेंक दिया।

घर भर में निराशा और असन्तोष की विचारधारा बह रही थी। रात को किसी ने भोजन नहीं किया और सब यों ही सो रहे। उन फेंके हुए पैसों को कूड़े में से ढूँढ़ने तक की किसी की हिम्मत न हुई। सब लोग यों ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुड़-कुड़ाते हुए अपनी-अपनी चटाईयों पर निद्रामग्न हो गये।

प्रातःकाल देखा गया कि उसके ढेर पर चार बड़े सुन्दर पेड़ खड़े हुए हैं, जिन पर चाँदी के पत्ते, सोने के फूल और हीरे के फल लगे हुए हैं। उसकी एक-एक टहनी का मूल्य करोड़ों रुपया होता। ऐसे वृक्ष को पाकर भला किस प्रकार कष्ट अभाव रहता, उनका घर धन-धान्य से भर गया।

दूर-दूर से लोग उन वृक्षों को देखने आये, स्वयं राजा उन्हें देखने आया। सबका आश्चर्य निवारण करते हुए ब्राह्मण ने कहा—"सज्जनो ! बीस उँगलियों की कमाई का फल ऐसा ही है।"

श्रमस्वेदों की गंगा

मगध साम्राज्य की जनता त्राहि-त्राहि कर उठी। लगातार कई वर्षों से अकाल पड़ रहा था, अनावृष्टि की विभीषिका चारों ओर ताण्डव नर्तन कर रही थी। भीषण गरमी के कारण धरती तबे जैसी जल रही थी और क्षुधाग्नि के कारण लोगों के पेट। सम्राट चन्द्रगुप्त ने परिषद् की बैठक बुलायी। बैठक में महामन्त्री कौटिल्य भी उपस्थित थे। उपस्थित प्रतिनिधि, अमात्य गणों को सम्बोधित करते हुए सम्राट् ने कहा—"जिस राज्य में प्रजा सुखी व सुरक्षित हो उसे ही अच्छा राज्य कहा जा सकता है, लेकिन हमारे राज्य में तो चारों ओर प्रकृति का प्रकोप छाया हुआ है। दुर्भिक्ष के कारण लोग भूखों मर रहे हैं। लगता है देशव्यापी क्षुधा की इस अग्नि में हम सब जल जाएँगे।"

इसके बाद मन्त्री परिषद् के सदस्यों और सम्राट् में मन्त्रणा चलती रही। इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया कि दुर्भिक्ष प्रकृति के नियमों की एक कड़ी है। सैकड़ों वर्षों के बाद ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई है। इस स्थिति से जूझने के लिए राज्यकोष के दरवाजे खोल दिये जाएँ, सभी अधिकारी प्रजाजन की सहायता करने के लिए तत्पर हो जाएँ। स्थान-स्थान पर यज्ञों का आयोजन किया जाय ताकि वरुणदेव के मेघ उनसे पुष्ट होकर वृष्टि करने में सक्षम हों। एक विशाल यज्ञ राजधानी पाटलिपुत्र में भी किया जाय, जिसमें सम्राट् प्रमुख यजमान के रूप में भाग लें।

सहायता कार्यों के लिए आवश्यक निर्देश जारी करने तथा समुचित व्यवस्था बनाने के बाद पाटलिपुत्र में विशाल यज्ञ की तैयारियाँ की जाने लगीं। निश्चित किया गया था कि यज्ञ के बाद सम्राट् स्वयं राजमहिषी के साथ सूखी धरती पर जनक की भाँति हल चलायेंगे। इसके उपरान्त भगवती भागीरथी के तट से एक नहर निकालने के लिए स्वयं कुदाल चलायेंगे। इसके बाद ही यज्ञ की पूर्णाहुति होगी।

यज्ञ की तैयारियाँ की गयीं। दूर-दूर से मन्त्रिविद, पुरोहित और यज्ञाचार्य आमन्त्रित किये गये। व्यापक प्रबन्ध के साथ आरम्भ किये गये इस यज्ञ में लाखों नागरिकों ने भाग लिया। सम्राट् चन्द्रगुप्त ने सात दिन तक चले इस यज्ञ में पूर्ण निराहार व्रत का पालन करते हुए प्रमुख यजमान की भूमिका निबाही। यज्ञ पूर्णाहुति के बाद सम्राट् और राजमहिषी ने मिलकर बंजर पड़ी धरती पर हल चलाया। इस दृश्य को देखने के लिए हजारों लोग एकत्रित हुए थे। नियत समय तक हल चलाने के बाद उपस्थित जनसमूह सहित सम्राट् गंगा तट की ओर बढ़े। नहर के लिए उन्होंने जैसे ही कुदाल चलायी हजार हाथ मिलकर उनके साथ नहर खोदने लगे और गंगा का पानी देखते ही देखते उस जमीन तक पहुँचाया गया, जो अभी-अभी ही महाराज ने जोती थी।

इसके बाद महायज्ञ की पूर्णाहुति हुई। **पूर्णात् पूर्णमिदं**..... के मन्त्रोच्चार सहित जैसे ही अन्तिम आहुति यज्ञ कुण्ड में छोड़ी गयी, यज्ञ की ज्वालाओं से एक दिव्य आकृति प्रकट हुई और उपस्थित यजमानों को सम्बोधित कर कहने लगी—"इस यज्ञ की प्रेरणाओं को घर-घर पहुँचाने के बाद ही यज्ञ कार्य सम्पन्न होगा। आसन्न विपत्तियों का कारण यह है कि लोग श्रम को भूल रहे हैं। उनके श्रमस्वेदों से सूखी धरती मेघों को हर्षित करने में अक्षम हुई जा रही है, इसी कारण यह दुर्भिक्ष प्रस्तुत हुआ है।

सम्राट द्वारा हल चलाने और नहर खोदने की घटना तो लोगों ने प्रत्यक्ष ही देखी थी। उसके साथ ही यज्ञ पुरुष के संदेश को सुनकर प्रजाजनों में ऐसा उत्साह उमड़ा कि वे हाथ पर हाथ रखे बैठना छोड़कर श्रमस्वेदों की गंगा बहाने लगे।

पूर्वजों की दुहाई देने से क्या लाभ ?

एक बार एक व्यक्ति नौकरी की तलाश में किसी सरकारी दफ्तर में पहुँचा। पूछने पर उसने कहा कि मैंने दो-तीन पुस्तकें, अँग्रेजी की पढ़ी हैं और कुछ-कुछ हिन्दी जानता हूँ। दफ्तर के अफसर ने कहा हमारे यहाँ एक चपरासी की जगह खाली है, तनख्वाह १२०) मासिक मिलेगी चाहो तो नौकरी कर सकते हो।

उस व्यक्ति ने मैनेजर से कहा—"हुजूर मेरे पिता तहसीलदार थे, बाबा कलक्टर थे, परदादा कप्तान थे, मैं इतने ऊँचे खानदान का हूँ, वे लोग बड़ी-बड़ी तनख्वाहें पाते थे और राजदरबार में आदर होता था, फिर मुझे इतनी छोटी हैसियत की और कम तनख्वाह की जगह क्यों मिलनी चाहिए ?"

अफसर ने कहा—"आपके उच्च खानदान का मैं आदर करता हूँ और आपके उन प्रशंसनीय पूर्व पुरुषों की कद्र करता हूँ पर खेद है कि ऐसे नररत्नों के घर में आप जैसे अयोग्य पुरुष पैदा हुए, जिन्हें चपरासी से ऊँची जगह नहीं मिल सकती। नौकरी आपको करनी है, इसलिए आपकी योग्यता के अनुरूप ही वेतन मिलेगा, खानदान आपकी योग्यता या पूर्व पुरुषों का बड़प्पन इसमें कुछ भी काम नहीं आ सकता।"

हम लोग अपने को ऋषियों की सन्तान कहते हैं, अपने जगद्गुरु होने का दावा करते हैं और तरह-तरह से प्राचीन गाथाओं के आधार पर अपने को बड़ा साबित करते हुए यह आशा रखते हैं कि हमें वही स्थान मिले जो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हमारे पूर्वजों को प्राप्त था। परन्तु हम यह भूल जाते हैं कि जितनी योग्यता, कर्मनिष्ठा पूर्वजों में थी क्या उसका थोड़ा अंश भी हममें है ? यदि नहीं है, तो हम अपमान और अधोगति के ही योग्य हैं, जो कि आज प्राप्त है। पूर्वजों का गौरव उस समय तक प्राप्त नहीं हो सकता, जब तक कि वैसे ही पराक्रम करने का साहस अपने अन्दर उत्पन्न न कर लें।

श्रम देवता के आराधक

आ . . . . प ! दाएँ हाथ से गालों पर लुढ़क आये आँसुओं को पोंछने का प्रयास करते हुए उन तीनों महिलाओं के मुख से लगभग एक साथ यह शब्द निकला। आश्चर्य के आवेश में सिसकियाँ थमने लगी थीं। पास खड़े बच्चे भी उसे सूनी निगाहों से निहार रहे थे। पड़ोसियों की भी लगभग ऐसी ही कुछ दशा थी, उनके आने की खबर सुनकर प्रातःकाल से ही मजदूरों की इस बस्ती में उथल-पुथल थी। ऐसा नहीं आज से पहले वह यहाँ नही आये हों। वे तो इन सभी के अपने थे। सबसे उनका सघन अपनत्व था। इसके बावजूद उनको इस रूप में कोई नहीं जानता था। नहीं भला इतना आश्चर्य क्यों ?

उनके यहाँ पर इस रूप में आने का कारण था—कोलम्बिया स्टेट की एक एस्बेस्टस फैक्ट्री में दुर्घटना हो जाना। कुछ ही दिन पहले हुई इस घटना में तीन श्रमिकों को अपने प्राणों से हाथ धोड़ा पड़ा। श्रमिक दिन भर लोहे की दैत्य जैसी मशीनों के साथ जी झोंककर काम करता है, तब कहीं परिवार की गाड़ी खींचता है। उसकी परिवार रूपी मोटर में उसके श्रम का ईंधन जलता है, तो वह चलती है।

उन अकाल-कवलित हुए श्रमिकों की पत्नियाँ उनके काम से लौटने की प्रतीक्षा कर रही थीं। बच्चे अपने आप को आश्वस्त कर रहे थे कि 'पापा' आने वाले हैं, फिर सब मिलकर साथ खाना खायेंगे। उनके कान अपने पापा के जर्जर जूतों की चिरपरिचित चरमराहट सुनने को आतुर थे, किन्तु उन्हें उनके पिता के स्थान पर उनकी मृत्यु की हृदय-वेध देने वाली सूचना मिली। क्रूर काल के एक झोंके ने उनकी दुनिया में अँधेरे की एक चादर तानकर रख दी। किनके समर्थ हाथ उनके आँसू पोंछने के लिए बढ़ें ? कौन इन सबके प्राणों की आकुलता का शमन करे।

इसी बीच इन सबने सुना कि स्वयं 'अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के महानिदेशक' उनके दुःख सुनने आने वाले हैं। संवाद ने घाव पर मरहम लगाया। प्राणों का उफान एक बारगी थमा। विदीर्ण होता मन फिर से जुड़ने लगा। एक आशा बँधी, सहायता मिलेगी। दुधमुँहों की धुँधली पड़ती आँखें एक बार फिर चमकेंगी। सोच रखा था जो अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का महानिदेशक है, कितना रौब-दाव होगा उसका ? कितनी शान-शौकत से रहता होगा ? रहे भी क्यों न ? बड़े-बड़े मिल मालिक, देश-विदेश के भारी-भरकम उद्योग समूहों के अध्यक्ष उसके सामने हाथ जोड़े रहते होंगे। ऐसी ऊँची पद प्रतिष्ठा वाला व्यक्ति . . . ।

सामने आने पर आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। अरे ! यही ! यह तो, वाणी थम-सी गयी। जानती थी कि ये तो उन्हीं के पतियों के साथ फैक्ट्री में मजदूरी करते हैं। सामान्य मजदूर जिसे न तो प्रमोशन की परवाह है और न डिमोशन का भय। घर में कई बार आना-जाना भी हुआ था। हँसमुख स्वभाव। छह फीट का हट्टा-कट्टा गोरा शरीर। श्रम के प्रकाश से प्रदीप्त आँखें। सामान्य मजदूर और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का महानिदेशक। उन्हें समझ में नहीं आ रहा था कि क्या कहें ? उस साधारण से मकान के बाहर के दृश्य को देखकर ऐसा लग रहा था कि जैसे समय थम गया। एक अपूर्व ठहराव . . . . . ।

"भाभी ! मुझे आने में बहुत देर हो गयी। क्षमा करना।" सम्बोधन उन तीनों महिलाओं की ओर था। वाणी ने समय को गति दी, ठहराव भंग हुआ।

"भाई साहब आप तो अपने हैं मैंने तो कुछ और सुना था।" कहने वाली के नेत्रों से अभी आश्चर्य की चमक धुली नहीं थी।

"इण्टरनेशनल लेबर ऑर्गनाइजेशन के डाइरेक्टर जनरल यही न।" पास खड़े एक साथी ने मुसकराते हुए कहा, "ये यह भी हैं और वह भी।"

"इसके अलावा कुछ और भी।" एक अन्य सहकर्मी ने जिज्ञासा को कुरेदा।

"क्या ?" सभी सुनने को उत्सुक थे। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के महानिदेशक के रूप में सामने खड़ा देखकर सभी की जिज्ञासा अकुला रही थी।

"यहाँ के विश्वविद्यालय के वाद-विवाद दल के शीर्षस्थ वक्ता तथा फुटबाल टीम के सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी।"

"और वकील भी।" पहले के रुकने से पहले दूसरा बोल पड़ा।

"याद है न न्यूजर्सी की ड्राईक्लीनिंग इण्डस्ट्री का मुकदमा।"

"हाँ" इस एक अक्षर के साथ ही जानकर लोगों को याद आ गयी वह घटना जब मजदूरों के हितों को ध्यान में रखते हुए अमेरिका सरकार को श्रमिक कानून बनवाने पड़े थे। उन्होंने न्यूजर्सी की ड्राईक्लीनिंग इण्डस्ट्री व न्यूयार्क के दुग्ध उद्योग के श्रमिकों के हित के लिए बिना फीस पैरवी की थी।

अनेकों विभूतियों का स्वामी, उच्चतम प्रतिभा से सम्पन्न रहने पर भी यह युवक साधारण मजदूर क्यों ? इस प्रश्न ने सभी के मन को स्तब्ध कर दिया। इन महिलाओं को अपना दुःख भूल गया। वें सोचने लगीं कि प्रायः जो व्यक्ति साधारण श्रमिकों के रूप में श्रमिकों के साथ कन्धा से कन्धा मिलाकर आन्दोलन करता है, उन्हें संगठित करता है, पर जब वह संघ शक्ति के सहारे उच्च पद पर आसीन हो जाता है, तो उसको धन से, पद से एक मोह-सा हो जाता है। ऐसी दशा में वह बड़ा बन जाने पर खजूर के पेड़ की छाया और फल की दृष्टि से जनसामान्य की पहुँच से दूर हो जाता है, अति दूर पर यह अनेकों आँखें इस सामने खड़े मुसकरा रहे व्यक्ति में कुछ ढूँढ़ने की कोशिश करने लगीं।

"इतना सब होते हुए भी आप मजदूर क्यों हैं ?" मन के मंथन से उभरी जिज्ञासा को प्रकट होने से रोका न जा सका।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"मजदूरी मेरा बोझा नहीं शान है।" होठों पर तैरती मुसकान की रेखा ने अनेकों के अन्तर को छुआ। तनिक थमकर वह बोले—"जीवन के मन्दिर में मैंने श्रम देवता की प्रतिष्ठा की है।"

"श्रम देवता की प्रतिष्ठा ! श्रम और देवता !" समझ पाने का असफल प्रयत्न करते हुए अनेकों मुखों से बुदबुदाहट उभरी।

"हाँ श्रम देवता है।" कथन में दृढ़ता थी, अनुभव जन्य विश्वास था और उसकी आराधना का स्पष्ट आव्हान। "विभिन्न धर्मों में अनेकों देवी-देवताओं के नाम तो सुने हैं, पर यह एक नया देवता !" किसी ने धीरे-धीरे कहा।

नया नहीं चिरप्राचीन है। वह मुसकराए, आस-पास खड़े लोगों की ओर देखते हुए बोले, "मानव ने अनादिकाल से इसकी आराधना की है। आज जो कुछ भी प्रगति, उन्नति, अच्छाई, विकास दिख रहा है, सब कुछ इसी की आराधना का फल है।"

सभी मौन थे कोई कुछ कहता भी क्या ? प्रत्यक्ष को क्या प्रमाण की आवश्यकता पड़ती है ? श्रम देवता का अनुग्रहभाजन सामने जो खड़ा था। कुछ मिनट यों ही बीत गए, फिर वह संवेदनशील स्वर में बोले—"क्षमा कीजिए, मैं भी कहाँ अटक गया ? आया था आपकी व्यथा को बटाँने और शुरू हो गयी यह सब बातें। आप जो भी सहायता चाहें, शीघ्र भिजवा दूँगा।"

"सहायता हो गई भैया।" उसमें से एक महिला ने स्वस्थ चित्त हो कहा।

"कहाँ अभी तो ·····।"

"आपने जो अभी श्रम देवता की प्रतिष्ठा करने की बात सुझाई वह किस सहायता से कम है ? जब ईश्वर का दिया स्वस्थ शरीर और सबल मन हमारे पास है, तब कैसी सहायता ?"

"ओह !"

"एक संशय था सो भी दूर हुआ। अभी तक सोचती थी कि श्रमशील निकृष्ट होते हैं और श्रम न करने वाले उत्कृष्ट।"

"पर अब ?" खिलखिलाहट के साथ प्रश्न उभरा।

"सोच उलट गयी।"

"अच्छा !" तनिक आश्चर्य व्यक्त करते हुए उसने कहा—"सच कहें तो हम भविष्य में जीवन जीते हैं। आप सब विश्वास मानिये शीघ्र ही मानव के भविष्य में ऐसा समय आयेगा, जब जीवन के मन्दिर में अनिवार्य प्रतिष्ठा योग्य एक ही देवता होगा—श्रम।" बात पूरी करने के साथ ही उसने घड़ी देखी, पास खड़े बच्चों के गाल थपथपाये। उन महिलाओं को हाथ जोड़कर नमस्कार किया और फिर आने का वायदा करके चल पड़े। श्रम देवता के यह एक निष्ठ आराधक जो ७६ देशों के सम्मिलित अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के महानिदेशक होकर भी कोलम्बिया की फैक्ट्री में मजदूरी करते रहे—डेविड मोर्स थे।

आरोग्य रक्षा का रहस्य

महाराज शीलभद्र तीर्थयात्रा के लिए जा रहे थे रात्रि को उन्होंने एक आश्रम के निकट अपना पड़ाव डाला।

उस समय पर राजा शीलभद्र बीमार हो गये। कुशल वैद्य चिकित्सकों ने उन्हें स्वस्थ कर दिया। राजा ने आश्रमवासियों के एकान्त जीवन पर विचार किया तो उन्होंने एक वैद्य स्थायी रूप से आश्रमवासियों की चिकित्सा के लिए रख दिया।

वैद्य को वहाँ रहते काफी समय बीत गया, किन्तु कोई भी शिष्य या आचार्य अपनी चिकित्सा के लिए उनके पास नहीं आया। वैद्यराज ने एक दिन उकताकर आचार्य से इसका कारण पूछा।

आचार्य ने कहा—"वैद्यराज ! भविष्य में भी शायद ही कोई आपके पास चिकित्सा के लिए आएगा। प्रत्येक आश्रमवासी को सुबह से सायं तक श्रम करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त जब तक भूख परेशान नहीं करती। कोई भी भोजन नहीं करता। सब अल्पभोजी हैं। जब कुछ भूख शेष रह जाती है, तभी खाना बन्द कर देते हैं। इस प्राकृतिक और स्वच्छ वातावरण में सभी को पवित्र वायु, प्रकाश मिलता है, यहाँ सर्वत्र जीवन छिटक रहा है। इसलिए कोई भी यहाँ बीमार नहीं पड़ता।"

वैद्यराज बोले—"आचार्य प्रवर ! स्वस्थ रहने के लिए यही मूल मन्त्र है। तब मैं यहाँ रहकर क्या करूँ ? अब मेरा राजदरबार को लौटना ही उचित है।"

आचार्य को प्रणाम कर वैद्यराज आश्रम से वापस चले गए। प्राकृतिक जीवन और श्रम संयम ही स्वास्थ्य रक्षा का मूल आधार है।

कुरूप कुबेर का तप

प्राचीन काल की बात है पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा के एक ऐसा पुत्र उत्पन्न हुआ जो बहुत कुरूप और बेडौल था। हाथ तो उसके बहुत ही छोटे थे। उसे देखकर घर के सभी लोग खिन्न हुए और उसका नाम कुबेर—अर्थात् कुरूप रख दिया। बालक कुबेर जब बड़ा हुआ तो दूसरों द्वारा अपना उपहास उडाये जाते देखकर उसे लोगों की मूर्खता पर बड़ा क्षोभ हुआ। यह बात उसे सहन नहीं हुई। कुबेर ने अपने पुरुषार्थ से अपनी योग्यता को बढ़ाने का निश्चय किया और कठोर तप करने लगा। बालक की ऐसी लगन देखकर घर के वे लोग भी द्रवित हो गये जो पहले उसका उपहास करते थे। बाबा पुलस्त्य और पिता विश्रवा भी कुबेर की पुरुषार्थ साधना में सम्मिलित हो गये और तीनों का सम्मिलित प्रयत्न कुछ ही दिनों में आशाजनक रीति से सफल हुआ। देवताओं को प्रसन्न करके कुबेर धनाधीश लोकपाल बन गये और अलकापुरी में राज करने लगे।

जो लोग आरम्भ में कुबेर की कुरूपता देखकर उसका उपहास करते थे, उन्हें समृद्ध धनाधीश कुबेर के पुरुषार्थ के सामने नतमस्तक होना पड़ा।

(१) रूप की अपेक्षा गुणों का महत्त्व अत्यधिक है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(२) परिश्रम और पुरुषार्थ साधना का परिणाम सुखदायी ही मिलता है।

साधना और सफलता

महाराष्ट्र के पेशवा बाजीराव नागेश भट्ट की ख्याति सुनकर वाराणसी आये; उनका दर्शन करने के लिए। जाकर देखा उनका शरीर जर्जर हो रहा था, पर वे थे कि आस-पास पुस्तकों को ढेर किये बैठे थे। धर्म और दर्शन, साहित्य तथा संस्कृति को पतित अवस्था में देखकर नागेश आर्ष साहित्य की समयानुकूल व्याख्या लिखने में लगे थे।

इसी प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए वे युवावस्था से संलग्न थे। शाम तक जो कुछ मिल जाता खा-पीकर आर्ष ग्रन्थों की खोज, पठन-पाठन, मनन-चिन्तन और लेखन-संकलन में ही लगे रहते। इस घोर तप-साधना के कारण जैसे-जैसे उनकी आयु ढलती गयी, शरीर सूखता गया और पीठ पर भी कूबड़ निकल आया।

बाजीराव पेशवा ने उन्हें देखकर आवश्यक सहयोग देने की इच्छा व्यक्त की। पूछा उन्होंने नागेश भट्ट से—"आचार्य प्रवर ! आज्ञा दें मैं आपकी कुछ सेवा कर सकूँ, तो यह मेरा बड़ा सौभाग्य होगा।"

उनका ध्यान भंग हुआ तो नागेश ने कहा—"हाँ महाराज आत्मा के अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए एक सूत्र कठिनाई से हाथ लगा है, पर उसकी व्याख्या नहीं हो पा रही है। आप उसमें मेरी सहायता कर सकें तो बड़ी कृपा होगी।"

(१) अपने कार्य में तन्मय होने वाला ही उल्लेखनीय उपलब्धि कर पाता है। (जर्जर होकर भी सतत् कार्यरत)

(२) उन्हें अपने मुख्य लक्ष्य की तुलना में हर सुविधा नगण्य रहती है, एकमात्र आकांक्षा इष्ट लक्ष्य की पूर्ति ही रह जाती है। (पेशवा से सेवा न माँगकर सूत्र की व्याख्या में सहयोग माँगना)

अमृत रोटी

चलते-चलते शाम हो गई तो गुरु नानक पास के गाँव में एक निर्धन किसान के यहाँ ठहर गये। उस गाँव के सेठ ने सुना कि आज रात्रि को गुरु नानक यहीं विश्राम कर रहे हैं, तो वह भी उनके दर्शन के लिए गया; उस समय नानक भोजन कर रहे थे।

भोजन में सूखी रोटी और दाल थी। ऐसा रूखा-सूखा भोजन करते नानक को देखा तो उस सेठ को बड़ा बुरा लगा। उसने कहा—"आप ऐसा भोजन क्यों कर रहे हैं ? इस गाँव में तो जो भी कोई सन्त-महात्मा आता है वह मेरे यहाँ ठहरता है। भगवान की कृपा से मेरे यहाँ किसी भी प्रकार की कमी नहीं है। मेरा आपसे निवेदन है कि आप भी मेरे यहाँ चलकर ही निवास करिये।"

नानक ने बड़ी शान्ति से उत्तर दिया—"महोदय ! मैं तो श्रम की कमाई से उत्पन्न अमृत खा रहा हूँ। निर्धन व्यक्तियों के शोषण से बने पकवान मुझे पसन्द नहीं हैं।"

(१) श्रम और ईमानदारी की कमाई से प्राप्त अन्न में सुसंस्कार होते हैं अस्तु वह अमृत है। शोषण द्वारा अर्जित अन्नहीन है।

(२) आध्यात्मिक दृष्टि वाले व्यक्ति की पसन्द स्थूल रूप या स्वाद के ऊपर नहीं सूक्ष्म-संस्कारों पर आधारित होती है।

भोज से क्या लेना

राजा भोज ने नगरवासियों को एक सार्वजनिक भोज दिया। लाखों लोग भाँति-भाँति को मिष्ठान्नों-पकवानों को उदरस्थ कर तृप्त हुए। अपनी उदारता की चर्चा व प्रशंसा सुनकर राजा का सीना गर्व से फूल गया।

शाम को एक लकड़हारा सिर पर लकड़ी का गट्ठर लिए उन्हें नगर के द्वार पर मिला, उन्होंने उससे पूछा—"क्या तुम्हें पता नहीं था कि राजा भोज ने आज सार्वजनिक भोज दिया है अन्यथा तुम्हें यह श्रम क्यों करना पड़ता ?"

"नहीं, मुझे पूरी तरह पता था, पर जो परिश्रम की कमाई खा सकता है, उसे राजा भोज के सार्वजनिक भोज से क्या लेना-देना ? परिश्रम की सूखी रोटी का आनन्द मुफ्त के पकवानों में कहाँ ?" लकड़हारा बोला।

श्रम और पसीने से उपार्जित जीविका से जो आत्म-गौरव जुड़ा है, उसका आनन्द षट्रस व्यंजनों से भी अधिक है।

निष्ठा

देवर्षि नारद ने ध्रुव की निष्ठा परखते हुए पूछा—"वत्स ! घोर तपस्या के बाद भी यदि तुम्हें भगवान के दर्शन न हुए तब क्या करोगे ?" बालक ने मुसकराते हुए कहा—"भगवन् ! तब मैं आगे भी तप करता रहूँगा और ज्ञात करूँगा कि क्या ईश्वर को पाने के लिए एक जन्म पर्याप्त नहीं।"

लक्ष्य प्राप्ति के लिए अनन्त धैर्य आवश्यक है।

भोज में कैसे चलूँ

एक बार एक सेठजी स्वयं महामना मालवीय जी के पास अपने एक प्रीतभोज में सम्मिलित होने का निमन्त्रण देने के लिए पहुँचे। महामनाजी ने उनके इस निमन्त्रण को इन विनम्र किन्तु मर्मस्पर्शी शब्दों में अस्वीकार कर दिया—"यह आपकी कृपा है जो मुझ अकिंचन के पास स्वयं निमन्त्रण देने पधारे, किन्तु जब तक मेरे इस देश में मेरे हजारों-लाखों भाई आधे पेट रहकर दिन काट रहे हों तो मैं विविध व्यंजनों से परिपूर्ण बड़े-बड़े भोजों में कैसे सम्मिलित हो सकता हूँ ? ये सुस्वादु पदार्थ मेरे गले कैसे उतर सकते हैं ?"

महामना जी की यह मर्मयुक्त बात सुन सेठजी इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने प्रीतिभोज में व्यय होने वाला सारा धन गरीबों में कल्याणार्थ दान दे दिया। बाद में उनका हृदय इस सत्कार्य में आनन्द मग्न हो उठा।

(१) सत्कार्यों में किया गया त्याग आनन्द से पूर्ण कर देता है। (सेठ की बाद वाली स्थिति)

(२) अन्य लोगों के कष्टपीड़ित और अभावग्रस्त रहते स्वयं मौज-मस्ती में रहना मानवीय अपराध है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मिथ्या भय

दिन भर आपको धूप दी, आपके पुत्र-पौत्रों को प्रकाश और गर्मी प्रदान की और आप हैं कि मुझे थोड़ी ही देर में विदा कर रहे हैं, कुछ अधिक देर ठहरने देते तो आपका क्या बिगड़ जाता, ढलते हुए सूरज ने मुसकराते हुए क्षितिज के पास लिखित उलाहना भेजा।

गम्भीर क्षितिज स्याही लेकर उत्तर लिखने बैठा तो कुल एक पंक्ति से वह आगे नहीं बढ़ सके, प्रातः के प्रकाश में सूर्य ने उसे पढ़ा। लिखा था—"इसलिए कि तुम हर बार एक नई चमक, नई रोशनी लेकर आओ और पहले से भी अधिक प्रकाश फैलाओ।"

सूर्य का सिर श्रद्धा से झुक गया।

कठिनाईयाँ और प्रतिकूल परिस्थितियाँ क्षमताओं को विकसित करने के लिए ही आती हैं।

इतना धन कहाँ से

एक ही रात में इतने ढेर सारे रुपयों की थैली। अरे, यह तो बता—माँ ने कड़ककर बेटे से पूछा—यह धन तू कहाँ से लाया ?

"सेंध काटकर ! माँ ! तू ही तो कहती थी कि मनुष्य को सदैव परिश्रम की कमाई ही खानी चाहिए। माँ, महाजन की सेंध काटने में मुझे कितना परिश्रम करना पड़ा—तू इस बात को समझ भी नहीं सकती।"

चपत लगाते हुए माँ ने कहा—"मूर्ख ! मैंने इतना ही नहीं कहा कि मनुष्य को परिश्रम का खाना चाहिए वरन् यह भी कहा था कि वह ईमानदारी से कमाया हुआ भी हो। उठा यह धन, जिसका है उसे लौटाकर आ और अपने गाढ़े पसीने की कमाई का भरोसा कर।"

माता की इस शिक्षा को शिरोधार्य करने वाला चोर युवक अन्ततः—महा सन्त श्रमणक के नाम से विख्यात हुआ।

(१) न्यायपूर्ण जीविकोपार्जन का अर्थ है परिश्रम और ईमानदारी से कमाया गया धन।

(२) सन्तान के निर्माण का दायित्व निश्चित रूप से माता-पिता पर ही है।

माँ की सीख

बंगाल के नबाव सिराजुद्दौला से उनकी माँ ने पूछा—"बेटा ! यदि तुम्हारा कोई शत्रु तलवार लेकर मेरी ही गरदन काटने आ जाये तो तुम क्या करोगे ?"

"माँ आज ऐसी अनहोनी बात क्यों पूछ रही हो ? भले ही मेरा अँग्रेजों से युद्ध चल रहा हो, पर आपने तो किसी का कुछ भी नहीं बिगाड़ा है।" सिराज ने उत्तर दिया।

"पर यह भी तो सम्भव है कि वह कुछ न बिगाड़ने पर मेरा जीना हराम करने लगें।"

"नहीं माँ ! ऐसी बात नहीं। मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि आज आपको मेरी शक्ति पर अविश्वास क्यों हो रहा है ? मुझे आपत्तिग्रस्त देखकर जाफर ने अवश्य मेरे विरुद्ध षड्यन्त्र कर दिया है और मुझे परास्त करना चाहता है, पर मैं पारिवारिक जीवन के कर्तव्यों से उदासीन नहीं हूँ। विश्वास रखो माँ ! मुझसे कितना ही शक्तिशाली शत्रु क्यों न हो, पर मैं अन्तिम समय तक मौत के घाट उतारने में लगा रहूँगा। यह मेरा दृढ़ संकल्प है।"

सिराज की बात सुनकर माँ को सन्तोष हुआ। उसे अपना काम बनता दिखाई दिया। उसने कहा—"बेटा सिराज ! मैं तुममें कई दिन से निराशा की भावना देखती आ रही हूँ। मीरजाफर के षड्यन्त्र से तुम्हारे हौंसले पस्त हो गये हैं और आत्म-समर्पण की बात सोच बैठे हो। तुम्हारी मातृभूमि पर शत्रु हथियार उठाये खड़ा है। वह मातृभूमि अकेले तुम्हारी ही नहीं मुझ जैसी सैकड़ों माताओं की भी है।"

माँ की बात बेटे को चुभ गई। वह माँ का आशय समझ चुका था। शत्रुओं को पछाड़ने के लिए वह आतुर हो उठा।

अब एक क्षण की भी वह देर न करना चाहता था। वह उठा और तुरन्त बाहर चला गया। एक दिन उसका कवच ही उसके शव का आवरण बना।

(१) विजय निराश और टूटे मनोबल वालों को नहीं संकल्पशील पुरुषार्थियों को मिलती है।

(२) पारिवारिक दायित्वों के साथ सामाजिक और राष्ट्रीय कर्तव्यों का भी ध्यान रखना चाहिए।

(३) हारे और निराश स्वजन को बल और प्रेरणा देना मातृत्व की पुत्र गरिमा है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दाम्पत्य जीवन और परिवार-निर्माण

देहि मे सुखदां कन्याम्

अत्रि का कोमल गात २५ वर्ष तक गुरुकुल में ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्याध्ययन करने के साथ निखर पड़ा। प्रलम्ब बाहु, सुघड़ देहयष्टि, उन्नत वक्षस्थल और देदीप्यमान ललाट। अत्रि तब तक ऋषि नहीं बने थे, पर २५ वर्ष की संयमित जीवन साधना और तपश्चर्या के फलस्वरूप उनके मुखमण्डल पर अपूर्ण कान्ति खिल उठी थी।

यह तब की बात है जब शिक्षा का स्वरूप आज जैसा नहीं था। छोटी आयु में ही बालक योग्य और चरित्रनिष्ठ कुलपतियों के आश्रम में पहुँचा दिये जाते थे। यहाँ उन्हें अक्षर ज्ञान से लेकर वेदांग तक का शिक्षण दिया जाता था, जिससे वहाँ से निकलने से पूर्व स्नातकों के मन और विचार परिपक्व हो जाते थे। कठोर संयम और सश्रम जीवन के कारण उनका स्वास्थ्य और आरोग्य तो अपने आप बुलन्द हो जाता था। इस तरह शरीर और मन दोनों से स्वस्थ होकर जब वे गृहस्थ में प्रवेश करते थे तब का पारिवारिक आनन्द ही कुछ और होता था।

नियमानुसार अत्रि ने आचार्य को प्रणाम किया और विदा माँगी। आचार्य ने तिलक करते हुए कहा—"वत्स ! अब तुम गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर स्वस्थ और तेजस्वी सन्तान को जन्म दो, जिससे अपने पितामह ऋषियों द्वारा प्रणीत वर्णाश्रम संस्कृति अविच्छिन्न रूप से चलती रहे।" अत्रि ने कहा—"आज्ञा शिरोधार्य है गुरुदेव !" और यह कहकर वे वहाँ से विदा हो गये। सम्पत्ति के नाम पर गुरुकुल में अर्जित साधना शक्ति, आत्मानुभूति और प्रमाण पत्र के अतिरिक्त उनके पास कुछ भी नहीं था।

माता-पिता स्वयं तपस्वी जीवनयापन करते थे इसलिये तब पुत्रों के लिये धन छोड़ने की परम्परा नहीं थी। प्रयत्न यह किया जाता था कि बालक स्वस्थ, स्वावलम्बी परिश्रमशील और उद्योगी बने, ऐसे युवक कैसी भी परिस्थिति में अपने लिये उन्नति का मार्ग ढूँढ निकाला करते थे, वह उन्नति चिरस्थायी हुआ करती थी, तो भी गृहस्थी जमाने के लिये कुछ सहयोग की आवश्यकता होती थी। यह सहयोग दहेज के रूप में धर्मपत्नी के पिता से किस प्रकार मिला करता था, उसी की संक्षिप्त आख्यायिका यहाँ प्रस्तुत की जा रही है।

अत्रि यहाँ से चलकर एक गाँव में पहुँचे। आगे का मार्ग बहुत बीहड़ और हिंसक जीव-जन्तुओं से भरा हुआ था सो अत्रि रात को उसी गाँव में एक सद्गृहस्थ के घर टिक गये। गृहस्थ ने उन्हें ब्रह्मचारी वेष में देखकर उनकी आवभगत की और भोजन के लिये आमन्त्रित किया। अत्रि ने जब समझ लिया कि इस परिवार के सभी सदस्य ब्रह्मसन्ध्या का पालन करते हैं किसी में कोई दोष-दुर्गुण नहीं है, तो उन्होंने आमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

भोजनोपरान्त अत्रि ने गृहस्थ को प्रणाम कर प्रार्थना की—**"देहि मे सुखदां कन्याम्"** अपनी सुखदा कन्या मुझे दीजिये जिससे मैं अपना घर बसा सकूँ। उन दिनों वर ही कन्या ढूँढ़ने जाते थे। कन्याओं को वर तलाश नहीं करने पड़ते थे। उन दिनों नर से नारी की गरिमा अधिक थी। गृहस्थ ने अपनी पत्नी से परामर्श किया। अत्रि के प्रमाणपत्र देखे, और वंश की श्रेष्ठता पूछी और वे जब इस पर सन्तुष्ट हो गये कि वर सब प्रकार से योग्य है, तो उन्होंने पवित्र अग्नि की साक्षी में अपनी कन्या का सम्बन्ध अत्रि के साथ कर दिया। अत्रि के पास तो कुछ था नहीं इसलिये गृहस्थ-संचालन के लिये आरम्भिक सहयोग के रूप में अन्न, वस्त्र, बिस्तर थोड़ा धन और गाय भी दी। छोटी-सी किन्तु सब आवश्यक वस्तुओं से पूर्ण गृहस्थी लेकर अत्रि अपने घर पधारे और सुखपूर्वक रहने लगे।

इन्हीं अत्रि और अनुसुइया के द्वारा दत्तात्रेय जैसी तेजस्वी सन्तान को जन्म मिला। भगवान को भी एक दिन इनके सामने झुकना पड़ा था पर आज वह सात्विक प्रवृत्तियाँ कहाँ रही ? विवाह सौदेबाजी के खेल हो गये हैं वैसी ही गृहस्थियाँ जमतीं और निकृष्ट नागरिक पैदा करती हैं।

दाम्पत्य प्रेम की परिभाषा

मान्टुगा के एक ५५ वर्षीय मजदूर फ्री जैकोब मिल्टन को ६ माह का वेतन काट लेने का दण्ड दिया गया है। दूसरी ओर उन्हें एक हजार डालर का नागरिक पुरस्कार भी प्रदान किया गया है। दण्ड कर्तव्य की उपेक्षा के लिये और पुरस्कार मानव-जीवन की साधना दाम्पत्य प्रेम के लिये प्रदान किया गया।

मिल्टन यहाँ एक वीविंग (बुनाई) फैक्ट्री में पिछले ३० वर्ष से काम करता रहा। एक दिन भी उसने न तो अनुपस्थिति बरती, न अनुशासनहीनता। फैक्ट्री-अधिकारी उसके शान्ति प्रिय स्वभाव और कर्तव्यनिष्ठ जीवन से बहुत प्रभावित थे, पर एक दिन जब अधिकारियों ने उसकी अनुपस्थिति में उसकी मशीन चलते हुए पाया तो लोग बड़े हैरान हुए मिल्टन एकाएक कहाँ चला गया ?

एक घन्टे बाद सारी स्थिति का पता चल गया। उसकी धर्म-पत्नी एलिसी प्रतिदिन उसके साथ फैक्ट्री तक आया करती। मिल्टन फैक्ट्री के दरवाजे में प्रवेश कर जाता तब एलिसी घर वापस आती। भोजन पकाती और मध्यान्ह का भोजन गर्म-गर्म मिल्टन के लिये फैक्ट्री में स्वयं पहुँचाती। ३० वर्ष तक इस क्रम में कभी भी अन्तर नहीं पड़ा। शाम को मिल्टन फैक्ट्री से निकला और उसे सबसे पहले दर्शन एलिसी के होते। वह स्वागत के लिये खड़ी होती। दिनभर का थका मिल्टन अपनी धर्म-पत्नी का प्रेम भरा चेहरा देखते ही दिनभर की थकान भूल जाता। दोनों हाथ मिलाते। भगवान को धन्यवाद देते और वार्तालाप करते हुए घर पहुँचते। एलिसी गर्म-गर्म काफी बनाकर मिल्टन को पिलाती। मिल्टन स्नान पर चला जाता। थोड़ी देर प्रार्थना करता तब तक एलिसी भोजन पकाकर मिल्टन और अपने बच्चों को भोजन खिलाती और फिर सब आमोद-प्रमोद में ऐसे मग्न हो जाते जैसे वे मजदूर न होकर कोई शहंशाह हों।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मुहल्ले में और भी धनी-सम्पन्न लोग रहते हैं। उन्होंने कई बार पूछा—"मिल्टन तुम कम आय, सीमित साधनों में इतने प्रसन्न कैसे हो ?" मिल्टन का एक ही उत्तर है—"प्रसन्नता हमारी भीतरी पवित्रता और प्रेम का प्रकाश है हमने प्रेम और आत्मीयता के मार्ग में आने वाली हर बाधा से अपने आपको मुक्त रखा है इसलिये अपने परिवार में ही हमें बादशाहत का आनन्द मिलता रहता है।"

जो लोग प्रेम की महत्ता नहीं समझते, जिनके पास वैभव-विलास के लिये भौतिक सम्पत्तियाँ जुटाने से ही समय नहीं बचता, वे भावनाओं की इस परिभाषा को क्या समझते ? पति-पत्नी के परस्पर समर्पण में कितनी सुखानुभूति छिपी है, यह उनके समझ की बाहर की बात थी।

उस दिन पहली बार एलिसी गम्भीर रूप से बीमार पड़ गई। बीमार भी ऐसी कि बिस्तर से उठ न पाई। १२ बजे नाश्ते का अलार्म बजा। तब मशीनें चलती रहती हैं। मजदूर पास में ही बैठकर नाश्ता कर लेते हैं कोई टूट-फूट होती है, तो ठीक कर लेते। मिल्टन ने दरवाजे की ओर देखा और एक सेकण्ड की देर किये बिना वहाँ से निकल पड़ा। उसे विश्वास था एलिसी स्वस्थ होती तो वह यहाँ न पहुँचने की भूल कभी नहीं करती। मशीन चल रही हैं, इसका उन्हें ध्यान ही नहीं रहा, सीधे मकान पर पहुँचा। एलिसी अस्वस्थ आँखों में विवशता के आँसू भरे पति की ही याद कर रही थी। मिल्टन ने अपने हाथ से उसका सर दाबा, कॉफी पिलाई और डॉक्टर को लाकर दवा पिलाई वह पुनः फैक्ट्री लौटा इस बीच उसकी जाँच हो गई और उसका ६ महीने का वेतन काट लिया गया।

पर जब फैक्ट्री के मालिक को सारी स्थिति का पता चला तो यह मिल्टन के व्यक्तिगत जीवन से बड़ा प्रेरित हुआ। बाद में उसी के प्रस्ताव पर मिल्टन को १ हजार रुपए का नागरिक पुरस्कार और सार्वजनिक अभिनन्दन किया गया। उसके उत्कृष्ट प्रेम के आगे कर्तव्य की थोड़ी-सी उपेक्षा को भी इसलिये क्षम्य माना गया कि उससे सैकड़ों लोगों को प्रेरणा मिली जिनके दाम्पत्य-जीवन कलह, मनोमालिन्य और अविश्वास से घिर हुए हैं।

'विधवा नास्ति अमंगलम्'

"यह केवल हठ की बात नहीं है काका सा ! आप यह क्यों नहीं सोचते हम भारतीयों के घरों में नारी की स्थिति पहले ही कैसी दयनीय है ? राजकुमारी मंगलमुखी का वैधव्य यदि मेरे लिये अमंगल हो सकता है, तो यह सारे भारतीयों के मस्तक पर ही कलंक क्यों न होना चाहिये ? विधवाओं की सर्वाधिक संख्या इसी देश में है और उसके उत्तरदायी सामाजिक कारण भी पुरुषों द्वारा ही तैयार किये गये हैं। क्या अपने किये का प्रायश्चित पुरुषों को करना नहीं चाहिये ?"

हम्मीर इतना कहते-कहते कुछ आवेश में आ गये थे पर अपने काका सा—अजय सिंह और अन्य सभासदों का वे पूर्ण सम्मान करते थे इसलिये फिर अपनी वाणी को संयत और विनीत बनाते हुए बोले—"काका सा ! राजकुमारी के कोई सन्तान नहीं है, वे छोटी आयु में ही विधवा हो गई। राज परिवार संन्यासी का-सा जीवन जी नहीं सकता फिर क्या यह राजकुमारी की कोमल-भावनाओं पर आघात न होगा कि उन्हें इस खेलने-कूदने की आयु में रीति-रिवाजों के बन्दीगृह में डाल दिया जाय ? सम्बन्ध मुझे करना है और मैं उसके लिये तैयार हूँ, आप लोग किसी अमंगल की बात अपने मन से निकाल दें ?"

"किन्तु हम्मीर ! तुम नहीं जानते चित्तौड़ नरेश मालदेव ने हमारे साथ छल किया है। उसने जान-बूझ कर विधवा कन्या का सम्बन्ध भेजा ? तुम्हारे जैसे वीर और प्रतिष्ठित राजकुमार के लिये विधवा से सम्बन्ध करना शोभा नहीं देता—हम्मीर ! युद्ध ही करना है, तो हम तैयार हैं पर हम इस पक्ष में कभी नहीं कि आपका सम्बन्ध एक ऐसी कन्या से हो जो पहले भी किसी को वरण कर अपवित्र हो चुकी हो ?" अजय सिंह ने दृढ़ शब्दों में कहा और सामन्तों ने उनका अनुमोदन किया।

पर हम्मीर उस धातु के बने नहीं थे जो किसी भी समय कैसे भी मोड़े और झुकाये जा सकते ? हम्मीर किसी सिद्धान्त को देर से स्वीकार करते थे और एक बार उसमें सत्य और आदर्श की रक्षा देख लेते तो उसके लिये ऐसा हठ करते कि फिर सारा संसार एक तरफ हो जाता तो भी वचन से पीछे न हटते। "हम्मीर हठ" उन दिनों जन साधारण के दैनिक बोल बन गये थे।

हम्मीर देव ने कहा—"काका सा ! पुरुष जब चार-चार रानियाँ लाकर राजमहलों में डाल देता है, तब भी अपवित्र नहीं होता फिर नारी एक ऐसी अवस्था में जबकि उसे सहारे की आवश्यकता होती है और दूसरा विवाह कर दिया जाता है, तो वही अपवित्र क्यों हो जायेगी ? मान्यताएँ मनुष्य ने बनाई हैं पर उनमें केवल वही बातें मान्य हो सकती है, जिनका कुछ विवेकजन्य औचित्य भी हो ? विधवा अपवित्र और अमंगल होती है यह कोई तर्क नहीं, सत्य बात तो यह है—यदि वह निःसन्तान है, तो सबसे पहले सहारे की अधिकारिणी भी वही है।"

हम्मीर के हठ के आगे किसी की एक न चली। वह लगन मण्डप पर जा पहुँचे और सम्बन्ध कर ही लिया। सैनिक जो मेवाड़ से युद्ध करने गये थे, वह बाराती बनकर लौटे।

मंगलमुखी ने उस दिन पूर्ण श्रृंगार किया पर उसे ऐसा लग रहा था जैसे महाराणा हम्मीर उसके साथ छल तो नहीं कर रहे। समाज ने विधवा के जीवन में जो आत्महीनता लाद दी है, मंगलमुखी उससे वंचित नहीं थी। पर उसे शीघ्र ही मालूम हो गया कि हम्मीर ने यह सम्बन्ध हठवश नहीं, मानवीय करुणा और कृतज्ञता के रूप में ही किया था। उसने हम्मीर देव को शासन-व्यवस्था में वह सहयोग प्रदान किया कि एक दिन बिना किसी द्वन्द्व और रक्तपात के ही राजा हम्मीर देव मेवाड़ के शासक बन बैठे—पहले जो लोग कहा करते थे कि विधवा का विवाह हम्मीर के अमंगल का सूचक है, वहाँ पीछे कहने लगे विधवा कभी अमंगल नहीं होती, उसे मानवीय सम्मान मिले तो वह किसी भी योग्य जीवन-साथी के कर्त्तव्यों का पालन कर सकती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सच्ची तन्मयता इसे कहते हैं

सुप्रसिद्ध वेदान्ती पण्डित वाचस्पति मिश्र 'भामती' ग्रन्थ के प्रणयन में व्यस्त थे। व्यस्तता भी कैसी, न दिन का पता, न रात का पता। शरीर निर्वाह के लिए शौच, स्नान, भजन और भोजन आदि कार्य अभ्यासवश हो जाते थे। ऐसा लगता था मानो इन कार्यों में भी उनकी रुचि नहीं है। उन्हें इतना भी ध्यान नहीं था कि समय पर कौन भोजन की थाली परोसकर सामने रख जाता है। उच्छिष्ट पात्र कौन उठाकर ले जाता है ? कुटिया में उनके साथ छाया की तरह लगकर कौन अपनी अमूल्य सेवाएँ प्रदान कर रहा है ? इस ओर तो उनका कभी ध्यान भी नहीं गया।

ग्रन्थ का उपसंहार लिखा जा रहा था। दीपक का प्रकाश कुछ धीमा पड़ गया। उसकी लौ ठीक करने के लिए एक हाथ बढ़ा और ठीक करने के उपक्रम में प्रकाश बढ़ने के स्थान पर अँधेरा हो गया। अन्धकार के साथ ग्रन्थ का समापन भी हो गया। पिछले वर्षों में उनके साहित्यिक जीवन में ऐसी छोटी-बड़ी कितनी ही बाधाएँ आई होंगी, पर उनकी तन्मयता ने उनका आभास ही नहीं होने दिया। स्वाध्याय, चिन्तन और लेखन बस इन क्रम ने ही उनके जीवन को अन्तिम सोपान पर लाकर खड़ा कर दिया था। जिस हाथ के स्पर्श से दीपक बुझा था दूसरे ही क्षण उसी के स्पर्श से कुटिया में प्रकाश हो गया।

दीपक के प्रकाश में उन्हें एक स्त्री दिखाई दी। अपने मूल विषय से हटकर कुछ सोचने का अवसर आया। वह पूछ ही बैठे—"तुम कौन ? तुम्हारे यहाँ आने का उद्देश्य ?"

"मैं पिछले चालीस वर्षों से इसी कुटिया में निवास कर रही हूँ। मैं हूँ आपकी सेविका।" उस नारी ने बड़ी विनम्र शब्दों में उत्तर दिया।

"मेरी सेविका" पण्डित जी चौंके।

"आश्चर्यचकित होने की क्या बात है ? कन्या का पिता हाथ पीले करके जिसको सौंप देता है, वह उसकी सेविका ही तो कहलाती है। आप विवाह मण्डप की बात शायद भूल गये। यज्ञ की वेदी पर बैठे-बैठे भी तो आप गहन चिन्तन में तन्मय थे। विवाह की शुभ बेला में वर-वधू जब भावी जीवन की रंगीनी में तिरने के स्वप्न संजोते हैं वहाँ आप तो अपने हाथ में कुछ कागजों को लेकर विचारों में खोये हुये थे। इस कुटिया में आपको अपने लेखन-कार्य से ही इतना अवकाश नहीं मिला जो मेरे सुख-दुःख के बारे में कुछ पूछते। मैंने भी आपकी साधना में व्यवधान डालना उचित न समझा। आज दीपक की बाती बढ़ाते समय जो आपको असुविधा हुई है, उसके लिए मैं क्षमा चाहती हूँ। अब तक आपकी सेवा के पश्चात् जो थोड़ा-बहुत समय मिलता था, उसमें पड़ोस के बच्चों को कुछ लिखना, पढ़ना सिखा देती थी। बालिकाओं को गायन और सीने पिरोने का अभ्यास करा देती थी। आपके पास तो जीविकोपार्जन के लिए समय ही न था।"

"जिस कार्य को मैंने अपने हाथ में लिया था। वह आज समाप्त हुआ। अब तुम यह तो बताओ कि मुझसे चाहती क्या हो ?" पण्डितजी ने बड़े गम्भीर स्वर में उससे पूछा।

"कभी चाहती थी कि गोद हरीभरी रहे। कम से कम वृद्धावस्था के लिए कोई सहारा हो, पर जीवन की वह अवस्था तो कबकी बीत चुकी ? अब तो केश श्वेत हो गये, शरीर जर्जर हो गया। विवाह के पूर्व के रंगीन सपने विवाह के तुरन्त बाद ही समाप्त हो गये। चौथेपन में पाने को रह ही क्या गया है ? बस आपकी सेवा को ही जीवन का लक्ष्य मानकर सन्तुष्ट हूँ।"

"तुम्हारा नाम ?"

'भामती।'

वाचस्पति मिश्र ने लेखनी उठाई, मसिपात्र में डुबाकर ग्रन्थ के मुख-पृष्ठ पर उसका नाम लिख दिया—"भामती"। और उसकी ओर देखते हुए बोले—संसार में जब तक वेदान्त की चर्चा होती रहेगी, तब तक इस ग्रन्थ के सहारे तुम्हारा नाम अमर बना रहेगा। इसी को तुम अपना वंश चलना समझना।

अलगाव ऐसे हो सकता है

देवराज ऊँचे स्वर में कह रहा था—"हाँ, हाँ कहूँगा, सौ बार कहूँगा। मेरी बहू के साथ ये सरासर पक्षपात किया गया है। भाभी के कंगन ६ तोले के बनवाये और उसके पाँच तोले के।"

इस पर बड़े भाई बालमुकुन्द जी ने कहा—"जरा अकल से काम लो देवराज ! इसमें पक्षपात की क्या बात है। तुम्हें पता है कि तुम्हारी भाभी का हाथ गठीला है। उसके हाथ में बड़े साइज की चूड़ी आती है। चारों कंगन एक ही डिजायन के तथा एक से सोने के बने हैं। अब आकार बड़ा होने से उनमें एक तोले सोना ज्यादा लगा है तो मैं क्या करूँ ?" पर देवराज को सन्तोष नहीं हो पा रहा था। कहने लगा "मैं कुछ नहीं जानता। पिताजी की छोड़ी हुई सम्पत्ति में से जो भी चीज ली जायेगी—बराबर-बराबर ही ली जायेगी।"

अभी तक दरभंगा निवासी श्री बालमुकुन्द तथा उनकी पत्नी, देवराज को अपनी सन्तान जैसा ही स्नेह देते आये हैं। वह उनसे आयु में भी काफी छोटा है और बालमुकुन्द जी के निज की कोई सन्तान भी न थी। इसी कारण वह लाड़ में कुछ अधिक ही मुँहचढ़ा हो गया था।

कुछ बड़े होने के नाते और कुछ स्नेहाधिक्य के कारण ही पिता के जीते जी या मरने पर भी बालमुकुन्द ने बँटवारे की कोई आवश्यकता न समझी थी।

अतः समान अधिकार की बात सुनकर उनका गुस्सा बढ़ गया। बोले "अब देवराज ! अपनी सीमा में ही रहो तो अच्छा है। छोटे मुँह बड़ी बात करना शोभा नहीं देता।"

किन्तु देवराज को उसके पिता जी के देहवसान के बाद से ही उसके मित्रों ने भड़काना शुरू किया था और वह भाई के प्रति कुछ शंका के भाव रखने लगा था। उसने दृढ़तापूर्वक कहा, "छोटे बड़े की बात नहीं। बात न्याय की है। चारों कड़े एक तौल के बनने चाहिये थे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और यदि आपको ऐसी ही सम्पत्ति की लालसा है, तो मुझे मेरा हिस्सा देकर अलग कर दीजिये।" इस पर बालमुकुन्द जैसे चीख ही पड़े और कुछ नहीं कहा गया उनसे।

जब आवाज अन्दर पहुँची तो बालमुकुन्द की पत्नी आई निकलकर। बोलीं, "क्या बात है लालाजी !" किन्तु देवराज चुप था। आग्रह करने पर बड़ी ही वेदना के स्वरों में बालमुकुन्द ने वस्तुस्थिति समझाई। तब तक बहू भी वहाँ आ चुकी थी।

अब बालमुकुन्द की पत्नी देवराज के निकट पहुँची और उसके झुके हुए सिर को उठाती हुई बोलीं, "उठो लालाजी ! हमें किसी सम्पत्ति की चाह नहीं है। हमारी सम्पत्ति तो तुम और बहू हो। लो बहू ! ये चारों कड़े रखो अपने पास। इन सोने, चाँदी के टुकड़ों के लिये हम तुम्हें नहीं खो सकते। कैसी पागलों जैसी बात करते हो तुम ! अभी तक बचपना नहीं गया तुम्हारा।"

इस स्नेहार्द्र अनुरोध के आगे देवराज का सारा आवेश सारा क्रोध गल गया। सामने ही बालमुकुन्द भी अश्रु बहा रहे थे। उनकी दशा देखकर भी वह लज्जित हो रहा था। क्रोध के प्रदर्शन से क्रोध बढ़ता है और प्रेम की अभिव्यक्ति से प्रेम।

बालमुकुन्द की पत्नी ने कहा, "देखो तुम्हारे भइया कितने दुःखी हो रहे हैं। सब तुम्हारा ही है भइया ! उठो और उनसे माफी माँग लो। खाना ठण्डा हो रहा है जल्दी करो।" देवराज उठकर भाई के पैरों पर झुका—बीच में ही बालमुकुन्द ने उसे अपनी बाँहों में भर लिया। दोनों के भरे-भरे हृदय गलकर आँसू बन-बनकर बह रहे थे। उस दिन से देवराज ने अपने उन मित्रों का साथ छोड़ दिया जो उसे विपरीत दिशा में भड़काते थे।

सही अर्थों में निभा सहचरत्व

पन्द्रह रुपये मासिक वेतन पर रेलवे की नौकरी में लगकर एक भारतीय कर्मचारी अपनी कर्मनिष्ठा, नित्यप्रति विकसित होती योग्यता, सूझ-बूझ, ईमानदारी और व्यवहार कुशलता के बल पर थोड़े ही वर्षों में दो सौ रुपये माहवार पाने वाला अफसर बन गया। लार्ड कर्जन के जमाने में वह झाँसी के डिस्ट्रिक सुपरिण्टेण्डेन्ट के मातहत काम करता था। डिस्ट्रिक ट्रेफिक सुपरिण्टेण्डेन्ट अँग्रेज साहब था। उसकी रातें या तो क्लब में बीतती या बंगले पर। उसका काम इस भारतीय कर्मचारी को करना पड़ता। वह दिन भर ऑफिस में अपनी ड्यूटी देता और रात्रि में साहब के नाम आये स्पेशल रेलगाड़ियों सम्बन्धी तारों का जवाब देता।

बात यहीं तक रहती तो वह सहन कर लेता, पर उसे दूसरे पर अन्याय लादने को कहा गया। साहब का आदेश हुआ कि वह अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को लेकर टाइम से दो घण्टे पहले ऑफिस आ जाया करे ताकि साहब के आने पर उनके कागज उनकी मेज पर मिलें। उसे अपने सहयोगी कर्मचारियों पर यह अन्याय लादना मंजूर नहीं हुआ। उसने अपना इस्तीफा पेश कर दिया।

यह भारतीय अधिकारी और कोई नहीं हिन्दी भाषा के महान् उन्नायक 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी थे।

आचार्य जी के इस प्रकार त्यागपत्र दे देने से उस गोरे अधिकारी को अपनी हठधर्मी का बोध हुआ। वह यह नहीं चाहता था कि वे उस पद से त्यागपत्र ही दे दें। उसकी यह हठधर्मी द्विवेदी जी के त्याग पत्र प्रेषित कर देने पर आत्म ग्लानि के रूप में परिवर्तित हो गयी। वह प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से उन्हें त्यागपत्र वापस ले लेने का आग्रह करने लगा।

आचार्य जी ने त्यागपत्र वापस लेने के विषय में अपने अन्तरंग मित्र तथा सलाहकार से राय ली। यह अन्तरंग मित्र और सलाहकार और कोई नहीं उनकी स्वाभिमानिनी पत्नी ही थीं। अधिक पढ़ी-लिखी न होने पर भी वह पूरी तरह से विवेकशील और व्यवहार कुशल थीं। अपने पति को इस प्रकार राय लेते देखकर वे तमककर बोलीं—"क्या कोई थूककर चाटता है। त्यागपत्र दे दिया तो दे दिया—अब वापस किस मुँह से लें ?

'किन्तु ·····"

"आप यही कहना चाहते हैं न कि इतनी ऊँची नौकरी व इतना ऊँचा वेतन अन्यत्र नहीं मिलेगा। मेरी दृष्टि में तो आपका मान पहले से भी हजार गुना बढ़ गया है। मैं केवल आठ आने पैसे रोज में सारे घर का खर्च चला लूँगी। आप यह "किन्तु" इसलिए लगा रहे थे न कि मुझे कष्ट होगा।"

सचमुच उस देवी ने आठ आने रोज में बड़े से परिवार का खर्च चलाने का नियम बनाकर उसे आजीवन निभाया। द्विवेदी जी ने तेईस रुपये मासिक के वेतन पर सरस्वती का सम्पादन आरम्भ किया। उस अल्प वेतन में भी उस गृहलक्ष्मी ने बचत की और परिवार का खर्च चलाया। उनके स्थान पर कोई और होती तो कहती मुझे तो गहने चाहिए, साड़ियाँ और व्यंजन चाहिए। आप तो पुनः वहीं नौकरी कर लो, किन्तु वह सहचरत्व नहीं स्वार्थ होता। ऐसी स्थिति में बहुत संभव था कि आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी नाम का कोई व्यक्ति भी इस भारत में पैदा हुआ था, यह बात कोई नहीं जान पाता। सरकारी वेतनभोगी तो हजार मिल जाते, किन्तु हिन्दी को ऐसा नैष्ठिक उपासक शायद ही मिल पाता। आज उन्हें हिन्दी भाषा के महान् उन्नायक के रूप में सारा भारत जानता है।

आचार्य द्विवेदी को यह सम्मान व हिन्दी इतिहास में द्विवेदी युग रूपी उपलब्धि दिलाने का श्रेय, उनकी उस प्राण सहचरी को कम नहीं जाता, जिनके प्रोत्साहन, त्याग, तप की पृष्ठभूमि पर आचार्य जी का महान् व्यक्तित्व व कृतित्व उगा, पनपा, व फला-फूला। ऐसे नारी रत्न ही मातृ शक्ति की गौरव गरिमा को उजागर करते हैं।

नारी तू कितनी महान्

महाकवि माघ जितने बड़े विद्वान थे, उतने ही उदारचेत्ता भी थे। जो कमाते उसका अधिकांश भाग सत्प्रयोजनों में ही खर्च कर देते। कष्ट-पीड़ितों को यथा समय उनसे बड़ी सहायता मिलती।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक निर्धन व्यक्ति अपनी कन्या के विवाह सन्दर्भ में कुछ बड़ी सहायता पाने की आशा में उनके पास आया। माघ ने घर में जाकर देखा तो पैसा बिल्कुल खलास था। इतनी बड़ी जरूरत वाले को निराश कैसे लौटाया जाय, वे इसी चिन्ता में डूबे थे।

वस्तुस्थिति का पता चला तो माघ की माता ने अपने सोने के कड़े उतारकर दिये और कहा—"बेटा मेरा जेवर पहनना उतना आवश्यक नहीं, जितना निर्धन की लड़की का विवाह, तुम यह कड़े खुशी-खुशी उसे दे दो।"

माघ की पत्नी भी पास ही खड़ी थी। उसने कहा, "माताजी के कड़ों से जो रकम मिलेगी वह विवाह के लिए पर्याप्त नहीं। बेचारे को दरवाजे-दरवाजे पर घूमना पड़ेगा। क्यों न हम ही लोग उसकी जरूरत पूरी कर दें।" यह कहकर पत्नी ने भी अपने सोने के कड़े उतार कर दे दिये।

× × ×

ईरान के बादशाह ने एक नगर पर चढ़ाई कर दी और उसे चारों ओर से घेर लिया और आज्ञा प्रसारित कर दी—"प्रातः सब स्त्रियाँ अपने कीमती आभूषण लेकर अमुक स्थान पर पहुँच जाएँ। मनुष्य एक भी नहीं निकलना चाहिए।"

नगर में हलचल मच गई। प्रातःकाल सब स्त्रियाँ कुछ छोटे, कुछ बड़े गट्ठड़ लिये उस स्थान पर एकत्रित हुईं। बादशाह को सन्देश हुआ गठरियों में और कुछ है। उसने सबके गट्ठर खुलवाये तो उनमें आदमी निकले। बादशाह ने कड़ककर पूछा, "क्या यही तुम्हारे आभूषण हैं ?" एक वृद्धा ने कहा—"महाराज ! हमारे लिये पति और पुत्रों से बढ़कर कोई सम्पत्ति नहीं—सोना चाँदी तो मिट्टी है।"

बादशाह ने विचार किया जहाँ महिलाएँ इतनी कर्तव्य परायण हों, उनके रहते वहाँ अधिकार नहीं जमाया जा सकता, वह चुपचाप सेना लेकर लौट गया।

मुझे कुछ नहीं चाहिये

रामकृष्ण परमहंस की माता वृद्धावस्था में गंगातीर पर रासमणि के कालीघाट पर रहने लगीं। रानी रासमणि के दामाद ने उनके लिए गुजारे का प्रबन्ध करना चाहा तो माता ने कहा—"न बाबा न ! मुझे कुछ नहीं चाहिए। मैं आनन्द से हूँ। रोज सबेरे गंगा स्नान करती और काली माँ का प्रसाद लेती हूँ ! मेरे लिए यही सब कुछ है।" उनके बहुत ही आग्रह पर उन्होंने कुल दो पैसे का एक पान मँगाकर उनका आग्रह पूरा कर दिया। यह सुन वे बोल पड़े—"हाँ माँ ! यदि ये त्याग न होता तो परमहंस देव कैसे जन्मते ?"

माता-पिता के स्वभाव का प्रभाव संतान पर भी अनिवार्य रूप से पड़ता ही है।

मेरा कर्तव्य

देशमान्य गोपालकृष्ण गोखले बचपन में बहुत गरीब थे। प्रारम्भिक शिक्षा जैसे-तैसे पूर्ण हुई। अब कालेज की ऊँची व खर्चीली पढ़ाई का प्रश्न सामने आया, चारों ओर निराशा के बादल ही दिखाई दे रहे थे।

तभी साहस दिलाया उनके बड़े भाई श्री गोविन्द राव ने। भाभी की उदारता भाई से भी बढ़ी-चढ़ी निकली। उन्होंने कुछ आभूषण बेचे और कालिज की प्रारम्भिक फीस भर दी। गोविन्द राव को कुल पन्द्रह रुपये मासिक वेतन मिलता था। लेकिन भाई को उच्च शिक्षा अवश्य दिलवाने के लिए वे कटिबद्ध थे। रुपये पन्द्रह में से केवल आठ रुपये वे अपने लिये रखते थे और शेष सात रुपये गोखले जी को भेज देते थे।

जब गोखले जी की शिक्षा पूर्ण हो गई तब उन्हें पैंतीस रुपये प्रति मास की नौकरी मिली। बड़े भाई के उपकार से उनका रोम-रोम कृतज्ञता से झुका था, सो वे भी अपने लिए मात्र ग्यारह रुपये खर्चे को रखकर चौबीस रुपये प्रति मास बड़े भाई को भेज देते थे। बड़े भाई बहुत कहते कि तुम अच्छी तरह आराम से रहा करो—मुझे मत भेजा करो। किन्तु यह रुपयों का बदला रुपयों में नहीं था, बल्कि ममता की प्रतिक्रिया थी श्रद्धा के रूप में।

(१) स्नेह और ममता का प्रतिफल सुखदायी ही होता है।

(२) अपने अभिभावकों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना नैतिक कर्तव्य है (गोखले)।

एक भाई की खोज

वाराणसी नरेश ब्रह्मदत्त सिंहल द्वीप से आर्यावर्त लौट रहे थे। जलयान एक छोटे-से द्वीप के समीप से गुजरा तभी उन्हें एक नारी की चीत्कार सुनाई पड़ी। जलपोत के लंगर वहीं डाल दिये गये, जहाँ एक नौका पहले से ही रुकी खड़ी थी। सब लोग दौड़कर उधर पहुँचे जिधर से किसी स्त्री के रोने की आवाज आ रही थी।

उन्होंने आगे बढ़कर देखा कुछ दस्यु एक स्त्री को पकड़कर पीट रहे हैं—"स्त्री कह रही थी—दुष्टों मैं भारतीय नारी हूँ, शील मेरा धर्म और स्वजनों के प्रति निष्ठा मेरी साधना है मैं तुम्हारी दुष्टता के आगे झुकूँगी नहीं चाहे मेरे प्राण ही क्यों न ले लो ?"

ब्रह्मदत्त के ललकारने पर दस्यु भयभीत हो भाग खड़े हुये। समीप जाकर सम्राट ने कहा—"भद्रे ! तुम्हारा परिचय तो अभी-अभी तुम्हारे शब्दों से पा चुका—तुमने भारतीय नारी के आदर्शों में अपनी निष्ठा व्यक्त कर न केवल अपना वरन् सारी हिन्दू जाति का मुख उज्ज्वल किया है। इसलिये तुम सर्वोच्च सम्मान की अधिकारिणी हो। तुम मेरे साथ—चलो और अपने देश में अपने पति, बच्चों के साथ सुखी जीवन यापन करो।"

स्त्री बोली—राजन् ! दस्युओं ने मेरे पति को मार दिया है, मेरे पुत्र मुझे छोड़कर पहले ही अलग हो चुके हैं, अब मैं किसके आश्रय में जीवन यापन करूँगी ?

"इसका प्रबन्ध देश लौटकर करेंगे" यह कहकर सम्राट् ब्रह्मदत्त ने उस स्त्री को साथ लिया और स्वदेश की ओर लौट पड़े।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जलयान भारतीय समुद्र तट पर रुका। महाराज के स्वागत के लिये विशाल जन समुदाय—जिसमें महारानी, मन्त्रिगण और सामन्त सभासद भी थे आगे बढ़े—उनकी ओर संकेत करते हुये महाराज ने उस स्त्री से कहा—भद्रे ! इन आगन्तुकों में तुम जिसे अपने पति-पुत्र के रूप में चुनना चाहो चुन सकती हो। तुम्हारे सुखी जीवन के लिये मैं सारी व्यवस्थाएँ जुटा सकता हूँ।

स्त्री की आँखें छलक उठी उसने कहा—"राजन् ! मेरा पति था जिसने मुझे अपनी वासना से जकड़ा, मुझे घर की चहारदीवारी में बन्द कर मेरा स्वास्थ्य लूटा। मुझे ऐसा भी नहीं रहने दिया कि मैं आततायियों का मुकाबला कर सकती। अशिक्षा अज्ञान में जकड़ी रह गई मैं, पति की प्रवंचना ने मुझे दासी बनाकर छोड़ दिया। इसलिये अब मुझे पति नहीं चाहिये।"

"और पुत्र" उसने आगे कहा—पुत्रों को मैंने अपनी देह का सारा रस रक्त पिला दिया, स्वयं कष्ट झेले, पर उनकी सेवा, शिक्षा, और पालन-पोषण में कमी न आने दी वही पुत्र जब बड़े हुये तो उनसे इतना भी नहीं बन पड़ा, कि गाढ़े संकट में मेरी रक्षा करते—ऐसे कृतघ्न पुत्र लेकर भी अब मैं क्या करूँगी ?"

"हाँ जो मेरे शील, मेरे धर्म की रक्षा कर सके मुझे ऐसे साहसी और चरित्रवान् भाई की आवश्यकता अवश्य है, यदि आप उसे पूरा कर सकते हैं, तो मुझे एक भाई की ही व्यवस्था कर दें।"

ब्रह्मदत्त ने उपस्थित जनसमूह पर आँखें दौड़ाकर देखा—सबकी आँखें झुकी हुई थीं—उन्होंने कहा, "बहन आओ। तुम मेरे साथ चलो—इनमें से ऐसा कोई भाई दिखाई नहीं देता जो तुम्हारा उद्धार कर सके।"

उस स्त्री और सम्राट् ब्रह्मदत्त की आँखें अब भी ढूँढ़ रही हैं कुछ ऐसे भाई मिलें जो अपने देश की नारी को अन्धविश्वास, रूढ़िवाद और अत्याचारियों के बन्धन से छुड़ा सकें, पर पति और पुत्र बनने के लिये तो यहाँ सब तैयार हैं, भाई का भार संभालने के लिये आज एक भी व्यक्ति तैयार नहीं होता।

साधारण वेष में असाधारण माँ

महाराज रविशंकर के पास कहीं से सवा सौ मन अनाज आया था। उनके पास प्रायः सम्पन्न व्यक्ति इस उद्देश्य से कुछ न कुछ भिजवाते रहते थे कि उसे निर्धनों में बँटवा दिया जाए और जिनके पास खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने के पर्याप्त साधन नहीं है, उनकी कुछ सेवा सहायता हो सके। महाराज रविशंकर ने हमेशा की भाँति वह अनाज बाँटने का प्रबन्ध किया और गरीबों की बस्ती में गये। उस बस्ती में खेल रही थी एक बालिका। महाराज ने उसे देखकर कहा—"जा बिटिया तू भी कोई बर्तन ले आ और अपने हिस्से का अनाज ले ले।"

लड़की ने कहा—"मेरी माँ मजदूरी से आती होगी। पैसे उसी के पास हैं, जब वह आयेगी तब हम अनाज ले लेंगे।"

लड़की समझी थी कि महाराज अनाज खरीदने के लिए कह रहे हैं, परन्तु जब उसे बताया गया कि वह अनाज बेचा नहीं जा रहा है, बल्कि मुफ्त बाँटा जा रहा है तो उसने अनाज लेने से इनकार कर दिया। महाराज ने इसका कारण पूछा तो वह बोली—"स्वामीजी ! मेरी माँ ने मुझे सिखाया है कि मुफ्त में किसी से कुछ भी नहीं लेना चाहिए। देने वाला भले ही भगवान ही क्यों न हो ?"

'अच्छा' !—छोटी-सी बालिका के मुँह से यह बात सुनकर महाराज आश्चर्यचकित रह गये। उन्होंने निश्चय किया कि जो माँ अपने बच्चों को इतने अच्छे संस्कार दे सकती है, वह कोई साधारण चरित्र की महिला नहीं हो सकती, उससे मिलना चाहिए। रविशंकर जी ने बालिका से कहा—"क्या तुम मुझे अपनी माँ से मिलवा सकती हो।"

"ठीक है। आप अपने काम से निबट जाइये तब तक मेरी माँ भी आती ही होगी"—और वह लड़की खेलने लगी तथा महाराज अपने काम में व्यस्त हो गये। जब उनके काम का अन्तिम चरण चल रहा था तभी वह लड़की आयी और महाराज को अपनी माँ से मिलवाने ले गयी। रविशंकर जी ने देखा उस लड़की की माँ साधारण कपड़े पहने एक प्रौढ़ आयु की स्त्री थी। उस स्त्री ने उठकर महाराज का अभिवादन किया। महाराज ने उसे देखकर पूछा—"देवि तुमने अपनी लड़की को कोई वस्तु मुफ्त न लेने की सीख दी है।"

"इसमें कौन बड़ी बात है महाराज ! जब भगवान ने हाथ-पैर दिये हैं, तो फिर मेहनत करके ही अपना पेट पालना चाहिए। इसमें सिखाने या समझाने जैसी कौन-सी बात है ?"

महाराज जी ने उस स्त्री से गृह-व्यवस्था और निर्वाह कैसे चलता है ? आदि बातें पूछीं तो उसने बताया कि वह युवावस्था में ही विधवा हो गयी थी तथा तभी से जंगल में से लकड़ियाँ काटकर लाती और उन्हें बेचकर अपना गुजारा करती। महाराज से रहा न गया, उन्होंने पूछा—"क्या तुम्हारे पति की कोई जमीन जायदाद नहीं थी।"

तब उस स्त्री ने कहा—"थी तो महाराज ! कोई ३० बीघा जमीन और एक जोड़ी बैल थे। मैंने सोचा यह तो इस बेटी के पिता की सम्पत्ति है। उस पर मेरा क्या अधिकार ? मैंने उसे प्राप्त करने या बढ़ाने में कोई योगदान तो नहीं दिया था। इधर मैं कई दिनों से देख रही थी कि इस गाँव की माँ-बहिनें पानी लाने के लिए गाँव से बाहर करीब दो-तीन मील जाती थीं। आस-पास कोई कुँआ नहीं था, रेगिस्तानी इलाका होने के कारण बहुत गहरे खोदने पर पानी निकलता है इसलिए कोई कुँआ खोदता भी नहीं था। अतः मैंने अपने सारे खेत और बैलों की जोड़ी गाँव के ही एक सेठ की सहायता से बेच दिया और जो कुछ भी मिला उससे गाँव में एक कुँआ बनवा दिया। जमीन काफी थी—बेचने पर पैसा भी अच्छा मिला था इसलिए कुँआ बन जाने के बाद भी कुछ पैसा बचा तो उससे पशुओं को पीने के लिए पानी की एक हौदी बनवा दी। अब गाँव वालों को गर्मियों में भी पानी का अभाव नहीं रहता।"

उस विधवा के उत्सर्ग और त्याग की कथा सुनकर रविशंकर महाराज बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने कहा—"धन्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हो देवी ! तुम इस गाँव की माँ हो। धन से न सही मन से तो तुम इतनी धनवान हो कि तुम्हारी सम्पन्नता की कोई लखपति-करोड़पति भी पहुँच नहीं कर सकता। तभी तो तुम्हारी लड़की को देखकर मैंने समझ लिया था कि यह किसी साधारण माँ की बेटी नहीं है।"

"महाराज ! शर्मिन्दा मत कीजिये"—कहकर, माँ ने रविशंकर महाराज के चरणों में सिर रख दिया।

"सम-वेदना" की अनुभूति

'देखो यह शोर कैसा हो रहा है ?' पति ने पत्नी से कहा और दोनों उस ओर भाग चले। जाकर देखा नदी की अपार जलधारा में आठ-नौ वर्ष का एक बच्चा बहा जा रहा है। आस-पास खड़े लोग तमाशा देख रहे थे। बच्चे के माँ-बाप, सगे-सम्बन्धियों की करुण चीत्कार जारी है।

ये दोनों अभी कुछ ही दिन पहले भारत से यहाँ आये थे। आक्सफोर्ड में उच्च शिक्षा के सारे प्रबन्ध करने के बाद, पास के ही इस स्थान पर मन बहलाने आये थे। उद्देश्य था सैर-सपाटा, भ्रमण यही सब। सोचा था इसी बहाने पत्नी की ऊब समाप्त हो जायेगी। आक्सफोर्ड से कुछ दूर पर बह रही नदी के आस-पास का दृश्य मनोरम था। नदी की तेज-जलधारा के दोनों किनारे के मनोरम दृश्य, सुन्दर कुञ्ज-बेलियाँ किसी को भी अपनी ओर आकर्षित करने के लिये काफी थी।

ऐसी ही एक जगह में बैठे मन बहला रहे उक्त दम्पत्ति वहाँ दौड़ पड़े जिधर से शोर उमग रहा था। भीड़ तो अच्छी खासी इकट्ठी हो गयी थी, पर कोई नदी में कूदकर बच्चे को बचाने का प्रयास नहीं कर रहा था। कारण कि सभी नदी की तेज जलधारा से भयभीत थे और कोई भी इस पुण्य को करते हुए अपने को डुबाना नहीं चाहता था। हालांकि बहाव से संघर्ष कर रहे बच्चे को ऐसे-तैसे, वैसे-तैसे के सुझाव तो प्रायः सभी दे रहे थे, पर सुझाव, सुझाव है और सहायता, सहायता। इन दोनों में बहुत ज्यादा फासला है, जिसे भरने के लिये चाहिये संवेदनशील हृदय तथा शरीर की तत्परतापूर्ण सक्रियता। उक्त भारतीय युवक अपने में इन दोनों की उपस्थिति महसूस कर रहा था। उसने सोचा, सोचा ही नहीं निर्णय भी कर लिया कि चाहे जो हो वह इस बालक को अवश्य बचायेगा।

उसके हाथों की उँगलियाँ कोट-पैण्ट-टाई तथा जूते खोलने-उतारने में सक्रिय हो गयीं। "अरे ! अरे !! क्या तुम नदी में कूदकर अपनी जान देना चाहते हो।" वहाँ खड़े लोगों में से किसी ने कहा और सभी उस नर शार्दूल को देखने लगे।

"हाँ ! बच्चे को छटपटाता देखकर जो पीड़ा अनुभव कर रहा हूँ, वह या तो बच्चे को बचा लेने पर शान्त होगी या बचाते हुए मर जाने पर।"

"कितना बनता है ?"—किसी ने कहा।

"हिम्मत वाला है।"—किसी ने प्रोत्साहित किया।

"अरे मैडम ! तुम अपने पति को इस मृत्यु की धारा में कूदने से रोकती क्यों नहीं ?" किसी ने सहानुभूति के स्वरों में उस युवक की पत्नी को परामर्श दिया। इसी बीच वह युवक कपड़े उतार चुका था। उसने देखा बच्चा अब थक चुका है और बेदम होकर या तो बहने वाला है अथवा पानी में डूबने वाला है।

एक क्षण भी व्यर्थ न जाने देकर वह एकदम कूद पड़ा। जैसे-तैसे उसने बच्चे को धकेला और किनारे पर ला पटक दिया। जहाँ से लोगों ने उसे पकड़कर खींच लिया। युवक भी बाहर आने को था कि पानी का तेज बहाव आया और वह दूर जा पड़ा। इस अप्रत्याशित स्थिति में ऐसा लगा कि वह डूब गया। पत्नी अपलक अपने सर्वस्व की यह दशा निहार रही थी, पर कहाँ संघर्ष के कौशल ने उसे मौत के चंगुल से बाहर ला दिया।

तनिक स्वस्थ हो जाने पर जनसमुदाय ने पूछा—"अगर मर जाते तो !"

"तो संवेदना का अर्थ मौत को गले लगाना है।" पूछने वाले के स्वर में तनिक व्यंग था।

"नहीं संवेदना का अर्थ है सम-वेदना अर्थात् बराबर की पीड़ा। दुःख-दैन्य से ग्रसित व्यक्ति जैसी पीड़ा ही जब हृदय अनुभव करने लगे तब समझना चाहिये कि संवेदना जगी। इसी अनुभूति का नाम मनुष्यत्व है।" उसके अधरों पर एक गौरवमयी मुसकान खेल गयी। मनुष्यत्व की सहज अनुभूति करने वाले ये भारतीय दम्पत्ति थे—लाला हरदयाल और उनकी सहधर्मिणी-सुन्दररानी। उन जैसी अनुभूति ही जीवन की सार्थकता है।

रमणी या जीवनसंगिनी

किसी नगर में एक ब्राह्मण-ब्राह्मणी रहते थे। उनके एक लड़का था। जब लड़का ५ वर्ष का हुआ तो ब्राह्मण और ब्राह्मणी सुरपुर सिधार गये। बालक को अनाथ देखकर एक महात्मा जी को दया आई और वे उसे पालने के लिए अपने साथ ले गये। बालक का पालन-पोषण होता रहा और वह २५ वर्ष का हो गया।

एक दिन इस तरुण ब्राह्मण युवक के मन में आया कि तीर्थ यात्रा करनी चाहिए। इसके लिए उसने महात्मा जी से आज्ञा माँगी। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा दे दी। युवक चल पड़ा।

रास्ते में उसने देखा कि उसके समान ही एक युवक खूब सजा हुआ पालकी में बैठा जा रहा है और बहुत-से आदमी तरह-तरह की सवारियों में बैठे हुए गाजे-बाजे के सहित उसके साथ जा रहे हैं। ब्राह्मण ने उन लोगों के पास जाकर पूछा—"यह सब क्या है ? उन्होंने बताया कि यह बरात जा रही है, सजा हुआ युवक दूल्हा है। इसकी एक सुन्दरी के साथ शादी होगी। फिर यह दूल्हा अपनी वधू के साथ सुखपूर्वक रहा करेगा।"

इन सब बातों को सुनकर ब्राह्मण युवक का मन भी सुन्दरी प्राप्त करने के लिए ललचाने लगा। उसके चित्त में नाना प्रकार के विषय-विकार उठने लगे। सुन्दरी की बातें सोचने में ही उसका सारा ध्यान लग गया। रात हुई, ब्राह्मण एक कुए के पास लेट गया, नींद आई। स्वप्न में उसने देखा कि उसकी शादी हो गई और सुन्दरी उसके पास आकर लेट गई है। ब्राह्मण उस युवती को अपने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अंक में लेने के लिए उसकी तरफ सरकने लगा। सरकते-सरकते वह कुएँ में ही गिर पड़ा।

किसी के कुएँ में गिरने की आवाज सुनकर आस-पास के लोग दौड़े। रस्सी फाँसकर कुएँ में घुसे और उस ब्राह्मण को निकाला। वह बहुत घायल हो गया था। पूछने पर उसने अपना पता ठिकाना बताया और कहा कि मुझे अमुक स्थान पर मेरे गुरु महात्मा जी के पास पहुँचा दो। दयालु लोगों ने उस घायल ब्राह्मण को बैलगाड़ी में रख कर उन महात्मा के पास पहुँचा दिया।

अपने शिष्य की यह दुर्दशा देखकर महात्मा जी बड़े दुःखी हुए। उन्होंने कुएँ में गिरने का कारण पूछा। शिष्य ने वह सब बात कह सुनाई कि बरात देखकर उसके मन में शादी की इच्छा हुई, स्वप्न में उसे सुन्दरी मिली और उससे लिपटने का प्रयत्न करते हुए वह कुएँ में गिर पड़ा। महात्माजी ने कहा, "बेटा ! जिस वस्तु की कल्पना मात्र ने तेरा यह दुर्दशा कर दी, यदि वह साक्षात् रूप से तुझे मिल जाय तो अनुमान लगा ले कि फिर तेरी कितनी बड़ी दुर्दशा होगी ?"

स्त्री को जो लोग कामिनी, रमणी विलास यंत्र समझ कर प्राप्त करने की इच्छा करते हैं, उनके मन में विषय विकारों की दुर्बुद्धि का भयानक धुआँ घुमड़ जाता है जिससे उनकी बड़ी दुर्दशा होती है। स्त्री-जीवन सहचरी, अर्धांगिनी, आत्मविस्तार में सहायता करने वाली दिव्य शक्ति है। जो उसका वास्तविक रूप समझ कर तदनुसार ही व्यवहार करते हैं, उनका जीवन सुखी रहता है। स्त्री को काम-विकारों का पुतला मात्र समझकर इसी इच्छा से जो उसका सम्पर्क करते हैं निस्सन्देह उनकी अत्यन्त दुर्दशा होती है। उनके ऐसे घाव लगते हैं जिनकी चोट से उन्हें सदैव कराहते रहना पड़ता है।

नारी की सम्मान रक्षा

अपने रमणीक महल के झरोखे में बैठी हुई महारानी सत्यभामा भगवान कृष्ण की राह देख रही थीं। उनके प्रतिदिन आने का समय निकल गया था, इससे महारानी कुछ व्याकुल जान पड़ती थीं। वे अपने मन में कहने लगीं—"इनकी आदत ही ऐसी है। किसी की चिन्ता करते ही नहीं।"

इतने में भगवान सत्यभामा के महल में दाखिल हो गये। उनके पैरों का शब्द सुनते ही महारानी ने पीछे फिर कर देखा। पहले तो उन्होंने रूठ जाने का, दो-चार खोटी खरी बातें सुनाने का विचार कर रखा। पर भगवान के मुख को देखते ही उनके सब मनसूबे ठण्डे पड़ गये और कहने लगी—"अरे ? आज आप किसके ऊपर रोष में भरे हुये हो ?"

एक गद्दी वाले आसन के ऊपर बैठकर श्रीकृष्ण ने कहा--"देवी, आज एक भयंकर समाचार सुनकर मैं विशेष चिन्तित हो गया हूँ।"

"क्या समाचार है ? कैसा समाचार है ?" यह कहते हुये महारानी भी पास आकर बैठ गईं।

"बात यह है कि कामरूप नाम के देश में भौमासुर नाम का बलवान राजा राज्य करता है। वह अनेक राजाओं की कन्याओं को हर कर ले गया है और उन सबको एक पहाड़ के ऊपर कैद कर रखा है। यह स्थान ऐसा कठिन है कि कोई साधारण हिम्मत वाला पुरुष भी वहाँ जा नहीं सकता। फिर भौमासुर स्वयं बड़ा शक्तिशाली है। इसलिये भय के कारण कोई राजा उससे लड़ने को तैयार नहीं होता।"

"हाँ उन राजकुमारियों को छुड़ाने का प्रयत्न कोई नहीं करता ?"

"कौन छुड़ावे ? यमराज के साथ लड़ना और भौमासुर के साथ लड़ना ये दोनों बातें बराबर हैं।"

"आपको यह समाचार कैसे मिला ?"

"मुझे आज ही एक परदेसी वृद्ध ब्राह्मण ने यह वृत्तान्त सुनाया।"

"तो अब ?"

"अब मैं यही विचार कर रहा हूँ कि इस सम्बन्ध में क्या करना उचित है ?"

"इसमें विचार करने की क्या जरूरत है, महाराज ! यदि आप जैसे पुरुष इस प्रकार का प्रसंग आने पर चिन्ताग्रस्त हो जायेंगे, तो फिर पापी लोग निडर होकर मनमानी करने लगेंगे।"

"तब फिर ?"

"मेरा कहना यही है कि अब आपको ही इन राज-कन्याओं की रक्षार्थ भौमासुर को ठिकाने लगाने का भार ग्रहण करना चाहिये।"

"पर महारानी, यह बात सहज नहीं है। भौमासुर की ताकत बहुत अधिक है। इसके साथ बैर करने, इसे छेड़ने से हमारी भी बहुत हानि हो सकती है"—अपनी प्रिय रानी का मनोभाव जानने के लिये भगवान ने जरा बात को बदलकर कहा।

सत्यभामा बड़ी तेजस्वी नारी थी। वह भौमासुर के कुकृत्यों को सहन नहीं कर सकी और कहने लगी—"नहीं महाराज, जो हानि होनी हो सो हो जाय, पर नारी जाति का ऐसा अपमान तो कभी सहन नहीं किया जा सकता। आप भौमासुर की ताकत को बहुत बतलाते हो, पर आप क्या कम बलवान हैं। आप चाहो तो इस पापी को मच्छर की तरह मसल सकते हो।"

"देवी, तुमको तो मैं सबसे महान् जान पड़ता हूँ, इससे ऐसी बात कह देती हो। पर मुझे तो भौमासुर की ताकत की खबर है। अपनी यादव सेना की अपेक्षा चौगुनी सेना उसके पास है। इसके सिवा कितने ही प्रसिद्ध दानव नरेशों की सहायता भी उसे मिला करती है। इसलिये राजकुमारियों की दशा सुनकर मुझे दुःख अवश्य होता है, पर क्या किया जाय ?"

"ऐसी उलटी-उलटी बात क्यों करते हो महाराज ! इससे पहले तो आपने कभी ऐसी बातें नहीं की थीं। क्या आपको पापी भौमासुर का आचरण घृणित नहीं लगता ? आप क्या नारी जाति का अपमान देखकर चुपचाप बैठ सकते हैं ? अगर आपको उन पर दया न आती हो, तो अपनी इस दासी को आज्ञा दीजिये। मैं शस्त्र ग्रहण करके इस कार्य के लिये सन्नद्ध हूँगी।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"तुम ! तुम इस भौमासुर को, जिससे आजकल बड़े-बड़े सम्राट डरते हैं, मारकर राजकन्याओं को छुड़ा लाओगी ?"

"अगर भौमासुर नहीं मरेगा, तो मैं तो मर जाऊँगी। नारी जाति का अपमान देखते हुये जीवित रहना क्या अच्छी बात है ? और इसकी अपेक्षा मर जाना क्या श्रेष्ठ नहीं है ?"

अपनी प्रिय रानी का मनोभाव जानकर श्रीकृष्ण मन ही मन बड़े प्रसन्न हुये। उन्होंने सत्यभामा को प्रेम से बगल में बैठाकर कहा—

"महारानी, तुम्हारा मनोभाव जानकर मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ। पापियों के हाथ से दीन-दुःखियों की रक्षा करते हुये मर जाना बुरी बात नहीं है। सच्चा मनुष्य तो वही है जो असत्य के विरुद्ध मरते दम तक युद्ध करता रहे। मैं अभी सेना को तैयार करने की आज्ञा देता हूँ और जहाँ तक संभव होगा शीघ्र ही पापी भौमासुर का नाश करूँगा।"

"मैं भी आपके साथ युद्ध में चलूँगी।"

"अरे कहीं स्त्रियों को युद्ध में साथ ले जाना शोभा देता है"

"हाँ, हाँ जरूर शोभा देता है। मुझे साथ ले जाना भूलियेगा मत।"

देखते-देखते भगवान की नारायणी सेना भौमासुर के नगर के समीप जा पहुँची। यह देखकर भौमासुर भी झटपट अपनी सेना सहित तैयार हो गया। दोनों सेनाओं में मारकाट आरम्भ हो गई।

"महाराज ! दुष्ट भौमासुर कहाँ है ?" श्रीकृष्ण के रथ में बैठी हथियारों से सजी सत्यभामा ने पूछा।

"वह सामने गदा लेकर आ रहा है।"

"देखिये वह भाग न जाय, इसके सामने रथ ले चलिये।"

इतने में भौमासुर सामने आ गया और भगवान के साथ उसकी आँखें मिलीं। वह दाँत पीसकर गदा उठाकर उन्हें मारने को झपटा पर इतने में "खड़ा रह पापी" कहकर सत्यभामा रथ से कूद पड़ीं और उन्होंने पलक मारते-मारते भौमासुर के हाथ को काट डाला।

भौमासुर दो कदम पीछे हटा, फिर तलवार निकाल कर गर्जता हुआ सत्यभामा को मारने दौड़ा।

क्षण भर में श्रीकृष्ण ने परिस्थिति को समझ लिया और कूदकर एक ही बार में उसका दूसरा हाथ भी काट डाला। फिर बाल पकड़कर उसे पछाड़ दिया और धड़ से मस्तक अलग कर दिया।

राजा का मरण सुनकर भौमासुर की रही सही सेना भाग खड़ी हुई और श्रीकृष्ण को विजय की प्राप्ति हुई।

फिर सत्यभामा को लेकर भगवान पहाड़ पर चढ़ गये और राजकुमारियों को स्वतन्त्र करके कहा कि जिन स्थानों पर वे कहें, उन्हें पहुँचाया जा सकता है परन्तु उन्होंने कहा कि वे भगवान के चरणों के अतिरिक्त कहीं नहीं जाना चाहतीं। भगवान ने सत्यभामा की ओर देखते हुए मौन स्वीकृति दे दी।

सुसन्तति का निर्माण किया जाता है

"मुनि श्रेष्ठ !"—सुजाता कह रही थी "मुझे एक तेजस्वी और प्रतिभावान पुत्र चाहिए।"

"आँ" कहकर कहोड़ मुनि पुनः पांडुलिपि को उलटने-पलटने में व्यस्त हो गये, क्योंकि आज उन्हें अपने शिष्यों को पाणिनि के अष्टाध्यायी व्याकरण के अन्तिम सूत्र की व्याख्या करनी थी।

"देव !" अनुरोध भरा स्वर पुनः उभरा "लगता है आज आप अधिक व्यस्त हैं। निवेदन फिर करूँगी।"

ऋषि की तन्द्रा अब टूटी। उन्होंने अचकचा कर पूछा—"देवि ! तुमने कुछ कहा क्या ?"

"हाँ, आर्य ! पर अभी आप अपना अध्ययन पूरा कर लें। बात फिर कर लेंगे।" सुजाता कह रही थी।

शाम से रात्रि घिर आयी। ऋषि का अध्ययन समाप्त हो चुका था। वे ग्रन्थ को उपयुक्त स्थान पर रख कुटिया से बाहर ठंडी-ठंडी हवा में टहलने के लिए निकल पड़े। सामने ही वे टहल रहे थे और सूत्र की व्याख्या पर चिन्तन मनन भी करते जा रहे थे, अभी थोड़ी ही देर हुई होगी कि कुटीर के अन्दर से पत्नी की वाणी उनके कानों से टकरायी "स्वामी ! भोजन तैयार है, ग्रहण कर लें।"

वे अन्दर प्रविष्ट हुए। हाथ-मुँह धोये और भोजन के लिए बैठ गये। सुजाता ने भोजन परोसा और सामने बैठ गयी। अब कहोड़ मुनि ने बात छेड़ी।

"भार्ये ! तुम कुछ कहना चाह रही थीं ? अब कहो, बात क्या है ?"

तनिक लज्जा व संकोच प्रकट करती हुई सुजाता बोली—"आर्य ! आप तो जानते ही हैं कि हर पत्नी की पहली इच्छा मातृत्व की होती है। तब मैं यही निवेदन करना चाह रही थी, किन्तु एक शर्त भी है।" इतना कहकर सुजाता रुक गई।

"शर्त ! शर्त कैसी ?" ऋषि प्रवर ने आश्चर्य प्रकट किया।

"अत्यन्त छोटी है। मैं एक सामान्य सन्तान नहीं, तेजस्वी व मेधावी सन्तति चाहती हूँ।"

ऋषि हल्के-से मुसकराये, बोले—"भद्रे ! यह 'शर्त' शब्द जितना छोटा दीखता है अनुबन्ध उतना छोटा है नहीं। इसके लिए हम दोनों को जीवन साधना की कठिन तपश्चर्या करनी पड़ेगी, तभी ऐसा संभव है। बोलो तैयार हो। अपना व्यक्तित्व गंगा जैसा निर्मल और समुद्र जैसा शान्त बना सकोगी ? अन्तस् की महानता हिमालय जैसा विशाल बनाने की दृढ़ता है ? स्वयं के लिए कठोर और दूसरों के लिए उदार बनने की सामर्थ्य रखती हो ? बोलो, यदि इतना कर सको, तो मैं तैयार हूँ, अन्यथा एक पक्षीय प्रयास वह परिणाम प्रस्तुत न कर सकेगा, जिसकी आशा सँजोये बैठी हो ?"

स्वीकृति में सुजाता का सिर हिल गया। "ठीक है, तो आज और अभी से यह जीवन साधना आरम्भ कर दो।" ऋषि कह रहे थे—"मैं भी शुरू कर रहा हूँ।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चार साल बीत गये। दोनों ने अध्ययन-अध्यापन का नियमित कार्य और गृहस्थ जीवन का भली-भाँति निर्वाह करते हुए संयमपूर्वक व्यावहारिक जीवन में इतनी कठिन तपश्चर्या सम्पन्न की, कि स्वल्प अवधि में ही लहलहाती फसल के लिए अत्यन्त उर्वर भूमि तैयार हो गई।

उपयुक्त समय में, उपयुक्त फसल जब उपयुक्त भूमि में बोयी जाती है, तभी वह किसान के अन्तःकरण को गुदगुदा पाती और धन-धान्य से निहाल करती है।

ऋषि-दम्पत्ति के लिए अब ऐसा ही अवसर उपस्थित हो चुका था। उन्होंने अपने चरित्र, चिन्तन और व्यवहार को तपा-तपा कर ऐसे स्थायी और सुगढ़ ढाँचे में ढाल लिया था, कि जिसके वासन्ती बयार से शिष्यगण भौंरों की भाँति उमड़े चले आ रहे थे। दिन-प्रतिदिन उनकी संख्या बढ़ती ही चली जा रही थी और मलयानिल की तरह दम्पत्ति के सुमधुर आचरण की सुगन्ध का प्रसार भी विस्तृत होता जा रहा था। फलतः देर रात तक उन्हें अध्ययन सम्बन्धी कठिन परिश्रम करना पड़ता।

दोनों प्रसन्न थे कि उन्होंने सुसंतति प्राप्ति के लिए स्वयं को वांछित ढाँचे में ढाल लिया और गद्‌गद इसलिए हो रहे थे, कि शिष्यगणों की बढ़ती संख्या में उस यथार्थता पर प्रामाणिकता की मुहर लगा दी, जिसके लिए मुनि-दम्पत्ति का मन शंकाग्रस्त बना रहता था कि पता नहीं खरे सोने की-सी प्रखरता उनके व्यक्तित्व में आ पायी या नहीं, किन्तु अब संशय करने जैसी कोई बात थी ही नहीं। जब कंगन कलाई में हो, तो उसे निहारने के लिए दर्पण की क्या आवश्यकता है ?

सुजाता गर्भवती हुई। एक दिन जब मुनि कहोड़ अपने शिष्यों को पढ़ा रहे थे, तो उनकी सहायता के लिए पत्नी भी पास ही बैठी थीं। इससे तीन कार्य सम्पन्न होते थे—ऋषि का भार कुछ हल्का होता था, क्योंकि उन्होंने सुजाता को इतना पढ़ा दिया था कि प्रारम्भिक शिक्षा वह शिष्यों को दे सके, दूसरे वह स्वयं भी अपना ज्ञानवर्धन करती थीं, तीसरे गर्भ में पलते भ्रूण पर इसका अनुकूल प्रभाव पड़ता था। इन्हीं सब बातों पर विचारकर वह अध्यापन के समय सदा उपस्थित रहती थी।

उस दिन भी इन्हीं कारणों से वहाँ मौजूद थी। आचार्य शिष्यों को पढ़ा रहे थे। शिष्य ध्यानपूर्वक उन्हें सुनते और हृदयंगम करते जा रहे थे, किन्तु बीच-बीच में आचार्य के कानों से एक तीखी-सी आवाज टकरा जाती, मानो कोई कुछ प्रश्न कर रहा हो। कुछ समय तक तो वह उसे अपने कानों का विभ्रम समझते रहे, परन्तु जब थोड़े-थोड़े समय के पश्चात् लगातार यह ध्वनि उठने लगी तो वह तनिक सावधान हुए। ध्यान से सुनने पर पाया कि कोई अत्यन्त धीमे स्वर में कह रहा था—**"सर्वारात्रिमध्ययनम् करोषि नेदं पितः सम्यगिवोपवर्तते।"** अर्थात् पिताजी आप देर रात तक अध्ययन करते रहते हैं, फिर भी उच्चारण और अध्यापन सम्बन्धी यह त्रुटि क्यों ? ऐसा न करें।

मुनि और शिष्यों ने इधर-उधर देखा, किन्तु आस-पास कोई दिखाई नहीं पड़ा। फिर मेरे अध्यापन को त्रुटिपूर्ण बताने वाला दुस्साहसी कौन है ? आचार्य को कुछ समझ में नहीं आ रहा था। अचानक उनका ध्यान सुजाता की ओर खिंच गया। ध्यान से सुना तो पता चला कि स्वर पत्नी के गर्भ में पलते शिशु से आ रहा है। रहस्य अब सुजाता की भी समझ में आ गया। पति-पत्नी की आँखें चार हुईं ? वे खुशी से फूले न समा रहे थे कि इतना प्रतिभावान शिशु कि पिता की भी गलतियाँ निकालने लगे, जबकि वह अभी गर्भ से बाहर भी नहीं आया।

मगर देर तक कहोड़ की यह प्रसन्नता बनी न रह सकी। उन्हें जब शिष्यों की उपस्थिति का भान हुआ, तो भृकुटियाँ तन गईं। गर्भस्थ शिशु ही पिता के अध्यापन को दोषपूर्ण बताये यह अपमान वे तनिक भी बर्दाश्त न कर सके। उन्होंने शाप दे डाला "अरे दुस्साहसी ! तेरी यह हिम्मत। तुमने अभी जन्म भी नहीं लिया और पिता में ही त्रुटि निकालने लगे। मैं तुम्हें शाप देता हूँ—तू आठ अंगों से टेढ़ा पैदा होगा।"

सुजाता ने सिर पीट लिया। सजल नेत्रों से कहा—"हा ! आर्य ! यह आपने क्या कर डाला ? अपने प्रतिभावान् पुत्र को शाप दे दिया।"

क्रोध से काँपते ऋषि ने कहा, "उद्दण्ड को उद्दण्डता का दण्ड मिलना ही चाहिए। हमने जो कुछ किया, उचित ही था।"

अपने भाग्य को कोसते, रोते, पछताते सुजाता कुटिया के अन्दर चली गई और भारी मन से एक कोने में बैठकर सोचने लगी—"प्रभु ! यह आपने किस पाप का बदला मुझसे लिया ! प्रतिभावान संतान की इच्छा पूरी की, तो वह भी शापित विकलांग। यदि यही नियति व आपकी मर्जी थी, तो हम दोनों से इतनी तपश्चर्या क्यों करवायी ?" सोच-सोच कर वे दुःखी होने लगीं। "आर्ये !" अकस्मात् के संबोधन से उसकी तन्द्रा टूटी। आँखें ऊपर उठायीं, तो सामने पतिदेव खड़े मिले, कहा—"दुःख मत करो देवि ! हमें भी इस घटना से उतना ही क्षोभ हुआ है, जितना तुम्हें। क्रोधवश यह भूलकर डाली, पर इसका उपाय भी मुझे स्पष्ट दीख रहा है।" त्रिकालदर्शी कहोड़ शून्य में निहारते हुए बोले, "अपना पुत्र आठ अंगों से टेढ़ा उत्पन्न अवश्य होगा, पर शाप का यह कलंक उसे अधिक दिनों तक ढोना नहीं पड़ेगा। दण्डी नामक पंडित को पराजित कर वह जब मुझे मुक्त करेगा, तो मेरे आशीर्वाद से समंगा नदी में स्नान करने से उसका टेढ़ापन जाता रहेगा। तब वह एक स्वस्थ, सुन्दर प्रतिभावान युवक के रूप में तुम्हारे सामने होगा।"

हुआ भी ऐसा ही। अष्टावक्र का टेढ़ापन कुछ काल पश्चात् समाप्त हो गया और उनकी अद्‌भुत विद्वता व प्रतिभा की चर्चा दिग्-दिगंत में छा गई। जीवन-साधना का प्रत्यक्ष प्रतिफल अष्टावक्ररूपी विभूति के रूप में ऋषि-दम्पत्ति को मिल चुका था। यही उनकी अदम्य इच्छा भी थी।

जीवन-दान

महाकवि माघ आज कंगाल हो गये। कल तक वे ३६ हजार मणियों वाले रत्नहार के स्वामी थे, आज वह हार भी नहीं बचा। पिता ने अपार सम्पत्ति उत्तराधिकार में दी थी। उन्हें मालूम था माघ की करुणा समुद्र की तरह अगाध है। वह दुःखियों के दुःख नहीं देख सकता, पीड़ितों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की पीड़ा नहीं देख सकता। वह अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति, सम्पूर्ण योग्यताओं को राष्ट्र की सम्पत्ति मानता है। इसलिये जो भी अभावग्रस्त उसके द्वार आता है, माघ उसे खाली हाथ जाने नहीं देता। कोई दुःखी रहा हो, माघ को उसका वृत्तान्त मिला हो और तत्काल सहायता न पहुँची हो ऐसा एक भी क्षण माघ के जीवन में नहीं आया। यह सोचकर ही कम सुरक्षित बना रहता और उसे जीवनभर उदरपोषण की समस्या से मुक्त बनाये रखता। किन्तु पिता की वह आशा निष्फल ही गई।

श्रीमाल (माघ की जन्मभूमि) का अकाल इस सीमा तक बढ़ा कि लोगों के भूखों मरने की नौबत आ पहुँची। माघ की करुणा ने सीमा तोड़ दी। उसने कहा—"सम्पूर्ण देश जब क्षुधा, अत्याचार या महामारी की किसी ज्वाला में जल रहा हो, उस देश के प्रबुद्ध और साधन सम्पन्न व्यक्ति को चुप नहीं रहा जा सकता। सो उसने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति के साथ-साथ, पिता की दी वह माला भी राष्ट्र और भूख से पीड़ितों के सहायतार्थ दान कर दी।

जिस प्रकार गुण और सज्जनता से विमुख हुए के पास से यश और समृद्धि भाग जाते हैं, वैभव क्षीण हो जाने पर उसी प्रकार माघ के पास आने वाले याचकों और अतिथियों का आवागमन भी बन्द हो गया। अब माघ के पास उनकी सहधर्मिणी विद्यावती के अतिरिक्त और यदि कोई था तो वह अन्तःकरण में कर्तव्यपालन का सन्तोष, मुख पर आत्म-भाव का प्रकाश और वह महाकाव्य जिसमें माघ ने मानव-जीवन के प्रेरक प्रसंगों को सजा-सजा कर रखा था।

अभावग्रस्त स्थिति में आत्म-विकास और लोक-कल्याण के मार्ग में बाधा पड़ती देखकर माघ चिन्तित हो उठे। उन्होंने अपनी धर्मपत्नी से पूछा—"भद्रे ! ऐसी स्थिति में क्या यह उचित न होगा कि हम लोग किसी ऐसे स्थान पर चलें, जहाँ आजीविका का प्रबन्ध हो सके और अपनी रुकी हुई साधना का क्रम फिर चल उठे। श्रीमाल के पीड़ितों का दर्द मुझे अब भी असह्य हो रहा है, जब तक मेरे कानों में प्रजा के दुःख के समाचार पहुँचते रहेंगे, तब तक मुझे शान्ति न मिलेगी।"

आर्य ठीक कहते हैं स्वामी ! माघ की विदुषी पत्नी विद्यावती ने उसी गम्भीरता से उत्तर दिया—"व्यक्ति को भगवान ने और नहीं तो सम्पूर्ण क्षमताओं से परिपूर्ण शरीर दिया है। जब तक शरीर रहे, तब तक हम साधनों का अभाव क्यों अनुभव करें। क्यों न कहीं अन्यत्र चलकर वर्तमान परिस्थितियों से छुटकारे का मार्ग ढूँढ़ निकालें।"

माघ और उनकी धर्मपत्नी दोनों चल पड़े। उन दिनों उज्जैन के महाराज भोज भारतीय कला और संस्कृति के उत्थान के लिये प्राण-प्रण से जुटे हुए थे। सरस्वती पुत्र भोज के राज-दरबार में पांडित्य को बड़ा-सम्मान दिया जाता था। पैदल-यात्रा करते हुए माघ और उनकी धर्मपत्नी मालव पहुँचे। उन्होंने राजा भोज के विषय में बहुत कुछ सुना था, सो आजीविका की आशा से उन्होंने अपनी पत्नी विद्यावती को भोज के दरबार में भेजा। महाकाव्य साथ में लेकर विद्यावती सम्राट् भोज के समक्ष उपस्थित हुईं और उस पुस्तक के गिरवी रखने का निवेदन किया।

भोज ने महाकाव्य उठाया। यों ही देखने के लिये उन्होंने एक पृष्ठ खोला। एक बहुत भावपूर्ण श्लोक सामने आया, जिसमें प्रकृति और परमेश्वर की विलक्षणता बड़े मार्मिक शब्दों में प्रतिपादित की गई थी। भोज उसे देखकर अति प्रसन्न और प्रभावित हुए, कोषाध्यक्ष को एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ पारितोषिक देने का आदेश देकर उन्होंने महाकाव्य अपने पास रख लिया।

विद्यावती जब अतिथि-गृह छोड़कर निकलीं, तो उन्होंने देखा वहाँ भी अकाल की छाया घिरी हुई है। हजारों याचक उनके पीछे लगे गये। पति के आदर्शों का अन्तःकरण से पालन करने वाली माघ की धर्मपत्नी का हृदय उस समय इस तरह विह्वल हो उठा, जिस तरह किसी माँ का हृदय अपने बहुत दिन के बिछुड़े हुए पुत्र को देखकर हो उठता है। उनके मस्तिष्क में आया—"जब सारी प्रजा दुःख और पीड़ा से ग्रस्त हो तो साधनों का, चाहे कितने ही परिश्रम से कमाये गये हों, संग्रह नहीं होना चाहिये।" निदान, उन्होंने वह धन भी बाँटना प्रारम्भ कर दिया।

मार्ग में जो भी भूखा मिला उसे अन्न लेकर दिया। जो भी पीड़ित और कराहता हुआ मिला, उसे ओषधि दिलवाई। वस्त्र-हीनों को वस्त्र और याचकों को धन बाँटती हुई, विद्यावती जब माघ के पास पहुँची, तब तक प्राप्त की हुई सम्पूर्ण स्वर्ण मुद्राएँ भी समाप्त हो गईं। विद्यावती गई थीं तब तो उनके पास महाकाव्य भी था पर लौटीं तो हाथ बिल्कुल खाली थे। महाकवि माघ ने विद्यावती से सारा वृत्तान्त सुना तो उनका हृदय धर्मपत्नी के इस आदर्श पर गद्गद् हो उठा। उनकी आँखों से प्रेमाश्रु फूट निकले।

अभी वे इस असमंजस में थे कि विद्यावती का स्वागत और सम्मान किस प्रकार करें, तभी याचकों की एक नई टोली वहाँ आ पहुँची। उन्हें कई दिनों से खाने को भी नहीं मिला था। माघ ने अपने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। कुछ दिखाई न दिया। निराशा हाथ लगी। पास में कुछ भी तो नहीं था, जिस देकर वे याचकों को सन्तुष्ट करते। गीली आँखें और भी गीली हो उठीं। आँखों से दुःख के आँसू झर-झर झरने लगे।

महाकवि माघ की अश्रुसिक्त मुद्रा देखकर भिक्षुक समझ गये, अब इनके पास कुछ नहीं रहा, सो वे चुपचाप लौट पड़े। याचकों के लौटते ही माघ की करुणा सरिता बहकर फूट निकली, माघ के मुख से विह्वल वाणी फूटी—"मेरे प्राणो ! देख रहे हो याचक द्वार से खाली हाथ लौट रहे हैं, तुम और कुछ नहीं दे सकते पर इनकी सहायतार्थ इनके साथ तो जा सकते हो। धन से न सही, संभव है प्राणों से ही उनकी सेवा करने का सौभाग्य मिल जायें। ऐसा सुन्दर अवसर फिर कब मिलेगा ?"

और इन अन्तिम शब्दों के साथ ही महाकवि की जीर्ण काया एक और लुढ़क गई। चेतना ने अपने पैर समेट लिए और अनन्त अन्तरिक्ष में न जाने कहाँ विलीन हो गये ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अभेद मन्त्री

दूध ने पानी से कहा—"बन्धु ! किसी मित्र के अभाव में मुझे सूना-सूना अनुभव होता है। आओ, तुम्हीं को हृदय से लगाकर मित्र बनाऊँ।"

पानी ने उत्तर दिया—"भाई तुम्हारी बात तो मुझे बहुत अच्छी लगी, पर यह विश्वास कैसे हो कि अग्नि परीक्षा के समय भी तुम मेरे साथ रहोगे।"

दूध ने कहा—"विश्वास रखो। ऐसा ही होगा।"

और दोनों में मित्रता हो गई। ऐसी मित्रता कि दोनों के स्वरूप को अलग करना कठिन हो गया।

अग्नि नित्य परीक्षा लेकर पानी को जला देती है पर दूध है कि हर बार मित्र की रक्षा के लिये अपने अस्तित्व की भी चिन्ता न करते हुए जलने को प्रस्तुत हो जाता है।

(१) अपने पारिवारिक जीवन में दूध की तरह जो पारस्परिक विश्वास रखते हैं, उन्हीं का जीवन धन्य है।

(२) मित्र के लिए सहर्ष कष्ट सहना ही सच्ची मित्रता का द्योतक है।

आवश्यकता को प्राथमिकता

एक था किसान और उसकी धर्म पत्नी। किसान कुछ काहिल स्वभाव का था। दिन भर में चार बार खेतों से लौटकर आता और पत्नी से बार-बार कुछ न कुछ खाने को माँगता। पत्नी भी उसी तरह ढील-ढाले कुछ इधर-उधर से खाने पीने को दे देती कोई तत्परता या बड़ा प्रेम-भाव वह न दिखाती। इससे किसान में अपनी पत्नी से कुछ खटपट बनी रहती।

किसान ने अपने मित्र को यह बात बताई। मित्र ने उसके कान में कुछ कहा और वहाँ से विदा हो गया, पर किसान बड़ा प्रसन्न दिखाई दे रहा था। कोई काम की बात समझ में आ गई लगती।

दूसरे दिन किसान बड़े तड़के खेतों पर चला गया। दोपहर तक खेतों में घनघोर परिश्रम करता रहा—न पसीने से परेशानी, न भोजन की चिन्ता। सूर्यदेव सिर पर आ गये तो भी उसने काम बन्द नहीं किया। वह घर भी नहीं गया, तभी वह देखता है कि उसकी धर्म-पत्नी ताजा भोजन लिये वहाँ जा पहुँची और आग्रहपूर्वक बोली, "आप थक गये होंगे लीजिये पहले भोजन कर लीजिये।" आग्रह ही नहीं आज तो उसकी आँखों में पति के लिये अपार स्नेह भाव झलक रहा था।

किसान हाथ-पैर धोकर भोजन के लिये बैठा, तो मुसकराते हुए बोला—"प्रिये ! तुमने इससे पहले कभी इतना ध्यान नहीं दिया। आज क्या बात हो गई ?"

धर्म पत्नी कुछ गम्भीर होकर बोली—"स्वामी ! आप यह भी नहीं जानते कि आवश्यकता को प्राथमिकता दी जाती है पहले आपको भोजन की इतनी आवश्यकता न होती थी, जितनी आज है।"

अपने सुधार द्वारा साथी के गुण कर्म स्वभाव में भी परिष्कार संभव है।

अभिभावक भी हो सकता है

दक्षिण अफ्रीका के फिनिक्स आश्रम के विद्यार्थियों को गाँधीजी कई-कई दिन का अस्वाद व्रत कराते थे। कुछ विद्यार्थी पहले तो लम्बा व्रत ले लेते और बाद में उनका संकल्प कमजोर पड़ने लगता। ऐसे विद्यार्थियों को वे कड़ाई से नियम पालन करने के लिए कहते।

एक बार देवदास गाँधी आठ दिन का अस्वाद व्रत लेकर बीच में ही तोड़ने लगे। नमक पड़ी कढ़ी बनी थी और वे उसके लिये अड़ बैठे। गाँधीजी ने लाख मनाया पर माने नहीं। बल्कि रोने लगे। गाँधी जी ने विचार किया वे भी तो कुछ दिन पहले देवदास की तरह ही संकल्प तोड़ देते थे। बेटे का क्या दोष ? दोष मेरा है। मुझे दण्ड मिलना चाहिये अतः वे जोर जोर से अपने ही गालों पर तमाचे मारने लगे—"देवदास यह मेरी ही भूल का परिणाम है जो तू यों मचल रहा है। सजा तुझे नहीं, मुझे भोगनी चाहिये।"

गाँधीजी के इस व्यवहार का देवदास पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे अपने व्रत पर दृढ़ हो गये।

(१) सन्तान के चारित्रिक दोषों के लिए अभिभावक भी उत्तरदायी है।

(२) विवेकपूर्ण व्यवहार के द्वारा ही सन्तान का सुधार और निर्माण सम्भव है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

दोष और पतन

पाप का बाप

तीन शूरवीर कहीं किसी कार्य वश जा रहे थे। रास्ते में उन्होंने देखा कि एक यात्री को रास्ते में किसी ने मार कर डाल दिया है। इस घटना पर दुःखी होते हुए वे आगे चले जा रहे थे कि एक विधवा स्त्री दिखाई पड़ी, जिसका सारा धन-धान्य दूसरे लोगों ने छीन लिया था और उसे मारपीट कर घर से भगा दिया था। इस घटना से भी उन्हें बड़ा कष्ट हुआ। आगे चलकर देखते हैं कि बाधक लोगों ने बहुत से निरपराध पशु-पक्षियों को मार-मार कर इकट्ठा कर लिया है। इससे आगे चले तो देखा कि एक किसान का परिवार झोंपड़ी से बाहर पड़ा हुआ बिलख-बिलख कर रो रहा है और जमींदार के आदमी लगान के लिए उसके बर्तन कपड़े तक उठाये ले जा रहे हैं और उन्हें बार-बार मार पीट रहे हैं।

इन घटनाओं को देखकर उन तीनों का दिल पिघल गया और वे एक स्थान पर बैठकर सोचने लगे कि दुनिया में इतना पाप कैसे बढ़ता जा रहा है ? जिसके कारण लोग इस प्रकार दुःखी हो रहे हैं। उन्होंने विचार किया कि अपने कार्य को तो पीछे पूरा कर लेंगे, पहले इस बात का पता लगावें कि यह पाप कहाँ से उत्पन्न होता है ? इसका पिता कौन है ? तब इस पाप को हटा देंगे ? तीनों इस बात पर सहमत हो गये और पाप के उत्पत्ति स्थान का पता लगाने के लिए चल दिये।

कितने ही दिनों तक वे निरन्तर अपनी खोज में आगे बढ़ते गये पर कुछ पता न लगा। एक दिन उन्होंने एक बड़े अनुभवी और वृद्ध पुरुष को देखा। थके हुए तो थे ही, उन्होंने सोचा कि शायद इसे पता होगा। उन सबने उस वृद्ध पुरुष से बड़ी प्रार्थना की, कि वह उन्हें पाप के बाप का पता बता दें। वृद्ध ने उँगली का इशारा करते हुए पर्वत की एक गुफा दिखाई और कहा—"देखो, उस कन्दरा में पाप का बाप रहता है। पर सावधान ! वह तुम्हें भी पकड़ न ले।" तीनों मित्र बड़े साहसी और अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित थे। उन्होंने निश्चय किया कि ऐसे अधर्मी को दण्ड देना हम क्षत्रियों का धर्म है इसलिए चलते ही उसे मार डालेंगे जिससे पाप होने ही न पावे।

गुफा में पहुँचकर उन्होंने देखा कि वहाँ सोने के बड़े-बड़े ढेर लग रहे हैं। मनों सोना इधर-उधर पड़ा हुआ है और कितनी ही चट्टानें ऐसी हैं, जिनमें से हजारों मन सोना निकल सकता है। अब वे अन्य सब बातों को तो भूल गये और इस सोच में पड़े कि इस सोने को घर कैसे ले जाना चाहिए ? तय हुआ कि दिन में कोई देख लेगा, इसलिए रात को इसे ले चलना ठीक होगा। इस समय भोजन करें और सुस्ता लें। एक पहर रात हो जाने पर चल देंगे। यह निश्चय हो जाने पर दो साथी भोजन सामग्री लेने चल दिये और तीसरा वहीं गुफा पर बैठकर अन्य व्यवस्थाएँ करने लगा।

अब तीनों के मन में सोने का लालच सवार हुआ और वे सोचने लगे कि यह बाकी दो मर जावें तो सारा सोना उसे ही मिल जावे। जब लोभ बढ़ने लगा तो पाप उनके मनों में उदय हो आया। जो दो साथी भोजन लेने के लिए जा रहे थे उनमें से एक ने दूसरे के ऊपर तलवार से हमला किया और उसे रास्ते में ही मारकर छिपा दिया और खुशी-खुशी आगे बढ़ा। जो भोजन-सामग्री लाया था उसमें उसने तीसरे साथी के लिए जहर मिला दिया, जिससे इसे खाकर वह मर जावे। तीसरा उनका भी गुरु था उसने एक-एक करके उन दोनों को मार डालने का इरादा अलग ही पक्का कर लिया था। जो साथी भोजन लाया था उसी ने बनाया भी, ताकि वह दूसरे के लिए जहर मिला सके। जब भोजन बनकर तैयार हो गया तो तीसरे ने पीछे से उसके ऊपर छुरी से हमला किया और उसे वहीं ढेर कर दिया। अब वह अकेला बच रहा था और यह सोचकर बहुत प्रसन्न था कि सारा सोना मुझे ही मिल जायेगा। उसने भर पेट भोजन किया, किन्तु भोजन से जैसे ही निवृत्त हुआ उसके हाथ-पैर इठने लगे और वहीं थोड़ी देर पैर रगड़ कर मर गया।

धन का आकर्षण बड़ा जबरदस्त है। जब लोभ सवार होता है, तो मनुष्य अन्धा हो जाता है और पाप-पुण्य में कुछ भी फर्क नहीं देखता। पैसे के लिए वह बुरे-से-बुरे कर्म करने पर उतारू हो जाता है और स्वयं भी उस पाप के फल से नष्ट हो जाता है। जो व्यक्ति पाप से बचना चाहते हैं, उन्हें लोभ से सावधान रहना चाहिए जब लालच के अवसर आवे तो बुद्धि को सतर्क रखना चाहिए कि मन कहीं ललचा न जावे। लोभ आते ही पाप की भावनाएँ बढ़ती हैं, क्योंकि पाप का बाप लोभ। बाप के पीछे बेटा भी आता है। अन्यायपूर्वक द्रव्य लेने का इच्छा को लोभ कहते हैं।

दुष्टता का उपचार दुष्टता तो नहीं है

तपस्या से देवाराधना एवं सिद्धियाँ माँगते रहने का क्रम देव-असुरों से लेकर सामान्य मनुष्यों तक अनवरत चलता आया है। सुपात्रों को उनकी अंतःकरण की पवित्रता, धारण करने की सामर्थ्य के अनुसार भगवत् सत्ता वरदान देती आयी है। यह क्रम भी अनुशासित विधि व्यवस्था के क्रिया-कलापों का ही एक अंग है—पूर्णतः सुनियोजित एवं कर्मफल व्यवस्था पर आधारित। अनुदान फलित भी तभी होते हैं, जब साधक सभी अनिवार्य शर्तों को पूरा करता हो।

एक तपस्वी सिद्धपुरुष थे। उन्होंने ब्रह्मा की आराधना की। कड़ी तपस्या से उन्होंने प्रजापति—देवाधिपति को प्रसन्न कर लिया। वर माँगने और देने का प्रसंग आया तो सिद्ध ने अनुरोध किया कि भगवन् ! मुझे आपसे कुछ भी नहीं चाहिए। मात्र प्रातःकाल मुझे नित्य ध्यान के समय निमिष मात्र को दर्शन दे जाया करें। साथ ही जब कभी

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संकट काल में, विपत्ति के समय में आपका स्मरण करूँ तो भी सहायता करने के लिए पधार आया करें। ब्रह्मदेव ने शर्त स्वीकार करली एवं वे प्रतिदिन प्रातः काल सिद्ध के पास दर्शन देने के लिए आने लगे। सिद्ध कृतार्थ हो गया।

एक दिन एक असाधारण घटना घटी। उनका दुष्टों से तो कभी पाला नहीं पड़ा था अतः शरीर बलवाला क्षेत्र उनका कमजोर था। एक दुष्ट चोर संत की झोंपड़ी में घुस आया। उनकी झोंपड़ी का सारा सामान बटोरकर जाने लगा। साथ ही उन्हें बुरी-बुरी गालियाँ सुनाने और गंदे आक्षेप लगाने लगा। सामान तो ऋषि के पास था ही क्या? दुःख उसके जाने का नहीं था। बुरी-बुरी गालियाँ-आक्षेप सुनने पर क्रमशः वे धीरज खो बैठे। नशे में उन्मत्त वह व्यक्ति उनके समझाने पर सुनता तो क्या, गुत्थम-गुत्था और हो गया। शरीर से बलवान दुष्ट, दुर्बल काया वाले संत पर हावी हो गया। इस द्वन्द्व युद्ध में दुष्ट का पलड़ा भारी रहा, संत की जमकर पिटाई हुई। दुःखी मन से सिद्ध ने अपने देवता ब्रह्मदेव का आह्वान किया, गुहार की, सहायता के लिए पुकारा, बड़ी देर प्रतीक्षा में बीत गए पर कोई मदद को न आया।

सिद्ध पुरुष को बड़ा धक्का लगा। एक तो पिटाई से शरीर का अंग-अंग पीड़ा दे रहा था। मन और भी दुःखी था। वे मन ही मन देवता को वचन भंग का दोष देकर कटु शब्द कहने लगे। आवेश में व्यक्ति को ध्यान भी तो नहीं रहता कि वह क्या कह रहा है? वे बड़बड़ाते रहे—"व्यर्थ है ऐसी तपस्या व वरदान, जिसमें मौका पड़ने पर तो देवता दर्शन न दें, सहायता न करें।" दिन भर इसी प्रकार आकुल-व्याकुल बने रहे।

दूसरे दिन नित्यक्रमानुसार ब्रह्मदेव सिद्ध पुरुष को दर्शन देने आए। उनके आने की देर भर थी कि साधक ने लाँछनों की झड़ी लगा दी। वचन भंग करने, वरदान के व्यर्थ होने व आपत्ति के समय सहायता न करने का दोष दिया।

शान्तिपूर्वक सारी बातें सुनते हुए प्रजापति ब्रह्मा बोले—"मैं दिव्य दृष्टि से सब कुछ देख रहा था। बहुत देर तक असमंजस रहा कि आप दोनों में कौन दुष्ट है? व कौन भक्त? क्रोध में दोनों ही आपे से बाहर हो रहे थे। सूझ नहीं पड़ रहा था कि किसे बचाया जाय, किस पर प्रहार किया जाय? आवेशग्रस्त स्थिति में दोनों को देखते हुए मैंने न आने का निर्णय लिया। गलत प्रहार से बचाव करना भी तो अनुचित होता?"

संत विचार मग्न हो गए। देव उन्हें सोचते हुए छोड़कर अन्तर्द्धान हो गए। संत गहराई में गए। दोष उन्हें अपना ही प्रतीत हुआ। किसी भी हालत में उन्हें शालीनता को नहीं छोड़ना चाहिए था। दुष्ट के दुर्व्यवहार का उपचार मनःसंतुलन बनाये रखकर भी तो किया जा सकता था। आत्मबल-मनस्विता द्वारा भी उस पर विजय पायी जा सकती थी। अहिंसा बरतते हुए भी समझाने से लेकर सुधारने तक के अन्यान्य प्रयत्न किये जा सकते थे। उन्हें एक नयी दिशा मिली और व्यक्तित्व का दर्शन भी भलीभाँति समझ में आ गया।

अभिनन्दनीय काया नहीं, कृत्य हैं

उन दिनों दास प्रथा यूनान में भी जोरों पर थी। कितने ही व्यापारियों की गुलामों की खरीद बिक्री करने का स्वतन्त्र धन्धा था। उसमें बैठे-बैठे वे एक बड़ी रकम प्राप्त कर लेते तथा ऐशो आराम की जिन्दगी व्यतीत करते थे। एक दिन खरीद में एक व्यापारी के हाथ ऐसा गुलाम पड़ा जो अत्यन्त दुबला-पतला तथा दीखने में बेहद् कुरूप था। प्रायः गुलामों की कीमत उनके शारीरिक गठन के आधार पर लगायी जाती थी। जो जितना कमजोर तथा बदसूरत होता था, उसकी कीमत उतनी ही कम लगती थी।

उस व्यापारी को वह गुलाम कौड़ी के मोल प्राप्त हुआ था। बेचने वाले ने सोचा चलो बला टली जो थोड़ी रकम मिल गयी सो अच्छा। खरीदने वाले ने सोचा बेमोल यह सौदा घाटे का नहीं। पर उसे अपनी भूल तब मालूम हुयी जब बाजार में कोई भी उस गुलाम को खरीदने को तैयार न हुआ। जो भी उसकी आकृति को देखता, नाक भौं सिकोड़ता और सस्ती से सस्ती कीमत में भी लेने को तैयार न होता। सिर पर आयी बला को टालने के लिए व्यापारी ने एक नीति अपनायी। नीलामी बाजार में उसने शर्त रखी कि जो भी मेरे दो गुलामों को खरीदेगा, उसे एक गुलाम मुफ्त दिया जायेगा। वह कुरूप गुलाम ही था जिसे शीघ्रातिशीघ्र व्यापारी अपने यहाँ से हटाना चाहता था।

एक दूसरे व्यापारी ने गुलामों की समझदारी जानने के लिए उन दो से प्रश्न पूछे। प्रायः मालिक के रटे रटाये शब्द ही गुलाम उत्तर में देते थे। "कौन-कौन से काम कर लेते हो?" यह पूछे जाने पर एक गुलाम बोला, "कुछ भी।" दूसरे ने जबाव दिया सब कुछ। तीसरे से वह प्रश्न उसने पूछा तो कुरूप अशक्त गुलाम ने उत्तर दिया आप स्वयं सोचें इन दोनों के करने के बाद बचता ही कौन-सा काम है जो मैं करूँ? व्यापारी विचारशील था। उसे दो गुलामों की अपेक्षा तीसरा अधिक समझदार जान पड़ा। दो की कीमत देकर तीसरे को मुफ्त में प्राप्त करके वह चलता बना।

दिन भर वह कठोर श्रम करता। जो थोड़ा समय बचता उसे यों ही नहीं गँवाता उसकी कल्पना शक्ति दौड़ लगाती। अपने मन में वह छोटी-छोटी कहानियाँ बनाता जो बोधगम्य रहतीं पर प्रत्येक शिक्षाप्रद होती थीं। प्रायः वे जीव-जन्तुओं को लेकर रची गयी होतीं। उन कहानियों को वह आस-पड़ोस के बच्चों को बड़े चाव से सुनाता। धीरे-धीरे उसके पास बच्चों की भीड़ बढ़ने लगी, ख्याति अभिभावकों तक फैली। सच्चाई को परखने के लिए खाली समय में अभिभावक भी उसकी कहानियाँ सुनने आते। प्रेरक, रोचक लगने पर वे दूसरे को बताते। इस तरह एक से अनेक तक उस कुरूप गुलाम की ख्याति फैलती गयी। पर वह सब वह मालिक का काम करने के बाद खाली बचे अतिरिक्त समय में करता था।

चर्चा राज दरबार में जा पहुँची। एक बार एक प्रश्न ऐसा उपस्थित हो गया था, जिसका हल निकाले नहीं निकल रहा था। राज दरबार के सभी कर्मचारी परेशान थे। गुलाम की सूझ-बूझ की खबर राजा को मिल चुकी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

थी। किसी ने उसे बुलाने का परामर्श राजा को दिया। एक दूत जाकर उसे पकड़ लाया। प्रश्न का सही हल जिस सूझ-बूझ के साथ उसने प्रस्तुत किया राजा को भी उसकी विद्धता का लोहा मानना पड़ा। उसकी विनयशीलता तथा दूरदर्शिता को देखकर राजा ने उसे गुलामी से मुक्त कराकर अपने यहाँ परामर्शदाता का विशेष सम्मानीय पद प्रदान किया। उस पद पर रहते, काम करते हुए भी वह कहानियाँ बनाकर राज दरबार में सुनाता रहा।

राज्य के कुछ वरिष्ठ कर्मचारियों को उसकी बढ़ती ख्याति से ईर्ष्या हुई। एक दिन उसकी अनुपस्थिति में उन्होंने राजा के कान भरे, उसके ऊपर अनेकों आरोप लगाये उनकी बातों में आकर राजा ने गुलाम को फाँसी लगवा दी, पर अपनी भूल का पता उसे बाद में लगा। तब मात्र उसकी स्मृतियाँ शेष थीं। ईशप के नाम से विख्यात यह वही गुलाम था, जिसकी नीति युक्त, प्रेरक कथाओं का अनुवाद विश्व की अनेक भाषाओं में हुआ। अपने गुणों के आधार पर महान् बना, वह युगों तक स्मरणीय रहेगा।

पाप का प्रलोभन

एक ब्राह्मण देवता दरिद्रता के कारण बहुत दुःखी होकर राजा के यहाँ धन याचना करने के लिए चल दिये। कई दिन की यात्रा पार करके वे राजधानी पहुँचे और राजमहल में प्रवेश करने की चेष्टा करने लगे।

उस नगर का राजा बहुत चतुर था। वह दृढ़ निश्चयी और सच्चे ब्राह्मणों को ही दान दिया करता था। सुपात्र कुपात्र की परीक्षा के लिए राजमहल के चारों दरवाजों पर उसने समुचित व्यवस्था कर रखी थी।

ब्राह्मण देवता ने महल के पहले दरवाजे में प्रवेश किया ही था कि एक वेश्या निकलकर सामने आई। उसने राजमहल में प्रवेश करने का कारण ब्राह्मण से पूछा। ब्राह्मण देवता जी ने उत्तर दिया, "धन याचना के लिए राजा के पास जाना चाहते हैं।" वेश्या ने कहा, "इस दरवाजे से आप तव अन्दर जा सकते हैं जब मुझसे रमण करलें। अन्यथा दूसरे दरवाजे से जाइए।" ब्राह्मण को वेश्या की शर्त स्वीकार न हुई, अधर्माचरण करने की अपेक्षा दूसरे द्वार से जाना उन्हें पसंद आया। यहाँ से लौट आये और दूसरे दरवाजे पर जाकर प्रवेश करने लगे।

दो ही कदम भीतर पड़े होंगे कि एक प्रहरी सामने आया। उसने कहा—"इस दरवाजे से घुसने वालों को पहले मांसाहार करना पड़ता है। चलिए मांस भोजन तैयार है उसे खाकर आप प्रसन्नतापूर्वक भीतर जा सकते हैं।" ब्राह्मण ने मांसाहार करना उचित न समझा और वहाँ से लौट कर तीसरे दरवाजे में होकर जाने का निश्चय किया।

तीसरे दरवाजे में जैसे ही वह ब्राह्मण घुसने लगा वैसे ही मद्य की बोतल और प्याली लेकर पहरेदार सामने आया और कहा—"लीजिए। मद्य पीजिए और भीतर जाइए, इस दरवाजे से आने वालों को मद्यपान करना ही पड़ता है।" ब्राह्मण ने मद्यपान नहीं किया और उलटे पाँव चौथे दरवाजे की ओर चल दिया।

चौथे दरवाजे पर पहुँचकर ब्राह्मण ने देखा कि वहाँ जुआ हो रहा है। जो लोग जुआ खेलते हैं वे ही भीतर घुस पाते हैं। जुआ खेलना भी धर्म विरुद्ध है। ब्राह्मण बड़े सोच-विचार में पड़ा, अब किस तरह भीतर प्रवेश हों, चारों दरवाजों पर धर्म विरोधी शर्तें हैं। पैसे की मुझे बहुत जरूरत है। एक ओर धर्म दूसरी ओर धन दोनों का घमासान युद्ध उसके मस्तिष्क में होने लगा।

ब्राह्मण जरा-सा फिसला, उसने सोचा—"जुआ छोटा पाप है, इसको थोड़ा-सा करलें तो तनिक-सा पाप होगा। मेरे पास मार्ग व्यय से बचा हुआ एक रुपया है, क्यों न इस रुपये से जुआ खेल लूँ और भीतर प्रवेश पाने का अधिकारी हो जाऊँ।"

विचारों को विश्वास रूप में बदलते देर न लगी। ब्राह्मण जुआ खेलने लगा। एक रुपये के दो हुए, दो के चार, चार के आठ, जीत पर जीत होने लगी। ब्राह्मण राजा के पास जाना भूल गया और दत्त चित्त होकर जुआ खेलने लगा। जीत पर जीत होने लगी। शाम तक हजारों रुपयों का ढेर जमा हो गया। जुआ बन्द हुआ। ब्राह्मण ने रुपयों की गठरी बाँध ली।

दिन भर से खाया कुछ न था। भूख जोर से लग रही थी। पास में कोई भोजन की दुकान न थी। ब्राह्मण ने सोचा कि रात का समय है कौन देखता है चलकर दूसरे दरवाजे पर मांस भोजन मिलता है वहीं क्यों न खा लिया जाय ? स्वादिष्ट भोजन मिलता है और पैसा भी खर्च नहीं होता, दुहरा लाभ है। जरा-सा पाप करने में कुछ हर्ज नहीं। ब्राह्मण के पैर तेजी-से उधर बढ़ने लगे। भोजन तैयार था, मांस मिश्रित स्वादिष्ट भोजन को खाकर देवता जी संतुष्ट हो गये।

अस्वाभाविक भोजन को पचाने के लिये अस्वाभाविक पाचक पदार्थों की जरूरत पड़ती है। गरिष्ट, तामसी, विकृत भोजन करने वाले अकसर पान, बीड़ी, चूरन, चटनी की शरण लिया करते हैं। देवता जी के पेट में जाकर माँस अपना करतब दिखाने लगा। अब उन्हें मद्यपान की आवश्यकता प्रतीत हुई। आगे के दरवाजे की ओर चले और मद्य की कई प्यालियाँ चढ़ाईं।

धन का, मांस का, मद्य का, तिहरा नशा उन पर चढ़ रहा था। कांचन के बाद कुच का, सुरा के बाद सुन्दरी का ध्यान आना स्वाभाविक है। ब्राह्मण देवता जी पहले दरवाजे पर पहुँचे और वेश्या के यहाँ जा विराजे। वेश्या ने उन्हें संतुष्ट किया और पुरस्कार स्वरूप जुए में जीता हुआ सारा धन ले लिया।

एक पूरा दिन चारों द्वारों पर व्यतीत करके दूसरे दिन प्रातःकाल ब्राह्मण महोदय उठे। वेश्या ने उन्हें घृणा के साथ देखा और शीघ्र घर से निकाल देने के लिए अपने नौकरों को आदेश दिया। उन्हें घसीटकर घर से बाहर कर दिया गया। राजा को सारी सूचना पहुँच चुकी थी। आज वे फिर चारों दरवाजों पर गये और शर्तें पूरी करने के लिए कहने लगे पर किसी ने उन्हें भीतर न घुसने दिया। सब जगह से उन्हें दुत्कार दिया गया। ब्राह्मण दोनों ओर से भ्रष्ट होकर सिर धुन-धुन कर पछताने लगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org

www.vicharkrantibooks.org

सम्राटों के सम्राट परमात्मा के दरबार में पहुँचकर अनन्त आनन्द रूपी धन की याचना करने के लिए जीव रूपी ब्राह्मण जाता है। प्रवेश द्वार काम, क्रोध, लोभ, मोह के चार पहरेदार बैठे हुए हैं। वे जीव को तरह-तरह से बहकाते हैं और अपनी ओर आकर्षित करते हैं। यदि जीव उनमें फँस गया तो पूर्व पुण्यों रूपी गाँठ की कमाई भी उसी तरह दे बैठता है जैसे कि ब्राह्मण अपने घर का एक रुपया भी दे बैठा था। जीवन इन्हीं पाप-जंजालों में व्यतीत हो जाता है और अन्त में वेश्यारूपी ममता के द्वार से दुत्कार खाकर, रोता पीटता इस संसार से विदा होता है।

अनैतिकता—नैतिकता

और दूसरा वह वृक्ष है महात्मन् ! देखिये न। आस-पास की सारी भूमि पर उसने अधिकार कर लिया है, छोटे-छोटे पौधों को पनपने नहीं दिया इसने। दूसरे के अधिकार को भी अपना हित मानकर शोषण कर लिया और आज सभी वृक्षों से विशाल दिखाई देने लगा। पर आप हैं कि नैतिकता की प्रशंसा के पुल बाँधे जा रहे हैं। महाराज ! संसार में शोषक, शक्तिशाली और हिंसक पनपते हैं। नीति और ईमानदारी को पकड़े रहने वाले बेचारे दूसरे वृक्षों को देखो, कितने कोमल और कमजोर दिखाई देते हैं। उगते, फलते, फूलते तो ये भी हैं पर इनकी करोड़ों की शान और इस सद-मस्ती में झूमते विशाल वृक्ष की शान—क्या तुलना हो सकती है ?

साधु मुसकराये और बोले—"वत्स ! कुछ प्रश्न ऐसे होते हैं, जिनके उत्तर तत्काल नहीं दिये जाते। प्रतीक्षा करो और प्रतिफल देखो। शीघ्र ही समझ में आ जायेगा कि नीति, नीति ही है और अनीति, अनीति ही। अनीति का अन्त सदैव दुःखद ही होता है।"

ग्रीष्म के अन्तिम दिन, वर्षा के पूर्वारम्भ के दिन बड़े बवण्डरी और तूफानी होते ही हैं। ऐसे ही किसी एक दिन भयंकर तूफान आया। छोटे-छोटे कोमल पौधे झुक-झुक गये, पृथ्वी माता की गोद में लोट-लोट गये। तूफान उन्हें पार करके निकल गया तो जैसे पहले खड़े थे, वैसे ही फिर खड़े होकर अपनी विकास यात्रा में जुट गये।

किन्तु उस महावृक्ष के अभिमान और अहंकार का अब तक भी कोई ठिकाना नहीं था। उसी अकड़ में खड़ा रहा। तूफान अपनी सारी शक्ति समेटकर उस पर टूट पड़ा और लंकाकांड में जो स्थिति रावण के दस शीश और बीस भुजाओं की हुई थी, वही स्थिति उस भीमकाय वृक्ष की कर डाली। दनुजाकार डालें, तनें सब क्षत-विक्षत लोटने लगे, जड़ें भी संभाल न पाईं। पेड़ पल भर में ढेर हो गया।

प्रातःकाल जो भी ग्रामीण उधर से निकलता, हाहाकारी वृक्ष की यह विनाश-लीला देखकर उधर ही खिंचा चला जाता। देखते-देखते ग्रामवासियों की भीड़ एकत्रित हो गई। इतना बड़ा पेड़ ढहकर भूमि पर बिखरा पड़ा है और छोटे-छोटे पौधे आनन्द की हिलोरें ले रहे हैं—यह देखकर सभी को आश्चर्य हो रहा था, तभी साधु भी उधर आ पहुँचे।

वृक्ष की ओर देखकर हँसे और बोले—"यही है उस दिन के प्रश्न का उत्तर। अनीति और अधर्म से प्रारम्भ में लोग तेजी से बढ़ते हैं पर अन्त उनका ऐसा ही अनिष्टकारी होता है, जैसे इस वृक्ष का।"

बौझी पाथर भार

पाटलिपुत्र भगवती जाह्नवी की प्रलयंकर बाढ़ से ग्रस्त समस्त पुरवासी जीवन-रक्षा और जीवनोपयोगी सामग्री की सुरक्षा में व्यस्त हैं, किन्तु सुवर्ण श्रेणिक को इस सबकी कोई चिन्ता नहीं थी। उनका अपना भवन इतना विशाल था कि उससे दस गुनी जलराशि भी गगनचुम्बी अट्टालिका का स्पर्श न कर पाती। विशाल भवन की प्राचीर में बैठा श्रेणिक परिवार उस समय भी आनन्द ले रहा था जिस समय सारा नगर जीवन और मरण के इस संकट से बुरी तरह जूझ रहा था।

सुवर्ण के तरुण पुत्र योमी "वृहज्जातक" पढ़ रहे थे, पर उनकी एकाग्रता उस जनकोलाहल में बार-बार भंग हो जाती थी। वे बारम्बार बाहर आते, दूर तक फैली हुई जलराशि की ओर अपनी दृष्टि दौड़ाते, विपत्तिग्रस्त जन-जीवन को देखते, अन्तःकरण कहता—योमी ! यदि तुम्हें कभी संकट पड़ता तो क्या तुम सहायता की आकांक्षा और अपेक्षा नहीं करते, आज तुम्हारे पास धन है, सम्पत्ति है, विशाल भवन है, इसलिए तुम सुरक्षित हो, पर विचार करो यदि कहीं यह साधन-सुविधाएँ उपलब्ध न हुई होतीं तो क्या तुम भी इस स्थिति में ग्रस्त न होते ? तुम्हें क्या यह उचित नहीं कि विपत्ति में ग्रस्त प्राणियों की रक्षा करते ?

आत्मा अभी अपनी बात पूरी भी नहीं करने पाती कि मन बोल उठता—संसार में सभी अपने लिए पैदा होते हैं, अपने लिए सुख-साधन आप जुटाते हैं, जब अपनी जरा, अपनी मृत्यु को कोई बदल नहीं देता तो सौभाग्य को ही औरों के संकट से क्यों बदला जाये ?

आत्मा की पुकार—मन की तृष्णा के आगे दबकर रह जाती। योमी के पैर पीछे मुड़ते, फिर वह बाहर आते। आज उनके अन्तःकरण में जैसा द्वन्द्व उठा, वैसा तो पहले कभी नहीं हुआ। लगता था आत्मा ने मन के विरुद्ध अपनी सारी शक्ति झोंक दी, तभी तो सारा दिन, सारी रात, योमी को शान्ति नहीं मिली, वे बार-बार पाटलिपुत्र की जलप्लावित वीथियों, भवनों में दृष्टि दौड़ाते। संकटग्रस्त लोगों को देखते तो करुणा से हृदय उमड़ पड़ता—आत्मा कहती—जीवन का सार योमी ! परोपकार है ! परोपकार !! यों स्वार्थ की जिन्दगी जीकर भी तू कितने दिन सुखोपभोग कर लेगा ?

योमी के पैर द्वार तक आते मन कहता—अरे योमी, तू अत्यन्त सम्भ्रान्त नागरिक है, तेरी मान-मर्यादा का अपना स्तर है। चाहे तो सम्पत्ति देकर लोगों का कल्याण कर सकता है, दीन हीन, दरिद्र और दुर्गन्धग्रस्त प्राणियों के बीच जाने से लोग क्या कहेंगे ?

यह दम्भ कितना दारुण है, यह भी नहीं समझने देता कि परमार्थ, परोपकार में कितनी शान्ति, कितना सन्तोष, विराट् की कैसी सुखद् अनुभूति है, सम्मान तो दूर लोग संवेदनशील अन्तःकरण के प्रति अपनी श्रद्धा तक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समर्पित कर देते हैं, दम्भ के चंगुल में फँसकर ही मानवता कष्ट भोगती और दुःख पाती है—योमी भी उसी के वशीभूत आत्मानुभूति के दिव्य क्षणों से वंचित होता रहा। जीवन यदि दबा है, तो ऐसे पाथर भार से।

व्योम में वलाहक पूरी तरह से आच्छादित थे; किन्तु शुक्ल पक्ष के कारण दूर तक की गतिविधियाँ दिखाई देती हैं। समीप ही एक कच्चे भवन की अट्टालिका में जीवन रक्षा करती तरुणी का करुण-क्रन्दन सुनाई दे रहा है, वह अब तक अपने सम्पूर्ण परिवार को खो चुकी है, एक ही बालक शेष रहा है; जिसकी सुरक्षा के लिए वह प्रत्येक संकट से जूझ रही है, किन्तु तभी विशाल जलराशि का आवेग आता है, भवन चरमराकर बैठ गया, एक ही क्षण में टिमटिमाते हुए दो प्राणदीप बुझ गये।

योमी का अन्तःकरण कराह उठा—अबोध शिशु और अबला नारी की मृत्यु का दोषी तू है योमी, तूने समाज की चोरी की, धन-संग्रह किया। अपने अपराध पर भी अहंकार, यह घोर पाप है, योमी, तू पापी है, इस मृत्यु के लिए दोषी भी तू ही है, तू चाहता तो उन्हें बचा सकता था, जीवन दान दे सकता था। आत्मप्रताड़ना का और अधिक भार असह्य हो उठा, योमी घर से निकल पड़ा तो फिर वापस नहीं लौटा, जनसेवा में ही उसने सर्वस्व समर्पित कर दिया।

गुप्त धन की खोज में

अब से लगभग दो डेढ़ सौ वर्ष पहले की बात है। उस समय दक्षिण अमरीका के पेरु नामक देश पर स्पेन वालों का अधिकार था। पेरु के आदिम निवासी, भारतवासियों की तरह एक प्राचीन सभ्यता के अनुयायी थे। वे देवताओं की पूजा करते थे और सुवर्ण तथा रत्नों का विशेष रूप से उपयोग करते थे। इधर स्पेन वाले बड़े लालची और अत्याचारी भी थे। उन्होंने उन सीधे लोगों के मंदिरों और घरों से धीरे-धीरे बहुत-सा सुवर्ण अन्य आभूषण लूट लिये और उनको अपने एक सबसे बड़े गिरजाघर में इकट्ठा करते गये, जो पेरू की राजधानी लीमा नगर में था।

पर सन् १८२० में अवस्था एकदम बदल गई। दक्षिण अमरीका वालों में विद्रोह की ज्वाला प्रकट हुई उन्होंने निश्चय किया कि वे स्पेन वालों को भगाकर अपने देश को स्वतन्त्र कराके रहेंगे। साइमन बलिमार नाम का देशभक्त उनका नेता था, इस अवस्था को देखकर पेरु के शासनकर्त्ता का हृदय काँपने लगा कि न मालूम बलिमार कब आकर नगर पर आक्रमण कर दे। इसलिये उन्होंने गिरजाघर में से सब धनरत्न आदि को निकालकर एक जहाज में रख "कैलोपा" बन्दरगाह में पहुँचा देने को कहा। इस जहाज का कप्तान था मि. थामसन।

इस जहाज में कितना धन-रत्न था उसका पूरा-पूरा हिसाब तो नहीं है, पर उनमें से कुछ चीजों का हाल सब लोग जानते हैं। उसमें २७३ रत्नजड़ित तलवारें थीं, सोने के बने कई सौ बत्ती (रोशनी के लिए) थे और ठोस सोने की बनी बच्चे को गोद में लिए हुए मेडोना की एक बड़ी मूर्ति थी।

इस धन रत्न को अपने कब्जे में देखकर कप्तान साहब के मन में दुर्भाव का उदय हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। स्पेन सरकार के जो व्यक्ति खजाने की देखभाल के लिये साथ आये थे, उन सबको उन्होंने खत्म करा दिया और फिर जहाज को अपनी इच्छानुसार बीच समुद्र की तरफ ले चले। वह जहाज "कोकोस" द्वीप में जाकर ठहरा। थामसन ने वहाँ उतरकर सब धन, रत्नों को किसी बड़े सुरक्षित स्थान में छिपा दिया और खाली हाथ वापस आ गये। उनकी इच्छा थी कि कुछ दिन इसी प्रकार इधर-उधर दिन बिताने के पश्चात् जब लोग उनके दुष्कर्म की बात भूल जायेंगे तब सुविधानुसार आकर उसको निकाल कर ले जायेंगे। पर जीवन-पथ से एक बार पैर फिसलने पर ठीक मार्ग का मिल सकना बड़ा कठिन होता है। इस प्रकार फिरते-फिरते थामसन की भेंट बेनिटो नाम के समुद्री डाकू से हो गई और शीघ्र ही दोनों ने मित्र बनकर साझे में कार्य करना आरम्भ किया। कप्तान थामसन अब समुद्री डाकू थामसन बन गये।

कुछ ही समय बाद थामसन और बोनेटो दोनों को अंगरेजी समुद्री सेना के एक दल ने गिरफ्तार कर लिया। इनके दल के सब लोगों को फाँसी देदी गई, पर ये दोनों जीवित रखे गये। कारण यह था कि गुप्त धन की बात अंगरेज अधिकारी भी जानते थे और इन दोनों के सिवाय और कोई उसका पता नहीं बतला सकता था। उन्होंने स्वीकार कर लिया कि सेना के साथ कोकोस टापू जाकर खजाने का स्थान दिखला देंगे। पर जब वे कोकोस पहुँच गये। तो अंगरेज सैनिकों को चकमा देकर किसी ऐसे स्थान में जा छुपे, जहाँ से ढूँढ़ निकालना किसी प्रकार संभव न था। कुछ दिन बाद मछलियों का शिकार करने वाली एक बड़ी नाव कोकोस में आकर लगी। उसी पर चढ़कर दोनों मित्र किसी सभ्य देश में पहुँच जाने के लिये रवाना हुये। बहुत समय तक खाने-पीने का कष्ट सहन करने से उनका स्वास्थ्य खराब हो गया था और बेनिटो का देहान्त मार्ग में ही हो गया। थामसन सभ्य समाज में वापस आ गये। अन्त में उस गुप्त धन की बात उन्होंने किटिंग नामक व्यक्ति को बता दी। अब सब धन किटिंग को प्राप्त हो सकता था, पर भाग्य का खेल देखिये कि उसने भी जहाज के यात्रियों में से एक को मित्र बना लिया, जिसका नाम था बोग। जहाज के अन्य सब लोगों को जहाँ का तहाँ छोड़कर किटिंग और बोग, कोकोस में उतर गये। वहाँ उन्होंने गुप्त खजाने का पता लगाने में अन्त तक प्रयत्न किया किन्तु कुछ भी पता न लगा। अन्त में जहाज के खलासियों द्वारा मार डालने के डर से किटिंग और बोग एक बड़ी नाव को लेकर भाग निकले। जिस प्रकार थामसन और बेनिटो कोकोस में गायब हो गये थे, उसी प्रकार ये दोनों भी अन्तर्धान हो गये और जहाज के नाविकों द्वारा बहुत ढूँढ़ने पर भी उनका पता न लग सका।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुछ दिन बाद किटिंग और बोग उसी नाव में यात्रा के लिये रवाना हुये। उनका इरादा था कि फिर एक जहाज लाकर शेष धन-रत्न आदि को ले जायेंगे, पर रास्ते में समुद्री लहरों के वेग से बोग जल में गिरकर डूब गया। इसके बाद किटिंग भी नाव समेत समुद्र 'की भयंकर लहरों में अदृश्य हो गया। तब से उसी नक्शे का अनुसरण करके अनेक व्यक्ति दल-बल सहित कोकोस टापू के इस खजाने का पता लगाने पहुँचा करते हैं। कभी वे जंगल को काटते हैं, कभी पहाड़ को डाइनामाइट से उड़ाते हैं, पर अभी तक खजाने की ठीक जगह का पता कोई नहीं लगा सका है।

फूलों का रंग

अयोध्या में राज्याभिषेक होने के बाद एक दिन राजसभा में लंका की चर्चा होने लगी।

हनुमान कहते थे कि अशोक वाटिका में कमल के फूल लाल रंग के थे। सीता जी कहती थीं कि सफेद रंग के थे।

हनुमान जी हठ करने लगे कि मैने अपनी आँखों से लाल कमल देखे थे, मैं कैसे मानूँ कि वे सफेद थे ?

सीताजी ने कहा—'मैं इतने दिन अशोक वाटिका में रही, रोज ही सफेद कमल देखती थी, वे लाल कैसे हो सकते हैं ?"

रामचन्द्र जी ने विवाद को सुलझाते हुए कहा, "फूल वस्तुतः सफेद ही थे, पर उस समय हनुमान जी को क्रोध आ रहा था। आँखों की लाली कमलों में प्रतिबिम्बित होने से वे उन्हें लाल ही दीखते थे।"

अपने भीतर जो होता है, वही बाहर भी दिखाई देता है।

जीव-जन्तुओं की आशा—विधाता की निराशा

प्रजापति ब्रह्मा ने वृक्ष बनाये, वनस्पति बनाई, छोटे-छोटे जीव जन्तु बनाये, बड़े-बड़े जीवधारी बनाये, पशु और पक्षी बनाये और जब देखा कि इनमें से एक भी सृष्टि को व्यवस्थित रख सकने में समर्थ नहीं, हर जीव खुदगर्ज साबित हुआ तब विधाता ने सम्पूर्ण प्रतिभा और ज्ञान सम्पन्न मनुष्य का निर्माण किया। मनुष्य को अपने समान क्षमतावान् देखकर विधाता की चिंता दूर हुई। सृष्टि की व्यवस्था मनुष्य को सौंप उन्होंने अपनी थकावट मिटाने के लिये लेट लगाई और शयन करने लगे।

एक हजार वर्ष की नींद टूटी तो विधाता ने देखा द्वार पर जीव-जन्तुओं की भारी भीड़ जमा है। विधाता को जगाने और अपनी शिकायत पेश करने के लिए सब किवाड़ खटखटा रहे थे, नारे लगा रहे थे। चकित विधाता दरवाजा खोलकर बाहर निकले और जीव-जन्तुओं से उनके दुःख का कारण पूछा। जीवों के प्रमुख प्रतिनिधियों ने बताया—"भगवन् ! आपने मनुष्य को बनाया था सृष्टि की व्यवस्था के लिए पर यह तो हम सब को ही सताये और नष्ट किये डाल रहा है।"

सृष्टि का सौन्दर्य नष्ट होता देखकर विधाता बहुत चिन्तित हुए और बोले—"बच्चो दुःख न करो ! मनुष्य ने अपनी सद्बुद्धि को दुर्बुद्धि में बदलकर आप लोगों का इतना अहित नहीं किया, जितना उसने अपना पतन किया है। जाओ कुछ दिन और प्रतीक्षा करो एक दिन उसकी यह दुर्बुद्धि ही उसे पशुवत् जीवन में ले जायेगी तब ही गलती अनुभव करेगा।

यह ज्ञान ही उसे पश्चाताप और सुधार की प्रेरणा देगा, तभी सुख-शांति स्थापित होगी।"

जीव-जन्तु सन्तोष कर चले आये। हजारों वर्ष बीतने के आये वे अब भी प्रतीक्षा कर रहे हैं, मनुष्य को कब ज्ञान आये, कब वह मनुष्योत्तर प्राणियों-सा निन्दनीय जीवन त्यागकर सृष्टि-व्यवस्था संभाले।

"हम भी पशुओं की तरह ही काम, क्रोध, मोह, मद और मत्सर प्रधान जीवन जीते हैं, तो मनुष्य शरीर पाने का क्या लाभ है ?"

चुनार के कृष्ण, गोकुल के कृष्ण

भगवान कृष्ण के समय में चरणाद्रि (चुनार) में पौण्ड्रक नामक राजा शासन करता था। उसके दरबारी बड़े खुशामदी थे। वे कहते थे, "आप तो साक्षात् भगवान वासुदेव हैं। आपने भू-भार उतारने को अवतार लिया है। हम सब का धन्य भाग्य है, जो आपका नित्य दर्शन करते हैं।" इस प्रकार की चिकनी-चुपड़ी बातें कहकर वे उसे मूर्ख बनाया करते थे। उन लोगों की बातें सुनते-सुनते वह वास्तव में अपने को भगवान का अवतार समझने लगा। उसने अपने दो नकली हाथ भी लगवा लिये और वह चारों हाथों में भगवान विष्णु के स्वरूप की तरह शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये रहता था। धीरे-धीरे उसका अहंकार इतना बढ़ गया कि उसने एक दूत द्वारिका पुरी को भेजा और श्रीकृष्ण से कहलवाया कि तुम भी अपने को वासुदेव कहते हो और विष्णु के चिह्नों को धारण करते हो, वह अनुचित है। विष्णु का असली अवतार मैं ही हूँ। अब तुम इन सब चिह्नों को त्याग दो अन्यथा मैं युद्ध में तुम्हारा नाश कर डालूँगा। पौण्ड्रक के सन्देश को सुनकर राज्यसभा के सदस्य हँसने लगे और कृष्ण भगवान ने दूत से कहा—"पौण्ड्रक से कहना कि मैं चरणाद्रि आता हूँ और वहाँ आकर युद्ध में इन चिह्नों को त्याग दूँगा।"

जब श्रीकृष्ण पौण्ड्रक की राजधानी के पास अकेले ही रथ पर चढ़कर पहुँचे तो वह एक अक्षौहिणी सेना लेकर उनसे युद्ध करने निकला, पर उस समस्त सेना को भगवान ने थोड़ी-सी देर में ही अपने दैवी अस्त्रों द्वारा नष्ट कर दिया। तब उन्होंने पौण्ड्रक से कहा—"तुमने जिन चिह्नों को छोड़ने को कहलवाया था अब उनको मैं छोड़ रहा हूँ, तुम सँभाल लेना।" यह कहकर उन्होंने गदा फेंकी जिसके प्रहार से पौण्ड्रक का रथ चूर-चूर हो गया। कूदकर पृथ्वी पर खड़ा हुआ तो सुदर्शन चक्र ने उसका मस्तक उड़ा दिया। उस समय खुशामद करने वालों का पता भी नहीं लगा कि वे कहाँ गये ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(१) खुशामद खोर योग्य व्यक्तियों को भी पथभ्रष्ट कर देता है। उनसे सदा सावधान रहना चाहिए।

(२) अपनी प्रशंसा पर गर्वित होना ही चापलूसी को प्रोत्साहन देना है।

असुरों की पराजय

पाताल नरेश शम्भर बड़ा संयमी असुर था। उसने देवलोक के सभी राजाओं को जीतकर अपने साम्राज्य का विस्तार किया। देवता चिन्तित होकर प्रजापति ब्रह्मा के पास गये और उनसे मुक्ति का उपाय पूछा। ब्रह्माजी बोले—"देवो असुरों का एक अस्त्र है हिंसा। वे प्राणियों का वध करके अपनी शक्ति बढ़ाते हैं, यही पाप एक दिन उनके विनाश का कारण बनेगा।"

सचमुच वही हुआ। शम्भर के तीन प्रधान सेनापति, दाम, व्याल और कष्ट ने सारे राज्य में मांसाहार का प्रचार किया, एक दिन नागरिक वधिक ने व्याल से पूछा—"जब आप भी माँस खाते हैं, तो स्वयं पशुओं का वध भी अपने ही हाथ से किया करें।" तीनों ने यह बात स्वीकार कर ली।

दूसरे दिन दाम, तीसरे दिन व्याल और चौथे दिन कष्ट ने एक-एक पशु का वध किया। मारते समय पशु की छटपटाहट देखकर तीनों के मन में मृत्यु का भय समा गया। भय के उत्पन्न होते ही उनकी शक्ति घट चली और एक दिन देवताओं ने उन पर फिर से धावा बोल दिया। इस बार वे भयवश वीरतापूर्वक न लड़ सके और युद्ध में मार डाले गये।

हिंसा का पाप अन्ततः विनाश का कारण ही बनता है। दूसरों को पीड़ित देखकर स्वयं का भी मनोबल टूटता है।

अपनी साधना गँवाई

शिष्य की अशान्ति बढ़ी और बढ़ती ही चली गई। जब चित्तवृत्तियाँ अनियन्त्रित हो उठीं तो वह अपने गुरुदेव के चरणों में जा गिरा। प्रार्थना करते हुए उसने निवेदन किया—"भगवन् आज मन बड़ा अस्थिर लगता है, इतने दिनों की साधना और तप सब आज ही भंग हो जायेगा।"

आचार्य प्रवर कुछ देर तक निश्चल बैठे विचार करते रहे फिर बोले, "मन का सीधा सम्बन्ध अन्न से है—कहीं तुमने कुछ चुराकर तो नहीं खा लिया।"

"नहीं, नहीं देव ! ऐसा तो नहीं है किन्तु आज मैं एक नगर भोज में अवश्य सम्मिलित हुआ था। कहते हैं जिस सेठ ने यह भोज दिया वह बहुत धर्मात्मा पुरुष हैं।

नगर में उसका अन्न क्षेत्र चलता है, उसकी धर्म-कर्म में अत्यन्त रुचि है, वह देव पूजा अतिथि पूजा आदि शुभ कर्मों में संलग्न रहता है, उसके द्वार से याचक निराश नहीं लौटता। आज के भोज में अनेक लोग सम्मिलित थे। सेठ ने सभी का बड़ा आदर-सत्कार कर उनको भोज के साथ दान-दक्षिणा भी दी, और सबका उचित सम्मान भी किया।"

आचार्य हँसे और बोले, "ठीक है अब समझ में आया कि जो तुमने खाया वह बिना परिश्रम का ही नहीं था, वरन् अनीति का भी था। जिस सेठ ने यह भोज दिया उसने वृद्धावस्था में एक गरीब घर की लड़की से विवाह किया और वह भी धन लेकर। यह भोज उसने उस पाप से बचने के लिये ही किया है।

अब जब तुमने खाया ही पाप का है, तो उसका फल तो भुगतना ही पड़ेगा।"

आत्म-कल्याण के इच्छुक को सदैव अपने परिश्रम और ईमानदारी से कमाया हुआ अन्न ही ग्रहण करना चाहिए।

काला रंग

प्रकृति उन्मुक्त करों से सभी को अपनी अमूल्य सम्पूर्ण सम्पदाएँ लुटाती है, किन्तु दानशील भी शायद परमार्थ के नियम को जानते हैं। सूर्य की किरणें सतरंगी इन्द्र धनुषी आभा पौधों को वितरित करती हैं। पौधे समस्त रंगों को आत्मसात करने के पश्चात्, उन्हें अपनी कोमलता तथा भव्यता के साथ किसी एक रंग विशेष में परिणत करके लौटा देते हैं। यथा फूलों की लाली, पत्तों का हरापन तथा विविध रंगों के पुष्पों की अपनी बहुरंगी छटा।

एक काला ही रंग ऐसा है, जो प्रत्येक किरण को पचा लेता है—कुछ भी वापस नहीं लौटाता।

मनुष्यों में भी वही लोकप्रिय, सौम्य तथा सराहनीय माना जाता है—जो प्राप्त सम्पदाओं को और भी सुन्दर बनाकर सबको बाँटता रहता है, जो केवल लेना ही जानता है—देने से कतराता है—वह कोले-कोयले के समान काला होकर हेय तथा त्याज्य हो जाता है।

केवल लो मत, कुछ दो भी

एक दिन नदी से समुद्र ने पूछा—"मेरे पास कोई फटकता भी नहीं और न कोई आदर करता है, पर तुम्हें लोग प्यार करते हैं। इसका क्या कारण है ?"

नदी ने कहा—"आप केवल लेना ही जानते हैं। जो मिलता है, उसे जमा करते हो। मैं जो इस हाथ पाती हूँ उसे उस हाथ आगे बढ़ा देती हूँ। लोग मुझसे जो पाते हैं उसी के बदले में तो प्यार देते हैं।"

जो केवल लेना ही लेना जानते हैं वे उपेक्षित ही रह जाते हैं। जिन्हें देना भी आता है वे सबके प्रिय पात्र बनते हैं।

साँड़ बनाम निकम्मा

एक व्यक्ति बड़ा निकम्मा था। हालाँकि वह खूब मोटा-ताजा, शक्तिशाली और स्वस्थ था परन्तु काम कुछ नहीं करता। इसलिये लोग उसे साँड़ कहकर पुकारते थे। एक दिन वह कहीं जा रहा था। सामने से आता दिखाई दिया एक साँड़ (नन्दी) उसके पीछे ही साँड़ का मालिक बाबाजी भी आ रहा था। उस निकम्मे व्यक्ति ने साँड़ को देखकर मौज से कहा—"आओ मित्र भाई हम तुम गले मिलें। हम दोनों में अन्तर ही क्या है ?"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"और तो सब बराबर है पर एक अन्तर है। वह यह कि इसे समय पर घास मिल जाती है और तुम्हारी भगवान जाने"—बाबाजी बोले।

निकम्मे तथा आलसियों से पशु जानवर भी अच्छे रहतें हैं।

ज्योतिषी के असन्तुलित वचनों का दुष्परिणाम

एक व्यक्ति एक ज्योतिषी के पास गया और अपने भविष्य के बारे में पूछने लगा। ज्योतिषी ने कहा—"तुम्हारे सभी सम्बन्धी तुम्हारे देखते-देखते मर जायेंगे और तुम अकेले रह जाओगे।" यह सुनकर वह मनुष्य बड़ा गुस्से में हो गया। ज्योतिषी जी पिटाई से बच गये लेकिन दक्षिणा जाती रही।

वही व्यक्ति फिर दूसरे ज्योतिषी के पास गया। उस ज्योतिषी ने बताया—"भाई आपकी उम्र बहुत है। आप बहुत समय तक जीयेंगे आप अपने नाती-पोतों को भी पढ़ा-लिखा सकेंगे और उनकी शादी करेंगे।" वह मनुष्य बड़ा खुश हुआ और पर्याप्त दक्षिणा भी ज्योतिषी को दी।

कटु वचन सदा सबके लिए हानिकारक ही होता है।

खोटे बनाम खरे सिक्के

एक दिन एक साहूकार को शक हुआ उसके खजाने में कहीं खोटे सिक्के तो नहीं आ गये। जाँचने के लिए उसने सब सिक्के एक जगह इकट्ठे किये और उनकी पड़ताल शुरू की।

अच्छे सिक्के तिजोरी में और खराब सिक्के एक तरफ पटकें जाने लगे; तो खोटे सिक्के घबराये। उन्होंने परस्पर विचार किया—"भाई ! अब तो अपने बुरे दिन आ गये, यह साहूकार अवश्य हम लोगों को छाँट-बीन कर तुड़वा डालेगा। कोई युक्ति निकालनी चाहिए जिससे इसकी नजर से बचकर तिजोरी में चले जाएँ।"

एक खोटा सिक्का बड़ा चालाक था। उसने कहा—"भइया हम लोग जोर से चमकने लगें, तो यह साहूकार पहचान नहीं पायेगा और अपना काम बन जायेगा।"

बात सबको पसन्द आयी। सब खोटे सिक्के दिखावटी चमकने लगे और सेठ की तिजोरी में पहुँचने लगे। खोटे सिक्कों को अपनी चालाकी पर बहुत अभिमान हुआ।

गिनते-गिनते एक सिक्का नीचे जमीन पर गिर पड़ा। नीचे पत्थर था सिक्का उसी से टकराया। साहूकार चौंका—हैं यह क्या चमक तो अच्छी है पर आवाज कैसी थोथी है। उसे शंका हो गई। दुबारा उसने फिर से सब सिक्के निकाले और पटक-पटक कर उनकी जाँच शुरू की। फिर क्या था असली सिक्के एक तरफ, नकली सिक्के एक तरफ।

दिखावट थोड़े समय चल सकती है, खोटाई अन्ततः प्रकट हो ही जाती है। कोई भी मनुष्य अपनी कमजोरी नहीं छिपा सकता।

साँप का दुःख

एक साँप को बहुत गुस्सा आया। उसने फन फैलाकर गरजना और फुसकारना शुरू किया और कहा—"मेरे जितने शत्रु हैं आज उन्हें खाकर ही छोड़ूँगा। उनमें से एक को भी जिन्दा न रहने दूँगा।" मेंढ़क, चूहे, केंचुए और छोटे-छोटे जानवर उसके उस गुस्से को देखकर डर गये और छिप कर देखने लगे, देखें आखिर होता क्या है ?

साँप दिन भर फुसकारता रहा और दुश्मनों पर हमला करने के लिये दिन भर इधर-उधर बेतहाशा भागता रहा।

फुसकारते-फुसकारते उसके गले में दर्द होने लगा। शत्रु तो कोई हाथ न आया पर कंकड़ पत्थरों की खरोंचों से उसकी सारी देह जख्मी हो गई शाम होते-होते थकान से चकनाचूर होकर वह एक तरफ जा बैठा।

गुस्सा करने वाला शत्रुओं से पहले अपने को ही नुकसान पहुँचाता है।

बिच्छू और कछुआ

बिच्छू बोला—"तुम मुझे पार पहुँचा दो डंक नहीं मारूँगा।" कछुये ने कहा—"अच्छा" और बिच्छू को पीठ पर बैठाकर पानी में तैर चला। अभी कुछ ही दूर चला था कि बिच्छू ने डंक मार दिया कछुये ने पूछा, "यह क्या किया ?" बिच्छू बोला—"यह तो मेरा स्वभाव है।" कछुये ने कहा—"अच्छा हुआ मैंने अपने को सुरक्षित किया हुआ है, पर तेरे आततायीपन का दण्ड तो मिलना ही चाहिए यह कहकर उसने डुबकी मार ली और बिच्छू पानी में डूबकर मर गया।

अपने दोष ही अन्ततः विनाशकारी सिद्ध होते हैं।

कहूँ या न कहूँ

आम यद्यपि पक चुका था, भला इसी में था कि किसी की तृप्ति बनता, पर वृक्ष में लगे रहने का मोह छूटा नहीं। पेड़ का मालिक पके आमों की खोज-बीन करने वृक्ष पर चढ़ा भी पर आम पत्तों की झुरमुट में ऐसा छिपा कि हाथ आया ही नहीं।

दूसरे दिन उसने देखा कि उसके सब पड़ौसी जा चुके, उसका अकेले ही रहने का मोह नहीं टूटा था और अब मित्रों की विरह व्यथा और सताने लगी।

आम कभी तो सोचता नीचे कूद जाऊँ और अपने मित्रों में जा मिलूँ फिर उसे मोह अपनी ओर खींचता, आप उसी उधेड़-बुन में पड़ा रहा।

संशय का यही कीड़ा धीरे-धीरे फल को खाने लगा। एक दिन उसका सारा रस चूस लिया रूखी बोड़ी नर-कंकाल के समान पेड़ में लगी रह गयी।

आम की आत्मा यह देखकर बहुत पछताई, कुछ संसार की सेवा भी न बन पड़ी और अन्त में हुआ तो ऐसा दुःखद।

इतनी कथा सुनाने के बाद वशिष्ठ ने अजामिल से कहा—"वत्स ! समझदार होकर भी जो सांसारिकता के मोह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में फँसे—अब निकलें, अब निकलें' सोचते रहते हैं, उनका भी अन्त ऐसे ही होता है।"

संशयग्रस्त मनःस्थिति के लोग न तो इधर के रहते और न उधर के।

घिनौनी लानत

बुढ़िया के इकलौते लड़के का ब्याह था, उत्सव के बीच एक थका मांदा साधु कहीं से आ निकला। उसने आश्रय और भोजन माँगा।

बुढ़िया ने कहा, "सन्तजी खुशी से ठहर जाइये, यह चावल लीजिए और पकाकर खा लीजिए, मैं ब्याह की व्यवस्था में उलझी हूँ, पर एक बात का ध्यान रखिये कोई अशुभ वचन मुँह से न निकालिए।" साधु ने उस दिन चावल पकाया खाया। दूसरे दिन वह हाँड़ी पका ही रहा था कि बुढ़िया उधर से निकली और हाल-चाल पूछने लगी।

साधु ने बुढ़िया को बिठा लिया और कहा—"माताजी ! आपके इकलौते लड़के का ब्याह है सो तो ठीक है, पर कदाचित इन्हीं दिनों लड़का बीमार पड़े और मरणासन्न हो जाय तो आप पर कैसी बीतेगी ?" साधु अपनी आदत से मजबूर था उसे अप्रिय कहे बिना चैन कहाँ ?

बुढ़िया ने कहा—मुझ पर जो बीतेगी सो भुगत लूँगी पर आप इसी समय अपना चावल लेकर विदा होइये। साधु ने कपड़े में अधपका चावल समेटा और वहाँ से चल पड़ा।

रास्ते में कपड़े में से माँड़ टपकता देखकर राहगीरों ने साधु से पूछा—यह क्या टपकता है।

साधु ने कहा—"यह मेरी आदत और जीभ में घुसी हुई लानत है, जो इस घिनौने रूप में अपनी असलियत हर किसी को बताती, जताती जा रही है।"

(१) असमय में कहा सत्य भी अपमान और उपेक्षा का भोगी बनाता है।

(२) दूसरों की निन्दा नहीं अपने दोषों को देखना चाहिए।

अन्न का मन पर प्रभाव

एक बार एक बड़े त्यागी महात्मा कहीं धर्मोपदेश करने गये और वहाँ से एक सोने का हार चुरा लाये। तीसरे दिन वे बड़े दुःखी मन से वहाँ पहुँचे और हार लौटाते हुए क्षमा माँगी। गृहस्थ को बड़ा आश्चर्य हुआ कि इतने त्यागी और विद्वान होते हुए भी क्यों इन्होंने हार चुराया और क्यों लौटाने आये ?

महात्मा जी ने बताया कि उस दिन उन्होंने जिस व्यक्ति के यहाँ से भिक्षा ली थी वह चोर था, उसका अन्न भी चोरी से लाया हुआ था। उसे खाने से मेरी बुद्धि में चोरी के संस्कार पैदा हुए। इसके बाद दस्त शुरू हो गये और अन्न पेट से बाहर निकल गया। तब सुबुद्धि लौटी आपके हार को लौटाने आया।

अन्न से ही मन बनता है, इसलिए कुधान्य से सदा बचना चाहिए।

अफीम का नशा

एक सेठ अफीम खाते थे, उन्होंने अपने नौकर को भी यह लत लगा दी। एक बार दोनों शहर को चले। रास्ते में एक स्थान पर दोनों ने खाना खाया, अफीम के नशे में याद नहीं रहा, घोड़ा वहीं छोड़कर चलते बने। शहर पहुँचे, नशा कम हुआ, एक स्थान पर बैठे तो पता चला कि घोड़ा रास्ते में ही छूट गया। फिर दोनों घोड़े की तलाश में लौटे पर इस बार अपनी पोटली कहीं भूल गये उसी में उनके रुपये थे। वापस जाकर देखा तो वहाँ घोड़ा न पाया, तब पोटली की याद आई। दोनों रोने लगे एक ग्रामीण स्त्री बोली—"तुम्हारी ही नहीं, हर नशेबाज की यह हालत होती है।

नशे में स्मरण शक्ति का ह्रास होता है और स्मृति का नाश बहुत से अनर्थों का कारण हो जाता है।

दूसरा अड्डा

दो शराबी ताश खेल रहे थे। एक मक्खी आकर एक की नाक पर बैठ गई। दूसरे शराबी ने चाकू से उसकी नाक काट ली। पहला शराबी बोला—"अरे यह क्या कर दिया।" दूसरा बोला—"मक्खी का अड्डा साफ कर दिया।" तब तक मक्खी दूसरे के कान पर बैठ गई। अब पहले शराबी ने अपनी छुरी निकालकर दूसरे का कान काट लिया। इस पर उसने पूछा, "क्या किया ?" पहले शराबी का उत्तर था वह दूसरा अड्डा जमा रही थी।

नशे का पहला आक्रमण बुद्धि पर होता है।

शराब, मांस और फिर

एक महात्मा ने जागीरदार को शराब न पीने का उपदेश दिया। जागीरदार बोला—"शराब पीता हूँ तो क्या ? किसी की बहू बेटी तो नहीं ताकता, किसी की हत्या तो नहीं करता।" साधु ने कोई उत्तर नहीं दिया, सोचा नशेबाज तो अपने आप ठिकाने लगता है। जागीरदार एक दिन शहर गया और एक धर्मशाला में टिक गया साथ में उसकी स्त्री और एक बूड्ढा यात्री भी था। धर्मशाला में उसने शराब पी। शराब पीते ही उसे मांस खाने की इच्छा हुई, उसने होटल से मँगाकर मांस खाया और विषय भोग की इच्छा हुई, परन्तु स्त्री ने कहा—"साथ में बुड्ढा है मुझे लज्जा आती है।" शराबी ने तलवार से बुड्ढे को काट डाला और अपनी इन्द्रिय-लिप्सा शान्त की। सबेरे सिपाहियों ने पकड़ कर उसे जेल में बन्द कर दिया।

नशा सारे अनर्थों की जड़ है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अन्धविश्वास, अविवेक और अज्ञान

अब हमें रूढ़ियों का दास नहीं बनना है

एक गरीब बनिया व्यापार के लिये एक मन घी लेकर किसी शहर में बेचने के लिए पहुँचा। पहले फाटक पर ही एक सिपाही ने पूछा—"क्या ले जा रहे हो ?"

"घी ले जा रहा हूँ ?" बनिया ने बतलाया।

"कितना है ?"

"एक मन।"

सिपाही ने कहा कि "यहाँ एक मन पर पाँच सेर की "लाग" (टेक्स) देनी पड़ती है।"

बनिया ने पाँच सेर घी निकाल दिया। जब वह शहर के बीच में पुलिस के पास पहुँचा, तो वहाँ पहरा देने वाले जमादार ने उसे रोककर पूछा और हुक्म दिया कि "एक मन पर कोतवाल साहब को दस सेर की "लाग" देनी होगी।"

बनिया ने दस सेर भी दे दिया। वह आगे बढ़ा तो दीवान साहब का मकान रास्ते में आया। वहाँ भी सिपाहियों का पहरा था। उन्होंने बनिया को बतलाया कि शहर में घी लाने वाले को एक मन पर पच्चीस सेर घी दीवान साहब की "लाग" में देना पड़ता है।"

अब बनिया के पास एक छटांक भी घी शेष नहीं रहा। समस्त घी इस नगर में लगने वाली "लागों" में निकल गया। उसने विचार किया कि अब शहर में घूम-फिरकर अपने घर वापस लौट जाऊँगा। सैर करते-करते वह राजा के महल के सामने जा पहुँचा। वहाँ के सिपाहियों से बात करते हुये उसने घी लाने और सबका सब "लागों" में चले जाने का हाल सुना दिया। घी लाने की बात सुनते ही वहाँ के जमादार ने कहा कि एक मन घी पर राजासाहब को भी एक मन की "लाग" देनी पड़ती है।

बनिये ने कहा—"जमादार साहब अब मेरे पास घी है ही कहाँ जो मैं "लाग" दूँ।"

जमादार उसका कोई एतराज सुनने को तैयार नहीं हुआ। उसने कहा—"इससे मुझे कोई मतलब नहीं। तुम घी बेचने शहर में आये थे, यह बात सच्ची है। इसलिये तुमको राजा की "लाग" देनी पड़ेगी, उसे तुम जल्दी चुकाओ ! तुम्हारे पास घी हो या न हो, यह मैं नहीं जानता।"

बनिया को यह बात पागलपन की-सी जान पड़ी, पर सिपाहियों के सामने उसका क्या बस चल सकता था। लाचार होकर पास में जो थोड़ा-सा खर्च था और कपड़े-लत्ते बेचकर उसने राजासाहब की लाग अदा की।

इस शहर के ऐसे रंग-ढंग देखकर बनिया तो हैरान हो गया और एक पेड़ के नीचे बैठकर विचार करने लगा कि अब क्या किया जाय ? एकाएक उसे हँसी आ गई। अपने आप कहने लगा कि—"वाह, इस नगर में "लाग" की प्रथा खूब है और सब लोग आँखें बन्द करके उसका पालन करते हैं। चाहे कोई जीये या मरे पर "लाग" अवश्य हो, उसके बिना काम नहीं चल सकता।

बस वह उठकर सीधा श्मसान पर जा बैठा और वहाँ "लाग" वसूल करने का काम जारी कर दिया। किसी का मुर्दा आवे, पर सवा रुपया की "लाग" दिये बिना उसे फूँका नहीं जा सकता। अगर कोई पूछता कि "भाई यह लाग कब से और किसकी तरफ से ली जाती है" तो वह तुरन्त उत्तर देता कि "रानी साहिबा की तरफ से ली जाती है और बहुत समय से प्रचलित है। इसलिये इस सम्बन्ध में ज्यादा पूछताछ करना अज्ञानता की निशानी है। फिर सरकारी हुक्म के विषय में ऐसी शंका करना रानी साहिबा का अपमान करने के समान है।"

लोग तो ये बातें सुनकर ठंडे पड़ जाते थे। आपस में कहने लगते—"होगा, मुर्दा के दाह-संस्कार जैसे काम में ऐसा झंझट ठीक नहीं। ऐसी "लाग" के विषय में झूँठी बात कौन कहेगा ? फिर "लाग" तो देनी ही पड़ेगी, ज्यादा बहस करने से क्या फायदा ?"

धीरे-धीरे लोगों ने "लाग" के सम्बन्ध में बनिया से पूछना भी बन्द कर दिया और समझ लिया कि सचमुच ऐसी ही राजाज्ञा होगी। अब सब कोई चुपचाप सवा रुपया की लाग दे जाता था। ऐसा करते-करते बनिया ने बहुत-सा धन इकट्ठा कर लिया और नगर में कई मकान तैयार करा लिये।

एक दिन वहाँ के राजा की माता का देहान्त हो गया। दीवान बगैरह सब अधिकारी राजा के साथ आये। अग्निदाह का समय आते ही बनिया ने सवा रुपया "लाग" का माँगा।

राजा ने पूछा—"यह श्मसान की "लाग" कब से चली है ?"

"बहुत बरस से चालू है ?" यह कहकर बनिया ने अभी तक जिन लोगों से "लाग" वसूल की गई थी उनके नाम व पते के कई रजिस्टर राजा के सामने रख दिये।

"तुम कौन हो ?" राजा ने पूछा।

"मैं ! मैं तो रानी साहिबा का साला हूँ।" बनिया ने जवाब दिया।

राजा ने "लाग" जमा करने का हुक्म देते हुए कहा—"अगर यह रूढ़ि है, तो उसे मिटाया नहीं जा सकता।"

अग्नि-संस्कार के बाद जब राजा महल में पहुँचे और रानी से बातें हुईं तो उसने पूछा कि "आप किसको 'लाग' दे आये ?"

राजा—"रानी के साले को और किसको ?"

रानी हँस पड़ी और कहने लगी कि "साला राजा के होता है या रानी के ?"

राजा ने कहा—"जो रूढ़ि जारी हो गई वह मिट कैसे सकती है ? यह तो पुराने समय से चली आ रही है इसलिए उसके अनुसार "लाग" देनी ही पड़ेगी।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अंत तक इस "लाग" का रहस्य कोई न समझ सका और रूढ़ियों की दास्ता के बल पर बनिया नगर का बड़ा सेठ बन गया। आज के युग में रूढ़ियों का दास बनना कोई बुद्धिमानी की बात नहीं है। जो रूढ़ियाँ हमारे समाज में किसी कारण से घुस गई हैं, जिनके अन्दर कोई विवेक नहीं है, उनको दूर करना हमारा कर्तव्य है। बुद्धिवाद के युग में हर एक बात को तर्क की कसौटी पर परखना चाहिए। इसी में बुद्धिमानी है।

दुष्प्रवृत्तियों का त्याग

गुजरात के प्रसिद्ध लोक-सेवी रविशंकर महाराज ने समाज की बुराईयों को मिटाने का व्रत लिया। रात-दिन उसी प्रयत्न में उनका दिन व्यतीत होता था। अनेक लोगों को इनकी प्रेरणाओं से राह मिली थी। बहुतों ने अपनी दुष्प्रवृत्तियों, दुर्व्यसनों और कुटेवों से मुक्ति पाई थी। क्या छोटा, क्या बड़ा ? जब भी इन्हें पता पड़ जाता था कि अमुक व्यक्ति, अमुक कुटेबों का शिकार है, तो वे अपना समय निकालकर उसके यहाँ ही पहुँच जाते और विविध प्रकार से उसे समझा-बुझाकर उससे मुक्ति दिखाने का प्रयत्न करते।

एक दिन वे घूमते हुए एक बड़े जमींदार के यहाँ पहुँचे। वह व्यक्ति शराब का बुरी तरह आदी बन गया था। उसे बहुत तरह से समझाया-बुझाया पर वह बोला—"महाराज, मैं क्या करूँ ? शराब मेरे नस-नस में समा गई है। जब इसका नशा सवार होता है, तो लगता है—संसार में जो कुछ है, वह शराब है। इसकी बुराईयों को भी जानता हूँ, पर वे सब मनसूबे धरे रह जाते हैं। जब तक पीता नहीं, चैन ही नहीं बन पड़ता। मैं छोड़ना चाहता हूँ, पर लाचार हूँ वह मुझसे छूटती ही नहीं।"

जमींदार का इस प्रकार विवशता और भ्रम भरा उत्तर सुनकर रविशंकरजी ने उसकी मनोभूमि का आभास पा लिया। फिर बोले, "आप हमारे निवास स्थान पर कल आयें। आपको मैं एक विशेष उपाय बताऊँगा। आपकी यह आदत निश्चय ही छूट जायेगी।"

दूसरे दिन वह व्यक्ति अमुक समय पर उनके घर पहुँचा। पहुँचते ही क्या देखता है कि महाराज एक खम्भे को दोनों हाथों से बाहुपाश में कसे खड़े हैं। व्यक्ति ने प्रणाम किया, तो आशीर्वाद भी उसी स्थिति में दिया। कुछ देर बाद बोले, "भाई आपको बुलाया तो सही, परन्तु आपसे बातें करने में लाचार पड़ गया हूँ। इस खम्भे ने मुझे बुरी तरह जकड़ लिया है, छुड़ाए छूटता नहीं। यदि किसी तरह इसके बन्धन से हमें मुक्ति दिला दें, तो आपका स्वागत और वार्तालाप कर सकूँ, इस समय तो बड़ी कठिनाई में पड़ा हूँ।"

उस व्यक्ति ने खम्भे के पास पहुँचकर देखा तो मालूम पड़ा कि खम्भे में उन्हें पकड़ने जैसी कोई बात नहीं है, वरन् वे ही खम्भे को पकड़े खड़े हैं। जमींदार जोर से हँस पड़े और बोले, "महाराज, कहीं निर्जीव वस्तु में इतनी शक्ति होती है, जो मनुष्य जैसे बुद्धिमान और सामर्थ्यवान को पकड़ सके। आपको भ्रम हो गया है। जरा हिम्मत कीजिए और हाथ खोलिये। देखिये आप अपने आप इसके बन्धन से मुक्त हो जावेंगे।"

महाराज ने हाथ खोल दिये और बोले, "भाई इस खम्भे की तरह शराब भी तो बेजान ही वस्तु है, फिर क्या कारण है कि मनुष्य जैसा सामर्थ्यवान प्राणी उसके बन्धन में पड़े ?"

जमींदार के समझ में बात बैठ गई। उसे लगा कि सचमुच मैं भी भ्रम में ही हूँ। वरना यह शराबखोरी जैसी छोटी-सी बुराई हमें किस तरह जकड़ सकती है। उसका मूर्छित मनोबल जाग पड़ा। उसने सदा के लिए शराब त्याग देने का संकल्प किया। फिर जीवन भर उसने कभी शराब नहीं पी।

साधुवेश की मर्यादा

बहुरूपिया राजा के दरबार में पहुँचा, "राजा की जय-जयकार हो ! अन्नदाता की यश पताका आकाश में सदैव फहराती रहे। सारी प्रजा सुखी और सम्पन्न रहे। बस पाँच रुपये के एक नोट का ही सवाल है, महाराज से। और बहुरूपिया कुछ नहीं चाहता।"

मैं कला का पारखी हूँ। कलाकार का सम्मान करना राज्य का नैतिक कर्तव्य है। मैं तुम्हारी कला पर प्रसन्न होकर पाँच रुपये का पुरस्कार दे सकता हूँ, पर दान के लिए मजबूर हूँ। राजा ने कहा।

"कोई बात नहीं। मैं आपके सिद्धान्त को तोड़ना नहीं चाहता। मुझे अपना दूसरा स्वाँग दिखाने के लिए तीन दिन का समय तो दीजिये।" इतना कहकर बहुरूपिया चला गया।

दूसरे दिन नगर से बाहर एक टीले के ऊपर समाधि मुद्रा में एक साधु दिखाई दिया। मेरुदण्ड, सीधा, नेत्र बन्द, तेजस्वी चेहरा और लम्बी जटाएँ। इधर-उधर पशु चराने वाले चरवाहों ने उस साधु को देखा। वह उत्सुकतावश उसके पास पहुँचे।

तपस्वी मृगछाला पर ध्यानावस्थित था। उसे पता ही नहीं चला कि सामने कौन खड़ा है ?

"स्वामी जी ! आपका आगमन कहाँ से हुआ है ?"

कुछ क्षण रुककर फिर दूसरा प्रश्न, "क्या आपके लिए कुछ फल, दूध और मेवा आदि की व्यवस्था की जाए ?"

मुख से किसी शब्द का निकलना तो दूर की बात रही उसका शरीर भी रंच मात्र न हिला।

शाम को सभी चरवाहे अपने पशुओं को लेकर नगर वापस आये। उनके द्वारा घर-घर में तपस्वी संत की चर्चा होने लगी। दूसरे दिन सुबह ही नगर के अनेक सभ्य शिक्षित नागरिक, दरबारी, धनिक तथा श्रद्धालु व्यक्ति अपने-अपने वाहन लेकर नगर से बाहर की ओर दौड़ पड़े किसी की थाली में मेवा, फल और मिष्ठान थे, कोई साबूदाना और मखाने की खीर ले गया, किसी की बाल्टी दूध से भरी थी और कोई नाना प्रकार के पकवानों से अपने थाल भरकर के ले गया था। बस सबका यही आग्रह था कि उसमें एक ग्रास लेकर श्रद्धालु भक्तों को कृतार्थ किया जाए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सबके आग्रह व्यर्थ गये, साधु ने आँख तक न खोली। वह तो अविचिलित रूप से वहीं बैठा रहा। संत के त्याग की यह कहानी प्रधानमन्त्री के ऑफिस तक पहुँच गई। वह अनेक प्रकार की स्वर्ण और रजत मुद्राएँ रथ में भरकर उस टीले पर पहुँचा। मुद्राओं का ढेर लगा दिया संत के आस-पास। संत से बड़े विनम्र स्वर में निवेदन करते हुए प्रधानमन्त्री ने कहा, "बस ! एक बार नेत्र खोलकर कृतार्थ कीजिए। मैं किसी भौतिक लालसा से आपको परेशान करने नहीं आया हूँ।"

प्रधानमन्त्री का निवेदन भी बेकार गया। अब उसे निश्चय हो गया कि यह संत अवश्य पहुँचा हुआ है राग-विराग, लोभ-मोह सभी से मुक्त है तभी तो इतने बड़े-बड़े उपहारों की ओर दृष्टि उठाकर नहीं देखता।

प्रधानमन्त्री ने राजा के महल में जाकर सारी वस्तु स्थिति से राजा को अवगत कराया। राजा को सोचते देर न लगी। वह मन ही मन पछताने लगे। जब मेरे राज्य में इतने बड़े तपस्वी का आगमन हुआ है, तो मुझे अवश्य ही उनकी आगवानी करने जाना था। उन्होंने दूसरे ही दिन सुबह उस तपस्वी के दर्शन करने जाने का निश्चय किया। गाँव भर में यह खबर बिजली की तरह फैल गई। जिस मार्ग से राजा की सवारी निकलने वाली थी, वह मार्ग साफ करा दिये गये। रास्ते में पुलिस की व्यवस्था कर दी गई।

राजा ने तपस्वी के चरणों में एक लाख अशर्फी का ढेर लगा दिया और अपना मस्तक उनके चरणों में टेक कर आशीर्वाद की कामना करने लगे, पर तपस्वी विचलित नहीं हुआ। अब तो प्रत्येक व्यक्ति को यह निश्चय हो गया कि तपस्वी बहुत त्यागी और पहुँचा हुआ है सांसारिक वस्तुओं से उसका तनिक भी लगाव नहीं है।

चौथे दिन बहुरूपिया फिर दरबार में पहुँचा, हाथ जोड़कर बोला, "राजन् ! अब तो आपने मेरा स्वाँग देख लिया होगा और पसन्द भी आया होगा, अब तो मेरी कला पर प्रसन्न होकर अधिक नहीं तो पाँच रुपये का पुरस्कार दीजिए ताकि परिवार के पालन-पोषण हेतु आटा-दाल की व्यवस्था कर सकूँ।"

"छिः छिः तुझ जैसा मूर्ख व्यक्ति मैंने आज तक नहीं देखा, जब सम्पूर्ण राज्य की जनता अपना सर्वस्व लुटाने के लिए तेरे चरणों के पास आतुर खड़ी थी, तब तूने धन दौलत के उस ढेर पर दृष्टि तक नहीं डाली और अब पाँच रुपये के लिए ऐसे चिरौरी करता है।"

बहुरूपिये ने कहा, "राजन् उस समय एक तपस्वी की मर्यादा का प्रश्न था। एक साधु के वेश की लाज रखने की बात थी। भले ही साधु के रूप में बहुरूपिया हो, पर था तो एक साधु ही फिर वह धन-दौलत की ओर दृष्टि उठाकर कैसे देख सकता था, उस समय सारे वैभव तुच्छ थे और अब पेट की ज्वाला को शान्त करने के लिए अपने श्रम के पारिश्रमिक और पुरस्कार की माँग है आपके सामने।"

ऐसे मक्कारों की यही दुर्गति होती है

नाग पंचमी पर नर्मदा के दोनों किनारों पर नर-नारियों की बड़ी भीड़ थी। आज एक आदिवासी युवक अपना चमत्कार बताने वाला था। उसने ग्रामवासियों को बताया था कि वह नाग पंचमी के दिन नर्मदा में सात फन वाले देवता के दर्शन करायेगा। यह भीड़ उसके इस कथन की सत्यता को परखने के लिये ही एकत्रित हुई थी।

उक्त युवक हरदा के निकटवर्ती गाँव के बाहर फूस की एक झोंपड़ी बनाकर कुछ वर्षों पहले से रहने लगा था।

उसने अपने आप के सम्बन्ध में यह प्रचारित कर रखा था उसे देव (भूत) सिद्ध है। उस देव को आदेश देकर वह लोगों की मनोकामना पूरी कर सकता है।

वह अपनी झोंपड़ी के बाहर बने पत्थर के चबूतरे पर भीषण शीत व धूप में भी एक लँगोटी बाँधकर पड़ा रहता था। यह सब जाल उसने ऐसे लोगों को फँसाने के लिये रच रखा था जो पुरुषार्थ नहीं करते तथा किसी जादू मन्तर या चमत्कार के द्वारा अपनी कामनाओं की पूर्ति करना चाहते हैं।

हमारे देशवासियों का यह दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि ऐसे धूर्तों का बहिष्कार करने की अपेक्षा कई लोग इनके बहकावे में आ जाते हैं तथा इन गन्दे, अशिक्षित, ढोंगियों के पाँव तक पूजने को तैयार होते हैं।

इस युवक के पास भी एक ऐसे ही अन्ध-विश्वासी आँख के अन्धे गाँठ के पूरे लोग पहुँचने लगे। कोई किसी रोग को ठीक कराने आता तो पुत्र प्राप्ति की कामना लेकर।

भूत-प्रेतों पर विश्वास करने वाले लोगों में यह काफी प्रसिद्ध हो गया। उसे काफी भेंट पूजा भी मिलने लगी थी।

ऐसे मक्कारों को छल-छद्म करना तो आता है, किन्तु बुद्धि नहीं होती। अपनी प्रसिद्धि की झोंक में वह नाग पंचमी के दिन उक्त चमत्कार दिखाने की घोषणा कर बैठा।

निश्चित समय पर वह अपने मुँह से कुछ अस्पष्ट मंत्र सा पढ़ता हुआ नर्मदा में कूद पड़ा। उसके कूदने के कुछ समय बाद पानी के ऊपर काले कपड़े के बने हुए सात फन दिखाई दिये। उन्हें पकड़ने वाले मनुष्य का हाथ भी स्पष्ट दिखाई दे रहा था।

दर्शक उसकी इस चालाकी को समझ गये थे। इन कपड़े के बने हुए नाग के फनों को तो आठ वर्ष का बालक भी पहचान सकता था। वहाँ देखने वालों में अधिकांश तो समझदार थे।

दर्शकों की भीड़ इस मक्कार को दण्ड देने के लिये उद्यत हो गई। क्रोध में भरे हुए लोग उसे मारने को उतारू हो रहे थे। कुछ युवक पानी में कूद पड़े और उसे पकड़ कर बाहर लाये तथा उसे पीटने ही वाले थे कि कुछ समझदार लोगों ने उसे पुलिस के सुपुर्द कर दिया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

लोगों को बहकाने, अन्ध-विश्वास फैलाने तथा मक्कारी करने वाले इस युवक का दिमाग पुलिस के डण्डों से साफ हो गया! उसके देव (भूत) सब भाग गये तथा वह उनके हाथ-पाँव जोड़ने लगा।

जो लोग इसे सिद्ध मान रहे थे तथा उसके आगे नाक रगड़ते थे, वे तो शर्म से पानी-पानी हो गये तथा लोगों को यह ज्ञात हो गया कि भूत-प्रेत न कुछ बना सकते हैं न अनिष्ट कर सकते हैं। मनुष्य अपने पुरुषार्थ से ही अपना जीवन बना सकता है।

वह युवक अकर्मण्य था। उसने मुफ्त में पेट भरने तथा सम्मान पाने की यह राह खोजी थी। उस राह पर चलकर अपमानित व दण्डित होकर वह भी मेहनत मजदूरी करने लगा।

ऐसे धूर्तों का बहिष्कार करने के लिये समाज के प्रत्येक सदस्य को आगे आना ही चाहिये।

पशु बलि की व्यर्थता

विदर्भ देश में एक गरीब ब्राह्मण रहता था। उसका नाम सत्य था। था तो वह तपस्वी एवं सदाचारी किन्तु वह यह विश्वास करता था कि कर्मकाण्ड में, देवताओं के पूजन में पशु-बलि का होना आवश्यक है। पर वह निर्धन होने के कारण अपने विश्वास की पूर्ति न कर पाता था क्योंकि न तो वह पशु पालन ही कर सकता था और न खरीद ही सकता था। इस कारण कूष्मांडादिक फलों को ही पशु-बलि के स्थान पर काटा करता था।

उसकी स्त्री भी बड़ी सुशील और पतिव्रता थी। वह भी ब्राह्मण की भाँति ही तपस्विनी थी। पूजन में उसे अपने पति के यह हिंसापूर्ण विचार रुचिकर न थे, किन्तु पति की आज्ञा कैसे टाले, इसलिए ही उसके काम में बेमन से ही सहयोग देती थी।

धर्माचरण में किसी की सच्ची इच्छा होती है और अज्ञानतावश यदि उससे कुछ त्रुटि हो जाती है, तो देवता उसे सुधार देते हैं अथवा यों कहिए कि भावना देखकर उस त्रुटि पर ध्यान नहीं देते। वे तो भावना को देखते हैं। कभी-कभी ऐसा भी देखा गया कि देवता ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देते हैं, जिससे साधक ठीक रास्ते पर आ जाय।

ब्राह्मण के साथ भी ठीक ऐसा ही हुआ। उसका पूजा का भाव तो निष्काम होता था, किन्तु उसमें हिंसात्मक कार्य का संकल्प करके गलती कर रहा था। इस गलती के कारण दूसरे कार्यों के द्वारा जो पुन्य-अर्जन करता, सब क्षीण होते चले जाते थे। उसकी सरलता पर धर्मराज को दया आ गई। उन्होंने एक दिन मृग का रूप धारण किया और ब्राह्मण जहाँ पूजन करता था वहाँ पहुँच गये। जब बलि देने का समय आया तो ब्राह्मण से बोले . . . . । "हे ब्राह्मण देवता ! आप पशुबलि का संकल्प करके केवल फलादि काटकर ही रह जाते हैं, यह ठीक नहीं। इससे आपका संकल्प पूरा नहीं होता, अतः आप हमारी बलि देकर अपना संकल्प पूरा करें। इससे हमारे शरीर का भी कल्याण हो जाएगा और आपका पूजा-कार्य भी सफल होगा।"

ब्राह्मण हिंसात्मक संकल्प करके पूजनादि तो करता था, किन्तु उसने अभी तक कभी पशु वध नहीं किया था। स्वभाव से भी वह बड़ा कोमल हृदय, दयालु और उदार था। मृग की बात सुनकर उससे बोला कि तुम्हारी उदारता के लिए भगवान तुम्हारा कल्याण करे। तुम हम से ऐसा न कहो, यहाँ से चले जाओ।

धर्मराज आसानी से मानने वाले कहाँ थे ? उन्होंने ब्राह्मण को स्वर्ग का लालच देकर बतलाया कि आप जो संकल्प करते हैं उसके पूर्ण होने से आपको उस स्वर्ग की प्राप्ति होगी, जहाँ इच्छा मात्र से जीव की कामना पूर्ण हो जाती है। नाना प्रकार के सुख भोगता है। अप्सराएँ और गंधर्व उसकी सेवा करते हैं।

ब्राह्मण भोलाभाला था। वह मृग वेषधारी धर्मराज की इस चाल को नहीं समझ पा रहा था कि वह उसे भुलावे में डालकर उन्हीं युक्तियों से काम ले रहा है, जो एक बलिदानी के पक्षपाती को करना चाहिए। स्वर्ग के भोगों की बात सुनकर उसकी प्राप्ति की कामना जाग्रत हो गई और मृग का बलिदान करने को राजी हो गया।

बलिदान के लिए जब उसने अस्त्र उठाया तो धर्म ने उचित अवसर जानकर ब्राह्मण को उपदेश देने का विचार किया। मृग बोला—"हे ब्राह्मण ! मेरा वध करने से पूर्व आप शान्त चित्त से यह विचार कर लें कि क्या एक प्राणी की हिंसा करने से उसका कल्याण हो सकता है ?" शास्त्रों में ईश्वर को प्राणिमात्र में रमा हुआ बतलाया गया है। फिर क्या हमारे अन्दर भी वही ईश्वर या तुम्हारा आराध्य देव नहीं है, जिसको तुम बलि देने जा रहे हो। सभी प्राणी उस परम पिता परमात्मा के पुत्रवत् हैं, फिर अपने पुत्र के प्राण लेकर प्रभु कैसे प्रसन्न हो सकते हैं ? हिंसावृत्ति तो सदा ही तामसिकता प्रधान है। इसमें जीव का कल्याण कभी नहीं हो सकता।

ब्राह्मण मृग की बात सुनकर दंग रह गया। उसका विवेक जाग्रत हो गया। उसने सोचा यह मृग ठीक ही कह रहा है। मृग की बात का उत्तर देते हुए बोला—"तुम्हारा कहना सर्वथा सत्य है। एक जीव का हनन करके दूसरा अपना हित किस प्रकार कर सकता है ?"

ब्राह्मण का उत्तर सुनकर धर्मराज प्रकट हो गए और उसे समझाकर बोले—"वत्स ! अब तक तुमने कभी हिंसा नहीं की केवल संकल्प मात्र करके फलादि काटे हैं, उसी के कारण तुम्हारी तपस्या, पूजा आदि का बहुत-सा भाग नष्ट हो गया है। यदि पशु हत्या करते तब तो तुम्हारे सब पुण्य क्षीण होकर घोर नारकीय-यातनाओं के भागी होते। यज्ञ या देव पूजन में पशु-हिंसा उचित नहीं है।"

धर्मराज को प्रत्यक्ष खड़ा देखकर ब्राह्मण उनके चरणों पर गिर पड़ा और अपने कर्मों की बार-बार क्षमा माँगने लगा। धर्मराज ने उठाकर छाती से लगा लिया और उसे आगे के लिये सचेत करके देवलोक पधारे।

यह राष्ट्रघाती संकीर्णता

ग्यारहवीं शताब्दी का द्वितीय दशक। सोमनाथ पट्टन निवासी विजय भट्ट नामक विद्वान् जब अपने नित्य कर्म से निपटकर वेद पाठ करने बैठता, तो उसकी शूद्रा सेविका के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आठ वर्षीय पुत्र देवा का ध्यान बरबस उधर आकृष्ट हो जाता। अपने बाल मन में वह भी उसकी तरह विद्वान् बनने के सपने सँजोने लगा।

मनुष्य में ज्ञान की भूख होना अस्वाभाविक नहीं। वह अज्ञान के अन्धकार को मिटाकर ज्ञान का प्रकाश फैलाना चाहता है, अविवेकी से विवेकी होना चाहता है। बालक देवा की यह चाह मानव मन की सहज प्रेरणा थी।

एक दिन अवसर देखकर बालक देवा ने डरते-डरते विजय भट्ट से उसे भी संस्कृत पढ़ाने का निवेदन किया। इस पर उसने उत्तर दिया—"तुम शूद्र हो। शूद्रों को देव भाषा पढ़ने और सुनने का अधिकार नहीं है।" बालक उसका यह कठोर उत्तर सुनकर सकपका गया।

विजय भट्ट की एक कन्या शोभना देवा की समवयस्क थी। वे उस कन्या को नित्य प्रति संस्कृत पढ़ाते। देवा ने पढ़ने की एक राह खोज ली। जब विजयभट्ट अपनी कन्या को पाठ पढ़ाते, वह भी मकान के एक सूने कोने में छिप जाता और बड़े ध्यान से सुना करता, उसकी बातें। कभी कुछ समझ में नहीं आता तो अवसर देखकर शोभना से पूछ लेता।

बालकों का मन निर्मल होता है। वह अपने पिता की अनुपस्थिति में देवा को बता दिया करती। जिज्ञासु, सचेष्ट देवा एक दिन पण्डित बन गया।

देवा जब संस्कृत पढ़ गया और धर्मशास्त्रों को समझने लगा तो उसने अपने समाज में ज्ञान प्रसार करना आरम्भ किया। एक शूद्र द्वारा वेद मन्त्रों का उच्चारण करना, देवभाषा संस्कृत का अध्यापन करना, रूढ़िवादी पण्डितों को सह्य नहीं हुआ। उन्होंने देवा को चेतावनी दी कि वह धर्म विरुद्ध कार्य न करे। देवा ने उन्हें शास्त्रों के प्रमाण देकर बताया कि शूद्र जन्म से नहीं कर्म से होते हैं। इस पर कुछ दुराग्रही ब्राह्मणों ने उसे अपमानित ही नहीं किया उसे मारापीटा भी।

अकारण ही इस प्रकार अपमानित किये जाने की प्रतिक्रिया स्वरूप देवा के मन में प्रतिशोध की भावना उत्पन्न हुई। किसी के स्वाभिमान पर चोट पड़ती है, तो प्रतिकार करने की भावना उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। देवा के मन में भी सोमनाथ पट्टन के ब्राह्मण वर्ग से प्रतिशोध लेने की अग्नि जल उठी। दुर्योग से अपमानित तिरस्कृत, देवा की भेंट महमूद गजनवी के एक गुप्तचर से हो गई। महमूद गजनवी सोमनाथ के मन्दिर पर आक्रमण करना चाहता था। गुप्तचर उसने इसी प्रयोजन से भेजे थे। उसने अपने साथ हुए हिन्दू समाज के दुर्व्यवहार की चर्चा उस गुप्तचर से की। उसने कहा—"तुम इतने विद्वान हो फिर भी इन लोगों ने तुम्हें क्या दिया है ? तिरस्कृत ही तो किया है, तुम मुसलमान क्यों नहीं बन जाते ? हम तुम्हारे अपमान का बदला लेंगे।" वह अपने अपमान का बदला लेना ही चाहता था। उसने इस्लाम धर्म अपना लिया और देवा से फतह मुहम्मद हो गया।

अनहिलवाड़ पाटन नरेश भीमदेव चौलुक्य ने महमूद गजनवी के आक्रमण से सोमनाथ मन्दिर की रक्षार्थ अपनी सेना सजा रखी थी। अन्य क्षत्रिय नरेशों ने भी उसकी सहायता की। इस सुदृढ़ व्यवस्था के कारण महमूद गजनवी सोमनाथ की अपार धन-सम्पदा प्राप्त करने—मन्दिर पर अधिकार करने में सफल नहीं हो पा रहा था।

फतह मुहम्मद सोमनाथ पट्टन के सभी रहस्य जानता था। जब गजनवी असफल होकर लौटने लगा तो फतह मुहम्मद ने कहा—"निराश होने की क्या आवश्यकता है ? कल रात्रि को मैं चलूँगा आपके साथ। सबसे आगे मैं रहूँगा। आप अपने सैनिकों को मेरे पीछे कर दें।" महमूद गजनवी बहुत प्रसन्न हुआ। उसने लौट चलने का विचार त्याग दिया।

दूसरे दिन पूर्व नियोजित योजनानुसार ही काम हुआ। आगे-आगे फतह मुहम्मद और पीछे-पीछे म्लेच्छ सैनिक। वह मन्दिर की रक्षार्थ बने हुए प्राचीर पर एक उपयुक्त गुप्त स्थान देखकर चढ़ गया। थोड़े-से सैनिक उसके पीछे चढ़ गये। उन्होंने भीतर जाकर प्रवेश द्वार खोल दिया। गजनवी की पूरी सेना बाढ़ की तरह अन्दर घुस आई। सोमनाथ के मन्दिर पर गजनवी का अधिकार हो गया। राजपूतों की हार हुई। सोमनाथ की मूर्ति तोड़ दी गयी। असीमित धन सम्पदा, हीरे, जवाहरात महमूद के हाथ लगे।

जाति प्रथा और छूआछूत की भावना से हमारे देश का कितना अहित हुआ है, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। यदि देवा के साथ वैसा दुर्व्यवहार नहीं होता वह क्यों इस्लाम धर्म अपनाता, क्यों वह अपमान की आग में जलकर महमूद गजनवी की सहायता करता और गजनवी सोमनाथ पर विजय पाने में, उसे लूटने में और देवमूर्ति खण्डित करने में सफल होता। कहने की आवश्यकता नहीं कि सोमनाथ के पतन, भीमदेव चौलुक्य की पराजय और लुटेरे महमूद की सफलता में तत्कालीन रूढ़िवादिता, अस्पृश्यता व संकीर्णता सहायक हुई थी।

प्रतिगामिता पर सौजन्य की विजय

फारमोसा—एक छोटा-सा राज्य। वहाँ जन सेवा के उद्देश्य से एक पादरी अपनी धर्म-पत्नी लिलियन ब्रिक्सन सहित आए। पति तो दिन भर कार्यों में व्यस्त रहते और उसके बदले में उन्हें मिशनरी संगठन की ओर से निर्वाह वेतन भी मिलता, परन्तु पत्नी क्या करे ? निष्काम सेवा का मार्ग खोज ही निकाला और उस पर चल भी दी। यह अवलम्बन इतना सुखद परिणाम देने वाला रहा कि उन्हें विश्व विख्यात ही बना दिया। सेवा के जिस पथ का उन्होंने अनुसरण किया उस पथ का एक प्रमुख चरण था—महिला स्कूलों की स्थापना और इस कार्य में उन्हें कई संघर्षों का सामना करना पड़ा।

एक बार वह किसी गाँव में महिला स्कूल खुलवाने के लिए गईं। प्रारम्भिक प्रचार सम्पर्क के बाद ही गाँव से उनके लौट जाने के बाद ग्रामीणों ने सलाह की कि—एक विदेशी महिला हमारी इच्छा के विरुद्ध हम पर कोई बात थोपना चाहे, यह हमारी कमजोरी ही सिद्ध होगी। अब आप सब लोग तैयार रहें। यह स्त्री बड़ी खतरनाक है। अब अगर यदि यह गाँव में घुसी तो इसे मार-मार कर हम गाँव से बाहर निकाल देंगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ग्रामवासियों के इस निश्चय की सूचना लिलियन तक भी पहुँची। मित्रों और सहयोगियों ने समझाया कि यदि आप वहाँ के लोगों को कन्या शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ भी समझाने गईं, तो अपमानित होकर लौटना पड़ेगा। संभव है वे लोग आप पर हाथ भी चला बैठें।"

लिलियन डिक्सन ने कहा—"मित्र ! ऐसे व्यक्तियों के बीच में ही तो काम करने में मजा आता है। जहाँ विरोध, उपेक्षा न हो, वहाँ सेवा कार्यों का आनन्द कहाँ मिल पाता है ? जो भ्रान्त हैं, यदि उन लोगों ने मेरा अपमान भी किया तो मैं इसे प्रभु का एक ऐसा वरदान मानकर उसका स्वागत करूँगी जो मेरे धैर्य, साहस-निष्ठा, सेवाभावना की परीक्षा लेने, उसे निखारने के लिए मिला है।"

साथी सहयोगियों ने और भी कई तरह से समझाया, बुझाया, परन्तु लिलियन अपने निश्चय से जरा भी नहीं डिगीं और उन्होंने गाँव में सभा आयोजन की तैयारी व व्यवस्था करने की सलाह दी। डरते और काँपते हाथों से कार्यकर्त्ताओं ने तैयारी की। स्थान चुना गया मुखिया के मकान के सामने, मुखिया ने ही ग्रामवासियों से यह अपील की थी कि लिलियन को गाँव में घुसने ही नहीं देना चाहिए, मुखिया चुपचाप लिलियन की प्रतीक्षा कर रहा था।

सभा आयोजन के निर्धारित समय से लगभग एक घण्टे पूर्व लिलियन उक्त गाँव में पहुँचीं और सभास्थल की ओर जाने के बजाय उक्त मुखिया के घर पर दस्तक देने लगीं। दरवाजा खुला—खोलने वाला मुखिया लिलियन को खड़ा देखकर विस्मित रह गया। लिलियन बेधड़क अन्दर आ गयीं। अन्दर आकर उसने वृद्ध मुखिया से विनम्रता पूर्वक कहा—"पिता जी प्रणाम।" इस विनम्रता ने वृद्ध का गुस्सा ठण्डा कर दिया।

इत्मिनान से बैठकर लिलियन ने वृद्ध को सम्बोधित करते हुए कहा—"यों महिलाओं के विकास की समस्या आपकी अपनी है, किन्तु क्या कभी आपने सोचा है कि सारा यूरोप आज सारे संसार पर क्यों छाया हुआ है ? सिर्फ इसलिए कि उसने अपने समाज की नारी शक्ति को विकसित कर लिया है। यह आपका भ्रम मात्र है कि शिक्षित और सुविकसित महिलाएँ पुरुषों का विरोध करेंगी। विरोध कहीं भी हो उसका कारण संकीर्णता होती है न कि शिक्षा। विकसित स्थिति में तो सहयोग-सहकार सामंजस्य का ही बोलबाला रहता है। फिर नारी सिर्फ पत्नी ही तो नहीं माँ भी तो है। क्या आप अपनी माँ को गई-गुजरी स्थिति में रखकर गौरवान्वित हो सकते हैं ?" मुखिया ने ये सारी चीजें सोची भी न थीं। वह यह सब सुनकर अवाक् रह गया। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। लिलियन ने कहा—"महिलाओं और कन्याओं को ऊपर उठाये बगैर कोई भी देश आज तक प्रगति नहीं कर सका है, फिर घर-परिवारों की क्या ताकत। आप स्वयं भी अपने गाँव की अपने समाज की और अपने भाई बन्धुओं की प्रगति का द्वार आगे बढ़कर खोलें।"

ये शब्द चूँकि करुणा विगलित स्वर में हृदय से कहे गये थे इसलिए हृदय तक पहुँचने और उसे प्रभावित करने में समर्थ रहे। मुखिया का विरोध सहयोग में परिवर्तित हो गया। उसने स्वयं सभा में ग्रामवासियों को महिलाओं के विकास में भरपूर सहयोग के लिए आह्वान किया। करुणा और सेवा ने प्रतिरोध और प्रतिगामिता पर विजय प्राप्त की तथा उक्त मुखिया ने महिला विकास के प्रत्येक क्षेत्र में अग्रणी भूमिका निभाई।

अक्ल के अंधे—शेखीखोर

छात्रों ने काशी में संस्कृत विद्या पढ़ी। उनमें से चार पारंगत हो गये, तो घर वापस लौटे। मार्ग लम्बा था। सो कुछ महत्त्वपूर्ण नीति-वाक्य उन्होंने याद कर लिए ताकि उलझने सुलझाने में काम आयें। वे वाक्य थे—

१. महाजनों येन गतः स पन्थाः, २. राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः, ३. धर्मस्य त्वरिता गतिः, ४. आगमिष्यति यत्पत्रं तदस्मांस्तारायिष्यति, ५. अतिविस्तार विस्तीर्ण तद्भवेन्न चिरायुषम् और ६. छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति।

इन वाक्यों का यथा समय प्रयोग करते हुए, मार्ग पूरा करने का निश्चय उन लोगों ने किया।

आगे जाते हुए एक चौराहा पड़ा। राही रास्ता कौन-सा है, यह जानना था। श्लोक याद आया—**महाजनो येन गतः स पन्थाः**। महाजन जिस पर चलें, वही मार्ग। एक मार्ग पर मुर्दे के साथ भीड़ जा रही थी। चारों उनके पीछे चल पड़े और श्मशान पहुँच गये।

यहाँ अपना कौन ? पराया कौन ? स्मरण आया, भाई सगा होता है। यहाँ कोई भाई है क्या ? नजर दौड़ाई। श्मशान में एक गधा चर रहा था। याद आया **राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः।'** राजद्वार और श्मशान में जो खड़ा हो वह भाई। इस कसौटी पर गधा ही खरा उतर रहा था। सो, वे उसके गले मिले और रास्ता पूछा। गधे ने दुलत्तियाँ लगा दीं।

भटकते-भटकते वे नदी तट पर पहुँचे। पार कैसे हों ? कौन पार करे ? नाव दीखी नहीं। केले का बड़ा पत्ता बहता आया। नीति वाक्य याद आ गया—**आगमिष्यति यत्पत्रं तदस्मांस्तारयिष्यति।** जो पत्ता बहता आयेगा वही उद्धार करेगा। सो, वे पत्ते पर चढ़ कर पार होने की बात सोचने लगे। डूबते-डूबते बचे। एक अधिक गहरे में उतरा दीखा तो उसका सिर काट लिया। श्लोक में यही तो कहा गया था कि—**सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्द्धं त्यजति पण्डितः**—सर्वनाश की स्थिति उत्पन्न होने पर पण्डित लोग आधा छोड़ देते हैं।

जैसे-तैसे रास्ता पार करते, जो शेष थे, वे एक गाँव में ठहरे। निवासी उन्हें अपने-अपने घर ले गये और अलग-अलग प्रकार के भोजनों से सत्कार किया। एक के घर आटे के लम्बे तन्तु जैसी 'सेंवई' दूसरे के घर बड़ी पूड़ी, तीसरे के घर छेद वाले 'बड़े' परसे गये तीनों ने खाने से पूर्व यह सोचा—इनमें कोई खोट तो नहीं है ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

'सैंवई' वाले को स्मरण आया—**'दीर्घसूत्री विनश्यति** दीर्घ सूत्री का नाश होता है। उसने खाने से इनकार कर दिया। दूसरे ने बड़ी पूरी खाते समय सोचा—**अतिविस्तार विस्तीर्ण तदुभयेत्र चिरन्युषम्**—बहुत फैली हुई का सेवन करने वाला जल्दी मरता है। तीसरे ने भी छेद वाले 'बड़े खाने से इनकार कर दिया। उसे वाक्य स्मरण था—**'छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति**—छिद्र में बहुत अनर्थ होते हैं।' सो खाया उसने भी नहीं। तीनों परसी थालियाँ छोड़कर चल दिये।

दुःखी होकर घर पहुँचे, लोग इन व्यर्थ का अनर्थ करने वाली पण्डितों की मूर्खता सुनकर लोट-पोट हो गये।

बिकी वस्तु पर क्या अधिकार

एम. एस. करने के बाद इधर लड़का अपने ही शहर दौलताबाद में प्रैक्टिस शुरू करने जा रहा था, उधर उसके पिता ने उसकी शादी की बात शुरू कर दी। जिस दिन लड़की के पिता जुगराजपुर के पास श्री नीलाम्बर शास्त्री अपनी कन्या का सम्बन्ध तय करने आये, युवक कुल भूषण पाठक घर पर ही थे। पिता श्री कमलेश नारायण पाठक ने दहेज की बात-चीत की तो उसे बुरा लगा, उसने कहा—'पिताजी, आप जैसे शिक्षित, समझदार आदमी को तो दहेज जैसी दुष्ट परम्परा का समर्थन नहीं करना चाहिये। खेद है कि आप भी दहेज माँगते हैं। सोचिये २० हजार रुपये देकर जो अपनी कन्या का विवाह आपके घर में करेगा वह इतने रुपये बैंक में जमा करके अपनी कन्या के लिये पति नौकर नहीं रख सकता था ? पति पढ़ा-लिखा हो यही क्या आवश्यक है ?"

श्री कमलेश नारायण जी एक जमाना देख चुके हैं। लड़के को सीधी-सादी बातें उनके पल्ले कैसे पड़तीं ? उन्हें क्या पता था कि बहू अपने घर की शोभा और मेहमान होती है, उसका मोल-भाव नहीं करते वरन् आदर देकर लाया जाता है। अभी तक तो लड़की के पिता से ही झक-झक हुई थी, अब लड़के पर बरस पड़े। "लल्ला ! पूरे बीस हजार तुम्हारी पढ़ाई में खर्च किये हैं, श्वसुर से इतनी हमदर्दी, स्त्री से इतना प्यार है, तो तुम चुका दो न ?"

युवक ने स्थिति की गम्भीरता को परखा। आगे कुछ नहीं बोला। दरवाजे पर मेहमान बैठे हों, तब आपस में झगड़ने की शोभा भी नहीं थी चुप हो गया।

श्री शास्त्री के एक ही कन्या है। सोचा थोड़ी जमीन है उसे बेच देंगे ८-१० हजार के जेवर जकड़े हैं वह बेच देंगे। दो-चार हजार ऋण ले लेंगे। इनका कोटा पूरा हो जायेगा। लड़की तो सुख में रहेगी। समाज में एक ओर कन्याओं के लिए अपना रक्त निचोड़ देने का यह आदर्श और दूसरी ओर लड़के के नाम पर रकम ऐंठने का वह कमाईपन। एक कितना करुणाजनक दूसरा कितना हृदयहीन ? भगवान जाने इस चक्की में देश कब तक पिसता रहेगा ?

सम्बन्ध तय हो गया। श्री नीलाम्बर शास्त्री ने २० हजार देना स्वीकार कर लिया। लगन निश्चित हो गई। बरात आई। जो कुछ स्वागत-भगत हो सकती थी, श्री शास्त्री जी ने की। कपड़े लत्ते, अलंग-पलंग, नेग-न्योछावर हँसी-खुशी देकर बरात विदा कर दी।

श्री कमलेश नारायणजी पाठक भेंट पाया हुआ सारा सामान लेकर चलने लगे, पर 'लड़का जहाँ बैठा था वहीं बैठा रहा। उन्होंने रौब में कुछ व्यंग में कहा—"बेटा ससुराल बहुत प्यारी लग रही है, घर चलने का इरादा नहीं है क्या ?"

लेकिन तब पुत्र की गम्भीरता देखते ही बनती थी। उसने कहा—पिताजी दहेज की आखिरी किश्त न चुकने तक मैं आपका बेटा था और अब जब आप सारी रकम पा चुके, तो मुझ पर अधिकार शास्त्री जी का हो गया। अब मुझ पर इनका स्वामित्व है, जो कुछ बन पड़ेगा कमाऊँगा, इनके पास रहूँगा और इनकी सेवा करूँगा। यह कहकर अपनी नव विवाहिता धर्म-पत्नी से कहा—'चलो, अब हम यहीं रहेंगे।"

पाठक जी सिर धुनते रह गये, लड़का न लौटा। बारात वापस लौटी। गाँव की स्त्रियाँ दरवाजे पर बहू का मुँह देखने को खड़ी थीं, पर देखने को दूल्हा भी न मिला। बेचारी सिर पटककर रोईं। हाय रे दहेज ! तूने हमारा बेटा भी हमसे छीन लिया। लड़के ने किसी की परवाह न की और निश्चय किया जब तक विवाह में खर्च हुई रकम कमाकर लौटा न देंगे, तब तक वह घर न लौटेंगे। शिक्षित समाज की इस शुरुआत का अन्त क्या दहेज लेने वाले सोचें। अभी तो युवा रक्त धीरे-धीरे गर्म हो रहा है।

अपनी तृप्ति को धर्म मत बनाओ

एक बार नगर के एक देव मन्दिर में कोई उत्सव था। नगरवासी प्लेटो को उसमें सम्मिलित होने के लिये सम्मानपूर्वक ले आये। नगरवासियों के प्रेम और आग्रह को प्लेटो ठुकरा न सके। उत्सव में सम्मिलित हुये। वैसे उनका विचार यह था कि इस तरह के उत्सव आयोजनों में किया जाने वाला व्यय मनुष्य के कल्याण में लगाना चाहिये। बाहरी टीपटाप दिखाये या प्रदर्शनबाजी में नहीं।

मन्दिर में जाकर एक नया ही दृश्य देखने को मिला। नगरवासी देव प्रतिमा के सामने अनेक पशुओं की बलि चढ़ाने लगे। जो भी आता एक पशु अपने साथ लाता। देव प्रतिमा के सामने खड़ा कर, उस पर तेज अस्त्र से प्रहार किया जाता। दूसरे क्षण वह पशु तड़पता हुआ अपने प्राण त्याग देता और दर्शक यह सब देखते, हँसते इठलाते और नृत्य करते।

जीव-मात्र की अन्तर्व्यथा की अनुभूति रखने वाले प्लेटो को यह दृश्य देखा न गया। उन्होंने पहली बार धर्म के नाम पर ऐसे नृशंस आचरण के दर्शन किये। वहाँ दया, करुणा, संवेदना और आत्म-परायणता का कोई स्थान न था।

वे उठकर चलने लगे। उनका हृदय अन्तर्नाद कर रहा था। तभी एक सज्जन ने उनका हाथ पकड़कर कहा—"मान्य अतिथि ! आज तो आपको भी बलि चढ़ानी होगी, तभी देव प्रतिमा प्रसन्न होगी। लीजिये यह रही तलवार और यह रहा बलि का पशु ! वार कीजिये और देव प्रतिमा को अर्घ्यदान दीजिये।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्लेटो ने शांतिपूर्वक थोड़ा पानी लिया। मिट्टी गीली की। उसी का छोटा-सा जानवर बनाया। देव प्रतिमा के सामने रखा, तलवार चलाई और उसे काट दिया और फिर चल पड़े घर की ओर।

अंध-श्रद्धालु इस पर प्लेटो से बहस करने लगे—"क्या यही आपका बलिदान है ?"

'हाँ' प्लेटो ने शांति से कहा—"आपका देवता निर्जीव है, उसे निर्जीव भेंट उपयुक्त थी सो चढ़ा दी, वह खा-पी सकता नहीं, इसलिये उसे मिट्टी चढ़ाना बुरा नहीं।"

उन धर्मधारियों ने प्रतिवाद किया—"और जिन लोगों ने यह प्रथा चलाई, क्या वे मूर्ख थे, क्या आपका अभिप्राय यह है कि हमारा यह कृत्य मूर्खतापूर्ण है ?"

प्लेटो मुसकराये, पर उनका हृदय कराह रहा था। जीव-मात्र के प्रति दर्द का भाव अब स्पष्ट हो ही गया। उन्होंने निर्भीक भाव से कहा—"आप हों या पूर्वज, जिन्होंने भी यह प्रथा चलाई—पशुओं का नहीं मानवीय करुणा की हत्या का प्रचलन किया है। कृपया न देवता को कलंकित करो, न धर्म को। धर्म, दया और विवेक का पर्याय है हिंसा और अन्ध-विश्वास का पोषक नहीं।"

उस प्रश्न का उत्तर किसी के पास नहीं था। नगरवासी सिर झुकाये खड़े रहे। प्लेटो उनके बीच से चले आये, ऐसे ही जैसे धर्म को स्वार्थ साधन बनाने वालों के पास से परमात्मा भाग जाते हैं।

सबसे श्रेष्ठ—सबसे महान् स्मारक

घटना कलकत्ता की है। बड़ी ही उलझन में रहते थे आजकल श्री सोमानी जी ! पिताजी का देहान्त हो चुका था और उनकी स्मृति को अमर बनाने के लिये कोई प्रतीक बनवाना चाहते थे। वे एक धनीमानी व्यक्ति हैं साथ ही बुद्धिशील भी।

यों तो परम्परागत कई चीजें हैं बनवाने को—कुआँ, मन्दिर, धर्मशाला, अस्पताल तथा अन्य उपकरण, किन्तु इन सबसे परे वे कोई ऐसी चीज बनवाना चाहते थे, जिससे अधिक से अधिक व्यक्ति केवल लाभान्वित ही न हों—बल्कि जीवन की नई और सही दिशा पा सकें।

यही निर्णय वे नहीं ले पा रहे थे और इसी से मानसिक स्थिति निरन्तर उद्विग्न बनी रहती थी। आज भी जब भोजन से निवृत्त हुए तो थोड़ी देर आराम करने के उद्देश्य से लेटे थे। पत्नी से भी छिपी न रही थी वह मानसिक ग्रन्थि। वे आईं और पास बैठ गईं। पूछा—"आजकल आप बहुत सोच-विचार किया करते हैं। ऐसी क्या नई बात आ गई है ? पिताजी के न रहने से सारी काम की जिम्मेदारी आपके ऊपर आ गई है। काम भी बढ़ ही गया है। न हो, तो एक-आध आदमी और रख लें।"

तब श्री सोमानी जी बोले—"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। काम से मैं नहीं घबराता। सब हो ही रहा है। मेरे दिमाग में एक ही चिन्ता है। पिताजी का स्वर्गवास हुए एक वर्ष होने को आया और मैं अभी तक उनके स्मारक के रूप में कुछ बनवाने की बात को पूरा नहीं कर सका हूँ।"

तब सौहार्द्र भरे स्वर में पत्नी बोली—"यदि आप स्वयं इस समस्या का हल निकालने में सफल नहीं हो पा रहे हैं, तो अपने मित्रों से सलाह लीजिये। कोई न कोई बात जँच ही जायेगी।"

और दूसरे दिन से सचमुच ही वे अपने सब मित्रों से इस विषय पर परामर्श करने लगे। मित्र भी सभी स्तरों के थे। अधिकांश ने वही बातें दुहराईं। किसी ने मन्दिर बनवाने को कहा, किसी ने प्याऊ लगाने को। किसी ने अन्न तथा वस्त्र के वितरण पर जोर दिया तो किसी ने बच्चों को मुफ्त दूध बँटवाने की सलाह दी, पर सारे ही परामर्श उन्हें उपयोगी होते हुए भी प्राणहीन से लगे। वे कोई ऐसी योजना चाहते थे, जिससे व्यक्ति कोई स्थायी सहायता पा सके।

तभी उनके एक मित्र ने उन्हें परामर्श दिया कि आप एक पुस्तकालय बनवाएँ। उससे अधिक से अधिक व्यक्ति लाभान्वित होंगे तथा जीवन का शाश्वत-ज्ञान प्राप्त करेंगे।

यह बात श्री सोमानी जी को बहुत पसन्द आई। उनके मस्तिष्क के तन्तु जिस तत्व की खोज में थे, वह मिल गया था अब उन्हें।

तत्काल ही योजना को कार्यान्वित करने के लिये सारी योजनाएँ जुटाने की जिम्मेदारी विभिन्न व्यक्तियों को सौंप दी गई।

श्री सोमानी जी ने तीस हजार रुपया इस शुभ कार्य के लिये व्यय किया। पुस्तकालय बन गया, उसमें चुन-चुन कर व्यक्ति और समाज का सही मार्ग-दर्शन कर सकने वाली पुस्तकें रखी गईं, निरर्थक साहित्य का एक कागज भी उनमें नहीं घुसने दिया ; अब सैकड़ों व्यक्ति हर रोज उसका लाभ उठाने लगे हैं। अनेक दिशाहीनों को जीवन जीने का ढंग मिला। ज्ञान आत्मा का भोजन है। वह जिसे भी मिला है उसने सद्पंथ की ओर ही कदम बढ़ाये हैं सदा। अनेक व्यक्ति इस पुस्तकालय से जीवन निर्माण का प्रकाश प्राप्त कर रहे हैं।

निश्चय ही इस स्वरूप में अपना स्मारक देखकर स्वर्ग में उनके पिताजी की आत्मा बहुत ही प्रसन्न तथा संतुष्ट हुई होंगी !

पटेल की बलि

समर्थ गुरु रामदास एक गाँव में उपदेश दे रहे थे तभी पता चला गाँव का पटेल देवी के आगे मुर्गे की बलि देने जा रहा है। समर्थ उठे और पटेल व उसके साथी को जा पकड़ा। दोनों हाथों से उन्हें घसीटते हुए बोले—आज मुझे देवी ने स्वप्न दिया है कि मेरा पेट मुर्गे से नहीं दो मुस्टण्डों से भरेगा सो तुम्हारी बलि देंगे। पटेल घबड़ाया क्षमा माँगी और फिर कभी बलि न देने की शपथ ली तब कहीं समर्थ ने उन्हें छोड़ा।

(१) अज्ञान का आश्रय पाकर ही कुरीतियाँ पनपती हैं।

(२) कुरीतियाँ और अन्ध परम्पराओं का साहसपूर्वक प्रतिरोध किया जाना चाहिये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपनी ओर भी देखो

एक राजा के कई नौकर थे। राजा उनके साथ कुटुम्बियों जैसा व्यवहार करता था। आवश्यकता पड़ने पर वह उन्हें धन उधार भी देता। एक राज-कर्मचारी पर एक हजार रुपया बहुत दिन से शेष था। कोष के कर्मचारियों ने पकड़कर राजा के समक्ष उपस्थित किया। राजा को उसकी दशा देखकर दया आ गई और उसने उसका ऋण माफ कर दिया। उसी कर्मचारी का कुछ रुपया एक दूसरे मनुष्य पर शेष था, वह उस पर तकाजा करने गया तो उसने अपनी शोचनीय दशा तथा गृहिणी की बीमारी की बात कहते हुए एक सप्ताह में रुपये देने की बात कही और उससे बहुत अनुनय-विनय की। परन्तु वह कर्मचारी न माना और उसने उसके साथ मारपीट कर डाली और बोला कि 'अभी रुपए लूँगा।' कर्जदार ने राजा से रक्षा के लिए निवेदन किया तो कर्मचारी की पेशी हुई। राजा ने सब कारण जानकर कर्मचारी से कहा कि विपत्ति सब पर आती है। अभी, उस दिन मैंने तेरी बुरी दशा देखकर ही तो राजकोष का एक हजार रुपया माफ किया था। तू इस व्यक्ति के प्रति किंचित भी दया नहीं कर सका ? मैंने तुझे माफी दी थी, इसलिए कि किसी की आत्मा को कष्ट न पहुँचे, परन्तु तू इसके योग्य नहीं है अतः राज्य का बकाया लाकर इसी समय दे।

परमात्मा कितनी उदारता के साथ हमें अगणित वस्तुएँ दे रहा है, पर हम उस प्राप्त सम्पदा में से थोड़ा भी दूसरों को देने में कितनी संकीर्णता दिखाते हैं। इसी प्रकार परमात्मा हम से निरन्तर होने वाली भूलों का विचार न करके सदा कृपा ही बनाये रहता है पर हम दूसरों की थोड़ी-सी गलती को क्षमा करने की उदारता नहीं दिखाते।

नौकरी चली गयी

एक युवक को नौकरी का इन्टरव्यू देने के लिए २५ तारीख को बुलाया गया। युवक २१ तारीख को चलने को हुआ तो घर वालों ने कहा आज शनिवार है अच्छा दिन नहीं कल जाना, दूसरे पण्डित जी बोले रवि, शुक्र को पश्चिम की यात्रा वर्जित है, सो वह दिन भी गया। तेइस तारीख को योगिनी बाएँ पड़ेगी कहकर ज्योतिषी ने चक्कर में डाल दिया। चौबीस को कपड़े पहनकर चलने को हुआ कि एक बच्ची ने छींक दिया, यद्यपि लड़की को जुकाम था, पर घर वालों ने नहीं जाने दिया। पच्चीस को घर से बाहर निकलते ही बिल्ली रास्ता काट गई। अपशकुन टालने के लिए जब तक लड़के को रोककर रखा गया, रेलगाड़ी निकल गयी। युवक २६ को ऑफिस पहुँचा तो दरवाजे पर लिखा पाया—नो वैकेन्सी "अब कोई स्थान खाली नहीं।"

अन्ध विश्वासों के कारण अक्सर बड़ी हानियाँ उठानी पड़ती हैं।

जहरीले फल

रेगिस्तान में एक काफिला जा रहा था। शाम होते-होते एक स्थान पर कुछ वृक्ष दीखे, वहीं पड़ाव करने का निश्चय किया गया। स्थान पेर पहुँचने पर लोगों ने देखा कि एक पेड़ पर बहुत से अच्छे पके फल लगे हैं। सभी दौड़ पड़े खाने की लालसा में। तभी सरदार ने रोक दिया, उसने कहा—"कार्य करने से पूर्व विवेक का उपयोग करना चाहिये। यदि वह फल उपयोगी होते तो पहले वाले काफिले इन्हें समाप्त कर देते। पहले फलों की परीक्षा कर लें।"

परीक्षण किया गया तो पता चला कि फल जहरीले थे।

बिना जाँचे परखे किया गया उपयोग प्रायः हानिकारक है इसलिए अनायास मिली वस्तु की उपयोगिता-अनुपयोगिता पर विचार कर लेना चाहिए।

मूर्खता

एक गुरु के दो शिष्य थे। शाम को दोनों गुरुदेव के पैर दबाया करते थे। एक बायाँ दूसरा दायाँ—दोनों में पैरों का बँटवारा हो चुका था।

एक दिन एक शिष्य किसी काम से बाहर चला गया। दूसरा शिष्य अपने हिस्से में आये पैर को दबाता रहा। इसी बीच गुरु ने करवट बदली तो दाहिने पैर के ऊपर बायाँ पैर आ गया। यह देखकर शिष्य बड़ा क्रुद्ध हुआ। दूसरे शिष्य का पैर मेरे पैर के ऊपर, इसकी यह हिम्मत—उसने डण्डा उठाया और लगातार चार-पाँच डण्डे बाँये पैर पर जमाये। गुरुजी चिल्ला पड़े तब तक दूसरा शिष्य आ गया। कारण सुना तो गुरुभाई के कृत्य पर वह भी उत्तेजित हो उठा। उसने भी एक मोटा डण्डा उठाया और गुरु के दाहिने पैर को पीटने लगा। गुरुजी चीख मारकर रो पड़े। आश्रम के समीप के लोग दौड़े और गुरु को इन शिष्यों की भयंकर श्रद्धा-भक्ति से बचाया। एक बुजुर्ग ने दोनों शिष्यों को समझाया—मूर्खो तुमने यह भी नहीं सोचा कि एक दाँया है और एक बाँया, तो क्या हुआ, पैर तो दोनों एक ही गुरु के हैं किसी को पीटो कष्ट तो उन्हीं को होगा। सारे पड़ोसी उनकी मूर्खता पर हँसते हुए लौट गये।

अपने काम की श्रेष्ठता पर कभी लड़ने-झगड़ने की अपेक्षा यह सोचना चाहिए कि काम तो सभी देश जाति के उत्थान के लिए किये जाते हैं।

पितामह की समाधि

एक था बन्दर और एक था सियार। दोनों में बड़ी मैत्री थी। एक दिन दोनों वन-विहार के लिये निकले। वे जिस रास्ते से चले उसमें एक कब्रिस्तान पड़ता था। एक कब्र के पास पहुँचकर बन्दर ने उसे साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया और आँखें मूँदकर कुछ स्तुति-सी करने लगा। उसका ख्याल था कि ऐसा उसे करते देखकर सियार बहुत प्रभावित होगा और उसकी विद्वता का लोहा मानेगा।

लेकिन सियार ने कुछ और ही समझा उसे लगा कि बन्दर को कोई बीमारी हो गई है। उसने पूछा पेट दर्द कर रहा है, यहाँ तुम खड़े-खड़े क्या कर रहे हो ?

बन्दर जी खीझे तो, पर अपनी नाराजगी भीतर ही पचाते हुए बोले—"तुझे मालूम नहीं यह समाधि मेरे पितामह की है मैं उनके उत्कृष्ट ज्ञान, बल पौरुष और कला-कौशल का गुणानुवाद कर रहा हूँ जिससे मै भी वैसा ही बनूँ।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बन्दर ने अपनी शब्द रचना में सारा जोर इसलिये लगाया कि इस बार सियार उसकी इस श्रद्धा-भक्ति की दाद देता, पर सियार ने हँसते हुए कहा—"जो जी में आये कहो मित्र ! तुम्हारे पितामह यहाँ कोई बैठे तो हैं नहीं जो सत्यासत्य का निर्णय दे सकें।"

बन्दर को अपने दिखावे पर बड़ा दुःख हुआ, उसने फिर कभी वैसा प्रपंच न रचने का संकल्प लिया और प्रायश्चित्त के लिए एकान्त में चला गया।

औरों को प्रभावित करने के लिए किया गया दिखावा, मूढ़ता ही सिद्ध होती है।

उपदेश नहीं

बच्चा तालाब में डूब रहा था और उसका पिता किनारे पर खड़ा उपदेश दे रहा था—"ले मेरा कहना न मानने का फल भुगत।" तभी एक सज्जन उधर से आये और कूदकर बच्चे के प्राण बचाये।

हर समय उपदेश करते रहना ही उपयुक्त नहीं है। अपना कर्तव्य भी पूरा करना चाहिए।

मृत्यु की चेतावनी

मनुष्य बन गया तो उसे विदा करते हुए विधाता ने कहा—"तात् ! जाओ और संसार के प्राणियों का हित करते हुए स्वर्ग और मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करो और ऐसा कुछ न करना जिससे तुम्हें मृत्यु के समय पछतावा हो। आदमी ने विनय की, "भगवन् आप एक कृपा और करना मुझे मरने से पहले चेतावनी अवश्य दे देना। ताकि यदि मैं मार्ग भ्रष्ट हो रहा होऊँ तो सँभल जाऊँ ?" तथास्तु कहकर विधि ने मनुष्य को धरती पर भेज दिया। पर यहाँ आकर मनुष्य इन्द्रिय भोगों में पड़कर अपने लक्ष्य को भूल गया। जैसे-तैसे आयु समाप्त हुई, कर्मों के अनुसार यमदूत उसे नरक ले जाने लगे तो उसने विधाता से शिकायत की आपने मुझे मृत्यु के पूर्व चेतावनी क्यों न दी ? विधाता हँसे और बोले—(१) तेरे हाथ काँपे, (२) दाँत टूट गये, (३) आँखों से कम दिखने लगा, (४) बाल पक गये वह चार संकेत पर भी तू न सँभाला तो इसमें मेरा क्या दोष ?

मृत्यु प्रतिपल निकट आती है। उसकी सूचनाएँ भी मिलती हैं, परन्तु अज्ञानवश हम अचेत ही रह जाते हैं।

बिल्ली और एकाग्रता

गुरु और शिष्य शहर से बाहर घने जंगल में एक झोंपड़ी बनाकर रहते थे। जंगल में चूहे अधिक थे अतः दिन में तो नहीं, पर रात में झोंपड़ी में घुस आते और गुरु की नींद हराम कर देते। चूहों को कुछ नहीं मिलता तो धार्मिक ग्रन्थों को ही काट जाते। गुरु ने सोचा ऐसे काम चलने वाला नहीं है, अतः उन्होंने एक बिल्ली पाल ली।

बिल्ली के डर से चूहे झोंपड़ी में प्रवेश नहीं करते और गुरु शिष्य का जीवन भी निश्चितता के साथ बीतने लगा। बिल्ली गुरु से बहुत हिल-मिल गई थी। हर समय उनके आगे-पीछे घूमती रहती। वह खाना खाने बैठते तो बिल्ली सामने बैठ जाती, पर उसमें यह अच्छाई थी भोजन सामग्री भले ही खुली रखी रहे, बिल्ली उसमें मुँह न डालती थी।

सुबह-शाम गुरुजी जब साधना के लिए बैठते तो वह उनकी गोद में आकर बैठ जाती और उनका ध्यान टूट जाता अतः साधना के लिए बैठते समय पास में बिछे तख्त के एक पाये में उसे बाँध देते। इस तरह बिल्ली गुरु के पास भी बनी रहती और साधना में किसी प्रकार की बाधा न पहुँचती। कुछ दिनों के बाद गुरु, तत्पश्चात् उनके वियोग में बिल्ली दोनों ही इस संसार से विदा हो गये। अब मार्ग दर्शन के लिए अनेक अनुयायियों ने उनके शिष्य के पास जाना शुरू कर दिया। सुबह-शाम उनके आसन पर बैठकर शिष्य ने साधना करनी प्रारम्भ कर दी, पूर्व का अभ्यास न होने के कारण शिष्य का मन न लगता। १०-१५ मिनट की साधना के बाद ही ध्यान टूट जाता।

शिष्य अपनी कमजोरी पर गम्भीरता से विचार करने लगा। गुरु के समस्त क्रिया-कलापों पर एक विहंगम दृष्टि डालने से उन्हें पता चला कि वह तो एक बिल्ली पाले हुए थे और उसे ध्यान के समय पास में ही बाँध लेते थे। जरूर मुझे भी ऐसा ही यत्न करना चाहिए। वह अपने भक्तों के पास गये और एक बिल्ली ले आये। उनके भक्त भला साधारण-सी बात के लिए मना करते ?

बिल्ली बाँधने से साधना में एकाग्रता बनी रहती है।

अनेक शिष्य अपने गुरु की आदतों की इसी प्रकार नकल करते हैं और कार्य-कारण के सम्बन्ध को समझने की कोशिश नहीं करते। इस तरह की नकल व्यर्थ है। प्रत्येक व्यक्ति को गुरु के मार्गदर्शन में अपनी प्रकृति तथा क्षमतानुसार साधना मार्ग करना चाहिए। अविवेकी ढंग से किया गया अनुकरण सफलता की ओर अग्रसर नहीं करता।

पथिक की यात्रा

घना जंगल। उसके मध्य में यात्रियों के लिए एक पगडण्डी। पथिक अपने गन्तव्य पर पहुँचने के लिये लम्बे-लम्बे कदम रखता हुआ बढ़ा जा रहा था। जंगली हाथी ने राह रोकी। पथिक पर झपटा। उसे जान प्यारी थी। बचाव के लिये भागा और एक कुँए में जा गिरा।

कुँए के अन्दर की दीवार से निकला हुआ एक पीपल का वृक्ष। पथिक के हाथ में वृक्ष की एक शाखा आ गई। चलो कैसे जान तो बची, यहाँ हाथी न आ पायेगा। अब नीचे की ओर दृष्टि गयी तो काल के रूप में साक्षात् मगर ही मुँह खोले ऊपर से गिरने वाले पथिक की बाट जोह रहा था। डर के मारे दृष्टि नीचे से ऊपर कर ली।

ऊपर मधुमक्खी का छत्ता। छत्ते से टपकता हुआ बूँद-बूँद रस पथिक को आनन्द आने लगा। नीचे मगर है—बिल्कुल भूल गया। एक दिन उसका ध्यान गया कि जिस डाल को वह पकड़े हुये है, उसे दो चूहे कुतर रहे हैं एक का रंग काला है और दूसरे का सफेद।

यह सब स्थितियाँ जीवन के स्वरूप को प्रकट करती हैं। वह हाथी काल था। मगर मृत्यु और टपकता हुआ मधु जीवन रस। दोनों चूहे दिन रात के प्रतीक थे, जो उस वृक्ष को काट रहे थे। इतने पर भी अज्ञानी पथिक भविष्य के अन्धकार से बचने का उपाय न सोचकर मात्र मधु बूँदों में ही व्यस्त और मस्त हो रहा था।

अज्ञान और अविवेक पतन के गर्त में ही ढकेलता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लोभ और मोह

स्वर्ण का लोभ

एक राजा बड़ा लालची था। वह चाहता था कि मैं सबसे बड़ा धनवान बन जाऊँ, जो सम्पदा किसी के पास नहीं है वह मुझे मिल जावे। मेरी सम्पत्ति का पारावार न रहे।

एक दिन किसी बडे सिद्ध पुरुष से उसकी भेंट हुई। राजा ने अपनी अभिलाषा उन महात्मा से कह सुनाई और कहा, "कृपाकर किसी प्रकार मेरी इच्छा पूर्ण करा दीजिए।"

योगी ने उसे समझाया कि यह इच्छा ठीक नहीं। सम्पत्ति की एक सीमा तक ही उपयोगिता है, उसकी अति से सुख नहीं दुःख मिलता है। पर राजा की समझ में न आई, वह अपनी इच्छा पूर्ति के लिए ही अनुरोध और आग्रह करता रहा।

राजा ने योगी से याचना की कि उसे ऐसी सिद्धि प्राप्त हो जाय कि—जिस वस्तु को छूवे वही सोने की हो जाय। राजा की अति हठ को देखकर योगी ने उसे वैसा ही वरदान दे दिया। राजा को प्रसन्नता की सीमा न रही।

वह जिस वस्तु से हाथ लगा देता वही सोने की हो जाती। थोड़ी ही देर में उसके महल, तिवारे, रथ, पात्र, पलंग सभी सोने के हो गये। चारों ओर स्वर्ण ही स्वर्ण था, राजा स्वर्ण के समुद्र में उतराता हुआ आनन्द विभोर हो रहा था।

पर यह क्या ? यह आनन्द तो थोड़ी देर भी स्थिर न रह सका। राजा का छोटा-सा बच्चा दौड़ता चला आया और पिता की गोद में चढ़ गया, राजा ने उसे गोदी में उठाया ही था कि वह सोने का निर्जीव खिलौना मात्र रह गया। पुत्र चला गया, सोने की मूर्ति हाथ में रह गई। पुत्र की मृत्यु का समाचार पाकर रानी पागल की भाँति दौड़ी आई। राजा की गोदी से मृत पुत्र की लाश को उठाने जा रही थी कि वह भी राजा के हाथ से छू गई। बस, छूने की देर थी कि रानी भी सोने की पुतली हो गई। वह बहुमूल्य धातु की जरूर थी, पर उसी से प्राण विदा हो गया।

राजा किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो रहे थे। स्त्री और पुत्र की मृत्यु से उनका शरीर जलने लगा। तृषा शान्त करने के लिए पानी का गिलास उठाया, तो वह भी सोने का हो गया। भोजन के लिए ग्रास तोडा, तो वह भी सोने का। पसीना सुखाने को पंखा उठाया, तो वह भी स्वर्ण का भारी एवं कठोर-सा औजार मात्र रह गया। हवा करने के काम का वह बिलकुल न था। कपड़ों से हाथ लगा, तो वे कवच की तरह शरीर पर मढ़ गये। बिना काटे वे वस्त्र उतरने वाले न थे। मल-मूत्र त्यागना कठिन हो गया। लेटने और आराम करने की भी स्थिति न रही। सोने के मोटे-मोटे भारी कपड़े उसे जहाँ का तहाँ जकड़े बैठे थे।

यह स्थिति राजा के लिए नरक की जलती हुई ज्वाला के समान दारुण दुःख देने लगी। उसका एक-एक पल एक कल्प के समान बीतने लगा।

योगिराज अपनी दिव्य दृष्टि से यह सब देख रहे थे। वे हँसते हुए राजा के सम्मुख फिर उपस्थित हुए। उन्हें देखते ही राजा फूट-फूट कर बालकों की तरह रोने लगा। चरणों पर गिरना चाहता था, पर यह हो नहीं सकता था। सोने के कपड़े उसे जहाँ का तहाँ जकड़े बैठे थे। असहाय राजा के एक आँसू में से दारुण व्यथा का एक-एक समुद्र फूटा पड़ रहा था।

योगी ने हँसते हुए कहा, "राजन् अब क्या और चाहिए ? क्या अभी कोई और सिद्धि की आवश्यकता है ?"

राजा की आत्मा क्रन्दन करने लगी—"प्रभो, इस समय व्यंग न कीजिए। अब तो प्राणों पर बीत रही है, किसी प्रकार इस सिद्धि से बचा दीजिए।" योगी दया से द्रवित हो गये उन्होंने अपनी माया समेट ली। सिद्धि का प्रभाव चला गया। सब वस्तुएँ यथावत् हो गईं।

राज परिवार ने संतोष की साँस ली मानो उन्हें उबलते हुए तेल के कढ़ाव में से निकाल लिया गया हो।

योगी ने कहा—"मैं पहले ही कहता था कि तुम्हारे लिए सिद्धियाँ सुखदायक नहीं दुःखदायक होंगी। जब तक वासनाओं का पूर्ण क्षय नहीं हो जाता, तब तक सिद्धि का अधिकार प्राप्त नहीं होता। अनधिकारी व्यक्ति अपनी योग्यता से बहुत ऊँचा पद पाकर उसे सँभाल नहीं सकते, उसके बोझ से दबकर पिस जाते हैं। मैं अब जाता हूँ तुम भविष्य में अनाधिकार चेष्टा न करना।

लोभ का पिशाच

लड़की गरीब घराने की थी। माता, विमाता थी। वह उससे अक्सर हमेशा ही जला-भुना करती थी। उसके पिता ने उसकी शादी अपने से अच्छे घराने में कर दी। दहेज विशेष न दे सका। इधर लड़के के पिता ने समझा कि दहेज काफी मिल जायगा, ठहराने की कोई आवश्यकता नहीं। विवाहोपरान्त जब वह ससुराल आई, तो उसके सास-ससुर यहाँ तक कि उसके पति देव ने भी धन न मिलने के कारण को पकड़कर चाहे जैसे बुरी-भली सुनाई। वह बेचारी गरीब लड़की खून का-सा घूँट पीकर रह जाती। आखिर वह कर ही क्या सकती थी ? जब नैहर गई तो सब बातें अपने पिता से कहीं। माता तो उससे खुद ही नाराज रहा करती थी, इसलिए उससे न कहकर पिता से सारी दास्तान ससुराल वालों की कह सुनायी। पिता बेचारा क्या करता ? उसको समझा-बुझाकर भेज दिया। इस बार उसने और भी ज्यादा मुसीबतें सहीं और पीहर जाने पर पिता से कहा—"पिताजी मुझे मेरे सास तथा ससुर ने बहुत पीटा है तथा कहा है कि अपनी मृत माता के आभूषण लेती आना। पीटने का निशान मेरी पीठ पर अभी तक बना हुआ है।" यह कहकर वह रोने लगी। बाप बेचारा बड़ा दुःखी हुआ, परन्तु करता ही क्या ? इधर उसकी विमाता थी, तो उधर उसके सास-ससुर कष्ट देते थे। लाचार होकर फिर उसको समझा-बुझा कर भेज दिया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

एक दिन पड़ोस के रहने वालों ने रात को सुना "मुझे जलाओ मत चाहे मार डालो।" इतना सुनकर उन लोगों को फिर कोई आवाज सुनाई न दी! सबेरे लड़की के ससुराल वालों ने यह अफवाह उड़ाई कि लड़की फाँसी लगाकर तथा जलकर मर गई है क्योंकि जलने का दाग उसके शरीर पर बना हुआ था और फिर जब लड़की ने जलाने को मना किया, तो गले में रस्सी बाँधकर गला घोटकर मार डाला था। सबेरे पड़ोसियों द्वारा सरकारी कर्मचारियों को रात का किस्सा मालूम हुआ और पोस्टमार्टम करने पर मालूम हुआ कि यह प्रथम जलाई गई फिर गला घोंटकर मार डाली गई है, आखिर नर्तीजा यह हुआ कि उसके सास, ससुर तथा पति को हिरासत में ले लिया गया।

विवाह-संस्कार दो आत्माओं का पवित्र सम्मेलन है। एक आध्यात्मिक समारोह है। इस यज्ञ कर्म में भी जब पैसे ही को प्रधानता मिलने लगी, पैसे के लिये लड़के-लड़कियाँ बिकने लगे। दहेज के लिए प्राण पीसे जाने लगे, तो समझना चाहिये कि मानव जाति के मूलभूत सिद्धान्तों का ही पतन हो रहा है।

सोना पाने का अधिकारी

एक बार तीन व्यक्ति गरीबी से तंग आकर धन कमाने के लिये परदेश को रवाना हुए। बहुत दिनों तक वे इधर उधर भटकते रहे, किन्तु कोई ऐसा उपाय न मिला जो धन कमाते। हताश होकर वे कुबेर देवता को प्रसन्न करने के लिए तप करने लगे। उनकी उग्र तपस्या से कुबेर देवता प्रसन्न हुए और उनकी पात्रता के अनुसार फल देने के लिए एक साधु का वेश बनाकर उन व्यक्तियों के पास पहुँचे।

साधु वेषधारी कुबेर ने उनसे पूछा कि तुम लोग क्यों तप कर रहे हो ? उन्होंने कहा—"धन के लिये।" साधु ने कहा—"अच्छा, बेटा ! मैं तुम्हें एक ऐसा उपाय बताता हूँ, जिससे तुम लोग मन चाहा धन प्राप्त कर सकते हो। सामने जो झरना बह रहा है, वह वरुण देवता का बनाया हुआ है। इसमें यदि गंगोत्री से लाकर थोड़ा-सा गंगाजल डाल दो तो इसका सारा पानी सोने का हो जाएगा। यदि तुम लोग गंगोत्री से गंगाजल ले आओ तो आसानी से मन चाहा सोना पा सकते हो।"

वे तीनों व्यक्ति बहुत प्रसन्न हुए, क्योंकि गंगोत्री वहाँ से पास ही थी। शाम तक लौटकर वापस आया जा सकता था। वे लोग अपने-अपने घड़े लेकर गंगाजल लेने के लिए चल दिये। रास्ता न तो बहुत कठिन था और न दूर, कुछ ही घण्टों में वे लोग वहाँ पहुँच गये और घड़े भर-भर कर वापस लौटने लगे।

उनमें से दो के मन में यह विचार उठने लगे कि मैं पहले पहुँच जाऊँ और पहले अपना गंगाजल डाल दूँ, इस प्रकार उस सारे झरने पर मेरा ही अधिकार हो जाएगा ! पहला और दूसरा दोनों ही गुप्त रूप से ऐसा सोच रहे थे, इसलिये उन्हें बहुत जल्दी थी, वे बहुत तेजी से चलने लगे। तीसरा व्यक्ति उदार हृदय था, उसके मन में किसी प्रकार की आशंका न थी, वह धीरे-धीरे चल रहा था।

रास्ते में कई मनुष्य ऐसे मिले जो प्यास के मारे चिल्ला रहे थे। आगे दौड़ने वाले उन दोनों ने प्यासे आदमियों की पुकार तो सुनी, किन्तु उस पर कोई ध्यान न दिया, जल्दी सोना पाने की धुन में उन्हें दूसरों का कुछ खयाल न था। तीसरा साथी जो पीछे-पीछे आ रहा था, उसने एक प्यास के मारे चिल्लाते हुए वृद्ध मनुष्य को रास्ते में पड़ा पाया। उसने तुरन्त ही अपने घड़े में से उसे पानी पिला दिया। आगे चला तो एक स्त्री अपने बालक को गोद में लिए रास्ते में रोती हुई मिली, पूछने पर उसने बताया कि प्यास के मारे मेरा और मेरे बच्चे का दम निकला जा रहा है। उसने उस स्त्री और उसके बच्चे को भी पानी पिलाया। जब झरना थोड़ी दूर रह गया तो उसने रास्ते में एक कुत्ते को पड़ा देखा जो प्यास से छटपटा रहा था। उसने देखा कि यदि कुछ ही देर और उसे पानी न मिलेगा तो जरूर ही उसके प्राण निकल जायेंगे। उसने बचा हुआ सारा गंगाजल उस कुत्ते को पिला दिया और खाली घड़ा लेकर झरने की तरफ चल दिया।

वह सोच रहा था कि तेज चलने वाले मेरे दो साथी झरने पर पहुँच गये होंगे और झरना सोने का हो चुका होगा। पर जब वह वहाँ पहुँचा तो देखा, उसके साथी वहाँ तक नहीं पहुँचे और झरना भी वैसा ही बह रहा है। साथी कहाँ गये, इस चिन्ता में वह इधर-उधर घूमने लगा। इतने में वही साधु उसके पास आया और कहने लगा—"बेटा ! मैं ही कुबेर हूँ। तुम लोगों की परीक्षा लेने आया था। रास्ते में जो वृद्ध पुरुष, स्त्री, कुत्ता मिले थे वे और कोई नहीं थे, मैंने ही अपने रूप बना लिये थे और तुम लोगों का हृदय जाँच रहा था। तुम्हारे दोनों साथी अपनी स्वार्थ बुद्धि के कारण पत्थर हो गये हैं और देखो वहाँ पड़े हुए हैं। तुम अपना घड़ा मुझे दो।" उस घड़े में एक-दो बूँद जो गंगाजल था वह साधु ने झरने में डाला, वह सारा सोने का हो गया। साधु ने कहा—"बेटा ! जितना चाहिये सोना ले जाओ तुम्हीं सोना पाने के वास्तविक अधिकारी हो। इसीलिए तुम्हें ही वह सम्पदा मैं दे रहा हूँ। उन स्वार्थ बुद्धियों को अपना फल भोगने दो।"

अनुत्तरित प्रश्न—सटीक समाधान

ऊँची अट्टालिकाओं वाले एक भव्य मकान के नीचे कोई ब्राह्मण उदास और गम्भीर मुद्रा में बैठा था। वेशभूषा से वह कोई राजपुरुष लग रहा था, परन्तु उस मकान के नीचे दीनता और उदासी का आवरण ओढ़े उसकी मुख-मुद्रा बता रही थी कि वह किसी मानसिक उलझन से बुरी तरह त्रस्त है।

ऊपर वाली अट्टालिका से नीचे की ओर झाँक रही उस भवन की स्वामिनी ने उस ब्राह्मण को देखा, तो उसका वेश और उसकी स्थिति दोनों ने उसे असमंजस में डाल दिया। वेशभूषा से राजपुरुष-सा और बैठा हुआ इस तरह जैसे कोई भिक्षुक, दीनहीन या दरिद्र व्यक्ति। उस भवन की स्वामिनी का नाम था कमलिनी। आयु कोई ३४-३५ वर्ष की रही होगी, परन्तु उसकी देहयष्टि इतनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गठीली, शरीर इतना कोमल और रूप इतना सुन्दर था कि वह कोई वयस्क नहीं नव यौवना ही प्रतीत हो रही थी। उसका व्यवसाय भी ऐसा था, जो समस्त समाज में निन्द्य, गर्हित और पतित समझा जाता था। वह किसी कुलीन परिवार की कुलवधू नहीं समाज की मलीनता से पैदा हुई और उसी पंक में रही, पली नगर वधू थी। फिर भी कमलिनी ने सहज मानवीय भाव से प्रेरित होकर उस अज्ञात राजपुरुष से लगने वाले ब्राह्मण के पास अपनी एक दासी को भेजा।

दासी के साथ ही कुछ देर में वह ब्राह्मण आ गया। कमलिनी ने उसे यथोचित सम्मान के साथ आसन प्रस्तुत किया और अपने सेवकों को उसी अनुरूप स्वागत प्रबन्ध का निर्देश देकर ब्राह्मण के सामने जा बैठी और बोली—"मैं श्रीमान का परिचय जानने का सौभाग्य प्राप्त कर सकती हूँ।"

"मुझे याजक चन्द्रशेखर कहते हैं।"

उतना परिचय ही पर्याप्त था कमलिनी के लिए क्यों उन दिनों पं. चन्द्रशेखर की ख्याति न केवल पूना में वरन् सारे महाराष्ट्र में थी। राज्य में उन्हें अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त थी। इसलिए कमलिनी ने इतने मात्र परिचय को ही पर्याप्त समझा और फिर पूछा—"तो महाराज ! आप कुछ उदास और चिन्तित दिखाई देते हैं। क्षमा करें ! क्या मैं इसका कारण जान सकती हूँ।"

याजक चन्द्रशेखर ने कहा—"गत दिनों एक शास्त्रार्थ में मुझे नीचा देखना पड़ा। वैसी पराजय मेरी कभी नहीं हुई और सोचता हूँ जब तक उन प्रश्नों का उत्तर न खोज लूँ जिनके कारण कि मुझे पराजित होना पड़ा, तब तक अपने घर में प्रवेश नहीं करूँगा।"

"क्या मैं आपकी उस समस्या का निवारण करने में कोई सहयोग दे सकती हूँ ?"

"प्रश्न ही कुछ ऐसा जटिल है कि मैं आपसे क्या कहूँ ? बताइये पाप की जड़ कहाँ है ?"

"हाँ प्रश्न तो जटिल है ही। मनुष्य जानते-समझते भी पाप पंक में क्यों पड़ता है ? जबकि सभी कोई जानते हैं मर्यादाओं को तोड़ने का दण्ड प्रत्येक व्यक्ति को भोगना पड़ता है।"

याजक चन्द्रशेखर इस पर मौन रह गये। फिर उन्होंने कमलिनी का परिचय पूछा और जाना। कमलिनी ने कहा—"आप इस समय घर से बाहर ही रहते हैं, तो भोजन आदि की व्यवस्था कैसे करते हैं ?"

"मैं ब्राह्मण हूँ। इसलिए अपने हाथ से ही भोजन बनाता और खाता हूँ।"

"धृष्टता क्षमा करें महाराज तो एक निवेदन करूँ।"

चन्द्रशेखर जी ने कमलिनी की ओर प्रश्न मुद्रा में देखा तो वह बोली—"यदि आप मेरे यहाँ भोजन कर मुझे अपने पापों को प्रक्षालित करने का सुअवसर दें तो बड़ी कृपा होगी।"

परन्तु कमलिनी इससे मेरा व्रत टूटेगा।

"आप क्या इतनी भी उदारता नहीं कर सकते कि मुझ अधम का उद्धार करने के लिए कुछ देर तक व्रत-बन्धनों का मोह छोड़ दें।" कमलिनी बोली—"और फिर मैं आपको दस स्वर्ण मुद्राएँ भी दक्षिणा में देती रहूँगी।"

याजक चन्द्रशेखर के लिए वेश्या के उद्धार से भी अधिक आकर्षक थी दस स्वर्ण मुद्राओं की दक्षिणा। इससे पूर्व याजक ने कभी अपने व्रत को भंग नहीं किया था। वे घर में रहते थे, तब भी अपने या अपनी पत्नी के हाथ से बना भोजन ही करते थे। नियम मर्यादाओं के इतने पाबन्द कि कदाचित ही उनसे स्खलित हुए हों। नीति परायण और मर्यादाओं से बँधे जीवन के कारण उनके चरित्र पर कभी किसी ने उँगली नहीं उठाया थी। विद्वत समाज में भी वे आदर की दृष्टि से देखे जाते थे।

लेकिन एक विद्वत्सभा में किये गये इस प्रश्न ने पण्डित चन्द्रशेखर को इस भाँति आन्दोलित कर दिया कि उनके मन की शान्ति और मस्तिष्क का सन्तुलन सब कुछ विचलित हो उठा। उसी प्रश्न का उत्तर खोजने के लिए निरुद्देश्य भटकने को ही उन्होंने अपना शोध बना लिया तथा संकल्प किया कि जब तक इस प्रश्न का उत्तर नहीं कर लेंगे तब तक गृह में प्रवेश नहीं करेंगे। स्वाभाविक था कि यत्र-तत्र घूमने और यायावर जीवन व्यतीत करने के कारण साधनों का भी अभाव होता। पण्डित याजक चन्द्रशेखर ने कमलिनी का यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। दस स्वर्ण मुद्राएँ प्रतिदिन अर्थात् एक मास में ही तीन सौ स्वर्ण मुद्राएँ। राजसभा का विद्वत्परिषद के सदस्य होते हुए भी उन्हें इतना धन कभी नहीं मिला था और बढ़िया सुस्वादु भोजन।

प्राज्ञवर चन्द्र ने प्रतिदिन कमलिनी के आवास पर जाना आरम्भ कर दिया। नित्य प्रति प्रातःकाल और संध्या समय के भोजन के लिए पहुँचने लगे। कमलिनी स्वयं अपने हाथ से भोजन बनाती, प्राज्ञवर को सम्मानपूर्वक आसन पर बिठाती, स्वयं भोजन कराती और जब तक पण्डित जी भोजन करते तब तक उन्हें पंखा झलती रहती। भोजन करते-करते पण्डितजी की दृष्टि कई बार कमलिनी से भी मिलती और उसकी रूप माधुरी में उलझ कर खो जाती।

एक दिन कमलिनी ने कहा—"पूज्यवर आप इन दिनों घर में तो जाते नहीं।"

'हाँ'—पण्डित चन्द्रशेखर ने कहा।

"तो फिर निवास कहाँ करते हैं ?"

"कहीं भी।"

"कहीं भी अर्थात्—"

"खुले आकाश के नीचे विस्तृत धरती हो। जहाँ भी उपयुक्त स्थान देखता हूँ सो जाता हूँ।"

"आपको यदि कोई आपत्ति न हो, तो आप इसी भवन में विश्राम कर लिया कीजिए न।"

याजक चन्द्रशेखर को प्रतीत हुआ जैसे उनकी मन की बात ही कमलिनी ने कह दी है। वे इसके बाद वहीं रहने लगे। भवन में प्रतिदिन नृत्य गान और हास विनोद चलता था। रसिक प्रवृत्ति के व्यक्ति वहाँ प्रायः जुटे रहते और घुँघुरुओं की झंकारों से भवन का कोना-कोना गूँजता रहता। कमलिनी जब किसी के सामने हँसती तो पण्डित चन्द्रशेखर के कानों में जैसे जलतरंग बजने लगती।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अब न उन्हें अपना प्रश्न स्मरण रह सका था और न उसके उत्तर की चिन्ता। दस स्वर्ण मुद्राएँ प्रतिदिन मिल जातीं और सुस्वादु भोजन से रसना की तृप्ति तथा क्षुधा की निवृत्ति हो जाती। भवन के वातावरण ने पण्डित चन्द्रशेखर पर भी अपना रंग दिखाना आरम्भ किया। उनके मन में रह-रहकर यह आकांक्षा उठती कि वे कमलिनी से प्रणय निवेदन करते। रह-रहकर वे अपनी तुलना उन व्यक्तियों से करते जो कमलिनी के पास आते थे और उनसे अपने आपको किसी भी रूप में कम नहीं पाते। परन्तु न जाने कौन-सा संकोच था जो उनके होठों को सी देता ?

अन्ततः ! एकदिन उन्होंने सकुचाते-सकुचाते कमलिनी से अपने मन की बात कह दी। सुनकर खिलखिला पड़ी कमलिनी। कुछ समझ नहीं पाये याजक। तब कमलिनी गम्भीर हो गयी और बोली—"मान्यवर ! अब आपके प्रश्न का उत्तर प्राप्त हो गया है।"

लगा जैसे याजक आकाश से धरती पर गिर पड़े हों। फिर अपने आपको सँभालते हुए बोले—"मैं समझ नहीं पाया कमलिनी कि मुझे कौन-सा उत्तर प्राप्त हो गया है।"

"जिस प्रश्न की शोध में आपने गृह त्याग दिया था, वह यही था न कि—पाप की जड़ क्या है ?"

"हाँ।"

'उसी का उत्तर—'कमलिनी बोली—"आपने स्वयाकी होने का व्रत स्वर्ण मुद्राओं के प्रलोभन से ही तोड़ा न था।"

लगा किसी ने गाल पर तमाचा जड़ दिया हो फिर भी याजक अपने को इतना दुर्बल अनुभव कर रहे थे कि उनसे स्वीकार करते नहीं बना। कमलिनी ने कहा—"मान्यवर मेरी मान्यता है कि वह लोभ ही पाप की जड़ है। यदि आप स्वर्ण मुद्राओं के आकर्षण में फँसकर अपनी शोधचर्या से विमुख न होते तो इस अस्थिचर्म की देह को जो सैकड़ों व्यक्तियों द्वारा शहद की तरह चाटी और पीक की तरह थूकी गयी है, पाने के लिए आतुर होने की स्थिति में नहीं पहुँचते।"

याजक चन्द्रशेखर को समाधान मिल गया था और वह रूपजीवा अपने अतीत की उन स्मृतियों में तैरने, उतरने लगी जिन्होंने उसे यह सूत्र थमाया था।

स्वार्थ से अपना सिर मत कुचलो

बड़ा प्रसन्न और हर्षित हुआ अभयचन्द अदालत के आलीशान मकान से बाहर निकला। रोकने की चेष्टा करने पर भी उसके ओठों पर बार-बार हास्य की रेखा खिंच जाती थी। उसकी आँखों में विजय का गर्व चमक रहा था। उसकी चाल में भी जीत के प्रभाव से उत्पन्न वेग स्पष्ट दिखलाई पड़ रहा था। उसके यद्यपि मूछें नहीं थीं, तो भी हाथ बार-बार मूछों के स्थान पर जा रहा था।

अभयचन्द का हर्ष निराधार नहीं था। वह विचार कर रहा था कि कैसी भव्य जीत मुझे मिली है ? विरोधी तो मुँह में उँगली दबाकर रह गये। न्यायाधीश ने जब फैसला सुनाते हुये मुझे निर्दोष घोषित किया तो मेरे उस सात जन्म के दुश्मन हरसुख का चेहरा तो काला स्याह पड़ गया। आजकल के लोग भी कैसे हैं ? हर दर्जे के ईर्ष्या द्वेष करने वाले। जरा तुम्हारी तरक्की होनी चाहिये कि उनकी आँखों में अवश्य ही मिर्च पड़ जाती हैं। दूसरे का सुख देखकर इन लोगों के रोएँ भी जल जाते हैं और नहीं तो क्या बिना जलन के ही मेरे खिलाफ अदालत में शिकायत की गई है। वह तो मेरी तकदीर ने जोर मारा और ऊपर वालों की मेहरबानी से मैं छूट गया, नहीं तो ....."

बात यह थी कि अभयचन्द और हरसुख दोनों एक कारखाने में काम करते थे, जिसमें बहुत तरह की दवाएँ बनाने का काम होता था। ये दोनों डाक्टर की बतलाई दवाएँ तैयार करके ग्राहकों को देने का काम करते थे। एक बार हरसुख से कमीशन बतलाने में कुछ गलती हो गई और अभयचन्द को खबर पड़ गई। बस, उसने तुरन्त जाकर कम्पनी के मैनेजर से शिकायत कर दी। इसके परिणामस्वरूप हरसुख पर फटकार पड़ी कि फिर ऐसा काम किया तो नौकरी से अलग कर दिये जाओगे। इस घटना से अभयचन्द और हरसुख का पारस्परिक वैमनस्य, जो पहले अकारण था, कारण सहित और स्थायी बन गया।

इस घटना को कई वर्ष बीत गये और संयोगवश अभयचन्द की नौकरी इस कम्पनी से छूट गई। उसने कोई दूसरी नौकरी तलाश करने के लिये बड़ी दौड़-धूप की पर कुछ नतीजा नहीं निकला। तब उसने कम्पनी में सीखे हुए नुसखों के आधार पर कुछ औषधियाँ बनाकर पेट के धंधे का एक उपाय निकाला।

अभयचन्द को चिकित्साशास्त्र का तो कुछ ज्ञान नहीं था और न डाक्टरी के क्षेत्र में उसने 'सेल्समैन शिप' के सिवाय और कोई कार्य किया था। परन्तु किस्मत के जोर से उसने जो दवाएँ बनाकर बेचने के लिये बाजार में रखीं उनका शीघ्र ही अच्छा प्रचार हो गया।

इसने जो दवाएँ तैयार की थीं उनमें एक खास दवा "मोतियाबिन्द को स्थायी रूप से ठीक करने वाली" थी। अभयचन्द ने इस सम्बन्ध में जो नोटिस छपाये थे, उनमें कहा गया था कि काल प्रभाव से आँख में उत्पन्न होने वाला मोतियाबिन्द, आँखों का अन्धापन इससे रुक जाता है और आँखों की खोई हुई रोशनी फिर प्राप्त हो जाती है।

सत्वहीन खुराक और हानिकारक घी खाकर आँखों की ज्योति खो बैठने की शिकायत भारतवर्ष में बढ़ती जाती है। इसलिये अभयचन्द की सूझ ने बड़ी सफलता प्राप्त की और विज्ञापन के जोर से मोतियाबिन्द की दवा काफी बिकने लग गई।

पर दुनिया में किसी का सुख सदैव स्थायी नहीं रहता। अभयचन्द के आनन्द के ऊपर भी अंगार डालने वाली एक घटना हुई। उसके पुराने दुश्मन हरसुख ने सरकार में एक गुमनाम की अर्जी दे दी कि "अभयचन्द कम्पनी की तरफ से जो मोतियाबिन्द की दवा बेची जा रही है वह साफ "बोगस" है। इतना ही नहीं वह लोगों की आँखों को कुछ फायदा नहीं पहुँचाती, वरन् वह आँखों के लिये हानिकारक है और उसके प्रयोग से "धीमा जहर" की तरह अन्धापन क्रमशः बढ़ता जाता है।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अब अभयचन्द पर आफत आ गई। उसके होश उड़ गये। उसका कसूर बहुत बड़ा था। उसने जालसाजी की थी और वह जालसाजी भी कैवल पैसा या धन-दौलत तक सीमित न थी, उसने लोगों की जीवन-ज्योति आँखों के नूर के साथ जालसाजी की थी। अपने पापी पेट को भरने के लिये उसने लोगों के नेत्रों को प्रकाशविहीन बनाने का भयंकर और जघन्य कार्य किया था।

झूठ-मूठ की दवाओं का मनमाना मिश्रण करके, अपने अल्प ज्ञान का उपयोग करके उसने पेट भरने का व्यवसाय आरम्भ किया था और इसका भेद उसकी रग-रग को जानने वाले हरसुख को मालूम हो गया।

इस समय अभयचन्द हरसुख पर इतना अधिक नाराज था कि बार-बार यही कहता है--"यह काम सिवाय उस हरसुखिया के और किसी का नहीं है। मुझे गुस्सा तो ऐसा आ रहा है कि अगर कहीं मिल जाए तो उसका गला ही दबा दूँ।"

अब अभयचन्द बहुत चिन्तित रहने लगा! वह जानता था कि दवा वास्तव में जाली है और उससे आगे चलकर आँखों को नुकसान भी होता है, तो भी इस समय तो जान बचानी जरूरी थी। बहुत दौड़-धूप करने पर दवा को पृथक्करण करने वाले डॉक्टर का पता लगाया, सौभाग्य से वह कुछ जान पहिचान वाला निकल आया। अभयचन्द ने डॉक्टर को भेंट-सौगात देकर मामले को दबा देने को कहा। डॉक्टर ने रिपोर्ट कर दी कि दवा में कोई हानिकारक चीज नहीं है और यह आँख के लिये साधारण लाभकारी है।

जंग जीत गया अभयचन्द और नितान्त पराजय मिली इसके कट्टर शत्रु हरसुख को। इसीलिये रोकने पर भी अभयचन्द को हँसी आ रही थी और वह मूछों की जगह हाथ फेर रहा था। उसकी दुहरी विजय हुई थी एक तो उसे मोतियाबिन्द की दवा के निर्दोष होने का प्रमाणपत्र मिल गया और दूसरे उसके शत्रु हरसुख का मुँह काला पड़ गया। इस तरह से एक ढेले में उसने दो शिकार किये, यह क्या कम गर्व की बात थी।

इस तरह के अनेक उन साहसपूर्ण विचारों में गोते खाता अभयचन्द घर की तरफ चला। रास्ते में वह सोचता जाता था कि अब इस मोतियाबिन्द की दवा का अधिकाधिक प्रचार किस प्रकार किया जाय ? इस सम्बन्ध में वह तरह-तरह की योजनाएँ मन में गढ़ रहा था। अंत में वह घर आ पहुँचा। वहाँ वह विजय की बधाई प्राप्त करने को आदेश में जल्दी-जल्दी सीढ़ियों पर चढ़ने लगा उसी समय उसकी पत्नी ने हाथ में एक पोस्टकार्ड देते हुए कहा—"यह घर से पिताजी का पत्र आया है।"

अभयचन्द को आनन्द के समय इस पोस्टकार्ड का आना कुछ नीरस जान पड़ा तो भी उसने कहा देखूँ क्या लिखा है ?" उसने थोड़ी देर के लिये अन्य विचारों को छोड़कर पोस्टकार्ड को पढ़ना शुरू किया।

"बेटा अभयचन्द को ग्राम हड़मड़िया से उत्तम चन्द का आशीर्वाद मालूम हो। हम सब यहाँ कुशल से हैं, किसी बात की फिकर, चिन्ता मत करना। बुढ़ापा आ गया है इससे शरीर तो गिरता ही जाता है। अब दुकान पर जाना नहीं होता, क्योंकि आँखों में मोतियाबिन्द हो गया है। इससे कुछ दिखाई नहीं पड़ता। कुछ दिन पहले मेरे पड़ोसी ने कहा था कि मोतिया की दवा की खबर अखबार में छपी है, उसे मँगाकर लगाओ तो तुम्हारी आँख ठीक हो जाएगी। मैंने कहा कि बाजार में मिल जाय तो ला देना, पर हमारा गाँव भी किसी गिनती में है ? नहीं वह किसी दुकान पर नहीं मिला। फिर एक पहचान वाला शहर जा रहा था उससे मोतियाबिन्द की दवा मँगवा ली और दो महीने से उसे लगा रहा हूँ। बेटा, तू फिकर मत करना, पर इस दवाई से कुछ लाभ होता नहीं जान पड़ता, उलटा मेरी आँख का गड्ढा और भी गहरा होता जा रहा है। ऐसा क्यों होता है ? यह तो ऊपर वाला जाने। मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि अब ये दवा वाले भी बड़े ठग हो गये हैं, दवा में चाहे जो मेल मिलाप कर देते हैं। नाश हो जाय इन बम्बई वालों का। ऐसा काम करने वाले को भगवान कभी माफ न करे। यह चिट्ठी मुझे अपने पड़ोसी के बेटा से लिखानी पड़ी है। सत्यानाश हो जाय इन.....।

अभयचन्द से ज्यादा नहीं पढ़ा गया, उसकी आँखों के आगे अँधेरा जान पड़ने लगा, पत्नी के आगे विजय का आनन्द प्रकट कर सकने की शक्ति उसमें अब नहीं रही थी।

यात्रा शून्यनगर से भविष्यनगर की

महर्षि जातवेद ने पाठ प्रारम्भ किया और बोले आज तुम्हें योगवाशिष्ठ का एक उपाख्यान सुनाता हूँ। एक शून्य नाम का नगर था। उसमें तीन राज पुत्र रहते थे, जिनमें दो तो पैदा ही नहीं हुए थे ? एक गर्भ में नहीं आया था। अपने भावी जीवन को लेकर तीनों चिन्तित रहते थे। सबने मिलकर निश्चय किया कि बाहर कहीं जाकर धनोपार्जन करना चाहिए! यह सोचकर तीनों चल पड़े। भूख-प्यास से थककर तीनों तीन वृक्षों की छाया में बैठ गये। इन तीनों वृक्षों में दो तो उगे ही नहीं थे और एक का बीजारोपण भी नहीं हुआ था। वृक्षों के नीचे बैठकर तीनों ने विश्राम किया और मीठे फल खाए। तत्पश्चात् आगे बढ़े। कुछ दूरी पर उन्हें तीन नदियाँ दिखायी पड़ीं। नदियों में दो तो जल से रहित थीं और एक सूख गई थी। तीनों ने ठण्डे जल से स्नान किया तथा प्यास बुझाई। आगे बढ़ने पर सायंकाल हो गया। सामने एक भविष्य नगर दिखाई पड़ा। नगर में प्रविष्ट करने पर तीन मकान मिले। जिनमें दो बने ही नहीं थे। तीसरे में ईंट भी नहीं रखी गई थी। तीनों ने मिलकर तीन ब्राह्मणों को निमन्त्रण दिया। ब्राह्मणों में दो अशरीरी थे। तीसरे का मुँह नहीं था। तीनों ने थालियों में भोजन किया। दो थालियाँ तली रहित थीं! तीसरे का स्थूल रूप ही नहीं था। इस भविष्य-नगर में तीनों बालक सुखपूर्वक जीवनयापन करने लगे।

महर्षि ने उपाख्यान समाप्त किया तो स्नातक उनके मुख की ओर ताक रहे थे। इस विलक्षण उपाख्यान ने उनकी जिज्ञासा तो जगा दी, किन्तु समाधान किसी के लिए भी सम्भव न था, सो उन्होंने समवेत प्रश्न किया गुरुदेव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तीन राजकुमार, तीन वृक्ष, तीन नदियाँ, तीन मकान, तीन ब्राह्मण और तीन थालियों का रहस्य हमें भी बताएँ कि हम भी अपने भविष्य नगर में सुखपूर्वक रह सकें।

महर्षि गम्भीर हो उठे बोले, "तात् ! तीन राजकुमार जीव, आत्मा और ब्रह्म है। प्रथम दो यद्यपि अविनाशी हैं किन्तु शरीर के साथ गर्भ में आना पड़ता है, परब्रह्म जिसके अंश से ही उपरोक्त दो की सत्य है गर्भ में न आते हुए भी अस्तित्व में बना रहता है। उनका वृक्ष की छाया में पहुँचना अर्थात् सांसारिक फल-वासना, तृष्णा, अहंता में सुख मानने की प्रवृत्ति है। इनमें वासना और तृष्णा का तो कोई स्वरूप है भी किन्तु अहंकार का तो कोई अस्तित्व ही नहीं फिर भी वही सारे उपद्रवों की जड़ है।

तीन नदियाँ जीवन के तीन प्रवाह है बाल्यावस्था, यौवन और वृद्धावस्था, प्रारम्भिक दो में जल ही नहीं अर्थात् होश ही नहीं आता किन्तु जीवन के तीसरे प्रहर में जब तक होश आये सारी शक्ति समाप्त हो चुकी होती है।

तब कहीं स्मरण आता है भविष्य अर्थात् लोकोत्तर जीवन और तीन भवन, तीन आश्रय—सत्य, सन्तोष और श्रद्धा की शरण होना पड़ता है। सत्य और सन्तोष अभिव्यक्त हैं किन्तु श्रद्धा अभ्यान्तर, ज्ञान कर्म और भक्ति के तीन ब्राह्मणों से भी होना मनुष्य के कल्याण की भूमिका प्रस्तुत होना है ज्ञान और कर्मयोगी साधनाएँ तो साधनजन्य होती हैं, पर भक्ति उससे सर्वथा मुक्त। उनको भोजन कराना अर्थात् आत्म-निरीक्षण, आत्म-शोधन और आत्म-निर्माण की प्रवृत्ति का विकास ही वह अवलम्बन है, जिससे आत्म साक्षात्कार या ब्रह्म प्राप्ति की साधना सिद्ध हो पाती है अर्थात् इन विनाशशील जगत् के प्रपंचों से छूटकर मनुष्य सत्य को प्राप्त और धारण करता है। स्नातक सन्तुष्ट हुए और अपने पर्णकुटीरों को चल पड़े।

अन्त में धर्म की ही विजय होती है

त्रेता युग में गोमती के निकटवर्ती भूखंड पर राज्य करने वाले राजा भौवन के राज्य में एक गौतम नाम का व्यक्ति रहता था। उसकी मणिकुण्डल नामक सहपाठी से गहरी मित्रता थी। गौतम बाहर से तो बड़ा मृदुभाषी था पर भीतर ही भीतर उनके मन में कपट कटारी चलती रहती थी। मणिकुण्डल में ऐसी बात न थी, वह बाहर और भीतर समान रूप से धर्म प्रेमी था।

जब दोनों मित्र बड़े हुए तो धन कमाने की कोई योजना सोचने लगे। अन्त में यह निर्णय हुआ कि परदेश जाकर कुछ व्यापार किया जाय। दोनों मित्र साथ-साथ परदेश जाने के लिए तैयार हो गये। व्यापार के लिए कुछ रुपये की आवश्यकता थी। मणिकुण्डल ने अपने घर से धन ले लिया लेकिन गौतम ने कुछ न लिया। उसने यह बदनीयती बिचारी कि जैसे होगा वैसे मणिकुण्डल का धन हरण कर लूँगा और वापस लौट आऊँगा।

दोनो मित्र मंजिलें तय करते हुए सुदूर पूर्व के लिए चले जा रहे थे। एक दिन रास्ते में गौतम ने यह बहस छेड़ी कि धर्मात्मा होना व्यर्थ है क्योंकि धर्म करने वाले सदा दुःख भोगते हैं। इसके विपरीत अधर्मी सदा सुखी रहते हैं इसलिए मनुष्य को अधर्म ही अपनाना चाहिए। मणिकुण्डल को यह पक्ष सहन न हुआ। वह धर्म की महत्ता पर जोर देने लगा, आखिर में उनका विवाद बहुत बढ़ गया और दोनों ने यह निश्चय किया कि जिसकी बात ठीक हो, वह दूसरे का सारा धन ले ले।

ये यात्रा कर रहे थे और रास्ते में जो मिलता उसी से पूछते जाते थे कि धर्म करने वाले सुखी रहते हैं या अधर्म करने वाले ? जिससे पूछा उसने यही उत्तर दिया, "भाई ! धर्मात्माओं को तो निरे कष्ट सहने पड़ते हैं, सुखी तो अधर्मी ही रहते हैं।" सब जगह जब यही उत्तर मिले तो गौतम ने मणिकुण्डल का सारा धन शर्त के अनुसार ले लिया।

फिर भी मणिकुण्डल के विचार न बदले, वह बार-बार धर्म पर जोर देता था। कहता था धर्म से बढ़कर अधर्म कदापि नहीं हो सकता। गौतम ने कहा, "यदि तुम्हारा अब भी यही विश्वास है, तो फिर शर्त लगाओ जो जीते वह दूसरे के हाथ काट ले।" मणिकुण्डल रजामंद हो गया। फिर उसी क्रम से रास्तागीरों से पूछ-ताछ शुरू हुई, तब भी वही उत्तर मिले, सब लोग यही कहते, हमने तो अधर्मियों को ही आनन्द से रहते देखा है। आखिर गौतम ही जीता, उसने शर्त के मुताबिक हाथ भी काट लिये। हाथों का कटाकर भी मणिकुण्डल अपने विश्वास पर दृढ़ रहा और धर्म के ही गुणगान करता रहा। इस बार हारने पर आँख निकाल लेने की बाजी बदी गई। पूछने का वही क्रम था, उत्तर भी वही मिले, नतीजा भी वैसा ही हुआ। गौतम ने उसकी आँखें निकाल लीं और वही चीखिता-चिल्लाता छोड़कर अपने घर वापस लौट आया।

निर्जन वन में एक छोटे शिवालय के पास हाथ और नेत्रों को खोकर मणिकुण्डल असहाय पड़ा रो रहा था। वह सोच रहा था—"हे भगवान ! क्या सचमुच ही धर्म से अधर्म बड़ा है ! अधर्म को अपनाने से गौतम को मेरा सारा धन अनायास ही मिल गया और मैं धर्म पर आरूढ़ रहने के कारण यह विपत्ति भोग रहा हूँ, उसकी फूटी हुई आँखों में से रक्त की धाराएँ बह रही थीं।

उस दिन शुक्ल पक्ष की एकादशी थी। लंका के राजा विभीषण का पुत्र वैभीषिक उसी दिन उस शिवालय में पूजा करने आया करता था। आज संध्या समय वह जैसे ही शिवालय पर पहुँचा तो देखता क्या है कि एक नवयुवक मन्दिर के पास ही पड़ा हुआ पीड़ा से छटपटा रहा है, किसी ने उसके हाथ काट लिये थे और नेत्र फोड़ दिये थे। वैभीषिक ने अपनी आत्मशक्ति द्वारा सारी घटना जान ली। धर्मात्मा की यह दुर्दशा देखकर उसका हृदय दया से भर गया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

राम रावण के युद्ध के समय लक्ष्मण जी को शक्ति लगने पर हनुमानजी द्रोणागिर पर्वत को उठाकर लाये थे, जिस पर संजीवनी बूटी थी। हनुमानजी के हाथ से द्रोणागिरि का एक टुकड़ा इस शिवालय के निकट गिरा था और उस पर संजीवनी बूटी जम गई थी। वैभीषिक उसे जानते थे। उन्होंने उस बूटी को लाकर उस घायल को पिला दिया। उस बूटी के प्रभाव से मणिकुण्डल को हाथ और नेत्र फिर से प्राप्त हो गये। वह हरे-हरे कहता हुआ प्रसन्नतापूर्वक उठकर बैठ गया। वैभीषिक के हाथ में संजीवनी बूटी का जो टुकड़ा शेष था वह मणिकुण्डल को दे दिया और कहा—"बेटा ! यह बूटी अंग-भंग के अंगों को फिर जिंदा कर सकती है, इसे ले जाओ, यह तुम्हें फिर काम देगी। अब तुम अपने घर वापिस चले जाओ" वह प्रसन्नतापूर्वक उस बूटी को साथ लेकर घर को वापस लौट पड़ा।

रास्ते में एक महापुर नामक राज्य पड़ता था। उस राजा के एक ही बेटी थी जो अन्धी थी। राजा ने यह घोषणा कर रखी थी कि जो कोई इसकी आँखें अच्छी कर देगा, उसी को मैं बेटी ब्याह दूँगा और दहेज में सारा राज दे दूँगा। मणिकुण्डल ने यह सुना तो राजा के पास पहुँचा और आँखें अच्छी कर देने का आश्वासन दिया। बूटी को पिलाते ही बेटी की आँखें अच्छी हो गईं, अब तो राज दरबार में आनन्द ही आनन्द छा गया, राजा ने बड़ी धूम-धाम से उसी के साथ बेटी का विवाह कर दिया। मणिकुण्डल राज का मालिक होकर आनन्दपूर्वक जीवन बिताने लगा।

उधर गौतम अपने मित्र का धन हरण करके घर पहुँचा और जुआ, शराब तथा वेश्याओं में धन को उड़ाने लगा। कुछ ही दिनों में वह सारा धन खर्च हो गया और वह दीन, दरिद्र भिखारियों की तरह इधर-उधर मारा-मारा फिरने लगा।

मणिकुण्डल को अपने मित्र की याद आई। उसने रथ भेजकर गौतम को अपने यहाँ बुलाया और बड़े आदर से अतिथि सत्कार किया। जाते समय उसे बहुत-सा धन पुरस्कार दिया और कहा—'मित्र ! वास्तव में धर्म करने वाले ही सुख पाते हैं। अधर्म से कोई मन का धन भले ही करले पर वह अन्त में दुख देकर विदा हो जाता है। धर्म की जड़ गहरी है, धर्म के वृक्ष पर फल आने में कुछ देर लगती है, पर वह बहुत समय तक फल देता रहता है।"

गुरुजनों के असम्मान का कुफल

देवताओं के राजा इन्द्र अपनी सभा में बैठे थे। समस्त देवता अपने-अपने आसनों पर विराजमान थे। नित्य की भाँति आज भी दरबार भरा था, पर एक विशेष स्थान अभी खाली था। देवताओं के गुरु, वृहस्पति अभी तक नहीं आये थे।

राजा की अपेक्षा भी गुरुजी का स्थान बड़ा है, इस बात को इन्द्र समझता था। इससे जब बृहस्पति सभा में पधारते वह आसन से उठकर उनकी वन्दना करता। पर जैसा कहा गया है, "विनाश काले विपरीत बुद्धि"—आज इन्द्र की बुद्धि में कुछ परिवर्तन हो गया था और वह अभिमान में आकर छाती फुलाकर सिंहासन पर बैठा था।

इतने में बृहस्पति आ गये और अपने स्थान की तरफ बढ़े। सब देवता उनका आदर करने को उठ खड़े हुये, अप्सराएँ नाचते-नाचते जरा देर के लिये रुक गईं, पर इन्द्र उसी प्रकार सिंहासन पर बैठा रहा। जब बृहस्पति की दृष्टि उस पर पड़ी तो उसके मनोभाव को समझ गये और आसन पर बैठने के बदले फिर पीछे की तरफ लौट आये और सभा से निकलकर दृष्टि से ओझल हो गये।

देवता लोग आश्चर्य से एक-दूसरे के मुख की तरफ देखने लगे कि यह क्या हुआ, पहले तो बृहस्पति कभी इस प्रकार सभा में आकर वापस नहीं लौटते थे, पर सविता नारायण सब रहस्य को समझ गये और चन्द्रदेव से बोले "अनर्थ हो गया।"

"कैसा अनर्थ ?"

"तुमको क्या दिखलाई नहीं दिया कि बृहस्पति आकर फिर वापस चले गये।"

"इनको कोई बात बुरी तो नहीं लग गई ?"

"ऐसा ही है। आज सुरपति ने उनका सम्मान नहीं किया, यह देखा कि नहीं ?"

वायुदेव ने कहा—'बिल्कुल ठीक है, आज इन्द्र उनको देखकर खड़ा नहीं हुआ और न उनकी वन्दना की।"

बृहस्पति के जाने के बाद कुछ देर में इन्द्र को अपनी भूल का अनुमान हुआ, उन्होंने पूछा—'देवताओ, आज बृहस्पति सभा में बैठे कैसे नहीं ?"

अग्निदेव ने कहा—"ऐसा जान पड़ता है कि वे किसी बात पर नाराज हो गये। आज आपने उनका सम्मान नहीं किया इसी से सम्भवतः वे वापस चले गये।"

"ठीक बात है।"—सूर्यदेव ने अग्नि का अनुमोदन किया।

वायुदेव बोले—"महाराज, गुरुजी को मना लाओ, उनके बिना हमारा काम नहीं चल सकता। दानवों के साथ उनके बुद्धिबल से ही हम विजयी हो पाते हैं।"

इन्द्र को यह बात ठीक जान पड़ी और वह सिंहासन से उठकर मुख्य-मुख्य देवताओं के साथ बृहस्पति के निवास स्थान पर पहुँचा, पर बृहस्पति घर पर न थे, वे तपस्या करने किसी अज्ञात स्थान पर चले गये थे।

जब कई दिन बीत जाने पर भी बृहस्पति के दर्शन नहीं हुये तब इन्द्र घबड़ाकर ब्रह्माजी के पास गया। ब्रह्माजी ने सब बात सुनकर इन्द्र को दोषी बतलाया और कहा कि "जो गुरु की अवहेलना करता है, उसका पतन होना निश्चित है। दानवों का गुरु शुक्राचार्य त्रिकालदर्शी है, वह जब इस खबर को जान लेगा तो दानवों को स्वर्ग पर चढ़ाई करने की सलाह देगा और तुम्हें स्वर्ग छोड़ना पड़ेगा।"

इन्द्र ने विनयपूर्वक कहा—'पितामह मेरा अपराध क्षमा करो और इस विपत्ति से उद्धार पाने का रास्ता बताओ।"

"बृहस्पति तो अभी वापस आ नहीं सकते, इसलिये तुम दूसरे को गुरु के स्थान पर चुनो। त्वष्टा का पुत्र विश्वरूप बड़ा तेजस्वी है और इस कार्य को कुछ अंशों में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर सकता है। अगर वह तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार कर ले तो अच्छा है।"

इन्द्र विश्वरूप के पास गया, पहले तो उसने इस पद को स्वीकार करने से इनकार कर दिया, पर जब इन्द्र ने कहा कि स्वयं ब्रह्माजी ने आपके लिये कहा है, तो वह कुछ विचार में पड़ गया, अन्त में उसने कहा—"अगर ब्रह्मा जी का ऐसा कहना है, तो मैं कुछ समय के लिये यह कार्य स्वीकार करता हूँ, पर जैसे ही बृहस्पति वापस आयेंगे मैं उनका पद छोड़ दूँगा।"

कुछ समय बाद दानवों की एक बड़ी सेना ने इन्द्र पर चढ़ाई की क्योंकि उनको बृहस्पति के चले जाने का समाचार मिल गया था। देवता उनका सामना करने को तैयार हुये और इन्द्र आशीर्वाद लेने विश्वरूप के पास गया। विश्वरूप ने उसे 'नारायण कवच' पहनाया, जिससे उसके सब अंग नारायणी शक्ति से व्याप्त हो गये। इसके प्रभाव से उसने दानवों को हरा कर स्वर्ग से बाहर निकाल दिया। देवताओं की सेना वापस आ गई और इन्द्र ने जाकर विश्वरूप के चरणों में मस्तक नवाया।

पर कुछ समय बाद इन्द्र के ऊपर एक कलंक लगा। जिस विश्वरूप ने उसके साथ महान् उपकार किया था, उसी विश्वरूप को उसने अपने हाथ से मार डाला। विश्वरूप के पिता त्वष्टा ने एक दानव कुमारी से विवाह किया था। इस प्रकार विश्वरूप दानवों से सम्बन्धित थे और इन्द्र को यह आशंका हुई कि वे यज्ञ में दानवों को भाग देते हैं। इस कारण इन्द्र ने बिना सोचे-समझे विश्वरूप का सिर काट डाला।

जब यह समाचार विश्वरूप के पिता त्वष्टा को मिला तो वह बड़ा नाराज हुआ और तत्काल उसने एक यज्ञ किया जिससे एक महाभयंकर राक्षस उत्पन्न हुआ। इसका नाम वृत्रासुर था।

इस महाशक्तिशाली राक्षस ने स्वर्ग में इतना उपद्रव मचाया कि इन्द्र घबड़ा गया। अन्त में देवताओं ने भगवान की प्रार्थना की। भगवान ने सलाह दी कि दधीचि ऋषि की हड्डी माँगकर उससे वज्र तैयार कराओ, उसी से वृत्रासुर का वध हो सकेगा।

ऐसा ही किया गया और वज्र द्वारा इन्द्र ने वृत्रासुर का वध किया। इस प्रकार स्वर्ग की रक्षा तो हो गई, पर ब्रह्महत्या के पाप से इन्द्र का मन इतना भारी और क्लेश युक्त हो गया कि उसे कभी चैन नहीं पड़ता था और वह सदैव व्याकुल रहता था। उसने इस स्थिति से छुटकारा पाने के बहुतेरे उपाय किये पर किसी प्रकार वह चित्त की शांति प्राप्त न कर सका। अन्त में अपने राज्य सिंहासन को त्यागकर एक दिन वह चुपचाप स्वर्ग से भाग निकला और किसी एकान्त स्थान में रहकर पाप का प्रायश्चित्त करने का प्रयत्न करने लगा।

इन्द्र के पद पर अशान्त मन वाला एक घड़ी भी नहीं टिक सकता, दुराचारी भी नहीं टिक सकता, पापी उस पर पैर नहीं रख सकता। दूसरे दिन जब इन्द्र का समाचार सब देवताओं को मिला तो स्वर्ग में बड़ी खलबली मच गई।

सत्य है, जो गुरु का सम्मान न करे, जो गुरु से द्रोह करे, उसका पतन होना अनिवार्य है। जो अभिमानवश होकर गुरु की अवहेलना करता है, उसके अन्तर के अन्धकार को सूर्य नारायण और ब्रह्मा भी दूर नहीं कर सकते।

हृदय परिवर्तन

बूढ़े विण्डाल के लिये वह दिन सबसे खुशी का था, जिस दिन सम्राट अश्वजित ने उसके स्थान पर उसके युवा पुत्र किरात को 'बधिक' नियुक्त कर दिया था। उसने तीस वर्ष तक लगातार चामुण्डा मन्दिर में बलि कार्य किया था। अनेक पुरस्कार जीते थे। उसकी कलाई में वह दम-खम था कि एक ही बार में बलिष्ट महिषों के भी सिर धड़ से अलग कर देता था। उसके द्वारा सम्पन्न होने वाले बलि कर्म देखने के लिये राज-दरबार तक उपस्थित होता था।

पर अब वह वृद्ध हो चुका था और किरात युवक, इसलिये वह भी चाहता था कि किरात को उसका उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया जाए। भगवान ने उसकी भी सुनी पर कुछ इस तरह कि होनी अनहोनी बन गई जो न होना था, वह हो गया।

किरात ने कई बार पशुवध के समय कटते हुए जीवों का करुण-क्रन्दन सुना था। उनकी मार्मिक चीत्कारें वह भूल न पाता था, कटी हुई लोथों की छटपटाहट उसे चैन न लेने देती थी। बाल्यकाल से ही उसके अन्तःकरण में इस अनात्म कर्म के प्रति घृणा उत्पन्न हो चुकी थी।

आज नियुक्ति-पत्र आया था और अभी कल ही वह लिच्छवियों द्वारा आयोजित एक धर्म सभा में महाश्रमण नगसमाल के प्रवचन सुनकर आया था। अभी भी नगसमाल के शब्द—"संसार एक है प्राणिमात्र सब एक ही आत्मा के अनेक रूप हैं, एक सार्वभौमिक सत्ता ही विभिन्न रूपों में खेल रही है। इस मर्म को समझकर किसी के प्रति घृणा और दुर्व्यवहार नहीं करना चाहिये। जीव मात्र के प्रति दया, करुणा, और उदारता का व्यवहार करना चाहिये।" अभी भी उसके कानों में गूँज रहे थे। आज पहली बार उसे एक बधिक का पुत्र होने पर घृणा उत्पन्न हुई थी। आत्मा कहती थी कुल पर लगे इस कलंक को धोना ही चाहिये। देवताओं के नाम पर होने वाली इस हिंसा को रोका ही जानी चाहिये, पर वह सब यह कैसे करे यह उसकी समझ में नहीं आ रहा था ?

तभी हँसता हुआ विण्डाल आया और बोला—"वत्स, तुम आ गये यह लो खड्ग, इसे शान पर स्वयं मैंने चढ़ाया है इसकी धार इतनी तीक्ष्ण है कि तुम्हारी यह प्रथम परीक्षा शत-प्रतिशत सफल होगी। आज दुर्गा-अष्टमी है। सम्पूर्ण राज-दरबार उपस्थित होगा तुम्हें अपनी शक्ति का परिचय देना है। कुल की शान और परम्परा अब तुम्हारे हाथ है।"

किरात चामुण्डा के मन्दिर की ओर चल पड़ा। बोला कुछ नहीं, संकल्प विकल्प लिये वह वध-स्थल पर पहुँच तो गया पर वहाँ बलि के लिये लाये गये निरीह पशुओं को देखते ही उसकी आत्मा काँप उठी। उसने एक बार सम्राट अश्वजित से लेकर छोटे से छोटे नागरिक तक सबकी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आँखों में आँखें डालकर देखा। सब पत्थर की सी मूर्तियाँ लगीं, जिनमें शारीरिक कलाकारिता तो थी पर भावनाओं के स्थान पर उनका विद्रूप अट्टहास कर रहा था, उसे इन मांसाहारियों पर घृणा हो आई पर सब कुछ कहने के लिये समय रहा नहीं था।

पुजारी पूजा समाप्त कर चुका था। बलि का समय हो चुका था। किरात के सामने महिष प्रस्तुत किया गया, खड्ग ऊपर आकाश की ओर लपका तो विण्डाल सहित सम्पूर्ण परिवार उपस्थित जनसमूह की आँखें चमक उठीं। गजब की स्फूर्ति, पर दूसरे ही क्षण सारी चमक करुणा में बदल गई जब किरात को 'हिंसको ! घात करना है, तो अपना करो। ईश्वर के बनाये जीवों को मारने और मरवाने का तुम्हें क्या अधिकार" कहकर खड्ग को अपने ऊपर प्रहार करते देखा। एक क्षण में ही किरात का सिर धड़ से अलग हुआ पड़ा था। विण्डाल परिवार फूट-फूट कर रोने लगा। आगन्तुकों की आँखें झरने लगीं। स्वयं अश्वजित भी यह दृश्य देखकर विचलित हो उठे। अश्रु पोंछते हुये वे वहाँ से उठकर चले गये और घोषणा करा दी फिर कभी राज्य के किसी भी भाग में पशु-बलि न दी जाए।

मैं नित्य जिन्दा प्रेतों को दफनाता हूँ

खलील जिब्रान अपनी कथा प्रधान शिक्षाओं के लिये एक ख्याति प्राप्त विद्वान् थे। जीवन दर्शन सम्बन्धी सूत्र जो उन्होंने अपनी सारगर्भित प्रतीकात्मक कहानियों में दिये, समय-समय पर मानव का मार्गदर्शन करते रहे हैं। मनोविज्ञान की गहराई में जाकर कैसे एक साधारण से उदाहरण से नैतिक सीख दी जा सकती है, इसकी झाँकी उनकी इस कथा से मिलती है।

एक बार मैं सपना देख रहा था। स्वप्न में ही एक भयानक भूत आया और सामने खड़े होकर मुझे डराने लगा। पूछने लगा—तेरा नाम क्या है ? मैंने डरते-डरते कहा—अब्दुल्ला ! उसने फिर तिरछी नजर से देखा और व्यंग्य की हँसी-हँसते हुए बोला—"इसका अर्थ तो ईश्वर का दास होता है। क्या तुम ईश्वर के दास हो, उसके भक्त हो ? तुम्हारे कार्यों एवं चेहरे से तो ऐसा नहीं लगता।"

मैं अधिक सकपकाने लगा और उसकी भाव-भंगिमा से भयभीत हो भागने की कोशिश करने लगा। भूत ने मुझे जाने नहीं दिया। कसकर पकड़ लिया और कहा तुम्हारी ही बिरादरी के लोग हैं, जिन्होंने मिलकर ईश्वर की नाकों दम कर रखी है। तुम्हीं लोगों की अक्ल ठिकाने लगाने के लिये ईश्वर ने मुझे नियुक्त किया है। आज तो मैं तुम्हीं से निपटूँगा।

भूत ने कहा—'तुम लोग धर्म की बातें करके अपनी चमड़ी बचाते हो और उन कामों को करने में लगे रहते हो जिनकी खुदा ने मनाही की है। धर्म के प्रवक्ताओं की इस क्रिया पद्धति से खुदा बहुत दुःखी एवं नाखुश है। दुहरी गलती करने वालों पर खुदा दूने नाराज हैं।

मैं क्या कहता। जान बचाकर किसी तरह घर जाने की पड़ी थी। विदाई का नमस्कार करते हुए पूछा—मेरी स्थिति को देखते हुए कुछ सेवा हो, तो बताएँ और मुझे जाने दें। आगे से ऐसी गलती स्वयं नहीं करूँगा औरों की कह नहीं सकता।

भूत की हँसी फूट पड़ी और मुसकराकर उसने मेरे हाथ में एक फावड़ा थमा दिया—"फुरसत के समय तुम कब्रें खोदते रहना ! जितनी अधिक खुद सकें उतनी खोदना।"

पहेली को बुझाने का मन हुआ। भूत मन की बात समझ गया और बिना पूछे ही बोल पड़ा—"दुनिया में चलते-फिरते प्रेत बहुत हैं। तुम उन्हीं को दफन करना ! खुदा ने तुम्हारे लिए यही जिम्मेदारी सौंपी है।"

'जिन्दा प्रेत' ? इतना कह भी नहीं पाया था कि भूत ने कहा—"जो दूसरों का दर्द नहीं समझ सकते जिन्हें आपाधापी के अलावा और कुछ नहीं सूझता, जिनके पास दूसरों को धोखा देकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना ही एक मात्र धन्धा है, वे जिन्दे भूत नहीं तो और क्या हैं ? ऐसे व्यक्ति धरती पर बोझ हैं, समाज के लिए सिर-दर्द हैं, जीवित रहते हुए भी मृतक के समान हैं। उन्हें दफन नहीं करोगे, तो इस दुनिया में जिन्दों को रहने के लिये जगह ही कहाँ बचेगी ?"

तब से हर रात वही सपना बारम्बार आता है। जिन्दा मुर्दों के लिए कब्र खोदता हूँ। रात भर न जाने कितनी खोद-खोद फेंक देता हूँ।

सपना अपने एक अन्तरंग मित्र को सुनाया तो वे हँस पड़े। बोले—"भला उनमें गड़ेगा कौन ? तुम्हारे सपने की कब्रें तो कल्पना लोक की हैं। अपनी नींद क्यों हराम किये देते हो ?" मैंने उस व्यंग्य को हँसी में नहीं लिया और गम्भीर होकर कहा—"दूसरों की तो खुदा जाने। अपने को तो मैं जिन्दा मुर्दों-प्रेतों में गिनता हूँ। अपने संकीर्ण विचारों को नित्य चिन्तन कर गहरे गाड़ देता हूँ। सोचता हूँ, अपने लिए तो समय रहते जगह बना ही लूँगा। एक बात और मन में आती है कि यही सपना औरों की भी समझ में आ जाए, तो संभवतः खुदा को हैरान न होना पड़े, जिन्दा प्रेत कहीं नजर न आएँ, सारा संसार सही अर्थों में मनुष्यों से घिरा सुख-समुन्नति की ओर बढ़ता दिखाई देने लगे।"

सिद्धि सर्वोपरि या सेवा

"नहीं, नहीं मरुत ! श्रेष्ठता का आधार वह तपश्चर्या नहीं, जो व्यक्ति को मात्र सिद्धियाँ और सामर्थ्य प्रदान करे। ऐसा तप तो शक्ति संचय का साधन मात्र है। श्रेष्ठ तपस्वी तो वह है, जो अपने लिए कुछ चाहे बिना समाज के शोषित, उत्पीड़ित, दलित और असहाय जनों को निरन्तर ऊपर उठाने के लिए परिश्रम किया करता है। इस दृष्टि से महर्षि कण्व की तुलना राजर्षि विश्वामित्र से नहीं कर सकते ! कण्व की सर्वोच्च प्रतिष्ठा इसीलिए है कि वह समाज और संस्कृति, व्यष्टि और समष्टि के उत्थान के लिए निरन्तर घुलते रहते हैं।" देवराज इन्द्र ने सहज भाव से मरुत की बात का प्रतिवाद किया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर मरुत अपनी बात पर दृढ़ थे। उनका कहना था—"तपस्वियों में तो श्रेष्ठ विश्वामित्र ही हैं। उन दिनों विश्वामित्र शिवालिक शिखर पर सविकल्प समाधि अवस्था में थे और कण्व वहाँ से कुछ दूर आश्रम में जीवन यापन कर रहे थे। उनके आरण्यक में बालकों को ही नहीं बालिकाओं को भी समानान्तर धार्मिक एवं साधनात्मक प्रशिक्षण प्रदान किया जाता था।"

मरुत ने फिर वही व्यंग करते हुए कहा—"देवेश ! आपको तो स्पर्धा का भय बना रहता है किन्तु आप विश्वास रखिए विश्वामित्र त्यागी सर्व प्रथम हैं तपस्वी बाद में। उन्हें इन्द्रासन का कोई लोभ नहीं, तप तो वह आत्म कल्याण के लिए कर रहे हैं। उन्होंने न चुकने वाली सिद्धियाँ अर्जित की हैं। उन सिद्धियों का लाभ समाज को कभी भी दिया जा सकता है।"

"विश्वामित्र की सिद्धियों को मैं समझता हूँ मरुत।" इन्द्र ने पुनः अपनी बात को प्रतिष्ठापित करते हुए कहा—"किन्तु सिद्धियाँ प्राप्त कर लेने के बाद यह आवश्यक नहीं कि वह व्यक्ति उनका उपयोग लोक कल्याण में करे। शक्ति में अहं भाव का जो दोष है, वह सेवा में नहीं। इसलिए सेवा को मैं शक्ति से श्रेष्ठ मानता हूँ। इसी कारण कण्व-विश्वामित्र से श्रेष्ठ हैं।"

बात आगे बढ़ती किन्तु महारानी शची के आ जाने से विवाद रुक गया। रुका नहीं—एक नया मोड़ ले लिया। शची ने हँसते हुए कहा—"अनुचित क्या है ? क्यों न इस बात की हाथों-हाथ परीक्षा कर ली जाय।"

बात निश्चित हो गई। कण्व और विश्वामित्र की परीक्षा होगी यह बात कानो-कान स्वर्गपुरी में फैल गई। देवगण उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करने लगे, देखें सिद्धि की विजय होती है या सेवा की।

निशा देवी ने पहला पाँव रखा। दीप जले—सृष्टा की आरती से उनका स्वागत किया गया। दिव्य ज्योतियों से सारा इन्द्रपुर जगमग-जगमग करने लगा। ऐसे समय देवेन्द्र ने अनुचर को बुलाकर रूपसी अप्सरा मेनका को उपस्थित करने की आज्ञा दी। अविलम्ब आज्ञा का पालन किया गया। थोड़ी ही देर में मेनका वहाँ आ गई। इन्द्र ने उसे सारी बातें समझा दीं। वह रात इस तरह इन्द्रपुर में अनेक प्रकार की मन्त्रणाओं में ही बीती।

सबेरा हुआ। ऊषा की लालिमा ढलने लगी। सूर्य देव प्राची में अपनी दिव्य प्रभा के साथ उगने लगे। भगवती गायत्री की आराधना का यह सर्वोत्कृष्ट समय होता है। तपस्वी विश्वामित्र आसन बन्ध और प्राणायाम समाप्त कर जप के लिए बैठे थे। उनके हृदय में वैराग्य की धारा अहर्निशि बहा करती थी। जप और ध्यान में कोई व्याघात नहीं होता था। बैठते ही बैठते चित्त भगवान सविता के भर्ग से आच्छादित हो गया। एक प्राण आद्यशक्ति गायत्री और राजर्षि विश्वामित्र। दिव्य तेज फूट रहा था उनकी मुखाकृति से। पक्षी और वन्य जीव भी उनकी साधना देखकर मुग्ध हो जाते थे।

उनकी इस गहन शान्ति और स्थिरता को देखकर पक्षियों को कलरव करने का साहस न होता। जन्तु चरमर नहीं करते थे, उन्हें भय था कहीं ध्यान न टूट जाए और तपस्वी के कोप का भाजन न बनना पड़े। सिंह तब दहाड़ना भूल जाते, वे दिन के तृतीय प्रहर में ही दहाड़ते और वह भी विश्वामित्र की प्रसन्नता बढ़ाने के लिए, क्योंकि उस समय विहार के लिए आश्रम छोड़ चुके होते थे।

किन्तु आज उस स्तब्धता को तोड़ने का साहस किया किसी अबला ने। अबला नहीं अप्सरा। मेनका। समूचा इन्द्रपुर जिसकी छवि पर दीपक की लौ पर शलभ की भाँति जल जाने के लिए आतुर रहता था। आज उसने अप्रतिम श्रृंगार कर विश्वामित्र के आश्रम में प्रवेश किया था। पायल की मधुर झंकार से वहाँ का प्राण-पूत वातावरण भी सिहर उठा। लोध पुष्प की सुगन्ध सारे आश्रम में छा गई। जहाँ अब तक शान्ति थी, साधना थी, वहाँ देखते-देखते मादकता, वैभव विलास खेलने लगा।

पर विश्वामित्र की समाधि निश्चल, अविचलित। अन्तरिक्ष में गए प्राण जिस सुख और शान्ति की अनुभूति में निमग्न थे, यह नयापन उसकी तुलना में नगण्य था। लेकिन जैसे-जैसे मेनका के पाँवों की थिरकन, कण्ठ का संगीत और अंगराग वहाँ तीव्रता से बिखरने लगा, विश्वामित्र की चेतना में आकुलता बढ़ने लगी। रूप और सौन्दर्य के इन्द्रजाल ने आकाश में विलीन तपस्वी की एकाग्रता को आश्रम में ला पटका। मेनका नृत्य में खो गई और विश्वामित्र की स्थिरता खो गई उसके अंग सौष्ठव, रूप सज्जा में।

दण्ड और कमण्डल ऋषि ने एक ओर रख दिए। कस्तूरी मृग जिस तरह बहेलिये की संगीत-ध्वनि से मोहित होकर काल-कवलित होने के लिए चल पड़ता है। सर्प जिस तहर वेणुनाद सुनकर लहराने लगता है। राजर्षि विश्वामित्र ने अपना सर्वस्व उस रूपसी अप्सरा के अंचल में न्योछावर कर दिया। सारे भारतवर्ष में कोलाहल मच गया कि विश्वामित्र का तप भंग हो गया।

एक दिन, दो दिन, सप्ताह, पक्ष और मास बीतते गए और उनके साथ ही विश्वामित्र का तप और तेज स्खलित हो गया। तपस्वी का अर्जित तप, काम के दो कौड़ी दाम बिक गया और जब तप के साथ उनकी शांति, उनका यश और सिद्धि वैभव भी नष्ट हो गया, तब उन्हें पता चला कि भूल नहीं अपराध हो गया। विश्वामित्र प्रायश्चित्त की ज्वाला में दहकने लगे।

क्रोधोन्माद में ऋषि ने मेनका को दण्ड देने का निश्चय किया पर प्रातःकाल होने तक मेनका उनके आश्रम से जा चुकी थी। इतने दिन की योग-साधना का परिणाम एक कन्या के रूप में छोड़कर। विश्वामित्र ने बिलखती आत्मजा के पास भी मेनका को नहीं देखा तो उनकी देह क्रोध से जलने लगी, पर अब हो ही क्या सकता था ? मेनका तो इन्द्रपुरी पहुँच चुकी थी।

रोती-बिलखती आँसुओं से भीगी, क्षुधा से कलपती कन्या को देखकर भी विश्वामित्र को दया नहीं आयी। पाप उन्होंने किया था, पश्चात्ताप भी उन्हें ही करना चाहिए था, लेकिन आँखों में तो प्रतिशोध छाया हुआ था। ऐसे समय मनुष्य को इतना विवेक कहाँ कि वह यह सोचे कि अपनी भूलें सुधार भी सकता है और नहीं तो अपनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संतान, अपने आगे आने वाली पीढ़ी के मार्ग दर्शन के लिए तथ्य और सत्य को उजागर ही रख सकता है। विश्वामित्र को तो बस अपने आत्म कल्याण की चिन्ता सता रही थी, इसलिए उन्हें इतनी भी दया नहीं आयी कि वह बालिका को उठाकर दूध और जल की व्यवस्था करते। बालिका को वहीं बिलखता छोड़कर, वे वहाँ से चले गए।

दोपहर के समय ऋषि कण्व लकड़ियाँ काटकर लौट रहे थे। मार्ग में विश्वामित्र का आश्रम पड़ता था। बालिका के रोने का स्वर सुनकर कण्व ने निर्जन आश्रम में प्रवेश किया। आश्रम सूना पड़ा था। अकेली बालिका दोनों हाथों के अँगूठे मुँह में चूसती भूख को धोखा देने का असफल प्रयत्न कर रही थी।

कण्व ने भोली बालिका को देखा, स्थिति का अनुमान करते ही उनकी आँखें छलक उठीं। उन्होंने बालिका को उठाया, चूमा और प्यार किया और फिर गले लगाकर अपने आश्रम की ओर चल पड़े। पीछे-पीछे उनके सब शिष्य चल रहे थे।

इन्द्र ने मरुत से पूछा—"तात् ! बोलो, जिस व्यक्ति के हृदय में पाप करने वाले के प्रति कोई दुर्भाव नहीं, पाप से उत्पीड़ित के लिए इतना गहन प्यार, कि उसकी सेवा माता की तरह करने को तैयार, वह कण्व श्रेष्ठ हैं या विश्वामित्र ?"

मरुत आगे कुछ न बोल सके। उन्होंने लज्जावश अपना सिर नीचे झुका लिया।

सब चले जाएँ, पर धर्म साथ न छोड़े

वे पुण्य और पुरुषार्थ के प्रतीक माने जाते थे। कर्म-ज्ञान व गुणों की दृष्टि से ब्राह्मणत्व उनमें पूरी तरह प्रकाशित था। तप तेज से दीप्ति मुख मण्डल पर सदा-सर्वदा छायी रहने वाली प्रसन्नता सन्तोष और शान्ति का परिचय देने के लिए पर्याप्त थी। "उनके धर्मशील जीवन में किसी तरह का कोई अभाव न था।

कठोर परिश्रम उनके यहाँ सौभाग्य लक्ष्मी बनकर विराजमान था। चरित्र उनके जीवन का आधार था इसलिए यश-लक्ष्मी भी उनके स्वभावतया आ गई थी। वह अपनी पत्नी कन्या, पुत्र, पुत्रवधू सबको भगवान के प्रतिबिंब मानकर उनका यथोचित आदर-सत्कार और सेवा करते थे। फलस्वरूप घर के सभी लोग भी नेक, ईमानदार और गुणग्राही थे। सद्भाव के इस आकर्षण से आकर्षित होकर कुल लक्ष्मी ने भी उनके यहाँ वास किया था। उनके जीवन का प्रवाह आनन्द की तरंगे बिखेरता बह रहा था।

पाप की विरोधी शक्तियों ने उनके दुर्भेद पुण्य दुर्ग को भेदने की अनेकों कोशिशें कीं। अपने सारे गणों को लेकर इस सुखी परिवार के आस-पास चक्कर लगाता रहा। पर उसे घर में घुसने के लिए कोई छिद्र न मिला। एक-एक परिजन के मस्तिष्क इन्द्रियों, इच्छाओं को उसने उकसाया व भ्रमित करने की कोशिशें कीं। पर उसके प्रहार ऐसे नष्ट होते गए जैसे धधकती ज्वाला में सूखा काष्ठ गिरकर जल जाता है। पाप सिर धुनता-पछताता घर वापस लौट गया।

उसे दुःखी देखकर एक दिन उसकी भार्या अलक्ष्मी ने कहा—"स्वामी ! कई दिन से कुछ दुःखी दिखाई दे रहे हैं। क्या आपकी सहचरी आपका दुःख बँटा सकती है ? कहा गया है—"जो स्त्री केवल सुख में ही पति का साथ दे और दुःख में उससे दूर रहे—वह हतभागिनी होती है। आप अपनी समस्या बताएँ तो शायद उसका कुछ निराकरण हो सके।"

पाप और अलक्ष्मी (दरिद्रता) दोनों रात भर कूट मंत्रणा करते रहे। पाप ने अपने दुःख का कारण बताया और अलक्ष्मी ने वह योजना, जिसके द्वारा उन्हें जीता जा सकता था। प्रातःकाल दोनों बहुत प्रसन्न थे। बड़ी-चढ़ी सफलताओं के स्वप्न देखकर प्रसन्न होने वाले कुविचारी लोगों की तरह पाप और अलक्ष्मी भी उस दिन फूले नहीं समा रहे थे।

शाम होने तक दोनों उनके पास जा पहुँचे। पाप बूढ़े ब्राह्मण के वेश में और अलक्ष्मी सौन्दर्य विभूषिता कन्या-के रूप में। जो उन्हें पहचानते थे वे हँस रहे थे कि देखे पाप कितना चतुर है, लोगों को फँसाने के लिए वह कैसे-कैसे आकर्षक रूप रचता है ? पाप के माया जाल में किस तरह बचते हैं ? यह देखने के लिए लोग चुप रहे। किसी ने इशारा तक नहीं किया कि तुम्हारे दरवाजे पर पाप और अलक्ष्मी छद्मवेश में आ गए हैं।

ब्राह्मण वेशधारी पाप ने उन्हें पुकारते हुए कहा—"तपस्वियों में श्रेष्ठ पुरन्ध्र ! मुझे आज रात ही गाँव पहुँचना है। रात होने को है ऐसे में मैं अपनी युवती कन्या को साथ नहीं ले जा सकता। मार्ग में चोर-डाकुओं का भय, नदी-नालों और हिंसक जानवरों से खतरा है। मेरे वापस लौटने तक आप इसे अपने घर में रख लें। मुझे मालूम है कि आप महान् धर्म परायण हैं। आप पर अविश्वास करने का तो कोई कारण भी नहीं है।

द्वार पर आए हुए अतिथि की बात न मानना भी-धार्मिक मर्यादा के प्रतिकूल होगा। इस विचार से पुरन्ध्र ने ब्राह्मण कन्या के रूप में आयी हुई अलक्ष्मी को अपने घर में आश्रय दे दिया। पाप वहाँ से विदा हो गया। उसे प्रसन्नता थी, अब मुझे इस घर में प्रवेश मिल जाएगा।

ब्राह्मण कन्या के रूप में आयी हुई अलक्ष्मी ने उन्हें अपने साथ अटकाए रखना प्रारम्भ किया। वह सबसे पहले उठती। उनके लिए शौच के लिए जल से लेकर स्नान पूजन तक सब सामान स्वयं अपने हाथों चुनती। इनसे निवृत्त होते ही वह मीठी-मीठी बातें करने बैठ जाती। उनका बहुत-सा समय यों ही बातों में बीतने लगा। अब वे पहले की तरह श्रम नहीं कर पाते थे। उन्हें आलस्य घेरने लगा। स्वाभाविक था कि आय के स्रोत टूटते। सम्पन्नता निर्धनता में बदलने लगी।

एक दिन वह सो रहे थे। तभी किसी दिव्य ज्योति युक्त स्त्री ने उन्हें जगाया और कहा—"पुरन्ध्र ! अब मैं तुम्हारे घर से जा रही हूँ।" "लेकिन तुम कौन हो और क्यों जा रही हो ?" कथन में विकलता टपक रही थी। देवी ने उसी गम्भीर भाव से बताया—"मैं तुम्हारी सौभाग्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लक्ष्मी हूँ। तुमने अलक्ष्मी को आश्रय दिया है सो तुम्हें छोड़कर जा रही हूँ। अब मैं यहाँ नहीं रह सकती।" यह कहकर सौभाग्य लक्ष्मी चल दी। वह बोले कुछ नहीं निर्निमेष नेत्रों से उसका जाना देखते रहे।

सौभाग्य छिन जाने से पास-पड़ोस में तरह-तरह की बातें चल पड़ीं। कोई कहता पुरन्ध्र ने ब्राह्मण कन्या से अवैध सम्बन्ध जोड़ लिया है। कोई कहता पुरन्ध्र अब पापी हो गया है। जितने मुँह उतनी बातें, पर उन्हें मानों इन सबसे कोई प्रयोजन ही न था। वह अब भी सन्ध्या और नैमित्तिक कर्म उसी प्रकार करते थे जैसे पहले। अलक्ष्मी के कूट जाल को वह समझते थे। पर वह उनकी कन्या की तरह धरोहर थी। उनके नेत्रों में एक क्षण के लिए भी दूषण उदय नहीं हुआ। लेकिन लोगों को समझाया तो नहीं जा सकता था, क्योंकि अलक्ष्मी अब और भी अधिक पास रहने लगी थी। उनकी पत्नी को भी उतना समय न मिलता था। अलक्ष्मी के पास रहते हुए उनके व्यवहार में पिता-पुत्री के निश्छल वात्सल्य से भरी पवित्रता थी।

एक रात उन्हें फिर एक ज्योति पुंज स्त्री ने दर्शन दिया और कहा—"मैं तुम्हारी यशलक्ष्मी तुम्हें छोड़कर जा रही हूँ।" यशलक्ष्मी चली गई। पुरन्ध्र के नेत्र नीर उमड़ पड़े। पर उनका खारी जल भीतर ही भीतर बह कर रह गया।

यश छिन गया तो घर में बेटे-बेटियाँ और पत्नी ने भी साथ छोड़ दिया। अपने-अपने घर बनाकर वे लोग अलग-अलग रहने लगे। उनके साथ अलक्ष्मी के अलावा अब कोई नहीं रह गया। कुल लक्ष्मी भी रूठकर चली गई। वे ब्राह्मण की बाट जोहते रहे, पर वह नहीं आया। चली अलक्ष्मी की भी नहीं वह पुरन्ध्र की पुत्री ही बनी रही। लेकिन किसी के अन्तःकरण की सच्चाई को कौन देखता ? सब लोग पुरन्ध्र और अलक्ष्मी को दिन-रात कोसने लगे।

उस रात घना अन्धकार छाया हुआ था। हाथ को हाथ नहीं सूझता था। कभी-कभी बादलों की चमक में ही कुछ दिखाई दे जाता था और फिर उसके बाद डरा देने वाली बादलों की गर्जना उस वातावरण को और भी वीभत्स बना रही थी। अलक्ष्मी पास ही सोई हुई थी। पुरन्ध्र को नींद आ रही थी। एकायक उन्होंने देखा, एक दिव्य ज्योति फूटी और कोई देवपुरुष सम्मुख आ खड़ा हुआ।

वह उठ बैठे। उन्हें प्रणाम करते हुए कहा—"भगवन् ! आप कौन हैं ? क्या आपके आगमन का कारण जान सकता हूँ।"

इस प्रकार प्रश्न करने पर वह दिव्य देहधारी पुरुष कहने लगा—"मैं धर्म हूँ। तुम्हारे घर से सौभाग्य, यश और कुल सब चले गए। अब मैं यहाँ रहकर क्या करूँगा ? मैं भी जा रहा हूँ।"

यह कहकर धर्म ने जैसे ही पीठ फेरी पुरन्ध्र ने उनका हाथ पकड़ लिया और पूछा—"देव ! बुरा न माने मैंने आज तक जो कुछ भी किया, वह आपकी ही मर्यादा के लिए, आपकी मर्यादा को निभाने के लिए मैंने अलक्ष्मी को अपने पास रखा, फिर क्या आप भी मुझे पापी ठहराएँगे ? मैंने भावनाओं को पाला, वासनाओं को नहीं। फिर क्या आपका यों ठुकराकर जाना अधर्म न होगा ?"

धर्मराज कुछ उत्तर दे सके—उनमें इतनी भी हिम्मत न थी। वह चुपचाप पीछे लौटे और पुरन्ध्र की देह में अन्तःलीन हो गए। धर्म को जाता न देख सौभाग्य, यश और कुल लक्ष्मी सब नई-नई प्रसन्नता लेकर लौट आईं। इस हलचल में अलक्ष्मी की नींद टूट गई। उसने सोचा जहाँ धर्म में इतनी गहरी आस्था है। वहाँ मेरा रहना निरर्थक है। अपने कुचक्र को असफल हुआ देख पाप और अलक्ष्मी ने पलायन किया। दृढ़वती पुरन्ध्र पुनः पहले की तरह लक्ष्मी, कीर्ति, सौभाग्य की विभूतियों से विभूषित हो गए।

पापों का अन्त क्यों नहीं होता ?

एक जिज्ञासु किसी तत्वज्ञानी पुरुष से पूछ रहा था कि महाराज ! संसार में पापों का अन्त क्यों नहीं होता ? अब तक इतने महात्मा, साधु, अवतार हो चुके हैं, सबने इस दुनियाँ को भला बनाने का प्रयत्न किया। पर किसी के प्रयत्न का कुछ भी फल नहीं हुआ। संसार जैसे का तैसा पापपूर्ण अब भी बना हुआ है। इसमें सदा ही बुराइयों की भरमार रहती है।

तत्व ज्ञानी ने जिज्ञासु को एक कथा सुनाई, उन्होंने कहा—"एक बार एक मनुष्य बहुत दीन दशा में निर्वाह कर रहा था। उससे सुना कि यदि किसी के वश में भूत हो जाय तो उसे मन चाही चीजें बात की बात में लाकर दे सकता है। उसने सोचा कि किसी प्रकार भूत को वश में कर पाऊँ तो मेरे सब अभाव मिट जाएँगे। अब वह भूत को वश में करने की क्रिया मालूम करने के लिए जगह-जगह घूमने लगा।

एक दिन उसे दैवयोग से किसी ऐसे महानुभाव से भेंट हो गई, जो भूत को वश में करने की विद्या जानते थे। उस गरीब आदमी के बहुत अनुनय-विनय करने पर वह विधि उसने उसे बता दी। उसी प्रकार उसने अनुष्ठान किया और मरघट को जगाकर एक भूत को वश में कर लिया। जब वह वश में आ गया तो भूत ने प्रकट होकर कहा—"महानुभाव, अब मैं आप के वश में हूँ, मुझसे जो चाहें सो काम लीजिये, लेकिन मैं ठाली न बैठूँगा, जब ठाली रहूँगा तो आप पर ही पिल पड़ूँगा। गरीब आदमी ने कहा कि अच्छी बात है, बेकार न रहने दूँगा, मेरे पास बहुत काम है। जाइये, मेरे लिये एक महल बनाइये। भूत ने चन्द मिनटों में ही महल बना दिया। फिर उसने काम माँगा, तो उसने कहा—"इस महल में बहुत साधन, खजाना, सजावट का सामान, नौकर चाकर आदि सब चीजें लाकर दो।" भूत ने पाँच मिनट के अन्दर राजमहलों की तरह सब चीजों से उसे सजा दिया और फिर काम माँगने के लिए सामने आ खड़ा हुआ। उसकी उतनी कार्य शक्ति देखकर मालिक बहुत घबराया और अपनी जान बचाने के लिये उन्हीं तान्त्रिक महानुभाव के पास भागा, जिन्होंने उसे भूत वश में करना सिखाया था। मालिक आगे-आगे भूत पीछे-पीछे। दोनों दौड़ते-दौड़ते उन्हीं सज्जन के यहाँ पहुँचे। उस गरीब आदमी ने सारा किस्सा कह सुनाया और उससे बचने का उपाय पूछा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तान्त्रिक महोदय बुद्धिमान थे, उन्होंने भूत को एक कटी हुई कुत्ते की पूँछ दिलाई और कहा इसे सीधी करके रख दे। भूत उस पूँछ को हाथों से पकड़कर सीधी कर देता, किन्तु जैसे ही उसे रखता कि वह फिर वैसी ही टेढ़ी हो जाती, भूत फिर सीधी करके रखता वह फिर टेढ़ी हो जाती, इस प्रकार पूँछ का बार-बार टेढ़ा होना गरीब आदमी के लिये—भूत से छुटकारा पाने का एक अच्छा उपाय मिल गया।

तत्व ज्ञानी महोदय ने इस कथा के आधार पर जिज्ञासु को समझाया कि संसार की बुराइयाँ, प्राणियों को अपने बचाव के लिये अच्छा मार्ग है। जिस प्रकार पत्थर का नाल उठाने का अभ्यास करने से अनेक मनुष्य पहलवान बन जाते हैं, किन्तु मूर्ख लोग उससे ठोकर खाते और पछताते हैं। उसी प्रकार संसार एक प्रकार की व्यायामशाला है, इसमें तरह-तरह की बुराइयों के मुद्गर, नाल आदि पड़े हुए हैं। इनको उठाने के अभ्यास में अनेक लोग उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त कर जाते हैं, किन्तु वह मुद्गर और पत्थर ज्यों के त्यों पड़े रहते हैं। मन एक प्रकार का भूत है, इसे टेढ़ी होने वाली पूँछ को सीधी करने में और बुराइयाँ दूर करने में लगाया जाय तो उसी में उलझा रहता है और आत्मा का अनिष्ट नहीं कर पाता। इसीलिये परमात्मा में आत्मोद्धार का अभ्यास करने के लिये संसार में बुराइयाँ छोड़ रक्खी हैं और उनका अन्त नहीं होता।

मोह में दुःख

रामनगर के एक शाहजी ने एक सफेद चूहा पाल रखा था। उसे वे बड़े प्यार से खिलाते-पिलाते तथा देख-भाल किया करते थे। शाहजी जब दुकान पर जाते, तो उसे अपने ही साथ ले जाते और जब वे दुकान से घर लौटते, तो उसे भी लौटा लाते थे। शाहजी की दुकान आटा दाल की थी। उनकी दुकान में चूहे बहुत पैदा हो गये थे इसलिये चूहों को मारने के वास्ते शाहजी ने एक बिल्ली पाल ली। जब बिल्ली बड़ी हुई, तब दुकान के चूहों का शिकार करने लगी, ४-६ चूहे नित्य मारकर खा जाती थी। शाहजी उसके चूहा पकड़ने पर बड़े प्रसन्न होते थे।

एक दिन की बात है कि बिल्ली को शिकार करने के लिये एक भी चूहा न मिला। बिल्ली भूखी थी, उसे अपने-बिराने का ज्ञान तो था ही नहीं। उसने झट शाहजी का पाला हुआ सफेद चूहा मारकर खा लिया। शाहजी अब करते क्या, देखते रह गये। जब बिल्ली को मारने दौड़े, तब वह भाग गई। शाहजी दुःख में निमग्न बैठे कुछ सोच रहे थे कि इतने में उधर से गुरु महाराज आ निकले। शाहजी को चिन्तित देखकर बोले कि क्यों क्या हुआ ? कुशल तो हैं ! शाहजी बोले—"महाराज, वैसे तो आपकी कृपा से सब कुशल-मंगल हैं, परन्तु मेरे एक पले हुए सफेद चूहे को बिल्ली खा गई।" गुरुजी ने कहा कि जब तुमने चूहा पाला था तो फिर बिल्ली क्यों पाल ली ? शाहजी ने कहा कि मैंने तो बिल्ली को दुकान के चूहों को मारने के वास्ते पाली थी। महात्मा जी ने कहा कि क्या और चूहों में जान नहीं थी ? तब शाहजी बोले—"हुआ करे जान, मुझे क्या, मुझे तो इसी चूहे से प्रेम था। मैंने इसे बड़ी मुहब्बत से पाला था।" तब महात्मा जी ने कहा कि भाई तुम्हारे दुःख का कारण चूहा नहीं है, बल्कि ममता है (यह मेरा है) ऐसा भाव। शाहजी ने कहा, "हाँ महाराज !" तो महात्मा जी ने कहा कि संसार की समस्त वस्तुएँ नाशवान हैं और प्रत्येक प्राणी को मृत्युरूपी बिल्ली अवश्य खायेगी। यदि तुम सांसारिक पदार्थों में ममता करोगे तो दुःख से सताये जाओगे। इन पदार्थों और स्त्री, पुत्र, धन आदि की ममता (मोह) छोड़ कर्तव्य को धैर्य के साथ पालन करो और सबमें आत्मवत् वर्तो, तभी दुःख से छुटकारा पा सकोगे।

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवभूत विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनु पश्यतः।।

जिस ज्ञानी मनुष्य की दृष्टि में सब प्राण अपनी आत्मा के तुल्य हो जाते हैं, उसको फिर शोक, मोह नहीं होता।

कलि का निवास

महाभारत युद्ध के बाद पाण्डवों ने वर्षों तक राज्य किया और बाद में यथावसर वानप्रस्थ को चले गये। इसके बाद युवराज परीक्षित राज सिंहासन के अधिकारी बने और वे धर्मपूर्वक शासन करने लगे। वे शौर्य, पराक्रम, बल और ऐश्वर्य में अपने पूर्वजों के ही समान थे। उन्हीं दिनों परीक्षित ने सुना कि उनके साम्राज्य में कलियुग का प्रवेश हो गया है। इससे वे क्षुब्ध तो हुए क्योंकि उन्होंने महर्षियों से सुन रखा था कि कलि का प्रभाव मनुष्य को धर्म के मार्ग में पदच्युत कर अधःपतित बनाने वाला है। लेकिन तत्क्षण ही उन्हें आशा भी बँधी कि उन्हें अपने शौर्य पराक्रम को परखने का अवसर मिला है।

तुरन्त परीक्षित हाथ में धनुष-वाण लेकर अपने चुने हुए सैन्यधिकारियों के साथ कलियुग को खोजने और उससे युद्ध कर उसे परास्त करने के लिए निकल पड़े। जहाँ-जहाँ भी, उन्होंने पदार्पण किया, वहाँ-वहाँ उन्हें अपने पूर्वजों का सुयश सुनने को मिला और भगवान श्रीकृष्ण का यशोगान श्रवण किया—जिन्होंने गर्भ में ही परीक्षित की, अश्वत्थामा द्वारा उन्होंने मारने के लिए फेंके गये ब्रह्मास्त्र से रक्षा की थी।

इन सब लोक चर्चाओं को सुनकर महाराज परीक्षित का हृदय भगवान के प्रति श्रद्धा और उनकी अचिन्त्य कृपा के प्रति कृतज्ञता से अवनत हो उठता था।

परीक्षित कलि को खोजते हुए गाँव-गाँव, नगर-नगर और वन प्रान्तर में घूमते फिरे परन्तु उन्हें कलियुग का प्रभाव कहीं नहीं दिखाई दिया। एक स्थान पर उन्होंने देखा गाय और बैल कुछ बातें कर रहे थे। शिविर लगा हुआ था। गाय बैल का वार्तालाप सुनकर वे शिविर से बाहर आये। बैल के चारों पैरों में केवल एक ही ठीक था—शेष तीन टूटे हुए थे। गाय बैल से पूछ रही थी—वृषभ देव ! आपके तीन पाँवों को क्या हुआ ?

बैल ने कहा—कल्याणी ! अब कलियुग का आगमन हो गया है। उसने आते ही मेरे तीनों पैर तोड़ डाले और मुझे लगता है कि अब चौथा भी अधिक समय तक सकुशल नहीं रह पायेगा।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"क्यों आर्य ?"

"आखिर कलि ही तो ठहरा"—बैल ने कहा—"और आप भी तो अब कृश हो गई हैं।"

इतने में ही परीक्षित ने पूछा—"मातु और देव आप सामान्य तो नहीं दिखाई देते। कृपाकर अपना परिचय दीजिए।"

परिचय प्राप्त कर परीक्षित ने जाना कि गाय तो पृथ्वी है और वृषभ धर्म। धर्म के चारों चरण सत्य, शौच, करुणा और सेवा में से तीन पैर विक्षत हो गये हैं। पृथ्वी भी कृश और क्षीण है। अतः उन्होंने कलियुग का वास स्थान पूछा।

धर्म ने बताया कि कलि मन में रहता है और वहीं से मनुष्य को भ्रान्त करता है, जिससे उसे धारण करने वाले धर्म की यह दशा हुई। परीक्षित ने कलि को खोजा और जब वह शिशु के रूप में मिला तो उसे मारने के लिए उद्यत हुए।

"क्षमा करें आर्य"—कलि ने चीत्कारकर कहा—"मैं आपकी शरण में हूँ।"

शरणागत दया के आदर्श से अभिप्रेरित परीक्षित के हाथ जहाँ के तहाँ रुक गये, परन्तु उन्होंने कहा भी—"मैं तुम्हें इस शर्त पर क्षमा कर सकता हूँ कि तुम पृथ्वी पर से चले जाओ।"

"कहाँ चला जाऊँ ? नियति ने मुझे पृथ्वी पर ही रहने के लिए आदेश दिया है। हाँ इतना कर सकता हूँ कि आप जिस स्थान के लिए कहें, वहीं रहने लगूँ और वहाँ से रंचमात्र भी इधर-उधर न होऊँ"—कलि ने कहा।

तब राजा परीक्षित ने कहा—"ठीक है तुम्हारे रहने के लिए द्यूत (छल), मद्यपान (व्यसन), परस्त्री संग (व्यभिचार), हिंसा और सुवर्ण (लोभ) हैं तुम वहीं रहो।" और कहते हैं तभी से कलि इन पाँचों स्थानों पर निवास करने लगा।

भूतकाल को भुलाया जाए

मृत आत्मीयजनों के प्रति मोह स्वाभाविक होता है। ऐसे विरले ही होते हैं, जो उस बेला में अपने आपको संतुलित रख होनी को स्वीकार कर सकें। मरण को स्वाभाविक क्रिया मानकर जीवात्मा की शाश्वतता, चिरन्तनता को स्वीकार किया जाना चाहिए, इस तथ्य की पुष्टि अनेकों पौराणिक आख्यानों से होती है।

राजा प्रद्युम्न बीमार पड़े। बहुत चिकित्सा कराने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ। अन्ततः मरण-बेला आ पहुँची और उनके प्राण निकल गए। राजमहल में शोक छा गया। रानी, राजपुत्रों समेत सभी विलाप करने लगे। सोचने लगे कि किसी प्रकार राजा का मृत शरीर पुनर्जीवित हो उठता तो कितना अच्छा होता ?

उन दिनों महर्षि पुरन्ध्र अनेक ऋद्धि-सिद्धियों के अधिष्ठाता थे। उनकी कृपा से बड़ी से बड़ी विपत्ति टल जाने एवं असभव भी संभव हो जाने की ख्याति फैली हुई थी। संयोगवश राजा की मृत्यु के तुरन्त बाद वे उधर आ निकले। उन्होंने उचित समझा कि शोक-संतप्त परिवार को सान्त्वना दी जाए एवं राज्य की भावी व्यवस्था की रूपरेखा देख ली जाय। मृत राजा उनके भक्तों में से एक जो थे।

महर्षि पुरन्ध्र का आकस्मिक आगमन देखकर सभी उपस्थित लोगों में आशा का संचार हुआ। वे सभी एक स्वर से एक ही आर्त्र निवेदन करने लगे कि किसी प्रकार राजा को पुनर्जीवित कर दिया जाय।

महर्षि ने उन्हें लाख समझाया। जन्म-मरण की अनिवार्यता का विवेचन वे काफी देर करते रहे व धैर्य बँधाते रहे। पर उस बात पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। सभी का आग्रह एक ही रहा कि राजा को जीवित कर दिया जाय।

पीछा छूटने का कोई मार्ग न दीखने एवं स्वजनों का अत्यधिक मोह दिखाई पड़ने पर महर्षि उस शर्त पर तैयार हुए कि राजा की आत्मा ने जिस नये शरीर में जन्म ले लिया है, वहाँ सब लोग मिलकर चलें। उनसे वापस लौट चलने का अनुरोध करें। यदि वे स्वीकार कर लेंगे तो उनका नया शरीर नष्ट करके पुराने में लौटाने की व्यवस्था बनाने का प्रयास करें।

राजा प्रद्युम्न ने एक पेड़ पर काष्ठ कीट के रूप में जन्म ले लिया था। वहीं समूचे राज परिवार को ले जाया गया। कीड़े को दिखाया गया। साथ ही महर्षि ने यह सुविधा भी बना दी कि कीटक के साथ उपस्थित परिवारीजनों का सम्भाषण सम्भव हो सके।

यह ज्ञात होते ही यह काष्ठ कीट ही राजा प्रद्युम्न हैं, सभी परिवारीजन उनसे वापस लौट चलने का आग्रह करने लगे। उनके नये शरीर को नष्ट करने के लिए सभी उतारू थे एवं बार-बार आश्वस्त कर रहे थे कि आपकी काया को हमने संभाल कर रखा है।

कीटक शरीरधारी राजा ने कहा—"सज्जनो ! आप व्यर्थ मोह कर रहे हैं। अब मेरा पिछले परिवारीजनों से कोई लगाव नहीं रहा। आप सबको तो मैं जानता तक नहीं। नयी काया व नये परिकर में रहते हुए ही मुझे संतोष है। अपना परिवार भी शीघ्र बसाने जा रहा हूँ। इसमें आप व्यवधान मत डालिए। प्रस्तुत चोले में परिवर्तन की मेरी तनिक भी इच्छा नहीं है।"

सभी हतप्रभ थे। महर्षि ने पहले ही यह व्यवस्था बना दी थी कि राजा वापस लौटने को तैयार होंगे, तो ही उन्हें पुराने शरीर में ले जाया जाएगा। जब देखा कि राजा को पुराने सम्बन्धियों से कोई लगाव नहीं रहा, तो अपना हठ छोड़ सभी दुःखी मन से लौट आए।

प्रद्युम्न के मृत शरीर का अन्त्येष्टि संस्कार किया गया। कुटुम्बियों का शोक क्रमशः घटता चला गया। सभी को यह बात भली प्रकार समझ में आ गई कि जो जिस योनि में रहता है, वही उसे प्रिय लगने लगती है। आत्मा का न कोई घर सम्बन्धी होता है, न रिश्तेदार अतः मृत परिजन के प्रति व्यर्थ मोह न कर उचित अन्तिम कर्म आदि कर मोह से मुक्ति एवं मृतात्मा को शांति दी जानी चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

न सजा, न मुआवजा

बादशाह सुल्तान सीमा प्रान्त का दौरा कर रहे थे। राज कार्यों से उन्हें जब भी अवकाश मिलता, तो वे इस प्रकार दौरा करने निकल पड़ते थे और अपने राज्य की जनता के सुख-दुःख को निकट से जानते। ऐसे ही फुरसत के क्षणों में वे प्रायः अपने शिकारी दल के साथ शिकार भी किया करते। राज्य की जनता से—गाँवों में जाकर उनका दुःख दर्द पूछना, उसे दूर करने का उपाय खोजना और जंगलों में पशुओं का शिकार करना ही उनका कार्यक्रम रहता था।

सीमा प्रान्त का दौरा करते समय सुल्तान अपने साथियों के साथ घने जंगल की सैर कर रहे थे और शिकार का आनन्द ले रहे थे। कई मर्तवा हिंसक पशुओं का उन्होंने अकेले ही सामना किया। उन्होंने तलवार के वार से, तीर के निशाने से अकेले ही खूँखार पशुओं का वध किया। उस समय प्रान्त की एक घाटी में पड़ाव किया गया था। शाम हो चुकी थी और सुल्तान सहित अन्य शिकारी अपने घोड़ों पर से उतरकर विश्राम के लिए जाने की तैयारी कर रहे थे। सुल्तान तभी अपने तम्बू में से निकलकर सूर्यास्त का दृश्य देखने के लिए निकले। भगवान भास्कर घाटी के पीछे छुपते जा रहे थे और उनकी आरक्त किरणें क्षितिज को लाल किये दे रही थी जैसे सारा क्षितिज ही तमतमाया हुआ हो।

सुल्तान ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। सूर्य पहाड़ी की आड़ में छुप गया था। घाटी संध्या का झुट पुटा ओढ़कर सोने की तैयारी-सी कर रही थी। झुट पुटा धीरे-धीरे गहराता जा रहा था और श्यामलता कालिमा में बदल रही थी। बादशाह प्रकृति के इस रंग परिवर्तन को बड़े अभिभूत हो कर देख रहे थे। तभी उन्हें ऐसा लगा कि सामने वाले टीले पर कोई जानवर बैठा हुआ है, बादशाह का शिकारी मन जाग उठा और सुल्तान ने अपने कंधे पर रखा हुआ धनुष बाण उतारा, प्रत्यंचा तानी, निशाना साधा और कान तक तानकर तीर छोड़ दिया। सन्न ..... करता हुआ तीर अपने निशाने पर जा लगा और तीर के लगते ही एक जोरदार चीख सुनायी दी।

बादशाह का हृदय काँप उठा। यह तो मनुष्य की चीख थी। उन्हें यह भी आभास हो गया कि जिसे उन्होंने जंगली जानवर समझा था, वह कोई जानवर नहीं, कोई मनुष्य था। दौड़कर वे टीले पर जा पहुँचे। उन्हें इस प्रकार बेतहाशा भागते देख अन्य दरबारी और शिकारी भी टीले पर गये। वहाँ जाकर देखा कि विद्ध होने वाला जीव वास्तव में कोई पशु नहीं एक छोटा-सा लड़का था। अभ्यस्त और सधे हुए हाथों से छूटे तीर ने लड़के को बुरी तरह बींध दिया था। उसकी पीड़ा से लड़का इतनी बुरी तरह तड़प रहा था कि देखा नहीं जाता था।

सुल्तान का कलेजा काँप उठा, लड़के की तड़पन देख कर उन्होंने अपने मातहतों से लड़के के पिता को खोजने का आदेश दिया। चारों ओर सैनिक दौड़ पड़े। देर रात तक खोजबीन करने के बाद पता लग सका कि वह एक खान में काम करने वाले मजदूर का बेटा था। पिता को जब खबर दी गयी तो वह दौड़ा हुआ आया और अपने बेटे की यह दशा देखकर चीत्कार मारकर रोने लगा। सुल्तान के साथ आये वैद्यों ने घायल लड़के को चिकित्सा की और उसके बहते खून को रोकने की बहुत प्रयास किया किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ।

अपने बेटे की यह दशा देखकर मजदूर पिता तो रोते-रोते बेहाल हो गया। उसे देखते ही बादशाह ने कहा था—"बच्चे की यह दशा मेरे कारण हुई है। जानवर समझकर मैंने तीर छोड़ा था, पर धोखा हुआ, तीर तुम्हारे बच्चे को लग गया।"

इतना मात्र कहने से बादशाह ने इति श्री नहीं समझ ली। इस अनपेक्षित घटना ने उसके अन्तरंग को हिलाकर रख दिया। सुबह तक उस मजदूर को समझा-बुझा कर सांत्वना देकर चुप कराया गया। सुबह बादशाह फिर उसके पास गये और उन्होंने तत्काल दो थालियाँ मँगायी—एक में अशरफियाँ रखी हुई थी दूसरे में तलवार। बादशाह ने उस मजदूर से कहा—"यदि तुम चाहो तो इन अशरफियों को लेकर अपना जीवन आराम से चला सकते हो और यदि मुझे माफ न करना चाहो तो दूसरी थाली में रखी हुई तलवार से मेरा सिर अलग कर सकते हो।"

सुल्तान की न्यायप्रियता देखकर मजदूर दंग रह गया। वह बादशाह के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और बोला जहाँपनाह मुझे इन दोनों में से कुछ भी स्वीकार नहीं है। आप अपनी भूल के लिए इतना अनुताप कर रहे हैं इससे बड़ा दण्ड और क्या हो सकता है ? बस यह भूल दुबारा न हो इतना ही निवेदन है। इसके लिए आप निरीह प्राणियों का वध करना छोड़ दीजिये—यही काफी है।" और बादशाह ने शिकार करना ही छोड़ दिया।

व्यंग्य जो वरदान बना

फूँस की झोंपड़ियों के बीच बनी आलीशान कोठी में रहता था गाँव का जमींदार। उस कोठी में कदाचित किसी नीग्रो परिवार को सेवा टहल या चाकरी का अवसर मिल जाता तो उसे वे अपना सौभाग्य समझते थे। यद्यपि अन्तरंग कक्षों में इन चाकरों का प्रवेश वर्जित था, फिर भी कोठी के जिन भागों में चाकर नीग्रो प्रवेश करते थे और वहाँ के बारे में अपने अन्य साथियों को बताते थे तो भी साथियों के मन में ईर्ष्या होने लगती थी।

उस जमींदार का नाम था विल्सन। विल्सन परिवार के कपड़े धोने और कोठी की सफाई करने का काम पैट्सी नामक एक नीग्रो महिला के जिम्मे था। वह जब अपने काम में लगी रहती थी तो बच्चों को कोठी के बाहर ही छोड़ दिया करती थी। वे छोटे-छोटे बच्चे बाहर ही खेला करते थे और कभी-कभी कोठी की ओर निहारते हुए उसके अन्दर की कल्पनाएँ करते रहते थे। एक बार की घटना है पैट्सी अपने काम से निबटने के बाद कोठी के रास्ते से अन्दर गई। उसके साथ उसकी बेटी 'मेरी जीना' भी थी। मेरी ने जब अपनी माँ को अन्दर जाते देखा तो स्वाभाविक ही उसके मन में भी भीतर जाने की इच्छा हुई।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पैट्सी ने जब देखा कि मेरी भी उसके पीछे अन्दर आ रही है, तो वह डपटकर बोली—"बाहर ही रह। साहब नाराज होंगे।"

बेचारी मेरी ठिठक कर खड़ी रह गई।

उसने देखा कि माँ अन्दर चली गई है और नजरों से ओझल हो गई है, तो वह धीरे से खिसकी और दरवाजे के पास जाकर खड़ी हो अन्दर झाँकने लगी।

उसे सामने वाले कमरे में सुनहरी बालों वाली दो गोरी लड़कियाँ खेलती दिखाई दीं। मेरी के दरवाजे पर आने और अन्दर झाँकने के कारण हुई आहट से उन लड़कियों का ध्यान भी आकृष्ट हुआ। उन लड़कियों में से एक ने पूछा—"हमारे साथ खेलोगी ?"

मेरी को जैसे निमन्त्रण मिल गया। वह बोल उठी—'हाँ, खेलूँगी। आप खिलाएँगी तो जरूर खेलूँगी।

"अन्दर आओगी ?" उसी लड़की ने मेरी के समीप आते हुए पूछा तो मेरी ने फिर कहा, "हाँ ! हाँ !! जरूर आऊँगी।"

"तो फिर खड़ी क्यों हो ? आ क्यों नहीं जाती अन्दर ?" उसी लड़की ने कहा।

फुदकती हुई मेरी अन्दर चली गई। भीतर की साज-सज्जा देखकर एक बार तो लगी कि वह कल्पना लोक के किसी स्वर्ग में पहुँच गई। जब वह आँखें फाड़-फाड़ कर चारों ओर देख रही थी तो उसकी नजर मेज पर रखी हुई एक रंगीन और खूबसूरत पुस्तक पर पड़ी। आज तक उसने इतनी सुन्दर और ऐसी कोई चीज नहीं देखी थी। वह उस मेज के पास जाकर खड़ी हो गई और उस किताब को छूकर देखने का लोभ संवरण न कर सकी।

"ऐ . . . . वहाँ खड़ी हुई क्या कर रही हो ?" उन दोनों लड़कियों में से एक ने कहा जो उसकी प्रत्येक गति-विधि को बड़े गौर से देख रही थी—"क्या किताब चुराने का इरादा है ?"

"पर चुराकर करोगी भी क्या ?" कुछ क्षण रुककर वे फिर बोली, "तुम्हें पढ़ना तो आता नहीं" और वे खिल-खिलाकर हँस पड़ी।

इस फटकार और व्यंग की मार से क्षण भर पहले उभरी प्रफुल्लता चट से उड़ गई। घटना छोटी-सी थी पर मेरी के मन में गहरी चोट कर गई। वह घर आकर खूब रोई। इसके बाद नन्हीं मेरी ने असम्भव परिस्थितियों में रहते हुए वह कर दिखाया जो उस समय कल्पना में भी नहीं आ सकता था। उसने स्वयं शिक्षा प्राप्त की और अपने समाज में शिक्षा का ऐसा प्रचार किया कि आज मेरी जीना की गणना अमेरिकी प्रख्यात समाजसेवी महिलाओं में की जाती है।

वह सेठ जो नास्तिक से आस्तिक बना

धन गोपाल तन्ना बम्बई के करोड़पति सेठ हैं। आज तो वे बड़े धार्मिक है। पूजा, पाठ और देवदर्शन इनके नित्य के नियम हैं। शायद आप कहोगे कि लोगों का गला काटने के लिये उन्होंने ऐसा दम्भपूर्ण रूप बनाया होगा। पर बात ऐसी नहीं है। वर्तमान समय में वे हृदय से सच्चे आस्तिक हैं, ईश्वर का भय मन में रखते हैं। व्यापार में भी सत्य व्यवहार करते हैं। इतना ही नहीं कि वे स्वयं भगवान् को मानते हो, वरन् दूसरों को भी ईश्वरभक्त बनाने का प्रयत्न करते हैं।

पर आज से एक वर्ष पहले से बिल्कुल नास्तिक थे। यद्यपि उनके माता-पिता परम धार्मिक वैष्णव थे, पर कालेज की शिक्षा के प्रभाव से धनगोपाल के विचार पूर्ण नास्तिकता के हो गये थे। धर्म और ईश्वर उनको 'हम्बग' (निरर्थक ढकोसला) जान पड़ने लगा। उच्च शिक्षा और वाचालता के कारण वे प्रायः इस विषय पर वाद-विवाद करने लग जाते थे और अन्य व्यक्तियों को निरुत्तर कर देते थे। उनका यही विश्वास था कि पुरुषार्थ से सब हो सकता है। करोड़ों के व्यापार में इनको ईश्वर भजन करने की फुरसत भी कहाँ से मिलती ?

उनकी धर्मपत्नी आस्तिक और श्रद्धालु थी और कभी-कभी पति से कहा करती थी—"जरा तो भगवान की याद कर लिया करो—सदा एक-सा समय नहीं रहता।"

धन गोपाल उत्तर देते—"मुझे तो तेरी पाठ-पूजा की घण्टी की अपेक्षा टेलीफोन की घण्टी विशेष मधुर जान पड़ती है, क्योंकि उससे पैसा मिलता है।"

एक दिन सेठानी ने विशेष आग्रह करके एक महात्मा को अपने यहाँ ठहराया। वैसे तो सेठ ऐसे साधुओं को किसी गिनती में नहीं समझते थे, पर इस महात्मा के तेज से वे कुछ प्रभावित हुये। इसलिये केवल सभ्यता की खातिर ही उन्होंने पूछ लिया—"गुरुजी, आपका स्वास्थ्य तो ठीक है ?"

"भगवान की दया है, बेटा।" महात्माजी ने उत्तर दिया।

"भगवान-भगवान तो ठीक है, पर गुरुजी आप को यहाँ किसी प्रकार की असुविधा तो नहीं है ?"

"बेटा, भगवान दयालु है। उसकी कृपा से सब जगह आनन्द ही है।"

"महाराज मुझे तो भगवान कहीं भी मिले नहीं, अन्यथा मैं कुछ बात करता।"

"मिलेंगे—भावना होगी तो अवश्य मिलेंगे। भगवान अनेक रूपों में दर्शन देते हैं।"

"तो क्या भगवान बहुरूपिया है ?"

"बेटा, तुझे तो हँसी सूझती है, पर मेरी बात सुन ! भगवान तीन रूप में दर्शन देते हैं, सर्जक, पोषक और संहारक—ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र ये तीन उनके रूप हैं। जो उनको सर्जक और पोषक रूप में देखने को तैयार नहीं होते, उनको वे संहारक के रूप में ही दर्शन देते हैं। वैसे वे निरन्तर दयालु परमात्मा सर्वत्र व्याप्त हो रहे हैं, तुझको नहीं दिखाई देते तो उनका क्या दोष ? आज तू नहीं मानता पर जब संहारक रूप में दर्शन देंगे तो मुझे याद करेगा।"

महात्मा तो थोड़े दिन रहकर चले गये पर उनकी यह बात कि "जो ईश्वर को सर्जक और पोषक के रूप में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं देखता उसे वे संहारक के रूप में दर्शन देते हैं" सेठ के मन में बार-बार आती रहती।

इसके बहुत समय बाद उनको बम्बई से दिल्ली जाने की आवश्यकता हुई और संयोगवश अमावास्या के दिन रवाना होना पड़ा। इस बात से सेठानी बड़ी चिन्तातुर हुई और उसने सेठ को बहुत समझाया कि वह जाने के दिन में फेर फार कर लें, पर सेठ इन बातों को तो ढोंग मानते थे, इसलिये उन्होंने सेठानी की बात की तरफ ध्यान न दिया।

अमावस्या को संध्या के समय सेठजी फ्रंटिअर मेल से रवाना हुये। आज यात्रा का मुहूर्त न होने से गाड़ी में भीड़ कम थी और फर्स्टक्लास के डिब्बे में वे अकेले ही थे। इसलिये गाड़ी के चलते ही अपनी सीट के ऊपर लेट गये। थोड़ी. देर में उनको नींद आ गई और स्वप्न देखने लगे कि मानो भगवान का दरबार लगा है, पास में चित्रगुप्त बैठे हैं। इनको भी सामने ले जाकर खड़ा कर दिया गया है। इतने में चित्रगुप्त ने पुकारा—"धन गोपाल रामगोपाल तन्ना।"

"यह उपस्थित है" पास खड़े हुये देवदूत ने सेठ की ओर इशारा किया।

"इसका इतिहास बताओ ?" भगवान ने कहा।

"महाराज ! इसके खाते में कोई सत्कर्म करने का तो उल्लेख नहीं है।" चित्रगुप्त ने कहा।

"मैंने सत्कर्म नहीं किया तो कोई दुष्कर्म भी नहीं किया। केवल आपके अस्तित्व से इनकार किया था।" सेठ बीच में बोल उठे।

"बात ठीक है महाराज ! इसका खाता बिल्कुल कोरा पड़ा है।"

भगवान विचार में पड़ गये कि "इस बेवकूफ का क्या किया जाय ? इसे कहाँ जन्म दिया जाय ?" चित्रगुप्त कुछ कहने जा रहे थे कि भगवान पहले ही बोल उठे—मैंने तुम्हारी बात समझ ली। इसको कोरा ही जन्म दो। केवल देह धारण करके पैसा ही पैदा करते रहे, भोजन, पानी, नींद, आराम की इसको जरूरत ही नहीं रहे। इसके जीवन में आनन्द उल्लास भी न हो।

"पर महाराज यह खायेगा नहीं, पीयेगा नहीं केवल काम ही करता रहेगा तो इसकी मृत्यु कैसे होगी ?"

"ठीक है ! इसकी मृत्यु भी ऐसी ही शुष्क रीति से होगी। एक अमावस्या की रात्रि को यह एक रेल-यात्रा में निकलेगा, वहीं जंगल में रेल की टक्कर से मृत्यु हो जायेगी।"

स्वप्न में भी यह दृश्य सेठ को बड़ा भयभीत करने वाला लगा और भगवान की अंतिम बात सुनकर तो उसको पसीना आ गया। पर उसी समय नींद टूट गई और देखा गाड़ी धम-धम करती एक स्टेशन पर आकर खड़ी हो गई है। खिड़की से बाहर सिर निकालकर देखा तो बड़ोदा का स्टेशन था। आधी रात के समय ऐसा स्वप्न आया, यह सोचकर उनको कुछ हँसी भी आई। कहने लगे कि मन की शंका भी कैसी होती है ? खैर अब तो अमावस भी खत्म हो चली है, अब भय किस बात का है ? इससे खिड़की बन्द करके फिर अपनी सीट पर लेट गये और थोड़ी देर में गहरी नींद में खर्राटे लेने लगे।

बड़ोदा छोड़कर गाड़ी आगे बढ़ी। फ्रंटियर मेल की तेजी का पूछना ही क्या ! धड़धड़ाती हुई गाड़ी एक के बाद एक स्टेशनों को छोड़ती जाती थी। गाड़ी ने समलाया छोड़ा कि एक प्रचंड शब्द के कारण धन गोपाल की आँख एक दम खुल गई। मनुष्यों के रोने-चिल्लाने की आवाज में से जब तक कुछ समझ में आवे तब तक तो इनका डिब्बा भी ऊँचा उठने लगा और दियासलाई की डिब्बी की तरह उसके तख्ते टूट-टूट कर गिरने लगे। सेठ ने उठने का प्रयत्न किया पर उठ न सका। कलेजे में, छाती में, पसलियों में कुछ गहरा घुसा हुआ जान पड़ता था। पैर भी तख्ते के नीचे दबे थे। हाथ को ऊँचा किया तो वह खून से तरबतर था। सेठ ने समझ लिया कि जरूर मृत्युकाल आ गया है। मृत्यु के समय भी परमात्मा को याद न किया जाय, तो फिर कब किया जाय ? उसे बेहोशी आती जा रही थी कि उसके मुँह से निकला "ईश्वर ने सचमुच संहारक रूप में दर्शन दे दिया।"

महाकाली ने अपना भोग ले लिया था। फ्रंटियर मेल का इंजन लड़ गया और चारों ओर संहार लीला दिखलाई पड़ने लगी। टूटे-फूटे रेल के डिब्बों के नीचे से घायल और मरते हुए लोगों की चीत्कार सुनाई पड़ रही थी। कितने ही लोग तो इतने कट-फट गये थे कि उनको पहचाना भी नहीं जा सकता। इस भयंकर दुर्घटना से बचे हुये लोगों को दूसरी गाड़ी से आगे भेज दिया गया। जो बच सकते थे उनको आनन्द के मिशन अस्पताल में भेजा गया। मृतकों में से जिनको पहचाना जा सका, उनके नाते रिश्तेदारों को खबर दे दी गई और जो पहचाने न जा सके, उनकी जैसी व्यवस्था हुआ करती है वैसी कर दी गई।

धनगोपाल सेठ को निद्रित अवस्था में फिर भगवान के दरबार का स्वप्न दिखलाई पड़ने लगा। चित्रगुप्त ने अपना रोजनामचा उठाकर कहा—

भगवान, यह धनगोपाल समस्त जीवन केवल पैसा कमाकर, और बिना किसी प्रकार का सत्कर्म या दुष्कर्म किये हाजिर हुआ है। अमावस्या के दिन रेल दुर्घटना में इसकी मृत्यु हुई थी।"

"क्यों धनगोपाल ! तुमको कुछ कहना है ?"

"प्रभु, मैंने आपके संहारक रूप को देखा, अब मुझे दयामय रूप के दर्शन दीजिये, जिससे मेरे मन को शांति मिले। प्रभु, मेरे अपराधों को क्षमा करो।"

"वत्स, तेरी सम्पत्ति का तू स्वामी नहीं, वरन् उसका व्यवस्थापक मात्र ही है। तू कल्याण के लिये उसका उपयोग कर, तो तुझे मेरे दयालु रूप के भी दर्शन होंगे।"

"जरूर, प्रभु जरूर ! सम्पत्ति का मैं जगत् के हितार्थ ही उपयोग करूँगा" सेठ ने रोते हुये कहा।

इसके पश्चात् वह दृश्य धुँधला पड़ गया और दूसरा दृश्य दिखलाई पड़ने लगा। उसके आसपास दूध जैसे स्वच्छ वस्त्र पहिने देवदूत और देवियाँ फिर रहे थे। बीच-बीच में वे आपस में बातें भी करते जाते थे—

"समलाया के आगे भयंकर दुर्घटना हुई।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"हाँ, इसमें बहुत से मनुष्य मर गये।"

"मरने वालों में एक बम्बई का करोड़पति सेठ धनगोपाल रामगोपाल तन्ना भी था। आज ही अखबार में मैंने देखा है।"

यह सुनकर सेठ का दिल बैठने लगा। वह समझने लगा कि मैं जरूर मर गया हूँ और भगवान के सहारे स्वर्ग के किसी अस्पताल में पड़ा हूँ। पास ही बम्बई का एक अखबार पड़ा था। देखा तो उसमें उसके मरने की खबर और फोटो छपा था। उसका हृदय भर आया और थोड़ी दूर खड़े सफेद वस्त्र पहिने—एक प्रभावशाली दिखाई पड़ने वाले पुरुष से पूछा—

"देव, मैं कहा हूँ ? भगवान के राज्य में हूँ ?"

"हाँ, भाई ! मैं और तू सभी भगवान के राज्य में हैं।" अस्पताल के प्रेमी स्वभाव वाले ईसाई डॉक्टर ने उत्तर दिया।

"भगवान, मुझे क्षमा करो।" धनगोपाल ने फिर कहा।

"भगवान तो दयालु हैं, भाई ! वह सब अच्छा ही करेगा।" डॉक्टर ने उसके मस्तक पर हाथ फेरा और फिर कहा—"तुमको जल्दी ही आराम हो जाएगा।"

सेठ ने संतोष से आँखें बन्द कर लीं और उसके मन का परिताप कम हो गया। वह बड़बड़ाने लगा "प्रभु, तू दयालु है।" निश्चित मन से उसे प्रगाढ़ निद्रा आई, नींद में भी वह प्रभु के रूप के दर्शन कर रहा हो ऐसा उसके मुख की मुसकराहट से जान पड़ता था।

लगभग दस दिन में उसे आराम हो गया। घर आकर सबसे पहले सेठानी के सामने उपस्थित होकर अपनी नास्तिकता के लिये क्षमा माँगी और फिर जगत् के हितार्थ अपनी सम्पत्ति को खर्च करने का विचार प्रकट किया। फिर उसने "टाइम्स आफ इंडिया" की पुरानी कापियाँ निकालकर देखीं तो मालूम हुआ कि उसमें उसके मरने की खबर अवश्य छपी थी, पर दो रोज बाद ही उसका खंडन छापा गया था। मदनगोपाल तन्ना नाम का एक दूसरा व्यापारी मर गया था और दोनों नामों में बहुत कुछ समानता होने से ऐसी गड़बड़ी हो गई थी।

इस अनुभव के बाद धनगोपाल सेठ परम आस्तिक बन गया, जो मिलता है, उससे आप बीती सब कथा सुनाता है। जब से महात्मा से भेंट हुई तब से अन्त तक की घटनाएँ कह देता है। उसके समस्त विवरण का सार यही होता है कि "मैं आस्तिक कैसे बना ?"

बंधनों में बाँधती है—आसक्ति

वीतराग, सर्वत्यागी और निष्काम ऋषि भरत इतने निश्छल और निर्विकार रहते थे कि लोगों ने उपहास में उन्हें जड़ कहना आरम्भ कर दिया। जड़ शब्द उनके लिए लोक व्यवहार में इतना प्रचलित हुआ कि उनके मूल नाम से जुड़कर उन्हें जड़ भरत ही कहा जाने लगा। लोग उन्हें कुछ भी कहते, मान करते या अपमान, निंदा करते या प्रशंसा इसकी उन्हें न कोई अपेक्षा रहती और न ही किसी तरह की चिंता। सरल इतने कि लोग उन्हें मूर्ख समझकर रोटी के बदले कोई भी बेगार करने को कहते, तो वह भी अविचले भाव से कर लेते।

एक दिन की घटना है। सिंधु सौवीर प्रदेश के राजा रहूगण महर्षि कपिल का सत्संग करने के लिए शिविका पर बैठ कर जा रहे थे। संयोग से उसी समय जड़ भरत विचरण करते दिखाई दिए। वेश-विन्यास देखकर उन्हें महर्षि तो क्या कोई ब्राह्मण भी नहीं समझ सकता था। शरीर से हृष्ट-पुष्ट और मुद्रा से प्रसन्न सरल भरत को भारवाहकों ने कोई चरवाहा समझा और उन्हें पकड़कर सौवीर नरेश की पालकी उठाने में बीमार साथी के स्थान पर लगा दिया। स्वभाव से ही न करना, नहीं जानने वाले महर्षि भरत ने सहर्ष इस कार्य को स्वीकार किया और रुग्ण व्यक्ति के स्थान पर स्वयं आ गए।

उन्हें इस कार्य का अभ्यास तो था नहीं, इसलिए वे अन्य भारवाहकों की तरह उनके साथ कदम से कदम मिलाकर नहीं चल पा रहे थे। इसके अलावा उन्हें इस बात का भी ध्यान रहता था कि धरती पर रेंगने या चलने वाला कोई जीव पैरों से कुचलकर न मर जाये। इस सतर्कता एवं अनभ्यस्तता के कारण उनके पैर लड़खड़ा जाते। जब दो-तीन बार ऐसा हुआ और अन्य भारवाहकों की तरह पालकी को कंधा न दे पाने के कारण भरत रह-रह कर लड़खड़ा जाते तो भीतर बैठे सौवीर नरेश भी उछल पड़ते।

जब तीन-चार बार ऐसा हुआ तो राजा रहूगण ने बाहर देखा। उनकी दृष्टि से ही कहारों ने समझ लिया कि नरेश क्रुद्ध हैं। कहीं एक के किए का दण्ड सभी को न भुगतना पड़े, इसलिए उन्होंने भरत की गलती के बारे में बता दिया। इस पर सौवीर नरेश ने व्यंग किया, "ओह बंधु। तुम कितने दुर्बल हो गए हो, वृद्धावस्था ने तुम्हें कैसा बना दिया ? यह बुढ़ापा भी कितना बुरा है ? अच्छे भले मनुष्य को भी जीर्ण और दुर्बल बना देता है। शायद तुम थके हुए भी हो और प्रतीत होता है कि तुम्हारे साथी भी ठीक से तुम्हारी सहायता नहीं कर पा रहे हैं।"

भरत ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। वैसे भी कोई कुछ कहता रहे, चुप रहना उनके स्वभाव में था। कुछ दूर आगे चलकर वे फिर लड़खड़ाए। अब तो राजा क्रोध से बिफर उठा, "क्या बात है मूर्ख ? तुम्हें मेरी बात समझ में नहीं आ रही या तुम बहरे हो।"

मौन तोड़ कर भरत ने कहा, "राजन् ! आपकी पिछली बात मैंने सुनी थी और उसका आशय भी समझा था। मुझे ज्ञात है कि बोझा ठीक से ढोने के लिए होता है और उसे ठीक से ढोना चाहिए। पर मुझे यह समझ में नहीं आता कि आदमी-आदमी के ऊपर बोझा क्यों बने ?"

राजा को इस उत्तर की आशा नहीं थी। एक साधारण सा भारवाहक या सामान्य सा व्यक्ति राजपद पर आसीन व्यक्ति को प्रत्युत्तर दे, एक तो इसी की आशा नहीं थी, उस पर से इतना कड़ा उत्तर राजा को आग-बबूला कर देने के लिए पर्याप्त था। सौवीर नरेश तुरंत पालकी से उतर पड़े। पालकी से उतरते-उतरते ही अपनी तलवार निकाल ली थी। अन्य भारवाहक भय के कारण काफी दूर जाकर खड़े हो गए। राजा रहूगण ने कहा, "रे दुष्ट ! तेरी यह धृष्टता ? किससे किस तरह व्यवहार करना चाहिए यह भी तुझे नहीं आता ? ठहर मैं अभी तुझे मारकर किए का मजा चखाता हूँ।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस पर भी जड़ भरत अविचलित भाव से खड़े राजा की क्रोधित मुद्रा को सदय भाव से देख रहे थे। उनके चेहरे पर रोष, भय, चिंता का कोई नामोनिशान न था। राजा ने खड्ग तानते हुए कहा, "तुझे अपनी भूल का क्या, कोई पछतावा नहीं ?" "भूल" भरत ने कहा, "भूल तो राजन् मैंने भी की हैं और आपने भी। इस भूल के कारण ही तो हमें इस संसार में पुनः आना पड़ा, पर मेरी भूल बड़ी थी कि मैं जान-बूझकर मोह में पड़ा।"

राजा ने समझा—शायद यह पागल है और ऐसे ही कुछ प्रलाप कर रहा है। उन्होंने अन्य कहारों की ओर क्रोधित नजर से देखा, जिन्होंने भरत को पकड़कर पालकी में जोत दिया था, साथ ही कहा—"तुम लोग हो सही दण्ड के भागी। तुमने इस पागल को क्यों पकड़ लिया ?"

भारवाहक थर-थर काँपने लगे। क्रोध के कारण लाल अँगारे हुई आँखों को देखकर भरत और भी दयार्द्र हो उठे, "राजन् ! इन लोगों का कोई दोष नहीं है। आप दण्ड तो मुझे देने वाले थे, मुझे ही दीजिए न।"

अब राजा रहूगण फिर चौंका। कुछ समय पहले पहेलियाँ बुझाने वाला यह व्यक्ति अब कितनी विनम्रता-पूर्वक बात कह रहा है। राजा की कुछ समझ नहीं आ रहा था, तभी भरत ने कहा—"दीजिए न राज दंड। आप किसे दंड देने वाले थे। आपने मेरे इस स्थूल शरीर को देखकर ही व्यंग किया था न, लेकिन इसे काटकर तो आप मुझे मार नहीं सकते। जिस तरह आप इस सिर से धड़ को काटकर अलग गिरा हुआ, छटपटाता देखेंगे, उसी प्रकार मैं भी देखूँगा।"

कहते-कहते भरत के मुख-मण्डल पर सौवीर नरेश को एक तेजस्विता दिखाई देने लगी। जड़ भरत कहे जा रहे थे, "शरीर से आत्मा का क्या वास्ता ? भूख-प्यास क्रोध, अभिमान, क्षीणता, हीनता उनके लिए है, जो इन्द्रियों के स्वाद में डूबा हुआ है और आसक्ति का दंश मुझे एक बार हो चुका है इसलिए आप निःशंक निःसंकोच हो मुझे दण्ड दीजिए।"

ब्रह्मविद्या के इन गूढ़ रहस्यों को सुनकर क्रोधाविष्ट राजा का क्रोध शांत हो गया। वे इतने विस्मित तथा पश्चात्ताप से दग्ध होने लगे कि उनके सामने धरती, आसमान सब घूमने लगे। महर्षि भरत के तत्वज्ञान ने उनको पूरी तरह पराभूत कर दिया और वे पैरों में गिरकर क्षमा माँगने लगे। पूर्णतः अविचल भाव से भरत सौवीर नरेश के क्षण-क्षण बदलते रूप को देख रहे थे, और करुणार्द्र हो रहे थे। इधर सौवीर नरेश कहे जा रहे थे "भगवन्" मैं आपको पहचान न सका। अवश्य ही आप उच्चकुल के योगी हैं। मुझसे जो अपराध हुआ है उसके लिए मैं क्या प्रायश्चित्त करूँ।"

"अपराध तो तब होता राजन् ! जब आपके किए से मुझे वेदना या पीड़ा होती। मुझे तो ऐसा कुछ भी आभास नहीं हुआ, फिर मैं आपको कैसे दोषी मानूँ और प्रायश्चित या क्षमा का विधान करने वाला मैं कौन होता हूँ ?"

सौवीर नरेश ने अपनी यात्रा वहीं स्थगित कर दी और महर्षि जड़ भरत के चरणों में बैठकर ब्रह्मविद्या का ज्ञान प्राप्त किया। महर्षि भरत ने कहा—"राजन् ! आसक्ति ही सब दुःखों की जननी है, यहाँ तक कि वही पुनः जन्म लेने के लिए बाध्य करती है। इसके पूर्व मैं मृगयोनि में था और मृगयोनि प्राप्त करने से पहले भी मैं शालग्राम क्षेत्र में योग साधना करता था। आसक्तिवश ही मुझे मृगयोनि में जन्म लेना पड़ा।"

"यह आसक्ति ही मनुष्य को तरह-तरह से दुःख देती और बंधनों से बाँधती है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि कुल, वंश, पद तो क्या इस शरीर से भी आसक्ति न करे। अनासक्त रहकर कर्त्तव्य कर्म का आचरण करने से मनुष्य जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करता है।"

महर्षि भरत के इन शब्दों को सुनकर सौवीर नरेश को जैसे अंधकार भरे पथ में सूर्य आलोक मिल गया। उन्होंने अपना सारा राज्य गुरु चरणों में दक्षिणा स्वरूप समर्पित कर दिया। महर्षि भरत ने यह कहकर राज्य संचालन का दायित्व राजा रहूगण को सौंप दिया कि "कर्त्तव्य समझ कर कर्म करो। इसे अपना प्रायश्चित भी समझ सकते हो।"

सच्चे लाभ की साधना

कंचनपुर नगर में एक राजा राज्य करता था, उसके कोई सन्तान न थी। बहुत तपस्या के उपरान्त एक परमसुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई। जब कन्या विवाह योग्य हुई, तब राजा ने देश देशान्तर के राजाओं को स्वयंवर के लिए बुलाया, किन्तु उस राजकुमारी ने किसी भी राजकुमार को स्वीकार न किया। होते-होते बहुत दिन गुजर गये।

एक दिन रात्रि के समय राजा शयनागार में गये हुये थे, तब रानी ने पति से कहा, "राजन् ! राजकुमारी का विचार धर्मपरायण, परोपकारी, योगी से विवाह करने का है वह भोग ऐश्वर्य की अपेक्षा आत्म उन्नति में सहायता करने वाला साथी चाहती है। कष्ट और निर्धनता की उसे जरा भी परवाह नहीं। इसलिए आप किसी योगी के साथ उसका विवाह करने का प्रयत्न कीजिए।"

राजा को पहले तो यह प्रस्ताव पसन्द न आया, पर जब रानी ने प्राचीन इतिहास बताते हुए पार्वती, सावित्री, सुकन्या आदि अनेक राजपुत्रियों का विवाह योगियों के साथ होने के उदाहरण दिये, तो राजा सहमत हो गया और दूसरे दिन योगी की तलाश में जाने का उसने निश्चय कर लिया।

राजा और रानी में जिस समय यह वार्तालाप हो रहा था, ठीक उसी समय एक चोर शयनागार के निकट चोरी के उद्देश्य से छिपा हुआ यह सब बातें सुन रहा था। उसने सोचा मैं ही योगी का वेष बनाकर राजा के मार्ग में क्यों न बैठ जाऊँ, जिससे राजकुमारी का पाणिग्रहण तथा राज्य का उत्तराधिकार मुझे ही प्राप्त हो जाय ? चोर के मन में यह बात बैठ गई। वह तुरन्त ही वहाँ से उलटे पाँव लौट गया और घर जाकर योगी का वेष बना, प्रभात होने से पूर्व राजा के जाने के मार्ग पर जा बैठा।

प्रभात होने पर राजा, योगी वर की तलाश में निकला। उसने कुछ ही दूर आगे चलने पर एक स्वस्थ शरीर, योगी युवक को ध्यान मग्न देखा। राजा वहीं ठहर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गया और किसी प्रकार प्रार्थना, अनुरोध से उसे विवाह के लिये तैयार करके घर ले आया। राजा-रानी असाधारण रीति से अपने भावी जामाता का स्वागत-सत्कार करने लगे। विवाह की तिथि निश्चित हो गई।

चोर मन ही मन विचार करने लगा कि जिस योग का आडम्बर करने मात्र से इसका लाभ हो रहा है यदि सच्चे मन से उसकी साधना की जाय तो न जाने कितना लाभ होगा, बुद्धिमानों ने कहा है कि "बड़े लाभ के लिए छोटे लाभ का त्याग करना चाहिए।" इसलिए मुझे सच्चे योग की साधना करके अपार लाभ प्राप्त करना चाहिये।

चोर ने राजा से विवाह की अस्वीकृति प्रकट कर दी और सच्चे साधक के रूप में वह तप करने के लिये चला गया।

संगठन और लक्ष्मी

सेठ जी पर लक्ष्मी की कृपा थी। उनका व्यापार व्यवसाय अच्छी उन्नति कर गया था। लाखों करोड़ों का कारोबार होता था, तिजोरियाँ सोने चाँदी से सदा भरी रहतीं। ईश्वर की कृपा से उन्हें चार सुन्दर पुत्र प्राप्त हुए थे। चारों ही एक से एक बढ़कर चतुर थे। घर सब प्रकार के आनन्दों से परिपूर्ण था।

बेटे बड़े हुए और उनके धूम धाम के साथ विवाह किये गये। बहू अपने साथ खूब दान दहेज लाईं। सेठजी और सेठानी प्रसन्नता से फूले न समाते थे।

समय का चक्र बड़ा प्रबल है। आज जहाँ आनन्द है, कल वहाँ दुःख हो सकता है, आज जहाँ बाग है, कल वहाँ मरघट हो सकता है। सेठ जी के आनन्द से भरे हुए घर में भी विनाश की छाया झाँकने लगी। बहुओं में मनमुटाव बढ़ने लगा। सम्मिलित रहने का एक ही सिद्धान्त है कि हर मनुष्य अपने सुख की अपेक्षा दूसरे का अधिक ध्यान रखे, किन्तु जहाँ 'आपापूती' शुरू हो जाती है, अपने लिये अधिक लेने और दूसरे को कम देने की प्रवृत्ति चल पड़ती है, वहाँ साझा नहीं चल सकता। एक न एक दिन कलह और विद्रोह जरूर पनप उठेगा। बहुओं में कुछ ऐसे ही विचार घर करने लगे थे। हर एक अपने लिए अधिक सुख चाहती थी और दूसरों की उपेक्षा करती थी। फल स्वरूप घर में लड़ाई के बीजांकुर बढ़ने लगे। स्त्रियों के मन मुटाव की छूत पुरुषों में पहुँची और वे भी एक-दूसरे से असन्तुष्ट रहने लगे। भीतर ही भीतर सब में रोष था, कभी-कभी वह लड़ाई के रूप में बाहर भी प्रकट होने लगा।

जहाँ कार्यकर्ताओं के चित्त में उद्विग्नता है, वहाँ कार्य ठीक प्रकार पूरा नहीं हो सकता और व्यापारी के काम अधूरे और कच्चे पड़े रहते हैं, उसको घाटा होना निश्चित है। जैसे-जैसे कलह बढ़ने लगा वैसे ही वैसे व्यापार में घाटा भी बढ़ने लगा। एक दिन आर्थिक दशा कमजोर होने लगी।

एक दिन सेठ जी ने स्वप्न देखा कि दिव्य रूप धारण किये हुए तेज मूर्ति लक्ष्मी जी उनके घर को छोड़कर अन्यत्र जाने की तैयारी कर रही हैं और मन्द स्वर से कर रही हैं—"पुत्र, मैं तेरे यहाँ बहुत दिन रही, पर अब यहाँ नहीं रहूँगी।" सेठजी लक्ष्मी के अनन्य सेवक थे। जीवन भर उन्होंने उसी की उपासना की थी, जब उन्होंने यह देखा कि मेरी संपदा जा रही है, वेदना से तड़फड़ा कर वे लक्ष्मी के चरणों में लोट गये और फूट-फूट कर रोने लगे। लक्ष्मी को उन पर दया आ गई। उनने कहा, पुत्र, मेरा जाना तो निश्चय है, तेरी भक्ति को देखकर एक वरदान तुझे दे सकती हूँ। मुझे छोड़कर अन्य जो वस्तु चाहे सो तू माँग ले।

स्वप्न में ही सेठ जी ने कहा—"माता इस समय मेरा चित्त स्थिर नहीं है। मैं शोक से व्याकुल हो रहा हूँ, इसलिए क्या माँगू क्या न माँगू इसका ठीक निर्णय नहीं कर सकता। आप कल तक का अवसर मुझे दें। कल मैं माँग लूँगा।" लक्ष्मी जी दूसरे दिन फिर स्वप्न में दर्शन देने का वचन देकर अन्तर्ध्यान हो गईं। सेठजी का स्वप्न टूटा तो उनका कलेजा धकधका रहा था।

प्रातःकाल सेठ जी ने अपने सब पुत्रों और पुत्र-वधुओं को बुलाया और रात के स्वप्न का सारा हाल कह दिया। उस जमाने में लोगों के मन अधिक गंदे न होते थे, इसलिये उन्हें जो दिव्य स्वप्न दिखाई देते थे प्रायः सत्य ही होते थे। सबको विश्वास हो गया कि स्वप्न सत्य ही है। अब सब विचार करने लगे कि लक्ष्मी जी से क्या माँगना चाहिए। लड़कों में से किसी ने कोठी, किसी ने मोटर, किसी ने कुछ किसी ने कुछ माँगा। इसी प्रकार बेटों की बहुएँ भी संतान, आभूषण, महल आदि माँगने लगीं। किन्तु छोटे बेटे की बहू ने नम्रतापूर्वक कहा—"पिताजी मेरी सलाह तो यह है कि आप 'ऐक्य' का वरदान माँगें। हम लोग चाहे जिस परिस्थिति में रहें पर सब में प्रेम बना रहे और सब मिल जुलकर रहें।"

छोटी बहू की बात सेठ जी को पसन्द आ गई। रात को उन्होंने लक्ष्मी जी से यही वरदान माँगा कि माता! हम लोग चाहे जैसे दुःख-सुख में रहें, परन्तु सबमें प्रेम भाव बना रहे, सब मिल-जुल कर रहें। लक्ष्मी इस याचना को सुनकर अवाक् रह गईं। उन्होंने कहा—"यही तो मेरे जाने का कारण था। कलह और द्वेष के कारण ही तो मैं तुम लोगों के यहाँ से जा रही थी, पर जब तुम्हें यह वरदान दूँगी तो किस प्रकार जा सकूँगी?" लक्ष्मी जी वचनबद्ध थीं, उन्हें यह वरदान देना पड़ा, परन्तु साथ ही अपने चले जाने का विचार भी छोड़ देना पड़ा, क्योंकि जिस परिवार में प्रेम और संगठन है, लक्ष्मी उसे छोड़कर जा ही नहीं सकती।

शरीर न अमर हुआ, न होगा

हाथ में वीणा लेकर नारायण के नाम का मधुर कण्ठ से उच्चारण करते हुये नारदजी बैकुण्ठ की तरफ़ जा रहे थे। रास्ते में गरुड़जी मिल गये।

गरुड़जी को देखकर नारदजी बड़े प्रसन्न हुये। जगत् के स्वामी की सेवा में सदैव उपस्थित रहने वाले गरुड़जी को वे बड़ा भाग्यशाली समझते थे। उन्होंने कहा—"गरुड़जी, जय नारायण!"

"जय नारायण!

"कहो गरुड़जी, तबियत तो ठीक है?"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"भगवान की कृपा से मैं तो भली प्रकार हूँ।

"तुम्हारे कुशल-समाचार जानकर मुझे संतोष हुआ, पर तुम्हारे चेहरे से ऐसा जान पड़ता है कि तुम थक गये हो !"

"इसका कारण यह है कि कुछ समय से मेरी माता की तबियत खराब है और मुझे उसकी सेवा के लिये रात-रात भर जागकर विशेष परिश्रम करना पड़ता है।"

"भाई, माता की सेवा करने का भाग्य किसी सौभाग्यशाली को ही मिलता है। जिसे माता-पिता की सेवा का अवसर मिला, उसे अपना भाग्य बहुत अच्छा समझना चाहिये। तुम माता की खूब सेवा करना।"

"इसमें क्या कहना है ? अच्छा, अब चलें, जय जय।" गरुड़जी यह कहकर चलने लगे।

"अरे जरा खड़े रहो—खड़े रहो गरुड़जी ! एक बात कहने को रह गई।" नारदजी ने गरुड़जी को जाने से रोका।

"कहिये नारदजी ! क्या कह रहे थे ?"

"बुढ़िया की जरा भली प्रकार देखभाल करना, आगामी दो दिन उसके लिये भारी जान पड़ते हैं।"

"नहीं जी डर की क्या बात है, मैं ऐसी बातों से भयभीत नहीं होता।"

"तुम्हारे डरने या न डरने की बात नहीं है। मेरा कहना यही है कि तुम अब अपनी माता के जीवित रहने का भरोसा मत रखना।"

"मैं अपनी माता का भरोसा क्यों न रखूँ ?"

"क्योंकि वह पका हुआ पान है। इस पर बीमार भी है। चाहे जब टूटकर गिर जाय।"

"जाओ, जाओ नारदजी, तुम तो गप्प मारते हो !"

"मैं तो सत्य ही कहता हूँ, अब मानना या न मानना तुम्हारी मरजी पर रहा। तुम मेरे प्रेमी हो इसलिये मैंने इतनी बात कह दी।"

"अजी नारदजी, पर मेरी माँ पृथ्वी के अन्य सामान्य मनुष्यों की माँ की तरह नहीं है, आप समझे ?"

"अरे भाई चाहे जिसकी माँ हो, जिसने जन्म लिया है उसे जल्दी या देर में मरना ही पड़ता है।

"यह नियम हमारे ऊपर लागू नहीं होता। मेरी माँ कैसे मर सकती है ?"

"वाह भाई वाह, यह तो तुमने बिल्कुल नई बात कही !"

इसमें नई बात क्या ? मैं भगवान विष्णु का प्रिय सेवक हूँ। मृत्यु और सब जगह आक्रमण कर सकती है, पर वह मेरी तरफ देखने का साहस नहीं कर सकती !"

"तुम समझने में जरा गलती कर रहे हो। तुम भगवान विष्णु के प्रिय सेवक और भक्त हो इसमें संदेह नहीं, पर भगवान का स्वभाव तुम नहीं जानते।"

"क्यों ? उनका स्वभाव कैसा है ?"

वैसे तो उनका स्वभाव बहुत अच्छा है, पर उन्होंने जो नियम बना दिये हैं, उनका वे बड़ी दृढ़ता से पालन कराते हैं। उन नियमों का पालन समस्त जगत् में बराबर होता रहता है और उसी से संसार चक्र चल रहा है। उन्हीं नियमों में से यह भी है। जिसने जन्म लिया है वह जल्दी या देर में मरेगा भी अवश्य। इसमें किसी तरह का अपवाद नहीं हो सकता। भगवान के सामने सब बराबर हैं। न कोई प्यारा है और न कोई बैरी। इसलिये इस सम्बन्ध में वे किसी तरह का संकोच नहीं रखते। नियम तो नियम की तरह ही पालन करना पड़ता है।

"पर नारद जी, मैं तो भगवान का ऐसा सेवक हूँ कि जिसकी सेवा से वे बहुत प्रसन्न रहते हैं।"

"यह सब बात सच्ची है, पर इसमें तुम भगवान के कानून से बचकर निकल नहीं सकते। केवल तुम्हारी ही बात नहीं, चींटी से लेकर ब्रह्मा तक इस नियम में बँधे हैं। जब समय आता है, तो सबको कलेवर बदलना पड़ता है। इसलिये मैंने कहा कि तुम्हारी माता जी अमर नहीं हैं; और उनकी जितनी बन सके उतनी सेवा कर लेना।

"अच्छा नारद जी, जब तुम इतनी बात जानते हो तो बताओ कि मेरी माता जी की देह कब छूटेगी ?"

नारदजी ने आँखें बन्द कर लीं। फिर जरा देर बाद आँखें खोलकर कहने लगे—"देखो गरुड़जी, तुम पूछते हो इसलिये कहता हूँ कि तुम्हारी माताजी का देहान्त-दो दिन बाद होगा।"

"ऐसा नहीं हो सकता, नारद जी !"

मैं ठीक कहता हूँ। दो दिन बाद दोपहर के बारह बजे उसके प्राण छूट जायेंगे। इसलिये तुम बराबर उसके पास बैठकर नारायण का नाम सुनाते रहो।"

नारद जी से विदा होकर गरुड़ घर की तरफ चले। रास्ते में वे विचार करने लगे "नारद मुनि की बात जरा विचित्र लगती है ! इस गप्पीदास का कोई ठिकाना नहीं, कहीं मुझे घबड़ाने के लिये ही ऐसी बातें सुना दी हो। नहीं तो मेरी माता की मृत्यु कैसे हो सकती है ? मृत्यु तो भगवान के नाम से काँपती है, वह मेरी माता को लेने कैसे आयेगी ?"

कुछ देर बाद वे पुनः अन्य प्रकार से विचार करने लगा—"पर मान लो कि नारद जी की ही बात सच्ची है और भगवान के नियम के अनुसार मृत्यु आवे तो क्या करना चाहिये ? संसार के मनुष्यों को जब मृत्यु ले जाती है तब उनके स्वजन लाचारी से देखते रह जाते हैं। क्या मैं भी वैसा ही करूँगा। हटो, मैं एक बार मृत्यु से भी टक्कर लूँगा और बताऊँगा कि वह मेरी माता को कैसे ले जा सकती है ?"

थोड़ी देर बाद एक नया ही विचार मन में आया—"पर इनके लिये तो सावधान रहने की आवश्यकता है। अच्छा हुआ कि नारद जी मिल गये और उन्होंने मुझे चेता दिया। अब मैं अपनी माता को लेकर पूर्व दिशा की ओर रवाना हो जाऊँगा और दो दिन में जितनी दूर हो सकेगा उतनी दूर चला जाऊँगा। तब देखूँगा कि नारद जी के कहने के मुताबिक मृत्यु बारह बजे कैसे आती है ?"

"माँ ! गरुड़ जी ने घर में घुसते ही आवाज दी।

"क्यों बेटा ?"

"तुम पानी-वानी पीलो, तुमको अभी मेरे साथ चलना है !"

"कहाँ जाना है ?"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"मैं ले जाऊँ वहीं।"

"अरे भाई, ऐसी कमजोरी में मेरी इच्छा बाहर निकलने की नहीं है। मुझे यहीं पड़ी रहने दो और मेरे पास बैठकर भगवान की बात कहो।"

"माँ ! भगवान् तो मेरे साथ ही है। उनकी बातें और उनका मंगलमय नाम मैं तुमको रास्ते में सुनाऊँगा। तुमको अपनी पीठ पर बैठाकर ले जाऊँगा।"

"पर जाने का कारण क्या है ?

"माँ, मैं तुझे भगवान की सृष्टि का दर्शन कराना चाहता हूँ। तू देखना कि कैसे-कैसे आनन्द के स्थान हैं।"

बेटे का आग्रह देखकर माता तैयार हो गई, गरुड़ जी उसे पीठ पर बैठाकर वेग से पूर्व दिशा में उड़ चले। बाहर के ठंडे, सुगन्धित पवन से गरुड़ जी की माता का दुःख बहुत हलका होने लगा। वह गरुड़ जी के मुख से भगवान की बातें भी सुनती जाती थी। बीच-बीच में गरुड़ जी नारायण जी के नाम की धुन लगाते जाते थे।

तीसरे दिन गरुड़जी एक बड़े मनोरम स्थान में पहुँच गये। चारों तरफ हराभरा वन था। एक तरफ नदी थी और दूसरी तरफ एक पर्वत शोभा दे रहा था। पक्षी मधुर ध्वनि से बोल रहे थे। गरुड़जी ने इस जगह माता को उतारा। मीठा जल लाकर पिलाया। पर्वत की एक विशाल गुफा में उन्होंने माता को लेकर प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने आराम करने के लिये सफाई कर दी एक चिकनी शिला पर मुलायम आसन बिछाकर माता को लिटा दिया। अब लगभग पौने बारह का समय हो चुका था। गरुड़ जी ने माता से कहा कि—"माँ, तुम सोते-सोते भगवान का स्मरण करती रहो। मैं यहीं गुफा के दरवाजे पर खड़ा हुआ हूँ। जब धूप कम हो जाएगी तब आगे चलेंगे।"

माता हँसी और कहने लगी—"बेटा, भगवान की इच्छानुसार ही सब होता है। इसलिये जिनकी भगवान पर श्रद्धा है, उनको सब कुछ उन्हीं के भरोसे छोड़ देना चाहिये। सत्य तो एक भगवान ही है, दूसरा सब मिथ्या है। तेरे भगवान नारायण जिस प्रकार जगत् के पिता हैं उसी प्रकार से जगत् की माता भी हैं। इसी माता का स्नेह तू प्राप्त कर लेना। उस माता को कभी मत भूलना। मेरी इतनी बात बार-बार याद कर लेना तेरे जैसे प्रभु भक्त पुत्र की मैं माता हूँ, इसलिये मैं तो सदा ही निर्भय हूँ।"

गरुड़ जी की आँखें आश्चर्य से फटी रह गईं। अरे, माता तो पहले से ही सब जान चुकी है।

दौड़कर उन्होंने माता के पैर पकड़ लिये और अपने प्रेमाश्रुओं से उनको धोने लगे। जिस भाव से वे जगत के स्वामी को मस्तक नवाते थे उसी भाव से अपनी जननी को भी मस्तक नवाया। माता ने अपना पवित्र हाथ पुत्र के माथे पर रक्खा।

इसी समय अकस्मात् दिव्य संगीत के स्वर सुनाई पड़ने लगे। गरुड़जी उठकर गुफा के द्वार पर गये। एकाएक ऊपर से एक बड़ा-सा शिलाखण्ड गिरा जो आकर गरुड़ जी की माता को लगा और उसका तत्क्षण देहान्त हो गया। गुफा में चारों तरफ से "नारायण" "नारायण" की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। माता की देह की वन्दना करके गरुड़ जी गुफा के बाहर चले गये।

जगत् के स्वामी दिव्य स्वरूप में सिंहासन के ऊपर विराजमान थे। गरुड़जी ने आकर उनके चरणों में मस्तक नवाया और आँखों से आँसू बहाने लगे।

भगवान हँसे—"गरुड़जी, तुम्हारे जैसों की यह दशा होगी, तो फिर जगत् के लोगों का तो कहना ही क्या ? ज्ञान और अज्ञान के भेद को तो समझो !"

"नाथ ! मेरी जननी को सद्गति प्रदान करो, इसके सिवाय मेरी कोई इच्छा नहीं है। आज तक मैंने कुछ माँगा नहीं है और न आगे कभी माँगूँगा।"

गरुड़जी के मस्तक पर हाथ रखकर भगवान ने बड़े प्रेम से कहा—"गरुड़ जी, तुम मेरे अनन्य भक्त हो। तुम्हारे जैसे भक्त की जननी की सद्गति नहीं होगी तो किसकी होगी ? उसे तो मुक्ति मिल चुकी है। तुमको स्वयं देखना हो, तो देखो"—यह कहकर भगवान ने अपने दाहिने हाथ की हथेली गरुड़ के सामने कर दी। गरुड़जी को उसमें अपूर्व दृश्य दिखलाई पड़ा। उसमें उनको अपनी जननी के दर्शन हुये। उसके मुख पर अपूर्व तेज था और मुख से नारायण का नाम निकल रहा था।

गरुड़जी भगवान के चरणों में गिर पड़े।

तलवार की रक्षा

एक थे महात्मा। उनकी तपस्या का यह फल था कि जिस आश्रम में वे निवास करते थे, शेर और गाय, भेड़िये और बकरे एक घाट पर पानी पीते। उनके तप से भयभीत हो इन्द्रासन काँप उठा। इन्द्र के मन में खलबली मच गयी। वे तरह-तरह के उपाय सोचने लगे, पर बचाव का कोई समाधान समझ में न आया।

अन्त में क्षत्रिय का वेश धारण कर आश्रम में पहुँचे। महात्मा घूम रहे थे। क्षत्रिय वेषधारी इन्द्र ने कहा—"भगवन् ! आप मेरी तलवार की कुछ देर रक्षा करें तो समीप के सरोवर में स्नान कर आऊँ।" साधु ने आग्रह स्वीकार कर लिया। इधर इन्द्र अपने देश लौट गये।

दिन बीता, इन्द्र न लौटे, साधु का ध्यान तलवार की रक्षा में ही लगा रहा। रात में भी उसे पास रखकर सोये। सप्ताह बीता पर तलवार के स्वामी का पता नहीं लगा। अब तो वह महात्मा ही उसके स्वामी, संरक्षक और स्वत्वाधिकारी थे। वे तलवार की रक्षा में अपना जप, तप, साधना सब भूल गये। तप का क्रम बिगड़ा और उसका प्रभाव भी भंग हो गया। आश्रम की संकल्प शक्ति जाती रही और वहाँ का जीवन सामान्य बन गया। इन्द्र का भय जाता रहा।

जीवन की दिशा बदलने पर ही उत्थान-पतन निर्भर है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अहंकार, अभिमान एवं क्रोध

अहंकारो सिद्धि बाधकः

रस सिद्ध महर्षि मंकण ने गति दी, साज बजे और सभा मण्डप में रस धारा प्रवाहित हो उठी। सम्राट, साम्राज्ञी तथा राष्ट्र के सम्भ्रान्त नागरिकों से भरे कला-कक्ष में वाद्य-यन्त्रों के साथ महर्षि से ताल और लय एक ऐसी सभा प्रस्तुत करने लगे मानो स्वर्ग से उतरकर आत्मानुभूति की रस गंगा ही धरती पर प्रवाहमान हो उठी हो।

मंगलाचरण, देवपूजन, आरती, अभिषेक नृत्य क्रमशः ताल-निबद्ध करते हुये महर्षि "शिवोऽहं" सिद्धि की अनुभूति तक पहुँचने की एक-एक कला को बड़ी कुशलता के साथ निखारते चल रहे थे। दर्शक समाज मन्त्र-मुग्ध एक टक निहार रहा था, लगता था सारा समाज ही आज महर्षि की स्वात्मानुभूति की गंगा में बह जाने को तत्पर हुआ बैठा है।

साधना के प्रथम चरण नृत्य-योग के प्रारम्भिक प्रयोग—बुझे हुये दीपक जल उठे, मरकत मणियों से जटित स्फटिक स्तम्भों पर उत्कीर्ण वारांगनाएँ भी नृत्य करने लगीं, सम्मोहित—मयूर और कस्तूरी मृग कांतार के स्वच्छन्द विचरण त्यागकर नगर की ओर दौड़ पड़े, जहाँ महर्षि का नृत्य-समारोह चल रहा था, वहाँ जा-जाकर भाव-विभोर हो उनके गति-निस्पंद का आनन्द, पीयूष पान करने लगे, प्रकृति के समस्त नियमों का उल्लंघन कर मेघ मालाएँ नगर में झुक-झुक जाने लगीं, ऐसा लगता था सात स्वरों से सम्मोहित होकर सारी वसुधा ही नृत्य कर उठेगी—रस-सिद्धि महर्षि मकंण की साधना के प्रताप की सर्वत्र भूरि-भूरि प्रशंसा होने लगी।

ज्यों-ज्यों सिद्धियों का उद्भास मिलता महर्षि के नृत्य में नई गति उभरती चली जा रही थी। तभी एक देवमूर्ति सम्मुख उपस्थित हुई। उसने एक कुश-तृण आगे बढ़ाया, महर्षि ने छाया का संकेत समझा और वह तृण हाथ में ले कर एक-एक कर दोनों हाथों की दसों उँगलियों में उसे चुभाया, दर्शक समाज स्तब्ध और आश्चर्यचकित देख रहा था कि जहाँ उँगली-उच्छेद से रक्त-स्रवित हो उठना चाहिये था, वहाँ महर्षि की उँगलियों से क्रमशः केशर, केवड़ा, गुलाब, लौध, मोंगरे और खश आदि का सुवासित तेल निकल रहा है। ऐसा लगता था उन उँगलियों में गन्ध मादन पर्वत में प्रवाहित सुगन्ध-मलय, निर्झर स्रोत बनकर फूट पड़ा हो। महर्षि की जय-जयकार हो उठी। इस जय ध्वनि ने महर्षि की आँखों में मदिरा की-सी मस्ती उड़ेल दी—अभिमान की मस्ती। उनके हृदय में एक भाव जाग्रत हुआ—अब मेरे समान संसार में अन्य कोई भी कलाविद नहीं रहा और इसी अभिमान ने उनकी भावसिद्धि पर पानी फेर दिया। नृत्य करते-करते संध्या हो चली पर महर्षि समाधि-लय प्राप्त नहीं कर सके।

अभिमान और सिद्धि, साधना की दो विपरीत अवस्थाएँ हैं। मूर्ति महर्षि के मन को झाँक रही थी। उसने कुश-तृण अपने हाथ में लिया और उसका हल्का प्रहार उँगलियों पर किया। यह क्या है ? महर्षि चौंके—उँगलियों से भस्म गिर रही है, उन्हें अपने इष्ट का ध्यान हो आया, अभिमान का दर्प चूर-चूर हो गया। उन्हें याद आया जिस नटराज ने अपनी एक ही कला से अनेक नृत्य-विधाओं का सृजन किया है। उनकी तुलना में मैं तो समुद्र की एक बूँद जैसा भी नहीं। अभिमान गल गया। अब उन्होंने रुद्राष्टक उठाया, आशुतोष की मंगल मूर्ति उनकी भावनाओं पर छाने लगी, त्वरित थिरकन के साथ डमरू की डिम-डिम का नाद सुनाई दिया और एक ही क्षण में महर्षि समाधिस्थ हो गये और उनकी समाधिवस्था का प्रभाव यह था कि सारा दर्शक आज उनके स्वरूप में भगवान शिव के दर्शन कर रहा था। अभिमान की मूर्ति के हटते ही सिद्धि ने अपना स्थान पा लिया।

सत्ता और शक्ति का दुरुपयोग

एक समय मधु नाम का एक दैत्य था। दैत्य होते हुए भी वह, दयालु, भगवद्भक्त, अहिंसक और ब्राह्मण सेवक था। एक दिन वह महल में बैठा हुआ अपनी राजधानी को देख रहा था। उसने अचानक भाव विभोर होकर अपनी स्त्री से कहा, "प्रिये ! हमारे पास काफी धन, बल, साम्राज्य, ऐश्वर्य आदि है किन्तु यह कोई महत्त्वपूर्ण बात नहीं है। संभव है एक दिन कोई हम पर चढ़ाई करे और हमें जीत ले तो ये सब वहीं के वहीं रह जायेंगे। इसलिए हमें कोई ऐसी शक्ति प्राप्त करनी चाहिए जो अलौकिक हो।"

यह सुनकर उसकी स्त्री ने कहा, "स्वामी ! आपकी बात तो सही है किन्तु किसी भी वस्तु की प्राप्ति या लक्ष्य सिद्धि के लिए कठोर तप, दृढ़-उत्साह एवं परिश्रमपूर्वक उसे करना आवश्यक होता है।" मधु ने अपनी स्त्री की बात समझकर कठोर तपस्या करने की ठान ली।

वह साधक वन में जाकर कठोर साधना करने लगा। बहुत समय तक वह तपस्या करता रहा। उसकी उग्र साधना से उसमें विलक्षण शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ। उसके प्रचण्ड तप की महान् शक्ति से देवता भी आकर्षित हो गये और उसके पास पहुँचने लगे। इतना ही नहीं भगवान शंकर भी अपने भक्त की इस तपस्या से अपनी समाधि छोड़कर उसे दर्शन देने गये। मधु की तपस्या से प्रसन्न होकर शंकर भगवान ने उसे अपना त्रिशूल वरदान रूप में उसे दिया और कहा—"जब तक यह त्रिशूल तुम्हारे हाथ में रहेगा तब तक कोई भी तुम्हें जीत नहीं सकेगा।"

मधु ने प्रार्थना की—"भगवान यह त्रिशूल सदा हमारे ही वंश में रहे ऐसा वरदान और दें।"

शंकरजी बोले—"ऐसा नहीं होगा। यह बात अवश्य है कि यह त्रिशूल तुम्हारे एक पुत्र के पास रहेगा।" इतना कहकर वे अन्तर्द्धान हो गये।

मधु उस त्रिशूल को लेकर प्रसन्न होता हुआ अपनी राजधानी लौट आया। वह सुख-शान्ति से राज्य करता रहा। चूँकि वह पहले से ही सत्ता एवं सद्गुणों से सम्पन्न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

था। इसलिए उसने उस महान् शक्ति के प्रतीक त्रिशूल का सदुपयोग किया। दूसरों की विपत्ति-निवारण, कमजोरों की रक्षा, दुष्टों को दण्ड आदि व्यवस्था अच्छी प्रकार से चलने लगी। कुछ समय बाद मधु का स्वर्गवास हो गया। उस त्रिशूल का अधिकारी उसका पुत्र हुआ, जिसका नाम लवणासुर था।

लवणासुर अपने पिता से विपरीत स्वभाव का था। वह बचपन से ही क्रोधी, निर्दयी, परपीड़क, पाप-परायण एवं दुराचारी था। त्रिशूल के हाथ में आते ही उसकी दृष्प्रवृत्तियाँ और भी अनेकों गुनी बढ़ गईं। जब दुष्ट व्यक्तियों के हाथ में सत्ता एवं शक्ति चली जाती है, तो वे उसका दुरुपयोग ही करते हैं। ठीक यही लवणासुर ने भी किया।

लवणासुर अपनी राज सत्ता एवं पिता की उस दिव्य शक्ति का दुरुपयोग करने लगा। ब्राह्मण, ऋषियों, गायों, गरीबों आदि को सताकर तरह-तरह की त्रास देने लगा। अन्य राज्यों में लूट, कत्ल, अन्याय करने लगा। इससे प्रजा व्याकुल हो उठी। ऋषि-मुनि घबराने लगे।

उसी समय अयोध्या में श्री रामचन्द्र जी राज्य करते थे। सभी ऋषि-मुनियों ने च्यवन ऋषि को अगुवा बनाकर अयोध्या की ओर प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचते ही रामचन्द्र जी ने उनका यथोचित आदर-सत्कार किया और आने का कारण पूछा।

सभी ने वह करुण गाथा सुनाई। रामचन्द्र जी उसे सुनकर बहुत दुःखी हुए। उन्होंने तुरन्त अपने मंत्रियों से मंत्रणा की।

भगवान राम ने सभी सभासदों से कहा—"लवणासुर को उस त्रिशूल के रहते हुए मारना असम्भव है, क्योंकि भगवान शंकर का वरदान रूपी त्रिशूल मिला हुआ है।"

सुमन्त ने यह सुनकर कहा, "महाराज ! राजनीति और ब्राह्मण-ऋषियों का धर्म भिन्न होता है। ऋषि, ब्राह्मण आदि के लिए तो सत्य सिद्धान्तों की मर्यादाओं को स्थिर रखने के लिए भले ही प्राण भी क्यों न त्यागना पड़े उसी पर दृढ़ रहना परमावश्यक है, किन्तु राजा को तो साम-दाम-दण्ड-भेद आदि सभी नीतियों से काम लेना चाहिए, क्योंकि यदि अनाधिकारी व्यक्ति को सत्ता एवं शक्ति प्राप्त हो जावे और वह अपनी दुष्प्रवृत्ति के कारण उसका दुरुपयोग करे तो उसे किसी भी तरह रोकने में संकोच नहीं करना चाहिये। अतः अब ऐसी युक्ति ढूँढ़ी जाय कि जिस समय लवणासुर पर वह त्रिशूल न हो और उस समय उसे मार दिया जाय।"

रामचन्द्र जी इस राजनीतिपूर्ण मंत्रणा से सहमत हो गये और उन्होंने अपने अन्य भाईयों से उसे मारने को कहा। भरत अपने बड़े भाई की आज्ञा पालन करने के लिए तैयार हुए, किन्तु बीच में ही शत्रुघ्न बोले, "मेरे होते हुए बड़े भाई का जाना उचित नहीं है अतः इसकी आज्ञा मुझे दी जाय।"

रामचन्द्र जी ने शत्रुघ्न को आज्ञा दे दी। ऋषियों ने बताया कि प्रातःकाल लवणासुर आहार के लिए बाहर जाता है। उस समय वह अपने साथ त्रिशूल नहीं ले जाता है। उसी समय उसे मारा जा सकता है, किन्तु वह उस समय अपना त्रिशूल न लेने पावे। सभी ने एक स्वर से इस बात का समर्थन किया।

शत्रुघ्न रामचन्द्र जी की आज्ञानुसार लवणासुर को मारने चले। थोड़े समय में ऋषियों के आश्रमों में ठहरते हुए वे लवणासुर की राजधानी में पहुँच गये। लवणासुर के आहार के समय ही वे शहर में घुसे। वह उस समय बाहर आहार के लिए गया था। जब लवणासुर वापस लौटा तो उसने देखा कि एक राजकुमार महल के दरवाजे पर खड़ा है।

शत्रुघ्न ने उसे अन्दर प्रवेश नहीं करने दिया और लड़ने के लिए ललकारा।

लवणासुर बोला, "निःशस्त्र को लड़ने के लिए ललकारना नीति के विरुद्ध है।"

"नीति का पालन उसके लिए करना चाहिए, जहाँ दूसरा व्यक्ति भी नीति का पालन करता हो। यदि तुमने पहले से ही नीति पालन का जीवन बिताया होता, तो तुम्हारे साथ भी नीति से काम लिया जाता।" शत्रुघ्न ने लवणासुर से कहा।

दोनों में युद्ध शुरू हो गया। लवणासुर ने बड़े-बड़े पत्थर, वृक्ष आदि उठा-उठाकर शत्रुघ्न पर फेंकें। शत्रुघ्न ने अपने आपको बचाते हुए एक दिव्य एवं प्रचंड शक्ति वाला बाण लवणासुर पर छोड़ा। बाण के लगते ही लवणासुर धड़ाम से पृथ्वी पर गिर गया और थोड़े समय में ही उसने प्राण त्याग दिये। शिवजी का दिया हुआ त्रिशूल भी कहे अनुसार वापस लौट गया।

एक दिन रामचन्द्रजी की शंकरजी से भेंट हुई, तब उन्होंने उनसे कहा—"भगवन् ! आपने अपनी अलौकिक शक्ति वाला त्रिशूल 'मधु' को दिया यह तो अच्छा था। किन्तु लवणासुर ने तो उसका दुरुपयोग किया। इसलिए आप कृपा करके भविष्य में अनुत्तरदायी व्यक्तियों तक शक्ति और सत्ता न पहुँचने दें। उससे उलटा परिणाम निकलता है, क्योंकि सत्ता और शक्ति जब अनाधिकारी व्यक्ति के हाथों में चली जाती है, तो उसका दुरुपयोग ही होता है।"

शंकर जी ने वह सुझाव मान लिया और मस्तिष्क में वरदान देते समय पात्र-कुपात्र के भेद का पूरा ध्यान रखने का आश्वासन दिया।

जड़ बुद्धि चंडिका की दुर्गति

"बेटी, जरा यहाँ तो आना !"

"नहीं, मैं नहीं आती !"

"अरी पागल, मुझे देर हो रही है। भगवान के पूजन का समय हो गया है और उसके लिये अभी तक कोई तुलसी की मंजरी नहीं लाया। तू जरा दौड़कर मंजरी तो ले आ।"

"भगवान की पूजा क्या तुम्हीं करते हो, मैं नहीं करती ? तुमको जरूरत हो, तो खुद जाकर ले आओ।"

"वाह, कहीं ऐसी बात कही जाती है। माँ-बाप की आज्ञा का पालन सन्तान को करना चाहिये।"

"तुम क्या सन्तान के कहने के अनुसार काम करते हो ?"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चंडी मुनि अपनी बेटी चंडिका के मुँह से नित्य प्रति इस प्रकार के उलटे उत्तर सुनते-सुनते दुःखी हो जाते थे और कहते थे—"भगवान, इस छोकरी को किस दिन समझ आयेगी।" घर के बाहर भी चंडिका सबके साथ ऐसी ही उलटी बातें किया करती थी। उसकी बातों को सुनकर लोगों को यही जान पड़ता था कि इसको सीधा बोलना आता ही नहीं।

चंडी मुनि बहुत प्रसिद्ध महात्मा थे, इसलिये उनसे मिलने के लिये सदा कोई न कोई ऋषि मुनि, साधु, संत आते ही रहते थे। वे सब चंडिका की बात-चीत सुनकर बड़े आश्चर्य में पड़ जाते कि ऐसे साधु पुरुष के घर में ऐसी खराब स्वभाव वाली लड़की कहाँ से आ गई !

एक दिन सबेरे के पहर एक प्रसिद्ध मुनि आए। उन्होंने बाहर घूमती हुई चंडिका से पूछा—"बेटी तेरे पिताजी हैं ?"

चंडिका ने तुरन्त अपनी आदत के अनुसार उत्तर दिया—"ना, रे, पिताजी आश्रम में नहीं है।"

"तो क्या वे कहीं बाहर चले गये हैं ?"

"हाँ !"

"किस जगह ?"

एक दिशा की तरफ हाथ उठाकर कहा—"उधर यज्ञ कराने !"

मुनि बालिका का कहना सुनकर लौटकर जाने वाले थे कि अकस्मात् चंडी मुनि बाहर निकल आये। उन्होंने मुनि को देखकर प्रसन्न होकर कहा—"पधारो ! पधारो !!"

चंडी मुनि को देखकर आगन्तुक को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने चंडिका की सब बातें कह सुनाईं और फिर कहा—"चंडी मुनि, मेरी सम्मति मानो तो अब अपनी बेटी का शीघ्र ही विवाह कर दो। काफी बड़ी उमर की हो जाने पर भी उसकी बचपन की चंचलता नहीं गई।"

यह बात सुनकर चंडी मुनि ने कहा—"आपकी बात सत्य है, पर इस छोरी के साथ कौन विवाह करने को तैयार होगा ? फिर कोई दयालु मुनि तैयार भी हो जाय तो इसका घर-संसार सुख से कैसे चल सकेगा ?"

"दोनों बातें पूरी हो सकती हैं, अगर कोई महान् पुरुष मिल जाए तो।"

"पर ऐसा पुरुष मिले कहाँ ?"

"है, एक ऐसा साधु पुरुष है। उसमें बड़ा धैर्य है, आचार-विचार पवित्र है। उसकी वाणी में इतनी मिठास है कि आपकी पुत्री चंडिका उनके पास जाकर बदल जायगी और एक उत्तम गृहस्थ नारी बन जायेगी।"

"तो कृपा करके बताओ वह कौन है !"

"इस करुणा के सागर का नाम है मुनि उद्दालक।"

बेटी का ब्याह होते ही चंडी मुनि के मन का भार हल्का हो गया, पर इधर उद्दालक को पग-पग पर कठिनाई होने लगी। पहले तो इनका विचार ऐसा था कि चाहे जैसी खराब स्वभाव की स्त्री क्यों न हो, पर वे अपने आचार-विचार से उसे सुधार लेंगे, पर उनकी यह आशा गलत साबित हुई। चंडिका जरा भी नहीं सुधरी।

मुनि कहते थे—"देवी, जरा पीने के लिये जल देना।" तो चंडिका कहती—"तमाम दिन जल-जल सुनकर मेरा तो माथा दर्द करने लगा। जल पीना हो, तो मुझसे क्या कहते हो, घर में रखा है, उठकर ले लो।"

कभी मुनि हँसकर कहते—"चंडिके ! आज का भोजन तो बहुत बढ़िया बना है। ऐसा मन होता है कि सबका सब खा जाएँ।" इसके जबाव में चंडिका मुनि के खाने के पहले ही खाद्य सामग्री को बाहर जाकर फेंक आती।

ऐसी-ऐसी घटनाएँ होने पर भी शान्ति के प्रेमी उद्दालक मुनि कभी-कभी उससे पूछने लगते थे—"क्या इस घर में तुमको अच्छा नहीं लगता देवी ! क्या यहाँ तुमको किसी प्रकार की असुविधा होती है ?"

इसके उत्तर में आँखों में आँसू भरकर उच्च स्वर से रोते-रोते चंडिका कहती—"तुम्हारे घर में किस बात का सुख है ? इसकी अपेक्षा तो मेरे बाप का मुझे कुएँ में ढकेल देना ही अच्छा था। तुम्हारे साथ विवाह हुआ इसकी अपेक्षा तो मौत के साथ विवाह होना कहीं अच्छा था।"

यह सुनकर उद्दालक मुनि गहरी निःश्वास छोड़कर आश्रम के बाहर चले जाते और विचार करने लगते—"यह स्त्री किस प्रकार सुधर सकती है ?

"मुनिराज ! तुम कैसे दिखलाई पड़ते हो ? शरीर तो ठीक है ?" कुण्डिन मुनि ने पूछा।

"महाराज ! शरीर में तो कुछ भी नहीं हुआ है, पर मन के दुःख की कोई हद नहीं है।" उद्दालक ने उत्तर दिया।

"मन का दुःख ! ऐसी क्या बात है बताओ तो सही ?"

इसके उत्तर में उद्दालक ने चण्डिका का समस्त वृत्तान्त सुना दिया। सब हाल सुनकर वृद्ध कुण्डिन मुनि ने कहा—"देखो उद्दालक, तुम एक काम करो, उससे शायद तुम्हारा कष्ट मिट जाएगा। तुम कहते हो कि तुम्हारी भार्या को उल्टा काम करने की आदत है, तो तुम भी उससे उलटी तरह बात करो, जिससे वह सीधा काम करने लगेगी। उदाहरण के लिये तुमको पूजा के लिये फूल मँगवाने हों, तो उसके सामने कहो कि आज पूजा के लिये फूलों की आवश्यकता नहीं है, इसलिये लाना मत। अगर तुमको भगवान का भोग तैयार कराना हो, तो उससे कहो कि आज भोग नहीं लगाना है और लगाना भी होगा तो सवेरे तो नहीं लगायेंगे। इस प्रकार कहने से वह उन सब कामों को कर देगी और तुम्हारी कठिनाई दूर हो जाएगी।"

कुण्डिन मुनि की तरकीब उद्दालक को ठीक जान पड़ी। उन्होंने कहा कि—"हाँ, यह बात तो सच जान पड़ती है। मैं इससे काम निकालने की चेष्टा करूँगा।" कुण्डिन मुनि के चले जाने पर चंडिका से उसी प्रकार उलटे ढंग से बात करने लगे और कुछ समय शान्ति से व्यतीत हो गया।

एक दिन उद्दालक मुनि के पिता का श्राद्ध था। सब विधि तो पूरी हो गई, अन्त में श्राद्ध में रखे गये पिण्डों को गंगा जी में डाल आने को मुनि ने चंडिका से कहा। पर इस बार वे उलटा बोलना भूल गये, इसलिये चंडिका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ने पिण्डों को गंगा जी में डालने के बदले गन्दी जगह में फेंक दिया और कौए कुत्ते आकर उनको खाने लगे।

मुनि ने दूर से ही यह घटना देखी। इससे उनकी तमाम शान्ति जाती रही। वे जहाँ बैठे थे वहीं पर एकदम खड़े हो गये और हाथ में पानी लेकर रोषपूर्वक कहने लगे—

"पापिनी, औंधी मति की चंडिका, तू नारी के रूप में जीने लायक नहीं है। तेरे भीतर जरा भी मनुष्यत्व नहीं है, तू तो केवल पत्थर की तरह है। इसलिये शाप देता हूँ कि तू पत्थर ही हो जा।" यह कहकर मुनि ने हाथ से जल छोड़ दिया। धरती पर जल पड़ते ही पास आती हुई चण्डिका जहाँ की तहाँ रुक गई। उसकी मुख कांति बदलने लगी और कुछ ही क्षणों में वह एक शिला के रूप में बदल गई।

जिसके आचार-विचार उत्तम नहीं होते उसे उत्तम गति किस प्रकार मिल सकती है ? जो द्वेषपूर्ण बुद्धि से विपरीत कार्य करते हैं, उनकी ऐसी ही दुर्दशा होती है।

जलता हुआ संसार

एक समय एक गरीब ब्राह्मण भिक्षावृत्ति से अपना जीवन निर्वाह करता था। दरिद्र होने के कारण उसे भिक्षा का ही सहारा लेना पड़ा था। एक ओर तो भिक्षा के अन्न में, जिसमें सभी तरह के संस्कारों का अन्न आता था और दूसरे दरिद्रता ने उसके हृदय में धनवान बनने की कामना पैदा कर दी।

वह अब ऐसे साधन ढूँढ़ने लगा जिससे शीघ्र ही धनवान एवं ऐश्वर्यवान बना जा सके, जीवन को भौतिक रूप से सम्पन्न बनाया जा सके। ब्राह्मण दरिद्र होने पर भी कर्मकांड का अच्छा जानकार था। वह कई तरह के सकाम यज्ञ, पूजा, उपासना आदि की विधि जानता था। धन प्राप्ति के लिए भी उसने साधनाएँ एवं यज्ञ आदि शुरू कर दिये। किन्तु दरिद्रतावश उन्हें सुचारु रूप से चलाना संभव न हो सका।

ब्राह्मण अब भिक्षा के लिए अधिक समय लगाने लगा। भिक्षा के थोड़े-से भाग में वह अपना शरीर निर्वाह का काम चला लेता और अधिक भाग यज्ञ, पूजा आदि के लिए लगाने लगा।

ब्राह्मण ने अपनी पूजा, उपासना, यज्ञ-साधना आदि को जैसे-तैसे चलाए रखा। जब उन्हें सफलता नहीं मिली तो दूसरे देवता की पूजा एवं अन्य विधि से यज्ञ करना शुरू कर दिया, किन्तु बहुत दिन बीतने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ। ब्राह्मण ने फिर अन्य देवता एवं साधना विधि की शरण ली। इस प्रकार कई दिन तक एक को छोड़कर दूसरे देवता की और एक विधि को छोड़कर दूसरी विधि से पूजा, उपासना आदि करने लगा।

बहुत समय तक जब भिन्न-भिन्न देव पूजा एवं यज्ञों को करने पर भी कोई लाभ दृष्टिगत नहीं हुआ तो ब्राह्मण हताश हो गया, किन्तु उसकी यह निराशा अधिक समय न ठहरी। उसने सोचा कि "कई देवताओं की उपासना की किन्तु इनमें कोई भी उदार नहीं है। अब मैं इनकी साधना आदि नहीं करूँगा।"

एक दिन ब्राह्मण को एक तान्त्रिक मिला। ब्राह्मण ने उससे अपनी कथा सुनाई। तब उसने कहा, "भाई, तुम कुण्डधार नामक यक्ष की उपासना करो तो तुम्हें अभीष्ट फल प्राप्त होगा।"

ब्राह्मण की निराशा से सोई हुई भावना फिर जाग उठी। उसने यक्षराज की उपासना शुरू कर दी। ब्राह्मण भिन्न-भिन्न विधियों से साधना, यज्ञ आदि फिर करने लगा। कुछ समय में यक्ष ने ब्राह्मण को अपने अदृश्य रूप में उपस्थित होकर कहा, "मैं तुम्हारी साधना से प्रसन्न हूँ किन्तु मेरी इतनी सामर्थ्य नहीं है, जो तुम्हारे अभीष्ट को अभी पूर्ण कर दूँ। मैं स्वयं प्रयत्न करके कुछ समय में तुम्हारी धन प्राप्ति की इच्छा पूर्ति के साधन जुटा दूँगा।" इतना कहकर वह अदृश्यवाणी बन्द हो गई।

बहुत समय के बाद इस तरह की सफलता से ब्राह्मण बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने सोचा अब मेरा अभीष्ट कुछ समय में अवश्य पूरा हो जाएगा। इस तरह के अनेक विचार उसके मन में उठ रहे थे।

बहुत समय से की जा रही निरन्तर साधना के कारण, ब्राह्मण का अन्तःकरण शुद्ध हो गया था, क्योंकि कैसा भी उद्देश्य रखकर श्रद्धा के साथ साधना की जाय तो अन्तःकरण तो शुद्ध हो ही जाता है। केवल धन प्राप्ति की एक कामना के कारण ही वह आत्मलक्ष्य से दूर था। इस कामना के हट जाने पर ब्राह्मण आत्मज्ञान का अधिकारी था।

उधर कुण्डधार अपने भक्त ब्राह्मण की इच्छा पूर्ति के लिए एक अन्य देवता की उपासना करने लगा। कुछ समय तक यक्ष के उपासना करने पर उस देवता ने प्रसन्न होकर कुण्डधार को दर्शन दिया। कुण्डधार ने देवता से उस ब्राह्मण की अभीष्ट पूर्ति के लिए प्रार्थना की।

देवता ने कहा, "तुमने ब्राह्मण की अभीष्ट पूर्ति के लिए कहा, यह तो उत्तम है, किन्तु सदैव अपने भक्त के कल्याण की बात सोचनी चाहिए। भले ही वह कुछ भी चाहे। क्या ? धन से उस ब्राह्मण का हित हो सकता है ? क्या तरह-तरह के भोग, ऐश्वर्य आदि से वह अपने ब्राह्मणत्व को स्थिर एवं सुरक्षित रखकर अपना तथा देश का हित कर सकता है ?"

देवता के इन शब्दों को सुनकर कुण्डधार यक्ष मन ही मन पछताया और देवता से कहने लगा—"देव ! इसका तो मुझे ज्ञान ही नहीं था। मैंने तो उसकी साधना से प्रसन्न होकर उसे अपनी इच्छा पूर्ति के लिए सहयोग देने को कह दिया था। अब आपके कहने से मुझे उसके कल्याण का ध्यान आया है। अब मेरी ऐसी प्रार्थना है कि आप उसके कल्याण एवं आत्मज्ञान का मार्ग बताइये।"

देवता बोला, "तुम अपनी माया से उसे ऐसा स्वप्न दिखाओ जिससे उसे धन, वैभव आदि निरर्थक जान पड़े" इतना कहकर देवता चले गये।

यक्ष मायाधारी तो होते ही हैं। कुण्डधार ने देवता के कहे अनुसार रात्रि को सोते हुए उस ब्राह्मण पर अपनी माया का प्रभाव डाला।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सोते हुए ब्राह्मण ने कुण्डधार की माया से प्रभावित होकर तरह-तरह के भयंकर स्वप्न देखे। उसने देखा कि लोगों ने उसके शरीर को कफन उढ़ाये हुए मरघट में जलाने के लिए तैयार रख छोड़ा है। कुछ समय में उसके शरीर को उसके परिवार वाले जलाने लगे। ब्राह्मण ने स्वप्न में देखा कि सारा संसार जल रहा है। भाई, बन्धु, रिश्तेदार जल रहे हैं। जिस धन को वह प्राप्त करके धनवान और ऐश्वर्यवान बनना चाहता था उसी धन को पड़ा छोड़ ऐश्वर्यशाली धनवान बुरी तरह जल रहे हैं। बड़े-बड़े राजे, महाराजे, सेठ, धनवान, सब प्रचण्ड अग्नि में जल रहे हैं।

अपने उस जलते हुए संसार के स्वप्न में देखा कि कुछ व्यक्ति शान्ति से कई जलने वालों की सहायता कर रहे हैं और उस अग्नि से निकालकर बचा रहे हैं।

"अरे ! ये तो भगवद् भक्त, धर्म सेवाभावी जान पड़ते हैं" यह सोचकर ब्राह्मण ने अपने बचने के लिए उन्हें पुकारा कि इतने में ही उसकी नींद खुल गई। वह जाग पड़ा। जगते ही उसने कुण्डधार यक्ष को अपने पास खड़ा देखा। ब्राह्मण यक्ष के पैरों में पड़ गया और यक्षराज को अपना स्वप्न सुनाया। कुण्डधार ने उसे समझाया।

"ब्राह्मण ! वह राजा-महाराजा, धनवान, ऐश्वर्यवान, बड़े-बड़े पदस्थ, अपने धन, भोग, ऐश्वर्य आदि साधन होते हुए भी जल रहे हैं। ये सब काल की प्रचंड दावानल में भस्म हो जाएँगे। यह धन-सम्पत्ति, भोग-ऐश्वर्य, पद-प्रतिष्ठा सब यहीं धरे रह जायेंगे। जो इनके लिए जी रहे हैं, वे प्रतिदिन उस दावानल में ही जल रहे हैं। इस दावानल से वे भगवद्भक्त और धर्म प्रेमी ही बचे हुए हैं, जिनको तुमने सहायता के लिए पुकारा था। वे न केवल उस दावानल से बचते हैं वरन् बहुतों को बचाकर शान्ति सन्तोष देते हैं।" इतना कहकर कुण्डधार चले गये।

स्वप्न की घटना एवं कुण्डधार के उपदेश से ब्राह्मण मन में तीव्र वैराग्य उत्पन्न हो गया। धन की कामना उससे कोसों दूर भाग गई। अब उसने अपना जीवन धर्मसेवा, तप, त्याग, ब्राह्मण मर्यादाओं के अनुसार बिताने की प्रतिज्ञा कर ली। उसी दिन से ब्राह्मण एक परिव्राजक की भाँति संसार को धर्म मार्ग पर चलाने के लिए, घर-घर धर्मोपदेश करने के लिए भ्रमण करने लगा।

हृदय में बसते हैं भगवान

विष्णु भगवान ने लक्ष्मी जी से कहा—"मनुष्य को बनाये और संसार की सुव्यवस्था का काम सौंपे बहुत दिन हो गये। देखने की इच्छा है कि वह किस स्थिति में है और क्या कर रहा है ? उसे नया मार्गदर्शन देने धरती पर जाने का मन है।"

लक्ष्मी जी ने कहा—"मनुष्य का बुरा हाल है। उसने कर्तव्य को तिलाञ्जलि दे दी है। लोभ और मोह को छोड़कर और किसी में उसकी रुचि नहीं रही। उसके पास जाना व्यर्थ है। सुधरेगा तो है नहीं। उलटे आपको भी जाल में फँसाने का प्रयत्न करेगा। मत जाइए।"

विष्णु भगवान अपनी बात पर अड़ गये। लक्ष्मीजी के विरोध का स्वर भी तीखा होता चला गया। बात का बतंगड़ बना और क्या करना, क्या न करना, यह प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया। भगवान ने चलने की तैयारी कर ली। लक्ष्मीजी ने तैश में ताना देते हुए कहा—"मनुष्य को सुधारे बिना लौटना मत।"

धरती पर भगवान का आगमन सुनकर अनेक लोग उनसे मिलने पहुँचे। कर्तव्य धर्म की चर्चा कोई सुनने को तैयार न था। सभी एक ही रट लगाये हुए थे। "हमारी मनोकामनाएँ पूरी करो।" भगवान ने बार-बार समझाया—"आप लोगों की आवश्यकताएँ कम हैं और साधन अधिक। फिर निर्वाह में क्या और क्यों कमी पड़नी चाहिए। आप लोग जब साधन सम्पन्न बनाकर भेजे गये हैं, तो लक्ष्य कर्तव्य की ओर ध्यान क्यों नहीं देते ? इस अनुदान को सार्थक क्यों नहीं बनाते ?

सभी ने भगवान की बात अनसुनी कर दी और बढ़ी-चढ़ी मनोकामनाएँ पूरी करने का आग्रह करते रहे।

भगवान झल्ला गये और मनुष्य की धूर्तता से चिढ़कर कहीं ऐसे स्थान को तलाश करने लगे, जहाँ कोई मनुष्य पहुँच न सके। वापस बैकुण्ठ तो जाना नहीं था। लक्ष्मी जी के सामने हेटी जो होती।

छिपने का स्थान उन्हें हिमालय का बद्रीनाथ शिखर दिखा, सो चुपके से वहीं खिसक गये। भक्तजनों की चतुरता का क्या कहना ? उन्होंने छिपने का स्थान तलाश कर लिया और कठिन रास्ता पार करके भी वहाँ जा पहुँचे। भगवान ने समझा शायद वहाँ भले लोग आते होंगे और ज्ञान ध्यान की चर्चा करेंगे। पर कुछेक से मिलने के बाद ही उन्हें निराशा हो गई। पैसा-बेटा की माँग के अतिरिक्त यहाँ सिद्धि और स्वर्ग की कामना और जुड़ गई। सभी माँगते थे। कुछ करने की बात सुनने को कोई तैयार न था। सो खीजे हुए भगवान ने वहाँ से भी अन्यत्र जाने का निश्चय किया।

अबकी बार वे द्वारिका पहुँचे और समुद्र के बीच एक सुनसान टापू पर रहने लगे। भक्तजनों को न भगवान की परेशानी का ख्याल था, न अपनी बेइज्जती का। वे जिस भी कीमत पर पूरा हो सके, स्वार्थ सिद्धि के लिए आतुर थे। पता वहाँ का भी लगा लिया और नावों पर सवार होकर भेंट हेतु द्वारिका टापू में जा पहुँचे। रट वही पुरानी। मनोकामना पूर्ति के रूप में हराम की कमाई का भूत सवार था।

विष्णु भगवान को चिढ़ अधिकाधिक बढ़ती जा रही थी। वे मनुष्यों से, विशेषतया भक्तजनों से सर्वदा के लिये दूर होना चाहते थे। सोचते थे, न इन्हें अपना मुँह दिखाएँ न इनका देखें। पर वैसा स्थान, सूझ नहीं रहा था। इस असमंजस की घड़ी में नारदजी आ पहुँचे। विष्णु ने हैरानी से पूछा—"देवर्षि ! ऐसा स्थान बताइए जहाँ मैं छिपकर रहूँ तो इसी लोक में, पर मनुष्य को पता न चले।"

नारद जी बहुत देर विचार करते रहे। स्थान सूझ पड़ा सो भगवान के कान में कह दिया ताकि किसी अन्य को पता न चले। भगवान सहमत हो गये और उस दिन से आज तक वे वहीं रह रहे हैं। लोग जहाँ-तहाँ भटकते-फिरते हैं, पर उस स्थान को खोज नहीं पाते। मनुष्यों को ईश्वर खोज-चेष्टा में भटकते देखकर भगवान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मुसकराते और मजा लेते रहते हैं। उस छिपने के स्थान का नाम है—'मनुष्य का अपना हृदय' जो उसे सूझ ही नहीं पड़ा।

अन्यायी की पराजय

हेमकूट राज्य के राजकुमार जीमूतवाहन अपने मित्रों के साथ समुद्र तट पर भ्रमण करते हुए गोकर्ण पर्वत पर पहुँचे। उन्होंने गुफाओं के निकट अस्थियों के बड़े-बड़े ढेर लगे देखे, तो अपने मित्र मित्रावसु से पूछा कि यह हड्डियों के ढेर किस प्रकार लगे हुये हैं ? मित्रावसु ने उत्तर दिया—"राजकुमार ! यह ढेर निर्दोष नागों की अस्थियों के हैं। गरुड़ की नागवंश से पुरानी शत्रुता है, वे अपने बल के अभिमान में आकर दोषी या निर्दोष किसी नाग को पावें, उसका ही काम तमाम कर देते हैं। नाग निर्बल है, गरुड़ की शक्ति बढ़ी हुई है। बेचारे नाग गरुड़ के मुकाबले में ठहर नहीं पाते। इसलिए उन्होंने अब समझौता कर लिया है। बारी-बारी प्रतिदिन एक नाग गरुड़ के द्वारा वध होने इस पर आता है और अपने प्राण देकर उनको कोप ज्वाला को शान्त करता है।"

जीमूतवाहन बड़े दयालु थे। दया से उनका हृदय ओतप्रोत था। निरपराध नागों का इस प्रकार दमन होता सुनकर इनका जी पिघल गया और करुणा से आँखें भर आईं। राजकुमार के पास गरुड़ को परास्त करने की शक्ति न थी। फिर भी उनका क्षत्रिय अन्तःकरण अन्याय को सहन न कर सका। उन्होंने निश्चय किया कि अन्याय के विरुद्ध अपने प्राण दे दूँगा। शास्त्र कहता है कि अन्याय से युद्ध करो। धर्म युद्ध में कभी पराजय नहीं होती, यदि अन्यायी को परास्त किया तो कीर्ति मिलती है और स्वयं परास्त हुए तो स्वर्ग मिलता है। यह सोचकर राजकुमार ने निश्चय कर लिया कि नागों का पक्ष लेते हुए गरुड़ से धर्मयुद्ध करूँगा।

नाग माता विलाप कर रही थी कि हाय मेरे इकलोते बेटे शंखचूड़ को आज गरुड़ की कोप ज्वाला में अपना प्राण देना होगा। बेटे को छाती से चिपटाकर वह मर्मभेदी करुणा-क्रन्दन कर रही थी, जिसे सुन-सुनकर जीमूतवाहन का कलेजा फटा जा रहा था। राजकुमार ने निकट जाकर कहा—"माता, आपका विलाप मुझसे नहीं सुना जाता। आपके शंखचूड़ को बचाने के लिए मैं अपना प्राण देने को तैयार हूँ। अपने बेटे को अपने पास आनन्द से रखिए, आज मैं गरुड़ के अत्याचार का भोजन बनूँगा।"

नाग माता अपने पुत्र के बदले में दूसरे के पुत्र को मरना स्वीकार करने के लिए किसी प्रकार तैयार न हुई। उसने स्पष्ट कह दिया—"हे दयालु नवयुवक, मैं मोहग्रस्त होकर इतनी स्वार्थान्ध नहीं हो गई हूँ कि शंखचूड के बदले तुम्हारे प्राण जाना स्वीकार कर लूँ। मेरा पुत्र अपना कर्तव्यपालन करने से पीछे न हटेगा। शंखचूड़ माता की पदरज सिर पर रखकर उठा और गोकर्ण पर्वत की प्रदक्षणा देकर नियत स्थान के लिए चल दिया। जीमूतवाहन ने यह अच्छा अवसर देखा। नाग वेश बनाकर शंखचूड़ से पहले ही गरुड़ के स्थान पर पहुँच गये। गरुड़ ने तुरन्त उस पर आक्रमण किया और पहली ही झपट में बुरी तरह घायल कर डाला और अंग-विदीर्ण करने लगे। लेकिन गरुड़ को आश्चर्य हुआ कि निर्बल नाग जैसे अपने कष्ट के समय धैर्य खोकर बुरी तरह रोते चिल्लाते हैं, वैसे यह आज का नाग क्यों नहीं चिल्लाता ? गरुड़ जानते थे कि विपत्ति के समय धैर्य न खोने वाले और कष्ट आने पर विचलित न होने वाले वीर जिस जाति में पैदा हो जाते हैं, उस पर कोई बलवान अधिक समय तक अत्याचार नहीं कर सकता। आशंका से गरुड़ का मन भयभीत हो गया, वे आज के शिकार को उलट-पलट कर देखने लगे।

इतने में शंखचूड़ आ पहुँचा। उसने अपने स्थान पर किसी दूसरे को देखकर पुकारा—"अरे ! अरे !! यह क्या अनर्थ हो गया ? मेरी जगह उसी उपकारी के प्राण चले गये।" गरुड़ बड़े असमंजस में पड़े, उन्होंने ध्यानपूर्वक देखा, तो प्रतीत हुआ कि हेमकूट के राजा के महात्मा राजकुमार जीमूतवाहन ने दयार्द्र होकर परोपकार में अपने प्राण दे दिये।

महात्मा जीमूतवाहन का मृत शरीर भूमि पर पड़ा हुआ था, शंखचूड़ की आँखें बरस रही थीं, गरुड़ के कलेजे में हजार-हजार बिच्छू काटने की पीड़ा होने लगी। विश्व में ऐसी विभूतियाँ हैं, जो दूसरों की भलाई के लिए अपने प्राण दे देते हैं। एक मैं हूँ, जो तुच्छ-सी शत्रुता के कारण अनेक निर्दोषों का वध करता हूँ। गरुड़ खड़े न रह सके, पापी के सामने जब उसका वास्तविक चित्र आता है, जब वह आत्म निरीक्षण करता है, तो उसके पैर काँपने लगते हैं, गरुड़ आत्म-धिक्कार की प्रताड़ना से व्याकुल होकर सिर धुनने लगे।

उन्होंने जीमूतवाहन का रक्त हाथ में लिया और पूर्वाभिमुख होकर सूर्य को साक्षी मानते हुए प्रतिज्ञा की कि भविष्य में अहंकार के वशीभूत होकर अन्याय करने पर उतारू न हूँगा। उस दिन से उन्होंने नागों के साथ अपना सारा वैर-विरोध त्याग दिया।

जीमूतवाहन का मृत शरीर धूलि में लोट रहा था, परन्तु यथार्थ में यह उनका विजय सिंहासन था पुराना पापी गरुड़ मर गया था, शरीर वही था, पर अब उसमें परिवर्तित गरुड़ की पवित्र आत्मा निवास करने लगी थी।

पहले स्वयं को जीतो

"आपकी विजय सराहनीय है महाराज ! आप सचमुच वीर हैं, ऐसा न होता तो आप मालव नरेश को तीन दिन में ही कैसे जीत लेते ?" राजपुरोहित पर्णिक ने महाराज सिंधुराज की ओर किंचित मुसकराते हुए कहा—बात का क्रम आगे बढ़ाते हुए वे बोले, 'किन्तु महाराज ! सेना का विजय से भी बढ़कर विजय मन की है; जो काम, क्रोध, लोभ और मोह जैसी सांसारिक ऐषणाओं को जीत लेता है वही सच्चा शूरवीर है। उस विजय के आगे यह रक्तपात वाली, हिंसा वाली, शक्ति वाली विजय तुच्छ और नगण्य सी लगती है।"

महाराज सिन्धुराज ने कवच परिचारक को देते हुये कहा—"आचार्य प्रवर ! हम वैसी विजय भी करके दिखला सकते हैं। आपने, लगता है हमारे पराक्रम का मूल्यांकन नहीं किया"—सम्राट के स्वर में अहं मिश्रित रूखापन था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org

www.vicharkrantibooks.org

राज पुरोहित पर्णिक की सूक्ष्म दृष्टि महाराज के उस मनोविकार को ही ताड़ रही थी, इसलिये वे निःशंक बोले—"आपके पराक्रम को कौन नहीं जानता आर्य श्रेष्ठ ! आपको सिंहासन पर आसीन हुये अभी दशक ही तो बीता है। इस बीच आपने कलिंग, सरस्ट्रास, मालव, विन्ध्य, पंचनद सभी प्रान्त जीत डाले, क्या यह सब पराक्रमी होने का प्रमाण नहीं ? किन्तु यदि आप एकबार महर्षि बेन के दर्शन करके आते तो पता चलता कि वे आपसे भी कहीं अधिक पराक्रमी हैं, विजयी हैं। उन्होंने राग-द्वेष सम्पूर्ण ऐषणाओं पर विजय पा ली है।"

सिन्धुराज को अपने सामने वह भी राज पुरोहित के मुख से किसी और की प्रशंसा अच्छी न लगी। उन दिनों राज पुरोहित राज्य की आचार संहिता के नियंत्रक हुआ करते थे। सिन्धुराज उनका कुछ कर नहीं सकते थे, तो भी उन्होंने महर्षि बन के दर्शन का निश्चय कर लिया।

सूर्योदय होने में अभी थोड़ा विलम्ब था। महाराज सिंधुराज अस्तबल पहुँचे। वहाँ उनका अश्व सजा हुआ तैयार था, वे उस पर आरूढ़ होकर महर्षि बेन के आश्रम की ओर चल पड़े। मार्ग में उन्हें एक वृद्धजन दिखाई दिये, वह मार्ग में पड़े काँटे साफ कर रहे थे, कँटीली झाड़ियाँ काटकर उन्हें दूर फेंक रहे थे। उन्हें देखकर महाराज ने घोड़े को रोका और पूछा—"महान् तपस्वी बेन का आश्रम किधर है ? ओ वृद्ध !"

वृद्ध ने एक बार महाराज की ओर देखा फिर अपने काम में जुट गये। महाराज को यह अवहेलना अखरी, उनका अहंकार जाग पड़ा बोले—"शठ ! देखता नहीं मैं यहाँ का सम्राट हूँ। बता, बेन का आश्रम किधर है ?" वृद्ध ने पुनः आँखे उठाईं, ओठों पर एक हल्की मुसकराहट तो आई, फिर वे उसी तरह अपने काम में जुट गये। महाराज का क्रोध सीमा पार कर गया। घोड़े को वृद्ध की ओर दौड़ा दिया, उन्हें रौंदता हुआ घोड़ा आगे बढ़ गया। इस बीच महाराज ने अपनी चाबुक से वृद्ध पर प्रहार भी किया और अपशब्द कहते हुये आगे बढ़ गये। वे अभी थोड़ा ही आगे गये थे कि महर्षि की प्रतीक्षा करते खड़े उनके शिष्य दिखाई दिये, महाराज ने पूछा—"आपके गुरु बेन कहाँ हैं ? शिष्यों ने बताया वे प्रतिदिन हम लोगों से पूर्व ही उठकर मार्ग साफ करने निकल जाते हैं। आप जिधर से आये उधर ही तो होंगे।" वह और तब महाराज का क्रोध पश्चात्ताप में बदल गया। वे उन्हीं पैरों लौटे, महर्षि उठकर खड़े हो गये थे, कटी हुई झाड़ियाँ ठिकाने लगा रहे थे। घोड़े से उतर कर महाराज उनके चरणों पर गिरकर क्षमा माँगने लगे, बोले, "भगवन्। पहले ही बता देते कि आप ही महर्षि हैं, तो यह अपराध क्यों होता ?"

बेन मुसकराकर बोले—"बेटा तूने मेरी प्रशंसा की उससे मेरे मन में अहंकार उठा, उसे मारने के लिये यह आवश्यक ही था, तेरा उपकार जीवन भर नहीं भूलूँगा।" महाराज सिन्धुराज पानी-पानी हो गये, उन्होंने अनुभव किया कि सच्ची वीरता दूसरों को नहीं, अपने को जीतने में है।

जन्मा, एक और बाल्मीकि

आज गुरुदेव उदासीन दिखाई पड़ते हैं। अपनी सुरसरि सलिल से भीगी धूसर जटाओं द्वारा भगवान बादरायण के पाद-पंकजों को स्पर्श करने के अनंतर उनके प्रिय शिष्य पैल ने कहा—"यदि मैं अनाधिकारी न समझा जाऊँ तो कारण जानने की अंतर में उत्कण्ठा जाग्रत हो रही है।" उनकी अंजलि बँधी थी और शब्द अत्यन्त नम्र। "सुन सकते हो वत्स !" महर्षि ने सूर्योपस्थान कर लिया था। प्रातःकालीन हवन तथा सामगान समाप्त करके वे आज एकाकी इस सरस्वती तट के नीम तरु के मूल में बिना आसन के शिला पर आ बैठे थे। उनकी दृष्टि क्षितिज से उतरकर उस ऋषिकुमार पर पड़ी।

प्राणियों में कलुषित भावना घर कर रही है। लोगों का चिंतन विकृत हो चुका है। अहर्निश जन-कल्याण का चिन्तन करने वाले उन करुणामय के नेत्र भर आये थे। प्रायः सभी अल्पायु होते जा रहे हैं और उनकी मेधा शक्ति क्षीण होती जा रही है।

"जो अनिवार्य है उसके लिए प्रभु का शोक क्यों ?" संकोच के कारण शिष्य की वाणी रुद्ध हो गई। उसने दूसरे ढंग से कहा—"क्या प्रभु उस नैसर्गिक नियम को परिवर्तित करने का कोई मार्ग ढूँढ़ रहे हैं ?" अपने गुरु की अपार शक्ति में शिष्य का सम्पूर्ण विश्वास था और वह इस विचार से पुलकित हो गया था।

"जगन्नियन्ता की इच्छा सर्वोपरि है। उसे कोई बदल नहीं सकता।"

महर्षि का स्वर खिन्न था—"मैं सोच रहा हूँ इन अल्पवयस्, अल्प मेधस्, कलुष—हृदय प्राणियों के उद्धार का उपाय।"

"क्या वह आज भी अनुपलब्ध है ?" शिष्य का स्वर कहता था कि वह आश्चर्य को संगत नहीं कर पा रहा है। "पंचमवेद महाभारत प्रस्तुत हो गया है और प्रभु ने पुराणों की भी रचना कर ली है ! इनमें न तो अधिकार की बाधा है और न मेधा की तीव्रता की आवश्यकता। सरल सुलभ साधनों द्वारा सभी के कल्याण का पथ प्रशस्त हो गया है ऐसा मैंने आचार्य चरणों से ही तो सुना है।"

"ग्रंथ निर्माण ही तो उनका उद्देश्य पूर्ण नहीं कर दिया करता।" महर्षि का खेद ज्यों का त्यों था। "श्रुतियों के इन सरल-सुलभ तथ्यों को विश्व भर में प्रसारित करने की आवश्यकता है। इसके बिना उनका निर्माण अर्थहीन है।" "हम सभी आचार्य के अंतवासी तो उनसे पढ़ने को उत्सुक हैं।" पैल का स्वर भी निराशापूर्ण था। वह समझ रहा था कि हम लोग इन महिमामय ग्रंथों के पढ़ने के योग्य आचार्य की दृष्टि में नहीं है। "क्या हममें से कोई भी उनको उपलब्ध करने का अधिकारी नहीं ?"

"अधिकारी तो सभी है।" आचार्य के वाक्य ने संतोष दिया। "लेकिन प्रश्न प्रचार का है। ये ग्रंथ श्रुतियाँ नहीं हैं, जो एक-दूसरे तक आज की पाठ्य प्रणाली से प्रचारित हो जाएँगी। इनका प्रचार समाज के प्रत्येक वर्ग

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तक करना है और तुम जानते हो कि द्विजेतर वर्ण ऋषिकुल में अध्ययनार्थ नहीं आते।"

"तब ?" सचमुच समस्या गम्भीर थी और शिष्य ने इस पर कभी विचार नहीं किया था। "हम राज-सभाओं में उनका प्रवचन करेंगे।" झटपट उसे एक युक्ति सूझी।

"तब भी उससे अंत्यज तथा नारीवर्ग वंचित रहेगा !" सर्वज्ञ महर्षि ने योजना की त्रुटि पकड़ी। "ऐसा मान भी लें कि कुछ उत्साही, साहसी आत्मत्यागी पंचम वर्ण की झोंपड़ी में भी निंदा स्तुति की चिन्ता किए बिना पहुँच जायेंगे, तो क्या उद्देश्य सफल होगा ? ब्राह्मणों के प्रति उत्तरोत्तर बढ़ती अश्रद्धा को तुम देख नहीं रहे हो ? किसी विप्र की वाणी से अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न होगा, इसमें संदेह ही है।"

"तब तो कोई मार्ग नहीं !" ऋषिकुमार पूर्णतः निराश हो गया। "मार्ग तो प्रभु के हाथ में है। वे अमार्ग में भी मार्ग निकाल देते हैं।" महर्षि कृष्ण द्वैपायन ने क्षितिज की ओर देखते हुए कहा। "कोई अंत्यज या प्रतिलोमज-प्रतिभाशाली-उत्साही एवं शारीरिक, मानसिक शक्ति-सम्पन्न श्रद्धालु प्राप्त हो, तो उसे द्विजाति तो वस्तु की उत्तमता के कारण ग्रहण करेंगे और द्विजेतर वर्ण साम्य के कारण उसकी वाणी का आदर करेंगे।"

"कौन है ऐसा ?" उसे महर्षि की दिव्य क्षमताओं पर भरोसा था।

"उग्रश्रवा !" शांत गम्भीर स्वर उभरा। "उग्रश्रवा ! चिन्तनमग्न पैल नाम सुनते ही चौंक पड़ा। उसके चिंतन की कड़ियाँ एक-एक करके बिखरने लगीं।

कौन नहीं परिचित इस नाम से ? कश्मीर से पाटलिपुत्र तक उग्रश्रवा के नाम से सभी काँपते थे। वही एक ऐसा दस्यु है, जो महीनों चलकर छापा मारता है। उसके और उसके लोगों का पता तक नहीं लगता। सूचित की हुई निश्चित तिथि पर उसके सैनिक ऐसे प्रकट होते हैं, जैसे प्रेत। फिर तो नृशंस हत्याकाण्ड से मेदिनी काँप उठती है। पैल यही सब सोच रहा था। इतने में अन्य अन्तेवासी आ गए। कुछ सोचते हुए महर्षि उठ खड़े हुए। उन्होंने सभी को इशारा किया और एक ओर चल पड़े सभी के कदम स्वतः ही उनका अनुगमन करने लगे।

कुछ दिन चलने पर सभी ने नगर में प्रवेश किया। प्रवेश करते ही महर्षि का मुखमण्डल करुणा से आरक्त हो उठा, आँखें डबडबा आयीं। अनुगमन कर रहे शिष्यों के चेहरों पर जुगुप्सा, घृणा व क्रोध के मिश्रित भाव उभरे।

'उफ इतना नृशंस नरसंहार।' राजपथ पर लाशें बिखरी पड़ी थीं। रक्त से पथ अरुण हो गया था। भवनों के तोरण द्वार टूट पड़े थे और कहीं-कहीं अग्नि की लपटें उठ रही थीं। श्वान, काक तथा चीलों की चख-चख चल रही थी। गिद्ध मँड़रा रहे थे। भवनों से अबलाओं एवं बालकों का करुण-क्रंदन हृदय को विदीर्ण किए देता था। अकस्मात् इस दुर्दिन में भगवान् वेदव्यास विदर्भ में आ पहुँचे थे।

'निश्चय ही दस्यु अभी नगर में ही है।' आचार्य के पीछे चलने वालों में सबसे आगे के ब्रह्मचारी मीमांसाकार जैमिनि ने कहा। बहुत बचाकर वे पाँव रख रहे थे कि कहीं रक्तादि के स्पर्श से गात्र-अपवित्र न हो जावे।

"हम लोगों को लौट चलना चाहिए।" एक ब्रह्मचारी ने जो सबसे पीछे तथा आयु में सबसे कम था कहा—"इस समय नगर में घोर अशांति है। इससे हृदय में खेद ही होता है। सभी नागरिक आकुल एवं त्रस्त हैं। ऐसे समय यहाँ रहने में कोई लाभ नहीं दिखाई पड़ता।"

"इन क्रन्दन करते हुए दीनों को छोड़कर तुम शान्ति के लिए आश्रम जाना चाहते हो ?" गुरु के स्वर में स्नेहपूर्ण रोष था। "दीनों की उपेक्षा करने वाला दीनबंधु की उपेक्षा करता है, यह तुम्हें स्मरण रखना चाहिए। ब्राह्मण के लिए सबसे बड़ी तपस्या है पीड़ितों का परित्राण। हम उससे विमुख नहीं हो सकते।"

"हम लोगों को प्रज्ज्वलित अनल को शीतल करने में लग जाना चाहिए।" जैमिनी ने उत्साहपूर्वक कहा "और यदि सम्भव हो, तो आहतों का उपचार भी करना चाहिए। इन कामों को नागरिकों ने प्रारम्भ कर दिया है।" बात सच्ची थी। "हमें उससे भी महान् काम करना है। ध्वंस को निवारित करना ही इस समय सबसे बड़ी आवश्यकता है। हम दस्युराज तक शीघ्रतापूर्वक पहुँचना चाहते हैं।" आचार्य की गति बढ़ गयी थी और अनुगामियों को दौड़कर अनुकरण करने के लिए बाध्य होना पड़ रहा था।

"मैं उसे यहीं से शाप देकर भस्म कर दूँगा ?" इस प्रकार आचार्य पाद की आकुलता तपस्वी कुमार अरुण के लिए असह्य हो गयी थी और उन्होंने कमंडल में से अपनी दाहिनी अंजलि में जल तथा वाम कर में कुश निर्मित ब्रह्मदण्ड सँभाला।

"नहीं वत्स !" गुरुदेव रुक गए। स्नेहपूर्वक उन्होंने उस तेजस्वी किशोर के मस्तक पर हाथ फेरा। "क्रूरता का प्रतिकार जब कभी क्रूरता से किया जाता है, वह उसे एक क्षणिक विराम देकर द्विगुणित महकाने वाला सिद्ध होता है। अनल को तेजस् घृत से नहीं शीतल जल से शान्त करना चाहिए।"

"यदि वह दुष्ट आपकी आज्ञा न माने ?" आवेश जैमिनी में भी आ गया था। उनका कर्म सिद्धान्त जैसे को तैसा देने का समर्थक है।

"वह तो ऐसा करेगा ही। अपमान एवं आघात भी कर सकता है।" महर्षि ने कहा—"वह तो भ्रांत है, ज्ञानहीन है। क्रोध ने उसे अन्धा बना दिया है और लोभ ने उसे उन्मत्त। वह क्या तुम्हारे कोप का पात्र है ? उसके अज्ञानवश किए गये आचरण क्या ध्यान देने योग्य हैं ? दयनीय है वह !"

शिष्यों की समझ में नहीं आ रहा था कि उनके कृपासिन्धु गुरुदेव अन्ततः कहना क्या चाहते हैं ? इतना ही उन्होंने समझा कि प्रत्येक स्थिति में शांत रहने का कठोर आदेश मिल गया है।

कुछ ही क्षणों में एक भारी-भरकम आवाज गूँजी "दस्युराज उग्रश्रवा महर्षि के चरणों में प्रणाम करता है।" उस समय ऋषियों का प्रताप मार्तण्ड मध्य क्षितिज पर था और दस्यु को यह ज्ञात था कि ऋषि की एक वाणी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसको सदल विनाश के गर्त में सहज ही फेंक देने में समर्थ है।

"दस्युराज ! तुम्हें लज्जा नहीं आती ? इस उपाधि को अपने मुख से सम्बोधित करने में ?" महर्षि के स्वर में तिरस्कार था, ठीक वैसा तिरस्कार जैसा बच्चे को झिड़कते समय माता के स्वर में हुआ करता है।

"क्यों देव ! मैं इसमें क्यों लज्जित होऊँ ?" दस्यु का कण्ठ दृढ़ था। "मेरे पास छत्र-चँवर नहीं है, अन्यथा मेरे इस विजयाभिमान तथा राजाओं की विजय यात्रा में क्या अन्तर है ? वे भी तो धन तथा यश के लिए ही लूट हिंसा करते हैं। मैं नरपति शब्द की विडम्बना नहीं करता अन्यथा महाराज भी कहलाना कठिन नहीं है।"

"नित्य किसी के द्वारा आचरित होने पर अनीति स्तुत्य नहीं हो जाती।" महर्षि ने घृणापूर्वक कहा। "राजा यदि दुष्ट दमन के अतिरिक्त शस्त्र उठाता है, तो वह भी दस्यु है, यह तो ठीक है किन्तु क्या इससे वह स्तुत्य हो गया ?"

"मैं प्रतिभा के अधीश्वर से तर्क करके विजय की आशा करने का दुस्साहस नहीं कर सकता।" दस्यु ने मस्तक झुकाया। "मैं केवल उनकी किसी सेवा से अपने को पवित्र करने की इच्छा करता हूँ। क्या प्रभु अधम को इस योग्य समझते हैं ?"

"मैं स्वयं ही तुमसे याचना करने आया हूँ।" महर्षि ने उस दस्यु को चकित कर दिया। "आशा है तुम अपनी प्रसिद्धि एवं साहस का सम्मान करोगे और वृद्ध ब्राह्मण को निराश नहीं करोगे।" उन्होंने भेदक दृष्टि से उसकी ओर देखा।

"मेरे समीप किसी भी चक्रवर्ती के कोष से अधिक रत्न एवं स्वर्ण हैं तथा सभी राज्यों के कोष-गोधन आदि एक संकेत मात्र से प्राप्य हैं।" बड़े उल्लास से दस्यु ने कहा—"यदि प्रभु ने मुझे इतना बड़ा सौभाग्य का पात्र बनाया है, तो यह सेवक भी मस्तक तक देकर उसकी रक्षा करने का प्रयत्न करेगा।"

"मेरा काम वल्कल एवं फलों से चल जाता है और गायें सरस्वती तीर पर कम नहीं हैं।" उन महामेध का पार पाना दस्यु के लिए कहाँ शक्य था ? वह उनकी माँग सुनने को उत्सुक था।

"मेरे देवता को बलि भी नहीं दी जाती। मैं तो एक साधारण भिक्षा चाहता हूँ। तुम उसे दोगे सुत ?"

"मैं आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।" हाथ जोड़कर उसने मस्तक झुका रखा था। लूट के स्वर्ण, वस्त्रादि की ढेरी एक ओर लगी थी। उसके दल के सभी अनुयायी एकत्र हो गये थे। उनके वस्त्र रक्ताक्त हो चुके थे। अरुण खड्ग म्यान में चले गए थे और भाले आदि उन लोगों ने पीछे डाल दिये थे। वे जानते थे कि महर्षि के समीप उन पर कोई आघात करने का साहस न करेगा और यदि कोई करे भी तो वे दुर्बल नहीं हैं। दोष उनका नहीं रह जाएगा तब।

"यह सम्पत्ति उनके स्वामियों के लिए छोड़ दो।" यहाँ तक तो दस्यु ने कोई आपत्ति नहीं की, किन्तु महर्षि कहते ही चले गये—"और इन शस्त्रों को फेंक दो। इस नृशंस कार्य को सदा के लिए परित्याग करने की प्रतिज्ञा करो।"

"यदि मैं यह न कर सकूँ ?" डाकू का स्वर भर गया था। वह अपने को सचमुच विवश पा रहा था। "क्या कोई दूसरी आज्ञा देकर प्रभु अपने वचनों से छुटकारा नहीं दे सकेंगे ?" वह बहुत कातर हो रहा था। कह नहीं सकते कि शाप के भय से भीत भी था या नहीं।

"केवल एक बात और वत्स !" महर्षि के एक वाक्य ने उसे आश्वासन दिया। "केवल एक ही बात परिवर्तन में और वह यह कि ऐसी दशा में अन्य किसी पर शस्त्र प्रयोग करने के पूर्व तुम मेरा वध कर दो।" भगवान व्यास ने अपना रजत श्मश्रु केश मण्डित मस्तक झुका दिया।

"छिः !" दस्यु जैसे पागल हो गया। उसने अपनी कमर से तलवार नोच फेंकी, कवच उतार दिया और उन विश्ववंद्य के चरणों में रोता हुआ गिर पड़ा।

इस घटना के कई दिन बीत गए। एक दिन सरस्वती के पावन तट पर भगवान व्यास एक शिला पर आसीन थे और उग्रश्रवा दोनों हाथ बाँधे उस शिला के नीचे घुटनों के बल बैठा हुआ था "तुम धातु और पाषाण के पीछे इतने व्यस्त क्यों हो गए हो ?" भगवान व्यास के स्वरों में कोमल वात्सल्य भाव उमड़ रहा था।

"आनन्द तथा सुख के लिए।" उसकी वाणी उसके नेत्रों के समान ही आर्द्र थी। वस्तुतः उसका हृदय उसे अपने क्रूर मार्ग पर लौट जाने के लिए बार-बार प्रेरित कर रहा था और निष्कपट भाव से उसने श्रीगुरु चरणों में अपनी आंतरिक व्यथा निवेदन कर दी थी।

"तुम विश्वास करते हो कि उनमें आनन्द और सुख है ?" उन योगिराज के नेत्र उसके दोनों नेत्रों पर स्थिर हो गए। उन्हें इस हिरन के सन्मुख डाल दो और देखो कि यह उनसे कितना सुख या आनन्द प्राप्त करता है।" पास ही एक मृगशावक हरित तृणों को धीरे-धीरे कुतर रहा था।

"यह उनके मूल्य को नहीं जान सकेगा।" उसने वैसे ही साधारण ढंग से कह दिया।

"यह मूल्य ज्ञान कल्पना ही तो है।" महर्षि गम्भीर होकर बोले—"तुमने उसे बहुमूल्य मान लिया है, इसी से उसे पाकर प्रसन्न होते हो। यह प्रसन्नता उनमें से नहीं तुम्हारे अंतर से ही तुम्हें उपलब्ध होती है।"

"वह उसका निमित्त कारण तो है ही !" अब भी उसका हृदय परिवर्तित नहीं हुआ था। अंततः प्रसन्नता किसी कार्य में तो होती नहीं। वह कहीं न कहीं से निमित्त रूप में ही तो प्राप्त होती है, ऐसी उसकी मान्यता थी।

"वह कार्य में भी होती है।" महर्षि ने पुचकारा और उनका संकेत पाते ही वह मृग उनके पैरों के पास आकर खड़ा हो गया। उनका कोमल हाथ उसकी पीठ पर घूम रहा था और वह पशु मुग्ध भाव से उनके नेत्रों की ओर देख रहा था। "तुम कह सकते हो कि विश्व में कोई ऐसा भी प्राणी है, जिसे यह स्नेह आनन्द नहीं देगा ? दूसरों को इस प्रकार स्नेह दान में अंतर को क्या कम आनन्द उपलब्ध होता है ?"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"गुरुदेव !" जैसे कोई अलौकिक घटना हो गयी हो। बड़े ही अद्भुत स्वर में वह पुकारा। दो क्षणों के लिए उसकी वाणी मूक हो गयी। भगवान व्यास के नेत्र अभी भी उसके नेत्रों में स्थिर थे। महर्षि का भाव प्रवाह नेत्रों के माध्यम से प्रविष्ट होकर उग्रश्रवा की अंतर्चेतना को मथ रहा था। "आपकी वाणी ने मेरे हृदय के घोर अन्धकार को दूर कर दिया। आप इस मानव रूप में साक्षात् श्रीहरि हैं।" वह वहाँ अपने ही नेत्र सलिल से भीगी पृथ्वी पर दण्डवत् लेट गया। बड़े कष्ट से उसने उपर्युक्त शब्द कहे।

भगवान व्यास मुसकरा रहे थे। उस दस्युपति को क्या पता था कि वह अनजान में जो माहात्म्य वाक्य कह गया वह सत्य ही था। "मुझ पापिष्ठ का उद्धार कैसे होगा नाथ ?" वह विक्षिप्त की भाँति तड़प उठा।

"अब तक तुमने दूसरों की स्थूल सम्पत्ति तथा जीवन का अपहरण किया है।" व्यासदेव कह रहे थे—"अब इस योग्य बनो कि तुम उन्हें अंतर की दिव्य सम्पत्ति एवं अमर जीवन वितरित कर सको। दूसरों को शांति देकर तुम शांति प्राप्त कर सको।" दूसरे दिन से वह उग्रश्रवा भगवान व्यास का प्रधान पुराणवाणी सूत हो गया। उसके पुराण-प्रवचन को सुनकर अनेकों अपना सोया देवत्व जगाकर ऋषि बने। इस प्रकार न केवल एक नया बाल्मीकि जन्मा, ब्राह्मणत्व के विस्तार की नयी प्रक्रिया का शुभारम्भ हो गया।

सत्य, ज्ञान के समन्वय में निहित

सम्राट ब्रह्मदत्त ने सुना कि उनके चारों पुत्र विद्याध्ययन कर लौट रहे हैं, तो उनके हर्षातिरेक का ठिकाना न रहा। स्वतः जाकर नगर-द्वार पर उन्होंने अपने पुत्रों की आगवानी की और बड़े लाड़-प्यार के साथ उन्हें राज-प्रासाद ले आये। राजधानी में सर्वत्र उल्लास और आनन्द की धूम मच गई।

किन्तु हवा के झोंके के समान आई वह प्रसन्नता एकाएक तब समाप्त होती जान पड़ी जब चारों पुत्रों में परस्पर श्रेष्ठता का विवाद उठ खड़ा हुआ। पहले राजकुमार का कहना था—"मैंने खगोल विद्या पढ़ी है—खगोल विद्या से मनुष्य को विराट का ज्ञान होता है इसलिये मेरी विद्या सर्वश्रेष्ठ है। सत्य-असत्य का जितना अच्छा निर्णय मैं दे सकता हूँ, दूसरा नहीं।"

द्वितीय राजकुमार का तर्क था कि तारों की स्थिति और उनके स्वभाव का ज्ञान प्राप्त कर लेने से कोई ब्रह्मा नहीं हो जाता—ज्ञान तो मेरा सार्थक है क्योंकि मैंने वेदान्त पर आचार्य किया है। ब्रह्म विद्या से बढ़कर कोई विद्या नहीं, इससे लोक-परलोक के बन्धन खुलते हैं इसलिये मैं अपने को श्रेष्ठ कहूँ, तब तो कोई बात है इन भाई साहब को ऐसा मानने का क्या अधिकार ?

तीसरे राजकुमार का मत था—"वेदान्त को व्यवहार में प्रयोग न किया जाए, साधनाएँ की जाएँ तो वाचिक ज्ञान मात्र से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता—देखने वाली बात है कि हम अपने सामाजिक जीवन में कितने व्यवस्थित हैं—मैंने समाजशास्त्र पढ़ा है इसलिये मेरा दावा है कि श्रेष्ठता का अधिकारी मैं ही हो सकता हूँ।"

चौथे रसायनशास्त्री राजकुमार इन सबकी बातें सुनकर हँसे और बोले—"बन्धुओ झगड़ो मत। इस संसार में श्रेष्ठता का माप दण्ड है लक्ष्मी। तुम जानते हो मैंने लोहे और ताँबे को भी सोना बनाने वाली विद्या पढ़ी है। पारद को फूँककर मैं अलौकिक ओषधियाँ बना सकता हूँ और तुम सबकी विद्या खरीद लेने जितना अर्थ उपार्जन कर सकता हूँ, तब फिर बोलो, मेरी विद्या श्रेष्ठ हुई या नहीं ?"

श्रेष्ठता सिद्धि के अखाड़े के चारों, प्रतिद्वन्द्वियों में से किसी को भी हार न मानते देख सम्राट ब्रह्मदत्त अत्यन्त दुःखी हुये। सारी स्थिति उन्होंने अपने राजपुरोहित को बताई। पुरोहित ने सारी स्थिति पर विचारकर एक योजना बनाई। उन्होंने एक राजकुमार को पतझड़ के समय जंगल भेजा और किंशुक तरु को पहचानकर आने को कहा। उस समय किंशुक में एक भी पत्ता नहीं था ठूँठ खड़ा था वह, सो पहले राजकुमार ने यह ज्ञान प्राप्त किया किंशुक एक ऐसा वृक्ष है जिसमें पत्ते नहीं होते। अगले माह दूसरे राजकुमार गये, तब तक कोपलें फूट चुकी थीं। तीसरे माह उसमें पुष्प आ चुके थे और चौथे माह फूल फलों में परिवर्तित हो चुके थे। हर राजकुमार ने किंशुक की अलग-अलग पहचान बताई।

तब राजपुरोहित ने उन चारों को पास बुलाया और कहा—"तात ! किंशुक तरु इस तरह का होता है चार महीने उसमें परिवर्तन के होते हैं। तुम लोगों में से हर एक ने उसका भिन्न रूप देखा पर यथार्थ कुछ और ही था। इसी प्रकार संसार में ज्ञान अनेक प्रकार के हैं पर सत्य उन सबके समन्वय में है किसी एक में नहीं।

राजकुमार सन्तुष्ट हो गये और उस दिन से श्रेष्ठता के अहंकार का परित्याग कर परस्पर मिल-जुलकर रहने लगे।

विभूति का दुरुपयोग न हो

धर्मनिष्ठा और तप-साधना के प्रतिदान प्रतिफल के रूप में महाराज युधिष्ठिर को अक्षय पात्र मिल गया। अक्षय पात्र की विशेषता यह थी कि उससे जब भी माँगा जाता, वह स्वादिष्ट और मधुर व्यंजन प्रदान करता। परीक्षा हेतु उसी दिन हस्तिनापुर की समग्र जनता को मनपसन्द व्यंजन और पक्वान्न ग्रहण करने का सार्वजनिक निमन्त्रण दिया। हर किसी को इस अक्षयपात्र से लाभ उठाने की छूट थी।

अक्षय पात्र अपने ढंग से प्रयुक्त होता रहा और तो सब ठीक ढंग से चलता रहा लेकिन युधिष्ठिर को दम्भ होने लगा कि मुझ जैसा कोई दानी नहीं है। इस दम्भ को पुष्ट करता रहा—आश्रित ब्राह्मणों का जयगान। एकाध व्यक्ति ही किसी की प्रशंसा करने लगे तो मनुष्य का भाल गर्वोन्नत होने लगता है। फिर वहाँ तो सोलह हजार समाज के प्रबुद्ध व्यक्ति युधिष्ठिर का यशोगान करते थे। यह ठीक है कि युधिष्ठिर ने अपने जीवन का एक बड़ा भाग कठोर तप साधनाओं में गुजारा था परन्तु कुछ कमजोरियाँ अभी भी शेष थीं, जिन्हें विजित करना था और उनमें एक था वह सात्विक अभिमान।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भगवान कृष्ण ने जब यह देखा कि धर्मराज युधिष्ठिर अभिमान के मद में चूर होते जा रहे हैं, तो उनसे यह सहन न हुआ। भगवान प्रणत जनों की सब ओर से रक्षा करने वाले हैं, उन्हें यह सहन भी कैसे होता कि एक साधारण-सी बात उनके शिष्य के पतन का कारण बने। उनकी दृष्टि में अक्षय पात्र और सोलह हजार ब्राह्मणों को प्रतिदिन भोजन कराना तो साधारण बात है। कई बार भगवान ने उन्हें परोक्ष रूप में समझाया भी, सही परन्तु युधिष्ठिर समझने में असमर्थ ही रहे। एक बार अवसर देखकर श्रीकृष्ण ने प्रत्यक्षतः भी कहा कि धर्मराज मैं मानता हूँ कि ब्राह्मणों के लिए तुम भोजन की व्यवस्था कर पुण्य कार्य में संलग्न हो परन्तु उसके लिए अभिमान नहीं करना चाहिए।

"परन्तु प्रभु मैंने तो ऐसी कोई बात नहीं की जिससे अभिमान टपकता हो"—युधिष्ठिर ने कहा।

"अभिमान बातों से नहीं क्रियाओं से व्यक्त होता है। भगवान ने कहा और युधिष्ठिर को लेकर महाराज बलि के पास पहुँचे। बलि को युधिष्ठिर का परिचय देते हुए उन्होंने कहा—"दैत्यराज ये हैं पाण्डवों में अग्रज महादानी युधिष्ठिर। इनके दान से मृत्युलोक के प्राणी इस तरह उपकृत हो रहे हैं कि वे तुम्हारा स्मरण भी नहीं करते।"

"परन्तु मैंने स्मरण किये जाने जैसा कार्य भी क्या किया था"—बलि ने कहा—"मैंने वामन को केवल तीन पग जमीन देने का वचन दिया था और वही पूरा किया भी। अब यह बात अलग है कि वह वामन विराट् बन गया।"

"महाबली ! तुमने सब कुछ खोकर भी अपना वचन पूरा किया इसलिए तुम्हारी ख्याति अमर हुई। धर्मराज की कीर्ति भी तुम्हारे यश की होड़ कर रही है। तुम दोनों पुण्यात्माओं का मिलन निश्चय ही सौभाग्य है।"

बलि ने युधिष्ठिर की कोई पुण्य गाथा सुनाने के लिए भगवान से कहा। भगवान कृष्ण ने उनके पूर्व जीवन का सम्पूर्ण विवरण क्रमवार सुनाया और अक्षय पात्र, सोलह हजार ब्राह्मणों का भोजन कराने की नियम परम्परा का भी उल्लेख किया। युधिष्ठिर के चेहरे की दर्प भरी मुसकान तब विलुप्त हो गयी जब दानवेन्दु ने कहा—"आप इसे दान कहते हैं लेकिन यह तो महापाप है।" स्पष्ट करते हुए महाबलि ने कहा—"धर्मराज ! केवल अपने दान के दम्भ को पूरा करने के लिए ब्राह्मणों को आलसी बनाना पाप ही है। मेरे राज्य में तो याचक को नियत्य भोजन की सुविधा दी जाय, तो भी स्वीकार नहीं करेगा।"

युधिष्ठिर का मद चूर हो गया और वे चूँकि धर्मावतार थे उसी रूप में पुनः पुण्य पुरुषार्थ में विनम्रता-पूर्वक जुट गए।

सत्य को न समझ पाने की आत्मघाती विडंबना

किसी गाँव में कन्फ्यूशियस शिष्यों सहित पधारे। गाँव के पाँच युवक एक अन्धे को पकड़कर उनके पास लाये। उनमें से एक बोला—"भगवन् ! एक समस्या हम सबके लिए उत्पन्न हो गई है। यह व्यक्ति आँख का तो अन्धा है पर है बहुत मूर्ख एवं अव्वल दर्जे का तार्किक। हम इसको सतत् समझा रहे हैं कि प्रकाश का अस्तित्व है। प्रकृति के दृश्यों में सौन्दर्य की अद्भुत छटा है। दुनिया में कुरूपता एवं सुन्दरता का युग्म सर्वत्र विद्यमान है। सूर्य, चाँद, सितारे प्रकाशवान है। रंग-बिरंगे पुष्पों में एक प्राकृतिक आकर्षण है जो सबका मन मोह लेता है। बसन्त के साथ प्रकृति श्रृंगार करके अवतरित होती सबको मनमोहित करती है।"

"हमारी हर बात को यह अन्धा अपने तर्कों के सहारे काटकर रख देता है। कहता है कि प्रकाश की सत्ता कल्पित है। तुम लोगों ने मुझे अन्धा सिद्ध करने के लिए प्रकाश के सिद्धान्त गढ़ लिए हैं। वस्तुतः प्रकाश का अस्तित्व ही नहीं है। यदि है, तो सिद्ध करके बताओ। मुझे स्पर्श करके दिखाओ कि प्रकाश है। यदि स्पर्श के माध्यम से संभव नहीं है, तो मैं चखकर देखना चाहता हूँ। यदि तुम कहते हो कि स्वादरहित है तो मैं सुन सकता हूँ। प्रकाश की आवाज सम्प्रेषित करो। यदि उसे सुना भी नहीं जा सकता, तो तुम मुझे प्रकाश की गन्ध का पान करा दो। मेरी घ्राणेन्द्रिय समर्थ है—गन्ध को ग्रहण करने में। मेरी चारों इन्द्रियाँ समर्थ हैं। इनमें से किसी एक से प्रकाश का सम्पर्क करा दो। अनुभूति होने पर ही तो मैं मान सकता हूँ कि प्रकाश की सत्ता है।"

उन पाँचों ने कन्फ्यूशियस से कहा—"आप ही बताएँ इस अन्धे को कैसे समझाएँ ? प्रकाश को चखाया तो जा नहीं सकता। न ही स्पर्श कराया जा सकता है। उसमें से गन्ध तो निकलती नहीं, कि इसे सुँघाया जा सके न ही ध्वनि निकलती है, जिसे सुना जा सके। आप समर्थ है, संभव है आपके समझाने से उसे सत्य का ज्ञान हो।"

कन्फ्यूशियस बोले—"प्रकाश को यह नासमझ जिन इन्द्रियों के माध्यम से समझने का अनुभव करना चाहता है, उनसे कभी संभव नहीं है कि वह प्रकाश का अस्तित्व स्वीकार ले। उसको बोध कराने में मैं भी असमर्थ हूँ। तुम्हें मेरे पास नहीं किसी चिकित्सक के पास जाना चाहिए जब तक नेत्र नहीं मिल जाते, कोई भी उसे समझाने में सफल नहीं हो सकता। इसलिए कि आँखों के अतिरिक्त दृश्य प्रकाश का कोई प्रमाण नहीं है।"

महान् दार्शनिक का निर्देश पाकर पाँचों उस जन्म जात अन्धे को एक कुशल वैद्य के पास लेकर पहुँचे। विशेषज्ञ वैद्य बोला—"इस रोगी को तो और पहले लाना चाहिए था। इसका रोग इतना गम्भीर नहीं है। बेकार में यह अपनी आयु की इतनी लम्बी अवधि अन्धेपन का भार लादे व्यतीत करता रहा।"

वैद्य ने शल्य क्रिया द्वारा आँखों की ऊपरी झिल्ली हटा दी, जिससे प्रकाश को आने का मार्ग मिल गया। अल्पावधि के उपचार से ही वह अन्धा ठीक हो गया। उसके आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा। उसके सारे तर्क अपने आप तिरोहित हो गये। अपनी भूल तिरोहित हो गयी। अपनी भूल उसे समझ में आ गई। कन्फ्यूशियस ने शिष्य मण्डली से कहा—"तुम्हें उस अन्धे की मूर्खता तथा तर्कशीलता पर हँसी आ सकती है, पर उन तथाकथित बुद्धिमानों को किस श्रेणी में रखा जाय जो ईश्वर जैसी अगोचर, निराकार, इन्द्रियातीत सत्ता को प्रत्यक्ष इन्द्रियों के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सहारे समझने का प्रयास करते हैं। उसमें असफल होने पर ऐसे असंख्यों अन्धे उद्घोष करते दिखाई देते हैं कि ईश्वर का अस्तित्व नहीं है वह तो आस्तिकों की मात्र कल्पना है।"

सचमुच ही अन्तःकरण पर छाये कषाय-कल्मषों को धोकर परिमार्जित किया जा सके, उसे निर्मल बनाया जा सके, तो उसमें ईश्वरीय प्रकाश को झिलमिलाते देखा अनुभव किया जा सकता है।

अभिमान का विश्लेषण

पुराणों में कथा आती है कि चक्रवर्ती सम्राट भरत ने जब समस्त भूमण्डल को जीत लिया और वे इन्द्र के पास पहुँचे तो उन्होंने दावा किया कि, मैं ही संभवतः एक ऐसा व्यक्ति हूँ जिसने पूरे भूमण्डल को जय कर लिया है। मुझे अपनी कीर्ति को अक्षय और अमर बनाना चाहिए और इसके लिए मुझे वृषमाचल पर अपना नाम अंकित करना चाहिए। भरत की धारणा थी कि यहाँ उनका यह पहला नाम होगा।

इन्द्र ने सम्राट भरत के कथन से सहमति व्यक्त की और कहा कि आप जाइए तथा वृषमाचल पर अपना नाम अंकित कर आइये। वहाँ हम ऐसे व्यक्ति को अपना नाम अंकित करने की छूट देते हैं, जिसने पूरी पृथ्वी पर तीनों लोकों पर विजय प्राप्त कर ली हो। सम्राट भरत बड़े इठलाते हुए वृषमाचल की ओर बढ़े, पर यह क्या है ? वहाँ पहुँचकर तो उनके पैर यकायक ठिठक गये, उन्होंने ऊपर से नीचे तक पर्वत शिखर नाप डाला। जहाँ तक वे जा सकते थे ऊपर से नीचे तक शिखर की अन्य दिशाओं में भी गये। समस्या यह थी कि वह अपना नाम कहाँ लिखें ? शिखर पर ही नहीं पूरे पर्वत पर नाम ही नाम लिखे हुये थे। पूरे पर्वत पर इतने अधिक नाम लिखे थे कि कहीं भी कोई स्थान ऐसा खाली नहीं था, जहाँ कि एक नाम और लिखा जा सके। इन लिखे हुए नामों में से एक भी ऐसा नाम नहीं था, जो चक्रवर्ती का नाम न हो।

भरत खिन्न हो गये। वे पर्वत शिखर से उतरकर इन्द्र के पास गये और कहा—"शिखर पर तो कहीं कोई स्थान खाली नहीं है। पूरे पर्वत पर चक्रवर्ती सम्राटों के नाम अंकित हैं। मैं अपना नाम कहाँ लिखूँ ?"

इन्द्र ने कहा—"किसी का नाम मिटा दीजिए और उस स्थान पर अपना नाम लिख दीजिए।" "मुझे जहाँ तक ज्ञात है पिछले सहस्रों वर्षों से यही क्रम चलता आ रहा है। मेरे पिता भी बताते थे न मालूम कब से यह परम्परा चली आ रही है, उन्हें इस बारे में कुछ भी नहीं मालूम। तो फिर कभी मेरा नाम भी मिटाकर भविष्य में कोई चक्रवर्ती सम्राट वहाँ अपना नाम लिख जाएगा ?" सम्राट भरत ने पूछा।

"अवश्य ही इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता। अतीत में अनादि काल से असंख्य चक्रवर्ती सम्राट हुए हैं और भविष्य में भी अनन्त काल तक होते रहेंगे। किसी के सम्बन्ध में आश्वासनपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि उनका नाम अनन्त काल तक इस पर्वत शिखर पर अंकित रहेगा।"

तो फिर क्या लाभ ? सम्राट भरत का अहं विगलित होकर पानी-पानी हो गया। वे अनुभव करने लगे कितना विराट् और अनादि-अनन्तकाल से चला आ रहा है यह जगत् ? इस विराट् और विषम जगत् में अपना अस्तित्व, अपना स्थान है ही कितना ? यह सोचना गलत होगा कि हम से पहले किसी ने वह काम न किया हो जो मैंने कर लिया है। अति समय शक्तिशाली, अजेय कुबेर के समान वैभव सम्पन्न और सूर्य के समान अपनी कीर्ति को चतुर्दिश बिखेरने वाले मानव न जाने कितने हुए हैं ? भविष्य में भी वे और होते रहेंगे, इस स्थिति में अपना महत्त्व है ही कितना ?

यह सोचकर सम्राट भरत इन्द्रलोक से वापस चले आये। उनका अभिमान जाता रहा था, अहं जलकर क्षार-क्षार हो गया था और उस 'अहं' का विसर्जन होते ही इतनी शान्ति अनुभव होने लगी, जितनी कि समस्त भूमण्डल पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त भी नहीं हुई थी। तब भी महत्त्वाकांक्षाओं की उद्विग्नता अशान्त किए दे रही थी और जब अपने अहं का सत्य, महत्त्व का भान खुलकर सामने आ गया, तो लगा सब कुछ शान्त हो गया है।

समस्त विग्रह, क्लेश, कलह, युद्ध केवल अहं का पोषण और महत्त्व का तोषण करने के लिए ही तो है। काल के प्रवाह को दृष्टिगत देखते हुए, उस परिप्रेक्ष्य में आत्मविश्लेषण किया जाए तो शान्ति इसी क्षण, अभी और यहीं उपलब्ध है।

अधूरी साधना—अपूर्ण फल

"देव-सेना का संचालन एक मनुष्य को सौंपकर हमें अपयश का पात्र न बनाएँ देवराज ! क्या सम्पूर्ण देवलोक में एक भी देवता ऐसा नहीं रहा, जो देव-सेना का सेना-पतित्व कर सके ? क्या वस्तुतः हमें एक मनुष्य की आधीनता स्वीकार करनी ही पड़ेगी ?" देवराज इन्द्र के सामने खड़े सहस्रों देवताओं ने एक स्वर में प्रश्न किया और लज्जावश अपने शीश नीचे झुका लिये।

"हम विवश हैं देवताओ !" इन्द्र आहत वाणी में बोले—"प्रजापति ब्रह्मा की ऐसी इच्छा है। उनका कथन है कि असंयम में डूबे देवगण अपनी सामर्थ्य जब नष्ट कर डालते हैं, तब उनकी रक्षा भी कोई मनुष्य ही करता है। महाराज मुचुकुन्द यद्यपि मनुष्य हैं, पर संयम और पराक्रम में उन्होंने देवताओं को भी पीछे छोड़ दिया है। इसलिये आज सम्पूर्ण पृथ्वी और देवलोक में उनके समान प्रतापी एवं बलशाली और कोई दूसरा नहीं रहा। प्रजापति का कथन है कि संयमी और सदाचारी व्यक्ति मनुष्य तो क्या, देव-दनुज सभी को परास्त कर सकता है। अतएव हम विवश हैं, उनकी आज्ञा शिरोधार्य करने के अतिरिक्त कोई अन्य चारा भी तो नहीं रहा।"

दूसरे दिन युद्ध के लिए देव-वाहिनियाँ चलीं, तब उनका संचालन महाराज मुचुकुन्द कर रहे थे। संयम और तपश्चर्या का अपूर्व तेज उनके मुख-मण्डल पर चमक रहा था। मनुष्य-शरीर होते हुए भी वे साक्षात् देव-प्रतिमा से लग रहे थे। आह्लाद चित्त मुचुकुन्द ने युद्ध की इच्छा से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शंख-ध्वनि की, तो सम्पूर्ण दिशाएँ प्रकम्पित हो उठीं। असुरों के हृदय विदीर्ण करने वाला यह नाद सुनकर देवगण पुलकित हो उठे—उन्हें अपनी विजय का विश्वास हो गया।

एक मास तक घनघोर युद्ध हुआ। असुरों की सेना सम्राट मुचुकुन्द ने ऐसी बिगाड़ डाली जैसे जंगली शूकर हरी-भरी खेती को। बीसियों सेनापति बदल डाले, पर मुचुकुन्द के पराक्रम के आगे असुरों की एक न चली। सारे संसार में तब एक ही स्वर गूँज रहा था—"धन्य हो मुचुकुन्द का संयम, इन्द्रिय-विजय और धन्य हो उसका शौर्य, जिसने देव-दनुज दोनों को ही लज्जित करके रख दिया।"

इधर अपनी प्रशंसा सुनते-सुनते मुचुकुन्द के मन में अहंकार बढ़ने लगा। प्रजापति ब्रह्मा ने मुचुकुन्द के हृदय में पनप रहे विष-बीज को देखा, तो वे चिन्तित हो उठे। उन्होंने पुनः इन्द्र को बुलाया और कहा—"तात् ! मुचुकुन्द की साधना अधूरी रह गई लगती है। संयमी और पराक्रमी होने के साथ उसे निरहंकारी भी होना चाहिये था। संयम से स्वर्ग जीते जाते हैं, सो अब तुम अविलम्ब स्वामी कार्तिकेय के पास जाओ और उन्हें सैन्य-संचालन के लिये राजी कर लो।"

इन्द्र द्वारा उक्त कथन से असहमत होने पर ब्रह्माजी ने मनुष्य में अहंकार से ही उसके पतन होने की बात समझाई। तब देवराज इन्द्र ने विधाता की आज्ञा को स्वीकार किया और वहाँ से चल पड़े। लौटने पर ज्ञात हुआ कि वस्तुतः प्रजापति का अनुमान गलत नहीं था। कल तक केवल युद्ध में ही ध्यान लगाने वाला मुचुकुन्द, आज अहंकारवश सुरा और सुन्दरियों की लपेट में आ गया है और अपनी सारी शक्ति उसी में नष्ट कर रहा है। देवराज तत्काल लौटे और भगवान कार्तिकेय को सैन्य-संचालन के लिये राजी कर देवताओं की जागरूकता ने उन्हें बचा लिया, अन्यथा मुचुकुन्द ने नाव बीच में ही डुबो दी होती।

मुचुकुन्द को असुरों ने बन्दी बनाकर पुनः पृथ्वी पर जा पटका, तब उन्हें अपनी भूल का पता चला, किन्तु अब पश्चात्ताप से भी तो कुछ नहीं हो सकता था। निराश मुचुकुन्द के पास प्रजापति ब्रह्मा स्वयं पहुँचे और बोले—"तात् ! तुम्हारी साधना अधूरी रह गई थी, उसी का यह फल है। अब फिर से शक्ति की साधना प्रारम्भ करो, पर देखना इस बार अहंकार भूलकर भी न करना।"

बहादुरी और प्रतिभा जिसका सदुपयोग न हो सका

कहते हैं कि शाहजहाँ अपने समय का बड़ा बहादुर और पराक्रमी व्यक्ति था। उसने राज-पाट बढ़ाने में कोई कमी न रहने दी। जिन देशों को जीता, उनकी प्रजा को भी पूरी तरह लूट लिया। भाइयों का कत्ल करने से लेकर बाप को कैद करने तक का कोई काम ऐसा न छोड़ा, जिस पर उसकी चतुरता और निर्दयता की छाप न पड़ी हो।

संग्रहीत पूँजी का क्या किया जाय ? इसके लिए उसके उपभोग में खुद और बीबी तक को शामिल रखा। जीते-जी बैठने के लिए बहुमूल्य सम्पदा से बना हुआ तख्ताऊस बनाया। मरने के बाद शानदार कब्र के रूप में ताजमहल खड़ा किया। ये दोनों ही चीजें बेशकीमती बनायी गयीं ताकि उससे बढ़कर और किसी की प्रशंसा न हो सके।

तख्तेताऊस (मोरपंख जैसा सिंहासन) उसने बनाते समय सोचा कि संसार में और कोई बहुमूल्य चीज नहीं रहने पाए। ग्वालियर नरेश से उसने कोहिनूर हीरा छीन लिया। उसमें सोने और जवाहरातों की भरमार थी। मीनाकारी की जगह बहुमूल्य रंग-बिरंगे रत्न लगाये गये थे। उसके समूचे खम्भे पन्ने के बने हुए थे। उस समय उसकी कीमत बारह करोड़ आँकी गई थी, जो आज के हिसाब से २५० करोड़ से भी अधिक होती है।

यह कुछ ही दिन उसके बेटे औरंगजेब के पास रहा। बाद में मोहम्मद शाह के कब्जे में चला गया। ईरान के बादशाह नादिरशाह ने काबुल जीतने के बाद भारत पर चढ़ाई कर दी और मुहम्मदशाह को परास्त करके जो विपुल सम्पत्ति नादिरशाह ने लूटी उसमें तख्तेताऊस भी शामिल था। इसे लेकर वह वापस लौट रहा था कि कुर्दों ने उसकी हत्या कर दी और सारी सम्पत्ति लुटेरों ने आपस में बाँट ली। तख्त-ए-ताऊस के टुकड़े हुए और आपस में उन लोगों ने बाँट लिए।

कुछ दिन बाद नादिरशाह के लड़कों ने लुटेरों को पकड़ा और उनसे सारी सम्पत्ति उगलवा ली, जिसमें तख्त-ए-ताऊस के टुकड़े भी शामिल थे। उसे तोड़-जोड़कर पहले जैसा बना लिया गया, यद्यपि आधे रत्न उसमें से गायब हो गये थे।

अठारहवीं सदी में वह तख्त-ए-ताऊस अँग्रेजों के हाथ पड़ा। उसे पूर्ण गोपनीयता के साथ लंका के त्रिकोमाली बन्दरगाह से जलयान में चढ़ाकर इंगलैण्ड भेजा गया। ६ अगस्त सन् १८८२ को पूर्वी अफ्रीका में समुद्री चट्टान से टकराकर वह जहाज डूब गया। साथ ही तख्त-ए-ताऊस और उसके साथ भरा हुआ रत्न भंडार भी।

इसके बाद उसे समुद्रतल से निकालने के बहुत प्रयत्न होते रहे पर उसमें से यदाकदा रत्न ही हाथ लगते रहे, जिससे डूबने के क्षेत्र का पता तो चला पर सम्पत्ति हाथ न लगी।

महत्त्वपूर्ण व क्रूरतम बात यह थी कि इसे तथा ताजमहल को बनाने वाले कारीगरों के हाथ बादशाह द्वारा कटवा दिये गये ताकि वे कहीं दूसरा वैसा ही नमूना बनाकर खड़ा न कर दें। इसमें उससे भी बड़ा राज्य सिंहासन होने से उसकी हेटी होती थी। इसमें जो पन्ना लगा था, उसे बाजार में नहीं खरीदा गया था। उसे प्राप्त करने के लिए अनेक सामन्तों और धनवन्तों के सिर उतारे गये थे।

उन दिनों एक राज्य दूसरे राज्य पर चढ़ाई करता था तो किले में जो मिलता था, उसकी तुलना में प्रजा की लूट से अधिक मिलता था और लूट भी रक्त-रंजित होती थी। इस प्रकार तख्त-ए-ताऊस समेत शाहजहाँ की दौलत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सहित अन्य इमारतों का हिसाब लगाया जाए, तो प्रतीत होता है कि वह अपने जमाने का धन 'कुबेर' था। इसे संग्रह करने में उसने कितनी ही लड़ाइयों की योजनाएँ बनायी और सफलता पाई थी। पर अन्त उसका भी वैसा ही हुआ जैसा कि अपने पिता का उसने किया था।

मनुष्य के लालच और अहंकार को देखा जाय कि उसने आदमी की कितनी बड़ी प्रतिभा का नाश किया और कितनों को मौत के घाट उतारा, दर-दर का भिखारी बनाया। कितनी आँखों में से आँसुओं की अनवरत् वर्षा होती रही, फिर भी वह दौलत देर तक किसी के पास टिकी नहीं। बहादुरी और प्रतिभा के स्थान पर आदमी के पास नेकनीयती होती तो उससे कितनों की कितनी भलाई होती ?

अहंकार के अति सूक्ष्म मार्ग और प्रवेश द्वार

'भगवन्'—तथागत एक वृक्ष के नीचे नीरव सन्ध्या में मौन बैठे थे, सुनकर वक्ता की ओर देखने लगे—"आज सुबह के प्रवचन में आपने कहा था कि त्याग से ही जीवन में आनन्द के फूल खिलते हैं और संगीत के स्वर मुखर होते हैं। मैं अपना सब कुछ छोड़कर आ गया हूँ आपके पास। अब मुझे दीक्षा दीजिये। मैंने अपनी सम्पदा, उत्तराधिकार, माता-पिता और पत्नी-पुत्री के मोह जाल का छेदन कर दिया है।"

अमिताभ शून्य की ओर देखते हुए बोले—'अभी त्याग पूरा नहीं हुआ है। एक अंश भी कुछ नहीं छूटा, पहले त्याग करने वाले का ही त्याग करना पड़ता है फिर ही सम्यक् त्याग सम्भव है।'

सुनकर युवा साधक विस्मित भले ही रह गया हो, परन्तु जब मेरी दृष्टि इन पंक्तियों को पढ़ती है, तो रुक जाती है और मुझे सुकरात के वे वचन याद हो जाते हैं जिसमें उन्होंने किसी ऐसे ही साधक से कहा था—"तुम्हारे फटे हुए वस्त्रों में से सिवाय अभिमान के कुछ और नहीं झाँकता है।"

वस्तुतः अहंकार के मार्ग अति सूक्ष्म हैं, जो त्याग को भी अपना प्रवेश द्वार बना लेता है। अहंकार के सारे मार्ग बन्द हो जाते हैं, तो वह त्याग के सूक्ष्म मार्ग को अपना द्वार बनाता है और वह शान्ति विद्या तक ही सिद्ध होता है।

ज्ञान की सार्थकता निरहंकारिता में

सत्य, धर्म, दान, तप और तीर्थों की रचना के बाद भी जब मनुष्य को सुखी नहीं पाया तो विधाता ने 'वशिष्ठ' नाम के सर्वान्तर्यामी ज्ञान तत्व की संरचना की। यह ज्ञान न केवल सत्य को असत्य में गिरने से—धर्म को अधर्म में परिणत होने से, दान को कृपणता में बदलने से, तप को भोगवादी होने से और तीर्थों को अपबित्रता में परिवर्तित होने से बचाने वाले गुण-विवेक से संयुक्त था वरन् काल और ब्रह्माण्ड के पार की गति को समझने की दूरदर्शिता से भी अलंकृत था।

अपनी अनन्य सामर्थ्य को देखकर वशिष्ठ का अन्तःकरण अहंकार से भर गया। उन्हें भगवान राम पर से भी विश्वास उठ गया जो एक मोह माया में डूबे प्राणी की तरह सांसारिक कर्तव्यों का अज्ञानतापूर्वक परिपालन कर रहे थे। विधाता ने वशिष्ठ की रचना—मार्ग में दर्शक के रूप में, आचार्य और पुरोहित के रूप में की थी—उन्होंने अनुभव किया कि यदि ज्ञान भी अपने मार्ग से भ्रष्ट हो जाता है और अविवेक का मार्ग अपनाता है, तो मेरी अन्य—सत्य, धर्म, दान और विभूतियों का क्या होगा ? ज्ञान के अग्रदूत ब्राह्मण—वशिष्ठ का अहंभाव उन्हें बड़ा कष्टकर प्रतीत हुआ सो उन्होंने वशिष्ठ के प्राण हर लिए और यमदूतों को आज्ञा दी—"वशिष्ठ को मेरे सम्मुख उपस्थित किया जावे ?"

बन्दी वशिष्ठ जब विधाता के समष्टि न्याय के सम्मुख उपस्थित हुए तब उन्हें अपनी भूल का पता चला, तो भी अपने पिता द्वारा प्राण हरण से वे बहुत क्षुब्ध थे सो उन्होंने विधाता के सम्मुख उपस्थित होते ही पूछा—"तात् ! मुझे सर्वज्ञता का वरदान आपने ही तो दिया था। आपने ही तो कहा था कि संसार में जाकर अज्ञान ग्रस्त लोगों को ज्ञान का मार्ग दिखलाना, फिर ऐसी क्या भूल हुई जो आपने मेरे प्राण हर लिये ?"

विधाता एक क्षण चुप रहे और मस्तिष्क की किसी गम्भीर गुत्थी को सुलझाते हुए बोले—"वत्स ! तुम्हारी सर्वज्ञता तुम्हारी साधना का फल है, उस पर किसी को ईर्ष्या क्यों हो ? जो भी अपनी ज्ञान-शक्ति को प्रखर बनाता है, ऋतम्भरा प्रज्ञा उसके पीछे दौड़ी आती है यह तुम्हारे लिए कोई नई बात नहीं, पर मुख्य बात है तुम्हारा अहंकार। ज्ञानी जब अहंकारी हो जाता है, तब उसके अन्तःकरण से करुणा नष्ट हो जाती है। उस स्थिति में वह औरों का मार्ग-दर्शन नहीं कर सकता, केवल मात्र दम्भ प्रदर्शन कर सकता है, जिससे लोग प्रकाश लेने की अपेक्षा पतित होने लगते हैं ऐसी सर्वज्ञता का क्या लाभ ?"

भगवान राम सर्वज्ञ हैं तात् ! वे जन-जन के अन्तःकरण की बात जानते हैं पर यह बात यदि वे संसार के लोगों को बता दें तो पाप कर्मों से प्रभावित लोग क्या डर न जावें ? अपना सौम्य, करुणाजनक, उदार और हितैषी स्वभाव बनाये रखने के लिए उन्हें जान-बूझकर अज्ञ बनना पड़ता है। पिता बालक को उसकी तोतली भाषा में ही समझा सकता है, इसी तरह कर्म पथ पर आरूढ़ दिक्भ्रांत आत्माओं का मार्ग-दर्शन भी उनकी ही श्रेणी में बैठकर किया जा सकता है। अच्छी स्थिति में लोगों को देखकर सर्व-साधारण उनसे प्रभावित तो होता है, पर अनुकरण की प्रेरणा प्राप्त नहीं करता क्योंकि वह यह समझने लगता है कि यह हमारे बस की बात नहीं है। इन आदर्शों को विशिष्ट शक्ति सम्पन्न लोग ही जीवन में उतार सकते हैं। अतः उनकी बातें सुनने में तो अच्छी हैं, पर अनुकरण की सामर्थ्य हममें नहीं है।

और फिर किसी को कहकर या उपदेशों द्वारा ही तो प्रभावित नहीं किया जा सकता। उसे आचरण की प्रेरणा देने के लिए स्वयं के कृतित्व द्वारा ही आदर्श उपस्थित करना होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वशिष्ठ को अपनी भूल का पता चल गया, उस दिन से उन्होंने अपने ज्ञान का अहंकार त्यागकर सौम्य रूप धारण किया, जिससे वह न केवल मनुष्यों में प्रतिष्ठित हुए वरन् भगवान के भी गुरु और मार्ग दृष्टा होने के अधिकारी बने।

ब्राह्मण को ज्ञान क्रान्ति के मार्ग दर्शन को अत्यन्त सौम्य और सकरुण होना चाहिए, तभी वह अपना तथा औरों का हित सम्पादित कर सकता है।

मूल्यवान कालीन और गन्दे पाँव

एक सन्त के तप, त्याग और ज्ञान की चर्चा सुन राजा ने उन्हें आमन्त्रित किया। उनके आगमन पर मार्ग में मूल्यवान कालीन बिछा दिये। सन्त कीचड़ सने पाँवों से उन्हें गन्दे करते हुए उस तक पहुँचे। मन्त्री से न रहा गया, वह उसका कारण पूछ बैठा। सन्त बोले—"राजा को अपने राजपद का गर्व है। उसको प्रदर्शित करने के लिये बिछी कालीनों को गन्दा कर मैं उसे चूर-चूर कर रहा हूँ।"

"किन्तु भगवन् गर्द से गर्व कैसे चूर होगा ?" मन्त्री के इस प्रश्न ने उन्हें निरुत्तर कर दिया और वे अपनी भूल सुधारने के लिये वापस लौट पड़े।

गर्व चाहे वैभव का हो अथवा त्याग का, समान रूप से दोनों ही दोषपूर्ण हैं।

क्षुद्र क्षमता पर अहंकार व्यर्थ

कमरे के एक कोने में धूपबत्ती जल रही थी, दूसरे पर मोमबत्ती।

मोमबत्ती ने तिरस्कार पूर्वक धूपबत्ती की ओर देखा और कहा, "देखती नहीं मैं कितनी भाग्यवान् हूँ। चारों ओर मेरा प्रकाश फैल रहा है। सबकी आँखें मेरी ओर रहती हैं।"

धूपबत्ती ने कहा—"बहिन सो तो ठीक है, पर परीक्षा के कठिन समय में धैर्य और साहस के साथ अपनी जगह अड़ी रह सको, तभी चमक की सार्थकता है।"

मोमबत्ती ने बात अनसुनी कर दी।

हवा का एक तेज झोंका आया। मोमबत्ती बुझ गई, पर धूपबत्ती ने अपनी सुगन्ध और भी तेजी से बखेरना शुरू कर दिया।

कमरे का आकाश बोला—"वह चमक किस काम की जो एक झोंके का सामना भी न कर सके।"

अपनी क्षुद्र क्षमता पर अहंकार व्यर्थ है।

क्रोधात् जयेत अक्रोधेन

"आचार्य प्रवर, इस नवयुवक का पाणिग्रहण अभी इसी मास सम्पन्न हुआ, इसकी विदुषी पत्नी किसी बात पर अप्रसन्न होकर इसे छोड़ गई, अब इसे सांसारिकता से वैराग्य हो गया है, अतएव ये आपसे संन्यास दीक्षा लेने आये हैं ?" युवक सोम की ओर इंगित करते हुये उसके एक साथी युवक ने आचार्य चण्डरुद्र से यह शब्द प्रहसन में ही कहे थे, किन्तु वह असमय का उपहास ही एक अप्रत्याशित दुर्घटना का कारण बन बैठा।

सोम ने चाहा कि वह इस बात से इनकार करे और आचार्य चण्डरुद्र को बताये कि महाराज यह सब मेरा यों ही उपहास कर रहे हैं, पर जब-जब उसने कुछ कहने के लिये मुख खोला, तब-तब किसी साथी ने आगे बढ़कर पहली बात को ही पुष्ट किया। 'बहुमत सत्य को भी झूठ बना देता है' वाली कहावत अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई। युवकों की चख-चख से चण्डरुद्र का क्रोधी स्वभाव एकाएक उग्र हो उठा। उन्होंने कहा—"अच्छा तो तू तैयार हो, मैं अभी तुझे दीक्षा देता हूँ। यदि इस पर कुछ भी मीन-मेख की तो शाप देकर तुझे यहीं नष्ट कर दूँगा।"

बात हँसी की थी, पर अनियन्त्रित, कुसमय और अति होने के कारण तूल पकड़ गई थी। शेष सभी मित्रों ने चण्डरुद्र का प्रचण्ड रूप देखा तो सबके सब वहाँ से चुपचाप खिसक लिये संकट तो बेचारे सोम शर्मा पर आ धमका। भयवश अब न तो वह इनकार ही कर सकता था और न ही प्रतिवाद। एक व्यक्ति के क्रोध का दुष्परिणाम दूसरे व्यक्ति को इस तरह भुगतना पड़ा कि न चाहते हुए भी उसे संन्यास दीक्षा लेनी ही पड़ी। चण्डरुद्र का कोप तभी शान्त हुआ जब युवक सोम शर्मा ने विधिवत् चीवर धारण कर कमण्डल हाथ में ले लिया और आचार्य प्रवर से विधिवत् मन्त्र दीक्षा ग्रहण कर ली।

सोम अब सोममुनि बन चुके थे। श्रमण धर्म के सिद्धान्त उन्होंने पहले ही पढ़ लिये थे अब तो उनका पालन करना था, सोम बिना किसी राग-द्वेष के उसी क्षण में उन्हें जीवन में धारण करने की साधना में संलग्न हो गया।

गुरु को सादर प्रणाम कर सोम ने कहा—"भगवन् ! यहाँ तक जो कुछ हुआ, वह सब हठात् किसी अज्ञात शक्ति की प्रेरणा के समान हो गया, किन्तु ऐसा सदैव नहीं होता रहता। संसार कोटानिकोटि घटनाओं का एक श्रृंखलाबद्ध प्रवाह है। अब जो कुछ हो रहा है वही आगे की घटनाओं का आधार होगा। इसीलिये विज्ञ जन आज का कदम बहुत सोच-समझकर उठाते हैं। आप यह निश्चित समझें कि जब यह समाचार मेरे परिवार के लोगों तक पहुँचेगा, तब वे क्रुद्ध होंगे, सम्भव है कि प्रतिकार के लिये यहाँ आएँ और आपको भी दण्ड देने से न चूकें। आप मेरे गुरु हैं आपकी रक्षा मेरा परम कर्तव्य है। इसलिए अब यह बात बदल लेने में ही अपना हित है ?"

"सो तो सत्य है, अबुस ! किन्तु तुम्हीं सोचो, सन्ध्या बीत चुकी, रात्रि का अन्धकार बढ़ता जा रहा है, मेरा वृद्ध शरीर है, चलने की सामर्थ्य से मैं वैसे ही रहित हूँ फिर रात्रि के अन्धकार में चलना तो मेरे लिये और भी मरण तुल्य है।" चण्डरुद्र ने स्थिति की गम्भीरता अनुभव करते हुये उत्तर दिया।

"आप उसकी चिन्ता न करें देव। हम आपको कन्धे पर बिठा लेंगे। अभी तो मैं युवक हूँ आपको कन्धे पर लेकर कहीं भी जा सकता हूँ" यह कहकर सोममुनि ने एक बार अपनी सुडौल देहयष्टि पर दृष्टि डाली और गुरु के आदेश की प्रतीक्षा करने लगा। चण्डरुद्र क्रोधी थे तो क्या, वे विचारशील व्यक्ति भी थे, उन्हें सोम मुनि के कथन की सत्यता अनुभव करते देर न लगी। वे तुरन्त वहाँ से चलने के लिये तैयार हो गये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

घना अन्धकार, हाथ को हाथ नहीं सूझता था, ऐसे समय अपने एक दिन के गुरु चण्डरुद्र को कन्धे पर बैठाए सोममुनि आगे बढ़ चले। गहन गह्वर वन, नदियाँ, टीले, पहाड़ पार करते सोममुनि आगे बढ़ते जा रहे थे, पर अर्द्धरात्रि बीतने तक उनका शरीर पूर्णतया थकित हो गया। उधर नींद के झोके आलोड़ित करने लगे, फिर ऊबड़-खाबड़ रास्तों में चलने से पैरों में चोटें आईं थीं, वह कष्ट भी कम दुःखद नहीं था।

इन सबसे कष्टप्रद तो चण्डरुद्र का क्रोधी स्वभाव था। सोम का पैर किसी गड्ढे में पड़ जाता तो आचार्य चण्डरुद्र का वृद्ध शरीर कचकचा जाता, फलतः वे शिष्य को गालियाँ देते, कटु कहते और कई बार तो क्रोध के आवेग को रोक न सकने के कारण सोममुनि की पीठ पर प्रहार भी कर देते थे। रजोहरण दण्ड चण्डरुद्र के हाथ में था। सोममुनि जब आगे बढ़ रहे थे तो अँधेरे में दिखाई नहीं दिया और उनका अगला पैर एक बिवर में जा गिरा। सारी शक्ति लगाकर सँभले भी, पर कहाँ तक संभालते आचार्य चण्डरुद्र गिरते-गिरते बचे। इस बार उनका क्रोध सीमा पार कर गया। अपने रजोहरण दण्ड से सोम के सिर पर तीव्र प्रहार करते हुये चिल्लाए, "दुष्ट तुझे दिखाई भी नहीं देता, मार दिया होता अभी मुझे।"

सोममुनि तो मानो साक्षात् सहनशीलता और नम्रता के अवतार थे। सिर फट गया। रुधिर बहकर सारे शरीर को भिगोने लगा, तो भी उन्होंने उसकी किंचित चिन्ता नहीं की। उन्हें एक ही दुःख था कि संभल न सकने के कारण उनके गुरु को अकारण ही कष्ट हुआ। सोम बड़े करुणाशील शब्दों में बोले—"गुरुदेव ! आपने ठीक ही दण्ड दिया, कैसा दुर्भाग्य है मेरा कि आपको सुविधा पूर्वक ले भी नहीं जा सकता।" यह कहकर सोममुनि और भी सँभल-सँभल कर चलने लगे।

इधर भगवती ऊषा आसमान में वेग से अपना रथ दौड़ाए आ रही थीं। उधर थकावट के कारण सोममुनि का घाव भी गहरा हो चला था। रक्त निकलने की मात्रा बढ़ती ही जाती थी। गर्म रक्त एकाएक आचार्य चण्डरुद्र के पैरों का स्पर्श करने लगा, तब उन्हें पता चला कि आघात तीव्र लग चुका है। उन्होंने सोममुनि के सिर पर हाथ फिराकर देखा तो उनके दुःख की सीमा न रही, सम्पूर्ण हथेली रक्त से भीग गई चण्डरुद्र को वस्तुस्थिति समझते देर न लगी। सोममुनि को वहीं रोककर उसके कन्धे से उतर पड़े और बड़े दुःख एवं करुणा भरे स्वर में फूट-फूट कर रोने लगे—"वत्स सोम" उन्होंने कहा—"मैं कितना पातकी हूँ कि तुझ जैसे महान्, सहनशील और विनम्र शिष्य को भी कष्ट देने से नहीं चूका। यह सब मेरे क्रोध के कारण हुआ। तात् ! मुझे क्षमा करें जो पाठ मैं आचार्य होकर भी आज तक नहीं सीख सका था, वह आज तूने सिखा दिया। अब मैं जीवन भर कभी क्रोध न करूँगा।"

आचार्य चण्डरुद्र इतने विद्वान और साधक होकर भी आज तक क्रोधी स्वभाव के कारण समाधि सुख नहीं प्राप्त कर सके थे। आज शिष्य के अक्रोध ने उनका वह दूषण दूर कर दिया, तो वे समाधि की स्थिति में सहज ही पहुँच गये। अपने शिष्य की इस कृपा को चण्डरुद्र जीवन भर नहीं भूले। उन्होंने बड़े परिश्रम और तन-मन से अपनी सारी विद्याएँ सोममुनि को दान कर दीं।



Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

ईर्ष्या और वासना

ईर्ष्या साँपिन को न नसावा

देवगुरु बृहस्पति बड़े ही मृदु, गुणी और विद्वान् थे किन्तु ईर्ष्या का एक दुर्गुण जीवन में आ जाने के कारण उन्हें भी त्रसित और अपमानित हीना पड़ा।

उनके बड़े भाई संवर्त विद्याव्यसनी और गुणवान थे। पाण्डित्य में वे बृहस्पति से भी बढ़-चढ़कर थे। बस इतनी-सी बात देवगुरु को अखर गई। वे अपने ही भाई को कष्ट देने लगे। उनका व्यंग और अपमान करने लगे। ईर्ष्या ऐसी बुरी बला है, जिसके मस्तिष्क में पैदा हुई उसे अशांत तो बनाया ही, झगड़े-जंजाल में और झौंक दिया।

बृहस्पति के तंग करने से ऊबकर संवर्त ने गृह परित्याग कर दिया और उदासीन वेष में इधर-उधर घूमने लगे। घर छोड़ देने पर भी उनका अध्ययन और साधना बन्द न हुआ इसलिये वे जहाँ भी गये लोगों ने उनकी प्रतिष्ठा ही की। गुणी का जगत् सम्मान करता है। विद्यावान की पूछ हर जगह होती है सो बात संवर्त के साथ अक्षरशः सत्य हुई।

इस बीच राजा मरुत ने एक विशाल यज्ञ का आयोजन किया। बृहस्पति को उसका आचार्य नियुक्त करने की इच्छा से, राजा उनके पास गये और उक्त पद ग्रहण करने की प्रार्थना की। बृहस्पति ने विचार किया कि इस यज्ञ से मरुत इन्द्र जैसी शक्ति वाले हो जायेंगे इसलिये उन्होंने आचार्यत्व ग्रहण करने से इनकार कर दिया।

मरुत दुःखी तो हुए पर तत्काल उनके मस्तिष्क में संवर्त का विचार टंकराया। उन्होंने संवर्त को ढूँढ़ा और उनसे यज्ञाचार्य का पद सँभालने की विनीत प्रार्थना की। संवर्त को यज्ञ, तप, दया आदि से बड़ा प्रेम था, उन्होंने यह आमन्त्रण सहर्ष स्वीकार कर लिया।

यज्ञ का प्रबन्ध होने लगा। इधर यह खबर आचार्य बृहस्पति के कानों में पड़ी। वे अत्यन्त क्षुब्ध हो उठे। ईर्ष्या का जो बीज मस्तिष्क में पड़ा था, वह विष-वृक्ष बनकर लहराने लगा। मुँह पीला पड़ गया। रक्त जलने लगा। ईर्ष्या में जो भी दुष्परिणाम हो सकते थे, बृहस्पति को परेशान करने लगे।

जब कोई उपाय न सूझा तो वे देवराज इन्द्र के पास, जा उपस्थित हुए। ईर्ष्या के कारण उन्हें अपने ही शिष्य के समक्ष नतमस्तक होना पड़ा। उन्होंने देवराज को सब बातें सच-सच कह दीं। अब वे मरुत का आचार्यत्व भी ग्रहण करने को तैयार हो गये।

गुरु के मन की बात जानकर इन्द्र बहुत दुःखी हुए। पहले तो उन्होंने आचार्य को ही कह सुनाया, "देव ! कोई कितना ही बड़ा क्यों न हो, कितना ही विवेकशील क्यों न हो, ईर्ष्या उसका पतन कर देती है। ईर्ष्या से लोगों की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियाँ घटती हैं। अपमानित होना पड़ता है। ब्राह्मण श्रेष्ठ ! आप विद्वान होकर भी उसी के पंजे में आ गये ?"

पीछे उन्होंने अग्नि को बुलाकर मरुत का यज्ञ विध्वंस करने को भेजा। अग्निदेव वहाँ पहुँचे, पर आचार्य संवर्त के ब्रह्मचर्य और तेज को देखकर वे पहले ही काँप गये। राजा का अपमान किये बिना ही वे चुपचाप देवलोक को लौट गये।

इन्द्र ने यह सुना तो वे अधीर हो उठे और स्वयं ही मरुत को नष्ट करने के लिये दौड़ पड़े। उनकी भीषण हुंकार सुन कर मरुत का हृदय दहल उठा, उन्होंने आचार्य संवर्त की शरण ली। आचार्य ने कुपित इन्द्र की स्तुति की और कहा, "भगवन् हम तो विश्व-कल्याण के लिये यज्ञ कर रहे हैं। यह हव्य आपका है। आप हमारे आहुत देवता हैं, प्रत्यक्ष प्रकट होकर उसे ग्रहण करें।"

संवर्त की विनय, विद्या, निपुणता और ब्रह्मचर्य ने इन्द्र के मन को पानी-पानी कर दिया। उन्होंने प्रसन्न होकर आहुतियाँ ग्रहण कीं और आशीर्वाद देकर लौट गये। अन्त में जब कोई वश न चला तो बृहस्पति लज्जित हुए और भाई से क्षमा याचना की। ईर्ष्या के कारण उन्हें यह अपमान और पश्चाताप सहन करना पड़ा।

जैसा बोओगे वैसा मिलेगा

देवदत्त एक किसान का पुत्र था। उसके घर में बहुत समय से कोई सन्तान उत्पन्न नहीं हुई थी। इसलिये देवदत्त के जन्म पर उसने बड़ी खुशी मनाई और बड़े लाड़-प्यार से उसका पालन करने लगा।

पर माता-पिता की अपेक्षा बाबा और पौत्र में बहुत अधिक स्नेह का भाव उत्पन्न हो गया। बाबा पर देवदत्त का ऐसा प्रेम हो गया कि वह एक घड़ी भी उनसे दूर नहीं रहता था। बाबा उसे तरह-तरह की मनोरंजक, शिक्षाप्रद बातें सुनाया करते। वे उससे जिस किसी कार्य के लिये कहते उसे वह तुरन्त करता। उनके लिये पानी ला देना, भोजन लाने आदि का कार्य वह बहुत सँभाल कर करता था।

पितामह और पौत्र के ऐसे दृढ़ स्नेह को देखकर माता को विशेष ईर्ष्या होने लगी। वह कहती, "जिसका मुँह मसान की तरह है, उस बाबा पर इस छोकरे का इतना प्रेम क्यों है ? वह अपनी चारपाई पर पड़ा रहे, उसकी इतनी फिकर करने की क्या जरूरत ?" उसका बाबा के प्रति यह ईर्ष्या और तिरस्कार का भाव दिन पर दिन बढ़ता गया। अंत में एक दिन बहुत क्रोध में आकर वह देवदत्त के पिता से रूठ गई। वह रूठना ऐसा ही भयंकर था, जैसे कैकई भरत को राज्य दिलाने और राम को बनवास में भेजने के लिये दशरथ से रूठी थी।

देवदत्त के पिता ने उसे मनाने की कोशिश की, पर वह कहने लगी—"तुम और तुम्हारा बाप तथा बेटा तीनों लोग यहाँ पड़े रहना, मैं तो कल सबेरे ही अपने पीहर चली जाऊंगी।"

"पर किस लिये जायेगी ? ऐसा कौन-सा कारण उत्पन्न हो गया है ?"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"जिसको श्मसान जाना चाहिये, वह वहाँ नहीं जाता और व्यर्थ में मुझे उसकी बेगार करनी पड़ती है। इतना ही नहीं मेरे बेटे पर भी उसने ऐसा जादू कर दिया है कि वह उसको किसी तरह छोड़ता ही नहीं। इसीलिये मैं अब यहाँ से चली जाना चाहती हूँ।"

"अरे तू तो एकदम पागल है। जो विधाता के हाथ की बात है उसमें भी तू दखल देना चाहती है ? किसी की मृत्यु हमारी इच्छा से कैसे हो सकती है ? ऐसी बात भी कभी संभव होगी ?"

"हाँ, यह अपने हाथ की बात है।" देवदत्त की माँ ने कहा।

यह सुनकर देवदत्त का बाप चौंक पड़ा। जिस प्रकार कैकेयी के कान भरने में मंथरा ने किसी तरह भी कसर नहीं रखी थी, उसी प्रकार स्त्री ने भी अपने पति के मन में बुड्ढे के विरुद्ध विष पैदा करने में और यह समझाने में कि किसी भी तरह उस "खूसट" से छुटकारा पाया जाय, कोई कमी नहीं रहने दी।

रात भर पति इसी विषय पर विचार करता रहा और अन्त में उसने यही निश्चय किया कि पत्नी को प्रसन्न करने के लिये उसकी इच्छानुसार काम किया जाय।

दूसरे दिन उसने पिता से कहा—"खेत में एक नया कुआ खोदना है। इससे तुम भी वहीं चले चलो, कोई जरूरी बात हो, तो बतलाते रहना।"

स्नेही स्वभाव के पिता ने तुरन्त "हाँ" कह दी, पर बाबा से कभी अलग न होने वाले देवदत्त ने कहा—"मैं भी खेत में चलूँगा।"

बाप ने उसे हर तरह से समझाया, पर वह किसी तरह से न माना। अंत में उसकी माँ ने कहा—"ले जाओ इस निपूते को भी साथ में।"

बाप ने फावड़ा, चरस और कुदाल लिया, तो बेटा ने भी ये ही सब चीजें ले लीं। बाप ने पूछा—"तू ये सब चीजें क्यों ले रहा है ?"

"तो तुम क्यों ले रहे हो ?" देवदत्त ने भी बाप से प्रश्न किया।

बाबा ने कहा—"अच्छा है, वह इन सब चीजों को अपने खेलने के लिए ले चले। ऐसा ही खेल करते-करते वह एक दिन बड़ा किसान बन जाएगा।

माँ ने इशारा किया और बाप चुप हो गया। बाप, बेटा और बाबा तीनों बैलगाड़ी में बैठकर खेत की ओर चले।

वहाँ जाकर बाबा को तो एक जगह बैठा दिया गया और बाप अपने औजारों के साथ एक पेड़ के पीछे चला गया। उसने सोचा कि देवदत्त बाबा के साथ बातों में लगा रहेगा, तब तक मैं अपना काम पूरा कर लूँगा। पर जैसे ही वह औजार लेकर पेड़ के पीछे पहुँचा देवदत्त भी वहीं जाकर खड़ा हो गया।

बाप एक गड्ढा खोद रहा था। यह देखकर देवदत्त भी उससे थोड़ी दूर पर दूसरे पेड़ के नीचे गड्ढा खोदने लगा।

"क्या करता है, पागल !" बाप ने देवदत्त से पूछा।

"तुम गड्ढा खोदते हो, इसलिये मैं भी गड्ढा खोदता हूँ।"

"तुझे खबर है कि मैं किसलिये खोदता हूँ ?"

"नहीं, मैं क्या जानूँ ?"

"बाप मर जाय तो गड्ढे का काम उसके बेटा को करना पड़ता है, इसलिये मैं यह गड्ढा खोद रहा हूँ।"

"तुम्हारे बाप तो मेरे बाबा ही हैं न ?"

"हाँ बेटा।"

"और मेरे बाप तुम हो ?"

"हाँ ठीक है।"

"पर तुम्हारे बाप अभी मरे कहाँ हैं ?"

"यह तो ठीक है, पर आगे से व्यवस्था कर लेना अच्छा ही है।"

"तुम्हारा ख्याल ठीक है। मनुष्य को आगे की बात सोचकर ही काम करना चाहिये। मैं भी तुम्हारा ही अनुसरण करता हूँ, पिताजी ! जब तुम्हारा देहान्त होगा तो तुमको गाड़ने के लिये मुझे गड्ढा खोदना पड़ेगा कि नहीं ? इसलिये पहले से तैयारी कर लेना अच्छा ही है।"

बेटा ने बाप के शब्दों से ही उसे ऐसा उत्तर दिया जिससे वह चौंक पड़ा। उसे कुछ न सूझ पड़ा कि अब वह क्या कहे ? उसने फावड़ा दूर फेंक दिया और कहा—"चलो बेटा अब घर चलें।"

पिता और पुत्र को गाड़ी में बिठाकर देवदत्त का पिता फिर घर पहुँच गया। जीते-जागते बुड्ढे को फिर घर आया देखकर देवदत्त की माँ तो लाल पीली हो गई। पिता इसको एकान्त में ले गया और देवदत्त की बात उसे कह सुनाई। उनको सुनकर स्त्री की आँखों के आगे का पर्दा हट गया, उसने जान लिया कि "जैसा हम दूसरे के साथ करेंगे, वैसा ही हमको भी भोगना पड़ेगा।"

देवदत्त ने अपने माता-पिता को सत्य की शिक्षा देकर अनिष्ट के मार्ग में जाने से बचाया। इसके पश्चात् उसकी माता ने बुड्ढे के प्रति कभी तिरस्कार का भाव प्रकट नहीं किया और बराबर उसकी सेवा सुश्रूषा करती रही।

कलाकार का प्रतिशोध

मरण शय्या पर पड़े हुए पिता ने अपने पुत्र की ओर कातर दृष्टि से देखा। बैजू ने कहा—"तात ! मैं आपकी जीते जी तो कोई विशेष सेवा नहीं कर पाया, बताइए अब क्या आदेश है ?"

"बेटा ! मुझे इस समय अपनी एक ही इच्छा कचोट रही है। अपने संगीत दर्प से तानसेन ने मुझे बड़ा अपमानित किया था और मैं उसका बदला . . . नहीं . . . ले सका।" यह कहते हुये बैजू के पिता ने दम तोड़ दिया।

"बदला मैं लूँगा"—निश्चय कर उसके अपने पिता की मृतदेह की अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न करा दी। श्मशान में भी अपने पिता की राख को हाथ में लेकर उसने कसम खाई कि मैं बदला लेकर रहूँगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रात का घना अंधकार था। तानसेन के महल की चहारदीवारी फांदकर बैजू अन्दर घुस गया। हाथ में परशु की तेजधार, अन्धेरे में भी चमक रही थी। वह तानसेन के शयन कक्ष की ओर बढ़ा। दरवाजे की झिर-झिरी से झाँककर देखा सब लोग निद्रा मग्न थे। तानसेन देवी सरस्वती की प्रतिमा के आगे बैठा कुछ पढ़ रहा था।

सरस्वती की शान्त और वरद हस्त उठाए प्रतिमा को देखकर बैजू के हृदय में विचारमन्थन होने लगा। अन्तः करण में स्फुरणाएँ उठने लगीं—"प्रतिशोध ऐसा प्रतिशोध, किस काम का जिसमें अपना और भी पतन हो। माना कि तानसेन तो संगीत दर्प में पिताजी को अपमानित कर बैठा, तो क्या मैं भी अपने बल और छल-छद्म के दर्प में उसे मारकर उसका बदला लूँ। क्या प्रतिशोध का दूसरा मार्ग नहीं हो सकता है ? ऐसा हीन प्रतिशोध मुझे नहीं लेना। देवी माँ मुझे सद्बुद्धि दे।" और वह बिना प्रतिशोध लिए ही घर लौट आया। वस्तुतः ऐसे प्रतिशोध से क्या लाभ जो मनुष्य को दानवी—प्रवृत्तियों में लगा दे।

बैजू ने घर आते-आते रास्ते में संगीत साधना का निश्चय किया और अपनी साधना तथा सिद्धि की प्रखरता के आधार पर तानसेन को परास्त कर प्रतिशोध लेने का विचार किया। वीणा और वाद्य यन्त्र लेकर देवी सरस्वती के सम्मुख बैठा बैजू अहर्निश संगीत साधना में लगा रहने लगा।

संगीत के स्वरों में झंकृत वीणा के साथ-साथ उसकी हृदय तन्त्री भी बजने लगी और बैजू के गीतों का आराध्य सर्वनियामक परमात्मा हो गया। अपनी साधन तन्मयता में वह खाने-पीने की सुध तक भूल जाता। लोगों ने उसे बाबरा कहकर सम्बोधित करना शुरू कर दिया। उसके गीतों और स्वरों को जो भी सुनता, ईश्वर भक्ति की तरंगें मन में उठने लगतीं।

बैजू बावरा की ख्याति फैलने लगी। होते-होते सम्राट अकबर तक उसकी प्रशंसा पहुँची। अकबर की दृष्टि में तो तानसेन के समान और कोई गायक ही नहीं था, परन्तु जब सुना कि बैजूबावरा भी बहुत अच्छा गाता है, तो स्वाभाविक ही उसका जी भी गायन सुनने के लिए मचल उठा।

अकबर ने दूत को भेजा बैजू बावरा को दरबार में उपस्थित होने के लिए, परन्तु दूत अकेला ही लौट आया और बोला—"महाराज ! आपको गीत सुनना है, तो उसकी झोंपड़ी पर जाएँ।"

दरबारियों समेत राजा बैजू बावरा की झोंपड़ी पर पहुँचे और बैजू ने अपनी स्वर लहरी छेड़ी। सब मन्त्र-मुग्ध हो उठे। तानसेन ने अपनी पराजय को अब प्रत्यक्षतः स्वीकार कर लिया—"जहाँपनाह ! मैं आपको खुश करने के लिए गाता हूँ और बैजू ईश्वर को खुश करने के लिए। ईश्वर की तुलना में आपकी सत्ता की संगति कहाँ बैठेगी ? जो अन्तर ईश्वर और आप में है, वही अन्तर बैजू और मुझ में है।"

ईश्वर भक्ति के प्रसादस्वरूप बैजू के मन से प्रतिशोध या विकार की भावना नष्ट हो चुकी थी। उसे ध्यान भी नहीं था कि "मुझे तानसेन को पराजित करना था" फिर भी उसका प्रतिशोध, सही अर्थों में पूरा हो चुका था क्योंकि उसके परम सखा तानसेन का संगीत दर्प टूट चुका था।

बैल और गधा

दो पण्डित एक गृहस्थ के घर अतिथि हुए। एक विद्वान स्नान गृह में गये थे। गृहस्थ ने दूसरे से उनके बारे में पूछा तो वह कहने लगे, "वह तो बिल्कुल बैल है।" पहला बाहर आ गया और दूसरा स्नान करने गया तो गृहस्थ ने उससे भी वही बात पूछी। दूसरा विद्वान बोला—"वह तो पूरा गधा है।" दोनों भोजन के लिए बैठे तो गृहस्थ एक के आगे भूसा और दूसरे के आगे घास पटककर बोला लीजिये महाराज बैल और गधे का भोजन हाजिर है। यह सुनकर दोनों बड़े लज्जित हुए।

एक दूसरे से ईर्ष्या और निन्दा अमानवीयता का ही द्योतक है।

ईर्ष्या बनाम विष

समुद्र मथा गया तो उसमें से कालकूट विष भी निकला और रत्न तो अन्य देवताओं ने ले लिए पर कालकूट लेने को कोई तैयार न हुआ। अन्त में शिवजी को उसे पान करना पड़ा।

कालकूट पीते समय शिवजी के हाथ हिल गये और उसकी कुछ बूँदें मिट्टी पर गिर पड़ीं। संयोगवश वह मिट्टी वही थी जिसे लेकर ब्रह्माजी मनुष्यों की देहें बनाया करते थे।

ब्रह्मा भूल में पड़े रहे। उन्होंने उन विष की बूँदों को हटाया नहीं और उस विषैली मिट्टी से ही मनुष्यों की देहें बनाते रहे।

विष की बूंदें ईर्ष्या की अग्नि बनकर मनुष्यों को जलाने लगीं। दूसरों को बढ़ता देखकर प्रसन्न होने के स्थान पर अकारण जलने और अपनी विषपान जैसी हानि करते मनुष्य तभी से चले आ रहे हैं।

जिन्दगी और मौत एक-दूसरे की पूरक हैं

जिन्दगी और मौत क्षितिज की ओट में बैठी बातें कर रही थीं। बातों-बातों में एक दूसरे के महत्त्व पर बात चल पड़ी। जिन्दगी बोली मैं तुम से बड़ी हूँ। संसार में मेरा ही महत्त्व है। तुम तो हर चीज को नष्ट करती रहती हो। तुम ध्वंस की दूती हो, निर्माण के देवता से तुम्हारा परिचय भी नहीं है। नष्ट करने वाले का संसार में महत्त्व हो ही कब सकता है ?

मौत ने जिन्दगी की बात का बुरा नहीं माना। वह हँसती हुई बोली—"मैं जो कुछ भी करती हूँ, सब तुम्हारे हित के लिए। एक मेरे ही कारण संसार में तुम्हारी महत्ता है। यदि मैं न होऊँ तो तुम्हारी कद्र कौड़ी मोल हो जाय।" मौत की बात सुनकर के जिंदगी को क्रोध आया और उसकी अवमानना करने लगी, मौत खिन्न हुई और रूठकर चली गई।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दुनिया के लोगों को जब पता चला कि जिन्दगी का मौत से सम्बन्ध टूट गया है, तब मौत जिन्दगी को प्यार करने लगी। जिन्दगी अपनी जड़गति से घबराकर दौड़ी-दौड़ी मौत के पास गई और उसे यह कहकर मना लाई चलो बहन हम तुम दोनों ही एक-दूसरे के सहायक एवं पूरक हैं।

स्वयं को श्रेष्ठ समझने का अहंकार अनर्थों की जड़ है।

द्वेष का दुष्परिणाम

वशिष्ठ और विश्वामित्र में ऐसी शत्रुता का भाव उत्पन्न हो गया था कि एक-दूसरे को देखते ही अपशब्द कहने लगते थे। एक बार वशिष्ठ इन्द्र के यज्ञ में जाने के लिये जैसे ही आश्रम से बाहर निकले कि उनका विश्वामित्र से सामना हो गया। दोनों एक-दूसरे पर अपशब्दों की बौछार करने लगे और अन्त में वशिष्ठ ने विश्वामित्र को बगुला हो जाने का शाप दिया। विश्वामित्र ने भी श्राप देकर उनको 'आडी' नाम का पक्षी बना दिया। वे दोनों ही एक सरोवर के तट पर घोंसला बनाकर रहने लगे और पूर्व वैर को स्मरण करके नित्य प्रति युद्ध करने लगे। उनके जो बच्चे और सम्बन्धी थे, वे भी लड़ाई में भाग लेने लगे। यह युद्ध बहुत वर्षों तक चलता रहा जिसके कारण वह रमणीक सरोवर और आस-पास का दार्शनिक प्रदेश घृणित रूप में परिवर्तित हो गया। इस दुर्दशा को देखकर पितामह ब्रह्मा वहाँ पधारे और उन्होंने वशिष्ठ तथा विश्वामित्र दोनों को शाप मुक्त करके बहुत डाँटा-फटकारा कि तुम ज्ञानी और तपस्वी होकर यह कैसा मूर्खों का सा कार्य कर रहे हो, जिससे असंख्य व्यक्ति दुःख पा रहे हैं और निन्दा कर रहे हैं।

द्वेष रखना बड़ी अधमता की बात है। ज्ञानी तो दूसरे की दो अनुचित बातें भी सहन कर लेता है और क्षमा वृत्ति से काम लेता है।

मूर्धन्यजनों का पाप

सूरज अस्ताचल के पीछे छुपने जा रहा था। राह चलते ब्राह्मण, समाज का मूर्धन्य वर्ग अपने परिजनों की लम्बी होती जा रही छाया को देखकर अनुभव कर रहा था कि उनकी चिन्ता भी इसी प्रकार बढ़ती जा रही है। कहीं दुष्ट और आसुरी प्रकृति के लोग उनका संहार करने के लिए पीछे-पीछे न आ रहे हों। वे रह-रह कर पीछे मुड़कर देख लेते थे। दूर तक कहीं किसी के आने का संकेत नहीं मिलता था। फिर भी चिन्ता तो थी ही। जिस प्रान्त से वे लोग भागकर आ रहे थे, उसमें दुष्ट प्रवृति के अवांछनीय व्यक्तियों ने ऐसा उत्पात मचा रखा था कि ब्राह्मणों का वहाँ रहना भी दूभर हो गया था और उन्हें अपनी प्राण रक्षा भी कठिन लगने लगी थी।

प्राणरक्षा के लिए ब्राह्मणों का दल अपने परिवारों सहित महर्षि गौतम के आश्रम में आश्रय पाने के लिए निकल पड़ा था। स्त्रियाँ व्याकुल होकर पूछ उठतीं—"कितनी दूर है गौतम का आश्रम।" तो उनके साथ चल रहे पुरुष कह उठते, "कल मध्याह्न तक पहुँच जाएँगे।"

समाज में अवांछनीयताएँ इतनी बढ़ चुकी थीं कि रक्षा के लिए भागे ब्राह्मण और उनके परिवार की स्त्रियों को रात में रुकना भी खतरे से खाली नहीं लगा। पता नहीं वे लोग पीछे आ रहे हों और उनके रुकते ही उन तक पहुँच जाँय। सो वे रात को भी चलते रहे और अगले दिन मध्याह्न के समय ब्राह्मणों ने महर्षि गौतम के आश्रम में प्रवेश किया। विदित था कि महर्षि के आश्रम में सिंह और गौ-शिशु एकसाथ रहते थे। वहाँ सभी दुष्ट प्रवृत्तियों का शमन हो जाता था, इसलिए सभी ब्राह्मण वहाँ पहुँचकर निश्चिन्त और निर्भय हो गये। महर्षि गौतम से जब उन्होंने सारी स्थिति स्पष्ट की तो महर्षि ने कहा—"प्रिय अतिथियो ! मैं सब तरह से तैयार हूँ। आप अपने अग्नि-होत्र के साथ यहाँ निवास करें।"

आश्रमवासी मध्याह्नकालीन विश्राम कर रहे थे, किन्तु ब्राह्मणों का आगमन सुनकर सभी तत्पर हो गये तथा अभ्यागतों के आवास, भोजन और विश्राम की व्यवस्था में जुट गये। आतंकित ब्राह्मणों का भय तिरोहित हो गया और अपने अग्निहोत्र के साथ आश्रम में निवास करने लगे। नित्य प्रति के अग्निहोत्र के धुएँ से आकाश में धूपछाँही चादर तन जाती और सामगान से आकाश गूँज उठता था। पक्षियों का कलरव भी मानो उनका समवेत देता।

समय बीतने लगा। ब्राह्मणों के प्रदेश से समाचार आते रहते थ। वहाँ दुष्ट और अवांछनीय तत्वों के उत्पात शांत होने लगे थे। इधर महर्षि गौतम द्वारा इतने ब्राह्मणों को प्रश्रय दिये जाने के कारण उनकी कीर्ति भी बढ़ रही थी। एक बार भ्रमण करते हुए देवर्षि नारद महर्षि गौतम के आश्रम में आए। उन्होंने महर्षि की प्रशंसा करते हुए कहा—"ऋषिवर आपकी यह कीर्ति तो दिगदिगंत में गायी जा रही है। धन्य हैं आप जैसे परोपकारी और ब्रह्मनिष्ठ सन्त, जिनके दर्शन कर मैं कृतार्थ हो गया।"

नारद तो चले गये पर प्रश्रित ब्राह्मणों के मन में ईर्ष्याग्नि भड़क उठी—गौतम का यश चारों ओर फैल रहा है और एक दिन ब्राह्मण जाने की तैयारी करने लगे। सुबह का समय था। महर्षि गौतम अग्निहोत्र से जैसे ही उठे और वे अपनी पर्णकुटी की ओर जाने लगे, तो उन्होंने देखा आश्रम के आँगन में एक दुबली-पतली गाय पड़ी है। उन्होंने जैसे ही निकट जाकर देखा कि गाय जीवित है या मृत और परीक्षा करने के लिए उसकी पीठ पर अपने हाथ के दण्ड से हल्का-सा प्रहार किया, चारों ओर से ब्राह्मण निकल पड़े और उन्होंने शोर मचाया—"हाय ! हाय !! इस पुनीत ब्रह्मबेला में गौ हत्या। छोड़ो-छोड़ो इस ढोंगी का आश्रम और प्रकट हो जाने दो संसार के सामने इसके पातक को।"

ऋषि ने ध्यानस्थ होकर देखा तो पाया कि यह ब्राह्मणों द्वारा बनाया गया गाय का पुतला है, जो उन्हें कलंकित करने के लिए रचा गया व्यूह था। महर्षि गौतम ने गुरुगम्भीर वाणी से कहा—"हे ब्राह्मणो ! मैं समझ गया कि आपके क्षेत्र में उत्पात क्यों बढ़े और फैले हैं ? समाज

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के मूर्धन्य होकर भी आप लोगों के हृदय में इस प्रकार ईर्ष्या और कलुष है तो आपके समाज में अशान्ति, अव्यवस्था और विग्रह क्यों नहीं आयेंगे ?"

प्रमाद का दुष्परिणाम

सोलह बार मुहम्मद गौरी को हरा देने के बाद पृथ्वीराज को जैसे गर्व हो गया था। वह समझने लगे थे कि गौरी अब उन्हें परास्त नहीं कर सकता है। विजय के गर्व ने उन्हें इस तथ्य को भुला दिया था कि गफलत में पड़ जाने पर विजय क्षर भर में ही पराजय में बदल सकती है। वे न केवल इस तथ्य के प्रति आँखें मूँदे थे वरन् उन्होंने ऐसी गतिविधियाँ भी अपनानी शुरू कर दी थीं जिससे लगता था कि वे अपने दायित्व के प्रति अब उतने गम्भीर नहीं रह गये हैं।

संयोगिता जैसी अनिन्द्य सुन्दरी से उनका विवाह हुआ था और वे अपनी प्रियतमा के रूप जाल में ऐसे खो गये थे कि न राज्य प्रबन्ध सूझता था और न ही सुरक्षा की ओर कोई ध्यान था। अपनी दुनिया को पृथ्वीराज ने संयोगिता के कक्ष तक ही समेट लिया था। कब दिन उगता है और कब शाम होती है, पृथ्वीराज को इसका कोई पता न चलता। संयोगिता की रूप माधुरी को देखते-देखते आँखें थक जातीं, पर देखने की चाह न मिटती। स्पर्श सुख की चाह कभी नहीं मिटती है। वह बुझाने के प्रयास में आग को घी से भड़काने की तरह और भड़कती ही जाती है।

फिर खबर मिली कि गौरी पुनः आक्रमण की तैयारी कर रहा था। गौरी की आँखों में तो भारत की उस अपार सम्पदा के सपने तैर रहे थे, जो विजय के बाद उसके करतल गत होती मालूम पड़ती थी। जब भी दरबार में कोई भारत की श्रीसमृद्धि की चर्चा करता तो उसके मुँह से आह निकल जाती थी और विचार आने लगते थे कि कब उसका सपना पूरा होगा ? अपना स्वप्न पूरा करने के लिए गौरी दिन रात उधेड़ बुन में लगा रहता था। सोलह बार आक्रमण करने और हर बार पराजित होने पर वह यह तो अच्छी तरह समझ चुका था कि भारतीय वीरों का पराक्रम वह आमने-सामने होकर नहीं झेल सकता है। सम्भवतः वह इसीलिए चाहता था कि कोई दूसरा रास्ता अपनाया जाय। यह दूसरा रास्ता खोजने में उसके जासूसों ने सफलता प्राप्त कर ली थी। विदित हुआ था कि कन्नौज का राजा पृथ्वीराज से जला भुना बैठा है और उसको साथ लिया जाय। वह विभीषण साबित हो सकता था।

विश्वस्त साथियों को मध्यस्थ बनाकर गौरी ने जयचन्द का सहयोग पाने में सफलता प्राप्त करली थी। जब आक्रमण की पूरी तैयारियाँ हो गयीं और इस बात का पता पृथ्वीराज के मंत्री गुरुराम और राज्य कवि चन्द को चला तो उन्होंने इससे पृथ्वीराज को सूचित करना आवश्यक समझा। चन्द और गुरुराम जब आक्रमण की सूचना देने गये, तब भी पृथ्वीराज अपने विलास कक्ष में मग्न थे। बिना कुछ जाने ही पृथ्वीराज ने किसी से भी मिलने के लिए मना कर दिया तो चन्द ने यह संदेश भिजवाया—

कग्गर अप्पहं राज कर, मुँह अप्पहं इह वत्त।
गौरी रतौ तुम धरनी, तुम गौरी रस रत्त।।

"यह काम करने के लिए पूरा जीवन पड़ा है। गौरी तुम्हारी मातृभूमि को ताक रहा है और तुम गोरी स्त्री के रस में ही डूबे हो।"

तब भी पृथ्वीराज ने कोई तत्परता नहीं दिखाई। संयोगिता को जब इस बात का पता चला तो उसने अपने पति को फटकारा और कहा—"जब शत्रु तुम्हारी मातृभूमि पर आँख गड़ाये हुए हैं, तब तुम यहाँ क्या कर रहे हो ?"

सन्न रह गया पृथ्वीराज और फिर उस फटकार को सुनकर बाहर निकल आया, लेकिन अब तक बहुत देर हो चुकी थी। इस युद्ध में पृथ्वीराज गौरी से हारा। काश पृथ्वीराज सो नहीं जाता, राग-रंग में डूबा नहीं होता तो भारत का इतिहास आज कुछ और ही होता।

वासना का ताण्डव नृत्य

भारतवर्ष में प्राचीन काल में "गंधर्व" नाम की एक जाति निवास करती थी। उनके राजा का नाम "विश्ववसु" था और "मदालसा" उसी की एकमात्र कन्या थी। एक दिन वह अपने महल के बगीचे में दासियों के साथ फिर रही थी कि "पातालकेतु" नाम का राक्षस यहाँ आ गया और मदालसा के रूप पर मोहित होकर उसे हर कर अपने देश को ले गया।

जब इस घटना का समाचार राजा विश्ववसु के पास पहुँचा, तो उसने मदालसा को ढूँढ़ने के लिये चारों तरफ अपने सिपाही और दूत दौड़ाए, पर पाताल केतु बड़ा मायावी था, इससे कोई उसे पकड़ न सका। मदालसा रोती हुई उसके साथ जा रही थी। उसी समय शंकर-पार्वती आकाश में होकर उसके ऊपर से निकले। मदालसा के रोने का शब्द सुनकर पार्वतीजी ने भगवान शंकर से कहा—"प्राणनाथ, किसी दुःखी स्त्री का विलाप सुनाई पड़ रहा है, आप उसकी रक्षा करो।" शंकर जी ने कहा—"देवी, स्त्री की सहायता स्त्री द्वारा ही अधिक अच्छी तरह हो सकती है, इसलिये इस कार्य को तुम्हीं करो।"

यह सुनकर पार्वतीजी ने मदालसा से कहा—"पुत्री, तू मत घबड़ा। अयोध्या का राजकुमार ऋतुध्वज पातालकेतु का वध करके तेरे साथ विवाह करेगा।" पातालकेतु और मदालसा दोनों ने पार्वती जी के ये शब्द सुने। पातालकेतु ने मदालसा को ले जाकर अपने विशाल महल में रखा और "विकुंडला" नाम की दासी को उसकी देखभाल के लिये नियुक्त किया। राक्षस ने मदालसा को फुसलाने का सब प्रकार से प्रयत्न किया, पर वह उसके जाल में न फँस सकी। मदालसा ने उस अवसर पर चतुराई से काम लेना उचित समझा और पातालकेतु से कहा—"मैं तुम्हारे साथ विवाह करने से इनकार नहीं करती, पर अभी तक तुम्हारे घर वालों ने मुझे देखा भी नहीं है। इसलिये तुम उनको बुलाकर और उनकी सम्मति लेकर विवाह की अच्छी तरह तैयारी कराओ। साथ ही जिस ऋतुध्वज को तुम्हारा शत्रु बतलाया है, उसे भी जाकर मार आओ। तब हमारा-तुम्हारा विवाह सम्बन्ध ठीक हो सकेगा।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इन शब्दों से पातालकेतु फंदे में फँस गया और मदालसा की जिम्मेदारी विकुंडला को देकर ऋतुध्वज को ढूँढ़ने चला। उस समय ऋतुध्वज गालव ऋषि के यज्ञ का संरक्षण कर रहा था। वहाँ पहुँचकर पातालकेतु ने इतना उपद्रव मचाया कि यज्ञ में हाहाकार मच गया। अंत में पातालकेतु और ऋतुध्वज दोनों द्वन्द्वयुद्ध करने लगे, पर शीघ्र ही पातालकेतु हारकर भाग निकला। ऋतुध्वज उसका पीछा करते हुये उसके प्रदेश में पहुँच गया और ढूँढ़ने लगा कि वह कहाँ छुप कर बैठा है ?

ऋतुध्वज ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उस महल के पास जा पहुँचा, जिसमें मदालसा को रखा गया था। उसे देखकर विकुंडला ने कहा—"राजकुमारी, कोई राजकुमार इधर आता दिखलाई पड़ता है।" यह सुनकर मदालसा को पार्वतीजी के वचन याद आ गये। उसने राजकुमार को महल में ले आने के लिये विकुंडला से कहा। जब ऋतुध्वज वहाँ पहुँचा और उसने महल के स्वामी के विषय में जाँच-पड़ताल की तो विकुंडला ने कहा—"राजन् ! यह इमारत विश्वकर्मा ने बनाई थी और सब देवताओं का इसमें निवास था। पीछे इन्द्र ने इसे "कंठलधार" राक्षस को दे दिया। अब पाताल केतु इसका मालिक है। मैं भी एक राजा की पुत्री थी, पर पातालकेतु मेरे माँ-बाप को मारकर मुझे यहाँ पकड़ लाया। अब वह इस मदालसा को मेरे सुपुर्द करके ऋतुध्वज से लड़ने अयोध्या को गया है।"

तब ऋतुध्वज बोला—"अरे, ऐसी बात है ! मैं स्वयं ऋतुध्वज हूँ और पातालकेतु को ढूँढ़ने यहाँ आया हूँ। अगर उसका पता मालूम हो जाय तो अभी उसे उसके पापों का दण्ड मिल जायगा।" उसी समय नारदजी वहाँ आ गये और उन्होंने सब हाल कहकर ऋतुध्वज और मदालसा का विवाह-सम्बन्ध करा दिया। विकुंडला ने कन्यादान दिया। इसके पश्चात् वे सब गालव ऋषि के आश्रम में गये, जहाँ इस विवाह का समाचार सुनकर सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। इसकी खबर मदालसा के पिता "राजा विश्ववसु" के पास भी भेजी गई। कुछ समय बाद वे भी अयोध्या आ पहुँचे और मदालसा का विवाह वेदोक्त विधि से ऋतुध्वज के साथ किया गया। इस अवसर पर मदालसा ने ऋतुध्वज की बाँह में एक बहुमूल्य मणि बाँधते हुये कहा—"स्वामी, इस मणि को कभी अपने से पृथक् मत करना। इसके पृथक् होते ही मेरा जीवन समाप्त हो जायगा।"

जब इन सब बातों की खबर पातालकेतु को लगी तो वह बड़ा क्रोधित हुआ और बदला लेने की युक्ति सोचने लगा। इधर ऋतुध्वज एक दिन शिकार खेलने वन में गया था, वहाँ एक सरोवर में पानी पीने के लिये उतरा। उसी समय "अरजक" नामक नाग के दो पुत्र मणि का तेज देखकर वहाँ आ पहुँचे। ऋतुध्वज उनको शत्रु समझकर मारने को तैयार हुआ, पर उन्होंने उसकी बड़ी खुशामद की, जिस पर तीनों में मित्रता हो गई। अब ऋतुध्वज सदैव उसी तालाब पर नहाने को जाता और वहीं तीनों इकट्ठे होते। मदालसा ने पति के इस प्रकार हर रोज गैर हाजिर होने से इस सम्बन्ध में पूछताछ की, पर उसको स्पष्ट उत्तर न मिल सका।

कुछ समय बाद मदालसा की मणि को लेने के लिये पातालकेतु ने एक नई युक्ति सोची और साधु का वेष रखकर उसी तालाब के पास आ बैठा। जब ऋतुध्वज वहाँ पहुँचा और उसने वहाँ एक साधु को दुःखी आकृति में बैठे पाया तो उससे हाल पूछने लगा। उसने कहा—"श्रीमान्, मेरे पुत्र के विवाह की बातचीत एक कन्या के साथ हो रही है, पर कन्या का कहना है कि जब वह उसके पास मदालसा वाली मणि को देख लेगी तब विवाह करेगी। अब यदि वह मणि आप दिला सकें तो मेरा काम हो।" इस पर ऋतुध्वज ने कहा—"महाराज, ऋतुध्वज तो मैं ही हूँ। पर उस मणि के पृथक् करने से तो मदालसा का प्राण नाश हो जायगा, इसलिये उसका दे सकना असम्भव है।"

इस युक्ति में असफल होकर दो-चार दिन बाद वह फिर नवीन वेश में तालाब पर पहुँचा। उसको ऋतुध्वज तथा नाग कुमारों की मित्रता की बात मालूम हो गई थी। जब ऋतुध्वज तालाब पर पहुँचा तो उसने बाहर निकल कर कहा कि "नागकुमारों ने आपसे कहलाया है कि आज हम आपकी भेंट को एक अद्भुत नवीन वस्तु लाने वाले हैं, इसलिये आप संध्या तक यहीं ठहरें।" इसके बाद वह नाग कुमारों के पास गया और बोला—"भाइयो, आज ऋतुध्वज किसी आवश्यक कार्य में संलग्न है और तालाब पर आपसे मिलने न आ सकेंगे। यह संदेशा कहने के लिये उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है।" इस प्रकार दोनों को बहकाकर वह भिक्षुक के वेष में रानी मदालसा के पास पहुँचा और मायाजाल फैलाकर उसे हर कर ले गया।

ऋतुध्वज के पिता महाराज शत्रुजित ने मदालसा की बहुत खोज कराई, पर उसका पता न लगा। उसके विरह में ऋतुध्वज योगी का वेश धारण करके एक जंगल में जा बैठा और जब तक मदालसा न मिल जाय तब तक वहाँ से न हटने का उसने प्रण कर लिया। जब यह समाचार उन नाग कुमारों को मिला, तो उन्होंने अपने पिता "अरजक" से इस कार्य के लिये कहा। उसने शिवजी की विशेष उपासना करके उनको प्रकट किया और मदालसा के पाने की विधि पूछी। शिवजी ने बतलाया कि जमुनाजी के किनारे जाकर "शिव-मंत्र" का सवा लाख जप करने से मदालसा मिल जायगी। अरजक ने वैसा ही किया और मदालसा को लाकर ऋतुध्वज के सुपुर्द किया। दोनों पति पत्नी को इस मिलन से अपार आनन्द हुआ और वहाँ से अपनी राजधानी अयोध्या में पहुँचे।

पर पातालकेतु भी कम हठी नहीं था। वह फिर उनके सुख में बाधा डालने को गुप्त वेष में अयोध्या जा पहुँचा, पर अब ऋतुध्वज उसकी चालों से खूब जानकार हो गया था। उसने उसे पहचान लिया और उठाकर पत्थर पर इस प्रकार दे मारा कि उसके अंग-प्रत्यंग चूर-चूर हो गये और सदा के लिये उसका अन्त हो गया।

इसके बाद राजा शत्रुजित ने शुभ मुहूर्त देखकर ऋतुध्वज को गद्दी पर बैठाया और स्वयं तप करने वन को चले गये। ऋतुध्वज राजधर्म का पालन करके एक आदर्श नरेश के रूप में प्रसिद्ध हुआ और मदालसा ने आदर्श सती नारी के कर्त्तव्य का आचरण करके "महासाध्वी" की पदवी प्राप्त की।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पाप-कर्म करने वाला चाहे कैसा भी बलवान और धूर्त क्यों न हो अंतिम जय सदैव पुण्य की ही होती है। विशेषतः जो सती महिला पतिव्रत के महान् धर्म पर दृढ़ रहती है, उनके सामने देव और दानवों की शक्ति भी तुच्छ सिद्ध होती है और वे सब संकटों को पार करके अपने धर्म की रक्षा करने में सफल होती है।

दुर्बुद्धि एवं सद्बुद्धि

भस्मासुर और शतायुध दो भाई थे। दोनों ने वयस्क होने पर निश्चय किया कि तप करके शिवजी को प्रसन्न करना चाहिए और उनसे ऐसा वरदान प्राप्त करना चाहिए, जिससे संसार भर में अपनी महिमा गाई जाय। वरिष्ठ और समर्थ समझा जाय।

दोनों तप में जुट गये। लम्बे समय तक कठोर साधना चली। शंकर जी का ध्यान खिंचा और वे उन्हें दर्शन देने जा पहुँचे और वर माँगने के लिए कहा।

दोनों ने आशुतोष को नमन किया और अपनी-अपनी मनोकामना कह सुनायीं। भस्मासुर ने वर माँगा कि वह जिसके भी सिर पर हाथ रखे वह जल कर भस्म हो जाय।

शतायुध ने माँगा कि वह जिसके शिर पर हाथ रखे वही रोगमुक्त हो जाय। दोनों को इच्छित वर देकर शंकर जी विदा हो गये।

भस्मासुर ने अपने शत्रुओं की गणना की और उनको किसी बहाने बुलाकर सभी के शिर पर हाथ रखा और जलाकर नष्ट कर दिया। सभी लोग भयभीत हो गये। उससे शत्रुता करने का किसी का साहस नहीं होता था। वह निर्द्वन्द्व स्वच्छन्द विचरने लगा, पर उसके पास डर के मारे कोई फटकता तक न था। विवाह की इच्छा थी, पर कोई स्त्री उससे विवाह के लिए तैयार न होती। सोचती, यदि प्यार में भी शिर पर हाथ रख दिया तो जीवन से हाथ धोना पड़ेगा।

एक दिन उसने पार्वती जी को पत्नी बनाने का विचार किया। वे असाधारण सुन्दरी जो थीं। उसका प्रस्ताव जब पार्वती के पास पहुँचा, तो वे सन्न रह गईं। शिवजी भी सोचने लगे कि कुपात्र की सहायता करना भी पाप है। मुझसे यह भूल हो गई। अब कोई उपाय करके अपने और पार्वती के प्राण बचाने चाहिए।

पार्वती जी ने माया से एक रूपसी की रचना कर डाली। माँ पार्वती सदृश सुन्दर दिखाई देने वाली उस रूपसी ने भस्मासुर से कहा, 'शिवजी नृत्य बहुत सुन्दर करते हैं। इसलिए मुझे वे परमप्रिय हैं। तुम भी वैसा कर दिखाओ तो ही मैं तुम्हारा प्रस्ताव स्वीकार करूँगी।'

मदान्ध भस्मासुर को रँगीले सपने छाये हुए थे। वह तत्काल नाचने लगा। उसमें इतना भाव विभोर हो गया कि अपने ही सिर पर हाथ पड़ गया। उसी प्रमाद से जलकर भस्म हो गया।

इसका भाई शतायुध जिस दिन से आया, उसी दिन से पीड़ितों के सिर पर हाथ रखने और उन्हें अच्छा करने का उपक्रम आरम्भ कर दिया। अच्छे होने वालों ने अपने कष्ट-हरण की कथा अनेकों से कही। सुनकर दूर-दूर से पीड़ित उसके पास आने और अच्छे होकर लौटने लगे।

दिन-दिन सहायता चाहने वालों की भीड़ बढ़ती गई। लाभ उठाने वालों की श्रद्धा, संद्भावना उसे मिलती गई और उसका तप और शिवजी का वरदान सार्थक हुआ। सद्बुद्धि की ही यह करामात थी कि शतायुध अक्षय कीर्ति अर्जित करने वाला और सच्चे अर्थों में समर्थ समझा गया।

दुर्बुद्धि ने भस्मासुर का तप, शिवजी का वरदान निरर्थक किया। स्वयं नष्ट हुआ और दुरात्माओं की श्रेणी में गिना गया।

तप और वरदान की उपयोगिता तभी है, जब सद्बुद्धि का साथ में समावेश हो। आत्म परिष्कार एवं पात्रता के अभाव में सदा मस्तिष्क पर दुर्बुद्धि छायी रहती है एवं अनायास ही कोई सुयोग आ टपके तो वही माँग बैठती है जो अन्ततः आत्मघाती सिद्ध होता है।

विकारी जीवन का विनाश अवश्यम्भावी

पौराणिक कथा है कि ब्रह्माण्ड के सृजन का कार्य पूर्ण करने के बाद से ही लोकपिता ब्रह्मा देख रहे थे कि यह सृष्टि निरन्तर बढ़ती जा रही है। प्रति दिन नये-नये लोक-लोकान्तर, चेतन और जड़ पदार्थ निर्मित होते जाते हैं, किन्तु विनाश किसी का नहीं होता। कालान्तर में इसका क्या परिणाम होगा इसकी कल्पना उनके मन को मथने लगी। सोच-सोच कर वे थक गये, पर कोई समाधान न मिला। इस खोज में उनका क्रोध भभक उठा और उसकी ज्वाला से लोक-लोकान्तर दग्ध होने लगे, सर्वनाश की आशंका उपस्थित हो गई।

ऐसी अवस्था में देवों का एक दल लोकपिता के निकट पहुँचा और समस्त चराचर जगत् की ओर से करुणा-भिक्षा माँगते हुए उन्होंने कहा—"विधाता ! जिस प्रजा की सृष्टि आपने इतने श्रम से की, वही अब आपके क्रोधानल में भस्म होती जा रही है। कृपया इस क्रोध को वश में कीजिये।"

प्रार्थना से प्रभावित होकर प्रजापति ने क्रोध को अपने में लीन कर लिया और मुहूर्तभर ध्यान योग साधकर सृष्टि के लिये प्रवृत्ति-धर्म की तथा मोक्ष के लिये निवृत्ति-धर्म की कल्पना की।

इधर क्रोधाग्नि की ज्वालाएँ विलीन हुईं और उधर एक नारी का आविर्भाव हुआ। बड़ी रहस्यमय थी वह ललना। लालिमा मिश्रित कृष्णकांति में उसके अंग-अंग दमक रहे थे। मुख, जिह्व और नेत्र अंगारे के समान लाल थे। स्वर्ण-कुण्डलों और विविध रत्नाभूषणों से अलंकृत होने पर भी वह अत्यन्त क्रूर दिखाई देती थी। उसके प्रकट होते ही प्रजापति ब्रह्मा ने उसे सम्बोधित करके आदेश दिया—"मेरी संहार-बुद्धि से तुम्हारा जन्म हुआ है अतएव मेरी आज्ञा से तुम इस जड़-चेतन सृष्टि का अब विनाश करना आरम्भ करो।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ये शब्द सुनते ही ललना के नेत्रों से अश्रु की अविरल धारा प्रवाहित होने लगी। काँपते हुए स्वर से उसने निवेदन किया—"प्रजापते, मुझ अभागिनी की सृष्टि से क्या आपका यही प्रयोजन है ? जानते-समझते हुए मैं यह संहार रूप क्रूर कर्म कैसे कर सकूँगी ? प्राण-मोह से विलाप करते हुए प्राणियों के प्राण मैं कैसे हर सकूँगी ? फिर, जिनके प्रिय बन्धु-मित्रों के प्राण मैं हरूँगी, उनके उष्ण निःश्वास, उनके दग्ध हृदय से निकले श्राप क्या मुझे जीने देंगे ? कृपया इस महान् धर्म-संकट में मुझे न डालिये।"

लोकपिता बोले—"परन्तु तुम्हारी उत्पत्ति तो इसी संहार-कार्य के लिए हुई है। जाओ, मेरे आदेश का पालन करो। इस सम्बन्ध में अब और तर्क-वितर्क करने की आवश्यकता नहीं है। वैसे भी तुम निमित्त मात्र ही हो। दुराचारी प्राणियों का नाश तो होना ही है।"

परन्तु ये अन्तिम शब्द मृत्यु-सुन्दरी को सांत्वना न दे सके। संहार करना उसे स्वीकार नहीं था। ब्रह्म लोक से विदा लेकर उसने तपस्या करने के उद्देश्य से धेनुकाश्रम की ओर प्रस्थान किया। वर्षों तक मृत्यु ने धेनुकाश्रम में उग्र तप किया। वर्षों की उस एकाग्र साधना से प्रसन्न हो प्रजापति प्रत्यक्ष प्रकट हुए। उन्होंने पूछा—"बेटी, किस निमित्त से तुम यह कठोर तपस्या कर रही हो ?"

मृत्यु ने कहा—"प्रजापते ! आपने भी देखा होगा कि समस्त प्राणी अपने-अपने नियत कार्य में लगे हुए हैं। कोई किसी का वचन और विचार द्वारा भी अहित नहीं करता। ऐसी अवस्था में मैं उनका विनाश करके महान् अधर्म करूँगी। उसी अधर्म से डरकर मैं यह तप कर रही हूँ। कृपया मुझे आश्रय दीजिये और इस संकट से बचाइये।"

लोकपिता कुछ क्षण दुविधा में पड़े सोचते रहे। फिर उन्होंने कहा—"जाओ, काम और क्रोध से विमुक्त रहकर जीवों का संहार करो।" उसी दिन से मृत्यु देवी लोकपिता की आज्ञा का पालन करती आ रही है।

वासना स्वभाव नहीं—विकार मात्र

राजकुमार युयुत्स सहित राजदरबार के अनेक श्रीसामन्तों ने भी श्रावणी पर्व में भाग लिया। महर्षि आंगिरस उस दिन प्रजा से हेमाद्रि संकल्प कराया करते थे। पिछले वर्ष भर किसी ने पाप और बुराइयाँ की होतीं, जब तक उसका प्रायश्चित्त नहीं करा लेते थे, वे नया यज्ञोपवीत किसी को भी नहीं प्रदान करते थे।

आज अनहोनी हो गई। एक वर्ष तक लगातार उच्चस्तरीय साधना और तपश्चर्या करने के कारण निषाद कुल में जन्मे बटुक कांदीवर को उन्होंने क्षत्रियत्व प्रदान कर राज्य की सेना में प्रवेश का अधिकार दे दिया, जबकि राजकुमार युयुत्स को उन्होंने असंयमी ठहराकर उससे एक वर्ष के लिये क्षत्रियत्व का अधिकार छीन लिया। उन्होंने बताया— "राजकुमार ने अनेक महिलाओं का शील भंग कर उन्हें व्यभिचारिणी बनाया है, उन्हें १ वर्ष तक नंगे पाँव, उघारे वदन राज्य की गायें चरानी चाहिये और दुग्ध कल्प करके शरीर शुद्ध करना चाहिये। जब तक वे यह प्रायश्चित्त नहीं कर लेते, उन्हें राजकुमार के सम्मानित सम्बोधन से भी वंचित रखा जायेगा। उन्हें केवल युयुत्स कहकर पुकारा जायेगा।"

काँटीवर को क्षत्रियत्व और अपने आपको पदच्युत होते देखकर युयुत्स का दम्भ उग्र हो उठा। उसने याचना की, "गुरुवर ! वासना मनुष्य का स्वभाव है। स्वाभाविक बातें अपराध नहीं गिनी जानी चाहिये। इस पर मनुष्य का अपना वश नहीं, इसलिये वासना व्यक्ति के लिये क्षम्य है।"

आंगिरस तत्त्वदर्शी थे और दूरदर्शी भी। उन्होंने कहा—"युयुत्स ! समाज और जातिगत स्वाभिमान से गिराने वाला कोई भी कर्म पाप ही गिना जाता है, फिर चाहे वह किसी की सहमति से ही क्यों न हो ? जिन कुमारियों को तुमने भ्रष्ट किया है, वे एक दिन सुहागिनें बनेंगी। क्या उनके पतियों के साथ यह अपराध न होगा ? तुम्हारी यह स्वाभाविकता क्या समाज के असंयम और पथ भ्रष्टता का कारण नहीं बनी ?"

महर्षि आंगिरस अन्त तक दृढ़ रहे। युयुत्स पराजित होकर लौटे। उनके कन्धे पर पड़ा यज्ञोपवीत व्यभिचार के अपराध में छीन लिया गया।

चोट खाया सर्प जिस तरह फुंकार मारकर आक्रमण करता है, युयुत्स का हृदय भी ऐसे ही प्रतिशोध में जलने लगा। वह महर्षि को नीचा दिखाने के उपक्रम खोजने लगा।

राजधानी में सांस्कृतिक समारोह आयोजित किया गया। उसका संचालन किसकी इच्छा से हो रहा है, यह किसी ने नहीं जाना। अच्छे-अच्छे सम्भ्रान्त व्यक्ति आमन्त्रित किये गये। महर्षि आंगिरस प्रधान अतिथि के रूप में आमन्त्रित किये गये थे।

मरकत-मणियों से जगमगाते राजमहल की आभा उस समय और भी द्विगुणित हो गई, जब श्रीसामन्तों के मध्य प्रवेश किया नृत्यांगना कांचीबाला ने। झीने रेशमी वस्त्रों पर षोडस श्रृंगार देखते ही बनता था। काम-रूप थी कांचीबाला उसे देखते ही राजाओं के मन स्खलित हो-हो जाते थे।

नृत्य प्रारम्भ हुआ, पाँव थिरकने लगे, साज गति देने लगा। ताल के साथ नृत्य करती कांचीबाला ने अपनी चूनर उतार फेंकी। दर्शकों की साँसें गर्म हुईं, पर फिर नृत्य में अटक गईं। अन्ततः उसने अपने सम्पूर्ण वस्त्राभूषण उतार फेंके। साज बन्द हो गया, दर्शक न जाने कहाँ चले गये ? अकेले आंगिरस और काँचीबाला। एक कामुक दृष्टि डाली नृत्यांगना ने महर्षि पर और प्रश्न किया—"नारी अभिसार क्यों करती है ऋषिवर ! ?" महर्षि बोले—"पुरुष की आत्म-दर्शन की जिज्ञासा को उद्दीप्त करने के लिये भद्रे ! आज तुम्हारे सौन्दर्य में सचमुच अलौकिक बाल रूप है।" कांचीबाला आई थी, भ्रष्ट करने, पर स्वयं गलकर पानी हो गई। यह सब युयुत्स का प्रबन्ध था। पर उससे महर्षि का क्या बिगड़ता ? युयुत्स को अन्ततः तप और प्रायश्चित के लिये जाना ही पड़ा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रेरक लघु कथाएँ

शरीर और आत्मा

शरीर ने कहा—"मैं कितना सुन्दर हूँ, कितना आकर्षक, कितना बलवान।"

आत्मा बोली—"तुम अपनी अपेक्षा मुझे अधिक सुन्दर, अधिक आकर्षक और अधिक बलवान बना दो। तुम्हारी ये विशेषताएँ तो क्षणिक हैं। ये ही गुण मेरे पास आकर शाश्वत हो जायेंगे।" किन्तु शरीर की समझ में कुछ न आया। वह अपनी इन रंगीनियों पर खुश होता और झूठा अभिमान करता रहा। कुछ दिन पश्चात् जीवनकाल समाप्त हुआ, शरीर से आत्मा के विच्छेद का समय आ पहुँचा। अब शरीर रोगी, दुर्बल तथा कृश हो गया था। चलते समय आत्मा बोली—"तुमने मुझे कुरूप तथा निर्बल रहने दिया। वह सुन्दरता तथा शक्ति दी होती, तो मेरा स्वरूप निखर गया होता और वे विशेषताएँ भी बनी रहतीं। अब तुम्हारे साथ ही वे समस्त विशेषताएँ समाप्त हो गयीं। अच्छा जाती हूँ।"

शरीर अपने अज्ञान पर पछताता और सिर धुनता इस संसार से विदा हो गया। आत्मा भी किसी ऐसे शरीर की तलाश में चल पड़ी, जो उसका विकास और परिमार्जन कर परम तत्व में लय होने योग्य बना दे।

संकीर्णता हटाओ

कुएँ ने शिकायत करते हुए समुद्र से कहा—"पिता सभी नदी-नाले आपके घर में जगह पाते हैं। आप प्रेमपूर्वक उन्हें अपने घर में स्थान देते हैं, मुझसे ही पक्षपात क्यों ? पिता के लिए तो सभी बेटे-बेटी एक-से होते हैं।" समुद्र ने उत्तर दिया—"वत्स ! अपने चारों ओर दीवार बनाकर बैठने पर ही तुम्हें अपने जन्मसिद्ध अधिकार से वंचित रहना पड़ा है। असीम और, अनन्त प्यार पाने के लिए स्वयं को भी असीम बनना पड़ता है। अपनी सीमाओं का त्याग करके उन्मुक्त रूप से अपने आपको व्यक्त करो, अपनी दीवारों को हटा दो। धरती को हरी-भरी, तृप्त करती हुई तुम्हारी धारा जब बन्धनमुक्त हो उठेगी, तब तुम सहज ही मुझमें आ समाओगे।"

विवेक बनाम कर्म

एक दिन कर्म और भावना दोनों एकत्रित हुए। बातचीत में विवाद चल पड़ा कि दोनों में कौन बड़ा है ?

दोनों ही अपनी-अपनी बड़ाई बखानने लगे। कोई छोटा बनने को तैयार न हुआ। जब विवाद बढ़ा तो निर्णय कराने उन्हें ब्रह्माजी के पास जाना पड़ा।

ब्रह्माजी ने दोनों की बात सुनी और मुसकराये। उन्होंने कहा—"परीक्षा से ही वास्तविकता का पता चलेगा। तुम दोनों आकाश छूने का प्रयत्न करो। जो पहले आकाश छू सकेगा वही बड़ा माना जाएगा।"

भावना ने उछाल लगाई तो आकाश तक जा पहुँची। छूने में भी सफल हो गई, पर आकाश की ऊँचाई इतनी अधिक थी कि बेचारी को अधर में ही लटकना पड़ा, पैर धरती से बहुत ऊपर थे।

कर्म प्रयत्न में जुटा। उसने आकाश में पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ बनानी शुरू कर दीं। कई दिनों वह लगातार लगा भी रहा, पर उत्साह न होने से वह सब थकाने वाला झंझट मात्र दिखने लगा। उदासी ने उसे आ घेरा और अपने औजार पटककर वह सुस्ताने सरोवर के तट पर चला गया।

ब्रह्माजी पता लगाने गये तो देखा कि भावना आकाश में अधर लटकी है। कर्म को देखा तो वह पेड़ की छाया में औंधे मुँह पड़ा कराह रहा था। थकान और झुँझलाहट से उसकी नस-नस दुःख रही थी।

प्रजापति ने दोनों को बुलाकार कहा—"तुम दोनों ही अपूर्ण हो। बड़प्पन तभी बनता है, जब दोनों मिलते हो। जाओ लड़ना मत, दोनों मिलजुल साथ-साथ रहना, तभी तुम्हारी उपयोगिता अक्षुण्ण रह सकेगी।"

परिवर्तन में विवेक

"आप तो सदैव एक ही स्वर में गाती हैं"—कौवे ने कोयल से उलाहना देते हुए कहा—"कभी-कभी दूसरे राग भी बदलकर सुनाया करें।"

कोयल हँसी और बोली—"जानती हूँ लोगों को परिवर्तनशील होना चाहिए। कागभुशुण्डजी ! रूढ़ियों और अन्ध-परम्पराओं का बदल जाना तो समझ में आता है, पर जीवन के यथार्थ सिद्धान्त बदलने की बात तो आपके मुँह से ही सुनी है।"

कागज और कलम

कागज पर कुछ लिखने के लिए कलम पहुँची तो उसने अकड़कर कहा—"मेरे गोरे-चिट्ठे शरीर पर तुझ काली-कलूटी का स्पर्श क्या शोभा देगा। दूर हट, तेरे साथ अपना गौरव मैं भी क्यों घटाऊँ ?"

स्याही बिना कुछ कहे वापस चली गई। कागज सफेद तो बना रहा, पर मिलन के सौभाग्य से उसे वंचित ही रहना पड़ा। सफेदी उसकी बनी रही, पर पत्र के रूप में परिणत होने का अवसर सदा के लिए हाथ से चला गया।

अड़ंगा मत लगाओ

प्रातःकाल होता तो तालाब अपने पास बह रहे झरने को डराकर कहता—"बन्धु ! इधर आने की भूल मत करना अन्यथा मुझमें डूबकर मर जाओगे।"

बकवास करने की अपेक्षा काम करने में विश्वास रखने वाला झरना कुछ उत्तर देने की अपेक्षा थोड़ा मुसकरा देता और अपनी राह पकड़ता।

तालाब जहाँ था, वहीं सड़ता रहा। पर झरना किनारा काटता हुआ एक दिन तालाब के समीप तक जा पहुँचा। उस दिन रात में भीषण वर्षा हुई और वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

छोटी-सी सीमा भी टूट गई। तालाब झरने के पेट में समा गया। झरना और भी तीव्र गति से बहने लगा।

तालाब झरने में डूबने लगा, तब किनारे खड़े शाल्मलि वृक्ष ने ठिठोली की—"बन्धु ! जो स्वयं कुछ नहीं कर सकते और दूसरों को भी कुछ नहीं करते देख सकते, उनकी अन्त में यही गति होती है।"

जीवन-शक्ति

नीचे झाँककर देखा तो जड़ों के पास खाद का ढेर लगा देख गुलाब का फूल बहुत झल्लाया और गुस्से में बोला—"ओ गन्दगी के ढेर ! तुझे और कहीं जगह नहीं मिली जो तू यहीं मेरी शोभा नष्ट करने चला आया ?"

ढेर विचारा, कुछ नहीं बोला—गुलाब गालियाँ बकता रहा और वह चुपचाप बैठा सुनता रहा।

सायंकाल माली पानी देने आया तो गुलाब ने उससे भी वही शिकायत की। माली हँसा और बोला—"गुलाब ! नाराज मत हो, यह गन्दगी का ढेर ही तो तुम्हारी जीवन शक्ति है, यह न रहे तो तुम्हें पोषण कहाँ से मिले ?"

पवमान की पराजय

मरुतदेव क्रुद्ध होकर बोले—"ओसकणो ! तुम्हें हमारा प्रतिरोध करते भय नहीं लगा, नष्ट करके रख देंगे तुम्हें, नहीं तो रास्ता छोड़कर अलग हो जाओ।"

ओसकण हाथ जोड़कर बोले—"महापुरुष जब तक आप हैं, तब तक हम नष्ट कैसे हो सकते हैं ? हमारा तो जन्म ही आपसे हुआ।" इतना कहने पर भी मरुत का क्रोध न गया।

बात कुछ भी नहीं थी, अहंकार मात्र था, सो ऐसे शान्त कहाँ होता ? मरुतदेव चले, वेग से आक्रमण किया। ओसकण झरकर भूमि में जा गिरे, पर वायुदेव की अन्तःशीलता को छूकर दूर्वा दलों में अन्य ओसकण झलकने लगे। वायु ने पीछे मुड़कर देखा, तो उसे अपनी पराजय पर लज्जा आई। उमड़-घुमड़कर सब तरफ से प्रयत्न किया उसने, पर ओसकण कम न हुए।

आकाश ने यह देखकर कहा—"व्यर्थ क्यों खीझते हो पवमान ! बलिदान की शक्ति ही कुछ ऐसी है कि एक नष्ट होता है, तो पीछे एक हजार तैयार हो जाते हैं। ऐसा न होता तो संसार में नेकी, धर्म और भलाई जिन्दा कैसे रह पाते ?"

मरुत ने हार मान ली और तबसे ओस कणों को नीचा दिखाना उसने बन्द कर दिया।

स्वार्थपरता एक अपराध

एक चींटी कहीं से गुड़ का ढेला पा गई। उसे उसने अपनी कोठरी में बन्द कर लिया। प्रतिदिन चुपचाप थोड़ा-सा गुड़ खा लेती, दुर्ग में और भी जो कर्मचारी थे, उनमें से एक को भी रत्ती भर टुकड़ा न देती।

रानी चींटी को एक दिन पता चल गया, उसने सब चींटियों को आदेश दिया। वे घुस पड़ीं और उस चींटी का सारा गुड़ छीनकर न केवल खा गईं वरन् उसे चोरी के अपराध में बाहर निकाल दिया। चींटी अपनी स्वार्थपरता पर दुःख करती, जिन्दगी भर वैसे ही अकेले मारी-मारी फिरी जैसे स्वार्थी मनुष्य जीवनभर अकेलेपन का कष्ट झेलता है। उसका कोई हमदर्द नहीं होता।

विस्तार ही नहीं, गहराई भी

पास के कुएँ को देखकर तालाब को अपने विस्तार पर बड़ा गर्व हो गया। एक दिन डींग मारते हुए बोला—"इस जैसे एक-दो नहीं, बीसियों कुएँ मुझमें समाकर अपना अस्तित्व खो सकते हैं।"

"भाई ! केवल विस्तार ही पर्याप्त नहीं होता, उसमें गहराई भी तो होनी चाहिए।" कुएँ ने संक्षिप्त अपना उत्तर दे दिया।

लज्जित तालाब को मुँह छिपाने की जगह न रही।

माँगो मत

मिट्टी का एक कण, पानी की एक बूँद, हवा की एक लहर, अग्नि की एक चिनगारी और आकाश के एक स्फूलिंग—पाँचों पहाड़ की चोटी पर खड़े होकर भगवान सूर्य से प्रार्थना करने लगे—"हे सविता देव ! हमें भी अपने समान प्रकाशमान और ऐश्वर्यशाली बनाओ।"

सूर्य से एक किरण चमकी और बोली—"भाइयो ! भास्कर के समान तेजस्वी बनना है, तो उठो किसी से कुछ माँगो मत, अपना जो कुछ है, वह प्राणि मात्र की सेवा में उत्सर्ग करना प्रारम्भ करो।"

पुरुषार्थ करो

वृक्ष ने पथिक से कहा—"तुम जितनी बार पत्थर मारोगे, उतनी ही बार मैं उपहार में फल दूँगा। यह तो मेरा व्रत है। पत्थर का उत्तर पत्थर से देना मुझे नहीं आता, भले ही मुझे क्षत-विक्षत होना पड़े।" पथिक ने कुढ़कर कहा—"तुम यों फूलो-फलो और मैं भूखा फिरूँ, क्या यह तुम्हारा और तुम्हारे भगवान का अन्याय नहीं।"

वृक्ष ने हँसकर कहा—"ईर्ष्या क्यों करते हो पथिक ! मेरे पतझड़ के कष्टों को देखते तो पता चलता कि यह फल मैंने कितनी तपश्चर्या से प्राप्त किये हैं ? तुम भी वैसा पुरुषार्थ कर देखो।"

भय छोड़ो

स्वाति नक्षत्र था। वारिद जल-बिन्दु तेजी से चला आ रहा था।

वृक्ष की हरित नवल कोपल ने रोककर पूछा, 'प्रिय किधर चले ?"

"भद्रे ! जलनिधि पर सूर्य की कोप-दृष्टि हुई है, वह उसे सुखाएँ डाल रहा है। जलधि की सहायता करने जा रहा हूँ।"

"छोड़ो भी व्यर्थ की चिन्ता। खुद को मिटाकर भी कोई किसी की सहायता करता है। चार दिन की जिन्दगी है, कर लो आनन्दोपभोग। कहाँ मिलेगी कोमल शय्या ?"

जल-बिन्दु ने एक न सुनी। तेजी से लुढ़क पड़ा सागर की ओर। नीचे तैर रही थी सीप। उसने जल-बिन्दु

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को आँचल में समेट लिया। जल-बिन्दु न रहकर हो गया 'मोती'। सागर की लहरों से एक धीमी-सी ध्वनि निकली—"निज अस्तित्व की चिन्ता छोड़कर समाज के कल्याण के लिए जो अग्रसर होते हैं, वे बन जाते हैं जनमानस के मोती।"

शिकायत करना छोड़ो

देव, दानव, मनुष्य, ऋषि-मुनि, गन्धर्व, किन्नर तथा यक्ष सभी परेशान थे। आकाश हैरान हुआ खड़ा था, पृथ्वी स्तब्ध। सम्पूर्ण वनस्पतियाँ उसके अभाव में जीवन हीन-सी पड़ी थीं, किन्तु सूर्यदेव थे कि निकलने का नाम ही नहीं ले रहे थे। उन्होंने साफ मना कर दिया था उगने से। आखिर हारकर स्वयं प्राची उनके पास पहुँची। अनुनय भरे स्वर में बोली—"चलो प्रिय ! तुम्हारी अनुपस्थिति में सब चेतनाहीन से हो रहे हैं। बड़ी उत्कट प्रतीक्षा हो रही है तुम्हारी।"

लेकिन सूर्यदेव बहुत क्रुद्ध थे। शिकायत भरे स्वर में बोले—"मैं नहीं जानता था कि यह संसार इतना कृतघ्न है। अनादिकाल से जो मेरी पूजा करता चला आ रहा था देवता कह-कहकर, वही मानव अब कोरी बुद्धि के विकसित हो जाने पर मुझे केवल आग का गोला कहता है। ऐसे संसार के लिए अब मैं एक किरण तक नहीं दूँगा।"

प्राची ने सुना और तनिक गाम्भीर्य में डूब गई। फिर सूरज से बोली—"तुम इतना समझते हुए भी अनजान बन गये, प्रिय ! बुद्धि का तो काम ही है पत्थर फेंकना और मन का काम है, उन्हें झेलना। मन यदि समुद्र जैसा बन जाए तो उसमें ऐसे-ऐसे जाने कितने पत्थर समा जाएँगे। हाँ ! और उसे कच्चा घड़ा बना लिया तो एक ही चोट में वह टूटकर बिखकर जाएगा। अब तुम जैसा उचित समझो करो, पर मन को सीमित करके नहीं।"

सूर्यदेव ने प्राची को नमन किया और अपने रथ पर आरूढ़ हो गये। तम से आच्छादित धरा प्रखर आलोक से दीप्त हो उठी।

जीवन यात्रा

बूँद समुद्र के अथाह जल में घुलने लगी तो उसने कहा—"अपने अस्तित्व को समाप्त करना मेरे लिए संभव न होगा। मैं अपनी सत्ता खोना नहीं चाहती।"

समुद्र ने उसे समझाया "तुम्हारी जैसी असंख्य बूँदों का समन्वय मात्र ही तो मैं हूँ। तुम अपने भाई-बहिनों के साथ ही तो घुल-मिल रही हो। उसमें तुम्हारी सत्ता कम कहाँ हुई ? वह तो और अधिक बढ़ गई।"

बूँद को सन्तोष न हुआ वह अपनी पृथक् सत्ता बनाये रहने का भी आग्रह करती रही।

समुद्र ने सूर्य किरणों के सहारे उसे भाप बनाकर बादलों में पहुँचा दिया और बरसकर बूँद फिर बन गई। बहती हुई फिर समुद्र के दरवाजे तक पहुँची तो उसने हँसते हुए कहा—"बच्ची ! पृथक् सत्ता बनाये रहकर भी तुम अपने स्वतन्त्र अस्तित्व की रक्षा कहाँ कर सकीं ? अपने उद्गम को समझो, तुम समष्टि से उत्पन्न हुई थीं और उसी की गोद में ही तुम्हें चैन मिलेगा।"

मरकर भी सुगन्ध फैलाऊँगा

एक दिन पत्थर फूल पर बहुत नाराज हुआ। उसने कहा—"जानता नहीं, मेरी शक्ति। तुझे जरा-सी देर में पीस कर रख दूँगा।"

फूल मुसकराया और बोला—"तब तो आप मेरी सुगन्धि को दूर-दूर कर फैला देने का उपकार ही करेंगे, महोदय ! इसमें मुझे न खिन्न होना है और न उद्विग्न।"

काला कौआ

काला कौआ रोज जल्दी से छत की मुडेर पर जा बैठता और काँव-काँव करता रहता।

छोटे बालक ने माता से पूछा—"यह काला क्यों है और इतनी जल्दी घर-घर क्या कहने जाया करता है ?"

माँ ने कहा—"भक्ष-अभक्ष का विचार किए बिना यह पक्षी सब कुछ खाता है। इससे इसे काला बनना पड़ा। जो बिना उचित-अनुचित विचारे स्वार्थ में सब कुछ करते रहते हैं, उनका मुँह भी काला होगा यही शिक्षा देने कौआ घर-घर जाया करता है।"

आशा और धैर्य

फूलों से लदे गुलाब के पौधे को चिन्तामग्न देख पास में उगे आम के झुण्ड ने इसका कारण पूछा।

गुलाब ने कहा, "आज तो मैं फूलों से लदा हूँ, पर यह पतझड़ दूर नहीं जब मैं पत्तों से भी झड़ जाऊँगा और फिर मेरी कँटीली डालियों को कोई आँख उठाकर भी न देखेगा। क्या यह कम चिन्ता की बात है ?"

आम ने कहा—"मित्र ! उस आज की सुषमा और अगले पतझड़ के बाद फिर आने वाली अपनी सुन्दरता का विचार क्यों नहीं करते ? मुझे देखो न, अभी फल-फूल में लदने में कई वर्ष लगेंगे, पर उसकी आशा और कल्पना करने में निरन्तर प्रमुदित बना रहता हूँ।"

यह ध्यान पहले ही रहे तो

आषाढ़ आया। बादल छा गये। एक दिन वर्षा प्रारम्भ हुई। कई दिन तक झड़ी लगी रही। धरती जलमग्न हो गई तब बादल साफ हुए।

भरपूर जल पीकर धरती की गोद से अनेक तरह के पौधे गृहस्थ की कामनाओं की तरह फूट पड़े। एक स्थान पर हजारों पौधे खड़े अपनी हरीतिमा से सबको मुग्ध करने लगे। अनेक जाति के अनेक पौधे—कहीं आम, नीम, इमली, पाकर और जामुन, तो कहीं केले, महुये और शहतूत के भी पेड़ उनमें थे। विविधता में ही हरियाली का एकपन बड़ा सुन्दर लग रहा था।

पर दूसरों को सुन्दर लगने वाले वह पौधे अपने आप में ही लड़ पड़े, कोई कहता कि मैं अधिक सुन्दर हूँ, कोई कहता कि मेरी छाया ज्यादा घनी है। शाम तक विवाद तेज ही होता गया। हाथापाई की नौबत आ गई, रात उन्होंने अशान्ति में गुजारी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

छह महीने ऐसे ही ईर्ष्या-द्वेष में बीते और उधर फिर ज्येष्ठ तपाने लगा। सूर्य भगवान की प्रचण्डता में सारे पौधे सूखकर पीले पड़ गये। अकाल निकट आ गया। साथियों से बिछुड़ने की घड़ी आई, तब पौधों को पता चला कि इतनी उम्र व्यर्थ ही लड़ने-झगड़ने में गुजारी। पौधे मर तो गये, पर एक संकल्प लेकर कि अगला जन्म होगा तो वे इस तरह परस्पर लड़ेंगे-झगड़ेंगे नहीं।

तब यह पौधे उगते हैं, पर परस्पर प्रेमपूर्वक बढ़ते और जीवनभर हँसते-खेलते, सौरभ, फूल और फल बिखेरते रहते हैं। अब उनका अभिनिन्दित शाप मनुष्य पर उतर आया है। वह जीवनभर लड़ता-झगड़ता है और मरते समय पछताता हुआ जाता है।

आकाश के तारे

एक दिन, दो दिन और लगातार कई दिन तक भी रात-रात भर तारों की गिनती करते देखकर आखिर एक दिन माँ ने अपने बच्चे से पूछ ही लिया—"बेटे ! तुम रात भर आकाश की ओर मुँह किये क्या गिना करते हो ?"

"आकाश के सितारे, माँ ! बहुत प्रयत्न करता हूँ, किन्तु आकाश इतना विराट् और नक्षत्र इतने अधिक हैं कि वे गिनने में नहीं आते।"

माँ ने थपकी दी और बोली—"बेटा ! देर हुई सो-जा, यह सितारे गिनने के लिए नहीं, वरन् इसलिए बनाये गये हैं कि लोग उन्हें देखकर स्वयं भी प्रकाशपूर्ण जीवन जीना सीखें।"

सबकी भलाई में अपनी भलाई

मस्तिष्क ने कहा—"उदर महोदय ! आप भी मूर्ख ही रहे, अरे ! यह जो अन्न तुम्हारे पास पहुँचा है, उसे रस और रक्त बनाकर दूसरे अंगों को बाँट देने से खाली हो जाओगे ?" पेट बोला—"महाशय ऐसा न करूँ तो इस शरीर के साथ ही मेरा अस्तित्व नष्ट न हो जाए। नित्य नया पाने का सौभाग्य भी तो हमें देते रहने से ही मिलता है।"

शक्ति की शोभा

पेड़ की एक डाल पर बाज बैठा था दूसरे पर एक तोता। तोते को देखकर बाज बोला—"अरे तोते ! देखता नहीं मैं तेरा काल सामने खड़ा हूँ, चाहूँ तो एक क्षण में तेरे टुकड़े-टुकड़े कर दूँ, फिर भी तू मुझसे न डरता है, न विनती करता है।"

तोते ने कहा—"आप ठीक कहते हैं बन्धु, पर शक्ति की शोभा किसी को मारने में नहीं, रक्षा करने में होती है। बलवान होकर जो निर्बल की रक्षा न कर सके, वह भी कोई सामर्थ्यवान है ?"

बाह्य शृंगार किस काम का

किसी ने प्रशंसा न की तो तितली झींगुर से बोली—"महोदय ! जानते नहीं मैं अद्वितीय सुन्दरी हूँ।" दार्शनिक मुद्रा में झींगुर ने उत्तर दिया—"सौभाग्य आपका, किन्तु देवीजी ! जब तक अन्तःकरण का सौन्दर्य जाग्रत न हो बाह्य शृंगार किस काम का ?"

सौन्दर्य की रक्षा

दो किरणें चलीं। एक जा पड़ी कीचड़ में, दूसरी एक पुष्प में। पुष्प वाली किरण ने दूसरी किरण से कहा—"देखो ! जरा दूर रहना, छूकर मुझे भी अपवित्र मत कर देना।"

ऐसा न कहो बहिन दूसरी किरण बोली—"हम इस कीचड़ को सुखाएँ और साफ़ न करें तो इस फूल की रक्षा कैसे हो ?" दूसरी किरण अपने दम्भ पर बड़ी लज्जित हुई और शर्म के मारे गड़कर रह गई।

गहरे पानी पैठ

समुद्री यात्रा से लौटे हुए एक यात्री ने एक गोताखोर से पूछा—"बन्धु ! मैं तो हजार मील यात्रा कर आया, पर मुझे तो कहीं एक भी मोती न मिला, तुम तो एक दिन में ही ढेरों मोती ढूँढ़ लेते हो ?"

गोताखोर ने डुबकी लगाने से पूर्व कहा—"भाई ! मैं अपने जीवन को संकट में डालकर गहरे में उतरता भी तो हूँ, तुम्हारी तरह चलता ही नहीं रहता।"

नई शक्ति

डूबते हुए सूरज से एक व्यक्ति प्रार्थना कर रहा था—"भगवन् ! हमें शक्ति दो ताकि हम संसार की कुछ सेवा कर सकें।" पास से एक यात्री गुजर रहा था, हँसते हुए पूछा—"भाई सूर्य तो स्वयं ही डूब रहा है, आप उससे शक्ति माँगते हैं ?" भक्त ने उत्तर दिया—"डूब नहीं रहे मित्र, नई शक्ति लेकर लौटने की तैयारी कर रहे हैं।"

काम बन्द न होगा

बिजली तड़पी और कड़ककर बोली—"ओ किसान ! यदि मैं तुझ पर टूट पड़ूँ तब तू क्या करेगा ?"

"मर जाऊँगा और फिर जन्म लेकर जहाँ से काम छूट जाएगा, पुनः जुट जाऊँगा ताकि मेरा काम अधूरा न पड़ा रहे।"

भय छोड़, हवा में उड़

घोंसले में बैठे नन्हें से परिन्दे ने पर फड़फड़ाये और सहमकर जहाँ था, चिपककर बैठ गया। बच्चे को भयभीत देख माँ ने उसे घोंसले से धकेलते हुए कहा—"जब तक तू भय नहीं छोड़ेगा, तुझे उड़ना कहाँ से आयेगा ?"

दूसरे क्षण परिन्दा हवा में उड़ रहा था।

रक्षक भगवान

राँका कुम्हार ने बर्तन पकाने की भट्टी तैयार की तथा पकाने के लिए वर्तन उसमें रख दिये। उनमें से एक बर्तन में बिल्ली के बच्चे भी थे। राँका को इसका पता नहीं था। उसने भट्टी में आग दी। बर्तन पकने पर भट्टी ठण्डी पड़ी तब बिल्ली आकर चक्कर काटने लगी। राँका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org

www.vicharkrantibooks.org

सब बात समझकर बड़ा दुःखी हुआ और भगवान से प्रार्थना करता हुआ बैठा रहा। दूसरे दिन पके बर्तन भट्टी से निकालने लगा तो देखा कि एक बर्तन कच्चा रह गया है, उसमें से म्याऊँ-म्याऊँ की आवाज निकल रही। यह देखकर वह निहाल हो गया।

मुसकराते रहो

"बसन्त इतना न हँसो, जानते नहीं मैं तुम्हारा पतझड़ तुम्हारे आगे खड़ा हूँ।"

"जानता हूँ पतझड़" बसन्त बोला—"तुम मेरा नाश कर दोगे, पर तुम यह नहीं जानते कि दुबारा फिर आऊँगा, तब मेरा स्वागत नई कोंपलें, नये पल्लव, नये फूल कर रहे होंगे और तब मैं और भी वेग से संसार का सौन्दर्य बढ़ा रहा होऊँगा।"

प्रतिशोध की भयंकरता

प्रतिशोध ने डाँटते हुए धैर्य से कहा—"बन्धु ! आप जैसे कायर व्यक्ति के साथ रहने में मेरी शान घटती है, आप मेरे साथ न रहें, तो ही अच्छा।"

धैर्य ने साथ छोड़ दिया, तभी से एकाकी प्रतिशोध भयंकर काण्ड कराता हुआ संसार में विचरण कर रहा है।

अनुकरण

टिमटिमाते दीपक को देखकर सूरज बोला—"नन्हें बच्चे अन्धकार की शक्ति तूने देखी नहीं, अजगर है वह, निगल जाएगा तुझे, चुपचाप बैठ, जीवन नष्ट मत कर।"

दीपक बोला—"तात् ! निरन्तर चलते रहने का व्रत आपने नहीं तोड़ा, तो मैं ही उससे विमुख क्यों होऊँ ?"

अपना व्रत क्यों तोड़ूँ ?

राहगीर ने पत्थर मारा, आम के वृक्ष से कई पके आम गिरे। राहगीर ने उठाए, खाता हुआ वहाँ से चल दिया।

यह दृश्य देख रहे आसमान ने पूछा—"वृक्ष ! मनुष्य प्रतिदिन आते हैं, तुम्हें पत्थर मारते हैं, फिर भी तुम इन्हें फल क्यों देते हो ?" वृक्ष हँसा और बोला—"भाई ! मनुष्य अपने लक्ष्य से भ्रष्ट हो जाए, तो क्या हमें भी वैसा ही पागलपन करना चाहिए।"

मीठी बानी बोलिये

एक लड़की ने पूछा—"पिताजी ! कौआ और कोयल दोनों काले हैं, पर लोग कौवे को मारते और कोयल को प्यार करते हैं, यह क्यों ?" बालिका पर एक करुण दृष्टि डालकर पिता ने उत्तर दिया—"कोयल सबको प्यार करती है, इसलिए मीठा बोलती है। वाणी और भावनाओं की मधुरता के कारण ही वह सर्वप्रिय बन गई है और कौआ तो अपने स्वार्थ और धूर्तता के कारण ही उस आदर से वंचित है।"

दोनों से बड़ा

एक नास्तिक राजा एक साधु की बड़ाई सुनकर उसके पास गया। साधु ने उसकी ओर ध्यान न दिया और अपने कुत्ते पर हाथ फेरता रहा। राजा ने क्रोध में आकर कहा—"तू बड़ा है या तेरा कुत्ता ?" साधु ने उत्तर दिया—"यह हम तुम दोनों से बड़ा है, जो अपने एक टुकड़ा देने वाले मालिक के दरवाजे पर पड़ा रहता है और एक तुम और हम हैं जो भगवान द्वारा सभी प्रकार का आनन्द मिलने पर भी उसका नाम तक नहीं लेते।"

शक्ति का केन्द्रीकरण

नदी में तेज बाढ़ आई। भयंकर शब्द करती हुई चली गई, पीछे उसका कोई भी चिह्न शेष न रहा।

फिर वर्षा ऋतु प्रारम्भ हुई। एक गड्ढे पर बूँदें ध्यान लगाकर गिरने लगीं। हर बूँद के साथ मिट्टी का एक कण टूटकर अलग हो जाता। बरसात समाप्त हुई, तब वह गड्ढा एक विशाल तालाब बन चुका था।

जहाँ शक्ति का केन्द्रीकरण होता है, जहाँ मिल-जुलकर सम्पन्न किये जाने वाले अनवरत् प्रयत्न किए जाते हैं, वहीं ऐसी उल्लेखनीय सफलता के दर्शन होते हैं।

धूप और छाँव

धूप और छाँव का विवाद हल न हुआ तो दोनों विधाता के पास एहुँची और बोली—"महाराज ! पृथ्वी में हम में से एक को ही रहने का अधिकार दीजिये—दूसरे को वहाँ से अलग कर दीजिये।"

विधाता बड़ी देर तक चुप रहे फिर पीड़ा भरे स्वर में बोले—"मुझे दुःख है कि तुम दोनों का अस्तित्व तो एक-दूसरे पर ही आश्रित है, ईर्ष्या छोड़कर प्रेम से रहो और अपनी उन्नति करो।"

बैठो मत, काम करो

मधुमक्खी उड़ती-उड़ती एक फूल पर जा बैठी और मकरन्द चूसने लगी। एक तितली भी वहीं मँडरा रही थी, उसने पूछा—"बहिन ! यह क्या कर रही हो, हमें भी तो बताओ ?"

मधुमक्खी ने कहा—"मधु इकट्ठा कर रही हूँ।" और फिर अपने काम में जुट गई।

तितली हँसकर बोली—"बहिन तुम भी कितनी नादान हो। छोटे से फूल में कहीं मधु रखा है, बेकार समय और शक्ति खराब कर रही हो। आओ हम दोनों चलकर कहीं मधु के तालाब की खोज करें।"

मधुमक्खी कुछ न बोली, चुपचाप अपने काम में लगी रही। तितली सारा वन छानती रही।

शाम को दोनों घर लौटीं तो मधुमक्खी के पास मधु का ढेर जमा था, तितली खाली हाथ लौट रही थी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मील का पत्थर

आगे बढ़ते हुए राहगीर ने मील के पत्थर की ओर देखा और बोला—"ऊँह ! तुम भी कोई आदमी हो, जहाँ गढ़ गये, वहाँ से हिलने का नाम भी नहीं लेते। देखो, मेरी ओर देखो सारे संसार का भ्रमण करता हुआ आनन्द कर रहा हूँ।"

पत्थर ने धीमी आवाज से कहा—"बन्धु ! मुझे देखकर लोग दूरी का अनुमान कर सन्तोष पाते हैं। इस सेवा का सन्तोष क्या कम सुखद है, जो मैं भी निरुद्देश्य इधर-उधर भटकता फिरूँ ?"

चरैवेति-चरैवेति

घोर अँधेरी रात, जब हाथ को हाथ नहीं सूझता था। झरना अपने अविरल प्रवाह से कल-कल करता हुआ एकान्त निर्जन विजन में बहता चला जा रहा था।

एक पहाड़ी उपत्यिका ने पूछा—"निर्झर ! तुम्हें थकावट नहीं आती क्या ? तनिक रुको, कुछ विश्राम भी तो कर लिया करो।"

एक स्नेहपूर्ण दृष्टि डालते हुए झरने ने उपत्यिका को उत्तर दिया—"बहिन ! मुझे जिस महासागर से मिलना है, उसकी दूरी अनन्त है। रुकूँगा तो इधर-उधर भटकूँगा। चलते रहने से तो वह दूरी कुछ कम ही होगी।" यह कह झरना आगे बढ़ चला।

एकता में सुरक्षा

हाथ, पाँव, नाक, मुख, आँखें सब अपने-अपने महत्त्व के लिए झगड़ने लगे। यह देखकर मनुष्य को बड़ा गुस्सा आया। उसने खाना बन्द कर दिया। अब सबका एक ही ध्यान था, कहीं से खाना मिले तो जिन्दा रहें। मनुष्य बोला—"अब समझ गये, तुम्हारा सबका महत्त्व तो मिलकर रहने में ही है।"

धर्म का सही अर्थ

एक शिष्य को अपने धर्मनिष्ठ होने का अभिमान हो गया। गुरुजी उसे ताड़ गये। धर्म का सही मर्म समझाने के लिए वे एक दिन एक सद्गृहस्थ के घर ठहरे। कृषक एक आम लाया था, उसे उसने अपनी धर्म-पत्नी को दे दिया। बेचारी धर्म-पत्नी ने भी उसे खाया नहीं, छोटे बच्चे को दे दिया। बच्चे ने आम गुरु चरणों में समर्पित किया तो गुरु ने शिष्य को बताया—"वत्स ! धर्म का यह है, सही अर्थ।"

भीख की झोली

भिखारी दिन भर भीख माँगता-माँगता शाम को एक सराय में पहुँचा और भीतर की कोठरी में भीख की झोली रखकर सो गया।

थोड़ी देर पीछे एक किसान आया, उसके पास रुपयों की एक थैली थी। किसान बैल खरीदने गया था। रात वह भी उसी सराय में रुका, जहाँ भिखारी था और वह पोटली सिराहने रखकर सो गया।

भीख की झोली रुपयों की थैली से बोली—"बहिन ! हम तुम एक बिरादरी के हैं, इतनी दूर क्यों हैं, आओ हम तुम एक हो जाएँ ?"

रुपयों की थैली ने हँसकर कहा—"बहिन ! क्षमा करो, यदि मैं तुमसे मिल गई तो संसार में परिश्रम और पुरुषार्थ का मूल्य ही क्या रह जाएगा ?"

सत्य और असत्य

एक दिन छाया ने मनुष्य से कहा—"लो देखो, तुम जितने थे उतने ही रहे और मैं तुमसे कई गुनी बढ़ गई।"

मनुष्य मुसकराया उसने कहा—"सत्य और असत्य में यही तो अन्तर है। सत्य जितना है, उतना ही रहता है और असत्य पल-पल में घटता-बढ़ता रहता है।"

उत्सर्ग के लिए अर्जन आवश्यक

चन्द्रमा ने डाँटकर कहा—"सिन्धुराज ! तुम्हें सारा जल अपने उर में समेटते लाज नहीं आई। सारी नदियों का जल पीकर भी तुम्हें सन्तोष नहीं।"

समुद्र ने गम्भीर होकर कहा—"ऐसा न कहें देव ! यदि अनावश्यक को लेकर संसार में जल-वृष्टि का उत्तरदायित्व पूरा न करूँ, तो सृष्टि कैसे चले ?" शशि को अपने कथन पर पड़ा पश्चात्ताप हुआ। उसने सिर झुका लिया।

मिलकर काम करो

तालाब में कमल और तट पर गुलाब—दो फूल खिल रहे थे। दोनों भले प्रतीत हो रहे थे।

गुलाब के फूल ने अकड़कर कहा—"कमल जी ! तुम भी हो तो इतने बड़े, पर सुगन्ध इतनी कम क्यों देते हो, देखो मेरी महक मीलों तक दौड़ी जा रही है।"

कमल ने हँसकर कहा—"भाई गुलाब ! बुरा मत मानो, हम दोनों का एक ही उद्देश्य है, आप सुगन्ध बिखेरते हैं और हम सौन्दर्य। दोनों मिलकर जो काम कर रहे हैं, वह एक नहीं कर सकता था।"

गुलाब अपने दोष-दर्शन पर लज्जित हो गया और कमल दुगुने उत्साह से सौन्दर्य बिखेरने लगा।

क्षणिक अस्तित्व पर इतना अभिमान

अमावस की रात में दीप ने देखा—न चाँद और न कोई ग्रह-नक्षत्र, न कोई तारा—केवल वह एक अकेला संसार को प्रकाश दे रहा है। अपने इस महत्त्व को देखकर उसे अभिमान हो गया।

संसार को सम्बोधित करता हुआ अहंकारपूर्वक बोला—"मेरी महिमा देखो, मेरी ज्योति-किरणों की पूजा करो, मेरी दया दयालुता का गुणगान करो, मैं तुम सबको राह दिखाता हूँ, प्रकाश देता हूँ, इस प्रगाढ़ अन्धकार में तुम सब मेरी कृपा से ही देख पा रहे हो। मुझे मस्तक नवाओ, प्रणाम करो।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org

www.vicharkrantibooks.org

दीप के इस अहंकारोक्ति का उत्तर और किसी ने तो दिया नहीं, पर जुगनू से न रहा गया बोला—"ऐ दीप ! क्षणिक अधिकार पाकर इतना अभिमान, एक रात के अस्तित्व पर यह अहंकार। केवल इस रात ठहरे रहो। प्रभात में मैं तुमसे मिलूँगा, तब तुम अपनी वास्तविकता से अवगत हो चुके होंगे।"

धूर्तता से तो अयोग्यता अच्छी

बार-बार रंग बदलने की अपनी पटुता का प्रदर्शन करते हुए गिरगिट ने कछुए से कहा—"महाशय ! देखा मैं संसार का कितना योग्य व्यक्ति हूँ ?" कछुये ने धीरे से कहा—"महाशय दूसरों को धोखा देने की इस योग्यता से तो तुम अयोग्य बने रहते तो अच्छा था, कम से कम लोग भ्रम में तो न पड़ते।"

झुकने की पात्रता

एक दिन पानी से भरे कलश पर रखी हुई कटोरी ने घड़े से कहा—"कलश ! तुम बड़े उदार हो। तुम्हारे पास जो भी बर्तन आता है उसे तुम पानी से भर देते हो किसी को खाली नहीं जाने देते।"

कलश ने उत्तर दिया—"हाँ ! मैं अपने पास आने वाले प्रत्येक पात्र को भर देता हूँ, मेरे अन्तर का सारा सार दूसरों के लिए है।"

कटोरी बोली—"लेकिन मुझे कभी नहीं भरते जबकि मैं हर समय तुम्हारे सिर पर ही मौजूद रहती हूँ।"

घट ने उत्तर दिया—"इसमें मेरा कोई दोष नहीं, दोष तुम्हारे अभिमान का है। तुम अभिमानपूर्वक मेरे सिर पर चढ़ी रहती हो, जबकि अन्य पात्र मेरे पास आकर झुकते हैं और अपनी पात्रता सिद्ध करते हैं। तुम भी अभिमान छोड़कर मेरे सिर से उतर कर विनम्र बनो, मैं तुम्हें भी भर दूँगा।" पूर्णता की प्राप्ति पात्रता एवं नम्रता से होती है अभिमान एवं अहंकार से नहीं।

परिवर्तन ही सत्य

एक बाग में दो वृक्ष थे। एक बिलकुल सूख गया था, दूसरे में सुन्दर फूल लग रहे थे। सूखे वृक्ष में एक गिद्ध रहता था, हरे वृक्ष में कोयल निवास करती थी।

दोनों में प्रायः विवाद हो जाया करता था। गिद्ध कहता था। संसार मिथ्या है, कोयल कहती संसार सत्य है। बहस में कभी-कभी गरमा-गरमी भी हो जाती थी। कुछ दिन बीते, सूखे वृक्ष में से कहीं एक हरी डाल फूट पड़ी और हरा वृक्ष सूखकर ठूँठ हो गया। अब भी गिद्ध और कोयल उसे मिथ्या बताती।

एक दिन एक तोता उधर आ निकला। उसने दोनों का झगड़ा सुना, तो हँसकर बोला—"भाइयो-बहिनो ! व्यर्थ झगड़ा न करो। न संसार सर्वथा सत्य है और न बिल्कुल मिथ्या। संसार परिवर्तनशील है, इसलिए झगड़ने की अपेक्षा जो प्रगट है, उसे ही सुन्दर और सफल बनाना बुद्धिमानी है। परिवर्तनों के अनुरूप जो अपने जीवन को ढालते हैं, वही इस संसार के सही अर्थ को जानते हैं।"

जीने की चाह

खड़ाऊँ पहनकर पण्डितजी मन्दिर की ओर चले। कदम बढ़ने के साथ खड़ाऊँ से भी खट्-खट् का स्वर निकल रहा था। पण्डितजी को यह आवाज पसन्द न आई। वह एक स्थान पर खड़े होकर खड़ाऊँ से पूछने लगे—"अच्छा यह तो बताओ कि पैरों के नीचे इतनी दबी रहने पर भी तुम्हारे स्वर में कोई अन्तर क्यों नहीं आया ?"

खड़ाऊँ ने पैरों के नीचे दबे-दबे ही पण्डितजी की जिज्ञासा शान्त करते हुए कहा—"मैं तो जीने की इच्छुक हूँ पण्डितजी, इस संसार में ऐसे लोगों की कमी नहीं जो दूसरों के दबाव में आकर अपना स्वर मन्द कर लेते हैं, उन्हें तो जीवित अवस्था में भी मैं मरा हुआ मानती हूँ।"

तुम्हारा ही भाला, तुम्हारी ही ढाल

प्राचीन देश की बात है। एक लुहार भाले और ढाल बनाया करता था। बड़ी मजबूत ढालें वह बनाता था। वह कहता था—"संसार का कोई भी भाला मेरी ढालों को नहीं छेद सकता।" भाले भी वह ऐसे ही मजबूत बनाता था। बड़ा गर्व था उसे अपने तेज भालों पर। कहता था, "ऐसी कोई ढाल नहीं जिसे मेरे भाले नहीं छेद सकते हों।" एक दिन एक आदमी आया और उस लुहार से पूछने लगा—"आखिर तुम्हारे ही भालों से कोई तुम्हारी ढालों को छेदना चाहे तो क्या होगा ?" लुहार का सारा घमण्ड चूर-चूर हो गया। उससे कोई उत्तर देते न बना।

जो मिला है, वही बहुत है

एक अन्धा भीख माँगा करता था। जो पाई-पैसे मिल जाते, उसी से अपनी गुजर करता। एक दिन एक धनी उधर से निकला। उसे अन्धे के फटेहाल पर बहुत दया आई और उसने पाँच रुपये का नोट उसके हाथ पर रख कर आगे की राह ली।

उसने कागज को टटोलकर देखा और समझा कि किसी ने ठिठोली की है और उस नोट को खिन्न मन से जमीन पर फेंक दिया। एक सज्जन ने नोट को उठाकर अन्धे को दिया और बताया—"यह तो पाँच रुपये का नोट है, तब वह प्रसन्न हुआ और उससे अपनी आवश्यकताएँ पूरी कीं। ज्ञान-चक्षुओं के अभाव में हम भी परमात्मा के अपार दान को देख और समझ नहीं पाते और सदा यही कहते रहते हैं कि हमारे पास कुछ नहीं, हमें कुछ नहीं मिला है, हम साधनहीन हैं, पर यदि हमें जो नहीं मिला है, उसकी शिकायत करना छोड़कर, जो मिला है, उसी की महत्ता को समझें तो मालूम पड़ेगा कि जो कुछ मिला हुआ है, वह कम नहीं, अद्भुत है।

छोटा सो बड़ा

दो शिष्य आपस में झगड़ पड़े। दोनों अपने-अपने को बड़ा सिद्ध कहते थे। अपनी बड़ाई और दूसरे की लघुता सिद्ध करने के लिए दोनों ने ढेरों तर्क और प्रमाण उपस्थित कर दिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बात बढ़ी, तो विवाद को लेकर दोनों गुरुदेव के पास पहुँचे और अपना-अपना पक्ष उपस्थित करते हुए निर्णय देने की प्रार्थना करने लगे।

गुरुदेव ने हँसते हुए कहा—"तुम इतना भी नहीं जानते कि जो अपने को छोटा और दूसरों को बड़ा कहता है, उसी को बड़ा माना जाता है। तुम में जो ऐसा आचरण कर रहा हो, वही बड़ा है।"

उजड़ जाओ

सन्त नानक एक गाँव में गये। वहाँ के निवासियों ने बड़ा आदर किया। चलते समय नानकजी ने आशीर्वाद दिया—"उजड़ जाओ।"

वे दूसरे गाँव में गये तो वहाँ के लोगों ने तिरस्कार किया, कटु वचन बोले और लड़ने-झगड़ने पर उतारू हो गये। नानकजी ने आशीर्वाद दिया—"आबाद रहो।"

साथ में चल रहे शिष्यों ने पूछा—"भगवन् ! आपने आदर करने वाले को "उजड़ जाओ" और तिरस्कार करने वालों को "आबाद रहो" का उलटा आशीर्वाद क्यों दिया ?"

नानक ने कहा—"सज्जन लोग, उजड़ेंगे तो वे बिखरकर जहाँ भी जाएँगे सज्जनता फैलावेंगे, इसलिए उनका उजड़ना ही ठीक है, किन्तु दुर्जन सर्वत्र अशान्ति उत्पन्न न करें, इसलिए उनके एक ही जगह रहने में भलाई है।"

स्वप्न-भ्रम

बिल्ली ने सपना देखा कि वह शेर बन गई और एक मोटी-सी बकरी का शिकार कर रही है। शिकार का स्वाद लेने भी न पाई थी कि उसने देखा कि पड़ोसी का मोटा कुत्ता भौंकता हुआ उसके ऊपर चढ़ दौड़ा। बिल्ली ने बकरी छोड़ दी और वह भागकर मालकिन की पौली में आ छिपी।

दूसरा सपना बिल्ली ने फिर देखा कि वह कुत्ता बन गई और मालकिन के चौके में घुसकर स्वादिष्ट व्यंजनों पर हाथ साफ करने की तैयारी कर रही है। इतने में क्या देखती है कि मालकिन आ पहुँची और उसने मोटे बेलने से मार-मारकर उसे बेदम कर दिया और वह बुरी तरह कराहने लगी।

उनींदी बिल्ली को कराहते-कलपते देख मालकिन ने उसे जगाया। बिल्ली ने आँखें खोलीं तो कहीं कुछ न था। उसने मालकिन से कहा—"अब मैं वही बनी रहूँगी, जो हूँ। रूप बदलने में तो खतरा ही खतरा रहता है।"

एक दिन कड़वा ही सही

हकीम लुकमान तब एक अमीर के दास थे। लुकमान बहुत नेक, आज्ञाकारी और ईश्वरपरायण थे, पर स्वामी कभी-कभी ईश्वर को भी भला-बुरा कह बैठता था, फिर भी वह लुकमान की कर्तव्यपरायणता के लिए उनसे स्नेह रखता था।

एक दिन अमीर ने ककड़ी खानी चाही। उसने जैसे ही मुख में ककड़ी लगाई ऐसा जान पड़ा ककड़ी कड़वी है। उसने तुरन्त लुकमान को दे दी और कहा—"ले इसे तू खा ले।" हकीम लुकमान ने ककड़ी ले ली और बिना कुछ ना-नू किए उसे चुपचाप खा लिया, जैसे वह कोई मीठी ककड़ी ही हो।

अमीर को बड़ा आश्चर्य हुआ, उससे पूछा—"लुकमान इतनी कड़वी ककड़ी तुमने किस तरह खा ली ?" लुकमान बोले—"स्वामी आप प्रतिदिन मुझे स्वादिष्ट भोजन देते हो, एक दिन कड़ुआ दे दिया तो क्या उसे फेंक दूँ या उसके लिए आपको दोष दूँ। अपने प्यारे लोगों की चार मिठास में एक कड़ुवाहट भी हो, तो क्या उसके लिए उसे दोषी ठहराना चाहिए।"

अमीर ने समझ लिया कि जो परमात्मा अनेक सुख देता है, यदि वह थोड़े-से दुःख देता है, तो उन्हें भी प्रसन्नतापूर्वक सहन करना चाहिए।

प्रेम के टाँके

सन्त-महात्माओं को उनके शिष्य तथा अनुयायी समय-समय पर मूल्यवान वस्तुएँ भेंट में देते रहते हैं और महात्मा उन वस्तुओं को समाज के व्यक्तियों में वितरित करवा देते हैं। स्वामीनारायण सम्प्रदाय के अनुयायी स्वामी सहजानन्द के चरणों में सूरत निवासी आत्माराम नामक दर्जी ने एक सुन्दर अँगरखा भेंट किया, तो उपस्थित भक्तगण उसे देखते ही रह गये।

पास में भावनगर के राजा विजयसिंह जी बैठे थे। उन्हें वह अँगरखा बहुत पसन्द आया। वह चाहते थे कि अँगरखा कैसे भी प्राप्त हो जाए। उन्होंने दर्जी की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की—"तुम एक अँगरखा मुझे भी बना दो, सिलाई के सौ रुपया मैं तुम्हें दूँगा।"

यह सुनकर दर्जी बोला—"राजन ! अब इस प्रकार का दूसरा अँगरखा बनाना मेरे बस की बात नहीं है ? क्योंकि स्वामीजी के लिए सींया गया अँगरखा पैसों के टाँकों से नहीं सींया गया है, वरन् इसमें प्रेम के टाँके लगाए गए हैं। दूसरा अँगरखा सीने के लिए वैसा प्रेम मैं कहाँ से लाऊँगा ?"

कपट देर तक नहीं चलता

बुद्ध आस्वान राज्य के किसी नगर से गुजर रहे थे। वह स्थान उनके विरोधियों का गढ़ था। जब विरोधियों को बुद्ध के नगर में होने का पता चला तो उन्होंने एक चाल चली। एक कुलटा स्त्री के पेट में बहुत-सा कपड़ा बाँधकर भेजा गया। वह स्त्री जहाँ बुद्ध थे, वहाँ पहुँची और जोर-जोर से चिल्लाकर कहने लगी—"देखो यह पाप इसी महात्मा का है। यहाँ ढोंग रचाये घूमता है और अब मुझे स्वीकार भी नहीं करता।" सभा में खलबली मच गई, उनके शिष्य आनन्द बहुत चिन्तित हो उठे और पूछा—"भगवन् ! अब क्या होगा ?"

बुद्ध हँसे और बोले—"तुम चिन्ता मत करो कपट देर तक नहीं चलता। चिरस्थायी फलने-फूलने की शक्ति केवल सत्य में ही है।" इसी बीच उस स्त्री की करधनी खिसक गई और सारे कपड़े जमीन पर खिसक पड़े। पोल खुल गई। स्त्री अपने कृत्य पर बहुत लज्जित हुई। लोग उसे मारने दौड़े, पर बुद्ध ने यह कहकर उसे सुरक्षित लौटा दिया—"जिसकी आत्मा मर गई हो, वह मरों से बढ़कर है, उसे शारीरिक दण्ड देने से क्या लाभ ?"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वाणी से पता चलता है

वन-विहार के लिए आये हुए राजा का जहाँ पड़ाव था, उसी के पास एक कुएँ पर एक अन्धा, यात्रियों को कुएँ से निकालकर जल पिलाया करता था। राजा को प्यास लगी। उसने सिपाही को पानी लाने भेजा। सिपाही वहाँ जाकर बोला—"ओ रे अन्धे ! एक लोटा जल इधर दे।"

सूरदास ने कहा—"जा भाग, तुझ जैसे मूर्ख नौकर को पानी नहीं देता।" सिपाही खीझकर वापस लौट गया। अब प्रधान सेनापति स्वयं वहाँ पहुँचे और कहा—"अन्धे भाई एक लोटा जल शीघ्रता से दे दो।" अन्धे ने उत्तर दिया—"कपटी मीठा बोलता है, लगता है पहले वाले का सरदार है। मेरे पास तेरे लिए पानी नहीं।" दोनों ने राजा से शिकायत की, महाराज बुड्ढा पानी नहीं देता। राजा उन दोनों को लेकर स्वयं वहाँ पहुँचा और नमस्कार कर कहा—"बाबाजी ! प्यास से गला सूख रहा है, थोड़ा जल दें, तो प्यास बुझाऊँ।" अन्धे ने कहा— "महाराज ! बैठिये अभी जल पिलाता हूँ।"

राजा ने पूछा—"महात्मन् ! आपने चक्षुहीन होकर भी यह कैसे जाना कि एक नौकर, दूसरा सरदार और मैं राजा हूँ।" बुड्ढे ने हँसकर कहा—"महाराज ! व्यक्ति का वजन वाणी से पता चल जाता है, उसके लिए आँखों की कोई आवश्यकता नहीं है।"

छोटों को भी देखो

एक बार किसी जंगल में कुछ खरगोश इकट्ठे हुए। सबने अपनी-अपनी कठिनाइयाँ बताईं। गर्मी के दिन, चारे का अभाव, शिकारी जानवरों का पीछा करना आदि अनेकों दिक्कतों से वे दुःखी थे। फिर ब्रह्माजी को भी उन्होंने कोसा कि उन्होंने उन्हें इतना असमर्थ बनाया कि किसी बड़े जानवर से लड़ नहीं सकते, सींग भी नहीं दिये, इतना छोटा भी बनाया, यह हमारे साथ सरासर अन्याय है।

बहुत देर दुःख गाथा कहने के उपरान्त एक खरगोश ने कहा—"ऐसा दुर्बल जीवन जीने से क्या लाभ ? चलो आत्महत्या करके सब दुःखों से छुटकारा पावें।" सब सहमत हो गये और एक तालाब में डूबने के लिए चल दिए। तालाब के किनारे बहुत-से मेंढक बैठे हुए थे। वे उन्हें देखकर डरे और भागकर पानी में छिप गये।

तब एक समझदार खरगोश ने कहा—"मित्रो ! अब हमें आत्महत्या करने की जरूरत नहीं है। जब हमसे भी छोटे और दुर्बल मेंढक जैसे जीव इस संसार में मौजूद हैं जो हमें देखकर भी डरें, तो हमें अनुभव करना चाहिए कि इसी प्रकार हमें और बहुतों से श्रेष्ठ बनाया गया है।"

अपने से छोटे और दुःखी लोगों के साथ अपनी तुलना करने से सन्तोष प्राप्त हो सकता है।

पुल को रोको

एक साधु थे, योग साधना करते थे और प्रतिदिन सायंकाल ग्रामवासियों को एकत्रित कर उन्हें ज्ञान दान भी दिया करते थे। साधु का ही प्रभाव था कि गाँव में न कोई चोरी करता था और न छल-कपट, न ईर्ष्या-द्वेष और न बेईमानी। सब लोग प्रेमपूर्वक रहते थे।

एक दिन गाँव के कुछ मनचले लड़कों को शरारत सूझी। कई लड़के इकट्ठा होकर साधु के पास गये और बोले—"महात्मन् ! अपने गाँव के पास जो गंगाजी का पुल है, नाराज हो गया है, कहता है मुझे दस हजार रुपये दो तो यहाँ रुकूँगा, नहीं कहीं दूर चला जाऊँगा। हम लोगों ने बहुत मनाया, मानता ही नहीं। हारकर गाँव वाले चन्दा इकट्ठा कर रहे हैं, कुछ आप भी दान दीजिये।"

साधु ने ध्यान से सब बात सुनीं, बच्चों की ओर देखा, थोड़ा मुसकराये, भीतर कुटी में गये और पाँच रुपये लाकर लड़कों को देते हुए बोले—"लो शीघ्र जाओ और पुल को कहीं बाहर जाने से रोको।"

लड़के तब तो चले गये, पर दूसरे दिन आकर उन्होंने भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और पूछा—"महाराज ! आप तो इतने ज्ञानी हैं, फिर आप इतना भी नहीं समझ सके कि पुल भी कहीं रूठता है ?"

साधु हँसे और बोले—"बेटा ! वह तो मैं भी समझ गया था, पर आप लोगों की परोपकार की भावना की रक्षा तो करनी थी।"

बालक बहुत सन्तुष्ट हुए और उस दिन से सच्चे मन से परोपकार करना प्रारम्भ कर दिया।

जीवन मृत्यु से अलग

अमरीका को पराधीनता के पाश से मुक्त कराने वाले जार्ज वाशिंगटन रोग शय्या पर पड़े हुए थे। अन्तिम घड़ी आ पहुँची थी, तो डॉक्टर लोग उन्हें आश्वासन दे रहे थे। जार्ज वाशिंगटन ने मरते समय कहा—"मैं जानता हूँ कि मैं मर रहा हूँ। मुझे मृत्यु का जरा-सा भी डर नहीं लगता, क्योंकि जीवन को सदा ही मैंने मृत्यु के निकट रखा है।"

अपरिग्रह, परिग्रह दास न बनें

भूखे-प्यासे साधु के मन ने कहा—"काया को कष्ट क्यों देते हो, किसी से भीख माँग लो।" साधु अभी एक ओर मुड़ने ही वाले थे कि आत्मा बोली—"जिससे माँगोगे वह भी तो तुम्हारे जैसा ही होगा। तुम स्वयं क्यों नहीं कमा लेते ?"

मन ने कहा—"तुम तो तपसी हो, अपरिग्रही हो, तुम्हें कमाना नहीं चाहिए।"

आत्मा ने तत्काल उत्तर दिया—"जो अपरिग्रह का दास हो उससे अच्छा तो परिग्रह ही है, जो कम से कम हाथ तो नहीं फैलाता।"

साधु ने आत्मा की बात सुनी और उस दिन से साधना, उपासना के साथ स्वावलम्बी जीवन का अभ्यास भी प्रारम्भ कर दिया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उससे भी बुरा

कोई बुद्धिमान किसी मूर्ख से विवाद नहीं करता, बड़ी बात सुनकर भी बुद्धिमान अपनी सज्जनता से उसके हृदय को अपने वश में कर लेता है। किसी दुष्ट ने एक भले मानस को गाली दी, उसने नर्मी से जवाब दिया—"तुमने मुझे जितना बुरा कहा है, मैं उससे भी ज्यादा बुरा हूँ।"

भाग्यवान बनाम अभागा

किसी ने एक बुद्धिमान मनुष्य से पूछा—"भाग्यवान् कौन है और अभागा कौन है ?" उसने उत्तर दिया—"भाग्यवान जिसने बोया और खाया और अभागा वह है, जो मर गया और छोड़ गया।"

रूप पर न्योछावर

एक साधु को किसी चीज की आवश्यकता थी, एक भला आदमी उसे एक धनी आदमी के घर ले गया। साधु ने देखा कि वह ओंठ लटकाये, भौंहें चढ़ाये और अत्यन्त कठोर रूप धारण किये बैठा है। साधु एक शब्द भी बिना कहे लौट पड़ा, किसी ने पूछा—"तुमसे क्या कहा और क्या किया ?" उसने जवाब दिया—"मैंने उसकी कृपा को उसके रूप पर ही न्योछावर कर दिया।"

स्नेह तो सौम्यता ढूँढ़ता है

अपने परम तेजस्वी तमतमाते हुए रक्तवर्ण मुखारविन्द के साथ जब सूर्यदेव घर पहुँचे तो उनकी पत्नी संज्ञा ने आँखें बन्द कर लीं।

कुपित होकर सूर्य ने कहा—"क्यों ? तुम्हें मेरा तेजस्वी स्वरूप रुचता नहीं ?"

संज्ञा की आँखें और भी नीचे हो गईं, उसने बादलों के घूँघट में कोमल मुख को ढक लिया।

अब अभद्रता उन्हें और भी अखरी और वे लाल-पीले होकर अपना दर्प दिखाने लगे। बेचारी संज्ञा भयभीत होकर अपने पितृगृह कुरु प्रदेश चली गई और तपस्या में लीन हो गई।

सूर्य अपनी पत्नी के बिना उदास रहने लगे। वे एक योगी का रूप बनाकर संज्ञा के पास पहुँचे और इस कठिन तपस्या का प्रयोजन पूछने लगे।

तपस्विनी ने कहा—"तात् ! मेरे पति और भी तेजस्वी हों, पर उनका स्वभाव इतना सरल हो कि मैं अपलक उनके दर्शन कर सकूँ।"

सूर्य द्रवित हो गये। दर्प की प्रचण्डता को मानते हुए उन्होंने अपनी सोलह कलाओं में से एक के साथ ही प्रकाशित होना आरम्भ कर दिया।

संज्ञा घर लौटी और सूर्य को सौम्य पाया तो कहा—"नाथ ! वैभव कितना ही क्यों न हो स्नेह तो सौम्यता ही ढूँढ़ेगा और उसी में तृप्ति मानेगा।"

रस विकृत न हो

सम्राट् पुष्यमित्र का अवश्मेध सानन्द सम्पन्न हुआ और दूसरी रात को अतिथियों की विदाई के उपलक्ष्य में नृत्योत्सव रखा गया।

यज्ञ के ब्रह्मा महर्षि पतंजलि उस उत्सव में सम्मिलित हुए। महर्षि के शिष्य चैत्र को उस आयोजन में महर्षि की उपस्थिति अखरी। उस समय तो उसने कुछ न कहा, पर एक दिन जब महर्षि योग-दर्शन पढ़ा रहे थे तो चैत्र ने उपालम्भपूर्वक पूछा—"गुरुवर ! क्या नृत्य गीत के रस-रंग चित्त-वृत्तियों के निरोध में सहायक होते हैं ?"

महर्षि ने शिष्य का अभिप्राय समझा। उन्होंने कहा—"सौम्य ! आत्मा का स्वरूप रसमय है। उसमें उसे आनन्द मिलता है और तृप्ति भी। वह रस विकृत न होने पावे और अपने शुद्ध स्वरूप में बना रहे, इसी सावधानी का नाम 'संयम' है। विकार की आशंका से रस का परित्याग कर देना उचित नहीं, क्या कोई किसान पशुओं द्वारा खेत चर लिए जाने के भय से कृषि करना छोड़ देता है ? यह तो संयम नहीं पलायन रहा। रस रहित जीवन बनाकर किया गया संयम प्रयत्न ऐसा ही है, जैसे जल को तरलता और अग्नि को ऊष्मा से वंचित करना। सो हे भद्र ! भ्रम मत करो, रस को नहीं उसकी विकृति को ही हेय माना जाता है।"

झूठा उपदेश बनाम सच्चा उपदेश

एक साधु द्वार पर बैठे तीन भाइयों को उपदेश कर रहे थे—"वत्स ! संसार में सन्तोष ही सुख है। जो कछुए की तरह अपने हाथ-पाँव सब ओर से समेट कर आत्मलीन हो जाता है, ऐसे निरुद्योगी पुरुष के लिए संसार में किसी प्रकार का दुःख नहीं रहता।"

घर के भीतर बुहारी लगा रही माँ के कानों में साधु की यह वाणी पड़ी तो वह चौकन्ना हो उठी। बाहर आई और तीनों लड़कों को खड़ा करके छोटे से बोली, "यह घड़ा पानी भरकर ला, मझले से कहा—उठा यह झाड़ू और घर-बाहर की बुहारी कर, अन्तिम तीसरे को टोकरी देते हुए उसने कहा—तू चल और सब कूड़ा उठाकर बाहर फेंक।"

और अन्त में साधु की ओर देखकर उस कर्मावती ने उपदेश दिया—"महात्मन् ! निरुद्योगी मैंने बहुत देखे, कई पड़ोस में ही बीमारी से ग्रस्त, ऋण भार से दबे शैतान की दुकान खोले पड़े हैं, अब मेरे बच्चों को भी वह विष वारुणी पिलाने की अपेक्षा आप ही निरुद्योगी बने रहिये और इन्हें कुछ उद्योग करने दीजिये।"

गाँव वालों ने कहा—"महात्मन् ! आपका उपदेश झूठा है और इस माँ का उपदेश सच्चा।" साधु उदास मन जंगल की ओर चल पड़े और अपने निरुद्योगी सिद्धान्त पर देर तक पश्चात्ताप करते रहे।

पुण्य की कसौटी

एक धनपति था। वह नित्य ही एक घृत दीप जलाकर मन्दिर में रख आता था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक निर्धन व्यक्ति था। वह सरसों के तेल का एक दीपक जलाकर नित्य अपनी गली में रख देता था। वह अँधेरी गली थी।

दोनों मरकर जब यमलोक पहुँचे तो धनकुबेर को निम्न स्थिति की सुविधाएँ दी गईं और निर्धन व्यक्ति को उच्च श्रेणी की।

यह व्यवस्था देखी तो धनकुबेर ने धर्मराज से पूछा—"यह भेद क्यों, जबकि मैं भगवान के मन्दिर में दीपक जलाता था, वह भी घी का।"

धर्मराज मुसकराये और बोले, "पुण्य की महत्ता मूल्यों के आधार पर नहीं, कार्य की उपयोगिता और भावना के आधार पर होती है। मन्दिर तो पहले से ही प्रकाशमान था। उस व्यक्ति ने ऐसे स्थान पर प्रकाश फैलाया, जिससे हजारों व्यक्तियों ने लाभ उठाया। उसके दीपक की उपयोगिता अधिक थी।"

दोनों साथ-साथ रहो

भगवान प्रजापति ने सुन्दरता को जन्म दिया उसके साथ ही लज्जा को भी उत्पन्न कर कहा—"तुम दोनों एक-दूसरे की रक्षा करते हुए प्रसन्नता को प्राप्त करो।" दोनों सुखपूर्वक रहने लगीं।

एक बार सुन्दरता ने लज्जा को डाँटा और कहा—"मैं संसार के सुख भोगने के लिए पैदा हुई हूँ, तुम मुझे बार-बार रोका मत करो।" लज्जा ने सिर झुकाकर कहा—"बहन, ऐसा न कहो, मैं तो तुम्हारी सेविका हूँ। भगवान ने तुम्हारी रक्षा के करने के लिए मुझे भेजा है।"

सुन्दरता को यह सिखावन अच्छी न लगी उसने कहा, "मैं अपनी रक्षा स्वयं कर लूँगी" डाटकर लज्जा को अपने पास से भगा दिया। स्वछन्द सुन्दरता ने हर कहीं से सुख पाना आरम्भ कर दिया, जिससे उसकी शक्ति घटने लगी। एक दिन अपना सारा सौन्दर्य खोकर वह अस्तित्वहीन हो गई, तब उसे अपनी भूल का पता चला।

प्रजापति ब्रह्मा उसको दुःखी देखकर प्रकट हुए और बोले—"पुत्री ! अब आगे कभी लज्जा का परित्याग न करना, नहीं तो फिर ऐसे ही पछताओगी।" बहुत अनुनय, आग्रह की तब लज्जा फिर सौन्दर्य के पास आ गई।

शक्तिशाली वस्तु

गुरुकुल के विद्यार्थियों में इस बात पर बहस छिड़ गई कि संसार में सबसे शक्तिशाली वस्तु क्या है ? कोई कुछ कहता, कोई कुछ, जब पारस्परिक वाद-विवाद का कोई निर्णय न निकला तो फिर सभी विद्यार्थी गुरुजी के पास पहुँचे।

गुरुजी ने शिष्यों की बात सुनकर कहा—"तुम सबकी बुद्धि खराब हो गई है।" और शान्त हो गये। शिष्य गुरुदेव की इस छोटी बात को भी सहन न कर पाये और थोड़ी ही देर में उनके चेहरे तमतमा गये। अपने लाल-लाल नेत्रों से गुरुजी को घूरने लगे।

थोड़ी देर बाद गुरुजी शिष्यों से बोले—"तुम सब पर आश्रम को गर्व है, तुम लोग अपना एक भी क्षण व्यर्थ नहीं खोते, अवकाश के समय में भी ज्ञान चर्चा करते हो।" अब तो शिष्यों के मन में स्वाभिमान जाग्रत हुआ और उनके चेहरे खिल उठे।

गुरुजी ने कहा—"मेरे प्यारे शिष्यो ! इस संसार में वाणी से बढ़कर कोई शक्तिशाली वस्तु नहीं है। वाणी से मित्र को शत्रु तथा शत्रु को मित्र बनाया जा सकता है। ऐसी शक्तिशाली वस्तु का उपयोग प्रत्येक व्यक्ति को सोच-समझकर करना चाहिए। वाणी का माधुर्य लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है और न बनने वाला कार्य भी बन जाता है।"

शिष्यगण सन्तुष्ट होकर लौट आये और उस दिन से मीठा बोलने का अभ्यास दृढ़तापूर्वक करने लगे।

मौत का विस्मरण

एक पेड़ पर दो बाज प्रेमपूर्वक रहते थे। दोनों शिकार की तलाश में निकलते और जो भी पकड़कर लाते उसे शाम को मिल-बैठकर खाते। बहुत दिन से उनका यही क्रम चल रहा था।

एक दिन दोनों शिकार पकड़कर लौटे तो एक की चोंच में चूहा था और दूसरे की में साँप। शिकार दोनों ही तब तक जीवित थे। पेड़ पर बैठकर बाजों ने जब उनकी पकड़ ढीली की तो साँप ने चूहे को देखा और चूहे ने साँप को।

साँप चूहे का स्वादिष्ट भोजन पाने के लिए जीभ लपलपाने लगा और चूहा साँप के प्रयत्नों को देखकर अपने पकड़ने वाले बाज के पैरों में छिपने का उपक्रम करने लगा।

उस दृश्य को देखकर एक बाज गम्भीर हो गया और विचारमग्न देखने लगा। दूसरे ने पूछा—"दोस्त, दार्शनिकों की तरह किस चिन्तन-मनन में डूब गये ?"

पहले बाज ने अपने पकड़े हुए साँप की ओर संकेत करते हुए कहा, "देखते नहीं यह कैसा मूर्ख प्राणी है। जीभ की लिप्सा के आगे इसे मौत भी एक प्रकार से विस्मरण हो रही है।"

दूसरे बाज ने अपने चूहे की आलोचना करते हुए कहा, "और इस ना-समझ को भी देखो भय इसे प्रत्यक्ष मौत से भी अधिक डरावना लगता है।"

पेड़ के तने में एक मुसाफिर सुस्ता रहा था। उसने दोनों की बात सुनी और एक लम्बी साँस छोड़ते हुए बोला—"हम मानव प्राणी भी तो साँप और चूहे की तरह स्वाद और भय को बड़ा समझते हैं, मौत तो हमें भी विस्मरण ही रहती है।"

मन का अभ्यास

भिखारी ने हाथ आगे बढ़ाया पर जेब में कुछ न निकला। अश्वपति कुछ दुःखी से होकर घर गये और एक बर्तन उठाकर ले आये और भिखारी को दे दिया।

थोड़ी देर में अश्वपति की पत्नी आई और वह बर्तन न पाकर चिल्लाई अरे चाँदी का बर्तन भिखारी को दे दिया। दौड़ो-दौड़ो उसे वापस लेकर आओ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अश्वपति ने आगे बढ़कर भिखारी को रोककर कहा—"भाई ! मेरी पत्नी ने बताया है कि यह गिलास चाँदी का है, उसे सस्ता मत बेच देना।"

एक पड़ोसी ने पूछा—"अश्वपति ! जब तुम्हें पता हो गया था कि गिलास चाँदी का है, तो भी उसे गिलास क्यों ले जाने दिया ?"

अश्वपति ने हँसकर कहा—"मन को इस बात का अभ्यस्त बनाने के लिए कि वह बड़ी से बड़ी हानि में भी दुःखी और निराश न हो।"

प्रकाश की ओर चलो

मनुष्य अपनी छाया को देखकर उसे पकड़ने दौड़ा। छाया भी उतने ही वेग से भागी, मनुष्य उसे पकड़ न सका।

आकाश से आवाज आई—"मूर्ख ! छाया आज तक किसी ने पकड़ पाई है ? तू इस भ्रम के पीछे मत दौड़, प्रकाश की ओर चल और जीवात्मा का कल्याण कर।"

आदमी लौट पड़ा प्रकाश की ओर, प्रकाश पुञ्ज ज्यों-ज्यों पास आता गया, छाया पुरुष के पीछे-पीछे भागती गई और प्रकाश की प्राप्ति के साथ वह भी आदमी में समा गई।

बीज जो वृक्ष बन गया

दो बीज धरती की गोद में जा पड़े। मिट्टी ने उन्हें ढक दिया। दोनों रात में सुख की नींद सोये।

प्रातःकाल दोनों जगे तो एक के अंकुर फूट गये, वह ऊपर उठने लगा। यह देख छोटा बीज बोला—"भैय्या, ऊपर मत जाना, वहाँ बहुत भय है लोग तुझे रौंद डालेंगे, मार डालेंगे।" बीज सब सुनता रहा और चुपचाप ऊपर उठता रहा। धीरे-धीरे धरती की परत पार कर ऊपर निकल आया और बाहर का सौन्दर्य देखकर मुसकराने लगा। सूर्य देवता ने धूप स्नान कराया और पवन देव ने पंखा डुलाया। वर्षा आयी और शीतल जल पिला गई। किसान आया और बिस्तर लगाकर चला गया। बीज बढ़ता ही गया। झूमता, लहलहता, फूलता और फलता हुआ बीज एक दिन परिपक्व अवस्था तक जा पहुँचा। जब वह इस संसार से विदा हुआ तो अपने जैसे असंख्य बीज छोड़कर हँसता और आत्म-सन्तोष अनुभव करता विदा हो गया।

मिट्टी के अन्दर दबा बीज यह देखकर पछता रहा था—भय और संकीर्णता के कारण मैं जहाँ था, वहीं पड़ा रहा और मेरा भाई असंख्य गुनी समृद्धि पा गया।

मन की शक्ति

स्वामी विवेकानन्द हैदराबाद की यात्रा कर रहे थे। एक व्यक्ति ने आकर स्वामी को प्रणाम किया और विनीत याचना की—"स्वामीजी मेरे बच्चे को तीव्र ज्वर है, यदि उसके सिर पर हाथ रख दें तो उसका ज्वर शान्त हो जावे। मैंने सुना है कि तेजस्वी महात्माओं द्वारा ऐसा करने से रोग तक दूर हो सकते हैं।"

स्वामीजी से लोगों ने कहा—"बड़ा चमत्कारी व्यक्ति है, सबके मन की बात तक जान लेता है।"

स्वामीजी ने कहा—"यदि तुम अपना चमत्कार दिखाओ तो मैं भी तुम्हारे बच्चे के सिर पर हाथ रख सकता हूँ ?" उस व्यक्ति ने यह शर्त स्वीकार कर ली। स्वामी के आशीर्वाद से बच्चा ठीक हो गया। तब उसका नम्बर आया। स्वामी जी ने गुलाब के फूल, सेब और कुछ वस्तुएँ माँगी, लोग यह देखकर आश्चर्यचकित रह गये कि गुलाब का फूल जिसमें ओस के कण विद्यमान थे, सेब आदि सभी वस्तुएँ एक कम्बल से निकालकर दीं।

वह व्यक्ति संस्कृत न जानता था। स्वामी जी ने संस्कृत का एक वाक्य मन में लिया। जब उससे पूछा तो उसने कहा—"अपनी जेब में पड़ा कागज निकालिए।" ऐसा करने पर लोग आश्चर्यचकित रह गये, क्योंकि वह संस्कृत का श्लोक उस कागज पर अंकित हो गया था।

मृत्यु का दुःख मत करो

घड़ा जब तक घड़ा था, उसे अपने स्वास्थ्य और सौन्दर्य पर बड़ा अभिमान था, किन्तु एक दीवार से चोट लगी और उसका सारा दर्प चूर-चूर हो गया। घड़ा टुकड़े-टुकड़े होकर जमीन पर बिखर गया।

अपनी इस स्थिति के लिए वह विधाता को कोसने लगा—"तू कितना निष्ठुर है, तुझसे मेरी प्रसन्नता भी न देखी गई। तू सदैव हँसते-खेलते चेहरों को यों ही मिट्टी में मिलाया करता है।" धरती ने यह आवाज सुनी, फूटे घड़े को शान्त करती हुई बोली—"वत्स ! ऐसा न कहो, तुम्हें पता नहीं टुकड़े-टुकड़े होकर किस अनन्तता में लीन हो जाने का वरदान पा रहे हो।"

प्रलाप मत करो

प्रातःकाल होने को था। भगवान सूर्य सात अश्वों के रथ पर बैठकर प्राची की ओर से बढ़ते आ रहे थे। तभी एक क्षुद्र जुगनू सामने आया और मूँछों पर ताव देता हुआ बोला—"ऐ सूरज ! वहीं रुक जा, नहीं तो तुझे नष्ट करके रख दूँगा।"

सूर्य भगवान को पहले तो हँसी आ गई, फिर वे धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे। सूर्य की तेजस्विता देखी तो जूगनू को उलटे पाँव भागते ही बना।

आकाश खिलखिला कर हँस पड़ा। बोला—"सच है, प्रलाप करना मूर्खों का ही काम है, तेजस्वी व्यक्ति तो निर्भय ही आगे बढ़ा करते हैं।"

मिथ्या अहंकार

वन में खड़े एक पौधे के साथ लिपटी हुई एक लता भी धीरे-धीरे पौधे के बराबर हो गई। पौधे का आश्रय लेकर उसने फलना-फूलना आरम्भ कर दिया।

बेल को फलते-फूलते देखकर वृक्ष को अहंकार हो गया कि मैं न होता, तो लता तो नष्ट हो गई होती। उसने धमकाते हुए कहा—"ओ री बेल ! मैं जो कुछ कहूँ, तू उसका पालन किया कर, नहीं तो तुझे मारकर भगा दूँगा।"

अभी वह लता को डाँट ही रहा था कि दो पथिक उधर से निकले। एक बोला—"बन्धु ! देखिये, यह वृक्ष

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कैसा शीतल और सुन्दर है ? इस पर कैसी अच्छी लता पुष्पित हो रही हैं। आओ, यहाँ कुछ देर बैठकर विश्राम करें।

अपना सारा महत्त्व लता के साथ है, यह सुनकर वृक्ष का सारा अभिमान नष्ट हो गया। उस दिन से उसने लता को धमकाना बन्द कर दिया।

प्रगति और प्रवाह ही निर्मलता का आधार

एक जल-पूरित नदी कल-कल करती हुई आनन्द और उल्लास के साथ बही जा रही थी। उसके किनारे बड़े-बड़े सुन्दर नगर और उपनगर बसे हुए थे। इन सभी नगरों के निवासी विविध प्रकार से उसके जल का उपयोग करके अपने दैनिक जीवन को सफल बनाते रहते थे।

पर्वतों से टकराकर नदी का पानी जहाँ ऊपर से नीचे गिरता था, वहाँ एक विशाल विद्युत-केन्द्र बनाया गया था, जहाँ से बिजली का उत्पादन होकर उससे अनेक प्रकार के यान्त्रिक और औद्योगिक कार्यों का संचालन किया जा रहा था।

आगे चलकर इसी नदी से कुछ नहरें निकाली गई थीं। कहीं लोग नावों द्वारा इसमें व्यापार करके अपनी आजीविका चला रहे थे।

ऐसा था इस नदी का जीवन। आदि से अन्त तक अपने अंग-प्रत्यंग से औरों का भला करती हुई, जब इस प्रकार वेग से समुद्राभिमुख बही चली जा रही थी, तब एक ठहरी हुई जोहड़ ने, जिसका पानी प्रवाहहीन होने के कारण दुर्गन्धयुक्त हो गया था, इस नदी से कहा—

"बहिन, बताओ अपने इस दिन-रात के बहते हुए जीवन में आखिर तुम्हें किस बात का अनुभव होता है जो तुम निरन्तर कल-कल करती हुई किलोलें किया करती हो ? मुझे क्यों नहीं देखती, जो एक जगह ठहरकर अपने जीवन को प्रगति और प्रवाह से दूर करके स्थिर होकर यहाँ पड़ी-पड़ी आराम के साथ अपने दिन गुजार रही हूँ।"

नदी ने जोहड़ से कहा—"प्रगति और प्रवाह का पथ अपनाने से ही मेरा अभ्यन्तर स्वच्छ और निर्मल बना हुआ और इसीलिए मेरी हर बूँद का सदुपयोग किया जाता है। प्रगतिहीन और प्रवाहहीन होने के कारण ही तुम गन्दगी का आगार बनी हुई हो। औरों के उपयोग में न आने वाले तुम्हारे जीवन का इस दुनिया में अधिक अस्तित्व नहीं है।"

ज्ञानवान् व्यक्ति का जीवन भी नदी की तरह है, जो औरों को अमृत देता हुआ स्वच्छन्द और निर्मल रहता है पर ज्ञान के प्रति संकुचित हैं, जो वे जोहड़ की तरह आप गन्दे होते औरों को गन्दे करते हैं।

बूँदों का बलिदान

आकाश से उतरती हुई नन्हीं-सी बूँदों को देखकर आग की लपटें अट्टहास कर हँसी और बोलीं—"नादान बूँदो ! क्यों अपने आपको नष्ट करने दौड़ी चली आ रही हो ?"

बूँदों ने आग की वीभत्सता देखी, मुसकरायीं और कूद पड़ीं इन लपटों में। एक-एक कर बूँदें झरती रहीं, ताँता नहीं टूटा और अन्त में यह हुआ कि आग का नामो-निशान तक मिट गया।

नया पाने के लिए पुराना छोड़ो

विन्ध्याचल पर्वत पर दो चींटियाँ रहती थीं, एक उत्तरी चोटी पर, दूसरी दक्षिणी चोटी पर। एक का घर शक्कर की खान में था, दूसरी नमक की खान में रहती थी।

एक दिन शक्कर की खान वाली चींटी ने दूसरी चीटी को निमन्त्रण दिया—"बहिन ! कहाँ इस नमक के खान में पड़ी हो, मेरे यहाँ चलो वहाँ शक्कर ही शक्कर है। खाकर मुँह मीठा करो और अपना जीवन सफल करो।"

दूसरी चींटी ने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। बड़े सबेरे नहा-धोकर पहली चींटी के घर जा पहुँची। चींटी ने उसे घूम-घूमकर शक्कर की खान दिखाई और कहा—"बहिन ! जी चाहे जितनी शक्कर खाओ, यहाँ किसी बात की कमी नहीं है।"

चींटी दिन भर इधर-उधर भागती फिरी और शाम को पहली चींटी से यह कहकर चली गई बहिन तुमने मुझे बड़ा धोखा दिया। यदि शक्कर तुम्हारे पास न थी तो मुझे निमन्त्रण ही क्यों दिया ?

पास ही एक कुटिया में सन्त और उनका शिष्य निवास करते। शिष्य ने पूछा—"गुरुदेव ! शक्कर के पहाड़ में घूमने पर भी चींटी को शक्कर का पता क्यों न चला।"

सन्त बोले—"बात यह थी वत्स, कि चींटी अपने मुँह में नमक का टुकड़ा दाबे हुए थी, इसी से उसे मिठास का आभास नहीं हो पाया। इसी प्रकार जो लोग अपने पुराने संस्कार नहीं बदलते, आत्म-शोधन द्वारा अपनी बुराइयाँ नहीं हटाते, परमात्मा के समीप होते हुए भी उसकी कृपा से वंचित रह जाते हैं। नया पाने के लिए पुराने को हटाने का नियम अनिवार्य और अटल है।"

आँख और आँसू

एक दिन आँख और आँसू में विवाद चल पड़ा। आँसू कह रहा था—"तू कैसी ममताहीन माता है, जो अपने बेटों को जन्म देते ही दूर फेंक देती है। इससे तो अच्छा होता कि तू जन्म ही न देती।"

आँख बेचारी पहले ही दुःखी थी, बोली—"वत्स ! तुम माँ के मर्म पर लगी चोट को समझ न सकोगे। तुम्हारे चले जाने से मेरा तो सर्वस्व लुट जाता है, किन्तु मैं सागर की तरह कंजूस नहीं जो मोतियों के ढेर आप ही छुपाये पड़ा रहता है। तुम्हें बाहर न निकालती तो तुम प्रकाश में कैसे आते ? तुम्हारा सम्मान कौन करता ?"

माँ के वचन बेटे को आशीर्वाद से लगे। उसने अनुभव किया कि संकीर्णता से बाहर न आता तो विशाल विश्व का अनुभव कैसे मिलता ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समय नहीं मिलता

एक मनुष्य किसी महात्मा के साथ जाकर कहने लगा—"थोड़े-से जीवन में क्या-क्या करें ? बाल्यकाल में ज्ञान नहीं रहता। बुढ़ौती उससे भी बुरी होती है। रात-दिन नींद नहीं लगती है। रोगों का उपदेव बना रहता है। युवावस्था में कुटुम्ब का भरण-पोषण किए बिना नहीं चलता। तब भला ज्ञान कैसे मिले ? लोकसेवा कब की जाय ? इस जिन्दगी में तो कभी समय मिलता दिखता ही नहीं।" ऐसा कह और खिन्न होकर वह रोने लगा।

उसे रोते देखकर महात्मा भी रोने लगे। उस आदमी ने पूछा—"आप क्यों रोते हैं ?" महात्मा ने कहा—"क्या करूँ बच्चा ! खाने के लिए अन्न चाहिए।" लेकिन अन्न उपजाने के लिए मेरे पास जमीन नहीं है। मैं भूख से मर रहा हूँ। परमात्मा के अंश में माया है। माया के अंश में तीन गुण हैं। गुणों के लिए एक अंश में आकाश है। आकाश में थोड़ी-सी वायु है और वायु में बहुत आग है। आग के एक भाग में पानी है। पानी का शतांश पृथ्वी है। पृथ्वी के आधे हिस्से पर पर्वतों का कब्जा है। नदियों और जंगलों को जहाँ देखो वहाँ अलग बिखरे पड़े हैं, मेरे लिए भगवान ने जमीन का एक नन्हा-सा टुकड़ा भी नहीं छोड़ा। थोड़ी-सी जमीन थी भी, सो उस पर और लोग अधिकार जमाए बैठे हैं। तब बताओ मैं भूखा न मरूँगा ?"

उस मनुष्य ने कहा—"यह सब होते हुए तुम जिन्दा तो हो न ? फिर क्यों रोते हो ?" महात्मा ने कहा—"तुम्हें समय मिला है, तब तो यहाँ आये हो। तब फिर 'समय नहीं मिलता' कहकर क्यों हाय-हाय करते हो ? जाओ, अपना काम करो। अब समय न मिलने का बहाना मत करना।"

संसार की शोभा

अपने प्रिय शिष्य योत्जी के साथ ऋषि लाओत्जे किसी यात्रा पर जा रहे थे। वे उस नगर के पास से गुजरे जहाँ के राजा को कुछ दिन पूर्व युद्ध में मार दिया गया था। राज-प्रासाद जो कभी हास-विलास का केन्द्र था, आज भूत-प्रेतों का वास बना हुआ था।

खण्डहर देखकर लाओत्जे ने कहा—"कितना भयंकर लगता है यह स्थान, आदमी की गति न होने से स्थान नीरव और उदास लगते हैं। पता नहीं उस दिन धरती की स्थिति क्या होगी, जिस दिन पृथ्वी से मानव का अस्तित्व उठ जाएगा।"

"क्या यह संभव है भगवन कि पृथ्वी जन्यशून्य हो जाएगी ?" शिष्य योत्जी ने प्रश्न किया।

"हाँ वत्स ! यह सम्भव है। लाखों, करोड़ों आदमी भले ही न मरें, पर जिस दिन धरती से उन आदमियों का अन्तर्धान हो जाएगा, जिनके आधार पर मनुष्यता और धरती की प्रतिष्ठा है। जिस तरह एक राजा के न होने से यहाँ तमाम आदमियों की हलचल का महत्त्व नहीं रहा, उसी तरह प्राणप्रद पुरुषों के न होने से धरती की शोभा जाती रहती है। संसार की गति उसमें बसने वाले साधारण आदमियों से नहीं है, बल्कि उस आदमी के कारण है, जिसकी स्फूर्ति से अनेक आदमियों के जीवन सही दिशा में चलते हैं। उनका न रहना और संसार का प्रेतवास बनना एक समान है।"

लोटे में जहाज

एक महात्मा के पास एक व्यक्ति ने आकर पूछा—"महात्मन् ! आप जीव और ईश्वर में एक ही चैतन्य का वास बताते हैं, परन्तु ईश्वर के समान जीव सर्वज्ञ क्यों नहीं होता ?" महात्मा ने एक लोटा जल गंगाजी से लाने की आज्ञा दी। एक व्यक्ति एक लोटा जल लाया तो महात्मा बोले—"बच्चा ! गंगाजी में जहाज चलते हैं इसमें क्यों नहीं चलते ?" वह बोला—"गंगाजी में अथाह पानी है, लोटे में तो जहाज आवेगा ही नहीं।" "इसी प्रकार जीवात्मा में थोड़ा और ईश्वर में अनन्त गुण हैं।" महात्मा ने कहा।

पहले मन साफ करो

भगवान बुद्ध अपने ज्ञान का प्रकाश संसार को दे रहे थे। अनेक लोगों का आत्मिक कायाकल्प हो चुका था।

एक दिन तथागत घूमते हुए एक सेठ के यहाँ पहुँचे। भिक्षा हेतु अपना कमंडल उसके सामने रख दिया। वह तथागत के ज्ञान और प्रभाव की प्रशंसा सुन चुका था। उसे आशा थी कि उसका आशीर्वाद पाकर मेरी मुक्ति हो जायेगी। बड़े प्रेम से खीर बनवाई और लाकर कमंडल में देने लगे। उसने आश्चर्यपूर्वक देखा कि कमंडल में गोबर भरा हुआ है। इतनी सुन्दर खीर उस कमंडल में कैसे रखी जाय, जिसमें कि गन्दगी भरी हुई है।

उसने कमंडल उठाया, उसको अच्छी तरह साफ किया। तत्पश्चात् उसमें खीर रखी और तथागत से बोला, 'भगवन् कहीं भिक्षा हेतु पधारा करें तो अपना पात्र साफ करके ही लाया करें। गन्दगी भरे पात्र से तो आहार की पवित्रता नष्ट हो जायेगी।'

तथागत शांत-भाव से बोले, "वत्स ! भविष्य में जब कभी भी आऊँगा, कमंडल साफ करके ही लाया करूँगा, पर तुम भी तो अपना कमंडल साफ रखा करो।" सेठ ने आश्चर्य भरे शब्दों में पूछा, 'भगवन् ! कौन-सा कमंडल।" तथागत बोले—"यह तन रूपी कमंडल। मन में मलीनता भरी रहने से यह जीवन भी कलुषित हो जाता है और भगवान की कृपा उसमें ठीक प्रभाव नहीं करती।" बात समझ में आ गई। उस दिन सेठ अपनी आन्तरिक सफाई में लग गया।

कुपात्र को कौन दे ?

"ज्ञान, विवेक, शक्ति और भक्ति परमात्मा सत्पात्र को देता है—अज्ञ और अन्धकार में डूबे हुओं को नहीं" रब्बी जोसे बेन के इतना कहने पर एक महिला बड़ी नाराज हुई और बोली—"तो इसमें भगवान की क्या विशेषता रही—होना तो यह चाहिए कि वह असभ्य व्यक्तियों को यह सब देता, उससे संसार में अच्छाई का विकास तो होता।"

रब्बी हलाफ्ता उस समय मौन हो गये और बात जहाँ थी, वहीं समाप्त कर दी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बड़े सबेरे उन्होंने मुहल्ले के एक मूर्ख व्यक्ति को बुलाकर कहा कि अमुक स्त्री से जाकर आभूषण माँग लाओ। मूर्ख वहाँ गया और आभूषण माँगे, तो उसने न केवल आभूषण देने से इनकार कर दिया, वरन् उसे झिड़क-कर वहाँ से भगा भी दिया।

थोड़ी देर पीछे रब्बी जोसे स्वयं महिला के घर उपस्थित हुए और बोले—"आप एक दिन के लिए अपने आभूषण दे दें, आवश्यक काम करके लौटा देंगे।" महिला ने सन्दूक खोला और खुशी-खुशी उतने मूल्यवान आभूषण जोसे बेन को सौंप दिये।

आभूषण हाथ में लिए बेन ने पूछा—"अभी-अभी एक दूसरा व्यक्ति आया था, आपने उसे आभूषण क्यों नहीं दिए थे ?"

महिला छूटते बोली—"असभ्य और मूर्खों को अच्छी वस्तुएँ भी कोई देता है ?" इस पर तुरन्त ही रब्बी जोसे बोल पड़े—"तब फिर परमात्मा ही अपनी अच्छी वस्तुएँ कुपात्र को क्यों देने लगा ?"

महिला अपने प्रश्न का सन्तोषजनक उत्तर पाकर बड़ी प्रसन्न हुई।

अपनी-अपनी पात्रता

शिष्य ने प्रश्न किया—"गुरुवर ! जब संसार में सभी आदमी एक ही तत्व के एक से बने हैं, तो यह छोटे-बड़े का भेद-भाव क्यों हैं ?"

गुरु ने उत्तर दिया—"वत्स ! छोटा-बड़ा संसार में कोई नहीं, यह सब अपने-अपने आचरण का खेल है, जो सज्जन हैं, वह बड़े हो जाते हैं, जबकि नेकी और सज्जनता के अभाव में वही छोटे कहलाने लगते हैं।" गुरु ने बात ठीक समझा दी थी, पर शिष्य की समझ में अच्छी तरह बात जमी नहीं।

कुछ दिन पीछे राजा की सवारी निकली। गुरु अपने शिष्य को लेकर राज-पथ के बीचों-बीच जा बैठे। पहले पहल सैनिकों का दल आया। एक सिपाही ने आगे बढ़कर वृद्ध संन्यासी को धक्का मारा और कहा—"मूर्ख ! मार्ग में बैठा है, पता नहीं, महाराज की सवारी आ रही है।" सैनिकों के पीछे प्रधान सेनापति था, उसने धक्का तो नहीं दिया, हाँ वहाँ से हटने के लिए साधु को डाँट अवश्य बतलाई।

इसके बाद मन्त्री निकले, उन्होंने बिना कुछ कहे अपना रथ एक ओर से निकाल लिया और आगे बढ़ गये। सबसे पीछे आ रहे महाराज ने संन्यासी को देखा तो रथ से उतरकर उनके पास आये और पूछा—"भगवन् ! आप यहाँ बैठे हैं, कोई कष्ट तो नहीं। हम आपके सेवक हैं, कोई कष्ट हो, तो कहें।" संन्यासी ने उत्तर में केवल आशीर्वाद दिया और महाराज को भी वहाँ से जाने दिया।

शिष्य बगल में खड़ा यह सब देख रहा था। गुरु के पास आकर उसने कहा—"सच है गुरुदेव ! व्यक्ति अपने आपमें न छोटा है न बड़ा। गुणों के आधार पर ही कुछ बड़े हो जाते हैं, जबकि दूसरे छोटे से छोटे ही बने रहते हैं।"

अपने भीतर सुख की खोज

उस समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती की मृगारमाता के पूर्णाराम प्रासाद में विश्राम कर रहे थे। प्रवास और परिव्राजन के नैरन्तर्य के कारण उन्हें थकावट अनुभव हो रही थी। मृगारमाता ने उनकी देख-रेख और सेवा का पूरा प्रबन्ध कर दिया था।

मृगारमाता विशाखा का किसी उद्योग से सम्बन्धित कोई काम कौशलराज प्रसेनजित के यहाँ अटका हुआ था। उसके कारण उन्हें चैन नहीं मिल रहा था। सोचा यह था कि तथागत की उपस्थित में वह कुछ धर्म-चर्चा का लाभ लेगी, पर वह तो बना नहीं, वह दूसरे ही दिन प्रसेनजित के पास जा पहुँची।

प्रसेनजित ने इस बार भी टालमटोल कर दी। विशाखा वहाँ से निराश लौटी। दोपहर की चिलचिलाती धूप में वैसे ही विशाखा सीधे भगवान बुद्ध के पास पहुँची और उन्हें प्रणाम कर खिन्नवदन एक ओर बैठ गई।

अन्तर्यामी तथागत हँसे और बोले—"विशाखा ! इसलिए कहता हूँ कि अपनी इच्छाएँ बढ़ानी नहीं, कम करनी चाहिए। इच्छाओं की पूर्ति में जो पराधीनता है, वह दुःख है।"

विशाखा ने कहा—"तो फिर भगवान ! ऐसा भी कोई उपाय है, जिससे अपनी इच्छाएँ कम की जा सके।"

बुद्ध ने उत्तर दिया—"हाँ भन्ते ! अवश्य है, यदि हम सुख की खोज अपने भीतर करने लगें तो इच्छाओं की निस्सारता अपने आप प्रकट होने लगती है।"

जो मन भावइ—सो कर पावइ

दोनों सत्यनिष्ठ, दोनों श्रद्धालु, दोनों ही प्रजा को पुत्र की दृष्टि से देखते थे, दोनों ही भगवती सरस्वती के उपासक थे। इन सब समानताओं के साथ-साथ दोनों पड़ोसी भी थे, उनका नाम था, महाराज विदूरथ और सम्राट् सिन्धुराज।

समय की गति और राजनीति का परिवर्तन कब हो जाय, जाना नहीं जा सकता। एक दिन सम्राट् सिन्धुराज ने विदूरथ पर आक्रमण कर दिया। विदूरथ का पराक्रम सिन्धुराज से कम नहीं था। वह भी अपनी सेनाएँ लेकर संग्राम में आ जुटे। कई दिन तक भयंकर युद्ध हुआ, पर विजय सिन्धुराज की ही हुई। विदूरथ खेत रहे। सिन्धुराज ने अपने हाथों से ही उनका वध कर डाला।

सन्ध्या समय जब महाराज सिन्धुराज की सेनाएँ विजयोन्मत्त उल्लास के साथ अपनी राजधानी लौट रही थीं, तब स्वर्गीय महाराज विदूरथ की धर्म-पत्नी ने युद्ध क्षेत्र में प्रवेश किया। युद्ध क्षेत्र अब श्मशान दिखाई दे रहा था।

मृतक पति का शीश अपनी बायीं जाँघ पर रखकर महारानी लीला ने भगवती सरस्वती का आह्वान किया। भक्त का करुण स्वर सुनकर वीणपाणि प्रकट हुई और बोली—"भद्रे ! तुम्हारा दुःख देखकर मेरा हृदय करुणा से भर गया है, बोलो तुम क्या चाहती हो ?"

माँ ! लीला ने अश्रुशीत नेत्रों से दो बूँद अश्रु भूमि पर टपकाते हुए कहा—"सिन्धुराज ने अन्यायपूर्वक आक्रमण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किया, तुमने यह जानते हुये की मेरे पतिदेव भी तुम्हारे अनन्य उपासक थे, परन्तु फिर भी वीरगति को प्राप्त हो गये।"

इसमें मेरा क्या दोष पुत्री ! यह सब भावनाओं का खेल है। जो जिस कामना से मेरी उपासना करता है, मैं वैसा ही फल देती हूँ, सिन्धुराज की इच्छा चक्रवर्ती बनने की थी सो वह आज चक्रवर्ती है और तुम्हारे पति की इच्छा थी आत्मोद्धार सो उनका उद्धार हो गया, यह तुम देख ही रही हो।

सेवा, पर निःस्वार्थ

भगवान के दो भक्त थे। एक बड़ा ईमानदार था, दूसरा बेईमान। पहला दिन भर मेहनत से काम करता। न कुछ चुराता और न फालतू समय बरबाद करता, पर शाम को जब भगवान के पास जाता तो अनेकों इच्छाएँ रखता—"मुझे घर चाहिए, पत्नी चाहिए, पुत्र चाहिए और चाहिए विपुल धन-सम्पत्ति, जिससे कि सुख और सुविधा-पूर्वक रह सकूँ।"

दूसरा व्यक्ति दिन भर दाएँ-बाएँ करता। जहाँ अवसर मिलता कुछ न कुछ बचाकर चुपचाप अपनी जेब में रख लेता। जो कुछ मिलता, अपने लिए अधिक रखकर दूसरों को कम देता। शाम को भगवान के पास जाता। प्रेम और श्रद्धा से सिर झुकाता और चुपचाप अपने घर लौट जाता।

बेईमान की उन्नति होती गई। ये देखकर ईमानदार को बड़ी जलन हुई। अपने भगवान से शिकायत की—"प्रभुवर, मैंने आपकी भक्ति सच्चाई और ईमानदारी से की, पर आपने दिया बेईमान को सब कुछ।"

भगवान हँसे और बोले—"वत्स, बार-बार माँगकर परेशान करने की अपेक्षा तो तुम भी वैसा ही करते तो क्या बुरा था ? अपने किये का भरपूर इनाम माँगते रहने पर तुम्हारी सेवा और साधना का महत्त्व ही क्या रह जाता ? आत्म-सन्तोष के रूप में हमारा जो स्नेह और आशीर्वाद तुम्हें मिलता है, क्या उतने से सन्तुष्ट नहीं रह सकते ?"

भक्त का समाधान हो गया। उसने अनुभव किया आत्म-सुख और आत्म-शक्ति रूपी ईश्वर अनुग्रह के आगे एक सज्जन के लिए धन-वैभव का कोई मूल्य नहीं।

दो दीपक

मनीषी जीलानी रात्रि के पहले प्रहर में राज्य के आदेशानुसार एक पुस्तक लिखा करते थे और चौथे प्रहर को अपनी पूजा-आराधना में लगाते थे। दोनों काम वे रात में ही करते थे। दिन दूसरे कामों में बीत जाता था।

उनके पास दो दीपक थे। जब पुस्तकें लिखते तो एक दीपक जलाते और जब पूजा का समय आता तो दूसरे दीपक को जलाया करते थे।

एक मित्र ने कारण पूछा तो उन्होंने बताया, "पुस्तक, राज्य के लिए लिखी जाती है, इसलिए उनमें तेल राज्य का जलता है और पूजा मेरी व्यक्तिगत है, इसलिए इसमें निजी तेल जलाता हूँ।" सत्कर्म तो तभी सफल होते हैं जब वे सच्चे मन और धर्म उपार्जित साधनों से सम्पन्न किए जाएँ।

लक्ष्मी का सनातन नियम

राजा रघु ने एक बार सर्वमेध यज्ञ किया और उसके पास जो कुछ भी था सो ब्रह्मकर्म के लिए दान कर दिया। सम्पत्ति के नाम पर मिट्टी का जल पात्र और कुश का आसन ही शेष था।

ऋषि कौत्स तक राजा की दानशीलता का समाचार पहुँचा, तो वे गुरुदक्षिणा चुकाने के लिए अभीप्सित धन की याचना करने रघु के पास पहुँचे।

वहाँ दृश्य दूसरा ही था। राजा सब कुछ दे चुके थे। आसन और मृतिका पात्र के अतिरिक्त उनके पास और कुछ शेष न था। कौत्स ने ऐसी दशा में कुछ कहना उचित न समझा और निराश वापस लौट चले।

रघु को उनका मनोरथ विदित हुआ तो ऋषि को वापस बुला लिया और कहा, "आप यहाँ निवास करें, जल्दी ही आपके अभीप्सित धन का प्रबन्ध हो जाएगा।" कौत्स ठहर गये और रघु लक्ष्मी की प्रार्थना करने लगे।

लक्ष्मी ने राजा की परमार्थ कामना को समझा और राज-कोष को विपुल स्वर्ण राशि से भर दिया। राजा ने कौत्स को अभीप्सित दान देकर सन्तुष्ट कर दिया।

कौत्स से आश्चर्यान्वित हो लक्ष्मी से पूछा—"आपने राजा की तनिक-सी याचना पर उन्हें विपुल उपहार कैसे दे डाला ?" तो लक्ष्मी ने कहा—"ऋषिवर, धर्म के प्रति आस्थावान व्यक्ति परमार्थ प्रयोजन के लिए जो प्रयत्न करते हैं, उन्हें अपूर्ण नहीं रहने देती। मेरा यह सनातन नियम यदि आपको अब तक विदित न हो, तो अब समझ लें।"

दो पैसे की सिद्धि

बिना नाव की सहायता के योगी ने जल पर चलकर नदी को पार किया। उसे अपनी सिद्धि पर बहुत गर्व हुआ और सन्तोष भी।

अहंकार से तने हुए उस योगी को एक बूढ़े मछियारे ने देखा। उसने समीप जाकर साष्टांग प्रणाम करते हुए उनसे पूछा—"भगवन् ! जल पर तैरने की यह सिद्धि आपने कितने समय में प्राप्त की ?"

योगी ने अपना गर्वोन्नत मस्तक और भी ऊँचा उठाते हुए कहा—"पूरे बीस वर्ष कठोर तपस्या करके मैंने यह सिद्धि प्राप्त की है।"

बूढ़े ने खिन्न होकर कहा—"आपका इतना लम्बा समय व्यर्थ ही चला गया। जो काम नाव वाले को दो पैसे देकर पूरा हो सकता था, उसके लिए इतना कष्ट उठाने की क्या जरूरत थी ?"

मृत्यु-दूत

सृष्टि का निर्माण कार्य पूर्ण हो गया तो प्रजनन बढ़ते रहने से मनुष्यों की संख्या बहुत बढ़ने लगी। इस अभिवृद्धि से चिन्तित होकर ब्रह्माजी ने अपने तपोबल से मृत्यु को जन्म दिया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नवोढ़ा युवती के रूप में मृत्यु ने पितामह को प्रणाम किया और अपने जन्म का प्रयोजन उनसे पूछा।

ब्रह्माजी ने अपना अभिप्राय बताया और कहा—"मनुष्यों की बढ़ोत्तरी न होने पावे इसलिए तुम उन्हें मार-मार कर परलोक में भेजती रहा करो।"

मृत्यु यह वीभत्स कर्म करने को तैयार न थी। निरपराध जीवों का वध करना कितना निर्दयतापूर्ण और कुत्सित है ? वह आजीवन ऐसा कर्म कैसे करती रहेगी ? नित्य ही असंख्यों का अभिशाप क्यों ओढ़ती रहेगी ? इस कल्पना ने उसे विचलित कर दिया। वह फूट-फूटकर रोने लगी।

ब्रह्माजी ने उसे बहुत कुछ समझाया कि इसमें तुम्हारा कुछ दोष नहीं, सृष्टि का सन्तुलन रखने के लिए कर्तव्य समझकर कार्य करो, इसमें तुम्हें कुछ भी पाप न लगेगा।

इन उपदेशों का मृत्यु पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। वह रोती ही रही और मुँह को हाथों से ढके धेनुकाश्रम के समीप वाले वन में चली गई। वहाँ जाकर उसने घोर तप करना आरम्भ कर दिया।

ब्रह्माजी का आसन डोला, वे दयार्द्र होकर धेनुकाश्रम पहुँचे और मृत्यु से पूछा—"पुत्री ! तुम्हारी क्या कामना है ? मुझसे कहो।"

मृत्यु ने कहा—"पितामह मुझसे यह कुत्सित कर्म न हो सकेगा। मैं निर्दोष प्राणियों का वध करूँ ऐसी मेरी मनःस्थिति नहीं है। मुझे इस पाप से बचाइये इतना ही आपसे चाहती हूँ।"

ब्रह्माजी असमंजस में पड़ गये। वे करते भी क्या ? बढ़ती हुई प्रजा का नियमन किए बिना और कोई मार्ग न था। मृत्यु उसके लिए तैयार न थी। निदान उन्हें एक उपाय सूझा और मुसकराते हुए उन्होंने मृत्यु के सामने एक दूसरा विकल्प रख दिया।

प्रजापति ने कहा—"मैं आठ काल-दूतों को पृथ्वी पर भेजता हूँ। वे आदमियों के मन में प्रवेश कर उन्हें भीतर ही भीतर खोखला करते रहेंगे। इनके चंगुल में फँसे रहने के कारण वे अपनी आग में आप ही जलते रहेंगे और इस प्रकार जब वे मरणासन्न हो जाएँगे तो क्लेश से शान्ति पाने के लिए तुम्हारे सुखकर आश्रय को स्वयं ही ढूँढ़ने लगेंगे। तुम उनको आश्रय दे दिया करना। फिर तुम्हारा कार्य निष्ठुरता न रहकर दया और सान्त्वना का बन जाएगा।"

मृत्यु सन्तुष्ट हो गई। उसने यह कार्य करना स्वीकार कर लिया। प्रजापति ने मृत्यु से उन कालदूतों का परिचय कराया और बताया कि इनके नाम—(१) असंयम, (२) आवेश, (३) ईर्ष्या, (४) लोभ, (५) निष्ठुरता, (६) अशिष्टता, (७) तृष्णा और (८) आलस्य हैं। ये जहाँ रहेंगे वहाँ मन्द और तीव्र गति से आदमी स्वयं ही मरणासन्न होते रहेंगे।

डरो मत कारण समझो

नरेश भद्रबाहन ने निषेधाज्ञा प्रसारित की कि आज से कोई भी नागरिक रात्रि में विचरण नहीं किया करेगा, ऐसा करने वाला अपराधी होगा और उन्हें दण्ड दिया जाएगा।

एक रात जब सैनिक गश्त लगा रहे थे तो उन्होंने किसी व्यक्ति को एक ओर जाते देखा। उन्हें रोककर पूछा—"कौन हो ? तुम्हें पता नहीं रात में घूमना अपराध है ?" वह व्यक्ति चतुर था उसने सोचा यदि डर गये तो सैनिक बन्दी बना लेंगे, इसलिए उसने कड़ककर कहा मुझे टोकते हुए तुम्हें भय नहीं लगा, मूर्खो ! स्वयं नरेश मेरी सम्मति से काम करते हैं।"

सिपाही डर गये। उन्होंने सोचा कोई सचिव या राजपुरोहित होंगे सो चुप पड़ गये। सिपाहियों के पीछे ही भद्रबाहन भी निरीक्षण के लिए निकले थे, उन्होंने जब सिपाहियों को डरते देखा तो स्वयं आगे बढ़कर बोले—"ठहरो पहले यह बताओ कौन हो ?" इस बार तो वह व्यक्ति घबरा गया और महाराज के चरणों में गिरकर बोला, "महाराज ! मैं दस्युराज आभंतक हूँ।" सिपाहियों ने आगे बढ़कर उसे बन्दी बना लिया।

भद्रबाहन ने सिपाहियों को समझाया, "देखो डरा मत करो, डरने से पूर्व उसका कारण जानने का साहस किया करो।"

संकल्प सर्वोपरि शक्ति

पत्थर की एक चट्टान को देखकर शिष्य ने बुद्ध से पूछा—"भगवन् ! क्या इस चट्टान पर किसी का शासन संभव है ?"

"पत्थर से कई गुनी शक्ति लोहे में होती है। इसलिए लोहा पत्थर को तोड़कर टुकड़े-टुकड़े कर देता है।" भगवान बुद्ध ने शिष्य की जिज्ञासा को शान्त करते हुए उत्तर दिया। "तो फिर लोहे से भी कोई वस्तु श्रेष्ठ होगी ?" शिष्य ने प्रश्न किया—"क्यों नहीं ? अग्नि है। जो लोहे को गलाकर द्रव्य रूप में बना देती है।"

"अग्नि की विकराल लपटों के सम्मुख किसी की क्या चल सकती होगी ?"

"केवल जल है जो उसकी गर्मी को शीतल कर देता है।"

"जल से टकराने की फिर किसमें ताकत होगी ? प्रतिवर्ष बाढ़ तथा अतिवृष्टि द्वारा जन और धन की अपार हानि होती है।"

"ऐसा क्यों सोचते हो वत्स ! इस संसार में एक से एक शक्तिशाली पड़े हुए हैं। वायु का प्रवाह जलधारा की दिशा बदल देता है। संसार का प्रत्येक प्राणी वायु के महत्त्व को जानता है, क्योंकि इसके बिना उसके जीवन का महत्त्व ही किया है ?"

"जब प्राण ही जीवन है, फिर इससे अधिक महत्त्वपूर्ण वस्तु के होने का प्रश्न ही नहीं उठता।"

"अब भगवान बुद्ध को हँसी आ गई उन्होंने कहा—"आदमी की संकल्प शक्ति द्वारा वायु भी वश में हो जाती है। मानव की यह शक्ति ही सबसे बड़ी है।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अहंकार बाधक

शरद् पूर्णिमा की रात्रि को प्रकाशवान चन्द्रमा देखकर महर्षि वशिष्ठ ने अपनी पत्नी अरुन्धती से कहा—"प्रिये ! आज का चन्द्रमा वैसा ही दीप्तिमान हो रहा है, जैसा विश्वामित्र का तप।"

विश्वामित्र की प्रशंसा वशिष्ठ के मुँह से सुनकर अरुन्धती खिन्न हुई। उनके सौ पुत्रों को निर्मर्मतापूर्वक मार डालने वाले की ऐसी प्रशंसा वे सुन न सकीं और व्यंग्य से कहा—"यदि वैसा ही है, तो आप उन्हें ब्रह्मर्षि क्यों नहीं कहते और उनके रोष को शान्त क्यों नहीं करते ?"

वशिष्ठ गम्भीर हो गये। उन्होंने कहा—"भद्रे, सद्गुणों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करना हमारा कर्तव्य है। उनमें दोष एक ही है और वह है, अहंकार। अहंकार से ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध और विक्षोभ उत्पन्न होता है और उसी से प्रेरित होकर आदमी बुरे काम करने लगता है। विश्वामित्र की धवल तपश्चर्या अहंकार से रहित हुई होती तो वे आज संसार के एक महान् पुरुष ही हुए होते।"

विश्वामित्र एक कुटिया के पीछे ही छिपे हुए थे। व वशिष्ठ को अपना शत्रु समझते थे और वे चाहते थे कि वशिष्ठ उन्हें ब्रह्मर्षि घोषित करें अन्यथा वे उन्हें मार देंगे। अपने दोषों की ओर नहीं गुणों का ही उन्हें ध्यान था। अहंकार उन्हें ब्रह्मर्षि बनने की लालसा में उद्विग्न बनाये हुए था।

अरुन्धती और वशिष्ठ का पारस्परिक सम्भाषण सुनने के बाद विश्वामित्र ने जाना कि द्वेष से नहीं न्याय से प्रेरित होकर ही वशिष्ठ उन्हें ब्रह्मर्षि घोषित नहीं करते। जब तक दुर्भावना के साथ सोचा गया था, तब तक वशिष्ठ उन्हें अपने निन्दक और शत्रु दीख रहे थे जब उन्होंने तात्विक दृष्टि से सोचा तो वास्तविकता समझते देर न लगी। अब विश्वामित्र की दृष्टि में वशिष्ठ एक न्याय दृष्टि रखने वाले कर्तव्यनिष्ठ, सज्जन मित्र बन गये। सोचने का तरीका ठीक होते ही सब कुछ ठीक हो गया।

आत्म-निरीक्षण करते ही अहंकार गला, जहाँ अहंकार हटा वहाँ न द्वेष रहता है और न क्रोध। विश्वामित्र को लगा कि अनुचित माँग को ठुकराने वाले वशिष्ठ उनके शत्रु नहीं, सच्चे मित्र हैं। वे देर तक छिपे न रह सके। कुटिया के पिछवाड़े से निकलकर सामने आये और महर्षि के चरणों में गिरकर क्षमा माँगने लगे।

वशिष्ठ ने 'ब्रह्मर्षि' कहकर उन्हें छाती से लगा लिया। अहंकार गलित हो जाने के बाद निकृष्टता का स्तर रहता ही कहाँ है ? विश्वामित्र जब भीतर से बदले तो उनका बाहरी स्तर बदलने में क्यों कठिनाई होती ? दर्प और द्वेष से जो चाहते थे, वह उन्हें नहीं मिला, पर हृदय परिवर्तन होते ही सारी बाधाएँ दब गईं। वशिष्ठ द्वारा घोषित विश्वामित्र सर्वत्र ब्रह्मर्षि के नाम से पुकारे जाने लगे।

लक्ष्मी का वास

उत्तरायण सूर्य आने पर प्राण त्यागने की प्रतीक्षा में शर-शय्या पर पड़े हुए भीष्म पितामह से युधिष्ठिर ने विनयपूर्वक कहा—"भगवन् ! लक्ष्मी का निवास कहाँ रहता है ? यह रहस्य कृपापूर्वक मुझे बता सकें तो वैसा अनुग्रह कीजिए।"

भीष्म पितामह ने उत्तर दिया—"राजन् ऐसा ही प्रश्न एक बार रुक्मिणी ने साक्षात् लक्ष्मीजी से पूछा था। उन्होंने स्वयं जो उत्तर दिया उसे ही मैं तुम्हें सुना रहा हूँ।"

लक्ष्मी बोलीं—"हे रुक्मिणी ! मैं ऐसे लोगों के यहाँ रहती हूँ जो निर्भीक, क्रिया-कुशल, कर्तव्यपरायण, हँसमुख, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय तथा सत्परायण हों। जो लोग गुरुजनों का सम्मान करते हैं, मन को वश में रखते हैं, परिश्रम करते हैं, समय नहीं गँवाते और जागरूक रहकर सब काम करते हैं, छोटों को क्षमा करते हैं, ईर्ष्या-द्वेष से बचे रहते हैं, उन दूरदर्शी मनुष्यों के यहाँ मैं सदैव ही बनी रहती हूँ।

किन्तु जो आलसी, क्रोधी, कृपण, व्यसनी, अपव्ययी, दुराचारी, कटुवचन बोलने वाले, अदूरदर्शी और अहंकारी होते हैं, उनके कितने ही प्रयत्न करने पर भी मैं अधिक दिन नहीं ठहरती।

जिन घरों में स्त्रियों को सम्मानित और सन्तुष्ट रखा जाता है, देव पूजन और स्वाध्याय होता है, जहाँ सब लोग ध्यानपूर्वक मिल-जुलकर रहते हैं, अनुशासन में रहते हैं, उदारता बरतते और प्रसन्नचित्त रहते हैं, वहाँ से अन्यत्र जाने को मेरा मन नहीं करता। परन्तु जहाँ जुआ, परनिंदा, देर से उठना, चटोरपन, मिथ्याचार, सज्जनों का उपहास और धर्म के प्रति उपेक्षा रहती है, वहाँ क्षण भर ठहरना भी मुझे कष्टकारक होता है।"

कोई सुनता नहीं

अमरीका की एक पचास मंजिली इमारत का लिफ्ट खराब हो गया। सबसे ऊपरी मंजिल में स्थित एक कार्यालय के कर्मचारी जब सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर जाने लगे तो उन्होंने समय काटने के लिए तय किया कि प्रत्येक बारी-बारी से एक छोटी कहानी सुनाता चलेगा। कहानी सुनने का जब दौर चल रहा था, तो एक कर्मचारी बीच में टोकने का बार-बार प्रयत्न करता, किन्तु सब लोग उसे चुप करा देते। मंजिल निकट आने पर जब उसकी बारी आयी तो लोगों ने उससे कहा, "हाँ भाई, अब तू सुना, तब से क्या बीच में टोक रहा था ?"

"मैं केवल यही कहना चाहता था," उसने संजीदगी से कहा, कि कार्यालय की चाबी तो नीचे मोटर में ही रह गयी है।

पहले मन के बोझ हटाओ

एक चोर एक सन्त के पास जाया करता था और रोज ही उनसे ईश्वर-दर्शन का उपाय पूछा करता था। महात्मा जी कभी अवसर आने पर बताने की बात कहकर उसे टाल दिया करते थे।

एक दिन चोर ने बहुत आग्रह किया तो महात्माजी ने पहाड़ की ऊँची चोटी की ओर इशारा करते हुए कहा, "तुम वहाँ तक मेरे साथ छह पत्थर सिर पर रखकर चल सको, तो वहाँ पहुँचकर मैं तुम्हें उपाय बता सकता हूँ।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चोर तैयार हो गया। सन्त जी ने छह पत्थर उसके सिर पर रख दिए और पीछे-पीछे चले आने का इशारा करके वे आगे चलने लगे।

कुछ ही दूर चला कि चोर हाँफने लगा, उसने महात्मा जी से कहा—"भगवन् ! बोझा बहुत है। इतने भार को लेकर मैं आगे नहीं चल सकता।" सन्त ने एक पत्थर उतार दिया। चोर चलने लगा, पर कुछ दूर जाकर वह फिर लड़खड़ाने लगा। एक पत्थर और उतारना पड़ा। यही क्रम आगे भी चला। कुछ दूर चलने पर चोर थक गया और सन्तजी को एक पत्थर और उतारना पड़ा। अन्त में सभी पत्थर उतार देने पड़े, तब कहीं वह चोटी तक साथ चल सकने में सफल हो सका।

चोटी पर पहुँचकर सन्त ने कहा—"भाई ! जिस प्रकार तुम छह पत्थर रखकर चोटी तक पहुँच सकने में समर्थ न हुए उसी प्रकार जीव काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर के छह मनोविकारों का भार ढोता हुआ ईश्वर दर्शन में सफल नहीं हो सकता। यदि ईश्वर तक पहुँचना हो, तो वह मनोविकारों के पत्थर उतार फेंकने ही पड़ेंगे, इसके सिवा और कोई रास्ता नहीं।"

एकाग्रचित्त हो, तो सफलता मिलेगी

युद्ध के मोर्चे पर नियुक्त एक सैनिक ने सोचा, यह भी कोई जिन्दगी है। हर जगह रक्तपात और बन्दूकों की धायँ-धायँ। वह सेना से भागकर गाँव आ गया। वहाँ उसने खेती करनी शुरू की। यहाँ भी हजार संकट समय पर बीज और खाद की व्यवस्था न हो पाती। फसल पककर तैयार होती तो गाँव के महाजन अपना पैसा वसूल करने के लिए खलिहान में ही आ जाते। न रात को चैन और न दिन को आराम, हर समय झंझट ही झंझट। कभी जंगली पशुओं से बचाव के लिए रात-रात भर घर से बाहर रहना और कभी हरी-भरी फसल को ओले-पाले से हानि पहुँचती तो वह भाग्य को कोसने लगता।

उसे खेती की झंझट बिल्कुल पसन्द न आई। गाँव का जीवन नीरस लगा और शहर की चकाचौंध में आया, एक मकान किराये पर ले लिया। कारखाने में नौकरी कर ली। निश्चित समय पर कारखाने जाना और आठ घण्टे की कड़ी मेहनत के बाद घर लौटना। इतने परिश्रम के बाद थककर उसका शरीर चूर-चूर हो जाता। उसकी कहीं इच्छा घूमने-फिरने की भी न होती। महीने के बाद निश्चित धनराशि वेतन के रूप में मिलने लगी। उस बँधी रकम से ही तो उसे अपना गुजारा करना पड़ता था।

कुछ समय आराम से व्यतीत हुआ फिर उसका मन डगमगाने लगा। अब उसे शहरी जीवन में भी कोई आकर्षण नहीं दिखाई दे रहा था। रात को सोया तो उसे सपने में सुनाई दिया "जीवन से भागने वाले व्यक्ति को कभी सुख नहीं मिल सकता। ऐसे व्यक्ति अपना जीवन ही नष्ट कर लेते हैं। जीवन का सच्चा सुख और आनन्द प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को, जिस मोर्चे पर वह कार्यरत है, मुस्तैदी से डटे रहना चाहिए।"

जवान की आँखें खुल गईं। उसे जीवन की दिशा प्राप्त हो गई। अब अधिक भटकने की आवश्यकता न रही।

आत्मविजय ही सच्ची विजय

भगवान परशुराम ने जिन अन्यायी राजाओं का संहार किया था, सहस्रार्जुन भी उनमें से एक था। उसके वंशजों ने एक दिन प्रतिशोधवश परशुराम की अनुपस्थिति में आश्रमवासियों पर आक्रमण कर दिया और उनके पिता जमदग्नि का भी वध कर दिया। संध्या से पूर्व परशुराम आश्रम लौटे। माँ का करुण विलाप सुनकर सीधे वहाँ पहुँचे जहाँ पिता का शव पड़ा था। शव पर इक्कीस आघातों के चिह्न थे। परशुराम ने बिना कुछ कहे पिता का शव कन्धे पर उठाया और माहिष्मती की ओर चल दिये।

कुरुक्षेत्र में पितृश्राद्ध कर पितरों का तर्पण किया। तृप्त पितामहों ने दर्शन दिया और पूछा—"वत्स परशुराम ! हम प्रसन्न हुए, क्या वर माँगते हो ?" परशुराम ने विनय की—"यदि आप प्रसन्न हैं, तो हमें वरदान दें कि मेरे सम्पूर्ण पाप धुल जाएँ। दिग्विजय की अपेक्षा आत्मविजय करूँ। तप में पुनःप्रीति हो।" पितृगणों ने एवमस्तु कहा और देवलोक चले गये।

इसके बाद परशुराम ने अश्वमेध यज्ञ किया और तदनन्तर तपस्या और आत्म-निर्वाण के लिए सह्याद्रि पर्वत चले गये।

मेहनत का मीठा फल

"अरी मूर्ख ! गौरैया तू दिन भर ऐसे ही तिनके चुनने में लगी रहेगी क्या ? छिः-छिः तू भी अजीब है, न कुछ मौज, न मस्ती बस वही दिन-रात परिश्रम, परिश्रम।"

कौवे की विद्रूप वाणी सुनकर भी गौरैया चुपचाप तिनका चुनने और घोंसला बनाने में लगी रही। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। कुछ दिन ही बीते थे, वर्षा ऋतु आ गई। एक दिन बादल घुमड़े और जोर का पानी बरसने लगा। गौरैया अपने बच्चों सहित घोंसले में छिपी रही और कौवा इधर-उधर मारा मारा फिरता रहा। शाम को वह गौरया के पास जाकर बोला—"बहिन ! सचमुच मुझसे भूल हुई जो तुझे भला-बुरा कहा, तुम्हें इस प्रकार सुरक्षित बैठे देखकर अब मुझे मालूम हुआ मेहनत का फल सदा मीठा होता है।"

उन्नति पर गर्व करना भूल है

हवा जोर की चलने लगी। धरती की धूल उड़-उड़कर आसमान पर छा गई। धरती से उठकर आकाश पर पहुँच जाने पर धूल को बड़ा गर्व हो गया। वह सहसा कह उठी—"आज मेरे समान कोई भी ऊँचा नहीं। जल, थल, नभ के साथ दसों-दिशाओं में मैं ही व्याप्त हूँ।"

बादल ने धूल की गर्वोक्ति सुनी। उसने धूल की भूल पर थोड़ा-सा अट्टाहास किया और अपनी धाराएँ खोल दीं। देखते ही देखते आसमान से उतरकर धूल जमीन पर पानी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के साथ दिखाई देने लगी, दिशाएँ साफ हो गईं, कहीं भी धूल का नामो-निशान तक न रहा।

पानी के साथ बहती हुई धूल से धरती ने पूछा—"रेणुके ! तुमने अपने उत्थान-पतन से क्या सीखा ?" धूल ने कहा—"माता धरती ! मैंने सीखा कि उन्नति पाकर किसी को गर्व नहीं करना चाहिए। गर्व करने वाले मनुष्य का पतन अवश्य होता है।"

सहिष्णुता का जादू

लुकमान जिस नगर में रहते थे वहीं एक सेठ भी रहता था, जो अपने नौकरों पर सख्ती करने के लिए मशहूर था। उसका एक नौकर जो हकीम लुकमान के ही रूप-रंग का था, एक दिन भाग खड़ा हुआ। उसकी खोज करते हुए सेठ की भेंट लुकमान से हो गई। उसने लुकमान को ही नौकर समझकर पकड़ लिया और घर लाकर काम में लगा दिया। लुकमान ने भी कोई प्रतिरोध नहीं किया, मेहनत से काम में जुट गये।

एक वर्ष में मकान बन गया। तब एकाएक वह पुराना नौकर भी उपस्थित हुआ और अपनी भूल के लिए सेठ से क्षमा-याचना करने लगा। सेठ यह बात तो भूल गया और यह चिन्ता छा गई कि धोखे से किसे पकड़ लिया। वह लुकमान के पास गया और बोला—"सच-सच कहिये आप कौन हैं ? मुझसे बड़ी गलती हो गई।"

"हकीम लुकमान"—लुकमान ने हँसकर कहा—"जो हुआ उसका दुःख न करो, तुम्हें अपने किए का फल मिल गया और मुझे मकान बनाने की विद्या मालूम हो गई।"

भविष्य का भी ध्यान रखा करो

कोयल और चींटी उद्यान में एक साथ रहकर आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत कर रही थीं। कोयल आम के वृक्ष पर बैठ सुमधुर गीत गाकर पथिकों को अपनी ओर आकर्षित करती रहती थी, तो चींटी वृक्ष की जड़ के पास एक छोटे छिद्र में रहकर दिन-रात अपनी भोजन व्यवस्था में जुटी रहती थी। एक दिन चींटी ने कोयल को बसन्त में अठखेलियाँ करते देखा तो मन ही मन सोचने लगी, सदैव दिन एक से तो रहते नहीं। थोड़े दिन बाद ही पतझड़ आया, पत्ते गिरने लगे और फूल मुरझाने लगे, अब कोयल की सहायता करने वाला कोई मित्र न था। उसने दूर-दूर तक सहायता के लिए दृष्टि डाली, अन्त में वह चींटी के पास गई और बड़ी नम्रता से सहायता के लिए याचना की।

चींटी बोली—"जब तुम झूम-झूमकर गाती और अठखेलियाँ करती थीं, तब शायद तुम भूल गई थीं कि प्रत्येक बसन्त के बाद पतझड़ भी आता है। प्रत्येक मार्ग का अन्त तो कहीं होता ही है। मैंने पतझड़ का ध्यान रखा। श्रम को समझा और अब मैं तुम्हारी मदद की स्थिति में हूँ।"

इन्द्रियजित

एक बार एक पुण्यात्मा गृहस्थ के घर एक अतिथि आये। उसके शरीर पर सारे कपड़े काले थे। गृहस्थ ने तनिक खिन्नता से कहा—"तुमने काले कपड़े क्यों पहन रखे हैं ?" "मेरे काम, क्रोधादि मित्रों की मृत्यु हो गई है। उन्हीं के शोक में ये काले वस्त्र धारण कर लिये हैं।" अतिथि ने उत्तर दिया।

गृहस्थ ने उक्त अतिथि को घर से बाहर निकाल देने का आदेश दिया। नौकर ने तत्काल आज्ञा पालन की। थोड़ी देर बाद उन्होंने अतिथि को वापस बुलाया और पास आते ही फिर निकाल देने की आज्ञा दी। इस प्रकार यह क्रम सात बार चलता रहा, किन्तु अतिथि तनिक भी खिन्न न हुए। अन्त में गृहस्थ ने अतिथि का सम्मान किया और अनुभव किया कि ये सच्चे इन्द्रियजित हैं।

लघुता से प्रभुता

गन्धमादन पर्वत पर आत्म-कल्याण की इच्छा से तप कर रहे महाराज अरिष्टनेमि के पास जाकर देवदूत ने कहा—"महाराज ! मुझे सुरपति इन्द्र ने भेजा है, उनका आग्रह है कि आप अभी मेरे साथ स्वर्ग चलें और वहीं निवास करें।"

"स्वर्ग !" महाराज ने आत्म-कल्याण की बात सुनी, स्वर्ग बीच में आ टपका तो उनको पूछना ही पड़ा—"भाई स्वर्ग की विशेषता क्या है ? क्या उसमें कुछ दोष भी हैं ?"

देवदूत बोला—"विशेषता यह है कि वहाँ सुख-भोग-साधन सुविधाएँ हर घड़ी उपलब्ध होती हैं। दोष यह है कि वहाँ का हर व्यक्ति अहंकार में डूबा हुआ होता है अतएव जैसे ही पुण्य समाप्त हुआ, वह फिर मृत्युलोक लौटा दिया जाता है।"

"तब फिर मैं यहीं ठीक हूँ, यहाँ लोगों की सेवा करता हूँ, अपने को भी उन्हीं जैसा छोटा व्यक्ति अनुभव करता हूँ। इससे आत्मा को शान्ति मिलती है। स्वर्ग उसके आगे फीका है", कहकर महाराज ने दूत को वापस लौटा दिया।

घिस-घिसकर परिमार्जित होने का परिणाम

पेड़ की ऊँची डाली पर लटके नारियल ने नीचे नदी में पड़े पत्थर को देखकर घृणापूर्वक कहा—"घिस-घिसकर मर जाओगे, लेकिन नदी के पैर न छोड़ोगे, अपमान की भी कोई हद होती है। मुझे देखो स्वाभिमानपूर्वक कैसे उन्नत स्थिति में मौज कर रहा हूँ। पत्थर ने चुपचाप नारियल की बात सुन ली, कोई उत्तर न दिया। कुछ समय बाद पूजा की थाली में रखे उसी नारियल ने देखा कि नदी का वही पत्थर शालिग्राम के रूप में पूजा-पीठ पर प्रतिष्ठित है जिसकी पूजा के लिए उसे नैवेद्य के रूप में लाया गया है, नारियल मन ही मन क्रोधित हो उठा। पत्थर ने नारियल का भाव समझा और कहा—"नारिकेलि ! देखा घिस-घिसकर परिमार्जित होने का परिणाम क्या होता है और अभिमान के मद में मतवाले रहने वालों की गति क्या हुआ करती है ?"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तोता रटन्त

एक सन्त के आश्रम में शिष्य कहीं से एक तोता ले आया और उसे पिंजरे में रख लिया। सन्त ने कई बार शिष्य से कहा कि इसे यों कैद न करो। परतन्त्रता संसार का सबसे बड़ा अभिशाप है।

किन्तु शिष्य अपने बाल सुलभ कौतूहल को न रोक सका और उसे यथावत् पिंजरे में बन्द किये रहा।

तब सन्त ने सोचा कि तोते को ही स्वतन्त्र होने का पाठ पढ़ाना चाहिए।

उन्होंने पिंजरा अपनी कुटी में मँगवा लिया और तोते को नित्य सिखाने लगे—"पिंजरा छोड़ दो, उड़ जाओ।"

कुछ दिन में तोते को वाक्य भली-भाँति रट गया। तब एक दिन सफाई करते समय भूल से पिंजरा खुला रह गया, सन्त कुटी में आये तो देखा कि तोता बाहर निकल आया है और बड़े आराम से घूम रहा है—"पिंजरा को छोड़ दो, उड़ जाओ।"

सन्त को आता देख वह पुनः पिंजरे के अन्दर चला गया और अपना पाठ बड़े जोर-जोर से दुहराने लगा। सन्त को यह देखकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ। साथ ही दुःख भी।

वे सोचते रहे—"इसने केवल दो शब्द को ही रटा। यदि यह इसका अर्थ भी जानता होता, तो यह इस समय स्वतन्त्र हो गया होता, इस कारागार से।"

ऐसे ही, कितने ही मनुष्य ज्ञान की बड़ी-बड़ी बातें तो करते हैं, किन्तु उनका मर्म नहीं जानते। वे भी समय तथा अवसर प्राप्त होने पर भी उसका लाभ नहीं उठा पाते और जहाँ के तहाँ रह जाते हैं।

सख्ती से अधिक स्नेह

एक खेत में कुछ मजदूर निराई-गुराई का काम कर रहे थे। एक घण्टा काम करने के बाद वे सब बैठकर सुस्ताने और गप हाँकने लगे। खेत के मालिक ने उनसे कहा कुछ नहीं, खुद खुरपी लेकर काम करने लगे। मजदूरों ने स्वामी को काम करते देखा तो शरमा गये और दौड़कर काम में जुट गये।

दोपहर हुआ। स्वामी मजदूरों के पास गया और बोला, "भाईयो, काम बन्द कर दो और खाना खा लो तथा आराम कर लो।" मजदूर खाना खाने चले गये और शीघ्र ही थोड़ा आराम करने के बाद फिर काम पर आकर डट गये। शाम को छुट्टी के समय पड़ोसी खेत वाले ने देखा कि उसका काम उससे दो गुना हुआ है। वह बोला—"भाई ! तुम मजदूरों को छुट्टी भी देते हो और डाँटते-फटकारते भी नहीं, तब भी तुम्हारा काम मुझसे ज्यादा होता है, जब कि मैं मजदूरों को छुट्टी नहीं देता और हर समय डाँटता-फटकारता भी रहता हूँ।"

साधु स्वामी बोला, "भय्या, काम लेने की नीति में, मैं सख्ती से अधिक स्नेह एवं सहानुभूति को पहला स्थान देता हूँ। इसलिये मजदूर पूरा जी लगाकर काम करते हैं, इससे काम ज्यादा भी होता है और अच्छा भी।"

दुःख का आशीर्वाद

श्रीराम वन जाने लगे। जाने से पूर्व उन्होंने गुरु वशिष्ठ से आज्ञा ली "गुरुदेव मुझे आशीर्वाद दें ताकि अपना व्रत सम्पन्न करने में दुर्बलता न आये ?" वशिष्ठ ने सहज स्नेह से पूछा—"राम ! निःसंकोच कहना—जाने की इच्छा न हो, तो वन जाना रद्द करा दूँ।"

राम की आँखें भर आईं। सिर झुकाकर उन्होंने कहा—"देव मुझे सुख नहीं चाहिए। राम का जन्म दुःख पाने के लिए है, मुझे दुःख का आशीर्वाद दीजिये।"

"दुःख किसलिये तात् !" वशिष्ठ ने साश्चर्य पूछा।

भगवन् ! श्रीराम ने विनीत भाव से उत्तर दिया—"सुख का देश तो आकाश और पृथ्वी की तरह निस्सीम है। मुझे योजनाभर देश का राज्य चाहिए।" वशिष्ठ राम के उत्तर से आत्म-विभोर हो उठे और उन्हें हृदय लगाकर आशीर्वाद दिया।

मिलकर खोज करें

एक दार्शनिक घर से निकला। मार्ग में एक और दार्शनिक मिल गया। पहले दार्शनिक ने पूछा—"कहिये महाशय ! आज किधर चल पड़े ?" उसने उत्तर दिया—"उस पार पर्वत उपत्यिका है, वहाँ सौन्दर्य के सागर की खोज करने जा रहा हूँ और आप ?" उसने भी प्रश्न किया। अब पहले दार्शनिक ने उत्तर दिया—"मैं तो मृत्यु के रहस्य की खोज करने जा रहा हूँ।"

अब परस्पर एक-दूसरे के उद्देश्य पर टीका-टिप्पणी शुरू हो गई, जो शीघ्र ही कटुता और झगड़े में बदल गई। सामने से एक अनपढ़ व्यक्ति आ रहा था, उसने सब बात सुनी और हँसकर बोला—"बुद्धिमानों, दोनों मिलकर प्रयत्न करते तो न झगड़ा होता न टकराव, दोनों के उद्देश्य पूरे हो जाते।"

औरों को भी सिखाओ

चार बजे प्रातःकाल मुर्गे ने बाँग दी। उसे सुनकर पड़ोसी मुर्गा भी बोल उठा। पहला मुर्गा गुस्से से गुर्राया—"बदतमीज ! मेरा अधिकार छीनता है, फिर मत बोलना, नहीं तो मार डालूँगा।"

छोटे मुर्गे ने कहा—"भाई कहते तो ठीक हो, पर एक बात बताओ, क्या बाँग देना माँ के पेट से सीखकर आये हो ?" बड़े मुर्गे को कुछ उत्तर देते न बना। पास ही एक बूढ़ा मुर्गा बैठा था, उसने समझाया—"भाई, अच्छी चीज यदि आप सिखा नहीं सकते, तो अनुकरण कर लेने देने में क्या बुराई है, ग्रामवासियों को समय पर जगाने मे वह आपकी मदद ही करता है।"

जो लोग अपनी प्रतिष्ठा से न गिर जाए इस डर से दूसरों को विद्याएँ नहीं सिखाते, वे सब बड़े मुर्गे की तरह हैं, जो छोटे मुर्गे की तरह अच्छे काम आप सीखने का प्रयास करते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शान्त बनाम एकान्त

दिन का अधिकांश समय, एक बच्चा एकान्त में बिताता। न खाने में कोई तर्क, न बाहर निकलने की इच्छा। कहीं जाता और अपनी राह आप लौट आता।

पिता को चिन्ता हुई। एक दिन पूछ ही लिया—"बेटा ! आजकल काम-धन्धा कुछ नहीं करते। कुछ कष्ट रहता है क्या ?"

बेटे ने विनीत भाव से उत्तर दिया—"पिताजी ! आप ही तो कहते थे, मनुष्य को शान्ति का जीवन बिताना चाहिए।" पिता ने हँसकर कहा—"बेटे चुपचाप पड़े रहने का नाम शान्ति नहीं। कैसी भी स्थिति हो धैर्य रखकर, अनिवार्य दुःखों को स्वयं वीरतापूर्वक झेलता हुआ भी उद्विग्न न हो उसे शान्ति कहते हैं।"

मेरा मुख्य काम पीड़ितों की सेवा करना है

एक बार महात्मा ईसा अपने विचार प्रकट करने और प्रश्नों का उत्तर देने के लिए एक सभा में बुलाए गये। सभा में पहुँचते ही उन्होंने देखा कि वहाँ उपस्थित एक व्यक्ति हाथ की पीड़ा से बहुत कष्ट पाता हुआ कराह रहा है। महात्मा ईसा तुरन्त उसका उपचार करने में लग गए। उसका यह कृत्य देख विरोधियों ने समझा कि वे सभा की कार्यवाही से कतरा रहे हैं। निदान एक ने व्यंग्य करते हुए कहा—"ईसा, तू तो शास्त्रार्थ करने आया है फिर उस मुख्य कार्य को छोड़कर हकीमी कैसे करने लगा ?"

महात्मा ईसा ने बड़े शान्त भाव से उत्तर दिया—"क्या तुममें से कोई ऐसा है, जिसके एक ही भेड़ हो और वह कुएँ में गिर जाय, तो वह सारा काम छोड़कर उसे निकालने में न लगे ?

मेरा मुख्य काम तो पीड़ितों की सेवा करना है, लोगों का दुःख-दर्द दूर करने का है। शास्त्रार्थ तथा व्याख्यान तो जीवन के साधारण कार्यक्रम हैं।"

आगे का काम आगे करो

एक थे राजा। एक दिन उन्होंने मन्त्रियों और सभासदों में प्रश्न किया, "किसी काम के लिए अवसर कैसे जानना चाहिए ?" ग्रह-नक्षत्रों की गति जानने वाले ज्योतिषी से पूछकर। किसी ने कहा—"बुजुर्गों से पूछकर काम का समय निश्चित करना चाहिए।" पर इन उत्तरों से राजा का मानसिक समाधान न हुआ। तब वे एक साधु के पास पहुँचे और वही प्रश्न किया।

साधु कुछ न बोला। कुटी के सामने क्यारियाँ गोड़ता रहा। राजा चुपचाप लौट आया।

दूसरे दिन पानी बरसता रहा, राजा वहाँ न जा पाए। तीसरे दिन वह कुटी पर पहुँचे और अपना प्रश्न दुहराया, पर पहले की भाँति आज भी वह साधु क्यारियों में पेड़ लगाते रहे।

शाम हुई, राजा ने प्रश्न किया—"भगवन् ! आपने मेरे प्रश्न का समाधान नहीं किया।" साधु ने हँसकर कहा—"तुम्हारे प्रश्न का उत्तर तो उसी दिन दे चुका, पर तुम समझे ही नहीं।"

अब राजा की समझ में आया—जो काम सामने है वही सबसे उपयुक्त अवसर है। उसी में जुटे रहने से हर काम समय पर पूरे हो जाते हैं।

कटुता बनाम आत्म-कल्याण

नदी तट पर एक पण्डितजी रहते थे। उनका स्वभाव बड़ा सौम्य और मिलनसार था। मेहनत और ईमानदारी से उनका जीवन सुख से चल रहा था। एक दिन पण्डितजी को आत्मा की खोज की इच्छा पैदा हुई। धीरे-धीरे ऐसा रंग चढ़ा कि वह दुनिया के कामों से विमुख होकर आत्मा की खोज में लग गये। घर में कोई काम होता तो घर वालों को झिड़क देते। बात-बात पर उन्हें गुस्सा आने लगा। रात-दिन उन्हें आत्मा की खोज की धुन सवार रहती। इससे उनके पारिवारिक सम्बन्धों में कटुता आ गई। धीरे-धीरे उन्हें अनुभव होने लगा कि उनका जीवन नरकमय होता जा रहा है। एक दिन रात में पण्डितजी ध्यान में लीन थे कि उनकी आत्मा के अन्धकार में प्रकाश फैला और सुना—"पण्डितजी, तुम गलत राह जा रहे हो। जीवन में कटुता से बढ़कर कोई बुराई नहीं है। आत्मा तो तुम्हारे अन्दर ही है। उसे खोजने के लिये तुम बाहर क्यों भटक रहे हो ? जीवन में शान्ति, सौम्यता और मधुर सम्बन्ध ही आत्मा के लक्षण हैं।"

सन्त बनाम धूर्त

किसी ने एक सन्त से पूछा—"महाराज ! अब सन्त और धूर्त सब एक ही तरह के कपड़ों में विचरण करने लगे, तब तो हम लोगों के लिए बड़ी कठिन समस्या खड़ी हो जाती है। कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे धूर्तों से बचकर हम सन्तों की सेवा कर सकें।"

सन्त ने मुसकराते हुए कहा—"इसमें कौन-सी बड़ी बात है ? धूर्त सेवा करवाने के फेर में रहते हैं और सन्त सेवा करने के फेर में। सन्त जैसा व्यवहार करता है, धूर्त का व्यवहार अपनी कार्य-सिद्धि के लिए चापलूसी और चतुराई से भरा रहता है। धूर्त माँगता है और सन्त देता है।"

ज्ञान ही सच्चा तीर्थ-स्थान

प्रयाग के सेट्टिराज की कन्या अर्बुद पांचाल के धनी सेठ पुत्र मणियार को ब्याही गई। अर्बुद शिक्षिता थी, ज्ञानवान थी, वैसे ही उसके विचार, कार्य, योजनाएँ भी स्वच्छ और पवित्र होती थीं। ससुर के यहाँ पैर रखते ही उसने घर को एक नई रोशनी में बदल दिया।

मणियार महान् ईश्वर भक्त था, किन्तु उसका वैयक्तिक जीवन कुविचार और बुरे आचरणों में ग्रस्त होने के कारण, दुःखी और अशान्त था।

अर्बुद ने कहा—"स्वामी दुःख और अशान्ति का कारण स्वच्छ मन है, आप ज्ञान के प्रकाश से पहले अन्तरतम को मिटाइये, तभी शान्ति मिलेगी। मणियार ने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कहा—"नहीं ! हम लोग तीर्थ-स्नान करने चलेंगे। तीर्थ-स्नान से मन पवित्र हो जाता है।"

अर्बुद स्त्री थी, झुकना पड़ा। तीर्थ-यात्रा पर चलने से पूर्व उसने एक पोटली में कुछ आलू बाँध लिए। जहाँ-जहाँ मणियार ने स्नान किया, उसने इन आलुओं को भी स्नान कराया। घर लौटते-लौटते आलू सड़ गए। अर्बुद ने उस दिन भोजन की थाली में वह आलू भी रख दिए। उनकी दुर्गन्ध पाकर मणियार चिल्लाया--"यह दुर्गन्ध कहाँ से आ रही है ?"

अर्बुद ने हँसकर कहा—"यह आलू तो तीर्थ-स्थान करके आये हैं फिर भी इनमें दुर्गन्ध है क्या ?" मणियार समझ गया यदि मन को ज्ञान के जल से न धोया जा सका तो सचमुच तीर्थ-स्नान व्यर्थ है। वह उस दिन से ज्ञान आराधना में जुट गया।

भगवान की सच्ची सेवा

गुरुकुल के दो ब्रह्मचारी गंगा स्नान करने गये। स्नान करके कपड़े बदल रहे थे कि एक शोर सुनाई पड़ा, पीछे मुड़कर देखा कि एक छोटा बालक पानी में हाथ-पैर मार रहा है और नदी का बहाव उसे अपनी ओर लिए जा रहा है। प्रयत्न करने के बाद वह किनारे की ओर तनिक भी न बढ़ पा रहा है।

एक ब्रह्मचारी अपने कपड़े किनारे पर ही छोड़ फिर पानी में कूद पड़ा और थोड़ी ही देर बाद उस बालक को पानी से बाहर निकाल लाया। उस बच्चे को देख माता-पिता बहुत प्रसन्न हुए और सभी लोग जी भरकर उस ब्रह्मचारी की प्रशंसा करने लगे। दूसरे ब्रह्मचारी ने सोचा कि अब ध्यान का समय हो गया है, अतः आसन बिछाकर वहीं सन्ध्या करने लगा।

दोनों ब्रह्मचारी साथ-साथ गुरुकुल लौट गये। शाम की प्रार्थना के समय अन्य शिष्यों ने उस ब्रह्मचारी के साहस की प्रशंसा की। दूसरा ब्रह्मचारी बोला—"गुरुदेव ! मैंने अपना वह समय भगवान के ध्यान में लगाया था।"

गुरुदेव अपने शिष्य की बात सुनकर दुःखी हुए उन्होंने कहा—"वत्स सचमुच तुमने आज बहुत बड़ा अपराध किया है। मरते इन्सान की पुकार को अनसुनी कर भगवान का ध्यान करने से कोई लाभ नहीं हो सकता।"

ईश्वर भक्त

खलीफा उमर एक बार अपने धर्म स्थान पर बैठे हुए थे। उन्हें स्वर्ग में एक फरिश्ता उड़ता हुआ दिखाई दिया, उसके कन्धे पर बहुत मोटी पुस्तक लदी हुई थी ? खलीफा ने उसे पुकारा वह नीचे उतरा तो उन्होंने उस पुस्तक के बारे में पूछा कि इसमें क्या है ? फरिश्ते ने कहा, "इसमें उन लोगों के नाम लिखे हैं, जो खुदा की इबादत करते हैं।" इन्होंने अपना नाम तलाश कराया तो फरिश्ते ने सारी पुस्तक ढूँढ़ डाली, उनका नाम कहीं न मिला। इस पर खलीफा बहुत दुःखी हुए कि हमारा इतना परिश्रम बेकार ही चला गया।

कुछ दिन बाद एक और फरिश्ता छोटी-सी किताब लिए उधर से गुजरा। खलीफा ने उसे भी बुलाया और उस पुस्तक में क्या है ? यह पूछा। उसने उत्तर दिया—"इसमें उन लोगों के नाम हैं; जिनकी कि इबादत, खुदाबन्दा करीम खुद करते हैं।" खलीफा ने पूछा—"क्या ईश्वर भी किसी की इबादत करता है ?" फरिश्ते ने कहा—"हाँ, जो लोग खुदा के आदेशों का पालन करते हैं, उन पर दुनिया को चलाने की कोशिश करते हैं, उन्हें खुदा बहुत आदर की दृष्टि से देखता है और उनकी इबादत वह खुद करता है।" क्या इसमें मेरा भी नाम है खलीफा ने पूछा ? फरिश्ता बोला कुछ नहीं, पुस्तक वहीं छोड़कर आगे बढ़ गया। खलीफा ने खोलकर देखा तो उनका नाम सबसे पहला था।

निशाना

द्रोणाचार्य अपने शिष्यों को बाण विद्या सिखा रहे थे। उन्होंने एक लकड़ी की चिड़िया पेड़ पर टाँग दी और कहा कि इसकी गरदन पर निशाना लगाओ। वे बारी-बारी से शिष्यों को बुलाते और निशाना लगाते समय पूछते, "तुम्हें क्या दिखाई दे रहा है ?" शिष्य बताते कि पेड़, उसकी डाली, पत्ते, चिड़िया से बँधी हुई रस्सी आदि सभी दीखती हैं। उन्हें अनुत्तीर्ण घोषित करके गुरु बिना निशाना लगाये ही लौटा देते। अन्त में अर्जुन आये उनसे वही प्रश्न पूछा गया तो उन्होंने कहा—"मुझे केवल चिड़िया की गर्दन दीखती है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।" तो द्रोणाचार्य ने उन्हें तीर चलाने की आज्ञा दे दी, निशाना ठीक जगह पर लगा।

और अधिक प्रेम दीजिए

आचार्य हरिद्रुमत यज्ञ संचालन के लिये गांधार जा रहे थे। मार्ग में एक ऐसा गाँव मिला, जहाँ के बारे में यह प्रचलित था कि उस गाँव का एक व्यक्ति भी नास्तिक नहीं है।

किन्तु यह क्या, जिस समय वे एक गली से गुजर रहे थे, एक गृहस्थ अपने बच्चे को बुरी तरह ताड़ना दे रहा था। गृहस्थ उस समय गुस्से से लाल हो रहा था।

हरिद्रुमत के पूछने पर उसने बताया—"महाराज ! नाराज न होऊँ तो क्या करूँ ? सारे गाँव में यही ऐसा है जो नास्तिक है, उससे मुझे अपयश मिलता है। आप ही बताइये क्या किया जाये ?"

"आप इस बालक के साथ और अपेक्षाकृत घनिष्ठ प्रेम कीजिये" हरिद्रुमत ने उत्तर दिया और आगे बढ़ गये। पिता और परिवार ने बच्चे को प्रेम दिया—प्रगाढ़ प्रेम—उसी का परिणाम था कि यही बालक आगे चलकर महान् धार्मिक सन्त उद्दालक के नाम से विश्वविख्यात हुआ।

देने का सुख

स्वामी विवेकानन्द के जीवन की एक घटना है। भ्रमण एवं भाषणों से परिश्रान्त स्वामी विवेकानन्द अपने निवास-स्थान पर लौटे। उन दिनों वे अमेरिका में एक महिला के यहाँ ठहरे थे। वे अपने ही हाथों भोजन बनाते थे। अपने स्वभाव के अनुसार वे भोजन करने की तैयारी ही कर रहे थे कि कुछ बच्चे पास से आकर खड़े हो गये। उनके पास बहुत बच्चे आया करते थे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

बच्चे भूखे थे। स्वामीजी ने अपनी सारी रोटियाँ एक-एक करके बच्चों में बाँट दीं। महिला वहीं बैठी सब देख रही थी। बड़ा आश्चर्य हुआ उसे! आखिर पूछ ही बैठी—"आपने सारी रोटियाँ तो उन बच्चों को दे डालीं, अब आप क्या खायेंगे ?"

स्वामी के अधरों पर मुसकान दौड़ गयी। उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—"माता, रोटी तो पेट की ज्वाला शान्त करने वाली वस्तु है। यदि इस पेट में न सही, तो उस पेट में सही।" देने का आनन्द पाने के आनन्द से बड़ा है।

सच्चा सौदा

"माँ मैं सौदा करके आ गया।"

"कौन-सा सौदा इतनी जल्दी कर आये बेटा ? सामान तो तुम्हारे पास कुछ दिखाई नहीं देता।"

"सामान वाला सौदा इस संसार के लोग करते हैं। उस संसार के सौदे के लिए सामान की आवश्यकता नहीं पड़ती और वही सौदा मैं करके आया हूँ।"

"कैसे ?"

"सारे रुपये का अनाज गरीबों में बाँट आया। माँ, वे बहुत भूखे थे। उनकी भूख मुझसे देखी नहीं गई।"

"खैर, अब कैसे भी अपने घर का काम चल ही जाएगा। इतनी चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है ?"

माँ बेटे के सौदे पर गद्‌गद् हो गई। दूसरों के दुःखों को अपना मानने वाला वह बालक नानक था। आगे चलकर वही गुरु नानक सिक्ख धर्म के प्रवर्तक बने।

अपना उद्धार आप करो

जैतवन में विशाल धर्म-सम्मेलन चल रहा था। उस दिन भगवान बुद्ध 'आत्मोद्धार' पर प्रवचन करने वाले थे। नारियों का समूह एक ओर, पुरुषों का दूसरी ओर शान्त मुद्रा में बैठा था। उस दिन भारी संख्या में बौद्ध भिक्षु भी प्रवचन प्रांगण में उपस्थित थे।

तथागत की गम्भीर वाणी प्रस्फुटित हुई। स्वर की ऊर्ध्वता बढ़ती गई। भगवान का भावना-प्रवाह उमड़ रहा था, वे कह रहे थे—"मुमुक्षो ! दूसरों के विचार पढ़ने, संकल्प जानने और भावनाओं की थाह लेना तुम्हारे लिए कठिन है पर अपनी परख सब आसानी से कर सकते हो। दूसरों को सुधारने की अपेक्षा जो अपने सुधार का प्रयत्न करता है, वह मोक्ष का सच्चा अधिकारी है। जिस तरह दर्पण में अपने चेहरे की मलीनता स्पष्ट हो जाती है और देखने वाला उसे ठीक कर लेता है, अपना मुख सुन्दर बना लेता है, उसी प्रकार भिक्षुओं ! अपनी चेतना के दर्पण में मन की मलीनताओं को देखो। तुम्हारे विचार निर्मल हैं या नहीं ? तुम कहीं इन्द्रियों के आकर्षण में तो नहीं पड़े। क्या लोभ और मोह तुम्हें परेशान कर रहा है ? क्या दुर्व्यसन तुम्हारे पीछे पड़े हैं ?

यदि उत्तर हाँ में मिले तो तत्काल अपनी दुर्बलताओं को मिटाने में जुट जाओ। देर और आलस्य न करो, आज जो गया तो फिर कल न आयेगा। आत्म-परीक्षण और आत्मसुधार के इस क्रम में विलम्ब न करोगे, तो मोक्ष के अधिकारी बनोगे याद रखो ! तुम औरों का नहीं अपना उद्धार आप कर सकते हो, उसी प्रयत्न में आज से अभी से जुट जाओ।"

भक्ति गीत

तानसेन सम्राट् अकबर के दरबारी गायक थे। एक बार अकबर तानसेन के गुरु हरिदासजी से मिले और उनके गायन को सुनकर मुग्ध हो गए।

अकबर ने तानसेन से कहा—"यों गाते तो आप भी अच्छा हैं, पर आपके गुरु के गायन में जो रस है, उसकी प्रशंसा हो सकती है।"

तानसेन ने कहा—"मेरे गुरु भगवान को प्रसन्न करने के लिए गाते हैं और मैं आपको प्रसन्न करने के लिए। स्वार्थ का अन्तर हर वस्तु के स्तर को गिराता और उठाता है, तो गायन पर भी वही सिद्धान्त क्यों लागू न होगा ?"

सत्य की उपासना करो

मनुष्य को अपनी अपूर्णता बुरी लगी। उसने पूर्ण बनने की सोची और उपाय पूछने ब्रह्माजी के पास पहुँचा।

ब्रह्माजी ने उसका अभिप्राय समझा और कहा—"वत्स, सत्य को धारण करना पूर्णता है, जिसके पास जितना सत्य होगा, वह उतनी ही पूर्णता प्राप्त कर लेगा, सो, जा तू सत्य की उपासना कर।

मनुष्य ने विनीत भाव से पूछा—"भगवन् ! सत्य की उपासना कैसे होती है ?" प्रजापति ने कहा—"उचित जिज्ञासा करते हुए उसका श्रद्धापूर्वक सही समाधान खोजने की चेष्टा को उपासना कहते हैं। इसी आधार से पूर्णता प्राप्त होती है।"

प्रसन्नतापूर्वक मनुष्य लौट आया, उसने प्रयत्न भी आरम्भ किया, पर परम्परागत रूढ़ियों के आगे उसका बस न चला, सत्य की उपासना अधूरी ही बनी रही।

कर्मफल मानो

एक राजा और रानी में बड़ा प्रेम था। मरने के बाद वे अन्यत्र जन्मे। रानी को राजकुमारी का शरीर मिला और राजा को उसी घर में ऊँट का। दोनों को पूर्व जन्म का स्मरण बना रहा और वे एक-दूसरे को स्नेह करते रहे।

राजकुमारी का विवाह हुआ तो ऊँट पर दहेज का सामान लादकर भेजा गया। ससुराल में राजकुमारी महलों में रहने लगी और ऊँट घुड़साल में बाँध दिया गया। दोनों को एक-दूसरे के दर्शन तक दुर्लभ हो गये।

राजकुमारी ने अपना मन सँभाल लिया, पर ऊँट निरन्तर क्षुब्ध रहने लगा। उसने खाना-पीना बन्द कर दिया और मरणासन्न स्थिति में जा पहुँचा।

राजकुमारी को समाचार मिला तो वह ऊँट के पास गई और कान में कहा—"भावना से कर्तव्य बड़ा है; भावना के बहाव में कर्तव्य को नहीं छोड़ना चाहिए। हम परस्पर सद्‌भाव रखें, पर परिस्थितियों के अनुरूप कर्तव्य पालन में आनाकानी न करें।"

ऊँट ने वस्तु स्थिति को समझा और खाना तथा लदना आरम्भ कर दिया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

असली तपस्या

एक प्रसिद्ध सन्त मृत्यु के उपरान्त स्वर्ग लोक पहुँचा। वहाँ द्वार पर चित्रगुप्त अपने हिसाब की बहियाँ लेकर बैठे थे। उन्होंने साधु का नाम-पता और ठिकाना पूछा। इस पर साधु गर्वसहित बोले—"क्या आप नहीं जानते कि मैं धरती का प्रसिद्ध अमुक सन्त हूँ।"

"आपने जीवन में क्या किया ?" चित्रगुप्त ने पूछा। "मैं जीवन के प्रारम्भिक आधे भाग में तो लोगों से प्रेम करता रहा और दुनियादारी के चक्कर में डूबा रहा। जीवन के अन्तिम आधे भाग में मैंने सब छोड़कर तपस्या की और पुण्य लाभ किया।"

चित्रगुप्त अपनी बही में साधु का ब्यौरे देखने लगे।

"अरे, आप पहले क्या देखते हैं, मैंने पुण्य तो जीवन के अन्तिम भाग में किये गए हैं आप पहले न देखकर अन्त में देखो।" साधु बीच में ही बोल उठे।

चित्रगुप्त ने अपनी बही का प्रारम्भ भाग छोड़कर अन्तिम भाग देखना शुरू किया, लेकिन वहाँ पुण्य के नाम कुछ भी नहीं मिला। चित्रगुप्त फिर बही के प्रारम्भ के हिस्से में देखने लगे और बोले—"भाई तुम्हारे पुण्य तो जीवन के प्रारम्भिक भाग में ही हुए हैं। पिछले भाग में तो कुछ भी नहीं है।"

"यह तो उल्टी बात है। प्रारम्भिक जीवन तो मैंने संसार से प्रेम करने में बिताया और अन्तिम जीवन में एकान्त में रहकर परमात्मा का आराधन किया, तपस्या की।" सन्त ने कहा।

"भाई, धरती पर प्रेम, आत्मीयता, दूसरों के हित में लगे रहना ही पुण्य है और उसी के कारण तुम्हें स्वर्ग की प्राप्ति हुई है।" चित्रगुप्त ने समझाते हुए सन्त से कहा।

अभ्यास

एक भक्त भगवान की प्रतिमा के आगे बैठा कुछ याचना करता था। याचना करते समय बहुत समय बीत गया, पर उसकी कामना पूर्ण न हुई। किसी अविश्वासी ने उपालम्भी की हँसी-हँसते हुए भक्त से कहा—"भला कहीं पत्थरों की मूर्तियाँ भी किसी को कुछ दिया करती हैं।"

भक्त ने कहा—"सो तो ठीक है, पर मैंने सोचा—मनोरथों के पूर्ण न होने पर जो निराशा होती है, उससे चित्त को खिन्न न होने देने का अभ्यास इस प्रकार किया जाए तो हानि ही क्या है ?"

शेखचिल्ली

वर्षा समीप है, अब छत पर मिट्टी डाल लेनी चाहिए, पत्नी ने पति को सुझाव दिया। पति थे दीर्घ सूत्री—"बोले ऐसी क्या जल्दी है, डाल लेंगे। मिट्टी डालने में कितना समय लगता है।" पत्नी बेचारी चुप हो गई।

फिर आकाश में कुछ-कुछ बादल घिर आये, पत्नी बोली—"देखिये, बरसात सिर पर आ गई अब मिट्टी डाल लेनी चाहिए।" पति महोदय ऊँघते हुए बोल—"अजी ! कोई रात में ही बादल नहीं बरस पड़ेंगे, बादल तो रोज ही आते हैं।"

वह दिन भी निकल गया और मिट्टी छत पर ही नहीं पड़ी।

एक दिन एकाएक आँधी आई और अपने साथ बादलों के झुण्ड बहा लाई, देखते ही देखते आकाश काला पड़ गया, बिजली तड़की और तेज वृष्टि प्रारम्भ हो गई। कई दिन तक घनघोर वर्षा हुई, परिणाम यह हुआ कि पूरा मकान धराशायी हो गया।

पति महोदय रोने लगे—"अब इन बच्चों का क्या होगा ?" इस पर पत्नी ने संक्षिप्त उत्तर दिया—"वही जो शेखचिल्लियों के बच्चों का होता आया है।"

पाप से मुक्ति

एक ब्राह्मण ने अपने घर के सामने एक सुन्दर बगीचा लगाया। अपना बचा हुआ सारा समय ब्राह्मण उस बगीचे की देख-रेख में लगाता। कभी सिंचाई करता, कभी खाद डालता, तो कभी उसे निराई और गुड़ाई करते देखा जा सकता था। परिश्रम का परिणाम अच्छा ही होता है। बगीचा थोड़े ही दिनों में सुगन्धित पुष्पों से महक उठा। फलों के पौधे भी बढ़ने लगे।

एक दिन तारों को अपने सींग से ऊँचा उठाकर एक गाय उस बगीचे में घुस गई और अमरूद के हरे-भरे पत्तों में मुँह डाल दिया। खर-खर की आवाज सुन ब्राह्मण लाठी लेकर उस गाय पर टूट पड़ा। गाय के ऐसी चोट लगी कि वहीं मर गई। गौहत्या का पाप उसके मारने से सिर पर लग गया, अतः नियमानुसार उसे प्रायश्चित्त करना चाहिए था, पर उसने अपने मन को यह कहकर समझा लिया कि गौहत्या का अपराधी मैं नहीं हूँ, क्योंकि दाएँ हाथ का स्वामी इन्द्र है। यह गाय भी दाएँ हाथ से मारी गई है, अतः इसके पाप का भागी इन्द्र है।

ब्राह्मण की अज्ञानता पर इन्द्र को बड़ा बुरा लगा। उन्होंने एक वृद्ध का रूप बनाया और उस बगीचे के सामने से पथिक के रूप में निकले। बगीचे को देखकर बड़ी प्रशंसा करने लगे। "अवश्य इस गाँव में कोई परोपकारी व्यक्ति रहता है, जिसने गाँव की आवश्यकता को समझकर सुन्दर बगीचा लगाया है।" ब्राह्मण बड़ा प्रसन्न हुआ, वह उस वृद्ध को बगीचे के अन्दर ले गया और एक-एक पौधा दिखाया। थोड़े से पुष्प तोड़कर भी उस पथिक को भेंट किए।

अन्त में उस वृद्ध ने पूछा, "यह बगीचा बड़े परिश्रम तथा कुशलता के साथ किसने लगाया है ?" ब्राह्मण ने प्रसन्नता के साथ कहा, "मैंने ही अपने हाथों इन पेड़-पौधों की सेवा की है।"

तभी इन्द्र अपने वास्तविक स्वरूप में प्रकट होकर बोले, "जिन हाथों से तुमने गाय की हत्या की है, उन्हीं हाथों से इस बगीचे को लगाया है, पर चाहते यह हो कि गाय मारने का पाप मैं उठाऊँ और बगीचे लगाने का श्रेय मात्र तुम्हारे हाथ रहे।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तब वसुधा पुलकित हो उठी

प्रचण्ड अन्तर्दाह से एक विराट् पिंड खण्ड-खण्ड होकर आकाश से टूट पड़ा और क्षितिज में घूमने लगा। एक खण्ड विधाता के सम्मुख भी जा गिरा।

उन्होंने सोचा इससे क्रीड़ा की जाए। किन्तु ओह ! यह तो अंगार की तरह गर्म था। विधाता ने उसे जल में विहार करने के लिए छोड़ दिया। जब निकाला, तो पता चला कि उसमें स्पन्दन है।

विधाता ने पूछा—"क्या तुम में जीवन है ?" 'हाँ' का उत्तर पाकर विधाता ने फिर पूछा तुम्हारा नाम क्या है ? अनाम पिण्ड ने उत्तर दिया—"मेरा नाम कुछ भी नहीं है।" विनोदी विधाता ने उसका नाम 'वसुधा' रखकर कहा—"लो तुम्हारा नाम रख दिया। अब प्रसन्न होकर हँसो, खेलो और मंगल मनाओ।"

वसुधा ने एक गर्म उच्छास छोड़कर कहा—'निर्माता ! मेरे अन्तर में अनन्त दाह भरा है, मैं किस प्रकार हँस सकती हूँ।"

विधाता ने उसे हरी-भरी वनस्पति से भर दिया और कहा अब तो हँसोगी ? वसुधा ने फिर एक उच्छास छोड़ा, वह भी गर्म था। अब विधाता ने उसे एक शिशु प्राणी प्रदान करके कहा—"ले यह मानव शरीर तेरी प्रसन्नता का हेतु बनेगा।"

मनुष्य वसुधा की गोद में बड़ा हुआ, उसने अपने परिश्रम से माँ वसुधा को सजा दिया। वसुधा का श्रृंगार देखकर विधाता ने एक दिन फिर पूछा—"वसुधे ! अब तो तुम्हारी प्रसन्नता का पारावार न होगा।" वसुधा ने पुनः उच्छास छोड़ा। वह भी गर्म था। विधाता ने झुँझलाकर कहा—"तू कभी सुखी नहीं हो सकती और वे नाराज होकर चले गये।"

एक दिन एक मधुर संगीत से विधाता की नींद टूटी। उन्होंने उठकर देखा वसुन्धरा गा रही थी। विधाता ने उसकी प्रसन्नता का कारण पूछा। हँसते हुए वसुधा ने बतलाया—"सृष्टा जब मेरे पुत्र मनुष्य, निःस्वार्थ भाव से एक-दूसरे पर प्रेम करते हैं और मिल-जुलकर मेरी सम्पत्ति का आनन्द उठाते हैं, तो पुत्रों के इस प्रेम-भाव से मेरा रोम-रोम पुलकित हो जाता है।"

अपनी रक्षा आप करो

अकबर के दरबार में एक विचित्र समस्या आई। तीन किसानों में झगड़ा चल पड़ा था। एक का कहना था सबसे बड़ा रक्षक भगवान है, दूसरा कहता था जिसके सहायक और लोग हों, भगवान भी उन्हीं की मदद करता है, जबकि तीसरे का कहना था जो अपनी रक्षा आप करता है भगवान केवल उसी की रक्षा करता है।

ग्राम पंचायत जब इस मामले को सुलझा न सकी, तब उसे अकबर के पास पहुँचा दिया गया। अकबर ने सारी बातें ध्यान से सुनीं, पर उसकी समझ में भी झगड़े का अन्तिम हल न सूझा तब उसने बीरबल की शरण ली। बीरबल ने उत्तर दिया—

आप न रक्षा करि सके ता को राखन हार।
जो आपुनि रक्षा करे सो राखै करतार।।

अर्थात्—जो अपनी रक्षा आप नहीं करता उसे कोई नहीं बचा सकता, पर अपनी रक्षा में जो आप समर्थ है वह अपने भगवान की भी रक्षा कर लेता है। अकबर ने कहा—"बीरबल यह भी पहेली हो गई। उत्तर इतना स्पष्ट दो कि बात साफ समझ में आ जाए।"

बीरबल ने कहा—"महाराज ! किसी उपयुक्त अवसर पर उत्तर देंगे। कुछ दिन बाद दक्षिण के एक किले पर मुगल सेना की चढ़ाई हुई। बीरबल ने तीन ऐसे सैनिक चुने, जिनमें से एक को ईश्वर की शक्ति पर बड़ा भरोसा था, दूसरा जिसे सहयोग पर विश्वास था, तीसरा जिसका यह विश्वास था कि अपनी रक्षा स्वयं करने वाला ही विजयी होता है। पहले को बिना अस्त्र, दूसरे के साथ दूसरा शस्त्रधारी और तीसरे को केवल अस्त्र देकर बीरबल ने विदा कर दिया। कई दिन युद्ध चला। जिसके पास कोई अस्त्र न था वह तो अपनी ही सेना की चपेट में कुचल गया। जिसका सहायक था, वह मराठों के युद्ध में अपने बचाव की ही चिन्ता में पड़ गया, फलस्वरूप उसका साथी बन्दी बना लिया गया। तीसरा अन्त तक लड़ा और सेना के विजय के साथ वापस आया।

विजय की खुशी में तब एक खुशी इस उत्तर की भी जोड़ी गई। अकबर ने फैसला किया कि सचमुच जो अपनी रक्षा कर सकते हैं अपने धर्म, संस्कृति और सम्मान की रक्षा भी वही कर सकते हैं।

धर्म ही स्थायी है

जब बाबर ने अमीनाबाद को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया तो गुरुनानक और उनके शिष्य मरदाना को भी जेल की हवा खानी पड़ी। कुछ दिनों बाद बाबर से राज्य अधिकारियों ने गुरुनानक की आध्यात्मिक शक्ति के सम्बन्ध में चर्चा की। बाबर बहुत ही प्रभावित हुआ, वह जेल में नानक से मिलने आया।

नानक ने बादशाह को देखकर कहा—"मनुष्य का धर्म तो लोगों की सेवा करना है और आप अपने राज्य की प्रजा पर शासन कर रहे हैं।" थोड़े शब्दों में ही बाबर नानक की बात को समझ गये, उन्होंने अपनी भूल स्वीकार करते हुआ कहा, "बाबा ! यदि आप कुछ माँगना चाहते हैं तो निःसंकोच माँग लीजिये।"

"राजा से तो मूर्ख मनुष्य ही माँगते हैं। मुझे यदि किसी वस्तु की आवश्यकता भी होगी तो ईश्वर से माँगूगा। आपसे माँगने में लाभ भी क्या है ? देने वाला तो दाता एक राम है जो मनुष्यों को तो क्या राजाओं तक को देता है।"

इतना सुनकर बाबर ने कहा—"तो आप ही मुझे कुछ प्रदान कीजिये।"

नानक ने एक उपदेश दिया—"बाबर ! इस संसार में किसी भी वस्तु का स्थायित्व नहीं है। ध्यान रखो ! आपका शासन या आपके पुत्रों का शासन भी तब तक चलेगा जब तक उसका आधार प्रेम और न्याय बना रहेगा। पर धर्म का स्थायित्व तो हर क्षण हर घड़ी है, इसलिए तू जीवन में धार्मिकता का समावेश कर।" इस उपदेश से बाबर के जीवन की दिशा ही बदल गई।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्थानान्तर

एक वृद्धा स्त्री थी। उसके कोई बाल-बच्चा नहीं था। सम्पत्ति उसके पास अपार थी। धन का उसने जीवन भर धार्मिक कार्यों में सदुपयोग किया। उससे प्रसन्न होकर अन्त समय धर्मराज ने अपने यमदूत भेजे और उन्हें आज्ञा दी कि वृद्धा को स्वर्गलोक पहुँचा दिया जाए।

स्वर्ग के दूत वृद्धा के पास गये और बोले—"माताजी ! हम लोग आपको स्वर्ग ले चलने के लिए आए हैं।" वृद्धा ने एक बार अपने मकान, धन और सम्पत्ति पर दृष्टि दौड़ाई, तो उसे लोभ आ गया कि इस धन को छोड़कर कैसे जाऊँ, मेरी कमाई है क्यों न मरने के पूर्व उसका उपभोग कर लूँ।

उसने यमदूतों को बुलाकर प्रार्थना की—"बेटा ! अभी तो मुझे अपने सम्बन्धियों से मिलना है। कुछ आवश्यक कार्य भी हैं इसलिए कुछ समय दे दो तो बड़ी कृपा हो।" यमदूत वृद्धा के लोभ को ताड़ गये, उन्होंने कहा—"माताजी, ऐसे समय तो आपको अपनी सम्पत्ति किसी कन्या विद्यालय या धर्म कार्य के लिए दान कर देनी चाहिए और स्वर्ग का आनन्द लेना चाहिए" पर बुढ़िया कुछ समय के लिए गिड़गिड़ाती ही रही। लोभ जो सवार था, वह हित की बात कब सोचने देता। यमदूत ने एक वर्ष की छूट दे दी।

वृद्धा ने धन का उपयोग तो क्या और संचय में ध्यान जमाया। कर्ज पर रुपया देकर वह ब्याज-बट्टा खाने लगी। चोरी की, झूठ और फरेब की आदत भी आ गई और वर्ष इसी में बीत गया, तब तक उसके सारे पुण्य क्षीण हो चुके थे।

इस बार बुढ़िया को यमदूत लेने आये पर वह नर्क के थे। बुढ़िया ने पूछा—"भाई यह बदली क्यों कर दी गई, तो दूतों ने हँसकर कहा—"माई री ! तुमने जिन्दगी में जितने धर्म, कर्म किये हैं एक वर्ष में उससे अधिक पाप, इसलिए यह परिवर्तन हो गया।"

नशा बुरा जंजाल

पिता ने बहुत समझाया—बेटा शराब मनुष्य को बरबाद कर देती है, पर बेटे ने एक न सुनी, वह नियमित रूप से सुरा की उपासना करता रहा।

एक दिन उसने अपने मित्र के साथ खूब शराब पी नशे में धुत्त हो गया। उसकी सारी विचार-शक्ति नष्ट हो गई। उसने मित्र से पूछा—"क्यों जी ! मेरी मृत्यु के बाद क्या होगा ?" "होगा यह कि तुम्हारा शरीर कब्र में डाल दिया जायेगा" साथी ने उत्तर दिया। लड़का बोला—"अजी यह तो मुझे भी पता है तुम उसके बाद की बात बताओ ?" मित्र ने कहा—"फिर क्या होगा तुम्हें मिट्टी से ढककर कब्र बना दी जाएगी।" लड़का ठठाकर हँसा और कहने लगा—"मूर्ख इतना तो मुझे भी पता है, तू यह बता उसके बाद क्या होगा ?" मित्र ने हँसकर कहा—"बरसात होगी और पड़ोसी तुम्हें खूब रौंदेगा।"

"अच्छा तो पड़ोसी की यह हिम्मत", छोकरा चिल्लाया और लाठी लेकर दौड़ा। पकड़ते-पकड़ते उसने पड़ोसी का सिर सीरा बना दिया। वह तो पुलिस आ गई, नहीं तो मारकर ही छोड़ता। पुलिस उसे पकड़कर ले गई और हवालात में बन्द कर दिया।

प्रातःकाल उसने पिताजी को सन्देश भेजा—"पिताजी अब मैं समझ गया, नशा सचमुच मनुष्य से वह सब करा सकता है, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।"

सच्चाई की परख

श्रावस्ती में वैदेहिका नाम की एक सम्पन्न महिला रहती थी। सौजन्य और माधुर्य के लिए वह सारे नगर में विख्यात थी। किसी का भी दुःख उससे देखा नहीं जाता था। सब लोग उसकी मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा करते थे, तो भी वैदेहिका को कुछ अहंकार अवश्य रहता था।

वैदेहिका के परिवार में उसकी एक नौकरानी थी। नाम तो काली था, पर उस जैसा स्वामिभक्त और कर्तव्यपरायण उस समय सारी श्रावस्ती में कोई नहीं था। वैदेहिका उसे अपनी पुत्री की तरह मानती और प्रायः कहा करती कि उसे जीवन में काली से बढ़कर और किसी को स्नेह और आदर नहीं।

पर सच्चाई की परख तो समय पर होती है। कुछ ही दिन में पता चल गया कि वह स्नेह और आदर तभी तक था, जब तक काली उपयोगिनी थी।

एक दिन किसी कार्यवश काली को रात देर तक जागना पड़ा। अतएव वह प्रातः शीघ्र उठ न सकी। देर से वैदेहिका के पास पहुँची, तो वह क्रोध से उबल पड़ी—"आजकल तू बड़ी ढीठ हो गयी है, मेरा अन्न खाकर मुझसे ही बहाने बनाती है।"

काली ने झिड़की खाई और अपने काम में लग गई। सोचा, कोई कष्ट हुआ होगा, इसलिए मालकिन को गुस्सा आ गया होगा।

संयोगवश दूसरे दिन काली को रात में ज्वर हो आया। प्रातः हल्की नींद आ जाने से उस दिन कुछ और विलम्ब हो गया। वह जैसे ही वैदेहिका के पास पहुँची, क्रोध से आगबबूला वैदेहिका ने लोहे की छड़ उसके सिर पर दे मारी। काली अचेत भूमि पर गिर पड़ी। इस बीच और भी लोग इकट्ठे हो गये। एक वयोवृद्ध ने कहा—"वैदेहिका ! आज तुम्हारा यश झूठा पड़ गया, सच्चे आदमी में क्षमा और धैर्य भी होता है।"

भिक्षा देना, निर्धनता को बुलाना

महाराज विन्दुजात ने निश्चय किया राज्य में जितने निराश्रय साधु हैं, उन्हें राज्यवृत्ति प्रदान की जाए। एक 'कोष' स्थापित किया गया, जिसमें प्रतिदिन एक लाख स्वर्ग मुद्राएँ राज्य के साधु-सन्तों को भोजन, निर्वाह आदि के लिए बाँटने की व्यवस्था रखी गई।

यह कार्य नीति-निपुण मन्त्री आचार्य गूत्समद को सौंपा गया। गूत्समद कई दिन तक धन की थैली लेकर घूमे, किन्तु एक भी स्वर्ण मुद्रा का वितरण न हो सका। हारकर उन्होंने अब तक का सारा 'कोष' सम्राट् विन्दुजात को लौटा दिया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महाराज ने पूछा—"महामन्त्री उस दिन से धनराशि ा वितरण नहीं हो पाया क्या ? क्या इतने बड़े राज्य में क भी साधु-सन्त ऐसा नहीं जिसे हमारी सहायता की ावश्यकता हो ?"

इस पर एक दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए गूत्समद ने त्तर दिया—"नहीं हो पाया, आर्य ! कठिनाई यह है कि ोष उन साधु-सन्तों के लिए निश्चित है जो लोक-मंगल ा कार्य करते हों, ऐसे सन्त राज्य में कम नहीं, पर वे न स्वीकार नहीं करते ? उनकी सामान्य-सी आवश्यकताएँ । उसके लिए वे किसी के ऋणी नहीं होना चाहते और ो धन लेना चाहते और माँगते भी हैं, वे लोग भिखारी उनकी लोकमंगल में कोई अभिरुचि नहीं, ऐसे व्यक्तियों ो धन देने से क्या लाभ ?"

विन्दुजात मन्त्री की नीति निपुणता पर बड़े प्रसन्न ए। उन्होंने यह धन प्रजा की भलाई में खर्च करना ारम्भ कर दिया। जो केवल भिक्षावृत्ति करने वाले थे, ोकमंगल में जिनको रुचि नहीं थी, उन्हें रोजगार दिलाने भी यही धन काम में आया।

अभिमान का नशा

बुखारा नगर के सहृदय राजकुमार को उसकी प्रजा ी-जान से चाहती थी, पर वहाँ एक ऐसा व्यक्ति भी था, ा राजकुमार की सदैव बुराई ही करता रहता था। ष-दर्शन की दृष्टि वाले व्यक्तियों को अच्छाई में भी बुराई जर आती है। राजकुमार को सेवकों द्वारा सब कुछ पता ग गया था, फिर भी वह शान्त रहा और एक दिन मन मन काफी देर तक सोचता रहा।

अगले ही दिन शाम के समय राज्य का एक नौकर स व्यक्ति के द्वार पर पहुँचकर बोला—"भाई ! तुम जकुमार की बहुत याद करते हो, उन्होंने प्रसन्न होकर क बोरी आटा, एक थैली साबुन और थोड़ी-सी शक्कर ाहार में भेजी है।"

उसकी प्रसन्नता का क्या ठिकाना ? गर्व से फूला न ाया। वह अब अच्छी तरह समझ गया कि यह वस्तुएँ जकुमार द्वारा उसे सम्मानित करने के लिए भेजी गई हैं। ; दौड़ा-दौड़ा पादरी के पास गया और बोला—"देखा पने ! राजकुमार भी मेरी सद्भावनाएँ प्राप्त करने के ुक हैं, तभी तो उन्होंने यह सब कुछ मेरे लिए भेजा ।"

पादरी ने कहा—"सचमुच राजकुमार बहुत ही चतुर उन्होंने तुम्हें सारी बातें इशारे से समझाने का प्रयत्न या है, पर तुम तो बुद्धि का प्रयोग ही नहीं करना हते। जरा विवेकशीलता से काम लो, आटा तुम्हारे खाली : के लिए है, साबुन तुम्हारे दुर्गन्ध युक्त गन्दे शरीर के ए है और शक्कर तुम्हारी कड़वी जबान को मीठा बनाने लिए है।"

आँख खोलकर चलो

एक राजा थे। प्रजावत्सल, नेक और बड़े परिश्रमी। के राज्य की प्रजा बड़ी खुशहाल थी।

एक दिन वे अपने महामन्त्री के साथ बैठे अपने यश का अपने आप बढ़-चढ़कर बखान करने लगे तो मन्त्री ने कह दिया—"महाराज ! आप चले तो पर आँख खोलकर नहीं चले ?" महाराज को यह आलोचना बहुत अखरी।

वे उसका निराकरण चाहते थे, तभी सामने से एक भिखारी निकला, उसे देखते ही महामन्त्री ने सोने-चाँदी के असंख्य टुकड़े उसके सामने फेंके। भिखारी उन्हें रौंदता हुआ आगे बढ़ गया।

मन्त्री ने एक सिपाही को भेजकर उसे वापस बुलाया और पूछा—"तुम जब जा रहे थे, तो तुम्हें मार्ग में कोई कीमती वस्तुएँ नहीं मिलीं ?"

भिखारी सकपकाकर बोला—"नहीं महाराज ! मुझे तो कुछ भी नहीं मिला। मैं तो यह सोचकर आँख मूँदकर चल रहा था कि मेरी भी आँखें खराब हो जाएँ तो मार्ग में चल भी पाऊँगा या नहीं, इसलिए मुझे कुछ दिखा तो नहीं, हाँ मार्ग में किसी मूर्ख ने कंकड़-पत्थर बिखेर दिए थे, वह चुभे अवश्य।"

मन्त्री ने राजा की ओर देखकर कहा—"महाराज ! इसी तरह जो आँख मूँदकर चलते हैं और यह मानते हैं कि यह जो कुछ कर रहा हूँ, मैं कर रहा हूँ, वे अप्रिय प्रसंगों से ऐसे ही दुःखी होते हैं, जैसे यह साधु ! इसलिए जो कुछ करें, निष्काम ही करें।"

मानसिक पवित्रता ही सिद्धि की आधारशिला

मुनि शरलीमा ने बहुत तप किया, तब उन्हें सन्तान की प्राप्ति हुई। अपने एकमात्र पुत्र दाशूर को उन्होंने बहुत अच्छी तरह पढ़ाया-लिखाया। दाशूर भी अपने पिता का बड़ा सम्मान करता और सदैव उनके साथ ही यज्ञादि शुभ कर्मों में सम्मिलित होता, इसलिए पिता-पुत्र का प्रेम और भी घनिष्ठ होता गया।

समयानुसार शरलीमा का निधन हो गया। दाशूर को उससे इतना कष्ट पहुँचा कि उसने कई दिन तक कुछ खाया-पिया भी नहीं। दिन-रात पिता की याद कर-करके रोता रहता। यह देखकर भगवान अग्निदेव ने उसे समझाया—"वत्स ! जीवन और मरण संसार के अटल नियम हैं, तू उनसे दुःखी होगा तो यह संसार नीरसता के अतिरिक्त कुछ न रह जाएगा।" दाशूर को अग्निदेव के प्रबोध से बहुत शान्ति मिली। उसने पूछा—"भगवान। दुःख से निवृत्ति का उपाय क्या है ?" अग्निदेव ने समझाया—"आत्मज्ञान ! आत्मज्ञान तप से होता है, इसलिए वत्स तू तप कर।" दाशूर ने बहुत प्रयत्न किया किन्तु तप के योग्य पवित्र स्थान न मिल सका इस पर उन्होंने फिर अग्नि की शरण ली—अग्निदेव प्रकट हुए और बोले—"वृक्ष की कोपलों से पवित्र और कोई स्थान न मिलेगा, इतना कहकर वे अदृश्य हो गये। दाशूर ने विचार किया कोपल में तो स्थूल शरीर बैठ ही नहीं सकता। इसलिए अपना मन कोपल में रमाना प्रारम्भ किया। कुछ दिन के अभ्यास

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से उनका मन पवित्र हो गया। मानसिक पवित्रता के द्वारा ही अन्त में उन्होंने सिद्धि प्राप्त की।

प्रेम की पहचान

एक युवक एक युवती को बहुत प्यार करता था। युवती की बायीं आँख में छोटा-सा तिल था। युवक घण्टों प्रेयसी को अपलक आँखों से देखता और प्रेम में विभोर हो जाता, पर उसकी दृष्टि कभी उस तिल पर न गई।

कुछ दिन बीते, युवक का प्यार ठण्डा हो चला। अब वह अपनी प्रेयसी के अवगुण ढूँढ़ने लगा। दृष्टि बदलने से एक दिन उसकी निगाह तिल पर गई तो उसने आश्चर्य से पूछा—"अरे तुम्हें यह तिल कब पैदा हो गया ?" युवती ने उत्तर दिया—"जब से आपकी आँखों में नुक्स पैदा हो गया ? वैसे यह तिल तो मुझे जन्म से ही है।"

युवक बहुत शर्मिन्दा हुआ और अनुभव किया कि सच्चा प्रेम जहाँ होता है, वहाँ दोष नहीं देखे जाते। दोष न देखना ही सच्चे प्यार की पहचान है। यदि ढूँढ़ों तो संसार में निर्दोष है ही कौन ?

सान्निध्य तो देवता का

सन्त अनाम अपनी कुटिया के सामने बैठे एक सज्जन से वार्तालाप कर रहे थे, तभी अचानक एक व्यक्ति आया। पहले बैठे हुए सज्जन का वह कोई परिचित था। कोई बात हो गई थी, सो वह आते ही गालियाँ बकने लगा।

वह सज्जन बड़ी देर तक चुपचाप उनके दुर्वचन सुनते रहे। जब तक वह चुपचाप बैठे रहे, सन्त अनाम भी उन्हीं के पास बैठे रहे, पर थोड़ी ही देर में उनकी सहनशक्ति जाती रही। उन्हें भी क्रोध आ गया और वह भी कटु शब्द कहकर आगन्तुक का प्रतिवाद करने लगे। यह देखकर सन्त अनाम उठे और कुटिया के पीछे चले गये।

कुछ देर बाद वह दुष्ट व्यक्ति जिधर से आया था, उधर चला गया तो वह सज्जन सन्त अनाम के पास पहुँचे और बोले—"महात्मन ! जब तक वह व्यक्ति मुझे गालियाँ देता रहा तब तक तो आप सुनते और मेरे पास बैठे रहे, पर जब मैंने भी कटु कहना प्रारम्भ किया तो आप उठकर क्यों चले आये ?"

सन्त अनाम ने उत्तर दिया—"जब तक आप चुप थे मैं अनुभव कर रहा था आपके भीतर देवता जाग रहा है। भाई सान्निध्य तो देवताओं का ही सुखकर होता है, पर जब आप भी क्रोध में आ गये तो आपमें भी शैतान आ बैठा। शैतान के पास बैठने की अपेक्षा मैंने वहाँ से चल देना ही ठीक समझा।"

दुनिया का दुर्भाग्य भी सौभाग्य बन जाता है

मृत्यु का संकट समीप देखकर परेशान होने वाले शिष्यों से महात्मा ईसा ने कहा—

"तुम लोग परेशान क्यों हो रहे हो ? आज जबकि तुम मुझ पर मृत्यु की घटा देखकर इतना परेशान हो रहे हो, तो यदि सत्य की प्रतिष्ठा में तुम्हारे प्राणों पर संकट आ पड़ा तो उसे किस प्रकार सहन करोगे ?

"वह समय आता है जब लोग धर्म के नाम पर देवदूतों को मार डालते हैं और समझते हैं कि उन्होंने पुण्य किया, परमात्मा की सेवा की, किन्तु दुनिया का यह दुर्भाग्य अन्त में सौभाग्य बन जाता है, क्योंकि पिता के सन्देशवाहक देवदूत को मारकर ही उसका और उसके वचनों का महत्त्व समझ पाते हैं।"

ईश्वर का छोड़ा काम पूरा करो

कुरुक्षेत्र के सुविस्तृत मैदान में दूर-दूर तक महाभारत युद्ध में मरे योद्धाओं की लाशें बिछी पड़ी थीं। गिद्ध और कौए उन्हें नोंच-नोंच कर खा रहे थे। उस घमासान युद्ध के कारण सब कुछ कुचला ही कुचला पड़ा था।

शिष्यों समेत शमीक ऋषि उधर से निकले तो इस महानाश के बीच दो पक्षि-शावकों को एक गज घण्टा के पास चहचहाते देखा गया। शिष्य के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उन्होंने महर्षि ने पूछा— 'भला, इस सब कुछ कुचल डालने वाले घमासान में ये बच्चे कैसे बच गये ?'

शमीक ने कहा—"शिष्यो, युद्ध के समय आकाश में उड़ती हुई चिड़िया को तीर लगने से वह भूमि पर गिर पड़ी और उसने दो अण्डे प्रसव किये। संयोगवश एक हाथी के गले का घण्टा टूटकर अण्डों पर गिरा जिससे उनकी रक्षा हो गई। अब परिपक्व होकर वे बच्चे के रूप में घण्टे के नीचे की मिट्टी हटाकर बाहर निकले हैं, सो तुम इन्हें उठा लो और आश्रम में ले जाकर इनका पालन-पोषण करो।"

एक शिष्य ने पूछा—'जिस दैव ने इन बच्चों की, ऐसे महासमर में रक्षा की क्या वह इनका पोषण न करेगा ?" महर्षि ने कहा—"प्रिय, जहाँ देव का काम समाप्त हो जाता है, वहाँ से मनुष्य का कार्य आरम्भ होता है। दैव ने मनुष्य को दया और सामर्थ्य का वरदान, इसलिए दिया है कि उनके द्वारा दैव के छोड़े हुए शेष कार्य को पूरा किया जाय।"

आँखों के अंधे

एक आँखों से अन्धा व्यक्ति हाथ में लालटेन लिए अँधेरी रात में रास्ते के निकट एक बड़े खड्ड के पास खड़ा था और चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा था—भाइयो सामने खड्ड है। बचते हुए इधर से निकलना।

उधर से निकलने वाले एक राहगीर ने पूछा—"सूरदास, तुम्हें खुद तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता फिर दूसरों को इस तरह रास्ता क्यों बता रहे हो ?"

अन्धे ने कहा, "मेरी माथे की आँख ही फूटी है, हिए की आँखें खुली हैं, जिनसे मैं दूसरों को आपत्ति में पड़ने का खतरा देखता हूँ और उन्हें बचाने का सामर्थ्यभर प्रयत्न करता हूँ।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सहृदयता अपराजेय

एक बार देवता मनुष्यों के किसी व्यवहार से क्रुद्ध हो गये। उन्होंने दुर्भिक्ष को पृथ्वी पर भेजा और मनुष्यों के होश दुरुस्त करने की आज्ञा दे दी।

दुर्भिक्ष ने अपना विकराल रूप बनाया। अन्न और जल के अभाव में असंख्य मनुष्य रोते-कलपते मृत्यु के मुख में जाने लगे।

अपनी सफलता का निरीक्षण करने दुर्भिक्ष दर्पपूर्वक निकला तो उस भयंकर विनाश के बीच एक प्रेरक दृश्य उसने देखा।

एक क्षुधित मनुष्य कई दिन के बाद रोटी का छोटा टुकड़ा कहीं से पाता है, पर वह उसे स्वयं नहीं खाता वरन् भूख से छट-पटाकर प्राण त्यागने की स्थिति में पहुँचे हुए एक सड़े कुत्ते को वह रोटी खिला रहा है।

दृश्य को देखकर दुर्भिक्ष का हृदय उमड़ पड़ा और आँखें भर आईं। उसने अपनी माया समेटी और स्वर्ग को वापस लौट गया।

देवताओं ने उतनी जल्दी लौट आने का कारण पूछा तो उसने कहा—"जहाँ सहृदयता का आदर्श जीवित हो वहाँ देवलोक ही होता है। धरती पर भी मैंने स्वर्ग के दृश्य देखे और वहाँ से उलटे पाँवों लौटना पड़ा।"

विश्वास की शक्ति

भयंकर तूफान से गेलीलो झील का पानी बाँसों ऊँचा उछलने लगा। जो नावें चल रही थीं, वे बुरी तरह थरथराने लगीं। लहरों का पानी भीतर पहुँचने लगा, तो यात्रियों के भय का पारावार न रहा।

एक नाव में एक कोने में कोई निर्द्वन्द्व व्यक्ति सोया पड़ा था। साथियों ने उसे जगाया। जगकर उसने तूफान को ध्यानपूर्वक देखा और फिर साथियों से पूछा—"आखिर इससे डरने की क्या बात है ? तूफान भी आते ही हैं और मनुष्य भी मरते ही हैं। इसमें क्या ऐसी अनहोनी बात हो गई जो आप लोग इतनी बुरी तरह हड़बड़ा रहे हैं ?"

सभी उसका उत्तर सुनकर अवाक् रह गए। निर्द्वन्द्व व्यक्ति ने कहा—"विश्वास की शक्ति तूफान से बड़ी है। तुम विश्वास क्यों नहीं करते कि यह तूफान क्षण भर बाद बन्द हो जाएगा।"

भयभीत यात्रियों के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना उस अलमस्त ने आँखें बन्द कीं और अपनी भीतर की झील में उतरकर कहा—"शान्त हो जा मूर्ख !" तूफान तुरन्त शान्त हो गया।

सहमे हुए नटखट बच्चे की तरह तूफान रुक गया। नाव का हिलना बन्द हुआ। यात्रियों ने चैन की साँस ली। अब उस अलमस्त यात्री—जीसस क्राइस्ट ने साथियों से पूछा—"दोस्तो, विश्वास बड़ा है। तूफान को तुमने उससे भी बड़ा क्यों मान लिया था ?"

माँगो मत, स्वयं प्राप्त करो

तीन पथिक पहाड़ी के ऊपरी चोटी पर लम्बा रास्ता पार कर रहे थे। धूप और थकान से उनका मुँह सूखने लगा। प्यास से व्याकुल हो उन्होंने चारों ओर देखा, पर वहाँ पानी न था। एक झरना बहुत गहराई में नीचे बह रहा था।

एक पथिक ने आवाज लगाई—"हे ईश्वर सहायता कर, हम तक पानी पहुँचा।"

दूसरे ने पुकारा—"हे इन्द्र ! मेघ माला ला और जल बरसा।"

तीसरे ने किसी से कुछ नहीं माँगा और चोटी से नीचे उतर तलहटी में बहने वाले झरने पर जा पहुँचा और भरपूर प्यास बुझाई।

दो प्यासों की आवाजें अभी भी सहायता के लिए पुकारती हुई पहाड़ी को प्रतिध्वनित कर रही थीं, पर जिसने किसी को नहीं पुकारा वह तृप्ति लाभ कर फिर आगे बढ़ चलने में समर्थ हो गया।

त्यागा नहीं, पाया

एक धार्मिक मुमुक्ष ने अपनी सारी धन-दौलत लोकोपयोगी कार्यों में लगाते हुए जीवन व्यतीत करना शुरू कर दिया। अब तो उनके सद्कार्यों की सर्वत्र चर्चा होने लगी। जनता के कुछ प्रतिनिधियों ने उस मुमुक्ष के पास उपस्थित होकर निवेदन किया—"आपका त्याग प्रशंसनीय है। आपकी सेवाओं से समाज ऋणी है, हम सब सार्वजनिक रूप से आपका अभिनन्दन कर दानवीर तथा मानव-रत्न के अलंकरणों से विभूषित करना चाहते हैं। कृपया हम सबकी इस प्रार्थना को स्वीकार कीजिये।"

मुमुक्ष ने मुसकराते हुए कहा—"बन्धुओ ! मैंने कोई त्याग नहीं किया है, वरन् लाभ लिया है। बैंक में रुपये जमा करना त्याग नहीं, वरन् ब्याज का लाभ है। ग्राहक को वस्तु देकर दुकानदार किसी प्रकार के त्याग का परिचय नहीं देता, वह तो बदले में उसकी कीमत लेकर लाभ कमाता है। समुद्र के किनारे खड़े हुए व्यक्ति को जब मोती दिखाई दें, तो उन्हें समेटकर कौन झोली न भरना चाहेगा। उस समय यदि उसकी झोली में शंख और सीपियाँ होंगी, तो उन्हें खाली कर मूल्यवान वस्तुएँ भरना क्या त्याग की वृत्ति की परिचायक है ? उसी प्रकार क्रोध, लोभ, मोह आदि को छोड़कर अपने स्वभाव में अहिंसा, परोपकार और क्षमा जैसे सद्गुणों को स्थान देना त्याग नहीं, वरन् एक प्रकार का लाभ है। मैंने भी तो कोई त्याग नहीं किया है, वासनाओं से छुटकारा पाना कोई त्याग या साहस नहीं हुआ।" और नतमस्तक होकर चले गये।

बिना जाने निर्णय न लो

ख्वाजा हसन एक दिन टिग्रिस नदी के किनारे टहल रहे थे। शाम का अँधेरा हो चला था। उन्होंने देखा कि पास में एक पेड़ के नीचे एक पुरुष एक नारी के साथ घुल-घुलकर बातें कर रहा है और हाथ में बोतल थामे है। ख्वाजा ने उसे धिक्कारा—"दुष्ट नास्तिक इस सन्ध्याकाल में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी कुकर्म नहीं छोड़ता। इबादत करना न आता हो, तो मुझसे सीख।" उपदेश देकर वे मुड़ ही रहे थे कि सामने नदी में एक नाव उलटी और उसमें बैठे हुए यात्री डूबते-उतराते मौत जिन्दगी की लड़ाई लड़ने लगे।

पेड़ के नीचे अँधेरे में बैठा युवक पानी में कूदा और देखते-देखते उसने कितने ही डूबने वालों को खींच-खींचकर किनारे पर लगा दिया।

हसन किनारे पर खड़े यह सब देख रहे थे। जिसे वे दुष्ट नास्तिक कह रहे थे वह इतना उदार और सहृदय हो सकता है, इसकी कल्पना भी न थी। जब युवक किनारे पर आया तो हसन उसकी प्रशंसा करने लगे। युवक ने उन्हें प्रणाम किया और कहा—"कृपया निन्दा-प्रशंसा में जल्दी न किया करें। पेड़ के नीचे मेरी बीमार माँ बैठी है और बोतल में उसको पिलाने की दवा है।"

हसन पानी-पानी हो गये और सोचने लगे बिना पूरी बात जाने कोई अभिप्राय बना लेना, भूल नहीं तो और क्या है ?

फूलों की बात काँटों से

गुलाब के फूल और काँटों में विवाद चल पड़ा। फूल ने अभिमान में आकर कहा—"ओरे काँटे ! तुझे मेरे पास रहते लज्जा नहीं आती। देख मेरी सुन्दरता कितनी अक्षुण्ण है, मुझे अमीर-गरीब सब प्यार करते हैं, मैं देवताओं के मस्तिष्क पर चढ़ता हूँ, सुन्दरियों के केश श्रृंगार में काम आता हूँ। मैं कहाँ सम्मानित पुष्प, कहाँ तू सूखा-सा दूसरों को कष्ट देने वाला काँटा, अच्छा होता तू मेरे समीप न जन्मा होता।"

काँटा बहुत दुःखी हुआ उसने कहा—"ठीक कहते हो फूल। तुम्हारा सौन्दर्य अकथ और अद्वितीय है, पर क्या कभी यह भी सोचा कि तुम्हारी रक्षा हम काँटे ही करते हैं। हम न होते तो आज तुम्हारी हँसी मिट्टी में मिली होती, जो आता वही तुम्हें मसलकर फेंकता चला जाता। तुम्हारे सौन्दर्य की रक्षा कर मैंने कोई अपराध किया है क्या ?"

फूल क्या उत्तर देता, लज्जा से सिर झुकाकर चुप हो गया।

उपेक्षा करो

राजकुमारी वासवदत्ता के पिता गौतम बुद्ध के पास जाकर बोले—"भगवन् ! कन्या रूप, शील और गुणों में सर्वथा आपके योग्य है। इसे पत्नी रूप में स्वीकार कीजिये।"

बुद्ध बोले—"राजन् ! जब मुझे आत्म-ज्ञान की जिज्ञासा हुई थी, तब मैंने यशोधरा जैसी रूपसी धर्मपत्नी का परित्याग दिया था, फिर आपकी कन्या को कैसे स्वीकार करूँ ?"

राजकुमारी ने इसे अपमान समझा, उसने प्रतिशोध लेने का निश्चय किया। कालान्तर में वे कौशाम्बी के राजा उदयन की पटरानी हुईं। एक दिन तथागत अपने शिष्यों के साथ कौशाम्बी पधारे। रानी ने कुछ दुष्टों को धन देकर यह सिखाया कि बुद्ध आएँ तो उन्हें तिरस्कृत किया जाय और सताया जाय। हुआ भी यही। बुद्ध जहाँ भी गये इन लोगों ने खूब अपमान किया। यह देखकर शिष्य आनन्द ने कहा—"भगवन् ! यहाँ लोग बहुत खराब हैं, अन्यत्र चलना चाहिए।"

तथागत ने कहा—"आनन्द ! यदि वहाँ भी लोगों ने अपमान किया तो हम क्या करेंगे ?"

आनन्द—"कहीं और जाएँगे।" बुद्ध—"और वहाँ भी ऐसा ही हुआ तो ?"

आनन्द—"तो किसी चौथी जगह चलेंगे।"

बुद्ध ने हँसकर उत्तर दिया—"सेवा का अर्थ है दीन, हीन, अविद्या ग्रस्त लोगों को ऊपर उठाना, उसके लिए तो कहीं भी काम करना है। स्थान बदलने से उद्देश्य की पूर्ति न होगी। उपेक्षा करते रहने से ये लोग अपने आप चुप हो जाएँगे।"

स्वर नहीं तो क्या भाव तो हैं

सन्त जॉन को अवकाश मिलता तभी एकान्त कमरे में बैठकर ईश्वर-भक्ति और आत्म-प्रेरणा वाले गीत गाने बैठ जाते और उसमें इतने तल्लीन हो जाते कि उन्हें सुध-बुध न रहती।

एक मित्र ने पूछा—"आप किसी और से संगीत सुन सकते हैं, रेडियो बजा सकते हैं। आपको गाना नहीं आता तो खुद क्यों गाते हैं ?" इस पर उन्होंने उत्तर दिया—"स्वर नहीं तो क्या हुआ जो आत्मा को प्रकाशित करता है, उस संगीत जैसा आनन्द भला दूसरा कौन देगा ?"

सच्चा सन्त

भगवान बुद्ध परिव्राजक में भ्रमण कर रहे थे। मगध राज्य के श्रीपाल नगर में प्रवचन कर रहे थे वे। एक नागरिक ने प्रश्न किया—"भगवान आपके उपदेशों पर बहुत थोड़े लोग चलते हैं फिर भी आप निराश नहीं होते ?" तथागत ने सरल भाव से कहा—"वत्स ! सुधारक का कर्तव्य सन्मार्ग की प्रेरणा देना है, सफलता का मूल्यांकन करना नहीं; जिन्हें सफलता की कामना होती है, वे सच्चे सन्त नहीं होते।" नागरिक इस उत्तर से अति प्रसन्न हुआ।

संयमी ही उपभोग के अधिकारी

असुरों ने अपने बुद्धि कौशल और पराक्रम से इक्कीस बार देवताओं को हराया और हर बार वे इन्द्रासन पर प्रतिष्ठित हुए। इतने पर भी देर तक उस स्थान पर स्थिर न रह सके और हर बार उन्हें अन्ततः स्वर्ग छोड़ने के लिए विवश होना पड़ा। देवर्षि नारद ने अपने पिता ब्रह्मा से पूछा—"तात ! विजयी होने पर भी असुर इन्द्रासन पर अपना अधिकार क्यों न रख सके ?"

विधाता ने कहा—"वत्स ! बल द्वारा ऐश्वर्य को प्राप्त तो किया जा सकता है, पर उसका उपभोग केवल संयमी ही करते हैं। संयम की उपेक्षा करने वाले असुर जीतने पर भी इन्द्रासन का उपभोग कर ही कैसे सकते थे ?"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परमेश्वर सब कुछ देखता है

मंगोलिया में चांगशेन नाम का एक न्यायाधीश अफसर रहता था। वह अभावग्रस्त जीवन व्यतीत करता, पर किसी से रिश्वत न लेता था। एक दिन उसके एक धनी मित्र ने उससे अपने पक्ष में कुछ काम कराने के लिए अशर्फियों की थैली भेंट की और कहा--"हमारे आपके सिवाय इस बात को कोई तीसरा न जान सकेगा। इस थैली को रखिए और मेरा काम कर दीजिए।" चांगशेन ने कहा--"मित्र यह मत कहो कि कोई नहीं देखता, पर धरती देखती है, आकाश देखता है और सबका मालिक परमेश्वर देखता है।"

प्रयत्न करो

वासन्ती वायु का एक झोंका आया और मेरे तन-मन को शीतल सुगन्ध से भरकर चला गया। मैं उसके पीछे यह कहता हुआ दौड़ा—"ऐ शीतल समीर, मुझे अपने साथ ले लो, मुझे अपने जैसा बना लो।" तभी वायु का एक गर्म झोंका आया और मेरे तन, मन को झुलसाता और यह कहता हुआ निकल गया—"तुम मूर्ख हो। मैं युगों-युगों से इसके पीछे इसकी शीतलता और सुगन्ध को प्राप्त करने के लिए भाग रहा हूँ, किन्तु अब तक सफल न हो सका, न मैं शीतल हो सका और न सुगन्धित।"

मैंने कोई उत्तर न दिया और चुपचाप फिर शीतल समीर की प्रतीक्षा करने लगा—वह आई। मैंने फिर याचना की—उसने बाँसों के एक झुरमुट में प्रवेश करके कहा, "मनुष्य ! याचना और अनुकरण से कुछ नहीं मिलता। मेरी तरह शीतलता और सुगन्ध तुम्हारे अन्दर भरी है। प्रयत्न करो, तुम भी शीतल और सुगन्धित हो जाओगे।"

जो तू, वही मैं

अनन्त काल पूर्व—ऊपर खगोल में एक आवाज उठी—"तू कौन है ?" सारा जीव-संसार चकित होकर ऊपर देखने लगा। खगोल फिर गूँजा—"तू कौन है ?" अबकी बार सारे प्राणी खगोल की ओर देखकर कुछ सोचने लगे। खगोल ने फिर प्रश्न किया—"तू कौन है ?" संसार प्रश्न को अनसुना कर अपना काम करता रहा—किन्तु मनुष्य चिन्तित हो उठा—विचार करने लगा—"मैं कौन हूँ ?" एक-दूसरे की ओर देखते और प्रश्न करते "मैं कौन हूँ ?"

उस अज्ञात पूर्व काल का वह साधारण प्रश्न आज तक प्रश्न बना हुआ है कि मनुष्य की विचार क्रिया को कौन गतिमति बनाये हुए है ? नियति के उस एक प्रश्न ने फैलकर असंख्यों प्रश्न का रूप धारण कर लिया है और एक उत्तर "मैं यह हूँ" ने अनेकता से प्रभावित होकर अपना मौलिक रूप खो दिया।

कितना अच्छा होता—आकाश के "तू कौन है ?" जैसे साधारण प्रश्न का साधारण उत्तर देकर मनुष्य निश्चिन्त हो जाता—"जो तू है, वही मैं हूँ।"

भिक्षु बनने का समय

मगध के एक धनी व्यापारी ने बहुत धन कमाया। उसे अपनी सम्पन्नता पर इतना गर्व हुआ कि वह अपने घर के लोगों पर ऐंठा करता। फल यह हुआ कि उसके लड़के भी उद्दण्ड और अहंकारी हो गये। पिता-पुत्रों में ही ठनने लगी। घर नरक बन गया।

उद्विग्न व्यापारी ने महात्मा बुद्ध की शरण ली और कहा—"भगवन् ! मुझे इस नरक से मुक्ति दिलाइये, मैं भिक्षु होना चाहता हूँ।"

तथागत ने कुछ सोचकर उत्तर दिया—"भिक्षु बनने का अभी समय नहीं है तात् ! तुम जैसा संसार चाहते हो वैसा आचरण करो, तो घर में ही स्वर्ग के दर्शन कर सकोगे।"

व्यापारी घर लौट आया और विनम्रता बरतने लगा। उससे सारे घर के हृदय-परिवर्तन हुए और सुख-शान्ति के दर्शन होने लगे।

कहीं भटके नहीं

गड़रिये ने भेड़ को बड़े प्यार से कन्धे से उतारा, उसे स्नान कराया, बाल सुखाए और हरी घास खाने को दी। जब भेड़ उस घास को खा रही थी, तब गड़रिये का आह्लाद देखते ही बनता था। महापुरुष ईसा उस गड़रिये की पर्णशाला के समीप ही बैठे विश्राम कर रहे थे। उन्होंने इस प्रसन्नचित्त गड़रिये को देखकर पूछा—"वत्स ! आज तुम इतने प्रसन्न क्यों हो रहे हो ?"

"महात्मन् ! यह भेड़ जंगल में प्रायः हमेशा भटक जाती है। मेरे पास सौ और भी भेड़ें हैं, पर वह सब सीधे घर आती हैं, इसे इतना प्यार इसलिए दिया कि यह फिर कहीं न भटके।"

और तब ईसा ने अपने शिष्यों से कहा—"जो अपनी राह से भटक गये हैं, उन मनुष्यों को प्यारपूर्वक ही सीधे मार्ग पर लाना चाहिए।"

अनावश्यक उपालम्भ

"जब तक मैं हरा था, मुझमें फूल लगते थे, फल आते थे तब तक यही लोग मेरे पास झोलियाँ लेकर आते थे, सेवा और सत्कार करते थे और आज जब मैं सूख गया हूँ, तब देखो यही लोग कुल्हाड़े लिए मुझे काटने आ रहे हैं।" एक वृक्ष ने अपने साथी वृक्ष को दूर से आते हुए लोगों की ओर उंगली उठाकर कहा।

"ऐसा सोचने की अपेक्षा" दूसरे वृक्ष ने उत्तर दिया—"आप यह सोचते कि मेरी मृत्यु भी सार्थक हुई जो अब भी मैं लोगों की आवश्यकताएँ पूरी कर सकता हूँ, तो मित्र इस समय भी तुम्हें कितनी शक्ति, कितना सन्तोष मिलता ?"

जो दिल खोजो आपना

सूफी सन्त बीबी राबिया की ईश्वर भक्ति दूर-दूर तक प्रख्यात थी। वे दिन-रात प्रभु के ध्यान में मग्न रहती थीं। इबलीस उन दिनों बड़ा नास्तिक था। एक दिन किसी ने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उनसे पूछा—"आप इबलीस की निन्दा करती हैं या नहीं।" राबिया बीबी ने विनीत भाव से कहा—"मुझे ईश्वर-उपासना से ही अवकाश नहीं मिलता। फिर बुराइयाँ तो मुझमें ही सैकड़ों भरी पड़ी हैं, उनको सुधारूँ या दूसरों के दोष-दर्शन में अपना समय व्यर्थ गवाऊँ।"

वह सज्जन राबिया बीबी की भक्ति से बड़े प्रभावित हुए और दूसरों की कभी भी बुराई न करने की प्रेरणा लेकर घर गये।

सबसे बड़ा सेवक

"इस समाज में बहुत लोग गरीब और अपाहिज हैं उनके लिए सब लोग थोड़ा-थोड़ा दान दो" एक बार महापुरुष ईसा ने अपने अनुयायियों से कहा।

लोग धन देने लगे। कई दिन तक दान-पात्र में धन गिरता रहा। ईसा उन सब दान देने वालों को देखते रहे। एक विधवा स्त्री प्रतिदिन आती और किसी दिन एक पैसा डाल जाती, किसी दिन दो। तीन पैसे उसे कभी जुटे ही नहीं।

अगले दिन सब लोग यह निर्णय सुनने को एकत्रित हुए कि—"सबसे बड़ा सेवक कौन है ?" ईसा ने उस महिला की ओर संकेत करके कहा—"यह है सबसे महान् सेवक जो अपनी तंगी में भी कुछ न कुछ देने की भावना से रिक्त नहीं हुई।"

गृहस्थ को मत कोसो

एक सद्गृहस्थ के घर एक संन्यासी भिक्षा को आए और गृहस्थ की प्रार्थना पर उपदेश करने बैठे तो गृहस्थियों और गृहस्थाश्रम की बड़ी निन्दा करने लगे। गृहस्थ की स्त्री बड़ी बुद्धिमती थी। उसने कहा—"महाराज ! गृहस्थ न होते तो आपकी उत्पत्ति कहाँ से होती ? आप यह भिक्षा कहाँ से प्राप्त करते ?" साधु चुप रह गये उत्तर न देते बना।

अपने सुख के लिए सताओ मत

भगवान बुद्ध श्रावस्ती में जैतवन की ओर जा रहे थे। मार्ग में कुछ लोग एक पशु को बाँधकर बलि दे रहे थे। उन्हें देखकर बुद्ध भगवान ने ऐसा करने से रोका, तब एक ग्रामीण ने कहा—"महाराज बलि से देवता प्रसन्न होते हैं और वरदान देते हैं।"

बुद्ध ने कहा—"अपने सुख के लिए जो दूसरे को मारता है, वह दूसरे जन्म में घोर कष्ट पाता है।" उस दिन से ग्रामवासियों ने जीव हिंसा छोड़ दी।

धैर्य की आवश्यकता

एक दिन क्रोध को बड़ा क्रोध आया। उसने कहा, "यह संसार बड़ा खराब हो गया है, इसे तहस-नहस कर डालूँगा और फिर एक नई तरह की दुनिया बनाऊँगा।"

धीरे से शान्ति बोली—"बुरा न मानें उसके लिए भी आपको धैर्य की आवश्यकता पड़ेगी। यदि अभी से आप धैर्यपूर्वक संसार को सुधारना शुरू कर दें, तो नई सृष्टि बनाने का परिश्रम ही क्यों करना पड़े ?"

भिखारी

किसी अमीर ने हजरत इब्राहिम के सामने अशर्फियों से भरी एक थैली भेंट रखी। उन्होंने कहा—"मैं भिखारियों से कुछ नहीं लेता।" उसने कहा—"भिखारी नहीं, मैं तो बहुत बड़ा धनी हूँ।" इस पर इब्राहिम ने कहा "तेरे पास जो धन है, उससे और अधिक तू चाहता है या नहीं ?" उसने जवाब दिया—"चाहता हूँ।" तब हजरत ने कहा—"फिर तू भिखारी नहीं तो क्या है ?" यह कहकर उन्होंने उसकी थैली वापस कर दी।

बड़ा कौन

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के दो शिष्यों में विवाद छिड़ गया कि उनमें बड़ा कौन है ? अन्त में दोनों स्वामी जी के सन्मुख गये। स्वामीजी ने उत्तर दिया—"बड़ा सरल हल है, तुममें से जो दूसरे को बड़ा समझे, वही बड़ा है।" अब तो विवाद का स्वरूप ही बदल गया। दोनों एक-दूसरे को "तू बड़ा, तू बड़ा" कहने लगे।

सब कुछ दे दिया

एक वृद्ध सड़क के किनारे पड़ा था। वृद्धावस्था के कारण कुछ काम नहीं कर सकता था और खाने को उसके पास कुछ था नहीं। कोई कुछ डाल जाता, वही खा लेता था। एक बच्चा उधर से आया करता था। वह प्रतिदिन बुड्ढे को अपने खाने में से कुछ अंश दिया करता था, पर उस दिन वह स्वयं भी भूखा था, क्योंकि घर में कुछ न था।

बच्चे को देखते ही बुड्ढे ने हाथ उठाये। "बाबा, आज तो मेरे पास भी देने को कुछ नहीं।" वृद्ध की आँख भर आईं उसने कहा, "बच्चे तूने आज वह सब दे दिया, जो अब तक किसी ने नहीं दिया था।"

दुर्बलो दैवघातः

एक दुर्बल व्यक्ति सन्त सुकरात के पास गुरु-दीक्षा लेने पहुँचा। सुकरात ने उसे देखकर कच्चे घड़े की ओर इशारा किया और कहा—"इस बर्तन में कुएँ से पानी ला दो ?" उस आदमी ने कहा—"महात्मन् ! आपको इतना भी पता नहीं कि इसमें पानी नहीं टिकेगा।" सुकरात हँसते हुए बोले—"यही तो मैं भी कहता हूँ कि दुर्बल शरीर में ब्रह्म तेज कैसे सँभालोगे ?"

श्रम और ज्ञान का समन्वय

श्रम बड़ा है या बुद्धि ? इस विषय पर दो स्नातकों में विवाद चल पड़ा। दोनों अपने-अपने दावे की पुष्टि में दृष्टान्त देते रहे थे, पर अन्तिम निर्णय न कर पा रहे थे। दीर्घतमा ने दोनों को पास बुलाया और कहा—"वत्स ! श्रम और बुद्धि की सार्थकता पास-पास रहने में ही है, दोनों में से कोई भी न बड़ा है, न छोटा, दोनों का महत्त्व समान है।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पहले ईंट उठाइए

दो भाई दीवार उठा रहे थे। छोटे ने कहा—"भैया ! मैं यदि किसी देश का राजा होता तो निश्चित आप को ही अपना मन्त्री नियुक्त करता ?" बड़े भाई ने हँसकर कहा—"वह तो बाद में देखेंगे, अभी तो ईंट उठाइये, आगे का काम करें।"

हृदय में अन्तर

श्रेष्ठिराज कर्दम और सुमनस में गहरी मित्रता थी। एक बार सुमनस उसके घर पहुँचे और बोले—"मुझे दो अशर्फियों की तत्काल आवश्यकता है।" कर्दम ने कुंजिका दे दी। सुमनस ने कोषागार से अशर्फियाँ निकालीं और दिखाते हुए कहा—"यह दो अशर्फियाँ लिए जा रहा हूँ।"

एक दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए कर्दम ने कहा—"मित्र लगता है, अभी आपके हृदय में अन्तर है अन्यथा आपको अशर्फियाँ दिखाने की आवश्यकता न पड़ती।"

असम्भव का कर्त्ता कौन

"असम्भाव्य का सम्भव होना ही ईश्वर की उपस्थिति का प्रमाण है।" समर्थ गुरु रामदास ने अपने शिष्यों को समझाया, पर उनकी समझ में यह बात आई नहीं। रामदास उन्हें लेकर एक स्थान पर गये, जहाँ कुछ मजदूर पत्थर तोड़ रहे थे। एक मजदूर ने घन चलाकर एक बड़े पत्थर को जैसे ही तोड़ा, तो सब लोग यह देखकर अवाक् रह गये, उसके भीतर जहाँ हवा भी न जा सकती थी, पानी भी है और एक मेढ़क भी। उन्हें सब बात समझ में आ गयी।

धरती में स्वर्ग

जिब्राइल के निमन्त्रण पर हजरत मुहम्मद एक बार स्वर्ग गये। वहाँ ऊँचे-ऊँचे स्वर्ण महल देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई, पर आश्चर्य भी, क्योंकि वे सब खाली पड़े थे।

जिब्राइल से पूछा, यह मकान किसके लिए हैं ?" उसने बताया—"जो न तो क्रोध करते हैं, न किसी का अपमान, शान्त और उद्वेग रहित पुण्यात्माएँ यहाँ रहती हैं।" पर यह खाली क्यों हैं, मुहम्मद ने फिर पूछा ? जिब्राइल ने कहा—"महापुरुष, ऐसे धरती में लेते हैं, इसलिए वे यहाँ तक आते ही नहीं।"

मीठी वाणी बोलिए

कोयल के दो बच्चों में वार्ता चल पड़ी। जो छोटा था बड़ी बढ़-बढ़कर बातें कर रहा था—"मैं बड़ा होकर बैजूबावरा, तानसेन तथा विष्णु दिगम्बर पुलुस्कर की कोटि का संगीतज्ञ बनूँगा।"

माँ यह सब सुनकर बोली—"बेटा वह तो बाद में सीखना पहले तो अपने घर बोली जाने वाली मीठी वाणी का ही अभ्यास कर।"

हर स्थिति में सन्त

लखड़ूशा नामक व्यक्ति पर युवावस्था में गृहस्थी का बोझ आ पड़ा। यद्यपि उसका मन सांसारिक झंझटों में न लगता था, फिर भी वह मन लगांकर कार्य करने लगा। परन्तु, उस पर नित्य नये संकट आते गये। उसकी गृहस्थी उजड़ गई फिर भी वह प्रसन्न ही रहा। अन्त में सतगुरु मिले, जिनसे ज्ञानोपदेश पाकर साधना करने लगा और वह ज्ञानार्जुन के नाम में विख्यात हुआ।

मन से भी संयमी बनो

"संयमित जीवन बिताकर भी मैं रोगी हूँ, महात्मन् ! ऐसा क्यों ?" एक ग्रामीण ने परमात्मा कन्फ्यूशियस से प्रश्न किया। कन्फ्यूशियस ने थोड़ा विचार किया और बोले—"भाई, तुम शरीर से संयमित हो, पर मन से नहीं। अब जाओ ईर्ष्या-द्वेष करना बन्द कर दो तो तुम्हें संयम का पूर्ण लाभ मिलेगा।"

पर-उपदेश

एक थे वैद्य जी। वह खाँसी से पीड़ित व्यक्ति को काली-काली सी गोलियाँ देकर बता रहे थे—"इन गोलियों में वह गुण है कि चाहे जैसी पुरानी खाँसी हो, दो खुराक में ही मैदान छोड़ जाती है।"

और तभी वैद्यजी को जोरों की खाँसी उठ पड़ी।

मरीज ने पूछा—"अच्छा होता बताने से पूर्व इसका प्रयोग आप ही कर लेते ?"

वैद्य जी मुँह बनाकर बोले—"मुझे तो बुढ़ापे की खाँसी है, बेटा !"

कष्ट अनिवार्य

हजरत मोहम्मद को ज्वर से बेचैन देखकर उसकी पत्नी रोने लगी। मोहम्मद साहब ने कहा—"जिसे ईश्वर पर विश्वास है, वह कभी इस तरह नहीं रोता। हमारे कष्ट हमारे पापों का प्रायश्चित हैं। निस्सन्देह किसी ईश्वर के विश्वासी को एक काँटा भी चुभता है, तो ईश्वर उसका रुतवा बढ़ा देता है और उसका एक पाप धुल जाता है। जिसका जितना पक्का विश्वास होता है, उसे उतने ही कष्ट भी दिये जाते हैं, यदि विश्वास कमजोर है, तो कष्ट भी वैसे ही होते हैं, किन्तु किसी सूरत में भी कष्टों में उस समय तक कोई माफी न होगी, जब तक कि मनुष्य का एक-एक पाप धुलकर पृथ्वी पर वह निष्कलंक होकर न विचरने लगे।"

अन्धकार का अन्त

आसमान से गिरकर अपनी ओर आते हुए सितारे को देख पृथ्वी आश्चर्यचकित बोली—"तुम इतने उच्च स्थान पर थे, नीचे क्यों आ गिरे ?"

सितारे ने जवाब दिया—"देवि ? तुम मुझे अपने स्थान से काफी ऊँची दिखाई देती थी। लम्बे समय से तुम्हें पाने के लिए मैं तपस्या कर रहा था आज वह शुभ दिन आया है।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"आकाश में तो बहुत चमकीले दिखाई देते थे, किन्तु अब तुम ऐसे नहीं लगते ?" पृथ्वी ने पूछा--"यही मैं भी तुमसे जानना चाहता था, दूर से तो तुमसे मिलकर मैं अपना कालापन छुड़ा लूँगा।" सितारा बोला।

आश्चर्यचकित हो धरती ने कहा—"सचमुच मैं तुम्हें चमकती नजर आती थी।" यह कहकर उसने अपने आपको देखा, किन्तु उसे चारों ओर अन्धकार ही नजर आया। वह उदास हो गई।"

सितारे ने कहा, "जब दूर से मुझे तुम जगमगाती नजर आती थीं और तुम्हें मैं, तो फिर हम ऐसा ही क्यों नहीं मान लें कि दोनों ही उजले और जगमगाते हुए उच्च हैं।"

बात समझ की थी। दोनों को ही भा गई। आलिंगन पाश में बँधे हुए दोनों ही अपने चारों ओर सुख अनुभव कर रहे थे। अँधेरे की कलूटी कुरूपता ने यह देखा, तो वहाँ से चुपचाप चल दी।

दूसरों का भी दुःख समझो

सुकोमल पुष्प की छाती पर बैठी मधु-मक्खी निर्दयतापूर्वक उनका जीवन-रस चूसने में लगी थी।

फूल ने कराहते हुए पूछा—"मैं भी इस दुनिया में जीने की लालसा लेकर आया हूँ। इस तरह चूसे जाने पर मैं भला कब तक जी सकूँगा ?"

मधुमक्खी पर कुछ असर न हुआ। रसपात का आनन्द छोड़ने को वह तैयार न हुई। फूल कराहता रहा, मक्खी अपना आनन्द लेती रही।

मधु की गन्ध पाकर एक दिन वन-बिलाव पेड़ पर जा पहुँचा। शहद पिया और छत्ते को तोड़कर टुकड़े-टुकड़े छितरा दिए।

मक्खी भिनभिनाई। वन-बिलाव को भर-पेट दुर्वचन कहे, पर वह अनसुनी किए अपनी तृप्ति का आनन्द लेता रहा।

रसहीन फूल मुरझा गया। उसने मधुमक्खी का इस प्रकार अवसाद देखा, तो लम्बी साँस खींची और कहा—"यदि दूसरों का दुःख समझ सकना हमारे लिए संभव रहा हो, तो वह दुनिया कितनी सुन्दर होती ?"

शरीर नहीं, मेरे विचारों की रक्षा करो

ईसा ने जिस समय खुलकर अपने विचारों एवं सिद्धान्तों का प्रचार शुरू किया, उनके बहुत-से शत्रु हो गये। उनके एक शिष्य ने उनकी रक्षा के लिए साथ रहने का अनुरोध करते हुए कहा—"प्रभु ! तू संसार का कल्याण कर रहा है और ये देशवासी तुझे कष्ट देना ही अपना कर्तव्य समझ रहे हैं। अब मैं तेरी रक्षा के लिए तेरे साथ रहूँगा।"

महात्मा ईसा अपने शरीर रक्षा के लिए किसी को कष्ट नहीं देना चाहते थे। उन्होंने शिष्य का दिल न तोड़ते हुए निषेध किया—

"वत्स ! देख जंगली जानवरों तथा पक्षियों तक के माद और बसेरे हुआ करते हैं। किन्तु मुझे मनुष्यों के संसार में कहीं सिर छिपाने तक को जगह नहीं है। तू मेरे साथ कहाँ-कहाँ भटकता रहेगा। मेरी शरीर रक्षा की अपेक्षा तू मेरे सिद्धान्त एवं विचारों को अधिक महत्त्व दे।"

खम्भा नहीं छोड़ता

ब्राह्मण देवदत्त, जनक के पास जाकर बोला—"महाराज आप आत्मदर्शी हैं मुझे कोई उपाय बताएँ। मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं आत्मा को प्राप्त करूँ, पर यह मन है कि लौकिक सुख, भोग, तृष्णा और वासना से विरत होता ही नहीं।" जनक बिना कुछ बोले उठे और एक खम्भे को पकड़कर खड़े हो गये। ब्राह्मण बड़ी देर तक देखता रहा, फिर बोला—"महाराज यह क्या कर रहे हैं, मेरे प्रश्न का उत्तर ?" जनक बोले—"भाई क्या करूँ इस खम्भे ने मुझे पकड़ लिया है छोड़ता नहीं, छोड़े तो कुछ बात करूँ।"

ब्राह्मण हँसा और बोला—"जड़ खम्भा कहीं पकड़ सकता है ?" इस पर जनक ने उत्तर दिया—"भाई मन भी तो जड़ है, उसकी क्या औकात कि तुम्हें पकड़ ले।"

दान का महत्त्व

दो भाई तीर्थयात्रा पर निकले। रुपये-पैसे का उनके पास कोई अभाव न था। उनमें से एक छोटे भाई ने धन बाँटना प्रारम्भ किया। वह हर भिखारी को धन बाँटता चला जाता था अच्छे, बुरे, पवित्र, अपवित्र, इसे धन की आवश्यकता है अथवा नहीं उसके मस्तिष्क में ऐसा कोई भी विचार न था।

एक निर्धन गृहस्थ जो कई दिन के ठण्ड के कारण व्याकुल था सामने से गुजरा, दूसरे बड़े भाई ने अपना कोट उतारकर उसे देते हुए कहा—"लो भाई ठण्डक से शरीर बचाओ, तुम्हारे पीछे एक परिवार लगा है।"

छोटा भाई नतमस्तक हो गया, उसने अनुभव किया दान का महत्त्व उपयोग है, अहंकार नहीं।

जीने की शिक्षा

अध्यात्म के प्रति अधिक रुचि देखकर पिता ने अपने युवा पुत्र एरिट्रायस को प्रसिद्ध दार्शनिक जीनों के पास शिक्षण हेतु भेजना शुरू कर दिया। एक बार एरिट्रायस शाम को घर लौटा तो पिता ने स्वाभाविक रूप से पूछा—"बेटे ! आज तुम क्या सीखकर आए ?"

पुत्र ने उत्तर दिया—"यह आपको बाद में ज्ञात हो जाएगा।"

पिता को यह सहन न हुआ। उन्होंने गुस्से में अपने युवा पुत्र की बड़ी बुरी तरह पिटाई की। वह बराबर का बेटा चुपचाप पिटता रहा। यदि चाहता तो कोई ऊट-पटाँग उत्तर दे सकता था। यही कहता—"पिताजी ! निर्दोष बेटे पर हाथ उठाने का अधिकार आपको किसने दिया ?" या गाली-गलौज करके घर से निकलने अथवा आत्महत्या करने की धमकी देता, पर उसने ऐसा कुछ भी तो नहीं किया। बाद में धीरे से बोला—"पिताजी ! आपके क्रोध को चुपचाप सहन करना ही आज मेरे गुरु ने सिखाया है।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निःशस्त्रीकरण

एक चिड़ियाघर के जानवरों ने इकट्ठे होकर विचार किया कि निःशस्त्रीकरण की नीति पर चलना चाहिए।

गेंडे ने कहा—"दाँत और पंजे सबसे अधिक खतरनाक होते हैं, उन पर प्रतिबन्ध लगाया जाय, सींग तो केवल रक्षा का साधन मात्र हैं।" भैंसा और हिरन से लेकर काँटों वाली सेई तक ने गेंडे की बात का समर्थन किया।

शेर ने दाँत और पंजों को खाने और चलने का साधारण साधन बताते हुए कहा—"सींग ही निरर्थक वस्तु है, सर्वसम्मति से उसी का प्रयोग निषिद्ध कहा जाय।" बाघ, चीता और सियार से लेकर वनबिलाव तक ने इस तर्क की प्रशंसा की।

रीछ की बारी आई, तो उसने कहा—"सींग और दाँत-पंजे यह सभी हानिकारक हैं। जरूरत पड़ने पर आलिंगन करने के मित्रतापूर्ण ढंग पर छूट रखी जानी चाहिए।" जो लोग रीछ की आदत जानते थे उसकी चालाकी को ताड़ गए और मन ही मन बहुत कुढ़े।

अपने पक्ष का समर्थन और प्रतिपक्षी का विरोध करने के जोश में बहुत शोर मचने लगा. एक-दूसरे पर गुर्राने लगे, यहाँ तक कि टूट पड़ने की घात सोचने लगे।

चिड़ियाघर के मालिक ने यह शोर सुना तो उसने उन सबको अपने-अपने बाड़े में खदेड़ दिया और कहा—"मूर्खो ! तुम भलमनसाहत से अपनी-अपनी मर्यादाओं का पालन करो, तो बिना निःशस्त्रीकरण के भी काम चल सकता है।"

श्रेष्ठ कौन ?

ज्ञान और धन दोनों में एक दिन अपनी श्रेष्ठता के प्रतिपादन पर झगड़ा उठ खड़ा हुआ। दोनों अपनी-अपनी महत्ता बताते और दूसरे को छोटा सिद्ध करते थे। अन्त में निर्णय के लिए वे दोनों आत्मा के पास पहुँचे।

आत्मा ने कहा—"तुम दोनों कारण मात्र हो, इसलिए श्रेष्ठ बात ही तुम में क्या है ? सदुपयोग किये जाने पर ही तुम्हारी श्रेष्ठता है अन्यथा दुरुपयोग होने पर तो तुम दोनों ही घृणित बनकर रह जाते हो।"

सर्वोत्कृष्ट

कुछ व्यक्ति एक वट वृक्ष के नीचे वार्तालाप कर रहे थे। सभी दुनिया के झंझटों से परेशान होकर भाग आए थे और साधु होने जा रहे थे। तब एक ने कहा—"हम सब मिलकर जंगल में रहेंगे और तपस्या करेंगे, लेकिन यह तो सोचो कि जब ईश्वर वरदान माँगने को कहेगा, तो माँगोगे क्या ?"

दूसरे ने कहा—"अन्न माँगेंगे। उसके बिना जीवित रहना संभव नहीं।"

तीसरे ने कहा—"बल माँगेंगे। बल के बिना सभी कुछ निरर्थक है।"

चौथे ने कहा—"बुद्धि माँगना ज्यादा उचित है। बुद्धि की आवश्यकता प्रत्येक कार्य को करने से पूर्व होती है।"

तब पाँचवाँ बोला—"ये सब वस्तुएँ तो सांसारिक हैं। आत्मशान्ति माँगेंगे, जो मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य है।"

तब पहले व्यक्ति ने कहा—"तुम सब मूर्ख हो। क्यों न हम स्वर्ग माँग लें ? वहाँ समस्त उपलब्धियाँ एक साथ ही हो जाएँगी।"

तब विशाल वट वृक्ष ठहाका लगाता हुआ बोला—"मेरी बात मानो, तुम लोगों से न तपस्या होगी न उपलब्धियाँ प्राप्त होंगी, क्योंकि यदि इतना ही मनोबल होता, तो संसार से घबराकर न भागते। बिना माँगे ही मैं एक वरदान देता हूँ तुम्हें। उसका नाम है, प्रेम—प्राणिमात्र से प्रेम करो। फिर देखो, जो वस्तु चाहोगे वही प्राप्त करने की क्षमता आ जाएगी।" यह सुनकर वे उठकर अपने-अपने घर चले गये और विश्व-मानव की सेवा में जुट गये।

सत्य और आदर्श

सत्य और आदर्श दोनों में विवाद उठ खड़ा हुआ। सत्य कहता था—"मैं बड़ा हूँ" और आदर्श कहता था—"मैं" विवाद तय न हुआ। झगड़े की नौबत आ गई। न्याय उन दोनों की बात बड़े ध्यान से सुन रहा था, पर जब कोई तर्क ही न हो, तो वह क्या निर्णय देता। उसने सुझाया—"देखो, जब झगड़ा तय न हो, तो किसी विचारशील के पास जाकर निबटारा कराना अच्छा होता है। यह बात दोनों ने मान ली।"

सत्य और आदर्श दोनों प्रजापति ब्रह्मा के समीप गये और कहा, "भगवन् आपने ही हमें पैदा किया है, अब निर्णय दें हम दोनों में बड़ा कौन है ?"

प्रजापति थोड़ा गम्भीर होकर सोचने लगे फिर मुसकराकर बोले—"भाई, बड़ा तो वही हो सकता है, जो आकाश और पृथ्वी दोनों में सम्बन्ध जोड़ दे।" जो इस प्रतियोगिता में प्रथम आयेगा वह बड़ा, दूसरा छोटा।

सत्य ने अपने विस्तार करना प्रारम्भ किया। पृथ्वी से ऊपर उठता ही गया, उठता ही गया, पर वह तो सूर्य को भी नहीं छू सका। उसने हार मान ली और आदर्श से बोला—"अच्छा अब आप यह करके दिखावें।"

आदर्श आकाश को चला गया और वहीं से अपने पैर बढ़ाकर धरती को छूने का प्रयत्न करने लगा, पर यह क्या ? यह बीच में ही लटककर रह गया। पृथ्वी तो अभी सैकड़ों कोस दूर पड़ी थी। दोनों ने सिर झुकाकर प्रजापति के सामने अपनी-अपनी हार स्वीकार की, ब्रह्माजी ने कहा—"यों हार मान जाओगे तो तुममें से एक भी जीवित न बचेगा जाओ अब थोड़ा मिलकर प्रयत्न करो।" सत्य और आदर्श भाई-भाई की तरह मिले। सत्य ने धरती को और आदर्श ने आकाश को जोड़कर रख दिया। प्रजापति यह देखकर बहुत प्रसन्न हुए और बोले—"वत्स ! आज तुम दोनों बड़े हो। कर्म में सत्य और भावनाओं में आदर्श दोनों मिलकर ही जीवन की परिधि पूर्ण होती है।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मा सबसे बड़ी

एक दिन कुछ ऐसा हुआ कि सबके सब हृदय पर अपना अहसान जताने लगे। रक्त बोला—"मेरे संचार के बिना तो तुम एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकते।"

वायु बोली—"मेरा संचार न हो, तो तुम शुद्ध कैसे रह सकते हो ?"

हृदय के भीतर बैठे प्रेम देव से भी न रहा गया। वे भी बोल ही पड़े "असली जीवन देने वाला तथा तुम्हारा महत्त्व बढ़ाने वाला तो मैं ही हूँ, वायु तथा रक्त का दावा तो झूठा है।"

अब बुद्धि से भी चुप न रहा गया। बोली, 'प्रेम तुम्हें शुद्ध भी कर सकता है और अशुद्ध भी। तुम्हें प्रबुद्ध करने वाली तो मैं हूँ।"

तब आत्मा सामने आई और कहने लगी "तुम सब अबोध हो। तुम सबको कार्यक्षम रखने वाली तो मैं ही हूँ। मेरे शरीर में रहते ही तुम सब अपना-अपना कार्य कर पाते हो।"

बुद्धि ठहरी तर्कशील। बोले बिना न रह सकी 'किन्तु तुम कुछ करती-धरती तो हो नहीं। सारा श्रेय कैसे लिए ले रही हो ?"

आत्मा भी काफी सबल थी। उसने उत्तर दिया—"कुछ न करते हुए भी मेरी दृष्टि इन सब पर रहती है। मेरी यह दृष्टि ही सारी सृष्टि का कारण है।" झगड़ा बढ़ता देखा तो गम्भीर स्वर में प्रजापति को ही फैसला करना पड़ा वे बोले—"रक्त का संचार, वायु का शुद्धीकरण, प्रेम का विस्तार, बुद्ध का अंकुश तथा आत्मा की दृष्टि सभी ठीक हैं। किन्तु मेरा निरीक्षण न हो, तो ये सब कार्य चल ही नहीं सकते।" प्रजापति का कथन सुनकर सबने ही श्रद्धा से सिर झुका लिए।

बड़ा कौन ?

एक दिन कुछ ऐसा हुआ कि मानव-शरीर में वे पाँचों तत्व ही आपस में उलझ बैठे, जिससे इस शरीर का निर्माण हुआ है।

वायु कहता था—"मैं सबसे बड़ा हूँ। मैं न जाऊँ, तो श्वासहीन होकर एक क्षण में ही जीवन-लीला समाप्त हो जाए।"

पृथ्वी-तत्व बोला—"अरे मुझसे तो ये शरीर खड़ा हुआ दिखता है। इन्द्रियों का आकार न हो, तो तुम सब अपनी अभिव्यक्ति कैसे कर सकोगे ?"

जल-तत्व भी चुप न बैठा। उसने कहा—"जीवन का आधार तो मैं हूँ। रस न हो, तो सब कुछ पलक मारते समाप्त।"

अग्नि ने अब ठहाका लगाया और कहने लगा—"अरे, मेरी क्षमता तथा महत्त्व का अनुमान तो तुम लगा ही नहीं सकते। मैं न रहूँ, तो यह शरीर क्षण मात्र में बर्फ हो जाय।"

आकाश-तत्व ने बड़ी हेकड़ी से कहा—"मेरी उपयोगिता का मूल्यांकन तुम सबकी पहुँच से परे है। समस्त सूक्ष्म शक्तियों का संचालन तो मैं ही करता हूँ, शब्द मेरी तन्मात्रा है, मैं न रहूँ तो संसार खामोशी में डूबा समुद्र लगने लगे।"

आत्मा बैठी-बैठी यह संवाद सुन रही थी। उसने धीरे से शरीर में से प्रयाण कर दिया। पाँचों तत्व उसके पीछे-पीछे चल दिये जैसे मधु-मक्खियों के छत्ते से उनकी रानी चल देती है, तो सारी मक्खियाँ उसके पीछे-पीछे चल देती हैं।

असत्य का सम्मान

सत्य और असत्य नाम के दो भाई थे। सत्य स्वच्छ और सुन्दर, असत्य मलिन और देखने से ही अप्रिय लग रहा था। जहाँ जाता असत्य ठुकराया और दुतकारा ही जाता, इसलिए उसने सत्य से ईर्ष्यावश बदला लेने का निश्चय कर लिया।

एक बार दोनों तीर्थ-यात्रा पर निकले, वहाँ भी यही स्थिति रही। सत्य का तो सम्मान होता, क्योंकि वह सुन्दर लगता था और असत्य का अनादर, क्योंकि न उसके वस्त्र साफ थे, न आकृति।

घूमते-घूमते बद्रीनाथ पहुँचे। स्नाने के लिए एक सरोवर में उतरे। सत्य देह मल-मलकर स्नान करने में लगा रहा, उसने यह भी न देखा कि इस बीच असत्य चुपचाप उसके कपड़े पहनकर भाग गया। बाहर निकलने पर सत्य को विवश हो असत्य के कपड़े पहनने पड़े। तब से दोनों बराबर घूम रहे हैं और हर व्यक्ति के पास जाते हैं, पर असत्य की पूजा होती है, क्योंकि उसने सत्य के कपड़े पहन लिए हैं और सत्य अब दर-दर मारा फिर रहा है।

कला बनाम शिल्पी

शिल्पी और उसकी कला, आपस में ही उलझ पड़े। शिल्पी से कला बोली—"मेरे ही कारण तुम्हारा नाम संसार में अमर रहता है। अतः मैं तुम से श्रेष्ठ हूँ।"

शिल्पी का कहना था—"मैं तेरा जन्मदाता हूँ। मेरे ही कारण तुझे अमरत्व प्राप्त होता है। अगर मैं न जाऊँ, तो तेरी अभिव्यक्ति कौन करे ? अतः मैं तुझ से श्रेष्ठ हूँ।"

विवाद बड़ी देर तक चलता रहा कोई हार मानने को तैयार न हुआ। तभी पास पड़ा हुआ पत्थर का टुकड़ा बोल उठा—"बाबलो ! क्यों झगड़ते हो आपस में ? मेरे बिना तो तुम्हारी भावाभिव्यक्ति भी नहीं हो सकती है, शिल्पी और कला बहन ! तुम भी तो आकार मुझी से पाती हो। अतः मैं तुम दोनों से श्रेष्ठ हूँ।"

विनम्रता से सफलता

नदी में बाढ़ आई। फुसकारती हुई सर्पिणी की तरह लहरें तट की मर्यादा को तोड़ती हुई चारों ओर फैलने लगीं।

प्रवाह में भारी प्रचण्डता थी। तटवर्ती वृक्ष और भूखण्ड उसकी लपेट में आकर धराशायी होने लगे।

किनारे पर शमी का एक विशाल वृक्ष मुद्दतों से अकड़ा खड़ा था। वह सोचता था—"मेरी जड़ें गहरी हैं। मैं परिपक्व भी हूँ और सुदृढ़ भी; इन लहरों की क्यों परवाह करूँ ?"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसका सोचना चल ही रहा था कि लहरों ने जड़ के नीचे की मिट्टी काटनी शुरू कर दी। हर लहर के साथ मिट्टी खिसकने लगी। मजबूत तने से प्रवाह टकराया तो वहाँ एक नया संघर्ष होने लगा। वृक्ष की निश्चिन्तता काम न आई। देखते-देखते वह उखड़ गया। देखने वालों ने आश्चर्य से देखा कि नदी तट का पुरातन शमी वृक्ष लहरों पर उतरता हुआ, लुढ़कता-पुढ़कता बहा चला जा रहा है।

पास ही एक बेंत का छोटा-सा गुल्म खड़ा था। उसने सोचा विपत्ति आने से पूर्व सुरक्षा का उपाय कर लेना चाहिए। वह झुका और मिट्टी की सतह पर लेट गया। गरजती हुई पानी की लहरें उसके ऊपर होकर गुजरती रहीं। बाढ़ उतरी तो देखने वालों ने देखा कि बेंत का पौधा सुरक्षित है और खतरा टलते ही अपना मस्तक ऊँचा उठाने की तैयारी कर रहा है।

पूछने वालों ने पूछा—"विशाल शमी वृक्ष क्यों उखड़ गया और बेंत का छोटा पौधा बाढ़ से कैसे बचा रहा ?"

बताने वाले ने बताया—"अहंकारी, अक्खड़ और अदूरदर्शी समय की गति को नहीं पहचानते और ढिठाई उन्हें ले बैठती है। किन्तु जो नम्र हैं, वे झुकते हैं, टकराने से बचते हैं और अपनी सज्जनता का सुफल देर तक प्राप्त करते रहते हैं।"

किसी को कष्ट न हो

आँधी ने मंद वायु से कहा—"शक्तिवान बनने में ही गौरव है, मैं जब अपने आवेश के साथ चलती हूँ तो पेड़ उखड़ जाते हैं, तालाबों का पानी उछलने लगता है, पौधे उखड़ जाते हैं, प्राणियों की मेरे सामने ठहरने की हिम्मत नहीं होती, सभी अपना बचाव करने के लिए छिपते-फिरते हैं। जिन्दगी ऐसी जीनी चाहिए कि लोग जिसका लोहा मानें और डरते रहें।"

मन्द वायु बोली—"दीदी ? तुम सामर्थ्यवान हो, जो चाहो सो कर सकती हो, पर मुझे इसमें ही आनन्द आता है। धीमी चलती हूँ ताकि किसी को कष्ट न हो, निरन्तर बहती हूँ ताकि सेवा के आनन्द से क्षण भर के लिए भी वंचित न रहना पड़े। मुरझाये चेहरों पर शीतल सुगन्धित पंखा झलते हुए जो सन्तोष प्राप्त होता है, मेरे लिए वही सब कुछ है। तुम्हें शक्ति का हर्ष प्रिय लगता है, पर मेरे लिए तो सेवायुक्त समर्पण ही सब कुछ है।"

पाप और पश्चात्ताप

राजा भोज ने सपना देखा कि गन्दी कीचड़ में सना हुआ एक सूकर स्नान करने के लिए किसी निर्मल नदी में प्रवेश कर रहा है। स्नान करके लौटा तो उसका रूप बदल गया है और देव पुरुष जैसा सुन्दर बनकर वह वापस लौटा है। जागने पर राजा ने उस पर विचार किया पर कुछ समझ में न आया।

प्रातःकाल राजसभा में राजा ने उस आश्चर्यजनक सपने का रहस्य पूछा तो एक विद्वान् ने बताया कि—पाप की कीचड़ में सना पशु है, पश्चात्ताप की निर्मल नदी में जब वह स्नान कर लेता है, तो उसे देवपुरुष बनने में देर नहीं लगती।

अहंकार ने कुछ न सीखने दिया

बात उस जमाने की है जब कबूतर झाड़ियों में अण्डे दिया करते थे। लोमड़ी आती और उनके अण्डे खा जाती। रखवाली का कोई ठीक प्रबन्ध न बन पड़ा तो कबूतरों ने दूसरी चिड़ियों से बचाव का उपाय पूछा। उन्होंने कहा पेड़ पर घोंसला बनाने के अलावा और कोई चारा नहीं।

कबूतर ने घोंसला बनाया, पर वह ठीक तरह बन न सका। आखिर उसने तय किया कि दूसरी चिड़ियों की सहायता से घोंसला बनाने का काम पूरा किया जाए।

चिड़ियों को बुलाया तो वे खुशी-खुशी आईं और कबूतर को अच्छा घोंसला बनाना सिखाने लगीं। अभी बनना शुरू ही हुआ था कि कबूतर ने कहा, "ऐसा बनाना तो हमें आता है। यों तो हमीं बना लेंगे।" चिड़ियाँ वापस चली गईं।

कबूतर ने बहुत कोशिश की पर घोंसला ठीक से बना नहीं। वह फिर चिड़ियों के पास गया। खीजती हुईं वे फिर आईं और तिनके ठीक तरह सजाना सिखाने लगीं। आधा भी काम पूरा न हो पाया था कि कबूतर उचका। उसने कहा—"ऐसे तो मैं जानता ही हूँ।"

चिड़ियाँ वापस चली गईं। कबूतर लगा रहा, पर वह बना फिर भी न सका। चिड़ियों के पास फिर पहुँचा तो उन्होंने इनकार कर दिया और कहा—"जो जानता कुछ नहीं और मानता है कि मैं सब कुछ जानता हूँ, ऐसे मूर्ख को कोई कुछ नहीं सिखा सकता।"

नासमझ कबूतर अपने ओछे अहंकार में किसी से कुछ न सीख सका और अभी तक उसका घोंसला अन्य चिड़ियों की अपेक्षा भौंड़ा ही बनता है।

मूर्ख को सीख न दो

पेड़ पर एक बन्दर बैठा जाड़े से सिकुड़ रहा था। उसके पास ही एक टहनी पर बया नामक पक्षी का घोंसला था। बया ने बन्दर की दुर्दशा देखकर उससे कहा—"ऐ बन्दर ! तेरे हाथ-पाँव मनुष्य के समान हैं, फिर भी तू इस प्रकार क्यों कष्ट पाता है, अपने लिए एक घोंसला क्यों नहीं बना लेता ? देख, मैं तो एक छोटा-सा पक्षी हूँ, फिर भी मैंने अपने लिए एक घोंसला बना लिया है और सुख से रहता हूँ।" बन्दर को इसका कहना बहुत बुरा लगा और हाथ मारकर उसका घोंसला तोड़ डाला।

पोथियाँ मिल गईं

सन्त तुकाराम जन्मजात शूद्र थे। उनका ईश्वर-भक्ति गीत लिखना तात्कालिक सवर्ण पण्डितों की दृष्टि में अनुचित ही नहीं, एक अपराध था।

एक निकटवर्ती पण्डित श्रीरामेश्वर भट्ट ने उन्हें बुलाया और कहा कि—"तुम्हें शूद्र होने के नाते यह सब कुछ नहीं करना चाहिए; न ईश्वर-भक्ति, न भजन कीर्तन और न अभंगों की रचना।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तुकाराम अत्यन्त ही सरल स्वभाव के, आवश्यकता से अधिक नम्र तथा बहुत ही सीधे-सादे व्यक्ति थे। उन्होंने रामेश्वर भट्ट की बात स्वीकार कर ली और पूछा—"किन्तु जो अभंग रचे जा चुके हैं, उनका क्या होगा ?" तब उस हृदयहीन पण्डित ने कहा—"उन्हें नदी में बहा दो।"

अनासक्त योगी तुकाराम ने सचमुच ही अपने अभंगों की पोथी इन्द्रायणी में प्रवाहित कर दी। उस दबाव में वे ऐसा कर तो गये, पर मन इतना मलहित हो गया कि वे विट्ठल मन्दिर के सामने तेरह दिन तक बिना अन्न, जल ग्रहण किए पड़े रहे और सोचते रहे मेरी भक्ति में ही कहीं कोई त्रुटि है, जो भगवान मुझसे प्रतिकूल हो गया है।

दुःखी मन की पुकार, जो मन सत्य के प्रकाश से उद्भासित हो, कभी खाली नहीं जाती। तेरहवें दिन तुकाराम को स्वप्न हुआ कि—"पोथियाँ नदी किनारे पड़ी हैं, जाकर उठा ला" तब उनके स्वप्न का हाल सुनकर उनके भक्तगण जयघोष करते हुए गए और पोथियाँ किनारे पर से उठा लाए।

अच्छा हुआ

सन्त तुकाराम अपने प्रारम्भिक जीवन में जब अत्यन्त ही अभावग्रस्त हो गये तो उन्होंने लिखा—"हे भगवान ! अच्छा ही हुआ जो मेरा दिवाला निकल गया। अकाल पड़ा यह भी अच्छा ही हुआ। स्त्री तथा पुत्र भोजन के अभाव से मर गये और मैं भी हर तरह से दुर्दशा भोग रहा हूँ, यह भी ठीक ही हुआ। संसार में अपमानित हुआ, यह भी अच्छा ही हुआ। गाय, बैल, द्रव्य सब चला गया, यह भी अच्छा ही है। लोक-लाज भी जाती रही ठीक ही है। क्योंकि इन्हीं बातों के फलस्वरूप तुम्हारी मधुरिमामय, शान्तिपूर्ण गोद मिली।"

हृदय-शुद्धि

कर्माबाई भगवान पंढरीनाथ को पुत्राभाव से पूजती और प्रेम करतीं। वे प्रातःकाल बिना स्नान किये ही खीर बनातीं और भगवान का बाल-भोग इस भाव से लगातीं कि भगवान को शय्या त्यागते ही भूख लगती है।

एक दिन एक शास्त्रीजी ने कहा—"वाह ! कर्माबाई भगवान का भोग नहा-धोकर लगाना चाहिए कि बिना स्नान किये ?" कर्माबाई ने उस दिन स्नान करके ही भोग लगाया। रात उन्होंने स्वप्न में देखा—भगवान पंडरीनाथ खड़े भूख-भूख चिल्ला रहे हैं। कर्माबाई ने पूछा—"देव ! आज खीर नहीं खाई क्या ?" भगवान बोले—"माँ ! खीर तो मैंने खा ली, पर आज तेरा वह प्रेम, वह भावना नहीं मिली जो रोज मिला करती थी।" कर्माबाई उसी दिन से बिना नहाये ही फिर भोग चढ़ाने लगीं।

वरदान से क्या लाभ

एक बार पाँच असमर्थ और अपंग लोग इकट्ठे हुए और कहने लगे, यदि भगवान ने हमें समर्थ बनाया होता तो बहुत बड़ा परमार्थ करते। अन्धे ने कहा—"यदि मेरी आँखें होतीं तो जहाँ कहीं अनुपयुक्त देखता, वहीं उसे सुधारने में लग जाता।" लँगड़े ने कहा—"पैर होते तो मैं दौड़-दौड़कर भलाई के काम करता।" निर्बल ने कहा—"बल होता तो मैं अत्याचारियों को मजा चखा देता।" निर्धन ने कहा—"धनी होता तो दीन-दुःखियों के लिए मैं सब कुछ लुटा देता।" मूर्ख ने कहा—"विद्वान होता तो मैं संसार में ज्ञान की गंगा बहा देता।"

वरुण देव उनकी बातें सुन रहे थे। उनकी सच्चाई को परखने के लिए उन्होंने आशीर्वाद दिया और इन पाँचों को उनकी इच्छित स्थिति मिल गई अन्धे ने आँखें, लँगड़े ने पैर, निर्बल ने बल, निर्धन ने धन और मूर्ख ने विद्या पाई और फूले न समाये। परिस्थिति बदलते ही उनके विचार भी बदल गये। अन्धा सुन्दर वस्तुएँ देखने में लगा रहता और अपनी इतने दिन की अतृप्ति बुझाता। लँगड़ा सैर-सपाटे के लिए निकल पड़ा। धनी ठाठ-बाट जमा करने में लगा। बलवान ने दूसरों को आतंकित करना शुरू कर दिया। विद्वान ने अपनी चतुरता के बल पर जमाने को उल्लू बना दिया। बहुत दिन बाद वरुणदेव उधर से लौटे और उन असमर्थों की प्रतिज्ञा निभी या नहीं, यह देखने के लिए रुक गये। पता लगाया तो वे पाँचों अपने-अपने स्वार्थ सिद्ध करने में लग हुए थे।

वरुणदेव बहुत खिन्न हुए और अपने दिए हुए वरदान वापस ले लिए। वे फिर जैसे के तैसे हो गये। अन्धे की आँखों का प्रकाश चला गया। लँगड़े के पैर जकड़ गये। धनी-निर्धन हो गया। बलवान को निर्बलता ने आ घेरा। अब उन्हें अपनी पुरानी प्रतिज्ञाएँ याद आईं और पछताने लगे कि पाये हुए सुअवसर को उन्होंने इस प्रकार क्यों खो दिया ? समय निकल चुका था, अब पछताने से बनता भी क्या था ? अवसर हाथ लगा था, निकल गया।

गधे का ज्ञान

सृष्टि के आरम्भ में गधा बहुत ही सौम्य स्वभाव का होने के कारण सम्मानास्पद प्राणियों में गिना जाता था। परमात्मा को अपने दरबार में पशुओं का भी एक प्रतिनिधि रखना उचित प्रतीत हुआ, उसने इसके लिए गधे की नियुक्ति कर दी।

उन दिनों सृष्टि का नियतक्रम चलाने के लिए भगवान उपासना नीति की एक शास्त्र संहिता रच रहे थे। कागज तब तक बना नहीं था, पत्तों पर वह लेखन-कार्य चल रहा था। संहिता के अनेक पृष्ठ कोमल पत्रों में लिखे जा चुके थे।

एक रात को जबकि सब लोग गहरी निद्रा में सोए पड़े थे, तब गधे को सूझी कि इन कोमल पत्रों का स्वाद चखा जाय। वह चुपके से उठा और एक-एक करके सब पत्तों को खा गया।

दूसरे दिन सबेरे जब भगवान आगे का लेखन-कार्य आरम्भ करने को उद्यत हुए, तो देखा कि अब तक के लिखे सब पत्र गायब हैं।

तहलका मच गया। तलाश की गई तो गधे की कारिस्तानी निकली। इतने परिश्रम को इस प्रकार मटियामेट हुआ देखकर भगवान को बड़ा क्रोध आया और उस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बुद्धिहीन प्राणी को स्वर्ग से निकाल बाहर करने की आज्ञा दे दी।

गधे को स्वर्ग से धकेला गया, तो वह पृथ्वी पर आ गिरा। चोट तो उसे बहुत लगी, दुःख भी हुआ, पर अन्त में उसने यह सोचकर सन्तोष कर लिया कि परमात्मा का सारा ज्ञान मेरे पेट में मौजूद है।

गधे ने चिल्ला-चिल्लाकर लोगों से कहना आरम्भ किया। परमात्मा का सारा ज्ञान मेरे पेट में मौजूद है, जो चाहते हो, मुझसे पूछो, मेरी बात मानो और जिधर चलने को मैं कहूँ उधर चलो।"

कुछ लोगों ने गधे की बात सच मानी और उसके कहने पर चलने लगे; पर बहुतों को उसकी बात जँची नहीं और उसे बेवकूफ बताकर हँसते हुए घर चले गये।

रोज इसी प्रकार बकता-बकता समय आने पर गधा मर गया, पर कहते हैं कि उसकी आत्मा अभी भी अपने रास्ते पर चल रही है। अनेक धर्म-गुरुओं के सिर पर वह चढ़कर यही कहलवाती है कि—"जो हम जानते हैं वही सब कुछ है, हमारी बात सुनो, हमारे मत को मानो और हमारे पीछे चले चलो।"

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँच स्थापनाएँ

युगद्रष्टा के स्तर की अवतारी सत्ता के रूप में परमपूज्य गुरुदेव ने अपने अस्सी वर्ष के जीवनकाल में जितना भी कुछ किया, उसकी मिसाल कहीं देखने को नहीं मिलती। करोड़ों व्यक्तियों के मनों का निर्माण, उनके सोचने के तरीके में बदलाव एवं युगनिर्माण की पृष्ठभूमि बनाकर रख देने का कार्य इन्हीं के स्तर की सत्ता कर सकती थी, जो लाखों वर्षों में कभी-कभी धरती पर आती है। उनके द्वारा की गयी स्थापनाओं का जब प्रसंग आता है तब ईंट-गारे-चूने-सीमेंट से बने भवनों से पहले उनकी स्नेह-संवेदना से सिक्त हुए, ममत्व में स्नानकर उनके अपने हो गये लाखों व्यक्ति दिखाई पड़ते हैं, जिनने उनके एक इशारे पर अपना सब कुछ उनको अर्पित कर दिया। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में कभी ऐसा ही वातावरण भारत के कोने-कोने में दिखाई देता था, जब हर घर से सत्याग्रही निकलकर आ रहे थे। भावनाओं का आवेग चिरस्थायी नहीं रहता। वे ही लोग जो कभी राष्ट्र-निर्माण के लिए अपना सब कुछ छोड़, पढ़ना-लिखना छोड़ देश को आजाद बनाने के लिए कूद पड़े थे, कभी गड़बड़ाने न पाएँ, उसी के लिए बापू ने आजादी के बाद काँग्रेस भंग कर देने व सभी को एक आदर्श स्वयं-सेवक की तरह दरिद्र नारायण का उत्थान कर राष्ट्रनिर्माण में लग जाने की सलाह दी थी।

सभी इस तथ्य को जानते हैं कि ऐसा नहीं हुआ, राष्ट्र का कीर्ति-स्तम्भ रूपी वह महापुरुष भी एक वर्ष के अंदर ही शहादत को प्राप्त हो चला गया। गिने-चुने उनके आदर्शों पर चलने वाले रह गये, अवसरवादियों को राजनेतृत्व भाने लगा एवं राष्ट्र आजाद होकर भी उनके हाथ में आ गया, जो ब्रिटिश तो नहीं थे किन्तु, उसी रंग में रँगे सत्ता के उन्माद में काम करने वाले शासक थे- सृजेता नहीं। जिंदा रहा तो मात्र बापू का दर्शन, बुनियादी आधार पर टिका- मानव को बनाने का तंत्र-आश्रम तंत्र जो सेवाग्राम-साबरमती आश्रम के रूप में कार्य करता रहा और वह भी शीर्ष-पुरुष के न रहने, बिनोवाजी के चले जाने के बाद अस्तित्व व महत्व की दृष्टि से गौण हो गया। परमपूज्य गुरुदेव ने अपनी दिव्य-दृष्टि से यह सब पूर्व में ही देख लिया था कि कोई भी भव्य निर्माण, आश्रम या तंत्र बनाने से पूर्व राष्ट्र को सांस्कृतिक, भौतिक, आध्यात्मिक आजादी दिलाने वाले अगणित व्यक्ति तैयार करने पड़ेंगे। सन् १९११, संवत् १९६८ में जन्मे, राष्ट्र की आजादी में उन्मत्त बने श्रीराम 'मत्त' कहलाने वाले, आचार्यश्री ने पहले स्वयं को तपाया, वैचारिक क्रान्ति के निर्माण का आधारभूत तंत्र स्वयं व परमवंदनीया माताजी के रूप में खड़ा किया। 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका अपनी लेखनी से लिखी, ममत्व भरी चिट्ठियों व छोटी-छोटी एक आने की किताबों से जन-जन के मन को छुआ, तब जाकर अपने एक लक्ष के २४ गायत्री महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर उन्होंने गायत्री तपोभूमि, मथुरा की स्थापना की बात १९५२-५३ में सोची। सबसे पहली मंत्रदीक्षा वहीं पर १९५३ में दी व यह मानते हुए कि बिना आध्यात्मिक आधार बनाये, मनोभूमि में, भावनाओं के स्तर पर बदलाव लाये कोई क्रान्ति सफल नहीं हो सकती, धीमी खुराक देते हुए हर व्यक्ति को गायत्री व यज्ञ के तत्त्वदर्शन से जोड़ते हुए चले गये। गायत्री परिवार रूपी विराट वृक्ष का मूल आधार वह स्थापना है जो जन-जन के मनों में पहले हुई- उनकी भाव-संवेदनाओं के उदात्तीकरण के रूप में सम्पन्न हुई व उनके अंदर अपनी गुरुसत्ता की त्याग करने की, यज्ञीय जीवन अपनाने की प्रेरणा बलवती होने लगी। उन्होंने सर्वमेध के रूप में अपना सर्वस्व बलिदान एवं नरमेध के रूप में अपने आप को समाज के हित न्योछावर करने की भावना से दो यज्ञ किये। अपनी जमींदारी के बाण्ड बेचकर एवं परमवंदनीया माताजी के कीमती सोने के जेवर (ढाई सौ तोले) बेचकर जो स्वेच्छा से सम्पन्न हुआ, एक स्थापना भवन के रूप में जो हुई- वह थी ***गायत्री तपोभूमि, मथुरा*** जो वृन्दावन रोड पर ऋषि दुर्वासा की जन्मस्थली पर बनी आज से ४२ वर्ष पूर्व १९५३ में। प्रारंभिक स्थापना यों अखण्ड ज्योति संस्थान को माना जा सकता है जहाँ अखण्ड दीपक अपनी जन्मभूमि आँवलखेड़ा से जो वहाँ से मात्र ४० मील दूर थी, स्थापित किया गया था एवं प्रारंभिक तप-तितिक्षा वहीं पर १९४१ से, तपोभूमि की स्थापना से भी १२ वर्ष पूर्व आरम्भ हो गयी थी। इस प्रकार जन-जन के मनों का निर्माण उनके अंतस्तल में प्रवेश कर उनके अंदर देवत्व के जागरण की ललक पैदा करने वाली पृष्ठभूमि पर स्थापनाओं का क्रम बना। किराये की ऐसी हवेली जिसे भुतहा हवेली कहा जाता था, में अखण्ड दीपक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org
की स्थापना, उसके समक्ष तप, ***अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा*** के रूप में विकसित हुआ एवं एक और दूसरा निर्माण मथुरा में ही गायत्री तपोभूमि के रूप में हुआ, जो कि ३ मील दूर वृन्दावन रोड पर १९५३ में बनाई गई। १९५३ में क्रमशः सुसंगठित गायत्री परिवार के बनने की प्रक्रिया चल पड़ी।

इस प्रारंभिक भूमिका को समझने के बाद ही परमपूज्य गुरुदेव की पाँच मूल स्थापनाओं एवं बाद में देश के कोने-कोने में बनी भव्य इमारतों के रूप में शक्तिपीठों, प्रज्ञासंस्थानों, भारत व विश्वभर में घर-घर में स्थापित स्वाध्याय मण्डलों व गायत्री परिवार की शाखाओं, प्रज्ञापीठों, चरणपीठों का महत्त्व समझा जा सकता है। नहीं तो जैसे अन्यान्य आश्रम-संस्थान बनते हैं, ऐसे इनका भी वर्णन किया जा सकता था व यह कहा जा सकता था कि यह वैभवपूर्ण स्थापनाएँ पूज्यवर ने कीं। उनमें यदि प्राण फूँके गये हों, प्राणवान व्यक्ति वहाँ रहते हों व उस शक्ति के महा-अवसान के बाद भी वे सतत उसी दिशा में चल रहे हों तो माना जाना चाहिए कि प्रारंभिक पुरुषार्थ जो किया गया, वह औचित्यपूर्ण था।

परमपूज्य गुरुदेव की महत्त्वपूर्ण पाँच स्थापनाएँ इस प्रकार हैं–

(१) युगतीर्थ आँवलखेड़ा (२) अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा (३) गायत्री तपोभूमि, मथुरा (४) शान्तिकुंज, गायत्री तीर्थ, सप्तसरोवर, हरिद्वार तथा (५) ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान, सप्तसरोवर, हरिद्वार ।

युगतीर्थ आँवलखेड़ा का नाम सबसे पहले इसलिए लिखा कि यहीं पर वह युगपुरुष संवत् १९६८ की आश्विन कृष्ण त्रयोदशी तिथि के दिन, ब्रह्ममुहूर्त में, जो अँग्रेजी तारीख से २० सितम्बर, १९११ के दिन आती थी, में जन्मा। एक श्रीमंत ब्राह्मण परिवार में, जहाँ धन की कोई कमी नहीं थी, पूरा परिवार संस्कारों से अनुप्राणित, पिता भागवत के प्रकाण्ड पंडित, बहुत बड़ी जागीर के मालिक। आज जहाँ पूज्यवर की स्मृति में एक विराट स्तंभ की, एक चबूतरे की तथा उनके कर्तृत्व रूपी शिलालेखों की स्थापना हुई है- वहीं पूज्यवर ने शरीर से जन्म लिया था। समीप बनी दो कोठरियाँ जो कालप्रवाह के क्रम में गिर-सी गयी थीं, जीर्णोद्धार कर वैसी ही निर्मित कर दी गयी हैं- जैसी उनके समय में थीं। जन्मभूमि का कण-कण उस दैवीसत्ता की चेतना से अनुप्राणित है। उनके हाथ से खोदा कुआँ, जिसे पूरे गाँव का एकमात्र मीठे जल वाला कुआँ माना गया- वह अभी भी है, उनके हाथ से रोपा नीम का पेड़ एवं वह बैठक जहाँ स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में सब बैठकर चर्चा करते थे, आज भी उन दिनों की याद दिलाते हैं। पास में ही दो कोठरियाँ हैं, जिनमें से एक कक्ष में वह स्थान है जहाँ दीपक के प्रकाश में से सूक्ष्मशरीरधारी गुरुसत्ता प्रकट हुई थी तथा जिसने उनके जीवन की दिशाधारा का १९२६ के बाद के क्रम का निर्धारण कर दिया था। यह सब देखकर मस्तिष्क-पटल पर वह दृश्य उभर आता था, जिसे गुरुसत्ता ने कभी देखा था व जो गायत्री परिवार की स्थापना का मूल आधार बना। आँवलखेड़ा में ही उनकी माताजी की स्मृति में स्थापित 'माता दानकुँवरि इण्टर कालेज' है जो उनके द्वारा दान दी गयी जमीन में प्रदत्त धनराशि द्वारा विनिर्मित है। १९६३ से चल रहे इस इंटर कालेज से कई मेधावी छात्र निकल कर आत्म-निर्भर बने हैं व उच्च पदों पर पहुँचे हैं।

१९७९-८० में गायत्री शक्तिपीठ एवं कन्या इंटर कॉलेज की स्थापना का ताना-बाना बुना जाने लगा, जो एक विशाल शक्तिपीठ तथा आसपास के दो सौ ग्रामों की बालिकाओं के पठन-पाठन की व्यवस्था करने वाले, उन्हें सुशिक्षित, संस्कारवान, आत्मावलम्बी बनाने वाले कन्या महाविद्यालय का अब रूप ले चुका है। प्रथम पूर्णाहुति हेतु इसी भूमि को जो शक्तिपीठ-जन्मभूमि-ग्रामीण क्षेत्र के चारों ओर है, इसीलिए चुना गया कि यहाँ से उद्भूत प्राणऊर्जा से यहाँ आने वाला हर संकल्पित साधक अनुप्राणित होकर जाए व राष्ट्र के नव-निर्माण की सांस्कृतिक व भावनात्मक क्रान्ति की पृष्ठभूमि रख सके। यहाँ पूज्यवर १९३६-३७ तक ही रहे, कुछ दिन आगरा रहकर १९४०-४१ में मथुरा चले गये, जहाँ दो-तीन मकान बदलने के बाद वर्तमान मकान किराये पर लिया, जिसे आज अखण्ड-ज्योति संस्थान कहते हैं।

अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा में स्थित है। परमपूज्य गुरुदेव सीमित साधनों में अपने अखण्ड दीपक के साथ यहीं रहने लगे एवं यहीं से क्रमशः आत्मीयता विस्तार की, जन-जन तक अपने क्रान्तिकारी चिंतन के विस्तार की प्रक्रिया 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका, जो आगरा से ही आरम्भ कर दी गयी थी, की 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ व अन्यान्य लेखों की पंक्तियों के माध्यम से सम्पन्न होने लगी। व्यक्तिगत पत्रों द्वारा उनके अंतस्तल को स्पर्श कर एक महान स्थापना का बीजारोपण होने लगा। यहीं पर अगणित दुःखी, तनावग्रसित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्तियों ने आकर उनके स्पर्श से नये प्राण पाये तथा उनके व परमवंदनीया माताजी के हाथों से भोजन-प्रसाद पाकर उनके अपने होते चले गये। हाथ से बने कागज पर छोटी ट्रेडिल मशीनों द्वारा यहीं पर अखण्ड ज्योति पत्रिका छापी जाती थी व छोटी-छोटी किताबों द्वारा लागत मूल्य पर उसे निकालने योग्य खर्च निकलता था। बगल की एक छोटी-सी कोठरी में जहाँ अखण्ड दीपक जलता था, आज पूजाघर विनिर्मित है। पूरी बिल्डिंग को खरीद कर उनके सुपुत्र ने एक नया आकार व मजबूत आधार दे दिया है किन्तु यह कोठरी अंदर से वैसी ही रखी गयी है जैसी पूज्यवर के समय में १९४२-४३ में रही होगी। तब से लेकर आगामी ३० वर्ष का साधनाकाल-लेखनकाल पूज्यवर का इसी घीयामण्डी के भवन में छोटी-छोटी दो कोठरियों में गहन तपश्चर्या के साथ बीता। तपोभूमि निर्माण की पृष्ठभूमि यहीं बनी, १९५८ में सहस्र कुण्डी यज्ञ की आधारशिला यहीं रखी गयी, यहीं सारी योजना बनी एवं विधिवत गायत्री परिवार बनता चला गया। रोज आने वाले पत्रों को स्वयं परमवंदनीया माताजी पढ़ती जातीं एवं पूज्यवर इतनी ही देर में जवाब लिखते जाते, यही सूत्र संबंधों के सुदृढ़ बनने का आधार बना। हर परिजन को तीन दिन में जवाब मिल जाता, शंका-समाधान होता चला जाता एवं देखते-देखते एक विराट गायत्री परिवार बनता चला गया। गायत्री महाविज्ञान के तीनों खण्ड, युगनिर्माण परक साहित्य, आर्ष-ग्रन्थों के भाष्य को अंतिम आकार देने का कार्य यहीं सम्पन्न हुआ। जनसम्मेलनों, छोटे-बड़े यज्ञों एवं १००८ कुण्डी पाँच विराट यज्ञों में पूज्यवर यहीं से गये एवं विदाई सम्मेलन की रूपरेखा बनाकर स्थायी रूप से इस घर से १९७१ की २० जून को विदा लेकर चले गये। इस संस्थान के कण-कण में जहाँ आज १० लाख से अधिक संख्या में हिन्दी सहित सभी भाषाओं में अखण्ड ज्योति पत्रिका के प्रकाशन, विस्तार, डिस्पैच आदि का एक विराट तंत्र स्थापित है, परमपूज्य गुरुदेव की चेतना संव्याप्त अनुभव की जा सकती है। भले ही बहिरंग का कलेवर बदल गया हो, अंदर प्रवेश करते ही परमपूज्य गुरुदेव व परमवंदनीया माताजी की सतत विद्यमान प्राणचेतना के स्पन्दन यहाँ विद्यमान हैं, यह प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है।

गायत्री तपोभूमि, मथुरा को परमपूज्य गुरुदेव की चौबीस महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर की गयी स्थापना माना जा सकता है, जिसे विनिर्मित ही गायत्री परिवार रूपी संगठन के विस्तार के लिए किया गया था। इसकी स्थापना से पूर्व चौबीस सौ तीर्थों के जल व रज को संग्रहीत करके यहाँ उनका पूजन किया गया, एक छोटी किन्तु भव्य यज्ञशाला में अखण्ड अग्नि स्थापित की गयी तथा एक गायत्री महाशक्ति का मन्दिर विनिर्मित किया गया। चौबीस सौ करोड़ गायत्री मंत्रों का लेखन जो श्रद्धापूर्वक नैष्ठिक साधकों द्वारा किया गया था, यहाँ पर संरक्षित कर रखा गया है। पूज्य गुरुदेव की साधनास्थली व प्रातःकाल की लेखनी की साधना की कोठरी यदि अखण्ड ज्योति संस्थान में थी तो उनकी जन-जन से मिलने, साधनाओं द्वारा मार्गदर्शन देने की कर्म-भूमि गायत्री तपोभूमि थी। यहीं पर १०८ कुण्डी गायत्री महायज्ञ में १९५३ में पहली बार पूज्यवर ने साधकों को मंत्रदीक्षा दी। यहीं पर १९५६ में नरमेध यज्ञ तथा १९५८ में विराट सहस्रकुण्डी यज्ञायोजन सम्पन्न हुए। श्रेष्ठ नररत्नों का चयन कर गायत्री परिवार को विनिर्मित करने का कार्य यहीं व्यक्तिगत मार्गदर्शन द्वारा सम्पन्न हुआ। हिमालय प्रवास से लौटकर पूज्य आचार्यश्री ने युगनिर्माण योजना के शत-सूत्री कार्यक्रम एवं सत्संकल्प की तथा युगनिर्माण विद्यालय के एक स्वावलम्बन प्रधान शिक्षा देने वाले तंत्र के आरम्भ होने की घोषणा की: यह विधिवत १९६४ से आरम्भ किया गया एवं अभी भी सफलतापूर्वक चल रहा है। जिस कक्ष में परमपूज्य गुरुदेव सभी से मिला करते थे, अभी भी यहाँ देखा जा सकता है। भव्य निर्माण परमपूज्य गुरुदेव की १९७१ की विदाई के बाद यहाँ हो गया है किन्तु, कण-कण में उनकी प्राणचेतना का दर्शन किया जा सकता है। विराट प्रज्ञानगर, युग निर्माण विद्यालय, साहित्य की छपाई हेतु बड़ी-बड़ी ऑफसेट मशीनें तथा युगनिर्माण साहित्य जो पूज्यवर ने जीवन भर लिखा, उसका वितरण-विस्तार तंत्र यहाँ पर देखा जा सकता है।

शान्तिकुंज, हरिद्वार ऋषिपरम्परा के बीजारोपण केन्द्र के रूप में १९७१ में स्थापित किया गया था, जब परमपूज्य गुरुदेव मथुरा स्थायी रूप से छोड़कर परमवंदनीया माताजी को अखण्ड ज्योति दीपक की रखवाली हेतु यहाँ छोड़कर हिमालय में चले गये। गुरुसत्ता के निर्देश पर वे पुनः एक वर्ष बाद लौटे व तब शांतिकुंज को उनने एक बड़ा विराट रूप देने, सभी ऋषिगणों की मूलभूत स्थापनाओं को यहाँ साकार बनाने का निश्चय किया। इससे पूर्व परमवंदनीया माताजी ने २४ कुमारी कन्याओं के साथ अखण्ड दीपक के समक्ष २४० करोड़

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org
गायत्री मंत्र का अखण्ड अनुष्ठान आरंभ कर दिया था। पूज्यवर ने प्राण-प्रत्यावर्तन सत्र, जीवन-साधना सत्र, वानप्रस्थ सत्र आदि के माध्यम से विभिन्न क्षेत्र में सक्रिय कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता यहीं गढ़े। यह सत्र शृंखला कल्प साधना, संजीवनी साधना सत्रों के रूप में तब से ही ९ दिवसीय सत्रों व एक माह के युगशिल्पी प्रशिक्षण सत्रों के रूप में चल रही है, अभी भी अनवरत उसमें आने वालों का ताँता लगा रहता है। पहले से ही सब अपनी बुकिंग इसमें करा लेते हैं।

शांतिकुंज को गायत्री तीर्थ का रूप देकर सप्तऋषियों की मूर्तियों की स्थापना १९७८-७९ में की गयी, एक देवात्मा हिमालय विनिर्मित किया गया एवं यहाँ सभी संस्कारों को सम्पन्न करते रहने का क्रम बन गया जो सतत चल रहा है। नित्य यहाँ दीक्षा, पुंसवन, नामकरण, विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत, विवाह, श्राद्ध-तर्पण आदि संस्कार सम्पन्न होते हैं। इस बीच परमवंदनीया माताजी ने जागरण सत्र शृंखलाएँ सम्पन्न करना आरम्भ रखा। देव-कन्याओं को प्रशिक्षित कर पूरे भारत में जीप टोलियों में भेजा गया। इनके माध्यम से तीन वर्ष तक भारत के कोने-कोने में तुमुलनाद होता रहा।

शांतिकुंज का गायत्री नगर, जो आज एक विराट स्थापना के रूप में, एक एकेडमी के रूप में नजर आता है व जिसमें एक बार में एक साथ दस हजार व्यक्ति एक साथ ठहर सकते हैं, १९८१-८२ में बनना आरम्भ हुआ । विलक्षण, दुर्लभ जड़ी-बूटियों के पौधे यहाँ लगाये गये तथा प्रखर प्रज्ञा-सजल श्रद्धा रूपी तीर्थस्थली का पूज्यवर ने अपने सामने निर्माण कराया। यहीं उनके निर्देशानुसार उनके शरीर छोड़ने पर दोनों सत्ताओं को अग्नि समर्पित की जानी थी। स्वावलम्बन विद्यालय से लेकर एक विशाल चौके का निर्माण एवं गायत्री विद्यापीठ से लेकर भारत के सभी सरकारी विभागों के प्रशिक्षण के तंत्र की स्थापना यहाँ पर की गयी है एवं यह एक जीता-जागता तीर्थ अब बन गया है, जहाँ पर उज्ज्वल भविष्य की पूर्व झलक देखी जा सकती है। कम्प्यूटरों से सज्जित विशाल कार्यालय से लेकर पत्राचार विद्यालय जहाँ नित्य हजारों पत्रों के द्वारा पूरे तंत्र का मार्गदर्शन किया जाता है, यहाँ की विशेषता है।

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँचवीं स्थापना है, जहाँ पर विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय का अभिनव शोधकार्य चल रहा है। इसे १९८१ की गायत्री जयंती पर आरम्भ किया गया था। वर्तमान शांतिकुंज- गायत्री तीर्थ से आधा किलोमीटर दूरी पर गंगातट पर स्थित यह संस्थान् अपनी आकर्षक बनावट के कारण सहज ही सबके मनों को मोहकर आमंत्रित करता रहता है। इसमें तीन मंजिलों में प्रथम तल पर एक विज्ञान के उपकरणों से सुसज्जित यज्ञशाला विनिर्मित है तथा चौबीस कक्षों में गायत्री महाशक्ति की चौबीस मूर्तियाँ बीजमंत्रों व उनकी फलश्रुतियों सहित स्थापित हैं। द्वितीय तल पर एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला है, जहाँ ऐसे उपकरण स्थापित हैं, जो यह जाँच-पड़ताल करते हैं कि साधना से पूर्व व पश्चात्, यज्ञादि मंत्रोच्चारण के पूर्व व पश्चात् क्या-क्या परिवर्तन शरीर-मन की गतिविधियों व रक्त आदि संघटकों में देखने में आये। इनके आधार पर साधकों को साधना संबंधी परामर्श दिया जाता है। यहाँ पर वनौषधियों का विश्लेषण भी किया जाता है तथा यज्ञ ऊर्जा-मंत्र शक्ति का क्या प्रभाव साधक की मस्तिष्कीय तरंगों, जैव विद्युत आदि पर पड़ा, यह देखा जाता है। विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण भी यहाँ किये जाते हैं। तृतीय तल पर एक विशाल ग्रंथागार स्थापित है, जहाँ विश्वभर के शोधप्रबंध वैज्ञानिक अध्यात्मवाद पर एकत्रित किये गये हैं। यहाँ प्राय: ४५००० से अधिक ग्रंथ हैं, जिनमें कई पुरातन पाण्डुलिपियाँ हैं। यह अपने आप में एक अनूठा संकलन है जो और कहीं एक साथ देखने में नहीं मिलता।

परमपूज्य गुरुदेव की उपरोक्त पाँच स्थापनाएँ किसी को भी यह परिचय दे सकती हैं कि किस विलक्षण द्रष्टास्तर की वह महासत्ता थी जो हम सबके बीच अपना लीलासंदोह रचकर चली गयी। प्रत्यक्ष तो यह केन्द्रीय पाँच स्थापनाएँ नजर आती हैं किन्तु ४८०० से अधिक अपने भवनों वाले प्रज्ञासंस्थान ४०००० से अधिक प्रज्ञामण्डल व स्वाध्यायमण्डल तथा अगणित गायत्री परिवार की शाखाएँ यदि इनमें मिलाई जाएँ तो इनका मूल्य राशि में आँका नहीं जा सकता। यही वह सब है जो उस महापुरुष को एक अवतारी स्तर की सत्ता के रूप में प्रतिष्ठापित करता है व जिसके कर्तृत्व पर श्रद्धावनत होने का मन करता है। ❑❑❑

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य का जीवनदर्शन : समग्र वाङ्मय

परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ने जीवन भर जो अपनी लेखनी से लिखा, औरों को प्रेरित कर उनसे सृजनात्मक लेखन करवाया, पुस्तकों-पत्रिकाओं में जो प्रकाशित हुआ, समय-समय पर उनने अमृतवाणी के माध्यम से जो विचारों की अभिव्यक्ति की, विचारसार व सूक्तियाँ जो वे लिख गये या अनायास कभी कह गये तथा पत्रों के माध्यम से जो अंतरंग स्पर्श जन-जन को दिया, वह समग्र इस वाङ्मय के खण्डों में है । जिनके नाम इस प्रकार हैं :-

१. युगद्रष्टा का जीवन-दर्शन
समग्र वाङ्मय का परिचय
२. जीवन देवता की साधना-आराधना
३. उपासना-समर्पण योग
४. साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान
५. साधना से सिद्धि-१
६. साधना से सिद्धि-२
७. प्रसुप्ति से जाग्रति की ओर
८. ईश्वर कौन है, कहाँ है, कैसा है ?
९. गायत्री महाविद्या का तत्वदर्शन
१०. गायत्री साधना का गुह्य विवेचन
११. गायत्री साधना के प्रत्यक्ष चमत्कार
१२. गायत्री की दैनिक एवं विशिष्ट अनुष्ठान-परक साधनाएँ
१३. गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ
१४. गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि
१५. सावित्री, कुण्डलिनी एवं तंत्र
१६. मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवं सत्य
१७. प्राणशक्ति : एक दिव्य विभूति
१८. चमत्कारी विशेषताओं से भरा मानवी मस्तिष्क
१९. शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म
२०. व्यक्तित्व विकास हेतु उच्चस्तरीय साधनाएँ
२१. अपरिमित संभावनाओं का आगार मानवी व्यक्तित्व
२२. चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन
२३. विज्ञान और अध्यात्म परस्पर पूरक
२४. भविष्य का धर्म : वैज्ञानिक धर्म
२५. यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान
२६. यज्ञ : एक समग्र उपचार प्रक्रिया
२७. युग-परिवर्तन कैसे और कब ?
२८. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-१
२९. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-२
(सतयुग की वापसी)
३०. मर्यादा पुरुषोत्तम राम
३१. संस्कृति-संजीवनी श्रीमद्भागवत एवं गीता
३२. रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाएँ
३३. षोडश संस्कार विवेचन
३४. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्व
३५. समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान
३६. धर्मचक्र प्रवर्त्तन एवं लोकमानस का शिक्षण
३७. तीर्थ सेवन : क्यों और कैसे ?
३८. प्रज्ञोपनिषद्
३९. नीरोग जीवन के महत्त्वपूर्ण सूत्र
४०. चिकित्सा उपचार के विविध आयाम
४१. जीवेम शरदः शतम्
४२. चिरयौवन एवं शाश्वत सौन्दर्य
४३. हमारी संस्कृति : इतिहास के कीर्ति स्तम्भ
४४. मरकर भी अमर हो गये जो
४५. सांस्कृतिक चेतना के उन्नायक : सेवाधर्म के उपासक
४६. भव्य समाज का अभिनव निर्माण
४७. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता
४८. समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तंत्र
४९. शिक्षा एवं विद्या
५०. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-१
५१. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-२
५२. विश्व वसुधा जिनकी सदा ऋणी रहेगी
५३. धर्मतत्त्व का दर्शन व मर्म
५४. मनुष्य में देवत्व का उदय
५५. दृश्य जगत् की अदृश्य पहेलियाँ
५६. ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ
५७. मनस्विता प्रखरता और तेजस्विता
५८. आत्मोत्कर्ष का आधार- ज्ञान
५९. प्रतिगामिता का कुचक्र ऐसे टूटेगा
६०. विवाहोन्माद : समस्या और समाधान
६१. गृहस्थ : एक तपोवन
६२. इक्कीसवीं सदी : नारी सदी
६३. हमारी भावी पीढ़ी और उसका नवनिर्माण
६४. राष्ट्र समर्थ और सशक्त कैसे बने ?
६५. सामाजिक, नैतिक एवं बौद्धिक क्रान्ति कैसे ?
६६. युग निर्माण योजना-दर्शन, स्वरूप व कार्यक्रम
६७. प्रेरणाप्रद दृष्टान्त
६८. पूज्यवर की अमृतवाणी (भाग एक)
६९. विचारसार एवं सूक्तियाँ (प्रथम खण्ड)
७०. विचारसार एवं सूक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

वाङ्मय के आगे प्रकाशित होने वाले ३८ खण्ड निम्न विषयों पर होंगे--

७१. मनोविकारों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि
७२. तनाव के कारण एवं उनके निवारण के उपाय
७३. चिन्तन का विधेयात्मक-निषेधात्मक स्वरूप
७४. पुरुषार्थ और मानवी जिजीविषा
७५. संकल्प बल का अनूठा प्रभाव
७६. बाल-विकास के विविध सोपान
७७. बाल मनोविज्ञान का सही उपयोग
७८. पारिवारिकता में सुसंस्कारों का योगदान
७९. पारिवारिक पंचशील और परिवार-निर्माण
८०. व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया
८१. विचार-विज्ञान का महत्त्व
८२. सामाजिक समस्याएँ और उनका समाधान
८३. समाज-निर्माण के विभिन्न चरण
८४. सामाजिक जीवन में सद्गुणों की भूमिका
८५. नर-नारी की सामान्य समस्याएँ और उनका समाधान
८६. नारी जागृति की बाधाएँ एवं उनके निराकरण के उपाय
८७. पारिवारिक जीवन: एक तप-साधना
८८. दाम्पत्य जीवन के संयुक्त दायित्व
८९. नीति-विज्ञान और नैतिकता
९०. कृषि, व्यवसाय और उद्योग की उन्नति के आधार
९१. पूज्य गुरुदेव के स्फुट विचार
९२. पूज्यवर की अमृतवाणी-२
९३. पूज्य गुरुदेव की दिव्य अनुभूतियाँ
९४. पूज्य गुरुदेव के लिखे स्मरणीय पत्र
९५. तंत्र महाविज्ञान विवेचन
९६. मंत्र महाविज्ञान विवेचन
९७. महापुरुषों के प्रेरक जीवन-प्रसंग
९८. प्रेरणाप्रद कथा एवं गाथाएँ
९९. हृदयस्पर्शी विविध कथाएँ
१००. शान्तिकुंज का प्रज्ञा अभियान
१०१. युग निर्माण मिशन का क्रमिक इतिहास
१०२. वेद-सार-चिन्तन
१०३. पुराण-शोध-सार
१०४. उपनिषद् और आरण्यकों की दार्शनिक विषयवस्तु
१०५. काव्य-गीत-मंजूषा
१०६. मिशन के रचनात्मक कार्यक्रमों का क्रमिक इतिहास
१०७. मिशन की लोक-व्यवहार संहिता
१०८. गुरुदेव की अपने आत्मीय जनों से अपनी बातें

❑❑❑

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org